

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

पंचम भाग

['दस्त' से 'न्हावना' तक, शब्दसंख्या—१६०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक सम्पादक

बालकृष्ण भट्ट

रामचंद्र शुक्ल

अमीर सिंह

जगन्मोहन वर्मा

भगवानदीन

रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद

कमलापति त्रिपाठी

नगेंद्र

धीरेंद्र वर्मा

रामधन शर्मा

हरवंशलाल शर्मा

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ (स्वर्गीय)

शिवनंदनलाल दर

शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' (सह० सयो०)

सुधाकर पांडेय

करुणापति त्रिपाठी (सयोजक संपादक)

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरी-प्रचारिणी सभा

वाराणसी ५ नई दिल्ली

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

सं० २०५२ वि०

सन् १९९५ ई०

मूल्य - रु० २५०/- मात्र

६०० प्रतियाँ

मुद्रक

श्रीनारायण, नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
के लिये आनन्द मुद्रण, विश्वेश्वरगंज, वाराणसी
द्वारा (आफसेट प्रिंटिंग) मुद्रित।

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाओं का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण, सं० २०२५ वि० सन् १९६८ ई० में निकला था। इसके भाग क्रमशः अनुपलब्ध होते जा रहे हैं। इसलिए सभा ने यह संकल्प लिया कि इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाय ताकि इसकी उपलब्धता निरन्तर बनी रहे। पाँचवा भाग इधर कुछ दिनों से अनुपलब्ध था, इसी क्रम में यह संस्करण उपलब्ध कराया जा रहा है।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत् करता रहेगा।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

सं० २०५२ वि०

१८ अगस्त १९९५ ई०

सुधाकर पांडेय

प्रधानमंत्री

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समार्ज में प्रकाशस्तम्भ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुन अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्यादक पीढ़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एष हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा ससार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामन्त्रालय ने अपने पत्र सं० एफ १४—३१५४ एच० दिनांक ११.५.५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस सवध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामन्त्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मन्त्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संपादन और पुन संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मन्त्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की सत्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी दो खंडों तक भारत सरकार ने वहन किया है, इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षामन्त्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशमूल्य का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में ऐसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें सकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधाग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये कोशशिल्प सबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, सत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सागान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा झिगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह सशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पोष, सवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पोष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पडाल में काशी, प्रयाग एव अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री प० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस सशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउंटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों

द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अमूर्त ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत पंचम खंड में 'दस्त' से लेकर 'न्हावना' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, योगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से संकलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ३६० पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित सशोधित संस्करण में ५२० पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इनके निर्माण में योग दिया है। स्व० श्री कृष्णदेवप्रसाद गोड नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते थे और प० कल्याणपति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं, सनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होना रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी }
विजया दशमी २०२५ वि० }

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

मंचेरे०	मंचेरे की सुख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अर्ध०	अर्धकथानक, सपा० माधुराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० स०
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७	अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोगसंहिता
अखिलेश (शब्द०)	अखिलेश कवि	आधी	आधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १९५१ सं०	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उत्ताव	आश्रय अनु-क्रमणिका (शब्द०)	आश्रय अनुक्रमणिका
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आदि०	आदिभारत, अर्जुन श्री काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स०, १९५३ ई०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगनानंद बिहारी, वैकुण्ठेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०	आनंदधन (शब्द०)	कवि आनंदधन
अनेक (शब्द०)	अनेकार्य नाममाला (शब्दसागर)	आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनेकार्य०	अनेकार्यमंजरी और नाममाला, संपा० बभ्रुप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० स०	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	आर्यों	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० स०
अभिषात	अभिषात, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इंद्र०	इंद्रजात, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
अमिट०	अमिट स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०	इंद्रा०	इंद्रावती, सपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर	इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, अजरस्तदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	इति०	इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवी सं०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद	इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० भार० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०	इनशा (शब्द)	इनशा अल्ला खाँ
		इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, अनु० सं०
		उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, भागुरा, पंचम सं०

एकांत०	एकांतवासी योगी, भानु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०	काव्य० य० प्र०	काव्य यथार्थ श्रीर प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, धारगढ़, प्र० सं०, २०१२ वि०
कंकास	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०	काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्	कासीराम (शब्द०)	कासीराम कवि०
कड़ी०	कड़ी में कोयला, पाठ्य वेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०	किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कवीर प्र०	कवीर प्र थावली, सपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी	किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कवीर० बानी	कवीर साहब की बानी	कीर्ति०	कीर्तिलता, स० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कवीर धीजक	कवीर धीजक, कवीर प्र य प्रकाशन समिति, धारावकी, २००७ वि०	कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कवीर धी०	कवीर धीजक, सपा० हंसदास, कवीर प्र य प्रकाशन समिति, धारावकी, २००७ वि०	कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कवीर मं०	कवीर मंसूर [२ भाग], बेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०	कृषि०	कृषिशाल
कवीर० रे०	कवीर साहब की ज्ञानगुपटी व रेस्ले, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव (शब्द०)	केशवदास
कवीर० रा०	कवीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०८	केशव प्र०	केशव प्र थावली, संपा० पं० विम्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कवीर (शब्द०)	कवीरदास	केशव० भमी०	केशवदास की भमीघुंटे
कवीर सा०	कवीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० भी युग-सानंद विहारी, बेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई	कोई कवि (शब्द०)	भशातनाम कोई कवि
कवीर सा० स०	कवीर साखी सप्रद, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	कुलाखंड तत्र (शब्द०)	कुलाखंड तत्र
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति	कोटिल्य भ०	कोटिल्य का भयंशास्त्र
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	कवासि	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
करुण०	सेनापति करुण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
कविद (शब्द०)	कविद कवि	खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	खिलौना	खिलौना (मासिक)
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	खुदाराय	खुदाराय श्रीर चंद हसीनों के खतूत, पाठ्य वेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्रौठवाँ सं०
कादंबरी (शब्द०)	कादंबरी प्र य	खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पञ्चम सं०	गग प्र०	गग कवित्त [प्रथावली], सपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०	गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वाँ सं०	गदाधर सिंह (शब्द०)	गदाधर सिंह
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गबन	गबन, प्रेमचंद, इस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
काव्य० निबंध	काव्य श्रीर कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०	गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गोड़, वाराणसी, प्र० सं०
		गि०दा०, गि०दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
		गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
		गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुञ्जन	गुञ्जन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुधर (शब्द०)	गुधर कवि
		गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र

गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब	चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल,
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	छंद०	इलाहाबाद, प्र० स०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०	छत्र०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी	छिताई०	छत्रप्रकाश, स० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)	छोत०	छिताई वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
गोपालभट्ट (शब्द०)	गोपालभट्ट, वाल्मीकि रामायण के अनुवादक		
गोरख०	गोरखबानी, स० डा० पीतांबरदास बड्ढवाल, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वि० सं०		
ग्राम०	ग्राम साहित्य, सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० स०	जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती मंदिर, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०	जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, यशोकर प्रकाशन, लखनऊ
घनानंद	घनानंद, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी	जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंदकुलारे बाजपेयी, भारती मंदिर, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०, १९६५ वि०
घाघ०	घाघ और भट्टरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि	जायसी ग्र०	जायसी ग्रंथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
चद	चद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जायसी ग्र० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५१ ई०
चद्र०	चद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवां स०	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५२ ई०
चरण (शब्द०)	चरणदास	जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०	ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चांदनी०	चांदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अशक', नीलम प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०	भरना	भरना, जयशंकर प्रसाद, भारती मंदिर, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां स०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	भांसी०	भांसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भांसी, द्वि० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	टंगोर०	टंगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चिता	चिता, यज्ञ परम्परा प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०	ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चितामणि	चितामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग	ठाकुर०	ठाकुर घातक, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
चितामणि (शब्द०)	कवि चितामणि त्रिपाठी	ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, बड्ढवाल प्रेस, पटना, प्र० सं०
चित्रा०	चित्रावली, स० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०		
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-मोघ', बड्ढवाल प्रेस, पटना, प्र० स०		
चोखे०	चोखे चौपदे, " " "		

ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०	द्व०	द्विगीत, रामाधरी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० स०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ स०	द्वि० अभि० प्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ स०	द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
तुलसी प्र०	तुलसी ग्रंथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय स०	धरनी० वा०	धरनी साहू की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
तुलसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहू की शब्दावली (हायरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११	धरम० शब्दा०, धरम० ध्रुव० धूप०	धरमदास की शब्दावली ध्रुवस्वामिनो, प्रसाद धूप श्रीर धूर्मा, रामधारीसिंह 'दिनकर,' मजता प्रेस, लि०, पटना ४
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर	नद० प्र०, नददास प्र०	नददास ग्रंथावली, सपा० बजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
तेज०	तेजविह्वलपतिपद	नई०	नई पीछ, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५३
तोष (शब्द०)	कवि तोष	नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
त्याग०	त्यागपत्र, जेनेद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रस्ताकर कार्यालय, बंबई, प्र० स०	नदी०	नदी के द्वीप, 'मजेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स०, १९५१ ई०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	नया०	नया साहित्य नए प्रश्न. नददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
दक्षिणी०	दक्षिणी का गद्य श्रीर पद्य, सपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० स०	नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम स०
दरिया० बानी	दरिया साहू की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० स०	नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि
दश०	दशरूपक, सपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० स०	नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध	नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
दहकते०	दहकते भगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद	नाभादास (शब्द०)	नाभादास सत
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, स० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
दादूदयाल प्र०	दादूदयाल ग्रंथावली	निबधमालादर्श (शब्द०)	निबधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल	नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० स०
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, बेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० स०	पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण शुभ, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० स०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० स०
दीन० प्र०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, सपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	देशी०	देशी नाममाता
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० स०, १९४२ ई०	दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण शुभ, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० स०, १९६६ वि०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'पक्ष,' नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग	दो सी बावन०	दो सी बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरोली, प्रथम स०
दुलह (शब्द०)	कवि दुलह		
देव० प्र०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०		

पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण भगवान, साहित्य सदन, बिरगाँव, भाँसी, प्र० स०	प्रबध०	प्रबधपद, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० स०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, सपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०	प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० स०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रथावली, सपा० विद्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	प्राण०	प्राणसगली, सपा० संत संपूरणसिंह, बेल-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट	प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, माताराम पेंड सस, दिल्ली, प्र० स०, १०५३ ई०
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, सपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रौष', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
परमानंद०	परमानंदसागर	प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि	प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० स०
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० स०	प्रेम० और गोकी	प्रेमचंद और गोकी, सपा० शचीरानी गुहू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
पदें०	पदें की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, १९६६ वि०	प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र० स०, १९६६ वि०
पलदू०	पलदू सहब की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०	प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० स०	प्रेमाजलि	प्रेमाजलि, डा० गोपालशरण सिंह, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण भगवान, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० स०	फिसाना०	फिसाना ए भाजाद [चार भाग], प० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
पारिजात०	पारिजातहरण	फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० स०
पावेंती	पावेंती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीयनवन, मयलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० स०, १९५५ ई०	बगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९४६ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५२ ई०	बलभद्र (शब्द०)	बलभद्र कवि
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०	बाँकी० ग्र०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], सपा० राम-नारायण दुग्गड, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, २००६ वि०	बाँकीदास प्र०	बंदनवार, बेवेद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
पु० रा०	पुष्पराज रासो [५ खंड], सपा० मोहनलाल विष्णुलाल पट्टा, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	बदन०	बदमाश बंपण, तेगमली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० स०
पु० रा० (उ०)	पुष्पराज रासो [४ खंड], स० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० स०	बलवीर (शब्द०)	बलवीर कवि
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, सपा० वासुदेवशरण भगवान, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, स० २०१० वि०	बाँगेदरा	बाँगेदरा
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, सपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० स०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, सपा० जगन्नाथदास 'रत्ना-कर', गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० स०
		बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
		बी० रासो	बीसलदेव रासो, सपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
		बीसल० रास	बीसलदेव रास, सपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० स०
		बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल-सिंह औरिएटल बुकडिपो, देहली, प्र० स०

बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	भापा शि० भिलारी प्र०	भापा शिक्षण, प० सीताराम चतुर्वेदी भिलारीदास प्रभावली [दो भाग], सपा० विष्णुनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
बृहत्	बृहत्संहिता	भीखा श०, भुवनेश (शब्द०) सूयण प्र०	भीखा शब्दावली प्र० सं० भुवनेश कवि भूपण प्रभावली, सपा० विष्णुनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता	भूपण (शब्द०)	कवि सूयण त्रिपाठी
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन	भोज० भा० सा०	भोजपुरी भापा और साहित्य, डा० उदय-नारायण तिवारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, प्र० स०	भक्ति० प्र०	भक्तिराम प्रभावली, सपा० कृष्णविहारो मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० स०
बेलि०	बेलि क्रिस्चन रुविमणी री, स० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३१ ई०	भक्तिराम (शब्द०) मधु०	कवि भक्तिराम त्रिपाठी मधुकलश, हरिवंशराय 'वच्चन,' सुपमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३६ ई०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा	मधुज्वाल	मधुज्वाल सुमित्रानन्दन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३६ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० स०	मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
ब्रज० प्र०	ब्रजनिधि प्रभावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'वच्चन,' सुपमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० स०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० स०	मनविरक्त०	मनविरक्तकरण गुटका सार (चरणदास)
ब्रह्म (शब्द०)	ब्रह्म कवि (वीरवध)	मनु०	मनुस्मृति
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०	मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाविदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० स०, १९८३ वि०	मल्लूक० बानी	मल्लूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सवत् १९६० वि०	मल्लूक० (शब्द०)	मल्लूकदास
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सवत् १९६०	महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
भगवत्तरसिक (शब्द०)	भगवत् तरसिक	महावीर प्रसाद (शब्द०)	प० महावीरप्रसाद द्विवेदी
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०	महाभारत (शब्द०)	महाभारत
भा० इ० इ०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९३३ वि०	महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गोरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड, प्र० स०, १९५१ वि०	माघव०	माघवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, चतुर्थ स०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, भाँसी, नवम स०	माघवाचल०	माघवानस कामकुदला, घोषा कवि, नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०, १८९१ ई०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालकार, रक्षाभ्रम, भागरा, द्वि० स० १९८७ वि०	मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	मानव	मानव, कवितासकलन, भगवतीचरण वर्मा
भारतेंदु इ०	भारतेंदु प्रभावली [४ भाग], सपा० बजरत्न-दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	मानव०	मानवसमाज, राहुन सांक्रुत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, १९५३ ई०	मानस	रामचरितमानस, सपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
		मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९६६ वि०
		मिशन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'वच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० स०, १९५० ई०

मुंशी अभि० प्र०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, सपा० डा० विश्वनाथ-प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, भागरा विश्वविद्यालय, भागरा	रसखान०	रसखान और घनानंद, सपा० प्रमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० स०
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि	रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
भृग०	भृगनयनी, वृ दावनसाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भौसी	रस २०, रसरतन	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
मैला०	मैला मोचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० स०	रसनिधि (शब्द०)	राजा पुष्पसिंह
मोहन०	मोहनविनोद, स० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० स०	रहीम०	रहीम रत्नावली
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भौसी, प्र० स०	रहीम (शब्द०)	भन्दुरहीम खानखाना
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०	राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गोरीशंकर हीराचंद शोभा, अजमेर, १९६७ वि०, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०	रा० रु०	राजपूतक, सपा० प० रामकृष्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,	रा० वि०	राजविलास, सपा० मोतीलाल भेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इद्र प्रिंटिंग प्रेस, मल्मोड़ा, प्र० स०	राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवां स०
योग०	योगवाणिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगा-विष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी बेंकटेश्वर छापा खाना, कल्याण, बंबई, सं० १९६७ वि०	रामकवि (शब्द०)	राम कवि
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा प्रकाश, लखनऊ, प्र० स०, १९८१ वि०	राम० चं०	सक्षिप्त रामचंद्रिका, सपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ स०
रघु० रु०	रघुनाथ रूपक गीतांगो, सपा० महासाधुचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बडा रामद्वारा, बीकानेर ।
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास	राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्मसंग्रह, सपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बडा रामद्वारा, बीकानेर ।
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ	रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवांनरेश	रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सपा० पीतांबर-दत्त बहथवाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३६ वि०
रज्जव०	रज्जव जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०	रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, लहेरियासराय पटना, प्र० स०
रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, १९८२ ई०	रे० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९५३ ई०	लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार	लल्लु (शब्द०)	लल्लुलाल
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा	लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम स०
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० स०	लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
रस०	रसमीमांसा, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०	धरुणं, धरुणरत्नाकर	धरुणरत्नाकर
रस रु०	रसकलेख, प्रमोदवासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोब,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय स०	विद्यापति	विद्यापति, सपा० खगेंद्रनाथ मिश्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
		विनय०	विनयपत्रिका, टीका० प० रामेश्वर भट्ट, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० स०
		विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० स०
		विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर

वीणा	वीणा, सुमित्रानन्दन पत्र, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गोवम बुकहिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्याय (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अविकाशित व्यास
व्रज (शब्द०)	व्रज (शब्द०)
श० दि० (शब्द०)	शकरदिग्विजय
शकर०	शकरसर्वस्व, सपा० हरिश्चकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड सस, आगरा, प्र० सं०
शनु (शब्द०)	शनु कवि
शकु०	शकुतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी
शकुतला	शकुतला नाटक, प्रनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शाहजहाँनामा (शब्द०)	शाहजहाँनामा
शाङ्गधर स०	शाङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, सवत् १९७१
शिवर०	शिवर वशोत्पत्ति, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्र०	शुक्ल अभिनदन प्रथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन
शृ० सत० (शब्द०)	शृ गार सतसई
शृगार सुधाकर (शब्द०)	शृगार सुधाकर
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, सपा० डा० कृष्णलाल, सा० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्र०	श्रीनिवास ग्रथावली, सपा डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
सतति०	चंद्रकाता सतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
सचिता	सचिता (कविता संग्रह),
सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
स० दरिया, सत दरिया	सत कवि दरिया, सं० धर्मेश ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
सत र०	सत रविदास और उवका काव्य, स्वामी

संतवाणी०, मत०सार०

सन्धासी,

संपूर्ण० अभि० ग्र०

स० दर्शन

सत्य०

सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)

सवल (शब्द०)

सभा० वि० (शब्द०)

सरस्वती (शब्द०)

स० शास्त्र

स० सप्तक

सहजो०

साकेत

सागरिका

साम०

सा० दर्पण

सा० लहरी

सा० समीक्षा

साहित्य०

सिद्धांतसंग्रह (शब्द०)

सीताराम (शब्द०)

सुदर० ग्रं०

सुंदरीसिद्धर (शब्द०)

सुखदा

सुखदेव (शब्द०)

सुधाकर (शब्द०)

रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासघ हरिद्वार, प्र० सं०

सतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

मन्यामी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

संपूर्णनिद अभिनदन प्रथ, सपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

मगीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वि० सं०

मन्यार्थप्रकाश

सवलसिंह चौहान [महाभारत]

सभाविलास

सरस्वती मासिक पत्रिका

समीक्षाशास्त्र, प० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०

सतसई सप्तक, सपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०

सहजो वाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०

साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०

सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

सामधेनी, रामधारी मिह 'दिनकर,' उदयाचल पटना, द्वि० सं०

साहित्यदर्पण, सपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय श्रौषधालय, लखनऊ, प्र० सं०

साहित्यलहरी, सपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना

साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इडियन प्रेस, प्रयाग

साहित्यालोचन

सिद्धांतसंग्रह

सीताराम कवि

सुदरदास ग्रथावली [दो भाग], सपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता

सुंदरीसिद्धर

सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०

कवि 'सुखदेव'

महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी

सुजान०	सुजानचरित (गूढनकृत), सपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० स०	हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
सुनीता	सुनीता, जैनेन्द्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीतागम, दिल्ली, प्र० स०	हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि	हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
सूत०	सूत की माला, पत और वच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०	हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४६ ई०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)	हर्ष०	हर्षचरित् एक सांस्कृतिक ग्रन्थ, वाग्देव-शरण अग्रवाल, बिहार गण्डूभाषा परिषद्, पटना, प्र० स०, १९५३ ई०
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय स०	हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय वच्चन, भारती भंडार, प्रयाग, १९४६ ई०
सूर० (शब्द०)	सूरदास	हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
सूर० (राधा०)	सूरसागर सपा० राधाकृष्णदास, वैकटेश्वर प्रेस, प्र० स०	हि० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० स०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि	हि० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि	हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०	हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०
सेर कु०	सेर कुहसार, प० रतननाथ 'सरशार,' नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, च० स०, १९३४ ई०	हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल फुलश्रेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
सी अजान० (शब्द०)	सी अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किशोरकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०	हि० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारोप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बवई, तृ० सं०, १९४८
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०	हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, वेनोप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० स०
स्वाधीनता (शब्द०)	स्वाधीनता	हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदाम	हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
हस०	हसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०	हिम्मत०	हिम्मतवहादुर विरुदावली, लाला भगवान-दीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मोर अष्टुल वाहिद, प्र० सपा० 'रुद्र' काशिकीय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० स०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक	हृमायूं	हृमायूंनामा, अनु० अजरतनदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० स०
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)	हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इडियन प्रेस, लि०, प्रयाग		
ह० रासो०	हम्मीर रासो, सपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०		
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

पं०	अप्र जी	अनु०	अनुकरण शब्द
प्र०	अप्रवी	अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
प्रक० रूप	अक्रमक रूप	अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक

अनुर०	अनुरूपनात्मक रूप	ग्याय०	ग्याय या ठकंछाए
अप०	अपभ्रंश	पं०	पंथायी
अर्थ मा०	अर्थमागधी	परि०	परिनिष्ट
अल्पा०	अल्पार्थक	पा०	पानी
अव०	अवधी	पु०	पुमिग
अव्य०	अव्यय	पुस्तं०	पुस्तन्ती
इव०	इवरानी	पु० हि०	पुगती हिरी
उ०	उदाहरण	पू० हि०	पूगी हिरी
उच्चा०	उल्लारण गुविगार्प	पु०	पूछ
उडि०	उडिया	प्रत्य०	प्रत्यय
उप०	उपसर्ग	प्र०	प्रकाशपीड या प्रकाशक
उभय०	उभयलिङ्ग	प्रा०	प्राहा
एकव०	एकवचन	प्रे०	प्रेरणापत्र रूप
कहावत	कहावत	फ०	फरीदीगी भाषा
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	फरीर०	फरीरी की बोली
[को०] (को०)	कान्य कोश	फा०	फारसी
कौंक०	कौंकली	बेग०	बेगला भाषा
क्रि०	क्रिया	बरगी०	बरगी भाषा
क्रि० प्र०	क्रिया प्रकर्मक	बहुव०	बहुवचन
क्रि० २०	क्रिया प्रयोग	मु० ग०	मुदोगद की बोली
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बोल०	बोलचाल
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	भाष०	भाषाशास्त्र मुद्रा
क्व०	क्वचित्	भू०	भूमिका
गीत	लोकगीत	भू० शू०	भूत कृत
गुज०	गुजराती	मरा०	मराठी
ची०	चीनी भाषा	मन०	मनवासी या मनवानम भाषा
छ०	छंद	मना०	मनापम भाषा
जापा०	जापानी	मि०	मिलाद
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मुगल०	मुगलानों द्वारा प्रयुक्त
जी०, जीवन०	जीवनचरित्	मुहा०	मुहावरा
ज्या०	ज्यामिति	मू०	मूनागी
ज्यो०	ज्योतिष	यो०	योगिक
डि०	डिगल	राज०	राजस्थानी
त०	तमिल	सश०	सशकरी
तर्क०	तर्कशास्त्र	सा०	साक्षात्
ति०	तिब्बती भाषा	से०	सेंटा
तु०	तुर्की	य० कृ०	यत्मान कृत
दू०	दूहा या दूहला	वि०	विशेषण
दे०	देखिए	वि० द्वि० मू०	विषमद्विरक्तिमूलक
देश०	देशज	यै०	यैदिक
देशी	देशी	व्या०	व्याकरण
धर्म०	धर्मशास्त्र	(शब्द०)	शब्दसागर
नाम०	नामधातु	स०	संस्कृत
ना० घा०	नामधातुज क्रिया	सयो०	सयोजक धर्म्य
नामिक घातु	नामिक घातु	सयो० क्रि०	सयोजक क्रिया
ने०	नेपाली	स०	सकर्मक

सक० रूप	सकर्मक रूप	④	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा	>	व्युत्पन्न
सर्व०	सर्वनाम	†	प्रातीय प्रयोग
स्वे०	स्वेती भाषा	‡	ग्राम्य प्रयोग
स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त	✓	घातुचिह्न
स्त्री०	स्त्रीलिंग	*	समाख्य व्युत्पत्ति
हि०	हिंदी	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

दस्त^१—वि० [सं०] १ छोड़ा हुआ । व्यक्त । बहिष्कृत । २. फेंका हुआ । क्षिप्त । ३. विनष्ट । क्षीण । नष्ट [क्रि०] ।

दस्त^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. पतला पायखाना । पानी ऐसा मल गिरने की क्रिया । विरेचन ।

क्रि० प्र०—घाना ।—होना ।

मुहा०—दस्त लगना = मल निकलने का वेग जान पड़ना । पायखाना लगना ।

२ हाथ । उ०—सदगुरु नाथ प्रमल मस्त । उस प्रमल में साहेब दस्त ।—दक्खिनी०, पृ० १२५ ।

यौ०—दस्तकार । दस्तखत । दस्तगीर । दस्तराज । दस्तपनाह । दस्तबंद । दस्तबदस्त । दस्तबरदार । दस्तबस्ता । दस्तबुर्द । दस्तयाब ।

दस्त^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्त] जंगल । बगान । मकान । उ०—सीस दिहा तब प्रब क्या रोना मनी मान को खींचे हो । दम दम याद करे साहिब को नेकी दस्त में बोवै हो ।—पलटू०, पृ० ८२ ।

दस्तक^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १ हाथ मारकर खट खट शब्द उत्पन्न करने की क्रिया । खटखटाने की क्रिया । २ बुलाने के लिये दरवाजे की कुडी खटखटाने की क्रिया । घर के भीतर के लोगों को बुलाने के लिये बाहर से किवाड़ पर हाथ मारने की क्रिया । उ०—मनिया लजाती और मुसकाती हुई दरवाजे पर हलके दस्तक देती हुई स्कूली लड़कियों की तरह शिकायत भरे स्वर से कहने लगी ।—जिप्सी, पृ० १८६ ।

मुहा०—दस्तक देना = बुलाने के लिये किवाड़ खटखटाना ।

३ किसी से देना या मालगुजारी वसूल करने के लिये निकाला हुआ दूकमनामा । वह आज्ञापत्र जिसे लेकर कोई सिपाही देना या मालगुजारी वसूल करने के लिये पावे । गिरफ्तारी या वसूली का परवाना ।

क्रि० प्र०—घाना ।

यौ०—दस्तक सिपाही = वह सिपाही जो किसी से मालगुजारी आदि वसूल करने या किसी को पकड़ने के लिये तैनात हो ।

४. माल आदि ले जाने का परवाना । निकास की चिट्ठी । राहदारी का परवाना । उ०—मक्ति भग को धापि, एक दस्तक लिखि दीन्हों ।—घरम०, पृ० ८१ । ५. कर । महसूल । टैक्स । धौंस ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—दस्तक बाँधना या लगाना = व्यर्थ का व्यर्थ ऊपर डालना । नाहक का खर्च ज़िम्मे करना ।

दस्तकार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हाथ का कारीगर । हाथ से कारीगरी का काम करनेवाला आदमी ।

दस्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] हाथ की कारीगरी । कसा संबंधिनी वह सुंदर रचना जो हाथ से की जाय । जैसे, बेस बूटे काढ़ना, आदि ।

दस्तखत—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तखत] अपने हाथ का लिखा हुआ नाम । हस्ताक्षर । जैसे,—उस दस्तावेज पर तुम कभी दस्तखत न करना ।

विशेष—जिस लेख के नीचे किसी का दस्तखत होता है वह उसी का लिखा हुआ समझा जाता है, भवतः उस लेख में जो बातें होती हैं उन्हें स्वीकार करने या पूरी करने के लिये वह नियम के अनुसार बाध्य होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दस्तखत लेना = दस्तखत कराना । किसी का नाम उसके हाथ से लिखा लेना ।

दस्तखती—वि० [फ्रा० दस्तखत] जिसपर दस्तखत हो । (लेख) जिसपर लिखने या लिखानेवाले का नाम उसी के हाथ का लिखा हो । जैसे, दस्तखती चिट्ठी ।

दस्तग—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तक] दे० 'दस्तक' । उ०—प्रहंकार प्रहल-मद करत ना खोट भली तृष्णा चपरासी की दस्तग नित जारी है ।—राम० धर्म०, पृ० ५७ ।

दस्तगीर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हाथ पकड़नेवाला । सहारा देनेवाला । सहायक । मददगार । उ०—दस्तगीर गाढ़े कर सापी ।—जायसी (शब्द०) ।

दस्तगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] मदद । हिमायत । शरण । पनाह । उ०—यह दिल फकीरी दस्तगीरी गस्त गुंज सिनाल है ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २६० ।

दस्तदराज—वि० [फ्रा० दस्तदराज] १ घृष्ट । ढीठ । निहट । २. मार बैठनेवाला । हथछुट । ३. प्रत्यायी [क्रि०] ।

दस्तदराजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दस्तदराजी] १. ढिठाई । २. मार बैठने की आदत । ३. प्रत्याय । प्रत्याचार ।

दस्तपनाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] चिमटा ।

दस्तबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. कलाई पर पहनने का स्त्रियों का एक भालंकार । २. रुख का एक प्रकार [क्रि०] ।

दस्त बदस्त—क्रि० वि० [फ्रा०] हाथों हाथ । उ०—ऐसी वे तुसाडे दरस मिन्नारी, होवे सौदा दस्तबदस्ती ।—घनानंद, पृ० ५३४ ।

दस्तबरदार—वि० [फ्रा०] जो किसी काम से हाथ हटा ले । जो किसी वस्तु से अपना हाथ या अधिकार उठा ले । जो कोई वस्तु छोड़ दे या किसी बात से बाज रहे ।

मुहा०—दस्तवरदार होना = बाज घाना। किसी वस्तु पर का अपना अधिकार छोड़ देना। छोड़ देना। त्याग देना।
जैसे,—अगर तुम मकान से दस्तवरदार हो जाओ तो हम १०००) धोर दें।

दस्तवरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. त्याग। २. त्यागपत्र।

दस्तवस्ता—क्रि० वि० [फ्रा० दस्तवस्तह्] हाथ जोड़े हुए। नम्रता के साथ [को०]।

दस्तबुर्द—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] अपहरण। छीन लेना। जबरदस्ती दूसरे की चीज अपने कब्जे में कर लेना [को०]।

दस्तयाब—वि० [फ्रा०] हस्तगत। प्राप्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दस्तरखान—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तरखान] वह वादर जिसपर खाना रखा जाता है। चौकी पर की वह वादर जिसपर भोजन की प्यासी रखते हैं (मुसलमान)। उ०—पहले वह दस दस दोस्तों के साथ, नवाबी दस्तरखान सजाकर बैठते।—शराबी, पृ० १०४।

दस्तान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तानह्] दे० 'दस्ताना'। उ०—दस्तान रक्बि सु हृथ्य। करि चहै गथ्य अकथ्य।—ह० रासो, पृ० १२३।

दस्ता^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तह्] १. वह जो हाथ में धावे या रहे। २. किसी भोजन आदि का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है। मूठ। बेंट। जैसे, छुरी का दस्ता। ३. फूलों का गुच्छा। गुलदस्ता। ४. एक प्रकार की घुड़ी जो चोगे या कबा पर लगती है। ५. सिपाहियों का छोटा दल। गारद। ६. चपरास। सजाफ। ७. किसी वस्तु का उतना गड़ या पूला जितना हाथ में धा सके। ८. कागज के चौबीस तावों की गद्दी। ९. सोंटा। डहा। गदका। १०. खरल का मुँगरा। खरल का मुसला (को०)।

दस्ता^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला। हरगिला।

दस्ता^४—संज्ञा पुं० [हिं० जस्ता] दे० 'जस्ता'।

दस्ताना—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तानह्] १. पजे और हथेली में पहनने का बुना हुआ कपड़ा। हाथ का मोजा। २. वह लंबी किच या सीधी तलवार जिसकी मूठ के ऊपर कलाई तक पहुँचनेवाला लोहे का परदा लगा रहता है। यह मुहर्रम में ताजिये के साथ प्रायः निकलता है। ३. हाथ की रक्षा के लिये बना लोहे का बस्तर। हस्तशरण (को०)।

दस्तार—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] पगड़ी। उष्णीष। अम्मांमा। उ०—भीर साहब जमाना नाजुक है, दोनों हाथों से थामिए दस्तार।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७१।

दस्तारचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तारचह्] छोटी पगड़ी [को०]।

दस्तारबंद—वि० [फ्रा०] धरबी साहित्य का स्नातक [को०]।

विशेष—जो व्यक्ति धरबी को पूरी शिक्षा प्राप्त कर लेता है, उसे उसके शिक्षक प्रमाण के रूप में पगड़ी बाँध देते हैं।

दस्तावर—वि० [फ्रा०] जिससे दस्त धावे। विरेचक। जैसे,—दस्तावर दवा।

दस्तावेज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दस्तावेज] वह कागज जिसमें दो या कई आदमियों के बीच के व्यवहार की बात लिखी हो और जिसपर व्यवहार करनेवालों के दस्तखत हों। व्यवहार सबधी लेख। वह पत्र जिसे लिखकर किसी ने कोई प्रतिज्ञा की हो, किसी प्रकार का श्रुण या देना स्वीकार किया हो अथवा द्रव्य संपत्ति आदि का लेनदेन किया हो। जैसे, तमसुक, रेहननामा, किवाला इत्यादि। उ०—(क) जबतक रजिस्ट्री न हो जाय, सच्चे से सच्चा दस्तावेज भी प्रामाणिक नहीं माना जाता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७३। (ख) कागज, पत्तार, दस्तावेज, तमसुक हिंदसोट वगैरह जिस सट्टक में रखे हैं, उसकी चाबियों का गुच्छा किसके जिम्मे है?—नई०, पृ० १६।

क्रि० प्र०—लिखना।

दस्तावेजी—वि० [फ्रा० दस्तावेज] दस्तावेज सबधी। दस्तावेज का। जैसे, दस्तावेजी रुपया, दस्तावेजी कागज।

दस्तास—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] हाथ से चलाई जानेवाली चक्की [को०]।

दस्ती^१—वि० [फ्रा० दस्त (=हाथ)] हाथ का। जैसे, दस्ती कमाल।

दस्ती^२—संज्ञा स्त्री० १. हाथ में लेकर चलने की वस्ती। मणाल। २. छोटी मूठ। छोटा बेंट। ३. छोटा कलमवान। ४. वह सीगात जिसे विजयादशमी के दिन राजा लोग अपने हाथ से सरदारों और भफसरों को बाँटते हैं। ५. कुपती का एक पेंच जिसमें पहलवान अपने जोड़ का दाहिना हाथ दाहिने हाथ से अथवा बाँया हाथ बाएँ हाथ से पकड़कर अपनी धोर खींचता है और भट पीछे जाकर भटके के द्वारा उसे पटक देता है।

दस्तूर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. रीति। रस्म। रवाज। चाल। प्रथा। २. नियम। कायदा। विधि। ३. पारसियों का पुरोहित जो उनके धर्मग्रंथ के अनुसार कर्मकांड कराता है। ४. जहाज के वे छोटे पाल जो सबसे ऊपरवाले पाल के नीचे की पक्ति में दोनों ओर होते हैं।—(लस०)।

दस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दस्तूर] वह द्रव्य जो नोकर अपने मालिक का सीदा लेने में दूकानदारों से हक के धोर पर पाते हैं। दस्तूरी का कुछ बंधा हिस्सा होता है जैसे, एक रुपए के सोदे में दो पैसे। उ०—मंगल के मुजरा मिले भोमें दस्तूरी काटS।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३३५।

दस्तोपा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्त धो पा (=पैर)] १. हाथ पैर। २. परिश्रम। मिहनत। प्रयास [को०]।

दस्तपना—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तपनाह्] चिमटा।

दस्म^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञकर्ता। यज्ञमान। २. अग्नि। ३. तस्कर। चोर। ४. खल [को०]।

दस्म^२—वि० १. सौंदर्ययुक्त। सुंदर। २. दर्शनीय। आश्चर्यजनक [को०]।

दस्यु—सखा पुं० [सं०] १. डाकू। चोर। २. रिपु। शत्रु (को०)। ३. असुर। अनाय। म्लेच्छ। दास। उ०—भाषा की मारी देवी उस दस्यु देश में जीती थी।—साकेत, पु० ३८८।

विशेष—दस्युओं का वर्णन वेदों में बहुत मिलता है। प्रायों के भारतवर्ष में चारों ओर फैलने के पहले ये छोटी छोटी वस्तियों में इधर उधर रहते थे और प्रायों को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाते थे, उनके यज्ञों में विघ्न डालते थे, उनके चौपाए चुरा ले जाते थे तथा और भी अनेक प्रकार के उपद्रव करते थे। अनेक मन्त्रों में इन यज्ञहीन, अमानुष दस्युओं का नाश करने की प्रार्थना इन्द्र से की गई है। नमुचि, शबर और पुत्र नामक दस्युपतियों के इन्द्र के हाथ से मारे जाने का उल्लेख ऋग्वेद में कई स्थानों पर है। जैसे, 'हे इन्द्र! तुमने दस्यु शंबर की सी से अधिक पुरियों को नष्ट किया।' 'हे इन्द्राग्नि! तुमने एक बार में ही दासों की नब्बे पुरियों को हिला डाला।' 'हे इन्द्र! तुमने कुलितर के पुत्र दास शबर को ऊँचे पर्वत के ऊपर मुँह के बल गिराकर मार डाला।' 'तुमने मनुष्यों के सुख को इच्छा से दास नमुचि का सिर धुँस दिया।'।

वेदों में दस्युओं के लिये दास और असुर शब्द भी आए हैं। इन दस्युओं के 'परि' आदि कई भेद थे। पीछे जब कुछ दस्यु सेवा आदि के लिये मिला लिए गए तब उनकी उत्पत्ति के संबंध में कुछ कथाएँ कल्पित की गईं। ऐतरेय ब्राह्मण में ये विश्वामित्र द्वारा उत्पन्न और आप द्वारा अष्ट वतलाए गए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि 'ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में जो क्रियालुभ और जाति बाहर हो गए हैं वे सब चाहे म्लेच्छभाषी हों चाहे आर्यभाषी, दस्यु कहलाते हैं'। महाभारत में लिखा है कि अर्जुन ने दरदों के सहित काबोज तथा उत्तरपूर्व के जो दस्यु थे उन्हें भी परास्त किया। द्रोणपर्व में दाढ़ीवाले दस्युओं का भी उल्लेख है। इन दस्युओं के बीच निवास करना ब्राह्मण आदि के लिये निषिद्ध था।

दस्युता—सखा स्त्री० [सं०] १. लुटेरापन। डकैती। २. राक्षसपन। दुष्टता। शूर स्वभाव।

दस्युवृत्ति—सखा स्त्री० [सं०] १. डकैती। लुटेरापन। २. चोरी।

दस्युहा—सखा पुं० [सं० दस्युहन्] (असुरों को मारनेवाले) इन्द्र।

दस्यु—सखा पुं० [सं०] १. शिशिर ऋतु। २. गदहा। ३. अश्विनीकुमार। ४. दो का समूह। जोड़ा। ५. दस्यु। लुटेरा (को०)। ६. अश्विनी नक्षत्र (को०)।

यौ०—दस्यु देवता = अश्विनी नक्षत्र। दस्यु = सूर्य की स्त्री।

दस्यु—वि० १. दोहरा। २. हिंसा करनेवाला।

दस्यु—सखा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी सजा जो अश्विनीकुमार की माता थी (को०)।

दहसता—सखा स्त्री० [फ्रा० दहशत] दे० 'दहशत'। उ०—तल दह में दहसत प्रति जागी। मुश्किल फौज खालिक की भागी।—शुक्ल भूमि० प्र० (इति०), पु० ८४।

दह—सखा पुं० [सं० हृद (प्राचीन विषय)], अथवा सं० द्रव्य, प्रा०

दह] १. नदी में वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो। नदी के भीतर का गड्ढा। पाल। उ०—ले वसुदेव घंसे दह सामुहि तिरूँ लोक उजियारे हो।—सूर (शब्द०)।

यौ०—कालीदह।

२. कुड़ा। होज। उ०—टोपन टूटि उठे असि सच्छी। दह में मनी उच्छली मच्छी।—लाल (शब्द०)।

दह—सखा स्त्री० [सं० दहन] ज्वाला। लपट। लो।

दह—वि० [फ्रा०] दस। उ०—(क) भादों घोर राति भ्रंषियारी। द्वार कपाट कोट भट रोके दह दिसि कस कस भय भारी —सूर (शब्द०)। (ख) हाट बाट नहि जाहि विहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी।—सुखसी (शब्द०)।

यौ०—दहचंद = दसगुना। दहदिला = साहसी। वीर। दहदिसि = चारों ओर। दसो दिशाओं में। उ०—दहदिसि दीपक तेज के बिब बाती बिन सेल। चहुँ दिसि सूरज देखिए दाह अद्भुत खेल।—दाहू०, पु० १००। दहरोजा = चंद दिन का। कुछ दिनों का।

दहक—सखा स्त्री० [सं० दहन] १. भाग दहकने की क्रिया। धक्का। दाह। २. ज्वाला। लपट। † ३. शर्म। हया। लज्जा।

दहकन—सखा स्त्री० [हि० दहकना] दहकने की क्रिया या भाव।

दहकना—क्रि० प्र० [सं० दहन] १. ऐसा जलना कि लपट ऊपर उठे। लो के साथ बलना। धक्कना। मझकना। जैसे, भाग दहकना, कोयला दहकना। उ०—प्रग प्रग लागि ऐसे केसर के नीर लागे, चोर लागे बरन, मबीर लागे दहकन।—सेवक (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. शरीर का गरम होना। तपना। धिड़ना।

संयो० क्रि०—देना।

दहकान—सखा पुं० [फ्रा० देहकाव] गाँव का रहनेवाला। कृषक। किसान। देहाती। गँवार (को०)।

दहकाना—क्रि० सं० [हि० दहकना] १. धक्काना। ऐसा चलाना कि लो ऊपर उठे।

संयो० क्रि०—देना।

२. मझकाना। झोष दिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

दहकानियत—सखा स्त्री० [फ्रा० देहकानियत] गँवारपन। मोहपन। उजड़पन (को०)।

दहकानी—सखा पुं० [फ्रा० देहकान] देहाती। गँवार। उ०—मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ, तुम मुझे वणिक या दहकानी। सदियों हम दोनों साथ रहे, यह बात न भवें तक पहचानी।—हंस०, पु० १७।

दहकारना—क्रि० सं० [देश०] धूल आदि दबाने के लिये पानी का छिड़काव करना। सींचना।

दहगी—सखा स्त्री० [हि० दाह + भाग] गरमी। ताप।

दहचंद—वि० [फ्रा०] दसगुना (को०)।

दहद दहद—क्रि० वि० [सं० दहन या घनु०] लपट फँकते हुए । धायें धायें । जैसे, दहद दहद जलना । उ०—इस बीच देखते क्या हैं कि धन चारों ओर से दहद दहद जलता घसा घाता है ।—सल्लू० (शब्द०) ।

दहणि—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] दे० 'दहनि' । उ०—दाहू छूटि खुदाई, कही को नाही, फिरही पिरथी सारी । दुखी दहणि दूर करि चोरै, साधु सबद विचारी ।—दाहू०, पृ० ३४२ ।

दहदला—संज्ञा स्त्री० [हि० दलदल] दे० 'दलदल' ।

दहन^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दहनीय, दह्यमान] १. जलने की क्रिया या भाव । भस्म होने या करने की क्रिया । दाह । जैसे, लकादहन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. अग्नि । प्राग । ३. कृत्तिका नक्षत्र । ४. तीन की संख्या । ५. मिलावा । मल्लातक । ६. चित्रक । चीता । ७. दुष्ट या क्रोधी मनुष्य । ८. कबूतर । कपोत । ९. एक रुद्र का नाम । १०. ज्योतिष में एक योग जो पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन तीन नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होता है । ११. ज्योतिष में एक वीथी जो पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होती है ।

दहन^२—वि० १. जलानेवाला । दाहक । उ०—जय रघुवस वनज वन भानू । गहन दनुज वन दहन कृषाभू ।—मानस, १ । २. दाहयुक्त [को०] ।

दहन^३—संज्ञा पुं० [फा०] १. मुख । मुँह । उ०—दहन पा हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७ । २. छिद्र । सूरास ।

दहन^४—संज्ञा पुं० [देश०] कजा नाम की कंटोली झाड़ी । वि० दे० 'कजा' ।

दहनकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] धूम । धूँ ।

दहनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की पत्नी, स्वाहा [को०] ।

दहनर्क्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र ।

दहनशील—वि० [सं०] जलनेवाला ।

दहनसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] पवन । वायु [को०] ।

दहना^१—क्रि० प्र० [सं० दहन] १. जलना । जलना । भस्म होना । उ०—जियरा सहयो सो ओसै, हियरा धक्योई करै, छाई पियराई, सन सियराई सौं दहै ।—मानदघन (शब्द०) २. क्रोध से संतप्त होना । क्रुद्धना ।

दहना^२—क्रि० प्र० १. जलना । भस्म करना । उ०—उसटी गाढ़ परो दुर्भासा दहत सुदर्शन जाको ।—सूर (शब्द०) । २. संतप्त करना । दुखी करना । कष्ट पहुँचाना । उ०—ये घरहाई लुगाई सबै निशि सोस निवाज हमें दहती हैं ।—निवाज (शब्द०) । ३. क्रोध दिलाना । क्रुद्धना ।

दहना^३—क्रि० प्र० [हि० दह] १. घँसना । नीचे बैठना । † २. पानी में डूब जाना ।

दहना^४—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दहिना' ।

दहनागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का प्रगर । दाहागुरु [को०] ।

दहनाराति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का शत्रु जल जिससे प्राण बुझती है [को०] ।

दहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दहना] जलने की क्रिया । जलन । उ०—मंतर उदेग दाह, मांसिन मांसू प्रवाह, देखो घटपटी बाह भोजनि दहनि है ।—मानदघन (शब्द०) ।

दहनीय—वि० [सं०] जलने या जलाए जाने योग्य ।

दहनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] गूँथकात मणि । सूर्यमुखी । मातृश्री मीशा ।

दहनोत्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राग की चिनगारी । लुका । लूका [को०] ।

दहपट—वि० [फा० दह (= दस, दसो दिशा) + पट (= समतल), जैसे, चौपट] १. गिराकर जमीन के बराबर किया हुआ । ढाया हुआ । ध्वस्त । चौपट नष्ट । उ०—नूरदास प्रभु रघुपति पाए दहपट भइ लंका ।—पूर (शब्द०) । २. रोड़ा हुआ । कुचला हुआ । दलित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दहपटना—क्रि० प्र० [हि० दहपट] १. ढाना । ध्वस्त करना । चौपट करना । नष्ट करना । २. रोदना । कुचलना । दमित करना । उ०—बालिहू गवं जिय माहि ऐसो कियो, मारि दहपटि, दियो जम की घानी ।—तुलसी । (शब्द०) ।

दहपटना^२—क्रि० प्र० [हि० दहपट] दे० 'दहपटना' । उ०—हाँकि हाँकि दलनि दबाई दहपटि हते, बाजी भौं बितुन कुँट झूमठ खरे जे हैं ।—हम्मीर०, पृ० ५७ ।

दहवासी—संज्ञा पुं० [फा० दह (= दस) + वासी (प्रत्य०)] दस सिपाहियों का सरदार ।

दहमर्द—वि० [फा० दहमर्दह] १. असत्यभाषी । झूठा । २. धावाल । बदबड़िया । बक्की ।

दहर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा तूहा । बुहिया । २. छद्मदर । ३. छाता । भाई । ४. बालक । ५. नरक । ६. वरुण । ७. हृदय का गर्त या हृदय [को०] ।

दहर^२—वि० १. स्वल्प । छोटा । २. सूक्ष्म । ३. दुर्बोध ।

दहर^३—संज्ञा पुं० [सं० हृद (आद्यत विपर्यय)] १. दह । नदी में गहरा स्थान । उ०—प्रति भवगरी करत मोहन फटक गेहूरी दहर ।—सूर (शब्द०) । २. कुड । होज । गड्ढा । पाल ।

दहर दहर—क्रि० वि० [घनु० या सं० दहन (= जलना)] लपट फँकते हुए । धककते हुए । धायें धायें । जैसे, दहर दहर जलना ।

दहरना^२—क्रि० प्र० [हि० दहलना] दे० 'दहलना' ।

दहरना^३—क्रि० प्र० दे० 'दहलाना' । उ०—सूर प्रभु प्राय गोकुल प्रगट भए सतन दै हरख, दुष्ट जन मन दहर के ।—सूर (शब्द०) ।

दहराकाश—संज्ञा पुं० [सं०] विदाकाश । ईश्वर ।

दहरोआ—वि० [फा० दहरोआह] अस्पायी । न टिकनेवाला [को०] ।

दहरोरा—संज्ञा पुं० [हि० दही + बड़ा] [स्त्री० दहरोरी] १. दही में मीथोया हुआ बड़ा । २. एक प्रकार का गुलगुला ।

दहल^१—सका स्त्री० [हि० दहलना] डर से एकबारगी कांप उठने की क्रिया । परंपराहट ।

दहल^२—सका स्त्री० [सं० हृद, हि० दहर] कुंड । उ०—गोधन खरकि खेत भर द्यार । गोरस दहल नाज भर न्यार ।—घनानंद०, पृ० ३०२ ।

दहलना—क्रि० प्र० [सं० दर (= डर) + हि० हलना (= हिलना)] डर से एकबारगी कांप उठना । डर के मारे जी धक से हो जाना । डर से चौकना । भय से स्तमित होना । जैसे,—वह राजा की चढ़ाई सुनते ही दहल उठा ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

मुहा०—जी या कलेजा दहलना = डर से हृदय कांपना । डर के मारे छाती धक धक करना ।

दहला^१—सका पुं० [फ्रा० दह (= दस) + ला (प्रत्य०)] ताश या गजीफे का वह पत्ता जिसमें दस बूटियाँ हों । दस चिह्नों-वाला ताश ।

दहला^२—सका पुं० [सं० दहल] घाला । धावला । घालबाल । उ०—(क) कोक तुफान मुहार कहै दहलः कलपद्रुम भाखत प्रग को ।—शमु (शब्द०) । (ख) रोमलता को प्रहै दहला यह नाभि को गाड़ कि समु बखानै ।—शमु (शब्द०) ।

दहलाना—क्रि० सं० [हि० दहलना] डर से कांपाना । भय से चौकाना । संयो० क्रि०—देना ।

दहली—सका स्त्री० [फ्रा० दहलीज्] दे० 'देहरी' ।

दहलीज—सका स्त्री [फ्रा० दहलीज] द्वार के चौखट की नीचे-वासी लकड़ी जो जमीन पर रहती है । देहली । देहरी ।

मुहा०—दहलीज का कुत्ता = पिछलग्गू । दहलीज न भाँकना = दरवाजे पर न माना । दहलीज की मिट्टी ले डालना = फेरे पर फेरा करना । बार बार द्वार पर माना ।

दहलीज—सका स्त्री० [फ्रा० दहलीज] दे० 'दहलीज' ।

दहलवाटा—वि० [फ्रा० दह + पट] ध्वस्त । चौपट । दहपट । उ०—स्वामि धम्म रसे सु मन जे ठेलै भजठट्ट । ठरे परवत सिबर डर करै सगु दहलट्ट ।—पृ० रा०, ५।६ ।

दहवाटा—सका पुं० [सं० दह + वार्म, प्रा० दहवट्ट, दहवाट] विध्वंस । विनाश । उ०—तैं दोधी दसरथ तणा, दस सिर घर दहवाट ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६० ।

दहशत—सका स्त्री० [फ्रा०] डर । भय । खौफ ।

दहसत, दहसति—सका स्त्री० [फ्रा० दहसत] दे० 'दहशत' । उ०—(क) तिनकी दहसत नयो नहि माने ।—कवीर श०, भा० १, पृ० ३२ । (ख) दहसति नाहि करै किसहू की, जिकिर अपना खोले हो । पलट रोसन धई कपाली, तनहा होइ जब होले हो ।—पलट०, भा० ३, पृ० ८३ ।

दहसनी—सका स्त्री० [फ्रा० दह + नन] दस साल के छाते की बही ।

दहा—सका पुं० [फ्रा० दह] १ मुहर्रम का महीना । २ मुहर्रम की १ से १० तारीख तक का समय । ३ तजिया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—निकलना ।

दहाई—सका स्त्री० [फ्रा० दह (= दस)] १. दस का मान का भाव । २. शकों के स्थानों की गिनती में दूसरा स्थान-जिस पर जो शक लिखा होता है उससे उठने ही गुने दस का बोध होता है । जैसे, ८० में दहाई के स्थान पर ८ है जिसका मतलब है आठ गुना दस ।

विशेष—दे० 'एकाई' ।

दहाड़—सका स्त्री० [अनु०] १. किसी मयकर जंतु का घोर शब्द । गरज । जैसे, शेर की दहाड़ । २. रोने का घोर शब्द । आतनाद । चिल्लाकर रोने की ध्वनि ।

मुहा०—दहाड़ मारना या दहाड़ मारकर रोना = चिल्ला चिल्लाकर रोना ।

दहाड़ना—क्रि० प्र० [अनु०] १ किसी मयकर जंतु का घोर शब्द करना । गरजना । गुराँना । जैसे, शेर का दहाड़ना । २. जोर से चिल्लाकर रोना ।

दहान—सका [सं० दहन] अग्नि । उ०—तिनं सोमह सोम प्रगही दहान । मुख पुछ छ पछार भान ।—पृ० रा०, २ । ३५० ।

दहाना—सका पुं० [फ्रा० दहानह्] १. बोझा मुँह । द्वार । २. मुख । दहन । ३. मशक का मुँह ।

मुहा०—दहाना खोलना = (१) मशक का मुँह खोलना । पानी छोड़ना । (२) पेशाब करना (बाजारू) ।

वह स्थान जहाँ नदी दूसरी नदी या समुद्र में गिरती है । मुहाना । ५ मोरी । नाली । ६ लगाम जो घोड़े के मुँह में रहती है ।

दहार—सका पुं० [प्र० दयार (= प्रदेश)] १ प्रांत । प्रदेश । २. आस पास का प्रदेश । खंड ।

दहिंगल—सका पुं० [देश०] कीड़े मकोड़े खानेवाली आठ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसके पंखों पर सफेद मोर काली लकीरें होती हैं । यह रह रहकर अपनी पूँछ ऊपर उठाया करती है ।

दहिचौरी—सका स्त्री० [हि०] दे० 'दहरी' ।

दहिउ—सका पुं० [सं० दधि] दे० 'दही' । उ०—भरें कसस तरुनी चलि आई । दहिउ सेहु गालिनि गोहराई ।—जायसी प्र०, (गुप्त) पृ० २११ ।

दहिजरवा—वि० [हि० दाढ़ीजार] दे० 'दाढ़ीजार' । उ०—तोरी छुनर पर साहब रोके, जम दहिजरवा फिर फिर जाय ।—कवीर श०, भा० २, पृ० ६३ ।

दहिजारा—सका पुं० [हि०] दे० 'दाढ़ीजार' ।

दहिडिया—सका स्त्री० [हि० दहेडी + डिया (प्रत्य०)] दे० 'दहेडी' । उ०—एक दहिडिया दही जमायो दूसरी परि गई साईं रे । न्यूँति जिमाँके अपनी करहा, छार मुनिस की डारी रे ।—कवीर श०, पृ० ११२ ।

दहिन—वि० [सं० दक्षिण] अनुकूल । दक्षिण । उ०—बेरि एक दह्य दहिन जगो होए, निरधन धन जके धरय मोले गोए ।—विद्यापति, पृ० ३५४ ।

दहिना—वि० [सं० दक्षिण] [वि० दाहिनी] दक्षिण के दो पार्श्वों में से उस पार्श्व का नाम जिसके दो भागों या पेशियों

अधिक बल होता है। बायाँ का उलटा। अपसव्य। जैसे, दहिना हाथ, दहिना पैर, दहिनी छाँख।

मुहा०—दहिना कमरपेंच = दहिनी ओर मुड़ने का शब्द। दहिनी ओर घूमना है।—(पालकी के कहार)।

दहिनावर्त—वि० [सं० दक्षिणावर्त] दे० 'दक्षिणावर्त'। उ०—पुद्गभी वैध न दहिनावर्त। नाँवें पाऊँ फिरों न मरता।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ९०५।

दहिने—क्रि० वि० [हि० दहिना] दहिनी ओर की। जैसे,—वह मकान तुम्हारे दहिने पड़ेगा।

यो०—दहिने होना = अनुकूल होना। प्रसन्न होना। दहिने बाएँ = दक्षर उल्टा। दोनों पाखें में। दोनों ओर।

दहियक—संज्ञा पुं० [फा० दह (= दस)] दशमांश। दसवीं हिस्सा।

दहियल—संज्ञा पुं० [फा० दह (= दस) + हि० द्यल (प्रत्य०)] दे० 'दहला'।

दही—संज्ञा पुं० [सं० दधि] खटाई के द्वारा जमाया हुआ दूध। वह दूध जो खटाई पड़ जाने के कारण जमकर पक्के के रूप में हो गया हो।

विशेष—मिट्टी के बरतन में रखे हुए गरम दूध में थोड़ा सा दही (या ओर कोई छट्टा पदार्थ) डाल देते हैं, जिससे थोड़ी देर में वह पक्के के रूप में जम जाता है। पाश्चात्य देशों की विधि के अनुसार दूध जमाने के लिये लैक्टिक एसिड का प्रयोग किया जाता है। दही दो प्रकार का होता है। एक सजाव या मीठा जिसका घी या मक्खन निकाला हुआ नहीं होता और जिसमें घी से युक्त भलाई की तह होती है। दूसरा छिनुवा या पनिया जो मक्खन निकाले हुए दूध को जमाने से बनता है और घटिया होता है। घी दही को मथकर ही निकाला जाता है। हिंदुओं के यहाँ दही मगख द्रव्यों में से है।

वैद्यक में दही अग्निदीपक, स्निग्ध, गुरु, घारक, रक्तपित्तकारक, बलकारक, शुक्रवर्धक, कफघर्षक, तथा मूत्रकृच्छ्र, अरवि, अतीसार, विषमज्वर इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। यूरप के बड़े बड़े डाक्टरों ने हाल में परीक्षा द्वारा सिद्ध किया है कि दही से बढ़कर ओर कोई आयुर्वर्धक पदार्थ मनुष्य के लिये नहीं है। उत्तरती अवस्था में इसका सेवन उन्होंने अत्यंत उपकारी बतलाया है। उनका कथन है कि दही से शरीर में ऐसे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो रक्त क्षीण करनेवाले कीटाणुओं को खाते जाते हैं।

मुहा०—दही का ठोड़ = दही का पानी जो कपड़े में रखकर दही को निचोड़ने से निकलता है। (हाथ या मुँह में) दही जमा रहना = (१) किसी का तुरत प्रतिकार न करना, चुप रह जाना। (२) किसी घटना या चर्चा के सबंध में एकदम मौन हो जाना, कुछ भी न कहना। दही दही = दहिगल नाम की चिड़िया की बोली। दही दही करना = किसी चीज को मोल देने के लिये लोगों से कहते फिरना।

दहीदही—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दहिगल नाम की चिड़िया की बोली।

दहीली—वि० स्त्री० [हि० दाह + ईली (प्रत्य०)] अथवा सं० दाध [जली हुई]। दाध। उ०—नँकु नहीं पिय तँ कहुँ बिछुरति, ताँवें नाहिन काम दहीली। सर सखी ब्रूमै यह कैहीं, माजु गई यह भेट पहीली।—सुर०, १०।१७७२।

दहुँ(उ)—अव्य० [सं० अथवा] अथवा। या। किं वा। २. स्यात्। कदाचित्।

दहुँवनि—वि० [देश०] दोनों। उ०—सु दरि बिरहनि के निकट आई विरहनि कोइ। दुखिया ही दुखिया मिली दहुँवनि दोनों रोइ।—सु दर प्र०, भा० १, पृ० ६८२।

दहुँ(उ)—अव्य० [सं० अथवा] दे० 'धौ'। उ०—जनि प्रवहि सवहि दहुँ घास कहुँ, पकलि दोघो भललाण गइ।—कीर्ति०, पृ० ६२।

दहँगर—संज्ञा पुं० [हि० दही + गड़ा] दही का पड़ा।

दहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दही + हड़ी] दही रखने का मिट्टी का बरतन। उ०—अहिरनि हाथ दहँडि सगुन सेइ भावइ हो। तुलसी प्र०, पृ० ४।

दहेज—संज्ञा पुं० [अ० जहेज] वह धन और सामान जो विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया जाता है। दायजा। योतुक।

दहेला(उ)^१—वि० [हि० दहला + एला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दहिली, दहेली] १ जला हुआ। दाध। २ सतत। दुःखी। उ०—(क) सुनु सजनी में रही अकेली विरह दहेली इत गुबजन भरै।—(शब्द०)। (ख) कहाँ गए मनमोहन तजि के काहे बिरह दहेली है।—(शब्द०)।

दहेला^२—वि० [हि० दहलना] [वि० स्त्री० दहेली] भीगा हुआ। ठिठुरा हुआ। उ०—गाहव सिध सयाननि के जिनकी मति की मति देह दहेली।—केसव (शब्द०)।

दहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दही + हड़ी] दही की हाँड़ी। उ०—ऐसी को है जो छुवै मेरी मटुकी, मटुकी दहँड़ी जमी।—नद० प्र०, पृ० ३६१।

दहीतरसो—संज्ञा पुं० [सं० दशोत्तरशत] एक सौ दस।

दह्यमान—वि० [सं०] जो जल रहा हो। जलनेवाला। उ०—तब क्यों दह्यमान यह जीवन, चढ़ न सका मंदिर में प्रभ तक।—सामवेनी, पृ० ८।

दह्यो—संज्ञा पुं० [हि० दही] दे० 'दही'। उ०—भीरन को दह्यो छिलछिलो लागत, मैंने तो भीटाइ जमायो बचि बचि भरि कै तमी।—नद० प्र०, पृ० ३६१।

दह^१—वि० [सं०] सूक्ष्म। लघु। छोटा [को०]।

दह^२—संज्ञा पुं० १ हृदय रूपी खान। हृदय रूपी गर्त। हृदय। २. अग्नि। भाग। ३ वनाग्नि। दावाग्नि। दावानल [को०]।

दाह—वि० [सं० दह] [वि० स्त्री० दाही] दह से संबंधित। छड़ी या दह से संबंधित [को०]।

दाडक्य—संज्ञा पुं० [सं० दाहक्य] द्वारपाल। छड़ी बरदार। रक्षक। २. एक राजा का नाम [को०]।

दाँडाजिनिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाण्डजिनिक] वह जो दंड और प्रजिन धारण करके अपना अर्थसाधन करता फिरे। साधु के वेष में लोगो को धोखा देनेवाला भ्रामरी।

दाँडाजिनिक^२—वि० कपटी। छली (को०)।

दाँडिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाण्डिक] वह जो दंड देने के लिये नियुक्त हो। जल्लाद।

दाँत^१—वि० [सं० दान्त] १ जिसका दमन किया गया हो। वशीभूत। दबाया हुआ। उ०—तो क्या मैं भ्रम में थी नितान्त। संहार^२ बध्य असहाय दात।—कामायनी, पु० २४०। २ जिसने हृदयों को वश में कर लिया हो। जिसका शरीर तप आदि का क्लेश सह सके। ३ जो दाँत का बना हों। ४ दाँत सबधी।

दाँत^२—सञ्ज्ञा पुं० १. मैनफल। २. पहाड़ पर की बावली। ३. विदमं के राजा भीमसेन के दूसरे पुत्र जो दमयंती के भाई थे। ४ दानकर्ता। दाता (को०)। ५. दमनक नाम का वृक्ष (को०)।

दाँतक—वि० [सं० दान्तक] दाँत से निर्मित। हाथीदाँत से निर्मित। हाथीदाँत का (को०)।

दाँता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दान्ता] एक अप्सरा का नाम। (महाभारत)।

दाँति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ इन्द्रियनिग्रह। इन्द्रियों का दमन। क्लेश भावि सहने की शक्ति। २ वश्यता। अधीनता। ३. विनय। ममता।

दाँतिक—वि० [सं० दान्तिक] दे० 'दातक'।

दापत्य^१—वि० [सं० दाम्पत्य] स्त्री पुरुष सबधी। स्त्री पुरुष का सा।

दापत्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ दपती से सबध रखनेवाले अग्निहोत्र आदि कर्म। २ स्त्री पुरुष के बीच का प्रेम या व्यवहार।

दांभ—वि० [सं० दाम्भ] दे० 'दाम्भिक'।

दांभिक^१—वि० [सं० दाम्भिक] १ दमयुक्त। वचक। पाखंडी। भाडवर रखनेवाला। धोखेबाज। २ अहंकारी। घमडी।

दांभिक^२—सञ्ज्ञा पुं० १. बगला। वक। २. लोगी व्यक्ति।

दांभिकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दाम्भिक + ता] ढोंगपन। भाडवरपन। दिखाऊपन।

दाँ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाच् (प्रत्य०), जैसे, एकदा] दफा। बार। बारी। उ०—जोरि तुरंग रथ एक दाँ रवि न सेत विश्राम। तैसे ही नित पवन कों चलवे ही ते काम।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

दाँ^२—वि० सञ्ज्ञा पुं० [फा०] जाता। जाननेवाला। जैसे, फारसीदाँ। उर्दूदाँ।

दाँइ^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'दाई'।

दाँइ^२—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'दाई'।

दाँक—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दाक्ष (= चिल्लाना), हि०, बं० डाकना] दहाड़। गरज। किसी प्राणी का भीषण स्वर। उ०—लखन बचन की धाँक सो परयो समाज सनाँक। जिमि सिधुर गण बाँक में परे सिंह की दाँक।—रघुराज (शब्द०)

दाँकना—क्रि० प्र० [हि० दाँक + ना (प्रत्य०)] गरजना। दहाड़ना

उ०—जैसे व्याल बँग को ढूँके परबीरी ताँके हो। जैसे सिंह भापू मुख निरखे परे कृप में दाँके हो।—सूर (शब्द०)।

दाँग—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. छह रत्ती की तोल। २. दिशा। तरफ और। ३. छठा भाग।

दाँग^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डका] नगाडा। डंका। उ०—दान दाँग बाँधे दरबारा। कीरति गई समु दर पारा।—जायसी (शब्द०)।

दाँग^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दूँगर] १. टीला। छोटी पहाड़ी। २. पहाड़ की चोटी।

दाँगर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दाँगर'।

दाँगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दण्डक (= डंडा)] वह लकड़ी जो जुलाहों की कंधी में लगी रहती है।

दाँजा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उदाहार्य] बराबरी। समता। जोड़। तुलना। उ०—(क) जाँके रस को इंद्र हूँ तरसत सुषुप्त न पावत शीघ्र।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) न हंसीबारी देह की दाँज पावे। गोरार्ह लखे पीत कंजो सजावे।—रघुराज (शब्द०)।

दाँजा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दाँज] दे० 'दाँज'।

यौ०—दाँजारेसी = होडाहोड़ी। लागडाँट।

दाँड़ना—क्रि० प्र० [सं० दण्डन] १. दंड देना। सजा देना। २. जुरमाना करना।

दाँड़ा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० डांड] दे० 'डांडा'।

दाँड़ामेड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दाँड़ा + मेड़ा] दे० 'डाँड़ामेड़ा'।

दाँड़ी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डाँडी'।

दाँड़ी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'डाँड़ी'।

दाँत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्त] १ अंकुर के रूप में निकली हुई हड्डी जो जीवों के मुँह, तालू, गले और पेट में होती है और प्याहार चबाने, तोड़ने तथा आक्रमण करने, जमीन खोदने इत्यादि के काम में आती है। दंत।

विशेष—मनुष्य तथा और दूध पिलानेवाले जीवों में दाँत दाढ़ और ऊपरी जबड़े के मांस में लगे रहते हैं, मछलियों और सरीसृपों में दाँत केवल जबड़ों ही में नहीं तालू में भी होते हैं। पक्षियों में दाँत का काम चोंच से निकलता है, उनके दाँत नहीं होते। असली दाँत मनुष्यों के गढ़ों में जमे रहते हैं। सरीसृप आदि में दाँत का जबड़े की हड्डी से अधिक घनिष्ठ लगाव होता है। रीढ़वाले जंतुओं में मुँह को छोड़ स्रोत (भोजन भीतर से जानेवाले नल) में और कहीं दाँत नहीं होते। बिना रीढ़वाले क्षुद्र जंतुओं में दाँतों की स्थिति और आकृति में परस्पर बहुत विभिन्नता होती है। किसी के मुँह में, किसी की अंतर्द्वी में अर्थात् स्रोत के किसी स्थान में दाँत हो सकते हैं। केकड़ा, शिंपया आदि के पेट में महीन महीन दाँत या ददानेदार हड्डियाँ सी होती हैं। जल के बहुत से कीड़ों में जिनका मुँह गोला या चक्राकार होता है, किनारे पर चारों ओर असंख्य महीन दाँतों का मंडल सा होता है। मनुष्य और बनमानुष में बंसावलि पूर्ण होती है, अर्थात् उनमें प्रत्येक प्रकार के दाँत होते हैं।

दाँत तीन प्रकार के होते हैं—(१) चौका या राजदंत वर्ग (सामने के दो बड़े दाँत अर्थात् राजदंत और उनके दोनों पार्श्ववर्ती दाँत), (२) कुकुरदंत या शूलदंत, जो लंबे और नुकीले होते हैं और राजदंत के बाद दो दो पड़ते हैं, (३) चौमठ जिनका सिरा चौठा और चौकोर होता है और जिनसे पीसा या चबाया जाता है। २१ या २२ वर्ष की अवस्था में जब आखिरी चौमठ या अकिलदाढ़ निकलती है तब ३२ दाँत पूरे हो जाते हैं। बहुत से दूध पिलानेवाले जीवों को दो बार दाँत निकलते हैं। पहले बचपन में जो दूध के दाँत निकलते हैं वे झड़ जाते हैं। पीछे स्थायी दाँत निकलते हैं। दूध के दाँतों और स्थायी दाँतों की संख्या और आकृति में भी भेद होता है। मनुष्य के बच्चे में दूध के दाँत बीस होते हैं। साँप आदि विषधर जंतुओं के दाँत के भीतर एक नली होती है जिसके द्वारा पेशी से रस बाहर होता है।

पर्या०—रद। दशन। द्विज। सख।

यौ०—दाँत का चौका = सामने के चार दाँतों की लड़ी।

मुहा०—दाँत उखाड़ना = (१) दाँत मसूड़े से अलग करना।

(२) मुँह तोड़ना। कठिन दंड देना। दाँतों उँगली काटना = दे० 'दाँत तले उँगली दबाना'। दाँतकाटी रोटी = अत्यंत घनिष्ठ मित्रता। गहरी दोस्ती। घना मेल। जैसे,—राम और श्याम की तो दाँतकाटी रोटी है। दाँत काड़ना = दे० 'दाँत निकालना'। दाँत किटकिटाना, दाँत क्लिक्किलाना = (१) दाँत पीसना। (२) क्रोध से दाँत पीसना। अत्यंत क्रोध प्रकट करता। दाँत किरकिराना = (क्रि० अ०) नीचे ककड़ी, रेत आदि पड़ने के कारण दाँतों का ठोक न चलना। दाँत किरकिरे होना = हार मानना। हार जाना। हैरान हो जाना। दाँत कुरीदने को तिनका न रहना = पास में कुछ न रह जाना। सर्वस्व चला जाना। दाँत खट्टे करना = (१) खूब हैरान करना। (२) किसी प्रकार की प्रतिद्वंद्विता या लड़ाई में परास्त करना। पस्त करना। जैसे,—मरहट्टों ने मुगलों के दाँत खट्टे कर दिए। उ०—नूतन नूतन यज्ञ प्रस्तुत कर विलायती व्यापारियों के दाँत खट्टे करने के लिये शतशः प्रयत्न किए जा रहे हैं।—निबधमालादर्श (सन्द०)। दाँत खट्टे होना = हार जाना। पस्त होना। हैरान होना। (किसी पर) दाँत गड़ना = दे० '(किसी पर) दाँत लगना'। किसी के दाँतों चढ़ना = (१) किसी के आशेष आदि का लक्ष्य होना। किसी को खटकना। (२) बुरी नजर का निशाना बनना। ठोंक में आना। हँस में आना (स्त्रि०)। जैसे,—बच्चा लोगों के दाँतों चढ़ा रहता है इसी से कस नहीं पाता। (किसी के) दाँतों चढ़ाना = (१) किसी पर आशेष करते रहना। बुरी दृष्टि से देखना। पीछे पड़ा रहना। (२) नजर लगाना (स्त्रि०)। दाँत चबाना = क्रोध से दाँत पीसना। कोप प्रकट करना। उ०—दाँत चबात चले मधुपुर तें धाम हमारे को।—सूर (सन्द०)। दाँत जमना = दाँत निकलना। दाँत झड़ना = दाँत का टूटकर गिरना। दाँत झाड़ देना = दाँत तोड़ डालना।

कठिन दंड देना। दाँत हटाना = (१) दाँत का गिरना। (२) बुढ़ापा आना। दाँत तले उँगली दबाना = (१) अश्रम में आना। अकित होना। दग रहना। (२) खेद प्रकट करना। अफसोस करना। (३) संकेत से किसी बात का निवेद्य करना। इशारे से मना करना।

विशेष—जब कोई कुछ अनुचित कार्य करने चमत्ता है तब श्व मित्र या गुरुजन प्रकट रूप से वारण करने का अवसर न देख दाँतों के नीचे उँगली दबाकर निवेद्य करते हैं।

दाँत तोड़ना = परास्त करना। पस्त करना। हैरान करना। कठिन दंड देना। उ०—मलादीत के दाँत तोड़ि निज बर्ष दबायो।—राधाकृष्णदास (सन्द०)। दाँत दिखाना = (१) हँसना। (२) डराना। घुडकना। (३) अपना बहुपन दिखाना। दाँत देखना = चोड़े बेल आदि की सज्ज का अंदाज करने के लिये उनके दाँत गिनना। दाँतों धरती पकड़कर = अत्यंत दरिद्रता और कष्ट से। बड़ी क्लिप्त और तकलीफ से। जैसे,—दाँतों धरती पकड़कर किसी प्रकार दो महीने चलाए। दाँत न लगाना = दाँतों से न कुचलना। जैसे,—दाँत न लगाना, दवा यों उतार जाना। दाँत निकलना = बच्चों के दाँत प्रकट होना। दाँत जमना, दाँत निकालना = (१) दाँत उखाड़ना। (२) भोड़ों को कुछ हटाकर दाँत दिखाना। (३) व्यर्थ हँसना। जैसे,—क्यों दाँत निकालते हो सीधे बैठो। (४) गिड़गिड़ना। चीनता दिखाना। हा हा खाना। जैसे,—बहु दाँत निकाल माँगने लगा, तब कैसे न देते ? (५) मुँह बा देना। टें बोल देना। डर या घबराहट से ठक रह जाना। (किसी वस्तु का) दाँत निकालना = फट जाना। दरार से युक्त होना। उखड़ना। जैसे, जूती का दाँत निकालना, दोवार का दाँत निकालना। दाँत निकोसना = दे० 'दाँत निकालना'। दाँत निपोरना = दे० 'दाँत निकालना'। दाँत पर न रखा जाना = खटाई के कारण दाँतों को सहन न होना। अत्यंत खट्टा लगना। दाँत पर मेल न होना = अत्यंत निर्धन होना। भुक्खंड होना। जैसे,—उसके तो दाँत पर मेल भी नहीं वह तुम्हें देगा क्या ? दाँतों पर रखना = चखना। मुँह में डालना। दाँतों पसीना आना = कठिन परिश्रम पड़ना। जैसे,—इस काम में दाँतों पसीना आवेगा। (बच्चे का) दाँतों पर होना = उस अवस्था को पहुँचना जिसमें दाँत निकलनेवाले हों। दाँत पीसना = दाँत पर दाँत रखकर हिलाना। दाँत किटकिटाना। दाँत चँधवाना = हिलते हुए दाँतों को तार से कसवाना। दाँत बजना = सरसो से दाढ़ के हिलने या काँपने के कारण दाँत पर दाँत पड़ना। दाँत खट खट होना। दाँत बजाना = दाँत पर दाँत पीसना। दाँत किटकिटाना। दाँत बनवाना = गिरे हुए दाँतों के स्थान में हड्डी या सीप आदि के नकली दाँत लगवाना। दाँत बैठ जाना = मूर्खी, लकवा आदि में पेशियों की स्तब्धता के कारण दाँत की ऊपर नीचेवाली पत्तियों का परस्पर इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके। नीचे ऊपर के जबड़ों का सट जाना। दाँत मसमसाना या दाँत मोसना = दे० 'दाँत पीसना'।

(किसी का) दाँतों में जीभ सा होना = वैरियो के बीच रहना । शत्रुओं से प्रतिक्षण घिरा रहना । दाँतों में तिनका-लेना = दया के लिये बहुत विनती करना । दड भादि के छुट-कारे के लिये बहुत गिडगिडाना । बहुत भघोरता और विनय से क्षमा चाहना । हा हा खाना । (किसी वस्तु पर) दाँत रखना = (१) लेने की गहरी चाह रखना । प्राप्ति के प्रयत्न में रहना । (२) दण रखना । कोना रखना । किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव रखना । वैर लेने का विचार रखना । (किसी वस्तु पर) दाँत लगना = (१) दाँत घँसना । दाँत घुमने का घाव होना । (२) लेने की गहरी चाह होना । प्राप्ति की चिन्ता होना । जैसे,—जबकि उस चीज पर उसका दाँत लगा है तब वह कब तक रह सकती है ।

विशेष—बिल्ली भादि शिकारी जानवर जिस जंतु को एक बार मुँह से पकड़ लेते हैं फिर उसे जाने नहीं देते । इसी से यह मुहा० बना है ।

(किसी वस्तु पर) दाँत लगाना = (१) दाँत घँसना । (२) लेने की गहरी चाह रखना । प्राप्ति के प्रयत्न में रहना । लेने की घात में रहना । दाँत से दाँत बजना = सरदी के कारण दाढ़ के कंपने से दाँत पर दाँत पड़ना । दाँतों से चठाना = बड़ी कड़ूसी से चठाकर रखना । कृपणता से सभित करना । जैसे,—एक दाना गिरे तो यह दाँतों से चठावे । किसी पर दाँत होना = (१) गहरी चाह होना । लेने या पाने की पर्यंत अधिक इच्छा होना । प्राप्ति की इच्छा होना । जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारा दाँत है वह कब तक रह सकती है । (२) किसी के प्रति दंश होना । किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव होना । किसी से वैर लेने का संकल्प होना । जैसे,—जब कि उसपर तुम्हारा दाँत है तब वह कितने दिनों तक बच सकता है ? (किसी के) तालू में दाँत जमना = बुरे दिन भ्राना । शामत भ्राना । जैसे,—किसके तालू में दाँत जमे हैं जो ऐसी यात मुँह से निकाल सके ?

२ दाँत के आकार की निकली हुई वस्तु । भंजुर की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुनों के साथ एक पंक्ति में हो । दंदाना । दाँता । जैसे,—भारी के दाँत, कधी के दाँत ।

दाँतघुँघुनी—सखा ली० [हि० दाँत + घुँघुनी] पोस्ते के दाने की घुघनी जो बच्चे का पहला दाँत निकलने पर बाँटी जाती है ।

दाँतना—क्रि० प्र० [हि० दाँत] १ दाँतवाला होना । जवान होना (पशुओं के लिये बोलते हैं) । २. किसी हथियार की धार का इस प्रकार कुठित होना कि वह कहीं उभर भावे और कहीं दब जाय । मुड़कर जगह जगह गुठला हो जाना । जैसे, कुल्हाड़ी का दाँतना ।

दाँतली—सखा ली० [हि० डाट] डाट । काग ।

दाँता—सखा पु० [हि० दाँत] दाँत के आकार का कंगूरा । रत्ता । भंजुर की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुनों के साथ एक पंक्ति में हो । दंदाना ।

५-२

मुहा०—दाँता पठना = किसी हथियार की धार में गुठले होने के कारण उभार और गड्ढे हो जाना ।

दाँताकिटकिट—सखा ली० [हि० दाँत + किटकिट (भनु०)] १ कहा-सुनी । भगड़ा । वाग्युद्ध । २ गाली गलोज ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—होना ।

दाँताकिलकिल—सखा ली० [हि०] दे० 'दाँताकिटकिट' ।

दाँतना—सखा ली० [हि० दाँतना] दे० 'दाँतना' । उ०—पाछे दोऊ जन दाँतना करि स्नान करि मंदिर मो कृष्ण भट जाइ भोग सरायो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० ४५ ।

दाँतिया—सखा पु० [?] रेह का नमक । रेह वा सोडा जिसे पीने के तबाकू में उसे तेज करने के लिये डालते हैं ।

दाँती—सखा ली० [सं० दाँती] १ हंसिया जिससे घास या फसल काटते हैं । २ वह बड़ा खूँटा जो नाव के घाट पर गड़ा रहता है और जिससे नाव का रस्ता बाँध दिया जाता है । डडा । ३ मिड (बरें) की जाति का एक कीड़ा जो बहुत काया होता है । काली मिड ।

दाँती^२—सखा ली० [हि० दाँत] १. दाँतों की पक्ति । दाँतावलि । बत्तीसी ।

मुहा०—दाँती बैठना या लगना = जबड़ों का परस्पर सट जाना । ऊपर नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके । कच्चा बैठना ।

२ दो पहाड़ों के बीच की सँकरी जगह । दर्रा ।

दाँती^३—सखा पु० [सं० दन्ती] बनेला सूधर । उ०—यही, कभी ससा, साही, हिरन, छगड, दाँती गिरा लिया ।—मस्मावृत०, पृ० २५ ।

दाँना^१—क्रि० सं० [मं० दमन] पक्की फसल के डठलों को वेलों से इसलिये रौंदवाना जिसमें डठल से दाना अलग हो जाय । देवरो करना । उ०—इसलिये यदि यत्र द्वारा अन्न दया जाय तो दो ही तीन दिन में सब दाना भी अलग हो जाय ।—खेती की पहली पुस्तक (शब्द०) ।

दाँना^२—सखा पु० [सं० दानव] दानव । दैत्य ।

दाँम^७—सखा पु० [सं० दाम] माला । उ०—मेवक वरन बर जीवन निवासधर, बकुलनि की लसत सुंदर परम दाम ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ४८८ ।

दाँमणी—सखा ली० [मं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०—फौज घटा, लग दामणी, वृद्ध लगे सर जेम ।—ढोला०, दू० २५५ ।

दाँय—सखा ली० [दे०] दे० 'देवरी' ।

दाँयों—वि० [हि० दहिना] दे० 'दाया' ।

दाँव—सखा पु० [हि०] दे० 'दाव' ।

मुहा०—दाँव रोपना = अपने काम या शर्त की याद दिलाना ।

उ०—दूसरी महरी—धवासी छेड़ती हैं और अपने दाँव रोपती हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०८ ।

दाँवनी—सखा ली० [सं० दामिनी] १ दामिनी नाम का गहना ।

७२. दे० 'दामिनी' ।

दाँवरी—सखा ली० [सं० दाम] रस्सी । रज्जु । दामरी । बोरी ।

- उ०—दाँवरि लै बाँधन लगी जसुबा हँ बेपीर ।—व्यास (शब्द०) ।
- दा^१—संज्ञा पुं० [मनु०] सितार का एक बोल । जैसे,—दाँ दिर दाँ का इत्यादि ।
- दा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्षा । बचाव । २. शोधन । ३. दान । ४. छेद । छेदन । ५. उपताप । ताप [को०] ।
- दा^३—वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली । दातृ । (समासांत में प्रयुक्त) ।
- दा^४—प्रत्य० [पञ्चाशी] संबंधवाचक प्रत्यय । का ।
- दाइ^५—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दाय' और 'दाँव' । उ०—तू जिन करि री गहर नवल तिय, मान बन्यो नलि दाइ ।—नद० प्र०, पृ० ३८६ ।
- दाइजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाइज' । उ०—दाइज पाइ अनेक विधि, सुत सुतबधुन समेत ।—तुलसी प्र०, पृ० ८५ ।
- दाइजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाइजा' । उ०—पाछें वह सब दाइजा की सामान जो हरिदास अपने घर तें ल्याए होते ।—दो सी भावन०, भा० १, पृ० २७५ ।
- दाइम—क्रि० वि० [म० दायम] सदा । हमेशा । सर्वदा । उ०—हरदम हाजिर होणा बाबा, जब लग जीवै बदा । दाइम दिल साईं सों साधित पथ बखत क्या धंदा ।—दादू०, पृ० २५८ ।
- दाइस^६—वि० [हिं० दावें] दावेंवाली । उ०—हावनि बहु भावनि करति, मनसिज मन उपजाइ । दाइल वह घाइल करत पाइल पाइ बजाइ ।—स० सप्तक० पृ० ३६५ ।
- दाई^७—वि० स्त्री० [हिं० दायाँ] दाहिनी । जैसे, दाईं भाँस ।
- दाई^८—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्ष (प्रत्य०), हिं० दाँ (प्रत्य०)] बारी । दफा । बार । उ०—सब वहि जानेहुँ पीर पराई । भव कस रोवहु अपनी दाई ।—विश्राम (शब्द०) ।
- दाई^९—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री, फा० दायह] १. दूसरे के बच्चे को अपना दूध पिलानेवाली स्त्री । धाय ।
- दाँ०—दाई पिलाई ।
२. वह दासी जो बच्चे की देखरेख रखने या उसे खेलने के लिये रखी जाय ।
- दाँ०—दाई खेलाई ।
३. वह स्त्री जो स्त्रियों को बच्चा बनने में सहायता देती हो । प्रसूता के उपचार के लिये नियुक्त स्त्री ।
- दाँ०—दाई जनाई ।
- मुहा०—दाई से पेट छिपाना=जाननेवालों से कोई बात छिपाना । ऐसे मनुष्य से कोई बात गुप्त रखना जो सब रहस्य जानता हो ।
- दाई^{१०}—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी] १. पिता की माता । दादी । २. बड़ी बूढ़ी स्त्री ।
- दाई^{११}—वि० [सं० दायिन्] दे० 'दानी' ।
- दाँजो—संज्ञा पुं० [हिं० दाँव] दे० 'दाँव' । उ०—सुझ जुभारिहि आपन दाऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।
- दाँ^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० दा > दाच् (प्रत्य०), हिं० दावें] दावें । दफा ।

बार । उ०—ऐस जो ठाकुर किय एक दाऊ । पहिले रखा मुहम्मद नाऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

दाऊ—संज्ञा पुं० [सं० देव या तात (=पिता, पिता का भाई) हिं० ताऊ, दाऊ] १. बड़ा भाई । २. बलदेव । बलराम । कृष्ण के बड़े भाई । उ०—मैया मोहि दाऊ बहुत लिभायो । सूर०, १०.२१५ । ३. पिता का बड़ा भाई ।

दाऊद—संज्ञा पुं० [म०] पारसी, ईसाई और मुसलमानों के एक पैगंबर का नाम ।

दाऊदखानी—संज्ञा पुं० [फा० दाऊदखानी] १. एक प्रकार का चावल । उ०—रायभोग श्री काजर रानी । किन बरद श्री दाऊदखानी ।—जायसी (शब्द०) । २. उत्तम प्रकार का सफेद गेहूँ । दाऊदी गेहूँ । गगाजली गेहूँ ।

दाऊदिया—संज्ञा पुं० [म० दाऊद] १. एक प्रकार का गेहूँ । दे० 'दाऊदी' । २. गुलदावदी का फूल । ३. एक प्रकार की घातिणवाजी जो छूटने पर दाऊदी फूल की तरह दिखाई पड़ती है । एक प्रकार का कवच ।

दाऊदी—संज्ञा पुं० [म० दाऊद] एक प्रकार का गेहूँ जिसका छिलका बहुत सफेद और नरम होता है ।

विशेष—कहते हैं, दिल्ली के बादशाह शाह आलम के एक दरबारी, जिनका नाम दाऊद खाँ था, इस गेहूँ को मिस्र देश से लाए थे । यह सयसे अच्छा गेहूँ समझा जाता है ।

दाऊदी^{१३}—संज्ञा स्त्री [फा० गुलदाऊदी] दे० 'गुलदाऊदी' । उ०—बाहर है चाँदी की विस्तृत, भीनी चादर । जिसके भार पार दीखते हैं—बैजंती, दाऊदी, गेंदा श्री हमली के पेड़ तनावर ।—चाँदनी०, पृ० २५ ।

दाऊ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान करनेवाला व्यक्ति । दाता । २. यजमान [को०] ।

दाऊखाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्षा] भगुरी शराब । उ०—कैसा पान करोगे ? दाऊखाँ, लाजा, गोड, माध्वीक, मैरेय ?—वैशाली०, पृ० ८

दाऊ^{१४}—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण । दक्षिण दिशा [को०] ।

दाऊ^{१५}—वि० दक्ष सबधी [को०] ।

दाक्षायण^{१६}—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना । स्वर्ण । २. ग्राम्भूयण प्रादि सुनहरी चीजें । ३. स्वर्णमुद्रा । मोहर । मशरफी । ४. दक्ष द्वारा किया हुआ एक यज्ञ जिसकी कथा शतपथ ब्राह्मण में है ।

दाक्षायण^{१७}—वि० १. दक्ष से उत्पन्न । २. दक्ष के गोत्र का । ३. दक्ष का । दक्ष संबंधी । जैसे, दाक्षायण यज्ञ ।

दाक्षायणी^{१८}—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्ष की कन्या । २. अश्विनी प्रादि नक्षत्र । ३. रोहिणी नक्षत्र । ४. दती नक्षत्र । ५. दुर्गा । ६. कश्यप की स्त्री—, अदिति । ७. रेवती नक्षत्र [को०] । ७. दिति का एक नाम जो कश्यप की स्त्री और दैत्यों की माता थी [को०] ।

दाक्षायणी^{१९}—वि० [सं० दाक्षायणिन्] १. सोने का । सुवर्णयुक्त । २. स्वर्णकुंडलधारी व्यक्ति ।

दाक्षायणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव [को०] ।

दाक्षायण्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । रवि [को०] ।
दाक्षाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिद्ध चिड़िया । गृध्र [को०] ।
दाक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष का पुत्र [को०] ।
दाक्षिकंथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्षिकन्या] बाहलीक देश ।
दाक्षिण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक होम का नाम (शतपथ ब्राह्मण) ।
२ उक्त होम में प्राप्त दक्षिण (को०) ।

दाक्षिण^२—वि० १ दक्षिण संबंधी । २ दक्षिणा संबंधी ।
दाक्षिणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'दाक्षिणिक' । २ वह व्यक्ति जो
दृष्टापूर्तं आदि यज्ञों द्वारा चंद्रलोक प्राप्त करे [को०] ।

दाक्षिणात्य^१—वि० [सं०] दक्षिणी । दक्षिण देश का । जैसे,
दाक्षिणात्य ब्राह्मण ।

दाक्षिणात्य^२—स्त्री० पुं० १ दक्षिण देश । भारतवर्ष का वह भाग जो
विंध्याचल के दक्षिण पड़ता है । दक्षिण खंड ।

विशेष—इस खंड के प्रसंगत महाराष्ट्र, मलबार, कोंकण, तैलंग,
कर्नाटक इत्यादि प्रदेश हैं । नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा और
कावेरी दक्षिण की प्रधान नदियाँ हैं । दे० 'तामिल', 'तैलंग'
और महाराष्ट्र ।

२ दक्षिण देश का निवासी । ३ नारियल ।

दाक्षिणिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बंधन जो दक्षिणाप्रधान दृष्टापूर्तं
आदि कर्मों को कामनावश करने से होता है (याज्ञवल्क्य) ।

दाक्षिण्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकूलता । किसी के हित की
और प्रवृत्त होने का भाव । प्रसन्नता । २ उदारता । सरलता ।
सुशीलता । ३ दूसरे के चित्त को फेरने या प्रसन्न करने का
भाव । ४ साहित्य में नाटक का एक अंग, जिसमें वाक्य या
चेष्टा द्वारा दूसरे के उदासीन या अप्रसन्न चित्त को फेरकर
प्रसन्न करने का भाव दिखाया जाता है ।

दाक्षिण्य^२—वि० १ दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । २ दक्षिणा
संबंधी ।

दाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] २ दक्ष की कन्या । २ पाणिनि की माता
का नाम ।

यौ०—दाक्षीपुत्र=पाणिनि ।

दाक्षेय—संज्ञा पुं० [सं०] दाक्षीपुत्र पाणिनि [को०] ।

दाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षता । निपुणता । पटुता । कार्य-
कुशलता ।

दाख^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्षा] १ अगूर । २ मुनक्का । ३
किशमिश ।

दाख^२—वि० [सं० दक्ष] दे० 'दक्ष' । उ०—ताकों विहित बखानही,
जिनकी कविता दाख ।—मतिराम (शब्द०) ।

दाखनिरबिसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाख+निबिसी ?] हर जेवड़ी
नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियों और जड़ का औषध रूप में
व्यवहार होता है । पुरही ।

दाखना^१—क्रि० सं० [सं० दक्षण, दक्षण] प्रकट करना ।
दिखाना । उ०—रिण जोषी रिणछोड़, पड़े खग दाख

पराक्रम । पीयल पीठलदासं, धार चंद्रमाण सॉम घम ।—रा०
रू० पु० १७ ।

दाखना^२—क्रि० सं० [प्रा० दखल (= बतलाना)] बतलाना ।
बताना कहना । उ०—(क) डाढी जे साहिब मिलइ, यूँ
दाखविया जाइ । भाख्यी सीप विकासिया, स्वात ज भरसउ
भाइ ।—ढोखा०, दू० ११६ । (ख) बहुत दिलासा दाखतै,
दाह दिया सिरपाव । सिरपर हुकुम चढाय ली, कीषी प्रथम
कहाव । रा० रू०, पु० २७ ।

दाखिल—वि० [फ़ा० दाखिल] १ प्रविष्ट । घुसा हुआ । पैठा हुआ ।
उ०—बीच बगाचा के महल दाखिल भयो प्रशस ।—गुमान
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दाखिल करना=देना । प्रदा करना । भर देना । जमा
करना । जैसे,—उसने तुरत जुरमाना दाखिल कर दिया ।
दाखिल होना=प्रदा कर देना । उपस्थित करना । साकर
जमा करना ।

२. शरीक । मिला हुआ । जैसे, किसी गरोह में दाखिल होना ।
१ पहुँचा हुआ ।

यौ०—दाखिल खारिज । दाखिल दफ्तर ।

दाखिलखारिज—संज्ञा पुं० [फ़ा० दाखिलखारिज] किसी सरकारी
कागज पर से किसी जायदाद के हकदार का नाम काटकर
उसपर उसके वारिस या किसी दूसरे हकदार का नाम लिखने
का काम ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

दाखिलदफ्तर—वि० [फ़ा० दाखिल दफ्तर] दफ्तर में इस प्रकार
डाल रखा हुआ (कागज) जिसपर कुछ बिबार न
किया जाय ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

दाखिला—संज्ञा पुं० [फ़ा० दाखिला] १ प्रवेश । पैठ । २ किसी
संस्था, कार्यालय आदि में समिलित किए जाने का कार्य । ३.
वह कागज जिसमें उस वस्तु का ब्योरा लिखा हो जो कहीं
दाखिल या जमा की जाय । ४ वह कागज जिसपर किसी
वस्तु के जमा होने, भेजे जाने या पाए जाने की मिति आदि
टंकी हो ।

दाखिली—वि० [अ० दाखिली] १ भीतरी । आंतरिक । भंदरूनी ।
२ हादिक । दिली [को०] ।

दाखी—संज्ञा स्त्री० [दाक्षी, प्रा० दाखी] दे० 'दाक्षी' ।

दाग^१—संज्ञा पुं० [सं० दग्ध] १ जलाने का काम । दाह । २.
मृतक का दाहकर्म । मुर्दा जलाने की क्रिया ।

मुहा०—दाग देना=मृतक का दाहकर्म करना । मुरदे का क्रिया
कर्म करना ।

३ जलन । डाह । उ०—उर मानिक की उरबधी डटत घटत
रग दाग । झलकत बाहर कढ़ि मनो पिय हिय को मनुराग ।—
बिहारी (शब्द०) । ४. जलने का चिह्न ।

दाग^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० दाग] [वि० दागी] १ किसी वस्तु के तल पर रंग का वह भेद जो थोड़े से स्थान पर भ्रम दिलाई पड़ता है। घन्घा। चित्ती। जैसे,—(क) उस विल्ली की पीठ पर कई रंग के दाग हैं (ख) कपड़े पर का यह दाग घोषी से छूटेगा। उ०—तुलसी जो मृग मन मरे परे प्रेम पट दाग।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—लगना।

विशेष—इस शब्द का अधिकतर प्रयोग ऐसे धब्बे के लिये होता है जो खटकता या बुरा लगता हो।

मुहा०—सफेद दाग = एक प्रकार का कोठ जिससे शरीर पर सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। फूल।

२. निशान। चिह्न। अक। उ०—मृगनेनी सैनन भजे लखि बेनी के दाग।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—लगना।

यौ०—दागवेल।

३ फल आदि पर पड़ा हुआ सड़ने का चिह्न। ४. कलक। ऐब। दोष। लाक्षण। उ०—पुत्र वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावे।—गिरिधर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

५. जलने का चिह्न।

दागण^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दागना] दाहकर्म। उ०—पड़ी देह सनेह पेठा, बाप दागण काज बेठा।—रघु० ६०, पु० ११६।

दागदार^१—वि० [फा० दागदार] जिसपर दाग लगा हो। २. धब्बेदार।

दागना^१—क्रि० स० [सं० दग्ध, हि० दाग + ना (प्रत्य०)] १ जलाना। दग्ध करना। उ०—(क) लोग वियोग विषम विष बागे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करि कद को मद दुचद भई फिर दाखन के उर दागति हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

२. तपे सोहे को छुलाकर किसी के अंग को ऐसा जलाना कि चिह्न पड़ जाय। जैसे, साँठ दागना, घोड़ा दागना।

संयो० क्रि०—देना।

३ किसी धातु के तपे हुए सचि को छुलाकर अंग पर उसका चिह्न डालना। तममुद्रा से अंकित करना। जैसे, शस्त्र चक्र दागना। ४. किसी फोड़े आदि पर ऐसी तेज दवा लगाना जिससे वह जख या सुख जाय। जैसे, कास्टिक या तेजाब से कुसी दागना।

संयो० क्रि०—देना।

५ भरी हुई बटूक में बत्ती देना। रजक में आग लगाना। तोप, बटूक आदि छोड़ना। जैसे, तोप दागना, बटूक दागना।

दागना^२—क्रि० स० [फा० दाग] रंग आदि से चिह्न डालना। दाग लगाना। अंकित करना। उ०—बबटूक बैठि अश भुज धरि के पीक कपोलनि दागे।—सुर (शब्द०)।

दागवेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० दाग + हि० वेल] सूमि पर फावड़े या कुदास से बनाए हुए चिह्न जो सड़क बनाने, नींव खोदने आदि के लिये एक सीध में डाले जाते हैं। उ०—सबके सब

बराबर एक कतार में लैनडोरी डालकर और दागवेल लगाकर बनाए गए हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दागी—वि० [फा० दाग] १ जिसपर दाग लगा हो। जिसपर धब्बा हो। २ जिसपर सड़ने का चिह्न हो। जैसे, दागी फल। ३ कलकित। दोषयुक्त। लाक्षणित। ४ ददित। जिसको सजा मिल चुकी हो।

दाघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गरमी। ताप। दाह। जलन। उ०—(क) कहलाने एकत रहत अहि मयूर मृग बाघ। जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) वादि ही चदन चाफ घिसे घनसार घनों घसि पक बनावत। वादि रसीर समीर चहै दिन रेनि पुरैनि के पात बिछावत। आपुहि ताप मिटी द्विजदेव मुदाघ निदाघ कि कीन कहावत। वावरि तू नहि जानति आज मयक लजावत मोहन भावत।—द्विजदेव (शब्द०)।

दाजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [?] १. अंधेरी रात। १. अंधेरा।

दाजन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दग्धन, हि० दाहन] दे० 'दाहन'।

दाजना^१—क्रि० प्र० [सं० दग्ध या दाहन] १ जलना। २ ईर्षा करना। डाह करना। उ०—दाजन दे दुर जीवन को अर लाजन दे सजनी कुल वारे। साजन दे मन को नव नेम निबाजन दे मनमोहन प्यारे। साजन दे ननदीन 'गुलाब' विराजत दे उर में गुन भारे। साजन दे गुरु लोगन को डर बाजन दे अर नेह नगारे।—गुलाब (शब्द०)।

दाजना^२—क्रि० स० जलाना। दग्ध करना।

दाहणा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दहन] 'दाहन'।

दाहना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन। उ०—पूरे सतगुरु के बिना पूरा सिष्य न होय। गुरु लोभी शिष्य लालची दूनी दाहन सोय।—कबीर (शब्द०)।

दाहना^३—क्रि० प्र० [सं० दाहन] जलना। सतप्त होना। उ०—के बिरहिनि कौ मोचु दे के भापा दिसलाय। घाठ पहर का दाहना मोप सहा न जाय।—कबीर (शब्द०)।

दाहना^४—क्रि० स० जलाना।

दाटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दाट'।

दाटना^१—क्रि० स० [हि० दाटना] दे० 'दाटना'।

दाटना^२—क्रि० प्र० [देश०] प्रतीत होना। उ०—कै रसराज प्रवाह को मारग बेनी बिहार सो यौ दग दाटी।—घनानंद, पु० ३३।

दाडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दाढ़। डाढ़। २। दाँत।

दाडव—सञ्ज्ञा पुं० [?] भविष्य ब्रह्मखंड के अनुसार काशी से दो योजन पश्चिम एक ग्राम जिसमें कल्कि भगवान् भधर्मी म्लेच्छों का नाश करके क्षातिपूर्वक निवास करेंगे।

दाड़स—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दाढ़] एक प्रकार का साँप।

दाडिब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाडिम्ब] दे० 'दाडिम'।

दाडिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाडिम] १. अनार।

यौ०—दाडिम प्रिय = सुधा। तोता।

२ इलायची।

दाहिमपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दाहिमपत्रक] दे० 'दाहिमपुष्पक [को०] ।
 दाहिमपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं० दाहिमपुष्पक] रोहितक नामक वृक्ष ।
 रोहेडा ।
 दाहिमप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० दाहिमप्रिय] शुक्र । सुप्ता । तोता ।
 दाहिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाहिमा] अनार । दाहिम ।
 दाहिमाष्टक—संज्ञा स्त्री० [सं० दाहिमाष्टक] वैद्यक में एक चूर्ण जिसमें
 अनार का छिलका पड़ता है ।
 दाहिमीसार—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिम । अनार [को०] ।
 दाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाहिम] दे० 'दाहिम' ।
 दाढ्यौ(७)†—संज्ञा पुं० [सं० दाहिम] दे० 'दाहिम' । उ०—सुंदर
 बरिषा प्रति भई सूकि गई सब साप । नीव फल्यो बहु भीति
 करि लागे दाढ्यो दाप ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७६० ।
 दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाढ़ी, प्रा० दड्ढा, या दड्ढा, प्रा० दड्ढा । मि०
 सं० दाढक, दाढा] १ जवड़े के भीतर के मोटे चोड़े दाँत ।
 चौभर ।
 मुहा०—दाढ न लगाना = दाँत से न कुचलना । दाढ़ गरम
 होना = खाना खाने में आना ।
 २ शूकर का दाँत जो आगे निकला रहता है और जिससे वह
 प्रहार करता है । † ३ दाढी । श्मश्रु । (व०) ।
 दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ भीषण शब्द । गरज । दहाड़ । जैसे,
 सिंह की दाढ़ी । २ चिल्लाहट ।
 मुहा०—दाढ़ मारकर रोना = खूब चिल्ला चिल्लाकर रोना ।
 उ०—रस्ती कटते ही मुर्दा नीचे गिर पड़ा और गिरते ही
 दाढ़ें मार मार रोने लगा ।—(शब्द०) ।
 दाढ़ना(७)†—क्रि० प्र० [सं० दाहन] १ जलना । भस्म होना ।
 २ गरजना । चिल्लाना ।
 दाढ़ना(७)†—क्रि० प्र० [सं० दाहन] १ जलाना । आग में भस्म
 करना । उ०—दाढ़ा राहुँ केतु गा दाधा । सुरज जरा चाँद
 जर दाधा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) देखे लोग बिरह दव
 दाढ़ ।—तुलसी । (शब्द०) । (ग) वेई मलीक निचोल सजे
 सब देव वहे विरहानल दाढ़ी ।—वेनीप्रवीन (शब्द०) । २.
 सतप्त करना । दुखी करना ।
 दाढ़ी—संज्ञा पुं० [सं० दाढा] १ लंबा दाँत या चौभर । दे० 'दाढ' ।
 २ समूह । झुंड [को०] । ३ आकाश । हल्छा [को०] ।
 दाढ़ा—संज्ञा पुं० [हि० दाढ़] १ वन की भाग । दावानल ।
 क्रि० प्र०—लगना ।
 २ भाग । अग्नि ।
 क्रि० प्र०—लगाना ।
 ३ दाह । जलन ।
 मुहा०—दाढ़ा फूँकना = दाह उत्पन्न करना ।
 दाढ़ा—वि० दग्ध । जलाया हुआ । पीड़ित ।
 दाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [हि० दाढी, तुल० सं० दाढ़ा (= चौभर)] श्मश्रु ।
 दाढ़ी मूँछ ।
 दाढ़ाखा—वि० [हि० दाढ़ + खाला] १. शूरवीर । बहादुर । सुमट ।

२. दडियल । उ०—वेढ मन्नीडा बज्जिया दोय पोहर दाढाल ।
 —रा० रू०, पृ० २७४ ।
 दाढ़ाली—वि० [हि०] दाढ़ी रखनेवाला । दडियल । दाढ़ीदार ।
 उ०—पाछी जिकी प्राणियो पूंगल, देवी थे दाढ़ाली ।—
 बाँकी० प्र०, भा० ३ पृ० १३८ ।
 दाढ़िका(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० दाढिका] १ दाढ़ी । श्मश्रु । २. दाँत ।
 दंत [को०] ।
 दाढ़िजार—संज्ञा पुं० [हि० दाढीजार] दे० 'दाढीजार' । उ०—
 अनेक बार में कही बुझायहँ विभीषण । न मानि दाढ़िजार
 को कुठार वण तीक्ष्ण ।—विश्राम (शब्द०) ।
 दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाढ़] १. चिबुक । २. ठुड़ी और दाढ़ पर
 के बाल । श्मश्रु ।
 विशेष—दे० 'दाढ़ी' ।
 दाढ़ीजार—संज्ञा पुं० [हि० दाढ़ी+जलना] वह जिसकी दाढ़ी जली
 हो । एक गाली, जिसे स्त्रियाँ कुपित होने पर पुरुषों को देती
 है । उ०—स्त्रीभक्ति मदोवै सविपाद मेघनाथ देखि बयो लूनियत
 सब याहो दाढ़ीजार को ।—तुलसी (शब्द०) ।
 विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत दारी (= दासी,
 लौंडी) + जार (= उपपत्ति), मानते हैं पर यह ठीक नहीं
 जान पड़ता ।
 दाण†—संज्ञा पुं० [सं० दान] राहदारी । आयातकर । जकात ।
 उ०—जिसमे दावू पर जानेवाले यात्रियों आदि से जो 'दाण'
 (राहदारी, जगात), मुडिक (प्रति यात्री से लिया जाने-
 वाला कर), बलाधी, (मार्गरक्षा का कर) तथा छोड़े
 वेल आदि से जो कर लिए जाते थे, उनको माफ करने का
 उल्लेख है ।—राज० इति०, पृ० ६३० ।
 दात(७)†—संज्ञा पुं० [सं० दातव्य या सं० दात्र (= दान)] दान । उ०—
 तुम सब ही के गुरु मानी प्रति पुर पुर भूवल के सुर तुम्हें
 दीजियत दात है ।—हनुमान (शब्द०) ।
 दात—संज्ञा पुं० [सं० दाता] दे० 'दाता' । उ०—सतगुरु समाने को
 सगा सोध समाने दात ।—कबीर (शब्द०) ।
 दात—वि० [सं०] १ विभक्त । कटा हुआ । छिन्न । २ घुसा हुआ ।
 स्वच्छ किया हुआ । माजित । शुद्ध [को०] ।
 दातवा(७)—संज्ञा पुं० [सं० दातव्य] दान । उ०—पात मुजस प्रक्षिपात
 पयपे, दातव असमर बात दुवै ।—रघु० रू०, पृ० १६ ।
 दातव्य—वि० [सं०] १ देने योग्य । २. लौटाने या वापस करने योग्य
 [को०] । ३. दान से चलनेवाला [को०] जैसे,—दातव्य प्रीयघासय ।
 ४. जहाँ दान के रूप में या बिना मूल्य या शुल्क के कुछ दिया
 जाता हो [को०] ।
 दातव्य—संज्ञा पुं० १ देने का काम । दान । २ दानशीलता । उदा-
 रता । उ०—बिन दातव्य द्रव्य नहि भावै । देश विदेश चहो
 फिर भावै । विश्राम (शब्द०) ।
 दाता—संज्ञा पुं० [सं० दातृ] १. वह जो दान दे । दानशील । २. देने-
 वाला । ३. वह जो कज दे । उत्तमर्ण [को०] । ४. उपदेश ।
 शिक्षा [को०] । ५. अभिभावक [को०] । ६. काटनेवाला । वह

जो कोई वस्तु काटे (को०) । ७ वह जो कन्या या भगिनी का विवाह में दान करता हो (को०) ।

दातापन—संज्ञा पुं० [सं० दाता + हि० पन] दानशीलता ।

दातार—संज्ञा पुं० [सं० दातृ का बहु० दातारः] दाता । देनेवाला ।
उ०—राजन राउर नाम जसु सब भूमिमत दातार । फन भनु-
गामी महिषमनि मन भमिलाप तुम्हार ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वितरण । २ दान करने की क्रिया या भाव । ३ छिन्नकरण । विनाश (को०) ।

दाती०—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] देनेवाली । उ०—पतित केश कफ
कंठ बिरोधो कल न परे दिन राती । माया मोह न छाड़े वृष्णा
ए दोऊ दुख दाती ।—सूर (शब्द०) ।

दातुन—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दतुवन' ।

दातुरी०—संज्ञा स्त्री० [सं० दातृत्व] दानशीलता । दातृत्व । दान की वृत्ति । उ०—धानी बड़े पै न मांगे धिन ढरे दातुरी ।—घना-
नद०, पृ० १५३ ।

दातून^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तो] १ दंतों की जड़ । २ जमासगोटे की जड़ ।

दातून^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दतुवन' ।

दातृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातोन—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दातुन' । उ०—जगल गया
भीर दातोन के लिये नीम का एक गोजाह लेकर लोटा ।—
काले०, पृ० १० ।

दातौन—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दतुवन' ।

दात्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पपीहा । चातक । २ मेघ । बादल ।
३ जल के समीप रहनेवाला एक पक्षी । डाहक (को०) ।

दात्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भ्रूपा० दात्री] दाती । हंसिया ।

दात्री^१—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] देनेवाली ।

दात्री^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिया । दाती ।

दात्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान करनेवाला व्यक्ति । २ यज्ञ की तैयारी । यज्ञ (को०) ।

दाद—संज्ञा पुं० [सं०] दान (को०) ।

दा०—दाद = दाता । दान देनेवाला ।

दाद^२—संज्ञा स्त्री० [सं० वदू] एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर उमरे हुए ऐसे चकरो पड़ जाते हैं जिनमें बहुत खुजली होती है । दिनाई ।

विशेष—दाद विशेषतः कमर के नीचे जघे के जोड़ के पास पास होती है जहाँ पसीना होकर मरता है । वैद्यक में यह १८ प्रकार के कोढ़ों में गिनी जाती है । डाक्टरों की परीक्षा से पता लगा है कि दाद एक प्रकार की सूक्ष्म खुमी है जो जलुओं के चमड़े पर छत्ता बाँधकर जम जाती है और उन्हीं के रक्त प्रादि से पलती है । दाद प्रायः बरसात में गंदे पानी के ससर्ग से होती है । दाद दो प्रकार की होती है,—एक कागजी, दूसरी सैसिया । कागजी दाद का छत्ता पतला और छोटा होता है और

अधिक नहीं फैलता । सैसिया दाद मयंकर होती है, इसके छत्ते बड़े घोर मोटे होते हैं और कभी कभी शरीर भर में फैलते हैं ।

दा०—दादमर्दन ।

दाद^३—संज्ञा स्त्री० [फा० दाद] इसाफ । न्याय । उ०—तिनसों
चाहत दाद तैं मन पस कोन हिसाब । छुरी खलावत हैं गरे जे
बेकसक कसाव ।—रसनिधि (शब्द०) ।

मुहा०—दाद चाहना = किसी अत्याचार के प्रतिकार की प्रार्थना करना । दाद देना = (१) न्याय करना । उ०—देव तो
दयानिकेत देत दादि दीन की पे मेरियँ प्रभाग मेरी बार नाप
बील की ।—तुलसी (शब्द०) । (२) सराहना । वाह-
वाह करना ।

दा०—दादस्वाह = न्यायेच्छु । दादस्वाही = न्याय की प्रार्थना ।
इसाफ चाहना । दादगर । दादगुस्तर = दे० 'दादगर' । दादरस ।
दादरसी = न्याय पाना ।

दादगर—वि० [फा०] न्यायी । उ०—कही बेलवर कुछ तुजे नई खबर
के है पास एक सादशाह दादगर ।—दक्खिनी०, पृ० २१२ ।

दादतलव—वि० [फा०] न्यायेच्छु । इसाफ चाहनेवाला । फरियादी (को०) ।

दादनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह जो देना है । वह रकम जिसे चुकाना है । २ वह रकम जो किसी काम के लिये पैसगी दी जाय । भगता । उ०—दादू गुर दादनी, घासिका दीदार ।
—दादू०, पृ० ६७ ।

दादमर्दन—संज्ञा पुं० [सं० ददमर्दन] एक प्रकार का चकवेंड जो
हिंदुस्तान के बगीचों में प्राय मिलता है ।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि यह पेठ अमेरिका के टापुओं से लाया गया है, इसी से इसे विलायती चकवेंड भी कहते हैं ।
इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से दाद दूर हो जाती है ।

दादरस—वि० [फा०] १ सहायक । २. फरियाद सुननेवाला ।
दादगर । उ०—दारे देखे तेरा यहाँ दादरस कोन । यहाँ
घाता तेरा फरियादरस कोन ।—दक्खिनी०, पृ० २४० ।

दादरा—संज्ञा पुं० [?] १ एक प्रकार का चलता गाना । २ दो
पर्यमात्राओं का ताल जिसमें केवल एक आघात होता ।

+ +

खाली इस में नहीं होता जैसे,—घा घिन घा ।

दादस—संज्ञा स्त्री० [दादा + सास] ददिया सास । अजिया सास ।
सास की सास ।

दादा—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० दादी] १ पितामह । पिता
का पिता । आजा । २ बड़ा भाई । ३ बड़े बूढ़ों के लिये
आदरसूचक शब्द ।

दादि^१—संज्ञा स्त्री० [फा० दाद] न्याय । इसाफ । उ०—(क)
लागेगी पे लाज या विराजमान बिरवाई महाराज भानु
जो न देत दादि दीन की ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दई
दान हि दादि सो सुनि सुमन सदन बधाई ।—तुलसी
(शब्द०) । (य) कुरमिषु जन दीन दुबारे दादि न
पावत काहे —तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चाहना ।—देना ।—पाना ।—माँगना ।

दादि^७—सञ्ज्ञा [सं० ददु] दे० 'दाद' ।

दादी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दादा] पिता की माता । दादा की स्त्री ।

दादी^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० दाद] दाद चाहनेवाला । फरियादी ।
न्याय का प्रार्थी ।

यौ०—दादी फरियादी ।

दादु^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ददु] दाद । दिनाई । उ०—ममता दादु कहु
हरषाई । हरष विषाद गरह बहुताई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दादुर^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ददुर] १ मेढक । मडक । उ०—दादुर
धुनि चहुँ ओर सोहाई । वेद पढ़ै जनु बटु समुदाई ।—तुलसी
(शब्द०) । २ दक्षिण भारत के मलय पर्वत से सटा हुआ
एक पर्वत । ३ कलश । मुँहेरा । उ०—कैचा दादुर
भलमलई । घरि घरि तुलछी वेद पुराण ।—बी० रासो,
पृ० ८१ ।

दादुरावृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ददुरा + वृत्ति] मेढक की तरह बार
बार कहने या दुहराने की क्रिया । पुनरावृत्ति । उ०—उपमा
तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की
ऐसी अश्रुत उपलवृत्ति क्या संसार के किसी और साहित्य में
मिल सकती है ।—हि० का० प्र०, पृ० १४७ ।

दादुर्जा^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दादुर] दे० 'दादुर' । उ०—(क) भई हरिता
हरित सब ओर । करै पिक दादुल सागर सोर ।—रसरतन,
पृ० २०७ । (ख) सिध सियारे प्रीति भई है दादुल सपे
सहाई ।—संत० दरिया, पृ० ११२ ।

दादुल्ल^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ददुर, प्रा० ददुल] दे० 'दादुर' । उ०—
कहू सारस सारिसारल्ल सोर । मनो पावसी बुद्धि दादुल्ल
रोर ।—पृ० रा०, २।०७४ ।

दादू^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दादा] १ दादा के लिये संबोधन या प्यार
का शब्द । २ 'माई' आदि के समान एक साधारण संबोधन ।
३. एक साधु का नाम जिसके नाम पर एक पथ चला है ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि दादू ग्रहमदावाद के एक धुनियाँ थे ।
१२ वर्ष की अवस्था ही में उन्होंने अपना नगर परित्याग
किया और भ्रमर, कल्याणपुर आदि स्थानों में कुछ दिनों
रहकर अंत में ३७ वर्ष की अवस्था में जयपुर से बीस कोस
पर 'नरेन' (नराणा) नामक स्थान में निवास किया ।
कहते हैं, यहाँ उन्हें आकाशवाणी हुई, जिसके पीछे वे बहुत
दिनों तक गुप्त रहे । कबीरपणियों में प्रसिद्ध है कि दादू ने
भी कबीर के समान ही राम नाम के रूप में निगुण परब्रह्म
की उपासना चलाई है । कबीर के समय में दादू अच्छे
पढ़े हुए साधुओं में गिने जाते थे ।

दादूदयाल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दादू'—३ ।

दादूपंथी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दादू + पंथी] दादू नामक साधु का अनु-
यायी । सत दादू के संप्रदाय का अनुयायी ।

विशेष—दादूपंथी तीन प्रकार के होते हैं—विरक्त, नागा और
विस्तरधारी । विरक्त केवल जलपात्र और कीपीन रखते हैं ।

नागे लोग लडाके होते हैं और राजाओं की सेना में भरती
होते हैं । विस्तरधारी गृहस्थ होते हैं ।

दाध^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दाह या, सं० दग्ध, प्रा० दद्ध] जलन । दाह ।
ताप । उ०—(क) सही न जाय विरह कर दाधा ।—जायसी
(शब्द०) । (ख) हाहा घून मे बिरहै दही । जानै सोइ जो
दाध इमि सही ।—जायसी (शब्द०) । (ग) जहँ तहँ भूमि
जरी भा रेहू । बिरह की दाध भई जनु खेहू ।—जायसी
(शब्द०) । (घ) जेहि तन नेह दाध तेहि दूना ।—जायसी
(शब्द०) ।

विशेष—जायसी ने इस शब्द को कहीं स्त्रीलिंग माना है और
कहीं पुल्लिंग ।

दाधना^७—क्रि० सं० [सं० दग्ध] जलाना । भस्म करना । उ०—
दाढ़ा राहु केतु गा दाधा । सूरज जरा चाँद जर आधा ।—
जायसी (शब्द०) ।

२. डाहना । पीड़ित करना । उ०—ते यह जिउ ठाढ़े पर दाधा ।
आधा निकस, रहा घट आधा ।—जायसी (शब्द०) ।

दाधना^७—क्रि० प्र० जलना । सतत होना । पीड़ित होना । दाहयुक्त
होना । उ०—दब दाधी मासति सुनत अति दाधो तिहि
ठाई ।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१५ ।

दाधा—वि० [सं० दग्ध, प्रा० दद्ध, दध्व] [वि० स्त्री० दाधी] दग्ध ।
जला हुआ । झुलसा हुआ । उ०—(क) जीम न जीम
विगीयनी, दब का दाधा कुपली मेलही । जीम का दाधा नु
पाँगूरई, नाल्ह कहइ सुणजई सब कोई ।—बी० रासो,
पृ० ३७ ।

दाधिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मट्ठा ।

विशेष—सुश्रुत (उत्तरतंत्र) के अनुसार बीजपूर का रस, घी
और इनका चीगुना दही मिलाने से यह तंत्र तैयार होता है ।
यह गुल्म और प्लीहा तथा शूल का निवारक है ।

२. दही मिलाकर बोई खाद्य पदार्थ खानेवाला । ३. दधिविक्रेता ।
दही का व्यवसायी [को०] ।

दाधिक^२—वि० दही से बना हुआ । दधिमिश्रित [को०] ।

दाधीच, दाधीचि—सञ्ज्ञा पुं० १ [सं०] १ दधीचि के वृक्ष का मनुष्य ।
दधीचि का गोत्रज । २. उक्त गोत्रवालों की उपाधि ।

दान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ देने का कार्य । जैसे, ऋणदान । २ लेने-
वाले से बदले में कुछ न चाहकर या लेकर उदारतावश देने
का कार्य । धर्म के भाव से देने की क्रिया । वह धर्मार्थ कर्म
जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि दिया जाता
है । खेरात ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

यौ०—कन्यादान । गोदान । दानपुण्य । दानदहेज ।

विशेष—स्मृतियों में दान के प्रकरण में अनेक बातों का
विचार किया गया है । सबसे अधिक जोर दान ग्रहण
करनेवाले की पात्रता पर किया गया है । दान के पात्र ब्राह्मण
कहे गए हैं । ब्राह्मणों में वेदपाठी, वेदपाठियों में वेदोक्त

कर्म के कर्ता और उनमें भी शम, दम आदि से युक्त आत्म-ज्ञानी श्रेष्ठ हैं। दानों का विशेष विधान यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्मों के पीछे है। इस प्रकार का दान अघे, लूले, लंगड़े, गूंगे आदि विकलांगों को देने का निषेध है। दान के लिये दाता में श्रद्धा होनी चाहिए और उसे लेनेवाले से कुछ प्रयोजनसिद्धि की अपेक्षा न रखनी चाहिए। शुद्धित्व में दान के छह भग बतलाए गए हैं—दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्म देश और काल। दान के उत्तम और निकृष्ट होने का विचार इन छह भगों के अनुसार होता है—अर्थात् दाता के विचार से (जैसे, श्वपच, फुलटा आदि का दिया हुआ), प्रतिग्रहीता के विचार से (जैसे, पतित ब्राह्मण को दिया हुआ), श्रद्धा के विचार से (जैसे, तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ), देश के विचार से (जैसे, गंगा के तट पर दिया हुआ), और काल के विचार से (जैसे, ग्रहण के समय का)। इनके प्रतिरिक्त द्रव्य का भी विचार किया जाता है कि जो धन दान में दिया जाय वह कैसा होना चाहिए। देवल ने लिखा है कि जो धन दूसरे को पीछित करके न प्राप्त हुआ हो, अपने परिश्रम से प्राप्त हुआ हो, वही दान के योग्य है। जिस प्रकार दान का फल कहा गया है, उसी प्रकार दान के त्याग का भी फल कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि 'जो प्रतिग्रह में समर्थ अर्थात् दान लेने का पात्र होकर भी प्रतिग्रह नहीं लेता वह दानियों के जो स्वर्ग आदि लोक हैं उन सबको प्राप्त होता है'। इसी से बहुत से स्थानों के ब्राह्मण प्रतिग्रह कभी नहीं लेते। देवों और स्मृतियों में कहे हुए दानों के प्रतिरिक्त ग्रहों की शांति आदि के लिये कुछ दान किए जाते हैं जिनका लेना बुरा समझा जाता है। इनमें शनैश्चर का दान सबसे बुरा समझा जाता है जिसमें तेल, सोहा, काखा तिल, काला कपड़ा दिया जाता है। दान के विषय में संस्कृत में अनेक आचार्यों के अनेक ग्रंथ हैं।

३. वह वस्तु जो दान में दी जाय। ४ कर। महसूल। चुगी। ठेंगा। उ०—(क) तुम समरथ की वाम कहा काह को करिहो। चोरी जाती बेचि दान सब दिन को भरिहो।—सूर (शब्द०)। (ख) दानी भए नए मांगत दान सुने जु पै कस तो बाधिके जैहो।—रसखान०, पु० २६। ५ राजनीति के चार सपायों में से एक। कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध कार्यसाधन की नीति। ६. हाथी का मद। उ०—(क) रनित भृग घटावली भरत दान मधुनीर। मद मद आवत चलयो कुजर कुज समीर।—विहारी (शब्द०)। (ख) सुरसरि में दिगज दान मलिन जलही भर, कच्छ के कमलालय हुए तदीय सरोवर।—महावीरप्रसाद (शब्द०)। (ग) दान देन यों शोभियत दीन नरनि के हाथ। दान सहित ज्यों राजही मत्त गजन के माथ।—केशव (शब्द०)। ७ छेदन। कर्तन। खंडन। ८ शुद्धि। ९ एक प्रकार का मधु। १० रक्षण। पालन (को०)।

दान^२—संज्ञा पुं० [फा०] पात्र। आधार। रखने की वस्तु। समा-सत में, जैसे कलमदान।

दानक—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्सित दान। बुरा दान।

दानकास—[सं०] दान करने की इच्छा रखनेवाला। दानी (को०)।

दानकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का मद।

दानतोय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दानवारि'।

दानधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने का धर्म। दान पुण्य।

दानपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ सदा दान देनेवाला। २. अक्रूर का एक नाम जो स्वमतक मणि के प्रभाव से प्रतिदिन दान दिया करता था। ३ एक दैत्य का नाम।

दानपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख या पत्र जिसके द्वारा कोई संपत्ति किसी को प्रदान की जाय।

विशेष—प्राचीन काल में दानपत्र ताम्रपत्र आदि पर खोदे जाते थे। अनेक राजाओं के ऐसे दानपत्र मिलते हैं जिनसे बहुत सी ऐतिहासिक बातों का पता लगता है।

दानपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो दान पाने के उपयुक्त हो। दान देने के लिये उपयुक्त व्यक्ति।

दानप्रतिभाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ दिलाने की जमानत। कर्ज की जमानत।

दानप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह जामिन जो यह कहे कि 'यदि इसने व्याज सहित धन न लौटाया तो मैं ही धन दे दूंगा'।

दानभिन्न—वि० [सं०] राजनीति में दान देकर फोड़ लिया गया।

दानलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्ण की वह लीला जिसमें उन्होंने ग्वालियों से गोरस बेचने का कर वसूल किया था। २ कोई ग्रंथ जिसमें इस लीला का वर्णन किया गया हो।

दानव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दानवी] कश्यप के वे पुत्र जो 'दनु' नाम्नी पत्नी से उत्पन्न हुए। असुर। राक्षस।

विशेष—मायावी दानवों का उल्लेख ऋग्वेद में है। महाभारत के अनुसार दक्ष की कन्या दनु से शबर, नमुचि, पुलोमा, भ्रशि-लोमा, केशी, विप्रचित्ति, दुर्जय, अय शिरा, विरूपाक्ष, महोदर, सूर्य, चंद्र इत्यादि चालीस पुत्र उत्पन्न हुए। दानवों में जो सूर्य और चंद्र हुए उन्हें देवताओं से भिन्न समझना चाहिए। भागवत में दनु के ६१ पुत्र गिनाए गए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि दानव पितरों से उत्पन्न हुए। मरीचि आदि ऋषियों से पितर उत्पन्न हुए, पितृगणों से देव दानव और देवताओं से यह चराचर जगत् आनुपूर्विक क्रम से उत्पन्न हुआ।

दानवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य।

दानवज—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार के अश्व जो देवताओं और गंधर्वों की सवारी में रहते हैं। ये कभी बूढ़े नहीं होते और मन की तरह वेगवान् होते हैं। २ चार वर्णों के क्रम में तृतीय वर्ण अर्थात् वैश्य (को०)।

दानवारि^१—संज्ञा पुं० [सं० दानव + वारि] १ विष्णु। २ देवता। ३ इंद्र।

दानवारि^२—संज्ञा पुं० [सं० दान + वारि] हाथी का मद।

दानवी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक दानव की स्त्री। २. दानव जाति की स्त्री। राक्षसी।

दानवी^२—वि० [सं० दानवीय] दानवों की। दानव सबधी। जैसे, दानवी माया।

दानवीर—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने में साहसी पुरुष । वह जो दान देने से न हटे । अत्यंत दानी ।

विशेष—साहित्य में वीर रस के अंतर्गत चार प्रकार के जो वीर गिनाए गए हैं उनमें एक दानवीर भी है । दानवीरता में त्याग के विषय में उत्साह स्थायी भाव है, याचक भालवन है, अघ्य-वसाय (तीर्थंगमन आदि) और दानसमय, ज्ञान आदि उद्दीपन विभाव है, सर्वस्वत्याग आदि अनुभाव तथा हर्ष और धृति आदि संचारी भाव हैं ।

दानचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दानचन्द्र] राजा बलि ।

दानशील—वि० [सं०] दानी । दान करनेवाला ।

दानशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की प्रवृत्ति । उदारता ।

दानशूर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दानशील' ।

दानशील—संज्ञा पुं० [सं० दानशील] दान करनेवाला । दानशील । [को०] ।

दानसागर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महादान जिसका प्रचार बगदेश में है और जिसमें भूमि, धातन आदि सोलह पदार्थों का दान किया जाता है ।

दानांतराय—संज्ञा पुं० [सं० दानान्तराय] जैनशास्त्र के अनुसार वह अंतराय या पापकर्म जिसके उदय से दान के योग्य द्रव्य और पात्र पाकर भी अनुष्य को दान करने में विघ्न होते हैं और वह दान नहीं कर सकता ।

दाना^१—संज्ञा पुं० [फा० दानह्] १ अनाज का एक बीज । भस्म का एक कण । कन ।

यौ०—दाना दुनका = भस्म के दो चार कण । थोड़ा सा भस्म ।
उ०—गली के पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने दुनके ओर गिलापत की खोज में घावे करता ।—अभिषाप्त, पृ० ६५ ।

मुहा०—दाने दाने को तरसना = भस्म का कण्ट सहना । भोजन न पाना । दाने को मुश्ताज = अत्यंत दरिद्र । दाना बदलना = एक पक्षी का अण्ड मुँह का दाना दूसरे पक्षी के मुँह में डालना । चारा बाँटना । दाना भराना = चिड़ियों का अपने चूबों के मुँह में चारा डालना ।

२. अनाज । भस्म । जैसे,—तुम तो इतने दुबले हो कि जान पड़ता है, कभी दाना नहीं पाते ।

यौ०—दाना चारा । दाना पानी ।

३ सूखा भुना हुआ भस्म । चबेना । चबेण ।

क्रि० प्र०—चबाना ।—चबाना ।—मुनाना ।

४. कोई छोटा बीज जो बाल, फली या गुच्छे में लगे । जैसे, राई का बाना, पोस्ते का दाना । ५ ऐसे फल के अनेक बीजों में से एक जिसके बीज फटे गूदे के साथ बिलकुल मिले हुए भलग भलग निकलें । जैसे, अनार का दाना ।

विशेष—साम, कटहल, लीची इत्यादि फलों के बीजों को दाना नहीं कहते ।

६ कोई छोटी गोल वस्तु जो प्रायः बहुत सी एक में गूँथ, पिरो, ५-३

या जोड़कर काम में लाई जाती हो । जैसे, मोती का दाना । उ०—वरसैं सु बूदैं मुकतान ही के दाने सी ।—पद्माकर (शब्द०) । ७ ऐसी बहुत सी छोटी वस्तुओं (या अगों) में से एक जिनके एक में गूँथने या जोड़ने से कोई बड़ी वस्तु बनी हो । जैसे, धूपरू का दाना, बाजूबद का दाना । ८ माला की गुरिया । मनका । उ०—गले में सोने के बड़े बड़े दाने पड़े हैं ।—प्रताप (शब्द०) । ९. गोल या पहलदार छोटी वस्तुओं के लिये सख्या के स्थान पर छानेवाला शब्द । मदद । जैसे, चार दाने मिचं, चार दाने अगूर । १०. खा । कण । कणिका । जैसे, दानेदार धो या धराव । ११ किसी सतह पर के छोटे छोटे उभार जो टटोलने से भलग भलग मालूम हों । जैसे, नारंगी के छिलके पर के दाने, दानेदार चमड़ा । १२ धारी के चमड़े पर महीन महीन उभार जो खुजलाने या रोग के कारण हो जाते हैं । जैसे, मंभोरी या पित्ती के दाने, चेचक के दाने । १३ बरतन की नक्काशी में गोल उभार (कघेरे) ।

क्रि० प्र०—देना ।

मुहा०—दाने का माल = वह बरतन जिसकी नक्काशी उभारी नहीं जाती ।

दाना^२—वि० [फा० दाना] बुद्धिमान । भक्लमंद ।

दानाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] भक्लमंदी ।

दानाफेश—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जरदोजी का कपड़ा जो चोगे के ऊपर पहना जाता है ।

दानाचारा—संज्ञा पुं० [फा० दाना + हि० चारा] खानापीना । भोजन । आहार ।

क्रि० प्र०—करना ।

दानाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य ब्राह्मणों में बाँटा जाय । राजाओं के यहाँ दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी ।

दानापानी—संज्ञा पुं० [फा० दाना + हि० पानी] १. खान पान । भस्म । जल ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दाना पानी छाड़ना = भस्म जल ग्रहण न करना । न कुछ खाना न पीना । उपवास करना । दाना पानी छूटना = रोग के कारण कुछ खाया पीया न जाना ।

२ भरण पोषण का आयोजन । जीविका ।

मुहा०—दाना पानी उठना = जीविका न रहना ।

३ रहने का संयोग । जैसे,—जहाँ का दाना पानी होगा वहाँ जायेंगे ।

दानावंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० दाना + वंदी] खड़ी फसल से उपज का अंदाज करने के लिये खेत को नापने का काम ।

दानि^३—संज्ञा पुं० [सं० दानी] उ०—दानि कहावत भर कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रोताई ।—मानस, २।३५ ।

दानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करनेवाली स्त्री ।

दानिया—संज्ञा पुं० [सं० दानी] दे० 'दानी' ।

दानिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] समझ । भक्ल । बुद्धि । विवेक ।

यौ०—दानिशमद = चतुर । बुद्धिमान । दानिशमद = चतुर । उ०—
इसके ऊपर नाज करना दानिशमद का काम नहीं ।—श्रीनिवास
प्र०, पृ० ३४ । दानिशमदी = (१) बुद्धिमत्ता । विद्वत्ता । (२)
निपुणता । कुशलता ।

दानिस—संज्ञा स्त्री० [फा० दानिस्त] १ समझ । बुद्धि । २
राय । संमति ।

दानिस्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] ज्ञान । जानकारी । भक्ल । बुद्धि ।
समझ । उ०—बंदगी दम दम की भरी दानिस्त दिखाया ।
तिनका मोट पहाड़ है दिन चस्म लगाया ।—पलटू०, भा० ३,
पृ० ६२ ।

दानिस्तन—क्रि० वि० [फा०] जानते हुए । जान बूझकर । उ०—
कोजै फहम फना को लैके सूर तजल्ली अपना । पलटूदास भकौ
हूँ हूँ का दीद दानिस्तन सुबना ।—पलटू०, भा० ३,
पृ० ६२ ।

दानी^१—वि० [सं० दानिन्] [वि० स्त्री० दानिनि] जो दान करे । उदार ।

दानी^२—संज्ञा पुं० दान करनेवाला व्यक्ति । दाता ।

दानी^३—संज्ञा पुं० [सं० दानीय] १ कर सग्रह करनेवाला । महसूल
उगाहनेवाला । दान लेनेवाला । उ०—(क) भाय समुद ठाढ़
भा होइ दानी के रूप ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पसत
ग्वारि ग्वार सम जैवत मध्य कृष्ण सुखकारी । सूर स्याम
दधि दानी कहि कहि प्रानद घोषकुमारी ।—सूर (शब्द०) ।
(ग) दानी भए नए मागत दान सुनै जु पै कस तो बांधि के
जैहो ।—रसखान०, पृ० २६ । २. पर्वतिया नेपालियों की
एक जाति ।

दानीपन—संज्ञा पुं० [सं० दानी + हि० पन] दानशीलता । उ०—
मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपन का
अभिमान करेगा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २६६ ।

दानीय^१—वि० [सं०] १ दान करने योग्य । २ दान लेने या ग्रहण
करनेवाला । दान, कर या महसूल लेनेवाला ।

दानीय^२—संज्ञा पुं० दान ।

दातु^१—वि० [सं०] १ विजय पानेवाला । विजेता । २ शूर ।
वीर [को०] ।

दातु^२—संज्ञा पुं० १ बागु । २ विदु । दूँद । ३ दानव । ४. सतोष ।
५ दान । ६ दाता । दानी । ७ अभ्युन्नति । अभ्यु-
दय [को०] ।

दानेदार—वि० [फा०] जिसमें दाने हों । रवादार । जैसे, दानेदार
गुड़ । दानेदार राब ।

दानो^१—संज्ञा पुं० [सं० दानव] दे० 'दानव' ।

दाप—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] १ झहकार । घमट ।
अभिमान । गर्व । २ शक्ति । बल । जोर । उ०—रावन दान
छुमा नहि चापा । हारे सकल भूप करि दापा ।—तुलसी

(शब्द०) । ३. उत्साह । उर्मग । ४. रोब । दबदबा ।
भातक । तेज । प्रताप । ५. क्रोध । उ०—सर संधान कीन्ह
करि दापा ।—तुलसी (शब्द०) । ६. जलन । ताप । दुःख ।
उ०—दियो क्रोध करि सिवहि सराप । करो कृपा जु मिटे
यह दाप ।—सूर (शब्द०) ।

दापक—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दबानेवाला । उ०—सो प्रभु हैं बल
यस सब व्यापक । जो है कस दर्प को दापक ।—सूर
(शब्द०) ।

दापन—संज्ञा पुं० [सं०] दान करने की प्रेरणा । दान की प्रेरणा
देना [को०] ।

दापना^१—क्रि० सं० [हि० दाप] १. दाबना । दबाना । २ मना
करना । रोकना । उ०—माने न जाय गोपाल के गेह भरी
घरी धाय कितेकठ दापति ।—गोकुल (शब्द०) ।

दापित—वि० [सं०] १. बाधित । जिसे कुछ देने के लिये बाध्य किया
गया हो । २. बिसपर अयेंदंड या जुरमाना लगा हो । ३.
निर्णीत [को०] ।

दाव—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प, हि० दाप] १ दबने या दबाने का भाव ।
एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर उस ओर को जोर जिस ओर
वह दूसरी वस्तु हो । अपनी ओर को खींचनेवाले जोर का
चलटा । चाप ।

क्रि० प्र०—पहुँधाना ।—लगाना ।

२ किसी वस्तु का वह ओर जो नीचे की वस्तु पर पड़े । भार ।
वोम्बा । जैसे,—इसपर पत्थर की दाब पड़ी है इसी से यह
चिपटा हो गया है ।

क्रि० प्र०—ठालना ।—पठना ।

मुहा०—किसी की दाब तले होना = किसी के वश में या
अधीन होना ।

३. भातक । अधिकार । रोब । आधिपत्य । शासन । बड़े या प्रबल
के प्रति छोटे या अधीन का संकोच या नय और छोटे या
अधीन के प्रति बड़े या प्रबल का प्रभुत्व ।

मुहा०—दाब दिखाना = अधिकार जताना । हुकूमत या डर
दिखाना । प्रभुत्व प्रकट करना । दाब मानना = किसी बड़े से
डरना या सहमना । प्रभुत्व स्वीकार करना । वश में रहना ।
जैसे,—वह लडका किसी की दाब नहीं मानता । दाब
में रखना = शासन में रखना । जैसे,—लडके को दाब में
रखो, नहीं तो बिगड़ जायगा । दाब में होना = वश में होना ।
अधीन होना ।

दाबकस—संज्ञा पुं० [हि० दाब + कसना] लोहारों के छेदने के
औजारों (किरकिरा, बरदुमा, आदि) का एक हिस्सा ।

दाबदार—वि० [हि० दाब + फा० दार] रोबदार । भातक रखने-
वाला । प्रभावशाली । प्रतापी । उ०—दाबदार निरखि
रिखानो दीह दलराय, जैसे गड़दार मड़दार गजराज को ।—
भूषण (शब्द०) ।

दाबना—क्रि० सं० [हि० दाब + ना (प्रत्यय)] दे० 'दबाना' ।

दावा^१—संज्ञा पुं० [हि० दाव] कलम लगाने के लिये पीधों की टहनियों को मिट्टी में गाड़ने या दबाने का काम ।

दावा^२—संज्ञा पुं० [देश०] घाट नौ अंगुल लंबी एक मछली जो सिंध, समुक्त प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है ।

दाविल—संज्ञा पुं० [हि० दाव] एक बड़ी सफेद चिड़िया जिसकी चौंख दस बारह अंगुल लंबी और छोर पर पैरों की तरह गोल और चिपटी होती है ।

दाबी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कटी हुई फसल के बराबर बराबर बँचे हुए पौधों को मजदूरी में दिए जाते हैं ।

दाभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्] एक प्रकार का कुश । दाम । उ०—प्रवरों यो मग दाभ गिरावत । यकित खुले मुख ते बिखरावत । —शकुंतला, पृ० ८ ।

दाभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] शासन के योग्य । जो शासन में आ सके ।

दाम^१—संज्ञा पुं० [सं० दामन्] १. रस्सी । रज्जु ।

यौ०—दामोदर ।

२. माला । हार । लड़ी । उ०—(क) तेहि के रचि रचि वध बनाए । बिच बिच मुकुटा दाम मुहाए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कहूँ कीड़त कहूँ दाम बनावत कहूँ करत शृंगार ।—सूर (शब्द०) । ३. समूह । राशि । ४. लोक । विश्व ।

दाम^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०, मिलाओ सं०] जाल । फंदा । पाश । उ०—लोचन बोर बाँधे प्रियाम । जात ही उन तुरत पकरे कुटिल ललकनि दाम ।—सूर (शब्द०) ।

दाम^३—संज्ञा पुं० [हि० दमड़ी] १. पैरों का चौबीसवाँ या पचीसवाँ भाग । एक दमड़ी का तीसरा भाग । उ०—कुटिल असक छुटि परत मुख बढ़िगो हतो उदोत । अक विकारी देत बिमि दाम रुपैया होता ।—बिहारी (शब्द०) ।

मुहा०—दाम दाम भर देना = कौड़ी कौड़ी धुका देना । कुछ (श्रावण) बाकी न रखना । दाम दाम भर लेना = कौड़ी कौड़ी ले लेना । कुछ बाकी न छोड़ना ।

२. वह धन जो किसी वस्तु के बदले में बेचनेवाले को दिया जाय । मूल्य । कीमत । मोल । उ०—बिन दामन हित हाट में नेही बसहज बिकात ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—दाम उठना = किसी वस्तु की कीमत वसूल हो जाना । बिक जाना । दाम करना = (किसी वस्तु का) मोल ठहराना । मूल्य निश्चित करना । कीमत तै करना । मोल भाव करना । दाम खड़ा करना = कीमत वसूल करना । दाम धुकाना = (१) मूल्य दे देना । (२) कीमत ठहराना । मोल भाव तै करना । दाम देने प्राना = मूल्य देने के लिये विवश होना । किसी वस्तु को नष्ट करने पर उसका मूल्य देना पड़ना । नुकसानी देना पड़ना । दाम भरना = किसी वस्तु को नष्ट करने पर बहस्वरूप उसका मूल्य दे देना । नुकसानी देना । डाँड़ देना । दाम भर पावा = सारा मूल्य पा जाना ।

३. धन । रुपया पैसा । जैसे, दाम करे काम । उ०—कामिहि नारि विचारि बिमि लोमिहि प्रिय जिमि दाम ।—तुलसी (शब्द०) । ४. सिक्का । रुपया । उ०—जो पै चेरार्ह राम की करतो न लजातो । तो तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—चाम के दाम चलाना = अधिकार या भवसर पाकर मनमाना श्रवण करना । दे० 'चाम' । उ०—दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सो चाम के दाम चलाय ले री ।—परमेश (शब्द०) ।

५. दाननीति । राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं । उ०—साम दाम भर दंड बिभेदा । 'रुप उर बसहि नाथ कह वेदा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाम^४—वि० [सं०] देनेवाला । दाता ।

दामकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दामकण्ठ] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

दामक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी के जुए की रस्सी । २. लगाम । बागडोर ।

दामग्रन्थि—संज्ञा पुं० [सं० दामग्रन्थि] राजा विराट का सेनापति । (महामारत) ।

दामचन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० दामचन्द्र] द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम ।

दामयन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दामिनी । विजली । उ०—चोमास रहे वे आत सुचगा ताम घटे जस ताजा । देखे राम पयोधर दामयन्ती सीत विरह तन साजा ।—रघु० ६०, पृ० १५६ ।

दामन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रस्सी । २. माला । ३. रेखा । लकीर । जैसे, विद्युत् दाम ।

दामन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. अंग्रे, कोट, कुर्ते इत्यादि का निचला भाग । पल्ला । उ०—एग दरजी बरुनी सुई रेसम डोरे लाल । मगजी ज्यों मो मन सियो तुव दामन सौं लाल ।—स० सप्तक, पृ० १६२ ।

यौ०—दामनगीर ।

२. पहाड़ों के नीचे की भूमि । पर्वत । ३. वादवान । पाल ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

४. नाव या जहाज के जिस ओर हवा का धक्का लगता हो उसके सामने की दिशा । (लश०) ।

दामनगीर—वि० [फ्रा०] १. पल्ले पड़नेवाला । सिर होनेवाला । पीछे पड़नेवाला । घसनेवाला । उ०—अपनी पिढ पोपिदे कारन कोटि सहस्र जिय मारे । इन पापन ते क्यों उबरोगे दामनगीर तिहारे ?—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दामनगीर होना = पीछे लगना । ऊपर आ पड़ना । प्रसना या घेरना (कष्टदायक वस्तु के लिये) । जैसे, बला दामनगीर होना ।

२. दावा करनेवाला । दावेदार । उ०—बापुरो घादिलशाह कहाँ कहँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी ।—सूयण (शब्द०) ।

दामनपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दामनपर्व] दमनक संबंधी पर्व

या उत्सव । चैत्र शुक्ला चतुर्दशी का पर्व ।

दामनि^७—सखा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०—चहूँ
ओर क्रोधत दामनि भँव्यारी ।—ह० रासो, पृ० २० ।

दामनी^१—सखा स्त्री० [सं०] रस्सी । रज्जु ।

दामनी^२—सखा स्त्री० [क्रा०] वह चौड़ा कपड़ा जो घोड़ों की पीठ
पर ढाला जाता है ।

दामर^१—सखा स्त्री० [देश०] १ राल जो दरार भरने के लिये नावों
में लगाई जाती है । २. दे० 'दामर' ।

दामर^२—सखा स्त्री० [?] छोटे कान की भेड़ । (गहेरिए) ।

दामरि—सखा स्त्री० [सं० दाम] दे० 'दामरी' ।

दामरी—सखा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी । रज्जु । उ०—ज्ञान भक्ति
दोऊ बिना हरि नहि बांधे जात । यह कहत सी दामरी घटि
गह हरि के गात ।—व्यास (शब्द०) ।

दामलिप्त—सखा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रलिप्त' ।

दामांचन—सखा पुं० [सं० दामाञ्चन] घोड़े के पैरों को बाँधने की
रस्सी [को०] ।

दामाचल—सखा पुं० [सं० दामाञ्चल] दे० 'दामांचन' ।

दामाञ्जन—सखा पुं० [सं० दामाञ्जन] दे० 'दामांचन' ।

दामा^७—सखा स्त्री० [सं० दावा] दावानल । उ०—नद के
किसोर ऐसी प्राजु प्रभु को है कही पान करि लीन्हों ब्रज दीन
देखि दामा को ।—विश्राम (शब्द०) ।

दामा^२—सखा स्त्री० [सं०] रस्सी । रज्जु [को०] ।

दामा^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी । कलचिरी ।

दामाद—सखा पुं० [क्रा० मिलाओ सं० जामातृ] पुत्रो का पति ।
जमाई । जामाता ।

दामासाह—सखा पुं० [हि० दाम + साहु (= बनिया)] वह
दिवालिया महाजन जिसका जायदाद उसके लहनेदारों के बीच
हिस्से के मुताबिक बँट जाय ।

दामासाही—सखा स्त्री० [हि० दामासाह + ई (प्रत्य०)] किसी
दिवालिये महाजन की जायदाद में से एक एक लहनेदार को
मिलनेवाली रकम का निष्पत्ति ।

दामिन, दामिनि—सखा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०—
(क) नददास प्रभु रस बरषत जहाँ नव धन दामिन के
धनुहीरे ।—नद० प्र०, पृ० ३७८ । (ख) दामिनि दमक रह
न धन माहो ४।१४ ।

दामिनी—सखा स्त्री० [सं०] १. बिजली । विद्युत् । उ०—सोहैं
साँवरे पयिक पाछे ललना लोनी । दामिनी बरन गोरी
लखि लखि चुन तोरी, सीसी हैं बय किसोरी जोवन होनी ।
—सुमरी प्र०, पृ० ३६४ । २ स्त्रियों का एक शिरोभूषण
जिसे बँदो या बिंदिया भी कहते हैं । दाँवनी । उ०—दामिनी
सी दामिनी सुमामिनी सँवारि सीस, कहवौ कुँवर होत कामिनी
के क्यों सजात ।—रघुराज (शब्द०) ।

दामी^१—सखा स्त्री० [हि० दाम] कर । मातगुजारी ।

दामी^२—वि० कीमती । उ०—होटल में दामी कपड़े पहने हुए पुरुषों
की भीड़ लगी हुई थी ।—सन्यासी, पृ० ३३६ ।

दामोद—सखा पुं० [पुं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

दामोदर—सखा पुं० [सं०] १ श्रीकृष्ण । २ विष्णु ।

विशेष—इस नाम के तीन भिन्न भिन्न हेतु बतलाए गए हैं ।
हरिवंश में लिखा है कि यमलाजुन के गिरने के समय यशोदा
ने ताड़ना के लिये श्रीकृष्ण को पेट में रस्सी लगाकर बाँधा था
इसी से गोपियाँ उन्हें दामोदर कहने लगीं । यही हेतु सबसे
प्रसिद्ध है । विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार ने भी यही व्युत्पत्ति
लिखी है । कुछ लोग दाम शब्द से विश्व या लोक का ग्रहण
करते हैं—'जिसके सदर में सारा विश्व हो' । कुछ लोग
'दामादामोदरविदु' महाभारत के इस वाक्य के अनुसार दम
अर्थात् इन्द्रियनिग्रह में अत्यंत उदार या श्रेष्ठ ग्रथ करते हैं ।

३ एक जैन तीर्थंकर का नाम । ४ वगान की एक नदी जो छोटा
नागपुर के पहाड़ों से निकलकर भागीरथी में मिलती है ।

दायँ^७—सखा पुं० [हि० दाँव] दे० 'दाव' ।

दायँ^२—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'दाई' ।

दायँ^३—सखा स्त्री० [सं० दमन] दाना और भूसा भलग करने के लिये
कटी हुई फसलों के डठलों की बैलों से रौंदवाने का काम ।
दवरी । उ०—कटत धान भर दायँ जात जब फरवारन
महँ—प्रेमधन०, भा० १, पृ० ४४ ।

क्रि० प्र०—जाना ।

दायँ^४—सखा स्त्री० [?] बराबरी । तुल्यता । दे० 'दाँज' । उ०—विण
जुष कारण बाध रे दूजो नावे दायँ ।—बाँकी० प्र०,
भा० १, पृ० २२ ।

दाय^१—सखा पुं० [सं०] १ देने योग्य धन । वह धन जो किसी को
देने को हो । २. दायजे, दान आदि में दिया जानेवाला धन ।
३ वह पैतृक या संबंधी का धन जिसका उत्तराधिकारियों में
विभाग हो सके । वारिसों में बाँटा जानेवाला धन या मिल-
कियत । दे० 'दायभाग' ।

विशेष—वह धन जो स्वामी के संबंध निमित्त से ही दूसरे का
हो सके, दाय कहलाता है । मित्राक्षरा के अनुसार दाय दो
प्रकार का है, एक संप्रतिबध, दूसरा संप्रतिबध । संप्रतिबध
दाय वह है जिसमें कोई बाधा न हो सके । जैसे, पुत्र
पौत्रों का पिता पितामह के धन में स्वत्व । संप्रतिबध वह है
जिसका कोई प्रतिबधक हो, जिसमें किसी के द्वारा बाधा पड़
सकती हो । जैसे, भाई भतीजों का स्वरुप जो पुत्र के अभाव में
होता है, अर्थात् पुत्र का होना जिसका प्रतिबधक होना है ।

४ दान । ५ विभाग । अश । हिस्सा (को०) । ६ स्थान । जगह
(को०) । ७ सति । हानि (को०) । ८ खडन । विभाजन (को०)
९ सोल्लुठ भाषण । व्यंग्यपूर्ण कथन (को०) ।

दाय^७—संज्ञा पुं० [सं० दाव] दे० 'दाव' । उ०—सिर धुनि धुनि
पछितात मीज कर, कोठ न मीत हित दुसह दाय ।—सुलसी
(शब्द०) ।

दायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दायिका] देनेवाला । दाता । जैसे, मंगलदायक । उ०—बरनहुँ रघुवर विमल जस जो दायक फल चारि ।—मानस, २।१।

दायज—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा' ।

दायजा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] वह धन जो विवाह में वर पक्ष को दिया जाय । यौतुक । दहेज । उ०—कहुँ सुत व्याह कहँ कन्या को देत दायजो राई ।—सूर (शब्द०) ।

दायनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० दायिनी] देनेवाली । ऊ०—विमल कथा हरिपद दायनी ।—मानस, ७।५२ ।

दायभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १ पितृक धन का विभाग । २ बाप दादे या सबंधी की संपत्ति के पुत्रों, पोत्रों या सबंधियों में बाँटे जाने की व्यवस्था । बपोठी या वरामत की मिलकियत को वारिसों या हकदारों में बाँटने का कायदा कानून ।

विशेष—यह हिंदू धर्मशास्त्र के प्रधान विषयों में से है । मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिग्रंथों में इसके संबंध में विस्तृत व्यवस्था है । ग्रथकारों और टीकाकारों के मतभेद से पितृक धनविभाग के संबंध में भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं । प्रधान पक्ष दो हैं—मिताक्षरा और दायभाग । मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका है जिसके अनुकूल व्यवस्था पंजाब, काशी, मिथिला आदि से लेकर दक्षिण कन्याकुमारी तक प्रचलित है । 'दायभाग' जीमूत-वाहन का एक ग्रंथ है जिसका प्रचार वग देश में है ।

सबसे पहली बात विचार करने की यह है कि कुटुंबसंपत्ति में किसी प्राणी का पुषक् स्वत्व विभाग करने के पीछे होता है अथवा पहले से रहता है । मिताक्षरा के अनुसार विभाग होने पर ही पुषक् या एकदेशीय स्वत्व होता है, विभाग के पहले सारी कुटुंबसंपत्ति पर प्रत्येक समिलित प्राणी का सामान्य स्वत्व रहता है । दायभाग विभाग के पहले भी अव्यक्त रूप में पुषक् स्वत्व मानता है जो विभाग होने पर व्यजित होता है । मिताक्षरा पूर्वजों की संपत्ति में पिता और पुत्र का समानाधिकार मानती है अतः पुत्र पिता के जीते हुए भी जब चाहे पितृक संपत्ति में हिस्सा बँटा सकते हैं और पिता पुत्रों की सम्मति के बिना पितृक संपत्ति के किसी अंश का दान, विक्रय आदि नहीं कर सकता । पिता के मरने पर पुत्र जो पितृक संपत्ति का अधिकारी होता है वह हिस्सेदार के रूप में होता है, उत्तराधिकारी के रूप में नहीं । मिताक्षरा पुत्र का उत्तराधिकार केवल पिता की निज की पैदा की हुई संपत्ति में मानती है । दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविनाश (मृत, पतित या सन्यासी होने के कारण) के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है । उसके अनुसार जब तक पिता जीवित है तब तक पितृक संपत्ति पर उसका पूरा अधिकार है, वह उसे जो चाहे सो कर सकता है । पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति पिता के मरने आदि पर ही होती है ।

यद्यपि याज्ञवल्क्य के इस श्लोक में 'भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धी द्रव्यमेव वा । तत्र स्यात् सद्गुण स्वाम्य पितु पुत्रस्य चोभयो,' पिता पुत्र का समान अधिकार स्पष्ट कहा गया है तथापि जीमूत-

वाहन ने इस श्लोक से खींच तानकर यह भाव निकाला है कि पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति उनके जन्मकाल से नहीं, बल्कि पिता के मृत्युकाल से होती है ।

मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार जिस क्रम से उत्तराधिकारी होते हैं वह नीचे दिया जाता है :

मिताक्षरा

- १ पुत्र
- २ पोत्र
- ३ प्रपोत्र
- ४ विधवा
- ५ अविवाहिता कन्या
- ६ विवाहिता अपुत्रवती निर्वन कन्या
- ७ विवाहिता पुत्रवती सपन्न कन्या
- ८ नाती (कन्या का पुत्र)
- ९ माता
- १० पिता
- ११ भाई
- १२ भतीजा
- १३ दादी
- १४ दादा
- १५ चाचा
- १६ चचेरा भाई
- १७ परदादी
- १८ परदादा
- १९ दादा का भाई
- २० दादा के भाई का लड़का
- २१ परदादा के ऊपर तीन पीढ़ी के और पूर्वज
- २२ और सपिंड
- २३ समानोदक
- २४ बहु
- २५ आचार्य
- २६ शिष्य
- २७ सहपाठी या गुरुभाई
- २८ राजा (यदि संपत्ति ब्राह्मण की न हो । ब्राह्मण की हो तो उसकी जाति में जाय) ।

दायभाग

- १ पुत्र
- २ पोत्र
- ३ प्रपोत्र
- ४ विधवा
- ५ अविवाहिता कन्या
- ६ विवाहिता पुत्रवती कन्या
- ७ नाती (कन्या का पुत्र)
- ८ पिता
- ९ माता
- १० भाई
- ११ भतीजा
- १२ भतीजे का लड़का
- १३ बहन का लड़का
- १४ दादा
- १५ दादी
- १६ चाचा
- १७ चचेरा भाई
- १८ चचेरे भाई का लड़का
- १९ दादा की लड़की का लड़का
- २० परदादा
- २१ परदादी
- २२ दादा का भाई
- २३ दादा के भाई का लड़का
- २४ दादा के भाई का पोता
- २५ परदादा की लड़की का लड़का
- २६ नाना
- २७ मामा
- २८ मामा का लड़का
- २९ मामा का पोता
- ३० मौसी का लड़का
- ३१ सकुल्य
- ३२ समानोदक
- ३३ और बहु
- ३४ आचार्य इत्यादि, इत्यादि

उपर जो क्रम दिया गया है उसे देखने से पता लगेगा कि मिताक्षरा माता का स्वत्व पहले करती है और दायभाग पिता का। याज्ञवल्क्य का श्लोक है—पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तस्मिन् गोत्रजा वधु शिष्य सभ्राह्मचारिण ॥ इस श्लोक के 'पितरौ' शब्द को लेकर मिताक्षरा कहती है कि 'माता पिता' इस समास में माता शब्द पहले आता है और माता का संबंध भी अधिक घनिष्ठ है, इससे माता का स्वत्व पहले है। जीमूतवाहन कहता है कि 'पितरौ' शब्द ही पिता की प्रधानता का बोधक है इससे पहले पिता का स्वत्व है। मिथिला, काशी और बर्दई प्रांत में माता का स्वत्व पहले और बंगाल, मदरास तथा गुजरात में पिता का स्वत्व पहले माना जाता है। मिताक्षरा दायधिकार में केवल संबंध निमित्त मानती है और दायभाग पिंडोदक क्रिया। मिताक्षरा 'पिंड' शब्द का अर्थ शरीर करके सपिंड से सात पीढ़ियों के भीतर एक ही कुल का प्राणी ग्रहण करती है, पर दायभाग इसका एक ही पिंड से संबंध अर्थ करके नाती, नाना, मामा इत्यादि को भी ले लेता है।

मिताक्षरा और दायभाग के बीच मुख्य मुख्य बातों का भेद नीचे दिखाया जाता है

- (१) मिताक्षरा के अनुसार पैतृक (पूर्वजों के) धन पर पुत्रादि का सामान्य स्वत्व उनके जन्म ही के साथ उत्पन्न हो जाता है, पर दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविनाश के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है।
- (२) मिताक्षरा के अनुसार विभाग (बाँट) के पहले प्रत्येक सम्मिलित प्राणी (पिता, पुत्र, भ्राता इत्यादि) का सामान्य स्वत्व सारी संपत्ति पर होता है, चाहे वह भ्रष्ट बाँट न होने के कारण अव्यक्त या अनिश्चित हो।
- (३) मिताक्षरा के अनुसार कोई हिस्सेदार कुटुंब संपत्ति को अपने निज के काम के लिये दे या रेहूत नहीं कर सकता पर दायभाग के अनुसार वह अपने अनिश्चित भ्रष्ट को बँटवारे के पहले भी दे सकता है।
- (४) मिताक्षरा के अनुसार जो धन कई प्राणियों का सामान्य धन हो, उसके किसी देश या भ्रष्ट में किसी एक स्वामी के पुण्य स्वत्व का स्थापन विभाग (बँटवारा) है। दायभाग के अनुसार विभाग पुण्य स्वत्व का व्यजन मात्र है।
- (५) मिताक्षरा के अनुसार पुत्र पिता से पैतृक संपत्ति को बाँट देने के लिये कह सकता है, पर दायभाग के अनुसार पुत्र को ऐसा अधिकार नहीं है।
- (६) मिताक्षरा के अनुसार स्त्री अपने मृत पति की उत्तराधिकारिणी तभी हो सकती है जब उसका पति भाई भादि कुटुंबियों से भ्रष्ट हो। पर दायभाग में, चाहे पति भ्रष्ट हो या शामिल, स्त्री उत्तराधिकारिणी होती है।
- (७) दायभाग के अनुसार कन्या यदि विधवा, वध्या या अपुत्रवती हो तो वह उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती। मिताक्षरा में ऐसा प्रतिबंध नहीं है।

याज्ञवल्क्य, चारद आदि के अनुसार पैतृक धन का विभाग इन भ्रष्टों पर होना चाहिए—पिता जब चाहे तब, माता की रजोनिवृत्ति और पिता की विपयनिवृत्ति होने पर, पिता के मृत, पतित या सन्यासी होने पर।

दायम—क्रि० वि० [अ०] हमेणा। निरंतर। सदा। जन्म भर। उ०—
थीठे दिन भरते हैं, दायम दरबार तेरे गैर महल बरते हैं।—
दादू, पृ० ६८५।

दायमी—वि० [अ० दायम + हि० ई (प्रत्य०)] नित्य रहनेवाला। स्थायी। जो सदा के लिये हो। उ०—सत न पत्तर गालबन् उनकी बिदाई दायमी साबित हो।—प्रेम० और गोपी, पृ० ३।

दायमुल्लहस—संज्ञा पु० [अ०] जीवन भर के लिये कैद। कालेपानी की सजा। डामिल।

दायर—वि० [क्रा०] १ फिरता हुआ। चलता हुआ। २. चलता। जारी।

मुहा०—दायर करना = मामले मुकदमे वगैरह को चलाने के लिये पेश करना। (व्यवहार या प्रयोग) उपस्थित करना। जैसे, मुकदमा दायर करना, नालिश या प्रपोस दायर करना। दायर होना = पेश होना। उपस्थित किया जाना। जैसे, मुकदमा दायर होना।

दायरा—संज्ञा पु० [अ० दायरह] १ गोस घेरा। कुहल। मंडल। २. घूरा। ३ कक्षा। ४ मंडली। ५. खजड़ी। ६. डकती।

दायाँ—वि० [हि० दाहिना का सक्षिप्त रूप, बायाँ के अनुकरण पर] दाहिना।

मुहा०—दायाँ बोलना = तीतर का दाहिने हाथ की ओर बोलना जो चोरी के लिये अच्छा शकुन समझा जाता है।

दाया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दया'। उ०—कामरूप जानहि सब माया। सपनेहु जिनके धर्म न दया।—सुसती (शब्द०)।

दाया^२—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'दाई'।

यौ०—दायागरी।

दायागत^१—वि० [सं०] बाँट बँटने में माया हुआ। मोरसी हिस्से में पड़ा हुआ।

दायागत^२—संज्ञा पु० [सं०] पद्रह प्रकार के दासों में से एक। वह दास जो दाय के रूप में प्राप्त हुआ हो। वह गुलाम जो वरासत में और चीजों के साथ मिला हो। दे० 'दास'।

दायागरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दाई का पेशा या काम।

दायाद^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दायादा] जिसे दाय मिले। जो दाय का अधिकारी हो। जिसे संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा मिले।

दायाद^२—संज्ञा पु० १ दाय पाने का अधिकारी अनुष्य। वह जिसका संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा हो। हिस्सेदार। २. पुत्र। वेता। ३. सपिंड। कुटुंबी।

दायादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] दाय। वह चल प्रयत्न अथवा संपत्ति जिस-
पर संपिड वधु बाधवों का अधिकार हो [को०]।

दायाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० दाय + अधिकारिन्] उत्तराधिकारी।
वारिस।

दायापवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी जायदाद में मिलनेवाले हिस्से
की जवती।

दायित्व—वि० [सं०] दिया हुआ। दान किया हुआ।

दायित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. देनदार होने का भाव। २. जिम्मेदारी।
जवाबदेही।

दायिनी—वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली।

दायी—वि० [सं० दायिन्] [वि० स्त्री० दायिनी] देनेवाला। दाता।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भलग कम होता है, समास में
उपपद के रूप में होता है। जैसे, शांतिदायी, सुखदायी,
कष्टदायी, वरदायी।

दायें—क्रि० वि० [हि० दायीं] दाहिनी ओर की।

मुहा०—दायें होना = अनुकूल या प्रसन्न होना।

दायोपगतदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो वरासत में मिला हो।

दार^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। परनी। भार्या।

यौ०—दारकर्म। दारग्रहण। दारपरिग्रह।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह शब्द पुं० है तथापि हिंदी में स्त्री० ही
होता है।

दार^२—संज्ञा पुं० [सं० दारु] दे० 'दारु'। उ०—तिलनि माँहि ज्यों
तेल है सुंदर पय में घोष। दार माँहि है अग्नि ज्यों वेह
माँहि यों सीव।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१।

दार^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] सूती। उ०—चढ़ा दार पर जब शेल
मसूर।—कबीर मं०, पृ० ६०६।

दार^४—संज्ञा स्त्री० [हि० दाल] दे० 'दाल'। उ०—(क) भूँग दार
बिनु बकल साजो। केसरि सहित प्रीत रंग राजी।—
रसरतन, पृ० २८८। (ख) चौटी चावल ले चली, बिच
में मिलि गई दार।—कबीर सा०, पृ० ८३।

दार^५—प्रत्य० [फ्रा०] रखनेवाला। वाला। जैसे,—मालदार,
दुकानदार।

दारक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दारिका] १. लोटा। लड़का। उ०—
इक कुमार पुनि मुनिन सँग रहियहि रस की बात। सिरुयो
कहाँ श्रुति तियन पहुँ की दारक डिग सात।—विश्राम
(शब्द०)। २. पुत्र। बेटा। ३. शावक। छोना (को०)।
४. ग्रामसूकर। सुघर (को०)।

दारक^२—वि० [सं०] विदीर्ण करनेवाला। फाड़नेवाला।

दारकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दारकर्मन्] भायर्ग्रहण। विवाह।

दारक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारकर्म' [को०]।

दारग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह। शादी [को०]।

दारचीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु + चीन] १. एक प्रकार का तज
जो दक्षिण भारत, सिंहल और टेनासरिम में होता है।

विशेष—सिंहल में ये पेड़ सुगंधित फूल के लिये बहुत लगाए

जाते हैं। भारतवर्ष में यह जंगलों में ही मिलता है और
लगाया भी जाता है तो बगीचों में शोभा के लिये। कोंकण
से लेकर बराबर दक्षिण की ओर इसके पेड़ मिलते हैं।
जंगलों में तो इसके पेड़ बड़े बड़े मिलते हैं पर लगाए हुए
पेड़ भाड़ के रूप में होते हैं। परते इसके तेजपत्ते ही की तरह
के, पर उससे चौड़े होते हैं और उनमें बीचवाली खड़ी
नस के समानांतर कई खड़ी नसें होती हैं। इसके फूल
छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फूल के नीचे
की दिउली छह फाँकों की होती है। सिंहल में जो
दारचीनी के पेड़ लगाए जाते हैं उनके लगाने और दारचीनी
निकालने की रीति यह है। कुछ कुछ रेसीली करेल मिट्टी में
४-५ हाथ के अंतर पर इसके बीज बोए जाते या कलम
लगाए जाते हैं। बोए हुए बीजों या लगाए हुए कलमों को
घूप से बचाने के लिये पेड़ की डालियाँ आस पास गाड़ दी
जाती हैं। ६ वर्ष में जब पेड़ ४ या ५ हाथ ऊँचा हो जाता
है तब उसकी डालियाँ छिलका उतारने के लिये काटी जाती
हैं। डालियों में छुरी से हलका चीरा लगा दिया जाता है
जिसमें छाल जल्दी उबट घावे। कभी कभी डालियों को छुरी
के बेंट आदि से थोड़ा रगड़ भी देते हैं। इस प्रकार भलग
किए हुए छाल के टुकड़ों को इकट्ठा करके दबा दबाकर छोटे
छोटे पुलों में बाँधकर रख देते हैं। वे पूरे दो या एक दिन
यों ही पड़े रहते हैं, फिर छालों में एक प्रकार का हलका
खमीर सा उठता है जिसकी सहायता से छाल के ऊपर की
फिल्ली और नीचे लगा हुआ गूदा टेढ़ी छुरी से हटा दिया
जाता है। अंत में छाल को दो दिन छाया में सुखाकर
फिर घूप दिखाकर रख देते हैं।

दारचीनी दो प्रकार की होती है—दारचीनी जोलानी और
दारचीनी कपूरी। ऊपर जिस पेड़ का विवरण दिया गया है
वह दारचीनी जोलानी है। दारचीनी कपूरी की छाल में बहुत
अधिक सुगंध होती है और उससे बहुत अच्छा कपूर निकलता
है। इसके पेड़ चीन, जापान, कोचीन और फारमोसा द्वीप
में होते हैं और हिंदुस्तान में भी देहरादून, नीलगिरि आदि
स्थानों में लगाए गए हैं। भारतवर्ष, अरब आदि देशों में
पहले इसी पेड़ की सुगंधित छाल चीन से आती थी, इसी से
उसे दारु + चीनी कहने लगे। हिंदुस्तान में कई पेड़ों की
छाल दारचीनी के नाम से विकती है। अमिलतास की जाति
का एक पेड़ होता है जिसकी छाल भी व्यापारी दारचीनी के
नाम से बेचते हैं पर वह असली दारचीनी नहीं है। असली
दारचीनी आजकल अधिकतर सिंहल से ही आती है।
दक्षिण में दारचीनी के पेड़ को भी सबग कहते हैं यद्यपि
सबग का पेड़ भिन्न है और जामुन की जाति का है। तज
और दारचीनी के वृक्ष यद्यपि भिन्न होते हैं तथापि एक ही
जाति के हैं। दारचीनी से एक प्रकार का तेल भी निकलता है
जो दवा के लिये बाहर बहुत जाता है।

२. ऊपर लिखे पेड़ की सुगंधित छाल जो दवा और मसाले के
काम में आती है।

दारण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० दारित] १ चीरने या फाड़ने का काम । चीर फाड़ । विदीर्ण करने की क्रिया । २ चीरने फाड़ने का झल या झोजार । ३ फोड़ा आदि चीरने का काम । ४ वह औषध जिसके लगाने से फोड़ा आपसे आप फूट जाय ।

विशेष—सुश्रुत में चिलबिल, दंती, चित्रक, कवूतर, गोघ आदि की बीट तथा क्षार को दारण औषध कहा है ।

५. निर्मली का पोषा ।

दारणा^२—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण' । उ०—दारुण कर्मा लूँबिया दोला । माने लिया दिवालां झोला ।—रा० ६० पृ० २५३ ।

दारणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०] ।

दारद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का विष जो दरद देश में होता है । उ०—जाहि जोहि मारद भई मरी परी दुख फद । ताहि सुधाघर द्यो कहै दारद भारद चद ।—स० समक, पृ० २६० । २ पारा । ३. इंगुर । ४. सागर । समुद्र (को०) ।

दारन^३—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण' । उ०—पतन की कारन लगे विचारन । प्रबल पवन नहि नहि बड़ दारन ।—नद० ग्र०, पृ० २५४ ।

दारना^४—क्रि० सं० [सं० दारण] १. फाड़ना । विदीर्ण करना । २ नष्ट करना । ध्वस्त करना ।

दारपरिग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का ग्रहण । पाणिग्रहण । विवाह ।

दारवलिमुक्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दारवलिमुज्] वक । बगुला पक्षी [को०] ।

दारमदार—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ छात्रय । ठहराव । २. कार्य का भार । किसी कार्य का किसी पर अवलंबित रहना । जैसे,— इस काम का दारमदार तुम्हारे ऊपर है ।

दारव—वि० [सं०] १ दारु अर्थात् लकड़ी का । लकड़ी का बना हुआ । २ काष्ठ सबधी ।

दारसंग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भार्याग्रहण । विवाह ।

दारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दारा] स्त्री । पत्नी । भार्या ।

विशेष—सं० 'दार' शब्द नित्य बहुवचनान्त है, अतः उसका प्रथमा का रूप 'दारा' होता है पर हिंदी में 'दारा' रूप ही स्त्रीलिंग में व्यवहृत होता है ।

दारा^२—सञ्ज्ञा पुं० [?] किनारा (लश०) ।

दारा^३—सञ्ज्ञा स्त्री [दे०] एक प्रकार की सारी मछली जो हिंदुस्तान में समुद्र के किनारे पाई जाती है । यह लंबाई में तीन हाथ और चौल में दस ग्यारह सेर होती है ।

दारा^४—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ विश्व का नियन्ता । ईश्वर । २ राजा । नरेश । ३ धनी । मालदार । ४ ईरान का एक वादशाह [को०] ।

दाराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो ग्वारनट की तरह का होता है । दरियाई ।

दाराचार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दार + आचार्य] पढ़ानेवाला । अध्यापन करनेवाला [को०] ।

दारि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दालि] दे० 'दाल' । उ०—दारि गसी है भली विधि सो अरु चाउर हैगो सुगंध भरो लू ।—सेवक (शब्द०) ।

दारि^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विदारण । कर्तन । छेदन [को०] ।

दारि^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दे० 'दारी' । उ०—चचल सरस एक काहू पे न रहे दारि ।—भूपण ग्र०, पृ० १२३ ।

दारि^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाहिम] दे० 'दाहिम' । उ०—बिहंसत हंसत दसन तस चमकै पाहन छकि । दारि^८ सरि जो न कह सका फाट्यो होया दकि ।—जायसी (शब्द०) ।

दारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बालिका । २. बेटो । पुत्री । कन्या । उ०—ए दारिका परिचारिका करि पालिषी कसनामई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दारिगह^९—सञ्ज्ञा पुं० [फा० दरगाह] दे० 'दरगाह' । उ०—दारिगह वारिगह निमाजगह धोमारगह ।—कीर्ति०, पृ० ५० ।

दारित—वि० [सं०] चीरा या फाड़ा हुआ । विदीर्ण किया हुआ ।

दारिद^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दरिद्रता । निर्धनता । उ०—देखत दुख दोख दुरित बाह दारिद दरि ।—तुलसी (शब्द०) ।

दारिद्र^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दे० 'दारिद्र्य' ।

दारिद्र्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता । निर्धनता । गरीबी ।

दारिम^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाहिम] दे० 'दाहिम' । उ०—ससति जु हंसनि दसन की जोती । को है दारिम को है मोती ।—नद० ग्र०, पृ० १२३ ।

दारि^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दाहिम] दे० 'दाहिम' । उ०—अधर दसन पर नासिक सोभा । दारि^{१३} देखि सुझा मन लोभा ।—पदमावत, पृ० १०२ ।

दारी^{१४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र गोग, जिसमें पैर के तलवे का चमड़ा कड़ा हो जाता है और चिड़ चिड़ाकर जगह जगह फट जाता है । बेवाई । खरवा ।

विशेष—भावप्रकाश में लिखा है कि जो लोग पंदल अधिक चलते हैं उनकी वायु कुपित होकर सूखी हो जाती है, जिससे चमड़ा कड़ा होकर फट जाता है ।

दारी^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दारिन्] वह पति जिसे कई पत्नियाँ हों । पति (को०) ।

दारी^{१६}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दासी । लौंडी । वह लौंडी जिसे लड़ाई में जीतकर लाया गया हो । कुलटा ।

सौ०—दारीजाद ।

दारीजार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दारी + सं० जार] १ लौंडी का पति । (गाली) ।

विशेष—राजा लोग कभी कभी कोई लौंडी रख लिया करते थे । जब उससे अप्रसन्न होते थे तब उसे किसी मनुष्य को दे देते थे और उसके गुजारे के लिये कुछ जागीर दे देते थे । वह मनुष्य उस लौंडी का पति बनता था इसी से वह 'दारीजार' कह-

साता था। उनसे जो सतान होती थी वह 'दारीजात' कहलाती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि 'दारीजार' ही से बिगड़कर 'डाढ़ीजार' शब्द बना है। पर यह अनुमान ठीक नहीं जंचता।

२ दासीपुत्र। लोहीजादा। गुलाम।

दारु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. काष्ठ। काठ। लकड़ी। उ०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस सग। दारु विचार कि करइ कोठ बढिय मलय प्रसग।—मानस, १।१०।

शौ०—दारुकर्म = दे० 'दारुकृत्य'। दारुकृत्य = लकड़ी का काम। दारुगन्धा = विरोजा। दारुगन्धा = कठपुतली। दारुचीनी। दारुपात्र। दारुपुत्रिका। दारुयोषित। दारुवधू।

२ देवदारु का वृक्ष। ३ बड़ई। कारीगर। शिल्पी। ४. पीतल। ५. दानशील व्यक्ति। दाता (को०)।

दारु^२—वि० १. दानशील। देनेवाला। २. खड्गशील। दूटने फूटनेवाला। ३. काटनेवाला। विदारण करनेवाला (को०)।

दारुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवदारु। २. श्रीकृष्ण के सारथी का नाम।

विशेष—ये बड़े कृष्णवर्ण थे। सुमद्राहरण के समय इन्होंने भर्जुन से कहा था कि मुझे दारुक तब आप सुमद्रा को रथ पर ले जाइए, मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हूँ। कृष्ण के स्वर्गवास का समाचार भर्जुन को इन्होंने दिया था।

३ काठ का पुतला। ४ योगाचार्य जो शिव के भवतार कहे जाते हैं।—भारतेंदु ग्र० भा० २, पृ० ४४७।

दारुकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगली कैला। कठकेला।

दारुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुकावन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वन का नाम जो पवित्र तीर्थ माना जाता है।

दारुगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुगन्धा] विरोजा जो चीड़ से निकलता है। दारुचीनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दारुचीनी'।

दारुज^१—वि० [सं०] १. काष्ठ से उत्पन्न। लकड़ी में पैदा होनेवाला। जैसे, दारुज कीट। २. काष्ठनिर्मित। लकड़ी का बना हुआ।

दारुज^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का बाजा। मर्दल।

दारुजोषित^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुजोषित] दे० 'दारुयोषित'। उ०—उमा दारुजोषित की नाई। सबहि नचावत राम गोसाईं।—मानस, ४।११।

दारुण^१—वि० [सं०] १. भयंकर। भीषण। घोर। २. कठिन। प्रचंड। विकट। दुःसह। उ०—जा कहें बिधि दारुण दुष्ट दोन्हा। तगर मति आगे हर खीन्हा।—सुनसी (शब्द०)। ३. विदारक। काटनेवाला। १. निर्दय। क्रूर (को०)। ४. तीक्ष्ण। तीव्र। तीखा (को०)।

दारुण^२—संज्ञा पुं० १. चित्रक वृक्ष। बीते का पेड़। २. भयानक रस। ३. रौद्र भावक नखत्र। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. एक नरक

५-५

का नाम। उ०—मठवाँ दारुण नरक है जेहि देखत भय होय।—विश्राम (शब्द०)। ७. राक्षस।

दारुणक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर में होनेवाला एक दुर्घट रोग जिसमें चमड़ा रुखा होकर सफेद भूसी की तरह छूटता है। कसी।

दारुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्मदाखंड की भविष्यात्री देवी। २. प्रलय तृतीया।

दारुणारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

दारुण^३—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण'।

दारुणटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुनि—वि० स्त्री० [सं० दारुण] कठोर। निर्दय। उ०—(क) सासु ननदिया दारुनि, उत्तर जनि देह हो।—घरम०, पृ० ४७। (ख) घर भोरी सासु दारुनि, तो ननद हठीली हो।—घरम०, पृ० ६४।

दारुनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहस्त।

दारुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिणुपत्री।

दारुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] काष्ठपात्र। काठ का बरतन।

विशेष—मनु ने यतियों को भलाबुपात्र (तुमड़ी) और दारुपात्र रखने का विधान किया है।

दारुपीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहस्त।

दारुपुत्रिका, दारुपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुफल—संज्ञा पुं० [सं०] पिस्ता।

दारुमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दारुमयी] काठ का। काठ का बना हुआ।

दारुमुच—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थावर विष का नाम।

दारुमूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मोषघ्न का नाम।

दारुयोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारुयोषित' [को०]।

दारुयोषित—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुयोषित] कठपुतली।

दारुयोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारुयोषित'।

दारुवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ की गुड़िया। कठपुतली [को०]।

दारुसार—संज्ञा पुं० [सं०] चदन [को०]।

दारुसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुचीनी।

दारुहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुहस्त^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुहरिद्रा] भाल की जाति का एक सदाबहार झाड़।

विशेष—यह हिमालय के पूर्वी भाग से लेकर प्रासाम, पूरबी बंगाल और टनासरिम तक होता है। इसमें सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी जड़ की छाल से बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिसका व्यवहार दार्जिलिंग, प्रासाम आदि के लोग बहुत अधिक करते हैं। इसकी जड़ और ठठल का रस पीला होता है, इसी से इस पीधे को दारुहलदी कहते हैं। कस्तूर में यह हस्त की जाति का नहीं है। दारुहलदी के

नाम से उसकी जड़ और ठूल के टुकड़े बाजार में बिकते हैं। जड़ गाँठ के रूप में नहीं होती। दारुहलदी दवा के काम में भी आती है। वैद्यक में यह कड़ई, चरपरी, गरम तथा शूल, प्रमेह, खुजली, चर्मरोग इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—दार्वी। दारुहरिद्रा। द्वितीयाभा। कपोतक। पीतद्रु। कलियफ। पंचपदा। पर्जन्य। काष्ठा। मर्मरी। पीतिका। पीतदारु। कामिनी। कटकटेरी। पर्जन्या। पीता। दारुनिशा। कामवती। हेमकाती। निदिष्टा।

दारुहस्त, दारुहस्तक—सङ्ग पु० [सं०] काठ की करछुल [को०]।

दारु—सङ्ग खी० [फा०] १. दवा। शोधष।

यौ०—दवा दारु। दारु दरमन = चिकित्सा। इलाज।

२ मद्य। शराव। ३ वारुद।

दारुकार—सङ्ग पु० [फा० दारु + हि० कार] शराव बनानेवाला। कलवार।

दारुका—सङ्ग पु० [फा० दारु + हि० का (प्रत्य०)] [खी० दारुकी] शराव। मद्य।

दारैषणा—सङ्ग खी० [सं० दाररा + एषणा] नारी की कामना। जैसे,—लोकैषणा, वित्तैषणा, दारैषणा।

दारो०—सङ्ग पु० [सं० दारुम, हि० दारिम, दारिष, दारिज, दारिध] दे० 'दारिध'।

दारोगा—सङ्ग पु० [फा० दारोगह] १. निगरानी रखनेवाला अफसर। देखभाल रखनेवाला या प्रवध करनेवाला व्यक्ति। जैसे, दारोगा जेल, दारोगा जुगी, दारोगा अस्तबल। २. पुलिस का वह अफसर जो किसी थाने पर अधिकारी हो। थानेदार।

दारोगाई—सङ्ग खी० [फा० दारोगा] दारोगा का काम या पद।

दारुध—सङ्ग पु० [सं०] दृढ़ता।

दारुदुर—वि० [सं०] दूर संबंधी।

दारुदुर—सङ्ग पु० १. दक्षिणावर्त शस्त्र का एक भेद। २. जल। पानी (को०)। ३. लाक्षा-लाक्ष (को०)।

दारुदुरक—वि० [सं०] भेदक संबंधी (को०)।

दारुदुरिक—सङ्ग पु० [सं०] कुम्हार।

दारुदुरिक—वि० [सं०] दारुदुर या भेदक संबंधी। भेदक की भाँति। उ०—भगवदीय अंतरगता के कारण दारुदुरिक असती जिह्वा को रसना और वर्ध्यापित नेत्रों को लोचन बनाने में छीत स्वामी को देर नहीं लगी।—छीत० (भू०), पृ० १६।

दारुध—वि० [सं०] दम का। कुश या दम संबंधी।

दारुधो०—सङ्ग पु० [सं० दारुध] धनार। उ०—नासिका सरोज गधवाह से सुगंधवाह दारुधो से दरसव कैसी बीजुरी सो हास है।—केशव (शब्द०)।

दारुध—सङ्ग पु० [सं० दारुध] [खी० दारुधी] वह जिसका अङ्ग काठ की तरह कड़ा होता है—मयूर। मोर।

दारुध—सङ्ग पु० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशानकोण में प्रायुक्तिक कामीर के अंतर्गत पड़ता था।

दारुध—वि० काष्ठनिर्मित। दारुनिर्मित (को०)।

दारुध—सङ्ग पु० [सं०] मयूरागृह। दारुध (को०)।

दारुध—सङ्ग पु० [सं०] काठ पर धापात करनेवाला कठफोड़वा नाम का पक्षी।

दारुध—सङ्ग पु० [सं०] कठफोड़वा पक्षी (को०)।

दारुध—सङ्ग पु० [सं० तुल० फ्रा० 'दरवार' से] मयूरागृह। वह कोठरी जहाँ एकात में बैठकर किसी बात का विचार किया जाय।

दारुध—सङ्ग खी० [सं०] १. दारुहलदी से निकाला हुआ तूतिया। २. धनगोभी। गोजिया।

दारुधपत्रिका—सङ्ग खी० [सं०] गोजिह्वा (को०)।

दारुध—सङ्ग खी० [सं०] १. दारुहलदी। २. गोजिह्वा। दारुध (को०)। ३. हरिद्रा। हलदी (को०)। ४. देवदार वृक्ष (को०)।

यौ०—दारुधवापोदमव = रसाजन।

दारुध—वि० [सं०] दर्शन संबंधी। समावस्था को होनेवाला (को०)।

दारुधनिक—वि० [सं०] १. दर्शन जाननेवाला। २. दर्शन शास्त्र संबंधी।

दारुधनिक—सङ्ग पु० दर्शनशास्त्र जाननेवाला मनुष्य। तत्त्वज्ञानी। तत्त्ववेत्ता।

दारुध—वि० [सं०] १. पत्थर पर पीसा हुआ। २. दृढ़ संबंधी। पाषाणमय। ३. खनिज (को०)।

दारुध—सङ्ग पु० [सं०] कारमायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक यज्ञ जो दृष्टती नदी के किनारे किया जाता था।

दारुध—वि० [सं० दारुध] दे० 'दारुध'।

दारुध—वि० [सं० दारुध] दृष्ट संबंधी। दृष्ट द्वारा व्यक्त।

दाक्ष—सङ्ग खी० [सं० दालि भषवा दल] १. दलों में किया हुआ भरहर, मूँग, उरद, चना, मसूर आदि अन्न जो उबालकर खाया जाता है। दली हुई भरहर, मूँग आदि जो सानन की तरह खाई जाती है। जैसे,—मूँग की दाल क्या भाव है?

क्रि० प्र०—दलना।

यौ०—दालमोठ।

विशेष—दान उन्ही सनाजों की होती है जिनमें कलियाँ लगती हैं और जिनके बीज दवाने से टूटकर दो दलों या खड्डों में हो जाते हैं। जैसे, भरहर, मूँग, उरद, चना, मसूर, मटर।

२. हलदी, मगाने के साथ पानी में उबाला हुआ दाना अन्न जो रोटी, पान आदि के साथ खाया जाता है।

मुहा०—दाल गलना = दाल का अच्छी तरह पककर नरम हो जाना। दाल का मोभना। (फिरी की) दाल गलना = (फिरी का) प्रयोगन सिद्ध होना। मतलब निकलना। कार्य-सिद्धि के लिए किसी युक्ति का चलना।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग निषेधार्थक वाक्य में ही अधिकतर होता है जैसे, वहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी, बड़े बड़े उस्ताद हैं।

- दाल चपाती = (१) दाल रोटी। (२) वच्चों को ढराने का एक नाम। दालचणू होना = एक दूसरे से लिपटकर एक हो जाना। गुत्यमगुत्या होना। जैसे, दो पतंगों का दालचणू होना। दाल दलिया = सूखा रूखा भोजन। गरीबों का सा खाना। दाल भात में मूसर होना = दो के मध्य में अनावश्यक, अप्रिय और अनिच्छित रूप में दखल देना। उ०—एकांत विहार में यह दाल भात में मूसर कहाँ से आ गई? —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३५। दाल में कुछ काला होना = कुछ खटके या सदेह की बात होना। कुछ बुरा रहस्य होना। किसी बुरी बात का लक्षण दिखाई पड़ना। दाल में नोन = किसी प्रमुख वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का उतना ही मेल मिलाना जिससे स्वाद में वृद्धि हो जाय। मात्रानुकूल। ठीक अनुमान। उ०—उतना ही, जितना दाल में नोन पड़ सकता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८८। दाल रोटी = सादा खाना। सामान्य भोजन। आहार। दाल रोटी चलना = खाना मिलना। जीयिका निर्वाह होना। दाल रोटी से खुश = खाने पीने से सुखी। खाता पीता। जिसे न अधिक धन हो न खाने पीने का कष्ट हो। जूतियों दाल बँटना = खूब लड़ाई झगड़ा होना। गहरी अनबन होना। आपस में न पटना।

३. दाल के आकार की कोई वस्तु। ४ चेचक, फोड़े, फु सी आदि के ऊपर का चमड़ा जो सूखकर छूट जाता है। खुरड। पपड़ी।

मुहा०—दाल छूटना = खुरड अलग होना। दाल बँधना = खुरड पड़ना।

५ सूर्यमुखी शीशे से होकर आया हुआ किरणों का समूह जो इकट्ठा होकर गोल दाल के आकार का हो जाता है और जिससे धाग लग जाती है।

मुहा०—दाल बँधना = भवस का इकट्ठा होकर पड़ना।

६ अड़े की जरदी।

दाल^२—संज्ञा पुं० [सं० देवदार] तुन की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर शिमला तथा आगे पंजाब की ओर होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसकी धरनें और कड़ियाँ मकानों में लगती हैं, पुल और रेल की सड़कों पर बिछाई जाती हैं तथा और भी बहुत से कामों में आती है।

दाल^३—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मधु। पेड़ के खोडरे में मिलनेवाला शहद। २ कोदो नाम का अन्न।

दालचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दारचीनी] दे० 'दारचीनी'।

दालदी०—वि० [सं० दारिद्र्य, दरिद्रता, प्रा० दालिद] दरिद्र। गरीब। उ०—सबकी दीसे दालदी देवी देन अनंत। दारिद भजन एकही सुंदर कमलाकत।—सुंदर० प्र० भा० २ पृ० ६६३।

दालन—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग।

दालभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि का नाम।

दालमोठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाल + मोठ (= एक मोटा घन) जो राजस्थान पंजाब आदि भारत के पच्छिमी भूभाग में ज्यादा

होता है।] बी, तेल आदि में नमक, मिचं के साथ तली हुई दाल जो नमकीन की तरह खाई जाती है।

दालव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष।

दाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल नाम की लता।

दालान—संज्ञा पुं० [प्रा०] वह लंबा घर जिसके चारों ओर दीवार न हो, एक दो या तीन ओर खम्भे आदि हों। मकान में वह छाई हुई जगह जो चारों ओर से घिरी न हो, एक दो या तीन ओर खुली हो। बरामदा। ओसारा।

विशेष—दालान प्रायः मकान के सामने होता है।

दालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाल। २. देववाली लता। ३. दाड़िम। अनार।

दालिद०—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दे० 'दारिद्र्य'। उ०—राम जपत दालिद भला, दूटी घर की छानि। ऊँचे मंदिर जालि दे जहाँ सगति न सारंगपानि।—कबीर प्र०, पृ० ५३।

दालिद्रा—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दारिद्र्य। दरिद्रता। गरीबी। उ०—सुंदर कहत दुख दालिद्र निकंदनी।—सुंदर प्र०, भा० १ (जी०), पृ० १६६।

दालिद्रो—वि० [सं० दारिद्र्य] दरिद्रतायुक्त। दरिद्र। उ०—आलस निद्रा जा कहैं होई। काम शोध दालिद्रो सोई।—कबीर सा०, पृ० ३६।

दालिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाड़िम'।

दालिवा—संज्ञा पुं० [सं० दालिम] दे० 'दालिव'। उ०—संजें दालिव फुटल ग्रहसन दान्त।—वरण०, पृ० ५।

दाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] दे० 'दाल'। उ०—मुद्गा, दाली घृत की ब्याली। रस के कदर सुंदर साली।—नद० प्र०, पृ० ३०६।

दालभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दलभ ऋषि के गोत्र का मनुष्य। २. वृक नामक मुनि।

विशेष—इंद्र इनके बंधु थे। इन्होंने चंद्रसेन राजा की गर्मिणी स्त्री की परशुराम के क्रोध से रक्षा की थी।

दालिम—संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र।

दावें—संज्ञा पुं० [सं० दाय (= भाग) प्रथवा सं० प्रत्य० दा दाय्; जैसे एकदा] १ वार। दफा। मरतवा। २ किसी के लिये किसी बात का समय जो कई आदमियों में एक दूसरे के पीछे क्रम से आवे। बारी। पारी। जैसे,—जब तुम्हारा दावें आवेगा तब जैसा चाहना वैसा करना। उ०—तब नहिं दीनो मो कहैं ठावें। अब कस रोवत अपने दावें।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।

३ किसी कार्य के लिये उपयुक्त समय। अवसर। मौका। अनुकूल संयोग। उ०—(क) द्विजदेव की सौं अब वृक मत दावें, अरे पातकी पपीहा! तू पिया की घुनि गावै ना।—द्विजदेव (शब्द०)। (ख) कहैं पदमाकर त्यों साँकरी गली है प्रति इत उत गाजिवे की दावें ना लगत है।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लगना।

मुहा०—दावें करना = घात लगाना। घात में बैठना। दावें

भूकना = भवसर को हाथ से जाने देना । किसी कार्यसाधन के लिये अनुकूल समय पाकर भी कुछ न करना । मौका सोना । दावें ताकना = भवसर की ताक में रहना । मौका देखते रहना । दावें मिलना = दे० 'दावें लगना' । दावें लगना = भवसर हाथ में आना । अनुकूल संयोग मिलना । मौका मिलना । दावें लगना = दे० 'दावें ताकना' । दावें लेना = जिसने बुरा व्यवहार किया हो मौका मिलने पर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना । बदला लेना । प्रतिकार करना । उ०—भसुर कृपित हूँ कछो बहुत तुम भसुर सँहारे । अब लैहों वह दावें छाडिहीं नहि बिनु मारे ।—सूर (शब्द०) ।

४ कार्यसाधन की युक्ति । उपाय । चाल । मतलब गाँठने का ढंग ।

मुहा०—दावें पर चढ़ना = ऐसी स्थिति में होना जिससे किसी का काम निकल सके । किसी के अभिप्राय साधन के अनुकूल प्रवृत्त होना । इस प्रकार वश में होना कि दूसरा अपना मतलब निकाल ले । दावें पर चढ़ाना = मतलब के मुवाफिक करना । कार्यसाधन के लिये अनुकूल करना । दावें पर लाना = दे० 'दावें पर चढ़ाना' । दावें में आना = दे० 'दावें पर चढ़ना' ।

५ कुश्ती या लड़ाई जीतने के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति । चाल । पेंच । बद । उ०—(क) तब हरि भिरे मल्ल-क्रीडा करि बहु विधि दावें दिखाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) भटक हूर फेंकन चहत चलत न कोऊ दावें (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—दावें पेंच ।

मुहा०—दावें पर लाना = कुश्ती में जोड़ को ऐसी स्थिति में करना कि उसपर पेंच हो सके ।

६ कार्यसाधन की कुटिल युक्ति । छल । कपट ।

क्रि० प्र०—चलना ।

मुहा०—दावें खेलना = चाल चलना । धोखा देना । दावें देना = दे० 'दावें खेलना' ।

७ खेल में प्रत्येक खिलाड़ी के खेलने का समय जो एक दूसरे के पीछे क्रम से आता है । खेलने की धारी । चाल । जैसे,—अब हमारा दावें है, कोड़ी हम फेंकेगे ।

मुहा०—दावें चलना = अपनी धारी आने पर शतरंज की गोटी, ताश के पत्ते आदि को रखना । दावें फेंकना = अपनी धारी आने पर पासा या जुए की कोड़ी आदि डालना । दावें पर रखना = रुपया पैसा या कोई वस्तु दावें फेंकनेवाले के सामने रखना जिसमें यदि वह जीते तो उसे ले जाय और हारे तो उतना दे । बाजी पर लगाना । दावें लगाना = दे० 'दावें पर रखना' ।

८. पाँसे, जुए की कोड़ी आदि का इस प्रकार पढ़ना जिससे जीत हो । जीत का पाँसा या कोड़ी । उ०—दावें बलराम को देखि उन छल कियो रुक्म जीत्यो कहत लगे सारे । शैववाणी भई, जीत भई राम की, ताहु पै मूढ़ नाहीं सँभारे ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—पढ़ना ।

मुहा०—दावें देना = खेल में हारने पर नियत दंड भोगना या

परिश्रम करना (लडके) । उ०—तुमरे सग कहो को बेसे दावें देत नहि करत रनैया ?—सूर (शब्द०) । दावें लेना = खेल में हारनेवाले से नियत दंड भोगना या परिश्रम कराना ।

†६ स्थान । ठौर । जगह । उ०—वह झाडी एक पहाड के उत्तार पर थी इससे सिंह को निकलने का दावें न था ।—गोपाल उपासनी (शब्द०) ।

दावँना—क्रि० सं० [सं० दमन] दाना घोर भूमा धन्य करने के लिये कटी हुई फसल के सूखे ठठकों को बैलों से रौंदवाना । दाना झाड़ने के लिये मोड़ना ।

दावँनी—सका स्त्री० [सं० दामिनी] माये पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । बदी ।

दावँरी—सका स्त्री० [सं० दाम] रस्सी । रज्जु । उ०—दावँरी से बाँधन लगी जमुदा हूँ बेपीर । पै गोबधन बाँधिहूँ गोपति कों की बीर ?—व्यास (शब्द०) ।

दाव'—सका पुं० [सं०] १. वन । जंगल । २. वन की भाग । ३. भाग । अग्नि । ४. जलन । ताप । कष्ट । पीडा ।

दाव'—सका पुं० [दे०] १. एक प्रकार का हथियार । २. एक पेड़ का नाम । दे० 'दावरा' ।

दाव'—सका पुं० [हि० दावें] १. भवसर । सुयोग । उ०—ले सँभारि सँवारि भावृहि मिलहि नहि फिर दाव ।—जग० बानी, पु० ३५ । †२ रिक्त स्थान । जगह । दावें । ३. छल । कपट । इष्टसाधन की कुटिल युक्ति या चालबाजी ।

यौ०—दावपेंच = दावपेंच । चालबाजी । उ०—सारे दावपेंच मुले पेचीदगी आने पर । पार गिरपतार हुमा खून के बहाने पर ।—बेला, पु० ६१ ।

मुहा०—दाव पेंच चलना = एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये चालें चलना । चतुरता की चालें चलना । उ०—वाह किबला, आपके फेंकाने सुहबत से हम पोखता मगज हो गए हैं ऐसे कच्चे नहीं कि हमपर किसी का दाव पेंच चले ।—फिसाना० भा० १, पु० ६ ।

४ कुभवसर । बुरा मौका । उ०—जिससे सु दरदास जी के मठ वा भसयल को बहुत भारी नुकसान पहुँचने का दाव व संभावना का रूप हो गया है ।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १ पु० १८६ ।

दावत—सका स्त्री० [प्र० दमवत] १. ज्योनार । भोज । २. खाने का बुलावा । निमंत्रण । न्योता ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—लेना ।

यौ०—दावत सवाजा = भादर सत्कार । दावतनामा = निमंत्रण-पत्र । निमंत्रण । दावते जंग = युद्ध की चुनौती । न्युनिमंत्रण ।

दावदी—सका स्त्री० [फ्रा० दाउदी] एक पुष्प । दे० 'गुनदावदी' ।

दावन'—सका पुं० [सं० दमने] १. दमन । नाश । उ०—जातुधान दावन परावव को फल भो ।—तुलसी (शब्द०) । २. हँसिया । ३. एक प्रकार का देड़ा धुरा । कुच्छी ।

दावन^२—संज्ञा पुं० [क्रा० दामन] दे० 'दामन' ।

दावना^१—क्रि० सं० [सं० दमन] दे० 'दावना' ।

दावना^२—क्रि० सं० [हि० दावन (= नाश)] दमन करना । नष्ट करना । उ०—सुनु खगपति यह क्या पावनी । त्रिविध ठाप भव-बाप-दावनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दावनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दावनी' ।

दावर—संज्ञा पुं० [क्रा०] १ ईश्वर । खुदा । २. न्यायकर्ता । हाकिम । न्यायकारी । उ०—के इस मोहरे के तीन प्रालम में दावर । है भयी वास्ते कसे कूँ इजाहर ।—दक्खिनी०, पृ० १६६ ।

दावरा—संज्ञा पुं० [देश०] दावरा नाम का पेड़ ।

दावरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] दे० 'दावरी' ।

दावरी^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. न्याय । इसाफ । २ हुकूमत । शासन [को०] ।

दावरीगाह—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] न्यायालय ।

दावाँदोल—वि० [हि० दावाँदोल] खचल । अस्थिर । डाँडोल । उ०—ऐंद्रजालिक चेतना के स्तंभ दावाँदोल दुनियाँ में अद्विग विश्वास के ।—हरी घास०, पृ० १६ ।

दावा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव (= वन)] वन में लगनेवाली आग जो बाँस या और पेड़ों की डालियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली जाती है । उ०—बिता ज्वाल सरीर बन दावा लागि लगी जाय । प्रगट धुवाँ नहि देखिए उर अंतर घुघुयाय ।—गिरधर (शब्द०) ।

दावा^२—संज्ञा पुं० [प्र० दावा] किसी वस्तु पर अधिकार प्रकट करने का कार्य । किसी वस्तु को जोर के साथ छपना कहना । किसी चीज पर हक जाहिर करना । जैसे,—कल तुम इस मकान ही पर दावा करने लगोगे तो हम क्या करेंगे ? उ०—दावा पातहासन सो कीन्हों सिवराज और जेर कीनो देस, हृद् बाँव्यो दरबार में ।—भूषण (शब्द०) । २ स्वत्व । हक । जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा क्या दावा है ।—३. किसी के विरुद्ध किसी वस्तु पर छपना अधिकार स्थिर करने के लिये न्यायालय आदि में दिया हुआ प्रार्थनापत्र । किसी जायदाद या रुपए पैसे के लिये चलाया हुआ मुकदमा । जैसे, किसी आदमी पर अपने रुपए का दावा करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दावा जमाना=मुकदमा ठीक करना । हक साबित करना ।

४. नालिश । अभियोग ।

मुहा०—दावा खारिज होना=मुकदमा हारना । हक का साबित न होना ।

५ अधिकार । जोर । प्रताप । उ०—गरुड को दावा सदा नाग के समूह पर, दावा नाग कुह पर सिंह गिरताज को ।—भूषण (शब्द०) । ६ किसी बात को कहने में वह साहस जो उसकी यथार्थता के निश्चय से उत्पन्न होता है । धृता । जैसे,—मैं

दावे के साथ कहता हूँ कि मैं इस काम को दो दिनों में कर सकता हूँ । ७ धृतापूर्वक कथन । जोर के साथ कहना । जैसे,—उनका तो यह दावा है कि वे एक मिनट में एक श्लोक ब्रज सकते हैं ।

दावाअगन^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दावा + अग्न] दे० 'दावाग्नि' । उ०—दुरग के पुत्र भतीजे और भाई । दावाअगन साह सागे मेघ तें सवाई ।—रा० रू०, पृ० ११८ ।

दावागीर—संज्ञा पुं० [प्र० दावा + क्रा० गीर] दावा करनेवाला । छपना हक जतानेवाला । उ०—साईं बेटा बाप के बिगरे भयो भकाज । हिरनाकुस भव कंस को गयो दुहुन को राज । गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे । दुसमन दावागीर भए महिमडल सिगरे ।—गिरधर (शब्द०) ।

दावाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली आग ।

दावात—संज्ञा स्त्री० [प्र० दवात] स्याही रखने का बरतन । ससिपात्र ।

दावादार—संज्ञा पुं० [प्र० दावा + क्रा० दार] दावा करनेवाला । छपना हक जतानेवाला ।

दावानल—संज्ञा पुं० [सं०] वन की आग जो बाँसों या और पेड़ों की टहनियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली जाती है । दनाग्नि ।

यौ०—दावनलेस = वन में लगनेवाली अग्नि । दावाग्नि । उ०—ज्यों पिणो कृष्ण दावानलेस ; त्यों पिऊँ गद्द आबूय देस ।—पृ० रा०, १२ । ७४ ।

दाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] १. विजली । २ स्त्रियों के माथे पर का एक गहना । बेदी ।

दावित—वि० [सं०] पीड़ित । व्यथित [को०] ।

दावी—संज्ञा पुं० [सं० धव] धव का पेड़ ।

दावीदार—संज्ञा पुं० [प्र० दावी + क्रा० दार] दे० 'दावागीर' [को०] ।

दावेदार—संज्ञा पुं० [प्र० दावा + क्रा० दार] दे० 'दावादार' ।

दाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ मछुआ । घोवर । केवट ।

विशेष—निषाद पुरुष और आयोग्य स्त्री से उत्पन्न व्यक्ति को दाश कहते हैं । ये नौका बनाते हैं और केवट या केवट भी बटुलाते हैं ।

यौ०—दाशग्राम = दे० 'दाशपुर' । दाशनदिनी = सत्यवती । ग्यास की माता ।

२. भृत्य । नोकर । सेवक ।

दाशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोवरों की बस्ती । २. एक प्रकार का मोथा । केवट मुस्तक ।

दाशरथ^१—वि० [सं०] दशरथ सबधी ।

दाशरथ^२—संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र ।

दाशरथि—संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र आदि ।

दाशरात्रिक—सं० [सं०] दशरात्र सबधी (यज्ञ, कृत्य आदि) ।

दाशार्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दशाण देश । २ दशाण देश का निवासी ।

दाशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] दशाह के वंश का मनुष्य । यदुवंशी ।

दाशेय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दाशेयी] दाश से उत्पन्न ।

दाशेय^२—सङ्घा पुं० दाश का पुत्र । धीवरपुत्र ।

दाशेयी—सङ्घा स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती [को०] ।

दाशेर—सङ्घा पुं० [सं०] धीवरी की सतति ।

दाशेरक—सङ्घा पुं० [सं०] १ मरु प्रदेश । मारवाड़ । २ मारवाड़ का निवासी ।

दाशौदनिक^१—वि० [सं०] दशोदन यज्ञ संबंधी ।

दाशौदनिक^२—सङ्घा पुं० दशोदन यज्ञ की दक्षिणा ।

दाशत—सङ्घा स्त्री० [फ्रा०] परवरिण । पालन पोषण । देखरेख । रखवारी ।

दाशता—सङ्घा स्त्री० [फ्रा० दाशतह्] रखेल । उपपत्नी [को०] ।

दाश्व—वि० [सं०] देनेवाला ।

दाशना^१—क्रि० सं० [दश०] १ कहना । उ०—दापे सो दस दोष रो निरणों निपट ग्रन्थ ।—रघु० ६० पु० ३२ । २. देखना ।

दास^१—सङ्घा पुं० [सं०] [स्त्री० दासी] १ वह जो अपने को दूसरे की सेवा के लिये समर्पित कर दे । सेवक । चाकर । नौकर ।

विशेष—मनु ने सात प्रकार के दास लिखे हैं—ध्वजाहृत, अर्थात् युद्ध में ।। हुमा, भक्त दास, अर्थात् जो भ्रातृ या भोजन पर रहे, गृहज, अर्थात् जो घर की दासी से उत्पन्न हो, श्रौत, अर्थात् मोल लिया हुआ, दात्रिम, अर्थात् जिसे किसी ने दिया हो, दण्डदास, अर्थात् जिसे राजा ने दास होने का दण्ड दिया हो, और पैतृक, अर्थात् जो बाप दादों से दाय में मिला हो । याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतियों में दास पंद्रह प्रकार के गिनाए गए हैं—गृहजात, श्रौत, दाय में मिला हुआ, अन्नाकालभृत, अर्थात् अकाल या दुर्भिक्ष में पाला हुआ, आहित, अर्थात् जो स्वामी से दकट्टा धन लेकर उसे सेवा द्वारा पटाता हो, ऋणदास, जो ऋण लेकर दारास्व के बंधन में पड़ा हो, युद्धप्राप्त, बाजी या जुए में जीता हुआ, स्वयं उपगत, अर्थात् जो आपसे आप दास होने के लिये आया हो, प्रज्ज्याचसित, अर्थात् जो सन्यास से पतित हुआ हो, कृत, अर्थात् जिसने कुछ काल तक के लिये आपसे आप सेवा करना स्वीकार किया हो, भक्तदास, बड़वाहृत, अर्थात् जो किसी बड़वा या दासी से विवाह करने से दास हुआ हो, लब्ध, जो किसी से मिला हो, और आत्मविक्रैता, जिसने अपने को बेच दिया हो ।

ब्राह्मण के लिये दास होने का निषेध है, ब्राह्मण को छोड़ और तीनों वर्णों के लोग दास हो सकते हैं । यदि कोई ब्राह्मण लोभवश दासत्व स्वीकार करे तो राजा उसको दण्ड दे (मनु) । क्षत्रिय और वैश्य दासत्व से विमुक्त हो सकते हैं पर शूद्र दासत्व से नहीं छूट सकता । यदि वह एक स्वामी का दासत्व छोड़ेगा तो दूसरे स्वामी का दास होगा । दास उसे सब दिन रहना पड़ेगा क्योंकि दासत्व के लिये उसका जन्म ही कहा गया है । दासों के दो प्रकार के कर्म कहे गए हैं,—शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) । दरवाजे पर झाड़ देना, मल मूत्र उठाना, झूठा धोना आदि बुरे कर्म माने गए हैं ।

२. शूद्र । ३. धीवर । ४. एक उपाधि जो शूद्रों के नामों के आगे

लगाई जाती है । ५. दस्यु । ६. वृत्रासुर । ७. ज्ञातात्मा । आत्मज्ञानी । ८. दानपात्र (को०) । ९. कायस्थों की एक उपाधि (वगाल) ।

दास^२—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'दासन', 'दासन' । उ०—भा निर्मल सब धरति प्रकाश । सेज सँवारि कीन्ह भल दासु ।—आयसी (शब्द०) ।

दासक—सङ्घा पुं० [सं०] १. दास । सेवक । २. गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि का नाम ।

दासजन—सङ्घा पुं० [सं० दास + जन] भृत्य । सेवक । उ०—विधिकर, किकर दासजन अनुचर अनुग पदाति ।—अनेकार्थ०, पु० ७१ ।

दासता—सङ्घा स्त्री० [सं०] दास का कर्म । दासत्व । सेवावृत्ति ।

दासत्व—सङ्घा पुं० [सं०] १. दास होने का भाव । २. दास का काम । सेवावृत्ति ।

दासनदिनी—सङ्घा स्त्री० [सं० दासनदिनी] धीवर की कन्या सत्यवती जो व्यास की माता थी ।

दासन^१—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'दासन' ।

दासनदासा^१—सङ्घा पुं० [सं० दासानुदास] दे० 'दासानुदास' । उ०—सत्यासी मनि त्यागे दासा । प्रणयत नानक दासन-दासा ।—प्राण०, पु० ६२ ।

दासपन—सङ्घा पुं० [सं० दास + पन (प्रत्यय०)] दासत्व । सेवकर्म ।

दासपुर—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोथा । केवतं मुस्तक ।

दासप्रथा—सङ्घा स्त्री० [सं० दास + प्रथा] वह पुरानी प्रथा जिसके अनुसार दास के रूप में निम्न वर्ग के अनुष्यो का क्रय विक्रय होता था । उ०—दासप्रथा दुनिया के बहुत से भागों से बहुत पहिले खतम हो चुकी ।—भा० ६० ६०, पु० ४६ ।

दासभाव—सङ्घा पुं० [सं० दास्यभाव] भक्ति के ६ भेदों में से एक । उ०—दासभाव सतसंगति लीला । दीन हीन मन होइ अधीना ।—घट०, पु० २४६ ।

दासमीय^१—वि० [सं०] दसम देश में उत्पन्न ।

दासमीय^२—सङ्घा पुं० दसम देश का निवासी ।

दासमेय—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद ।

दासा^१—सङ्घा पुं० [सं० दासी (=वेदी)] १. दीवार से सटाकर उठाया हुआ बांध या पुष्ता जो कुछ ऊँचाई तक हो और जिसपर चीज वस्तु भी रख सकें । २. आग्निके चारों ओर दीवार से सटाकर उठाया हुआ चबूतरा जो आग्निके पानी को घर या दालान में जाने से रोकने के लिये बनाया जाना है । ३. वह लकड़ी या पत्थर जो दरवाजे के ऊपर दीवार के आगे पार रहता है । ४. दीवार की कुर्सी के ऊपर बैठाया हुआ पत्थर ।

दासा^२—सङ्घा पुं० [सं० दशन] हंसिया ।

दासातन—सङ्घा पुं० [हि० दासातन] (दासता का) भाव । सेवा-भाव । उ०—पहिले दासातन करे सो वैराग प्रमान ।—पद्म०, पु० ४४ ।

दासानुदास—संज्ञा पुं० [सं० दास + अनुदास] सेवक का सेवक ।
अत्यंत सुच्छ सेवक ।

विशेष—नम्रता और शिष्टता दिखाने के लिये इस शब्द का
व्यवहार अधिक होता है ।

दासायन—संज्ञा पुं० [सं०] दासी का पुत्र [को०] ।

दासि(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० दानो] दे० 'दासी' । उ०—अपर सुधा
के लोभ भई हम दासि तिहारो । ज्यो जुवधी पद कमलनि
कमला चवल नारी ।—नट०, पृ० २७ ।

दासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी । उ०—कूबरी भई है रानी हम
तो बिगनी हाथ, तऊ बिन दामन की दासिका गने रही ।
नागर जू देम छुत प्रापु जग कोटिक लो, चित की लगन जहाँ
मगन बने रही ।—नट०, पृ० २७ ।

दासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा करनेवाली स्त्री । टहलनी ।
लौंही । २. धीवर या शूद्र की स्त्री ।

यौ०—दासीपुत्र ।

३. काकजया । ४. नीलाम्बान । काला कारोठा नाम का पोषा ।
५. कटसरैया । ६. वेदी । ७. वेश्या (को०) ।

दासीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] विदुर । उ०—तजा सकल पकवान लिया
दासीसुत भाजो ।—पलटू०, पृ० ५० ।

दासेय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दासेयी] दास से उत्पन्न ।

दासेय^२—संज्ञा पुं० १. दास । गुलामजादा । २. धीवर ।

दासेयी—स्त्री० स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती ।

दासेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाम । २. कवत । धीवर । ३. ऊँट ।

दासेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दासीपुत्र । दासेय । २. ऊँट ।

दास्ता—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'दास्तान्' । उ०—हाँ, जगत तेरे
बिना आबाद वैसा ही रहेगा । दूसरों के कान में वह दास्ता
अपनी कहेंगा ।—विश्व०, पृ० ७७ ।

दास्तान्—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. वृत्तान्त । २. हाल । कथा । किस्सा ।
३. वार्ता । बयान ।

दास्तान—संज्ञा पुं० [फा० दास्तान्] कथा । वृत्तान्त । उ०—जिसमें
अन्तम हो जाए यही से इस दास्तान का बयान ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ३२३ ।

दास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दासत्व । दासपन । सेवा । उ०—द्रव्य के
लोभ से दास्य अंगीकार कहु ।—प्रेमघन० भा० २,
पृ० ७४ ।

विशेष—दास्य, भक्ति के नव श्रेणी में से एक है ।

दास्यमान्—वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो । जिसे दूसरे को
देना हो ।

दास्य—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र ।

दाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाने की क्रिया या भाव । भस्मीकरण ।
उ०—अयो तो दिली की पति देखत फताह घाज, दाह मिटि
जबो तो हमीर नरनाह की ।—हम्मीर०, पृ० ३७ । २. सब
जलाने की क्रिया । मुर्दा फूटने का काम ।

विशेष—पुद्गितत्व में दाहकर्म के विषय में इस प्रकार लिखा
है । शव को पुत्रादि भक्षण में ले जाकर रखें और स्नान कर
पिंडदान के लिये अन्न पकावें । फिर मृतक के शरीर में घी
मलकर उसे मंत्रपाठपूर्वक स्नान करावें, दूसरे नए वस्त्र में
लपेटें, और घाँव, कान, नाक, मुँह इन सात छेदों में थोड़ा
घीना डालें । इतना हो चुकने पर चिता में अग्नि देनेवाला
प्राचीनावीत होकर (जनेऊ को दाहिने कंधे पर डालकर)
वाया घुटना टेककर बैठे और मंत्र पढ़कर कुश से एक रेखा
खींचे । फिर उस रेखा पर कुश बिछावे और दाहिने हाथ में
तिलसहित जलपात्र लेकर मृगक का नाम, गोत्र आदि उच्चा-
रण करता हुआ जल को कुश पर गिरा दे । इसके अनंतर
तिलसहित पिंड लेकर कुश पर विसर्जित करे । जब इतना
कृत्य हो जाय तब पुत्रादि चिता तैयार करें । और मुर्दे को
उसपर दक्षिण ओर सिर करके लेटा दें । जो सामवेदी हो वे
शव का मस्तक उत्तर की ओर रखें । फिर अग्नि हाथ में लेकर
भाग देनेवाला तीन प्रदक्षिणा करे और दक्षिण ओर अपना
मुँह करके शव के मस्तक की ओर आग लगा दे । फिर सात
लकड़ियाँ हाथ में लेकर सात प्रदक्षिणा करे और प्रत्येक
प्रदक्षिणा में एक एक लकड़ी चिता में डालता जाय । जब शव
जल जाय तब एक बाँस लेकर चिता पर सात बार प्रहार करे
जिससे कपाल फूट जाय । इतना करके फिर वह चिता की
ओर न ताके और जाकर स्नान कर ले ।

३. जलन । ताप । ४. एक रोग जिसमें शरीर में जलन मालूम
होती है, प्यास जगती है और बूढ़ सुखता है । वैद्यक के मत से
यह रोग दाहपित्त के प्रकोप से होता है ।

विशेष—भावप्रकाश में दाह सात प्रकार का लिखा है,—(१)
रक्तजन्य दाह, जिसमें रक्त कुपित होकर सारे शरीर में दाह
उत्पन्न करता है । ऐसा जान पड़ता है, मानो सारा शरीर
आग से तप रहा है और क्षण क्षण पर प्यास लगती है । (२)
रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह, जो किसी अंग में हथियार आदि का घाव
लगने पर उस घाव से कोष्ठ में रक्त जाने से उत्पन्न होता है ।
(३) मद्यज दाह । (४) वृष्णाविरोधज दाह । (५) धातुक्षयज
दाह । (६) सर्माभिघातज दाह, और (७) असाध्य दाह जिसमें
रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंडा रहता है, पर भीतर भीतर
जला करता है ।

५. शोक । सताप । अत्यंत दुःख । डाह । ईर्ष्या । ६. चमकती
हुई लालिमा । दीप्त लाल रंग । जैसे, आकाश का ।

दाहक^१—वि० [सं०] जलानेवाला ।

दाहक^२—संज्ञा पुं० १. चित्रक वृक्ष । चीता । लाल चीता । २.
अग्नि । आग ।

दाहकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकरण—संज्ञा पुं० [सं० दाह + $\sqrt{\text{कृ}}$ करण] जलाने की क्रिया ।
उ०—बोदों के दल का जीते ही वह दाहकरण ।—अपरा,
पृ० २१४ ।

दाहकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शवदाह कर्म । मुर्दा फूँकने का काम ।

दाहकारक—वि० [सं० दाह + कारक] दे० 'दाहक' ।

दाहकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अगर जिसे सुगंध के लिये जलाते हैं ।

दाहक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह कर्म । मृतक को जलाने का संस्कार ।

दाहज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जिसमें शरीर में बहुत अधिक जलन मालूम हो ।

दाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलाने का काम । २ जलवाने का काम । भस्म कराने की क्रिया ।

दाहना^१—क्रि० सं० [सं० दाह] १ जलाना । भस्म करना । २ संतप्त करना । सताना । दुख पहुँचाना । उ०—ब्याल, भनल, विष ज्वाल तैं राखि लई सब ठौर । बिरह भनल भव दाहिही हँसि हँसि नंदकिछोर ।—नद० पृ० ५०, पृ० १८० ।

दाहना^२—वि० [हि०] दे० 'दाहिना' ।

दाहसर, दाहस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दा जलाने का स्थान । शमशान ।

दाहहर, दाहहरण—संज्ञा पुं० [सं०] सप्त । उशीर ।

दाहा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दाह (= दस)] १ मुहूर्त के दस दिन जिसके भीतर ताजिया बनता है और दफन किया जाता है । २ ताजिया ।

दाहागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अगर ।

दाहानल—संज्ञा पुं० [सं० दाह + अनल] दे० 'दावानल' । उ०—सुन बे बेपरवाह निभाएँ दाहानल बुझा ।—घनानंद० पृ० ४५६ ।

दाहिन—वि० [सं० दक्षिण] १ दे० 'दाहिना' । २ अनुकूल । उ०—(क) गेला हूँ पुत्र बेमे उतरो न देह । दाहिन बचन वाम फए लेह ।—विद्यापति, पृ० ३०७ । (ख) बार बार बिनवों नंद-साला । मोपे दाहिन होहु कृपाला ।—सूर (शब्द०) ।

दाहिना—वि० [सं० दक्षिण] [वि० स्त्री० दाहिनी] १ उस पार्श्व का जिसके अगों की पेशियों में अधिक बल होता है । उस ओर का जिस ओर के अंग काम करने में अधिक तत्पर होते हैं । 'बायाँ' का उलटा । दक्षिण । अपसव्य । जैसे, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, दाहिनी आँख ।

मुहा०—दाहिनी देना = दक्षिणावर्त परिक्रमा करना । प्रदक्षिणा करना । उ०—जटा भस्म तनु दहै वृथा करि कर्म बंधावै । पुहुमि दाहिनी देहि गुफा बसि मोहि न पावै ।—सूर (शब्द०) । दाहिनी साना = पदक्षिणा करना । उ०—पचवटी गोदहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई ।—तुलसी (शब्द०) । (किसी का) दाहिना हाथ होना = बढ़ा भारी सहायक होना ।

२ उधर पडनेवाला जिधर दाहिना हाथ हो । जैसे, दाहिनी दिशा । ३. अनुकूल । प्रसन्न ।

दाहिनावर्त्त^१—वि० [सं० दक्षिणावर्त्त] १ प्रदक्षिणा । २ एक प्रकार का खेल । दे० 'दक्षिणावर्त्त' ।

दाहिनी—क्रि० स्त्री० [हि०] दे० 'दाहिने' । उ०—सदा भवानी दाहिनी कपुख रई बनेह ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०२ ।

दाहिने—क्रि० वि० [हि० दाहिना] दाहिने हाथ की ओर । उ०

तरफ जिस तरफ दाहिना हाथ हो । दाहिने हाथ की दिशा में । जैसे,—तुम्हारे दाहिने जो मकान पड़े उसी में पुकारना ।

मुहा०—दाहिने होना = अनुकूल होना । हित की ओर प्रवृत्त होना । प्रसन्न होना । उ०—पुनि वदौ खल गन सति भाए । जे विनु काज दाहिने जाएँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाहिमा—संज्ञा पुं० [सं० दाघिमय या देय०] १. प्राचीन ब्राह्मण वंश, जिसमें कृष्ण पयहारी ने जन्म लिया था । उ०—दाहिमा वंश दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४४० । २. दाहिमा या दाघिमय नाम का प्रदेश ।

दाही^१—वि० [सं० दाहिव] [वि० स्त्री० दाहिनी] जलानेवाला । भस्म करनेवाला ।

दाही^२—वि० [म०] प्रकलमद । बुद्धिमान । उ०—दाही हजार लख है कोई पेणवा है एक ।—कबीर म०, पृ० ३२३ ।

दाहु^१—वि० संज्ञा पुं० [सं० दाह] दे० 'दाह' । उ०—मिटि गयो हेरत हिय को दाह ।—नद० पृ० ५०, पृ० २२८ ।

दाहुक—वि० [सं०] दे० 'दाही' [को०] ।

दिंक—संज्ञा पुं० [सं० दिङ्क] छूँ नाम का छोटा कीड़ा जो सिर के वालों में पडता है ।

दिंड—संज्ञा पुं० [सं० दिण्ड] एक तरह का नाच । उ०—उलटा टँकी भासम सविह । पद पलटि हृमयी निशंक चिह ।—केतव (शब्द०) ।

दिंडि—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डि] १ शिव का एक नाम । २. एक नाजा । दिंडिर ।

दिहिर—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डिर] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा ।

दिंडी—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डी] उन्नीस मात्राओं का एक छंद ।

विशेष—इसके मूल में दो गुरु होते हैं और इसमें ६ तथा १० पर विश्राम होता है । इसमें कभी केवल दो चरणों का और कभी चार चरणों का अनुपास होता है । मराठी भाषा में इस छंद का विशेष व्यवहार होता है ।

दिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डीर] हिंडीर । समुद्रफेन ।

दिअट^१—संज्ञा पुं० [हि० दीवट] दे० 'दीवट' । उ०—तब विज्ञान रुपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ । चित्त दिग्मा भरि बरे द्य समता दिअटि बनाइ ।—मानस, ७ । ११७ ।

दिअना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दीया' ।

दिअरा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दीया' ।

दिअला^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दीया' ।

दिअली—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया (= छोटा कपूरा) का स्त्री०, प्रत्यय०] १ मिट्टी का बना हुआ बहुत छोटा दीया या कसोरे के आकार का पात्र । २ भूल के नीचे की हरे रंग की कटोरी जो कई फाँकों में बँटी होती है । ३ दे० 'बिउली' ।

दिग्वा—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीया' । उ०—बारह प्रकाश कब मिल राखी । नहि नकु बहिष दिग्वा नृत राखी ।—कवच, अ० १२० ।

दिशाना—क्रि० सं० [हि० दिलाणा] दे० 'दिलाना' । उ०—सब दिन राजा दान दिमावा । भइ निशि नागमती पहुँ भावा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिश्यावसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दिश्या + वसी] दे० 'दियावसी' ।

दिश्यारा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० दयार] दे० 'दयार' ।

दिश्यारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ दे० 'दयार' । २ दे० 'दियारा' ।

दिश्यावना—क्रि० सं० [हि० दिश्याना] दे० 'दिलाना' । उ०—प्रभव पीठ कहूँ धरत ? कौन रवि के जिय भावत ? राजा के दरबार समहि सुधि कौन दिमावत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६३४ ।

दिश्यासलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दिश्या + सलाई] दे० 'दियासलाई' ।

दिउरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० दिमली] छोटा दीया ।

दिउरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दिवाल्य] देवस्थान या मंदिर की देहली । उ०—मन तारा केतो रहि रानी । दिउरी एक देखि विषकानी ।—द्वि०, पृ० ६५ ।

दिउला—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दिउली' ।

दिउली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दिमली] १. सूखे घाव के उपर की पपड़ी । खुरंड । छुट्टी । दाल । २ दे० 'दिमली' । ३. मछली के ऊपर से छूटनेवाला छिलका । सेहरा ।

दिक्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा । ओर । तरफ । उ०—धोक प्रथोक कोकनद फूले, मधु के मद भोरे दिक् भूले ।—भारतेंदु, पृ० ४० ।

दिक्—वि० [अ० दिक्] १ जिसे बहुत कष्ट पहुँचाया गया हो । हैरान । तंग । जैसे,—यह लड़का बहुत दिक् करता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

२. अस्वस्थ । बीमार ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग तबीयत शब्द के साथ होता है । जैसे,—कई दिनों से उनकी तबीयत दिक् है ।

क्रि० प्र०—रहना ।—होना ।

दिक्—सञ्ज्ञा पुं० क्षय रोग । तपेदिक् ।

दिक्चन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ऊख जिसका गुड़ बहुत अच्छा बनता है ।

दिक्दाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिग्दाह] दे० 'दिग्दाह' । उ०—ऊकपात दिक्दाह दिन फेरहि स्वान सियार । उदित केतु गत हेतु महि कपति बारहि बार ।—तुलसी (शब्द०) ।

दिक्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दाल ; विशेषतः चने की दाल ।

दिक्काफ़—सञ्ज्ञा पुं० [अ० दक्काफ़ (= बारीक)] किसी चीज का छोटा टुकड़ा । कतरन । घञ्जी ।

दिक्का—वि० [अ० दक्कियामूस] बहुत बड़ा चालाक । खुरटि ।

दिक्कोड़ो—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] बर । हड्डा ।

दिक्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा ।

१-५

दिक्कत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० दिक्कत] १ दिक् का भाव । परेशानी । तकलीफ । तंगी । कष्ट ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

२. कठिनता । मुश्किल ।

क्रि० प्र०—ढालना ।—पढ़ना ।

दिक्कन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दिशारूपी कन्या ।

विशेष—पुराणानुसार दिशाएँ ब्रह्मा की कन्याएँ मानी गई हैं । वाराहपुराण में लिखा है कि जिस समय ब्रह्मा सृष्टि करने को बिता में थे उस समय उनके कान से दस कन्याएँ निकलीं । ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम लोगों की जिधर इच्छा हो उधर चली जाओ । तदनुसार सब एक एक दिशा में चली गईं । इसके उपरांत ब्रह्मा ने पाठ लोकपाशों की सृष्टि की ओर अपनी पाठ कन्याओं को बुलाकर प्रत्येक लोकपाल को एक एक कन्या प्रदान की । तदुपरांत वे स्वयं आकाश की ओर चले गए और नीचे की ओर उन्होंने शेष को रखा ।

दिक्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

दिक्कर—वि० [वि० स्त्री० दिक्करिका] युवक । जवान ।

दिक्करवासिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दिक्कर अर्थात् महादेव में निवास करनेवाली एक देवी ।

दिक्करि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिक्करिन्] दे० 'दिक्करी' । उ०—बनि न सकत भूमिधर दिक्करि, टुटत रह फटत नम बिक्करि ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १० ।

दिक्करिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार एक नदी जो मान सरोवर के पश्चिम में बहती है ।

विशेष—यह नदी दिग्गजों के क्षेत्र से निकलती है इसी लिये दिक्करिका कहलाती है । संभवतः यह नदी दिक्काई नदी है, जो कामरूप देश में बहती है ।

दिक्करिका—वि० युवती । तरुणी । दिक्करी [स्त्री०] ।

दिक्करी—वि० [सं०] युवती । जवान । तरुणी [स्त्री०] ।

दिक्करी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिक्करिन्] पाठों दिशाओं के ऐरावत प्रादि पाठ हाथी । दिग्गज ।

दिक्कांता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दिक्कान्ता] दे० 'दिक्कन्या' ।

दिक्कामिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिक्कन्या' [स्त्री०] ।

दिक्कासातीत—वि० [सं० दिक् + काल + प्रतीत] दश दिशाओं और भूत, भविष्य, वर्तमान इस त्रिकाल से परे । जो देश और काल के बंधन से मुक्त या परे हो ।

दिक्कुंजर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिक्कुञ्जर] दिग्गज [स्त्री०] ।

दिक्कुमार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार भवनपति नामक देवताओं में से एक ।

दिक्चक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाठों दिशाओं का समूह ।

दिक्पति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष के अनुसार दिशाओं के स्वामी ग्रह ।

विशेष—ज्योतिष में आठ दिशाओं के स्वामी आठ ग्रह माने जाते हैं। यथा दक्षिण के स्वामी मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, अग्निकोण के शुक्र, नैऋतकोण के राहु, वायुकोण के चंद्रमा और ईशान कोण के बृहस्पति।

२ दे० 'दिक्पाल'।

दिक्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता। यथा, पूर्व के इन्द्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋतकोण के नैऋत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्ध्व दिशा के ब्रह्मा और अधोदिशा के भनत।

विशेष—दे० 'दिक्कन्या'।

२ चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है। इसकी पाँचवीं और सत्रहवीं मात्राएँ लघु होती हैं। उर्द्ध का रेखा यही है। जैसे,—हरिनाम एक साँची सब झूठ है पसारा।

दिक्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'। उ०—सर मज्जन करि आतुर भावहु। दिक्पा देखे ज्ञान जेहि पावहु।—मानस, ६।५६।

दिक्शिखा—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व दिशा को०।

दिक्शूल—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट दिनों में कुछ विशिष्ट दिशाओं में काल का वास जो कुछ विशेष योगिनियों के योग के कारण माना जाता है।

विशेष—जिस दिन जिस दिशा में कुछ विशिष्ट योगिनियों के योग के कारण इस प्रकार काल का वास और दिक्शूल माना जाता है, उस दिन उस दिशा की ओर यात्रा करना बहुत ही अशुभ और हानिकारक माना जाता है। कहते हैं, दिक्शूल में यात्रा करने से मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होता, आर्थिक हानि होती है, कोई न कोई रोग हो जाता है, और यहाँ तक कि कभी कभी यात्री की मृत्यु भी हो जाती है। निम्नलिखित दिशाओं में निम्नलिखित वारों को दिक्शूल माना जाता है—
पश्चिम की ओर शुक्र और रविवार को
उत्तर " " मंगल " बुधवार को
पूर्व " " शनि " सोमवार को
दक्षिण " " बृहस्पति वार को

किसी किसी के मत से बुध और बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर, बृहस्पतिवार को चारों ओरों की ओर, रवि तथा शुक्रवार को पश्चिम दिशा की ओर शूल होता है। पहले और प्रधान मत के संबंध में यह श्लोक है—'शनौ चन्द्रे त्यजेत् पूर्वम्, दक्षिणस्याम् दिशो गुरो। सूर्यं शुक्रे पश्चिमाशाम्, बुधे भीमे तपोत्तरे।' लोगों ने एक चौपाई भी बना ली है जो इस प्रकार है—सोम सनीचर पुरब न चालु। मंगल बुध उत्तर दिस कालु। प्रादित शुक्र पश्चिम दिस राहु। बीके बखिन सक दिस दाहु।

दिक्साधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपाय जिससे दिशाओं का ज्ञान हो। जैसे, जिस ओर सूर्य उदय होता हो उस ओर मुँह करके

खड़े होना और तब यह समझना कि सामने पुरब, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर है, अथवा कुछ विशेष नियमों के अनुसार घूम में समवृत्त बनाकर और उसमें लकड़ी आदि गाड़कर उस की छाया से दिशा का पता लगाना। सूर्यसिद्धांत आदि प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार दिक्साधन की कई विधियाँ लिखी हैं।

दिक्सुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्सुन्दरी] दे० 'दिक्कन्या'।

दिक्स्वामी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पति'।

दिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'।

दिक्षागुरु—संज्ञा पुं० [सं० दीक्षागुरु] दे० 'दीक्षागुरु'।

दिक्षित—वि० [सं० दीक्षित] दे० 'दीक्षित'।

दिखण—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—(क) भरत लघु तगण धननास पत प्रकास, पिता जम मात दिखणा हरत पेल।—रघु० क०, पृ० ५४। (ख) देस निवाणू सजल जल, मोठा बोला सोई। मार कौमणि दिखणि घर हरि दीयइ तउ होइ।—ढोला०, पृ० ६६८।

दिखना—क्रि० प्र० [हि० देखना] दिखाई देना। देखने में आना।

दिखरादेना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखलाना'।

दिखराना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखलाना'।

दिखरावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखलाना'। उ०—हो हो करत भरत ही भावत दिखरावत बरबोरी।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २६४।

दिखरावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखलाना] १ दिखाने का भाव या क्रिया। दिखाई। २ दे० 'दिखलवाई'। ३. नवबधू का मुख देखकर बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा दिया जानेवाला उपहार।

दिखलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखलाना] १ वह धन जो दिखलवाने के बदले में दिया जाय। २ दे० 'दिखलाई'।

दिखलवाना—क्रि० सं० [हि० दिखलाना का प्रे० रूप] दिखलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दिखलाने में प्रयुक्त करना।

दिखलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखलाना] १ दिखलाने की क्रिया। २ दिखलाने का भाव। ३ वह धन जो दिखलाने के बदले में दिया जाय।

दिखलाना—क्रि० सं० [हि० देखना का प्रे० रूप] १. दूसरे को देखने में प्रयुक्त करना। दृष्टिगोचर कराना। दिखाना। जैसे,—उन्होंने हमें तुम्हारा मकान दिखला दिया। २ अनुभव कराना। मालूम कराना। जताना। जैसे,—हम तुम्हें इसका मजा दिखला देंगे।

सयो० क्रि०—डालना।—देना।

दिखलाव—संज्ञा पुं० [हि० दिखलाना] दे० 'दिखावा'। उ०—मल। यह क्या केवल दिखलाव, मूक व्यथा का मुखर भुलाव।—पल्लव, पृ० ८७।

दिखलावा—संज्ञा पुं० [हि० दिखलाव] दे० 'दिखावा'।

दिखवैया—संज्ञा पुं० [हि० दिखाना + वैया (प्रत्य०)] दिखलानेवाला।

दिखवैया²—सञ्ज्ञा पुं० [हि० देखना + वैया (प्रत्य०)] देखनेवाला ।
दिखहार⁴—सञ्ज्ञा पुं० [हि० देखना + हार (प्रत्य०)]
देखनेवाला ।

दिखाई¹—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दिखाना + भाई (प्रत्य०)] १. दिखाने
का काम । २. दिखाने का भाव । ३. वह धन जो दिखाने
के बदले में दिया जाय ।

दिखाई²—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० देखना + भाई (प्रत्य०)] १. देखने का
काम । २. देखने का भाव । ३. वह धन जो देखने के बदले में
दिया जाय ।

दिखाऊ¹—वि० [हि० दिखाना या देखना + भाऊ (प्रत्य०)] देखने
योग्य । दर्शनीय । २. दिखाने योग्य । ३. जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके । ४. दिखौआ । बनावटी ।

दिखादिखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० देखना] देखादेखी । सामना ।
उ०—जे सब होत दिखादिखी भईं भ्रमो इक भौक । रहै
तिरीछो डोठि अब हूँ बीछो का डौक ।—विहारी (शब्द०) ।

दिखाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखलाना' ।

दिखाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० देखना + भाव (प्रत्य०)] १. देखने का
भाव या क्रिया । २. दृश्य । जैसे,—इस जगह का दिखाव
बहुत अच्छा है ।

दिखावट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० देखना + भावट (प्रत्य०)] १.
दिखलाने का भाव या ढंग । ऊपरी तड़क भटक । बनावट ।

दिखावटी—वि० [हि० दिखावट + ई (प्रत्य०)] जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके । दिखौआ ।

दिखावणहार⁴—वि० [हि० दिखाना + (प्रत्य०) हार (=वाला)]
दिखानेवाला । उ०—सतगुरु की महिमा धनैत, धनैत किया
उपगार । लोचन धनैत उपाडिया, धनैत दिखावणहार ।—
कबीर ग्रं०, पृ० १ ।

दिखावना⁴—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखाना' ।

दिखावा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० देखना + भावा (प्रत्य०)] ग्राहवर । झूठा
ठाठ । ऊपरी तड़क भटक ।

दिखैया⁴—सञ्ज्ञा पुं० [हि० देखना + ऐया (प्रत्य०)] देखनेवाला ।

दिखैया²—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दिखाना + ऐया (प्रत्य०)] दिखानेवाला ।

दिखौआ—वि० [हि० देखना + भौआ (प्रत्य०)] वह जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके । बनावटी । दिखाऊ ।

दिखौवा—वि० [हि० देखना + भौवा (प्रत्य०)] दे० 'दिखौआ' ।

दिग्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सं० 'दिक्' का समस्त-पद-प्रयुक्त रूप । जैसे,
दिगगना, दिगोश, दिग्देवता आदि ।

दिगगना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दिगङ्गना] दिशा रूपी कन्या । दिक्कन्या ।

दिगंचल¹—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिक् + अंचल] दिशा । दिशा का छोर ।
दिग्भाग । उ०—नामहीन सौरभ में मज्जित, हो उठता
उच्छ्वसित दिगंचल ।—भक्तिमा, पृ० १२ ।

दिगंचल⁴—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिक् + अंचल] पलक जो आँखों को
ढँकता है । नेत्रपट । उ०—भए विलोचन चारु अंचंचल ।
बनहु बकुचि निमि उजे दिगंचल ।—मानस, १।२३० ।

दिगंत¹—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिगन्त] १. दिशा का छोर । दिशा का अंत ।

२. आकाश का छोर । क्षितिज । ३. चारो दिशाएँ । ४.
दसो दिशाएँ ।

यौ०—दिगंतगामिनी = दिशाओं के छोर तक पहुँचनेवाली
उत्कट प्रतीक्षा दिगंतगामिनी अभिलाषा । समुद्र गर्जन में सगीठ
की, सृष्टि करने लगी ।—आकाश०, पृ० १०१ । दिगत
फलक = क्षितिज रूपी फलक या पृष्ठभूमि । उ०—हो गया
साध्य नभ का रक्ताभ दिगत फलक ।—अपरा, पृ० ६५ ।

दिगंत⁴—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिग् + अन्त] आँख का कोना । उ०—राखे
पितंबर ज्यों चहुँपों, कछु तैसिये लाली दिगंतन छाई ।—
द्विजदेव (शब्द०) ।

दिगंतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिगन्तर] दो दिशाओं के बीच का स्थान ।

दिगंबर¹—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिग्भर] १. शिव । महादेव ।

२. नगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती । क्षणिक । ३.
दिशाओं का वस्त्र-अवधार । तम । अंधेरा । ४. स्कंद का
एक नाम (को०) ।

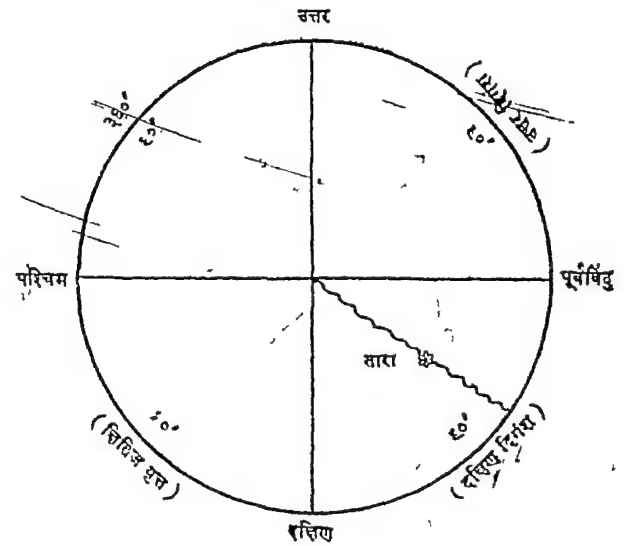
दिगंबर²—वि० दिशाएँ ही जिसका वस्त्र हों, अर्थात् नगा । नग्न ।

दिगंबरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दिग्भरता] नगापन । नग्नता ।

दिगंबरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दिग्भर] दुर्गा ।

दिगश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त का ३६०वाँ अंश ।

विशेष—आकाश में ग्रहों और नक्षत्रों आदि की स्थिति जानने के
लिये क्षितिज वृत्त को ३६० अंशों में विभक्त कर लेते हैं और
जिस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जानना होता है, उसपर से
अधस्त्वस्तिक और खस्त्वस्तिक को दूता हुआ एक वृत्त खे
जाते हैं । यही वृत्त पूर्व बिंदु से क्षितिज वृत्त को दक्षिण
अथवा उत्तर जितने अंश पर काटता है उतने को उस ग्रह या
नक्षत्र का दिगंश कहते हैं ।



दिगश यत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिगंशयत्र] वह यत्र जिससे किसी ग्रह
या नक्षत्र का दिगंश जाना जाय ।

दिग⁴—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिक्' ।

दिग्दंति—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दन्ति] दे० 'दिग्गज' । उ०—कमठ कोल दिग्दंति सकल भोग सजग करहु प्रभु काज । चहत चपरि सिव चाप बढ़ावन दसरथ को जुवराज ।—सुलसी प्र०, पृ० ३१६ ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] दिशा का स्वामी । दिग्पाल [को०] ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिक्-दिग्पाल] दे० 'दिक्पाल' । उ०—(क) चासि अचला अचल घालि दिग्पाल बल पालि ऋषिराज के बचन परचढ को ।—केशव (शब्द०) । (ख) दिग्पासन को जुवपासन की लोकोपालन की किन मातु गई ज्यै ।—केशव (शब्द०) ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्दक्षिण] दिशारूपी भीति । उ०—महाराज सिवराज तब सुघर घवल पुव किति । छवि छटान सौं छुवति सी छिति भ्रमग दिग्दक्षिण ।—भूषण० प्र०, पृ० ७४ ।

दिग्दक्षिण—वि० [प्रा०] दे० 'दिग्दक्षिण' । उ०—बावर न बरोवर बादशाह, मन दिग्दक्षिण न दीदम दर दुनी ।—भक्तवरी०, पृ० ६५ ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] पवन । वायु । हवा [को०] ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दक्षिण] दिग्गज । दिग्दक्षिण । उ०—कहै 'मतिराम' बल विक्रम बिहद सुनि, गरजनि परे दिग्दक्षिण बिपति में ।—मति० प्र०, पृ० ३८६ ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिक् सिन्धुर] दिशाओं के हाथी । दिग्गज । उ०—चलत कटक दिग्दक्षिण दिग्दक्षिण । छुमित पयोधि कुघर डगमगहि ।—मानस, ६ । ७८ ।

दिग्दक्षिण—वि० [सं०] दूर से आया हुआ । दूरागत [को०] ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल । दिशाओं के अधिपति ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] १. माओ दिक्पाल । २. सूर्य, चंद्रमा आदि ग्रह ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [हिं० दिग् + दक्षिण] दे० 'दिग्दक्षिण' ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वे आठों हाथी जो आठों दिशाओं में पृथ्वी को दबाए रखने और उन दिशाओं की रक्षा करने के लिये स्थापित हैं ।

विशेष—दिशाओं के पूर्वादि क्रम से उनके नाम ये हैं—पूर्व में ऐरावत, पूर्वोदक्षिण के कोने में पुटरीक, दक्षिण में वामन, दक्षिणपश्चिम में कुमुद, पश्चिम में भजन, पश्चिमउत्तर के कोने में पुष्पदंत, उत्तर में सावंभोम और उत्तर पूर्व के कोने में सप्ततीक या सुप्रतीक ।

दिग्दक्षिण—वि० बहुत बड़ा । बहुत भारी । जैसे, दिग्गज विद्वान्, दिग्गज पंडित ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिग्गज] दे० 'दिग्गज' । उ०—हो कोल दिग्दक्षिण भोगे सुधावे ।—ह० रासो, पृ० ६६ ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + गजेन्द्र, प्रा० गयद] दिग्गज । उ०—दिग्दक्षिण लखरत, परत दसकठ मुखल भर । सुरविमान हिमभानु भानु सघटित परस्पर ।—सुलसी प्र०, पृ० १५७ ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + ग्रह (= ग्रहण करनेवाले)] दे० 'दिक्पाल' । उ०—रहत दरगह नृपह दिग्दक्षिण जीति विग्रह दुसह षह जह ।—रघु० ४०, पृ० २२६ ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा स्त्री० [सं० दीघिका] दे० 'दिग्दक्षिण' ।

दिग्दक्षिण—वि० [सं० दीघं, प्रा० दिग्घ] १. लंबा । उ०—सिर दिग्घ दिग्घ दतह सुभग जरअराह वगर जरिय—पृ० रा०, ६।१५५ । २. बड़ा । विशाल । उ०—कहै मतिराम सब यावर जगम जरा जाकी दिग्घ उदर दरी में दरसत है ।—मतिराम (शब्द०) ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्दक्षिण ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिग्दक्षिण' ।

दिग्दक्षिण—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दन्ति] दिग्गज । उ०—मेघ कछु न कछु दिग्दक्षिण न कुटलि कोल कछु न कछु है ।—सुषण प्र०, पृ० ३४ ।

दिग्दर्शक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दर्शक यंत्र] डिब्बिया के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । कपास । कुतुबनुमा ।

विशेष—इसके बीच में लोहे की एक सुई लगी होती है जिसके मुंह पर चुंबकत्व की शक्ति रहती है जिसके कारण सुई का मुंह सदा उत्तर दिशा की ओर रहता है । इसका विशेष व्यवहार जहाजों आदि में दिशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होता है । इसे कुतुबनुमा और कपास भी कहते हैं ।

दिग्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो कुछ उदाहरण स्वरूप दिसलाया जाय । नमूना । २. नमूना दिखाने का काम । ३. अभिज्ञान । जानकारी । ४. दे० 'दिग्दर्शक यंत्र' ।

दिग्दर्शनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्दर्शन] दे० 'दिग्दर्शक यंत्र' ।

दिग्दाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक देवी घटना जिसमें सूर्यास्त होने पर भी दिशाएँ लाल और जलती हुई सी दिसलाई पड़ती हैं ।

विशेष—इसे लोग भ्रम मानते हैं और समझते हैं कि इसके उपरांत युद्ध, दुर्मिष या रोग आदि होता है । वृहत्संहिता में इसके फल आदि का विस्तृत उल्लेख है ।

दिग्देवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्दैवत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' [को०] ।

दिग्द्योतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिग्दर्शक यंत्र' ।

दिग्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विपाक्त वाण । जहर में बुझाया हुआ वाण । २. तेल । ३. भग्नि । ४. प्रबध । निबध ।

दिग्घ—वि० [सं०] १. विपाक्त । जहर में बुझा हुआ । २. तिल । तिला हुआ ।

दिग्घट—संज्ञा पुं० [सं० दिक्घट] १. दिशारूपी वस्त्र । उ०—भुजग विभूषण दिग्घट धारी । मर्ध भग गिरिराज कुमारी ।—सबलसिंह (शब्द०) । २. दिशा रूपी वस्त्र धारण करने वाला । नगा । दिग्बर ।

दिग्घटि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्बल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार सप्त आदि पर स्थित ग्रहों का बल ।

विशेष—यदि सप्त से दसवें स्थान पर मंगल और रवि हो तो दक्षिण, यदि सप्त से सातवें स्थान पर शनि हों तो पश्चिम और यदि चौथे स्थान पर शुक्र और चंद्र हों तो उत्तर दिशा

दिठ७†—सखा खो० [सं० दृष्टि] दे० 'दीठ' । उ०—एकहि व्यापक
वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म बिलासे । ज्यों नट मन्त्रवि

सों शिठ बाधत है कछु भोरई भोरई भासे।—सुपर प्र०,
भा० २, पु० ५८१।

क्रि० प्र०—बाधना।

दिठवन—सछा स्त्री० [सं० देवोत्पान] दे० 'देवोत्पान' (एकादशी)।

दिठादिठी—सछा स्त्री० [हि० दीठ (घास्रहित)] देखादेखी। सामना।
उ०—सहि सूते घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गड़ी सुचित
नाही करति करि सलबोहीं छीठि।—बिहारी (पद०)।

दिठाना—क्रि० सं० [हि० दीठ + घाना (प्रत्य०)] नजर
लगाना। दृष्टि लगाना। डीठ लगाना।

दिठाना^२—क्रि० सं० दीठ लगाना। नजर लगाना।

दिठार—वि० [हि०] दृष्टिवाला। दिठियार। मोखोवाला। देखने
की क्षमता रखनेवाला। उ०—माधिर कहै सबै हम देखा।
उहाँ दिठार बैठि मुख देखा।—कबीर (शिषु०),
पृ० १६४।

दिठियार^३—वि० [हि० दीठ (= दृष्टि) + द्वार (प्रत्य०)]
देखनेवाला। मोखवाला। जिसे दिखाई देता हो।

दिठोना—सछा पुं० [हि० दीठ + मोना (प्रत्य०)] दे० 'दिठोना'।
उ०—होत दसगुनो मकु है दिऐं एक ज्यों बिदु। दिए दिठोना
पों बड़ी मानन भाभा इदु।—मति० प्र०, पु० ४५३।

दिठौना—सछा पुं० [हि० दीठ (= दृष्टि) + मोना (प्रत्य०)]
बच्चों के माथे में भी के कोने के समीप लगा हुआ काजल
का बिंदु जो दृष्टि का दोष शांत करने को लगाया जाता है।
बहु बिंदो जी बालको को नजर से बचाने के लिये लगाई
जाती है।

क्रि० प्र०—लगाना।

दिढ़^४—वि० [सं० दृढ़, प्रा० दिढ, दिढ] दे० 'दृढ़'। उ०—जोगी
बार भाव सो जेहि मिह्या के पास। जौ निरास दिढ़ भासन,
कत गवने केहु पास '—जायसी प्र०, पु० २६८।

दिढ़ता^५—सछा स्त्री० [सं० दृढ़ता] दे० 'दृढ़ता'।

दिढ़ाई^६—सछा स्त्री० [हि० दिढ़ + भाई (प्रत्य०)] दे० 'दृढ़ता'।

दिढ़ाना^७—क्रि० सं० [सं० दृढ़ + घाना (प्रत्य०)] १ पक्का
करना। दृढ़ करना। मजबूत करना। २ निश्चित करना।
उ०—है दिढ़ाईवे जोग जो ताको करत दिढ़ाय।—भूषण
प्र०, पु० ५८।

दिढ़ाव^८—सछा स्त्री० [सं० दृढ़ता अथवा हि० दिढ + भाव (प्रत्य०)]
दृढ़ बनना। दृढ़ता युक्त करना। दे० 'दृढ़ता'। उ०—है दिढ़ा-
इवे जोग जो, ताको करत दिढ़ाव।—भूषण प्र०, पु० ५८।

दिण्द^९—सछा पुं० [सं० दिनेंद्र] सूर्य। उ०—निजर परबखे
राठवड़, भकवर तेज दिण्द। जाणे व्योम विमान सम, भोम
प्रगट्यो इद।—रा० रू०, पु० १०६।

दिण्यर, दिण्यर^{१०}—सछा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिण्यर]
दे० 'दिनकर'। उ०—भाठा हूँगर भुईं घण्ठी, ति या मिलीजद
एम। मानिहैं खिणहि न भेलिहयद, चकवो दिण्यर जेम।
—ढोला०, पृ० ७२।

दित—वि० [सं०] विभक्त। कटा हुआ। छिन्न। खण्डित (को०)।

दितवार^१—सछा पुं० [सं० प्रादित्यवार] दे० 'प्रादित्यवार'।

दिति^२—सछा स्त्री० [सं०] १ वरषप अथवा की एक स्त्री जो दस
प्रजापति की एक कन्या और दैत्यों की माता थी।

विशेष—जब इनके सब पुत्र (दैत्य) इस भोर देवताओं द्वारा
मारे गए तब इन्होंने अपने पति कश्यप अथवा से कहा कि अब
मैं ऐसा पराक्रमी पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्र का भी दमन कर सके।
कश्यप ने कहा—इसके लिये तुम्हें सो वर्ष तक गर्भ धारण
करना पड़ेगा और गर्भकाल में बहुत ही पवित्रतापूर्वक रहना
पड़ेगा। दिति को गर्भ हुआ और वह ६६ वर्ष तक बहुत
पवित्रतापूर्वक रहीं। अन्तिम वर्ष में यह एक दिन रात के समय
बिना हाथ पैर धोए जाकर सो रही। इन्द्र तान में सगे ही थे,
इन्हें भयविशय अवस्था में पाकर उन्होंने इनके गर्भ में प्रवेश
किया और अपने वध से जवानु ने उस टुकड़े को रक्खे। उस
समय मिथु इसने जोर से रोया और बिल्लाया कि इन्द्र
पयरा गए। तब उन्होंने सातों तुरकों में से हर एक के किर
सात सात टुकड़े किए। ये ही उनका स राट मरने कहलाते
हैं। दे० 'मरु'।

विशेष—इस शब्द में 'पुत्र'वाची शब्द लगाने से 'दैत्य' अर्थ होता
है। जैसे, दितिसुत, दितितनय, दितितनयन।

२ तोड़ने या काटने की क्रिया। सटन। ३ दाता। बहुत जो
देता हो।

दिति^३—सछा पुं० राजा। नरेश (को०)।

दितिकुल—सछा स्त्री० [सं०] दैत्यकुल।

दितिज—सछा पुं० [सं०] [स्त्री० दितिजा] दिति से उत्पन्न दैत्य।

दितिननय—सछा पुं० [सं०] दे० 'दितिसुत' (को०)।

दितिपुत्र—सछा पुं० [सं०] दे० 'दितिसुत' (को०)।

दितिसुत—सछा पुं० [सं०] दैत्य। राक्षस। असुर।

दित्य^४—सछा पुं० [सं०] दैत्य।

दित्य^५—वि० जो छेदने या काटने के योग्य हो।

दित्सा—सछा स्त्री० [सं०] दान करने की इच्छा।

दित्सु—वि० [सं०] जो दान करना चाहना हो।

दित्य—वि० [सं०] दान करने योग्य। जो दान किया जा सके।

दिदारा^६—सछा पुं० [प्रा० दीदार] दे० 'दीदार'। उ०—मोर तोर
एतन दिदार यहुरि नहि पाइव हो।—घरम०, पु० ६३।

दिदारी^७—सछा स्त्री० [प्रा० दीदारी] दीदारी। दशन होना। उ०—
यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग।—पलटू०, भा० १
पृ० २२।

दिदोरा—सछा पुं० [हि० दिदोरा] दे० 'दोरा'। उ०—इसकी
परवा न रही कि ताजा हुवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा
मिलता है, कपड़े कितने मेले हैं, उनमें कितने चिलखे पड़े हुए
हैं कि खुजाते खुजाते देह में दिदोरे पड़ जाते हैं।—काया०,
पृ० २८२।

दिहत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की अभिलाषा ।

दिहत्तु—वि० [सं०] जो देखना चाहता है ।

दिगृक्षेय—वि० [सं०] दे० 'दिदृक्षेय' ।

दिहत्तेय—वि० [सं०] दर्शनीय । जो देखने योग्य हो ।

दिद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्योतित वज्र । २. वाण । ३. भाकाश । व्योम (को०) ।

दिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. धीरता । धैर्य । २. धारण करने की क्रिया ।

दिधिषु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहले एक बार व्याही हुई स्त्री का दूसरा पति । २. गर्भाधान करनेवाला मनुष्य ।

दिधिषू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके दो व्याह हुए हों । द्विहृदा । २. वह स्त्री या कन्या जिसका विवाह उसकी बही बहन के विवाह के पहले हुआ हो ।

दिधिषूपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'दिधिषु' । २. वह व्यक्ति जो अपने भाई की विधवा स्त्री से विषयरत होता हो (को०) ।

दिधीषू—संज्ञा स्त्री० दे० [सं०] 'दिधिषू' (को०) ।

दिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतना समय जिसमें सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय । सूर्य की किरणों के दिखाई पड़ने का सारा समय ।

विशेष—पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है । इस परिक्रमा में इसका जो भाग सूर्य की ओर रहने के कारण प्रकाशित रहता है, उसमें दिन रहता है, बाकी दूसरे भाग में रात रहती है ।

मुहा०—दिन को तारे दिखाई देना = इतना आश्चर्य मानसिक कष्ट पहुँचना कि बुद्धि ठिकाने न रहे । दिन को दिन रात को रात न जानना या समझना = अपने सुख या विश्राम आदि का कुछ भी ध्यान न रखना । जैसे,—इस काम के लिये उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझा । दिन बढ़ना = सूर्योदय होना । सूर्य निकलने के उपरांत कुछ समय बीतना । दिन छिपना = सूर्यास्त होना । संध्या होना । दिन हूबना = सूर्य हूबना । संध्या होना । दिन ढलना = संध्या का समय निकट आना । सूर्यास्त होने को होना । दिन दहाड़े या दिन दिहाड़े = बिलकुल दिन के समय । ऐसे समय जब कि सब लोग जागते और देखते हों । जैसे,—दिन दहाड़े उनके यहाँ, दस हजार की चोरी हो गई । दिन दोपहर या दिन धोले = दे० 'दिन दहाड़े' । दिन हुना रात चोगुना होना या बढ़ना = बहुत जल्दी जल्दी और बहुत अधिक बढ़ना । खूब उन्नति पर होना । जैसे,—भाजकल उनकी जमींदारी दिन हुनी रात चोगुनी हो रही है । उ०—जो दिन हुनी और रात चोगुनी उन्नति करता ही चला जाता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३१२ । दिन निकलना = दिन बढ़ना । सूर्योदय होना । दिन बूटना = दे० 'दिन हूबना' । दिन मुंदना = दे० 'दिन बूटना' । दिन होना = दिन निकलना । सूर्य उदय होना । दिन बढ़ना ।

यो०—दिन रात = संबंध । सदा । हर वक्त ।

२. उतना समय जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूमती है अथवा पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग के दो बार सूर्य के सामने आने के बीच का समय । प्राठ पहर या चौबीस घंटे का समय ।

विशेष—साधारणतः दिन दो प्रकार का माना जाता है—एक नाक्षत्र, दूसरा सौर या सावन । नाक्षत्र उतने समय का होता है जितना किसी नाक्षत्र को एक बार, याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दुबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में लगता है । यह समय ठीक उतना ही है जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम चुकती है । इसमें घटती बढ़ती नहीं होती, इसी से ज्योतिषी नाक्षत्रदिनमान का व्यवहार बहुत करते हैं । सूर्य को याम्योत्तर पर से होकर जाने और फिर दोबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में जितना समय लगता है उतने समय का सौर या सावन दिन होता है । नाक्षत्र तथा सौर दिन में प्रायः कुछ न कुछ अंतर हुआ करता है । यदि किसी दिन याम्योत्तर रेखा पर एक ही स्थान पर और एक ही समय सूर्य के साथ कोई नाक्षत्र भी हो तो दूसरे दिन उसी स्थान पर नाक्षत्र तो कुछ पहले आ जायगा पर सूर्य कुछ मिनटों के उपरांत आवेगा । यद्यपि नाक्षत्र और सावन दोनों प्रकार के दिन पृथ्वी के अक्ष पर घूमने से संबंध रखते हैं, और नाक्षत्र के याम्योत्तर पर आने में बराबर उतना ही समय लगता है, तथापि सूर्य याम्योत्तर पर ठीक उतने ही समय में सदा नहीं आता, कुछ कम या अधिक समय लेता है, जिसके कारण सौर दिन का मान भी बढ़ता बढ़ता रहता है । अतः हिसाब ठीक रखने और सुभीते के लिये एक सौर वर्ष को तीन सौ साठ भागों में विभक्त कर लेते हैं और उनके एक भाग को एक सौर दिन मानते हैं । हिंदुओं में दिन का मान सूर्योदय से सूर्योदय तक होता है और प्रायः सभी प्राचीन जातियों में सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन का मान होता था । आजकल हिंदुओं और एशिया की दूसरी अनेक जातियों में तथा यूरोप के आस्ट्रिया, टर्की और इटली देश में भी सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन माना जाता है । यूरोप के अधिकांश देशों तथा मिस्र और चीन में प्राचीन से प्राचीन रात तक दिन माना जाता है । प्राचीन रोमन लोग भी प्राचीन रात से ही दिन का प्रारंभ मानते थे । आजकल भारतवर्ष में सरकारी कार्यों में भी दिन का प्रारंभ प्राचीन रात से ही माना जाता है । पर अपनी गणना के लिये यूरोप के ज्योतिषी मध्याह्न से मध्याह्न तक दिन मानते हैं ।

मुहा०—दिन दिन या दिन पर दिन = नित्य प्रति । सदा । हमेशा । हर रोज ।

३. समय । काल । वक्त । जैसे,—(क) इतने दिन की रखी हुई चीज इसने खो दी । (ख) भले दिन, बुरे दिन ।

मुहा०—दिन काटना = समय बिताना । किसी तरह समय गुजार देना । दिन बेचना = कुछ समय खोना । दिन पूरे करना = निवाह करना । समय बिताना । दिन बिगड़ना = बुरे दिन होना । विपत्ति का अवसर आना । दिन भुगताना दिव काटना । समय बिताना ।

यौ०—पतले दिन = नाशुक वक्त । बुरे दिन । छोटे दिन ।

क्रि० प्र०—बिताना ।—बीतना ।

४ नियत या उपयुक्त काल । निश्चित या उचित समय । जैसे,—
कोई दिन दिखाकर चलेंगे । (ख) अब इसके दिन पूरे हो गए,
यह मरेगा ।

मुहा०—दिन भाना = समय पूरा हो जाना । अंतिम समय भाना ।
दिन धरना = दिन ठहराना । दिन निश्चित करना । विवाहिता
की विदाई का दिन स्वीकार करना । दिन धराना = दिन
स्थिर कराना । दिन निश्चित कराना । मुहूर्त निकलवाना ।
उ०—प्रति परम सुंदर पालना गढ़ि ल्याय रे बढ़ैया । × ×
× × × पालनो भान्यो सवहि प्रति मन भान्यो नोको सो
दिन धराइ सखिन मगल गवाय रग महल में पोख्यो है
कन्हैया ।—सूर (शब्द०) । दिन पूरे होना या दिन पूरे हो
जाना = मृत्यु का समय भाना । जिंदगी पूरी होना । उ०—
राखी, जिंदगी के दिन तो पूरे हो गए । अब दम के दम का
मेहमान है । फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७ ।

५ विशेष रूप से बिताया जानेवाला काल । वह समय जिसके
बीच कोई विशेष बात हो । जैसे, अच्छे या बुरे दिन, गर्म के
दिन, जवानी के दिन ।

मुहा०—दिन चढ़ना = किसी स्त्री का गर्भवती होना । दिन
पड़ना = कुसमय का भाना । बुरा समय भाना । दिन
फिरना = दुर्भाग्य काल के उपरांत सौभाग्य काल भाना । बुरे
दिनों के बाद अच्छे दिन भाना । उ०—दिन और रात्रि का
सा अंतर हो जाना = बहुत बड़ा फर्क पड़ जाना । महान
अंतर हो जाना । उ०—न स्वर्ग और न पाताल किंतु इसी
पृथ्वी के गुरोप और भारत ही में दिन और रात्रि का सा
अंतर हो गया है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८५ । दिन
को शेर रात को भेड़ = मन में कभी साहस और कभी कम-
जोरी होना । कभी साहसी और कभी पस्तहिम्मत होना ।
छड़ता का धमाका होना । उ०—बेगम—ऐसा भी डर किस काम
का । दिन को शेर रात को भेड़ ।—फिसाना०, भा० ३, पृ०
२२७ । दिन घड़ी (घरी) न देखना = दिन और मुहूर्त का
विचार न करना । उ०—पेम पय दिन घरी न देखा । तब
देखे जब होइ सरेखा ।—जायसी प्र० (गुप्त) पृ० २०६ । दिन
घड़ी देना = सुदिन और शुभ मुहूर्त बताना । उ०—मरि जो
चले गाँव गति लेई । तेहि दिन घरी कहाँ को देई ।—जायसी
प्र० (गुप्त), पृ० २०६ । दिन बहुरना = फिर से अच्छे दिन
भाना । दिन फिरना । उ०—और उस वक्त जब नवाब साहब
ने हुक्का माँगा तो वह तेरी तरफ कनखियों से देख रहे थे ।
मैंने भाँप लिया कि आ गया दिल । अब साडो के दिन बहुरे ।
—सैर०, पृ० २७ । दिन भरना = दुर्भाग्य का काल बिताना ।
बुरे दिन काटना । दिन लौटना = दे० 'दिन बहुरना' । दिनों से
उतरना = जवानी ढलना । युवावस्था का बीत जाना ।

दिन^२—क्रि० वि० सदा । हमेशा । दिन-प्रतिदिन । उ०—(क) बाबरो
राबरो नाहू भवानी । दानी बड़ो दिन देत दिए बिनु बेद बडाई
भानी ।—गुलसी (शब्द०) । (ख) गुप्त पितु मातु महेश

भवानी । प्रणवई दीनबंधु दिन दानी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ग) हिठोरे मूलत लाल दिन डूलह डूलहिन बिहारी देखि रो
लसना ।—हरिदास (शब्द०) ।

दिनअर(५)—सखा पु० [सं० दिनकर, प्रा० दिणअर] सूर्य । दिनकर
उ०—(क) कीन्हैसि दिन, दिनअर, ससि राती । कीन्हैसि
नखत सराइन पाती ।—जायसी प्र०, पृ० १ । (ख) गह्व
छूट दिनअर कर ससि सों भएउ मेराव । मंदिर सिंहासन
साजा बाजा नगर बघाव ।—जायसी (शब्द०) ।

दिनकंत(५)—सखा पु० [सं० दिन + हि० कंत (= कांत)] सूर्य ।

दिनकर—सखा पु० [सं०] १ सूर्य । २ धाक । मदार ।

यौ०—दिनकरकन्या । दिनकरतनय = दे० 'दिनकरसुत' । दिनकर-
तनया, दिनकरसुता = यमुना ।

दिनकरकन्या—सखा श्री० [सं०] यमुना । उ०—सुरसरि सरसइ दिनकर
कन्या । मेकल सुता गोदावरि घन्या ।—मानस, २।१३८ ।

दिनकरसुत—सखा पु० [सं०] १ यम । २ शनि । ३ सुग्रीव । ४.
प्रधिवनीकुमार । ५ कर्ण ।

दिनकरसुता—सखा श्री० [सं०] यमुना ।

दिनकर्ता—सखा पु० [सं०] दे० 'दिनकर' ।

दिनकृत्—सखा पु० [सं०] दे० 'दिनकर' ।

दिनकेशर, दिनकेशव—सखा पु० [सं०] अंधकार । अंधेरा ।

दिनक्षय—सखा पु० [सं०] दे० 'वियक्षय' ।

दिनक्षर्या—सखा श्री० [सं०] दिनअर का काम धंधा । दिन अर का
कतंध्य कर्म ।

दिनचारी—सखा पु० [सं० दिनचारिन्] दिन को चलनेवाला सूर्य ।

दिनज्योति—सखा श्री० [सं० दिनज्योतिष्] १. दिन का उजैला ।
२ धूप । घाम ।

दिनताई(५)—सखा श्री० [सं० दीन, हि० दिन + ताई (प्रत्य०)]
दे० 'दीनता' । उ०—नामाहि गह्व रहव दुनिया में, गहे रहव
दिनताई ।—जग० भा०, भा० २, पृ० ८६ ।

दिनतार्या—सखा श्री० [सं० दीनता, हि० दिनताई] दे० 'दीनता' ।
उ०—तजहु गवं गुमान में तैं हिये रहव दिनतार्या ।—जग०
वानी० पृ० ६६ ।

दिनदानी(५)—सखा पु० [सं० दिन + दानी] प्रतिदिन दान करने-
वाला । रोज देनेवाला । गरीबपरवर ।

दिन दिन—क्रि० वि० [सं० दिनानुदिन] प्रतिदिन । कालक्रम से
रोजमर्रा । उ०—दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ । देखि सराह
महा मुनि राऊ ।—मानस, १।३६० ।

दिनदीन(५)—वि० [सं० दिन + दीन] दिन दिन दीन । अत्यंत दीन ।
उ०—ऐसे दिनदीन पै क्या न भाई दई तोहि । विष भोयो
विषम बियोग सर मारतै ।—घनानंद, पृ० ५६ ।

दिनदीप—सखा पु० [सं०] सूर्य ।

दिनदुःखित—सखा पु० [सं०] बकवा पक्षी ।

दिनदूलाह(५)—सखा पु० [सं० (प्रति) दिन + हि० दूलाह] प्रतिदिन
दूलाह । उ०—सुंदर सावरे तैं दिनदूलाह चोप बहूँ दिस और
डरे बू ।—घनानंद, पृ० १३६ ।

दिनदेव(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिन + देव] रवि । दिनकर । सूर्य । उ०—
दिनदेव दिवाकर दिवाकर दोन दयाल ।—घनानन्द, पृ० ४७६ ।

दिननाथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । उ०—चद जगावहु कुमुदनी पद्मिनि
हो दिननाथ ।—शकुंतला, पृ० ६७ ।

दिननायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य ।

दिननाह(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिन + नाथ, प्रा० णाह] दे० 'दिननाथ' ।

दिनप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनपति' ।

दिनपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ आकाश । मदार । ३ दिन
या वार के पति । दे० 'दिव' ।

दिनपाको अजीर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार
का अजीर्ण जिसमें एक बार का किया हुआ भोजन आठ पहर
में पचता है और बीच में भूख नहीं लगती ।

दिनपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिथिपात' ।

दिनपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिनप्रणी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

दिनबधु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनबन्धु] सूर्य । २. आकाश । मदार ।

दिनबल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह राशि जो दिन के
समय बली हो ।

विशेष—फलित ज्योतिष में बारह राशियों में से पाँचवीं, छठी,
सातवीं, आठवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं ये छह राशियाँ
दिनबल या दिनबली मानी जाती हैं और बाकी राशिबल ।

दिनभृति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोज़ही पर काम करनेवाला मजदूर ।
प्रतिदिन मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर ।

दिनमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । आस्कर । रवि । २ आकाश ।
मदार ।

दिनमनि(७)†—पुं० [सं० दिनमणि] दे० 'दिनमणि' । उ०—सभा
सरवर लोक कोकनद कोकनन, प्रमुदित मन देखि दिनमनि
भोर हैं ।—तुलसी प्र०, पृ० ३०७ ।

दिनमयूख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ आकाश । मदार ।

दिनमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मास । महीना ।

दिनमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दिन का प्रमाण । दिन की अवधि ।
सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का मान ।

विशेष—दिन सदा घटता बढ़ता रहता है, अतः सुमीते के लिये
हिसाब लगाकर यह जान लिया जाता है कि कौन दिन
कितना बढ़ा अथवा कितनी घटियों और कितने पलों का,
होगा । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का यही मान
दिनमान कहलाता है ।

दिनमालो—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिनमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रभात । सबेरा ।

दिनमूर्धा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनमूर्धन्] उदयाश्लेष संज्ञा [को०] ।

दिनरज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ आकाश । मदार ।

दिनराइ(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनराज, हि० दिनराइ] दे० 'दिनराज' ।

दिनराउ(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनराज, हि० राव, राउ] दे० 'दिनराज' ।
उ०—विधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ । जे जानहि रघुबीर
प्रभाऊ ।—मानस, १ । ३२१ ।

दिनराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिनराव(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनराज] सूर्य । उ०—मो भक्तन को
यहै सुभाव । जैसे उदित होतु दिनराव ।—नन्द प्र०, पृ० २५४ ।

दिनरैन(७)—क्रि० वि० [सं० दिनरजनी] रातदिन । सदा । हमेशा ।

दिनशेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दिनांत । सायकाल । संध्या ।

दिनही†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दिनाती' ।

दिनांक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिन + अङ्क] दिन का अंक या संख्या । तारीख ।

दिनांड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनाण्ड] अक्षकार । घंघेरा ।

दिनांत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनान्त] सायकाल । संध्या । शाम ।

दिनांतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनान्तक] अक्षकार । घंघियारा ।

दिनांध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनान्ध] वह जिसे दिन को न सूझे । जैसे,
उल्लू, चमगादड़ आदि ।

दिनांश—सञ्ज्ञा [सं०] १ दिन के प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल
में तीन भाग या विभाग जो इस प्रकार हैं—प्रातःकाल, सग
मध्याह्न, अपराह्न और सायकाल । इनमें से प्रत्येक भाग क्रमशः
सूर्योदय के उपरांत तीन मुहूर्त तक माना जाता है ।

दिना†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दिनो] दे० 'दिन' । उ०—बहु रैन तनक रे
दिना । क्यों मरिए पिय प्यारे बिना ।—नन्द प्र०, पृ० १३५ ।

दिनाडा†—सञ्ज्ञा पुं० [दग] दाद ।

विशेष—दे० 'दाद' ।

दिनाई(७)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दिन + हि० आना] कोई ऐसी विषाक्त
वस्तु जिसके साने से थोड़े ही समय में मृत्यु हो जाय । प्रतिम
दिन (मृत्युकाल) लानेवाली चीज । उ०—(क) काके
सिर पड़ि मत्र दियो हम कहाँ हमारे पास दिनाई ।—सूर
(शब्द०) । (ख) लगी मिम्म को भतुन दिनाई । तुरतहि
मीच समय बिन आई ।—लाल (शब्द०) । (ग) कहै
पदमाकर जो कोऊ नर जैसे तैसे, तन देत गंगातीर तजिकै
महान शोक । सो तो देत व्याधे विष दुखन दिनाई देत, पापन
के पुंज को पहारन को ठोक ठोक ।—पद्माकर (शब्द०) ।

दिनागम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रभात । तड़का । सबेरा ।

दिनाती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दिन + प्राती (प्रत्य०)] १. मजदूरों,
विशेषतः खेत में काम करनेवालों का एक दिन का काम । २.
मजदूरों की एक दिन की मजदूरी ।

दिनात्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संध्या । सूर्यास्त [को०] ।

दिनादि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनागम' ।

दिनाधीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ आकाश । मदार ।

दिनानुदिन—क्रि० वि० [सं० दिन + अनुदिन] दिन दिन । प्रतिदिन
रोज ब रोज ।

दिनाय—सञ्ज्ञा स्त्री० [दग] दिनाइ दाव का रोग ।

'दिनार'—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोनार] दे० 'दोनार' ।

दिनार^१—वि० [सं० दि० + हि० आर (प्रत्य०)] बहुत दिनों का ढेरदिनी । पुराना ।

दिनारु^१—वि० [सं० दिनारु] बहुत दिनों का । पुराना ।

दिनार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न । दोपहर ।

दिनाषा—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः हाथ भर लंबी एक प्रकार की मछली जो हिमालय तथा आसाम की नदियों में पाई जाती है । हरद्वार में यह बहुत अधिकता से होती है ।

दिनास्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यास्त । दिनांत । संध्या ।

दिनिश्चर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर] दे० 'दिनकर' ।

दिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन या मजदूरी ।

दिनियर^१—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर प्रा० विणियर] सूर्य ।

दिनी—वि० [हि० दिन + ई (प्रत्य०)] बहुत दिनों का पुराना । प्राचीन । उ०—भली बुद्धि तेरे जिय सपजी । ज्यों ज्यों दिनी भई त्यों निपजी ।—सूर (शब्द०) ।

दिनेर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, हि० दिनियर] सूर्य । दिनकर । उ०—अनघन तीन सेर निशि माहा । हो दिनेर जेहि के तू छाहा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । उ०—दिनेश वषा मंडन । महेश चाप खड्ग ।—मानस, ३।४ । २ आकाश । मदार । ३ दिन के अधिपति ग्रह ।

दिनेशात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य के पुत्र शनि । २ यम । ३ सुधीव । ४ कर्ण ।

दिनेशात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यमुना । २ तापती नदी [को०] ।

दिनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनेश' ।

दिनेस—संज्ञा पुं० [सं० दिनेश] दे० 'दिनेश' । उ०—खोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघट घटा सी ।—तुलसी ग्रं०, पु० ४६५ ।

दिनोदिन—क्रि० वि० [सं० दिनन्दिन] प्रतिदिन । अनुदिन । उ०—सिर पर बैठा काल दिनोदिन वाढा पुजे ।—पलटू, भा० १, पु० २० ।

दिनौधी—संज्ञा स्त्री० [हि० दिन + धी + ई (प्रत्य०)] प्रातः का एक प्रकार का रोग जिसमें दिन के समय सूर्य की तेज किरणों के कारण बहुत कम दिखाई देता है ।

दिपट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' । उ०—दिपट पटीलै नम नखत जटीलै चक्र रसन पटीलै रटी टाटी छुरवान में ।—पजनेस०, पु० १० ।

दिपति^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' ।

दिपना^१—क्रि० प्र० [सं० दीप्ति] चमकना । प्रकाशमान होना । उ०—कोटि भातु दुति दिपत है मोहन छिगुरी छोर । याते बरनी घोट हूँ द्य हेरत वह धोर ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दिपाना^१—क्रि० प्र० चमकना । प्रकाशित होना । दे० 'दिपना' । उ०—कनक कलस मुख चद दिपाहीं । रहस केलि सन पावहि जाहीं ।—जायसी (शब्द०) ।

दिपाना^२—क्रि० प्र० [हि० दिपना] दीप्त करना । चमकाना । प्रकाशित करना ।

दिप्त—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' । उ०—राति नहि तह दिवस नाहीं, अजब दिप्त सुहाय ।—जग० बानी, पृ० १२० ।

दिध—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य] वह परीक्षा जो निर्दोषता या अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये कोई दे । जैसे, अभिनयोक्त्या आदि । उ०—(क) बाहे को अपराध लगावति कब कीनी हम चोरी । जैसे जब चाहो तब तैसे बावन दिध में देहो ।—(शब्द०) । (ख) साप समा सावर लभार भए देख दिव दुवह सासति कीजे आगे ही या तन की ।—तुलसी (शब्द०) ।

दिवि—वि० [सं० दिव्य] दे० 'दिव्य' । उ०—दिवि दृष्टि करि बर देपिए तब सकल ब्रह्म विलास रे ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८३१ ।

दिव्या—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य] दे० 'दिव्य' । उ०—कहि के सुपे छोड़ि दई पाती । जानहु दिव्य छुप्रत तसि ताती ।—पद्मावत पु० २७४ ।

दिमकर^१—संज्ञा पुं० [सं० दिवाकर] सूर्य । सहस्ररश्मि । सहस्रार । उ०—रुनक रुनक बाजे आदि अक्षर दिमकर बजि तार हो ।—कबीर सा०, पृ० ८८ ।

दिमंकर सो—वि० [सं० द्वि + उत्तर + शत] सो और दो । एक सो दो ।

विशेष—इसका व्यवहार पहाड़े में होता है । जैसे, सत्तरह छठे दिमकर सो— $17 \times 6 = 102$ ।

दिमाक^१—संज्ञा पुं० [प्र० दिमाग] दे० 'दिमाग' । उ०—बैठयो विनोद भरयो दिन दूल्हा कत दिली को दिमाक सवाई ।—हम्मीर०, पृ० ६ ।

दिमाकदार^१—वि० [हि०] दे० 'दिमागदार' । उ०—सोहते सवार सरदार जे दिनाकवार जुद्ध मोहि क्रुद्ध जे अदम्प ठहरात हैं ।—गोपाल (शब्द०) ।

दिमाग—संज्ञा पुं० [प्र० दिमाग] १ सिर का गूदा । मस्तिष्क । भेजा ।

मुहा०—दिमाग खाना या चाटना = व्यर्थ की बातें कहना जिससे किसी के सिर में दद होने लगे । बहुत बल्वाद करना । जैसे,—भाजकल वे रोज सवेरे आकर दिमाग चाटते (या खाते) हैं । दिमाग खाली करना = दिमाग चाटना । ऐसा काम करना जिसमें मानसिक शक्ति का बहुत अधिक व्यय हो । मगजपच्ची करना । जैसे,—उन्हे सब बातें समझाने के लिये हमें घंटों दिमाग खाली करना पड़ा । दिमाग चढ़ना या आसमान पर होना = बहुत अधिक घमंड होना । अभिमान होना । दिमाग न पाया जाना या न मिलना = दिमाग चढ़ना । दिमाग परेशान करना = दे० 'दिमाग खाली करना' । दिमाग में खलल होना = मस्तिष्क में ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे विवेक शक्ति न रह जाय । सिढ़ी होना । पागल होना ।

यौ०—दिमागचट । दिमाग रोशन ।

२ मानसिक शक्ति । बुद्धि । समझ । जैसे,—(क) उनका दिमाग अच्छा है, सब मामला बहुत जल्दी समझ लेते हैं । (ख) जरा दिमाग लगाओ, कोई उपाय निकल ही आवेगा ।

मुहा०—दिमाग लड़ाना = बहुत अच्छी तरह विचार करना ।

खूब सोचना । जैसे,—इस काम में बहुत दिमाग लहाने की जरूरत है ।

यौ०—दिमागदार ।

१. अभिमान । घमंड । शेखी ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

मुहा०—दिमाग झटना = ग्रहकार नष्ट होना । अभिमान टूटना ।

यौ०—दिमागदार ।

दिमागचट—वि० [प्र० दिमाग + हि० चट (= चाटना)] बहुत अधिक बकवाद करके दूसरों को व्याकुल करनेवाला । बक्की ।

दिमागदार—वि० [प्र० दिमाग + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १ जिसकी मानसिक शक्ति बहुत अच्छी हो । बहुत बड़ा समझदार । २ अभिमानो । घमंडी ।

दिमागदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० दिमाग + फ्रा० दार + ई (प्रत्य०)] १ दिमागदार होना । समझदारी । २ मगरूरी । अभिमान ।

दिमागरौशन—संज्ञा पुं० [प्र० दिमाग + फ्रा० रौशन] मगरौशन । नास । सुधनी

दिमागी—वि० [प्र० दिमाग + हि० ई (प्रत्य०)] १ दिमाग का । दिमाग संबंधी । २. दे० 'दिमागदार' ।

दिमातृ^१—संज्ञा पुं०, वि० [सं० द्विमातृ] दो माताओंवाला । वह जिसकी दो माताएँ हों ।

दिमातृ^२—वि०, संज्ञा पुं० [सं० द्विमात्र] वह जिसमें दो मात्राएँ हों । दो मात्राओंवाला ।

दिमान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवान] दीवान । मंत्री । उ०—सुदिमान हुलहल दिमान खुमान सिंह सुसान में ।—पद्माकर प्र०, पृ० २३ ।

दिमाना^१—वि० [फ्रा० दीवानह्,] [वि० स्त्री० दिमानी] दे० 'दिवाना' । उ०—स्वाम सघन घन घेरि कै रस बरस्यो रसखानि । भई दिमानी पान करि, प्रेम मद्य मनमानि ।—रसखान०, पृ० १६ ।

दिम्मसा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरमट] घासदार ढेलों को जमा करके दुरमट से पीटने की क्रिया ।

दियंदा^१—वि० [प०] देनेवाला । उ०—साजा भया समापजै, दान दियदा दीह ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ४६ ।

दियट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपपट्ट या दीपपुठ या दीपपोठ] दे० 'दीपट' ।

दियता^१—संज्ञा स्त्री० [हि० देना] वह धन जो किसी को मार डालने या भ्रम भग करने के बदले में दिया जाय ।

दियना^१—क्रि० प्र० [सं० दीप्त] दीप्त होना । दिपना । चमकना । उ०—बाल कौल बात बस झलकि झलमलत सोभा की दीपट मानो रूप दीप दियो है ।—तुलसी प्र०, पृ० २७३ ।

दियना^२—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दे० 'दीप्रा' ।

दियरा—संज्ञा पुं० [सं० दीप, हि० दीप्ता, दीपा (= छोटा कसोरा) + रा (प्रत्य०)] १ एक प्रकार का पकवान जिसे भीठा मिले हुए आटे की लोई बनाकर और उसके बीच में भंगूठे से गढ़ा

करके घी या तेल में तलकर बनाते हैं । लोई में भंगूठे से गढ़ा करने पर उसका आकार दीप का सा हो जाता है ।

२. दे० 'दीया' । ३. वह बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिये जलाते हैं । उ०—सुभग सकल भंग धनुज बालक सर देखि नरनारि रहै ज्यों कुरंग दियरे ।—तुलसी प्र०, पृ० १६१ ।

दियरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया] दे० 'दीया' ।

दियला^१—संज्ञा पुं० [हि० दीया + ला (प्रत्य०)] दे० 'दीया' । उ०—उर दियला राखी जु मैं सरस सनेह भराइ ।—स० सप्तक, पृ० १५२ ।

दियबा^१—संज्ञा पुं० [हि० दीया] दे० 'दीया' ।

दियार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दीपक' ।

दिया^१—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीपा' । उ०—दिया मंदिर निसि करे भोजोरा । दिया नाहि घर मूसहि चोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिया^२—क्रि० सं० [हि० देना] 'देना' क्रिया का सामान्य भूतकाल का एकवचन रूप ।

दियानत—संज्ञा स्त्री० [प्र० दयानत] दे० 'दयानत' ।

दियानतदार—वि० [प्र० दयानत + फ्रा० दार] दे० 'दयानतदार' ।

दियानतदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० दयानत + फ्रा० दारी] दे० 'दयानतदारी' ।

दियावची—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया + वची] (संध्या के समय) दीया जलाने का काम ।

दियारा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दयार (= प्रदेश)] १. नदी के किनारे की वह जमीन जो नदी के हट जाने पर निकल आती है । कछार । खादर । दरिया बरार । २. दयार । प्रदेश । प्रांत । उ०—का बरनवै धनि देस दियारा । जहँ अस नग उपजा जेजियारा ।—जायसी (शब्द०) ।

दियासलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया + सलाई] लकड़ी की वह तीली या सलाई जो रगड़ने से जल उठती है ।

विशेष—यह प्रायः एक अंगुल या इससे कुछ कम लंबी और पतली लकड़ी की सलाई होती है जिसके एक सिरे पर गवक आदि कई भस्मकनेवाले मसाले लगे होते हैं । इस सिरे को रगड़ने से धाग निकलती है जिससे सलाई जलने लगती है । जिस सलाई के सिरे पर गंधक लगी होती है वह हर एक कड़ी चीज पर रगड़ने से जल उठती है, पर जिसके सिरे पर अन्य मसाले लगे होते हैं वह विविध मसालों से बने हुए तल पर ही रगड़ने से जलती है । इसके प्रतिरिक्त चिनगारी या धाग से इस सिरे का स्पर्श कराने से भी सलाई जल उठती है । छोटी चौकोर डिबिया में दियासलाई बंद रहती है; और उसी डिबिया के पाश्र्व पर वह मसाला लगा होता है जिसपर रगड़ने से सलाई जलती है । लकड़ी के प्रतिरिक्त एक प्रकार की मोम की बनी हुई दियासलाई होती है जो अपेक्षाकृत अधिक समय तक जलती रहती है । आबकल वैज्ञानिकों ने कागज आदि की भी सलाई बनाई है । सलाई का व्यवहार दीया जलाने और धाग सुलगाने आदि के लिये होता है ।

क्रि० प्र०—घिसना ।—बसाना ।—रगड़ना ।

मुहा०—दियासलाई लगाना = प्राग लगाना । जवाना । धोते,—
यह किताब तो दियासलाई लगाने लायक है ।

द्विरंग—सषा स्त्री० [प्रा० द्विरंग, दरंग] देख । जिसका । घानस्प ।
 सुस्ती । उ०—गनीमत है फुरत कम् बया द्विरंग । के दनिगा
 किसी से नहीं एक रंग ।—दशमिनी० पृ० ८१ ।

द्विर—महा पु० [प्रनु०] सितार का एक शोल । जैसे —द्विर दा द्विर
 दादा दादा दा दादा दादा दादा । द्विर दा द्विर दादा दा द्विर
 दादा दा द्विर दादा दादा दादा दादा ।

द्विरदु—सज्ञा पुं० [सं० द्विरद] दे० 'द्विरद' ।

दिरम—सका पु० [अ० दरहम] १ मित्र देश का चाँदी का एक सिक्का । दिरहम । २. साढ़े तीन मापे की एक तोल । ३. फारस का एक पुराना मोने का सिक्का ।

दिरमानां—सषा पु० [क्रा० दरमानह्] चिकित्सा । इलाज ।

दिरमानी—सषा पु० [फा० दरमानह् (= चिकित्सा)+ई (प्रत्य०)]
 वैद्य । चिकित्सक । इलाज करनेवाला । उ०—गै हरि मायन
 करे न जानी । जस घामय भेषज न कीन्ह तग दोष कहा दिर-
 मानी ।—तुलसी (चन्द०) ।

दिरहम—सषा पु० [फा० दरहम] दिरम नाम वा गिनती ।
दे० 'दिरम' ।

दिराजपु—सभा पु० [मं० दिग्गजराज] पदमा । मणि । उ०—दंतन
 सौ दिग्गज दुरतर दद्याद् दीप्ते, दीपति दिराजु पाद पटन कि
 नद है ।—सुजान०, प० ८ ।

दिरानी—सका श्री० [हि० देवरात्री] दे० 'देवरात्री' । न०—गुनह
जिठानी गुनह दिरानी अन्तरज एग भयो ।—फायर ए०,
प० ३०२ ।

दिरियक—सषा पुं० [म०] कटुक । गेंद [गे०] ।

दिरिस④†—सद्या पु० [म० एष्य] ३० 'रपय' ।

दिरेस'—सद्यः पु० [प्र० ड्रेस] १. महीन कपड़े पर धरो हुई एक प्रकार की छींट। दरेस। २. संवारने या ठीक करने की क्रिया।

दिरेस^२—वि० सेंवारा या ठीक किया हुआ । नेम । दुःखस्त ।

दिह्म—सषा पु० [फा० दरह्म] दे० 'दिरम्' ।

दिल—सद्या पुं० [क्रा०] १ वसेजा ।

मुद्रा—दिल उलटना = दे० 'कलेजा उमटना'। दिन माना = दे० 'कलेजा मलना'। दिल मगोसकर रह जाया = दे० 'कलेजा मगोसकर रह जाना'। दिल धुकड़ धुकड़ या पुकुर पुकुर करना प्रपञ्चा होना = दे० 'कलेजा धुकड़ धुकड़ होना'। दिल धक धक करना या होना = दे० 'कलेजा धक धक करना'।
२ मन। चित्त। हृदय। जी।

यौ०—दिसगौर । दिसगुरदा । दिसचला । दिसचम्प । दिसचोर ।
दिसजमई । दिसजला । दिसदग्गिया । दिसदग्गियाव । दिसदार ।
दिसवर । दिसवषा ।

मुद्रा—(किसी मे) दिल छटकना = दे० 'जो लगना' । (किसी से) दिल छटकाना = दे० 'जो लगाना' । (किसी पर) दिल छाना = दे० (किसी पर) 'जो भाना' । दिल उकताना =

[illegible]

से ।—घोड़े, पु० ८ । दिल खुलना=दे० 'जी खुलना' । दिल खिलना=चित्त प्रसन्न होना । मन का प्रफुल्लित होना । दिल खोलकर=दे० 'जी खोलकर' । दिल चलना=दे० 'जी चलना' । दिल चलाना=दे० 'मन चलाना' । दिल चुराना=दे० 'जी चुराना' । दिल जमना । (१) किसी काम में चित्त लगना । ध्यान या जी लगना । जैसे,—तुम्हारा दिल तो जमता ही नहीं, तुम काम कैसे करोगे ? (२) किसी विषय या पदार्थ की ओर से चित्त का संतुष्ट होना । रुचि के अनुकूल होना । जी भरना । जैसे,—(क) जिस चीज पर दिल ही नहीं जमता उसे लेकर क्या करेंगे ? (ख) अगर तुम्हारा दिन जमे तो तुम भी हमारे साथ चलो । दिल जमाना=काम में ध्यान देना । चित्त लगाना । जी लगाना । जैसे—अगर तुम्हें काम करना हो तो दिल जमाकर किया करो । दिल जलना=दे० 'जी जलना' । दिल जलाना=दे० 'जी जलाना' । (किसी काम में) दिल जान या दिलो जान से लगना=दे० 'जी जान से लगना' । दिल टूटना या टूट जाना=दे० 'जी टूट जाना' । दिल ठिकाने होना=मन में शांति, सतोष या धैर्य होना । चित्त स्थिर होना । जी ठहराना । दिल ठिकाने लगाना=मन को शांत या संतुष्ट करना । जी को सहारा देना । व्याकुलता दूर करना । दिल ठुकना=दे० 'जी ठुकना' । दिल ठोकना=मन को दृढ़ करना । जी को पक्का करना (क्व०) । दिल दूबना=दे० 'जी दूबना' । दिल तड़पना=चित्त का यों ही, विशेषतः किसी के प्रेम में, बहुत व्याकुल होना । बहुत अधिक घबराहट या बेचैनी होना । उ०—दिल तड़पकर रह गया जब याद आई आपकी ।—(शब्द०) । दिल तोड़ना=हिम्मत तोड़ना । हतोत्साह करना । साहस भग करना । दिल दहलना=दे० 'जी दहलना' । दिल दुखना=दे० 'जी दुखना' । दिल देखना=किसी के मन्त्र की परीक्षा करना । रुचि या प्रवृत्ति का पता लगाना । जी की याह लेना । मन टटोलना । जैसे,—हमें रुपयों की कोई जरूरत नहीं है, हम तो खासी तुम्हारा दिल देखते थे । दिल देना=आशिक होना । प्रेम करना । आसक्त होना । मुहब्बत में पड़ना । दिल दौड़ना=दे० 'जी दौड़ना' । दिल दौड़ाना=(१) जी चलाना । इच्छा या सालसा करना । (२) ध्यान दौड़ाना । चिंतन करना । सोचना । दिल घड़कना=दे० 'कलेजा घड़कना' । दिल पक जाना=दे० 'कलेजा पक जाना' । दिल पकड़ लेना या दिल पकड़कर बैठ जाना=दे० 'कलेजा पकड़ लेना' । दिल पकड़ा जाना=दे० 'जी पकड़ा जाना' । दिल पकड़े फिरना=समता से व्याकुल होकर इधर उधर फिरना । विकल होकर घूमना । दिल पर नक्श होना=किसी बात का जी से जम जाना । जी में बैठ जाना । हृदयंगम होना । दिल पर मेल आना=मनमोटाव होना । पहले का सा प्रेम या सद्भाव न रह जाना । प्रीति भग होना । जी फट जाना । दिल पर साँप लोटना=दे० 'कलेजे पर साँप लोटना' । दिल पर हाथ रखे फिरना=दे० 'दिल पकड़े फिरना' । दिल पसीजना=दे० 'दिल पिघलना' । दिल पाना=आशय जानना । प्रत.करण की बात जानना । मन की याह पाना । दिल पीछे पड़ना=दे० 'जी पीछे पड़ना' ।

दिल फटना या फट जाना=दे० 'जी फट जाना' । दिल फिरना या फिर जाना=दे० 'जी फिर जाना' । दिल फोका होना=दे० 'जी खट्टा होना' । दिल बढ़ना=दे० 'जी बढ़ना' । दिल बढ़ाना=दे० 'जी बढ़ाना' । दिल बहलना=दे० 'जी बहलना' । दिल बहलाना=दे० 'जी बहलाना' । दिल बुझना=चित्त में किसी प्रकार का उत्साह या उमंग न रह जाना । मन मरना । दिल बुरा होना=दे० 'जी बुरा होना' । दिल बेकल होना=बेचैनी होना । घबराहट होना । दिल बैठा जाना=दे० 'जी बैठा जाना' । दिल भटकना=चित्त का व्यग्र या चंचल होना । मन में इधर उधर के विचार उठना । दिल भर आना=दे० 'जी भर आना' । दिल भरना=दे० 'जी भरना' । दिल भारी करना=दे० 'जी भारी करना' । दिल मसोसना=शोक, क्रोध या किसी दूसरे तीव्र मनोवेग का मन में ही दब रहना । दिल मारना=दे० 'मन मारना' । दिल मिलना=दे० 'जी मिलना' या 'मन मिलना' । दिल में आना=दे० 'जी में आना' । दिल में गड़ना या खुभना=दे० 'जी में गड़ना या खुभना' । दिल में गंठ या गिरह पड़ना=दे० 'गंठ' के अंतर्गत मुहा० । 'मन में गंठ पड़ना' । दिल में घर करना=दे० 'जी में घर करना' । दिल में चुटकियाँ या चुटकी लेना=दे० 'चुटकी लेना' । दिल में खुभना=दे० 'जी में गड़ना या खुभना' । दिल में चोर बैठना=दे० 'मन में चोर बैठना' । दिल में जगह करना=दे० 'जी में घर करना' । दिल में फफोले पड़ना=चित्त को बहुत अधिक कष्ट पहुँचना । मन में बहुत दुःख होना । दिल में फरक आना=सद्भाव में अंतर पड़ना । मनमोटाव होना । दिल में बल पड़ना=दे० 'दिल में फरक आना' । दिल में रखना=दे० 'जी में रखना' । दिल मैला करना=चित्त में दुर्भाव उत्पन्न करना । मन मैला करना । दिल रुकना=दे० 'जी रुकना' । (किसी का) दिल रखना=दे० 'जी रखना' । दिल लगना=दे० 'जी लगना' । दिल लगाना=दे० 'जी लगाना' । दिन ललचना=दे० 'जी ललचना' । दिल लेना=(१) किसी को अपने पर आसक्त करना । अपने प्रेम में फँसाना । (२) प्रत.करण की बात जानना । मन की याह लेना । दिल लोटना=दे० 'जी लोटना' । दिल से उतरना या गिरना=दृष्टि से गिर जाना । प्रिय या आदरणीय न रह जाना । विरक्तिभाजन होना । दिल से=(१) जी लगाकर । अच्छी तरह । ध्यान देकर । (२) अपने मन से । अपनी इच्छा से । दिल से उठना=आपसे आप कोई काम करने की प्रवृत्ति होना । जैसे,—जब तुम्हारे दिल से ही नहीं उठता, तब बार बार कहकर तुमसे कोई क्या काम करावेगा ? दिल से दूर करना=मुला देना । विस्मरण करना । ध्यान छोड़ देना । दिल हट जाना=दे० 'जी फिर जाना' । (किसी का) दिल हाथ में रखना=किसी को प्रसन्न रखना । किसी के मन को अपने वश में रखना । दिल हाथ में लेना=किसी को प्रसन्न करके अपने अधिकार में रखना । वशीभूत रखना । दिल हिलना=दे० 'जी दहलना' । दिल ही दिल में=चुपके चुपके । गुप्त नाव से । मन ही मन । दिलो जान से=दे० 'जी जान से' ।

न होगा। जब दिलीप को कोई पुत्र नहीं हुआ तब वशिष्ठ के पास गए और पुत्र पाने की अपनी खालसा उनसे व्यक्त की। वशिष्ठ ने कामधेनु के शाप की बात बताई। उनके आदेश से सपत्नीक दिलीप आश्रम में रहते हुए सुरभि की पुत्री नदिनी की सेवा करने लगे। कुछ दिन बीतने पर उनकी परीक्षा लेने के लिये एक बार एक शेर ने नदिनी को खाना चाहा। दिलीप ने उसकी रक्षा के लिये शेर पर प्रहार करना चाहा पर उनका हाथ भूल हो गया। निराश राजा दिलीप ने शेर से प्रार्थना की कि वह उनको खाकर अपनी क्षुधा मिटाए और नदिनी को छोड़ दे। शेर के बहुत समझाने बुझाने पर भी वे न माने और अपने आपको उस शेर के आगे डाल दिया। इससे सुरभि प्रसन्न हो गई और सुदक्षिणा के गर्भ से रघु की उत्पत्ति हुई। लिंगपुराण में लिखा है कि ये बड़े बुद्धिमान थे और इन्होंने तानों लोकों और तीनों अग्निओं को जीत लिया था। एक बार एक मुहूर्त के लिये ये स्वर्ग से मर्त्य लोक में भी आए थे। आगे चलकर इन्होंने फिर इसी वंश में ऐतिविलि राजा के घर में जन्म लिया था। हरिवंश के अनुसार भी दिलीप राजा सगर के परपोते और भगीरथ के पुत्र थे। आगे चलकर इन्होंने एक बार फिर इसी वंश में जन्म लिया था।

२. चंद्रवंशी राजा कुरु के वंशज एक राजा का नाम।

दिलीर—संज्ञा पुं० [सं०] मुहफोड। डिगरी।

दिलेर—वि० [फ्रा०] १. बहादुर। शूरवीर। २. साहसी। दिलवाला।

दिलेरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. बहादुरी। वीरता २. साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

दिल्लगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दिल + हि० लगना] १. दिल, लगाने की क्रिया या भाव। २. वह व्यापार, घटना या बात आदि जिसकी विलक्षणता आदि के कारण चित का विनोद और मनोरञ्जन हो। केवल चित्तविनोद या हँसने हँसाने की बात। ठट्टा। ठठोली। मजाक। मखोल। मसखरी। जैसे,—(क) आप आजकल बहुत दिल्लगी करने लगे हैं। (ख) कल रातवाले भगड़े में अच्छी दिल्लगी देखने में आई। (ग) दोनों का सामना होगा तो वही दिल्लगी होगी।

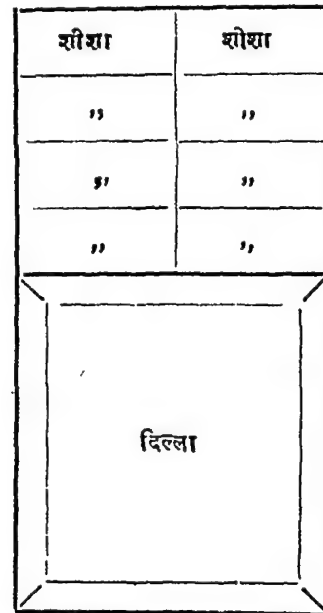
मुहा०—किसी बात की दिल्लगी उड़ाना = (किसी बात को) अमान्य और मिथ्या ठहराने के लिये (उसे) हँसी में उड़ा देना। हँसी की बात कहकर टाल देना। उपहास करना। जैसे,—(क) आप तो सब की यों ही दिल्लगी उड़ाया करते हैं। (ख) उन्होंने तुम्हारी किताब की खूब दिल्लगी उड़ाई। दिल्लगी में = केवल दिल्लगी के विचार से। यों ही। हँसी में। जैसे,—मैंने उन्हें दिल्लगी में ही यहाँ से जाने के लिये कहा था, पर वे नाराज होकर चले गए।

दिल्लगीबाज—संज्ञा पुं० [हि० दिल्लगी + फ्रा० बाज] वह जो सदा दूसरों को हँसानेवाली बातें कहता हो। हँसी या दिल्लगी करनेवाला। मसखरा। ठठोल। हँसोड। मखोलिया।

दिल्लगीबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० दिल्लगी + फ्रा० बाजी] १. दिल्लगी करने का काम। २. दे० 'दिल्लगी'।

दिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] किवाड़ के पल्ले में लकड़ी का वह चौखटा जो शोभा के लिये बना या जड़ दिया जाता है। भाईना।

विशेष—किवाड़ों में शोभा के लिये या तो चौकोर छेद करके उसमें शीशे की तरह लकड़ी का चौकोर टुकड़ा फिर से बैठा देते हैं अथवा पल्ले का ही कुछ अंश काटकर और कुछ उभाड़-दार छोड़कर इस प्रकार बना देते हैं कि वह देखने में एक भलग चौकोर टुकड़ा सा जान पड़ता है। इसी को दिल्ला या दिलहा कहते हैं।



दिल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जमुना नदी के किनारे बसा हुआ उत्तर-पश्चिम भारत का एक बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन नगर जो स्वतंत्र भारत की राजधानी है।

विशेष—यह नगर बहुत दिनों तक हिंदू राजाओं और मुसलमान बादशाहों की राजधानी था और सन् १९१२ ई० में फिर ब्रिटिश भारत की भी राजधानी हो गया। जिस स्थान पर वर्तमान दिल्ली नगर है उसके चारों ओर १०-१२ मील के घेरे में भिन्न भिन्न स्थानों में यह नगर कई बार बसा और कई बार उजड़ा। कुछ लोगों का मत है कि इद्रप्रस्थ के मयूर-वर्षी अंतिम राजा दितू ने इसे पहले पहल बसाया था, इसी से इसका नाम दिल्ली पड़ा। यह भी प्रवाद है कि पृथ्वीराज के नाना अग्रगण्य ने एक बार एक गड़ बनवाना चाहा था। उसकी नींव रखने के समय उनके पुरोहित ने अच्छे मुहूर्त में सोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा खगी है जिसके कारण आपके लोंपर वंश का राज्य प्रबल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्होंने वह कील उखाड़वा दी। कील उखाड़ते ही वहाँ से लहू की धारा निकलने लगी। इसपर राजा को बहुत परवात्ताप हुआ। उन्होंने फिर वही कील उस स्थान पर गढ़वाई पर इस बार वह ठीक-तही बैठी, कुछ बीसी रह गई। इसी से उस स्थान का नाम

'ढीली' पड़ गया जो बिगड़कर दिल्ली हो गया। पर कील या स्तम्भ पर जो शिलालेख है उससे इस प्रवाद का पूरा खटन हो जाता है क्योंकि उसमें अनंगपाल से बहुत पहले के किसी चंद्र नामक राजा (शायद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य) की प्रशंसा है। पुथ्वीराज रासो के अनुसार अनंगपाल के किसी पूर्वपुरुष 'धल्हन' नाम के नरेश ने यह किल्ली गढ़वाई और नगर बसाया था। उसके बाद अनंगपाल ने फिर किल्ली गढ़वाई (दे० पुथ्वीराज रासो 'दिल्ली किल्ली कथा')। नाम के विषय में चाहे जो हो, पर इसमें सदेह नहीं कि इसी पवली शाताब्दी के बाद से यह नगर कई बार बसा और उजड़ा। सन् ११९३ में मुहम्मद गोरी ने इस नगर पर अधिकार कर लिया। तभी से यह मुसलमान बादशाहों की राजधानी हो गया। सन् १३९८ में इसे तैमूर ने ध्वंस किया और १५२६ में बाबर ने इसपर अधिकार किया। तब से यहाँ मोगल साम्राज्य की राजधानी हो गई। सन् १८०३ में इसपर अंगरेजों का अधिकार हो गया। पहले अंगरेजों भारत की राजधानी फलकत्ते में थी, पर सन् १८१२ से उठकर दिल्ली चली गई। आजकल वर्तमान दिल्ली के पास एक नई दिल्ली बस गई है।

दिल्लीवाल—वि० [हि० दिल्ली + वाल (प्रत्य०)] १ दिल्ली संबंधी। दिल्ली का। २ दिल्ली का रहनेवाला।

दिल्लीवाल—संज्ञा पुं० दिल्ली का बना हुआ एक प्रकार का देशी जूता।

दिल्लेदार—वि० [देश० दिलहा + का० दार] दिलहेवाला (किवाड)। जिसमें दिलहा बना या लगा हो।

दिल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिल्ली'। उ०—दिल्ली तें परे कोस दोड़ पर एक ग्राम है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १३६।

दिवंगत—वि० [सं० दिवङ्गत] मृत। स्वर्गीय (को०)।

दिवंगम—वि० [सं० दिवङ्गम] स्वर्ग जानेवाला। मरनेवाला। जिसकी मृत्यु निकट हो (को०)।

दिव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिव'।

दिव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ग। २ आकाश (हि०)। ३ वन। ४ दिन। ५ नीलकण्ठ पक्षी (को०)।

दिवकार—संज्ञा पुं० [सं० दिव (= दिन + कर (= कर्ता)] सूर्य। दिनकर। उ०—गुरुद्वोही भी मनमुखो, नारि पुरुष विविचार। ते चोरासी भरमहीं, जो खगि चंद दिवकार।—कबीर बी० (शिथु०), पृ० १६६।

दिवगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवगृह'।

दिवदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पत्ति। क्रांति। आकाशदाह (को०)।

दिवरा—संज्ञा पुं० [सं० दि + वर] दे० 'देवर'। उ०—धुम लीजों दिवर हमारे मेरे हाथ अंगूठी भारी।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ६१४।

दिवरा—संज्ञा पुं० [हि० दिवर] दे० 'देवर'। उ० पिय पीसम पागे पराई तिया दिवरा सोऊ डोलत बागन में।—नट०, पृ० १४०।

दिवराज—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग के राजा, इन्द्र। उ०—सूरदास प्रभु कृपा करहिगे धरण चलो दिवराज।—भूर (शब्द०)।

दिवरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० देवरानी] दे० 'देवरानी'।

दिवला—संज्ञा पुं० [सं० दीप, प्रा० दोष + ला (प्रत्य०)] दे० 'दीप'। उ०—मेहि तन का दिवला करौ, बाती मेली जीव। सोहू सीचौ तेल ज्यो, कब मुख देखो पीव।—कबीर सा०, पृ० १६।

दिवली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिउली'।

दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। वासर। रोज।

दिवस अंध—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + हि० अंध] दे० 'दिवाध'।

दिवसकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। दिनकर। २ मदार का पेड़।

दिवसक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का भवसान। सूर्यास्त (को०)।

दिवसचर—संज्ञा पुं० [सं० दिवाचर] १ प्रयाग पक्षी। २. बाबाल।

दिवसचारो—वि० [सं० दिवाचारिन्] दिन भर घूमनेवाला।

दिवसनाथ—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + नाथ] दे० 'दिवसमणि'। २ भक्त धृष्ट।

दिवसपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दिवापुष्ट] सूर्य। रवि।

दिवसमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिवसमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सबेरा। प्रातःकाल।

दिवसमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन। एक दिन की तनख्वाह।

दिवससजात—संज्ञा पुं० [सं० दिवससञ्जात] दिन भर का काम।

विशेष—मजदूर दिन भर में जितना काम करता था, उसी के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में उसको रोजाना मजदूरी दी जाती थी।

दिवसातर—वि० [सं०] मात्र एक दिन का।

दिवसाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिवाभिसारिका'।

दिवसावसान—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + भवसान] दिनांत। संध्या। उ०—दिवसावसान का समय, मेघमय आसमान से उतर रही है।—अपरा०, पृ० १३।

दिवसेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिवसेश्वर'।

दिवसेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

दिवस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ तेरहवें मन्वन्तर के इन्द्र का नाम।

दिवस्पृश—संज्ञा पुं० [सं०] (वामनावतार में) पैर से स्वर्ग को छूनेवाले, विष्णु।

दिवाध—वि० [सं० दिवान्ध] जिसे दिन में न सूके। जिसे दिनोधी हो।

दिवाध—संज्ञा पुं० १. दिनोधी का रोग। २ उल्लू।

दिवाधकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिवान्धकी] छल्लूँदर।

दिवाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दिवान्धिका] छल्लूँदर (को०)।

दिवा—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिन। दिवस। २ २२ प्रसरो का एक वर्णाक्षर। एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ७ भरण और १ गुरु होता है। इसके दूसरे नाम 'माञ्जिनी' और 'मदिरा' भी हैं। जैसे,—भातस गौरि गुवाँहन को बर राम घनू दुइ खड किधो। ३ दे० 'दीया'।

दिवाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । भास्कर । रवि । २. काक । कौवा । ३. मदार । आक । ४. एक फूल ।

दिवाकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. नावित । नाऊ । नाई । हज्जाम ।

विशेष—प्राचीन काल में नाइयों को केवल दिन के समय ही नगर आदि में घूमने का अधिकार था, इसी से यह नाम पड़ा । २. चांडाल । ३. उल्लू ।

दिवाकीर्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामगान जो साधु भर में होनेवाले गवानयन यज्ञ में विपुव सकृति के दिन गाया जाता है ।

दिवाचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी । बिड़िया । २. चांडाल ।

दिवाचारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दिवाचारिन्] दिन को घूमने-वाला [को०] ।

दिवाटन—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कौवा ।

दिवातनी^१—संज्ञा पुं० [सं० दिवा + तन ?] एक दिन की मजहूरी । एक दिन की तनकाह ।

दिवातन^२—वि० दिन भर का । रोजाना । प्रति दिन का ।

दिवान—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवान] दे० 'दीवान' ।

दिवाना^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवानह] [स्त्री० दिवानी] दे० 'दीवाना' ।

दिवाना^④—क्रि० सं० [हि० देना] दे० 'दिलाना' ।

दिवानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य ।

दिवानी^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का पेड़ जो बरमा में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी ईंट के रंग की लाल होती है जिसपर भूरी और नारंगी रंग की धारियाँ पड़ी रहती हैं । इससे मेज, कुर्सी आदि सजावट के सामान बनाए जाते हैं ।

दिवानी^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीवानी] दे० 'दीवानी' । उ०—सूरदास प्रभु मिलि के बिछुरे ताते भई दिवानी ।—सूर (शब्द०) ।

दिवापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिवाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो दिन के समय अपने प्रेमी से मिलने के लिये, शृंगार करके, संकेतस्थान में जाय ।

दिवाभीत, दिवाभीति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर । तस्कर । २. चल्तू । ३. एक प्रकार का कमल जो रात को खिलता है (को०) ।

दिवाभणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. भकं । मदार ।

दिवाभध्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न । दोपहर ।

दिवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीवार] दे० 'दीवार' ।

दिवारात्र—क्रि० वि० [सं०] निरंतर । दिनरात [को०] ।

दिवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीपावली' । उ०—ग्राम ग्राम जनु बरत दिवारिय ।—प० रासो, पृ० १११ ।

दिवा^३—वि० [हि० देना + वास (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो । जैसे,—यह एक ऐसे के दिवाल नहीं है (बाजार) ।

दिवाली^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीवाल] दे० 'दीवार' ।

दिवालीया—संज्ञा पुं० [सं० देवालय] दे० 'देवालय' ।

दिवाली—संज्ञा पुं० [हि० दिवा, दिवा + वालना (= जलाना)] १. वह अवस्था जिसमें मनुष्य के पास अपना ऋण चुकाने के लिये कुछ न रह जाय । पूँजी या धन न रह जाने के कारण ऋण चुकाने में असमर्थता । कर्ज न चुका सकना । टाट उसटना ।

विशेष—जब किसी मनुष्य को व्यापार आदि में बहुत घाटा खाता है अथवा उसका ऋण बहुत बढ़ जाता है और वह उस ऋण के चुकाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब उसका दिवाला होना मान लिया जाता है । इस देश में प्राचीन काल में अपनी यह असमर्थता प्रकट करने के लिये ऋणी व्यापारी अपनी दुकान का टाट उसट देते थे और उसपर एक चौमुखा दीया जला देते थे जिससे लोग समझ लेते थे कि अब इनके पास कुछ भी धन नहीं बचा और इनका दिवाला हो गया । इसी दिया जलाने (जलने) से 'दिवाला' शब्द बना है । राजस्थान में पहले दुकान पर उलटा ताला लगा देते थे । आजकल प्रायः सभी सम्य देशों में दिवाले के संबंध में कुछ कानून बन गए हैं जिनके अनुसार वह मनुष्य जो अपने बड़ा हुआ ऋण चुकाने में असमर्थ होता है, किसी निश्चित न्यायालय में जाकर अपने दिवाले की दरखास्त देता है और यह बतला देता है कि मुझे बाजार का कितना देना है और इस समय मेरे पास कितना धन या संपत्ति है । इसपर न्यायालय की ओर से एक मनुष्य, विशेषतः वकील या और कोई काफ़ूर जाननेवाला नियुक्त कर दिया जाता है जो उसकी बची हुई सारी संपत्ति नीलाम करके और उसका सारा लहना घसूल करके हिस्से के मुताबिक उसका सारा कर्ज चुका देता है । ऐसी दशा में मनुष्य को अपने ऋण के लिये जेल जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

मुहा०—दिवाला निकलना = दिवाला होना । दिवाला निकालना या मारना = दिवालिया बन जाना । ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाना ।

२. किसी पदार्थ का बिलकुल न रह जाना । जैसे, ज्योनारवाले दिन उनके यहाँ पूरियों का दिवाला हो गया ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।—मारना ।

दिवालिया—वि० [हि० दिवाला + दया (प्रत्य०)] जिसने दिवाला निकाला हो । जिसके पास ऋण चुकाने के लिये कुछ न बच गया हो ।

दिवाली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीपावली' ।

दिवाली^२—संज्ञा स्त्री० [दे०] खराद या सान में सपेटने का वह तत्त्वा जिसे खींचकर उसे खताते हैं । दयाली ।

दिवालीक—संज्ञा पुं० [सं० दिव + लोक] १. दिन का प्रकाश । २. स्वर्ग के समान या स्वर्गवृत्त्य सोक । उ०—कहीं नी, इस दिवालीक में घूमते घूमते सप्या तक कहीं न कहीं खरण मिल हो जायगी ।—हरा० पृ० ६१ ।

दिवाघसु—सङ्घा पु० [सं०] सूर्य [को०] ।

दिवाशय—वि० [सं०] दिन में सोनेवाला [को०] ।

दिवाशयता—सङ्घा स्त्री० [सं०] दिन को सोने की भादत या वान [को०] ।

दिवास्वप्न—सङ्घा पु० [सं०] १ दिन में सोना । २ कल्पनाप्रसूत बात । मनोराज्य [को०] ।

दिवास्वाप—सङ्घा पु० [सं०] १ उत्सुक । उत्सृ । २. दिन की निद्रा । दिन में ध्यान [को०] ।

दिवि^१—सङ्घा पु० [सं० दिव] दे० 'दिव' ।

दिवि^२—सङ्घा पु० [सं०] नीलकण्ठ पक्षी ।

दिवि^३—वि० [सं० दिव्य] दे० 'दिव्य' । उ०—दिवि द्विस्टि धाजा सेत । सप ममं होत निकेत ।—स० दरिया, पु० ८ ।

यौ०—दिविद्विस्टि = दिव्य दृष्टि ।

दिविज—सङ्घा पु० [सं०] देव । सुर [को०] ।

दिविता—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीप्ति ।

दिविदिवि—सङ्घा पु० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो दक्षिण अमेरिका से भारतवर्ष में आया है ।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः धारवार, कनारा, बीजापुर, खानदेश इत्यादि नगरों में अधिकता से उत्पन्न होता है । चमड़ा सिमाने और रंगने के काम में इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार होता है ।

दिविर—सङ्घा पु० [देश०] लेखक । लिपिक । मुशी । उ०—राजा की सेवा में बहुत से दिविर या लेखक थे जो बहुधा कायस्थ कहलाते थे और जिनको कलहण ने अत्याचारी कहकर गालियाँ सुनाई हैं ।—हिंदु० सभ्यता, पु० ५१६ ।

दिविरथा—सङ्घा पु० [सं०] १ महाभारत के अनुसार, पुरुवंशी राजा भूमन्यु के पुत्र का नाम । २ हरिवंश के अनुसार अग देश के राजा दधिवाहन के पुत्र का नाम ।

दिविषत्—सङ्घा पु० [सं०] १ देव । देवता । २ स्वर्गवासी ।

दिविष्टि—सङ्घा पु० [सं०] यज्ञ ।

दिविष्ठ—सङ्घा पु० [सं०] १ स्वर्ग में रहनेवाले, देवता । २ ईशान कोण के एक देश का नाम जिसका उल्लेख बृहत्संहिता में है ।

दिविस्थ—सङ्घा पु० [सं०] दिविष्ठ । देवता [को०] ।

दिवेश—सङ्घा पु० [सं०] दिग्पाल ।

दिवैया—वि० [हिं० देना + वैपा (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो ।

दिवोका—सङ्घा पु० [सं० दिवोकस्] दे० 'दिवोका' ।

दिवोदास—सङ्घा पु० [सं०] १ चंद्रवंशी राजा भीमरथ के एक पुत्र का नाम, जिनका उल्लेख काशीखंड और महाभारत में है ।

विशेष—ये इन्द्र के उपासक और काशी के राजा थे और धन्वंतरि के अवतार माने जाते हैं । महाभारत में लिखा है कि ये राजा सुदेव के पुत्र थे और इन्द्र ने शबर राक्षस की १०० पुरियों में से ९९ पुरियाँ नष्ट करके बाकी एक पुरी इन्हें को दी थी । इनके पिता के शत्रु भीमहव्य के पुत्रों ने युद्ध में इन्हें परास्त किया था । इसपर ये भारद्वाज मुनि के आश्रम में चले गए । वहाँ मुनि ने इनके लिये एक यज्ञ किया जिसके

प्रभाव से इनके प्रतर्दन नामक एक वीर पुत्र हुआ जिसने भीमहव्य के पुत्रों को युद्ध में मार डाला । सुदास नामक इनका एक पुत्र भी था । महादेव ने इन्हीं से काशी ली थी । काशीखंड के अनुसार पहले इनका नाम रिपुजय था । इन्होंने काशी में बहुत तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें पृथ्वीपालन करने का वर दिया । नागराज ने अपनी अनगमोहिनी नाम की कन्या इन्हें दी थी । देवताओं ने इन्हें आकाश से पृथ्वी और रत्न आदि दिए थे, इसी से इनका नाम दिवोदास हो गया ।

२. हरिवंश के अनुसार ब्रह्मापि इन्द्रसेन के पौत्र और यक्षरथ के पुत्र का नाम जो मेनका के गर्भ से अपनी बहन प्रहत्या के साथ ही उत्पन्न हुए थे । इनके पुत्र मिथेपु भी महर्षि थे ।

दिवोद्गसा—सङ्घा स्त्री० [सं०] इलायची ।

दिवोल्का—सङ्घा स्त्री० [सं०] दिन के समय आकाश से गिरनेवाला चमकीला पिंड या उल्का ।

दिवौका—सङ्घा पु० [सं० दिवोकस्] १ वह जो स्वर्ग में रहता हो । २ देवता । ३. चातक पक्षी । ३ भृगु । हिरन [को०] । ४ हस्ती । हाथी [को०] । ५ मधुमक्खी [को०] ।

दिव्य^१—वि० [सं०] १ स्वर्ग से सबंध रखनेवाला । स्वर्गीय । २ आकाश से संबंध रखनेवाला । अलौकिक । ३ प्रकाशमान । चमकीला । ४. बहुत बढ़िया या अच्छा । जो देखने में बहुत ही सुंदर या मला मानूम हो । खूब साफ या सुंदर । जैसे,—(क) उन्होंने एक बहुत दिव्य भवन बनवाया था । (ख) आज हमने बहुत दिव्य भोजन किया है । ४. लोक से परे । लोकातीत [को०] ।

दिव्य^२—सङ्घा पु० [सं०] १ यव । जी । २ गुग्गुलु । ३ घावला । ४ शतावार । ५ ग्राही । ६ सफेद दूध । ७ हड । ८ सोंग । ९ सूअर । १०. तत्ववेत्ता । ११ हरिचंदन । १२ अष्टवर्ग के अतर्गत महामेदा नाम की ओषधि । १३. कपूरकचरी । १४ चमेली । १५ जीरा । १६ घूप में बरसते हुए पानी से स्नान । १७ तीन प्रकार के केंतुओं में से एक । वे केंतु जिनकी स्थिति भूवायु से ऊपर है । १८ तार्त्रिकों के आचार के तीन भावों में से एक जिससे पंच मकार, शमन और चिता का साधन विधेय है । १९. आकाश में होनेवाला एक प्रकार का उरपात । २०. तीन प्रकार के नायकों में से एक । वह नायक जो स्वर्गीय या अलौकिक हो । जैसे, इन्द्र, राम, कृष्ण आदि ।

विशेष—साहित्य ग्रंथों में तीन प्रकार के नायक माने गए हैं दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य । दिव्य नायक स्वर्गीय या अलौकिक होते हैं, जैसे, देवता आदि और अदिव्य नायक सांसारिक या लौकिक, जैसे, मनुष्य । दिव्यादिव्य नायक वे होते हैं जो होते तो मनुष्य हैं पर जिनमें गुण देवताओं के होते हैं । जैसे, नल, पुरुवा, अर्जुन आदि । इसी प्रकार तीन प्रकार की नायिकाएँ भी होती हैं ।

२१ व्यवहार या न्यायालय में प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे किसी मनुष्य का अपराधी या निरपराध होना सिद्ध होता था ।

क्रि० प्र०—देना । उ०—साँप समा साबर लकार भए देठ दिव्य दुसइ साँसति कीबे आगे ही या तन की ।—बुलसी (शब्द०) ।

विशेष—ये परीक्षाएँ नौ प्रकार की हैं—घट, अग्नि, उदक, विष, कोष, तंडुल, तप्तमाषक, फूल और धर्मज। इनमें तुला या घट, अग्नि, जल, विष और कोष ये पाँच परीक्षाएँ भारी अपराधों के लिये, तंडुल चोरी के लिये, तप्तमाषक बड़ी भारी चोरी के लिये और फूल तथा धर्मज साधारण अपराधों के लिये हैं। स्मृतियों आदि में यह भी लिखा है कि ब्राह्मण को तुला से, क्षत्रिय की अग्नि से, वैश्य की जल से और शूद्र की विष से परीक्षा लेनी चाहिए। बालक, वृद्ध, स्त्री और भ्रातुर की परीक्षा भी घट या तुला विधि से ही होनी चाहिए। स्त्रियों की विषपरीक्षा और शिशिर तथा हेमंत में रोगियों की जलपरीक्षा, कोढ़ियों की अग्निपरीक्षा और शराबियों, लपटो जुआरियों, धूर्तों और नास्तिकों की कोषपरीक्षा कदापि न होनी चाहिए। षोडशकाल में जलपरीक्षा, ग्रीष्म में अग्निपरीक्षा वर्षा में विषपरीक्षा और प्रातःकाल के समय तुलापरीक्षा नहीं होनी चाहिए। धर्मज और घटपरीक्षा सब ऋतुओं में और अग्निपरीक्षा वर्षा, हेमंत और शिशिर में तथा जलपरीक्षा ग्रीष्म में होनी चाहिए। अग्नि, घट और कोषपरीक्षा सबेरे, जलपरीक्षा दोपहर को और विषपरीक्षा रात को होनी चाहिए। बृहस्पति जिस समय सिंहस्थ या मकरस्थ हो अथवा भृगु अस्त हो, उस समय कोई दिव्य या परीक्षा न होनी चाहिए। मलमास में और अष्टमी तथा चतुर्दशी को भी परीक्षा नहीं होनी चाहिए। परीक्षा के दिन से एक दिन पहले परीक्षा देने और लेनेवाले दोनों को उपवास करना चाहिए और कुछ विधि नियमों के अनुसार राजसभा में सब लोगों के सामने दिव्य या परीक्षा होनी चाहिए। किसी किसी के मत से 'तुलसी' नामक एक और प्रकार की दिव्य भी है, पर इसके विषय में कोई विशेष बात नहीं मिलती।

तुलापरीक्षा में शोध्य या अभियुक्त को बड़े तराजू पर बैठाकर दो बार बदल बदल कर तोलते थे। दूसरी बार की तोल में यदि वह बढ़ जाता तो शुद्ध और बराबर उत्तर गया या घट जाता तो दोषी समझा जाता था। अग्निपरीक्षा में तपाए हुए लोहे को अजली में लेकर सात महलों के भीतर धीरे धीरे चलना पड़ता था। यदि हाथ न जलता तो अभियुक्त निर्दोष समझा जाता था। जलपरीक्षा में अभियुक्त को जल में गोता खगाना पड़ता था। गोता लगाने के समय तीन बाण छोड़े जाते थे। तीसरा बाण ठीक उसी समय छूटता था जब अभियुक्त जल में डूबता था। बाण छूटते ही एक आदमी वेग से उस स्थान पर दौड़ जाता था जहाँ बाण गिरता और एक दूसरा आदमी उस बाण को लेकर तुरंत उस स्थान पर दौड़कर आता था जहाँ से बाण छूटा था। यदि इसके वहाँ पहुँचने तक अभियुक्त जल ही में रहता तो वह निर्दोष समझा जाता था। विषपरीक्षा में विशेष मात्रा में विष खिलाया जाता था। यदि विष पच जाता तो अभियुक्त निर्दोष माना जाता था। कोषपरीक्षा में किसी देवता के स्नान का तीन अजलि जल पिलाया जाता था। यदि १४ दिन के भीतर उक्त देवता के कोष से अभियुक्त को कोई घोर दुःख न होता तो वह निर्दोष या सच्चा माना जाता था। इसी प्रकार की और भी परीक्षाएँ थीं।

२२. शपथ, विशेषतः देवताओं आदि की शपथ। सीगप। कसम। क्रि० प्र०—देना।

२३. यम का एक नाम (को०)।

दिव्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप। २. एक प्रकार का जंतु।

दिव्यकट—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार प्राचीन काल का एक देश जो पश्चिम दिशा में था।

दिव्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] १. अलौकिक तन्त्राण। देवताओं का दिया हुआ कवच। २. वह स्तोत्र जिसका पाठ करने से भंगरक्षा हो। जैसे, रामरक्षा, नारायणकवच, देवीकवच।

दिव्यकुंड—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यकुण्ड] कालिका पुराण के अनुसार कामरूप के दक्षिण क्षोभक पर्वत पर स्थित कुंडविशेष (को०)।

दिव्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य के द्वारा परीक्षा लेने की क्रिया। विशेष—दे० 'दिव्य-२१'।

दिव्यगंध—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यगन्ध] १. लौंग। २. गंधक।

दिव्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यगन्धा] बड़ी इनायची। २. बड़ी चैच का साग।

दिव्यगायन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में गानेवाले, गंधर्व।

दिव्यचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यचक्षुस्] १. ज्ञान रूपी नेत्र। ज्ञान-चक्षु। दिव्यदृष्टि। २. अंधा। वह जिसे कुछ भी दिखाई न दे। ३. चक्षमा। ऐनक। ४. बंदर। ५. एक प्रकार का गंधद्रव्य। ६. अजुन (को०)। ७. ज्योतिषी (को०)।

दिव्यचक्षु—वि० दिव्य या सुंदर नेत्रोवाला।

दिव्यतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतरङ्गिणी] कर्नाटकी शैली की एक रागिनी (संगीत)।

दिव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दिव्य का भाव। २. देवभाव। ३. सुंदरता। उत्तमता।

दिव्यतेजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतेजस्] ब्राह्मी वृद्धि।

दिव्यदर्शी—वि० [सं० दिव्यदर्शिन] १. अलौकिक पदार्थों को देखने-वाला। २. ज्योतिष का ज्ञाता (को०)।

दिव्यदृक्—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यदृक्] ज्योतिषी (को०)।

दिव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अलौकिक दृष्टि जिससे गुप्त, परोक्ष अथवा अतिरिक्त के पदार्थ दिखाई दें। जैसे,—भाषने यही बैठे बैठे दिव्यदृष्टि से देख लिया कि बरात वहाँ पहुँच गई। (व्यंग्य)। २. ज्ञानदृष्टि।

दिव्यदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

दिव्यदोहद्—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो किसी प्रमोष्ट की सिद्धि के अभिप्राय से किसी देवता को अर्पित किया जाय।

दिव्यधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यधर्मिन्] वह जिसका स्वभाव बहुत अच्छा हो।

दिव्यनगर—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावती नगरी।

दिव्यनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाशगंगा। २. शिवपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

दिव्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अम्परा । देववधू ।

दिव्यपंचामृत—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य पञ्चामृत] गाय के घी, दूध, दही, मक्खन या मधु और चीनी इन पाँच चीजों को मिलाकर बनाया हुआ पंचामृत ।

दिव्यपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] करवीर । कनेर ।

दिव्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा गुमा जिसका पेट मनुष्य के बराबर ऊँचा और फूल लाल होता है । यही द्रोणपुष्पी ।

दिव्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाल रंग का मदार ।

दिव्ययमुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामरूप देश की एक नदी जो बहुत पवित्र मानी जाती है और जिसका माहात्म्य पुराणों में है ।

दिव्यरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] चितामणि नामक कल्पित रत्न जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह सब कामनाएँ पूरी करता है ।

दिव्यरथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का विमान ।

दिव्यरस—संज्ञा पुं० [सं०] पारद । पारा ।

दिव्यलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता । मूरहरी । धुरनहार ।

दिव्यवस्त्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का प्रकाश ।

दिव्यवस्त्र^२—वि० सुंदर और उत्कृष्ट कपड़े पहने हुए । उत्कृष्ट वस्त्र धारण करनेवाला ।

दिव्यवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] देववाणी । आकाशवाणी ।

दिव्यवाह—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृषभानु गोप की छह कन्याओं में से एक ।

दिव्यश्रोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कान जिससे सब कुछ सुना जाय ।

दिव्यसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदाकिनी । आकाशगंगा [को०] ।

दिव्यसरिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यसरित्] आकाशगंगा ।

दिव्यसानु—संज्ञा पुं० [सं०] एक विश्वदेव ।

दिव्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष । साखू का पेड़ ।

दिव्यसूरि—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय के बारह आचार्य जिनके नाम ये हैं—(१) कासार, (२) भूत, (३) महत् (४) भक्ति-सार, (५) शठारि, (६) कुलशेखर, (७) विष्णुचित्त, (८) भक्तार्चि-रेणु, (९) मुनिवाह, (१०) चतुर्विद्र, (११) रामानुज, (१२) गोदादेवा या मधुकर कवि ।—रघुराज (शब्द०) ।

दिव्यस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यांगना । अम्परा ।

दिव्यांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्याङ्गना] देववधू । अम्परा ।

दिव्यांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धाँवला । २. धाँक ककोडा । ३. महा-मेदा । ४. ब्राह्मी जड़ी । ५. बड़ा जीरा । ६. सफेद दूध । ७. हठ । ८. कपूर कचरी । ९. शतावर । १०. तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । देवलोकीय नायिका । देवांगना । स्वर्गीय या भ्रूलोकीय नायिका । जैसे, पार्वती, सीता, राबिका आदि । ११. 'दिव्य' (नायक) ।

दिव्यादिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नायकों में से एक । वह मनुष्य या ब्रह्मलौकिक नायक जिसमें देवताओं के भी गुण हों । जैसे, नल, पुष्करवा, अजिनायु आदि ।

दिव्य—के 'दिव्य' (नायक) ।

दिव्यादिव्या—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । वह ब्रह्मलौकिक नायिका जिसमें स्वर्गीय स्त्रियों के भी गुण हों । जैसे, दमयती, उर्वशी, उत्तरा आदि ।

दिव्याश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पुण्यक्षेत्र जहाँ पूर्व काल में भगवान् विष्णु ने तपस्या की थी । कुरुक्षेत्र का वर्णन करके बलदेव जो यहीं से होते हुए हिमालय गए थे ।

दिव्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन ।

दिव्यास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का दिया हुआ हथियार । २. शत्रुओं द्वारा चलेनेवाला हथियार ।

दिव्येलक—संज्ञा पुं० [सं०] सुभुत के अनुसार एक प्रकार का सर्प ।

दिव्योदक—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का पानी । बरसा हुआ पानी ।

दिव्योपपादुक—संज्ञा पुं० [सं०] बिना माता पिता के उत्पन्न देवता ।

दिव्यौषध—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'दिव्यौषधि' ।

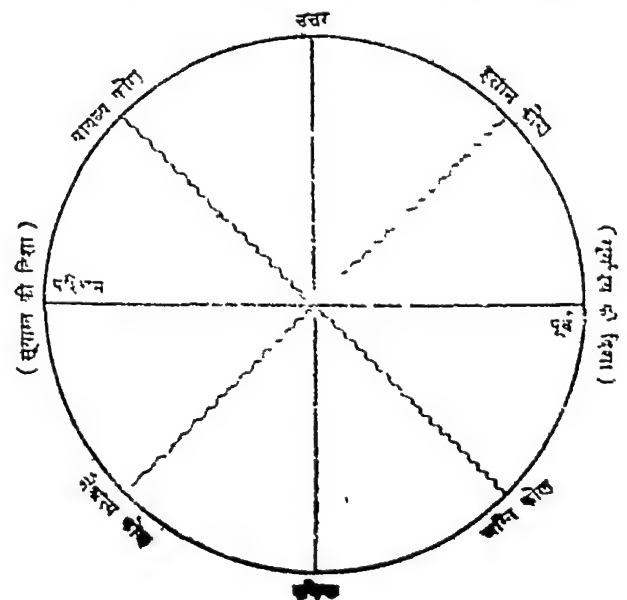
दिव्यौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भैरविल ।

दिश^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा । दिक् ।

दिश^२—संज्ञा पुं० एक देवता जो कान के अधिष्ठाता माने जाते हैं ।

दिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नियत स्थान के प्रतिरिक्त शेष विस्तार । और । तरफ । जैसे—जिस दिशा में घोड़ा भागा या उसी दिशा में वह भी चला । २. सतिजवृत्त के किए हुए चार कल्पित विभागों में से किसी एक विभाग की ओर का विस्तार ।

विशेष—दिशा का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये सतिज वृत्त चार भागों में बाँटा गया है, जिनको पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहते हैं । प्रत्येक दिशाओं के बीच में एक कोण भी होता है । पूर्व और दक्षिण के बीच के कोण को अग्निकोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोण को नैऋत्य, पश्चिम और उत्तर के बीच के कोण को



बायव्य कोण और उत्तर तथा पूर्व के बीच के कोण को ईशान कोण कहते हैं। जिस ओर सूर्य उदय होता है उस ओर मुँह करके यदि खड़े हों तो सामने की ओर पूर्व, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाई ओर उत्तर होता है। इसके प्रतिरिक्त दो दिशाएँ और भी मानी जाती हैं—एक सिर के ठीक ऊपर की ओर और दूसरी पैर के ठीक नीचे की ओर जिन्हें क्रमशः ऊर्ध्व और अध कहते हैं। वैशेषिक का मत है कि वास्तव में दिशा एक ही है, काम चलाने के लिये इसके भेद कर लिए गए हैं। सख्या, परिमाण, पुथक्त्व, सयोग और विभाग इसके गुण हैं।

पर्या०—कुसुम। काष्ठा। भाशा। हरित्। निवेशिनी। गो। दिश्। दिक्।

३ दस की सख्या। ४ रुद्र की एक स्त्री का नाम। ५ दे० 'दिसा'।

दिशाकाश—सङ्घा पु० [सं० दिश् + आकाश] दिशाएँ और आकाश। उ०—लोटी सेकर रचना उदास, ताकता हुआ मैं दिशाकाश।—मपरा, पु० १७३।

दिशागज—सङ्घा पु० [सं०] दिग्गज।

दिशाचक्षु—सङ्घा पु० [सं० दिशाचक्षुस्] पुराणानुसार गरुड के एक पुत्र का नाम।

दिशाजय—सङ्घा पु० [सं०] दिग्विजय।

दिशापाल—सङ्घा पु० [सं०] दिक्पाल।

दिशाभ्रम—सङ्घा पु० [सं०] दिशाओं के सबंध में भ्रम होना। दिग्भ्रम।

दिशावकाश—सङ्घा पु० [सं० दिशा + अवकाश] दो दिशाओं के बीच का अंतराल [को०]।

दिशावकाशकप्रत—सङ्घा जी० [सं०] जैनियों का एक प्रकार का व्रत जिसमें वे प्रातः काल यह निश्चय कर लेते हैं कि आज हम प्रभु के दिशा में इतनी दूर तक जायेंगे।

दिशावधि—सङ्घा जी० [सं०] दिशा की सीमा। सितिज। उ०—दिशावधि में पल विविध प्रकार, अतल में मिलते तुम प्रविकार।—पल्लव, पु० १२६।

दिशाशूल—सङ्घा पु० [सं० दिशा + शूल] दे० 'दिकशूल'।

दिशासूक्ष्म—सङ्घा पु० [सं० दिशा + शूल] दे० 'दिकशूल'।

दिशि—सङ्घा जी० [सं० दिश्] दे० 'दिशा'।

दिशिनियम—सङ्घा पु० [सं० दिशि + नियम] दे० 'दिशावकाशक व्रत'।

दिशेभ—सङ्घा पु० [सं० दिशा + भ्रम] दिग्गज।

दिश्य—वि० [सं०] दिशा संबंधी। दिशाविशेष संबंधी उ०—कहलाकर दिश्य संपदा, हम चारों गुप्त से पत्नी सदा।—साकेत, पु० ३२७।

दिष्ट^१—सङ्घा पु० [सं०] १. भाग्य। २ उपदेश। ३ दारुहरिद्रा। दारुहसदी। ४. कास। ५. वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

दिष्ट^२—वि० १. निश्चित। उद्दिष्ट। निश्चित। २ कथित। प्रतिपादित। ३. कर्त्तव्य। आदेशप्रदा।

दिष्ट^३—सङ्घा जी० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—सुख दिष्ट कुटिल कराल, मूर्छा परिण सोक बिसाल।—प० रासो, पु० ११।

दिष्टबंधक—सङ्घा पु० [सं० दृष्टि + बंधक] किसी पदार्थ को बंधक या रेहन रखने का एक प्रकार जिसमें रुपए का केवल सुद दिया जाता है, रेहन रखे हुए पदार्थ की भाय या भोग आदि से रुपए देनेवाले का कोई संबंध नहीं रहता। वह रेहन जिसमें चीज पर रुपए देनेवाले का कोई कब्जा न हो, उसे सिर्फ सुद मिसता रहे।

दिष्टवान^४—सङ्घा पु० [सं० दृष्टिमत] दृष्टि। देखने का ढंग। उ०—दिष्टवान में ताकर चीन्हा। आदि मनुष्य सों जइ छल कीन्हा।—इंद्रा० पु० १२५।

दिष्टात—सङ्घा पु० [सं० दिष्टान्त] मृत्यु। मोत।

दिष्टि^१—सङ्घा जी० [सं०] १. भाग्य। २ उपदेश। ३ उत्सव। ४. प्रसन्नता। ५ लवाई की एक माप (को०)। ६. आदेश। निर्देश (को०)।

दिष्टि^२—सङ्घा जी० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'।

दिष्टा—वि० [सं०] दाता। देनेवाला [को०]।

दिसंतर^३—सङ्घा पु० [सं० देशान्तर] देशांतर। विदेश। परदेश। उ०—(क) बैल चलति नाइक को लाछी वस्तु माहि भरि गौनि अपार। भली भौति को सोदा कीयो आइ दिसतर या ससार।—सुंदर प्र०, भा० २, पु० ५५२। (ख) स्वांगी सब ससार है, साधू कोई एक। हीरा हिरि दिसतरा, ककर और अनेक।—सतसाणी०, पु० ८८।

दिसंतर—क्रि० वि० दिशाओं के अत तक। बहुत दूर तक।

दिसवर—सङ्घा पु० [अं० डिसेंबर] अंग्रेजी साल का बारहवाँ या अंतिम महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

दिस^४—सङ्घा जी० [सं० दिश् या दिशा] दे० 'दिशा'।

दिस^२—सङ्घा पु० [सं० दिवस] दिन। दिवस। उ०—महं प्रगिन निस दिस जरै, गुरु से चाहे मान। ताको जम नेवता दियो, होउ हमार मेहमान।—कबीर सा० स०, पु० ४।

दिसना^५—क्रि० भ० [सं० दर्शन, प्रा० दसण, दस्सण, दिस्सण] दे० 'दिखना'। उ०—हुमा क्या वो कह खोल हानी मुजे, के दिसता है पिजरा सो खाखी मुजे।

दिसा^१—सङ्घा जी० [सं० दिशा] दे० 'दिशा'।

दिसा^२—सङ्घा जी० [सं० दिशा (= ओर)] मत्स्याग करने की क्रिया। पैखाने जाना। भाट। फिरना।

क्रि० प्र०—जाना।—फिरना।—सगना।—होना।

यो०—दिशा फरागत।

दिसा^३—सङ्घा जी० [सं० दशा] दे० 'दशा'।

दिसाउर^४—सङ्घा पु० [सं० देस + अपर; प्रा० देसावर, अप० दिसाउर] दे० 'दिसावर'। उ०—हिरणाक्षी हसिनइ कहइ, करउ दिसाउर एक।—दोना०, दू० २२१।

दिसादाह^५—सङ्घा पु० [सं० दिशा + दाह] दे० 'दिकदाह'।

दिसावल—सषा पु० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

दिसावर—सषा पु० [सं० देशान्तर] दूसरा देश । देशान्तर । परदेश । विदेश । उ०—दाता तरवर दया फल उपगारी जीवत । पपी चले दिसावरी विरपा सुफल फलत ।—फणोर प्र०, पृ० ७७ ।

मुहा०—दिसावर उतरना=जिस स्थान से माल घाता हो मयमा जहाँ जाता हो वहाँ का भाव गिरना । विदेश में भाव गिरना । दिसावर चटना=विदेश में बाजार का भाव बढ़ जाना । परदेस में काम बढ़ जाना ।

दिसावरी—वि० [हि० दिवासर + ई (प्रत्य०)] विदेश से आया हुआ । बाहर का । बाहरी (माल आदि) ।

दिसाशूल—सषा पु० [हि० दिसा + सं० शूल] दे० 'दिक्शूल' ।

दिसासूक्ष्म—सषा पु० [हि०] दे० 'दिक्शूल' ।

दिसि०—सषा स्त्री० [सं० दिसा] दे० 'दिशा' । उ०—देस काल दिसि विदिसिहू माही । कहहु सो कहीं जहाँ प्रभु नाही ।—मानस, १।१८५ ।

यौ०—दिसिविदिसि ।

दिसिटि०—सषा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' ।

दिसित्राता—सषा पु० [हि० दिसि + सं० त्राता] दिग्पाल । उ०—लोक लोक प्रति भिन्न विधाता । भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता ।—मानस, ७।८१ ।

दिसिदुरद०—सषा पु० [सं० दिशिद्विरद] दिग्गज ।

दिसिनायक०—सषा पु० [हि० दिसि + नायक] दे० 'दिवपाल' । उ०—चोके सिव विरचि दिसिनायक रहे मूँदि कर कान ।—बुलसी प्र०, पृ० ३१६ ।

दिसिप०—सषा पु० [हि० दिसि + सं० प (= रक्षक)] दे० 'दिवपाल' । उ०—कर जोरे गुर दिसिप विनीता । भृकुटि विलोकित सकल समीता ।—मानस, ५।२० ।

दिसिपति, दिसिपाल०—सषा पु० [हि०] दे० 'दिवपाल' । उ०—(क) विधि हरि हृद दिसिपति दिनराऊ ।—मानस, १।३२१ । (ख) धमर नाग किनर दिसिपाला ।—मानस, २।१३४ ।

दिसिराज०—सषा पु० [हि०] दे० 'दिवपाल' । उ०—विष्णु कहा प्रस विहसि तब बोलि सकल दिसिराज ।—मानस, १।६२ ।

दिसैया०—वि० [हि० दिसना (= दिखना) + ऐया (प्रत्य०)] १. देखनेवाला । २. दिखानेवाला ।

दिस्टि०—सषा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' । उ०—जहाँ जो ठाँव दिस्टि मेंहूँ भावा । दरपन भाव दरस देखरावा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिस्टिवंध०—सषा पु० [सं० दृष्टिवन्धन] दृढ़जाल । जादू । उ०—राघव दिस्टिवंध कलिहूँ खेला । सभा मरि क चेटक प्रस मेला ।—जायसी (शब्द०) ।

दिस्टिवंत०—वि०, सषा पु० [सं० दृष्टिवत्] दे० 'दीठवंत' ।

दिस्ता—सषा पु० [हि०] दे० 'दस्ता' ।

दिस्ता—सषा स्त्री० [सं० दिशा] मोर । तरफ (लक्ष्य) ।

दिहंद—वि० [का०] दे० 'दिहदा' ।

दिहदा—वि० [का०] दाता । देनेवाला ।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः योगिक ग्रन्थों में के मत में होता है । देखे, रामदिहदा ।

दिहकानियत—सषा स्त्री० [का० देहकानियत] देहाधीन । गैवार-पन (यो०) ।

दिहरा—सषा पु० [सं० देव + गृह (= दर) (= देवदर)] देवालय । देवमंदिर ।

दिहली—सषा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहली' । उ०—नान मोरत पोतो गाढो, दिहली की तब बालक काढो ।—फणोर प्र०, पृ० ५३८ ।

दिहाड़ा—सषा पु० [हि० दिन + हार (प्रत्य०)] १. दुर्गम । कुरी हासत । २. दिन । उ०—रति दिहाड़े तब तुमारी प्रकट इसम उड़ाई है ।—मनानंद, पृ० १०७ ।

दिहाड़ी—सषा पु० [हि० दिहरा] दे० 'दिहरा' । उ०—दूँ देर दिहाड़ियाँ महा माई माने । परगट देव निरजना, ठाकी सेव न जाने ।—दादू, पृ० ५५८ ।

दिहाड़ी—सषा स्त्री० [पञ्जाबी, हि० दिहाड़ा + ई (प्रत्य०)] १. दिन । २. दिन भर की मजदूरी ।

दिहात—सषा स्त्री० [हि० देहात] दे० 'देहात' ।

दिहाती—वि० [हि० दिहात + ई] 'देहाती' ।

दिहातीपन—सषा पु० [हि०] दे० 'देहातीपन' ।

दिहुड़ी—सषा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहली' ।

दिहुला—सषा पु० [देश०] एक प्रकार का घान जो पुरब के जिनों में बोया जाता है ।

दिहेजा—सषा पु० [हि० दहेज] दे० 'दहेज' ।

दौं—सषा स्त्री० [हि०] दे० 'दोमक' ।

दौं०—सषा पु० [सं० दोन] दे० 'दोन' । उ०—दुश्मन है दौं का खास सिपह मुख ऊपर तेरे । हिंदू से क्या मजब है धगर काफरी करे ।—कविता की०, भा० ४, पृ० २४ ।

दोघट—सषा स्त्री० [हि० दोघट] दे० 'दोघट' ।

दोघा—सषा पु० [सं० दोपक] दे० 'दोया' ।

दोक—सषा पु० [देश०] जाल में माँझ देने का एक प्रकार का तेल ।

विशेष—यह तेल काढ़ या हिजली के पेट की छान से निकलता है और जाल में माँझ देने के काम में आता है । काढ़ के पेट दिसिण में समुद्र के किनारे मिलते हैं ।

दीकरा—सषा पु० [देश० स्त्री० दीकरी] सवति । बेटा । घरस । पुत्र । उ०—सहूँ दर्परा दीकरा सोला लाये लोक । दई हूँ छाना दिवस, सँ बाटे विण सोक ।—दाकी प्र०, भा० २, पृ० २६ ।

दीक्षक—सषा पु० [सं०] दीक्षा देनेवाला । मंत्र का उपदेश करनेवाला । शिक्षक । गुरु ।

दीक्षण—सषा पु० [सं०] [वि० दीक्षित] १. दीक्षा देने की क्रिया । २. दे० 'दीक्षा' । ३. यज्ञोपवीत । उपनयन (यो०) ।

दीक्षांत—संज्ञा पुं० [सं० दीक्षान्त] १ वह प्रवृत्त यज्ञ जो किसी यज्ञ के समापनात में उसकी श्रुति आदि के दोष की शांति के लिये किया जाता है। २ विश्वविद्यालयों में परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों को उपाधि या प्रमाणपत्र प्रदान करने का प्रवसर। ३. किसी गुरुकुल या विद्यालय में अध्ययन क्रम की समाप्ति।

यौ०—दीक्षात माषण। दीक्षातोपदेश—उत्तीर्ण स्नातकों को प्रमाणपत्र देने के अनंतर किसी विशिष्ट विद्वान् या कुलपति द्वारा उन स्नातकों को संबोधित कर दिया जानेवाला उपदेश।

दीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यजन। यज्ञकर्म। सोमयागादि का, सकल्पपूर्वक अनुष्ठान। २ गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। मंत्र की शिक्षा जिसे गुरु दे और शिष्य ग्रहण करे।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—वैदिक गायत्री मंत्र के अतिरिक्त आज कल भिन्न भिन्न देवताओं के बहुत से सांप्रदायिक दृष्ट मंत्र तंत्रोक्त रीति के अनुसार प्रचलित हैं। गौतमीय तंत्र, योगिनी तंत्र, रुद्रयामल इत्यादि तंत्र ग्रंथों में दीक्षाग्रहण का माहात्म्य तथा उसके अनेक प्रकार के नियम दिए हुए हैं। विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य इत्यादि की उपासना के भेद से वैष्णव, राम-तारक, शैव, शाक्त इत्यादि मंत्र प्रचलित हैं, जो शिष्य के कान में कहे जाते हैं। लोगों का साधारण विश्वास है कि बिना गुरुमंत्र लिए गति नहीं होती। तंत्रों के अनुसार जिन मंत्रों के अंत में 'हु फट्' हो वे पुं० मंत्र, जिनके अंत में 'स्वाहा' हो वे स्त्री मंत्र और जिनके अंत में 'नम' हो वे नपुंसक मंत्र कहलाते हैं। योगिनी तंत्र में लिखा है कि पिता, मामा, छोटे भाई और शत्रुपक्षवाले से मंत्र न लेना चाहिए। रुद्रयामल तंत्र पति से मंत्र लेने का भी निषेध करता है, पर उससे सिद्ध मंत्र लेने की आज्ञा दीता है। शूद्र को प्रणव या प्रणवघटित मंत्र देने का निषेध है। शूद्र को गोपाल महे-श्वर, दुर्गा, सूर्य और गणेश का मंत्र देना चाहिए।

३ उपनयन सस्कार जिसमें आचार्य गायत्री मंत्र का उपदेश देता है। ४. वह मंत्र जिसका उपदेश गुरु करे। गुरुमंत्र। ५. पूजन।

दीक्षागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रोपदेश गुरु।

दीक्षापति—संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा या यज्ञ का रक्षक, सोम।

दीक्षित^१—वि० [सं०] १ जिसने सोमयागादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। जो किसी यज्ञ में प्रवृत्त हो। २ जिसने आचार्य से दीक्षा ली हो। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। जिसने दीक्षा ग्रहण की हो।

दीक्षित^२—संज्ञा पुं० ब्राह्मणों का एक भेद।

दीखना—क्रि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। जैसे,—उसे दूर की चीज नहीं दीखती।

संयो० क्रि०—पढ़ना।—पाना। उ०—पुनि जल दीख रूप निख पावा।—मानस, १।१३६।

दीक्षिआ^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'। उ०—कठन गुरु जिसु दीक्षिआ दीनि। भरपरि प्रणवे रस्तु प्रवीन।—प्राण०, पु० १००।

दीगर—वि० [फ्रा०] दूसरा। अन्य।

दीर्घ—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दिव्य] बड़ा। विशाल। संज्ञा।

दीधी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीधिका] बावली। पोखरा तालाब। जैसे, लालदीधी।

दीच्छा^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'।

दीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि] १ देखने की शक्ति या शक्ति। आँख की ज्योति। दृष्टि। उ०—पिय की भारति देखि मेरे जिय दया होत पै तेरी दीठ देखि देखि डरत।—नंद०, प्र०, पु० ३६८।

मुहा०—दीठ मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना।

२. देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। आँख की पुतली की किसी वस्तु की सीध में होने की स्थिति। टक। दृक्पात। धव-सोकन। चितवन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—डालना।

यौ०—दीठबंद। दीठबंदी।

मुहा०—दीठ करना = दृष्टि डालना। ताकना। दीठ चूकना = नजर न पड़ना। दृष्टि का हथर उधर हो जाना। दीठ फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। (२) कृपादृष्टि न रहना। हित का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दीठ फिरना = कृपा होना। दयादृष्टि होना। उ०—हो गए फेर में पड़े घरसों। आप की दीठ आज भी न फिरी।—चुभते०, पु० २। दीठ फेकना = नजर डालना। ताकना। दीठ फेरना = (१) नजर हटा लेना। दूसरी ओर ताकना। उ०—जिधर पीठ दे दीठ फेरती, उधर मैं तुम्हें ढीठ, हेरती।—साकेत, पु० ३१३। (२) कृपादृष्टि न रखना। अप्रसन्न या खिन्न होना। किसी की दीठ बघाना = (१) (किसी के) सामने होने से बचना। आँख के सामने न आना। जान बूझकर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। उ०—मोहन आपनो राधिका को विपरीत को चित्र विचित्र बनाय के। दीह बघाय सलोनी की धारसी में विपकाइ गयो वहराइ के।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। दीठ बाँधना = इस प्रकार जाहू करना कि आँखों को धीरे का धीरे दिखाई दे। इंद्रजाल फैलाना। दीठ लगाना = ताकना। दृष्टि करना। उ०—नहिं सार्वहिं पर तिय मन दीठी।—तुलसी (शब्द०)।

३. आँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के रूप रंग का बोध होता है। दृक्पथ।

मुहा०—दीठ पर पढ़ना = (१) देखने में खेठ या उत्तम जान पड़ना। निगाह में जैचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। पसंद आना। जाना। (२) आँखों में खटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। दीठ बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के पासरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के भागमन की प्रतीक्षा करना। (२) किसी के जाने पर पर्यंत श्रद्धा या प्रेम से स्वागत करना। दीठ में भाना = दिखाई पड़ना। दीठ में पड़ना = दिखाई पड़ना। दीठ में समाना = अच्छा या प्रिय लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना।

दीठ से उतरना या गिरना = श्रद्धा, विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना । (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना ।

४. अच्छी वस्तु पर ऐसी दृष्टि जिसका प्रभाव बुरा पड़े । नजर । उ०—दूनी हूँ लागी लगन दिए दिठोना दीठ ।—बिहारो (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—दीठ उतारना या भाडना = मन्त्र के द्वारा बुरी दृष्टि का प्रभाव दूर करना । दीठ खा जाना = किसी की बुरी दृष्टि के सामने पड़ जाना । टोक में भाना । हूस में भाना । (वच्चों के संबंध में अधिक बोलते हैं) । (किसी की) दीठ चढना, दीठ पर चढना = दे० 'दीठ खा जाना' । दीठ जलाना = नजर उतारने के लिये राई लोन या कपड़ा जलाना ।

विशेष—जब बच्चों को नजर लगने का सदेह स्त्रियों को होता है तब वे टोटके के लिये उसके ऊपर से राई लोन घुमाकर भाग में ढालती हैं, भयवा जिस किसी को वे नजर लगानेवाला समझती हैं उसकी भाँख की बरीनी किसी युक्ति से प्राप्त करके भाग में जलाती हैं ।

५. देखने में प्रवृत्त नेत्र । देखने के लिये खुसी हुई भाँख ।

मुहा०—दीठ उठाना = ताकने के लिये भाँख ऊपर करना । दीठ गढाना, जमाना = दृष्टि स्थिर करना । एकटक ताकना । दीठ चुराना = (लज्जा या भय से) सामने न भाना । जान बूझ कर दिखाई न पड़ना । दीठ जुडना = भाँख मिलना । साक्षात्कार होना । देखादेखी होना । दीठ जोड़ना = भाँख मिलाना । साक्षात्कार करना । देखादेखी करना । दीठ किसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना । भाँख में चकाचौंध होना । दीठ भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देखना । जी भरकर ताकना । दीठ मारना = (१) भाँख से इशारा करना । पलक गिराकर संकेत करना । (२) भाँख के इशारे से रोकना । दीठ मिलना = दे० 'दीठ जुडना' । दीठ मिलना = दे० 'दीठ जोड़ना' । दीठ लगना = देखादेखी होने से प्रेम होना । प्रीति होना । उ०—नददास नंदरानी छवि निरखि बारि पीवत पानी, काहू जिन दीठ छगे ।—नंद० प्र०, पृ० ३३६ । दीठ लहना = भाँख के सामने भाँख होना । घूराघूरी होना । दीठ लढाना = भाँख के सामने भाँख किए रहना । घूरना ।

६. देख भाँख । देख रेख । निगरानी ।

क्रि० प्र०—रखना ।

७. परका । पहचान । तमीज । अटकल । अंदाज ।

क्रि० प्र०—रखना ।

८. कृपादृष्टि । हित का ध्यान । मिह्रवानी की नजर । उ०—बिरबा खाइ न सूखइ दीजे । पात्रे पानि दीठि सो कीजे ।—जायसी (शब्द०) । ९. आशा की दृष्टि । आसरे में लगी हुई टकटकी । आस । सम्पीद ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

१०. ध्यान । विचार । संकल्प । उद्देश्य ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दीठना—क्रि० सं० [हि० दीठ + ना (प्रत्य०)] दे० 'देखना' । उ०—काढ़े काठ जो साइया खात किनहुँ नहि दीठ ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४१ ।

दीठवद—सहा पु० [हि० दीठ + वद] इद्रजाल की ऐसी भाया जिसमें लोगों को भीर का भीर दिखाई दे । नजरबद । जादू ।

दीठवंदी—सहा स्त्री० [हि० दीठवद] इद्रजाल की ऐसी भाया जिससे लोगो को भीर का भीर दिखाई दे । नजरबंदी । जादू ।

दीठवंत०—सहा पु० [हि० दीठ + वत (प्रत्य०)] १. वह बिसे दिखाई देता हो । सुमाखा । २. जानी ।

दीठि—सहा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिष्टि] दे० 'दृष्टि' । उ०—जखने दुहुक दीठि बिछुडलि दुहु मने दुख लागु ।—विद्यापति, पृ० ३७ ।

दीठिवंत०—सहा पु० [हि० दीठवत] दे० 'दीठवत' । उ०—ना वह मिला न बेहरा ऐस रहा भरिपूर । दीठिवत कहूँ नोये भय मूरखहि दूर ।—जायसी (शब्द०) ।

दीठिमैरावा०—सहा पु० [सं० दृष्टि + मिलन] देखादेखी । एक दूसरे को देखना । परस्पर दर्शन । उ०—होइहि एहि बिधि दीठिमैरावा ।—जायसी प्र० पृ० ६६ ।

दीठी०—सहा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि । नेत्र । उ०—मिसन सार मुसकान वचन मृदु बोली भीठी । पुलकित सीतल गात, सुभट रतनारी दीठी ।—पलद०, भा० १, पृ० १२ ।

दीत०—सहा पु० [सं० प्रादित्य, पुं० हि० प्रादीत] सूर्य । (दि०) ।

दीतवार—सहा पु० [सं० प्रादित्यवार] इतवार । रविवार । उ०—माघ सुक्ल द्वितीया सु तिथि, दीतवार मन हव ।—ब्रज० प्र०, पृ० ५० ।

दीद०—सहा स्त्री० [फा०] दर्शन । दीदार । उ०—दीद बरदीद परतीत भावे नही, दूरि की भास विश्वास भारी ।—कबीर० रे०, पृ० ५ ।

यी०—दीद ए तर = अश्रुपूर्ण नेत्र । भारं भाँखें । दीद बरदीद = देखादेखी । भ्रामने सामने । उ०—दीद बरदीद हम नजरों देखा भजया भ्रमर निसानी ।—कबीर छ०, पृ० ६२ । दीदबान = (१) देखभाल करनेवाला व्यक्ति । (२) निगरानी करने के लिये बना ऊँचा स्थान । दीदबानी = निगरानी । देखभाल । उ०—करे घर की सब दीदबानी वही, देवे नेकी वद की निशानी वही ।—दक्खिनी०, पृ० ८६ ।

दीदनी०—वि० [फा०] देखने योग्य । दर्शनीय । उ०—जो गुह भीर शुनीद है भीर दीदनी भीर दीद है ।—कबीर प्र०, पृ० ३७१ ।

दीदा^१—सहा स्त्री [फा०] १. दृष्टि । निगाह । नजर । २. दर्शन । अवलोकन । देखोदेखी ।

दीदा^२—सहा पु० [फा० दीदह] १. भाँख । नेत्र । उ०—अक्रिया के नहर सुँ दीदे का पानी, कर ऐसे बागे गम की बागवानी ।—दक्खिनी० पृ० २३७ ।

मुहा०—दीदा लगना = जी लगना । ध्यान जनना । चित्त रमना । जैसे,—(क) यहाँ इसका दीदा क्यों लगेगा ? (ख) काम में

उसका दीदा नहीं लगता। दीदे का पानी ठल जाना = बुरे काम के करने में लज्जा न रह जाना। निर्लज्ज हो जाना। दीदे का पानी मरना = निर्लज्ज या बेहया हो जाना। उ०—नजीर के दीदे का तो पानी मर गया है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३३६। दीदे निकलना = क्रोध की दृष्टि से देखना। भाँखें नीली पीली करना। दीदाधोई = स्त्री जिसकी भाँखों में धर्म न हो। बेधर्म। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदे पटम होना = भाँखों का फूट जाना। (स्त्रि०)। दीदाफटी = स्त्री जिसकी भाँखों में धर्म न हो। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदा फूटना = भाँखें फूटना। भाँखें भंगी होना। दीदे फाड़कर देखना = अच्छी तरह भाँखें खोलकर देखना। ध्यानपूर्वक देखना। टकटकी बाँधकर देखना। दीदे मटकाना = हाव भाव सहित भाँखों की पुतली चमकाना। भाँखें चमकाना।

२. ठिठाई। सकोच का प्रभाव। अनुचित साहस। जैसे,—उसका इतना बड़ा दीदा कि वह मदों के सामने बात करे—(स्त्रि०)।

दीदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. सीढ़ियाँ। छवि। २. दर्शन। देखा देखी। साक्षात्कार। उ०—भारतवर्ष चरमए कोसर नहीं। तिग्मालम्ब है शरबते दीदार का।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

यौ०—दीदारपरस्त = (१) सीढ़ियाँ देखनेवाला। सुरत प्रीत शृंगारप्रेमी। (२) दर्शनाभिलाषी। दीदारबाजी = ताक माँक। भाँखें लड़ाना।

दीदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीदार] देखना। दर्शन करना। उ०—नाहक दीदारी है सारी गर न हक का तोर लगा।—भारतवर्ष, भा० २, पृ० ५६६।

दीदारु—वि० [फ्रा० दीदारु] दर्शनीय। देखने योग्य।

दीदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादा (= बड़ा भाई)]। बड़ी बहिन को पुकारने का शब्द। ज्येष्ठ भगिनी के लिये संबोधन शब्द।

दीधना—कि० सं० [सं०] देना। प्रदान करना। सं०—पूजी विनायक चाखी छह जान। चौरास्या सह दीधत छह पान।—बी० रासो०, पृ० ११।

दीधिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य, चंद्रमा आदि की किरण। २. उँगली।

दीने—वि० [सं०] १. दरिद्र। गरीब। जिसकी दशा हीन हो। उ०—दानी ही सब जगत के तुम एकै मदारे। दोरन दुख दुखियान के धमिमते फल दातार। धमिमते फल दातार देवगन सेव हित सों। सकल संपदा सोह छोह किन रोखत वित सो। बरने दीनदयाल छाह तब सुखद बखानी। तोहि सिह जो दीन रहै तो तू कस दानी?—दीनदयाल (शब्द०)। २. दुःखित। सतत। कातर। उ०—बाधम देख जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दीनदयाल। दीनबधु। दीनानाथ।

३. उदास। खिन्न। जिसमें किसी प्रकार का उत्साह या प्रसन्नता

५-८

न हो। जिसका मन मरा हुआ हो। उ०—(क) नवम सरस सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरप न दीना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ऐसे ही दीन मलीन हुती मन भरो भयो धब तो प्रति भारत।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। ४. दुख या भय से अधीनता प्रकट करनेवाला। नम्र। विनीत। उ०—दीन वचन सुनि प्रभु, मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।—तुलसी (शब्द०)।

दीन—संज्ञा पुं० [सं०] तगर का फूल।

दीन—संज्ञा पुं० [प्र०] मत। मजहब। धर्मविश्वास।

यौ०—दीन ए इलाही, दीने इलाही = सम्राट् अकबर द्वारा चलाया हुआ एक पय जिसमें हिंदू धर्म तथा अन्य धर्मों की बातों का मिश्रण था। दीनदार। दीन दुनिया = निधन। विपन्न। दीन दुनिया = लोक परलोक। दीनदुनी।

दीन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दे० दिन। उ०—गेल दीन पुनु पलटि न आव।—विद्यापति, पृ० ३०२।

दीनक—वि० [सं०] दुर्दशाग्रस्त। विपन्न। दुःखी [को०]।

दीनबा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दरिद्रता। गरीबी। २. कातरता। भात भाव। ३. उदासी। खिन्नता। ४. दुःख से उत्पन्न अधीनता का भाव। नम्रता। विनीत भाव।

विशेष—काव्य या रसरूपण में दीनता एक संचारी भाव है।

दीनता—संज्ञा स्त्री० [सं० दीनता + ई (प्रत्यय)] दे० 'दीनता'।

दीनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दीनता।

दीनदयाल—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दीनदयालु] दे० 'दीनदयालु'। उ०—कोमल वित्त प्रति दीनदयाल।—तुलसी (शब्द०)।

दीनदयालु—वि० [सं०] दीनों पर दया करनेवाला।

दीनदयालु—संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम।

दीनदार—वि० [प्र० दीन + फा० दारि (प्रत्यय)] अपने धर्म पर विश्वास रखनेवाला। धार्मिक। जैसे, दीनदार मुसलमान।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री० [प्र० दीन + फा० दारी (प्रत्यय)] धर्मोचरण।

दीन दुनिया—संज्ञा पुं० स्त्री० [प्र० दीन + फा० दुनिया] धर्म प्रीत ससार। उ०—पलटू दुनिया दीन मैं उनसे बड़ा न कोह। साहिब वही फकीर है जो कोह पहुँचा होह।—पलटू०, भा० १, पृ० ४।

मुहा०—दीन दुनिया से बेखबर होना = न धर्म की परवाह करना प्रीत न समाज की। बेहोश होना। उ०—प्राजादपासा तमाम शय गिरी के भालम में रहे, दीन दुनिया से बेखबर।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०६।

दीनदुनी—संज्ञा स्त्री० [प्र० दीन + फा० दुनिया] लोक परलोक।

दीनदुख—संज्ञा पुं० [सं० दीनदुख] १. दुखियों का सहायक। २. ईश्वर का एक नाम।

दीनहित—वि० [सं० दीन + हित] दीनों का हित करनेवाला। उ०—मो सम दीन न, दीनहित तुम समान रखोर। यस बिचारि रघुवंसमनि, हरहु विषम भवभीर।—मानस, ७।३०।

दीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूषिका । छुहिया ।

दीनानाथ—संज्ञा पुं० [सं० दीन + नाथ] १ दीनों का स्वामी या रक्षक । दुखियों का रक्षक । दुखियों का पालक और सहायक । २ ईश्वर का एक नाम ।

दीनार—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्णमुद्रा । सोने का गहना । २ निष्क की तील । ३ स्वर्णमुद्रा । मोहर ।

विशेष—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरोप के बहुत से भागों में था । यह कहीं सोने का, कहीं चांदी का होता था । देशभेद से इसके मूल्य में भी भेद था ।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था । 'हरिवंश' और 'महावीरचरित्' में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है । साँची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खंडहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट् चंद्रगुप्त का एक लेख है । उस लेख में 'दीनार' शब्द आया है । अमरकोश में भी दीनार शब्द मौजूद है और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है । रघुनंदन के मत से दीनार ३२ रत्ती सोने का होता था । अकबर के समय में जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसकाल अर्थात् आधे तोले के बराबर था ।

हिंदुस्तान की तरह अरब और फारस में भी प्राचीन काल में दीनार नाम का सिक्का प्रचलित था । अरबी फारसी के कोशकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है, पर फारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था । इसके अतिरिक्त रोमन (रोमक) लोगों में भी यह सिक्का दिनारियस के नाम से प्रचलित था । धातुवर्ष पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्यभाषा ही का प्रतीत होता है । अब प्रश्न यह होता है कि यह सिक्का भारत से फारस, अरब होते हुए रोम में गया अथवा रोम से अरब आया । यदि हरिवंश आदि संस्कृत ग्रंथों की अधिक प्राचीनता स्वीकार की जाय तो दीनार को इसी देश का मानना पड़ेगा ।

दीनारी—संज्ञा पुं० [सं० दीनार] लोहारों का ठप्पा ।

दीनी—वि० [अ० दीन + फा० ई (प्रत्य०)] धार्मिक । धर्म संबंधी (कौ०) ।

दीपंकर—संज्ञा पुं० [सं० दीपङ्कर] बुद्ध के अवतारों में से एक ।

दीप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ दीया । चिराग । जलती हुई बत्ती ।

यौ०—दीपकलिका । दीपकट्टि । दीपकूपी । दीपदान । दीपवज्र । दीपपुष्प । दीपमाला । दीपवृक्ष । दीपशिखा ।

विशेष—किसी कुल या समुदाय का दीप कहने से उस कुल या समुदाय में श्रेष्ठ का अर्थ सूचित होता है, जैसे, निरखि बटन कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहि चलेउ लिवाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

२ दस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में तीन लघु फिर एक गुरु और फिर एक लघु होता है । जैसे—जय जयति जगबन्ध, मुनि मन कृमुद बन्ध । त्रैलोक्य अवनपीप । दशरथ कुलदीप ।

दीप^२—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दे० 'दीप' । उ०—रामतिलक मुनि दीप

दीप के रूप आए उपहार लिए । सीय सहित प्राचीन सिंहासन निरखि जोहारत हरप हिए ।—तुलसी प्र०, पृ० ४०३ ।

दीपक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ दीया । चिराग ।

यौ०—कुलदीपक = वंश को उजाला करनेवाला पुत्र ।

२ एक अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुत (जो वरुण का विषय हो) और अप्रस्तुत (जो वरुण का उपस्थित विषय न हो और उपमान आदि हो) का एक ही धर्म कहा जाता है, अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है । जैसे,— (क) सोहत भूपति दाम सों फल फूलन आराम । इस उदाहरण में प्रस्तुत 'भूपति' और अप्रस्तुत 'आराम' दोनों का एक धर्म सोहत कहा गया है । (ख) अपिहि देखि हरपे हियो राम देखि कुम्हलाय । धनुष देखि डरपे महा बिता बिता डुनाय । इस उदाहरण में 'हरपे' 'कुम्हलाय' 'डरपे' आदि क्रियाओं का एक ही कर्ता 'हियो' कहा गया है ।

विशेष—दीपक चार आदि और प्रधान अलंकारों में से है । तुल्ययोगिता में भी एक धर्म का कथन होता है पर वह या तो कई प्रस्तुतों या कई अप्रस्तुतों का होता है । दीपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के एक धर्म का कथन होता है । दीपक चार प्रकार का होता है—प्रावृत्ति दीपक, कारक दीपक, माला दीपक और देहली दीपक । (१) प्रावृत्ति दीपक में या तो एक ही क्रियापद निम्न निम्न अर्थों में बार बार आता है अथवा एक ही अर्थ के निम्न निम्न पद आते हैं । जैसे,— (क) बहै रुधिर सरिता, बहै किरवाने कढ़ि कोस । बीरन बरहि बरांगना, बरहि सुमट रन रोस । (ख) दीरहि सगर मत्ता गज घावहि हय समुदाय । (२) कारक दीपक । उ०—ऊपर देखिए । (३) माला दीपक जिसमें एकावली और दीपक का मेल होता है । जैसे,—जग की रुचि ब्रजवास, ब्रज की रुचि ब्रजचंद हरि । हरि रुचि बसी 'दास', बसी रुचि मन बाँधियो । (४) देहली दीपक में एक ही पद दो और लगता है । जैसे,—हैं नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रह्लाद को सकट भारी । इस उदाहरण में 'हन्यो' शब्द दो और लगता है—'मनुजाद हन्यो' और 'भारी सकट हन्यो' ।

३ सगीत में छह रागों में से एक ।

विशेष—हनुमत् के मत से यह छह रागों में दूसरा राग है । यह संपूर्ण जाति का राग है और पद्म स्वर से आरंभ होता है । इसके गाने का समय प्रीति अनु का मध्याह्न है । इसका सरगम यह है—स रे ग म प ध नि स ।

इसकी पाँच रागिनियाँ मानी जाती हैं—देशी, कामोदी, नाटिका, केदारी और कान्हड़ा । पुत्र प्राठ हैं—कुतल, कमल, कलिंग, चपक, कुसुम, राम, लहिल और हिमाल । भरत के मत से दीपक की पत्नियाँ हैं—केदारा, गोरी, गोडी, गुर्जरी, रुद्राणी, और पुत्र हैं कुसुम, टक, नटनारायण, बिहागरा, किरादस्त, रत्नसमगला, मंगलाष्टक और भद्राना ।

४ एक ताल का नाम जिसमें प्लुत, लघु और प्लुन होते हैं । ५ अजनायन (जो अग्निदीपक होती है) । ६ केसर ।

कुकुम । ७ बाज नाम का पक्षी । ८ मयूरशिखा । ९. एक प्रकार की प्रातिशवाजी ।

दीपक^२—वि० [स्त्री० दीपिका] १. प्रकाश करनेवाला । उजाला फैलानेवाला । दीप्तिकारक । २. जठराग्नि को दीप्त करने वाला । पाचन की अग्नि को तेज करनेवाला । ३. उत्तेजक । शरीर में वेग या उमंग लानेवाला ।

दीपक^३—सङ्घा पुं० [सं०] एक ङिगल गीत । छंदविशेष । उ०—तुकां बेलिये गीत री, भाद दुतिय चतुरंत । तिय पद दोय दुमेल तुक, दीपक सो दाखत ।—रघु० ७०, पृ० १०६ ।

दीपकमाला—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. एक वरुणवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, भगण, जगण और गुरु होता है । जैसे,—भामज गो कन्या सखी बरी । देखत ही मोरे धनू परी । मठप के नीचे भरी झली । दीपकमाला सो लसे लली । २. दीपक झलकार का एक भेद ।

दीपकलिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीप की टेम । चिराग की लौ ।

दीपकली—सङ्घा स्त्री० [सं० दीपकलिका] चिराग की टेम । दीप-शिखा । दीप की लौ ।

दीपकवृत्त—सङ्घा पुं० [सं०] १. वह बड़ा दीवट जिसमें दीप रखने के लिये कई शाखाएँ इधर उधर निकली हों । २. भाद ।

दीपकसुत—सङ्घा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपकाल—सङ्घा पुं० [सं०] दीया वालने का समय । संध्या ।

दीपकावृत्ति—सङ्घा पुं० [सं०] १. दीपक झलकार का एक भेद । २. पनसाखा ।

दीपकिट्ट—सङ्घा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपकूपी—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीप की बत्ती ।

दीपखोरी—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीप की बत्ती [को०] ।

दीपगु—सङ्घा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीपक' । उ०—दीपग वरत विवेक को तो लौं या चित माहि । जो लौं नारि कटाक्ष पट रूपको लागत नाहि ।—अज० ग्रं०, पृ० ८८ ।

दीपगरी—सङ्घा पुं० [सं० दीपगृह] दीवट । दीपाधार ।

दीपचंदो—सङ्घा पुं० [सं० दीपचन्द्रिन्] सगीत का एक 'ताल' या ठेका । उ०—कुछ सगीतज्ञों का कहना है कि 'दीपचंदो' ताल का नहीं ठेके का नाम है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३७ ।

दीपतु—सङ्घा स्त्री० [सं० दीप्ति] १. कांति । चमक । प्रभा । ज्योति । २. छटा । शोभा । ३. कीर्ति । यश ।

दीपति०—सङ्घा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' । उ०—अजरज मोहि हिंदू तुष्क बादि करत सग्राम । इक दीपति सी दीपित काबा काशी घाम ।—अकबरी०, पृ० ५१ ।

दीपदान—सङ्घा पुं० [सं०] १. किसी देवता के सामने दीपक जलाने का काम जो पूजन का एक अंग समझा जाता है । २. कार्तिक में बहुत से दीपक जलाने का कृत्य जो राधा दामोदर के निमित्त होता है । ३. एक प्रकार का कृत्य जिसमें भरणासन व्यक्ति के हाथ से आटे के जलते हुए दीये का चक्कप कराया जाता है ।

दीपदानी—सङ्घा स्त्री० [सं० दीप + प्राधान] धो, बत्ती आदि दीया जलाने की सामग्री रखने की डिबिया जो पूजा के सामानों में से है ।

दीपध्वज—सङ्घा पुं० [सं०] १. काजल । २. दीवट ।

दीपन^१—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० दीपनीय, दीपित, दीप्य] १. प्रकाशित । प्रज्वलित या प्रकाशित करने का काम । प्रकाश के लिये जलाने का काम । २. जठराग्नि को तीव्र करने की क्रिया । भूख को उभारने की क्रिया । ३. आवेग उत्पन्न करना । उत्तेजना । जैसे, काम का दीपन ।

दीपन^२—वि० दीपन करनेवाला । जठराग्निवर्धक । अग्निमाध दूर करनेवाला ।

दीपन^३—सङ्घा पुं० १. तगरमूल । तगर की जड़ या लकड़ी । २. मयूरशिखा नाम की बूटी । ३. कुंकुम । केसर । ४. पसाहु । प्याज । ५. कासमदं । कसौदा । ६. मन्त्र के उन दस सत्कारों में से एक जिनके बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता । ७. रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का सातवाँ संस्कार ।

विशेष—इस दर्शन को माननेवाले रस या पारे ही को ससार-परपार-प्राप्ति का कारण और रस-शास्त्र को देहवेषपूर्वक मुक्ति का साधन मानते हैं ।

दीपनगण—सङ्घा पुं० [सं०] जठराग्नि को तीव्र करनेवाले पदार्थों का वर्ग । भूख लगानेवाली श्लोषधियों का वर्ग ।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत चीता, बनिया, भजमोदा, जोरा, हाऊ, बेर इत्यादि हैं ।

दीपना^१०—क्रि० प्र० [सं० दीपन] प्रकाशित होना । चमकना । जगमगाना ।

दीपना^२—क्रि० सं० प्रकाशित करना । चमकाना । उ०—द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगत है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

दीपनी^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. मेथी । २. अजवायन । ३. पाठा ।

दीपनी^२—वि० [सं०] १. दीप्त करने योग्य । प्रकाशन के योग्य । २. उत्तेजित करनेवाली । दीप या अभिप्रेत करनेवाली (श्लोषधि) ।

दीपनीय^१—सङ्घा पुं० १. यवानी । अजवायन । २. दे० 'दीपनीय वर्ग' । ३. स्वास्थ्यदायक श्लोषधि । पुष्टिकर दवा [को०] ।

दीपनीयवर्ग—सङ्घा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार एक श्लोषधिवर्ग जिसके अंतर्गत पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चीता और नागर हैं । ये सब श्लोषधियाँ कफ और वातनाशक हैं ।

दीपपादप—सङ्घा पुं० [सं०] दीवट ।

दीपपुष्प—सङ्घा पुं० [सं०] चक्रवृक्ष । चपा ।

दीपमाला—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. जलते हुए दीपों की पक्ति । जगमगाते हुए दीयों की श्रेणी । (दीवाली में इस प्रकार दीपक जलाकर पक्ति में रखे जाते हैं) । २. दीपमाला या भारती के लिये जलाई हुई वस्तियों का समूह ।

दीपमालिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. दीपों की पक्ति । जलते हुए

प्रदीपों की श्रेणी (जैसी दीवाली में दिखाई देती है) ।
२ दीवाली । ३ दीपदान या धारती के लिये जलाई हुई
बत्तियों की पक्ति । उ०—दीपमालिका रचि रचि साजत
पुद्गपमास मढली विराजत ।—सूर (शब्द०) ।

दीपमाली—सङ्घा स्त्री० [सं० दीपमालिका] दीवाली । उ०—
मालिनि के संग दीपमाली के विलोकिने को श्रीभक्ति उभक्ति
औ न भक्ति भरोखे तें ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

दीपवती—सङ्घा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी
जो कामाख्या में है और जिसके पूर्व शृंगार नाम का प्रसिद्ध
पर्वत है ।

दीपवर्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीप की बत्ती [को०] ।

दीपवृत्त—सङ्घा पुं० [सं०] १ दीवट । दीपट । २ प्रकाश [को०] ।

दीपशत्रु—सङ्घा पुं० [सं०] पतंग । कतिगा जो दीपक को बुझा
देता है ।

दीपशालम—सङ्घा पुं० [सं० दीप + शालम] जुगनु । खद्योत । उ०—
दीपशालम ने जिसे मिचोनी खेल खेलकर हुलसाया ।—
वीणा, पु० ।

दीपशिखा—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ दीप की टेम । चिराग की ली ।
प्रदीपज्वाला । उ०—दीपशिखा सम जुवतिजन मन जनि
होसि पतंग ।—सुलसी (शब्द०) । २ दीप का घुमा
या काजल ।

दीपशृङ्खला—सङ्घा स्त्री० [सं० दीपशृङ्खला] दीपको की कतार ।
दीपों की पक्ति [को०] ।

दीपसुत—सङ्घा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपस्तम्भ—सङ्घा पुं० [सं० दीप + स्तम्भ] वह स्तम्भ जिसपर दीप
बलता हो । दीपाधार । दीपट ।

दीपाङ्कुर—सङ्घा पुं० [सं० दीपाङ्कुर] दीप की टेम । दीपक की
ली [को०] ।

दीपाग्नि—सङ्घा पुं० [सं०] दीप की टेम की भाँच । भाँच का एक
परिमाण जो धूम्रानि से षोडश माना जाता है ।

दीपाधार—सङ्घा पुं० [सं० दीप + आधार] दीपक रखने का पात्र
या स्थान । दीपट । उ०—दोनों की विवश विह्वलता देख
दीपाधार पर जलती दीपशिखा स्तम्भ और निश्चल रह गई ।
—अभिषास, पु० ११ ।

दीपान्विता—सङ्घा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की समावस्या
जिसके प्रदीपकाल में लक्ष्मीपूजन और दीपदान आदि होता
है । दीवाली ।

दीपाराधन—सङ्घा पुं० [सं०] धारती करने की क्रिया । दीप द्वारा
पूजन [को०] ।

दीपालि—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'दीपावली' [को०] ।

दीपाली—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'दीपावली' [को०] ।

दीपावती—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीपक और सरस्वती के योग से उत्पन्न
एक रागिनी ।

दीपावलि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ दीपश्रेणी । दीपों की पक्ति । २
दीवाली ।

दीपावली—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ दीपों की पक्ति । २ दीवाली ।

दीपिका^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ छोटा दीया । २. एक रागिनी जो
हिंदोल राग की पत्नी मानी जाती है और प्रदीपकाल में गाई
जाती है । ३ चाँदनी । चंद्रमा का प्रकाश [को०] ।

दीपिका^२—वि० स्त्री० १. प्रकाश करनेवाली । उजाला फैलानेवाली ।
२ स्पष्ट कहनेवाली ।

दीपिकातेल—सङ्घा पुं० [सं०] एक आयुर्वेदोक्त तेल जो कान का दर्द
दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है ।

विशेष—इसे प्रस्तुत करने की रीति यह है कि देवदार, समई
या चीड़ की सात घाठ अग्रुल लंबी सफाई से और उसे सूए
आदि से छलनी की तरह चारों ओर छेद डाले । फिर उसमें
रेशम लपेटकर तेल में गूँथ हुआवे और बत्ती की तरह जला
दे । इस प्रकार जलती हुई बत्ती में से जो गरम गरम तेल
बूँद बूँद गिरे उसे कान में टपकावे ।

दीपित—वि० [सं०] १. प्रकाशित । प्रज्वलित । २ चमकता हुआ ।
जगमगाता हुआ । ३ उत्तेजित ।

दीपी—वि० [सं० दीपिन्] १. जलनेवाला । दीप्त होनेवाला । चोतित ।
२ दीपन करनेवाला [को०] ।

दीपोत्सव—सङ्घा पुं० [सं०] दीवाली ।

दीप्त^१—वि० [सं०] १ प्रज्वलित । जलता हुआ । २ प्रकाशित ।
जगमगाता हुआ । चमकता हुआ ।

दीप्त^२—सङ्घा पुं० १. स्वर्ण । सोना । २ हींग । ३ नीबू । ४ सिह ।
५ सुश्रुत के अनुसार नाक का एक रोग जिसमें नाक से भाप
की तरह गरम गरम हवा निकलती है और नयुनों में जलन
होती है ।

दीप्तक—सङ्घा पुं० [सं०] १. सोना । सुवर्ण । २ नाक का एक रोग ।
दे० 'दीप्त'—५ ।

दीप्तकिरण—सङ्घा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ मदार का पीछा ।

दीप्तकीर्ति—सङ्घा पुं० [सं०] कुमार कार्तिकेय [को०] ।

दीप्तकेतु—सङ्घा पुं० [सं०] १. भागवत के अनुसार दशसावणि मनु के
एक पुत्र का नाम । २ महाभारत में वर्णित एक राजा
का नाम ।

दीप्तजिह्वा—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीप्तजिह्वा] जलती जलानवाला ।
भगड़ातु ।

दीप्तजिह्वा—सङ्घा स्त्री० [सं०] उत्कामुखी । शृंगाली । मादा, गीदड़ ।
सियारिन ।

विशेष—गीदड़ के मुँह का अगला भाग कुछ कालापन लिए होता
है इसी से उसका नाम उत्कामुखी (लुमाठा), मुख पड़ा । उत्कामुखी
जलते हुए पिंड या प्रकाश को भी कहते हैं इसी भ्रम से दीप्त-
जिह्वा नाम रखा हुआ जान पड़ता है ।

दीप्तपिंगल—सङ्घा पुं० [सं० दीप्तपिङ्गल] सिह ।

दीप्तरस—सङ्घा पुं० [सं०] कंचुषा ।

विशेष—रात को भँधरे में केचुए के शरीर के रस से एक प्रकार
की चमक निकलती है इसी से इसका यह नाम पड़ा है ।

दीप्तरोमा—संज्ञा पुं० [सं० दीप्तरोमन्] एक विश्वेदेव का नाम ।
(महाभारत) ।

दीप्तलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली । बिडाल ।

दीप्तलोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपाया हुआ लाल लोहा । २. काँसा ।
कांस्य ।

दीप्तवर्ण—वि० [सं०] जिसका शरीर कुदन की तरह दमकता
हुमा हो ।

दीप्तवर्ण—संज्ञा पुं० कातिकेय ।

दीप्तशक्ति—वि० [सं०] दे० 'दीप्तवर्ण' ।

दीप्तशक्ति—संज्ञा पुं० कुसार कातिकेय (को०) ।

दीप्तांग—वि० [सं० दीप्ताङ्ग] जिसका शरीर चमकता हो ।

दीप्तांग—संज्ञा पुं० मोर । मयूर ।

दीप्तांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मदार । प्राक ।

दीप्ता—वि० स्त्री० [सं०] १. प्रकाशित । प्रकाशयुक्त । चमकती हुई ।
२. (दिशा) जिसमें सूर्य किसी समय स्थित हो । सूर्य से
प्रकाशित । जैसे, दीप्ता दिशा ।

दीप्ता—संज्ञा पुं० १. लागली वृक्ष । कलियारी । २. ज्योतिष्मती ।
मालकगनी । ३. सातला नामक शहर ।

दीप्ताक्ष—वि० [सं०] जिसकी आँखें चमकती हो ।

दीप्ताक्ष—संज्ञा पुं० बिडाल । बिल्ली ।

दीप्ताग्नि—वि० [सं०] १. जिसकी जठराग्नि बहुत तीव्र हो ।
जिसकी पाचन शक्ति अत्यंत प्रबल हो । २. जिसकी भूख जगो
हो । भूखा ।

दीप्ताग्नि—संज्ञा पुं० भगवत्पुत्र मुनि (जिन्होंने समुद्र को पी लिया
या और वातापि नामक राक्षस को पचा डाला था) ।

दीप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाश । उजाला । रोशनी । २.
प्रभा । प्राभा । चमक । छुति । ३. कांति । शोभा । छवि ।
जैसे, भग की दीप्ति । ४. ज्ञान का प्रकाश जिससे विवेक
उत्पन्न होता है और भ्रान्तानाशक दूर हो जाता है (योग) ।
५. लाक्षा । लाख । ६. काँसा । शहर ।

दीप्ति—संज्ञा पुं० एक विश्वेदेव का नाम (महाभारत) ।

दीप्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] शिरशोला । दुग्धपाषाण वृक्ष ।

दीप्तिमान्—वि० [सं० दीप्तिमत्] [वि० स्त्री० दीप्तिमती] १.
दीप्तियुक्त । प्रकाशित । चमकता हुमा । २. कांतियुक्त ।
शोभायुक्त ।

दीप्तिमान्—संज्ञा पुं० सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक
पुत्र का नाम ।

दीप्तोद—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ, जिसमें
बघुसर नाम की एक नदी है ।

विशेष—यहाँ परशुराम ने स्नान करके अपना खोया हुआ तेज
फिर से प्राप्त किया था । पूर्वकाल में भृगु ने यहीं पर कठोर
तपस्या की थी ।

दीप्तोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

दीप्य—वि० [सं०] १. जो जलाया जाने को हो । प्रज्वलित किया
जानेवाला । २. जो जलाने योग्य हो । ३. जठराग्नि दीपन
करनेवाला ।

दीप्य—संज्ञा पुं० १. भजवायन । २. जीरा । ३. मयूरशिखा ।
४. खजड़ा ।

दीप्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भजवायन । २. भजमोदा । ३. मयूर
शिखा । ४. खजड़ा ।

दीप्यमान—वि० [सं०] चमकता हुमा ।

दीप्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर ।

दीप्त्र—वि० [सं०] दीप्तिमान् । प्रकाशयुक्त ।

दीप्त्र—संज्ञा पुं० धनि ।

दीवाचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवाचह] प्रस्तावना । भूमिका । प्राक्कथन
(को०) ।

दीवाज—संज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का बहुत बड़िया घोर उत्तम
रेशमी वस्त्र जिसे दीबा भी कहते हैं ।

दीवाणु—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवान] दे० 'दीवान' । उ०—चीने
भापु शब्दु निरवानु । गगनतरि तपति लाय दीवाणु ।—
प्राण०, पृ० १०६ ।

दीवो—संज्ञा पुं० [हि० देना] दे० 'देना' ।

दीमक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] चींटो की तरह का एक छोटा कीड़ा
जिसे जालीदार पर निकलते हैं । यह लकड़ी आदि में लगकर
उसे खोखली और नष्ट कर देता है । बल्मीक ।

विशेष—इसका पड़ सफेद होता है और सिर लाल या नारंगी
रंग का होता है । यह दल बाँधकर रहता है । दीमकें गरम
वर्षों में बहुत होती हैं और मिट्टी का घर बनाती हैं जिसकी
दीवारें दानेदार पपड़ी की तरह होती हैं । कहीं कहीं ये घर
हूह के आकार के हाथ डेढ़ हाथ ऊँचे होते हैं, और बल्मीक या
बमोट कहलाते हैं । चींटियों की तरह ये कीड़े भी बड़े नियम
और व्यवस्था के साथ रहते हैं । एक दल में अधिक संख्या तो
क्लीव कीटी की होती है जो केवल काम करने के लिये होती
हैं । कुछ क्लीव कीट लंबे लंबे सिरवाले होते हैं जो सिपाही
कहलाते हैं । एक या अधिक स्त्रीकीट या रानियाँ होती हैं जिन-
का शरीर घोंडो से भरे रहने के कारण कभी कभी बहुत फूला
दिखाई पड़ता है । इनके प्रतिरिक्त नर भी होते हैं जो किसी
किसी ऋतु में बहुत दिखाई पड़ते हैं और फतिगों की तरह
उड़ते फिरते हैं । ये कीड़े कौष्ठ और जलुशरीर पर निर्वाह
करते हैं । जिस वस्तु पर ये लगते हैं उसे प्रायः मिट्टी की
पपड़ी से आच्छादित कर देते हैं और भीतर ही भीतर उसे
खाते जाते हैं । बरसात में दीमकें लगती हैं और कागज, लकड़ी
आदि को इनसे बचाना कठिन हो जाता है ।

मुहा०—दीमक खाया—(१) जिसे दीमकों ने खाकर नष्ट कर
दिया हो । (२) दीमकों की खाई हुई वस्तु की तरह स्थान
स्थान पर खुदा हुमा गड़ड़ेदार । जैसे, शीतला के दागवाला
चेहरा । दीमक का चाटना—दीमक का (किसी वस्तु को)
खाकर नष्ट करना जैसे,—इस किताब के पन्ने दीमकें चाट गईं ।

दीमान(७)—सच्चा पु० [फ्रा० दीवान] राज्यसभा । दे० 'दीवान' ।
उ०—तुरत सर्व दिमानहि आए ।—प० रासो, पु० १०४ ।

दीयट—सच्चा पु० [हि० दीवट] दे० 'दीवट' ।

दीयमान—वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो । जिसे किसी को देना हो । जो देने के लिये हो ।

दीया—सच्चा पु० [सं० दीपक, प्रा० दीऊ] १. उजाले के लिये जलाई हुई बत्ती । जलती हुई बत्ती । चिराग ।

क्रि० प्र०—जलना ।—जलाना ।—बलना ।—बालना ।—बुझना ।—बुझाना ।

मुहा०—दीए का हँसना=दीए की बत्ती से फूल या गुल झड़ना । दीए की बत्ती में चमकते हुए गोल गोल रवे दिखाई पड़ना ।—(इससे विवाह होने, लड़का होने आदि का शुभ शकुन समझा जाता है) । दीया जलना=दीया जलने का समय होना । सध्या होना । दीया जलाना=दीवाखा निकालना ।

विशेष—पहले जो लोग दीवाखा निकालते थे वे टाठ उलटकर उसपर एक चौमुखा दीया जलाकर रख देते थे और काम धाम बद कर देते थे ।

दीया जलने के समय=सध्या को । शाम को । दीया ठहा करना=दीया बुझाना । (किसी के घर का) दीया ठहा होना=किसी के मरने से कुल में अप्रकार छा जाना । घर में रौनक न रह जाना । दीया दिखाना=रोशनी दिखाना । सामने उजाला करना । दीया बढ़ाना=दीया बुझाना । दीया बत्ती करना=जलाने के लिये दीया, बत्ती आदि ठीक करना । रोशनी का सामान करना । चिराग जलाना । दीये बत्ती का समय=सध्या का समय । दीया लेकर हूँटना=चारों ओर हिरान होकर हूँटना । बड़ी छानबीन से खोजना । दीये से फूल झड़ना=दीये की जलती हुई बत्ती से चमकते हुए गोल फुचड़े या रवे निकलना । गुल झड़ना ।

२. [श्री० अलपा० दिवली, दियली] बत्ती जलाने का धरतन । वह धरतन जिसमें तेल भरकर जलाने के लिये बत्ती डाली जाती है ।

विशेष—दीए प्रायः मिट्टी के बनते हैं ।

मुहा०—दीए में बत्ती पड़ना=दीया जलने का समय होना । सध्या का समय होना ।

दीयासलाई—सच्चा श्री० [हि० दीया + सलाई] लकड़ी की छोटी सलाई या सीक जिसका एक सिरा रगड़ने से जल चढ़ता है । प्राग जलाने की सीक या सलाई ।

विशेष—इन सलाइयों का एक सिरा फासफरस, पोटाशियम क्लोरेट आदि रंग खाकर जल चढ़नेवाले पदार्थों में डुबाया रहता है ।

दीयो(७)—सच्चा पु० [सं० द्विप] हाथी । उ०—कि महिष छुट्टि मयमत । भरिय दीयो कि दुष्ट कजि ।—पु० रा०, ५। ५६ ।

दीरगा—वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ' । उ०—सतगुर पारस की कनी, दीरग दीखे नाहि ।—दरिया० बानी, पु० ४ ।

दीरघ(७)—वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ' । उ०—जगत सपोबन सो कियो दीरघ दाध निदाध ।—बिहारी ।

दीरघजिह्वा(७)—सच्चा श्री० [सं० दीर्घजिह्वा] वैरोचन की पुत्री एक राक्षसी । दीर्घजिह्वा । उ०—वैरोचनजा दीरघजिह्वा । सुरपति तेहि लखि लीन्हैसि छिह्वा ।—विश्राम (शब्द०) ।

दीर्घ^१—वि० [सं०] १. प्रायत । लंबा । २. बड़ा । (देश और कान दोनों के लिये, जैसे, दीर्घक्षत्र, दीर्घवस्त्र, दीर्घकाल) ।

विशेष—कण्ठा में दीर्घत्व को परिमाणभेद कहा है । सास्य के मत से दीर्घत्व महस्व का भवस्वांतर है ।

३. विस्तृत । फैला हुआ (को०) । ४. ऊँचा (को०) । ५. गहरा । गभीर । जैसे, दीर्घ श्वास ।

दीर्घ^२—सच्चा पु० १. लता शालवृक्ष । २. माठ वृक्ष । ३. रामशर । नरकट । ४. ऊँट । ५. ताड़ का पेड़ । ६. गुरु या द्विमात्रिक वर्ण । वह वर्ण जिसका उच्चारण खींचकर हो । ह्रस्व का उभटा ।

विशेष—आ, ई, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दीर्घ स्वर कहलाते हैं । जिन व्यंजनो में ये लगते हैं वे भी दीर्घ कहलाते हैं, जैसे, का की कू इत्यादि । संगीत में भी दो मात्राओं का नाम दीर्घ है । अ—अ को एक साथ उच्चारण करने में जो काल लगता है वह दीर्घ काल कहलाता है ।

७. ज्योतिष में पौषवी, छठी, सातवी और आठवीं अर्थात् सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक राशि को दीर्घ राशि कहते हैं ।

दीर्घकटक—सच्चा पु० [सं० दीर्घकटक] बबूल का पेड़ ।

दीर्घकंठ^१—वि० [सं० दीर्घकंठ] [वि० श्री० दीर्घकंठ] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घकंठ^२—सच्चा पु० १. बगला । बक । २. एक दानव का नाम ।

दीर्घकंठक—वि०, सच्चा पु० [सं० दीर्घकंठक] दे० 'दीर्घकंठ' ।

दीर्घकंद—सच्चा पु० [सं० दीर्घकन्द] मूली ।

दीर्घकंदिका—सच्चा श्री० [सं० दीर्घकन्दिका] मूसली । तालमूसी ।

दीर्घकंधर^१—वि० [सं० दीर्घकंधर] [वि० श्री० दीर्घकंधरी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घकंधर^२—सच्चा पु० बगला पक्षी । बक ।

दीर्घकणा—सच्चा श्री० [सं०] सफेद जीरा ।

दीर्घकर्ण^१—वि० [सं०] जिसके कान बड़े बड़े हो ।

दीर्घकर्ण^२—सच्चा पु० एक जाति का नाम जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में है ।

दीर्घकाण्ड—सच्चा पु० [सं० दीर्घकाण्ड] गुडवृक्ष । गोदना ।

दीर्घकांडा—सच्चा श्री० [सं० दीर्घकाण्डा] पातालगाढ़ो लता । छिरहिटा । छिरैटा ।

दीर्घकाय—वि० [सं०] बड़े डोलडोल का । लंबे चौड़े शरीरवाला ।

दीर्घकाष्ठ—सच्चा पु० [सं०] एक सीध में ऊपर को गए पेड़ की लकड़ी । शहतीर (को०) ।

दीर्घकील—सच्चा पु० [सं०] दे० 'दीर्घकीलक' ।

दीर्घकीलक—सच्चा पु० [सं०] अकोल का पेड़ ।

दीर्घकुल्या—सच्चा श्री० [सं०] गजपिप्पली ।

दीर्घकूरक—सच्चा पु० [सं०] आंध्रप्रदेश में होनेवाला एक प्रकार का धान ।

दीर्घकेश^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घकेशी] लंबे बालोंवाला ।
जिसके लंबे लंबे बाल हों ।

दीर्घकेश^२—संज्ञा पुं० १. भात । २. कूर्म विभाग के पश्चिमोत्तर में स्थित एक देश (वृहत्संहिता) ।

दीर्घकोशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दीर्घकोशिका' [को०] ।

दीर्घकोशिका, दीर्घकोशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति नामक जल-जंतु । सुतुही ।

दीर्घकोशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दीर्घकोशिका' [को०] ।

दीर्घगति—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट (जो लंबे लंबे डग रखता है) ।

दीर्घग्रन्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घग्रन्थि] दीर्घकुल्या । गजपिप्पली [को०] ।

दीर्घग्रन्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घग्रन्थिका] गजपिप्पली ।

दीर्घग्रीव^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घग्रीवी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घग्रीव^२—संज्ञा पुं० १. नील क्रीव पक्षी । सारस । २. कूर्म विभाग के दक्षिण पश्चिम घोर स्थित एक देश (वृहत्संहिता) ।

दीर्घघाटिक^१—वि० [सं०] लंबी गरदनवाला ।

दीर्घघाटिक^२—संज्ञा पुं० ऊँट ।

दीर्घच्छद^१—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों ।

दीर्घच्छद^२—संज्ञा पुं० ईल । ऊल ।

दीर्घजंगल—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घजङ्गल] एक प्रकार की मछली । बड़ा मृगा ।

दीर्घजंघ^१—वि० [सं० दीर्घजङ्घ] जिसकी लंबी लंबी टांगें हों ।

दीर्घजंघ^२—संज्ञा पुं० १. बक । बगला । २. ऊँट ।

दीर्घजिह्व^१—वि० [सं०] जिसकी लंबी जीभ हो ।

दीर्घजिह्व^२—संज्ञा पुं० १. सर्प । २. दानवविशेष ।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विरोचन की पुत्री एक राक्षसी जिसे इंद्र ने मारा था । २. मातृ गणों में से एक जो कार्तिकेय की अनुचरी है ।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घजिह्विन्] कृत्ता जिसकी जीभ लंबी होती है ।

दीर्घजीवी—वि० [सं० दीर्घजीविन्] जो बहुत दिनों तक जीए । बहुत काल तक जीवित रहनेवाला ।

दीर्घतपा^१—वि० [सं० दीर्घतपस्] जिसने बहुत दिनों तक तपस्या की हो ।

दीर्घतपा^२—संज्ञा पुं० १. हरिवंश के अनुसार आयुवशीय एक राजा जिन्होंने बहुत काल तक तप किया था । २. महिला के पति गोतम का नाम (को०) ।

दीर्घतमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घतमस्] एक ऋषि जो उत्तप्य के पुत्र थे ।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है । उत्तप्य नामक एक तेजस्वी मुनि थे, जिनकी पत्नी का नाम ममता था । ममता जिस समय गर्भवती थी उस समय उत्तप्य के छोटे भाई देवगुरु वृहस्पति उसके पास आए और सहवास की इच्छा प्रकट करने लगे । ममता ने कहा 'मुझे तुम्हारे बड़े साई से गर्म है मत इस समय तुम जाओ' । वृहस्पति ने न

माना और वे सहवास में प्रवृत्त हुए । गर्भस्थ बालक ने भीतर से कहा—'बस करो ? एक गर्भ में दो बालकों की स्थिति नहीं हो सकती । जब वृहस्पति ने इतने पर भी न सुना तब उस तेजस्वी गर्भस्थ शिशु ने अपने पैरों से वीर्य को रोक दिया । इसपर वृहस्पति ने कुपित होकर गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि 'तू दीर्घतमस में पड़े (मर्यात् मंघा हो जा)' । वृहस्पति के शाप से वह बालक मरघा होकर जन्मा और दीर्घतमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ । प्रद्वेषी नाम की एक ब्राह्मण कन्या से दीर्घतमा का विवाह हुआ, जिससे उन्हें गोतम आदि कई पुत्र हुए । 'ये सब पुत्र सोम मोह के वशीभूत हुए । इसपर दीर्घतमा कामधेनु से गोचर्म शिखा प्राप्त करके उससे श्रद्धापूर्वक मैथुन आदि में प्रवृत्त हुए । दीर्घतमा को इस प्रकार मर्यादा भंग करते देख आश्रम के मुनि लोग बहुत बिगड़े । उनकी स्त्री प्रद्वेषी भी इस बात पर बहुत अप्रसन्न हुई । एक दिन दीर्घतमा ने अपनी स्त्री प्रद्वेषी से पूछा कि 'तू मुझसे क्यों दुर्भाव रखती है ।' प्रद्वेषी ने कहा 'स्वामी स्त्री का भरण पोषण करता है इसी से भर्ता कहलाता है पर तुम मंघे हो, कुछ कर नहीं सकते । इतने दिनों तक मैं तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का भरण पोषण करती रही, पर अब न करूँगी' । दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर कहा—'ले, आज से मैं यह मर्यादा बांध देता हूँ कि स्त्री एकमात्र पति से ही अनुरक्त रहे । पति चाहे जीता हो या मरा वह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती । जो स्त्री दूसरा पति ग्रहण करेगी वह पतित हो जायगी' । प्रद्वेषी ने इसपर बिगड़कर अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि 'तुम अपने मंघे बाप को बांधकर गंगा में डाल आओ ।' पुत्र आज्ञानुसार दीर्घतमा को गंगा में डाल आए । उस समय बलि नाम के कोई राजा गंगा-स्नान कर रहे थे । वे ऋषि को इस अवस्था में देख अपने घर ले गए और उनसे प्रार्थना की कि 'महाराज ! मेरी भार्या से आप योग्य संतान उत्पन्न कीजिए ।' जब ऋषि सम्मत हुए तब राजा ने अपनी सुदेष्णा नाम की रानी को उनके पास भेजा । रानी उन्हें मरघा और बुढ़ा देख उनके पास न गई और उसने अपनी दासी को भेजा । दीर्घतमा ने उस शूद्रा दासी से कक्षीवान् आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए । राजा ने यह जानकर फिर सुदेष्णा को ऋषि के पास भेजा । ऋषि ने रानी का सारा श्रंग टटोलकर कहा 'जाओ, तुम्हें भग, बंग, कलिंग, पुंड्र और सुंभ नामक अत्यंत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे जिनके नाम से देश विख्यात होंगे' ।

ऋग्वेद के पहले मंडल में सूक्त १४० से १६० तक में दीर्घतमा के रचे मंत्र हैं । इनमें कई मंत्र ऐसे हैं जिनसे उनके जीवन की घटनाओं का पता चलता है । महाभारत में उनकी स्त्री के संबंध में जिस घटना का वर्णन है उसका उल्लेख भी कई मंत्रों में है । सूक्त १५७ मंत्र ५ में एक मंत्र है जिसे दीर्घतमा ने उस समय कहा था जब लोगों ने उन्हें एक संदूक में बंद कर दिया था । इस मंत्र में उन्होंने पशिवनी देवल से उद्धार पाने के लिये प्रार्थना की है ।

दीर्घसक—सखा पुं० [सं०] ताठ का पेड़ ।
 दीर्घता—सखा स्त्री० [सं०] लवाई । बहाई ।
 दीर्घविमिषा—सखा स्त्री० [सं०] ककड़ी । ककंटी ।
 दीर्घतुंडा^१—वि० स्त्री० [सं० दीर्घतुण्डा] जिसका मुँह सखा हो ।
 दीर्घतुंडा^२—सखा स्त्री० छद्मदर ।
 दीर्घतुंडी—वि०, सखा स्त्री० [सं० दीर्घतुण्डी] दे० 'दीर्घतुंडा' (को०) ।
 दीर्घतृण—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसके खाने से पशु निबंल हो जाते हैं । पल्लिवाह तृण । ताम्रपर्णी ।
 दीर्घदंड—सखा पुं० [सं० दीर्घदण्ड] दे० 'दीर्घदण्डक' ।
 दीर्घदंडक—सखा पुं० [सं० दीर्घदण्डक] १. एरंड वृक्ष । भड़ी का पेड़ । रेंड । २. ताल वृक्ष । ताड़ का पेड़ (को०) ।
 दीर्घदंडी—सखा स्त्री० [सं० दीर्घदण्डी] गोरखी । गोरखइमली ।
 दीर्घदर्शिता—सखा स्त्री० [सं०] बहुत दूर तक की बात का विचार । परिणाम प्रादि का विचार करनेवाली बुद्धि । दूरदर्शिता ।
 दीर्घदर्शी^१—वि० [सं० दीर्घदर्शिन] १. दूर तक की बात सोचने-वाला । बहुत सी बातों का विचार करनेवाला । दूर तक सब बातों का परिणाम सोचनेवाला । दूरदर्शी । २. विचारवान् ।
 दीर्घदर्शी^२—सखा पुं० [सं०] १. माल् । २. गोघ ।
 दीर्घदृष्टि^१—वि० [सं०] १. जिसकी दृष्टि दूर तक जाय । बहुत दूर तक देखनेवाला । २. दूर तक की बात सोचनेवाला ।
 दीर्घदृष्टि^२—सखा पुं० गोघ ।
 दीर्घद्वु—संज्ञा पुं० [सं०] ताठ का पेड़ ।
 दीर्घद्वुम—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रमयी वृक्ष । सेमर का पेड़ ।
 दीर्घद्वार—सखा पुं० [सं०] विशाल देश के प्रसंगत एक जनपद जो गङ्गा की नदी के किनारे माना जाता था ।
 दीर्घनाद^१—वि० [सं०] जिससे भारी शब्द निकले । जिसकी आवाज दूर तक फैले ।
 दीर्घनाद^२—सखा पुं० १. शाल । २. कुक्कुट । मुर्गा (को०) । ३. श्वान (को०) ।
 दीर्घनाल—सखा पुं० [सं०] १. दीर्घरोहिण । रोहिण घास । २. गोंदला घास । गुंड तृण । ३. ज्वार । यवनाल ।
 दीर्घनिद्रा—सखा स्त्री० [सं०] मृत्यु । मौत । मरण ।
 दीर्घनिश्वास—सखा पुं० [सं० दीर्घनि श्वास] लंबी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण ली जाती है ।
 दीर्घपक्ष—सखा पुं० [सं०] कलिंग पक्षी ।
 दीर्घपटोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का लताफल ।
 दीर्घपत्र—सखा पुं० [सं०] १. राजपलांडु । लाल, प्याज । २. विष्णु-कंद । ३. हरिद्वर्ग । एक प्रकार का कुश । ४. कुशला । 'कुशीलु' । ५. एक प्रकार की ईख (सुश्रुत) । ६. 'दीर्घपत्रक' ।
 दीर्घपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल सहस्रुन । २. एरंड । रेंड । भड़ी । ३. वेतस । वेत । ४. द्विजल । समुद्रफल । ५. करीव । टेंटी का पेड़ । ६. जलमधूक । जल महुआ ।

दीर्घपत्रा—सखा स्त्री० [सं०] १. कलकी । २. जगती आम्र का पेड़ जो छोटा घोर नदियों के किनारे होता है । ३. चित्रपर्णी । ४. घासपर्णी ।

दीर्घपत्रिका—सखा स्त्री० [सं०] १. सफेद वच । २. घृतकृमारी । घोक्रुमार । ३. घासपर्णी । सरियन । ४. श्वेत पुननवा । सफेद गदहपूरना ।

दीर्घपत्री—सखा स्त्री० [सं०] १. पलाशी लता । बोरिया पलाश । वह पलाश जो खता के रूप में फैलता है । २. महाबलु शाक । बड़ा चेना ।

दीर्घपर्ण—वि० [सं०] जिसके सबे सबे पत्ते हों ।

दीर्घपर्णी—सखा स्त्री० [सं०] पिठवन । पुश्तिपर्णी ।

दीर्घपर्व—सखा पुं० [सं० दीर्घपर्वन्] संबी पोरवाला, इसु । ईश आदि ।

दीर्घपल्लव—सखा पुं० [सं०] सन का पेड़ ।

दीर्घपाद^१—वि० [सं०] लंबी टाँगवाला ।

दीर्घपाद^२—सखा पुं० १. कंकपक्षी । २. सारस ।

दीर्घपादप—सखा पुं० [सं०] १. ताठ का पेड़ । २. सुपारी का पेड़ ।

दीर्घपृष्ठ—सखा पुं० [सं०] [स्त्री० दीर्घपृष्ठि] सपं । साँप ।

दीर्घप्रज्ञ^१—वि० [सं०] दूरदर्शी ।

दीर्घप्रज्ञ^२—सखा पुं० द्वापर के एक राजा वृषरर्षा का नाम जो प्रसुर के अवतार थे ।

दीर्घफल—सखा पुं० [सं०] प्रमनतास ।

दीर्घफलक—सखा पुं० [सं०] भगस्त का पेड़ ।

दीर्घफला—सखा स्त्री० [सं०] १. जतुका लता । पहाड़ी नाम की लता । २. लंबा भगूर ।

दीर्घफलिका—सखा स्त्री० [सं०] १. कपिल द्राक्षा । लंबा भगूर । २. जतुका लता ।

दीर्घवाक्ता—सखा स्त्री० [सं०] चमरी । सुरा गाय ।

दीर्घवाहु^१—वि० [सं०] जिसकी भुजा लंबी हो ।

दीर्घवाहु^२—सखा पुं० १. शिव के एक अनुचर का नाम (हरिवंश) । २. घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दीर्घमारुत—सखा पुं० [सं०] हाथी ।

दीर्घमुख—सखा पुं० [सं०] १. एक यज्ञ का नाम । २. शिव का एक दास । ३. हाथी ।

दीर्घमूल—सखा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की घेस । मोरट लता । २. घेना की तरह की एक पीली घास । सामज्रक तृण । ३. विस्वांतर वृक्ष ।

दीर्घमूलक—सखा पुं० [सं०] मूलक । मूली ।

दीर्घमूला—सखा स्त्री० [सं०] १. सालपर्णी । सरिवन । २. श्यामा लता । कालीसर ।

दीर्घमूली—सखा स्त्री० [सं०] घमासा ।

दीर्घयज्ञ^१—वि० [सं०] जिसने बहुत काल तक यज्ञ किया हो ।

दीर्घयज्ञः—सञ्ज्ञा पुं० अयोध्या के एक राजा का नाम जो द्वापर में हुए थे (महाभारत) ।

दीर्घरंगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घरङ्गा] हरिद्रा । हलदी [को०] ।

दीर्घरतः—वि० [सं०] जो बहुत देर तक मैथुन में रत रहे ।

दीर्घरतः—सञ्ज्ञा पुं० कृत्ता ।

दीर्घरदः—वि० [सं०] जिसके निकले हुए लबे दाँत हों ।

दीर्घरदः—सञ्ज्ञा पुं० सुभर । शूकर ।

दीर्घरसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप ।

दीर्घरागा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा । हलदी ।

दीर्घरोमा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दीर्घरोमन्] १. भालू । २. शिव के एक अनुचर का नाम ।

दीर्घरोहिष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति की रोहिष घास ।

विशेष—यह घास भालवा, राजपूताना और मध्यप्रदेश में बहुत होती है । इसमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है जो नीबू की सुगंध से मिलती जुलती होती है । इसकी जड़ से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है ।

दीर्घरोहिषक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दीर्घरोहिष' [को०] ।

दीर्घलोचनः—वि० [सं०] बड़ी भालवाला ।

दीर्घलोचनः—सञ्ज्ञा पुं० १. शिव के एक अनुचर का नाम । २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दीर्घवंश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नरसल । नरकट ।

दीर्घवक्त्रः—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घवक्त्रा] लंबे मुँहवाला ।

दीर्घवक्त्रः—सञ्ज्ञा पुं० हाथी ।

दीर्घवच्छिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुमीर । घड़ियाल ।

दीर्घवर्चिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घड़ियाल । कुंभीर [को०] ।

दीर्घवन्तो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ा इद्रायन । महुँदवाण्णी । २. पातालगावडी लता । छिटा । ३. पलाशी लतर । बौरिया पलाश ।

दीर्घवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दीर्घवृत्त] १. श्योनाक वृक्ष । सोनापाठा । २. लताशाल ।

दीर्घवृत्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दीर्घवृत्तक] दे० 'दीर्घवृत्त' [को०] ।

दीर्घवृत्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घवृत्ता] इद्रचिमिटी लता ।

दीर्घवृत्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घवृत्तिका] एलापर्णी ।

दीर्घशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्वार । जुन्हरी ।

दीर्घशाख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सन का पेड़ । २. शाल । सालू का पेड़ ।

दीर्घशाखिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नीलाम्बी नाम का खूप [को०] ।

दीर्घशिखिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दीर्घशिखिक] झव । एक प्रकार की राई ।

दीर्घशूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

दीर्घशूकक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राजा का भक्ष । राजान्न [को०] ।

दीर्घश्रवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दीर्घश्रवस्] दीर्घतमा ऋषि के एक पुत्र ५-६

जिन्होंने प्रनावृष्टि होने पर जीविका के लिये बाणिज्य कर लिया था । इस बात का उल्लेख ऋग्वेद में है ।

दीर्घश्रुत—वि० [सं०] १. जो दूर तक सुनाई पड़े । २. जिसका नाम दूर तक विख्यात हो ।

दीर्घसक्थ—वि० [सं०] लंबी जाँघीवाला [को०] ।

दीर्घसक्थि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शकट । गाड़ी [को०] ।

दीर्घसत्रः—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यावज्जीवन कर्तव्य प्रणिहोत्र । २. एक यज्ञ जो बहुत दिनों में समाप्त होता था । ३. एक तीर्थ का नाम (महाभारत) ।

दीर्घसत्रः—वि० जिसने दीर्घसत्र यज्ञ किया हो ।

दीर्घसुरत—सञ्ज्ञा पुं० वह जो देर तक रति करता हो । कुत्ता ।

दीर्घसूक्ष्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भेद ।

दीर्घसूत्र—वि० [सं०] दे० 'दीर्घसूत्री' ।

दीर्घसूत्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक कार्य में विलंब करने का स्वभाव । हर एक काम में देर लगाने की आदत ।

दीर्घसूत्री—वि० [सं० दीर्घसूत्रिन्] प्रत्येक कार्य में विलंब करनेवाला । हर एक काम में जल्दतर से ज्यादा देर लगानेवाला । प्रत्येक कार्य में अधिक समय बितानेवाला । देर से काम करनेवाला ।

दीर्घस्कंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दीर्घस्कन्ध] ताड़ का पेड़ ।

दीर्घस्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] द्विमात्रिक स्वर । दे० 'दीर्घ' ।

दीर्घा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिठवन । पुश्तिपर्णी । २. ८८ हाथ लंबी, ४४ हाथ चौड़ी और ४४ हाथ ऊँची नाव (युक्ति-कल्पतरु) । ३. घर के बाहर ऊँचा सा बैठने का स्थान । गैलरी ।

दीर्घाकार—वि० [सं०] दीर्घ आकार का । बड़े आकारवाला [को०] ।

दीर्घाध्वग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो लंबी मजिल चलता हो । हरकारा । धावन [को०] ।

दीर्घायुः—वि० [सं० दीर्घायुस्] जिसकी आयु बड़ी हो । बहुत दिनों तक जीनेवाला । दीर्घजीवी । चिरजीवी ।

दीर्घायुः—सञ्ज्ञा पुं० १. सेमर का पेड़ । २. कीवा । काक । ३. मारकंडेय ऋषि । ४. जीवन वृक्ष ।

दीर्घायुध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुभास्त्र । २. सुभर । शूकर । ३. साही नाम का जंतु जिसके शरीर में लंबे लंबे काँटे होते हैं [को०] ।

दीर्घायुष्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लंबी उम्र । बड़ी आयु [को०] ।

दीर्घात्तर्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार ।

दीर्घास्थः—वि० [सं०] बड़े मुँहवाला ।

दीर्घास्थः—सञ्ज्ञा पुं० १. हाथी । २. शिव के एक अनुचर का नाम । ३. पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित एक देश (बृहत्संहिता) ।

दीर्घाह्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्मकाल जिसमें दिन बड़ा होता है ।

दीर्घिका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बावली । छोटा जलानय । छोटा तालाब ।

विशेष—किसी किसी के मत से ३०० धनुष लंबे जलाशय को दीर्घिका कहते हैं।

२. हिगुपल्ली। ३ ३२ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी घोर ३३ हाथ ऊंची नाव (युक्ति कल्पतरु)।

दीर्घोर्षारु—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी लकड़ी। डोंगरी।

दीर्घ—वि० [सं०] १. फटा हुआ। विदारित। दरका हुआ। २. भयभीत। डरा हुआ (को०)।

दीक्षा—संज्ञा पुं० [फा० दिल] दे० 'दिल'। उ०—दील कर भोली मन कर तुमा।—रामानंद०, पृ० ५०।

दीली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिल्ली] दे० 'दिल्ली'।

दीली—दीलीपति = दिल्लीपति। दिल्ली का स्वामी। उ०—समरसिध मेवार दख देवार मजर जर। दीलीपति भनझ सरन महुँ सुनलोह सरि।—पृ० रा०, ७।२४।

दीवका—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीमक] दे० 'दीमक'।

दीवट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपपट्ट, प्रा० दीवट्ट, दीयट्ट] पीतल, लकड़ी आदि का ढंढे के आकार का आधार जिसपर दीया रखा जाता है। दीपाधार। चिरागदान।

दीवड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दीप + हिं० डा (प्रत्य०)] दे० 'दीपक'। उ०—समलोक समान पूरिय ले जाके घर लक्ष्मी कुँमारी चंद्र सूरज दीवड़े।—दक्खिनी०, पृ० २६।

दीवला—संज्ञा पुं० [हिं० दीवा + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० दिवली, दिवली] दीया। दीपक। उ०—सा बाला प्री चितवद, छिण छिण रयणि विहाइ। तिए हर हार पर-टुम्यउ, जूँ दीवलउ बुझाइ।—ढोला०, पृ० ५७८।

दीवली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीपावली'। उ०—दीवली कई भागही, धूरि दसरावे चाल्यो राव।—बी० रासो, पृ० १०६।

दीर्घान—संज्ञा पुं० [फा० दीवान] राज्यसभा। सभा। दीवान। उ०—यह जानि साहि दीर्घान किय, खान बहत्तरि हक्क हुब।—ह० रासो, पृ० ६४।

दीवा—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दीपक। दीया। उ०—मयि करि दीपक कीजिये, सब घटि भया प्रकास। दाहू दीवा हाथि करि, गया निरंजन पास।—दाहू०, पृ० ७।

दीवा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घव'।

दीवाणा—संज्ञा पुं० [र० दीवान] १ दीवान। प्रधान मंत्री। २ भारमा। (लाक्ष०)] उ०—दाहू गाफिल छोबतै, भाहे मंकि मुकाम। दरगह में दीवाण तस, पसे न बैठो पाण।—दाहू०, पृ० ८८।

दीवान—संज्ञा पुं० [फा०] १ राजा या बादशाह के बैठने की जगह। राजसभा। दरबार। कचहरी।

दीवान—दीवान आम। दीवान खास।

२. मंत्री। वजीर। राज्य का प्रबंध करनेवाला। प्रधान। उ०—भक्त ध्रुव की मटल पदवी राम के दीवान।—(शब्द०)।

दीवान—दीवानखालसा।

३ गजलों के समूह की पुस्तक। ४, एक प्रकार का बड़ा सोफा जिस पर सोया जा सके।

दीवान आम—संज्ञा पुं० [फा०] १. आम दरबार। ऐसा दरबार जिसमें राजा या बादशाह से सब लोग मिल सकते हैं। २. वह स्थान या भवन जहाँ आम दरबार लगता हो।

दीवान आलम—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'दीवान आम'।

दीवानखाना—संज्ञा पुं० [फा० दीवान खानह] घर का वह बगहरी हिस्सा या कमरा जहाँ बड़े आदमी बैठते और सब लोगों से मिलते हैं। बैठक।

दीवानखालसा—संज्ञा पुं० [फा० दीवान खालसह] वह अधिकारी जिसके पास राजा या बादशाह की मुहर रहती है।

दीवानखास—संज्ञा पुं० [फा० दीवानखास] १ खास दरबार। ऐसी सभा जिसमें राजा या बादशाह मंत्रियों तथा चुने हुए प्रधान लोगों के साथ बैठता है। २ वह जगह या मकान जहाँ खास दरबार होता हो।

दीवानगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पागलपन। दीवानापन (को०)।

दीवाना—वि० [फा०] [वि० स्त्री० दीवानी] पागल। सिढ़ी। विक्षिप्त।

मुहा०—किसी के पीछे दीवाना होना = किसी के विषे हैरान होना। किसी (वस्तु या व्यक्ति) के लिये व्यग्र होना।

दीवानापन—संज्ञा पुं० [फा० दीवाना + हिं० पन (प्रत्य०)] पागलपन। सिढ़ीपन। विक्षिप्ता।

दीवानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ दीवान का पद। दीवान का मोहदा। २ वह भदालत जिसमें दो फरीकों के बीच किसी तरह की हकीयत का फैसला हो। वह न्यायालय जो सर्पति आदि सर्वधी स्वत्व का निर्णय करे। व्यवहार संबंधी न्यायालय।

दीवानी—वि० स्त्री० [फा० दीवाना] पगली। बावलो।

दीवार—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. परवर, ईंट मट्टी आदि को नीचे ऊपर रखकर उठाया हुआ परदा जिससे किसी स्थान को घेर कर मकान आदि बनाते हैं। भीत।

मुहा०—दीवार उठाना = दीवार बनाना। भीत खड़ी करना दीवार खड़ी करना = दीवार बनाना।

२. किसी वस्तु का घेरा जो ऊपर उठा हो। जैसे, दीवार की दीवार, लूते की दीवार, चूल्हे की दीवार।

दीवारगीर—संज्ञा स्त्री० [फा०] दीया आदि रखने का आधार जो दीवार में लगाया जाता है। ल०—सुवर्णमय दीवारगीर तथा मोतियों की झालर बनायो।—कबीर म०, पृ० ४५०।

दीवारगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० दीवारगीर] एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो दीवार में लगाया जाता है। पिछवाई।

दीवाल—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'दीवार'।

दीवालदंड—संज्ञा पुं० [फा० दीवाल + हिं० दंड] एक प्रकार की कसरत या दंड जो दीवार पर हाथ टिकाकर करते हैं।

दीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० दिवाला] दे० 'दिवाला'।

दीवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] कात्तिक की अमावास्या को होनेवाला एक उत्सव जिसमें संध्या के समय घर में भीतर

बाहर बहुत से दीपक जलाकर पंक्तियों में रखे जाते हैं और लक्ष्मी का पूजन होता है।

विशेष—जिस दिन प्रदोष काल में अमावास्या रहेगी उसी दिन दीवाली होगी और लक्ष्मी का पूजन किया जायगा। यदि अमावास्या लगातार दो दिन प्रदोषकाल में पड़े तो दूसरे दिन की रात को दीवाली मानी जायगी और वह रात सुखरात्रिका कहलावेगी। यदि अमावास्या प्रदोषकाल में पड़े ही न, तो पहले दिन लक्ष्मीपूजा और दूसरे दिन दीपदान होगा क्योंकि पार्वण श्राद्ध उसी दिन होगा। दीवाली के दिन लोग लूमा खेलना भी कर्तव्य समझते हैं।

दीवि—सङ्घा पुं० [सं०] नीलकंठ नाम का पक्षी।

दीवी—सङ्घा स्त्री० [हि० दीवी] दीवट। विरागदान।

दीसना—क्रि० प्र० [सं० दृश् (= देखना), प्रा० दीसना] दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना। उ०—(क) बिदुसन प्रभु विराटमय दीसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जट मुकुट गग दीसहि उतग। सोभत चद लिल्लाट रग।—पु० रा०, ७। १०।

दीसरना—क्रि० प्र० [सं० दृश, प्रा० दीस] दे० 'दीसना'। उ०—परतष ही दीसरे प्राणी, पिरभू भजण तरुण परताप।—रघु० २०, पु० २३।

दीसहना—क्रि० प्र० [सं० दृश, प्रा० दीस] दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना। उ०—जट गरल कठ दीसहति बीय। जिम चित्त प्रगट ससारनीय।—पु० रा०, ७। ६।

दीहंध—सङ्घा पुं० [सं० दिवस प्रा० दीह + सं० ग्रन्थ] वह जो दिन में देख न सके। उलूक। उल्लु।

दीह—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दीह] लंबा। बड़ा। उ०—बहु तामहें दीह पताक लखे। जनु धूम में अग्नि की ज्वाला बसे।—केशव (शब्द०)।

दीह—सङ्घा पुं० [सं० दिवस, प्रा० दिवस, दिवह, दीह] दिन। दिवस। उ०—सोवै खाय करे नहि सुकृत, सोवै दीह खलीता।—रघु० २०, पु० १६।

दीहड़ा, दीहाड़ा—सङ्घा पुं० [सं० दिवस, प्रा० दीह + ढा (प्रत्य०)] दिन। दिहाड़ा। उ०—पढ़ै सु कवि जो वस प्रवाहा। ह्वै वतीत प्राय दीहाड़ा।—रा० २०, पु० १२।

दुंका—सङ्घा पुं० [सं० स्तोक] (भनाज का) छोटा कण। कन। दाना। किनकी।

दुंहुक—वि० [सं० दुग्धुक] छली। घृतं। बेईमान। भूटा [को०]।

दुंहुम—सङ्घा पुं० [सं० दुग्धुम] एक प्रकार का विषहीन साँप।

दुंदू—सङ्घा पुं० [सं० दुन्द] १. दो मनुष्यों के बीच होनेवाला युद्ध या झगड़ा। २. ऊधम। उत्पात। उपद्रव। हड़बल। उ०—तब ही सुरज के सुभट निकट मचायो दुंदू। निकसि सकें नहि एकहू करघो कटक मसमूद।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

३ जोड़ा। युग्म। उ०—बरतै दीनदयाल दरसि पदकुंद मनदौ।—दीनदयाल (शब्द०)।

दुंदू—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुभि] नगाड़ा। उ०—(क) चड़ा भसाइ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बाजत डोल दुंद भौ मेरी। माँदर तूर भौ भूँ फेरी।—जायसी (शब्द०)।

दुंदुम—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुम] एक प्रकार का घोंसा या नगाड़ा [को०]

दुंदु—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दु] १. श्वकृष्ण के पिता वसुदेव का नाम। २. एक प्रकार का नगाड़ा [को०]।

दुंदु—सङ्घा पुं० [हि० दुंद] जन्म और मरण का भ्रम।

दुंदुम—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुम] १. नगाड़ा। घोंसा। २. जल का संपं। डोहड़ा [को०]। ३. शिव का एक नाम [को०]। ४. एक प्रकार की लंबी माला [को०]।

दुंदुभि—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुभि] १. वरुण। २. विष। ३. श्रौच द्वीप का एक विभाग। ४. एक पर्वत का नाम। ५. पासे का एक दाँव। ६. एक राक्षस का नाम जिसे बालि ने मारकर ऋष्य-मूक पर्वत पर फेंका था। इसपर मतंग ऋषि ने शाप दिया था, जिसके कारण बालि उस पर्वत के पास नहीं जा सकता था। ७. विष्णु का नाम [को०]। ८. कृष्ण [को०]। ९. सव-त्सरों के क्रम में ५६ वें सवत्सर का नाम [को०]।

दुंदुभि—सङ्घा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] नगाड़ा। घोंसा। उ०—सुर सुमन बरसहि हरख सकुल बाज दुंदुभि गहगही। सग्राम भगन राम भग भनग बहु सोभा लाही।—मानस, ६। १०२।

दुंदुभिक—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुभिक] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

दुंदुभिस्वन—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुभिस्वन] सुश्रुत में लिखी हुई एक प्रकार की विषचिकित्सा।

विशेष—बघ, भाम, गूसर, घाँवला, अकोल इत्यादि बहुत सी लकड़ियों का गोमूत्र में क्षार बनाकर और उसमें और बहुत सी औषधियाँ मिलाकर लेप बनावे। इस लेप को दुंदुभि, तोरण पताका इत्यादि में पोते। ऐसे तोरण, दुंदुभि आदि के दर्शन, श्रवण से विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

दुंदुभी—सङ्घा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'दुंदुम'। उ०—(क) सब देवन दुंदुभी वजाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मानहु मदन दुंदुभी दोन्ही।—तुलसी (शब्द०)।

दुंदुभी—सङ्घा स्त्री० [सं० दुन्दुभी] १. पासे का एक दाँव। २. एक गधर्वों का नाम [को०]।

दुंदुभ्याघात—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुभ्याघात] दुंदुभी बजाने-वाला [को०]।

दुंदुमा—सङ्घा स्त्री० [सं० दुन्दुमा] घोंसे की धावाज। नगाड़े की ध्वनि [को०]।

दुंदुमार—सङ्घा पुं० [सं० दुन्दुमार] १. दे० 'धुंधुमार'। २. बिडाल। बिलार [को०]। ३. गृह से उद्गत धूम। घर से निकलनेवाला धुआँ [को०]। ४. खाल रप का एक कीट [को०]।

दुंदुह^७—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डम] पानी का साँप । डेढ़हा ।

दुंदुर^७—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुर] मूसा । मूस ।

दुंवक—संज्ञा पुं० [सं० दुम्बक] दे० 'दुंबा' [को०] ।

दुंबा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुम्बालह] एक प्रकार का मेंढा, जिसकी दुम चक्की के पाट की तरह गोल और भारी होती है ।

विशेष—इसका ऊन बहुत अच्छा होता है । इस प्रकार के मेंढे पंजाब और काश्मीर से लेकर अफगानिस्तान और फारस तक होते हैं । भारतवर्ष में कई स्थानों पर ऐसे मेंढों की दोगली जाति उत्पन्न की गई है पर इसमें विशेष सफलता नहीं हुई है । बात यह है कि सीढ़वाले प्रदेशों में प्रायः दुम के कई प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ।

दुंबाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुंबालह] १ खोटी पूँछ । २ नाव की पतवार । ३. जहाज का पिछला हिस्सा ।

दुंदुर—संज्ञा पुं० [सं० उदुम्बर] गूलर की जाति का एक पेड़, जो हिमालय के किनारे चनाब से लेकर पूरब की ओर बराबर मिलता है ।

विशेष—यह वृक्ष बगाल, उड़ीसा और बरमा में भी नदियों या नालों के किनारे पर होता है । इसपर लाख पाई जाती है । इसकी छाल के रेशों से छप्पर की काँड़ी घान आदि बाँधी जाती हैं । बरसात में इसके फल पकते हैं और खाए जाते हैं । पर इन फलों का स्वाद फीका होता है । इसकी पत्तियाँ कुछ खरदरी होती हैं और लकड़ी माजने के काम में माती है ।

दुँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

दुँदका—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ना पेरने का कोलू ।

दुःकृते—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कृत] दे० 'दुष्कृत' ।

दुःख—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पाने की इच्छा प्राणियों में स्वभाविक हो । कष्ट । क्लेश । सुख का विपरीत भाव । तकलीफ ।

विशेष—सांख्यशास्त्र के अनुसार दुःख तीन प्रकार के माने गए हैं—प्राच्यात्मिक, प्राधिभौतिक और प्राधिदैविक । प्राच्यात्मिक दुःख के अतर्गत रोग, व्याधि आदि पारिरीक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख हैं । प्राधिभौतिक दुःख वह है जो स्थावर, जगम (पशु, पक्षी, साँप, मच्छड़ आदि) भूतों के द्वारा पहुँचता है । प्राधिदैविक जो देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पहुँचता है, जैसे,—प्राँची, वर्षा, वज्रपात, शीत, ताप इत्यादि । सांख्य दुःख को रजोगुण का कार्य और विस का एक धर्म मानता है, आत्मा को उससे अलग रखता है । पर न्याय और वैशेषिक दुःख को आत्मा का धर्म मानते हैं । त्रिविध दुःखों की निवृत्ति को सांख्य ने अत्यंत पुरुषार्थ कहा है और शास्त्रज्ञान का उद्देश्य बतलाया है । प्रधान दुःख जरा और मरण हैं जिनसे त्रिगुणों की निवृत्ति के बिना चेतन या पुरुष छुटकारा नहीं पा सकता है । इस प्रकार की मुक्ति या अत्यंत दुःखनिवृत्ति तत्त्वज्ञान द्वारा—प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान द्वारा—ही संभव है । वेदांत

ने सुखदुःख ज्ञान को भविष्य कहा है । इसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान द्वारा हो जाती है ।

योग की परिभाषा में दुःख एक प्रकार का चित्तविक्षेप या अताराय है जिससे समाधि में विघ्न पड़ता है । व्याधि इत्यादि चित्तविक्षेपों के प्रतिरिक्त योग ने चित्त के राजस कार्य को दुःख कहा है । किसी विषय से चित्त में जो खेद या कष्ट होता है वही दुःख है । इसी दुःख से द्वेष उत्पन्न होता है । जब किसी विषय से चित्त को दुःख होगा तब उससे द्वेष उत्पन्न होगा । योग परिणाम, ताप और संस्कार तीन प्रकार के दुःख मानकर सब वस्तुओं को दुःखमय कहता है । परिणाम दुःख वह है जिसका अन्यथाभाव हो अर्थात् जो भविष्य में अवश्य पहुँचे, ताप दुःख वह है जो वर्तमान काल में कोई भोग रहा हो और जिसका प्रभाव या स्मरण बना हो ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—दुःख उठाना = कष्ट सहना । तकलीफ सहना । ऐसी स्थिति में पड़ना जिससे सुख या शांति न हो । दुःख देना = कष्ट पहुँचाना । दुःख पहुँचना = दुःख होना । दुःख पहुँचाना = दे० 'दुःख देना' । दुःख पाना = दे० 'दुःख उठाना' । दुःख बटाना = सहानुभूति करना । कष्ट या संकट के समय साथ देना । दुःख भरना = कष्ट या संकट के दिन काटना । दुःख भुगतना या भोगना = दे० 'दुःख उठाना' ।

२ संकट । आपत्ति । विपत्ति ।

मुहा०—(किसी पर) दुःख पड़ना = आपत्ति आना । संकट उपस्थित होना ।

३. मानसिक कष्ट । खेद । रज । जैसे,—उसकी बात से मुझे बहुत दुःख हुआ ।

मुहा०—दुःख मानना = खिन्न होना । सतप्त होना । रंजीदा होना । दुःख बिसराना = (१) चिन्ता से खेद निकालना । शोक या रज की बात भूलना । (२) जी बहलाना । दुःख खगना = मन में खेद होना । रज होना ।

४ पीड़ा । व्यथा । दर्द । ५ व्याधि । रोग । बीमारी । जैसे,—इन्हें बुरा दुःख लगा है ।

मुहा०—दुःख खगना = रोग धरना । व्याधि होना ।

दुःखकर—वि० [सं०] जो दुःख उत्पन्न करे । क्लेश पहुँचानेवाला ।

दुःखग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] संसार ।

दुःखछिन्न—वि० [सं०] १ कठोर । कठिन । सख्त । २ कष्टग्रस्त । पीड़ित [को०] ।

दुःखछेद्य—वि० [सं०] कठिनाई से काटा जाने योग्य । २. कठिन [को०] ।

दुःखजीवी—वि० [सं० दुःखजीविन्] कष्ट से जीवन बितानेवाला ।

दुःखता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःख होने का भाव । बेचैनी । कष्ट [को०] ।

दुःखत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के दुःखों का समूह ।

दुःखद—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुःखदा] दुःखदायी । कष्ट पहुँचानेवाला । कष्टकर ।

दुःखदग्ध—वि० [सं०] कष्ट में पड़ा हुआ । सतप्त । क्लेशित ।
 दुःखदाता—संज्ञा पुं० [सं० दुःखदातृ] [स्त्री० दुःखदात्री] दुःख पहुँचाने-
 वाला मनुष्य । कष्ट देनेवाला व्यक्ति ।
 दुःखदायक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुःखदायिका] दुःख या कष्ट
 पहुँचानेवाला । जिससे दुःख हो ।
 दुःखदायी—वि० [सं० दुःखदायिन्] [वि० स्त्री० दुःखदायिनी] दुःख
 देनेवाला । जिससे कष्ट पहुँचे ।
 दुःखदोहा—वि० स्त्री० [सं०] (गाय) जो कठिन्ता से दुही जा सके ।
 जो जल्दी दुहने न दे ।
 दुःखनिवह—वि० [सं०] दुःसह ।
 दुःखप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट देनेवाला । दुःखद ।
 दुःखप्राय—वि० [सं०] दे० 'दुःखहुल' ।
 दुःखहुल—संज्ञा पुं० [सं०] दुःखपूर्ण । क्लेश से भरा हुआ ।
 दुःखमय—वि० [सं०] दुःखपूर्ण । क्लेश से भरा हुआ ।
 दुःखलभ्य—वि० [सं०] जो दुःख या कष्ट से प्राप्त हो सके । जो
 कठिन्ता से मिल सके ।
 दुःखलोक—संज्ञा पुं० [सं०] ससार ।
 दुःखशील—वि० [सं०] कष्टसहिष्णु । दुःख सहने की क्षमता रखने-
 वाला [स्त्री०] ।
 दुःखसाध्य—वि० [सं०] दुःख से होने योग्य । मुश्किल से होने योग्य ।
 मुश्किल से होनेवाला (काम) । जिसका करना कठिन हो ।
 दुःखांत—वि० [सं० दुःखान्त] १ जिसके अंत में दुःख हो । जिसके
 परिणाम में कष्ट हो । २. जिसके अंत में दुःख का वर्णन
 हो । जैसे, दुःखांत नाटक ।
 विशेष—प्राचीन यूनान के साहित्य ग्रंथों में नाटक दो प्रकार के
 कहे गए हैं—सुखांत और दुःखांत, दुःखावसानी या त्रासदी
 अंत. योरोप के साहित्य में नाटक या उपन्यास के दो भेद
 माने जाते हैं । पर भारतीय भाषाओं ने इस प्रकार का भेद
 नहीं किया है ।
 दुःखांत^२—संज्ञा पुं० १. दुःख का अंत । क्लेश की समाप्ति । २. दुःख
 की पराकाष्ठा । अत्यंत अधिक कष्ट । तकलीफ की हद ।
 दुःखातीत—वि० [सं०] दुःख से परे । कष्ट से मुक्त [स्त्री०] ।
 दुःखान्वित—वि० [सं०] दुःखी । दुःख में पड़ा हुआ [स्त्री०] ।
 दुःखायतन—संज्ञा पुं० [सं०] ससार । जगत् ।
 दुःखार्त—वि० [सं०] कष्ट से व्याकुल ।
 दुःखित—वि० [सं०] पीड़ित । क्लेशित । जिसे कष्ट या तक-
 लीफ हो ।
 दुःखिनी—वि० स्त्री० [सं०] जिसपर दुःख पड़ा हो । दुःखिया ।
 दुःखी—वि० [सं० दुःखिन्] [वि० स्त्री० दुःखिनी] जो कष्ट या
 या तकलीफ में हो ।
 दुःशकुन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शकुन । यात्रा आदि में दिखाई
 पड़नेवाला कोई ऐसा लक्षण जिसका बुरा फल समझा जाता
 है । जैसे, यात्रा में तेरो का मिलना ।

दुःशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गांधारी के गर्भ से उत्पन्न घृतराष्ट्र की
 कन्या जो सिंधु देश के राजा जयद्रथ को व्याही थी ।
 विशेष—जब महाभारत के युद्ध में जयद्रथ मारा गया तब इसने
 अपने छोटे से बालक सुरथ को राजसिंहासन पर बैठाकर बहुत
 दिनों तक राजकाज चलाया था । पांडवों के अश्वमेध के
 समय जब अर्जुन घोड़े को लेकर सिंधु देश में पहुँचे । तब
 सुरथ ने अपने पिता को मारनेवाले का युद्धार्थ भागमन सुनकर
 भय से प्राणत्याग कर दिया । अर्जुन ने इस बात को सुनकर
 सुरथ के बालक पुत्र को सिंहासन पर बैठाया ।
 दुःशासन^१—वि० [सं०] जिसपर शासन करना कठिन हो । जो
 किसी का दबाव न माने ।
 दुःशासन^२—संज्ञा पुं० घृतराष्ट्र के १०० लड़कों में से एक जो दुर्यो-
 धन का अत्यंत प्रेमपात्र और मंत्री था ।
 विशेष—यह अत्यंत क्रूरस्वभाव था । पांडव लोग जब हुए में
 हार गए थे तब यही द्रौपदी को पकड़कर सभास्थल में लाया
 था और उसका वस्त्र खींचना चाहता था । इसपर भीम
 सेन ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इसका रक्तपान करूँगा और
 जबतक इसके रक्त से द्रौपदी के बाल न रँगूंगा जबतक वह
 बाल न बाँधेगी । महाभारत के युद्ध में भीमसेन ने अपनी
 यह भयंकर प्रतिज्ञा पूरी की थी ।
 दुःशील—वि० [सं०] बुरे स्वभाव का । दुर्विनीत ।
 दुःशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता । दुःस्वभाव ।
 दुःशोध—वि० [सं०] १ जिसका सुधार कठिन हो । २. (घातु
 आदि) जिसका शोधना कठिन हो ।
 दुःश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह दोष जो कानों को कर्कश
 लगनेवाले शब्दों के आने से होता है । श्रुतिकटु दोष ।
 दुःषम—वि० [सं०] निदनीय । निध ।
 दुःषेध—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो ।
 दुःसंकल्प^१—संज्ञा पुं० [सं० दुःसंकल्प] बुरा इरादा । खोटा विचार ।
 दुःसंकल्प^२—वि० बुरा संकल्प करनेवाला । बुरा इरादा रखने-
 वाला । खोटी नीयत का ।
 दुःसंग—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्ग] बुरा साथ । कुसंग । बुरी सोहबत ।
 दुःसंगान—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्गान] केशवदास के अनुसार काव्य
 में एक रस जो उस स्थल पर होता है जहाँ एक तो अनु-
 कूल होता है और दूसरा प्रतिकूल, एक तो भेद की बात
 करता है और दूसरा बिगाड़ की । यथा, एक होय अनुकूल जहाँ
 दूजो है प्रतिकूल । केशव दुःसंगान रस शोभित तहाँ समूल ।
 यह पाँच प्रकार के अंतरों में से माना गया है ।
 दुःसह—वि० [सं०] जिसका सहन करना कठिन हो । जो कष्ट से
 सहा जाय । अत्यंत कष्टदायक । जैसे, दुःसह पीड़ा ।
 दुःसहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी ।
 दुःसाध—वि० [सं०] दे० 'दुःसाध्य' [स्त्री०] ।
 दुःसाधी—संज्ञा पुं० [सं० दुःसाधिन्] द्वारपाल ।
 दुःसाध्य—वि० [सं०] १. जिसका साधन कठिन हो । जिसका

करना मुश्किल हो। जैसे, दुःसाध्य कार्य। २. जिसका उपाय कठिन हो। जैसे, दुःसाध्य रोग।

दुःसारी—वि० [सं० दुःशल्प] बुरे शल्पवाला (घाव)। वह (घाव या चोट) जो बराबर पीड़ा देती हो। उ०—लालन लोटहि पोट चोट जबर उर लागी। कियो हियो दुःसार पीर प्राननि में पागी।—प्रज० प्र०, पृ० १५।

दुःसाहस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. व्यर्थ का साहस। ऐसा साहस जिसका परिणाम कुछ न हो, या बुरा हो। ऐसी बात करने की हिम्मत जिसका होना असम्भव हो या जिसका फल बुरा हो। जैसे,—उसे इस काम से रोकने जाना तुम्हारा दुःसाहस मात्र है। (ख) चलती गाड़ी से कूदने का दुःसाहस कभी मत करना। २. अनुचित साहस। ऐसी बात करने की हिम्मत जो अच्छी न समझी जाती हो। दिठाई। घृष्टता। जैसे,—बड़ों की बात का उत्तर देना तुम्हारा दुःसाहस है।

दुःसाहसिक—वि० [सं०] जिसे करने का साहस करना अनुचित या निष्फल हो। जिसके लिये हिम्मत करना बुरा हो। जैसे, दुःसाहसिक कार्य।

दुःसाहसी—वि० [दुःसाहसिन्] बुरा साहस करनेवाला।

दुःस्थ—वि० [सं०] १ जिसकी स्थिति बुरी हो। दुर्दशाग्रस्त। २ निधन। दरिद्र। ३ मूलं।

दुःस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी अवस्था। दुर्दशा। दुर्दशा।

दुःस्पर्श—वि० [सं०] १ न छूने योग्य। जिसका छूना कठिन हो। २ जिसे पाना कठिन हो।

दुःस्पर्श—सञ्ज्ञा पुं० १ कपिकच्छु। कँवाच। २ लता करज। ३. कटकारी। ४. प्राकाशगगा।

दुःस्पर्श—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कटिदार मकोय। दे० 'दुःस्पर्श'।

दुःस्फोट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शस्त्र [को०]।

दुःस्वप्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वप्न। ऐसा सपना जिसका फल बुरा माना जाता है। उ०—हुमा एक दुःस्वप्न सा सखि कैसा उत्पात। जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन रात।—साकेत, पृ० २५१।

विशेष—क्या क्या स्वप्न देखने से क्या क्या फल होता है इसका वर्णन विस्तार के साथ ब्रह्मवैवर्तपुराण में है। स्वप्न में यदि कोई हँसे, नाचना गाना देखे तो समझे कि विपत्ति घानेवाली है। यदि अपने को तेज मलते, गदहे, भैंसे या ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा को जाते देखे तो समझना चाहिए कि मृत्यु निकट है। इसी प्रकार और बहुत से फल कहे गए हैं।

दुःस्वभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वभाव। दुःशीलता। बदमिजाजी।

दुःस्वभाव—वि० दुःशील। दुष्ट स्वभाव का।

दुःस्वरनाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पापकर्म जिसके उदय से प्राणियों के कठोर और हीन स्वर होते हैं (जैन)।

दु—वि० [सं० द्वि, प्रा० दु या हि० दो] 'दो' शब्द का सक्षिप्त रूप जो समास बनाने के काम में आता है। जैसे, दुविधा, द्विचिता।

दुश्च०—वि० [सं० द्विक, प्रा० दुष्] दोनों। युगल। उ०—दामिनि चमक चाह अधिकारी। दुष्क चितै रहै चित लाई।—इंद्रा०, पृ० ६०।

दुश्चन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्मनस् या दुर्जन] दे० 'दुवन'।

दुश्चन्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्वि + प्राणक, प्रा० दु + प्राणक; हि० प्राणा] रूप का भ्रष्टमाया सिक्का जिसकी चलन बंद हो गई है।

दुश्चरवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'दुमार', 'दुवार'। उ०—पियवा आय दुश्चरवा, उठि किन देख। दुरलभ पाय बिदेसिया, मुद अवरेख।—रहीम (शब्द०)।

दुश्चरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्वार (=दुमार) + रिया (प्रत्य०)] दे० 'दुमारी' 'दुवारी'। छोटा दरवाजा। उ०—छाकहु बइठ दुश्चरिया, मोजहु पाय। पिय देखि गरमिया, विजन डोसाय।—रहीम (शब्द०)।

दुश्चा—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १ प्रार्थना। दरखास्त। बिनती। याचना।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दुमा मांगना = प्रार्थना करना।

२ माशीवाद। मसीह।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—दुमा लगना = माशीवाद का फलीभूत होना।

दुश्चा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो] गले में पहनने का एक गहना।

दुश्चागीर—वि० [म० दुष्मा + प्रा० गीर] दे० 'दुमागी'। उ०—दुमागीर इक्क सुलख सु चले।—ह० रासी०, पृ० ६७।

दुश्मागी—वि० [म० दुष्मा + प्रा० गो] दुष्मा करनेवाला। शुभ-चित्तक। उ०—मीर कोई दुमागी बनकर पीछा नहीं छोड़ते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

दुश्मागी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० दुष्मा + प्रा० गोई] दुष्मा देने की क्रिया या भाव [को०]।

दुश्मादस०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश'। उ०—ससिमुख अग मलैगिर रानी। कनक सुगंध दुश्मादस बानी।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १८१।

दुश्माव—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० दुष्मावह] दे० 'दुमावा'।

दुश्मावा—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० दुष्मावह] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दुश्माया—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० दुष्मा] दे० 'दुमा'। उ०—दुमाय सलाम निवाज न कोई।—प्राण०, पृ० १६०।

दुश्मारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्वार] [स्त्री० दुश्मारी] द्वार। उ०—घरी पहर होइ तो बचाए रेहों मेरी वीर देहरी दुमार दुख माठह पहर को।—ठाकुर०, पृ० ३।

दुश्मारी—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'दुमार'। उ०—(क) लंका बाँके चारि दुमारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थोड़ी बेर में उस दुखी तिरिया ने कहा, मेरा जो ठिकाने नहीं है, झूठे ही में इधर उधर सिर मार रही हूँ, देखो दुमारा यही है, इसको खोलो।—ठेठ०, पृ० ३८।

दुधारी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुधार] छोटा दरवाजा । उ०—यह तो संत प्रविकल प्रधिकारी । केहि कारण भावे केहु दुधारी ।
—कबीर सा०, पृ० ४८५ ।

दुधाल—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. चमड़ा । चमड़े का तसमा । २. रिकाब का तसमा ।

दुधाला—संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का एक बेलन जिसे सुनहरी छपी हुई छींटों के छापों को बैठाने के लिये फेरते हैं ।

दुधाली—संज्ञा स्त्री० [फा० डाल (तसमा)] खराद का तसमा । खराद की बढी । सान की बढी । चमड़े का वह तसमा जिससे कपड़े कून, सिकलीगर सान और बढ़ई खराद घुमाते हैं ।

दुई—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' । उ०—(क) तमार एक पठमा दुई उपस्थित सेव (कै) कर ।—वर्य०, पृ० १२ । (ख) दुई भंरु अजपा जपहु भंतर तजहु सबै तेवान ।—जग० बानी, पृ० ८९ । (ग) साधो मन महुँ करहु विचार । दुई भन्छर भजि उत्तरहु पार ।—जग० बानी, पृ० ९७ ।

दुइज^①—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीय, प्रा० दुईज] पाख की दूसरी तिथि । द्वितीया । द्वज ।

दुइज—संज्ञा पुं० [सं० द्विज] द्वज का चाँद । द्वितीया का चंद्रमा । उ०—कहाँ ललाट दुइज कह जोती । दुइजहि जोति कहाँ जग भोती ।—जायसी (शब्द०) ।

दुई—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+ई] दो की भावना । द्वैत भाव । भेद-भाव । उ०—कबीरा इषक का माता दुई को दूर कर दिल से । जो चलना राहु नाजुक हैं हमन सर बोझ भारी ब्या ।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ७० ।

दुऊ—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दोनों' । उ०—देखि दुऊ भए पायन लीने ।—केशव (शब्द०) ।

दुछौ—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दोनों' ।

दुकठिया^②—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+काठी (=शरीर)] दो होने की भावना । द्वैत भाव । अपने परायेपन भी भावना । दुई । उ०—प्रबकी बार दुकठिया छूटे तुम लायक यहि थोरी ।—भीखा० श०, पृ० ७२ ।

दुकड़हा—वि० [हि० दुकड़+हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दुकड़ही] १. जिसका मूल्य एक दुकड़ा हो । २. तुच्छ । नाचीज । ३. नीच । कमीना । घनाइत ।

दुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० द्विक+हि० ठा (प्रत्य०)] [स्त्री० दुकड़ी] १. वह वस्तु जो एक साथ या एक में लगी हुई दो दो हो । जोड़ा । जैसे, घोटियों का दुकड़ा, झंगोछों का दुकड़ा । २. वह जिसमें कोई वस्तु दो दो हो । वह जिसमें किसी वस्तु का जोड़ा हो । जैसे, चारपाई की दुकड़ी बुनावट, दुकड़ी गाड़ी । ३. दो दमड़ी । छदाम । एक पैसे का चौपाई भाग ।

विशेष—इसका हिसाब कोड़ियों से होता है । कहीं कहीं पाई को दुकड़ा मान लेते हैं यद्यपि उसका मूल्य एक पैसे का सिद्धाई होता है ।

दुकड़ी^१—वि० स्त्री० [हि० दुकड़ा] जिसमें कोई वस्तु दो दो हो ।

दुकड़ी^२—संज्ञा स्त्री० १. चारपाई की वह बुनावट जिसमें दो दो बाघ एक साथ बुने जाते हैं । २. दो घटियोंवाला साध का पसा । ३. दो घोड़ों की बगघी । उ०—जो बेगम साहब इस ठसे से दुकड़ी पर सवार हैं अभी कल तक सराय में प्रलारखी के नाम से मगहूर थी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३४४ । ४. घोड़ों का सामान जो दोहरा हो ।

दुकड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+कड़ी] १. वह लगाम जिसमें दो कड़ियाँ होती हैं । २. दो कड़ियों का बर्तन, कड़ाही कडाल आदि ।

दुकनार^४—क्रि० प्र० [देश०] लुकना । छिपना ।

दुकान—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह स्थान जहाँ बेचने के लिये चीजें रखी हों और जहाँ ग्राहक जाकर उन्हें खरीदते हों । सोदा बिकने का स्थान । माल बिकने की जगह । हट्ट । हट्टो । जैसे, कपड़े की दुकान, हलवाई की दुकान, बिसाती की दुकान ।

क्रि० प्र०—खोलना ।—बंद करना ।

मुहा०—दुकान उठाना = (१) कारबार बंद करके दुकान छोड़ देना । (२) दुकान बंद करना । दुकान करना = दुकान लेकर किसी चीज की बिक्री प्रारंभ करना । दुकान जारी करना । दुकान खोलना । जैसे,—एक महीने से उन्होंने चौक में गोटे की दुकान की है । दुकान खोलना = दे० 'दुकान करना' । दुकान चलना = दुकान में होनेवाले व्यवसाय की वृद्धि होना । जैसे,—प्राजकल शहर में उनकी दुकान खूब चलती है । दुकान बढ़ाना = दुकान बंद करना । दुकान में बाहर रखा हुआ माल उठाकर किवाड़े बंद करना । जैसे—(क) उनकी दुकान रात को नौ बजे बंद होती है । (ख) प्राज न्योते में जाना या इसीलिये दुकान जल्दी बड़ा दो । दुकान लगाना = (१) दुकान का प्रसबाब फैलाकर यथा-स्थान बिक्री के लिये रखना । वस्तुओं को बेचने के लिये फैलाकर रखना । जैसे,—जरा ठहरो दुकान लगा लें तो दें । (२) बहुत सी चीजों को घेर चघर फैलाकर रख देना । जैसे,—वह लडका जहाँ बैठता है वहाँ दुकान लगा देता है ।

दुकानदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. दुकान का मालिक । दुकान पर बैठकर सोदा बेचनेवाला । वह जिसकी दुकान हो । दुकान-वाला । २. वह जिसने अपनी प्राय के लिये कोई ढोंग रच रखा हो । जैसे,—उन्हें साधु या त्यागी कौन कहता है, वे तो पूरे दुकानदार हैं ।

दुकानदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दुकान या बिक्री बढ़ का काम । दुकान पर माल बेचने का काम । २. ढोंग रचकर रुपया पैदा करने का काम । जैसे,—यह सब बाबा जी की दुकानदारी है ।

दुकाना^⑤—क्रि० स० [हि० दुकाना] छिपाना । दुराना । उ०—बाल के बालक बिय कहीं लहैं । कब लग बाल दुकाए रहैं ।—नव प्र०, पृ० १४० ।

दुकात—संज्ञा पुं० [सं० दुष्काल] प्रलकष्ट का समय । प्रकाल । दुष्काल । उ०—(क) कलनाम कामतर राम को । दसन-

हार दारिद्र्य दुकाख दुख दोष धीर धनधाम को।—तुलसी (शब्द०) (ख) कलि बारहि बार दुकाल परै। बिन भन्न दुखी सब लोग मरै।—तुलसी (शब्द०)।

दुकूलसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता है।

दुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीम वस्त्र। सन या तीसी के रेशे का बना कपड़ा। २. महीन कपड़ा। धारीक कपड़ा। ३. वस्त्र। कपड़ा। उ०—खग मृग परिजन, नगर वन, बल कल विमल दुकूल। नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुख-मूल।—तुलसी (शब्द०)। ४. बौद्धों के शाम जातक के अनुसार शाम के पिता का नाम जो एक मुनि थे।

विशेष—शाम जातक में लिखा है कि एक दिन दुकूल अपनी पत्नी परिखा के सहित फलमूल की खोज में वन में गए। वहाँ किसी दुर्घटना से दोनों भवे हो गए। शाम दोनों को ढूँढ़कर वन से लाए और अनन्य भाव से दोनों की सेवा करने लगे। एक दिन सव्या को वे भवे मातापिता को छोड़ नदी से जल लाने गए वहाँ किसी राजा ने मृग समझकर उनपर तीर चलाया। तीर लगने से शाम की मृत्यु हो गई। राजा शाम के भवे मातापिता के पास आए और उन्होंने उनसे सब समाचार कह सुनाया। सबके सब मृत शाम के पास शोक करते पहुँचे। परिखा ने कहा यदि मेरा पुत्र सच्चा ब्रह्मचारी रहा हो और बुद्धदेव में उसकी सच्ची भक्ति रही हो तो मेरा पुत्र जी जाय। इस प्रकार की सत्य क्रिया करने पर शाम जी उठे और एक देवी ने प्रकट होकर उनके माता पिता का भ्रष्टापन भी दूर किया।

बौद्धों का यह भाख्यान रामायण में दिए हुए अंधक मुनि के भाख्यान का अनुकरण है जिसमें उनके पुत्र सिंधु को महाराज दशरथ ने मारा था। अंतर इतना था कि रामायण में दोनों भ्रष्टों का पुत्रशोक में प्राणत्याग करना लिखा है और शाम जातक में शाम का जी उठना और भ्रष्टों का दृष्टि पाना लिखा गया है।

दुकूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिता। नदी।

दुकूलतु—संज्ञा पुं० [सं० दुकूलत] दे० 'दुकूलत'। उ०—तुम हित कौन दुकूलत नहि किए। पन्नग फन परि मैं पग दिए।—नद० प्र०, पृ० १५६।

दुकेला—क्रि० वि० [हि० दुक्का + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० दुकेली] जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो भकेला न हो।

यौ०—भकेला दुकेला = जिसके साथ कोई न हो या एक ही दो भादमी हों। जैसे,—(क) जहाँ कोई भकेला दुकेला निकला कि डाकुओं ने भा घेरा। (ख) कोई भकेली दुकेसी सवारी मिले तो बैठा लेना।

दुकेले—क्रि० वि० [हि० दुकेला] किसी के साथ। दूसरे भादमी को साथ लिए हुए।

यौ०—भकेले दुकेले = बिना किसी को साथ लिए या एक ही दो भादमियों के साथ। जैसे,—(क) वह तुम्हें भकेले दुकेले पावेगा तो जरूर मारेगा। (ख) भकेले दुकेले बात निकलना।

दुक्कड़—संज्ञा पुं० [हि० दो + कुँड़] १. तबले की तरह का एक बाजा। यह बाजा शहनाई के साथ बजाया जाता है। इसमें एक कुँड़ बहुत बड़ी और दूसरी छोटी होती है। २. एक में जुड़ी हुई या साथ पटी हुई दो नावों का जोड़ा।

दुक्का—वि० [सं० द्विक] [वि० स्त्री० दुक्की] १. जो एक साथ दो हों। जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो भकेला न हो (व्यक्ति)।

यौ०—इक्का दुक्का = भकेला दुकेला।

२. जो जोड़े में हो। जो एक साथ दो हो (वस्तु)। ३. जिसमें कोई वस्तु एक साथ दो हों।

दुक्का^२—संज्ञा पुं० ताश का वह पत्ता जिसपर दो वूटियाँ बनी हों।

दुक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० दुक्का] ताश का वह पत्ता जिसपर दो वूटियाँ बनी हों।

दुक्ख^१—संज्ञा पुं० [सं० दुःख, प्रा० दुक्ख] दे० 'दुःख'। उ०—तेहि क उतर दुमावति कहा। बिछुरन दुक्ख हिए भरि रहा।—पदमावत, पृ० २३६।

दुक्कित^१—वि० [हि० दु + कित] विशाल। भयकर। भगाव। दे० 'दुष्कृत'। उ०—चिते रिषि देखि बिल दुक्कित। उर लग्यो भति चित भक्ति हित।—पृ० रा० १।१७३।

दुखंड—वि० पुं० [सं० द्वि + खण्ड] दो टुकड़े। छिन्न भिन्न। उ०—गुरुमुख्य बासा पिठ में मनमुख्य ह्वै ब्रह्मह। रज्जब भीतर में नहीं बाहर खड दुखंड।—रज्जब०, पृ० ७।

दुखंडा—वि० [हि० दो + खंड] दोतरफा। जिसमें दो खंड हों। दो मरातिब का। जैसे, दुखंडा मकान। दो खंड या दुक्कड़ों-वाली वस्तु।

दुखंती^१—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यत] दे० 'दुष्यत'। उ०—जस दुखत कहै साकुतला। माधोनालहि कामकदला।—जायसी प्र०, (गुप्त) पृ० २५५।

दुखंती^२—वि० [सं० दुखान्त] जिसकी समाप्ति दुःखपूर्ण हो। वियोगांत। दुःखांत।

दुख—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख'।

मुहा०—दुख का मारा = विपत्ति में पड़ा। दुःखी। उ०—कोई भावे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।—कबीर श०, भा० २, पृ० १०३। दुख का दूर भागना = दुःख मिट जाना। विशोक हो जाना। उ०—जानति नहीं कहैं नहि देखे मिल, गई ऐसै मनहु सगे। सूर स्याम ऐसे तुम देखे मैं जानति दुख दूर भगे।—सूर०, १०।१७८१।

दुखड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दुख + ढा (प्रत्य०)] १. दुःख का वृत्तांत। दुःख की कथा जिसमें किसी के कष्ट या शोक का वर्णन हो। तकलीफ का हाल।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनाना।

मुहा०—दुखड़ा रोना = अपने दुःख का वृत्तांत कहना। अपने कष्ट का हाल सुनाना।

२. कष्ट। तकलीफ। मुसीबत। विपत्ति।

क्रि० प्र०—पढ़ना।

मुहा०—किसी स्त्री पर दुखड़ा पढ़ना = (किसी स्त्री का) रौंढ हो जाना । विषवा हो जाना । (स्त्रि०) । दुखड़ा पीटना = कष्ट भोगना । बहुत परिश्रम और कष्ट से जीवन बिताना । (स्त्रि०) । दुखड़ा भरना = दे० 'दुखड़ा पीटना' ।

दुखतर—सद्मा स्त्री० [फा० दुखतर] पुत्री । लड़की । धी । उ०—शाहजहाँ के खानदान की बची बचाई सब कुछ मुगलानी चर्च की दुखतर नेक अखतर घीवी चंद्रिका जोहर कि जिसका इस वृद्धावस्था में विद्यार्थी शोहर हुआ है ।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० २४ ।

दुखदं—सद्मा पुं० [सं० दुखदं] दुःख और कष्ट । दे० 'दुखदुंद' उ०—कहत रविराम तोहि सुकृत न कछु काम धाम घन धरा धनि मान दुखदं में ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२ ।

दुखद—वि० [सं० दुःखद] दे० 'दुःखद' ।

दुखदाइक—वि० [सं० दुःख + दायक] दे० 'दुःखद' । उ०—सब मद ते धनमद दुखदाइक ।—नद० ग्रं०, पृ० २१४ ।

दुखदाई—वि० [सं० दुःखदायी] दे० 'दुःखदायी' । उ०—खल कर संग सदा दुखदाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुखदानि—वि० [सं० दुःख + दान] दुःख देनेवाली । तकलीफ पहुँचानेवाली । उ०—यह सुनि गुहानी धनु गुन धानी जानि द्विज दुखदानि ।—केशव (शब्द०) ।

दुखदुंद—सद्मा पुं० [सं० दुःखदं] दुःख का उपद्रव । दुःख और आपत्ति । उ०—छन महें सकल निशावर मारे । हरे सकल दुखदुंद हमारे ।—सूर (शब्द०) ।

दुखदैना—वि० [सं०] दे० 'दुःखदायी' । उ०—खजन प्रकट कि दुखदैना । सजोगिनि तिय के । से नैना ।—नद० ग्रं० पृ० १६८ ।

दुखना—क्रि० प्र० [सं० दुःख से नामिक घातु] (किसी मय का) पीड़ित होना । दर्द करना । पीड़ायुक्त होना । जैसे, ब्राह्म दुखना, पैर दुखना ।

दुखरा—सद्मा पुं० [हि० दुख + रा (प्रत्य०)] दे० 'दुखड़ा' उ०—सुख दुख की सामनि साधिनियाँ मिलि पूछति हैं दुखर तिय की ।—शकुंतला, पृ० ४६ ।

दुखवना—क्रि० प्र० [हि० दुखाना] दे० 'दुखाना' । उ०—नाहि कै केशव साख जिहें बकि कै तिनसों दुखनै मुख को, री ?—केशव (शब्द०) ।

दुखहाया—वि० [हि० दुख + हाया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दुखहाई] दुःख से भरा हुआ । दुःखित । उ०—दुखहाइनु चरचा नई भानन भानन भान । लगी फिरें हूँका दिए कानन कानन कान ।—विहारी (शब्द०) ।

दुखाना—क्रि० प्र० [सं० दुःख] १ पीड़ा देना । कष्ट पहुँचाना व्यथित करना ।

मुहा०—जी दुखाना = मानसिक कष्ट पहुँचाना । मन में दुःख उत्पन्न करना । जैसे,—कड़ी बात कहकर क्यों किसी का जी दुखाते हो ? २ किसी के मर्मस्थान या पके भाव इत्यादि को छू देना जिससे उसमें पीड़ा हो । जैसे, फोड़ा दुखाना ।

५-१०

दुखारा—वि० [हि० दुख + आर (प्रत्य०)] दुःखी । पीड़ित । उ०—एक कल्प सूर देखि दुखारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुखारी—वि० [हि० दुख + आर (प्रत्य०)] दुःखी । व्यथित । खिन्न । उ०—जे न मित्र दुख होहि दुखारी । तिनहि बिलोकत पातक भारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुखारो—वि० [हि०] दे० 'दुखारा' ।

दुखित—वि० [सं० दुःखित] दे० 'दुःखित' । उ०—गहि गिरि तर अकास कपि धावाहि । देखहि न दुखित फिरि धावाहि ।—मानस, ६।७२ ।

दुखिया—वि० [हि० दुःख + इया (प्रत्य०)] दुःखी । जो दुःख में पड़ा हो । जिसे किसी प्रकार का कष्ट हो । उ०—तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मैं को छोडकर कहाँ गए ?—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३११ ।

यौ०—दीन दुखिया ।

दुखियारा—वि० [हि० दुखिया] [वि० स्त्री० दुखियारी] १ दुखिया । जिसे किसी बात का दुःख हो । २ जिसे कोई शारीरिक पीड़ा हो । रोगी ।

दुखी—वि० [सं० दुःखित, दुःखी] १. जिसे दुःख हो । जो कष्ट या दुःख में हो । उ०—धन हीन दुखी ममता बहूषा ।—तुलसी (शब्द०) । २ जिसे मानसिक कष्ट पहुँचा हो । जिसके चित्त में खेद उत्पन्न हुआ हो । जिसके दिल में रज हो । जैसे,—उसकी बात सुनकर मैं बड़ा दुखी हुआ । ३. रोगी । बीमार ।

दुखीला—वि० [हि० दुख + ईला (प्रत्य०)] दुःखपूर्ण । दुःख अनुभव करनेवाला । उ०—गर्मवती की चाह से दुखीले स्वभाव को पहुँचकर उसने जो कहा सोई लाया हुआ देखा ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

दुखोही—वि० [हि० दुख + ओही] [स्त्री० दुखोही] दुःखदायी । दुःख देनेवाला । उ०—तेहि पैडे कहाँ चलिये कबहूँ जेहि काँटो लगे पग पीर दुखोही ।—केशव (शब्द०) ।

दुख्त्—सद्मा स्त्री० [फा० दुख्तर का सक्षिप्त रूप] दे० 'दुख्तर' ।

यौ०—दुख्ते रज = अगूरी शराब । उ०—जो बहके दुख्तेरज से हैं वह कब इनसे बहकते हैं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४७ ।

दुख्तर—सद्मा स्त्री० [फा० दुख्तर] पुत्री । कन्या [कौ०] ।

यौ०—दुख्तेरे खाना = कुमारी कन्या । दुख्तेरे खीचा = सीत की लड़की । सीतेली कन्या । दुख्तेरे रज = अगूर की बेटी । अगूर की शराब ।

दुग—सद्मा स्त्री० [देश०] दे० 'धुक' ।

दुगई—सद्मा स्त्री० [देश०] घोसारा । बरामदा । उ०—धति अदभुत यमन की दुगई । गज धन सुचंदन चित्रमई ।—केशव (शब्द०) ।

दुगण—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'द्विगुण' ।

दुगदुगी—सद्मा स्त्री० [अनु० धुक धुक] १ वह गड्ढा जो बरदम के नीचे और छाती के ऊपर बीचोबीच होता है । धुकधुकी ।

मुहा०—दुग्धदुग्धो में दम होना = प्राण का कंठगत होना ।

२ गले में पहनने का एक गहना जो छाती के ऊपर तक लटका रहता है ।

दुग्ध—सखा पुं० [सं० दुग्ध] दे० 'दुग्ध' । उ०—इहै तिय सी महिमा गाए । धेनु दुग्ध तैं भानि न्हुवाए । जैसे घ्याए तेसे पाए । इतनी कहि सिध ऊठि सिधाए ।—पु० रा०, १।४००।

यौ०—दुग्धनदीस = क्षीरसागर । दूध का समुद्र । उ०—इंद्र को भनुज हेरे दुग्धनदीस को ।—भूषण प्र०, पृ० ६७ ।

दुग्धघां—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुग्ध' ।

दुग्धन^१—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'दुग्धना' ।

दुग्धन^२—सखा स्त्री० बाजे की दूनी तेज आवाज । दून ।

दुग्धना^१—वि० [सं० द्विगुण] [वि० स्त्री० दुग्नी] किसी वस्तु से उतना धीर अधिक जितनी कि वह हो । द्विगुण । दूना । जैसे—(क) चार का दुग्ना घाठ । (ख) यह चादर उसकी दुग्नी है ।

दुग्धना^२—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'दुक्ना' ।

दुग्धनित^१—वि० [सं० द्विगुणित] दुग्ना । दूना । उ०—भ्राजु ब्रज छवि की छूट परे । इत नंदलाल सादिली उत इत दीपक ज्योति बरे । इत जरतार तास बागो उत भूषण फलक परे । इत नवखंड सीसमहला उत दुग्धनित विब परे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८३ ।

दुग्धनित्या बैठक—सखा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब पहलवान का एक हाथ जोड़ की गरदन पर होता है और जोड़ का वही हाथ पहलवान की गरदन पर होता है । इसमें पहलवान दूसरा खाली हाथ बढ़ाकर जोड़ के जर्घों में देता है और बैठक करके गरदन दबाते हुए उसे फेंक देता है ।

दुग्धगाम^१—वि० [सं० दुग्म, प्रा० दुग्म] दुग्म । उ०—ऐ बरियाम निहस्सिया, दोग घड़ी इक जाम । भजवो वीठलदास रो, पड़ियो खेत दुग्म—रा० ६०, पृ० २०७ ।

दुग्धाडा—सखा पुं० [हिं० दो + गाढ (= गढ़ा)] १ दुनाली बट्टक । दोनली बट्टक । २ दोहरी गोली ।

दुग्धाना^१—सखा पुं० [फ्रा० दुगानह्] वह फल जिसमें दो फल जुड़े हों । जैसे, दुगाना आम ।

दुग्धाना^२—क्रि० प्र० [देश० दुक्ना] दुकाना । छिपाना ।

दुग्धासरा—सखा पुं० [सं० दुग् + आश्रय] वह गांव जो किसी दुग् के किनारे हो । किसी दुग् के नीचे या चारों ओर बसा हुआ गांव । उ०—गह्यो धंधेरल दुग्म आसरो । गाँवें गढ़ी को दूढ़ दुग्मासरो ।—साल (शब्द०) ।

दुग्धुण^१—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'द्विगुण' ।

दुग्धुण^२—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'दुग्धना' । उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तामु दुग्धुण कपि रूप देखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुग्धूल—वि० [हिं० दुग्धुल] दे० 'दुग्धुल' ।

दुग्धूल^१—सखा पुं० [सं०] दे० 'दुग्धूल' [को०] ।

दुग्धुण^२—सखा पुं० [सं० दुग्म, प्रा० दुग्म] दे० 'दुग्म' । उ०—सदा दान किरवान में, जाके भानन भ्रमु । साहि निजाम सखा भयो दुग्ध देवगिरि खमु ।—भूषण प्र० पृ० ६ ।

दुग्धगम^१—वि० [सं० दुग्म, प्रा० दुग्म] दे० 'दुग्म' । उ०—दूर दुग्धग दमसि भञ्जेओ । गाढ़ गढ़ गूढ़ीभ गञ्जेओ ।—विद्या-पति, पृ० १० ।

दुग्ध^१—वि० [सं०] १. दूहा हुआ । २ भरा हुआ । परिपूर्ण । ३ खींचा हुआ । चूसा हुआ । बाहर निकाला हुआ (को०) ।

दुग्ध^२—सखा पुं० १ दूध । २ पीछों का श्वेत रस जो दूध सा होता है (को०) । ३ दोहना । दूहना (को०) ।

दुग्धकूपिका—सखा स्त्री० [सं०] मावप्रकाश में लिखा हुआ एक प्रकार का पक्वान जो पिसे हुए चावल और दूध के छेने से बनता है । विशेष—छेने के साथ चावल की गोल लोई बनावे और उसमें गहड़ा करे । फिर इस लोई को थोड़ा घी में तलकर उसके गहड़े में खूब गाढ़ा दूध भर दे और गहड़े का मुँह मँदे से बंद कर दे । फिर इस दूध भरे हुए बड़े को घी में तलकर चाशनी में डाल दे । यह पक्वान वायु, पित्त का नाशक, बलकारक, शुक्रवर्धक और दृष्टिवर्धक होता है ।

दुग्धतालीय—सखा पुं० [सं०] १ दूध का फेन । २ मलाई ।

दुग्धदा—सखा स्त्री० [सं०] गाय । दूध देनेवाली गाय [को०] ।

दुग्धपाचन—सखा पुं० [सं०] १. दूध गरम करने या भोटाने का पात्र । २ एक प्रकार का नमक [को०] ।

दुग्धपापाशा—सखा पुं० [सं०] एक पेठ जिसे बगाल की ओर शिर-गोला कहते हैं ।

दुग्धपुच्छी—सखा स्त्री० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

पर्या०—सेवाकास । नसकरी । निशामंगा । दुग्धपेया ।

दुग्धपुष्पी—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'दुग्धपुच्छी' [को०] ।

दुग्धपोष्य—वि० [सं०] (वासक) जो माता का दूध पीकर रहता-हो । दुग्धमुही (वच्चा) ।

दुग्धफेन—सखा पुं० [सं०] १ दूध का फेन । २ एक पीषा । क्षीर हिंडीर ।

दुग्धफेनी—सखा पुं० [सं०] एक छोटा पीषा । पयस्विनी । सुतारि । गोजापणी ।

दुग्धवध—सखा पुं० [सं० दुग्धवध] खूँटा जिसमें दूध दूहने के समय गायें बांधते हैं । दुग्धवधक [को०] ।

दुग्धबंधक—सखा पुं० [सं० दुग्धबंधक] दे० 'दुग्धवध' [को०] ।

दुग्धबीजा—सखा स्त्री० [सं०] ज्वार । जुहरी जिसके दानों में से सफेद रस या दूध निकलता है ।

दुग्धशाला—सखा स्त्री० [सं० दुग्ध + शाला] वह स्थान जहाँ गायें रक्षी जाती हैं और दूध का व्यापार होता है ।

दुग्धसमुद्र—सखा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र । पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक । क्षीरसागर ।

यौ०—दुग्धसमुद्रतनया = सधमी ।

दुग्धांक—सङ्घा पुं० [सं० दुग्धाङ्क] एक प्रकार का पत्थर । ये 'दुग्धाक्ष' [को०] ।

दुग्धाक्ष—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का नग या पत्थर जिसपर सफेद सफेद छोट्टे होते हैं ।

दुग्धाम्—सङ्घा पुं० [सं०] मलाई [को०] ।

दुग्धान्धि—सङ्घा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र ।

दुग्धान्धितनया—सङ्घा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी ।

दुग्धाश्मा—सङ्घा पुं० [सं० दुग्धाश्मन्] दुग्धपाषाण ।

दुग्धिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ दुग्दी नाम की घास या बूटी । २. गधिका नाम की घास ।

दुग्धिनिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] लाल चिचडा । रक्तापामाण ।

दुग्धी^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] दुग्धिया नाम की घास । दुग्दी ।

दुग्धी^२—वि० [सं० दुग्धिन्] दूधवाला । जिसमें दूध हो ।

दुग्धी^३—सङ्घा पुं० [सं० दुग्धिन्] क्षीरवृक्ष ।

दुग्ध—वि० [सं०] (समासात् में प्रयुक्त) देनेवाला । प्रदाता । जैसे, कामदुग्ध = कामनाओं को देने या पूरा करनेवाला ।

दुग्धिया—वि० [हिं० दो घड़ी] दो घड़ी का । जैसे,—दुग्धिया सायत, दुग्धिया मुहूर्त । उ०—लगन दुग्धियो शुभ अशुभ रामवान अजमान । —राम० धर्म०, पृ० ३२१ ।

दुग्धिया मुहूर्त—सङ्घा पुं० [हिं० दो घड़ी + मुहूर्त] दो दो घड़ियों के अनुसार निकाला हुआ मुहूर्त । द्विघटिका मुहूर्त ।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है । रात दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त करते हैं और फिर राशि के अनुसार शुभाशुभ समय का विचार करते हैं । इसमें दिन का विचार नहीं किया जाता है । सब दिन सब ओर की यात्रा का विधान है । इस प्रकार का मुहूर्त उस समय देखा जाता है जब यात्रा किसी दूसरे दिन पर टाली नहीं जा सकती ।

दुग्धी^१—सङ्घा स्त्री० [हिं० दो + घड़ी] दुग्धिया मुहूर्त । उ०—दुग्धी साध चले तसकाला । किय विश्राम न मगु महिपाला । —तुलसी (शब्द०) ।

दुग्धा—सङ्घा स्त्री० [सं०] दूध देनेवाली गाय । गो जो दूध देती हो [को०] ।

दुग्ध—वि० [फा० दाघद] दूना । द्विगुण । दुगना । उ०—(क) पापन का पाति महामद मुख मैली मई, दीपति दुग्ध फैली घरम समाज की । —पसाकर (शब्द०) । (ल) आज नंदनद न् आनंद भरे खेलें फाग, कोटि चंद ते दुग्ध भालदुति लाल की । —दीनदयाल (शब्द०) ।

दुग्धल्ला—सङ्घा पुं० [हिं० दो + चाल] वह छत जिसके दोनों ओर ढाल हो ।

दुग्धित—वि० [हिं० दो + चित] १ जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो । जो दुविधे में हो । जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो, कभी दूसरी । अस्थिरचित्त । उ०—दुग्धित कवई परिषोष न सहहीं । —तुलसी (शब्द०) । २.

चित्तित । फिक्रमद । उ०—बोत गए तिहुँ काल कछु भयो न साके बाल । जऊ सुचित सब दुखनि सो दुचित भयो भूपाल । —गुमान (शब्द०) ।

दुचितही^१—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुचित] १ एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव । चित्त की अस्थिरता । दुविधा । उ०—सोचत जनक पोच पंच परि गई है । जोरि करकमस निहोरि कहैं कौसिक सो, आयसु भो राम को सो मेरे दुचितही है । —तुलसी ग्रं०, पृ० ३१३ । २ खटका । आशका । चिता । उ०—शाह सुवन उर हरि रति बाढ़ी । तामु विछोह दुचितही गाढ़ी । —रघुराज (शब्द०) ।

दुचितही^२—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुचित] १. चित्त की अस्थिरता । दुविधा । सदेह । उ०—(क) साँचो कहहु देखि सुनि के मुख छाड़हु छिया कुटिल दुचितही । —केशव (शब्द०) । २. खटका । चिता । आशका । उ०—जब आनि भई सबको दुचितही । कहि केशव काहुपे मेठि न जाई । —केशव (शब्द०) ।

दुचित्ता—वि० [हिं० दो + चित] [वि० स्त्री० दुचित्ती] १. जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो । जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो और कभी दूसरी । जो दुविधे में हो । अस्थिरचित्त । अव्यवस्थितचित्त । २ सदेह । पड़ा हुआ । जिसके चित्त में खटका हो । चितित ।

दुचित्ती—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुचित्ता] दुचित्ता की स्थिति ।

दुच्छक—सङ्घा पुं० [सं०] कपूर कचरी । मुरा नामक गंधद्रव्य । गंधकुटी ।

दुच्छण^१—सङ्घा पुं० [सं० द्वेषण (= शत्रु)] विह (हिं०) ।

दुच्छताना^१—वि० अ० [हिं० दुचित या देश०] पछताना । उ०—मेघनाद सगर परिव, गयब सुगं चितु लाय । कहिय खबर भगुलन तन, मन पू मन दुच्छताय । —प० रासो, पृ० १५४ ।

दुछोल^१—वि० [हिं० दु (= दो) छोर] दोनों ओर मिला हुआ । दोरगा । दो तरह का । दो प्रकार का उ०—पठ्यो मदन वसीठ ही ढीठ महामद लोल । छिन ओरे छिन ओर सों छाक्यो छेल दुछोल । —छोत०, पृ० २५ ।

दुज^१—सङ्घा पुं० [सं० द्विज] १ दे० 'द्विज' । २. प्रक्षी । उ०—दुज वर कोकिल साखिता देल । —विद्यापति, पृ० १०६ । ३ दाँत । दशन । उ०—अरुन अक्षर, दुज कोटि वज्र दुति ससि धन रूप समाने । कुंचित अलक सिलीमुख मिलि मनु ले मकरद उडाने । —सूर०, १० । १७६४ ।

यौ०—दुजगन = दाँतों की पक्ति । उ०—सजम राखत केस नयन ह काननचारी । मुखहू माहि पवित्र रहत दुजगन सुखकारी । —ब्रज ग्रं०, पृ० १०२ ।

दुजड़^१—सङ्घा स्त्री० [देश०] तलवार । उ०—वस मटवकर कषरा, दुजड़ उजोगर देस । —रा० रू०, पृ० ४४ ।

दुजड़ी—सङ्घा स्त्री० [देश०] कटारी । (हिं०) ।

दुजन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन] दे० 'दुर्जन' । उ०—सापित दुजन कों है देत सुमने सुखाय लगे पति कानन में घात ताप में बली ।—दीन ग्रं०, पृ० ४५ ।

दुजनता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्जनता] दुष्टता । उ०—देखहु नाथ दुजनता मेरी । महिमा कछी चहौ प्रभु केरी ।—नद० ग्रं०, पृ० २७० ।

दुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० द्विजन्मा] दे० 'द्विजन्मा' ।

दुजपति—संज्ञा पुं० [सं० द्विजपति] १. दे० 'द्विजपति' । २. चद्रमा । उ०—दुजपति अकह हिरन इक्क निम्भय सुभाय प्रति ।—पृ० रा०, ६ । ६६ ।

दुजवर—वि० [सं० द्विजवर] ब्राह्मण उ०—दुजवर एक सुदामा नामा ।—नद० ग्रं०, पृ० २१२ ।

दुजराइ—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] १. ब्राह्मण । द्विजराज । उ०—देखि राज विसमित भयो व्यासहि लीन वृषाह । भेद लरे क्यों व्यास सों कही बैन दुजराह ।—पृ० रासो, पृ० २ । २. चद्रमा ।

दुजराज—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] दे० 'द्विजराज' ।

दुजाई—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विज, हि० दुज+आई (प्रत्य०)] द्विजत्व । ब्राह्मणत्व । उ०—तपस्या ठकुराई छीन पाई मिट दुहाई देस ए । चाकर दुजाई पाप माई सुद छाई वेष ए ।—राम० घमं०, पृ० २८७ ।

दुजाति—संज्ञा पुं० [सं० द्विजाति] दे० 'द्विजाति' ।

दुजानू—क्रि० वि० [फ्रा० दोजानू] दोनों घुटने के बल । जैसे, दुजानू बैठना ।

दुजोह—संज्ञा पुं० [सं० द्विजिह्व] दे० 'द्विजिह्व' ।

दुजेश—संज्ञा पुं० [सं० द्विजेश] दे० 'द्विजेश' ।

दुज्जन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जण] दे० 'दुर्जन' । उ०—(क) सुमण पससइ कब्ब मक्क, दुज्जन बोलइ मद ।—कीर्ति०, पृ० ४ । (ख) दुज्जन को दाह कर दसह दिसान में ।—मतिराम (शब्द०) ।

दुज्द—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुज्द] चोर । उ०—बुजुरगी किया मज सुवारक जवा । बनाया उच्छे दुज्द के पासवा ।—कबीर मं०, पृ० १३१ ।

दुम्नाल—वि० [दे०] १. असह्य । २. दोनों हाथों से शस्त्र धारण करनेवाला । उ०—निहये खलौ नवल्ल री, मग्गे दलौ दुम्नाल । हिच पहियो रज रज हुवे, साँद सूरजमाल ।—रा० रू०, पृ० ४० ।

दुदक—वि० [हि० दो+दुक] दो दुकड़ों में किया हुआ । खंखित । उ०—कियो दुदक चाप देखत ही रहे चकित सब ठाढ़े ।—सूर (शब्द०) ।

मुद्दा—दुदक बात=थोड़े में कही हुई साफ बात । बिना घुमाव फिराव की स्पष्ट बात । ऐसी बात जो सगे लिपटी न हो । खरी बात । जैसे,—हम तो दुदक बात कहते हैं, चाहे बुरी सगे या भली ।

दुदना—क्रि० प्र० [हि० दुर्ना] छिपना । छुफना । छोट होना ।

उ०—सोहे भोगिया छोट हरी रंग साज में । दुडिया चकवा दोय सिवात समाज में ।—वाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३७ ।

दुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० दुष्टि] दुष्टि । कच्छपी ।

दुडियंद—संज्ञा पुं० [? या सं० द्युति + मप० यद] सूर्य (हि०) ।

दुडो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + टो (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिसमें दो बूटियाँ होती हैं । दुक्की ।

दुत^१—अव्य० [मनु०] १. एक शब्द जो तिरस्कारपूर्वक हटाने के समय बोला जाता है । दूर हो । २. एक शब्द जो उस मनुष्य के प्रति बोला जाता है जो कोई मूर्खता की या अनुचित बात कहता अथवा करता है । घृणा या तिरस्कारसूचक शब्द ।

विशेष—कभी कभी लोग बच्चों को प्यार से भी दुत कह देते हैं ।

दुत^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] द्युति । ज्योति । प्रकाश । उ०—पै सजा कीरत मुख पीत वारज भवध मूल दुत वीर ।—रघु० रू०, पृ० २४६ ।

दुतकार—संज्ञा स्त्री० [मनु० दुत+कार] वचन द्वारा किया हुआ अपमान । तिरस्कार । धिक्कार । फटकार ।

क्रि० प्र०—देना ।—बतलाना ।—मिलना ।

दुतकारना—क्रि० प्र० [हि० दुतकार + ना (प्रत्य०)] १. दुत दुत शब्द करके किसी को अपने पास से हटाना । २. तिरस्कृत करना । धिक्कारना ।

दुतर^१—वि० [सं० दुस्तर, प्रा० दुत्तर] दे० 'दुस्तर' । उ०—ममता यह विषय मदमाती यह सुख कबहुं न दुतर तिरौं ।—२० बानी, पृ० ६ ।

दुतरफा—वि० [हि० दो+म० तरफ] दे० 'दुतर्फी' ।

दुतर्फी—वि० [फा० दुतर्फह] [वि० स्त्री० दुतर्फी] दोनों ओर का । जो दोनों ओर हो । जैसे, दुतर्फी चाल, दुतर्फी रंग ।

दुतल्ला—वि० [हि० दो + तल्ला] दो तल्ले का । दो मरातिब का । जैसे, दुतल्ला मकान ।

दुतारा—वि० [सं० दुस्तार, प्रा० दुतार] कठिन । दुस्तर । उ०—रतकहि पचस ब्रह्म हजार । जह्व कमोर दख करि दुतार ।—पृ० रासो, पृ० ३६ ।

दुताबी—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार की तलवार (संभवत दोहरे तलवा की) । उ०—चरबी जिन चाबी दर्वाह न दाबी दिपति दुताबी देखि परे ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८ ।

दुतारा—संज्ञा पुं० [हि० दो + तार] एक बाजा जिसमें दो तार लगे होते हैं और जो चंगली से सितार की तरह बजाया जाता है ।

दुति^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] १. दे० 'द्युति' । उ०—चौंसठि कला बिनासजुत बदन कलानिधि पेखि । दुतिया की देख कला को दुति याकी देखि ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४७ । २. कागद । कागज (लश०) । उ०—दुति बिन मसि बिन मक सो पुस्तक बाँचिए । बिन कर ताल बजाय चरन बिन नाचिए ।—कबीर०, पृ०, भा० २, पृ० १२३ । ३. दावात ।

दुतिई^२—वि० [सं० द्वितीया] दूसरी । दुजी । पहली के बादवाली ।

उ०—दुतिई उपमा कवि यों मनई । किय भंगन चद निसा जगई ।—पृ० रा०, ८।६२ ।

दुतिमान०—वि० [सं० द्युतिमान्] दे० 'द्युतिमान्' ।

दुतिय०—वि० [सं० द्वितीय] [वि० स्त्री० द्युतिमा] दे० 'द्वितीय' । उ०—दुतिय समुच्चय चाहि को कह भूपन कवि मोर ।—भूषण भं०, पृ० ५६ ।

दुतिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] दूज । पक्ष की दूसरी तिथि । उ०—दुतिया की देखें कला को दुति याकी देखि ।—मति० प्र०, पृ० ४४७ ।

दुतिया०^२—संज्ञा पुं० [सं० द्विष्व] दो का भाव । द्वेषभाव । उ०—ज्ञान होय परगास क्रमति जूझा में हारै । दुतिया खडन करे एक को बैठि बिचारे ।—पलटू०, पृ० ३७ ।

दुतिवंत०—वि० [हिं० दुति + वत (प्रत्य०)] १ आभायुक्त । चमकीला । २ सुंदर ।

दुतिवान०—संज्ञा पुं० [सं० द्युतिमत्, द्युतिमान् या हिं० दुति + वान (प्रत्य०)] सूर्य । द्युतिमान् । उ०—विश्रमान् वृहमान रवि बिबस्वान दुतिवान ।—अनेक०, पृ० १०२ ।

दुती०—वि० [सं० द्वितीय] दे० 'द्वितीय' । उ०—(क) दुती उपमा बरनै कवि चद । चले घट रूप दिखावत इद ।—पृ० रा०, २१।१६ । (ख) दुती उपमा कवि यों मन लगि । कि भंगन चद निसा महि जगि ।—पृ० रा०, ८।६३ ।

यौ०—दुतीभाव = द्वितीय की भावना । द्वैत भाव । उ०—दाहू प्ररण ब्रह्म विचार ले, दुतीभाव करि दूर । सब घटि साहित देखिये राम रह्या भरपूर ।—दाहू०, पृ० ४२२ ।

दुतीय०—वि० [सं० द्वितीय] दे० 'द्वितीय' ।

दुतोया०^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] दे० 'द्वितीया' ।

दुत्त०—संज्ञा पुं० [सं० दूत] दे० 'दूत' । उ०—अति माधव कोविद सुवर, कही वरा गुन जुता । तऊ साहि गोरी नृपति, केरि मुक्कले दुत्त ।—पृ० रा०, १६।१० ।

दुत्तर, दुत्तरु—वि० [सं० दुस्तर, प्रा० दुत्तर] दे० 'दुस्तर' । उ०—(क) पूछे गोरख देहु बीचार । क्यों करि दुत्तर उतरहुं पार ।—प्राण०, पृ० ७८ । (ख) क्योकरि दुमघा दुत्तर तरिआ ।—प्राण०, पृ० १०० ।

दुत्ता—अव्य० [हिं० दूत] घृणा या तिरस्कारसूचक शब्द । दे० 'दूत' । उ०—मोहि करै दुत्ता लोग, महल मे कोन चले ।—जग० श०, पृ० १० ।

दुत्ति०—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] दे० 'द्युति' । उ०—मानों कि दुत्ति द्रपनह व्योम । निच्छोल स्पाम मधि हसिय सोम ।—पृ० रा०, २।३७१ ।

दुत्ती०^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दूती] दूत कार्य करनेवाली स्त्री । दूती । उ०—यों करत दुत्तिय बियो कथा श्रवन सुनि मत । जाकी तैं पतिवृत्त लिय सो आयो अलि कत ।—पृ० रा०, पृ० २५।२८८ ।

दुत्थोत्थद्वीय—संज्ञा पुं० [सं०] ताजिक नीलकण्ठ के अनुसार वर्ष-प्रवेश मे एक याग ।

दुथनी—संज्ञा पुं० [देश०] पत्नी । जोर । (कुमाऊं) ।

दुथरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

दुश्कार—संज्ञा स्त्री० [अनु० दुत् + कार] विषकार । फटकार । दुत्कार । उ०—दूर दुदकार देते अमिमानी पशुओं को ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०२ ।

दुदल^१—वि० [सं० द्विदल] फूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर खण्ड या दल हो जायें । द्विदल ।

दुदल^२—संज्ञा पुं० १. दाल । उ०—दुदल प्रकार अनेकन भोने । बरन बरन के स्वाद महाने ।—रघुराज (शब्द०) । २. एक पोधा जो हिमालय के कम ठंडे स्थानों में तथा नीलगिरि पर्वत पर बहुत होता है ।

विशेष—इसकी जड़ ओषधि के काम में आती है और यकृत को पुष्ट करनेवाली, पसीना और पेशाब लानेवाली होती है । ज़िगर की बीमारी, खाँस, चर्मरोग आदि में यह उपकारी होती है । इसे कानकूल और बरन भी कहते हैं ।

दुदलाना^३—क्रि० सं० [अनु०] दुत्कारना । उ०—आवै कोइ आसरा लगाई । लागे दोष देह दुदलाई ।—विद्याम (शब्द०) ।

दुदहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्ध + माण्डिका, हिं० दुध + हाँड़ी] दे० 'दुधहँड़ी' ।

दुदामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाम] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो मालवे में बहुत बनता था । उ०—दुदामी के धान मालवा में पहले भी बगते थे, मगर शाहजहाँ बादशाह की कहरवानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे ।—शाहजहाँनामा (शब्द०) ।

दुदिला—वि० [हिं० दो + फ़ा० दिल] १ दुचिता । दुबधे में पड़ा हुआ । २ खटके में पड़ा हुआ । चितित । व्यग्र । घबराया हुआ । उ०—त्यों रंग मच्यो दिली मे मोरे । दुदिलो भयो साह कित दोरे ।—लाल (शब्द०) ।

दुदुकारना^१—क्रि० सं० [अनु० दुदकार] दे० 'दुत्कारना' ।

दुदुह—संज्ञा पुं० [सं०] अनुवशीय एक राजा का नाम । (हरिवंश) ।

दुद्धी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक घास ।

विशेष—इस घास के डठलों में थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं जिनके दोनों ओर एक एक पत्ती होती है । इन्हीं गाँठों पर से पतले डंठल निकलते हैं जिनमें फूलों के गोल गोल गुच्छे लगते हैं । दुद्धी दो प्रकार की होती है—एक बड़ी दूसरी छोटी । बड़ी दुद्धी की अत्ती दो ढाई अंगुल लंबी, एक अंगुल चौड़ी तथा किनारे पर कुछ कुछ कटावदार होती है । अंगुले सिरे की ओर यह नुकीली और पीछे डंठल की ओर गोल और चौड़ी होती है । छोटी दुद्धी के डठल बहुत पतले और लाल होते हैं । पतियाँ भी बहुत महीन और दोनों सिरों पर गोल होती हैं । वैद्यक में दुद्धी गरम, मारी रुखी, बादी, कड़ई, मलमूत्र को निकालनेवाली तथा कृमि और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है । बड़ी दुद्धी से लड़के गोदना गोदने का खेल भी खेलते हैं । वे इसके दूध

से कुछ लिखकर उसपर कोयला घिसते हैं जिससे काले चिल्ल बन जाते हैं ।

पर्या०—क्षीरी । मधुमवा । ग्राहिणी । कच्छरा । ताम्रमूला ।

२. घृहर की जाति का एक छोटा पौधा, जो भारतवर्ष के सब गरम प्रदेशों में, विशेषकर पञ्जाब और राजपूताने में होता है । इसका दूध दम में दिया जाता है ।

दुद्धी^२—सखा स्त्री० [हि० दूध] १ एक प्रकार की सफेद मिट्टी । खडिया मिट्टी । २. सारिवा सता । ३ जगली नील । ४ एक पेठ जो मद्रास, मध्य प्रदेश और राजपूताने में होता है । इसकी लकड़ी सफेद और बहुत मज्झी होती है और बहुत से कामों में जाती है ।

दुद्धी^३—सखा स्त्री० [हि० दूध] एक प्रकार का सफेद धान, जिसका नाम सुश्रुत ने कुक्कुटांडक लिखा है ।

विशेष—दे० दुधिया^१ ।

दुधुम—सखा पुं० [सं०] प्याज का हरा पौधा ।

दुध—सखा पुं० [सं० दुग्ध, प्रा० दुग्घ] दूध का समस्त रूप । जैसे, दुधमुही, दुधहंडी ।

दुधपिट्टी—सखा स्त्री० [हि० दूध + पीठी] दे० 'दुधपिठवा' ।

दुधपिठवा—सखा पुं० [सं० दुग्ध, हि० दूध + सं० पिष्टक, हि० पीठा] एक प्रकार का पकवान जो गुंथे हुए मैदे की लंबी लंबी बत्तियों को दूध में पकाने से बनता है ।

दुधमुख^५—वि० [हि० दूध + मुख] दूधपीता । दुधमुहां ।

दुधमुहूँ—वि० [हि० दूधमुह] दे० 'दूधमुहूँ' ।

दुधहंडी—सखा स्त्री० [हि० दूध + हंडी] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें दूध रखा या गरम किया जाता है । दूध की मटकी ।

दुधहंडी—सखा स्त्री० [हि० दूध + हंडी] दे० 'दुधहंडी' ।

दुधा—सखा स्त्री० [सं० द्विधा, द्विविधा] दुविधा । सदेह । भ्रम । उ०—कही मान सौ मन की दुधा । तनि जब कही बात यह मुधा ।—मघं०, पु० २१ ।

दुधार^१—वि० [हि० दूध + धार (प्रत्य०)] १ दूध देनेवाली । जो दूध देती हो । जैसे, दुधार गया । २ जिसमें दूध हो ।

दुधार^२—वि०, सखा पुं० [हि० दो + धार] दे० 'दुधारा' ।

दुधारा^३—वि० [हि० दो + धार] दो धाराओं का । जिसमें दोनों ओर धार हो (तलवार, छुरी आदि) । जैसे, दुधारा खाँडा ।

दुधारा^४—सखा पुं० एक प्रकार का चौड़ा खाँडा या तलवार जिसके दोनों ओर तेज धार होती है ।

दुधारी^१—वि० स्त्री० [हि० दूध + धार (प्रत्य०)] दूध देनेवाली । जो दूध देती हो । जैसे, दुधारी गाय ।

दुधारी^२—वि० स्त्री० [हि० दो + धार] जिसमें दोनों ओर धार हो । जैसे, दुधारी तलवार ।

दुधारी^३—सखा स्त्री० वह कटारी जिसके दोनों ओर तेज धार हो ।

दुधारू—वि० [हि०] दे० 'दुधार', 'दुधारी' ।

दुधित—वि० [सं०] भयभीत । व्याकुल । घबराया हुआ । दुखी । पीड़ित [को०] ।

दुधिया—वि० [हि० दूध + ह्या (प्रत्य०)] १ दूध मिला हुआ । जिसमें दूध पड़ा हो । जैसे,—दुधिया भाँग । २ जिसमें दूध होता हो । ३ दूध की तरह सफेद । सफेद जाति का । जैसे दुधिया गेहूँ, दुधिया धान । दुधिया पत्थर, दुधिया ककड़ ।

दुधिया^२—सखा स्त्री० [सं० दुधिका] १ दुद्धी नाम की घास । २ एक प्रकार की ज्वार या चरी जो बड़ी दे की ओर बहुत होती है और चोपायों को खिलाई जाती है । ३ खडिया मिट्टी । ४ कलियारी जाति का एक विष । ५ एक चिडिया जिसे लटोरा भी कहते हैं ।

दुधियाकजई^३—वि० [हि० दुधिया + कजा] सफेदी लिए हुए कजे रंग का । नीलापन लिए भूरा ।

दुधिया कंजई^४—सखा पुं० एक रंग जो नीलापन लिए भूरा अर्थात् कजे के रंग से कुछ खुलता होता है ।

विशेष—इस रंग में रंगने के लिये कपड़े को पहले हरे के काढ़े में हुंदाकर घूप में सुखाते हैं फिर कसीस में रंगते हैं ।

दुधिया पत्थर—सखा पुं० [हि० दुधिया + पत्थर] १ एक प्रकार का मुलायम सफेद पत्थर जिससे प्याले आदि बनते हैं । २ एक नग या रत्न ।

विशेष—दे० 'दुधिया' ।

दुधियाविष—सखा पुं० [हि० दुधिया + विष] कलियारी की जाति का एक विष जिसके सुंदर पौधे काश्मीर, चित्राल, हजारा के पहाड़ों तथा हिमालय के पश्चिमी भाग में मिलते हैं ।

विशेष—इसका पौधा कलियारी की ही तरह का सुंदर फूलों से सुशोभित होता है । इसकी जड़ में विष होता है । कलियारी की जड़ से इसकी जड़ छोटी और मोटी होती है । रंग भी काला-पन लिए होता है । हजारा में इसे 'मोहरी' और काश्मीर में 'बनबल नाग' कहते हैं । इस विष को 'तेलिया विष' और 'मीठा जहर' भी कहते हैं ।

दुधेली—सखा स्त्री० [हि० दूध + एली (प्रत्य०)] दे० 'दुद्धी' ।

दुधैल—वि० [हि० दूध + एल (प्रत्य०)] बहुत दूध देनेवाली । दुधार । जैसे, दुधैल गाय ।

दुध्र—वि० [सं०] १ चोट पहुँचानेवाला । हिंसक । २ दुर्घर्ष । शक्ति-शाली । भयानक [को०] ।

दुनया—सखा पुं० [सं० द्वि, हि० दो + सं० नदी, प्रा० एई] वह स्थान जहाँ दो नदियाँ एक दूसरे से मिलती हों । दो नदियों का संगम स्थान ।

दुनरना^१—क्रि० प्र० । क्रि० सं० [हि० दुनवना] दे० 'दुनवना' ।

दुनवना^५—क्रि० प्र० [हि० दो + नवना (=भुक्तना)] किसी नरम या लचीली वस्तु का इस प्रकार भुक्तना कि उसके दोनों छोर एक दूसरे से मिल जायें या पाम पास हो जायें । लचकर दोहरा हो जाना । इस प्रकार नमित होना कि दोनों अर्धभाग प्रायः एक दूसरे के समानांतर हो जायें । उ०—कठिन सोचिने

सायक, रमत न भीति । दुनए केस न टूटत यह परतीति ।—
रहीम (शब्द०) ।

दुनवना^२—क्रि० स० लचाकर दोहरा कर देना । इस प्रकार
झुकाना कि दोनों छोर एक दूसरे से मिल जायें या पास पास
हो जायें ।

दुनाली^१—वि० स्त्री० [हि० दो+नाल] दो नालवाली । जैसे, दुनाली
बटुक ।

दुनाली^२—संज्ञा स्त्री० दुनाली बटुक । वह बटुक जिसमें दो दो गोखियाँ
एक साथ भरी जायें ।

दुनिआ^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० दुनियह] दे० 'दुनिया' । उ०—मलहदाद
मल तिन्हकर गुरु । दीन दुनिआ रोसन सुरखुरु —जायसी
प्र० (गुप्त०), पृ० १३३ ।

दुनियाँ^१—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. ससार । जगत् ।

यौ०—दीन दुनियाँ = लोक परलोक ।

मुहा०—दुनियाँ के परदे पर = सारे ससार में । दुनिया की हवा
लगना = सांसारिक अनुभव होना । संसारी विषयों का अनुभव
होना । दुनियाँ भर का = बहुत या बहुत अधिक । जैसे,—
(क) दुनियाँ भर का सामान साथ ले जाकर क्या करोगे ?
(ख) दुनियाँ भर का बखेड़ा । दुनियाँ से उठ जाना = मर
जाना । दुनियाँ से चल बसना = मर जाना ।

२ ससार के लोग । लोक । जनता । जैसे,—सारी दुनियाँ इस
बात को जानती है । उ०—ये तपसी द्वै गरुड भरे दुनियाँ
ते दयानिधि बोलत ना ।—दयानिधि (शब्द०) । ३. संसार
का जजाल । जगत् का प्रपञ्च ।

दुनियाई^१—वि० [प्र० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] सांसारिक ।
उ०—जावत खेह रेह दुनियाई । मेघ बूँद भी गगन तराई ।
—जायसी (शब्द०) ।

दुनियाई^२—संज्ञा स्त्री० [फा० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] ससार ।
उ०—ते विष बान लिखों कहैं ताई । रक्त जो धुमा मीज
दुनियाई ।—जायसी (शब्द०) ।

दुनियादारी^१—संज्ञा पुं० [फा०] सांसारिक प्रपञ्च में फँसा हुआ
मनुष्य । संसारी । गृहस्थ ।

दुनियादारी^२—वि० ढग रचकर अपना काम निकालनेवाला । व्यव-
हारकुशल ।

दुनियादारी^३—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ दुनियाँ का कारबार । गृहस्थी
का जजाल । २ दुनियाँ में अपना काम निकालने का ढग ।
वह व्यवहार जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध हो । स्वार्थसाधन ।
३ दिखाऊ या वनावटी व्यवहार । दुराव । छिपाव ।

मुहा०—दुनियादारी की बात = वनावटी बात । इधर उधर की
बात जो केवल प्रसन्न करने के लिये कही जाय । लल्लो
चप्पो । जैसे,—दुनियादारी की बात रहने दो, अपना ठीक
ठीक मतलब बतलाओ ।

दुनियापरस्त—वि० [फा०] सांसारिक । कृपण । कलूस ।

दुनियासाज—वि० [फा० दुनियासाज] १ ढग रचकर अपना काम

निकालनेवाला । स्वार्थसाधक । २ अवसर देखकर सुहावे-
वाली बात करनेवाला । लल्लो चप्पो करनेवाला । चापलूस ।

दुनियासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० दुनियासाजी] १. अपना मतलब
निकालने का ढग । स्वार्थसाधन की वृत्ति । २. चापलूसी ।
३. बात बनाने का ढंग ।

दुनी—संज्ञा स्त्री० [प्र० दुनिया] ससार । जगत् । उ०—(क) सातो
द्वीप दुनी सब नये ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कविद्वंद
उदार दुनी न सुनी । गुन दूषन बात न कोपि गुनी ।—तुलसी
(शब्द०) । (ग) तुमही जग ही जग है तुमही में । तुमही
विरची मरजाद दुनी में ।—केशव (शब्द०) ।

दुनोना, दुनौना—क्रि० प्र० क्रि० स० [हि० दुनवना] दे० 'दुनवना' ।

दुपकना—क्रि० प्र० [सं० दीपन] १. चमकना । दीप्त होना ।
२. छा जाना । छादित होना । छिपना । धावत होना । ढँक
जाना (लश०) । उ०—अनेक दीप से दमक रहा गगन ।
अनेक दीप से दुरक रही अवनि ।—मिलन०, पृ० २०७ ।

दुपटा^१—संज्ञा पुं० [हि० दुपट्टा] दे० 'दुपट्टा' । उ०—पीढ़े हुते
पलंगा पर प्यो मुख ऊपर मोट किए दुपटा की ।—सुंदर
(शब्द०) ।

दुपटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपटा] चादर । दुपट्टा । उ०—(क)
सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जहाँ एक घटी ।
—केशव (शब्द०) । (ख) घौती फटी सी लटी दुपटी अरु
पाँय उपानह की नहि सामा ।—कविता को०, भा० १,
पृ० १४६ ।

दुपट्टा—संज्ञा पुं० [हि० दो + पाट] [स्त्री० मल्ला० दुपट्टी] १. मोड़ने
का वह कपड़ा जो दो पाटों को जोड़कर बना हो । दो पाट
की चद्दर । चादर ।

मुहा०—दुपट्टा तानकर सोना = निश्चित होकर सोना । बेखटके
सोना । दुपट्टा बदलना = सहेली बनाना । सखी बनाना ।
(स्त्री०) ।

२ कंधे या गले पर ढालने का लबा कपड़ा ।

दुपट्टी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + पाट] दे० 'दुपटी' ।

दुपद—संज्ञा पुं० [सं० द्विपद] दे० 'द्विपद' । उ०—चारो बेद पढे मुख
प्रागर है वामन वपुधारी । अपद दुपद पशुभाषा वृष्म अविगत
अल्प महारी ।—सूर (शब्द०) ।

दुपदी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + फा० पदह] वह मिरजई, फतुही वा
नीमस्तीन जिसमें दोनों ओर पदें हों । धगलबदी ।

दुपलड़ी—वि० [हि० दो + पलड़ा (= पल्ला)] दो पल्लेवाली ।
दुपल्लो । उ०—इस दुपलड़ी टोपी को छोड़ो ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ८७ ।

दुपलिया^१—वि० स्त्री० [हि० दो + पल्ला] दो पल्लेवाली । जिसमें
दो पल्ले हों ।

दुपलिया^२—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जिसके दोनों पल्ले सीए
रहते हैं ।

दुपहर—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + पहर] दे० 'दोपहर' । उ०—जेहि निदास दुपहर रहै भई माह की राति । तेहि उसीर की रावटी खरी भावटी जाति ।—विहारी (शब्द०) ।

दुपहरि०—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपहरी] दुपहरिया । दोपहर । उ०—दुपहरि तहें डाइन सी भावै ।—नद० ग्र०, पृ० १४० ।

दुपहरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपहर + दया (प्रत्य०)] † १ मध्याह्न का समय । दोपहर । २. एक छोटा पीघा जो फूलों के लिये लगाया जाता है । उ०—पग पग मग भ्रमन परति चरन भ्रमन दुति झूलि । ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि ।—विहारी (शब्द०) ।

विशेष—यह पीघा डेढ़ दो हाथ ऊँचा और एक सीधे खड़े ठठल के रूप में होता है । इसमें शाखाएँ या टहनियाँ नहीं फूटती । पत्तियाँ इसकी आठ दस भंगुल लंबी, भंगुल डेढ़ भंगुल चौड़ी और किनारे पर कटावदार तथा गहरे रंग की होती हैं । फूल इसके गोल कटोरे के आकार के और गहरे लाल रंग के होते हैं । इन फूलों में पाँच दल होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर जो बीजकोश रह जाता है उसमें रोई के दाने से काले काले बीज पड़ते हैं । वैद्यक में दुपहरिया मलरोधक, कुछ गरम, भारी, कफकारक, ज्वरनाशक तथा घात पित्त को दूर करने-वाली मानी जाती है ।

पर्या०—बभ्रुक । यधुजीव । रक्त । माध्याह्निक । वंशुर । सूर्य-भक्त । श्लोष्ठपुष्प । अकंवल्लम । हरिप्रिय । शरत्पुष्प । ज्वरघ्न । सुपुष्प ।

३ वह जिसका गर्भाधान दुपहरिया की हुआ हो । हरामजाया । दुष्ट । पापी । (बाजारू) ।

दुपहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोपहर + ई (प्रत्य०)] दे० 'दुपहरिया' । उ०—भरे भीत या बात की देखि हिये कर गौर । रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानी इक ठौर ।—स० सप्तक, पृ० १८२ ।

दुपहिया—वि० [हि० दो + पहिया] वह (गाड़ी) जिसमें दो पहिए लगे हों । दो चक्कोवाली (साइकिल आदि) । उ०—सुबह उठकर एक दुपहिया गाड़ी पर चढ़ बैठते ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १५६ ।

दुपालिया—वि० [हि० दो + पाली या पल्ला] दो पल्लेवाली । जिसके दो पल्ले हों । उ०—लाख किनारे की घोंती पहने, दुपालिया मट्टी की टोपी लगाए ।—श्यामा०, पृ० १५० ।

दुपी०—संज्ञा पुं० [सं० द्विप] हाथी ।

दुफसली—वि० [हि० दो + फल] दोनों फसलों में उत्पन्न होनेवाला । वह जिस जो रबी और खरीफ दोनों में हो ।

दुफसली—वि० स्त्री० दुबधे का । अनिश्चित । सदिग्ध । जैसे,—दुफसली बात कहना ठीक नहीं ।

दुबकना—क्रि० प्र० [हि० दुबकना] दे० 'दुबकना' ।

दुबगली—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + बगल] मालखम की एक कसरत जिसमें वेत को दोनों बगलों में से निकालकर हाथ ऊँचे करके उसे ऐसा लपेटते हैं कि एक कुडल सा बन जाता है । फिर

दोनों पैरों को सिर की ओर सटाते हुए उसी कुडल में से निकलकर कलावाजी के साथ नीचे गिरते हैं ।

दुबज्यौरा—संज्ञा पुं० [हि० दूब + जेवरी] गले में पहनने का एक गहना जिसकी बनावट गोप की तरह की होती है ।

दुबड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दूब] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है ।

दुबधा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] १. दो में से किसी एक बात पर चिन्तन करने की क्रिया या भाव । अनिश्चितता । चिन्ता की अस्थिरता । उ०—दुबधा में दोऊ गए माया मिले न राम ।—(शब्द०) ।

मुहा०—दुबधे में डालना = अनिश्चित दशा में करना । दुबधे में पडना = अनिश्चित अवस्था में पडना ।

२ संशय । संदेह । जैसे,—दुबधे की बात मत कहो, ठीक ठीक बताओ कि आओगे या नहीं । ३. असमंजस । माया पीछा । उ०—को जाने दुबधा संकोच में तुम डर निकट न आवै ।—सूर (शब्द०) । ४. खटका । चिन्ता ।

दुबरा—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुबरा' ।

दुबरा—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबरी] दुबला । शरीर से क्षीण । उ०—करी खरी दुबरी सु लागि तेरी चाह चुरेस ।—विहारी (शब्द०) ।

दुबरार्ही—संज्ञा स्त्री० [हि० दुबरा + ई (प्रत्य०)] १ दुर्बलता । कृशता । २ कमजोरी । अशक्तता । उ०—भई यदपि नैमुक दुबरार्ही । बड़े डील नहि देत दिखाई ।—शकुंतला, पृ० ३१ ।

दुबराना—क्रि० प्र० [हि० दुबरा + ना (प्रत्य०)] दुबला होना । शरीर से क्षीण होना । उ०—(क) लखे न कत सहेटवा फिर दुबराय । धनियाँ कमल बदनियाँ, गद्द कुम्हिलाइ ।—रहीम (शब्द०) । (ख) दुबर लंक अधिक दुबरार्ही । भुके कध मुख पै पियरार्ही ।—शकुंतला, पृ० ४८ ।

दुबरासगोला—संज्ञा पुं० [हि० दो + प्र० वैरल + हि० गोला] तोप का लंबोतरा गोला ।

दुबरास पलंग—संज्ञा पुं० [हि० दुबरास + प्र० पुलिंग] पाल की वह डोरी जिसे खींचकर पाल के पेटे की हवा निकालते हैं ।

दुबला—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबली] १ क्षीण शरीर का । जिसका बदन हलका और पतला हो । कृश ।

यौ०—दुबला पतला ।

२. अशक्त । कमजोर ।

दुबलापन—संज्ञा पुं० [हि० दुबला + पन] कृशता । क्षीणता ।

दुबाइन—संज्ञा स्त्री० [हि० दूबे का स्त्री०] दूबे की स्त्री ।

दुबागा—संज्ञा पुं० [हि० दो + प्र० प्रग्रह, हि० पगहा, बगई] सन की मोटी रस्सी ।

दुबारा—क्रि० वि० [फ्रा० दुबारह, हि० दो + बार] दे० 'दोबारा' ।

दुबाल—वि० [हि० दुबला] दे० 'दुबला' । उ०—देखत बालिदेन अपने भक्तमूर हाल । परेशान अपने भी फिर लग दुबास ।—बिक्रमनी०, पृ० २६८ ।

दुबाला—वि० [फा०] दे० 'दोबाला' । उ०—करै हैं उस परी के घाले
जोवन को दुबाला सा ।—नजीर (शब्द०) ।

दुबाहिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विवाह] दोनों हाथों से तलवार चलाने-
वाला योद्धा ।

दुविदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विविद] दे० 'द्विविद' ।

दुविध—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] दे० 'दुवधा' ।

दुविध^२—वि० [सं० द्विविध] दो प्रकार की । द्विविध । उ०—
दुविध मनोगति प्रजा दुखारी । सरित सिंधु जगम जनु बारी ।
—मानस, २। ३०१ ।

दुविधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] १ दे० 'दुवधा' उ०—को
जानै दुविधा सकोच में तुम डर निकट न भावै ।—सूर
(शब्द०) । २ दो प्रकार की भावना । भेद भाव । अच्छे बुरे
की भावना । उ०—इक लोहा पूजा मैं राखत इक घर बधिक
परी । सो दुविधा पारस नहि जानत कंचन करत खरो—सूर०,
१। २२० ।

दुविधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] दे० 'दुवधा' । उ०—जैहि निरखत
मन मगन, सो दुविधि नसावई ।—केशव० भमी०, पृ० १ ।

दुविध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [द्विविधा] दे० 'दुवधा' । उ०—ग्रह परम
मानदमय ग्रह ज्योति निज मोह । ग्रहयोग ग्रहाहि मया
दुविध्या रही न कोह ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११३ ।

दुबिला—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दुबला] दे० 'दुबला' । उ०—कवि लखन
भबला कहत सबला जोध कहत । दुबिला तन में प्रगट जिहि,
मोहत संत भसत ।—हं० रासो, पृ०, २८ । १२ मोरत ।
नारी (बाजारू) ।

दुबिसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दो+बीस] एक प्रकार का कमीशन जो
गवर्नमेंट किमानों को देती है । अर्थात् बीस रुपए के लगान पर
दो रुपए ।

दुबीचा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो+बीच] १. दो बातों के बीच किसी
एक बात का निश्चय न होना । दुबधा । २ सशय । संदेह ।
३ असमजस । भाग पीछा । ४ खटका । चिंता ।

दुवे—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विवेदो] [स्त्री० दुवाइन] ब्राह्मणों का
एक भेद ।

दुब्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुवधा' । उ०—इससे मेरा जी दुब्धे
में पड़ा है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १५ ।

दुभना—क्रि० सं० [दिश०] दे० 'दुहना' । उ०—काहे भूमि हतना भार
राखे । दुभन धेनु नहि दुध खाखे ।—दक्खिनी०, पृ०, १०२ ।

दुभाखी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विभाषो] दे० 'दुभाषी' । उ०—भगुन
सगुन बिच नाम सुसाखी । उमय प्रबोधक चतुर दुभाखी ।—
मानस, १। २१ ।

दुभाषिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विभाषो] दो भाषाओं को जाननेवाला
ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं के बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक
दूसरे का अभिप्राय समझावे । दो भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलने-
वालों के बीच का मध्यस्थ ।

दुभाषी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] दुभाषिया ।

दुभिखा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुभिक्ष] दे० 'दुभिक्ष' ।

दुभुज—वि० [सं० द्विभुज] दे० 'द्विभुज' ।

दुमंजिला—वि० [फ्रा० दु+मंजिल] [वि० स्त्री० दुमजिली] दो
खंड । दा मरातिव का । जैसे, दुमजिला मकान ।

दुम—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. पूँछ । पुच्छ ।

मुहा०—दुम के पीछे फिरना = साथ साथ लगा फिरना । पीछे
पीछे घूमना । साथ न छोड़ना । दुम दबाकर भागना = डरपोक
कुत्ते की तरह डरकर भागना । डर के मारे न ठहरना ।
दबकर भागना । (कुत्ते जब अपने से बलिष्ठ कुत्ते को देखते
हैं तब डर के मारे पूँछ दोनों टाँगों के बीच दबा लेते हैं) ।
दुम दबा जाना = (१) डर के मारे हट जाना । डर से भाग
जाना । (२) डर के मारे किसी बात से हट जाना । भयवश
किसी काम से पीछे हट जाना । डर के मारे किसी काम से
भलग हो जाना । दुम में घुसना = गायब हो जाना । दूर हो
जाना । जैसे,—एक चाँटा हूँगा खारी बदमाशी दुम में घुस
जायगी । दुम में घुसा रहना = छुपामद के मारे साथ लगा
रहना । शूश्रूषा के लिये सदा साथ में रहना । दम में रस्ता
बाँधूँ = नटखट चोपाए की तरह बाँधकर रखूँ । (एक
विनोदसूचक वाक्य जो प्राय किसी पर बिगड़कर बोलते हैं ।
दुम हिलाना = कुत्ते का दुम हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करना ।
२ पूँछ की तरह पीछे लगी या बँधी हुई वस्तु । जैसे, सितारे की
दुम, टोपी की दुम ।

यौ०—दुमदार ।

३ पीछे पीछे लगा रहनेवाला आदमी । पिछलग्गू । ४. किसी
काम का सबसे अंतिम योद्धा सा अंग । ५. नाम के अंत में
जुड़नेवाली उपाधि । डिग्री । (व्यंग्य) ।

दुमची—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ छोटे के साज में वह तसमा जो पूँछ
के नीचे दबा रहता है । २ दोनों नितंबों के बीच की हड्डी ।
पुट्टों के बीच की हड्डी । उ०—बरेजे हूनी हठ चढ़े ना सकुचे
न सकाय । हटति कटि दुमची मचक लचक लचकि बचि
जाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुमदार—वि० [फा०] १ पूँछवाला । २. जिसके पीछे पूँछ की सी
कोई वस्तु लगी या बँधी हो । जैसे, दुमदार सितारा,
दुमदार टोपी ।

दुमन—वि० [सं० दुर्मनस्, दुर्मना] घनमना । अप्रसन्न । खिन्न ।

दुमना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मनस्] घनमना । उ०—दुमना यया
बिखायती, मरती सामत सीह ।—रा० रू०, पृ० २६३ ।

दुमात, दुमाता—वि० [सं० दुर्मातृ] १. बुरी माता । २. सीनेकी
माँ । उ०—मात को न मोह, न मोह दुमात को, जोच व
सात के गात गह को । राज को सोभ न प्रान को सोभ
न वधु न प्राधि रहे को ।—ता रनभूमि में राम कह्यो मोहि
सोच विभीषन भूप कहे को ।—श्रीपति (शब्द०) ।

दुमाङ्गा, दुमाङ्गा—सङ्घा पुं [हि० दो + माङ्गा] पाश । फटा ।
उ०—ऐसा मतग फकीर किया संतन का दुमाल, मेरा छुटा बहु
जंजाल ।—दक्खिनी०, पु० ६३ ।

दुमाही—वि० [हि० दु + माह] दो महीने पर होनेवाला । दो महीने का ।
दुमुहा—वि० [हि० दो + मुहा] दे० 'दोमुहा' । उ०—सूर्य का 'सत-
मुहा' बोझा भावे तब तो यह दुमुहा द्वार खुले पर भावे कैसे ।—
श्यामा०, पु० १०६ ।

दुयणा—सङ्घा पुं [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जण, दुयण भयवा फ्रा०
दुश्मन, तुलनीय सं० दुर्मनस्] दुश्मन । शत्रु । उ०—दुयणा
हाथ दिखाय ।—रा० रू० पु० ३६ ।

दुरंग—सङ्घा पुं [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—सहस्र उभै खुलिया
खग साये । मुझिया मेछ दुरंग वै साये ।—रा० रू०, पु० २२२ ।

दुरंग—वि० [हि० दो + रंग] दुरंगा । उ०—सुरंग दुरंग सोहत पाग
भास कै, कुरंग कैसे सोचन प्रति सोने ।—नद०, प्र० पु० ३४२ ।

दुरंग—वि० [हि० दो + रंग] दे० 'दुरंगा' ।

दुरंग—सङ्घा पुं [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—दुर्दमि गरज गान
न देखे, दुरंग भडग भाषकर देखे ।—रघु० रू०, पु० ११२ ।

दुरंगा—वि० [हि० दो + रंग] [वि० स्त्री० दुरगी] १ दो रंगों का ।
जिसमें दो रंग हों । जैसे, दुरंगा कपड़ा । २ दो तरह का ।
दो प्रकार का । ३. दो तरह की चाल चलनेवाला । दो पक्ष
प्रबलबन करनेवाला ।

दुरंगी—वि० [हि० स्त्री०] दे० 'दुरंगा' । जैसे, दुरंगी चाल । दुरंगी छोट ।
दुरंगी—सङ्घा स्त्री० द्विविधा । कुछ इस पक्ष का कुछ उस पक्ष का
प्रबलबन । जैसे,—दुरंगी छोड़ दे एक रंग हो जा ।

दुरंत—वि० [सं० दुरन्त] १ जिसका भ्रत या पार पाना कठिन हो ।
अपार । बड़ा भारी । उ०—काल कोट सत सरिस भति दुस्तर
दुर्ग दुरत ।—तुलसी (शब्द०) । २ दुर्गम । दुस्तर । कठिन ।
जिसे करना या पाना सहज न हो । उ०—बहु जो हृती
प्रतिमा समीप की सुख सपत्ति दुरत आई री ।—सूर (शब्द०)
३. घोर । प्रचंड । भीषण । ४. जिसका भ्रत या परिणाम बुरा
हो । अशुभ । बुरा । कुत्सित । उ०—पुत्र हौं विषवा करी तुम
कर्म कीन दुरत ।—केशव (शब्द०) । ५. दुष्ट । खल ।

दुरंतक—सङ्घा पुं [सं० दुरन्तक] शिव ।

दुरंधा—वि० [सं० द्विरन्ध्र] दो छिद्रवाला । द्वार द्वार छेदा हुआ ।
उ०—अधे कवचे दुरंधे करे अंग । सोंधे सुगधेनु कौं पाइ के
जग ।—सूदन (शब्द०) ।

दुर—अव्य० या उप० [सं०] इसका प्रयोग इन अर्थों में होता है ।
(१) दूषण (बुरा अर्थ) जैसे, बुरात्मा, दुर्विन, (२) निषेध,
जैसे, दुर्बल । (३) दुःख या कष्ट, जैसे, दुर्गम ।

दुर—अव्य० [हि० दूर] एक शब्द जिसका प्रयोग तिरस्कारपूर्वक
हटाने के लिये होता है और जिसका अर्थ है 'दूर हो' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कृत्तों के लिये होता है । कभी कभी
यों ही प्यार से भी लोग बच्चों या प्रियजनों आदि को 'दुर'
कह देते हैं, जैसे,—दुर ! पगली, क्या बकती है ?

मुहा०—दुर दुर करना = तिरस्कारपूर्वक हटाना । कृत्तों की
तरह भगाना । दुर दुर फिट फिट = तिरस्कार ।

दुर^२—सङ्घा पुं [फ्रा०] १ मोती । मुक्ता । २ मोती का वह लटकन
जो नाक में पहना जाता है । लोलक । ३ छोटी नाभी ।
उ०—काल्ह कुंवर की कनछेदन है हाथ सोहारी मेसी गुर की ।
... कचन के द्वे दुर मंगाय लिए कहीं कहीं छेदनि आतुर
की ।—सूर०, १०।१८० ।

दुरकना—क्रि० प्र० [हि० दुरना] दे० 'दुरना' । उ०—वदन फेरि
हंसि हेरि हत करि ललचौहें नैन । उर उरकी दुरकी लुरक लुर
मुरकी कर सेन ।—स० सप्तक, पु० ३६६ ।

दुरकरम—सङ्घा पुं [सं० दुर, + हि० करम] दे० 'दुष्कर्म' ।
उ०—माई । सुरा घरम सरसावो । मेछ घरम दुरकरम
मिटावो ।—रा० रू०, पु० ३६४ ।

दुरकुच्छी—सङ्घा स्त्री० [देश०] १. अटपटापन । २. ऊब । विरक्ति ।
क्रि० प्र०—लगना ।

दुरक्ष—वि० [सं०] १ दुर्बल दृष्टिवाला । २ जिसकी निगाह
भ्रष्ट हो । बुरी निगाहवाला ।

दुरक्ष—सङ्घा १ जोखी पासा । २ वेईमानी का जुमा [को०] ।

दुरखा—सङ्घा पुं [देश०] [स्त्री० दुरखी] एक प्रकार का फतिगा
जो नील, तमाखू, सरसों, गेहूँ, इत्यादि की फसल को नुकसान
पहुँचाता है ।

दुरगद—सङ्घा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दे० 'दुर्गन्ध' । उ०—घरे दुरगद का
माँडा । निरख कोई सत ने छाँटा ।—तुरसी० श०, पु० ३१ ।

दुरग—सङ्घा पुं [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—ऐसो जँचो दुरग
महाबली के जामें नखतावली सों बहस दीपावलि करत है ।
—भूषण प्र०, पु० ३६ ।

दुरगत—सङ्घा स्त्री० [सं० दुर्गति] दे० 'दुर्गति' । उ०—सात रहने
से तो और भी हमारी दुरगत होती है । हमें सात रहना
मत सिखाओ ।—कागा०, पु० १६१ ।

दुरगति—सङ्घा स्त्री० [सं० दुर्गति] दे० 'दुर्गति' उ०—सब कोई
नाम गहो रे भाई । छोड़ो दुरगति भी चतुराई ।—कबीर
सा०, पु० ८१४ ।

दुरचुम—सङ्घा पुं [देश०] दरी के ताने के दो दो सूतों को इसलिये
एक में बाँधना जिसमें वे उलझ न जाय ।

दुरजन—सङ्घा पुं [सं० दुर्जन] दे० 'दुर्जन' । उ०—दग उरभत
हटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति । परति गौठ दुरजन हिए
दर्ई नई यह राति ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुरजोधन—सङ्घा पुं [सं० दुर्योधन] दे० 'दुर्योधन' ।

दुरतिक्रम—वि० [सं०] १ जिसका अतिक्रमण न हो सके । जिसके
बाहर या विरुद्ध कोई न हो सके । प्रबल । उ०—अंडकटाह
अमित लयकारी । काल सदा दुरतिक्रम भारी ।—तुलसी
(शब्द०) । २ पाररहित । जिसका पार पाना कठिन हो ।
अपार ।

दुरत्यय—वि० [सं०] १. जिसका पार पाना कठिन हो। अपार। २. जिसका प्रतिक्रमण न हो सके। दुस्तर।

दुरथल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुःस्थल] बुरा स्थान। सराब जगह।

दुरद^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विरद, प्रा० दुरद] दे० 'द्विरद'। उ०—दुरद दुरेफन के दरते ढरत स्वच्छ सुमन गुलाब दल छबि छुत छुटि छुटि।—पञ्चनेस०, पृ० १०।

दुरदाम^७—वि० [सं० दुर्दम] कठिन। कष्टसाध्य। उ०—हरि राधा राधा रटत जपत मन्त्र दुरदाम। बिरह विराग महायोगी ज्यों बीतत हैं सब याम।—सूर (शब्द०)।

दुरदाल^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विरद] हाथी।

दुरदुराना—क्रि० सं० [हिं० दुरदुर] तिरस्कारपूर्वक दूर करना। अपमान के साथ भगाना या हटाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषतः कुत्तों के सिये होता है। संयो० क्रि०—देना।

दुरधिगम—वि० [सं०] १. जो पहुँच के बाहर हो। दुष्प्राप्य। २. जो समझ के बाहर हो। दुर्बोध।

दुरधिगम्य—वि० [सं०] दे० 'दुरधिगम'।

दुरधिष्ठित—वि० [सं०] जो अवस्थित न हो। अव्यवस्थित। बेतरतीब [को०]।

दुरधीत^१—वि० [सं०] उचित ढंग से न पढ़नेवाला। प्रशुद्ध अध्ययन करनेवाला [को०]।

दुरधीत^२—सञ्ज्ञा पुं० वेद का प्रशुद्ध ढंग से किया गया अध्ययन [को०]।

दुरध्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुपय। क्रुमागं। बुरा रास्ता।

दुरनय^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्नय] असदाचार। अनैति। उ०—सास ननद ये कूर हैं मेरो दुरनय जान। करिहैं मोर अनयं जे प्रतिभा सका मान।—सं० सप्तक, पृ० ३७२।

दुरना^७—क्रि० प्र० [हिं० दूर] १. भाँखों के भागे से दूर होना। छोट में होना। झाड़ में जाना। २. न दिखलाई पड़ना। न प्रकट होना। छिपना। उ०—बैर प्रीति नहि दुरत दुराए।—कुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

दुरन्वय^१—वि० [सं०] १. दुर्ज्ञेय। जिसे समझना कठिन हो। २. जिसका अनुगमन कठिन हो। ३. जो ठीक न हो। ४. दुष्प्राप्य [को०]।

दुरन्वय^२—सञ्ज्ञा पुं० गलत नतीजा। प्रशुद्ध निष्कर्ष [को०]।

दुरपदो^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्लोपदी] दे० 'श्लोपदी'।

दुरपवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपवाद। निन्दा। अपयश।

दुरबचा—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दुर+हिं० वच्चा] एक मोती। छोटी वाली जिसमें एक मोती हो।

दुरबरन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्बरेण] रजत। चाँदी। रूपा। उ०—रक्म रजत दुरबरन पुनि जातरूप सङ्गैर।—मनेकायं०, पृ० ८६।

दुरबल—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुर्बल'।

दुरबास^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दुर्गंध। बुरी गंध।

दुरबास^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दे० 'दुर्वास'। उ०—अबि भए अपर दुरबास नाम। सोइ सुनो सबण तिहि बंस नाम।—हं० रासो, पृ० ६।

दुरबासा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दे० 'दुर्वास'।

दुरविंदा^१—सञ्ज्ञा पुं० [?] दे० 'दूरबीन'। उ०—नैन तो दुरविंद करि ले बिन्हहु देवता प्रेत।—सं० दरिया, पृ० ११०।

दुरबीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दूरबीन'।

दुरवेश^७—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दरवेश] दे० 'दरवेश'।

दुरभिग्रह^१—वि० [सं०] कठिनता से पकड़ में आनेवाला।

दुरभिग्रह^२—सञ्ज्ञा पुं० अपामार्ग। बिचड़ी।

दुरभिग्रहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँव। कपिकण्डू। २. घमासा।

दुरभिग्र^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्भिग्र] भकास। कहत। दुर्भिग्र। उ०—तल भकास चले सुर दोई। धन ना उपबै दुरभिग्र होई।—सं० दरिया०, पृ० २७।

दुरभिसधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुरभिसन्धि] बुरा पदपत्र। बुरे भविष्य-प्राय से गुट बाँधकर की हुई समाह। मिल जुलकर की हुई कुमन्त्रणा।

दुरभेवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्भाव या दुर्भेद] बुरा भाव। मनमोटाव। मनोमालिन्य। उ०—योग दिवस करि ध्यान तहैं रूप चरणा-भूत सेव। दुर्वास लिय जानि सब मान्यो मन दुरभेव।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना।

दुरभे^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्भय] अपभय। उ०—जन को दीनता जब भावे। रहै प्रवीन दीनता भावे दुरभे दूर बहावे।—कबीर शं०, भा० १, पृ० १००।

दुरमत^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० हिं०] दे० 'दुर्मति'। उ०—पाँचो पार पचीसो भाई सगरि गोहार बोलायो। तेगा तरकस कस के बाँधो, दुरमत दूर बहायो।—कबीर शं०, भा० २, पृ० ७।

दुरमति^७—वि० [सं० दुर्मति] खल। दुष्ट। दुर्वृत्ति। दुर्मति। उ०—दुरमति दम गहे कर में डफ हबड हबड दे तारी।—चरम०, पृ० ६१।

दुरमिसा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुरमुख'।

दुरमुख—वि० [सं० दुर्मुख] घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। उ०—दुरमुख दुस्सासन विकर्ण निज व्यूहन बाँधहु।—भारतेन्दु शं०, भा० १, पृ० १०६।

दुरमुट—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुरमुख'।

दुरमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर् (प्रत्यय) + हिं० मुख (=कूटना)] गदा के भाकार का डंडा जिसके नीचे परपर या सोहे का भारी टुकड़ा लगा रहता है और जिससे ककड़ या मिट्टी पीटकर वैठाई जाती है, अथवा मिट्टी तोड़कर महीन बनाई जाती है।

दुररीत^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुर् हिं० दूर+रोति] कुबान। भन्याय। उ०—घटे क्रिया बाँधणी, मिटे भ्रमर परसादी। ईत प्रजा ऊपजे, निरख दुररीत निसादी।—रा० शं०, पृ० २०।

दुरज्ज—वि० [सं० दुर्ज] दे० 'दुर्ज'।

दुरवग्रह—वि० [सं०] जिसे वश में करना या रोकना कठिन हो। जो कठिनाई से काटू में आ सके [को०]।

दुरवस्थ—वि० [सं०] जो अच्छी दशा में न हो।

दुरवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी दशा। खराब हालत। २ हीन दशा। दुःख, कष्ट या दरिद्रता की दशा।

दुरवाप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुरवापा] जो कठिनाता से प्राप्त हो सके। दुष्प्राप्य।

दुरवेस^१—संज्ञा पुं० [क्रा० दुरवेस] दुरवेस। संत। फकीर। उ०—हमहीं हैं दुरवेसा और ना दूसर कोई।—पलटू, भा० १, पृ० १८।

दुरवेसवा—संज्ञा पुं० [हिं० दुरवेस+वा (प्रत्य०)] १ 'दुरवेस'। उ०—ना हुआ प्रह्ला न बिस्नु महेसवा। ना जोगी जगम दुरवेसवा।—कवीर रा०, भा० १, पृ० ४७।

दुरस^१—संज्ञा पुं० [हिं० दो+घोरस] सहोदर भाई।

दुरस^२—वि० [हिं० दो+रस] १ बोरसा। दुहरे रसवाला। उ०—मासिक मल्लूक मालूम जिसको दुरस दिल हरसाल है।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० २६२। २ दो प्रकार की मिट्टी-वाला। बालू मिली मिट्टीवाला।

दुरसा^३—वि० [क्रा० दुरस्त] ठीक। उचित। यथास्थान। व्यवस्थित। उ०—गुण गजबंध तणा कब गावै दुरस परायण भी दरसावै।—रा० रू०, पृ० १६।

दुरसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रसिद्ध कवि जो राजस्थान के थे।

दुरसा^४—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुराव'।

दुराक—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तेच्छ जाति का नाम। २. एक देश का नाम।

दुराकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्दी आकृतिवाला। बदसूरत [को०]।

दुराक्रंद—वि० [सं० दुराकद] जोरों से रोता हुआ [को०]।

दुराक्रम—वि० [सं०] दुर्जय। जिसे जीता न जा सके [को०]।

दुराक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल से किया गया आक्रमण। २. दुर्गम स्थान [को०]।

दुराक्रांत—वि० [सं० दुराक्रान्त] अपराजेय। अविजित। उ०—अमृतलस मे रहा जो दुराक्रांत, कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार बार, असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार।—घनामिका, पृ० १५०।

दुरागम—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित ढंग से प्राप्ति [को०]।

दुरागमन—संज्ञा पुं० [सं० द्विरागमन] दे० 'द्विरागमन'।

दुरागौन—संज्ञा पुं० [सं० द्विरागमन] वर्ष का दूसरी बार अपनी समुरास जाना।

क्रि० प्र०—कराना।

मुहा०—दुरागौन देना = लटकी को दूसरी बार समुरास भेजना।

दुरागौन माना = बहू को दूसरी बार उसके पिता के घर से जाना।

दुराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बात पर बुरे ढंग से मड़ना।

हठ। जिद। २ अपने मत के सिद्ध न होने पर भी उसपर स्थिर रहने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

दुराग्रही—वि० [सं० दुराग्रहिन्] १ बिना उचित अनुचित के विचार के अपनी बात पर अटनेवाला। हठी। जिद्दी। २ अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उसपर स्थिर रहनेवाला।

दुराचरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी चाल चलन। खोटा व्यवहार।

दुराचार^१—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आचरण। बुरी चाल चलन। खोटी चाल। निहित कर्म।

दुराचार^२—वि० बुरे या निष्ठ आचरणवाला [को०]।

दुराचारी—वि० [सं० दुराचारिन्] [वि० स्त्री० दुराचारिणी] दुष्ट आचरण करनेवाला। बुरी चाल चलन का। बुरे काम करनेवाला।

दुराज^१—संज्ञा पुं० [सं० दुर+राज्य] बुरा राज्य। बुरा शासन। उ०—दिन दिन दूनो देखि दरिद, दुकाल, दुःख, दुरित, दुराज, सुख सुकृत सकोच है।—तुलसी (शब्द०)।

दुराज^२—संज्ञा पुं० [हिं० दो+राज्य] १ एक ही स्थान पर दो राजाओं का राज्य या शासन। उ०—(क) जोग बिरह के बीच परम दुस्त मरियत है यह दुसह दुराज।—सूर (शब्द०) (ख) दुसह दुराज प्रजानि कों क्यों न करै मति दद। अधिक धंधेरी जग करत मिलि मावस रवि चद।—बिहारी (शब्द०)। २ वह स्थान जिसपर दो राजाओं का राज्य हो। दो राजाओं की अमलदारी। उ०—साज बिलोकन देति नही रतिराज बिलोकन ही की दई मति। लाल निहाए सोह कहौ वह बाल भई है दुराज की रैयति।—तोष (शब्द०)। २ बुरा शासन। दोषपूर्ण शासन।

दुराजी^३—संज्ञा पुं० [सं० दुराज्य] दो राजाओं का। जिसमें दो राजा हों। उ०—नगर चैन सब जानिये जब एकै राजा होय। याहि दुराजी राज में सुखी न देखा कोय।—कवीर (शब्द०)।

दुरात्मा—वि० [सं० दुरात्मन्] दुष्टात्मा। नीशाचर। खोटा।

दुरादुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना (= छिपना)] छिपाव। गोपन।

मुहा०—दुरादुरी करके = छिपे छिपे। गुप्त रूप से। उ०—सिय आता के समय भीम तहँ आयत। दुरादुरी करि नेग, सु नात जनायत।—तुलसी (शब्द०)।

दुराधन—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधर—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधरप—वि० [सं० दुराधरप] दे० 'दुराधरप'। उ०—रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरप दुर्गम भगवाना।—मानस, १।८६।

दुराधर्ष^१—वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो। जो बड़ी कठिनाई से जीता जा सके। जो वश में न आ सके। प्रचंड। प्रबल। उ०—(क) धूमकेतु शटकोटि सम दुराधर्ष भगवत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दवन दुवन दल दपं दिल दुराधर्ष दिगदति। दसरत के सामंत अस दक्षदिग कीर्ति करति।—पुरुषोत्तम (शब्द०)।

दुराधर्ष^२—संज्ञा पुं० १. पीली सरसों। २. विष्णु।

दुराधर्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंडता। प्रबलता।

दुराधर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटुंबिनी का पोधा।

दुराधार—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

दुरानभ—वि० [सं०] जिसे कठिनाई से झुकाया जा सके [को०]।

दुराना—क्रि० प्र० [हि० दूर] १. दूर होना। हटना। टलना। भागना। उ०—यद्यपि सूर प्रताप श्याम की दूरि दुरात।—सूर (शब्द०)। २. छिपाना। झाड़ में होना। अलक्षित होना। उ०—श्री धृषमानु नदिनी ललिता दोऊ वा मग जात। तुमहूँ जाय माधुरी कुंज न पहिलेहि क्यों न दुरात।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

दुराना—क्रि० सं० १. दूर करना। हटाना। उ०—रे भैया, केवट। ले उत्तराई। रघुपति महाराज इत ठाढ़े तैं कहैं नाव दुराई।—सूर (शब्द०)। २. छोड़ना। त्यागना। न रखना। उ०—भजहु कृपानिधि कपट दुराई।—सूर० (शब्द०)। ३. छिपाना। गुप्त रखना। प्रकट न करना। उ०—(क) तुम तो तीन लोक के ठाकुर तुम तैं कहा दुराई।—सूर (शब्द०)। (ख) कैव प्रीति नहि दुराई दुराई।—मानस, २। १३।

दुराप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुरापा] कठिनता से मिसनेवाला। दुष्प्राप्य। दुर्लभ।

दुरावाध—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

दुराराध्य^१—वि० [सं०] कठिनाई से झाराधन करने योग्य। जिसकी पूजन या सतुष्ट करना कठिन हो। उ०—दुराराध्य पै ग्रहहि महेसु। मासुतोष पुनि किए कलेसु।—मानस, १। ७०।

दुराराध्य^२—संज्ञा पुं० विष्णु।

दुरारुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेल। २. नारियल। ३. तालवृक्ष। खजूर (को०)।

दुरारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का पेड़।

दुरारोप—वि० [सं०] जिसको चढ़ाना कठिन हो (धनुष)।

दुरारोह^१—वि० [सं०] जिसपर चढ़ना कठिन हो।

दुरारोह^२—संज्ञा पुं० ताड़ का पेड़।

दुरारोहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेमर का पेड़। खजूर का पेड़।

दुरालंभ—वि० [सं० दुरालम्भ] [वि० स्त्री० दुरालम्भा] दे० 'दुरालम्भ'।

दुरालंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरालम्भा] दे० 'दुरालम्भ' [को०]।

दुरालम्भ—वि० [सं०] जिसका मिलना कठिन हो। दुष्प्राप्य।

दुरालम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा। धमासा। हिंसा। २. कपास।

दुरालाप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा बचन। बुरी बातचीत। २. गाली। अपशब्द।

दुरालाप^२—वि० दुर्वचन कहनेवाला। कुटुभापी।

दुरालोक^१—संज्ञा पुं० [सं०] तेज चमक। चकाचौंध करनेवाला आलोक या प्रकाश [को०]।

दुरालोक^२—वि० १. जिसे देखना कठिन हो। २. दुर्दशा [को०]।

दुराव—संज्ञा पुं० [हि० दुराना] किसी बात को दूसरे से छिपाने का भाव। अविश्वास या भय के कारण किसी से बात गुप्त रखने का भाव। उ०—सखी कीन्ह चह तहैंहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाउ प्रभाऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. कपट। छल। उ०—भरत सपथ तोहि सत्य कह परिहरि कपट दुराउ। हरष समय बिसमय करसि कारन मोहि सुनाउ।—तुलसी (शब्द०)।

दुरावना—क्रि० सं० [सं० दूर] छिपाना। दुराना। उ०—(क) सुनि सुनि बचन धातुरी ग्यालिनी हंसि हंसि बदन दुरावहि।—तुलसी-प्र०, पृ० ४३२। (ख) ताही सकोष मनो धृगलोचनि लोचन बोल दुरावन लागी।—मति० प्र०, पृ० ३८३।

दुरावार—वि० [सं०] १. जिसे ठकाना न जा सके। २. जिसे रोका या रखा न जा सके [को०]।

दुराश—वि० [सं०] जिसे दुराशा हो। जिसे अच्छी उम्मीद न हो।

दुराशय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्ट भाषण। बुरी नीयत। २. दुष्ट स्थान। बुरी जगह [को०]। ३. खोटा या बुरा व्यक्ति [को०]।

दुराशय^२—वि० जिसका भाषण बुरा हो। बुरी नीयतवाला। खोटा।

दुराशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऐसी भाषा जो पूरी न होनेवासी हो। व्यर्थ की भाषा। झूठी उम्मीद। उ०—दिन दिन अधिक दुराशा लागी सकल लोक भरमायो।—सूर (शब्द०)। २. अनुचित चाहना। बुरी आकांक्षा।

दुरास—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरासा] दुराशा। निष्फल कामना। न मिलनेवाली वस्तु के मिलने की झूठी या मिथ्या भाषा। उ०—बीरघो दुरास में दास भयो पै कहैं बिसराम को धाम न पायो।—सुंदर प्र० (सू०), भा० १, पृ० ११४।

दुरासद—वि० [सं०] १. दुष्प्राप्य। २. दुःसाध्य। कठिन। उ०—तुम ही महा दुरासद काल। धारे दब प्रचंड कराल।—नद० प्र०, पृ० ३१२। ३. अक्षीय। असमान [को०]। ४. जिसे जीतना या वश में करना कठिन हो [को०]।

दुरासा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरासा] दे० 'दुरासा'। उ०—सहित दोष बुझ दास दुरासा। दलद नाम जिमि रवि निशि नासा।—तुलसी (शब्द०)।

दुराह—वि० [सं० दु + फा राह] गलत राह पर चलनेवाला। उ०—हिंदु तुरक दुराह सबै इकसार चलाकैं।—ह० रासो, पृ० ७२।

दुराही^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दुराही'। उ०—छुदा कुतुबशाह हूँ शहशाह मर कर सो सारे जगत में दुराही फिराया।—दक्खिनी, पृ० ७३।

दुरित^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप। पातक। २. उपपातक। छोटा पाप।

विशेष—उपना की स्मृति में पातकों को दुरिष्ट और उपपातकों को दुरित कहा गया है।

दुरित^२—वि० पापी। पातकी। प्रपी। उ०—प्रबल दनुज दल दलित पल पाप मे जीवन दुरित दसावन गहिबो।—तुलसी (शब्द०)।

दुरितदमनी^१—वि० स्त्री० [सं०] पाप का नाश करनेवाली।

दुरितदमनी—सहा स्त्री० शमी वृक्ष।

दुरियाना^१—क्रि० सं० [सं० दूर] दूर करना। हटाना। २ दूर-दुराना। तिरस्कार के साथ भगाना। उ०—जम की सही न जाय दुर्बासा की क्या गत कीन्हा। भुवन चतुर्दश फिरे सभे दुरियाय जो दीन्हा।—पद्म०, भा० १, पृ० १५।

दुरिष्ट^१—सहा पुं० [सं०] १ पाप। पातक।

विशेष—उपना की स्मृति में पातको को दुरिष्ट और उपपातकों को दुरित कहा गया है।

२-वह यज्ञ जो मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचारों के लिये किया जाय।

विशेष—स्मृति पुराण आदि मे ऐसा यज्ञ करना महापाप लिखा है। बिष्णुपुराण में लिखा है कि देवता, ब्राह्मण और पितरों से द्वेष करनेवाला, दुरिष्ट यज्ञ करनेवाला, कृमिमक्ष और कृमीश नरक में जाते हैं।

दुरिष्टि^१—सहा स्त्री० [सं०] दुरिष्ट यज्ञ। अभिचारार्थ यज्ञ।

दुरीषणा—सहा स्त्री० [सं०] १ अहित कामना। २ शाप। बददुष्पा।

दुरुक्त^१—सहा पुं० [सं०] अनुचित कथन। बुरी उक्ति [को०]।

दुरुक्ति^१—सहा स्त्री० [सं०] अनुचित उक्ति। बुरी बात। दुर्वचन [को०]।

दुरुक्ति^२—सहा स्त्री० [सं० द्विरुक्ति] दे० 'द्विरुक्ति'।

दुरुक्ता—वि० [क्रा० दुरुक्ता] १ जिसके दोनों ओर मुँह हो। २ जिसके दोनों ओर कोई चिन्ह या विशेष वस्तु हो। जैसे, दुरुक्ता कागज। ३. जिसके दोनों ओर दो रंग हों। जैसे, दुरुक्ता किनारा।

दुरुक्चाय—वि० [सं०] (वह शब्द) जिसका उच्चारण विषष्ट हो। कण्ठकट्ट। उ०—दुरुक्चाय शब्दों की भरमार होने पर भयवा सहसा छद बदल जाने पर भी भाषाप्रवाह नष्ट हो जाता है।—मादि०, पृ० २४।

दुरुच्छेद^१—वि० [सं०] जिसका उच्छेद कठिनता से हो। कष्ट से उच्छेद, विनाश या दूरीकरण योग्य [को०]।

दुरुत्तर^१—वि० [सं०] जिसका पार पाना कठिन हो। जिसे पार करना कठिन हो। दुस्तर।

दुरुत्तर^२—सहा पुं० दुष्ट उत्तर। बुरा जवाब।

दुरुद्ध^१—वि० [सं०] १ जिसका निमाना कठिन हो। २ जिसे वहन न किया जा सके [को०]।

दुरुधरा—सहा स्त्री० [यू० दुरोधरिया] वृहज्जातक के अनुसार जन्मकुंडली का एक योग जिसमें धनका और सुनका दोनों योगों का मेल होता है।

विशेष—जन्मकुंडली में यदि सूर्य को छोड़कर कोई दूसरा ग्रह चरमा से बारहवें घर में हो तो धनका योग होता है और चरमा से दूसरे घर में हो तो सुनका योग होता है। जहाँ ये

दोनों योग हों वहाँ दुश्चरा योग होता है। इस योग में जिसका जन्म होता है वह बड़ा भारी वक्ता, धनी, बीर और विख्यात पुरुष होता है।

दुरुपयोग—सहा पुं० [सं०] बुरा उपयोग। अनुपयुक्त, व्यवहार। किसी वस्तु को बुरी तरह काम में लाना। बुरा इस्तेमाल।

दुरुपयोजन—सहा पुं० [सं० दूर + उपयोजन] बुरे ढंग से व्यवहार में लाना। उपयोग करने का गलत या अनुचित ढंग।

दुरुफ—सहा पुं० [?] नीलकण्ठ ताजिक के अनुसार फलित ज्योतिष का एक योग।

दुरुम—सहा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ जिसका दाना पतला और लंबा होता है।

दुरुस्त^१—वि० [क्रा०] १ जो अच्छी दशा में हो। जो टूटा फूटा या बिगड़ा न हो। ठीक। जैसे, घड़ी दुरुस्त करना। २ जिसमें दोष या त्रुटि न हो। जिसमें ऐब न हो। ठीक। उ०—दूसरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ३७७।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुद्गा^१—किसी को दुरुस्त करना = (१) किसी की चाल सुधारना। (२) किसी को दृढ़ देना।

३ उचित। मुनासिब। ४ यथार्थ। वास्तविक। जैसे,—प्रापका कहना दुरुस्त है।

दुरुस्ती—सहा स्त्री० [क्रा०] सुधार। सशोधन।

दुरुह^१—वि० [सं०] जो विचार या ऊहा में जल्दी न आ सके। जिसका जानना कठिन हो। समझ में न आने योग्य। गूढ़। कठिन।

दुरेत^१—वि० [देश०] ढका हुआ। भरा हुआ। पूर्ण। उ०—दुरित दुरेत भवेत प्रेत मति हतित पतित उद्धार।—छोब्र०, पृ० ४।

दुरेफ^१—सहा पुं० [सं० द्वि, प्रा० दु + सं० रेफ] दे० 'द्विरेफ'। उ०—मुरल मुख छबि पत्र शाखा दग दुरेफ चढ़यो।—सूर (शब्द०)।

दुरेषण^१—सहा स्त्री० [सं०] दे० 'दुरीषणा' [को०]।

दुरैफ^१—सहा पुं० [सं० द्विरेफ] दे० 'द्विरेफ'। उ०—जया पकज वै दुरैफ लुभाए। तथा साह बच्यो सनेहं सुभाए।—ह० रासो, पृ० ३४।

दुरोद्धर^१—सहा पुं० [सं०] १ जुझारी। २ जूषा। ३ घृत क्रीड़ा। पाण क्रीड़ा। पासा खेलना।

दुरौधा^१—सहा पुं० [मं० द्वारोद्ध] दरवाजे के ऊपर की लकड़ी। भरेठा।

दुर्कुल^१—सहा पुं० [सं० दुष्कुल] दे० 'दुष्कुल'। उ०—प्रमी विपद् से मलह से लेह सोन परि रत्न। नीचहूँ ते उत्तम गुनन दुर्कुल से तिय रत्न।—चारणव्य नीति (शब्द०)।

दुर्गंध^१—सहा स्त्री० [सं० दुग्न्ध] बुरी गंध। बुरी महक। कुवास। सुगंध का उलटा।

दुर्गंध^२—सहा पुं० १ काला नमक। २ व्याज। ३. आम का पेड़।

दुर्गध^३—वि० अशुचि गधवाला । कुवास युक्त । बुरी गध का [को०] ।

दुर्गधता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्धता] दुर्गध का भाव ।

दुर्गधि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्धि] दुर्गध । बुरी गध ।

दुर्गधि^२—वि० [सं०] अशुचि गध से युक्त [को०] ।

दुर्ग^१—वि० [सं०] १. जिसमें पहुँचना कठिन हो । जहाँ जाना सहज न हो । २. जिसका समझना कठिन हो । दुर्बोध ।

दुर्ग^२—सञ्ज्ञा पुं० १ पत्थर आदि की चौड़ी दीवारों से घिरा हुआ वह स्थान जिसके भीतर राजा, सरदार और सेना के सिपाही आदि रहते हैं । गढ़ । कोट । किला ।

विशेष—ऋग्वेद तक में दुर्ग का उल्लेख है । दस्युओं के ६६ दुर्गों को इंद्र ने ध्वस्त किया था । मनु ने छह प्रकार के दुर्ग लिखे हैं—(१) धनुर्दुर्ग, जिसके चारों ओर निर्जल प्रदेश हो, (२) महीदुर्ग, जिसके चारों ओर ऐड़ी मेड़ी जमीन हो, (३) जलदुर्ग (धनुर्दुर्ग), जिसके चारों ओर जल हो, (४) वृक्षदुर्ग, जिसके चारों ओर घने वृक्ष हों, (५) नरदुर्ग जिसके चारों ओर सेना हो और (६) गिरिदुर्ग, जिसके चारों ओर पहाड़ हो या जो पहाड़ पर हो । महाभारत में युधिष्ठिर ने जब भीम से पूछा है कि राजा को कैसे पुर में रहना चाहिए तब भीष्म जी ने ये ही छह प्रकार के दुर्ग गिनाए हैं और कहा है कि पुर ऐसे ही दुर्गों के बीच में होना चाहिए । मनुस्मृति और महाभारत दोनों में कोष, सेना, अस्त्र, शिल्पी, ब्राह्मण, बाहन, वृण, अलाशय, अन्न इत्यादि का दुर्ग के भीतर रहना आवश्यक कहा गया है । अग्निपुराण, कालिकापुराण आदि में भी दुर्गों के उपर्युक्त छह भेद बतलाए गए हैं ।

२ एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा । ३ विष्णु का नाम (को०) । ४. गुग्गुल (को०) । ५. एक पर्वत (को०) । ६. सँकरा मार्ग (को०) । ७. ऊबड़खाबड़ जमीन । ऊँची नीची भूमि (को०) । ८. यमदंड (को०) । ९. शोक । दुःख (को०) । १०. दुष्कर्म (को०) । ११. सांसारिक बंधन (को०) । १२. नरक (को०) । १३. भयकर विघ्न, व्याधि या भयादि (को०) ।

दुर्गकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्गकर्म] किला बनाने का काम ।

दुर्गकारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्ग बनानेवाला मनुष्य । २. एक वृक्ष का नाम ।

दुर्गकोपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किले में बगावत फैलानेवाला विद्रोही ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इसे कपड़े में लपेटकर जीता जला दिया जाता था ।

दुर्गघ्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

दुर्गच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जैन दर्शन में एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से मलिन पदार्थों से ग्लानि उत्पन्न होती है ।

दुर्गत—वि० [सं०] १. दुर्दशाग्रस्त । जिसकी बुरी गति हो । २. दरिद्र ।

दुर्गतकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैटिल्य के अनुसार वह काम जो अकाल पड़ने पर पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से जोसा जाय ।

दुर्गतरणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम । सावित्री देवी । (महाभारत) ।

दुर्गसेतुकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैटिल्य के अनुसार दूटे हुए मकानों की मरम्मत का काम जो दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से जोसा जाय ।

दुर्गति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी गति । दुर्दशा । बुरा हाल । जिल्लत । जैसे,—(क) मरहटों ने गुलाम कादिर की बड़ी दुर्गति की, उसके नाक कान काटकर उसे पिंजरा में बंद कर दिया ।—(शब्द०) । (ख) पानी भरस जाने से रास्ते में बड़ी दुर्गति हुई । २. वह दुर्दशा जो परलोक में हो । नरक ।

दुर्गति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुः+गति] दुर्गम होने का भाव । दुर्गमता । उ०—दुर्गति दुर्गम ही शु कृटिल गति सरितन ही में ।—केशव (शब्द०) ।

दुर्गदानी^१—वि० पुं० [सं०] दुर्गति देनेवाला । नरक भोग देनेवाला । उ०—चित्रगुप्त दुर्गदानी, सो यहि विधि जाता हो ।—धरम० पु० ५३ ।

दुर्गपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का अधीश्वर । दुर्ग का स्वामी या रक्षक [को०] ।

दुर्गपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का रक्षक । किलेदार ।

दुर्गपुष्पी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम । केशपुष्पा ।

दुर्गम^१—वि० [सं०] १. जहाँ जाना कठिन हो । जहाँ जल्दी पहुँच न सके । मोघट । उ०—दुर्गम दुर्ग पहार सँ भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।—तुलसी (शब्द०) । २. जिसे जानना कठिन हो । जो जल्दी समझ में न आवे । दुर्ज्ञेय । ३. कठिन । विकट । दुस्तर ।

दुर्गम^२—सञ्ज्ञा पुं० १. गढ़ । दुर्ग । किला । २. विष्णु । ३. धन । ४. संकटे का स्थान । कठिन स्थिति । ५. एक असुर का नाम ।

दुर्गमता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गम होने का भाव ।

दुर्गमनीय—वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो । जिसके यहाँ तक जल्दी पहुँच न हो ।

दुर्गम्य—वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो । उ०—दशाद्रव्य ग्रहसन दुर्गम्य बांधकार देखु ।—वर्य०, पु० १७ ।

दुर्गरक्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किलेदार । गढ़पति ।

दुर्गलंघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्गलंघन] (रेतीले दुर्गम स्थानों को पार करनेवाला) ऊँट ।

दुर्गल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।

दुर्गव्यसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग या किले का कमजोर हिस्सा या नुटि [को०] ।

दुर्गसंचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्गसंचर] दुर्गम स्थानों तक पहुँचने का साधन । जैसे, सीढ़ी, पुल, बेंड़ा इत्यादि ।

दुर्गसंचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्गसंचार] दे० 'दुर्गसंचर' ।

दुर्गसंस्कार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन दुर्ग की मरम्मत [को०] ।

दुर्गा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आदि कालि । देवी ।

विशेष—युक्ल यजुर्वेद वाजसनेय संहिता में रुद्र की भगिनी अश्विका का उल्लेख इस प्रकार है—हे रुद्र ! अपनी भगिनी अश्विका के साथ हमारा दिया हुआ भाग ग्रहण करो। इससे जाना जाता है कि रात्रियों के विनाश के लिये जिस प्रकार प्राचीन प्रायंगण रुद्र नामक क्रूर देवता का स्मरण करते थे उसी प्रकार उनकी भगिनी अश्विका का भी करते थे। वैदिक काल में अश्विका रुद्र की भगिनी ही मानी जाती थी। तलवकार (केन) उपनिषद् में यह भाष्यायिका है—एक बार देवताओं ने समझा कि विजय हमारी ही शक्ति से हुई है। इस भ्रम को मिटाने के लिये ब्रह्मा यक्ष के रूप में दिखाई पड़ा, पर देवताओं ने उसे पहचाना नहीं। हाल बाल लेने के लिये पहले अग्नि उसके पास गए। यक्ष ने पूछा 'तुम कौन हो ?' अग्नि ने कहा 'मैं अग्नि हूँ और सब कुछ भस्म कर सकता हूँ।' इसपर उस यक्ष ने एक तिनका रख दिया और कहा 'इसे भस्म करो'। अग्नि ने बहुत जोर मारा मर तिनका ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार वायु देवता भी गए। वे भी उस तिनके को न उड़ा सके। तब जब देवताओं ने इन्द्र से कहा कि इस यक्ष का पता लेना चाहिए कि यह कौन है। जब इन्द्र गए तब वह भतर्पण हो गया। बोझी देर पीछे एक स्त्री प्रकट हो गई जो 'उमा हैमवती' देवी थी। इन्द्र के पूछने पर उमा हैमवती ने बताया कि यक्ष ब्रह्मा था, उसकी विजय से तुम्हें महत्व मिला है। तब इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्मा को जाना। अघ्यात्म पक्षवाले 'उमा हैमवती' से ब्रह्मा विद्या का ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक मंत्र में 'दुर्गा गायत्री' शरणमह प्रपद्ये वाक्य प्राया है और एक स्थान पर गायत्री छन्द का एक मंत्र है जिसे सायण ने 'दुर्गा गायत्री' कहा है। देवी भागवत में देवी की उत्पत्ति के संबंध में कहा इस प्रकार है—महिषासुर से परास्त होकर सब देवता ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा शिव तथा देवताओं के साथ विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा कि महिषासुर के मारने का उपाय यही है कि सब देवता अपनी स्त्रियों से मिलकर अपना घोड़ा घोड़ा तेज निकालें। सबके तेज समूह से एक स्त्री निकलेगी जो उस असुर का वध करेगी। महिषासुर को घर था कि वह किसी पुरुष के हाथ से न मरेगा। विष्णु के आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने मुँह से रक्त वर्ण का, शिव ने रौप्य वर्ण का विष्णु ने नील वर्ण का और इन्द्र ने विपित्र वर्ण का, इसी प्रकार सब देवताओं ने अपना अपना तेज निकाला और एक तेजस्वरूपा देवी प्रकट हुई, जिसने उस असुर का संहार किया।

कोनिकापुराण में लिखा है कि परब्रह्म के अक्ष स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णु ने तो सृष्टि स्थिति के लिये अपनी अपनी शक्ति को ग्रहण किया पर शिव ने शक्ति से संयोग न किया और वे योग में मग्न हो गए। ब्रह्मा आदि देवता इस बात के पीछे नहीं कि शिव भी किसी स्त्री का पाणिग्रहण करें। पर शिव के योग कोई स्त्री मिलती ही नहीं थी। बहुत सोच विचार के पीछे ब्रह्मा

ने दक्ष से कहा—'विष्णुमाया के प्रतिरिक्त और कोई स्त्री नहीं जो शिव को लुभा सके। अतः मैं उसकी स्तुति करता हूँ और तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी कन्या के रूप में तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिव को पत्नी हो।' वही विष्णु की माया दक्ष प्रजापति की कन्या सती हुई जिसने अपने रूप और तप के द्वारा शिव को मोहित और प्रसन्न किया। दक्षयज्ञ के विनाश के समय सती ने जब देहत्याग किया तब शिव ने खिलाप करते करते उनके शव को अपने कंधे पर लाद लिया। फिर ब्रह्मा, विष्णु और शनि ने सती के मृत शरीर में प्रवेश किया और वे उसे खट खट करके गिराने लगे। जहाँ जहाँ सती का अंग गिरा वहाँ वहाँ देवी का स्थान या पीठ हुआ। जब देवताओं ने महामाया की बहुत स्तुति की तब वे शिव के शरीर से निकलीं और शिव का मोह दूर हुआ और वे फिर योगसमाधि में मग्न हुए। इधर हिमालय की भार्या मेनका, सतति की कामना से बहुत दिनों से महामाया का पूजन करती थी। महामाया ने प्रसन्न होकर मेनका की कन्या होकर जन्म लिया और शिव से विवाह किया। मार्कंडेय पुराण में चंडी देवी द्वारा शुभ निशुभ के वध की कथा लिखी है। जिसका पाठ चंडीपाठ या दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध है और सब जगह होता है। काशी खड में लिखा है कि रुद्र के पुत्र दुर्ग नामक महादैत्य ने जब देवताओं को बहुत तप किया तब वे शिव के पास गए। शिव ने असुर को मारने के लिये देवी को भेजा।

पर्याय—प्राद्याशक्ति। उमा। काश्यायनी। गौरी। काली। हैमवती। ईश्वरी। शिवा। भवानी। रुद्राणी। शर्वाणी। कल्याणी। अपरणी। पार्वती। मृडाणी। चडिका। अश्विका। शारदा। चंडी। गिरिजा। मंगला। नारायणी। महामाया। वैष्णवी। हिंडी। कोट्टवी। पण्ठी। माधवी। जयती। भार्गवी। रमा। सती। आमरी। दक्षकन्या। महिषमर्दिनी। हेरबजननी। सावित्री। कृष्णपिगला। शूलधरा। भगवती। ईशानी। सनातनी। महाकाली। शिवानी। चामुंडा। विद्यात्री। मानदा। महामाया। भीमी। कृष्णा। चार्तंगी। वाणी। फाल्गुनी। मातृका। तारा। कालिका। कामेश्वरी। भैरवी। भुवनेश्वरी। त्वरिता। महालक्ष्मी। वागीश्वरी। त्रिपुरा। ज्वालामुखी। बगलामुखी। भस्मपूर्ण। भस्मदा। विशालाक्षी। सुभगा। सगुणा। धवला। घोरा। प्रेमा। वटेश्वरी। कीर्तिदा। तुमुला। कामरूपा। जृम्णी। मोहनी। शाता। वेदमाता। त्रिपुरसुदरी। तापिनी। चित्रा। प्रज्जता इत्यादि, इत्यादि।

२ नीलो। नील का पोषा। ३ अपराजिता। कीर्वाठोटी। ४ श्यामा पक्षी। ५ नी वपं की कन्या। ६ एक रागिनी जो गौरी, माधवी, सारंग, और नीलावती के योग से बनी है।

दुर्गाद, दुर्गाध—वि० [सं०] जिसकी खोज बोन कठिन हो। दुर्गाध। जिसे बहावा न जा सके। जो मर्यादा जाने लायक न हो। दुर्गमार्ग [सं०]।

दुर्गाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गाधिकारिन्] गढ़ का अधिकारी ।
किलेदार ।

दुर्गाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का प्रधान । किलेदार ।

दुर्गानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कार्तिक शुक्ल नवमी । 'हम दिन
जगद्धात्री का पूजन होता है । २ चैत्र शुक्ल नवमी । ३.
आश्विन शुक्ल नवमी ।

दुर्गापाश्रयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसमें किले हों अर्थात्
जो सेना रखने के उपयोगी हो ।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि राज्य करने के लिये यदि एक
घोर अच्छे किलेवाली जमीन हो और दूसरी घोर घनी
आबादीवाली जमीन तो घनी आबादीवाली जमीन को ही
पसंद करना चाहिए, क्योंकि मनुष्यों पर ही राज्य होता है,
न कि जमीन पर । जनशून्य भूमि से राज्य को आसानी
नहीं हो सकती । घनी आबादीवाली भूमि को चाणक्य ने
पुरुषोपाश्रया भूमि लिखा है ।

दुर्गा पूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन नवरात्र में होनेवाला दुर्गा
जी का पूजनोत्सव । बंगाल की ओर यह एक प्रधान पर्व के
रूप में मनाया जाता है ।

दुर्गाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन शुक्ल घोर चैत्र शुक्ल पक्ष
की अष्टमी ।

दुर्गाह—वि० [सं०] जिसका अवगाहन करना कठिन हो ।

दुर्गाह—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि गुल ।

दुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग गुण । दोष । ऐत्र । बुराई ।

दुर्गेश—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गाध्यक्ष । दुर्गरक्षक । किलेदार ।

दुर्गोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गापूजा का उत्सव जो नवरात्र में
होता है, दुर्गापूजा ।

दुर्गह—वि० [सं०] १ जिसे कठिनता से पकड़ सकें, जो जल्दी
से पकड़ में न आवे । २ जो कठिनता से समझ में न आवे ।
दुर्ज्ञेय । ३ जिसे जीतना कठिन हो । दुर्जय (को०) ।

दुर्गह—संज्ञा पुं० १ अपामार्ग । बिचड़ी । २ बुरा ग्रह । कुपह-
(को०) । ३. अनुचित आग्रह । बुरा आग्रह (को०) ।

दुर्गहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग । बिचड़ा (को०) ।

दुर्गहा—वि० [सं०] जो आसानी से पकड़ में न आए (को०) ।

दुर्घट—वि० [सं०] १ जिसका होना कठिन हो । कष्टसाध्य ।
मुश्किल से होने लायक । २. जिसका होना संभव न हो ।
असंभव (को०) ।

दुर्घटना—संज्ञा स्त्री० [पुं०] १ अशुभ घटना । ऐसा व्यापार जिससे
हानि या दुःख पहुँचे । ऐसी बात जिसके होने से बहुत कष्ट,
पीड़ा या शोक हो । बुरा संयोग । वास्तव । जैसे,—नदी
का पुल टूट गया, इस दुर्घटना से बहुत हानि पहुँची । २
विपद् । आफत । आपत्ति ।

दुर्धुसट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो विश्वास करने लायक न हो ।
२. वह जो शीघ्र किसी पर विश्वास न करे (को०) ।

५-१२

दुर्धोष^१—वि० [सं०] जो बुरा स्वर निकाले । जो कटु या कर्कश
ध्वनि करे ।

दुर्धोष^२—संज्ञा पुं० १ भात । २ जोरों की चिल्लाहट । कर्णकटु शब्द
या आवाज (को०) ।

दुर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट जन । खल । खोटा आदमी । सं०—
दुर्जन वचन सुनत दुःख जैगों । बाण लगे दुःख होइ न तैसों ।
—सूर (शब्द०) ।

दुर्जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता । खोटापन ।

दुर्जय^१—वि० [सं०] जिसे जीतना कठिन हो । जो जल्दी जीता न
जा सके । सं०—पूर्व पुण्य के क्षय होने तक पापी भी तो
दुर्जय है ।—साकेत, पृ० ३८० ।

दुर्जय^२—१. विष्णु । २ कर्मपुराण के अनुसार कार्तवीर्य वंश में
उत्पन्न अनंत राजा का एक पुत्र । ३ एक राक्षस का नाम ।

दुर्जयता—वि० [सं०] कठिनता से विजय पाने का भाव । अवि-
जयता । सं०—प्राणवधूटी । घंटर की दुर्जयता तुमने छूटी ।
—विश्व०, पृ० ३८ ।

दुर्जयव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कोटिल्य के अनुसार वह व्यूह जिसमें
सेना चार पंक्तियों में खड़ी की जाय ।

दुर्जर—वि० [सं०] जो कठिनता से पचे । जो पकाने से जल्दी
न पके । जिसका परिपाक करना कठिन हो ।

दुर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्योतिमती लता । मालकौंगनी ।

दुर्जात^१—वि० [सं०] १ जिसका जन्म बुरी रीति से हुआ हो ।
२ जिसका जन्म व्यर्थ हुआ हो । ३. नीच । कमीना । ४.
अभागा । भाग्यहीन ।

दुर्जात^२—संज्ञा पुं० १ व्यसन । २. असमजस । कठिनता । सकट ।

दुर्जाति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी जाति । नीच जाति । २.
अभाग्य । दुर्भाग्य । बुरी स्थिति (को०) ।

दुर्जाति^२—वि० १. बुरे कुन का । २. जिसकी जाति बिगड़ गई हो ।
३ दुःस्वभाव । बुरे स्वभाव का । नीच । बुरा (को०) ।

दुर्जीव^१—वि० [सं०] दूसरे के दिए भोजन पर रहनेवाला । बुरी
जीविका करनेवाला ।

दुर्जीव^२—संज्ञा पुं० बुरा जीवन । निर्दल जीवन ।

दुर्ज्ञेय—वि० [सं०] जिसे जीतना अत्यंत कठिन हो । दुर्जय ।

दुर्ज्ञान—वि० [सं०] दे० 'दुर्ज्ञेय' (को०) ।

दुर्ज्ञेय^१—वि० [सं०] कठिनाई से जानने योग्य । जिसे जानना अत्यंत
कठिन हो । जो जल्दी समझ में न आ सके । दुर्धोष । सं०—
यस लेती धर्म को वह दुर्ज्ञेय दया की भूखी चितवन ।
सुल रहा रम छायापट में युग युग का जर्जर जनजीवन
—आम्पा, पृ० २४ ।

दुर्ज्ञेय^२—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम (को०) ।

दुर्दंड—वि० [सं० दुर्दण्ड] दुष्ट । प्रबल । जिसे कठिनाई से दह
दिया जा सके । सं०—ईर्षी वा दुर्दंड दुराचारियों की हाट
में --- ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४ ।

दुर्दम^१—वि० [सं०] १ जिसका दमन बड़ी कठिनाई से हो सके । जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके । २ प्रबल । प्रबल ।

दुर्दम^२—संज्ञा पुं० रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न धनुदेव के एक पुत्र का नाम ।

दुर्दमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अदम्यता । प्रचढ़ता । उ०—उसकी दुर्दमता में तुम भी, अपने स्वर की गूँज मिलाना । यह दीपक जो मैंने वाला, तुम भी इसमें अपने स्वर का स्नेह जलाना ।—दी० ज०, पृ० १७८ ।

दुर्दमन^१—वि० [सं०] जिसका दमन करना बहुत कठिन हो ।

दुर्दमन^२—संज्ञा पुं० जनमेजय के वध में उत्पन्न शतानीक राजा का पुत्र ।

दुर्दमनीय—वि० [सं०] १. जिसका दमन करना बहुत कठिन हो । जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके । २ प्रचंड । प्रबल । उ०—विश्व यह दूसरा जहाँ भोजन भरा, रूप की प्रतिकरा हुई दुर्दमनीय ।—भारधावा, पृ० ७६ ।

दुर्दम्य^१—वि० [सं०] दे० 'दुर्दम' ।

दुर्दम्य^२—संज्ञा पुं० गाय का बछड़ा ।

दुर्दर^१—वि० [सं० दुर्धर] दे० 'दुर्धर' ।

दुर्दर्श—वि० [सं०] १ जिसे देखना अत्यन्त कठिन हो । जो जल्दी दिखाई न पड़े । २ जो देखने में भयकर हो ।

दुर्दर्शन^१—वि० [सं०] दे० 'दुर्दर्श' ।

दुर्दर्शन^२—संज्ञा पुं० कौरवों का एक सेनापति ।

दुर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी दशा । मद अवस्था । दुर्गति । खराब हालत ।

किं० प्र०—करना । होना ।

दुर्दात^१—वि० [सं० दुर्दान्त] १ दुर्दमनीय । २. प्रचंड । प्रबल ।

दुर्दात^२—संज्ञा पुं० १ गाय का बछड़ा । २ ऋगडा । फलह । ३ शिव ।

दुर्दान—संज्ञा पुं० १ [?] रूपा । चाँदी ।—प्रनेकार्यं (शब्द०) ।

दुर्दिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा दिन । २ ऐसा दिन जिसमें वादल छाए हों, पानी धरसता हो और घर से निकलना कठिन हो । मेघाच्छन्न दिन । ३ दुर्दशा का समय । दुःख और कष्ट का समय । बुरा वक्त । ४ घना अधकार । सूचीमेघ अधकार (को०) । ५ घृष्टि । वर्षा (को०) । ६ किसी वस्तु की बौछार या झड़ी (को०) ।

दुर्दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ददिन' । उ०—इहि भाँति बितावत दुर्दिवस ये सुकृती सुख के भवन ।—अज प्र०, पृ० १०२ ।

दुर्दुरुट, दुर्दुरुद—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिक ।

दुर्दृश—वि० [सं०] जिसे देखना कष्टकर हो । अप्रियदर्शन (को०) ।

दुर्दृष्ट—वि० [सं०] (व्यवहार) जिसका रोग, लोभ आदि के कारण सम्पत्ति निर्गुण न हुआ हो । (मुकुदमा) जिसका घृस, अदा-वत आदि के कारण ठीक फँसना न हुआ हो ।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि ऐसे मुकुदमे को राजा

फिर से देखे और यदि अन्याय हुआ हो तो निर्गुण करनेवाले सम्पत्ति (न्यायाधीश आदि) और मुकुदमा जीतनेवालों को उसका दूना दंड दे जितना हारनेवालों को अन्याय से हुआ हो ।

दुर्द्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्भाग्य । अभाग्य, बुरी किस्मत । २ बुरा संयोग । दिनों का बुरा फेर ।

दुर्द्वर^१—वि० [सं०] १ जिसे कठिनाई से पकड़ सकें । जो जल्दी पकड़ में न आ सके । २ प्रबल । प्रचंड । ३. जो कठिनता से समझ में आवे ।

दुर्द्वर^२—संज्ञा पुं० १ एक नरक का नाम । २ पारा । ३ भिलावा । भत्तातक । ४ महिषासुर का एक सेनापति । ५ शबरासुर के एक मंत्री का नाम । धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ७ रावण का एक सैनिक जिसे उसने अशोकवाटिका उजाड़ने पर हनुमान को पकड़ने के लिये भेजा था । यह राक्षस हनुमान के हाथ से मारा गया । ८ विष्णु ।

दुर्द्वर्प^१—वि० [सं०] १ जिसका दमन करना कठिन हो । जिसे जल्दी वध में न ला सकें । जिसे अधीन न कर सकें । २. जिसे परास्त करना कठिन हो । ३ प्रबल । प्रचंड । उग्र ।

दुर्द्वर्प^२—संज्ञा पुं० १ धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम । २ रावण के दल का एक राक्षस ।

दुर्द्वर्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नागदोना । २ कयारी का पेड़ ।

दुर्द्वी—वि० [सं०] बुरी बुद्धि का । मदबुद्धि ।

दुर्द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो गुरु की बात जल्दी न माने ।

दुर्द्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम ।

दुर्दृम—संज्ञा पुं० [सं०] हरिश्चन्द्र । हरा व्याज ।

दुर्धर—वि० [सं०] दे० 'दुर्धर' । मैं कब कहता हूँ जग मेरी दुर्धर गति के अनुकूल बने ।—इत्यलम्, पृ० १३६ ।

दुर्नय—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्नीति । बुरी चाख । नीतिविरुद्ध भाव-रत्न । २. अन्याय ।

दुर्नाद^१—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शब्द । अप्रिय ध्वनि ।

दुर्नाद^२—वि० कर्कश ध्वनि करनेवाला ।

दुर्नाद^३—संज्ञा पुं० राक्षस । उ०—कौनप प्रसन्न, पुन्य जन निकषासुत दुर्नाद ।—प्रनेकार्यं, पृ० ८४ ।

दुर्नाम—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नामन्] १ बुरा नाम । कुख्याति । बदनामी । २ गाली । बुरा वचन । ३ बवासीर । ४ शुक्ति । सीप । सुतही ।

दुर्नामक—संज्ञा पुं० [सं०] अशं रोग । बवासीर ।

दुर्नामा^१—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नामन्] दे० 'दुर्नाम' ।

दुर्नामा^२—वि० कुख्यात । बदनाम (को०) ।

दुर्नामारि—संज्ञा पुं० [सं०] (अशं रोग को दूर करनेवाला) सूरन ।

दुर्नाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति । सीप । सुतही ।

दुर्निग्रह—वि० [सं०] जिसपर निग्रह न किया जा सके । जिसपर काबू पाना कठिन हो (को०) ।

दुर्निमित्त—संज्ञा पुं० [सं०] होनेवाले परिणाम को सूचित करनेवाला अशक्य । बुरा संयुक्त ।

दुर्निरीक्ष—वि० [सं०] १. जिसे देखते न बने। २. भयकर। ३. कुरूप।
दुर्निरीक्ष्य—वि० [सं०] १. जिसे देखते न बने। २. भयकर। ३. कुरूप।

दुर्निवार—वि० [सं०] दे० 'दुर्निवार्य' [को०]।

दुर्निवार्य—वि० [सं०] १. जिसका निवारण करना कठिन हो। जो जल्द रोक न जा सके। जो जल्दी हटाया न जा सके। जिसे जल्दी दूर न कर सकें। ३. जिसका होना प्रायः निश्चित हो। जो जल्दी टल न सके।

दुर्नीति^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अनुचित कर्म। बुरा कर्म। २. प्रमाय। दुर्भाग्य [को०]।

दुर्नीति^२—वि० १. नीति को न माननेवाला। २. बुरी नीति का। प्रतैतिक [को०]।

दुर्नीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुनीति। कुचाल। अन्याय। अयुक्त प्राचरण।

दुर्न्यस्त—वि० [सं०] ठीक ढंग से न रखा हुआ। अनुपयुक्त क्रम से रखा हुआ [को०]।

दुर्बल—वि० [सं०] १. जिसे अच्छा बल न हो। कमजोर। अशक्त। २. कृश। दुबला पतला। ३. शिथिल। थका हुआ (को०)। ४. हलका। छोटा। साधारण (को०)।

दुर्बलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बल की कमी। कमजोरी। २. कृशता। दुबलापन। शैथिल्य। थकावट। शिथिलता।

दुर्बला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जलसिरीस का पेड़।

दुर्बाध—वि० [सं०] प्रतिवार। दुर्निवार्य [को०]।

दुर्बाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जिसके चमड़े पर रोग हों और बाल झड़ गए हों। गजा। २. जिसके केश घुंघराले हो (को०)।

दुर्बुध—वि० [सं०] कमजोर बुद्धिवाला। सिद्धी [को०]।

दुर्बोध—वि० [सं०] जिसका बोध कठिनता से हो। जो जल्दी न समझ में आवे। गूढ़। क्लिष्ट। कठिन।

दुर्बोध्य—वि० [सं०] दे० 'दुर्बोध'।

दुर्बोध्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] समझ में न आने की क्षमता। दुर्बोध होने का भाव। उ०—प्रतिपाद्य प्रकरण की दुर्बोध्यता के कारण साधारण पाठक उसे समझ नहीं पाता।—शंली, पृ० ६०।

दुर्भक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसे खाना कठिन हो। जो जल्दी न खाया जा सके। २. खाने में बुरा।

दुर्भक्ष^२—सञ्ज्ञा पुं० वह समय जिसमें भोजन कठिनता से मिले। दुर्भिक्ष। अकाल।

दुर्भक्ष^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्भक्ष] भोजन की कहत। अकाल। दुर्भिक्ष। उ०—जन हरिया उन देसहें बारे मास सुकाल। भूख तृषा नहि व्यापई दुर्भक्ष पड़े न काल।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

दुर्भग—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुर्भगा] जिसका भाग बुरा हो। छोटे प्रारब्ध का। प्रमाणा।

दुर्भगा^१—वि० स्त्री० [सं०] मद भाग्यवाली। प्रमागिन।

दुर्भगा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. वह स्त्री जो अपने पति के स्नेह से वंचित हो। वह स्त्री जिसे स्वामी न चाहे। विरक्ता। २. बुरे स्वभाव की। कर्कशा। भगडालू (को०)। ३. विधवा (को०)।

दुर्भर—वि० [सं०] १. जिसे उठाना कठिन हो। जो लादा न जा सके। २. भारी। गुरु। वजनी।

दुर्भाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य] दे० 'दुर्भाग्य'।

दुर्भागी—वि० [सं० दुर्भाग्य] प्रमाणा। मद भाग्य का।

दुर्भाग्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मद भाग्य। बुरा अदृष्ट। छोटी किसमत।

दुर्भाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा भाव। २. द्वेष। मनमोटाव। मनो-मालिन्य।

दुर्भावना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी भावना। २. खटका। चिंता। प्रदेश।

दुर्भाव्य—वि० [सं०] जिसकी भावना सहज में न हो सके। जो जल्दी ध्यान में न आ सके।

दुर्भिक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐसा समय जिसमें भिक्षा या भोजन कठिनता से मिले। अकाल। कहत।

दुर्भिक्ष^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्भिक्ष] दे० 'दुर्भिक्ष'।

दुर्भेद—वि० [सं०] दे० 'दुर्भेद' [को०]।

दुर्भेद—वि० [सं०] १. जो जल्दी भेदा न जा सके। जो कठिनता से छिड़े। २. जिसके पार कठिनता से जा सकें। जिसे जल्दी पार न कर सकें।

दुर्भेद्य—वि० [सं०] दे० 'दुर्भेद'।

दुर्भृत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा नौकर जो आज्ञा का यथावत् पालन न करे। दुष्ट सेवक [को०]।

दुर्मकु—वि० [सं० दुर्मकु] आज्ञा का पालन न करनेवाला [को०]।

दुर्मन्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्मन्त्र] बुरी सलाह। कुमन्त्र। अहितकर राय या समति [को०]।

दुर्मन्त्रणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मन्त्रणा] दे० 'दुर्मन्त्र' [को०]।

दुर्म^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्म] दे० 'दुर्म'। उ०—दुर्म डार तहें अति घनि छाया, पछी बसेरा लेई रे।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६८।

यौ०—दुर्मावलि।

दुर्मति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी बुद्धि। कुमति। नासमझी।

दुर्मति^२—वि० १. दुर्बुद्धि। जिसकी समझ ठीक न हो। कम प्रबल। २. खल। दुष्ट।

दुर्मति^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आठ सवत्सरों में से एक जिसमें दुर्भिक्ष होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)।

दुर्मद—वि० [सं०] १. उन्मत्त। नशे आदि में चूर। उ०—कुमकरन दुर्मद रनरगा।—तुलसी (शब्द०)। २. अभिमान में चूर। गव से भरा हुआ।

दुर्मना—वि० [सं० दुर्मनस्] १. बुरे वित्त का। दुष्ट। २. उदास। खिन्न। अनमना।

दुर्मनुष्य—वि० [सं०] बुरा व्यक्ति। छोटा व्यक्ति [को०]।

दुर्मर—वि० [सं०] जिसकी मृत्यु बड़े कष्ट से हो।
दुर्मरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] बुरे प्रकार से होनेवाली मृत्यु।
दुर्मरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्वा। दूब।
दुर्मर्ष—वि० [सं०] जिसे सहन करना कठिन हो। दुःसह।
दुर्मर्षण^३—सञ्ज्ञा पु० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।
दुर्मर्षण^२—वि० दे० 'दुर्मर्ष'।
दुर्मल्लिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] द्रव्य काव्य के प्रसंगत उपरूपकों में से एक, जिसमें हास्यरस प्रधान होता है।
विशेष—यह चार प्रकों में समाप्त होता है। इसमें गर्भांक नहीं होते। इसके तीन प्रकों में क्रमशः विट, विद्वयक, पीठमर्द आदि की विविध क्रीड़ाएँ रहती हैं।
दुर्मली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुर्मल्लिका'।
दुर्मावलि^(५)—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दुर्मावलि] बाग। उपवन। उ०—
 एह कलि दुर्मावलि गुनमली। मनबन भति बचन फल फली।—चित्रा०, पु० १२।
दुर्मित्र—वि० [सं०] १. कुमित्र। दुष्ट मित्र। २. शत्रु। दुश्मन [को०]।
दुर्मिल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. भरत के सातवें लङ्के का नाम। २. एक छन्द जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ आर १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। प्रत में एक सगण और दो गुरु होते हैं। इसमें जगण का निषेध है। जैसे—जय जय रघुनन्दन असुर-विषहन्, कुलमंढन यश के धारी। जनमन सुखकारी, विपिन-विहारी, नारि महिल्यहि सी तारी। ३. एक वरुणवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं। यह एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—सबसों करि नेह भजे रघुनन्दन राजत हीरन माल दिये।
दुर्मिल^२—वि० [सं०] १. जिसे प्राप्त करना कठिन हो। कठिनता से मिलनेवाला दुर्लभ। उ०—दुर्मिल जो कुछ ऊर्मिल मिल मिलकर हुआ अखिल।—प्रचना, पु० १०। २. जो मेल का न हो। अनमिल।
दुर्मुख—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. घोड़ा। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. महिषासुर के एक सेनापति का नाम। ४. रामचन्द्र जी का एक गुप्तचर जिसके द्वारा वे अपनी प्रजा का वृत्तांत जाना करते थे। इसी के मुँह से उन्होंने सीता का वह वृत्तांत सुना था जिसके कारण सीता का द्वितीय वनवास हुआ था (उत्तर-रामचरित)। ५. एक नाग का नाम। ६. शिव। ७. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ८. वह घर जिसका द्वार उत्तर की ओर हो। ९. साठ सवत्सरों में से एक। १०. एक यक्ष का नाम। ११. गणेश जी का एक नाम। १२. रावण की सेना का एक राक्षस उ०—दुर्मुख सुररिपु मनुज महारी।—मानस, ६। ६१।
दुर्मुख^२—वि० [वि० स्त्री० दुर्मुखी] १. जिसका मुख बुरा हो। विकृत मुख का। बदसूरत। २. बुरे वचन बोलनेवाला। कटुभाषी। अप्रियवादी।
दुर्मुखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने जानकी को सम्झाने के लिये नियत किया था।

दुर्मुखी^२—वि० बुरे मुँहवाली।
दुर्मुट—वि० [हि०] दे० 'दुर्मुस'।
दुर्मुस—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दुर् (प्रत्यय) + मुस (कृटना)] गदा के आकार का एक लंबा डंडा जिसके नीचे लोहे या पत्थर का भारी गोल टुकड़ा रहता है और जिससे सहकों आदि पर फकड़ या गिट्टी पीटकर बैठवाई जाती है। फकड़ या गिट्टी पीटने का मुगदर।
दुर्मुहूर्त—सञ्ज्ञा पु० [सं०] अशुभ मूहूर्त। बुरी साक्षत [को०]।
दुर्मुल्य—वि० [सं०] जिसका दाम अधिक हो। महंगा।
दुर्मुल्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बहुमूल्य होने का भाव। महावृत्ता। दामोपन। उ०—इससे साहित्य का सम्मान होता है या साहित्य की दुर्मुल्यता प्रमाणित होती है।—स० दशन, पु० ४६।
दुर्मेध—वि० [सं०] दुर्मेधस् मदनुद्धि। नाममभू।
दुर्मेधा—वि० [सं०] दुर्मेधम्] दुर्बुद्धि। मूल [को०]।
दुर्मोह—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० दुर्मोहा] १. कोयलोट। २. तफेंद धुंधली।
दुर्यश—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दुर्यशम्] अपयश। अपकीर्ति।
दुर्योग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. बुरा योग। दुर्भाग्यमूलक योग। २. मेल न खाता हुआ। अनमेल स्त्री।
दुर्योध—वि० [सं०] जो बड़ी बड़ी कठिनाइयों को सहकर भी युद्ध में स्थिर रहे। विषट सङ्का।
दुर्योधन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कुरुक्षेत्रीय राजा धृतराष्ट्र के १०१ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम।
विशेष—यह अपने बचेरे भाई पांडवों से बहुत बुरा मानता था। सबसे अधिक द्वेष यह भीम से रखता था। बात यह थी कि भीम के समान दुर्योधन भी गदा चलाने में अत्यंत निपुण था, पर वह भीम की बराबरी नहीं कर सकता था। पहले धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को ही सब में बड़ा समझ सुवराज बनाना चाहते थे, पर दुर्योधन ने बहुत आपत्ति की और छल से पांडवों को वन में भेज दिया। वनवास से लौटकर पांडवों ने इंद्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बसाई और युधिष्ठिर ने धूमधाम से राजसूय यज्ञ किया। उन यज्ञ में पांडवों का भारी वैभवं देख दुर्योधन जल उठा और उनके नाश का उपाय सोचने लगा। प्रंत में उसने युधिष्ठिर को अपने साथ पासा खेलने के लिये बुलाया। उस खेल में दुर्योधन के मामा गांधार के राजकुमार शकुनि के छद्म और कौशल से युधिष्ठिर अपना सारा राज्य और धन यहाँ तक कि द्रौपदी को भी हार गए। दुःशासन द्रौपदी को बलात् सभा में लाया और दुर्योधन उसे अपने जेबे पर बैठने के लिये कहने लगा। इसपर भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन के जेबे को तोड़ने की प्रतिज्ञा की। प्रत में द्यूत के नियमानुसार धृतराष्ट्र ने यह निर्णय किया कि पांडव बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष भ्रष्टावस्था करें। जब भ्रष्टावस्था पूरा हो गया तब कृष्ण द्यूत होकर कौरवों के पास पांडवों की ओर से गए। पर

दुर्योधन^२

दुर्योधन ने पांडवों को राज्य का भ्रम दिया, पांच गाँव तक देना प्रस्थीकार कर दिया। प्रत में कुशलेय का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें कौरव मारे गए और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। दुर्योधन को युधिष्ठिर 'सुर्योधन' कहा करते थे।

दुर्योधन^२—वि० [सं०] दे० 'दुर्योध'।

दुर्योधनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] अपराजेय होने का भाव। दुर्योध होने का भाव [को०]।

दुर्योनि—वि० [सं०] जिसका जन्म नीच कुल में हो। नीच कुल का।

दुरि—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. मोती। उ०—के दरचक में जूँ भ्रमोलक रतन। सदाक मे के जूँ है ओ दुरि भदन।—दक्खिनी०, पृ० १५०। २. एक वर्ण सुपण।

दुरी—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] कोडा। चाबुक। घुरी।

दुरीनी—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] भफगानों की एक जाति।

दुर्लभ्य—वि० [सं०] दुर्लब्ध्य। दुःख से उत्पन्न करने योग्य। जिसे जल्दी लाभ न सके। उ०—प्रधिकार के भागे एक दुर्लभ्य प्रमत्तवाचक लगा हुआ है।—प्रपरा सू०, पृ० ३।

दुर्लभ्य^१—वि० [सं०] जो कठिनता से दिखलाई पड़े। जो प्रायः अदृश्य हो।

दुर्लभ्य^२—सञ्ज्ञा पुं० बुरा उद्देश्य। बुरी नियत।

दुर्लभ्यी—वि० [सं०] दुर्लक्ष्य^१ कठिन लक्ष्य का भेदन करनेवाला। उ०—प्राहत पीछे हटे, स्तम्भ से टिककर मनु ने, श्वास लिया टकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।—कामायनी, पृ० २००।

दुर्लभ^१—वि० [सं०] १ जो कठिनता से मिल सके। जिसे पाना सहज न हो। दुष्प्राप्य। २. अनोखा। बहुत बढ़िया। ३. प्रिय।

दुर्लभ^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कचूर। २, विष्णु।

दुर्ललित—वि० [सं०] दुलार से विगड़ा हुआ। नटखट। शरारती। उ०—उठती भ्रतस्तल से मंदव दुर्ललित लाहसा जो कि कांत। वह इद्रचाप सा झिलमिल हो दब जाती अपने आप शांत।—कामायनी, पृ० १३६।

दुर्ललित^१—सञ्ज्ञा पुं० श्रौद्धत्य। शरारतीपन [को०]।

दुर्लभ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा लेख। २. दुर्भाग्य का लेख। उ०—विध के इस दुर्लभ्य को अपनी शीखों में देखते देखकर जीना भारी हो आता है।—सुखदा, पृ० ६।

दुर्लभ्य^१—वि० [सं०] जो बुरा लिखा हुआ हो। जो ऐसा लिखा हो कि जल्दी पढ़ा न जा सके। (स्पृति)।

दुर्लभ्य^२—सञ्ज्ञा पुं० जाली कागज पत्र [को०]।

दुर्बच^१—वि० [सं०] १ जो दुःख से कहा जा सके। जिसके कहने में कष्ट हो। २. जो कठिनता से कहा जा सके।

दुर्बच^२—सञ्ज्ञा पुं० दुर्बचन। गाली।

दुर्बचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्वाच्य। कटुवचन। गाली। उ०—कहि दुर्बचन श्रुद्ध दसकंधर।—मानस, ६।६०।

दुर्बचा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्बच^१ कटुवचन बोलनेवाला। कटुभाषी। कटुवादी [को०]।

दुर्बर्ण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा ध्वजर। २. चाँदी। रजत। ३. मिश्र। मिलावट। ४. कुठ का एक भेद। श्वेत कुठ [को०]।

दुर्बर्ण^२—वि० बुरे वर्ण या रंगवाला [को०]।

दुर्बर्ण^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी। एलुवा।

दुर्बस—वि० [सं०] जहाँ रहना या टिकना कष्टकर हो [को०]।

दुर्बसति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा निवास। रहने का कष्टदायक स्थान या बत्ती [को०]।

दुर्बह—वि० [सं०] १ जिसका वहन या धारण करना कठिन हो। जैसे, दुर्बह गर्भ। २. जिसे चलना कठिन हो।

दुर्बाच^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा वचन। निन्दित वाक्य।

दुर्बाच^२—प्रपञ्च बोलनेवाला। बुरी बातें बोलनेवाला [को०]।

दुर्वाच्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुर्बचन'। उ०—उससे भी अधिक दुर्वाच्यों और कटुभाषण के।—प्रमथन, भा० २, पृ० ३००।

दुर्वाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अपवाद। निंदा। बदनामी। २. स्तुति-पूर्वक कहा हुआ प्रिय वाक्य। ३. अनुचित, अयुक्त या निन्दित विषय।

दुर्वादी—वि० [सं०] दुर्वादिन। कुतर्की। दुज्जती। दुर्वाद करनेवाला।

दुर्वार—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोक न जा सके।

दुर्वारण—वि० [सं०] दे० 'दुर्वार्य' [को०]।

दुर्वारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कन्नौज देश का एक वीर जो महाभारत की लड़ाई में लड़ा था।

दुर्वार्य—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोक न जा सके।

दुर्वासना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी इच्छा या खोटी भाकांभा। दुष्ट कामना। उ०—दुष्टता दमन दमभवन दुःखोषहर दुर्ग दुर्वा-सना नासकर्ता।—तुलसी, प्र० पृ० ४८६। २. ऐसी कामना जो कभी पूरी न हो सके। उ०—दुर्वासना क्रुमुद समुदाई।—मानस, ३।३८।

दुर्वासा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्वासस् एक मुनि जो यज्ञ के पुत्र थे।

विशेष—इनके नाम के विषय में महाभारत में लिखा है कि जिसका धर्म में दृढ़ निश्चय हो उसे दुर्वासा कहते हैं। ये अत्यंत क्रोधी थे। इन्होंने श्रौर्व मुनि की कन्या कंदला से विवाह किया था। विवाह के समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि स्त्री के सो अपराध समा करेंगे। प्रतिज्ञानुसार इन्होंने सो अपराध तक क्षमा किए, अनंतर शाप लेकर पत्नी को भस्म कर दिया। श्रौर्व मुनि ने कन्या के शाप से शोकातुर होकर शाप दिया कि तुम्हारा धर्म पूर्ण होगा। इसी शाप के कारण राजा अंबरीष के मामले में इन्हें नीचा देखना पड़ा। इनका स्वभाव क्रुद्ध सनकी था। इनके शाप तथा बरदान की अनेक कथाएँ महाभारत तथा पुराणादि में भरी पड़ी हैं।

दुर्वाहित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्बह बोलनेवाला। भारी बोझा [को०]।

दुर्विगाह—वि० [सं०] जिसका भवगाहन कठिन हो । जिसकी पाह जल्दी न लगे ।

दुर्विगाह—वि० [सं०] दे० 'दुर्विगाह' (को०) ।

दुर्विज्ञेय—वि० [सं०] जिसका कष्ट या कठिनता से ज्ञान हो सके । जो जल्दी जाना न जा सके ।

दुर्विद—वि० [सं०] जिसे जानना कठिन हो । जो जल्दी जाना न जा सके ।

दुर्विदग्ध—वि० [सं०] १ जो घबड़ी तरह जला न हो । अधजला । २ जो पूर्ण परिपक्व न हो । साधारण जानकारी से गविष्ठ । ३ अहंकारी । घमडी ।

दुर्विदग्धता—सहा स्त्री० [सं०] अधकषरापन । पूरी निपुणता का अभाव ।

दुर्विध—वि० [सं०] १ दरिद्र । २ सल । मूर्ख ।

दुर्विधि—सहा स्त्री० [सं०] बुरी विधि । कुनियम ।

दुर्विधि—सहा पुं० दुर्भाग्य ।

दुर्विनय—सहा स्त्री० [सं०] अविनय । मोदत्य । उद्भृता (को०) ।

दुर्विनीत—वि० [सं०] अविनीत । अविष्ट । उदत । अक्षय ।

दुर्विपाक—सहा पुं० [सं०] १. बुरा परिणाम । बुरा फल । २ बुरा संयोग । दण्डना ।

दुर्विभाव्य—वि० [सं०] जिसकी भावना न हो सके । जो मन में न आवे । जिसका अनुमान न हो सके ।

दुर्विस्तव—सहा पुं० [सं०] दुःकार्य ।

दुर्विवाह—सहा पुं० [सं०] बुरा ग्याह । निहित विवाह ।

विशेष—स्मृतियों में जो पाठ प्रकार के विवाह बड़े गए हैं उनमें ग्रह आदि चार प्रकार के विवाह सुविवाह और असुर आदि चार प्रकार के विवाह दुर्विवाह कहाते हैं ।

दुर्विष्य—सहा पुं० [सं०] महादेव (जिनपर विष का कुछ प्रभाव न हुआ ।)

दुर्विष्य—वि० [सं०] बुरे स्वभाव का । दुर्वृत्त (को०) ।

दुर्विषह—वि० [सं०] जिसे सहना कठिन हो । दुःसह ।

दुर्विषह—सहा पुं० १ महादेव । शिव । २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुर्वीक्ष्य—वि० [सं०] जो दुःख या कठिनता से दिसाई दे । उ०—
नाना काक उलूक आदि रव से हो प्रायः पूरित । देती है वन को भयावह बना दुर्वीक्ष्य वृक्षावली ।—पारिजात पु० ८५ ।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो ।—दुश्चरित्र । दुराचारी ।

दुर्वृत्त—सहा पुं० बुरा आचरण । बुरा व्यवहार ।

दुर्वृत्ति—सहा स्त्री० [सं०] १. बुरी वृत्ति । बुरा पेशा । बुरा काम । उ०—सेवा समान प्रति दुस्तर दुःखदाई । दुर्वृत्ति और भवलोचन में न भाई ।—द्विवेदी (शब्द०) २ छल । जाल फरेब । धोखा (को०) । ३ सराब आचरण । अनुचित व्यवहार । दुराचरण (को०) ।

दुर्वृष्टि—सहा स्त्री० [सं०] १ यथावश्यक वर्षा का अभाव । २. मृत्ता । अनावृष्टि (को०) ।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] १ वेराग्यन से विमुख ब्राह्मण । २ जो कठिनाई से समझ में आवे । दुर्बोध्य (को०) ।

दुर्व्यवस्था—सहा स्त्री० [सं०] गृहप्रदथ । बदव्यवस्था ।

दुर्व्यवहार—सहा पुं० [सं०] १. बुरा व्यवहार । बुरा बर्ताव । २ दुष्ट आचरण । ३. यह मुक्तमा जिसका फैसला भूमि प्रादि के कारण ठीक न हुआ हो । ४. 'दुर्वृत्त' ।

दुर्व्यसन—सहा पुं० [सं०] बुरी सत । खराब आदतें । किसी ऐसी बात का अभ्यास जिससे कोई लाभ न हो ।

दुर्व्यसनी—वि० [सं०] दुर्व्यसिन् । बुरी सतपासा ।

दुर्वृत्त—सहा पुं० [सं०] बुरा मनोरथ । नीच आचरण ।

दुर्वृत्त—वि० १ जिसने बुरा प्रवृत्ति ली हो । बुरे मनोरथोंवाला । नीचाण्य । २ आदेश न माननेवाला । आज्ञा पालन न करनेवाला (को०) ।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] ४. 'दुर्वृत्त' (को०) ।

दुर्वृत्त—सहा पुं० [सं०] दुर्वृत्त] जो गृहद न हो । अविन । अक्ष ।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] गृहित दुष्ट का । गृहित । मोटा (को०) ।

दुर्वृत्त—वि० [सं०] अजितेन्द्रिय । दुर्बल इन्द्रियवाला ।

दुलभी—सहा स्त्री० [हि०] दुःखना] छोटे की एक बात जिसमें यह चारों पेर अलग अलग उठाकर मुद्द उद्यतता हुआ चलता है ।

क्रि० प्र०—चलना ।—जाना ।

दुलग्नता—क्रि० म० [हि०] दो + लग्न] बार बार बहसना । बार बार बहना । बार बार शोहरना ।

दुलखी—सहा स्त्री० [सं०] एक कठिना जो ज्वार, नील, ठमाना, सरसों और गेहूँ की नुस्मान पट्टाता है ।

दुलखी—वि० [हि०] दो + लख] [वि० स्त्री०] दुलखी] दो लखों का ।

दुलखी—सहा पुं० दो लखों की मात्रा ।

दुलखी—सहा स्त्री० [हि०] दो + लख] दो लखों की मात्रा ।

दुलखी—सहा स्त्री० [हि०] दो + लख] १ छोटे आदि चोपायों का पिछले दोनों पैरों को उठाकर सात मारना ।

क्रि० प्र०—चलना ।—मारना ।

मुद्दा—दुलखी छोटना या काटना = दोनों लारों को चलाना ।

दोनों लारों से मारना । दुलखी फेंकना = दोनों लार चलाना ।

२ मासखन की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों को मासखन से अलग दिमाकर सात आदि ठोकते हैं ।

दुलदुल—सहा पुं० [सं०] यह लच्छरी जिसे इसकदरिया (मिल) के हाकिम ने मुहम्मद माहब को नजर में दिया था ।

विशेष—साधारण लोग इसे घोड़ा समझते हैं और मुहम्मद के दिनों में इसकी नकल निकालते हैं । मुहम्मद की आठवीं की प्रवास के नाम का और नवी की हरी के नाम का बिना सवार का घोड़ा भीड़भाड़ के साथ निकास जाता है ।

दुलना—सङ्घा पुं० [सं० दोलन] दे० 'दोलन' । उ०—सूर स्याम सरोज
लोचन दुलन जन जल चार ।—सूर (शब्द०) ।

दुलना—क्रि० प्र० [सं० दोलना] दे० 'दुलना' ।

दुलभ—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दुलरा—वि० [हिं० दुलार] दे० 'दुलारा' ।

दुलराना—क्रि० प्र० [हिं० दुलारना] लाड़ करना । बच्चों
को बहलाकर प्यार करना । उ०—भव लागी मोकी
दुलरावन प्रेम करति टरि ऐसी हो । सुनहु सूर तुमरे छित
छिन मति बढी प्रेम की गैसी हो ।—सूर (शब्द०) ।

दुलराना—क्रि० प्र० दुलारे बच्चों की सी चेष्टा करना । लाड
प्यार का सा व्यवहार करना ।

दुलरी—सङ्घा स्त्री० [हिं० दु + लर] दे० 'दुलही' । उ०—फूलन की
दुलरी, हुमेल हार फूलन के, फूलन की चपमाल, फूलन गजरा
री ।—नद० प्र०, पु० ३८० ।

दुलरुवा—वि०, सङ्घा पुं० [हिं० दुलारा + उवा (प्रत्य०)] दे० 'दुलारा' ।

दुलह—सङ्घा पुं० [हिं० दुलहा] १ दे० 'दुलहा' (लाक्ष०) । २ जीव ।
उ०—दुलह घर में नहीं दुलहिन भाँवरि फिरै ।—कबीर रे०,
पु० २६ ।

दुलह—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दुलहन—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुलहा] नवविवाहिता वधू । नई बहू । नई
ब्याही हुई स्त्री ।

दुलहा—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'दुलहा' ।

दुलहिन—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहन' । उ०—दुलह घर
में नहीं दुलहिन भाँवरि फिरै । भजव भचरज का खेल वृक्ष ।
—कबीर०, रे० पु० २६ ।

दुलहिनी, दुलहिनी—सङ्घा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुलहन' । उ०—तिहि
छिन दुलहिनि दसा भई जो बरनि न जाई ।—नद० प्र०,
पु० २१० ।

दुलहिया—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुलही + ह्या (प्रत्य०)] दे० 'दुलहन' ।
उ०—देह दुलहिया की बढे ज्यो ज्यों जीवन जोति ।—
बिहारी (शब्द०) ।

दुलही—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहन' ।

दुलहेटा—सङ्घा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह + हिं० वेटा] दुलारा
लडका । लाडला बेटा । उ०—युग युग जियहि राज दुलहेटा
दे प्रसीस द्विजनारी । पाइ भीख लै सीख जाइ घर कोउ
भावती सुखारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

दुलाई—सङ्घा स्त्री० [सं० तुल (= रुई) हिं० आई (प्रत्य०), हिं०
तुलाई, तुराई] भोड़ने का दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई
भरी हो । रुई भरा हुमा भोड़ना ।

दुलाना—क्रि० प्र० [सं० दोलन] दे० 'दुलाना' । उ०—पदिमिनि
कहू जब पीन दुलावे । तव लपट भलि बैठि न पावे ।—नद०
प्र०, पु० ११६ ।

दुलार—सङ्घा पुं० [हिं० दुलारना] प्रसन्न करने की वह चेष्टा जो
प्रेम के कारण लोग बच्चों या प्रेमपात्रों के साथ करते हैं ।
जैसे, कुछ विलक्षण संबोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ

फेरना, चूमना इत्यादि । लाड प्यार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दुलारना—क्रि० प्र० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लारना] प्रेम के
कारण बच्चों या प्रेमपात्रों को प्रसन्न करने के लिये उनके
साथ प्रत्येक प्रकार की चेष्टा करना । जैसे, विलक्षण संबोधनों
से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना, इत्यादि । लाड़
करना । लाडना ।

दुलारा—वि० [हिं० दुलार] [वि० स्त्री० दुलारी] जिसका बहुत
दुलार या लाड प्यार हो । लाडला । जैसे, दुलारा लडका ।

दुलारा—सङ्घा पुं० लाडला बेटा । प्रिय पुत्र । उ०—रोकत मग भाज
सखी नंद को दुलारो ।—सूर (शब्द०) ।

दुलारी—वि० स्त्री० [हिं० दुलारा] जिसका अधिक लाड प्यार
हो । लाडली ।

दुलारी—सङ्घा स्त्री० लाडली बेटा । प्रिय कन्या । उ०—सखियन संग
भूलति धृषभानु की दुलारी ।—सूर (शब्द०) ।

दुलारी—सङ्घा स्त्री० [हिं० तुराई] दे० 'दुलाई' । उ०—इती बात
को समुझि ले तू अपने मन वाल । प्रीति दुलारी खुलत है सहि
के मगजी लाल ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दुलाही—सङ्घा पुं० [दे०] जवासा । हिंजवा ।

दुलि—सङ्घा स्त्री० [सं०] छोटी कच्छपी । कच्छपी [को०] ।

दुलीचा—सङ्घा पुं० [देश०] गलीचा । कालीन । उ०—ज्ञान दुलीचा
झारि बिछावो, नाम के तकिया भरघ लगावो ।—धरम०,
पु० ७४ ।

दुलीची—सङ्घा स्त्री० [देश०] दे० 'दुलैचा' । उ०—मेरुदंड पर डार
दुलीची जोगिन तारी लाया ।—कबीर श०, भा० १, पु० २६ ।

दुलहेटा—सङ्घा पुं० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहेटा' ।

दुलैचा—सङ्घा पुं० [देश०] गलीचा कालीन ।

दुलोही—सङ्घा स्त्री० [हिं० दो + लोहा] एक प्रकार की तलवार जो
लोहे के दो टुकड़ों को जोड़कर बनाई जाती है ।

दुल्लभ—वि० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दुल्लह—सङ्घा पुं० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहा' । उ०—भव दुल्लह
दुल्लह तव कहेऊ । दुलहिनि दिस में मनस, भेऊ ।—सं०
दरिया०, पु० १ ।

दुल्ला—सङ्घा पुं० [देश०] एक पोधा ।

दुल्ली—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुल्लो] दे० 'दुल्लो' ।

दुल्लीच—सङ्घा पुं० [देश०] दुलीचा । कालीन । गलीचा । उ०—
रेसम गिलम दुल्लीच मडि । जिन जोति होति दुति चिर
पडि ।—पु० रा०, १४ । ३६ ।

दुल्लो—सङ्घा स्त्री० [हिं० दो + ला (प्रत्य०)] गोली के खेल में वह
गोली जो मीर या भगली गोली के पीछे हो । दूसरे नंबर की
गोली ।

दुलहैया—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुलहा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'दुलहन' ।
उ०—नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि हरियारी । नवल दुलह
प्यारो, नवल दुलहैया ।—नद० प्र०, पु० ३७३ ।

दुप④—[सं० द्वि] दो ।

दुवन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जनस्] १ दुष्ट चित्त का मनुष्य । खल । दुर्जन । बुरा भादमी । उ०—कै अपनी दुर्नीति के दुवन क्रूरता मानि । प्रावे उर में सोच अति सो सका पहिचानि ।—पद्माकर (शब्द०) । २ शत्रु । वैरी । दुश्मन । उ०—मतिराम सुजस दिन दिन बढ़त सुनत दुवन उर कट्टित ।—मतिराम (शब्द०) । ३ राक्षस । दैत्य । उ०—(क) भारज सुवन को तो दया दुवनहु पर मोहि सोच मोते सब विधि नसानि ।—सुनसी (शब्द०) । (ख) पयज बँधाय सेत उत्तरे कटक कलि घाए देखि देखि दूत दावन दुवन के ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुवरवा—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] द्वार । दरवाजा । उ०—जाके दुवरवा जमिरिया सो कैसे सोइल हो ।—धरम०, पृ० ६२ ।

दुषा④—संज्ञा स्त्री० [म० दुषा] दे० 'दुषा' । उ०—तू लीन्हें मन प्राछसि द्वा । भौ जुग सारि चहसि पुनि छुवा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३२ ।

दुषाज—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—नुकरा भीर दुषाज बोरता है छबि दूनी ।—सूदन (शब्द०) ।

दुषादस④—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश' ।

दुषादस बानी④—वि० [सं० द्वादश (= सूर्य) + वण] बारह बानी का । सूर्य के समान दमकता हुआ । प्रामाण्युक्त । खरा । (विशेषतः सोने के लिये) । उ०—कनक दुषादस बानि है चह मुहाग वह माँग । सेवा करे नखत सति तरद उवै जस गाँग ।—जायसी (शब्द०) ।

दुषादसी④—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशी] दे० 'द्वादशी' ।

दुषारी—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] [स्त्री दुवारी] दे० 'द्वार' । उ०—खोजि लीन्ह सो सरग दुवारी । वज्र जो भूँदे जाइ उवारी ।—पदमावत, पृ० २२८ ।

दुषारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारिका] दे० 'द्वारका पुरी' ।

दुवाल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. चमड़े का तसमा । २ रिकाब का तसमा । रिकाब में लगा हुआ चमड़े का चौड़ा फीता ।

दुवालबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] चमड़े का चौड़ा तसमा जो कमर आदि में लपेटा जाय । चपरास या पेटी का तसमा ।

दुवाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] रंगे या छिपे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये घोंटने का औजार । घोंटा ।

दुवाली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दुवाल] चमड़े के चौड़े तसमे का परतला या पेटी जिसमें बटुक, तलवार आदि लटकाते हैं ।

दुवालीबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] परतला आदि लगाए हुए तैयार सिपाही ।
दुवाह—वि० [हि०] १ दे० 'दुषाह' । २ (जमीन) जो दो बार जोती गई हो ।

दुविद④—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विविद' ।

दुविधा—संज्ञा पुं० [हि० दुबधा] दे० 'दुबधा' ।

दुधो, दुधौ④—वि० [हि० दुध (=दो) + उ (=ही) दोनों] । उ०—दुधो सबति बड़ि छाट बईठी । भौ सिक्लोक परा तिन्ह दोठी ।—जायसी ग्रं० पृ० २६६ ।

दुशमन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दे० 'दुश्मन' । उ०—याम छवि निरखि नागरि नारि । प्यारी छवि निरखत मनमोहन सकत न नैन पसारि । पिय सकुचत नहि दिष्टि मिलावत सन्मुख होत लजात । श्रीराविका निडर अवलोकत अतिहि हृदय हरखात । भरस परस मोहनि मोहन मिलि संग गोपी गोपाल । सूरदास प्रमु सव गुण लायक दुश्मन के उर सान ।—सूर (शब्द०) ।

दुशवार—वि० [फ्रा०] [संज्ञा दुश्वारी] १ कठिन । दुर्ह । मुश्किल २ दु सह ।

दुशवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] कठिनता ।

दुशाला—संज्ञा पुं० [सं० द्विशाट, फ्रा० दोशाला] पशमीने की चद्दरों का जोड़ा जिनके किनारे पर पशमीने की रंग बिरंगी वेल्ने बनी रहती हैं । ये बहुधा कश्मीर और पेशावर से आती हैं । कश्मीरी दुशाले अच्छे और कीमती होते हैं । उ०—तान तुक-ताला हैं बिनोद के रसाला हैं, सुवाला हैं दुशाला हैं, विशाला चित्रशाला हैं ।—पद्माकर (शब्द०) ।

यौ०—दुशालापोश । दुशालाफरोश ।

मुहा०—दुशाले में लपेटकर मारना या लगाना = घाटे हाथ लेना । छिपे छिपे प्रालेप करना । मीठी चुटकी लेना ।

दुशालापोश—वि० [फ्रा०] १. जो दुशाला भोड़े हो । २ जो अच्छा कपड़ा पहने हुए हो । ३ अमीर ।

दुशालाफरोश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दुशाला बेचनेवाला ।

दुशासन④—संज्ञा पुं० [सं० दुशासन] दे० 'दुशासन' ।

दुश्चर—वि० [सं०] [संज्ञा दुश्चरण] जिसका करना कठिन हो । कठिन । दुष्कर ।

दुश्चरित^१—वि० [सं०] १ बुरे आचरण का । बदचलन । २ कठिन ।

दुश्चरित^२—संज्ञा पुं० १ बुरा आचरण । कुचाल । बदचलनी । २ पाप ।

दुश्चरित्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुश्चरित्रा] बुरे चरित्रवाला । बदचलन ।

दुश्चरित्र^२—संज्ञा पुं० बुरी चाल । कुचाल । बुराचार ।

दुश्चर्मा—संज्ञा पुं० [म० दुश्चर्मन्] वह पुरुष जिसकी लिंगेन्द्रिय के मुख पर ढाकनेवाला चमड़ा न हो ।

विशेष—इस प्रकार के लोग जन्म से ही बिना चमड़े के होते हैं ।

धर्मशास्त्रों का मत है कि गुह्यतत्त्व जन्मान्तर में दुश्चर्मा उत्पन्न होते हैं । ऐसे पुरुषों को बिना प्रायश्चित्त किए कोई काम करने का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि बिना प्रायश्चित्त किए उनका वह कर्म और मृतक कर्म भी नहीं किया जा सकता ।

दुश्चलन—संज्ञा स्त्री० [म० दु + हि० चलन] दुराचरण । खोटी चाल । उ०—जिस मनुष्य के स्वरूप से दुश्चलन भयवा दुराचरण की प्राणका पाई जाय उसका निरीक्षण पूर्णतया हो ।—बेनिम का बाँका (शब्द०) ।

दुश्चित्य—वि० [सं० दुश्चित्य] जो कठिनता से, समझ में आये । जिसकी भावना मन में जल्दी न हो सके ।

दुश्चिकित्स—वि० [सं०] दुश्चिकित्स्य । जिसकी चिकित्सा कठिन हो ।
दुश्चिकित्सा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद सबधी चिकित्सा के नियमों के विरुद्ध चिकित्सा करना । निन्दित चिकित्सा ।

विशेष—स्मृतियों में इस प्रकार के मनाइये या दुष्ट चिकित्सको के दंड का विधान है ।

दुश्चिकित्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाई से हो सके । जो चिकित्सनीय न हो । दुःसाध्य (रोग) ।

दुश्चिकित्स्य—वि० [सं०] १ जिसकी चिकित्सा कठिनाई से हो सके । जिसकी दवा जल्दी न हो सके । दुःसाध्य । २. जिसकी चिकित्सा हो न सके । असंसाध्य ।

दुश्चिक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म से तीसरा स्थान ।

दुश्चित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छटका । चिता । आशका । २ घव-राहट । उद्विग्नता ।

दुश्चेष्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [सञ्ज्ञा पुं० दुश्चेष्टित] बुरा काम । कुचेष्टा ।
दुश्चेष्टित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्कर्म । पाप । २. नीच काम । छोटा काम ।

दुश्च्यवन^१—वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न हो सके । जो जल्दी विचलित न हो ।

दुश्च्यवन^२—सञ्ज्ञा पुं० द्रु ।

दुश्च्याव^१—वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न किया जा सके ।

दुश्च्याव^२—सञ्ज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

दुश्मन—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [भाव० दुश्मनी] शत्रु । वैरी । द्वेषी ।

दुश्मनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] वैर । शत्रुता । विरोध ।

दुश्वार—वि० [फा०] मुश्किल । कठिन । दुस्तर । उ०—जिसका बहिष्कार अब एक प्रकार से दुश्वार है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८७ ।

दुष्कर—वि० [सं०] जिसे करना कठिन हो । दुःसाध्य । जो मुश्किल से हो सके ।

दुष्कर^२—सञ्ज्ञा पुं० आकाश ।

दुष्कर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुष्कर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुष्कर्मन्] बुरा काम करनेवाला । पापी । कुकर्म ।

दुष्कर्मा—वि० [सं० दुष्कर्मन्] दे० 'दुष्कर्मी' ।

दुष्कर्मी^१—वि० [सं० दुष्कर्म + ई (प्रत्य०)] बुरा काम करनेवाला । पापी । दुराचारी ।

दुष्कर्मी—सञ्ज्ञा पुं० पापी । उ०—तुमने अपने को बहुत से दुष्कर्मियों का प्रयोग बना रखा है ।—बेनिस का घाँका (शब्द०) ।

दुष्काल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा वक्त । कुसमय । २. दुर्भिक्ष । भूकाल । ३. महादेव । ४. प्रलय (की०) ।

दुष्कीर्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुकीर्ति । अपयश । बदनामी ।

५-१३

दुष्कुल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल । बुरा खानदान । अप्रतिष्ठित घराना ।

दुष्कुल^२—वि० नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।

दुष्कुलीन—वि० [सं०] नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।

दुष्कुलेय—वि० [सं०] दे० 'दुष्कुलीन' ।

दुष्कृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाप । बुरा कर्म [की०]

दुष्कृति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा कर्म । कुकर्म ।

दुष्कृति^२—वि० [सं०] कुकर्म । पापी ।

दुष्कृती—वि० [सं० दुष्कृतिन्] बुरा काम करनेवाला । कुकर्म । पापी ।

दुष्क्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भ्रामक क्रम । अनुचित क्रम । २. साहित्य में क्रमभंग नामक दोष [की०] ।

दुष्क्रीत—वि० [सं०] मोल लेने में जिसका दाम उचित से अधिक दिया गया हो । महंगा ।

दुष्ख^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुःख' । उ०—हिम दुष्ख वैराग मेष्टिम ।—कीर्ति०, ५६ ।

दुष्खदिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ छोटा होता है । इसका कत्था पीला और खाने में कटुभा और कसेला होता है । इसे खुद्र खदिर भी कहते हैं ।

पर्या०—काबोजी । कालस्कंद । गोरट । अमरज । पत्रतरु । बहुसार । महासार । खुद्र खदिर ।

दुष्ट^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुष्टा] १ दूषित । दोषग्रस्त । जिसमें दोष हो । जिसमें नुकस या ऐब हो । २. पित्त आदि दोष युक्त । ३. दुर्जन । खल । दुराचारी । पापी । छोटा । ४. न्याय में हेतु, व्यभिचार आदि दोषों से युक्त (की०) । ५. छिन्न । त्रुटित (की०) । ६. बेकार का । निकम्मा (की०) । ७. अपराधी । दोषी । पापी (की०) ।

दुष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कुट्ट । कोढ़ । २. पाप । अपराध । दोष (की०) ।

दुष्टचारी—वि० [सं० दुष्टचारिन्] [वि० स्त्री० दुष्टचारिणी] १. दुराचारी । बुरा आचरण करनेवाला । २. दुर्जन । खल ।

दुष्टचेता—वि० [सं० दुष्टचेतस्] १ बुरी चिंतना करनेवाला । बुरे विचार का । २. बुरा चाहनेवाला । अहिताकांक्षी । ३. कपटी ।

दुष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दोष । नुकस । ऐब २. बुराई । खराबी । ३. बदमाशी । दुर्बंता ।

दुष्टत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्बंता । छोटाई ।

दुष्टधी—वि० [सं०] छली । कपटाचारी । छोटा [की०] ।

दुष्टपना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दुष्ट + पन (प्रत्य०)] दुष्टता । छोटाई । उ०—रे सठ रहू न राज मेरे में । है प्रति दुष्टपनो तेरे में ।—गोपाल (शब्द०) ।

दुष्टपारिग्रह—वि० [सं०] (सेना) जिसके पीछे की सेना दृष्ट हो ।

दुष्टबुद्धि—वि० [सं०] दे० 'दुष्टधी' [की०] ।

दुष्टलांगल—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टलाङ्गल] चंद्रमा की प्राकृति के एक रूप का नाम [को०] ।

दुष्टवृष—संज्ञा पुं० [सं०] गरियार बैल । परवा बैल । यह बैल जो स्वस्थ होते हुए भी काम से जी चुराए ।

दुष्टव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वह घण घयवा घाव जिसमें से दुर्गंध भावे और जो अच्छा न हो ।

विशेष—यह रोग वैद्यक में असाध्य माना गया है और धर्मशास्त्र में इस रोग को पूर्वजन्मकृत महापातक का फल माना है । विना प्रायश्चित्त किए इस रोग का रोगी असुख्य माना गया है और उसके दाहकर्म और मृतक सत्कार का नियम है ।
२ नासूर । नाडीघ्रण (को०) ।

दुष्टर—वि० [सं०] दे० 'दुस्तर' ।

दुष्टसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टसाक्षिन्] बुरा साक्षी । ऐसा गवाह जो ठीक ठीक गवाही न दे । अयोग्य साक्षी ।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि साक्षी सत्यवादी, कर्तव्यपरायण, और निर्लोभ हो । यदि साक्षी ऐसा हो जिसने कभी झूठी गवाही दी हो, जो व्याधिग्रस्त हो, जिसने महापातक किए हों अथवा जिसका दो पक्षों में से किसी पक्ष के साथ प्रायिक संबंध, शत्रुता या मित्रता हो यह दुष्ट साक्षी है । उसका साक्ष्य ग्रहण न करना चाहिए ।

दुष्टा^१—वि० स्त्री० [सं०] छोटी । बुरे स्वभाव की ।

दुष्टा^२—१ बुरे स्वभाव की स्त्री । दुश्चरित्र स्त्री । दोषयुक्त । २ वारनारी । वेश्या (को०) ।

दुष्टाचार^१—संज्ञा पुं० [सं०] कुचाल । कुकर्म । छोटा काम ।

दुष्टाचार^२—वि० दुराचारी । बुरा काम करनेवाला ।

दुष्टाचारी—वि० [सं० दुष्टाचारिन्] [वि० स्त्री० दुष्टाचारिणी] कुकर्म । जिसके आचरण अच्छे न हों । छोटा काम करनेवाला ।

दुष्टात्मा—वि० [सं० दुष्टात्मन्] जिसका अंतःकरण बुरा हो । दुराशय । छोटी प्रकृति का । दुःश्रमा ।

दुष्टाश्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिगड़ा हुआ अन्न । बासी या सटा अन्न । २ कुत्तित अन्न । ३ वह अन्न जो पाप की कमाई हो । ४ नीच का अन्न ।

दुष्टाशय—वि० [सं०] दे० 'दुष्टात्मा' (को०) ।

दुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष । विकार । ऐब ।

दुष्टपच—वि० [सं०] १ जो कठिनता से पके । २ जो जल्दी न पचे ।

दुष्टपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] चोर नामक गंधद्रव्य ।

दुष्टपद—वि० [सं०] दुष्प्राप्य ।

दुष्टपराजय^१—वि० [सं०] जिसका जीतना कठिन हो ।

दुष्टपराजय^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र का एक पुत्र ।

दुष्टपरिमह—संज्ञा पुं० [सं०] जो जल्दी पकड़ में न आ सके । जिसे वश में लाना कठिन हो ।

दुष्टपर्श—वि० [सं०] १ जिसे स्पर्श करना कठिन हो । जिसे छूते न बने । २. जो जल्दी हाथ न लगे । दुष्प्राप्य ।

दुष्टपर्श—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयासा ।

दुष्टपार—वि० [सं०] १. जिसे जल्दी पार न कर सक । २ दुःसाध्य । कठिन ।

दुष्टपूर—वि० [सं०] १ जिसका भरना कठिन हो । जो जल्दी न पूरा हो सके । कठिनता से पूर्ण होनेवाला । २ अनिवार्य ।

दुष्टप्रकृति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रकृति । गीटा स्वभाव ।

दुष्टप्रकृति^२—वि० बुरे स्वभाव का । दुःशील ।

दुष्टप्रघर्ष^१—वि० [सं०] जो जल्दी घर्ष पकड़ में न आ सके ।

दुष्टप्रघर्ष^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुष्टप्रघर्षण—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुष्टप्रघर्ष' (को०) ।

दुष्टप्रघर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुष्टप्रघर्षणी' (को०) ।

दुष्टप्रघर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जयामा । हिंगुवा । २. सड़ूर ।

दुष्टप्रघर्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कटकारी । मटबट्टा । २. धैर्य । भटा ।

दुष्टप्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी प्रवृत्ति । २ बुरी सबर । अशुभ समाचार (को०) ।

दुष्टप्रवेशा—संज्ञा स्त्री० [पुं०] कपारी वृत्ति ।

दुष्टप्राप, दुष्टप्रापण—वि० [सं०] दे० 'दुष्प्राप्य' ।

दुष्प्राप्य—वि० [सं०] जो सहज में न मिल सके । जिसका मिलना कठिन हो ।

दुष्टप्रेक्ष—वि० [सं०] दे० 'दुष्टप्रेक्ष' ।

दुष्टप्रेक्ष्य—वि० [सं०] १ जिसे देखना कठिन हो । २ दुःशोभन । भीषण ।

दुष्मत्—संज्ञा पुं० [सं० दुष्मन्त] दे० 'दुष्यंत' ।

दुष्यत—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यन्त] पुरुवर्गी एक राजा जो ऐति नामक राजा के पुत्र थे ।

विशेष—महामारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—
एक दिन राजा दुष्यत शिकार खेलते खेलते पकड़कर कएव मुनि के आश्रम के पास जा निकले । उस समय कएव मुनि की पाली हुई लकड़ी शकुतला वहाँ थी । उसने राजा का उचित सत्कार किया । राजा उसके रूप पर मुग्ध हो गए । पूछने पर राजा को मालूम हुआ कि शकुतला एक अम्बरा के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र ऋषि की कन्या है । जब राजा ने विवाह का प्रस्ताव किया तब शकुतला ने कहा 'यदि गांधर्व विवाह में कुछ दोष न हो और आप मेरे ही पुत्र को युवराज बनाएँ तो मैं सम्मत हूँ' । राजा विवाह करके शकुतला को कएव ऋषि के आश्रम पर छोड़ अपनी राजधानी में चले गए । कुछ दिन बीतने पर शकुतला को एक पुत्र हुआ जिसका नाम आश्रम के ऋषियों ने सर्वदमन रखा । कएव ऋषि ने शकुतला को पुत्र के साथ राजा के पास भेजा । शकुतला ने राजा के पास जाकर कहा 'हे राजन् ! यह आपका पुत्र मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है और आपका औरस पुत्र है, इसे युवराज बनाइए' । राजा को सब बातें याद तो थी पर सोरु-निदा के भय से उन्होंने उन्हें छिपाने की चेष्टा की और

शकु तला का तिरस्कार करते हुए कहा—‘हे दुष्ट ! तपस्वनी ! तू किसकी पत्नी है ? मैंने तुमसे कोई संबंध कभी नहीं किया, वस दूर हो’ । शकु तला ने भी खज्जा छोड़कर जो जो जी मे प्राया खूब कहा । इसपर देववाणी हुई ‘हे राजन् । यह पुत्र आपही का है, इसे ग्रहण कीजिए । हम लोगों के कहने से आप इसका भरण करें और इस कारण इसका भरत नाम रखें’ । देववाणी सुनकर राजा ने शकु तला का ग्रहण किया । प्राये चलकर भरत बड़ा प्रतापी राजा हुआ ।

इसी कथा को लेकर कालिदास ने ‘प्रमिशान शाकु तल’ नाटक लिखा है । पर कवि ने कौशल से राजा दुष्यंत को दुष्ट नायक होने से बचाने के लिये दुर्वासा के शाप की कल्पना की है और यह बिलाया है कि उसी शाप के प्रभाव से राजा सब बातें भूल गए थे । दूसरी बात कवि ने यह की है कि जिस निलंजिता और धृष्टता के साथ शकु तला का बिगड़ना महाभारत में लिखा है उसको वे बचा गए हैं ।

दुष्योदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक उदर रोग जो सिंह आदि पशुओं के नख और रोएँ छ्यटा मल, मूत्र, घातवमिश्रित मूत्र या एक साथ मिला हुआ घी और मधु खाने तथा गदा पानी पीने से होता है ।

विशेष—इसमें त्रिदोष के कारण रोगी दिन दिन दुबला और पीला हो जाता है । उसके शरीर में जलन होती है और कभी कभी उसे नूखा भी भाती है । जब बदली होती है और दिन खराब रहता है तब यह रोग प्रायः उभरता है ।

दुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुष्] दे० ‘दुष्’ । उ०—धावो धावो वीर हो, ईहाभूषण लिये जाय । भगे सदै जन जान ले, महा दुष्प तन पाय ।—पं० रासो, पृ० १२५ ।

दुष्पमुष्पो—वि० [सं० दुष्पमुष्पो] दुष्पयुक्त मुखवाली । दुखिनी । उ०—उहाँ सीय दिखी, हठी दुष्पमुष्पी । दिय मुद्रि ताम, सहिष्णव राम ।—पृ० रा०, २ । २७ ।

दुसंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुसङ्ग] कुसंग । बुरा साथ । दुजन का साथ । उ०—सा उपरात जो कोऊ बिनु विचारे गृह छोरे तो दुसंग करि निश्चय भ्रष्ट होइ ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ३२ ।

दुसंत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुष्यन्त] दे० ‘दुष्यन्त’ । उ०—जैस दुस-तहि साकुतला । मधवानलहि कामकदला ।—जायसी (शब्द०) ।

दुस्तर—वि० [सं० दुस्तर] दे० ‘दुस्तर’ । उ०—सरिता की पति सिधु सोउ दुस्तर रह्यो मोई ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३०७ ।

दुसरा—वि० [हि० दूसरा] [वि० ली० दूसरी] दे० ‘दूसरा’ । उ०—(क) तब तो यह लरिका दूसरे दिन फेरि गुसाईं जी के दरसन को आयो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० ३२८ । (ख) तापर कोमल कनक भूमि मनिमय मोहति मन । दिखियत सब प्रतिबिंब मनो घर महँ दुसरो वन ।—नद० प्र०, पृ० ६ । (ग) गोबरधन की मुरति दुसरी । श्री गोविन्दचंद हित कुसरी ।—नद० प्र०, पृ० ३०६ ।

दुसराना—क्रि० सं० [हि० दो या दूसरा] दुहराना । उ०—(क) वह कारज अविचारित कीजे । ताहि न फिर दुसराइ सुनीजे ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) मम भाल में हाल लिख्यो विधि यों, कोऊ या ब्रज बोलत सँके नहीं । नटनागर हा अब कैसी करो, दुसराय के द्वार पे झँके नहीं ।—नद०, पृ० ८१ ।

दुसरिहा—वि० [हि० दूसर + हा (प्रत्य०)] १ साथ रहनेवाला दूसरा भादमी । साथी । सगी । उ०—कह्यो कि मृत्युलोक के माही । तुम्हरा कोई दुसरिहा नाही ।—विश्राम (शब्द०) । २ प्रतिद्वंद्वी ।

दुसह—वि० [सं० दुःसह] जो सह्य न जाय । असह्य । कठिन । उ०—जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुसही—वि० [हि० दुःसह + ई (प्रत्य०)] १ जो कठिनता से सह सके । २ डाही । ईर्षालु । जैसे, प्रसही दुसही । उ०—प्रसही दुसही मरहु मनहि मन बैरिन बढ़हु विषाद । रूप-सुत चारि चार चिरजीवहु शकर गौरि प्रसाद ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुसाखा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + शाखा] एक प्रकार का शमादान जिसमें दो कनखे निकले होते हैं । उ०—झाड़, दुसाखे, झाम, बसुला, बरम हथोरा ।—सूदन (शब्द०) । २ डहे के आकार की एक छोटी लकड़ी जिसमें छोर पर दो कनखे फूटे होते हैं । इसमें साफी (छानने का कपडा) बाँधकर लोग भाँग छानते हैं ।

दुसाध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोषाद या दुःसाध्य] हिंदुओं में एक नीच जाति जो सूअर पालती है ।

दुसाध—वि० नीच । अधम । दुष्ट । पाजी । (गाली) ।

दुसार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + सार] आरपार छेद । वह छेद जो एक ओर से दूसरी ओर तक हो । उ०—(क) लागत कुटिल कटाछ सर क्यों न होय बेहाल । लगत जु हिये दुसार करि तऊ रहत नटसाल ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) रहि न सक्यो कसु करि रह्यो बस कर लीनी मार । भेदि दुसार कियो हियो तनदुति भेदै सार ।—बिहारी र०, दो० ४४३ । (ग) लागी लागी क्या करे लागत रही लगा । लागी तब ही जानिए निकसी जाय दुसार ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

दुसार—क्रि० वि० आरपार । वारपार । एक पार से दूसरे पार तक ।

दुसाल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + शाल] आरपार छेद । उ०—हाल ते हवाल एक धावते घरनि विट्ठि । लाल नैन ज्वाल झाल सी भरी दुसाल दिट्ठि ।—सूदन (शब्द०) ।

दुसाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार का स्वभाव या आचरण । दो बात । उ०—अणुभजिया भजिया तथी, दोहै प्रतप दुसाल । त्रिसटा तो वायस भजे, मोती भजे मराल ।—रघु० ८०, पृ० ४१ ।

दुसाला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दुशाला] दे० ‘दुशाला’ ।

दुसास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुष् (= दुर्) + आसा] उच्छ

भाकाक्षा । ऊँची भाषा । दुर्लभ भाकाक्षा । उ०—साँवरे पियहि सुमिरि बर बाला । भरइ उसास दुसास बिहाला ।—नद० प्र०, पु० १३४ ।

दुसासन^④—सञ्ज्ञा पु० [सं० दुःशासन] दे० 'दुःशासन' ।

दुसाहा—सञ्ज्ञा पु० [देश०] दो फसली खेत । वह खेत जिसमें दो फसले हों ।

दुसील—सञ्ज्ञा पु० [सं० दुःशील] दे० 'दुःशील' । उ०—हिरण्यो हनत उर डर भयो भय करि, सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव दीत्यो हैं ।—सुदर० प्र०, भाग १, पु० ६० ।

यौ०—दुसीलभाव = दुःशीलता ।

दुसुमना—सञ्ज्ञा पु० [फा० दुश्मन] दे० 'दुश्मन' । उ०—सुमन गई ही लैन छाई हो सु मन खोय दुसुमन मेरी ता पैं बोले हैं चवाई री ।—दीन० प्र०, पु० ११ ।

दुसूतो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दो + सुत] एक प्रकार की मोटी चादर जिसमें दो तागो का ताना और धाना होता है । यह पंजाब से आती है और दो या चार तहों की होती है ।

दुसेजा—सञ्ज्ञा पु० [हि० दो + सेज] बड़ी खाट । पलंग । उ०—बहुत पलंग मगान दुसेजा रखत सरोटी । खरसल स्पदन बहल बहुत गाढी सुनवीटो ।—सूदन (शब्द०) ।

दुसौ^④—वि० [सं० दुःसह] दे० 'दुःसह' । उ०—लाजपाज सब तोरि के, मग खेलौंगी फाग । छैल छबीले सौं दुसौ, प्रगठ करौं अनुराग ।—मज० प्र०, पु० २३ ।

दुस्तर—वि० [सं०] १, जिसे पार करना कठिन हो । २ दुर्घट । बिकट । कठिन ।

दुस्तार—वि० [सं० दुस्तार] दे० 'दुस्तर' । उ०—तुम भवसागर दुस्तार ।—अपरा, पु० ७१ ।

दुस्त्यज—वि० [सं० दुस्त्याज्य] जो कठिनाई से छोड़ा जा सके । जिसका त्यागना कठिन हो । उ०—देव गुह गिरा गोरव सुदुस्त्यज राज्य त्यक्त श्री सकल सौमित्रि भ्राता ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुस्थ—वि० [सं०] १ दुःख में पड़ा हुआ । दुःखी । गरीब । २ पीड़ायुक्त । चिह्नित । ३ जो अच्छा न हो । जो ठीक न हो । ४ मुँह । दुष्ट । ५ लुब्ध । मुग्ध [को०] ।

दुस्थित—वि० [सं०] दे० 'दुस्थ' ।

दुस्पर्श—वि० [सं०] दे० 'दुष्पर्श' [को०] ।

दुस्पर्शा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुस्पर्शा' [को०] ।

दुस्पृष्ट—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ हलका स्पर्श । हलकी छुपन । २ जिह्वा का तालु से वह हलका स्पर्श जिससे अतस्थ वरुं (य र ल व) का उच्चारण होता है [को०] ।

दुस्फाट—सञ्ज्ञा पु० [सं० दुस्फाट] एक प्रकार का शास्त्र [को०] ।

दुस्मर—वि० [सं०] जो कठिनाई से याद आए । जिसे स्मरण रखना कठिन हो [को०] ।

दुस्सह—वि० [सं०] दे० 'दुःसह' ।

दुस्साध्य—वि० [सं०] दे० 'दुःसाध्य' ।

दुहकर^④—वि० [सं० दुहकर] दे० 'दुहकर' ।

दुहता—सञ्ज्ञा पु० [सं० दोहिन] [स्त्री० दुहती] बेटो का बेटा । नाती । उ०—नूरजहाँ के साथ हींदे पर उसकी दुहती भी थी ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

दुहृत्य^④—सञ्ज्ञा [सं० द्वि, प्रा० दु + सं० हृत] दो पक्तियों का छंद । दे० 'दोहा' । उ०—छंद प्रबंध कवित्त जति नाटक गाह दुहृत्य । लघु गुह मंडित खडियहि पिगल अमर भरय्य ।—पु० रा०, १।८१ ।

दुहृत्या—वि० [हि० दो + ह्राय] [वि० स्त्री० दुहृत्यो] १ दोनों हाथों से किया हुआ । जैसे, दुहृत्यो मार । २ जिसमें दो मूठें या दस्ते हों ।

दुहृत्थाशासन—सञ्ज्ञा पु० [हि० दुहृत्था + सं० शासन] दे० 'द्विदल शासन प्रणाली' ।

दुहृत्यो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दो + ह्राय] मालखम की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी मालखम को दोनों हाथों से कुहनी तक सपेटता है और फिर जिघर का हाथ ऊपर होता है सघर की टाँग को उड़ाकर मालखम पर सवारी बाँधता है और अपना हाथ पेट के नीचे से निकाल लेता है ।

दुहना—क्रि० सं० [सं० दोहन] १. स्तन से दूध निचोड़कर निकालना । दूध निकालना । उ०—(क) तिल सी तो गाय है, छोना नो नो हाय । मटकी भर भर दुहिए, पूँछ धठारह हाय ।—कवीर (शब्द०) । (ख) राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुहसेवा करवाये । सुरभी दुहत दोहनी माँगी बाँह पसारि देवाये ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—'दूध' और 'दूधवाला पशु' दोनों इसके कर्म हो सकते हैं । जैसे, दूध दुहना, गाय दुहना ।

२ निचोड़ना । तत्व निकालना । सार निकालना । सार खींचना । उ०—(क) पाछे पशु को रूप हरि लोन्हें नाना रस दुहि काढ़े । तापर रचना रची विधाता बहु विधि पल्लन बाढ़े ।—सूर (शब्द०) । (ख) दीप दीप के दीप की दिपति दुहिन दुहि लीन । सब ससि दामिनी भा मिले वा भामिनि को कीन ।—शृ० सत० (शब्द०) ।

मुहा०—दुह लेना = (१) नि सार कर देना । सार खींच लेना । (२) धन हर लेना । जहाँ तक हो किसी से लाभ उठाना । लूटना । उ०—वेचहि वेद धरम दुहि लेही । पिसुन पराय पाप कहि देही ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दोहनी] बरतन जिसमें दूध दुहा जाता है । दोहनी ।

दुहरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दोहरना' ।

दुहरा—वि० [हि०] दे० 'दोहरा' ।

दुहराना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दोहराना' ।

दुहराना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दोहराने का काम । दोहराने की क्रिया या भाव ।

दुहराहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दुहरा + हट (प्रत्य०)] पुनरावर्तन ।

दुहराने का भाव या क्रिया । उ०—गान ? जिसपर हों पड़े
दुहराहटो के दाग ? गान जिसकी ललक से बुझ जाय अमर
चिराग । —हिम कि०, पृ० १३८ ।

दुहाना—क्रि० सं० [हि० दुहाना] दे० 'दुहाना' । उ०—खिरक
दुहान जाति मोहि, कब आन मिलैगो धाइ ।—सोदर
भूमि० प्र०, पृ० २३३ ।

दुहाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि० (= दो) + आह्वय (= पुकारना)]
१ घोषणा । पुकार । उच्च स्वर से किसी बात की सूचना
जो चारो ओर दी जाय । मुनादी ।

मुहा०—किसी की दुहाई फिरना = (१) राजा के सिंहासन पर
बैठने पर उसके नाम की घोषणा होना । राजा के नाम की
सूचना छके आदि के द्वारा फिरना । उ०—बैठे राम राजसिंहा-
सन जग मे फिरी दुहाई । निर्भय राज राम को कहियत सुर
नर मुनि सुखदाई ।—सूर (शब्द०) । (२) प्रताप का ढका
पिटना । प्रभुत्व की डोही फिरना । विजय घोषणा होना ।
जयजयकार । उ०—(क) बिष, उदयगिरि, धोलागिरी ।
काँपी सृष्टि दुहाई फिरी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) नगर
फिरी रघुवीर दुहाई । तब प्रभु सीतहि बोल पठाई ।—मुलसी
(शब्द०) ।

२ सहायता के लिये पुकार । बचाव या रक्षा के लिये किसी का
नाम लेकर चिल्लाने की क्रिया । सताए जाने पर किसी ऐसे
प्रतापी या बड़े का नाम लेकर पुकारना जो बचा सके । उ०—
तब सतगुरु कहे समुझाई । काहे को तुम देव दुहाई ।—कबीर
सा०, पृ० ५५७ ।

मुहा०—दुहाई देना = (सकट या आपत्ति आने पर) रक्षा के
लिये पुकारना । अपने बचाव के लिये किसी का नाम लेकर
पुकारना । उ०—(क) हम बचानेवाले कीन हैं, राजा दुष्यंत
की दुहाई दे वही बचाएगा क्योंकि तपोवनी की रक्षा राजा के
सिर है ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । (ख) किसी ने आकर
दुहाई दी कि मेरी गाय खोर लिए जाता है ।—शिवप्रसाद
(शब्द०) ।

३. शपथ । कसम । सौगद । जैसे, रामदुहाई । उ०—(क) मन
माला तन सुमिरनी हरि जी तिलक दियाय । दुहाई राजा राम
की हुआ दूर कियाय ।—कबीर (शब्द०) । (ख) अश मन
मगन हो रामदुहाई । मन, वच, क्रम हरि नाम हृदय धरि जो
गुरुवेद बताई ।—सूर (शब्द०) । (ग) नाथ सपथ पितु चरन
दुहाई । भयउ न भुवन भरत सम भाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खाना । उ०—आजु ते न जेही दधि देवन, दुहाई
खाऊँ मैया को, कन्हैया उत ठाढ़ी रहत है ।

दुहाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहना] १ गाय, भैंस आदि को दुहने का
काम । २. दुहने की मजदूरी ।

दुहाग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य, प्रा० दुर्भाग दुहाग] १ दुर्भाग्य ।
२. सोहाग का उलटा । वैधव्य । रंदापा ।

दुहागिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहागी] विषवा । सुहागिन का
उलटा । उ०—(क) हंसि हंसि के तव पाइया बिन पाया तिन

रोय । हाँसी खेजत हरि मिले तो नहीं दुहागिन होय ।—कबीर
(शब्द०) (ख) सेज बिछावे सु दरी अंतर परदा होय । तन
सोंपे मच दे नहीं सदा दुहागिन सोय ।—कबीर (शब्द०) ।

दुहागिला—वि० [हि० दुहाग + इल (प्रत्य०)] १ अभागा ।
अनाथ । बिना मालिक का । २ सूना । खाली । उ०—तजि
के दिगीसन दुहागिल के दोनों दिसि मेले हूँ बदन सहै सोक
की रगर को ।—गुमान (शब्द०) ।

दुहागी—वि० [सं० दुर्भाग्य] [वि० स्त्री० दुहागिन] दुर्भागी ।
अभागा । बदकिस्मत । उ०—सब जग दोखी एकला सेवक
स्वामी दोइ । जगत दुहागी राम बिनु साधु सुहागी सोइ ।—
दादू (शब्द०) ।

दुहाजू^१—वि० पुं० [सं० द्विभार्य] जो पहली स्त्री के मर जाने पर
दूसरा विवाह करे ।

दुहाजू^२—वि० स्त्री० जो स्त्री पहले पति के मर जाने पर दूसरा विवाह
करे ।

दुहाना—क्रि० सं० [हि० दुहना का प्रे० रूप] दुहने का काम
दूसरे से कराना । दूध निकलवाना । जैसे, दूध दुहाना, गाय
दुहाना । उ०—दूध वही जु दुहापो री वाही वही सु सही
जो वही ढरकायो ।—रसखान (शब्द०) ।

दुहाव—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहाना] १ एक प्रथा जिसके अनुसार
प्रति वर्ष जन्माष्टमी आदि त्योहारों को किसानों की गाय
भैंस का दूध दुहाकर जमींदार ले लेता है । २ वह दूध
जो इस प्रथा के अनुसार किसान जमींदार को देता है ।

दुहावनी—क्रि० सं० [सं० दोहन] दे० 'दुहाना' । उ०—मनभावती
देहों दुहावनी पे यह गाय तुही पे दुहावनी है ।—ग्वाल
(शब्द०) ।

दुहावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहाना] १ वह धन जो ग्वाले को
गाय दुहने के लिये दिया जाता है । दूध दुहने की मजदूरी ।
उ०—(क) घर औरन के घर ते हम सो तुम दूनी
दुहावनी लेबो करो ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) मन-
भावनी देहों दुहावनी पे यह गाय तुहीं पे दुहावनी है ।—
ग्वाल (शब्द०) ।

दुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] कन्या । लड़की ।

दुहितृपति—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद ।

दुहिन^७—संज्ञा पुं० [सं० दूहिण] ब्रह्मा । उ०—करहि सुमगल गान
सुघर सहनाइन्ह । जेई चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ।
—तुलसी (शब्द०) ।

दुहुँघा—वि० [प्रा० हि०] दोनों ओर । दोनों तरफ । उ०—
प्रेमपगी तृतियाँ बहूँघा की दुहुँ की लगी प्रतिही चितचाहीं ।
—रसखान, पृ० २५ ।

दुहुचनि^७—वि० [हि०] दोनों ।—शिव शक्ती वर्तत मत दुहुचनि
को नाहीं ।—सुंदर प्र०, भाग १, पृ० ५८ ।

दुहुँ—वि० [दो + हुँ (प्रत्य०)] दोनों ही । उ०—(क) दुहुँ
साँति असमजसे बाण चले सुख पाय ।—केशव (शब्द०) ।

(ख) वग्गा खड्गगे दुहूँ वग्गे, काल रगे वीरय ।—रा०
क०, पु० ४६ ।

दुहूँन^७—वि० [हि०] दे० 'दुहूँ' । उ०—कवहुँक वे उनके वे उनके
हौं दुहूँन के हक सारी ।—पोद्दार अभि० प्र०, पु० १६१ ।

दुहेनूँ—सका स्त्री० [हि० दुहना] दूध देनेवाली गाय ।

दुहेला^१—सका पु० [सं० दुहँला] दुख । विपत्ति । मुसीबत । उ०—
पद्मावति जगन्ममनि कहं लगि कहौं दुहेल । तेहि समुद
महं खोएउं हौं का जिमौ मखेल ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहेला^२—वि० [दुहेला (=कठिन खेल)] [वि० स्त्री० दुहेली]
१ दुखदायी । दुःसाध्य । कठिन । उ०—(क) भक्ति
दुहेली राम की नहि कायर को काम । निस्प्रेही निरधार
को भाठ पहर सग्राम ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दादू
भारम साधु का खरा दुहेला जान । जीवित मिरतक होइ
चलइ रामनाम नोसान ।—कबीर (शब्द०) । (ग) रामची
भगती दुहेली रे बापा । सकल निस्तार चोन्ह से बापा ।—
दक्खिनी०, पु० १५ । २ दुखी । दुःखिया । दीन । उ०—
(क) पद्मावति निज कंत दुहेली । विनु जल कमल सूख
जनु बेली ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भई दुहेली टेक
विहूनी । थाँभ नाइ उठि सके न धूनी ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहेला^३—सका पु० विकट । दुःखदायक कार्य । उ०—(क) प्रबहि
बारि तें प्रेम न खेला । का जानसि कस होय दुहेला ।—
जायसी (शब्द०) । (ख) पहिल प्रेम है कठिन दुहेला ।
दोठ जग तरा प्रेम जेइ खेला ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहूँ^१—वि० [हि०] दोनों उ०—ह्रस्व वीरघ दुहूँ नेम बिण खीबे ।
—रघु० क०, पु० ५० ।

दुहोतरा^२—सका पु० [सं० दोहित] [स्त्री० दुहोतरी] लड़की का
लड़का । कन्या का पुत्र । नाती ।

दुहोतरा^३—वि० [सं० द्वि, हि० दो, दु+उत्तर] दो अधिक । दो
ऊपर । उ०—ठारे सोइ दुहोतरा भगहन मास सुजान ।
बैठि सजल गढ़ नोहि कै किय आखेट विधान ।—सुदन
(शब्द०) ।

दुहा—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुहा] दुहने योग्य ।

दुहा—सका पु० [सं०] शमिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा के
एक पुत्र का नाम ।

विशेष—राजा ययाति जब दिग्विजय कर चुके तब उन्होंने
भूमि को अपने पुत्रों में बाँटा था । इस बाँट के अनुसार
दुहा को पश्चिम दिशा के देश मिले थे । राजा ययाति ने जब
इन्हें अपना ब्रह्मपा देकर इनसे जवानी माँगी थी तब इन्होंने
प्रस्थीकार कर दिया था । इसपर ययाति ने शाप दिया था
कि तुम्हारी कोई प्रिय प्रमिलाया पूर्ण न होगी । दे० 'दुहा' ।

दूँगड़ा^१—सका पु० [देश०] दे० 'दोंगरा' ।

दूँगरा^२—सका पु० [देश०] दे० 'दोंगरा' ।

दूँदी^३—सका पु० [सं० द्वन्द्व] १ ऊघम । उपद्रव ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

२ दे० 'दुँद' ।

दूँदना^१—क्रि० प्र० [हि० दूँद] १ उपद्रव करना । ऊघम मचाना ।
२ धोर शब्द करना ।

दूँदि^२—सका स्त्री० [हि० दूँद] दे० 'दूँद' ।

दू—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' । उ०—उलग कहइ छइ एकल । दू जण
सरिस कहइ घर बास ।—बी० रासो, पु० ५२ ।

यौ०—दूजण=दो जन । पति पत्नी ।

दूआ^१—सका पु० [देश०] एक गहना जो कलाई पर और सब गहनों
के पीछे की ओर पहना जाता है । पछेली ।

दूआ^२—सका पु० [हि० दो+आ (प्रत्य०)] १ ताश या गजीके में
वह पत्ता जिसपर दो वूटियाँ या टिप्पियाँ हो । दुक्की । २
सोरही के खेल में, दो कोठियों का चित (और बाकी चोदह
कोठियों का पट) पटना (जुमारी) । जैसे, जिसका दूआ,
उसका जुमा (कहावत) । ३ किसी, विशेषतः जुएवाले
खेल में, वह दाँव जिसका दो चिह्नों, वूटियों और कोठियों
आदि से संवध हो ।

दूआ^३—सका स्त्री० [प्र० दुमा] दे० 'दुमा' ।

दूई^१—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' ।

दूईजा^२—सका स्त्री० [सं० द्वितीया] किसी पक्ष की दूसरी तिथि ।
दूष । द्वितीया ।

दूई^३—वि० [हि०] दे० 'दो' । उ०—जाड़ा जाय रुई कि दूई ।
(लोकोक्ति) ।

दूक^७—वि० [सं० द्वैक] दो एक । कृष । चद । उ०—साभ सने को
पालिवो हानि समय की चूक । सदा विचारहि चाव मति
सुदिन कुदिन दिन दूक ।—तुलसी (शब्द०) ।

दूकान—सका पु० [प्रा० दुकान] दे० 'दुकान' ।

दूकानदार—सका पु० [प्रा० दूकानदार] दे० 'दुकानदार' ।

दूकानदारी—सका स्त्री० [प्रा० दुकानदारी] दे० 'दुकानदारी' ।

दूखा^१—सका पु० [सं० दुख] दे० 'दुख' ।

दूखन—सका पु० [सं० दूषण] दे० 'दूषण' ।

दूखना^२—क्रि० प्र० [सं० दूषण + ना (प्रत्य०)] दोष लगाना ।
ऐब लगाना ।

दूखना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दुखना' ।

दूखित^१—वि० [सं० दूषित] दे० 'दूषित' ।

दूखित^२—वि० [सं० दुखित] दे० 'दुखित' ।

दूगला^१—सका पु० [देश०] एक प्रकार का बड़ा टोकरा या दोरा ।

दूगला^२—सका पु० [हि० दो+गला] दे० 'दोगला' ।

दूगुना^१—वि० [सं० द्विगुण] दूना । दुगुना ।

दूगू—सका पु० [देश०] एक तरह का बकरा जो हिमालय की तराई
में होता है ।

दूज—सका स्त्री० [सं० द्वितीया, प्रा० दुइय, दुइज] किसी पक्ष की
दूसरी तिथि । दुइज । द्वितीया ।

मुहा०—दूज का चाँद होना = बहुत दिनों पर दिखाई पड़ना ।
कम दिखाई पड़ना । कम दर्शन देना ।

दूजण^१—सखा पुं [हिं० दू (= दो) + जन] दो प्राणी । पति पत्नी । उ०—उसग कह्यो छद्द एकलां । दूजण सरिस कहद्द घर बास ।—वी० रासो, पृ० ५२ ।

दूजण^२—सखा पुं [सं० दुर्जन, प्रा० दुर्जण, दूजण] दे० 'दुर्जन' । दूजा—वि० पुं [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय, दुइज] दूसरा । अन्य । द्वितीय ।

दूजी^१—सखा स्त्री [देश०] घोड़ों का भाषण विशेष । उ०—साखत पेसबद घर पूजी । हीरन जटित हैकलै दूजी ।—हम्मोर०, पृ० ३ ।

दूजी^२—वि० स्त्री [हिं०] दे० 'दूजा' । उ०—(क) बोली मनुर बचन तिय दूजी ।—मानस, २।२२१ । (ख) अब जिय चाह करो जनि दूजी । भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजी ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६०७ ।

दूझ—सखा पुं [सं० द्वेष या द्विधा] १ दुःख । कष्ट । २ दुविधा । सदेह । उ०—कबीर सोई सुरमा, मन से माँडै दूझ । पाँचो इद्री पकरि के, दूरि करे सब दूझ ।—कबीर सा०सं०, पृ० २७ ।

दूझना^१—क्रि० प्र० [सं० द्विधा, प्रा० दुज्झा] दुष्ट चिन्तन करना । दुविधा में पड़ना । उ०—बात भवर कछु भवरहि दूझै । अलप ज्ञान गुनि भनमन दूझै ।—नंद० प्र०, पृ० १४५ ।

दूझना^२—क्रि० प्र० [सं० दोहरा, प्रा० दुज्झ या हिं० दुहना] दे० 'दूध देना' । उ०—श्रीसी एकै गाइ है दूझे बारह मास । सो सदा हमारे सग है दाहू घातम पास ।—दादू०, पृ० १०६ ।

दूडभ, दूडभ—वि० [सं०] १ व्यसनप्राप्त । पीडायुक्त । पीडित । २ जिसे ध्वस्त या दग्ध करना कठिन हो [को०] ।

दूडारा, दूणाश—वि० [सं०] दे० 'दूडभ', 'दूडभ' [को०] ।

दूत—सखा पुं [सं०] [स्त्री० दूती] १ वह मनुष्य जो किसी विशेष कार्य के लिये भयवा कोई समाचार पहुँचाने या लाने के लिये कहीं भेजा जाय । संदेश ले जाने या ले आनेवाला मनुष्य । चर । बसीठ ।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ दूसरे राज्यों में संधि और विग्रह आदि का समाचार पहुँचाने या वहाँ का हालचाल जानने के लिये दूत रखे जाते थे । अनेक ग्रंथों में योग्य दूतों के लक्षण दिए हुए हैं । उनके अनुसार दूत को यथोक्तवादी, देशभाषा का अच्छा जानकार, कार्यकुशल, सहनशील, परिश्रमी, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, मन्त्रणकुशल और सर्वगुणसंपन्न होना चाहिए । आजकल एक राष्ट्र के प्रतिनिधि दूसरे राष्ट्र से स्थायी रूप से रहते हैं वे भी दूत या राजदूत ही कहलाते हैं ।

२ प्रेमी का संदेश प्रेमिका तक या प्रेमिका का संदेश प्रेमी तक पहुँचानेवाला मनुष्य ।

दूतक—सखा पुं [सं०] १. दूत । २. वह कर्मचारी जो राजा की दी हुई आज्ञा का सर्वसाधारण में प्रचार करता है ।

दूतकत्व—सखा पुं [सं०] १. दूत का काम । २. दूतक का काम ।

दूतकर्म—सखा पुं [सं० दूतकर्मन्] संदेश या खबर पहुँचाने का काम । दूत का काम । दूतत्व ।

दूतघ्नी—सखा स्त्री [सं०] गोरखमु ङी । कदबपुष्पी ।

दूतता—सखा स्त्री [सं०] दूतत्व । दूत का काम ।

दूतत्व—सखा पुं [सं०] दूत का काम । दूतता ।

दूतपन—सखा पुं [सं० दूत + हिं० पन (प्रत्यय)] दूत का काम । दूतत्व ।

दूतर^१—वि० [सं० जुस्तर, प्रा० दुस्तर दूतर] दे० 'दुस्तर' । उ०—सासी नद कहत सब कतर । मूरख जन मनमोहित दूतर ।—नंद० प्र०, पृ० १४४ ।

दूतावास—सखा पुं [सं० दूत + भावस] वह स्थान जो किसी दूसरे राज्य या देश में रहनेवाले किसी दूसरे राज्य या देश के राजदूत या वाणिज्यदूत के अधिकारांतर्गत हो (प्र० एम्बेसी) । राजदूत या वाणिज्य दूत का कार्यालय । राजदूत या वाणिज्य दूत का निवासस्थान । कांस्युलेट । जैसे,—(क) शर्माई में रूसी दूतावास पर स्थानीय पुलिस ने चढ़ाई की और कितने ही आदमियों को गिरफ्तार किया । (ख) महाराज जार्ज के पधारने पर रोम स्थित ब्रिटिश दूतावास में बड़ा ध्वनद मनाया गया ।

दूति—सखा स्त्री [सं० दूती] दे० 'दूतिका' ।

दूतिका—सखा स्त्री [सं०] दूती ।

दूतिरा—वि० [सं० दुस्तर] जो कठिनाई से पार किया जाय । दुस्तर । उ०—झूठ हाथ गल कंथा पाई । खस सूर दोउ बेगली लाई । झूठ कोटि दस धागा भरौ । गुह परसादे दूतिर तिरौ ।—गोरख०, पृ० २२० ।

दूती—सखा स्त्री [सं०] प्रेमी का संदेश प्रेमिका तक या प्रेमिका का संदेश प्रेमी तक पहुँचानेवाली स्त्री । स्त्री और पुरुष को मिलानेवाली या एक का संदेश दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री । कुटनी ।

विशेष—साहित्य में दूतियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा । उत्तमा दूती उसे कहते हैं जो सीधी सीधी बातें कहकर अच्छी तरह समझाती हो । मध्यमा दूती उसे कहते हैं जो कुछ मधुर और कुछ कटु बातें सुनाकर अपनी काम निकासना चाहती हो । केवल कटु बातें कहकर अपनी काम निकासनेवाली दूती को अधमा दूती कहते हैं । सखी, नतंकी, दासी, संन्यासिनी, घोबिन, बितेरिन, तंबोलिन, गंधिन आदि स्त्रियाँ दूती के काम के लिये उपयुक्त समझी जाती हैं ।

पर्या०—संचारिका । सारिका । दूतिका । कुटनी ।

दूत्य—सखा पुं [सं०] १. दूत का भाव । २. दूत का काम ।

दूदा^१—सखा पुं [हिं० दूध] दे० 'दूध' । उ०—ले प्राए दूद और नान अपने हमराह । कहे मैं खिज पैगबंर हूँ बल्लाह ।—बख्शनी०, पृ० ३१५ ।

दूद^२—सखा पुं [प्रा०] घुवा । भाप । जैसे, दूद कष ।

दूद^३—सखा पुं [सं० दूद] दे० 'दूद' । उ०—चात्रक मुक्त भूदत नहीं दादुर दूदे देह । बिरहिन हिय खूदे खरी खूदे कंधे लेह ।—सं० सप्तक, पृ० २६५ ।

दूधकश—घंघा श्री० [क्रा०] १. घुमाँ निकलने का मार्ग। वह छिद्र या नल जिससे घुमाँ बाहर निकल जाय। घुमाँकश। चिमनी। २ एक प्रकार का दमकला जिससे घुमाँ दिकर पोचों में लगे हुए कीड़े छुड़ाए जाते हैं।

दूदला—सखा पु० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे डहला कहते हैं।
दूदुह(५)—सखा पु० [सं० दुहडुम] पानी का साँप। डेडहा। (डि०)।
दूदुह(५)^२—सखा पु० [सं० दुन्दुम] दे० 'दुन्दुम'।

दूध—सखा पु० [सं० दुग्ध, प्रा० दुग्घ] १ सफेद रंग का वह प्रसिद्ध तरल पदार्थ जो स्तनपायी जीवों की मादा के स्तनों में रहता है और जिससे उनके बच्चों का बहुत दिनों तक पोषण होता है। पय। दुग्ध।

विशेष—दूध का स्वाद कुछ मीठा होता है और इसमें एक प्रकार की विलक्षण हल्की गंध होती है। भिन्न भिन्न जातियों के प्राणियों के दूध के संयोजक अंश तो समान ही होते हैं, पर उसके भाग में बहुत कुछ भिन्न होता है। एक ही जाति के भिन्न भिन्न प्राणियों और कभी कभी एक ही प्राणी में भिन्न भिन्न समयों में भी दूध के भाग में कुछ भिन्न होता है। दूध का दूँ से दूँ तक अंश जल होता है और शेष भाग प्रोटीन, चरबी, शर्करा और नमक आदि का होता है। दूध जब थोड़ी देर तक यों ही छोड़ दिया जाता है तब उसकी चरबी ऊपर आ जाती है और वही परिवर्तित होकर मलाई और मक्खन बन जाती है। दूध में जब विशेष प्रकार की और उचित मात्रा में खटाई का अंश मिल जाता है तब वही जमकर दही बन जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दूध में से जल और उसके संयोजक अणु अलग हो जाते हैं। इसे दूध का फटना कहते हैं। (मनुष्य जाति की) स्त्रियों के दूध से बहुत अधिक मिलता जुलता दूध गाय या भैंस का होता है, इसी लिये मनुष्य बहुधा गाय या भैंस का दूध पीते, उसका दही जमाते, मिठाइयों के लिये खोसा या छेना बनाते तथा उसमें से मक्खन मक्खन आदि निकालते हैं। कहीं कहीं बकरी और ऊँटनी आदि का दूध भी पीया जाता है। वैद्यक में भिन्न भिन्न प्राणियों के दूध के भिन्न भिन्न गुण बतलाए गए हैं। आजकल पाश्चात्य विद्वानों ने दूध का विश्लेषण करके उसके संयोजक पदार्थों के संबंध में जो कुछ निश्चय किया है उसके अनुसार १०० अंश दूध में ८६ अंश पानी, ४८ अंश चीनी, २६ अंश मेदा (मक्खन), ४० अंश केसिन और (घड़े की) सफेदी और ०.७ अंश खनिज पदार्थ (जैसे खड़िया, फास्फरस आदि) होता है।

मुहा०—दूध उगलना = बच्चे का दूध पीकर कै कर देना। दूध उछालना = खोलते हुए दूध को ठंडा करने के लिये कड़ाही आदि में से उसे बार बार किसी छोटे बरतन में निकालना और उसमें से धार बाँधकर कड़ाई में दूध गिराना। दूध को ठंडा करने के लिये बार बार उसे धार बाँधकर नीचे गिराना। दूध उतरना = छातियों में दूध भर जाना। दूध और काँजी सा मिलना = विरोध लिए मिलना। उ०—कुछ न फल है दूध काँजी सा मिले। जो मिलें तो दूध जल जैसा मिलें।—चुभते०, पृ० १४। दूध और चीनी सा मिला चलना = दो

का मिलकर और उत्तम हो जाना। उ०—नित्य नैमित्तिक व्यवहार में वे दोनों दूध और चीनी की तरह मिल चले थे।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २४४। दूध और जल सा मिलना = सम भाव से मिलना। अमेद भाव से मिलना। उ०—मिल गए पर चाहिए फटना नहीं। तो परस्पर हो निछावर जो हिलें। कुछ न फल है दूध काँजी सा मिलें। जो मिलें तो दूध जल जैसा मिलें।—चुभते०, पृ० ६४। दूध का दूध और पानी का पानी करना = बिल्कुल ठीक ठीक न्याय करना। पूरा पूरा न्याय करना। ऐसा न्याय करना जिसमें किसी पक्ष के साथ तनिक भी अन्याय न हो। जैसे,—आपने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया, नहीं तो ये लोग लड़ते लड़ते मर जाते। उ०—हम जातहि वह उधरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी।—सूर (शब्द०)। दूध का दूध पानी या पानी होना = सच और झूठ का खुल जाना। उ०—मगर खैर, अब तो दूध का दूध और पानी का पानी हो गया।—सूर कृ०, पृ० ४२। दूध का बच्चा = वह बच्चा जो केवल दूध के ही आहार पर रहता हो। बहुत ही छोटा और केवल दूध पीनेवाला बच्चा। दूध का सा उवाल = शीघ्र शांत होनेवाला क्रोध या मनोवेग आदि। दूध की मक्खी = तुच्छ और तिरस्कृत पदार्थ। दूध की मक्खी की तरह निकालना या निकालकर फेंक देना = किसी मनुष्य को बिल्कुल तुच्छ और अनावश्यक समझकर अपने साथ या किसी कार्य आदि से एकदम अलग कर देना। उस तरह अलग कर देना जिस तरह दूध में से मक्खी अलग की जाती है। जैसे,—राव लोगो ने उनकी सभा से दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया। उ०—मनसा बचन कर्मना अब हम कहत नहीं कछु राखी। सूर काडि डारयो ब्रज तें ज्यों दूध माँक ते माँकी।—सूर (शब्द०)। मुँह से दूध की वू आना = अभी तक बच्चा और अनुभवहीन होना। विशेष अनुभव और ज्ञान न होना। दूध के दाँत = वे दाँत जो बच्चों की पहले पहल दूध पीने की अवस्था में निकलते हैं और छह सात वर्षों की अवस्था में जिनके गिर जाने पर दूसरे दाँत निकलते हैं। दूध के दाँत न टटना = अभी तक बच्चा होना। ज्ञान और अनुभव न होना। जैसे,—अभी तक तो उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, वह क्या मेरे सामने बात करेगा। दूध दुहना = स्तनो को दबाकर दूध की धार निकालना। दूध देना = अपने स्तनों में से दूध छोड़ना। अपनी छातियों में से दूध निकालना। जैसे,—उनकी भैंस ८ सेर दूध देती है। दूध चढ़ना = (१) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा का कम होना। जैसे,—इधर कई दिनों से इसकी मा का दूध चढ़ गया है। (२) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा बढ़ना। दूध चढ़ाना = दुहते समय गाय का अपने दूध को स्तनों में ऊपर की ओर खींच लेना जिससे दुहनेवाला उसे खींचकर बाहर न निकाल सके। (प्रायः गाय भैंस आदि अपने बछड़ों के लिये स्तनो में दूध घुरा रखती हैं, इसी को दूध चढ़ाना कहते हैं।) छठी का दूध याद आना = दे० 'छठी' के मुहा०। दूध छुड़ाना = बच्चे की दूध पीने की मादत छुड़ाना। किसी को

दूध छोड़ने में प्रवृत्त करना । दूध ढाखना = बच्चों का पीए हुए दूध की कै कर देना । दूध छोड़ना = (१) गाय आदि का दूध देना बंद या कम कर देना । (२) गरम दूध को ठंडा करने के लिये हिंसा या घेंघोलना । दूधों नहाओ पूतों फलो = धन और सतान की वृद्धि हो । संपत्ति और संतान खूब बढ़े (भाषाशास्त्र) । दूध पिखाना = बालक का मुँह स्तन के साथ लगाकर उसे दूध की धार छोचने देना । दूध पीठा बच्चा = गोद का बच्चा । बहुत छोटा बच्चा । दूध पीना = स्तन को मुँह में लगाकर उसमें से दूध की धार खींचना । स्तनपान करना । किसी चीज का दूध पीना = (किसी चीज का) ऐसी दशा में रहना जिसमें उसके नष्ट होने आदि का खटक न रहे । जैसे, — आप बबराइए नहीं, आपके रूप दूध पीते हैं । दूध फटना = खटाई आदि पड़ने के कारण दूध का जल भलग और सार भाग या छेना भलग हो जाना । दूध बिगड़ना । दूध फाड़ना = किसी क्रिया से दूध का पानी और छेना या सार भाग भलग भलग करना । दूध बढ़ाना = दूध छुड़ाना । बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना । उ० — दूध बढ़ाने की पीछे गंगा जी ने दोनों लड़के बालभोक जी को सोंप दिए । — सीताराम (शब्द०) । (स्तनों में) दूध भर घाना = बच्चे की ममता या स्नेह के कारण माता के स्तनों में दूध उत्तर घाना । माता का प्रेम बढ़ना ।

२ घनाज के हरे बीजों का रस जो पीछे से जमकर सत्त हो जाता है ।

मुहा० — दूध पड़ना = घनाज में रस पड़ना । घनाज का पैयारी पर घाना ।

३. दूध की तरह का वह तरल पदार्थ जो अनेक प्रकार के पौधों की पत्तियों और ठठलों में रहता और उनके तोड़ने पर निकलता है । जैसे, मदार का दूध, बरगद का दूध ।

दूधचढ़ी — वि० स्त्री० [हि० दूध + चढ़ना] दूध देने में बड़ी हुई । जिसके स्तनों में दूध पूर्व की अपेक्षा बढ़ गया हो । उ० — गैया गनी न जाहि तरणि सब बच्छ बढ़ी । ते बरहि जयुन के कच्छ हूने दूध चढ़ी । — सूर (शब्द०) ।

दूधपिलाई — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + पिलाना] १ दूध पिलानेवाली दाई । २. ब्याह की एक रसम जिसमें बारात के समय बर के घोड़ा या पालकी आदि पर चढ़ने के पूर्व माता बर को दूध पिलाने की सी मुद्रा करती है । ३. वह धन या नेग जो माता को इस क्रिया के बदले में मिलता है ।

दूधपूत — संज्ञा पुं० [हि० दूध + पूत (= पुत्र)] धन और संतति । उ० — दूधपूत की छोड़ी भास । गोधन भरता करे निरास । सचि हित हरि सों कियो । — सूर (शब्द०) ।

दूधफेनी^१ — संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धफेनी] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है ।

दूधफेनी^२ — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + फेनी] फेनी नाम का पकवान जो मीदे का बना हुआ और सूत के सन्धों के रूप में होता है और जो दूध में पकाकर खाया जाता है ।

दूधबहन — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + बहन] ऐसी बालिका जो किसी ऐसी स्त्री का दूध पीकर पली हो जिसका दूध पीकर और कोई बालिका या बालक भी पला हो ।

विशेष — जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री की बालिका को अपना दूध पिलाकर पालती है तब वह बालिका उस पहली स्त्री के लड़कों या लड़कियों की दूधबहन कहलाती है ।

दूधभाई — संज्ञा पुं० [हि० दूध + भाई] [स्त्री० दूधबहिन] ऐसे दो बालकों में से एक जो एक ही स्त्री के स्तन का दूध पीकर बने हों पर जिनमें से कोई एक दूसरे माता पिता से उत्पन्न हो ।

विशेष — जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री के बालक को अपना दूध पिलाकर पालती है तब उन दोनों स्त्रियों के बालक परस्पर दूधभाई कहलाते हैं ।

दूधमलाई — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + मलाई] एक प्रकार की नूतौदार मलमल ।

दूधमसहरी — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + मसहरी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा ।

दूधमुँहा — वि० [हि० दूध + मुँहा] जो अभी तक माता का दूध पीता हो, अथवा जिसके दूध के दाँत अभी न दूटे हों । छोटा बच्चा । बालक ।

दूधमुख — वि० [हि० दूध + सं० मुख] छोटा बच्चा । बालक । दुधमुँहा । उ० — नाथ करहु बालक पर छोह । सुध दूधमुख करिय न छोह । — तुलसी (शब्द०) ।

दूधराज — संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की बुलबुल जो भारत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान में पाई जाती है । भारत में यह स्थिर रूप से रहती है । इसे शाह बुलबुल भी कहते हैं । २. एक प्रकार का सौर जिसका फन बहुत बड़ा होता है ।

दूधवाला — संज्ञा पुं० [हि० दूध + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० दूधवाली] दूध बेचनेवाला । ग़ाला ।

दूधसार — संज्ञा पुं० [हि० दूध + सं० सार] एक प्रकार का केला । दूधहंडी — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + हंडी] मिट्टी की वह हॉड़ी जिसमें दूध रखकर आग पर पकाते हैं । मेटिया ।

दूधा — संज्ञा पुं० [हि० दूध] १. एक प्रकार का घान जो अगहन के महीने में तैयार हो जाता है और जिसका चावल यों तक रह सकता है । २. अन्न के कच्चे दानों में का रस जो दूध के रंग का होता है ।

दूधाधारी^१ — वि० [हि० दूध + सं० आधारी या आधारी] दुग्धाधारी । दूध माय पीकर रहनेवाला ।

दूधाभासी — संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + भात] विवाह की एक रसम जिसमें बर और कन्या दोनों अपने अपने हाथ से एक दूसरे को दूध और भात खिलाते हैं । यह रसम विवाह से बीस दिन होती है ।

दूधाहारी — वि० [हि०] ३० 'दूधाधारी' ।

दूधिया^१ — वि० [हि० दूध + इया (प्रत्य०)] १. दूध संबंधी । जिसमें दूध मिला हो अथवा जो दूध से बना हो । जैसे, दूधिया भांग । २. दूध के रंग का । सफेद । श्वेत । ३. कच्चा

होने के कारण जिसके अंदर का दूध अभी तक सूखा न हो।
जैसे, दूधिया सिंघाड़ा।

दूधिया^१—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का सफेद बढ़िया और चमकीला पत्थर जिसकी गिनती रत्नों में होती है।

विशेष—कभी कभी इसके रंग में कुछ लाली, भुरापन या हरापन भी रहता है। इसमें रेत का भाग अधिक रहता है और कुछ लोहा भी रहता है। यह कई प्रकार का होता है और इसमें धूपछाँह की सी चमक होती है। भंगूठियों में इसका नग जड़ा जाता है।

२ एक प्रकार का सफेद, घटिया मुलायम पत्थर जिसकी व्यालियाँ आदि बनती हैं जिन्हें पयरी कहते हैं। ३ एक प्रकार का हलुवा सोहन जो दूध मिसाने के कारण कुछ नरम हो जाता है।

दूधियाकंजई—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + कंजई] दे० 'दूधिया कंजई'।

दूधियाखाकी—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + खाकी] सफेद राख का सा रंग।

दूधियापत्थर—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + पत्थर] दे० 'दूधिया'।

दूधियाविष—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + सं० विष] तेलिया विष। मीठा जहर।

दूधी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुधी] दे० 'दुधी'।

दून^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दूना] १. दूने का भाव।

मुहा०—दून की लेना या हाँकना=बहुत बड़ शक्कर बातें करना। अपनी शक्ति के बाहर की या असंभव बातें कहना। डींग मारना। शेखी हाँकना। दून की सूझना=अपनी शक्ति के बाहर की बातें सूझना। बहुत बड़ी या असंभव बात का ध्यान में आना।

२ जितना समय लगाकर गाना या बजाना आरम्भ किया जाय उसके आधे समय में गाना या बजाना। साधारण से कुछ जल्दी जल्दी गाना।

दून^२—वि० [हि० दूना] दे० 'दूना'।

दून^३—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणि] दो पहाड़ों के बीच का मैदान। तराई। घाटी।

दूनर^४—वि० [सं० द्विनम्] जो लचककर दोहरा हो गया हो। उ०—दसनि अघर दाबि दूनर भई सी चापि जोअर पचोअर के चूनर निचोरे है।—पद्माकर प्र०, पृ० ८२।

दूनसिरिस—संज्ञा पुं० [दे०] सफेद सिरिस का पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है और जल्दी बढ़ जाता है।

विशेष—इसकी छाछ हरापन लिए सफेद और हीर की लकड़ी सूरी, चमकदार और मजबूत होती है। तोल इसकी प्रति घनफुट १५ से ३०-सेर तक होती है। इसकी लकड़ी से ईख पेरने का कोलू, मूसल, पहिए, चाय के सद्क और सेती के घोआर बनाए जाते हैं। इमारत और पुलों के काम में भी यह आती है और इसका कोयला भी बनाया जाता है। इसमें से तेल बहुत निकलता है और इसके फूल बड़े सुगंधित होते हैं। हिमालय पर्वत पर यह थोड़ी ऊँचाई तक होता है।

दूना—वि० [सं० द्विगुण] [वि० स्त्री० दूनी] दुगुना। दोषद। दो बार उतना ही। जैसे,—यह दूनी भंफट का काम है। उ०—अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहु दिन दूना।—मानस, २। २१।

मुहा०—दिल दूना होना=मन में खूब उत्साह और उमंग होना। दिन दूना रात चौगुना होना=दे० 'दिन' के मुहा०।

दूनिया^५—संज्ञा स्त्री० [प्र० दुनिया] दे० 'दुनिया'। उ०—दुनिया दुश्मती सुमति ते बीछुडी, घघ घोखा किया कुमति बानी।—कबीर रे०, पृ० ८।

दूनौ^६—वि० [प्रा० दोणिण, दोन्नि] दोनों। उ०—बिप्र साप ते दूनौ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।—मानस, १। १२२।

दूनौ^७—वि० [प्रा० दोणिण] दे० 'दोनौ'।

दूनौ^८—वि० दे० 'दूना'। उ०—जु कुछ जन्म उत्सव में कीनी। ब्रजपति सातें दूनौ दीनी।—नंद० प्र०, पृ० २८४।

दूप^९—वि० [सं० दूप] पुष्ट। बलवान। उ०—उपज्यो धनस धनपम रूप। नहि आकृति अवर नर दूप।—पृ० रा०, १। २५७। (स) सुष चद्रगुप्त सम चद्र रूप। प्रतापसिंह आरेन दूप।—पृ० रा०, १। २८७।

दूप—वि० [सं०] शक्तिमान्। बलवान् [क्रो०]।

दूद—संज्ञा स्त्री० [सं० दूर्वा] एक प्रकार की प्रसिद्ध घास जो पश्चिमी पंजाब के थोड़े से बलुए भाग को छोड़कर समस्त भारत में और पहाड़ों पर आठ हजार फुट की ऊँचाई तक बहुत अधिकता से होती है। धोबी घास। हरियानी।

विशेष—यह सब तरह की जमीनों पर और प्रायः सब ऋतुओं में होती है और बहुत जल्दी तथा सहज में फैल जाती है। इसकी बाहरी गाँठें जहाँ जमीन से छू जाती हैं वहीं जम जाती हैं और उनमें लबी और बहुत पतली पत्तियाँ निकलने लगती हैं। गाएँ और घोड़े इसे बड़े प्रेम से खाते हैं और इससे उनका बल खूब बढ़ता है। गाएँ और भैंसें आदि इसे खाकर खूब मोटी हो जाती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं। यह सुखाकर भी बरसों रखी जा सकती है। जिस स्थान पर एक बार यह हो जाती है वहाँ से इसे बिलकुल निकालना बहुत कठिन होता है। यह साधारणतः तीन प्रकार की होती है,—हरी, सफेद और गाँवर [दे० 'गाँवर' २]। वैद्यक में दूब को साधारणतः कसैली, मधुर, शोथल और पित्त, तृषा, अरुचि, दाह, मूर्च्छा, कफ, सूतघाघा और श्म को दूर करनेवाली कहा है। हिंदू लोग इसका व्यवहार सखी और गणेश आदि के पूजन में करते और इसे मंगलद्रव्य मानते हैं।

दूबदू—क्रि० वि० [प्रा०] सामने सामने। मुकाबले में। आमने सामने। मुहामुह। जैसे,—जबतक उनसे दूबदू बातें न हों, तबतक इस विषय में कुछ नही कहा जा सकता। उ०—करे गुप्तगु उनसे जो दूबदू। मती सारे उनके न कोई अदू।—कबीर मं०, पृ० १३२।

दूबर^१—वि० [सं० दुबल] [वि० स्त्री० दुबरि] दे० 'दूबरा'। उ०—तुया गुन सुदरि अति मेल दूबरि गुनि गुनि प्रेम तोहरि।—विद्यापति, पृ० १३६।

दूबरा^(५)—वि० [सं० दुबल] [वि० स्त्री० दबरी] १ दुबला । पतला । लीण । कृश । उ०—वह दूबरी होत क्यों यों जब नूझी सास । ऊतर कह्यो न वाल मुख ऊँचे सेत उसास ।—मति० प्र०, पृ० २६६ । २. कमजोर । निर्बल । नाजुक । उ०—बहुत दिन के दूबरे ये कहाँ सौ बिलसाहि ।—घनानंद, पृ० ४७५ । ३. दबैल । दीन । उ०—श्री हरिदास के स्वामी भयाम कुबविहारी कर जोरि मीन हूँ, दूबरे की राँधी खीर कहो कोने खाई है ?—हरिदास (शब्द०) ।

दूबसा—वि० [सं० दुबल] दे० 'दुबला' ।

दूबा—संज्ञा स्त्री० [हि० दूर्वा] दे० 'दव' ।

दूधिया—वि० [हि० दूध + द्या (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंग । हरी घास का सा रंग ।

दूबे—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] द्विवेदी ब्राह्मण ।

दूभर—वि० [सं० दुमर (= जिसका निर्वाह कठिन हो)] जिसके करने में बहुत कठिनता हो । कठिन । मुश्किल । दुःसाध्य । जैसे,—इस दोपहर को तो उनके यहाँ जाना बहुत दूभर मालूम होता है । उ०—कहीं मुझको स्थान एक तिल, जहाँ भी गया दूभर, झिलमिल । दया दृष्टि ही जो उभरा बिल, छोड़ों वे जो कहियाँ ली थी ।—भाराधना, पृ० ८१ ।

दूमण्णी—वि० [सं० दुर + मन, प्रा० दुम्मण] [वि० स्त्री० दूमणी] उदास । खिन्नमन । उ०—मालवणी मनि दूमणी, प्रावी बरग विमासि । रहवारी पूछी करी, भाई करहा पासि ।—ढोला०, दृ० १०२ ।

दूमना^(५)—क्रि० प्र० [सं० दूम] हिलना । डोलना । उ०—दूमें दूम डार डार झूमें पिक बरजोर घूमें घनघोर मोर झूमें चहुँ घोर डेरि डेरि ।—दीन० प्र०, पृ० ४१ ।

दूमा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़े का छोटा थैला जिसमें तिन्नात से चाय भरकर पाती है । इसमें प्रायः तीन सेर तक चाय पाती है ।

दूमुझी—वि० [हि० दू + मुँह] दे० 'दुमुँहा' ।

दूयन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर । ताप [क्रि०] ।

दूरदेश—वि० [प्रा०] प्रागापीछा सोचनेवाला । दूर तक की बात विचारनेवाला । होशियार । अग्रशीची । दूरदर्शी ।

दूरदेशी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] दूर की बात पहले से ही सोच लेना । दूरदर्शिता ।

दूर—क्रि० वि० [सं०, मि० प्रा० दूर] देश, कास या संबंध प्रादि के विचार से बहुत अंतर पर । बहुत फासले पर । पास या निकट का उसटा । जैसे,—(क) वे टहलते टहलते बहुत दूर चले गए । (ख) आप दूर से ही रास्ता बतलाना खूब जानते हैं । (ग) अभी सबके की शादी बहुत दूर है । (घ) हमारा इनका बहुत दूर तक का रिश्ता है । (ङ) दिस्सगी करते करते वे बहुत दूर तक पहुँच गए, आप वादे तक की गालियाँ देने लगे ।

मुहा०—दूर करना = (१) भसग करना । जुदा करना । अपने पास से हटाना । (२) न रहने देना । मिटाना । जैसे,—(क)

कपड़े का धम्मा दूर कर दो । (ख) दो पार दूरे जाने जाये से तुम्हारा डर दूर हो जायगा । दूर की कौड़ी साना = दूर की सुझ । कल्पना की उड़ान । उ०—क्योंकि वह भी बहुत दूर की कौड़ी साया है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० २२७ । दूर की सुझाना = अनुपस्थित या भविष्य की झलक दिखाना । उ०—सूझकर सुझता नहीं जिनको वे उन्हें दूर से सुझाते हैं ।—बोले०, पृ० ३८ । दूर की सुझना = असबब बात कहना । उ०—बरफ नहीं एक वह साधो सलिया इनके लिये बरफ साधो । क्या दूर की सुझी है ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ११ । दूर क्यों जायें या जाइए = अपरिचित या दूर का छटात न लेकर परिचित और निकटवाले का ही विचार करें । जैसे,—दूर क्यों जायें अपने अपने पड़ोसी की ही बात लीजिए । दूर दूर करना = पास न माने देना । अत्यंत घृणा और तिरस्कार करना । दूर भागना या रहना = बहुत घृणा या तिरस्कार के कारण बिल्कुल भसग रहना । बहुत बचना । पास न जाना । जैसे,—हम तो ऐसे लोगों से सदा दूर भागते (या रहते) हैं । दूर रहना = कोई संबंध न रखना । बहुत बचना । जैसे,—ऐसी बातों से जरा दूर रहा करो । दूर होना = (१) हट जाना । भसग हो जाना । छट जाना । (२) मिट जाना । मल्ट हो जाना । न रहना । दूर पहुँचना = (१) साधन या सामर्थ्य के बाहर । शक्ति प्रादि के बाहर । (२) दूर की बात सोचना । बहुत बारीक बात सोचना । दूर की बात = (१) बारीक बात । (२) कठिन या दुःसाध्य बात । (३) बहुत प्रागे चलकर मानेवाली बात । अनुपस्थित बात । दूर की कहना = बहुत सम्झदारी की बात कहना । दूरदर्शिता की बात कहना ।

दूर^२—वि० जो दूर हो । जो फासले पर हो । जैसे, दूर देश ।

दूरअंदेशी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] दे० 'दूरदेशी' । उ०—मनुष्य के मन में जो वृत्ति प्रबल होती है वह उसी के अनुसार काम किया चाहता है और दूरअंदेशी की सब बातों को सहसा भूल जाता है ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० २२६ ।

दूरग^३—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—पाई कंकण तिर बंधीयो मोड़ । प्रथम पयाणउ दूरग चीतोड़ ।—बी० राठी, पृ० १२ ।

दूरग^२—वि० [सं०] दूर तक जानेवाला । दूर तक गया हुआ ।

दूरगामी—वि० [सं० दूरगामिन्] दूर तक चलनेवाला ।

दूरग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दूर की (भरीत या भविष्य की) वस्तु देखने की शक्ति [क्रि०] ।

दूरतः—क्रि० वि० [सं० दूरतस्] दूर से ही [क्रि०] ।

दूरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूरत्व' ।

दूरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दूर होने का भाव । अंतर । दूरी । फासला ।

दूरदर्शक^१—वि० [सं०] दूर तक देखनेवाला ।

दूरदर्शक^२—संज्ञा पुं० पंडित । बुद्धिमान् ।

दूरदर्शकयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दूरदर्शक + यन्त्र] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर की चीजें देखाई पड़ती हैं ।

दूरदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिद्ध । २ विद्वान् । पंडित । ३ समझदार । ४ दूरबीन ।

दूरदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर की बात सोचने का गुण । दूरदर्शी ।

दूरदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० दूरदर्शिन] १ पंडित । २ गृह्य । गीघ ।
दूरदर्शी—वि० बहुत दूर की बात सोचने या समझनेवाला । जो पहले से ही बुरा भला परिणाम समझ ले । अग्रगोचरी । दूरदेश ।

दूरदृक्—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दूरदर्शी' [को०] ।

दूरदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्य का विचार । दूरदर्शिता । दूरदर्शी ।

दूरनिरीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन नाम का यंत्र ।

दूरपात—वि० [सं०] दूर से आने के कारण थकी (सेना) । विशेष दे० 'नवागत' ।

दूरवा①—संज्ञा पुं० [सं० दूर्वा] दे० 'दूर्वा' ।

दूरबीन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर तक की चीजें साफ साफ दिखाई पड़ती हैं ।

विशेष—यह यंत्र एक गोल नल के आकार का होता है जिसमें आगे और पीछे दो गोल शीशे लगे होते हैं । आगेवाले शीशे को प्रधान लेंस और पीछेवाले शीशे को उपनेत्र या चक्षुर्लेंस कहते हैं । प्रधान लेंस अपने सामनेवाले पदार्थ का प्रतिबिम्ब ग्रहण करके अपने पीछेवाले लेंस पर फेंकता है और पीछे वाला लेंस या उपनेत्र उस प्रतिबिम्ब को विस्तृत करके आँखों के सामने उपस्थित करता है । आवश्यकतानुसार प्रधान लेंस आगे या पीछे हटाया बढ़ाया भी जा सकता है । दर्शनीय पदार्थों की आकृति की छोटाई या बड़ाई इन्हीं दोनों लेंसों की दूरी पर निर्भर रहती है । कभी कभी दोनों आँखों से देखने के लिये एक ही तरह के दो नलों को एक साथ जोड़ कर भी दूरबीन बनाई जाती है ।

दूरबीन का आविष्कार पहले पहल हार्लैंड देश में सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था । एक बार एक चम्पेवाला अपनी दुकान पर बैठा हुआ काम कर रहा था । इतने में उसकी लड़की सहसा चिल्ला उठी कि देखो वह सामने का बुजुर्ग कितना पास आ गया । चम्पेवाले ने देखा कि उसकी लड़की दोनों शीशों को आगे पीछे रखकर देख रही है । जब उसने भी इसी प्रकार इन शीशों को रखकर देखा तब उसे उसका उपयोग जान पड़ा । इसके उपरांत उसने अनेक प्रकार की परीक्षाएँ करके कुछ सिद्धांत स्थिर किए और उन्हीं के अनुसार दूरबीन का आविष्कार किया । उसके कुछ ही दिनों के उपरांत प्रसिद्ध ज्योतिषी गैलीलियो ने भी स्वतंत्र रूप से एक प्रकार की दूरबीन का आविष्कार किया था । तब से दूरबीन बनाने के काम में बराबर उन्नति होती आई है । आजकल दूरबीन का उपयोग सूर्य के लिये, दूर के ग्रहों ग्रहों पर देखने, युद्धक्षेत्र में शत्रुओं की सेना आदि का पता लगाने और आकाशीय तारों आदि को देखने में होता है । आकाश के तारे

आदि देखने के लिये आजकल की वेधशालाओं में जो दूरबीनें होती हैं वे बहुत ही भारी होता हैं । उनके नलों की लंबाई सात फुट तक और व्यास तीन फुट तक होता है ।

२ छोटी दूरबीन के आकार का लड़कों का एक खिलौना जिसमें एक और शीशा लगा रहता है और जिसमें आँख लगाकर देखने से रंग बिरंगे फूल आदि दिखाई देते हैं ।

दूरभिन्न—वि० [सं०] अत्यधिक आहत । बहुत घायल [को०] ।

दूरमूल—संज्ञा पुं० [सं०] मूल ।

दूरयायो—वि० [सं० दूरयायिन्] दूर जानेवाला । दूरगामी [को०] ।

दूरवर्ती—वि० [सं० दूरवर्तिन्] दूर का । दूरस्थ । जो दूर हो ।

दूरधस्त्रक—वि० [सं०] निर्वस्त्र । नग्न [को०] ।

दूरवासी—वि० [सं० दूरवासिन्] दूर का रहनेवाला [को०] ।

दूरवीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन ।

दूरवेधी—वि० [सं० दूरवेधिन्] दूर से मारनेवाला । दूर ही से शत्रु पर प्रहार करनेवाला [को०] ।

दूरस्थ—वि० [सं०] जो दूर हो । दूर का । समीपस्थ का उलटा ।

दूरस्थित—वि० [सं०] 'दे० 'दूरस्थ' ।

दूरांतरित—वि० [सं० दूरान्तरित] दूर रहनेवाला [को०] ।

दूरागत—वि० [सं०] दूर से आया हुआ । उ०—आज किसी के मसले तारों की वह दूरागत भकार ।—यामा, पु० १४ ।

दूरात्—क्रि० वि० [सं०] दूर से [को०] ।

दूरान्वय—संज्ञा [सं०] विशेष्य विशेषण, कर्ता क्रिया आदि का इतनी दूर होना जिससे अर्थव्यक्ति में बाधा पड़े । काव्य का एक दोष [को०] ।

दूरापात—संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूर से फेंककर मारा जाय ।

दूरारूढ—वि० [सं० दूरारूढ] १ गहरा । २ बढमूल । ३ तीव्र । ४ दूर पहुँचा या चढ़ा हुआ [को०] ।

दूरि①—वि० [सं० दूर] दे० 'दूर' । उ०—अगति पच्छ हठ नहि सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बह्राई ।—मानस, ७ । ४६ ।

दूरिठ्ठा—वि० [सं० दूरस्थित, प्रा० दूरिठ्ठ] दे० 'दूरस्थ' । पूगल पिगल राउ, नल राजा नरवरे मयरे । अदिठा दूरिठ्ठा ये, सगाई दईव सयोगे ।—ढोला०, दू० १ ।

दूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दूर + ई (प्रत्य०)] दो वस्तुओं के मध्य का स्थान । दूरत्व । अंतर । फासला । बीच । अयकाश । जैसे,—जरा इन दोनों खम्भों के बीच की दूरी तो नापो ।

दूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खाकी रंग की एक प्रकार की खाकी (चिट्ठिया) ।

दूरीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] दूर करना । दूर हटाना [को०] ।

दूरुढा—संज्ञा पुं० [सं०] वेधक के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग ।

दूरेष्टमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] उनवास मस्तो में से एक मरुत का नाम ।

दूरेचर—वि० [सं०] १. दूर रहनेवाला । २. दूर दूर घूमनेवाला [को०] ।

दूरेरितेक्षण—वि० [सं०] ऐषाताना [को०] ।

दूरेश्रवण—वि० [सं० दूरेश्रवस्] जिसका घन दूर तक सुनाई पड़े ।
बहुत प्रसिद्ध ।

दूरोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आदित्यलोक जहाँ चढ़कर जाना
असम्भव है ।

दूरोहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दूर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दूर्य्य] १. छोटा कचूर । २. विष्ठा ।
पुरीष । मस ।

दूर्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दूष वाम की घास ।

विशेष—दे० 'दूब' ।

यौ०—दूर्वाकुर=दूब का नवीन, कोमल, भागे का झंझुवा ।

दूर्वाक्षी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार वसुदेव के भाई
बृक की स्त्री का नाम ।

दूर्वाय घृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशिष्ट प्रकार से बनाया
हुआ बकरी का घी जिसमें दूब, मशीठ, एलुभा, सफेद
चदन आदि मिलाया जाता है और जिसका व्यवहार भ्रातृ,
मुँह, नाक, कान आदि से रक्त जाने में होता है ।

दूर्वाष्टमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी अष्टमी, जिस दिन व्रत
आदि करते हैं ।

दूर्वासोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की
सोममत्ता ।

दूर्वेष्टिका, दूर्वेष्टका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की वेदी में काम आने-
वाली एक प्रकार की ईंट ।

दूशन④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोशन] दे० 'दोशन' ।

दूशभा—वि० [सं० दुलंभ] दे० 'दूशम' ।

दूशमा—वि० [सं० दुलंभ] कठिनता से प्राप्त होने योग्य । दुलंभ ।

दूशह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुलंभ, प्रा० दुल्लह] १. वह मनुष्य जिसका
विवाह अभी हाल में हुआ हो या शीघ्र ही होने को हो ।
दुलहा । वर । नोखा । २. पति । स्वामी । खाविद । ३.
हिंदी के अलंकार ग्रंथ 'कविकुलकठाभरण' के रचयिता
एक कवि ।

दूजहु④—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दूल्हा] दे० 'दूल्हा' । उ०—जस दूल्हा
तस बनो बराता । कोतुक बिबिध होहि मय जाता ।—मानस,
१६४ ।

दूलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूली' ।

दूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नील । नील का पेड़ ।

विशेष—दे० 'नील' का विशेष ।

दूल्हा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुलंभ, प्रा० दुल्लह] दे० 'दूल्हा' ।

दूला—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दूला' ।

दूवार—④ सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार' । उ०—कई पंढव पय
सचक, कह जाय सेवसूँ गग द्वार ।—बी० रासो, पृ० ४४ ।

दूश्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तबू । खेमा ।

दूषक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दोष लगानेवाला मनुष्य । वह जो

किसी पर दोषारोपण करे । उ०—ऐसे दरिद्र दूषक भरे
तिनहूँ सौं जो कहत घन, धिक्कार जनम वा अघम को सदा
सर्वदा मलिन मन ।—अज प्र०, पृ० ११२ । २. वह जो दोष
उत्पन्न करे । दोष उत्पन्न करनेवाला पदार्थ ।

दूषक—वि० १. दोषजनक । बुरा । २. दोष करनेवाला । अपराधी ।
३. निंदक । कलंकित करनेवाला [को०] ।

दूषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दोष । ऐब । बुराई । अवगुण । उ०—
तब हरि कह्यो हत्यो बिन दूषण हसपर भेद बतायो । वह
जाहूँ खोज सुम कोजो द्वारावति घरि आयो ।—सूर
(शब्द०) । २. दोष लगाने की क्रिया या भाव । ऐब
लगाना । उ०—सदेह के अनंतर स्वपक्ष के स्थापन और
प्रतिपक्ष के दूषण करने पर जो अर्थ का अवधारण होता है
सो निरुपेय कहलाता है ।—सिद्धांतसंग्रह (शब्द०) । ३.
रावण के भाई एक राक्षस का नाम जो खर के साथ पक्षवटी
में शूर्पणखा की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था और जो
शूर्पणखा की नाक और कान कट जाने पर पीछे रामचंद्र के
हाथ से मारा गया । ४. जैनियों के सामयिक व्रत में ३२
त्याग्य बातें या अवगुण जिनमें १२ कायिक, १० वाचिक
और १० मानसिक हैं । ५. दोष । अपराध (को०) । ६. पार-
स्परिक समझौता तोड़ना । विरोध या प्रतिवाद करना (को०) ।

दूषण—वि० [सं०] विनाशक । संहारक । मारनेवाला । उ०—
लक्ष्मण भव शत्रुघ्न रीह दानव दक्ष दूषण ।—केशव
(शब्द०) ।

दूषणारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दूषण को मारनेवाले रामचंद्र ।

दूषणीय—वि० [सं०] दोष लगाने योग्य । जिसमें ऐब लगाया
जा सके ।

दूषन④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दूषण] दे० 'दूषण' ।

दूषना④—क्रि० सं० [सं० दूषण] दोष लगाना । कलंकित करना ।

दूषि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषिका' ।

दूषिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अक्ष की मेल । २. कुँची । कलम ।
तूलिका (को०) । ३. एक प्रकार का चावल (को०) ।

दूषित—वि० [सं०] जिसमें दोष हो । खराब । बुरा । दोषयुक्त ।
कलंकित ।

दूषित—बोझा । छल [को०] ।

दूषिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो विवाह के पूर्व दूषित हो ।
दूषणप्राप्त कन्या [को०] ।

दूषो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषि' [को०] ।

दूषीका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषिका' ।

दूषोविष—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर में रहनेवाला
एक प्रकार का विष जो वातु को दूषित करता है और जिसे
हीन विष भी कहते हैं ।

विशेष—यदि किसी प्रकार का स्थावर, अंगम या कृत्रिम विष
शरीर में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त पूरा पूरा बाहर नहीं
निकलता, उसका कुछ अंश शरीर में रहकर बाणों हो जाता

है अथवा विपनाशक शीघ्रों से दबाने या नष्ट करने पर भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता, तब वह कफ से आच्छादित होकर दूरी विष कहलाता और बरसों तक शरीर में व्याप्त रहता है। जिसके शरीर में यह विष रहता है उसका रंग पीला पड़ जाता है, मल का रंग बदल जाता है, मुँह में दुर्गन्धि और विरसता होती है, व्यास लगती है, मूर्च्छा और कै होती है और दूष्योदर के से लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जब यह विष पक्वस्थान में रहता है तब मनुष्य के सिर और शरीर के बांस झड़ जाते हैं। जब इसका कोष होने लगता है तब जैसाई घाती है, भग दूटते हैं, रोएँ सड़े हो जाते हैं, शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं, हाथ पैर सूज जाते हैं तथा इसी प्रकार के और उपद्रव होते हैं।

दृष्य—वि० [सं०] १. दोष लगाने योग्य। जिसमें दोष लगाया जा सके। २. निन्दनीय। निंदा करने योग्य। ३. सुच्छ। ४. राज्य को हानि पहुँचानेवाला (मनुष्य)।

दृष्य—संज्ञा पुं० १ कपड़ा। वस्त्र। तबू। सेमा ३. पोष। पूष (को०)। ४. विष।

दृष्यमहामात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायाधीश या महामात्र नामक राजकर्मचारी जो भीतर भीतर राज्य का शत्रु हो या शत्रु का साथी हो।

दृष्ययुक्त—वि० [सं०] राजविद्रोहियों से युक्त (सेना)।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दृष्ययुक्त तथा दृष्यपाणिग्राह (जिसके पीछे की सेना दृष्य हो) सेना में दृष्ययुक्त सेना उत्तम है, क्योंकि घात पुरुषों के आधिपत्य में वह लड़ सकती है, पर पीछे के आक्रमण से घबड़ाई हुई दृष्ट पाणिग्राह सेना नहीं लड़ सकती है।

दृष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की बाँधने का बमड़े का तस्मा या बधन।

दूष्योदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उदररोग। उ०—परिश्रम करने से शोथ होय तो इसको दूष्योदर भैंसा कहते हैं।—माघव०, पु० १६५।

दूस्ना—क्रि० सं० [सं० दूषण] दे० 'दूषण'। उ०—कहि रेसम के सम दूस्न हैं।—प्रेमघन०, भा० १, पु० २१०।

दूसरी—वि० [हि०] दे० 'दूसरा'।

दूसरा—वि० [हि० दो] [वि० स्त्री० दूसरी] १ जो क्रम में दो के स्थान पर हो। पहले के बाद का। द्वितीय। जैसे,—गली में बाएँ हाथ का दूसरा मकान उन्हीं का है। २ जिसका प्रस्तुत विषय या व्यक्ति से संबंध न हो। अन्य। अपर। और। गैर। जैसे,—हम लोग घाघस में लड़ें और बाहें झगड़ें, दूसरे से मतलब ?

मुहां—दूसरों के सिर ठीकरा फोड़ना = दूसरों पर दोष मढ़ना। उ०—दूसरों को उबार लेते हैं एक दो बीर ही विषय में गिर। पर बहुत लोग पाक बनते हैं ठीकरा फोड़ दूसरों के सिर।—सुमते०, पु० १२।

बी०—दूसरी माँ = जो अपनी माँ न हो। सीतेसी माँ।

दूहना—क्रि० सं० [सं० दोहन] दे० 'दुहना'।

दूहनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दोहनी'।

दूहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोहा'।

दूहिया—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का गृह्णा।

दंभू—संज्ञा पुं० [सं० दम्भू] दे० 'दम्भू'।

दृक्—संज्ञा पुं० [सं०] दृग का समासप्राप्त रूप। दे० 'दृग'।

दृक्—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिद। छेद।

दृक्—संज्ञा पुं० [?] होरा। उ०—निकपा दृक् बय पुनि होरा पदक जु ऐन। निष्क शक्रुष त्रिप निरक्ति तन भूप जवन दृक् भिन।—नददास (शब्द०)।

दृक्काण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दृक्काण'।

दृक्कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पि। जघुसया।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि साँव मुनने का नाम भी घाँस से ही लेता है।

दृक्कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह क्रिया या प्रकार जो ग्रहों को अपने क्षितिज पर खाने के लिये किया जाता है और जिससे ग्रहों के योग, चंद्रमा की गृहोन्नति तथा ग्रहों और नक्षत्रों के उदयास्त का पता चलता है। यह संस्कार दो प्रकार का होता है—मासदृक् और घाघनदृक्।

दृक्काण—संज्ञा पुं० [यू० टैकानस, तुम० सं० ट्रेक्काण] पश्चिम ज्योतिष में एक राशि का तीसरा भाग जो दक्ष ऋणों का होता है।

विशेष—प्रत्येक राशि तीस भागों की होती है। राशि को तीन भागों में विभक्त करके एक एक भाग को दृक्काण कहते हैं। इस प्रकार किसी एक राशि में प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीन दृक्काण होते हैं। उम राशि का ही अधिकपति प्रथम दृक्काण का स्वामी होता है, उससे पाँचवीं राशि का द्वितीय दृक्काण का, और उससे नववीं राशि का तृतीय दृक्काण का। जैसे, मेष राशि का स्वामी मंगल है। अतः मेष राशि के प्रथम दृक्काण का स्वामी मंगल, द्वितीय दृक्काण का रवि, (जो मेष से पाँचवीं राशि, सिंह का स्वामी है) और तृतीय दृक्काण का बृहस्पति (जो मेष से नववीं राशि, धनु, का स्वामी है) होगा। यह दृक्काण पश्चिम ज्योतिष में काम आता है। शुभ ग्रहों के दृक्काण का नाम 'जस' और अशुभ ग्रहों के के दृक्काण का 'दहन' है। जल दृक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु जल में होती है और दहन दृक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अग्नि से होती है। राशियों के अनुसार दृक्काणों के अनेक नाम कल्पित किए गए हैं।

दृक्क्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि शक्ति का ह्रास। भाँवों का कमजोर होना (को०)।

दृक्क्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दृष्टिपात। प्रबलोकन। २ दक्षम सान के तत्साध की भुज उपा।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण के स्पष्टीकरण में पड़ता है।

मध्य ज्या को उदय ज्या से गुणित कर गुणनफल को त्रिज्या

से भाग देते हैं फिर भागफल को वर्ग करके घोर उसमें मध्य ज्या के वर्ग को घटाने से जो शेष श्रंक रहता है उसका वर्गमूल निकालते हैं। यही वर्गमूल का श्रंक दृक्सेप कहलाता है।

दृक्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का मार्ग। दृष्टि की पहुँच।

मुद्गा०—दृक्पथ में आना = दिखाई पड़ना।

दृक्पात—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात। अवलोकन।

दृक्प्रसाद—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलस्या। कुलस्यांजन।

दृक्प्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांति। शोभा। सुंदरता।

दृक्शक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाशरूप चैतन्य। २. आत्मा।

दृक्श्रुति—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

दृगंचल—संज्ञा पुं० [सं० दृगञ्चल] पलक। उ०—भए विलोचन चार भवचल। मनहु सकुच निमि भए दृगचल।—तुलसी (शब्द०)।

दृग्—संज्ञा पुं० [सं०] दृश का समासगत रूप। नेत्र। भाँख (को०)।

दृगु०—संज्ञा पुं० [सं० दृश, समास दृक्] १. भाँख। उ०—जया सुभंजन भजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कीतुक देखहि शैल वन भूतल भूरि निधान।—तुलसी (शब्द०)।

मुद्गा०—दृग झोलना या देना = नजर डालना। देखना। उ०—पाई परे हूँ प्रीतम र्यों कहि केशव क्यों हूँ न मैं दृग दीनी।—केशव (शब्द०)। दृग फेरना = भाँख फेरना। अप्रसन्न रहना। उ०—दुख घोर मैं कासो कहीं को सुने ब्रज की वनिता दृग फेरे रहूँ।—पद्माकर (शब्द०)।

२. देखने की शक्ति। दृष्टि। उ०—भ्रवण घटहु पुनि दृग घटहु घटो सकल बल देह। हते घटे घटिहै कहा जो न घटे हरि नेह।—(शब्द०)। ३. दो की सख्या।

दृगभ्यस्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का एक नाम (को०)।

दृगनवत०—वि० [हिं० दृगन (बहु०) + वत] भाँखवाला। दृष्टि-वाला। उ०—भीजि बसन सुंदर तन लपटनि। दृगनवत कहूँ प्रति सुख दपटनि।—नंद० प्र०, पृ० २६०।

दृगमिचाउ०—संज्ञा पुं० [हिं० दृग + मीचना] भाँख मिचौली का खेल। उ०—मूँदे तहाँ एक भवलोके मनोसे दृग सु दृगमिचाउ नेक रूपालन हितै।—पद्माकर (शब्द०)।

दृगमिचाव—संज्ञा पुं० [हिं० दृग + मिचाव] दे० 'दृगमिचाउ'।

दृगगणित—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का वेध करके गणित करना।

दृगगणितैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों को किसी समय पर गणित से स्पष्ट करके फिर उसे वेध कर मिलाना और न्यूनता या अधिकता प्रतीत होने पर उसमें संस्कार करना जिससे ग्रहों के वेध और स्पष्ट में आगे भेद न पड़े।

दृगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि की गति या पहुँच। २. दशम-लग्न की नतांश कोटिज्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण निकालने में पड़ता है। इसकी रीति यह है कि मध्य ज्या को उदय ज्या से गुणित करे और गुणनफल को त्रिज्या से भाग दे। फिर भागफल का वर्ग करे

और वर्गफल से त्रिज्या का वर्ग घटावे। इस प्रकार जो शेष श्रंक बचेगा उसका वर्गमूल दृगति कहलावेगा।

दृग्गोचर—वि० [सं०] जो घाल से दिखाई दे।

दृग्गोल—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसे ऊर्ध्व स्वस्तिक और अक्ष-स्वस्तिक में होता हुआ कल्पित करके जिघर ग्रहों का उदय होता है ऊपर घुमाकर उनकी स्थिति का पता चलाया जाता है। इसे दृग्मंडल और दृग्वलय भी कहते हैं।

दृग्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृग्मंडल या दृग्गोल के स्वस्तिक से जो ग्रह जितना लटका रहता है उसे नतांश कहते हैं और इसी नतांश की ज्या दृग्ज्या कहलाती है।

दृग्भू—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। २. सूर्य। ३. संपं।

दृग्लंबन—संज्ञा पुं० [सं० दृग्लम्बन] ग्रहण स्पष्ट करने में जब सूर्य चंद्र गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आ जाते हैं, पर पुष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में नहीं आते तब उन्हें पुष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में लाने के लिये जो पूर्वापर संस्कार किया जाता है उसे दृग्लंबन कहते हैं।

दृग्विष—संज्ञा [सं०] वह साँप जिसकी भाँखों में विष होता है।

दृग्वृत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज।

दृङ्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में सूर्य चंद्र का जब प्रमातंकावीन स्पष्ट करते हैं और वे गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आ जाते हैं पर पुष्ठाभिप्राय से नहीं आते, तब पुष्ठाभिप्राय से उन्हें एक सूत्र में लाने के लिये जो याम्योत्तर संस्कार किया जाता है उसे दृङ्गति कहते हैं।

दृङ्मंडल—संज्ञा पुं० [सं० दृङ्मण्डल] दृग्गोल।

दृङ्ठ—वि० [सं० दृङ्] दे० 'दृङ्'। उ०—महा बक गढ़ दृङ्ठ बुरजि कगुर बर सोहैं।—हम्मोरारासो०, पृ० १७।

दृङ्—वि० [सं० दृङ्] १. जो शिथिल या ढीला न हो। जो खूब कसकर बंधा या मिला हो। प्रगाढ़। जैसे,—दृङ् बघन या गाँठ, दृङ् घालिगन। २. जो जल्दी न हटे फूटे। पुष्ट। मजबूत। कड़ा। ठोस। जैसे,—इस फल का छिलका बहुत दृङ् होता है। ३. बलवान्। बलिष्ठ। हष्ट पुष्ट। जैसे, दृङ् भग। ४. जो जल्दी दूर, नष्ट या विचलित न हो सके। स्थायी। जैसे, दृङ् आसन, दृङ् सकल्प, दृङ् सिद्धांत। ५. जो धन्यता न हो सके। निश्चित। ध्रुव। पक्का। जैसे, किसी बात का दृङ् होता। ६. ठोठ। कठे दिख का। जैसे, दृङ् मनुष्य।

दृङ्^२—संज्ञा पुं० १. लोहा। २. विष्णु। ३. घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. सगीत में सात रूपकों में से एक। ५. तेरहवें मनु रवि के एक पुत्र का नाम। ६. गणित में वह श्रंक जो दूसरे श्रंक से पूरा पूरा विभाजित न हो सके। जैसे,—१, ३, ५, ७, ११, १७, इत्यादि।

दृङ्कंटक—संज्ञा पुं० [सं० दृङ्कण्टक] क्षुद्रफलक वृक्ष।

दृङ्कर्मा—वि०—[सं० दृङ्कर्मन्] जो अपने कर्म में दृढ़ रहे। चैर्ध और स्थिरता के साथ काम करनेवाला।

दृङ्कव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दृङ्कव्यूह] कोटिस्थ कवित बहु व्यूह जिसमें पक्ष तथा कक्ष कुछ कुछ बीछे हटे हों।

हृदकाट—संज्ञा पुं० [सं० हृदकाट] १ वह वस्तु जिसके पीर या गोंठें फुट्ट हों। २ बाँस। ३ रोहिण घास।

हृदकांठा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदकांठा] छिरेटा। पातासगाफड़ी सता।

हृदकारी—वि० [सं० हृदकारिन्] १ हड़ता से काम करनेवाला। २ मजबूत करनेवाला।

हृदक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं० हृदक्षत्र] घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

हृदक्षुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदक्षुरा] वल्वजा वृण। सागे बागे।

हृदगात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदगात्रिका] राव। साँठ।

हृदमथि^१—वि० [सं० हृदमथि] जिसकी गोंठें मजबूत हों।

हृदमथि^२—संज्ञा पुं० बाँस।

हृदचेता—वि० [सं० हृदचेतस्] हृद। वधारवाला। पक्के इरादे का (भादमी)।

हृदच्छद—संज्ञा पुं० [सं० हृदच्छद] दीर्घ रोहिण वृण। यड़ी रोहिण।

हृदच्युत—संज्ञा पुं० [सं० हृदच्युत] महात्स्य मुनि के एक पुत्र का नाम जो परपुरजय नामक राजा की कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (भागवत)।

हृदतरु—संज्ञा पुं० [सं० हृदतरु] धव का पेड़।

हृदसा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदसा] १. हड़ होने का भाव। हड़त्व। २. मजबूती। ३. स्थिरता। ४. पक्कापन।

हृदतृण—संज्ञा पुं० [सं० हृदतृण] मूँज नाम की घास।

हृदतृणा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदतृण] वल्वजा वृण।

हृदत्व—संज्ञा पुं० [सं० हृदत्व] हड़ता।

हृदत्वच्—वि० [सं० हृदत्वच्] जिसकी रवचा या छास कड़ी हो।

हृदत्वच्^२—संज्ञा पुं० १ ज्वार का पेड़। २ एक प्रकार का सरपट।

हृददंशक—संज्ञा पुं० [सं० हृददंशक] एक जलजंतु।

हृददस्यु—संज्ञा पुं० [सं० हृददस्यु] एक ऋषि जो हृदच्युत के पुत्र थे।

हृदधन्—संज्ञा पुं० [सं० हृदधन्] शाक्य मुनि। बुद्ध।

हृदधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० हृदधन्वम्] १ जो धनुष चलाने में दृढ़ हो या जिसका धनुष हड़ हो। २ एक पुरुषवीर्य राजा का नाम।

हृदधन्वी—वि० [सं० हृदधन्विन्] १ जिसका धनुष दृढ़ हो।

हृदनाभ—संज्ञा पुं० [सं० हृदनाभ] वाल्मीकि के अनुसार शत्रुओं की एक रोक जिसे विश्वामित्र जी ने रामचंद्र जी को बतसाया था।

हृदनिश्चय—वि० [सं० हृदनिश्चय] जो अपनी बात पर जमा रहे। जो अपने संकल्प पर हड़ रहे। स्थिरप्रतिज्ञ।

हृदनीर—संज्ञा पुं० [सं० हृदनीर] नारियल, जिसके भीतर का जल धीरे धीरे जमकर कड़ा हो जाता है।

हृदनेत्र—संज्ञा पुं० [सं० हृदनेत्र] वाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्वामित्र जी के चार पुत्रों में से एक। (वाल्मीकि)।

हृदनेमि^१—वि० [सं० हृदनेमि] जिसकी नेमि हड़ हो। जिसकी बुरी मजबूत हो।

हृदनेमि^२—संज्ञा पुं० प्रजमीद वंशीय एक राजा का नाम जो सत्यवृत्त के पुत्र थे।

हृदपत्र^१—वि० [सं० हृदपत्र] जिसके परो हड़ हों।

हृदपत्र^२—संज्ञा पुं० बाँस।

हृदपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदपत्री] वल्वजा वृण। सागे बागे।

हृदपद्—संज्ञा पुं० [सं० हृदपद] तेईस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें १३ धीरे १० मात्राओं पर विराम होता है धीरे धव में दो गुरु होते हैं। इसे उपमा भी कहते हैं। जैसे,—बाहु धव वरमूल में प्राद्यावसि रादै। सपटे फणि श्रीचंद्र की सतिका जनु राजे। कृद जु रपवी सुहोम को, जनु नामि सुहार्द। रोगायसि मिस धूम की रेखा पसि धार्द।

हृदपाद^१—वि० [सं० हृदपाद] हृदनिश्चयी। विचार का पक्का।

हृदपाद^२—संज्ञा पुं० ब्रह्मा का एक नाम [श्लो०]।

हृदपादा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदपादा] यवतिका।

हृदपादी—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदपादी] सुम्पामलकी। सुम्पविना।

हृदप्रतिज्ञ—वि० [सं० हृदप्रतिज्ञ] जो अपनी प्रतिज्ञा से न टटे।

हृदप्ररोह—संज्ञा पुं० [सं० हृदप्ररोह] बट। बरगद।

हृदफल—संज्ञा पुं० [सं० हृदफल] नारियल।

हृदघनिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदघनिनी] अनंतमूल नाम की लता। ययामा धीरे सारिवा भी इसी को कहते हैं।

हृदघोज^१—संज्ञा पुं० [सं० हृदघोज] १ शक्रमंद। चक्रबंद। २. धमरुद। ३. कोकर। बबूर। ४. बदरीफल। बेर। ५. बट। बरगद [श्लो०]।

हृदघोज^२—वि० कटे बीजवासा [श्लो०]।

हृदभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदभूमि] योगशास्त्र में मन को एकाग्र धीरे स्थिर करने का एक अभ्यास, जिसमें मन बाँधित हो जाता है, इससे उपर नहीं जाता। इस बाँधना को प्राप्त कर लेने पर वैराग्य की प्राप्ति निकट हो जाती है।

हृदमुटि^१—वि० [सं० हृदमुटि] १. जो मुट्टी में जोर से पकड़े। कसकर पकड़नेवाला। २. कृपण। कंजूस।

हृदमुटि^२—संज्ञा पुं० (मुट्टी में पकड़कर बसाए जानेवाले) सज्जादि माल।

हृदमूल—संज्ञा पुं० [सं० हृदमूल] १ मूँज। २ मयाना नाम की घास जो ठालों में होती है। मयानक वृण। ३. नारियल।

हृदरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदरंगा] फिटकिरी (जिससे रंग पक्का होता है)।

हृदरोह—संज्ञा पुं० [सं० हृदरोह] पाकर का पेड़। पक्कड़।

हृदलता—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदलता] पातासगाफड़ी सता। छिरेटा।


हृदलोम^१—वि० [सं० हृदलोमन्] [स्त्री० हृदलोम्नी, हृदलोमा] जिसके रोएँ कड़े हों।

हृदलोम^२—संज्ञा पुं० सुधर।

हृदलोमा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० हृदलोमन्] दे० 'हृदलोम' [श्लो०]।

हृदवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० हृदवर्मन्] घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

हृदवल्लक^१—वि० [सं० हृदवल्लक] जिसकी छाल कड़ी हो।

हृदवल्लक^२—संज्ञा पुं० १ सुपारी का पेड़। २. लकुच 

हृदयलका—सङ्घा श्री० [सं० हृदयलका] भवच्छा ।
 हृदवीज^१—वि० [सं० हृदवीज] जिसके बीज कहे हों ।
 हृदवीज^२—सङ्घा पुं० १. शकवट । २. बेर । ३. बबूच ।
 हृदवृक्ष—सङ्घा पुं० [सं० हृदवृक्ष] नारियल ।
 हृदव्य—सङ्घा पुं० [सं० हृदव्य] एक ऋषि का नाम ।
 हृदव्रत^१—वि० [सं० हृदव्रत] स्थिरसकल्प । अपने सकल्प पर जमा रहनेवाला ।
 हृदव्रत^२—सङ्घा पुं० घृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०] ।
 हृदसंध^१—वि० [सं० हृदसन्ध] सकल्प का पक्का । प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला ।
 हृदसंध^२—सङ्घा पुं० घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 हृदसन्धि—वि० [सं० हृदसन्धि] १. जो एक में मिलकर सट गया हो । मजबूती से मिला हुआ । २. जिसके भंग के जोड़ पुष्ट हों [को०] ।
 हृदसूत्रिका—सङ्घा श्री० [सं० हृदसूत्रिका] मूर्वा नाम की लता । मुरी ।
 हृदस्कन्ध—सङ्घा पुं० [सं० हृदस्कन्ध] १. पिंड सज्जर । २. खिरनी का पेड़ ।
 हृदस्यु—सङ्घा पुं० [सं० हृदस्यु] सोपामुद्रा के गर्भ से उत्पन्न ऋषि के एक पुत्र का नाम ।
 हृदहस्त^१—वि० [सं० हृदहस्त] जो हृषियार आदि पकड़ने में पक्का हो ।
 हृदहस्त^२—सङ्घा पुं० घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 हृदांग^१—वि० [सं० हृदाङ्ग] जिसके भग दृढ़ हों । कड़े बदन का । दृष्ट पुष्ट ।
 हृदांग^२—सङ्घा पुं० जीरक । जीरा (या हीरा) ।
 हृदाई^①—सङ्घा श्री० [हिं० हृद] हृदता । मजबूती । उ०—तेनह के ज्ञान जग रहे समई । घर घर आए कुल बान दुहाई ।—कबीर सा०, पृ० ६१३ ।
 हृदाना^१—क्रि० सं० [हिं० हृद + ना (प्रत्य०)] हृद करना । पक्का करना । मजबूत करना । उ०—(क) वही बात जो जनक द्वाइ । देह धरे विदेह कहई ।—कबीर (शब्द०) । (ख) चलत गगन भइ गिरा सुहाई । जय महेश भलि भक्ति द्वाइ ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) बात द्वाइ कुमति हंसि बोली । कुमति विहग कुलह अनु सोली ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) पाछे विविध ज्ञान जननी को दीन्हों कपिल द्वाइ । सांख्य योग भर ज्ञान भक्ति द्वाइ बरनी विविध बनाय ।—सूर (शब्द०) ।
 हृदाना^२—क्रि० प्र० १. कड़ा होना । पुष्ट या मजबूत होना । २. स्थिर या पक्का होना ।
 हृदायु—सङ्घा पुं० [सं० हृदायु] १. तृतीय मनु सारणि के एक पुत्र का नाम । २. महाभारत में वर्णित उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न एक राजा का एक पुत्र ।

हृदायुष^१—वि० [सं० हृदायुष] अस्त्र ग्रहण करने में पक्का । युद्ध में तत्पर ।
 हृदायुष^२—सङ्घा पुं० १. शिव का एक नाम । २. घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 हृदाश्व—सङ्घा पुं० [सं० हृदाश्व] हृदिवश पुराण के अनुसार घुंघुमार के एक पुत्र का नाम ।
 हृदेषुधि—वि० [हृदेषुधि] दृढ़ तरकस या तूणीरवाला [को०] ।
 हृद—वि० [सं०] [वि० श्री० हृद] १. सम्मानित । भाव्य । २. दीर्घ । विदीर्घ [को०] ।
 हृदा—सङ्घा श्री० [सं०] जीरा ।
 हृताभवेग^१—वि० [सं०] (सेना) जिसका अग्रभाग नष्ट हो गया हो ।
 हृताभवेग^२—वि० दे० 'प्रतिहत' ।
 हृति—सङ्घा पुं० [सं०] १. चमड़ा । खाल । २. खाल का बना हुआ पात्र । ३. मशक । ४. मेघ । ५. एक प्रकार की मछली । ६. गलकबल । गाय, बैल आदि के गले के नीचे फूलता हुआ चमड़ा ।
 हृतिधारक—सङ्घा पुं० [सं०] एक पीघा जिसे वंग देश में प्राकन-पाता कहते हैं ।
 पर्या०—भानदी । वामन ।
 हृतिवातवसोरयन—सङ्घा पुं० [सं०] एक अयनसत्र का नाम । एक प्रकार का यज्ञ ।
 हृतिहरि^१—सङ्घा पुं० [सं०] (खाल या चमड़ा धुरानेवाला) कुत्ता ।
 हृतिहरि^२—सङ्घा पुं० [सं०] गलकबलवाला (पशु) । जिसे गलकबल हो [को०] ।
 हृतिहार—सङ्घा पुं० [सं०] मशक डोनेवाला । मिश्री ।
 हृन्फू^१—सङ्घा श्री० [सं०] १. सर्प । साँप । २. वज्र । विद्युत् । ३. शक्र । पहिया [को०] ।
 हृन्फू^२—सङ्घा पुं० सूर्य [को०] ।
 हृन्मू—सङ्घा पुं० [सं०] १. वज्र । २. सूर्य । ३. राजा । ४. साँप । ५. पहिया । ६. यम । अतक [को०] ।
 हृत्त^१—वि० [सं०] १. गन्धित । इतराया हुआ । २. हर्ष से फूला या चमकता हुआ ।
 हृत्त^२—सङ्घा पुं० विष्णु का एक नाम [को०] ।
 हृत्त—वि० [सं०] १. प्रचंड । प्रबल । २. इतराया हुआ । चमंडी ।
 हृत्त^१—वि० [सं०] १. प्रयत्नित । गुंथा हुआ । २. भीत । डरा हुआ ।
 हृत्त^२—सङ्घा पुं० १. भय । खौफ । डर । २. डोरा । धागा । डोरी [को०] ।
 हृश^१—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० हृश्य] १. देखना । दर्शन । २. प्रदर्शक । दिखानेवाला । ३. देखनेवाला ।
 हृश^२—सङ्घा श्री० १. दृष्टि । २. अस्ति । ३. दो की संख्या । ४. ज्ञान ।
 हृशद्—सङ्घा श्री० [सं०] १. 'हृषद्' ।
 हृशद्वती—सङ्घा श्री० [सं०] दे० 'हृषद्वती' ।

दृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धाँख ।

दृशाकांक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं० दृशाकाङ्क्ष्य] कमल ।

दृशान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश । आभा । २. विरोचन नाम का दैत्य । ३. आचार्य । गुरु । ४. प्रजा का पालन करनेवाला राजा । लोकपाल । ५. ब्राह्मण ।

दृशालु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

दृशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दृशी' ।

दृशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि । २. प्रकाश । ३. चेतन पुरुष । ४. शास्त्र ।

दृशोपम—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कमल । पुढरीक ।

दृश्य^१—वि० [सं०] १. जो देखने में आ सके । जिसे देख सकें । दृग्गोचर । जैसे, दृश्य पदार्थ । २. जो देखने योग्य हो । दर्शनीय । ३. मनोरम । ४. जानने योग्य । ज्ञेय ।

दृश्य^२—संज्ञा पुं० १. देखने की वस्तु । वह पदार्थ जो धार्मिकों के सामने हो । नेत्रों का विषय । जैसे, वन और पर्वत का दृश्य । २. तमाशा । वह मनोरंजक व्यापार जो धार्मिकों के सामने हो । ३. वह काव्य जो अभिनय द्वारा दर्शकों को दिलालाया जाय । नाटक । ४. गणित में ज्ञात या दी हुई संख्या ।

दृश्यमान—वि० [सं०] १. जो दिखाई पड़ रहा हो । २. चमकीला । सुंदर ।

दृश्यावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्यों की पंक्ति । दर्शनीय वस्तुओं का समूह । उ०—दृश्यावली सुघर दर्शक दक्षिका मनोहर । अपरा, पृ० १६४ ।

दृषत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिला । पर्वत की चट्टान । २. सिल । ३. पत्थर ।

दृषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दृषत्' ।

दृषद्वती^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है । इसे धाजकल घग्घर और राक्षी कहते हैं । यह धानेश्वर से १३ मील दक्षिण है । महाभारत में यह कुरुक्षेत्र के अंतर्गत मानी गई है । मनुस्मृति में इसे ब्रह्मावर्त की सीमा पर लिखा है । २. विश्वामित्र की एक पत्नी का नाम । ३. दुर्गा का एक रूप [को०] ।

दृषद्वती^२—वि० [सं०] पयरीली ।

दृषद्वान्—वि० [सं० दृषद्वत्] [वि० स्त्री० दृषद्वती] पाषाणयुक्त । खिलामय । पयरीला ।

दृष्ट^१—वि० [सं०] १. देखा हुआ । २. जाना हुआ । ज्ञात । प्रकट । ३. लौकिक और गोचर । प्रत्यक्ष ।

विशेष—पातञ्जल दर्शन में दो प्रकार के विषय दृष्ट बतलाए गए हैं अर्थात् स्त्री, भन्न, पान आदि लौकिक विषय जिन्हें इन्द्रियाँ भोगती हैं और धानुश्रविक विषय जो वेद प्रतिपादित स्वर्ग आदि से सबंध रखते हैं । इन दोनों प्रकार के विषयों से एक साथ निस्पृह हो जाने से बंधीकार नामक वैराग्य उत्पन्न होता है ।

दृष्ट^२—संज्ञा पुं० १. दर्शन । २. साक्षात्कार । ३. साक्ष्य में तीन प्रकार

के प्रमाणों में से एक । प्रत्यक्ष प्रमाण । ४. स्वयं और परचक्र से होनेवाला भय [को०] । ५. बाकुषों का डर [को०] ।

दृष्टकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहेली । २. कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्दों के वाचकाय से न समझा जा सके बल्कि प्रसंग या रूढ़ अर्थों से जाना जाय । जैसे,—हरिसुत पावक प्रगट भयो री । मावत सुत भ्राता पितृ प्रोहित ता प्रतिपालन छाँड़ि गयो री । हरसुत वाहन ता रिपु भोजन सों लागत भ्रंग भनल भयो री । मृगमद स्वाद मोद नहि भावत दधिसुत भानु समान भयो री । वारिधि सुतपति क्रोध कियो सखि भेटि सकार सकार लयो री । सूरदास प्रभु सिंधुसुता बिनु कोपि समर कर चाप लयो री ।—सूर (शब्द०) ।

दृष्टनष्ट—वि० [सं०] जो एक बार दिखाई देकर लुप्त हो जाय [को०] ।

दृष्टपृष्ठ—वि० [सं०] पीठ दिखानेवाला । युद्धभूमि से भागा हुआ [को०] ।

दृष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कर्म का व्यक्त परिणाम (दर्शन) ।

दृष्टमान^१—वि० [सं० दृश्यमान] प्रकट । व्यक्त । उ०—(क) दृष्टमान नास सब होई । साक्षी व्यापक नसे न सोई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दृष्टमान सब बिनसे अदृष्ट सबै न कोइ । दीन कोइ गाहक मिले बहुते सुख सो होइ ।—कबीर (शब्द०) ।

दृष्टरजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टरजस्] वह लडकी जिसका रजोदर्शन हो गया हो ।

दृष्टवत्—वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष के समान । २. लौकिक । सांसारिक ।

दृष्टवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जो केवल प्रत्यक्ष को ही मानता है ।

दृष्टवान्—वि० [सं० दृष्टवत्] जो प्रत्यक्ष के तुल्य हो । देखे हुए के समान [को०] ।

दृष्टांत—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टान्त] १. अज्ञात वस्तुओं या व्यापारों आदि का धर्म धारि बतलाते हुए समझाने के लिये समान धर्मवाली किसी ऐसी वस्तु या व्यापार का कथन जो सबको ज्ञात हो । उदाहरण । मिसाल । जैसे,—(क) बहुत से पत्ते गोल होते हैं, जैसे, कमल के । (ख) जय मनुष्य एक बार पतित हो जाता है तब बराबर पतित ही होता जाता है । जैसे,—पत्थर का गोला जब पहाड़ पर से छुड़कता है तब गिरता ही जाता है ।

इस दूसरे वाक्य में पत्थर के गोले के दृष्टांत द्वारा मनुष्य के पतित होने की दशा समझाई गई है ।

विशेष—न्याय के सोलह पदार्थों में से दृष्टांत भी एक है । न्याय के अनुसार जिस पदार्थ के सबंध में लौकिक (साधारण) जनों और परीक्षकों (तार्किकों) का एक मत हो उसे दृष्टांत कहते हैं । ऐसी प्रत्यक्ष बात जिसे सब जानते या मानते हों दृष्टांत है । 'जहाँ धूम्र होता है वहाँ भाग होती है', इस बात को कहकर किसी ने कहा 'जैसे रसोईघर में' तो यह दृष्टांत हुआ । न्याय के अर्थवर्षों में उदाहरण के लिये इसकी कल्पना होती है अर्थात् जिस दृष्टांत का व्यवहार तर्क में होता है उसे उदाहरण कहते हैं ।

२ एक प्रयत्नकार जिसमें एक ओर तो उपमेय और उसके साधारण धर्म का वर्णन और दूसरी ओर बिब प्रतिबिब भाव से उपमान और उसके साधारण धर्म का वर्णन होता है। जैसे,—दुसह दुराज प्रजानि को बयो न करे प्रति दद । अधिक धंधेरो जग करत मिलि भावस रविचद ।—बिहारी । यहाँ उपमेय दुराज में अधिक द्वंद्व या धंधेरे का होना और उसी के अनुसार उपमान रविचद मिलन में अधिक धंधेरे का होना वर्णित है। प्रतिवस्तूपमा से इस प्रकार में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में शब्दभेद से एक ही वस्तु का कथन होता है पर इसमें धर्म भिन्न भिन्न (जैसे, द्वंद्व होना और धंधेरा होना) होते हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने इन दोनों में बहुत कम भेद माना है और कहा है कि इन्हें एक ही अलंकार के दो भेद समझना चाहिए।

३ शास्त्र । ४ मरण ।

दृष्टार्थ—सहा पुं० [सं०] १ वह शब्द जिसका अर्थ स्पष्ट हो । २. वह शब्द जिसके श्रवण से श्रोता को किसी ऐसे अर्थ का बोध हो जिसका प्रत्यक्ष इस ससार में होता हो। जैसे, 'गंगा' इस शब्द के श्रवण मात्र से मनुष्य को एक ऐसी नदी का बोध होता है जो भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह अदृष्टार्थ शब्द का विरोधी है। जैसे, स्वर्ग, नरक, क्षीरसमुद्र, अमरता, देवता आदि जो किसी स्थल में प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

दृष्टि—सहा स्त्री० [सं०] १ देखने की वृत्ति या शक्ति । भाँख की ज्योति ।

मुहा०—दृष्टि मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना ।

२ देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति । देखने के लिये भाँख की पुतली के किसी वस्तु के सीध में होने की स्थिति । टक । धक्का । अवलोकन । नजर । निगाह ।

क्रि० प्र०—झाँचना ।

मुहा०—दृष्टि करना = दृष्टि डालना । ताकना । दृष्टि चलाना = नजर डालना । दृष्टि चूकना = नजर का धर उधर हो जाना । भाँख का दूसरी ओर फिर जाना । जैसे,—जहाँ चूकी गिरे । दृष्टि देना = नजर डालना । ताकना । दृष्टि फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना । भाँख का दूसरी ओर हो जाना । (२) कृपादृष्टि न रहना । हित का ध्यान या प्रीति न रहना । विस्र भ्रमसन्न या खिन्न होना । दृष्टि फेंकना = नजर डालना । ताकना । दृष्टि फेरना = नजर हटा लेना । दूसरी ओर देखना । (किसी ओर) ताकते न रहना । (किसी से) दृष्टि फेरना = (किसी पर) कृपादृष्टि न रखना । भ्रमसन्न या विरक्त होना । खिन्न होना । (किसी को) दृष्टि बचाना = (१) सामने होने से बचना । किसी के भाँख के सामने न आना । जान बूझकर दिखाई न पड़ना । (भय, सज्जा आदि के कारण) । (२) (किसी से) छिपाना । न दिखाना । दृष्टि बाँधना = इस प्रकार का जादू करना कि भाँखों को ओर का ओर दिखाई पड़े । इद्रजाल फैलाना । दृष्टि लगाना = (१) स्थिर होकर ताकना । टकटकी बाँधना । (२) (किसी ओर देखने के लिये) भाँख ले जाना । ताकना ।

उ०—इसी दुवार ताल का लेखा । उसदि दृष्टि जो साब सो देखा ।—जायसी (शब्द०) ।

३. भाँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के अस्तित्व, रूप, रंग आदि का बोध होता है । धृक्पथ ।

मुहा०—दृष्टि भाना = दे० 'दृष्टि में भाना' । दृष्टि पढ़ना = दिखाई पड़ना । उ०—(क) दृष्टि परी इद्रासन पुरी ।—जायसी (शब्द०) ।—(ख) मेरी दृष्टि परे जा दिन तैं जान मान हरि लीनो री ।—सूर (शब्द०) । दृष्टि पर चढ़ना = (१) देखने में बहुत अच्छा लगना । निगाह में जँचना । अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना । पसंद आना । भाना । जैसे,—वह छड़ी तुम्हारी दृष्टि पर चढ़ी हुई है । (२) भाँखों में खटकना । किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे । जैसे,—तुम उसकी दृष्टि पर चढ़े हुए हो, वह तुम्हें बिना मारे न छोड़ेगा । दृष्टि बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के आसरे में लगाधार टाकते रहना । उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना । उ०—पवन स्वास तासों मन लाई । जोवे मारग दृष्टि बिछाई ।—जायसी (शब्द०) ।—(२) किसी के आने पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम प्रकट करना । दृष्टि में आना = देखने में आना । दिखाई पड़ना । उ०—जग कोउ दृष्टि न पावै पुरन होय सकाम ।—जायसी (शब्द०) । दृष्टि में पड़ना दिखाई पड़ना (वच०) । दृष्टि से उतरना या गिरना = श्रद्धा, विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना । (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना । तुच्छ या बुरा ठहरना ।

४ देखने में प्रवृत्त नेत्र । देखने के लिये खुली हुई भाँख ।

मुहा०—दृष्टि उठाना = ताकने के लिये भाँख ऊपर करना । दृष्टि गठाना या जमाना = दृष्टि स्थिर करना एकटक ताकना । (किसी से) दृष्टि घुराना = (सज्जा या भय से) सामने न आना । जान बूझकर दिखाई न पड़ना । नजर बचाना । (किसी से) दृष्टि जुड़ना = भाँख मिलना । देखा देखी होना । साक्षात्कार होना । (किसी से) दृष्टि जोड़ना = भाँख मिलाना । देखादेखी करना । साक्षात्कार करना । दृष्टि फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना । भाँख में चकाचौंध होना । दृष्टि भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उसनी ही देर तक देखना । जी भर कर ताकना । उ०—कर मन नदनदन ध्यान । सेइ चरन सरोज सीतल तजु विषय रसपान । सूर श्री गोपाल की छवि दृष्टि भरि लखि लेहि । प्रानपति की निरखि शोभा पलक परन न देहि ।—सूर (शब्द०) । दृष्टि मारना = (१) भाँख से इशारा करना । पलक गिराकर संकेत करना । (२) भाँख के इशारे से रोकना । दृष्टि मिलना = नजर में जँचना । अच्छा लगने के कारण ध्यान में बना रहना । भाना । उ०—वह सबों की दृष्टि में समा गया ।—बेनिस का बाँका (शब्द०) । दृष्टि मिलना = दे० 'दृष्टि जोड़ना' । उ०—विहरत हिया करहु पिय टेका । दृष्टि मया करि मिलवहु एका ।—जायसी (शब्द०) । (किसी वस्तु

पर) दृष्टि रखना=किसी वस्तु को देखते रहना जिससे वह इधर उधर न हो जाय निगरानी रखना। (किसी पर) दृष्टि रखना=देख रेख मे रखना। चौकसी में रखना। दशा का निरीक्षण करते रहना। जैसे,—इस लडके पर भी दृष्टि रखना, इधर उधर खेलने न पावे। दृष्टि लगाना=(१) नजर पड़ना। दृष्टिपात होना। (२) देखा देखी होने से प्रेम होना। प्रीति होना। दृष्टि लगाना=(१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बांधना। उ०—भूलि चकोर दृष्टि जो लावा। मेघ घटा मद पंख दिखावा।—जायसी (शब्द०)। (२) किसी मोर देखने के लिये भाँख ले जाना। ताकना। (३) प्रेम करना। प्रीति करना। (४) नजर लगाना। बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना। (किसी से) दृष्टि खटना=(१) (किसी की) भाँख के सामने भाँख होना। घूरा घूरी होना। देखादेखी होना। (२) प्रेम होना। (किसी से) दृष्टि लगाना=भाँख के सामने भाँख किए रहना। घूरना। खूब ताकना। देर तक भाँख से भाँख मिलाना।

५. परख। पहचान। तमीज। घटकल। अंदाज। ६ कृपा-दृष्टि। हित का ध्यान। मिह्रबानी की नजर। जैसे,—भाज कल भापकी वह दृष्टि मेरे ऊपर नहीं है। उ०—(क) तपे बीज उस घरती सूख विरह के घाम। कब सो दृष्टि करि बरसे तन लखवर होइ जाम।—जायसी (शब्द०)। (ख) बिरधा लाइ न सूखन दीजे।—जायसी (शब्द०)। ७ भासा की दृष्टि। भासरे में लगी हुई टकटकी। भास। चम्पीद। ८ ध्यान। विचार। अनुमान। जैसे,—मेरी दृष्टि में तो ऐसा करना अनुचित है। ९ उद्देश्य। अभिप्राय। नीयत। जैसे,—कुछ बुरी दृष्टि से मैंने ऐसा नहीं किया।

दृष्टिकूट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दृष्टकूट'।

दृष्टिकृत्—संज्ञा पु० [सं०] १ दर्शक। २ स्थल पथ।

दृष्टिकृत—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दृष्टिकृत्' [को०]।

दृष्टिकोण—संज्ञा पु० [सं०] देखने या समझने का अंदाज। विचार।

दृष्टिज्ञेय—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टिपात।

दृष्टिगत—वि० [सं०] जो दिखाई पड़ा हो। जो देखने में आया हो।

क्रि० प्र०—होना। उ०—जो दृश्य दृष्टिगत हुए तुम्हें हो सके किसे वे दृष्टिगम्य।—सागरिका, पृ० ११३।

दृष्टिगत—संज्ञा पु० १ नेत्र का विषय। २ भाँख का एक रोग।

दृष्टिगम्य—वि० [सं०] जो देखने में आ सके। दृष्टिगोचर। उ०—जो दृश्य दृष्टिगत हुए तुम्हें हो सके किसे वे दृष्टिगम्य।—सागरिका, पृ० ११३।

दृष्टिगुण—संज्ञा पु० [सं०] लक्ष्य। निशाना [को०]।

दृष्टिगोचर—वि० [सं०] नेत्रेन्द्रिय के द्वारा जिसका बोध हो। जो देखने में आ सके।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिदोष—संज्ञा पु० [सं०] १. देखने का दूषित ढग। २. देखने का बुरा प्रभाव। नजर।

दृष्टिधृक्—संज्ञा पु० [सं०] राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।

दृष्टिनिक्षेप—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि फेंकना। नजर डालना। देखने की क्रिया। उ०—उसने क्षुधापीडित मोर क्षुब्ध मानवता की मोर दृष्टिनिक्षेप किया।—बी० श० महा०, पृ० ४२।

दृष्टिनिपात—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दृष्टिपात'।

दृष्टिपथ—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि का फैलाव। नजर की पहुँच।

मुहा०—दृष्टिपथ में आना=दिखाई पठना।

दृष्टिपात—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि डालने की क्रिया या भाव। ताकने या देखने की क्रिया। प्रवलोकन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिपूत—वि० [सं०] १ जो देखने में शुद्ध हो। जो देखने में शुद्ध जान पड़े। २ जिसके देखने से भाँखें पवित्र हो। ३. अश्वी तरह देखा भाला हुआ।

दृष्टिफल—संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष में एक राशि में स्थित ग्रह का दूसरी राशि में स्थित ग्रह पर दृष्टि फैलने से होनेवाला फल।

विशेष—दे० 'दृष्टिस्थान'।

दृष्टिवंध—संज्ञा पु० [सं० दृष्टिवन्ध] १. वह क्रिया जिससे देखने-वालों की दृष्टि में भ्रम हो जाय। दोठबंदी। इद्रजान। माया। जादू। २. चालाकी। हाथ की सफाई। हस्तलाभ। उ०—रापी दृष्टिवन्ध कहिं खेला। समा माँक चेटक प्रस मेला।—जायसी (शब्द०)।

दृष्टिबधु—संज्ञा पु० [सं० दृष्टिवन्धु] सद्योत। जुगनु।

दृष्टिमंजी—संज्ञा स्त्री [सं० दृष्टिमंजरी] देखने का ढग। उ०—साहित्यकारों में उन्मुक्त स्वच्छद दृष्टि विकसित हुई थी।—हिं० का० प्र०, पृ० १४१।

दृष्टिमांय—संज्ञा पु० [सं० दृष्टिमान्य] दृष्टि का कमजोर होना। कम दिखाई देना।

दृष्टिमान्—वि० [सं० दृष्टिमत्] [वि० स्त्री० दृष्टिमती] जिसे दृष्टि हो। दोठवाला। भाँखवाला।

दृष्टिराग—संज्ञा पु० [सं०] देखने का ढग। दृष्टि का प्रभाव। २. दर्शनजन्य अनुराग [को०]।

दृष्टिरोध—संज्ञा पु० [सं०] १ दृष्टि की रोक। नजर पहुँचने में रुकावट। २. पाट। घोट। व्यवधान।

दृष्टिवत्—वि० [सं० दृष्टि + वत् (प्रत्य०)] दृष्टिवाला। २. जानी। जानवान्। जानकार। उ०—ना वह मिला न बिहरा ऐत रहा भरपूर। दृष्टिवत् कहूँ नियरे भव मुखसहि दूर।—जायसी (शब्द०)।

दृष्टिवाद—संज्ञा पु० [सं०] १. वह सिद्धांत जिसमें दृष्टि या प्रत्यक्ष प्रमाण ही की प्रधानता हो। २. धर्मियों के बारह धर्मों में से एक जिसकी रचना गुरुवर सोम तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर करते हैं।

विशेष—वे आदर्शन्य तीन कर्म के मूल बंध हैं। ग्यारह धर्म तो मिलते हैं पर वह दृष्टिवाद नहीं जिसका। जैनाचार्य सकल-

कीर्ति रचित 'तत्त्वार्थसारदीपक' में इसका जो उल्लेख मिलता है उससे पाया जाता है कि इसमें चंद्र, सूर्य आदि की गति प्रायु आदि, प्राणायाम चिकित्सा, मंत्र, तंत्र तथा अनेक प्रकार के विषय संमिलित हैं।

दृष्टिविज्ञेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कटाक्ष। तिरछी नजर। २. अवलोकन। देखना [को०]।

दृष्टिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकाश विज्ञान। प्रालोक विज्ञान।

दृष्टिविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का विलास। दृष्टिविज्ञेप।

दृष्टिविषय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दृष्टस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] कुडली में वह स्थान जिसपर किसी दूसरे स्थान में स्थित ग्रह की दृष्टि पड़ती हो।

विशेष—ग्रहों की दृष्टि का साधारण नियम यह है कि जिस स्थान में ग्रह हो उससे तीसरे और दसवें स्थानों को एक चरण से, नवें और पंचवें को दो चरणों से, चौथे और आठवें को तीन चरणों से और सातवें को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

दृष्ट्याकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश की ओर दृष्टि लगाए हुए। आकाश की ओर देखता हुआ। उ०—ऊर्ध्व लक्ष करे इहि भाँती। दृष्ट्याकाश रहै दिन राती।—सु दर० प्र०, भा० १, पृ० १०५।

देहका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दीमक'।

देह—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] देह। शरीर। उ०—कैसे भारत करो तिहारी। महामलिन गति देह हमारी।—धरनी०, पृ० १६।

देही—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] दे० 'देह'। उ०—होता बीज भौत के लोहू सो देही का राजा।—मल्लक०, पृ० १२।

देी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द। उ०—यह छवि मुरदास सदा रहै बानी। नंदनंदन राजा राधिका दे रानी।—सूर (शब्द०)।

देी—संज्ञा पुं० [सं० देव] बंगाली कायस्थों का एक भेद।

देही—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] दे० 'देवी-२'। उ०—भनइ विद्यापति एहु रस जान, राजा सिर्वासिध रूपनरायन लखिमा देइ रमान।—विद्यापति, पृ० ५८।

देई—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] १ देवी। उ०—देव देई सुंदर सघन बन देखियत कुजन मे सुनियत गुंजन मलीन की।—देव (शब्द०)। २. स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द।

देउ—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—पुनि रे चलब घर आपुन पूजि बिबेयर देउ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २४६।

देउर—संज्ञा पुं० [सं० देवर] दे० 'देवर'।

देउर—संज्ञा पुं० [सं० देवर] देवम। मंदिर। देहुरा। उ०—धोमा-उरि बाने मदिरा साँध। देउर मूँगि मसीद बाँध।—कीर्ति०, पृ० ४४।

देउरानी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवर] दे० 'देवरानी'।

देउली—संज्ञा पुं० [हि० देवल] दे० 'देवल'। उ०—देउल के पीछे नामा भस्मल पुकारे। ज़िदर ज़िदर नामा उदर देउल ही कीरे।—दक्खिनी०, पृ० १८।

देख—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] देखने की क्रिया या भाव। अवलोकन। जैसे, देख रेख, देखमाख।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकेले कम होता है, समस्त पदों में में होता है।

मुहा०—देख में = भाँख के सामने। समक्ष।

देखन(उ)।—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] देखने की क्रिया या भाव। २ देखने का ढग।

देखनहारा(उ)।—संज्ञा पुं० [हि० देखना + हारा (प्रत्य०)] स्त्री० देखनहारी] देखनेवाला। उ०—सखि सब कीतुक देखनहारे।—मुलसी (शब्द०)।

देखना—क्रि० सं० [सं० दृष्, द्रक्ष्यति, प्रा० देखइ] १. किसी वस्तु के अस्तित्व या उसके रूप, रंग आदि का ज्ञान नेत्रों द्वारा प्राप्त करना। अवलोकन करना।

संयो० क्रि०—लेना।

यो०—देखना भालना = निरीक्षण करना। जाँच करना।

मुहा०—देखना सुनना = जानकारी प्राप्त करना। जानना वृत्तना। पता लगाना जैसे,—बिना देखे सुने उसके विषय में कोई क्या कह सकता है? देखने में = (१) बाह्य लक्षणों के अनुसार। बाहरी चेष्टाओं से। साधारण व्यवहार में। जैसे,—देखने में तो वह बहुत सीधा है पर बड़ी बड़ी चालें चखता है। (२) रूप रंग में। वस्त्र, आकृति आदि में। जैसे,—यह पेड़ देखने में बड़ा सुंदर है। किसी के देखते = रहते हुए। समक्ष। सामने। उपस्थिति में। मौजूद रहते। जैसे,—(क) उसके देखते तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। (ख) मेरे देखते क्या कोई चीज से जा सकता है। देखते देखते = (१) भाँखों के सामने। (२) तुरत। फौरन। चटपट। जैसे,—देखते देखते वह षड़ी उछा ले गया। देखते रह जाना = हुक्का बक्का रह जाना। चकपका जाना। चकित हो जाना। ऐसी स्थिति में हो जाना जिसमें कुछ करते धरते न बने। किकर्तव्य विमूढ़ हो जाना। जैसे,—वह एकबारगी धाकर उसे भारने लगा, मैं देखता रह गया। देखना चाहिए देखा चाहिए, देखो या देखिए = (क्या होगा) मात्सु नहीं। (भागे की बात) कोन जाने? कह नहीं सकते (कि ऐसा होगा कि नहीं) (हम) देख लेंगे = उपाय करेंगे। प्रतिकार करेंगे। जो कुछ करना होगा करेंगे। जैसे,—उन्हे जो जी में आवे करने दो, हम देख लेंगे। देखा जायगा = (१) फिर विचार किया जायगा। (२) पीछे जो कुछ करना होगा किया जायगा। जैसे,—इस समय तो इन्हे ढालो, फिर देखा जायगा। देखो = (१) ध्यान दो। विचारो। सोचो। जैसे,—देखो, इसी रूप के लिये लोग कितना कष्ट उठाते हैं। (२) सावधान रहो। खयाल रखो। खबरदार। जैसे,—देखो, फिर कभी ऐसा न करना। (३) सुनो। इधर भागो। (पुकारने का शब्द) सुनो।

२. जाँच करना। दस्ता या स्थिति जानने के लिये निरीक्षण करना। मुप्रायना करना। जैसे,—कल इन्स्पेक्टर साहब स्कूल देखने आवेंगे। ३. हँकना। खोजना। तलाश करना। पता

खगाना । जैसे,—तुम अपने सट्टक में तो देखो, कायद उसी में हो । ४ परीक्षा करना । धाजमाना । अनुभव करना । परखना । जैसे,—(क) इस घोष का गुण देख लें सब कुछ कहें । (ख) सबको देख लिया है, उस समय किसी ने मेरा साथ नहीं दिया । ५ किसी वस्तु पर ध्यान रखना जिसमें वह इधर उधर न होने पावे । निगरानी रखना । ताकते रहना । जैसे,—मेरा सामान भी देखते रहना, मैं थोड़ा पानी पी जाऊँ । ६ समझना । सोचना । विचारना । जैसे, भलाई बुराई देखकर काम करना चाहिए । ७. अनुभव करना भोगना । जैसे,—(क) उसने अपने जीवन में बहुत दुःख देखा । (ख) उन्होंने अच्छे दिन देखे हैं । उ०—एक यही दुःख देखत केशव होत वही सुरलोक बिहारो ।—केशव (शब्द०) । ८ पढ़ना । बाँचना । जैसे,—उन्होंने बहुत ग्रंथ देखे हैं । ९ श्रुति प्रादि जानने या दूर करने के लिये अवलोकन करना । परीक्षा करना । जाँचना । गुण दोष का पता लगाना । जैसे,—(क) देखो इस भंगूठी का सोना कैसा है । (ख) मेरे इस लेख को देख जाओ । १०. ठीक करना । संशोधित करना । शोधना । जैसे, प्रूफ देखना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

देखनि०—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] दे० 'देखन' ।

देखनु देखनो०—क्रि० सं० [हि० देखना] देखने का ढग । देखन । उ०—(क) मोर मुकुट छवि देत, मद हंसनि, दग देखनु ।—नद प्र०, पृ० ३६५ । (ख) सखि मोर मुकुट छवि देति, बक दान हंसि देखनो ।—नंद० प्र०, पृ० ३८५ ।

देखभाल—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + भालना] १ जाँच पड़ताल । निरीक्षण । निगरानी । २. दशन । देखादेखी । साक्षात्कार ।

देखराना०—क्रि० सं० [हि० दिखलाना] दे० 'दिखलाना' ।

देखराखना०—क्रि० सं० [हि० दिखलाना] दे० 'दिखलाना' ।

देखरेख—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + सं० प्रेक्षण] देख भाल । निरीक्षण । निगरानी । जैसे,—उनकी देखरेख में यह काम हो रहा है ।

क्रि० प्र०—रखना ।

देखाऊ—वि० [हि० देखना] १ जो केवल देखने के लिये हो । जो केवल ऊपर से देखने में भड़कीला या सुंदर हो, काम का न हो । भूठी तड़क भड़कवाला । जैसे, देखाऊ चीजें । देखाऊ सामान । २ जो ऊपर से दिखाने के लिये हो, वास्तविक न हों । बनावटी । जैसे, देखाऊ प्रेम ।

देखादेखी—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] भाँखों से देखने की दशा या भाव । दर्शन । साक्षात्कार । अवलोकन । उ०—कहनु सुनन की है नहीं, देखादेखी नाय । सार सबद जो बिन्ही, सोइ मिसेगा प्राय ।—कबीर सा०, पृ० ४७५ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

देखादेखी^२—क्रि० वि० दूसरों को करते देखकर । दूसरों के अनुकरण पर । जैसे,—(क) देखादेखी पाप, देखादेखी पुण्य । (ख) उसकी देखादेखी तुम भी ऐसा करने लगे ।

विशेष—यह वास्तव में संज्ञा शब्द है जिसके भागे 'दे' विभक्ति लुप्त है भव लिंग ज्यों का र्यों रहता है ।

देखाना०—क्रि० सं० [हि० दिखाना] दे० 'दिखाना' ।

देखाभाली—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + भालना] दे० 'देखभाल' ।

देखाव—संज्ञा पुं० [हि० देखना] १ दृष्टि की सीमा । नजर की पहुँच ।

मुहा०—देखाव में नजर के सामने । समझ ।

२ रूप, रंग दिखाने की क्रिया या भाव । बनाव । ३. ठाट-बाट । तड़क मड़क ।

देखावना—क्रि० सं० [हि० देखाना] दे० 'दिखाना' ।

देखौआ—वि० [हि० देखाऊ] दे० 'देखाऊ' ।

देग^१—संज्ञा पुं० [फा० देग] चोड़े मुँह और चौड़े पेटे का बड़ा बरतन जिसमें खाना पकाया जाता है । ताबिया ।

श्री०—देगप्रदाज = नावर्ची । रसोहया ।

देग^२—संज्ञा पुं० [देरा] एक प्रकार का वाज पत्नी ।

देगचा—संज्ञा पुं० [फा० देगचह] [स्त्री० मल्ला + देगची] छोटा देग ।

देगची—संज्ञा स्त्री० [फा० देगचा] छोटा देगचा ।

देदोप्यमान—वि० [सं०] अत्यंत प्रकाशयुक्त । चमकता हुआ । दमकता हुआ ।

देन—संज्ञा स्त्री० [हि० देना] १ देने की क्रिया या भाव । दान । २. दी हुई चीज । प्रदत्त वस्तु । जैसे,—यह तो ईश्वर की देन है ।

देनदार—संज्ञा पुं० [हि० देना + फा० दार] ऋणी । कर्जदार ।

देनदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० देन + फा० दारी] ऋणी होने की अवस्था ।

देनलेन—संज्ञा पुं० [हि० देना + लेना] व्याज पर रुपया उधार देने का व्यापार । महाजनी का व्यवसाय ।

देनहार०—वि० [हि०] दे० 'देनहरा' ।

देनहारा०—वि० [हि० देना + हारा (प्रत्य०)] देनेवाला ।

देना^१—क्रि० सं० [सं० दान] १. किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर उसपर दूसरे का स्वत्व स्थापित करना । दूसरे के अधिकार में करना । प्रदान करना । जैसे,—(क) उसने अपना मकान एक ब्राह्मण को द दिया । (ख) जो दे उसका भला, जो न दे उसका भला ।

संयो० क्रि०—हालना ।—देना ।

२. अपने पास से भ्रमण करना । सौंपना । हवाले करना । जैसे,—इसे हमें दे दो हम रखे रहें, जब काम पड़े ले लेना । ३. हाथ पर या पास रखना । थमाना । जैसे,—(क) छड़ी उसे दे दो और छाता तुम ले लो, सब चलो । (ख) जरा यह बिट्टी उन्हें तो दे दो, वे पढ़कर देख लें । ४ रखना, खगाना या ढालना । स्थापित, प्रयुक्त या मिश्रित करना । जैसे,—(क) सिर पर टोपी देना । (ख) छाता देना । (ग) जोड़-में पचवड़ देना । (घ) तरकारी में चीनी देना । (ङ) यहाँ से लेकर वहाँ तक सकीर देना । उ०—बक बिकारी देत ज्यो दाम रूपैया होत ।—बिहारी (शब्द०) । ५ मारना । प्रहार करना । जैसे,—थप्पड़ देना, चाँटा देना, पेट में कटारी देना ।

मुहा०—दे मारना = पट देना । (किसी व्यक्ति को) । पकड़ कर जमीन पर गिरा देना ।

६ अनुभव कराना । भोगाना । जैसे,—कष्ट देना, दुःख देना, सुख देना, आराम देना । ७ उत्पन्न करना । निकालना । जैसे,—(क) यह गाय कितना दूध देती है ? (ख) इस बकरी ने दो बच्चे दिए हैं । ८ वंद करना । मिठाना । जैसे,—किवाड़ देना, बोलस में ढाट देना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः सब सकर्मक क्रियाओं के साथ सयो० क्रि० के रूप में होता है जैसे, कर देना, मार देना, गिरा देना, दे देना, बना देना, बिगाड़ देना, निकाल देना इत्यादि । बहुत सी क्रियाओं में तो इसे लगाने से यह भाव निकलता है कि वे क्रियाएँ दूसरे के लिये हैं । जैसे,—मेरा या उनका यह काम कर दो । मेरी घड़ी बना दो ।

जो क्रियाएँ केवल कर्ता ही के लिये होती हैं दूसरे के लिये नहीं, उनके साथ 'लेना' का प्रयोग होता है । जैसे, खा लेना, पी लेना । एक ही क्रिया केवल कर्ता के लिये भी हो सकती है और दूसरे के लिये भी । जैसे,—अपना काम कर लो, मेरा काम कर दो । अपनी घड़ी बना लो, मेरी घड़ी बना दो । स० क्रि० के अतिरिक्त कुछ अ० क्रि० के साथ भी सयो० क्रि० के रूप में 'देना' का प्रयोग होता है, जैसे,—चल देना, हँस देना, रो देना इत्यादि ।

देना^२—सच्चा पुं० ऋण जिसे चुकाना हो । कर्ज । उधार लिया हुआ रुपया । जैसे,—तुम अपना सब देना चुकता कर दो ।

यौ०—देना पावना ।

देनिहारा^३—सच्चा पुं० [हि० देना + हारा (= वाला)] देने-वाला । दाता ।

देमान^४—सच्चा पुं० [फ्रा० दीवान] मंत्री । प्रभारण्य । उ०—देमान सब दगल गढ़ वर, कुरु वक वैखल अदप कह ।—कीर्ति०, पृ० ६२ ।

देय—वि० [सं०] देने योग्य । दान योग्य । दातव्य ।

देयधर्म—सच्चा पुं० [सं०] दान धर्म ।

विशेष—शिलालेखों में इस शब्द का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है ।

देयासी^५—सच्चा पुं० [सं० देवोपासित्] देवता का उपासक । भोक्ता ।

देर^६—सच्चा पुं० [प्रा० देर (= दार)] द्वार । दरवाजा । उ०—काली बीसल दे कियो, दरब सिलातल देर । विमल कियो बछराव यह, भरब समपि भजमेर ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ५७ ।

देर^७—सच्चा स्त्री० [फा०] १ अतिकाल । बिलंब । नियमित, उचित या आवश्यक से अधिक समय । जैसे,—(क) देर हो रही है, चलो । (ख) इस काम में देर मत करो ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—होना ।

२. समय । वक्त । जैसे—तुम कितनी देर में आओगे ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अभी होता है जब

उसके पहले कोई परिमाणवाचक विशेषण होता है । जैसे,—कितनी देर, बहुत देर ।

देरा^८—सच्चा पुं० [हि० डेरा] दे० 'डेरा' । उ०—घड़ी घड़ी का लेवा लेहू । कर्मादिक देरा भर देहू ।—रामानंद०, पृ० २६ ।

देरी^९—सच्चा स्त्री० [फ्रा०] दे० 'देर' । उ०—यों ही शख असंख्य हो गए सगी न देरी ।—साकेत, पृ० ५१० ।

देवंगा^{१०}—सच्चा पुं० [सं० देवज] देवज । ज्योतिर्विद् । ज्योतिषी । गणक । उ०—एक सुदिन देवग सों बोलिय राज नरिंद । देव मुहूरत दुज सु गुर तिहि हम करें प्रनद ।—पु० रा०, २४। ३५४ ।

देवका^{११}—सच्चा स्त्री० [देश०] दे० 'दीमक' ।

देवकारा^{१२}—सच्चा पुं० [देश०] दे० 'दीमक' ।

देव—सच्चा पुं० [सं०] [स्त्री० देवी] १ स्वर्ग में रहने या क्रीड़ा करनेवाला भ्रमर प्राणी । दिव्य शरीर धारी । देवता । सुर । २ पूज्य व्यक्ति । ३. तेजोमय व्यक्ति । ४ ब्राह्मणों की एक उपाधि । ५ बड़ों के लिये एक आदरसूचक शब्द या संबोधन । ६ राजा के लिये आदरसूचक शब्द या संबोधन । ७. मेघ । बादल । ८. पारा । ९ देवदार । १० देवर । ११. ज्ञानेंद्रिय । १२ ऋत्विक् । १३ विष्णु (को०) । महादेव । शिव (को०) । १४. सुरराज । इंद्र (को०) । १५ इन्द्रिय (को०) । १७. ईश्वर । परमात्मा (को०) । १८. स्नेही । प्रेमी (को०) । १९ (को०) । ० शिशु । वरस । बच्चा (को०) २१ मुख । बेवकूफ (को०) ।

देव^२—वि० १ देव संबंधी । देवों से संबद्ध । २. स्वर्गिक । स्वर्गीय । स्वर्गसंबंधी । ३. सामान्य । पूज्य । आदरणीय । ४. ज्योतिष । दीप्त । चमकदार (को०) ।

देव^३—सच्चा पुं० [फ्रा०] १. दैत्य । राक्षस । दानव । २. शानय या भीमकाय व्यक्ति (को०) ।

देवअंशी—वि० [सं० देव + अंशित्] जो देवता के अंश से उत्पन्न हो । जो किसी देवता का अवतार हो ।

देवअग्रणी—सच्चा पुं० [सं०] देवताओं के लिये कर्तव्य । यज्ञादि ।

देवअग्रि—सच्चा दे० [सं०] देवताओं के लोक में रहनेवाले नारद आदि ऋषि ।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, भृगु इत्यादि ऋषि देववि माने जाते हैं ।

देवक^४—सच्चा पुं० [सं०] १. देवता । २. एक यदुवशी राजा जो देवकी के पिता अर्थात् श्री कृष्णचंद्र के नामा थे । 'न्हें चार पुत्र और तीन कन्याएँ थीं । सभी कन्याओं का विदेह इन्होंने वसुदेव के साथ कर दिया था । अतएव इनके बड़े भाई थे । ३ युधिष्ठिर के एक पुत्र का नाम ।

देवक^५—वि० १ देवतुल्य । देवसंबंधी । देवसदृश । २. कीड़ासील । खेलाही (को०) ।

देवकन्यका—सच्चा स्त्री० [सं०] दे० 'देवकन्या' ।

देवकन्या—सच्चा स्त्री० [सं०] देवता की पुत्री । देवी ।

देवकपास—सखा स्त्री० [देश०] नरमा । मनवा । राम कपास ।
देवकर्म्म—सखा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य, जो चंदन, अगर, कपूर और केसर को एक में मिलाने से बनता है ।
देवकर्म्म—सखा पुं० [सं० देवकर्म्मन्] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म । जैसे, यज्ञ, बलिदेवदेव इत्यादि ।
देवकाँहर—सखा स्त्री० [सं० देव + काएड] एक बहुत छोटा पोषा जिसकी पत्तियों और ठठलो में राई की सी भास होती है ।
विशेष—यह ऊँचे करारेवाली बड़ी नदियों के किनारे होती है । गंगा के तट पर बहुत मिलती है । इसकी पत्तियाँ कटावदार और फाँकों में विभक्त होती है । यह पोषा उमरी हुई गिलटी बैठाने की अच्छी दवा है । भवार भी इसका पड़ता है । इसे लठ्ठुरिया भी कहते हैं ।
देवकार्य—सखा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म । होम, पूजा आदि ।
देवकाण्ठ—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवदार ।
देवकिरी—सखा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो मेघराग की भायाँ मानी जाती है ।
 ललिता मालती गौरी नाट देवकिरी तथा ।
 मेघरागस्य रागिण्यो भवन्तीमा सुमन्यमा ।

—सगीत दामोदर ।

देवकी—सखा स्त्री० [सं०] वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता ।
विशेष—जब वसुदेव के साथ इनका विवाह हुआ तब नारद ने भाकर मथुरा के राजा कंस से कहा कि मथुरा में तुम्हारी जो चचेरी बहन देवकी है, उसके भाठवें गर्भ से एक ऐसा बालक उत्पन्न होगा जो तुम्हारा वध करेगा । कंस ने एक एक करके देवकी के छह बच्चों को मरवा डाला । जब सातवाँ शिशु गर्भ में आया तब योगमाया ने अपनी शक्ति से उस शिशु को देवकी के गर्भ से भाकषित करके रोहिणी के गर्भ में कर दिया । भाठवें गर्भ के समय देवकी पर कड़ा पहरा बैठाया गया । भाठवें महीने में भादों बदी अष्टमी की रात को देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ । उसी रात को यशोदा को एक कन्या हुई । वसुदेव रातोंरात देवकी के शिशु श्रीकृष्ण को यशोदा को दे भाए और यशोदा की कन्या को लाकर उन्होंने देवकी के पास सुला दिया । कंस ने उस कन्या का वध करने के लिये उसे पटक दिया । कहते हैं, कन्या, जो योगमाया थी, उसके हाथ से घूटकर भाकाशमार्ग से उड़कर विष्णु पर्वत पर आई । इधर कृष्ण यशोदा के यहाँ बड़े हुए । दे० 'कृष्ण' ।

देवकीनन्दन—सखा पुं० [सं० देवकीनन्दन] श्रीकृष्ण ।

देवकीपुत्र—सखा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में भी घोर आगिरस ऋषि के शिष्य देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख है ।

देवकीमातृ—सखा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (जिनकी माता देवकी हैं) ।

देवकीसुनु—सखा पुं० [सं०] देवकी के पुत्र, श्रीकृष्ण [को०] ।

देवकीय—वि० [सं०] देवता संबंधी । देवता का ।

देवकुंड—सखा पुं० [सं० देवकुण्ड] १ प्राकृतिक जलाशय । आपसे आप बना हुआ पानी का गड्ढा या ताल । २ वह जलाशय जो किसी देवता के निकट या नाम पर होने के कारण पवित्र माना जाता है ।

देवकुट—सखा पुं० [सं०] देवालय । देवमंदिर [को०] ।

देवकुरुंवा—सखा पुं० [सं० देवकुरुम्बा] बड़ा गुमा । गोमा ।

देवकुरु—सखा पुं० [सं०] जवूद्वीप के छह खडों में से एक खड जो सुमेरु और निषध के बीच माना गया है । (जैन हरिवंश) ।

देवकुल—सखा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का देवमंदिर, जिसका द्वार भव्यत छोटा हो । २ देवताओं का समूह । देवताओं का वर्ग [को०] ।

देवकुल्या—सखा स्त्री० [सं०] १ गंगा नदी । २ मरीचि और पूर्णिमा की कन्या ।

देवकुसुम—सखा पुं० [सं०] लवण । लौंग । उ०—देवकुसुम श्री संग पुनि जायक जाको नाँउ ।—अनेकार्य० पृ० ८६ ।

देवकूट—सखा पुं० [सं०] १ कुबेर के भाठ पुत्रों में से एक, जो शिव-पूजन के लिये सूँघकर कमल से गया था जिसके कारण वह कंस का भाई हुआ और श्रीकृष्ण चंद्र द्वारा मारा गया । २ एक पवित्र आश्रम जो वसिष्ठ के आश्रम के निकट था । (महाभारत) ।

देवकुच्छ—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें लपसी, शाक, दूध, दही, घी, इनमें से क्रमशः एक एक वस्तु तीन दिन तक खाते थे और उसके बाद तीन दिन तक वायु पर ही रहते थे ।

देवकेसर—सखा पुं० [सं०] सुपुत्राग । एक प्रकार का पुत्राग ।

देवखरा—सखा पुं० [सं० देवगृह] देवघर । देवस्थान । उ०—भूत परेतन देव बहार्ह । देवखर लोपै मोर वलार्ह ।—मल्लक०, पृ० ६ ।

देवखरा—सखा पुं० [हिं० देवखरा] [स्त्री० अल्पा० देवखरी] दे० 'देवहरा' । उ०—(क) हिंदू पूजे देवखरा, मुसलमान महजीद । पलटू पूजे झोलता जो खाय दीद बर दीद ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११० । (ख) माटी देवखरी बाँधि मुए की पूजा लावे ।—पलटू०, पृ० ७३ ।

देवखात—सखा पुं० [सं०] १ अकृत्रिम जलाशय । ऐसा ताल या गड्ढा जो आपसे आप बन गया हो । २ देवमंदिर के पास निर्मित जलाशय । देवमंदिर का तालाब ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि नदी, देवखात, तड़ाग, सरोवर, गर्भ और प्रसवण में निश्च स्नान करना चाहिए ।

३. शुफा । खोह । कंदरा ।

देवखातक—सखा पुं० [सं०] दे० 'देवरात' [को०] ।

देवगंगा—सखा स्त्री० [सं० देवगङ्गा] एक छोटी नदी का नाम जो आसाम में है । इसे वहाँ 'दिवग' कहते हैं ।

देवगर्ध्व—सखा पुं० [सं० देवगर्ध्व] १. नारद । २. गायन की पद्धति-विशेष [को०] ।

देवगंधा—सखा स्त्री० [सं० देवगन्धा] महामेदा ।

देवगंधार—सखा पुं० [सं० देवगान्धार] दे० 'देवगांधार' ।

देवगङ्गा—सखा स्त्री० [सं० देव + गी] कामधेनु । उ०—कामना

बानि सुमान लखे न कछु सुररुख न देवगढ़ है।—भूपण
प्र०, पु० ३४।

देवगढ़ी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की ईख।

देवगण—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवताओं का वर्ग। देवताओं का अलग अलग समूह।

विशेष—वैदिक देवताओं के ये गण हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ प्रादित्य। इनमें इंद्र और प्रजापति मिला देने से ३३ देवता होते हैं (शतपथ ब्राह्मण)। पीछे से इन गणों के अतिरिक्त ये गण और माने गए—३० तुषित, १० विष्वेदेवा, १२ साध्य, ६४ आभास्वर, ४६ मरुत, २२० महाराजिक। इस प्रकार वैदिक देवताओं के गण और परवर्ती देवगणों को कुल संख्या ४१८ होती है। बौद्ध और जैन लोग भी देवताओं के कई गण या वर्ग मानते हैं।

२ फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक समूह जिसके अंतर्गत अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अश्लेषा, मृगशिरा और श्रवण है। ३ किसी देवता का अनुचर।

देवगणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षरा। स्वर्णेश्या [को०]।

देवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मरने के उपरांत उत्तम गति। स्वर्ग-लाभ। उ०—श्री रघुनाथ धनुष कर लीनो लागत वाण देव-गति पाई।—सूर (शब्द०)। २ मरने पर देवमोनि की प्राप्ति।

देवगर्जना—संज्ञा पुं० [सं० देवगण] ३० 'देवगण'।

देवगर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] मेघगर्जन। बादल का गरजना [को०]।

देवगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो देवता के वीर्य से उत्पन्न हो। जैसे, कर्ण, जो सूर्य से उत्पन्न हुए थे।

देवगांधार—संज्ञा पुं० [सं० देवगान्धार] एक राग का नाम जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है। यह संपूर्ण जाति का राग है और हममें ऋषभ और धैवत कोमल लगते हैं। इसका स्वर-ग्राम इस प्रकार है—ग म प ध नि स रे।

देवगांधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगान्धारी] एक रागिनी जो श्रीराग की भार्या मानी जाती है। यह क्षिप्रिण ऋतु में तीव्ररे पहर से लेकर प्राची रात तक गाई जाती है।

देवगायक—संज्ञा पुं० [सं०] गधर्व।

देवगायन—संज्ञा पुं० [सं०] गधर्व।

देवगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवगणों। संस्कृत।

देवसिरी—संज्ञा पुं० [सं०] रैवतक पर्वत जो गुजरात में है। निरनार। २ दक्षिण का एक प्राचीन नगर जो आजकल दोलताबाद कहलाता है और निजाम राज्य के अंतर्गत है।

विशेष—यह यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा। प्रसिद्ध कलचुरि वंश का जब भय पतन हुआ तब इसके आसपास का सारा प्रदेश द्वारसमुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया। कई शिलालेखों में इन यादव राजाओं की जो वणावली लिखी है वह इस प्रकार है—

५-१६

सिधन (१ ला)

मल्लुगि

भित्तम (शक सं० ११०६-१११३)

जैतुगि (१ ला) वा जैत्रपाल, जैत्रसिंह (शक १११३-११३१)

सिधन (२रा) वा त्रिभुवनमल्ल (शक ११३१-११६६)

जैतुगि (२ रा) वा जैत्रपाल

कृष्ण या कन्हार (शक ११६६-११८२) महादेव
(शक ११८३-११९३)

रामचंद्र या रामदेव (शक ११९३-१२३१)

द्वितीय सिधन के समय में ही देवगिरि यादवों की राजधानी प्रसिद्ध हुआ। महादेव की सभा में बोधदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे। कृष्ण के पुत्र रामचंद्र रामदेव बड़े प्रतापी हुए। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। शक सं० १२१६ में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर अकस्मात् चढ़ाई कर दी। राजा जहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक लड़े पर अंत में दुर्ग के भीतर सामग्री घट जाने से उन्होंने आत्मसमर्पण किया। शक सं० १२२८ में रामचंद्र ने कर देना अस्वीकार कर दिया। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बैठ चुका था। उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफूर को दक्षिण भेजा। राजा हार गए। अलाउद्दीन ने समानपूर्वक उन्हें फिर देवगिरि भेज दिया। इधर मलिक काफूर दक्षिण के और राज्यों में लूटपाट करने लगा। कुछ दिन बीतने पर राजा रामचंद्र का जामाता हरिपाल मुसलमानों को दक्षिण से भगाकर देवगिरि के सिंहासन पर बैठा। छह वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप के साथ राज्य किया। अंत में शक सं० १३४० में दिल्ली के बादशाह ने उसपर चढ़ाई की और कष्टयुक्ति से उसको परास्त करके मार डाला। इस प्रकार यादव राज्य की समाप्ति हुई। मुहम्मद तोगलक पर जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि ले जाने की सनक चढ़ी थी तब उसने देवगिरि का नाम दीनसाबाद रखा था।

देवगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो सोमेश्वर के मत से वसंत राग की, भरत के मत से हिंदोल राग के पुत्र नागध्वनि की, सगीतदर्पण के मत से नटकल्याण की और हनुमंत के मालकोश राग की भार्या मानी जाती है।

विशेष—यह हेमचंद्र ऋतु में दिन के चौथे पहर से लेकर प्राची रात तक गाई जाती है। किसी के मत में यह रागिनी बंकर है और शुद्ध पूर्वी और सारंग के मेल से और किसी के मत से सरस्वती, मालाश्री और गांधारी के मेल से बनी है। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

देवगुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के गुह । वृहस्पति । २. देवताओं के गुह अर्थात् पिता । कथय ।

देवगुह्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तस्वती ।

देवगुह्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु । २. वह रहस्य जो केवल देवताओं की ही छात हो [को०] ।

देवगुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का घर । देवामय । २. राज-मन्त्र । राजमहल (को०) ।

देवगिगु—संज्ञा पुं० [सं० देवग, प्रा० देवग] ३० 'देवग' । उ०—सुष संज्ञाग अंतर धरी कहत बचन देवगि । सोइ सु दिन मार्गद करि खली सुराज गुनगि ।—पु० रा०, २४ । ३५६ ।

देवघन—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो बगीचों में लगाया जाता है ।

देवघन—संज्ञा पुं० [सं०] गवामयन यज्ञ के अमिप्लव का नाम ।

देवघर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवपूजा । देवाचन [को०] ।

देवघासी—संज्ञा पुं० [सं०] इद्रताल के छह भेदों में से एक ।—(संगीत शास्त्र) ।

देवधित्सफ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्विनीकुमार । २. दो की संख्या ।

देवचेली—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + चेली] देवदासी । उ०—देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किसी निर्धन की लड़की खरीदकर मंदिर में अर्पण कर लेते हैं और वह देवचेली (देवदासी) कहलाने लगती है ।—नेपाल० पु० ७ ।

देवच्छत्र—संज्ञा पुं० [सं० देवच्छत्र] एक प्रकार का हार, जो किसी के मत से १०० या १०८ लड़ियों का और किसी के मत से ८१ लड़ियों का होता है ।

देवज^१—वि० [सं०] देवता से उत्पन्न । देवसंभूत ।

देवज^२—संज्ञा पुं० १. सामवेद । २. सूर्यवंशीय समय राजा के एक पुत्र का नाम ।

देवजगध—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण । रोहिष घास ।

देवजगधक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'देवजगध' ।

देवजन—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेव । गवर्ज ।

देवजनविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गवर्जविद्या । संगीत विद्या ।

देवजानी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवयानी] ३० 'देवयानी' ।—वरण०, पु० ५ ।

देवजुष्ट—वि० [सं०] देवता को पढ़ा हुआ ।

देवद—संज्ञा पुं० [सं०] शिरपी । कारीगर ।

देवठान—संज्ञा पुं० [सं० देवोत्थान] १. विष्णु भगवान् का सोकर उठना । २. कार्तिक शुक्ला एकादशी । इस दिन विष्णु भगवान् सोकर उठते हैं इससे इसका माहात्म्य बहुत माना जाता है ।

देवढी—संज्ञा पुं० [देश०] लड़ियों की एक जाति । उ०—केई खीची केई देवढा केई गहिलोत सरिस परमार ।—धी० रासो, पु० १७ ।

देवढोगरी—संज्ञा पुं० [सं० देव + देश० ढोंगरी] देवदाली लता । बंदास ।

देवढी—संज्ञा स्त्री० [हि० ढोढ़ी] ३० 'ढोढ़ी' ।

देवदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के वृक्ष ।

विशेष—स्वर्ग के वृक्ष पाँच माने जाते हैं,—मदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन ।

२. चैत्य पर का वृक्ष । चैत्यवृक्ष (को०) ।

देवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवताओं का नाम ले लेकर पानी देने की क्रिया ।

देवता—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाला अमर प्राणी ।

विशेष—वेदों में देवता शब्द से कई प्रकार के भाव लिए गए हैं । साधारणतः वेदमंत्रों के जितने विषय हैं वे देवता कहलाते हैं । सिल, लोढ़े, मूसल, मोखनी, नदी, पहाड़ इत्यादि से लेकर घोड़े, मेढक, मनुष्य (नारायण), इन्द्र, वरुण, आदित्य इत्यादि तक वेदमंत्रों के देवता हैं । कात्यायन ने अनुक्रमणिका में मन्त्र के वाच्य विषय को ही उसका देवता कहा है । निरुक्त-कार यास्क ने 'देवता' शब्द को दान, दीपन और द्युस्थान-गत होने से निकाला है । देवताओं के संबंध में प्राचीनों के चार मत पाए जाते हैं,—ऐतिहासिक, याज्ञिक, नैस्तिक और आध्यात्मिक । ऐतिहासिकों के मत से प्रत्येक मन्त्र भिन्न भिन्न घटनाओं या पदार्थों को लेकर बना है । याज्ञिक लोग मन्त्र ही को देवता मानते हैं जैसा जमिनि ने भीमांसा में स्पष्ट किया है । गीमांसा दर्शन के अनुसार देवताओं का कोई रूपविग्रह प्रादि नहीं, वे मात्रात्मक हैं । याज्ञिकों ने देवताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—सोमप और असोमप । अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार ये ३३ सोमप देवता कहलाते हैं । एकादश प्रयाजा, एकादश अनुयाजा और एकादश उपयाजा ये असोमप देवता कहलाते हैं । सोमपायी देवता सोम से सृष्ट हो जाते हैं और असोमपायी यज्ञपथ से सृष्ट होते हैं । नैस्तिक लोग स्थान के अनुसार देवता लेते हैं और तीन ही देवता मानते हैं, अर्थात् पृथिवी का अग्नि, अंतरिक्ष का इन्द्र या वायु और द्युस्थान का सूर्य । बाकी देवता या तो इन्हीं तीनों के अंतर्भूत हैं अथवा होडा, भव्ययु, ब्रह्मा, उग्दाता आदि के कर्मभेद के लिये इन्हीं तीनों के अलग अलग नाम हैं । ऋग्वेद में कुछ ऐसे मन्त्र भी हैं जिनमें भिन्न भिन्न देवताओं को एक ही के अनेक नाम कहा है, जैसे, बुद्धिमान लोग इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं । इनके एक होने पर भी इन्हे बहुत बतलाते हैं । (ऋग्वेद १ । १६४ । ४६) । ये ही मन्त्र आध्यात्मिक पक्ष या वेदांत के मूल बीज हैं । उपनिषदों में इन्हीं के अनुसार एक ब्रह्म की भावना की गई है ।

प्रकृति के बीच जो वस्तुएं प्रकाशमान, ध्यान देने योग्य और उपकारी देख पड़ें उनकी स्तुति या दर्शन ऋषियों ने मंत्रों द्वारा किया । जिन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ प्रादि होते थे उनकी कुछ विशेष स्थिति हुई । उनसे लोग धनधान्य युद्ध में जय, शत्रुओं का नाश प्रादि चाहते थे । क्रमशः देवता शब्द से ऐसी ही अगोचर सत्ताओं का भाव समझा जाने लगा और धीरे धीरे पौराणिक काल में अंधे के अनुसार और भी अनेक देवताओं की कल्पना की गई । ऋग्वेद में जिन देवताओं के नाम आए हैं उनमें से कुछ ये हैं,—अग्नि, वायु, इन्द्र, मित्र,

वरुण, पवित्रद्वय, विश्वदेवा, मरुद्गण, ऋतुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, सूर्य, विश्वगु, पुष्यिन, यम, पर्जन्य, धर्ममा, पूषा, रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, उषा त्रित, व्रतन, महिषुधन, भज, एकपाठ, ऋगुधा, गुह्यमान इत्यादि । कुछ देवियों के नाम भी आए हैं, जैसे,—सरस्वती, सुवरा, इषा, इन्द्राणी, होत्रा, पुष्यिनी, उषा, आत्री, रोदसी, राका, सिनीवासी, इत्यादि ।

ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं—८ षष्ठ, ११ छद्म, १२ भौतिक तथा छद्म और प्रजापति । ऋग्वेद में एक स्थान पर देवताओं की संख्या ३३३६ कही गई है । (३ । ६ । ६) । शतपथ ब्राह्मण और सांख्यायन श्रौतसूत्र में भी यह संख्या दो हुई है । इसपर सायण कहते हैं कि देवता ३३ ही हैं, ३३३६ नाम महिमा प्रकाशक हैं । देवता मनुष्यों से मित्र घमर प्राणी माने जाते थे । इसको उत्तेज ऋग्वेद में स्पष्ट है—‘दि षसुर वरुण । देवता हों या मर्त्य (मनुष्य) हों, तुम सबके राजा हो । (ऋक् २ । २७ । १०) ।

पीछे पौराणिक काल में, जिसका थोड़ा बहुत सूत्रपात शुक्र भो-
सूत के समय में हो चुका था, वेद के ३३ देवताओं से ३३
कोटि देवताओं की कल्पना की गई। इन्द्र, विष्णु, यम,
प्रजापति, इत्यादि वैदिक देवताओं के रूप रंग, कुटुंब आदि
की भी कल्पना की गई। द्युस्थान के वैदिक देवता विष्णु
(जो १२ आदिष्टों में से) आगे चलकर ऋग्यजुर्ऋ, शकलक-
गदापद्मधारी, लक्ष्मी के पति हो गए। वैदिक रुद्र जटो, त्रिशूल-
धारी, पार्वती के पति, गणेश भो-रुद्र के गिता हो गए, भो-
वैदिक प्रजापति वेद के ऋक्षा, चार मुँहवाले ब्रह्मा हो गए।
देवताओं की भावना भो-उपासना में यह भेद महाभारत के
समय से ही कुछ कुछ रहने लगा। कृष्ण के समय तक वैदिक
इंद्र की पूजा होती थी जो पीछे यद ही गई, यद्यपि इन्द्र देवताओं
के राजा भो-स्वर्ग के स्वामी बने रहे। आजकल हिंदुओं में
उपासना के लिये पाँच देवता मुख्य माने गए हैं—विष्णु,
शिव, सूर्य, गणेश भो-दुर्गा। ये पञ्चदेव बड़े जाते हैं।

यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और पुराणों के अनुसार इन्द्र, चन्द्र आदि देवता कश्यप से उत्पन्न हुए। पुराणों में लिखा है कि कश्यप की दिति नाम की स्त्री से दैत्य और अदिति नाम की स्त्री से देवता उत्पन्न हुए।

बौद्ध धर्म के लोग भी देवताओं को साधारण आदमी मानते हैं। धर्म इसी धारणा के रूप में, मेरे कथन के अनुसार ही है कि वे देवताओं को बुद्ध, बोधिसत्व या तीर्थंकरों से निम्न स्तर की मानते हैं। बौद्ध लोग भी देवताओं के कई गुण या वर्ग मानते हैं, जैसे,—चातुर्गुह्यराजिक, तुष्टिक आदि। जैन लोग चार प्रकार के देवता मानते हैं—वैमानिक या कल्पवृक्ष, कल्पवृक्ष, प्रदेयक और अनुत्तर। वैमानिक १२ हैं—सौवर्ण, ईशान, सनत्कुमार, महेंद्र, ब्रह्मा, अंतक, शुक्र, सहस्रार, नत, प्राणत, आर्य और पंचवृत्त।

देवताएँ—संज्ञा पु० [सं० देवताएँ] १ एक प्रकार का तृण या पौधा जिसमें इधर उधर दृढ़नियाँ नहीं निकलतीं, तसबार की

तरह दो ढाई हाथ तक लंबे सीधे पत्ते पेड़ी से चारों ओर निकलते हैं ।

विशेष—यह पोषा अपने लंबे और कड़े पत्ते के कारण देखने में धौंकुवार के पोषे सा मालूम होता है। इस पोषे के पत्ते कड़े और कुछ नीलापन लिए होते हैं। इसके बीच का कांड उबे की तरह छह सात हाथ ऊपर निकल जाता है जिसके सिरे पर फूलों के गुच्छे लगते हैं। पत्तों के रेशों से बहुत मजबूत रस्से बनते हैं। इसे रामबांस भी कहते हैं।

२ दे० 'देवताही' । ३. राहु (को०) । ४. अग्नि (को०) ।

देवताङ्क—सभा पु० [सं० देवताङ्क] दे० 'देवताङ्क' [को०] ।

देवताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवताडो] १. देववासी लता । बेंदास ।
२. तुरई । तरौई ।

देवतास—संज्ञ पु० [सं०] १. कथयप जिनसे देवता उत्पन्न हुए ।
२. देवकायं । यश (फौ०) ।

देवताति—संज्ञा पु० [सं०] १ देवता । ईश्वर । २ एक यज्ञ (को०) ।

देवतास्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवेश्य दृष्ट जिसमें देवता रहते हैं । २ हिमवान् पर्वत जो देवनिवास के कारण देवस्वरूप है [को०] ।

देवताधिप—सभा पुं० [सं०] द्विप्र ।

देवताध्याय—सर्ग १० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण ।

देवतापिसर्रा—सभा पु० [सं० देख ४ विदु] देवता और पितर ।
उ०—मैं तो बतेरा देवता पिसर मनाता रहा ।—किम्बर०,
पु० २३ ।

देवतीर्थ—सभा पुं [सं०] १. वैष्णवों के लिये उपयुक्त समय । २
भंगूटे को छोड़ रंगलियों का अग्रभाग जिससे होकर संकल्प
या तर्पण का जल गिरता है ।

देवतमुल—सदा पु० [म०] बादल की छवि । मेघ की
गरज । [कौ०] ।

देवतुष्टिपति—सखा पुं० [सं०] देवपूजक । पुजारी ।

देवत्त'—वि० [सं०] देवता का दिया हुआ । देवदत्त ।

देवता^{१२}—सका पु० [सं० देवता] १० 'देवता' । २०—देवता देव
देवाधिपति । नीत न मानस मजि सुवर । कक्षित गोप गोपी
सु वर । विधि विमान निरमान नर ।—पृ० १०, २, ३४० ।

देवस्य७—विं [सं. देव, या देवस्य] विवाह का एक भेद जिसे देव कहते हैं। ४०—देवस्य व्याह बहुमान कीन।—पृ० रा०, २१। १३९।

देवत्रयी—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन देवताओं का समूह ।

देवत्रिय^७—संज्ञा स्त्री० [सं० देवस्त्री] देवांगना । स्ववैश्या । प्रपसरा ।
उ०—गंगा संगम देवत्रिय, आम बिमान प्रनतु । —केशव
प्र०, १ । १३४ ।

देवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] देवता होने का भाव या धर्म ।

देवदंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवदण्डा] नागवला । गंगेरु ।

देवदत्त—वि० [सं०] १ देवता का दिया हुआ । देवता से प्राप्त ।
२ जो देवता के निमित्त दिया गया हो ।

देवदत्त^२—संज्ञा पुं० १ देवता के निमित्त दान की हुई संपत्ति । २ शरीर की पाँच वायुओं में से एक जिससे जैमाई प्राप्ती है । ३ अर्जुन के शस्त्र का नाम । ४. अष्टकुल नागों में से एक । ५. शाक्यवंशीय एक राजकुमार जो गौतम बुद्ध का चचेरा भाई था और उनसे बहुत बुरा मानता था ।

विशेष—बुद्ध और देवदत्त दोनों ही साथ पले थे, इससे सब बातों में बुद्ध को विशेष कुशल और तेजस्वी देखकर वह मन ही मन बहुत चिढ़ता था । यशोधरा से पहले यही विवाह करना चाहता था । जब यशोधरा ने बुद्ध को स्वीकार कर लिया तब यह और भी जला और बदला लेने की ताक में रहने लगा । गौतम के बुद्धत्व प्राप्त करने पर भी इसने द्वेष न छोड़ा । भवदानवतक में लिखा है कि बुद्ध जिस समय जेसवन ग्राम में ठहरे थे, देवदत्त ने उन्हें मारने के लिये बहुत से घातक भेजे थे । पीछे से यह बुद्ध के संघ में मिल गया था और अनेक प्रकार के उपाय बुद्ध और संघ को हानि पहुँचाने के लिये किया करता था । कौशांबी में भानद और सारिपुत्र मौद्गलायन की प्रधानता से क्रुद्धकर यह सब छोड़कर राजगृह चला गया और वहाँ प्रजातपात्र को मिलाकर उसने बुद्ध को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाए, उनपर मत्त हाथी छुड़वाया, पत्थर लुढ़कवाया । अंत में जब वह क्रूर रोग आदि से पीड़ित और जीवन से निराश हुआ तब बुद्ध से क्षमा माँगने के लिये चला । बुद्ध ने उसे माता मुनकर कहा वह मेरे पास नहीं आ सकता । संयोगवश वह घाने के पहले तालाब में नहाने घुसा और वही कीचड़ में फँसकर मर गया ।

देवदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता का दर्शन । २ नारद ऋषि का एक नाम (भागवत) ।

देवदानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी तोरई ।

देवदार—संज्ञा पुं० [सं० देवदार] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर ६००० फुट से ८००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है ।

विशेष—देवदार के पेड़ मसूरी गज तक सीधे ऊँचे चले जाते हैं और पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ से लेकर काश्मीर तक पाए जाते हैं । देवदार की अनेक जातियाँ ससार के अनेक स्थानों में गई जाती हैं । हिमालयवाले देवदार के प्रतिरिक्त एगियाई कीचक (तुर्की का एक भाग) तथा लुबना और साइप्रस टापू के देवदार प्रसिद्ध हैं । हिमालय पर के देवदार की डालियाँ सीधी और कुछ नीचे की ओर मुकी होती हैं, पत्तियाँ महीन महीन होती हैं । डालियों के सहित सारे पेड़ का घेरा ऊपर की ओर बराबर कम अर्थात् गावदुम होता जाता है जिससे देखने में यह सरो के माकार का जान पड़ता है । देवदार के पेड़ डेढ़ डेढ़ दो दो सौ वर्ष तक पुराने पाए जाते हैं । ये जितने ही पुराने होते हैं उतने ही विशाल होते हैं । बहुत पुराने पेड़ों के धड़ या तने का घेरा १५-१५ हाथ

तक का पाया गया है । इसके तने पर प्रति वर्ष एक मड़ल या छल्ला पड़ता है, इसलिये इन छल्लों को गिनकर पेड़ की अवस्था बतलाई जा सकती है । इसकी लकड़ी कड़ी, सुंदर, हलकी, सुगंधित और सफेदी लिए बादामी रंग की होती है और मजबूती के लिये प्रसिद्ध है । इसमें धुन कीड़े कुछ नहीं लगते । यह इमारतों में खगती है और अनेक प्रकार के सामान बनाने के काम आती है । काश्मीर में बहुत से ऐसे मकान हैं जिनमें चार चार सौ बरस की देवदार की बनें आदि लगी हैं और अभी ज्यों की त्यों हैं । काश्मीर में देवदार की सक्की पर लकड़ी बहुत अच्छी होती है । काँगड़े में इसे घिसकर चदन के स्थान पर लगाते हैं । इससे एक प्रकार का मसकतरा और तारपीन की तरह का तेल भी निकलता है, जो बीपायों के घाव पर लगाया जाता है । देवदार को दियार, केलू और कही कही केलाम भी कहते हैं ।

पर्या०—शक्रपादप । पारिद्रक । भद्रदार । दुर्किलिम । पीड़दार । दाह । पुतिकाष्ठ । सुरदार । स्निग्धदार । दाहक । अमरदार । शाभव । सूतहारि । भवदार । अद्रवत् । इद्रदार । देवकाष्ठ ।

देवदारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की स्त्री । अम्भरा । उ०—जिसे देखने के लिये ये देवदारा और गधर्व कन्याएँ ।— प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११६ ।

देवदार—संज्ञा पुं० [सं०] देवदार ।

देवद्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक नवाय जिसे प्रसूता स्त्री को पिलाने से ज्वर, दाह, सिर की पीड़ा, पतीसार, मुर्छा आदि उपद्रव शांत हो जाते हैं ।

विशेष—इस काढ़े में ये वस्तुएँ बराबर बराबर पड़ती हैं—देवदार, बच, कुड़, पिप्पली, सोंठ, चिरायता, कायफल, मोषा, कुटकी, घनिया, हड़, गजपिप्पली, जवासा, गोखर भटनटैया (कटकारि), गुलचकद, काकडासीपी और स्याहजोरा । काढ़ा तैयार हो जाने पर उसमें हींग और नमक डाल देना चाहिए ।

देवदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल वृक्ष ।

देवदाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता जो देखने में तुरई की बेल से मिलती जुलती होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ भी तुरई की पत्तियों के सामान पर उन से छोटी होती हैं और कोनों पर नुकीली नहीं होती । फल ककोडे (खेखसे) की तरह काटेदार होते हैं । वैद्यक में यह कड़ई, तीक्ष्ण, वमनकारक, विरेचक, विपनाशक, क्षयरोग-नाशक, तथा ज्वर, खाँसी, अरुचि, हिचको, कृमि, ज्वर के विष इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है ।

पर्या०—जीमूतक । कटफला । गरगरी । वेणी । सहा । कोशफला । कटुफला । घोरा । कदवा । विषहा । ककटी । सारमुषिका । आखुविषहा । घृतकोषा । घोषा । विषज्वा । दाली । सोमशपत्रिका । तुरयिका ।

देवदास—संज्ञा पुं० [सं०] देवता का दास । देवोपासक । २ देव-मंदिर का दास या सेवक [को०] ।

देवदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या । २. मंदिरों की दासी या नर्तकी ।

विशेष—ये जमनाथ से लेकर दक्षिण के प्रायः सब मंदिरों में नाचती गाती हैं और वेश्यावृत्ति करती हैं । इनके माता, पिता वधपन ही में उन्हें मंदिर को दान कर देते हैं, जहाँ सप्ताह सोम इन्हें नाचना माना सिखाते हैं । मंदिरों के चिन्नपट जिले के कोरियों (कपड़ा बुननेवालों) में यह गीति है कि वे अपनी सबसे बड़ी लड़की को किसी मंदिर को दान कर देते हैं । इस प्रकार की दान की हुई कृतिमों की महाराष्ट्र देश में 'मुरली' और तैलंग देश में 'सलवा' कहते हैं । इन्हें मंदिरों से गुजारा मिलता है । मरने पर इनका उत्तगधिकारी पुत्र नहीं होता, कन्या होती है । मंदिरों में देवदासियाँ रखने की प्रथा प्राचीन है । कालिदास के मेघदूत में महाकाश के मंदिर में वेश्याओं के गृह्य करने की बात लिखी है । मित्र, भूतान, बाबिलन आदि के प्राचीन देव-मंदिरों में भी देवनर्तकियाँ होती थीं ।

३ जगती बिजोरा नीबू । बिजोरा नीबू ।

देवदीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दीपक जो किसी देवता के निमित्त जलाया गया हो । २. माल । नेत्र ।

देवदुर्गभि—संज्ञा पुं० [सं० देवदुर्गभि] १. ज्ञात तुलसी । २. देवताओं का नयाड़ा । ३. इन्द्र का एक नाम (को०) ।

देवदूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । भाग । २. देवताओं का दूत (को०) ।

देवदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग की अप्सरा । २. बिजोरा नीबू ।

देवदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. ब्रह्मा । ३. विष्णु । ४. गणेश । ५. इन्द्र । ६. तर्क राजा दशरथ नसे देवदेव अनुरूप ।—केशव (शब्द०) ।

देवधुर—संज्ञा पुं० [सं०] भारतवर्षीय एक राजा जो देवाजित के पुत्र थे (भागवत) ।

देवद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष, पारिजात आदि स्वर्ग के वृक्ष । देवतृ । उ०—सूको तस्य सेवत कृहा बिहंग देवद्रुम सेव ।—दीन० प्र०, पु० २२२ । २. देवदार ।

देवद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भरपा जिसमें स्वयंभू लिय स्थापित किया जाता है । २. देवयात्रा । किसी देवता की मूर्ति को बाजे गाजे के साथ ग्राम से घुमाना ।

देवधन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त उत्सर्ग किया हुआ धन । उ०—यो ही बहुतेरे चिहना रहे हैं कि देवधन के विषय में ।—प्रेमधन०, भा० २, पु० २१ ।

देवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरपुरी । इन्द्रपुरी (त्रि०) ।

देवधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वार ।

देवधाम—संज्ञा पुं० [सं० देवधामन्] तीर्थस्थान । देवस्थान ।

मुद्रा०—देवधाम करना = तीर्थयात्रा करना ।

देवधुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी । उ०—हमहि धगम धति दरस तुम्हारा । जस मरुपरनि देवधुनि धारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

देवधूप—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल । गुग्गुल ।

देवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु ।

देवचंदी—संज्ञा पुं० [सं० देवचन्दन] इन्द्र का द्वारपाल ।

देवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार । २. किसी से बड़ बड़कर होने की वासना । बिगोवा । ३. क्रीडा । खेल । ४. लीलो-छात्र । बगीचा । ५. पद्म । कमल । ६. परिवेदना । खेद । रज । शोक । ७. धृति । काति । ८. स्तुति । ९. गति । १०. धूत । जुमा । ११. पासे का खेल । बीसर ।

देवचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] वे नक्षत्र जो यम नक्षत्र से भिन्न हों । दक्षिणावर्त के प्रारम्भिक १४ नक्षत्र (को०) ।

देवचट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + चट्टी (= नाचनेवाली)] अप्सरा । उ०—नितंति देवचट्टी छबि जटी । लटकै अनु कि छटन की छटी ।—नद० प्र०, पु० २२७ ।

देवचंदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा । उ०—देवचंदी महिमान पदी महिमान बंदी स्रुति सखि बिसेखी ।—पतानद०, पु० १४८ । २. सरस्वती और ह्यद्वती नदी ।

देवचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरकट या नरसल ।

देवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीडा । खेल । २. सेवा । ३. धृतक्रीडा (को०) । ४. शोक (को०) ।

देवनागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी, मराठी आदि देशभाषाएँ लिखी जाती हैं ।

विशेष—'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है । कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके पोछा छुड़ाते हैं । बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा । गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के सबब में स्कंदपुराण के नागर खंड का प्रमाण देते हैं । नागर खंड में चमत्कारपुर का राजा का वेदवेला ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाया लिखा है । उसमें यह भी संक्षिप्त है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नागर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर' । गुजरात के नागर ब्राह्मण धार्मिक बहनगर (प्राचीन मानदपुर) को ही 'नागर' और अपना स्थान बताते हैं । अतः नागरी भक्तियों का नागर ब्राह्मणों से सवध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये भक्तर गुजरात में वहाँ से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए । गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से प्रिलालिख, ताजपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मणों और दक्षिणी ऐली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं । गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी भक्तर भी हैं, मुर्जरवर्षी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) सवत् ४५६ (ई० स० ७०६) का ताजपत्र है । यह ताजपत्रासन आधिकारिक गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्ता मम यो जयभटस्य) उत्तरीय भारत की लिपि में है जो नागरी से भिन्नती जुलती है । एक बात और भी है । गुजरात

में बितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुण्ड्रवर्ण आदि से लिए हुए ब्राह्मणों की ही प्रवृत्ति हैं। राष्ट्रकूट (राठोड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उत्तरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य भार्यावर्त की थी जो सबसे सुमन, सुंदर और नियमबद्ध होने के कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह ब्राह्मी ही कहलाती थी, उसका कोई प्रलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में आकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। शीघ्र के प्राचीन ग्रंथ 'मल्लविस्तर' में जो उन ६४ लिपियों के नाम गिनाए गए हैं जो ब्रुद्ध की सिखाई गई, उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मी लिपि' नाम है। 'मल्लविस्तर' का चौथी भाषा में अनुवाद ई० स० १०८ में हुआ था। जैन के 'पञ्चण' सूत्र और 'समवायंग सूत्र' में १८ लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम बभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगवतीसुव का आरम्भ 'नमो बभीए लिबिए' (ब्राह्मी लिपि की नमस्कार) से होता है। नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नदीसूत्र में मिलता है जो जैन विद्वानों के अनुसार ४५३ ई० के पहले का बना है। 'निश्वाचोदधिकार्य' के माध्य में भास्करानन्द 'नागर लिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयबद्धवर्ध लेखो यस्य तत् । नागरलिप्या साम्प्रदायिकैरेकारय त्रिकोणाकारसम्यैव लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि अशोकलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है जिसमें घेरफार होते होते घाजकल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने जिन्हें साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है जो सिंध नदी के पार के प्रदेशों (गंधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व के पात्र तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक तो नेपाल की उराई में 'पिप्रका' नामक स्थान में काश्य जातिवासों के मनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए परपर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के बोड़े की पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि इनमें दीर्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा मज्झमेर से कुछ दूर बज्जी नामक दाम में मिला है जो [महा] की संवत् ८५ (= ई० स० पूर्व ४४३) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का अंश है। उसमें

'धीराय' में जो दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिलकुल बिराही और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन भाषों या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैन के 'प्रज्ञापनासूत्र' में लिखा है कि 'अधमागधी भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। अधमागधी भाषा मयुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अतः ब्राह्मी लिपि मध्य भार्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमशः उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में मिलने लगती है। किस प्रकार अशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गीरीशंकर हीराचंद घोषा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नकशे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है। वह नकशा यहाँ प्रलग छापकर लगा दिया गया है जिससे नागरी लिपि का क्रमशः विकास स्पष्ट हो जायगा। इन अक्षरों का पहला रूप अशोक लिपि का है उसके उपरांत, दूसरे, तीसरे, चौथे रूप क्रमशः पीछे के हैं जो भिन्न भिन्न प्राचीन लेखों से चुने गए हैं।

पि० शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में सिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनागरी' कहलाते थे। उन 'देवनागरी' के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा।

देवनाथ—संज्ञा पु० [सं०] शिव। महादेव।

देवनामा—संज्ञा पु० [सं० देवनामन्] १ कुण्डोप के एक वर्ष का नाम। २ कुण्डोप के राजा हिरण्यरेता के एक पुत्र।

देवनायक—संज्ञा पु० [सं०] सुरपति। इन्द्र।

देवनाल—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का नरमल। बड़ा नरकट।

देवनिन्दक—संज्ञा पु० [सं० देवनिन्दक] देवताओं की निंदा करनेवाला। नास्तिक [को०]।

देवनिंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवनिन्दा] देवताओं की निंदा। नास्तिकता [को०]।

देवनिकाय—संज्ञा पु० [सं०] १ देवताओं का समूह। २ देवताओं का स्थान। स्वर्ग।

देवनिर्मित—वि० [सं०] १ प्राकृतिक। नैसर्गिक। २ देवताओं द्वारा निर्मित [को०]।

देवनिर्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुद्राची। गुरुव।

देवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + नी (हि०)] देव की स्त्री । सं०—तो मैं क्या कहूँ । आप भी तो देवनी से भाजमाने लते । भाज आपकी मालूम हो जायगा कि मैं इससे क्यों इतना दबता हूँ ।—काया०, पृ० २५४ ।

देवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति । इन्द्र ।

देवपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] सोमनाथ नामक देवस्थान जो काठियावाड़ में है ।

विशेष—पुराणों में इस स्थान या क्षेत्र का नाम प्रभास और शिलालेखों में देवपत्तन मिलता है । इसे देवनगर भी कहते थे ।

देवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री । २. मन्वालु । एक प्रकार का कद ।

देवपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. छायापथ । आकाश । २. वह मार्ग जो किसी देवमंदिर की ओर जाता हो ।

देवपद्मिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में बहनेवाली गंगा का एक नाम ।

देवपर—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो संकट पड़ने पर कोई उद्योग न करे, किसी देवता का भरोसा किए बैठा रहे ।

देवपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] माघीपत्र ।

देवपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता के नाम उत्सर्ग किया हुआ पशु । २. देवता का उपासक ।

देवपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

देवपाद—संज्ञा पुं० [सं०] राजा या आश्रयदाता के लिये प्रयुक्त आदरव्यञ्जक शब्द ।

देवपान—संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का एक पात्र ।

देवपाल—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के एक पर्वत का नाम ।

देवपालिन—वि० [सं०] १. (देश०) जिसमें वृष्टि ही के जल से खेती आदि का काम चलता हो । २. देवताओं द्वारा रक्षित (को०) ।

देवपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवपुत्री] देवता का पुत्र ।

देवपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवपुत्री' ।

देवपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की पुत्री । २. इलायची । ३. कपुरी साग ।

देवपुर—संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती ।

देवपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इन्द्र की राजधानी अमरावती जो स्वर्ग में है ।

देवपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] वृहस्पति । देवगुरु (को०) ।

देवपू—संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती । देवपुरी (को०) ।

देवपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं का पूजन ।

देवपूज्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु । वृहस्पति (को०) ।

देवप्रतिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवप्रतिमा' ।

देवप्रतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पाषाण या धातु आदि से निर्मित मूर्ति (को०) ।

देवप्रयाग—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय में टिहरी जिले के अतर्गत

एक तीर्थ जो गंगा और यमुनानदी के संगम पर है । स्कन्दपुराण के हिमवद् खण्ड में इस तीर्थ का माहात्म्य वर्णित है ।

देवप्ररत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्ररत्न जो नक्षत्र, ग्रह, ग्रहण आदि के सबंध में हो । २. शुभाशुभ संबंधों वह प्ररत्न जो किसी देवता के प्रति समझा जाय और जिसका उत्तर किसी युक्ति से निकाला जाय ।

देवप्रसूत—संज्ञा पुं० [सं०] जल । पानी (को०) ।

देवप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरी का नाम जो कुस्तोज से पूर्व पड़ती थी और जिसका राजा सेताविदु था ।

देवप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्रस्त का पेठ या फूल । २. पीत भृंगराज । पीली भंवरैया । ३. देवताओं के प्रिय, शिव (को०) ।

देववंद—संज्ञा पुं० [सं० देववन्द] घोड़ों की एक भंवरैया जो उसकी छाती पर होती है और शुभ लक्षण धिनी जाती है । जिस घोड़े में यह भंवरैया हो उसमें यदि और दोष भी हों तो वे निष्फल समझे जाते हैं ।

देववत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] सहदेव । सहदेव नाम की वृद्धि ।

देववत्सभा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० देववत्सल] दे० 'देववत्सल' । सं०—कासमीर कुकूम रुधिर देववत्सभा नाउ ।—अनेकार्यं, पृ० २३ ।

देववर्सा—संज्ञा पुं० [सं० देव + हि० बाँस] एक प्रकार का मजबूत और ऊँचा बाँस ।

विशेष—यह बाँस पूरबी बसास और भासाम में बहुत होता है और उढोसा तक पाया जाता है । यह १५-२० हाथ से ४०-४५ हाथ तक ऊँचा होता है । यह मजबूत होता है और मकानों की छाजन में लगाने तथा खटार्ई, टाकरा आदि बनाने के काम में आता है । इसके नरम कल्लों का प्रचार भी पड़ता है ।

देवव्रह्मन्—संज्ञा पुं० [सं०] नारद ।

देवव्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो किसी देवता की पूजा करके जीवननिर्वाह करे । पुजारी । पंडा ।

देवभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का घर या स्थान । २. स्वर्ग । ३. अश्वरथ । योषल ।

देवभाम—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को दिया जानेवाला भाग । किसी वस्तु या संपत्ति का वह अंश जो देवता के लिये निकाला गया हो ।

देवभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत भाषा ।

देवभिषक्—संज्ञा पुं० [सं० देवभिषज्] अश्विनीकुमार ।

देवभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवभूमि' ।

देवभू—संज्ञा पुं० देवता (को०) ।

देवभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का ऐश्वर्य । २. मदाक्रिनी ।

देवभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग ।

देवभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का भरण करनेवाले) १. इन्द्र । २. विष्णु ।

देवभोज्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभूत ।
 देवमंजर—संज्ञा पुं० [सं० देवमञ्जर] कीस्तुम मणि ।
 देवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० देवमन्दिर] वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति आदि स्थापित हो । देवालय ।
 देवमई(७)—वि० [सं० देवमयी] देव-मल्ल-युक्त । दिव्य । उ०—
 देवक जादव के हक कन्या । देवमई देवकी सुघन्या ।—नद०
 ग्रं०, पृ० २२१ ।
 देवमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २. कीस्तुम मणि । ३ घोड़े की भँवरी । ४ महाभेदा नाम की भोषधि ।
 देवमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० देवमातृ] १ देवता की माता । २. भद्रिनि । ३ दाक्षायणी ।
 देवमातृक—वि० [सं०] (देश) जिसमें खेती आदि के लिये वर्षा का ही जल यथेष्ट हो । जहाँ इतनी वर्षा होती हो कि खेती आदि का सब काम उसी से चल जाता हो ।
 देवमादन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को मोहित या मत्त करनेवाला, सोम ।
 देवमान—संज्ञा पुं० [सं०] काल की गणना में देवताओं का मान । जैसे, मनुष्यों के एक सौर वर्ष का देवताओं का एक दिन ।
 देवमानक—संज्ञा पुं० [सं०] देवमणि । कीस्तुम मणि ।
 देवमाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं की माया । २. परमेश्वर की माया जो भविष्य रूप होकर जीवों को बधन में डालती है ।
 देवमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान ।
 देवमास—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्भ का आठवाँ महीना ।
 विशेष—आठवें महीने में गर्भ में स्मृति और भोज की उत्पत्ति हो जाती है । इससे उसे देवमास कहते हैं ।
 २ देवताओं का महीना जो मनुष्यों के तीस वर्ष के बराबर होता है ।
 देवमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शाकल्य ऋषि का एक नाम ।
 देवमित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की भनुचरी एक मातृका ।
 देवमीढ—संज्ञा पुं० [सं० देवमीढ] १ वाल्मीकि रामायण में वर्णित मिथिला के एक प्राचीन राजा जो कीर्तिरथ के पुत्र और जनक (सीरध्वज) के पूर्वज थे । २ यदुवंशीय एक राजा ।
 देवमीदुष—संज्ञा पुं० [सं०] दसुदेव के पितामह का नाम ।
 देवमुख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी । कामांषा ।
 देवमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] १ नारद ऋषि । २ सुर नामक ऋषि ।
 देवमूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम । (गर्गसंहिता) ।
 देवमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] देवता की प्रतिमा ।
 देवयजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की वेदी ।
 देवयजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्यिनी ।
 देवयजि—संज्ञा पुं० [सं०] देवता की आराधना करनेवाला व्यक्ति । पुजारी [स्त्री०] ।
 देवयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] होमादि कर्म जो पञ्चयज्ञों में से एक है और गृहस्थों का प्रतिदिन का कर्तव्य है ।

विशेष—दे० 'पचयज्ञ' ।

देवयात—वि० [सं०] देवत्व प्राप्त । जो देवता हो गया हो ।

देवयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवता या पूज्य महापुरुष की सवारी निकालने का पर्व [स्त्री०] ।

देवयात्री—संज्ञा पुं० [सं० देवयात्रिन्] हरिवंश में वर्णित एक दानव का नाम ।

देवयान—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से अलग होने के उपरांत जीवात्मा के जाने के लिये दो मार्गों में से वह मार्ग जिससे होता हुआ वह ब्रह्मलोक को जाता है ।

विशेष—उपनिषदों में जीवात्मा के उत्क्राणण अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर या एक लोक से दूसरे लोक की प्राप्ति की कथा बहुत आई है । प्रबोधिनीपद में लिखा है कि सवत्सर ही प्रजापति है । दक्षिण और उत्तर उसके दो भयन हैं । जो कोई इष्टापूर्व और कृत (यज्ञ आदि कर्मकाण्ड) की उपासना करते हैं वे चांद्रमस लोक को प्राप्त होते हैं और फिर वहाँ से लौटकर दक्षिणायन को पाते हैं । जो 'रयी' (छाद्य, घान्य) या पितृयाण कहलाता है । इसी प्रकार जो तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या से आत्मा का अन्वेषण करते हैं वे उत्तरायण मार्ग से आदित्य लोक को प्राप्त करते हैं । इस मार्ग से गमन करनेवाले नहीं लौटते । छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जो श्रद्धा और तप की उपासना करते हैं वे अचि (भाग की लो) को पाते हैं । अचि से ब्रह्म (जिन), ब्रह्म से आर्द्रयमाण या शुक्ल पक्ष, आर्द्रयमाण पक्ष से उत्तरायण के छह महीनों की, उत्तरायण से सवत्सर, सवत्सर से आदित्य का आदित्य से चंद्रमा को, चंद्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं और वहाँ अमानव (अर्थात् देव) हो जाते हैं । इसी मार्ग को देवयान कहते हैं जिससे मरनेवाला ब्रह्मा को पाता है । बृहदारण्यक उपनिषद् में सूर्य से गज्जवाग्नी विद्युत् को प्राप्त होना लिखा है, चंद्रमा लो छोड़ दिया है और 'अमानव' के स्थान पर 'अमानस' शब्द आया है जिसका अभिप्राय वही है । देवयान और पितृयाण का अभिप्राय केवल गृही है कि ब्रह्मज्ञानी मरने पर उत्तरोत्तर प्रकाशमान लोकों या स्थितियों में होते हुए ब्रह्मलोक या ब्रह्म को प्राप्त करते हैं । और कर्मकांड में रत मनुष्य धूमरात्रि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि उत्तरोत्तर अवकाश की स्थिति को प्राप्त करते हैं और लौटकर फिर जन्म लेते हैं । सारांश यह कि एक और प्रकाश की उत्तरोत्तर वृद्धिपरवर्त का क्रम रखा गया है और दूसरी ओर अवकाश की । वेदांतसूत्र के तीसरे और चौथे अध्याय में जीव के इन दोनों मार्गों पर बहुत उद्घापोह किया गया है । गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भी इन मार्गों का उल्लेख किया है । उपनिषद् में जो उत्तरायण को देवयान और दक्षिणायन को पितृयाण कहा गया, इस कारण सूर्य जब उत्तरायण रहता है तब मरना मोक्षदायक माना जाता है । इसीलिये महाभारत में भीष्म का

उत्तरायण सूर्य होने तक शरण्या पर पड़ा रहना लिखा गया है।

देवयानी—सच्चा स्त्री० [सं०] शुक्राचार्य की कन्या जो राजा ययाति को व्याही थी।

विशेष—वृहस्पति का पुत्र कच मृतसजीवनी विद्या सीखने के लिये दैत्यगुरु शुक्राचार्य का शिष्य हुआ। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी उसपर अनुरक्त हुई। असुरों को जब यह विदित हुआ कि कच मृतसजीवनी विद्या लेने के लिये आया है तब उन्होंने उसको मार डाला। इसपर देवयानी बहुत विलाप करने लगी। तब शुक्राचार्य ने अपनी मृत-सजीवनी विद्या के बल से उसे जिला दिया। इसी प्रकार कई बार असुरों ने कच का विनाश करना चाहा पर शुक्राचार्य उसे बचाते गए। एक दिन असुरों ने कच को पीसकर शुक्राचार्य के पीने की सुरा में मिला दिया। शुक्राचार्य कच को सुरा के साथ पी गए। जब कच कहीं नहीं मिला तब देवयानी बहुत विलाप करने लगी और शुक्राचार्य भी बहुत घबराए। कच ने शुक्राचार्य के पैर में से ही सब व्यवस्था कह सुनाई। शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा कि 'कच तो मेरे पैर में है, अब बिना मेरे मरे उसकी रक्षा नहीं हो सकती।' पर देवयानी को इन दोनों में से एक बात भी नहीं मंजूर थी। अंत में शुक्राचार्य ने कच से कहा कि यदि तुम कच रूपी इद्र नहीं हो तो मृत-सजीवनी विद्या ग्रहण करो और उसके प्रभाव से बाहर निकल आओ। कच ने मृतसजीवनी विद्या पाई और वह पैर से बाहर निकल आया। तब देवयानी ने उससे प्रेमप्रस्ताव किया और विवाह के लिये वह उससे कहने लगी। कच गुरु की कन्या से विवाह करने पर किसी तरह राजी न हुए। इसपर देवयानी ने शाप दिया कि तुम्हारी सीखी हुई विद्या फलवती न होगी। कच ने कहा कि यह विद्या अमोघ है। यदि मेरे हाथ से फलवती न होगी तो जिसे मैं सिखाऊंगा उसके हाथ से होगी। पर तुमने मुझे व्यर्थ शाप दिया। इससे मैं भी शाप देता हूँ कि तुम्हारा विवाह ब्राह्मण से नहीं होगा।

दैत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी में परस्पर सखी भाव था। एक बार दोनों किनारे पर कपड़े रख जलाशय में जलविहार के लिये चुसीं। इद्र ने वायु का रूप धरकर दोनों के वस्त्र एक स्थान पर कर दिए। शर्मिष्ठा ने जल्दी में देखा नहीं और निकलकर देवयानी के कपड़े पहन लिए। इसपर दोनों में झगड़ा हुआ और शर्मिष्ठा ने देवयानी को वृष्ट में डकेल दिया। शर्मिष्ठा यह समझकर कि देवयानी मर गई अपने घर चली आई। इसी बीच नहुष राजा का पुत्र ययाति शिमार खेलने आया था। उसने देवयानी को कुएं से निकाला और उससे दो बार बातें करके वह अपने नगर की ओर चला गया। इसर देवयानी ने एक दासी से अपना सब वस्त्रादि शुक्राचार्य के पास कहला भेजा। शुक्राचार्य ने आकर अपनी कन्या को घर चलने के लिये बहुत कहा

पर उसने एक भी न सुनी। वह शुक्राचार्य से कहने लगी कि 'शर्मिष्ठा तुम्हारा बहुत तिरस्कार करती थी, अंत में अब दैत्यों की राजधानी में कदापि न जाऊंगी।'।

यह सब सुनकर शुक्राचार्य भी दैत्यों की राजधानी छोड़ अन्यत्र जाने को तैयार हुए। यह खबर राजा वृषपर्वा को लगी और वह आकर शुक्राचार्य से बड़ी विनती करने लगा। शुक्राचार्य ने कहा 'देवयानी को प्रसन्न करो'। वृषपर्वा देवयानी को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। देवयानी ने कहा, 'मेरी इच्छा है कि शर्मिष्ठा सहस्र और कन्याओं सहित मेरी दासी हो। जहाँ मेरा पिता मुझे दान करे वहाँ वह मेरी दासी होकर जाय'। वृषपर्वा इसपर सम्मत हुआ और अपनी कन्या शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर शुक्राचार्य के घर भेज दिया। एक दिन देवयानी अपनी मई दासियों के सहित कहीं क्रीडा कर रही थी कि राजा ययाति वहाँ आ पहुँचे। देवयानी ने ययाति से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। राजा ययाति ने स्वीकार कर लिया और शुक्राचार्य ने कन्यादान कर दिया। कुछ दिन पीछे ययाति ने शर्मिष्ठा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब देवयानी ने पूछा तब शर्मिष्ठा ने कहा दिया कि यह लड़का मुझे एक राजस्त्री ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ है। इसके उपरान्त देवयानी के गर्भ से षडु और तुवंसु नाम के दो पुत्र और शर्मिष्ठा के गर्भ से दुह्यु, अणु और पुरु ये तीन पुत्र हुए। ययाति ने शर्मिष्ठा को तीन पुत्र हुए, यह जानकर देवयानी अत्यंत क्रुण्ठि हुई और अपने पिता के पास इसका समाचार भेजा। शुक्राचार्य ने क्रोध में आकर ययाति को शाप दिया कि 'तुमने अघर्म किया है इसलिये तुम्हें बहुत शीघ्र बुढ़ापा धरेगा'। ययाति ने शुक्राचार्य से विनयपूर्वक कहा—'महाराज मैंने कामवश होकर ऐसा नहीं किया, शर्मिष्ठा ने श्रुतमती होने पर श्रुतुरक्षा के लिये प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करना मैंने पाप समझा। मेरा कुछ दोष नहीं'। शुक्राचार्य ने कहा 'अब तो मेरा कहा हुआ निष्फल नहीं हो सकता। पर यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा से लेगा तो तुम फिर ज्यों के त्यों जवान हो जाओगे।'।

देवयु^१—सच्चा पुं० [सं०] ईश्वर। देवता।

देवयु^२—वि० १. धर्मरत्न। पुण्यात्मा। धार्मिक। २. देवकार्य में सहयोग देनेवाला [को०]।

देवयुग—सच्चा पुं० [सं०] सत्ययुग।

देवयोनि—सच्चा स्त्री० [सं०] स्वर्ग, अंतरिक्ष, आदि में रहनेवाले उन सब जीवों की सृष्टि जो देवताओं के अवतार माने जाते हैं।

विशेष—अमरकोश में विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गृह्यक और सिद्ध ये देवयोनि के अंतर्गत गणित हैं।

देवयोषा—सच्चा स्त्री० [सं०] देवस्त्री। अप्सरा [को०]।

देवर—सच्चा पुं० [सं०] [स्त्री० देवरात्री] १ पति का छोटा भाई। २. पति का भाई (छोटा या बड़ा)।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि यदि किसी विधवा को अपने पति से कोई सतान न हो तो वह अपने देवर या पति के किसी अन्य सपिण्ड से एक सतान उत्पन्न करा ले, एक से अधिक नहीं। पर पराशर ने कलिकाल में इसका निषेध किया है।

देवराक्षित^१—वि० [सं०] जो देवताओं के द्वारा रक्षित हो।

देवराक्षित^२—सभा पु० देवक राजा के एक पुत्र का नाम।

देवराक्षिता—सभा स्त्री० [सं०] देवक राजा की एक कन्या।

देवरथ—सभा पु० [सं०] १. देवताओं का रथ। विमान। २. सूर्य का रथ।

देवरा^१—सभा पु० [सं० देव + हि० रा (प्रत्य०)] [स्त्री० देवरी] छोटा मोटा देवता। उ०—पुरुष पूज्य देवरा, तिय पूज्य रघुनाथ।—रहीम (शब्द०)।

देवरा^२—सभा पु० [देश०] एक प्रकार का पटसन जो सुतली बनाने के काम में आता है।

देवराज—सभा पु० [सं०] १. देवताओं के राजा इंद्र। २. बुद्ध का नाम (कौ०)। ३. राजा। नरेश (कौ०)।

देवराजा^१—सभा पु० [सं० देवराज] देवराज इंद्र। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये।—केशव (शब्द०)।

देवराज्य—सभा पु० [सं०] स्वर्ग।

देवराज—सभा पु० [सं०] १. (देवताओं से रक्षित) राजा परीक्षित। २. निमिष का एक राजा जो सुकेतु का पुत्र था। ३. शुन-शेष का एक नाम जो विश्वामित्र के यहाँ जाने पर पड़ा था। उ०—शुन शेष का दूसरा नाम देवराज कहा जाता है।—प्रा० भा० पृ०, पु० १५३। ४. याज्ञवल्क्य ऋषि के पिता का नाम। ५. एक प्रकार का सारस।

देवरानी^१—सभा स्त्री० [हि० देवर] देवर की स्त्री। पति के छोटे भाई की स्त्री।

देवरानी^२—सभा स्त्री० [हि० देव + रानी] देवराज इंद्र की रानी, शची। इंद्राणी। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।—केशव (शब्द०)।

देवराज^३—सभा पु० [सं० देवराज] दे० देवराज।

देवरिपु—सभा पु० [सं०] असुर। दैत्य (कौ०)।

देवरिषि^१—सभा पु० [सं० देवरि] दे० 'देवर्षि'। उ०—होइ न मृषा देवरिषि भाखा। समा सी बचनु हृदय धरि राखा।—मानस, १।६८।

देवरी—सभा स्त्री० [हि० देवरा] छोटी मोटी देवी।

देवर्षि—सभा पु० [सं०] ऋषियों के एक प्रसिद्ध स्यविर का नाम जिन्होंने जैन सिद्धांत लिपिबद्ध किया था।

देवर्षि—सभा पु० [सं०] १. देवताओं में ऋषि। २. नारद ऋषि का नाम (कौ०)।

विशेष—नारद, अग्नि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवल^१—सभा पु० [सं०] १. वह जो देवताओं की पूजा करके जीविका-निर्वाह करे। पुजारी। पंडा।

विशेष—देवल ब्राह्मण पतिष्ठ माना जाता है। हव्य, कव्य, आद आदि में ऐसे ब्राह्मणों का निषेध है।

२. धार्मिक पुरुष। ३. देवर। ४. नारद मुनि। ५. धर्मशास्त्र के वक्ता एक मुनि जो अक्षित के पुत्र और वेदव्यास के शिष्य माने जाते हैं। ६. एक स्मृतिकार।

देवल^२—सभा पु० [सं० देवालय] देवानय। देवमंदिर। उ०—रूप अपूरव पेखीयई, इसी पखी नही समय ससार। इसीय न देवल पुत्तली, जइ धरि आवी भोज कुंवार।—बी० रासो, पु० २८।

देवल^३—सभा पु० [सं० देव ?] एक प्रकार का चावल। उ०—धनिया देवल और भजाना। कहे लगि बरनत जावो धाना।—जायसी (शब्द०)।

देवलक—सभा पु० [सं०] देवल। पुजारी ब्राह्मण। पंडा।

देवलता—सभा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका। नेवारी।

देवतांगुलिका—सभा स्त्री० [सं० देवताङ्गुलिका] वृश्चिकाली।

देवला^१—सभा पु० [हि० दीवा, दिवला] [स्त्री० मत्पा० देवली] छोटा दीया।

देवली^१—सभा स्त्री० [देश०] दे० 'दिवली'।

देवलोक—सभा पु० [सं०] १. स्वर्ग। देवताओं का लोक। उ०—देवलोक इंद्रलोक विधिलोक शिवलोक, वैकुण्ठ के सुखलोक गणितानंद गायो है।—मुद्गर० प्र०, भा० २, पु० ६२२।

२. भू, भुव आदि सात लोक।

विशेष—मत्स्यपुराण में भू, भुव, इत्यादि सातों लोक देवलोक कहे गए हैं।

देववक्त्र—सभा पु० [सं०] (देवताओं का मुँह) अग्नि।

विशेष—देवताओं के निमित्त हव्य, कव्य आदि का अग्नि में हवन होता है, इस कारण यह नाम पड़ा।

देववती—सभा स्त्री० [सं०] ग्रामणी नामक गवर्ष की कन्या जो सुकेश राजस की पत्नी और मातृयवान, सुमाली और माली की माता थी।

देववधू—सभा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री। २. देवी। अप्सरा।

देववर्णिनी—सभा स्त्री० [सं०] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित भरद्वाज मुनि की कन्या जो विश्रवा मुनि की पत्नी और कुबेर की माता थी।

देववर्त्म—सभा पु० [सं० देववर्त्म] प्राकाश।

देववर्द्धकि—सभा पु० [सं०] विश्वकर्मा।

देववर्द्धन—सभा पु० [सं०] राजा देवक के एक पुत्र का नाम। देवकी के एक भाई और श्रीकृष्ण के मामा (भागवत)।

देववर्ष—सभा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम (भागवत)।

देववक्त्रा—सभा स्त्री० [सं०] सहदेवी। सहदेई नाम की वृद्धी।

देववल्लभ—सभा पु० [सं०] १. देवताओं को प्रिय। २. सुरपुष्पाग वृक्ष। ३. केसर।—अनेकार्थ (शब्द०)।

देववाणी—सङ्ग श्लो० [सं०] १. संस्कृत भाषा । २. प्राकाशवाणी । किसी प्रदृश्य देवता का वचन जो प्रतरिक्ष में सुनाई पड़े । उ०—दाद बलराम को देखि उन छल कियो रुक्म जीत्यो कहन लगे सारे । देववाणी भई जीत भई राम की ताहु पै मूढ़ नहीं संभारे ।—सूर (शब्द०) ।

देववात—सङ्ग पु० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

देववाद—सङ्ग पु० [सं० देव + वाद] वह वाद या मत जिसके अनुसार प्राकृतिक दृष्टि और वस्तुओं में देवत्व की कल्पना की जाती है । उ०—प्राचीन ग्रन्थ काव्य में—क्या भारत के क्या योरप के—रहस्यवाद का नाम तक नहीं, सीधा देववाद है ।—चित्तमणि, भा० २, पृ० १२८ ।

देववायु—सङ्ग पु० [सं०] बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

देववाहन—सङ्ग पु० [सं०] घनि (जो देवताओं का ग्रन्थ ले जाकर पहुँचाते हैं) ।

देवविद्या—सङ्ग श्लो० [सं०] १. देवताओं की विद्या । २. निरुक्त (को०) ।

देवविभाग—सङ्ग पु० [सं०] १. देवता का अंश । देवाण । २. उत्तर दिशा । उक्ती (को०) ।

देवविसर्ग—सङ्ग पु० [सं०] देने योग्य किसी वस्तु को दे देना (को०) ।

देवविहाग—सङ्ग पु० [सं० देवविभाग] एक राग जो कल्याण और विहाग अथवा सारंग और पूरबी के योग से बना है । यह संपूर्ण जाति का है ।

देववृत्त—सङ्ग पु० [सं०] १. मदार वृक्ष । २. गुगल । ३. सतिवन ।

देवव्रत—सङ्ग पु० [सं०] १. भीष्म पितामह का नाम । २. एक प्रकार का सामगान । ३. देवताओं का प्रिय भोजन । ४. कार्तिकेय । स्कंद (को०) ।

देवशत्रु—सङ्ग पु० [सं०] असुर । राक्षस ।

देवशाक—सङ्ग पु० [सं०] एक सकर राग जो शकराभरण, कान्हुडा और मल्हार से मिलकर बना है । इसमें गाधार कोमल लगता है । इसका गानसमय १७ दड से २० दड तक है ।

देवशिल्पी—सङ्ग पु० [सं० देवशिल्पिन्] विश्वकर्मा ।

देवशुनी—सङ्ग श्लो० [सं०] देवलोक की कुतिया, सरमा ।

विशेष—इस देवशुनी की कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—राजा जनमेजय कोई बड़ा यज्ञ कर रहे थे । इसी बीच एक कुत्ता वहाँ आया । जनमेजय के भाइयों ने उसे मारकर भगा दिया । उस कुत्ते ने अपनी माता सरमा से जाकर कहा—‘मैंने कोई अपराध नहीं किया था, यज्ञ की कोई सामग्री नहीं छुई थी, इसपर भी बिना अपराध के लोगों ने मुझे मारा’ । देवशुनी सरमा यह सुनकर जनमेजय के पास जाकर बोली—‘मेरे इस पुत्र ने कोई अपराध नहीं किया था । तुम्हारा धी आदि कुछ भी नहीं खाटा था । तुमने मेरे इस पुत्र को बिना अपराध के मारा, इससे तुम्हारे ऊपर अकस्मात् कोई दुःख पड़ेगा’ । यह शपथ देकर देवशुनी खली गई । विशेष—दे० ‘सरमा’ ।

देवशेखर—सङ्ग पु० [सं०] दमनक । दीने का पीषा ।

देवशेष—सङ्ग पु० [सं०] यज्ञ में देवताओं का अंश निकालने से बचा हुआ भाग (को०) ।

देवश्रवा—सङ्ग पु० [सं० देवश्रवस्] १. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम । २. वसुदेव के भाई ।

देवश्री^१—सङ्ग श्लो० [सं०] लक्ष्मी ।

देवश्री^२—सङ्ग पु० यज्ञ (को०) ।

देवश्रुत—सङ्ग पु० [सं०] १. ईश्वर । २. विष्णु (को०) । ३. नारद । ४. शास्त्र । ५. शुक्राचार्य के एक पुत्र का नाम । ६. भवसर्पिणी के एक जिन का नाम ।

देवश्रेणी—सङ्ग श्लो० [सं०] १. देवताओं की पंक्ति । २. मूर्वा । मरोरफली । मुरी ।

देवश्रेष्ठ—वि० [सं०] २. देवताओं में श्रेष्ठ । २. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

देवसंघ—वि० [सं० देवसंघ] देवी । दैविक । प्रमानवीय (को०) ।

देवसंसद्—सङ्ग श्लो० [सं० देवसंसद्] दे० ‘देवसमा’ ।

देवसं०—सङ्ग पु० [सं० देवसं०] दे० ‘देवसं’ । उ०—एक देवत कोनित तिथि पाई । मानसरोदक चली भन्नाई ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५८ ।

देवसखा—सङ्ग पु० [सं०] वाल्मीकि रामायण में वर्णित उत्तर दिशा का एक पर्वत ।

देवसन्न—सङ्ग पु० [सं०] एक यज्ञ का नाम ।

देवसद्—सङ्ग पु० [सं०] देवस्थान ।

देवसदन—सङ्ग पु० [सं०] १. देवताओं का आश्रय । २. पीपल का वृक्ष । ३. देवालय । मंदिर । ४. स्वर्ग ।

देवसभा—सङ्ग श्लो० [सं०] १. देवताओं का समाज । २. राजसभा । ३. सुधर्मा नामक सभा जिसे मय ने अर्जुन या युधिष्ठिर के लिये बनाया था । ४. धृतगृह । धृपाधर (को०) ।

देवसभ्य—सङ्ग पु० [सं०] १. देवता का पुजारी । देवाराधक । २. जुभा खेलनेवाला व्यक्ति । जुभाड़ी । ३. वह व्यक्ति जो जुभा खिलाता हो । जुभा खिलानेवाला (को०) ।

देवसमाज—सङ्ग पु० [सं०] सुधर्मा नाम की सभा ।

देवसरि—सङ्ग श्लो० [सं०] गंगा नदी । उ०—उत्तरि देवसरि दूसर वासु । रामसखा सब कीन्ह सुपासु ।—मानस, २।३२१ ।

देवसरित्—सङ्ग श्लो० [सं०] दे० ‘देवसरि’ (को०) ।

देवसर्पप—सङ्ग पु० [सं०] एक प्रकार की सरसों ।

देवसहा—सङ्ग श्लो० [सं०] सफेद फूल का दशरूप ।

देवसाक—सङ्ग पु० [सं० देवशाक] दे० ‘देवशाक’ ।

देवसायुज्य—सङ्ग पु० [सं०] देवता में सीन हो जाना । देवस्वरूप प्राप्त करना (को०) ।

देवसार—सङ्ग पु० [सं०] इन्द्रताल के छह भेदों में से एक ।

देवसावर्णि—सङ्ग पु० [सं०] तेरहवें मनु का नाम (भागवत) ।

देवसिंह—सङ्ग पु० [सं०] शिव (को०) ।

देवसूत्र—सखा स्त्री० [स०] मदिरा । मद्य ।

देवसेक(०)†—क्रि० वि० [स० दिवस + एक] एक दिन । उ०—
देवसेक ग्राह हाथ पे मेला ।—जायसी प्र० (गुप्त),
पृ० २३६ ।

देवसेना—सखा स्त्री० [स०] १ देवताओं की सेना । २. प्रजापति
की कन्या जो सावित्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी । इनका दूसरा
नाम पृथ्वी या महापृथ्वी भी है । ये मातृकाओं में श्रेष्ठ हैं
और शिशुओं का पालन करनेवाली हैं ।

विशेष—महभारत में कहा है कि इनको एक बार केशी दानव
हर ले गया । इंद्र ने इनकी रक्षा की और स्कंद के साथ
इनका विवाह करा दिया । विवाह में बृहस्पति ने होम, ऋषि
आदि किया था । ब्राह्मणों ने देवसेना को पृथ्वी, सखी,
ग्रामा, सुसुप्रदा, सिनीवाली, कुह, सद्बुद्धि और अपराजिता
नामों से पुकारा । जिस पंचमी तिथि को स्कंद श्रुत हुए
थे, वह श्रुतपंचमी कहलाई । जिस पृथ्वी को स्कंद कृतकार्य
हुए थे वह पृथ्वी महातिथि कहलाई ।

देवसेनापति—सखा पुं० [सं०] स्कंद ।

देवसेनाप्रिय—सखा पुं० [सं०] दे० 'देवसेनापति [को०] ।

देवस्थान—सखा पुं० [सं०] १ देवताओं के रहने की जगह । २.
देवालय । ३ एक ऋषि का नाम (महाभारत) ।

विशेष—इन्होंने पांडवों को उस समय सनुपदेश दिया था जब
वे वनवास करते थे । पीछे जब युधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त
किया तब इन्होंने अनेक प्रकार के उपदेश देकर उन्हें
राज्य छोड़ने से रोका था ।

देवस्थ—सखा पुं० [सं०] १ देवता की सेवा के लिये अर्पित किया
हुआ धन । वह जायदाद जो किसी देवता की पूजा आदि
के लिये अलग निकाल दी जाय । २ यज्ञधीम मनुष्य का
घन (मनुस्मृति) ।

विशेष—जो इस घन को खोम से हुरता है वह परलोक में
गोध का लूठा खाकर जीता है ।

देवहंस—सखा पुं० [देश०] एक प्रकार की बत्तख ।

देवहर—सखा पुं० [सं० देवगृह] देवमंदिर । देवालय । उ०—देवहर
पूजत समय सिरानी, कोक संग न जाती ।—गुलाल०,
पृ० ६ ।

देवहरा(०)†—सखा पुं० [हि० देव + घर] देवालय । मंदिर ।—
उ०—पलटू तन कर देवहरा मन कर सासिगराम ।—पलटू०,
पृ० ६५ ।

देवहरिया—सखा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव ।

देवहवि—सखा स्त्री० [सं० देवहविस्] देवता के निमित्त यज्ञ का
पशु [को०] ।

देवहा—सखा स्त्री० [सं० देवहा या देविका] सरयू नदी ।

देवहू—सखा स्त्री० [सं०] १ देवताओं का आह्वान । २ अनाप से
भरी गाड़ी । ३ बागी कान (भागवत) । ४ एक ऋषि
का नाम ।

देवहूति—सखा स्त्री० [सं०] १ देवताओं का आवाहन (को०) । २
स्वायम्भुव मनु की तीन कन्याओं में से एक जो कदंम मुनि
को व्याही थी । उ०—देवहूति पुनि तामु कृमारी । जो मुनि
कदंम के प्रिय नारी ।—मानस, १ । १४२ ।

विशेष—भागवत में इनके सबध में लिखा है कि महर्षि कदंम
ने इनकी सेवा से प्रसन्न होकर इन्हें दिव्य ज्ञान दिया ।
इनके गर्भ से नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ । सायणशास्त्र के
कर्ता कपिल इन्हीं के पुत्र हैं ।

देवहेडन—सखा पुं० [सं०] देवता के प्रति किया गया अपराध [को०] ।

देवहेति—सखा स्त्री० [सं०] देवास्त्र ।

देवहृद—सखा पुं० [सं०] श्री पर्वत पर एक सरोवर जिसमें स्नान
करने से यज्ञ का फल होता है । (महाभारत) ।

देवांगना—सखा स्त्री० [सं० देवाङ्गना] १ देवताओं की स्त्री ।
स्वर्ग की स्त्री । असरी । २ अप्सरा ।

देवातक—सखा पुं० [सं० देवान्तक] एक राक्षस जो रावण का पुत्र
था और जिसे हनुमान ने राम रावण-युद्ध में मारा था ।

देवाधस—सखा पुं० [सं० देवान्धस्] १ अमृत । २. देवता के नैवेद्य
का अन्न ।

देवांश—सखा पुं० [सं०] १. देवता का भाग । २ ईश्वर का अणुभूत ।
परमात्मा का अनावतार [को०] ।

देवा—सखा स्त्री० [सं०] १ पञ्चवारिणी लता । २. पटसन ।

देवा†—वि० [हि० देना] देनेवाला । जैसे, पानीदेवा । † २
देनदार । ऋणी ।

देवाक्रोड़—सखा पुं० [सं० देवाक्रोठ] देवताओं का उद्यान । इद्र का
बगीचा ।

देवागार—सखा पुं० [सं०] दे० 'देवमन्' [को०] ।

देवाजीव—सखा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा करनेवाला ।
पुजारी । पढा ।

देवाजीवी—वि० [सं० देवाजीविन्] दे० 'देवाजीव' [को०] ।

देवाट—सखा पुं० [सं०] हरिहर क्षेत्र नामक तीर्थ (वाराहपुराण) ।

देवातन—सखा पुं० [सं० देवातन] देवालय । मंदिर । उ०—
देव की देवातन गयी तो कहा भयो बीर । पीतरि की मोल
सुखो नाहि कछु गयो है ।—सुंदर० प्र०, मा० १, पृ० ४६६ ।

देवातिथि—सखा पुं० [सं०] पुरुवशी एक राजा का नाम (भागवत) ।

देवातिदेव—सखा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. दे० 'देवाधिदेव' ।

देवात्मा—सखा पुं० [देवात्मन्] १ देवस्वरूप । २. अश्वत्थ ।
पीपल ।

देवाधिदेव—सखा पुं० [सं०] १. ईश्वर । सर्वश्रेष्ठ देवता । २.
शिव जी । ३ विष्णु । ४. बुद्ध [को०] ।

देवाधिप—सखा पुं० [सं०] १ देवताओं के अधिपति । २. परमेश्वर ।
३. इद्र ।

देवान(०)—सखा पुं० [प्रा० दीवान] १ दरबार । कचहरी । राज-
सभा । उ०—मारे बागवान ते पुकारत देवान मे उषारे

भाग प्रगद देखाए धाय तन मैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. प्रमात्य । मन्त्री । वजीर । ३. प्रबधकर्ता ।

देवानांप्रिय—सच्चा पुं० [सं० देवानांप्रिय] १. देवताओं की प्रिय । २. बकरा । ३. मूर्ख ।

देवाना^१—वि० [फा० दीवानह] दे० 'दीवाना' ।

देवाना^२—सच्चा पुं० एक चिड़िया ।

देवानीक—सच्चा पुं० [सं०] १. देवताओं की सेना । २. तीसरे मनु सार्वणि के एक पुत्र का नाम । ३. सगर के वंश का एक राजा ।

देवानुग—सच्चा पुं० [सं० देव + अनुग] १. देवता का उपासक । २. दे० 'देवानुचर' [को०] ।

देवानुचर—सच्चा पुं० [सं०] १. देवताओं के साथ चलनेवाले विद्याधर आदि उपदेव । २. दे० 'देवानुग' ।

देवानुयायो—सच्चा [सं० देवानुयायिन्] दे० 'देवानुग' [को०] ।

देवान्त—सच्चा पुं० [सं०] हवि । चर ।

देवापगा—सच्चा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी, गंगा [को०] ।

देवापि—सच्चा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

विशेष—इस राजा के सबध में वैदिक कथा इस प्रकार है । ऋषियेण राजा के दो पुत्र थे—देवापि और शांतनु । दोनों में देवापि बड़े थे पर राज्य शांतनु को मिला और देवापि तपस्या में लगे । शांतनु के राज्य में १२ वर्ष की प्रमावृष्टि हुई । ब्राह्मणों ने कहा कि तुम जेठे भाई के रहते राजसिंहासन पर बैठे हो इससे देवता लोग रुष्ट होकर पानी नहीं बरसाते हैं । इसपर शांतनु ने देवापि को सिंहासन पर बैठाया । देवापि ने शांतनु से कहा कि तुम यज्ञ करो, हम तुम्हारे पुरोहित होंगे । देवापि ने यज्ञ कराया जिससे खूब पानी बरसा । (निरुक्त २ । १०) ।

महाभारत के अनुसार देवापि, पुरुवंशी राजा प्रतीप के पुत्र थे । महाराज प्रतीप के तीन पुत्र थे—देवापि शांतनु और बाह्लिक । इनमें देवापि प्रत्यक्ष घमात्ता थे । इन्होंने तपोबल से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया । ये बाल्यावस्था से ही ससारत्यागी हो गए थे । ये प्रबलक सुमेरु पर्वत पर कलापग्राम में योगी के रूप में हैं । कलियुग समाप्त होने पर सत्ययुग में ये चद्रवश स्थापित करेंगे ।

देवाव—सच्चा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लेई जो धौमर, गोंद, जूना, बीभन और पानी मिलाकर बनाई जाती है ।

देवाभियोग—सच्चा पुं० [सं०] किसी ऐसे देवता का शरीर में प्रवेश जो अनुचित कर्म करावे । (जैन) ।

देवाभीष्टा—सच्चा स्त्री० [सं०] पान ।

देवायतन—सच्चा पुं० [सं०] देवमंदिर । देवालय । [को०]

देवायु—सच्चा स्त्री० [सं० देवायुस्] देवताओं की आयु । देवताओं का जीवनकाल जो बहुत अधिक होता है ।

देवायुध—सच्चा पुं० [सं०] १. देवताओं का अस्त्र । २. इन्द्रधनुष ।

देवार^१—सच्चा पुं० [सं० फ्रा० दयार या हि० + वारि ?] दे० 'दियारा' । जैसे,—इसका कछारा जिसको बोली में देवार कहते हैं बहुत विस्तृत और चौड़ा होता है ।

देवार^२—वि० [देश०] देनेवाला । देवाला । जैसे, दंड देवार ।

देवारण्य—सच्चा पुं० [सं०] १. देवताओं का वन या उपवन । २. एक तीर्थ का नाम (महाभारत) ।

देवाराधन—सच्चा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा ।

देवारि—सच्चा पुं० [सं०] असुर ।

देवारी^१—सच्चा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली' । उ०—घबहूँ निठुर भाठ एहि बारा । परब देवारी होइ ससारा ।—जायसी (शब्द०) ।

देवार्चन—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'देवाराधन' ।

देवार्चना—सच्चा स्त्री० [सं०] दे० 'देवाराधन' ।

देवार्पण—सच्चा पुं० [सं०] देवता के निमित्त किसी वस्तु का दान ।

देवार्थ—सच्चा पुं० [सं०] एक ग्रहंत के एक गण का नाम (जैन) ।

देवार्ह—सच्चा पुं० [सं०] सुरपण । मावीपत्र ।

देवास्त्री^१—वि० [हि० देवा] देनेवाला । दाता ।

देवाल^२—सच्चा स्त्री० [फा० दीवार] दे० 'दीवार' । उ०—पलटू देवाल कहकहा मत कोठ भाँकन जाय ।—पलटू, पु० ३ ।

देवालय—सच्चा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति रखी जाय । मंदिर ।

देवाला^३—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'दिवाला' ।

देवाला^२—सच्चा पुं० [सं० देवालय] दे० 'देवालय' ।

देवालिया^१—वि० [हि० दिवाला] दे० 'दिवालिया' । उ०—ए वाजै देवालिया ऊँघा ताला मार ।—बाँकी० प्र०, भा०, २, पृ० ६६ ।

देवाली—सच्चा स्त्री० [सं० दीवाली] दे० 'दिवाली' ।

देवालेई^१—सच्चा स्त्री० [हि० देना + लेना] देने और लेने का काम । लेनदेन ।

देवावस्थ—सच्चा पुं० [सं०] देवालय [को०] ।

देवावास—सच्चा पुं० [सं०] १. पीपल का पेड़ । २. स्वर्ग । ३. देवता का मंदिर ।

देवावृध्—सच्चा पुं० [सं०] एक पर्वत (हरिवंश) ।

देवावृध्—सच्चा पुं० [सं०] एक राजा का नाम (हरिवंश) ।

देवाश्व—सच्चा पुं० [सं०] उच्चैःश्रवा । इन्द्र का घोड़ा ।

देवासुर—सच्चा पुं० [सं०] देवता और दैत्य । उ०—सृष्टि के आरंभ ही से देवता और दैत्यों के साथ ही उत्पत्ति का प्रमाण पाते और देवासुर संग्राम की कथा सुनाते हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३६ ।

देवाहार—सच्चा पुं० [सं०] प्रभूत ।

देवाह्वय—सच्चा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

देविक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० देविकी] १. देवता संबंधी । देवता का । २. दिव्य । स्वर्गिक । ३. धर्मप्राण [को०] ।

देविका—सच्चा स्त्री० [सं०] घाघरा नदी, जिसमें मिलने के कारण सरजू को लोग देवहा कहते हैं । एक नदी का नाम जिसमें कालिकापुराण के मत से सरजू मिली है ।

विशेष—पद्मपुराण के मत से यह माघा योजन चौड़ी और पाँच योजन लंबी है। मत्स्यपुराण के मत से यह नदी हिमालय के पारदेश से निकली है।

देविता—संज्ञा पुं० [सं० देवितृ] छूतक्रीडक। जुमारी [को०]।

देवित्त—वि० [सं०] १० 'देविक'।

देवी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की स्त्री। देवपत्नी। २ दुर्गा। ३ वह रानी जिसका राजा के साथ विवाह हुआ हो। पटरानी। ४ ब्राह्मण स्त्रियों की एक उपाधि। ५. दिव्य गुणवाली स्त्री। सुशीला और सदाचारिणी स्त्री (मादरसूचक)। ६ मूर्ति। मरीरफली। मुरी। ७ पुष्पा नाम की सुगन्धित घास। मसकरन। ८ मादित्यभक्ता। हुलहुल। हुलहुर। ९ लिंगिनी लता। पंचगुरिया। १० बन ककोड़ा। वाँक खससा। ११ शाखपुष्पी। सरिवन। १२. महाद्रोणी। बड़ा गुमा। १३. पाठा। १४. नागरमोथा। १५ सफेद इद्रायन। १६. हरीतकी। हड़। हूर। १७ पलसी। तीसी। १८. श्यामा पक्षी। उ०—(क) ग्रहि सुरग मनि दुत्ति देवि महे तडव गति। वालभीक विल मय इक्क फनि कुटिल क्रोध भरि।—पृ० रा०, १७।३०। (ख) इतें देवि उडि बैठि भँब, चतु गिराइय साग। दौरि महर तब हृष्य किय, से नरिद तुस भाग।—पृ० रा० (उ०), पृ० २०५। १९. रवि सक्ताति जो घड़ी पुण्यजनक समझी जाती है। २०. सरस्वती का नाम (को०)। २१ सावित्री का एक नाम (को०)।

देवी^२—संज्ञा पुं० [सं० देविता] जुमाड़ी। वह जो छूत खेलता हो [को०]।

देवी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० देविट्स] १. लकड़ी का एक मजबूत चौखटा, जिसमें दो खड़े खम्भों के ऊपर भाड़ा बल्ला लगा रहता है। यह मस्तूल आदि के सहारे के लिये होता है। २ जहाज के किनारे पर लकड़ी या लोहे की दो चौख की तरह बाहर की ओर झुके हुए खम्भे जिसमें घिरनियाँ लगी होती है। इन घिरनियों पर पड़े हुए रस्सों के द्वारा किश्तियाँ जहाज पर चढ़ाई या जहाज से नीचे उतारी जाती हैं (लश०)।

देवीकोट—संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर की राजधानी शोणितपुर का दूसरा नाम।

देवीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवी दुर्गा का मंदिर। देवीमंदिर। २. पट्टमहिषी का मवन [को०]।

देवीपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण, जिसमें देवी का माहात्म्य आदि वर्णित है।

देवीघोष—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'देवीवीर्य'।

देवीभागवत—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराण जिसकी गणना बहुत से लोग उपपुराणों में और कुछ लोग पुराणों में करते हैं।

विशेष—श्री मद्भागवत के समान इस पुराण में भी बारह स्कंध और १८००० श्लोक हैं। मत इसका निर्णय कठिन है कि कौन पुराण है और कौन उपपुराण। पुराणों में एक दूसरे का विषय, श्लोक संख्या आदि दी हुई है जिसके अनुसार पुराणों की प्रामाणिकता का प्रायः निर्णय किया जाता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि 'जिस ग्रंथ में

गायत्री का प्रथम ब्रह्मण्य करके परमं तत्त्व का सविस्तर वर्णन हो और वृत्रासुर के वध का पूरा वृत्तांत हो, जिसमें सारस्वत कल्प के बीच नरों और देवताओं की कथा हो - - - और १८००० श्लोक हों, वही भागवत पुराण है। शैवपुराण के उत्तर खंड में लिखा है कि 'जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र हो वह भागवत है, देवी पुराण नहीं'। इसी प्रकार की व्यवस्था कालिका नामक उपपुराण में भी दी है। यह तो शैव और शाक्त पुराणों का साक्ष्य हुआ। अब वैष्णव पुराणों की व्यवस्था सुनिए। पद्मपुराण में लिखा है कि 'सब पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है, जिसमें प्रति पद में श्रद्धियों द्वारा कहा हुआ कृष्ण का माहात्म्य है। इस कथा को परीक्षित की सभा में बैठकर शुक्रदेव जी ने कहा था'। नारद पुराण में भागवत उसको कहा गया है, जिसके दशम स्कंध में कृष्ण का बाल और कौमारचरित्, ब्रज में स्थिति, किशोरावस्था में मथुरावास, यौवन में द्वारकावास और भुभारहरण आदि विषय हैं।

देवी भागवत में प्रथम ही त्रिपदा गायत्री है किंतु विष्णु भागवत में नहीं, उसमें केवल 'वीमहि' इतना ही पद आया है। वृत्रासुर के वध की कथा दोनों में है। पर मत्स्यपुराण में बतलाया हुआ सारस्वतकल्प प्रसंग विष्णुभागवत में नहीं है, उसमें पाद्मकल्पप्रसंग है। मत्स्यपुराण में जो लक्षण दिया हुआ है उसमें सांप्रदायिक भाव की गंध नहीं जान पड़ती। शैव और वैष्णव विद्वानों में इन दोनों पुराणों के विषय में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। दुर्जनमुखचपेटिका, दुर्जनमुखमहाचपेटिका, दुर्जनमुखपदपद्मपादुका आदि कई ग्रंथ इस विवाद में लिखे गए। बात यह है कि ये दोनों पुराण सांप्रदायिक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। ऐसा जान पड़ता है कि भागवत नाम का कोई प्राचीन पुराण था, जो लुप्त हो गया था। बौद्ध धर्म के उपरान्त हिंदूधर्म की जब फिर नए रूप में स्थापना हुई और शैवों वैष्णवों की प्रबलता हुई तब पुराणों में दिए गए लक्षण के अनुसार वैष्णव पंडितों ने श्रीमद्भागवत की और शैव पंडितों ने देवी भागवत की रचना की। रचना के विचार से यदि देखा जाय तो देवी भागवत की शैली अधिक अनुकूल और भागवत की शैली पांडित्यपूर्ण काव्य की शैली को लिए हुए है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में दार्शनिक भावों की प्रधानता है उसी प्रकार देवीभागवत में तांत्रिक भावों की है। इसमें देवी के गिरिजा, काली, भद्रकाली, महामाया आदि रूपों की उपासना की गई है। पायत्री के पीठस्थानों का वर्णन है। भैरव और वैताल विधि की उत्पत्ति और उनकी पूजा की विधि बतलाई गई है। यहाँ तक कि इसमें मासाम देश के कामरूप देश और कामाक्षी देवी का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। मस्तु, घनने वर्तमान रूप में देवी भागवत ईसा की ६ वीं और ११ वीं शताब्दी के बीच बना होगा।

देवीभोया—संज्ञा पुं० [हि० देवी + भोयना (= भुलाना)] देवी की माननेवाला। भोभा। सोखा।

देवीवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणक ।

देवीसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋग्वेद शाकल संहिता का एक सूक्त जिसका देवता देवी है । २ मार्कण्डेय पुराणातर्गत दुर्गा सप्तशती का एक सूक्त या स्तोत्र ।

देवेन्द्र—वि० [सं० देवेन्द्र] देवताओं का राजा, इन्द्र ।

देवेव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति । देवगुरु [को०] ।

देवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का राजा, इन्द्र । २. परमेश्वर । ३. महादेव । ४. विष्णु ।

देवेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमेश्वर । २. विष्णु ।

देवेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती । २. देवी ।

देवेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] देवेश । इन्द्र ।

देवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवताओं को प्रिय । २. गुग्गुलु । महामेद ।

देवेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा विजोरा ।

देवै (पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० देवकी] दे० 'देवकी' । उ०—देवै कूल न शीतरि भावा । ना जसवै ले गोद खिलावा ।—कबीर ग्रं०, पृ० २४३ ।

देवैयाँ—संज्ञा पुं० [हि० देना] देनेवाला ।

देवोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] वह सपत्ति जो किसी देवता के नाम भ्रम निकाल दी गई हो । देवता को अपित किया हुआ धन ।

देवोत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का शेष की शैया पर से उठना जो कार्तिक शुक्ला एकादशी को होता है ।

देवोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बगीचे जो चार हैं—नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वतोम्र । त्रिकांशेष के अनुसार चार बगीचों के नाम ये हैं—वैभ्राज, चैत्ररथ, मिश्रक और सिध्दकाश ।

देवोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद ।

विशेष—देवोन्माद में रोगी पवित्र रहता है, सुगन्धित फूलों की माला पहनता है, भालें बंद नहीं करता और सस्कृत बोलता है । यह देवता के कोप में होता है । सुश्रुत में भ्रमानुष प्रतिषेध के अंतर्गत इसका उल्लेख है ।

देवीकस्—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान । सुमेरु पर्वत ।

देव्युन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या रोग ।

विशेष—इस उन्माद में रोगी को पक्षाघात होता है, शरीर सूख जाता है, मुँह और हाथ पाँव टेढ़े हो जाते हैं तथा स्मरण शक्ति जाती रहती है । कहीं कहीं इसे विलासनी देवी या माधतया भी कहते हैं ।

देश—संज्ञा पुं० [सं०] १ विस्तार, जिसके भीतर सब कुछ है । दिक् । स्थान ।

विशेष—न्याय या वैशेषिक के अनुसार जितके भागे पीछे, ऊपर नीचे उत्तर दक्षिण आदि का प्रत्यय होता है वह देश या दिग्दर्श है । काल के समान सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, मयोग और विभाग देश के भी गुण हैं । देश के विभु और एक होने पर भी उपाधिभेद से उत्तर दक्षिण, भागे पीछे आदि भेद मान लिए गए हैं । देश संबंधी 'पूर्व' और 'पर'

का विपर्यय हो सकता है, पर काल संबंधी पूर्वपर का नहीं । पश्चिमी दार्शनिकों में कांट आदि ने देश (और काल) को मन से बाहर की कोई वस्तु नहीं माना है, अतः कारण का आरोप माना गया है जो वस्तु संबंध ग्रहण के लिये वह अपनी ओर से करता है । दे० 'काल' ।

यौ०—देशकाल ।

२ पृथ्वी का वह विभाग जिसका कोई भ्रम नाम हो, जिसके अंतर्गत कई प्रांत, नगर, ग्राम आदि हों तथा जिसमें अधिकतर एक जाति के और एक भाषा बोलनेवाले लोग रहते हैं । जनपद ।

विशेष—देश तीन प्रकार के होते हैं—जांगल्य, घनूप और साधारण । तीन प्रकार के और देश माने गए हैं—देवमातृक (जिसमें वर्षा ही के जल से खेती आदि के सारे कार्य हों), नदीमातृक और उभयमातृक ।

३ वह भूभाग जो एक ही राजा या शासक के अधीन भयवा एक शासनपद्धति के अंतर्गत हो । राष्ट्र । ४. स्थान । जगह । ५. शरीर का कोई भाग । अंग । जैसे, स्कंध देश, कटि देश । ६. एक राग जो किसी के मत से सपूर्ण जाति का और किसी के मत से षाड़व (ऋज्वाजित) है । ७. जैनशास्त्रानुसार चौथा पंचक जिसका द्वारा अर्थात्संघानपूर्वक तपस्या अर्थात् गुरु, जन, गुहा, स्मशान और व्रत की वृद्धि होती है ।

देशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपदेश करनेवाला । उपदेशक । उपदेष्टा । २. शासन करनेवाला । शास्ता (को०) । ३. शिक्षक । शिक्षा देनेवाला (को०) । ४. निर्देशक (को०) ।

देशकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें गाधार कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं ।

देशकार—संज्ञा पुं० [सं०] सपूर्ण जाति का एक राग जो सबेरे एक बंद से पाँच दस दिन चढ़े तक गाया जाता है ।

विशेष—यह राग परज, सोरठ और सरस्वती को मिलाने से बनता है । यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है । इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि +

अथवा

घ नि स ऋ ग म प +

देशकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी ।

विशेष—हनुमत के मत से यह मेघ राग की पत्नी और किसी किसी के मत से हिंदोल राग की पत्नी मानी जाती है । यह सपूर्ण जाति की है । इसका सरगम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि स +

इसके गाने का काल वर्षा ऋतु का निशांत या प्रातःकाल है ।

देशगांधार—संज्ञा पुं० [सं० देशगांधार] एक राग जो सबेरे एक बंद से पाँच दस तक गाया जाता है ।

देशचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] देश की प्रथा । रवाज । (को०) ।

देशचारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार गार्हस्थ्य धर्म ।

विशेष—इसके १२ भेद हैं—(१) प्राणातिपात विरमण व्रत । (२) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत । (३)—थूल भ्रष्टदान विरमण व्रत । (४) मैथुन विरमण व्रत । (५) स्थूल परिग्रह विरमण व्रत । (६) दिश परिमाण व्रत । (७) भोगोपभोग विरमण व्रत । (८) मन्यं दंड विरमण व्रत । (९) सामयिक व्रत । (१०) दिशावकाशिक व्रत । (११) पीषवोपवास व्रत । (१२) अतिथि सदिभाग व्रत ।

देशज^१—वि० [सं०] देश में उत्पन्न ।

देशज^२—सच्चा पु० शब्द के तीन विभागों में से एक । वह शब्द जो न संस्कृत हो, न संस्कृत का अपभ्रंश, बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोलचाल से यों ही उत्पन्न हो गया हो ।

देशज्ञ—सच्चा पु० [सं०] देश का हाल जाननेवाला । देश की दशा, रीति, नीति आदि जाननेवाला ।

देशदूषण—वि० [सं०] देश का कसक रूप । जिससे देश धुपित हो ।
उ०—जो लेखक देश जाति के हिताहित का ध्यान नहीं रखते या परखते वे देशदूषण ही ठहरते हैं ।—रस क०, पु० ६ ।

देशद्रोही—वि० [सं० देश+द्रोहिन्] देश के साथ विश्वासघात करनेवाला । उ०—उधर विभीषण ने रावण को पुनः प्रेमवश समझाया । पर उस साधु पुरुष ने उलटा देशद्रोही पद पाया—साकेत, पु० ३६० ।

देशधर्म—सच्चा पु० [सं०] देश की रीति नाति, आचार व्यवहार । देश का आचार व्यवहार ।

विरोध—मनु का मत है कि राजा देश के धर्म का आदर करे और उसी के अनुसार शासन करे ।

देशना—सच्चा स्त्री० [सं०] उपदेश (जैन) ।

देशनिकाता—सच्चा पु० [हि० देश+निकालना] देश से निकास दिए जाने का दंड ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—होना ।

देशपात्री—सच्चा स्त्री० [सं०] देशकारी रागिनी का दूसरा नाम ।

देशपीडन—सच्चा पु० [सं० देशपीडन] प्रजा पर अत्याचार । राष्ट्र का हानि पहुँचाना (को०) ।

देशभक्त—सच्चा पु० [सं०] देशहित के लिये सर्वस्व निछावर कर देनेवाला व्यक्ति । वह जो व्यक्तिगत से देशहित को श्रेयस्कर समझे ।

देशभक्ति—सच्चा स्त्री० [सं०] देश के प्रति अनुराग । देशप्रेम ।

देशभाषा—सच्चा स्त्री० [सं०] वह भाषा जो किसी देश या प्रांत विशेष में ही बोली जाती हो । जैसे, बंगला, मराठी, गुजराती, इत्यादि ।

देशमल्लार—सच्चा पु० [सं०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब स्वर लगते हैं ।

देशमुख—सच्चा पु० [सं०] देश का मुख्य या प्रधान । अनुप्रा । पद-प्रदर्शक । उ०—विरोचियों का यह कहना कि कांग्रेस

कदापि देशमुख नहीं हो सकती, अनर्गल है ।—प्रेमधन०, भा० २, पु० २७२ ।

देशरक्षा—सच्चा स्त्री० [सं०] १ देश को शत्रुओं से बचाना । राष्ट्र की बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा करना । उ०—गृह्यमरण उपजाप सेना प्रचार देशरक्षा बलावलज्ञान सचय व्यूह-रचना ।—वर्ण०, पु० ३ ।

देशराज—सच्चा पु० [सं०] आल्हा कदल के पिता का नाम जो राजा परमाल (प्रमदिदेव) के सामंतों में थे ।

देशरूप—सच्चा पु० [सं०] देश के अनुरूप । प्रोचित्य । मुनासिबत । उपयुक्तता [को०] ।

देशन्यवहार—सच्चा पु० [सं०] किसी देश की चाल या रस्म । देश विशेष की प्रथा या व्यवहार [को०] ।

देशस्थ^१—वि० [सं०] देश में स्थित । देश में रहनेवाला ।

देशस्थ^२—सच्चा पु० महाराष्ट्र ग्राहणों का एक भेद ।

विशेष—महाराष्ट्र ग्राहणों में दो भेद होते हैं—कोंकणस्थ और देशस्थ ।

देशाकी—सच्चा स्त्री० [?] एक रागिनी । हनुमत् के मत से जिसका स्वरप्राम यों है—ग म प ध नी सा ग, अथवा ग म प ध नि सा रे ग ।

देशांतर—सच्चा पु० [सं० देशान्तर] १ अन्य देश । विदेश । परदेश । २ भूगोल में ध्रुवों से होकर उत्तर दक्षिण गई हुई किसी सर्वमान्य मध्य रेखा से पूर्व या पश्चिम की दूरी । सबाज ।

विशेष—भारतवर्ष में पड़ने यह मध्य रेखा लंका या उज्जयिनी से सुमेर तक मानी जाती थी । अब यह मूरप और अमेरिका के भिन्न भिन्न स्थानों से गई हुई मानी जाती है । इस मध्य रेखा से किसी स्थान की दूरी उस कोण के अंशों के हिसाब से बतलाई जाती है जो उस स्थान पर से होकर गई हुई रेखा ध्रुव पर मध्य रेखा से मिलकर बनाती है ।

देशांतरित पण्य—सच्चा पु० [सं० देशान्तरित पण्य] देसावरी माल । विदेशी माल । दूर देश का माल (को०) ।

देशाक्षरी—वि० [सं० देशांतरित] परदेशी । विदेशी [को०] ।

देशाश—सच्चा पु० [सं०] दे० 'देशांतर' ।

देशाका—सच्चा पु० [सं०] एक रागिनी । इसका सरगम यह है—ग म प ध नि स + ।

देशाखी—सच्चा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंदोल की दूसरी रागिनी है । यह पांडव जाति की है । स्वर गांधार होता है । गाने का समय वसंत ऋतु का मध्याह्न है ।

देशाचार—सच्चा पु० [सं०] देश की चाल या देश का व्यवहार ।

देशाटन—सच्चा पु० [सं०] देशभ्रमण । भिन्न भिन्न देशों की यात्रा ।

देशातिथि—सच्चा पु० [सं०] वह जो किसी अन्य देश से आया हो । परदेशवासी । विदेशी [को०] ।

देशाधिपति—सच्चा पु० [सं०] बादशाह । सम्राट् । उ०—एक दिन बीरबल देशाधिपति सों रजा लेकर श्री गोकल में दर्शन कृपायो ।—मकबरी०, पु० ६९ ।

देशाधीश—सच्चा पुं० [सं०] देश का स्वामी । राजा । नृपति । उ०—
जैसे किसी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रंग ढग बदल
जाता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११ ।

देशावकाशिक (अत) —सच्चा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक शिक्षा-
व्रत, जिसमें स्वाथ के लिये सब दिशाओं में घाने जाने का जो
प्रतिबंध है उनको और भी सक्षिप्त और कठिन करके पालन
किया जाता है ।

देशिक^१—सच्चा पुं० [सं०] १ पथिक । बटोही । २. गुरु ।
शिक्षक । उपदेशक (को०) । ३ निर्देशक (को०) । ४ स्थानीय
व्यक्ति (को०) ।

देशिक^२—वि० देश का । देशसंबंधी (को०) ।

देशित—वि० [सं०] १. आदेशप्राप्त । आज्ञात । २. उपदिष्ट । जिसे
उपदेश दिया गया हो ।

देशिनी—सच्चा स्त्री० [सं०] १ सूची । २ तर्जनी अंगुली ।

देशी^१—वि० [सं० देशीय] १ देश का । देश संबंधी । २. स्वदेश का ।
अपने देश का । ३. अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ । जैसे,
देशी चीनी, देशी माल ।

मुहा०—देशी कौवा मरहठी भाषा = देश का होते हुए भी विदेशी
आचार विचार को नकल करना । उ०—देशी कौवा मरहठी
भाषा बोल रहे हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५६ ।

देशी^२—सच्चा स्त्री० [सं०] १ एक रागिनी ।

विशेष—हनुमत् के मत से यह दीपक राग की भार्या है । इसमें
पंचम वर्जित है । इसके गाने का समय ग्रीष्म काल का मध्याह्न
है । यह मधुमाधव, सारंग पहाड़ी और टोड़ी के योग से
बनी है ।

२. संगीत के दो भेदों में से एक ।

विशेष—संगीतदर्पण ने नाचने, गाने और बजाने तीनों को
मगीत कहा है । संगीत दो प्रकार का है—मागे भर्मात्
शास्त्रीय और देशी भर्मात् देशविशेष का संगीत ।

३ तांडव नृत्य का एक भेद जिसमें भगविक्षेप अधिक और
अभिनय कम होता है ।

देशीय—वि० [सं०] दे० 'देशी' ।

देशोपकारक—वि० [सं०] देश का उपकार या भला करनेवाला ।
उ०—काप्रेस से सब प्रकार का देशोपकारक कार्य होगा ।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३२ ।

देश्य^१—वि० [सं०] १ दे० 'देशी' । २ स्थानीय । ३ देश में उत्पन्न
होनेवाला (को०) ।

देश्य^२—सच्चा पुं० १ पूर्व पक्ष । प्रमाणित किया जानेवाला विषय ।
२ प्रत्यक्षदर्शी । ३ देशवासी ।

देष्णु^१—वि० [सं०] १. उदात्त । २. घृष्ट । ढीठ (को०) ।

देष्णु^२—सच्चा पुं० रत्नक । घोड़ी (को०) ।

देसवर—सच्चा पुं० [सं० देशान्तर] दे० 'देशान्तर' । उ०—तरवर छाना
५-१८

फल नहीं, पिरथी से बनराय । सतगुरु छाना सिख नहीं, दूर
देसंतर जाय ।—दरिया० बानी, पृ० ३६ ।

देस—सच्चा पुं० [सं० देश] दे० 'देश' ।

देसकार—सच्चा पुं० [सं० देशकार] दे० 'देशकार' ।

देसदुनी—सच्चा स्त्री० [सं० देश + भ० दुनिया] देश दुनिया । ससार ।
जगत् । उ०—भकेली क्यों है, जो देसदुनी का रखवाला है
सो तो तेरे पास बैठा है ।—भाकुतला, पृ० ५६ ।

देसपति^१—सच्चा पुं० [सं० देशपति] राजा । नृपति ।

देसरा^१—सच्चा पुं० [सं० देश + रा (प्रत्य०)] उ०—नहिं पावस मोहि
देसरा, नहिं हेवत बसत ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८ ।

देसवाल—वि० [हिं० देश + वाला] स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं
(मनुष्य के लिये) । जैसे, देसवाल बनिया ।

देसवाल^२—सच्चा पुं० एक प्रकार का पटसन ।

देसान्तर—सच्चा पुं० [सं० देशान्तर] दे० 'देशान्तर' । उ०—तीति
रजनिभ्रांतिनि जुगे अनिष्ठा दीठिहुक ओत देसान्तर रे ।—
विद्यापति०, पृ० ६८ ।

देसाधिपति—सच्चा पुं० [सं० देशाधिपति] देश का स्वामी । राजा ।
उ०—पाछे देसाधिपति सों मिलि कै गोधरा के हाकिम को
पट्टा बढ़ाई कै गोधरा में भाए ।—दो सौ बावन०, भा० १,
पृ० १६ ।

देसावर—सच्चा पुं० [सं० देश + अवर] अन्य देश । विदेश । परदेस ।
देशान्तर । जैसे, देसावर का माल ।

देसावरी—वि० [हिं० देसावर + ई (प्रत्य०)] देसावर का । दूसरे
देश से आया हुआ (वस्तु या माल के लिये) । जैसे, देसावरी
माल ।

देसिल^१—वि० [सं० देशीय] देशी । उ०—देसिल बर्नना सब जन
मिट्टा । तं तैसन जपघो अवहट्टा ।—कीर्ति०, पृ० ६ ।

देसी—वि० [सं० देशीय] स्वदेश का । दूसरे देश का नहीं ।
जैसे, देसी आदमी, देसी माल ।

देह^१भर—वि० [सं० देहम्भर] अपने ही शरीर का पोषण करनेवाला ।

देह^२—सच्चा स्त्री० [सं०] [वि० देही] २. शरीर । तन । बदन । उ०—
(क) नाम एकतनु हेत तेहि देह न घरी बहोरि ।—सुखसी
(शब्द०) । (ख) अपराध बिना श्रुति देह घरी ।—केशव
(शब्द०) । (ज) है हिय रहति हई छई नई युक्ति यह जोय ।
भांखिन भांखि सगी रहे देह^२दुबरी होय ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—शरीर प्रारंभ काल में कुछ दिनों तक धराधर बढ़ता
है इससे उसका नाम देह (विह = वृद्धि) है । न्याय के मत
से पार्थिव देह दो प्रकार की होती है योनिज और अयोनिज ।
जरायुज और अण्डज योनिज तथा स्वेदज और उद्भिज्ज
अयोनिज कहलाते हैं । शुक्र शोणित आदि की योजना से
स्वतंत्र अलौकिक देह को (जैसे, नारद आदि की) भी
अयोनिज कहते हैं । इसी प्रकार सांख्य आदि के मत से सूक्ष्म

घोर सूक्ष्म भावि भी शरीर के भेद माने गए हैं। विशेष
दे० 'शरीर'।

मुहा०—देह घटना=जीवन समाप्त होना। मृत्यु होना। देह
छोड़ना=मरना।—उ०—मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा।—
तुलसी (शब्द०)। देह घटना=जन्म लेना। उ०—देह
घरे कर यह फल पाई। भजहु राम सब काम बिहाई।—
तुलसी (शब्द०)। देह लेना=दे० 'देह घटना'। देह
विचारना=तन की सुधि न रखना। होश हवास न रखना।
२ शरीर का कोई अंग। ३ जीवन। जिंदगी। उ०—(क)
सह्य सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—तुलसी
(शब्द०)। (ख) जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निषहे भरि
देह सनेह सगाई।—तुलसी (शब्द०)। ४. विग्रह। मूर्ति।
चित्र।

देह^२—संज्ञा पुं० [क्रा०] गाँव। खेड़ा। मोबा। जैसे, गंगा झहीर,
साकिन देह^२।

यौ०—देहकान। देहात।

देहकर—संज्ञा पुं० [सं०] जनक। पिता [को०]।

देहकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० देहकर्तृ] १ पिता। २ सूर्य। ३ पंच महासूत
(क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और वायु)। ४ ईश्वर [को०]।

देहकान—संज्ञा पुं० [क्रा० देहकान] १ किसान। कृषक। २. गँवार।
ग्रामीण।

देहकानियत—संज्ञा स्त्री० [सं० देहकानियत] देहातीपन। गँवार-
पन [को०]।

देहकानी—वि० [क्रा० देहकानी] गँवारू। ग्रामीण।

देहकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर। २. पंच महाभूत [को०]।

देहकोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ चमड़ा। २ पक्ष। पक्ष। [को०]।

देहज—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

देहजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। कन्या [को०]।

देहत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देहद—संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

देहदीप—संज्ञा पुं० [सं०] चक्षु। आँख [को०]।

देहदसा—संज्ञा स्त्री० [सं० देह + दशा] देह की अवस्था। शरीर की
दशा। शरीरस्थिति। उ०—सो यह पालने की भाव रँखा
सुनिह देहदसा भूलि गए।—दो सी बाबल०, भा० २,
पृ० ७२।

देहधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मा। २ शरीर को धारण करने-
वाला। ३. अस्थि। हाड।

देहधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीररक्षा। जीवमरक्षा। २. जन्म।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देहधारी—संज्ञा पुं० [सं० देहधारिन्] [स्त्री० देहधारिणी] शरीर
को धारण करनेवाला। जिसे शरीर हो। शरीरी।

देहधि—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। चिड़ियों का पक्ष। डेना।

देहधृक्—संज्ञा पुं० [सं० देहधृज्] दे० 'देहधृज्'।

देहधृज्—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर को धारण करनेवाला) वायु।

देहपात—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मोत।

क्रि० प्र०—होना।

देहपुरा—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर। कायागढ़। उ०—करत पयान
जपत यह नाऊँ। लिहे न बसेर देहपुर गाऊँ।—हृदा०,
पृ० २६।

देहबंध—संज्ञा पुं० [सं० देहबन्ध] शरीर का ढाँचा [को०]।

देहभाक्—संज्ञा पुं० [सं० देहभाज्] १ शरीरधारी। २ मनुष्य
[को०]।

देहभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देहभुज्' [को०]।

देहभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देहाभिमानी जीव। २ सूर्य।

देहभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव।

देहयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीररूपी छड़ी। उ०—देहयष्टि जैसे
किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखड टुकड़े से
यत्नपूर्वक खोदाई कर गढ़ी थी।—वै० न०, पृ० २०।

देहयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मरण। मृत्यु। २ भरण पोषण।
पालन। ३ भोजन।

देहर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देवह्रव] वह नीची भूमि जो किसी नदी
के किनारे हो और जहाँ नदी के बढ़ने पर पानी आ
जाता हो।

देहर^२—संज्ञा पुं० [हिं० देव + घर] दे० 'देहरा'। उ०—रहस के देहर
नाद बाज्या। एहि कारण भेव जटा धारि निकस्या। जा
उद्यान मान पकरि रक्षा।—रामानंद०, पृ० १६।

देहरा^१—संज्ञा पुं० [हिं० देव + घर] देवावास। देवालय। उ०—
(क) नेव बिहना देहरा, देव बिहना देव। कबिरा तहाँ
बिलबिया करे अलख की सेव।—कबीर (शब्द०)। (ख)
दरसे वा सुभ देहरी रामो पोर उदार।—रा० रू०,
पृ० ३०५।

देहरा^२—संज्ञा पुं० [हिं० देह + रा (प्रत्यय)] नरशरीर। नरदेह।
उ०—कोठे ऊपर दोरना मुझ नींदरी न सोय। पुएये पाया
देहरा मोछी ठौर न खोय।—कबीर (शब्द०)।

देहरि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहरी'। उ०—सगहि
सखिए, सुत देहरि भइसुरे। कइसे कए बाहर होएत बाजव
नेपूरे।—विद्यापति, पृ० १५३।

देहरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० देहली] दे० 'देहरी' उ०—समधिन
की तो अतिहि चिकनी किसिल किसिल, सब जात। देह-
रिया रंग भीनि रही जहं प्रविसत सबे बरात।—भारतेंदु
प्र०, भा० २, पृ० ३७६।

देहरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] १ द्वार की चौखट की वह
लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे लाँघते हुए लोग भीतर
घुसते हैं। दहलीज। उ०—(क) राम नाम मनि दीप धर
जोह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो जो बाहसि
उजियार।—तुलसी (शब्द०) (ख) एक पग भीतर सु एक

देहरी पै घरे, एक कर कज एक कर है किवार पर ।
—पद्माकर (शब्द०) । २ दे० 'देहर' ।

देहलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का तिल [को०] ।

देहला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर को पुष्टि देनेवाली) मदिरा । शराब ।

देहली—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार की चौखट की वह लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे साँघर लोग भीतर घुसते हैं । दहलीज ।

देहलीदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] १ देहली पर रखा हुआ दीपक जो भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है ।

यौ०—देहलीदीपक न्याय = देहली पर रखे हुए दोनों ओर प्रकाश फैलानेवाले दीपक के समान दोनों ओर लगनेवाली बात ।

२ एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक मध्यस्थ शब्द का अर्थ दोनों ओर लगाया जाता है । उ०—हूँ नरसिंह महा मनुजाद हूँ प्रह्लाद को सकट भारी । दास विभीषणी संकट दई निज रक्त सुदामा को संपति भारी । द्रौपदी भीर बढ़ायो जहान में पांडव के जम की उजियारी । गबिन के खनि गवं बहावत दीनन के सुख श्री गिरधारी ।—(शब्द०) ।

विशेष—ऊपर लिखे हुए सबके प्रत्येक चरण में यह अलंकार है । हूँ, दई, बढ़ायो और बहावत शब्दों का अर्थ दोनों ओर लगता है । इस अलंकार का लक्षण यह है—परे एक पद बीच में दुहुँ दिस लागे सोय । सो है दीपक देहरी जानत है सब कोय ।

देहवन्त^१—वि० [सं०] देहवत् का बहुव० । जिसके देह हो । जो तनुधारी हो । उ०—(क) देहवन्त प्राणी जो कसकवन्त होतो कहूँ सोने में सुगंध के सराहिबे को को हतो ।—ठाकुर (शब्द०) । (ख) नाक नयुनी के गज मोतिन की प्रामा, कैषी देहवन्त प्रगटित हिये को हुलास है ।—(शब्द०) ।

देहवन्त^२—संज्ञा पुं० वह जो शरीरवान् हो । शरीरधारी व्यक्ति । प्राणी । शरीरी । उ०—सतोष सम सीतल सदा दम देहवन्त न लेखिए ।—तुलसी (शब्द०) ।

देहवान्^१—वि० [सं०] शरीरधारी ।

देहवान्^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीरधारी व्यक्ति । देही । २. सजीव प्राणी ।

देहशकु—संज्ञा पुं० [सं०] देहशङ्कु । पत्थर का खमा ।

देहशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर को शुद्ध करने की प्रक्रिया । देहशुद्धि । उ०—मलसचय को मुखवास द्वारा ऊपर को भ्रष्टा गुद द्वारा नीचे को निकाल दे, तिसको देहशोधन कहते हैं ।—शाङ्गधर सं०, पृ० ३७ ।

देहसंचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देहसंचारिणी । कन्या । लड़की ।

देहसार—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा घातु ।

देहांत—संज्ञा पुं० [सं०] देहान्त । मृत्यु । मरण । मोत ।

क्रि० प्र०—होना ।

देहांतर—संज्ञा पुं० [सं०] देहान्तर । १. दूसरा शरीर । २. दूसरे शरीर की प्राप्ति । जन्मांतर । उ०—बहुरथी ताहि रोहिनी जने ।

देहांतर बिनु कैसे बने ।—नंद० प्र०, पृ० २१६ । ३. मृत्यु । मरण ।

यौ०—देहांतरप्राप्ति = मृत्यु के अनंतर आत्मा का दूसरे शरीर को प्राप्त करना ।

देहात—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] [वि० देहाती] गाँव । गँवई । ग्राम ।

देहाती—वि० [क्रा० देहात] १ गाँव का । गाँव में होनेवाला । जैसे, देहाती चीज । २ गाँव में रहनेवाला । ग्रामीण । ३. गँवार ।

देहातीपन—संज्ञा पुं० [हि० देहाती + पन] देहाती होने का भाव । ग्रामीण होने का भाव । गँवारपन ।

देहातीव—वि० [सं०] १. जो शरीर से परे हो । जो देह से परे हो । जो देह से स्वतंत्र हो । २. जिसे देहामिमान न हो । जिसे शरीर की ममता न हो ।

देहात्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक दार्शनिक सिद्धांत । चार्वाक मत [को०] ।

देहात्मवादी—संज्ञा पुं० [सं०] देहात्मवादिन् । वह जो शरीर के अतिरिक्त आत्मा को न माने शरीर ही को आत्मा माने, वैसा चार्वाक मानता है ।

देहाध्यास—संज्ञा पुं० [सं०] देहधर्म को ही आत्मा समझने का भ्रम । देह या शरीर का मिथ्या ज्ञान । उ०—देहाध्यास इनको व्यापी नाहीं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४५ ।

देहानुसंधान—संज्ञा पुं० [सं०] देहानुसन्धान । शरीर की सुध बुध । उ०—सो देहानुसंधान न रखो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३ ।

देहावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कवच । जिरह वस्त्र । २. शरीर रूपी आवरण । ३. अंगरक्षा । वस्त्र [को०] ।

देहावसान—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु । देहांत । शरीरांत । उ०—देहावसान सबसे अधिक निश्चित एक भोवण सत्य है ।—चित्तमणि, भा० २, पृ० ६६ ।

देहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कीड़े का नाम ।

देही—संज्ञा पुं० [सं०] देहिन् । (देह को धारण करनेवाला) जीवात्मा । आत्मा ।

विशेष—देह चैतन्य नहीं है पर देही चैतन्य है । आत्मा देह के आश्रय से सुख दुःख आदि का भोगनेवाला होता है । पर शुद्ध देही नित्य, अव्यय आदि है । वि० दे० 'आत्मा', 'जीवात्मा' ।

देहुरा—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'देहरा' । उ०—नींव बिहूणी देहुरा देह बिहूणी देव । कबीर तहाँ बिलबिया, करे भलख की सेव ।—कबीर प्र०, पृ० ४१ ।

देहेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] देहाधिष्ठाता आत्मा ।

दैतः—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य । दे० 'दैत्य' । उ०—रावण सहत घण खल राक्षस दारुण दैत दहले ।—रघु० ६०, पृ० ६५ ।

दैवी—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'दैवी' ।

दै—प्रत्य० [हि०] से । उ०—भट्ट दे उच्चकि लियो गिरि ऐसे ।
साँप बैठता को सिसु जैसे ।—नद० प्र०, पु० ३०८ ।

दैउ^७—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैव] दे० 'दैव' । उठ—सुनि मस लिखा
उठा जरि राजा । जानो दैउ तड़पि घन गाजा ।—जायसी
(शब्द०) ।

दैजा—सञ्ज्ञा पु० [हि० दायजा] दे० 'दहेज', 'दायजा' ।

दैत—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य' । उ०—नहि हरिनाकुस उदर
बिदारा । दैत भनेग नहि छलि छलि मारा ।—सं० दरिया,
पु० ४ ।

दैतेय^१—वि० [सं०] दिति से उत्पन्न ।

दैतेय^२—सञ्ज्ञा पु० १ दिति की सत्तान । दैत्य । २ राहु का एक नाम ।

यौ०—दैतेयगुरु, दैतेयपुरोधा, दैतेयपूज्य = दे० 'दैत्यपुरोधा' ।
दैतेयनिषूदन = विष्णु । दैतेयमाता = दे० 'दैत्यमाता' । दैतेय
मेदजा = पृथिवी का नाम ।

दैत्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ दिति की संतति । कश्यप के वे पुत्र जो
दिति नाम्नी स्त्री से पैदा हुए थे । असुर । २ लंबे शील या
असाधारण बल का मनुष्य । जैसे,—वह पूरा दैत्य है । ३
अति करनेवाला आदमी । जैसे,—वह खाने में दैत्य है । ४
दुराचारी । नीच । दुष्ट व्यक्ति । ५ लोहा ।

दैत्यगुरु—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शुक्राचार्य ।

दैत्यदेव—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के देवता—१ वरुण । २ वायु ।

दैत्यद्वीप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] गरुड के पुत्रों में से एक (महाभारत) ।

दैत्यधूमिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी की तांत्रिक उपासना में
एक मुद्रा जिसमें उल्टी हथेलियों को मिलाकर विशेष उँगलियों
को एक दूसरे से फँसाते हैं ।

दैत्यपति—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के अधिपति—१ हिरण्यकशिपु ।
२ प्रह्लाद । ३ बलि (भागवत) ।

दैत्यपुरोधा—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैत्यपुरोधस] दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य ।

दैत्यमाता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दैत्यमातृ] दैत्यों की माता दिति ।

दैत्यमेदज—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. गुग्गुलु । गुग्गुलु ।

दैत्यमेदजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । धरित्री । दैतेय मेदजा ।

विशेष—पुराणानुसार पृथिवी की उत्पत्ति मधुकैडम की मज्जा से
कही गई है ।

दैत्ययुग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दैत्यों का युग जो देवताओं के १२ हजार
बरसों या मनुष्यों के चार युगों के बराबर होता है ।

दैत्यसेना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रजापति की एक कन्या ।

विशेष—यह देवसेना की बहन थी और केशी दानव को बहुत
चाहती थी । केशी इसे हर ले गया था और उसने इसके साथ
विवाह किया था ।

दैत्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दैत्य जाति की स्त्री । २ मुराँ । कपूर
कचरी । ३ चढीपवि । ४ मद्य । मदिरा ।

दैत्यारि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के शत्रु—१. विष्णु । २ इन्द्र । ३.
देवता मान ।

दैत्याहोरात्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दैत्यों का एक रात दिन जो मनुष्य के
वर्ष के बराबर होता है ।

दैत्येन्द्र—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैत्येन्द्र] १ दैत्यों का राजा । २ गणक ।

दैत्येज्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ।

दैधिषव्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

दैनदिन^१—वि० [सं० दैनन्दिन] प्रतिदिन का । दिन दिन होनेवाला ।
नित्य का ।

दैनदिन^२—क्रि० वि० १. प्रतिदिन । रोज रोज । २ बिनोँ दिन ।

दैनदिनी^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैनन्दिन] पुराणानुसार एक प्रकार
का प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है ।
मोहरात्रि ।

दैनदिनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दैनन्दिन + हि० ई (प्रत्य०)] प्रति
दिन का काय व्यापार आदि लिखने की पुस्तिका । डायरी ।
रोजनामचा ।

दैन^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ दीन होने का भाव । दीनता । २ शोक ।
दुःख । परचात्ताप (को०) । ३ निम्नता । नीचता (को०) ।
४ निर्वलता (को०) ।

दैन^२—वि० [सं०] दिन सबधी ।

दैन^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० देना] दे० 'देय' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में विशेषणवत् भी होता है
जैसे,—सुखदैन = सुख देनेवाला । उ०—नैन सुखदैन मन नैन
मलय लेखिए ।—केशव (शब्द०) ।

दैन^४—सञ्ज्ञा पु० [अ०] ऋण । कर्ज । उ०—बदमी होय उसकी
सब पर फर्ज ऐन । खल्क ऊपर ज्यों सर बसर मानिद दैन ।—
दक्खिनी०, पु० १६३ ।

दैनिक^१—वि० [सं०] १ प्रतिदिन का । रोज रोज का । २ जो
रोज हो । नित्य होनेवाला । ३. जो एक दिन में हो । ४
दिन सबधी ।

दैनिक^२—सञ्ज्ञा पु० एक दिन का वेतन । रोजाना मजदूरी ।

दैन्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ दीनता । दरिद्रता । २. गर्व या महकार
के प्रतिकूल भाव । विनीत भाव । अपने को तुच्छ समझने का
भाव । ३ काव्य के सचारी भावों में से एक, जिसमें दुःखादि
से चित्त अति नम्र हो जाता है । कातरता ।

दैया^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैव] दे० 'दैव' । उ०—सिधस दीप राज घर
बारी । महा स्वरूप दैय भवतारी ।—जायसी प्र० (गुप्त),
पु० १५५ ।

दैयत—सञ्ज्ञा पु० [सं० दैत्य] दैत्य । दानव । राक्षस । असुर । उ०—
(क) वह हरी हठि हरिनाक्ष दैयत देखि सुदर देह सो ।
—केशव (शब्द०) । (ख) आपन ही रंग रच्यो सावरो
शुक ज्यों बैठि पढ़ावे । दासी हुती असुर दैयत की मय कुलभृ
कहावे ।—सूर (शब्द०) ।

दैया^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० दर्द] दर्द । दैव ।

मुहा०—दैयन के = दर्द दर्द करके । किसी प्रकार । कठिन्ता से ।

द्वैया^२—प्रव्य० भाष्यं, भय या दुःखसूचक शब्द जिसे स्त्रियाँ बोलती हैं। हे दई ! हे परमेश्वर ! उ०—बुझिहैं खवेया तब कहौ कहा, द्वैया ! इत पारिगो को, मैया, मेरी सेज पै कहैया को ।—पद्याकर (शब्द०) ।

द्वैयां^३—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'दाई' ।

द्वैयागतिः—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'द्वैवगति' ।

द्वैर—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] इबादतगाह । देवमन्दिर [को०] ।

यौ०—द्वैरोहरम = मन्दिर और मस्जिद । उ०—द्वैरो हरम को इबादत को क्यों मुझसे छुड़वाया ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६१ ।

द्वैर्घ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वैर्घ्य' [को०] ।

द्वैर्घ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दीर्घता । लबाई । बड़ाई ।

द्वैव^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० देवी] १. देवता सबधी । जैसे, देव कार्य, देवश्राद्ध । २. देवता के द्वारा होनेवाला । जैसे, देवगति, देवघटना । ३. देवता को अर्पित ।

द्वैव^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नो में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी उन्मत्तों की तरह भाँखें बंद करके चारों ओर देखता है (मार्कण्डेय पुराण) । २. वह अर्जित शुभाशुभ कर्म जो फल देनेवाला हो । प्रारब्ध । अष्टष्ट । भाग्य । होनेवाली बात या फल । होनी ।

विशेष—मत्स्यपुराण में जब मनु ने मत्स्य से पूछा कि देव और पुरुषकार दोनों में कौन श्रेष्ठ है, तब मत्स्य ने कहा—'पूर्व जन्म के जो भले बुरे अर्जित कर्म रहते हैं वे ही वर्तमान जन्म में देव या भाग्य होते हैं । देव यदि प्रतिकूल हो तो पौरुष से उसका नाश भी हो सकता है । यदि पूर्व जन्म के कर्म अच्छे हो तो भी बिना पौरुष के वे कुछ भी फल नहीं दे सकते अतः पौरुष श्रेष्ठ है ।

यौ०—द्वैवगति । देवज्ञ ।

२. विधाता । ईश्वर । जैसे,—दुबल को देव भी सताता है ।

मुहा०—(किसी को) देव लगना = (किसी पर) ईश्वर का कोप होना । बुरे दिन आना । शामत आना ।

३. आकाश । आसमान ।

मुहा०—देव बरसना = मेह बरसना । पानी बरसना ।

४. एक प्रकार का श्राद्ध । देवश्राद्ध (को०) । ५. दे० 'द्वैवतीर्थ' (को०) ।

द्वैवकृत—वि० [सं०] दे० 'द्वैव' ।

द्वैवकृतदुर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य द्वारा कथित वह स्थान जो प्राकृतिक रूप में ही दुर्ग के समान छद्म और चारों ओर रक्षित हो ।

द्वैवकोविद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का विषय जाननेवाला ।

२. देवज्ञ । ज्योतिषी ।

द्वैवगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वरीय बात । देवी घटना । २. भाग्य । कर्म । अष्टष्ट । प्रारब्ध ।

द्वैवचितक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देवचितक] ज्योतिषी ।

द्वैवज्ञ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवज्ञा] १. ज्योतिषी । गणक । २. वह देश में ब्राह्मणों की एक जाति ।

द्वैवतत्र—वि० [सं० देवतन्त्र] भाग्याधीन ।

द्वैवत^१—वि० [सं०] देवता सबधी ।

द्वैवत^२—सञ्ज्ञा पुं० १. देवता सबधी प्रतिमा आदि । २. देवता । ३. निरुक्त का वह भाग जिससे वेदमन्त्रों के देवताओं का परिचय होता है ।

द्वैवतपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

द्वैवत-संयोग-रूपापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी देवी देवता के साथ सबंध प्रसिद्ध करना । यह बात फैलाना कि हमे अमुक देवता इष्ट है या अमुक देवता ने हमें विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया है या युद्ध में अमुक देवता हमारी सहायता पर हैं ।

विशेष—कीटिल्य ने अपने पक्ष की सेना को उत्साहित और शत्रु सेना को उद्विग्न तथा हतोत्साहित करने के लिये यह नीति या ढंग बतलाया है । उसने कई प्रयोग कहे हैं । सुरग के द्वारा देवभूति के नीचे पहुँचकर कुछ बोलना, रात में सहसा प्रकाश दिखाना, पानी के ऊपर रात को रस्ती में बंधी कोई वस्तु तैरा कर फिर उसे गायब कर देना ।

द्वैवतीर्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आचमन करने में उँगलियों के अग्रभाग का नाम । उँगलियों की नोक ।

द्वैवत्त^१—वि० [सं० देवत] देवतुल्य । देवसदृश । उ०—द्वैवत्त बाहू द्विग कमल रूप । अनपुच्छ लोह जानिये भूष ।—पु० रा०, १२।२०।

द्वैवत्त^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० देवत या देवत्य] देव । भाग्य । देवता । उ०—जब देवत्ता दिवाइहै तब सच्चा मुक्त बैन । मृगतस्त्रि ज्यों देखिये, व्यास न बुझै नैन ।—पु० रा०, १७।२६।

द्वैवत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देव । देवता [को०] ।

द्वैवदत्त—वि० [सं०] नैसर्गिक । प्राकृतिक [को०] ।

द्वैवदीप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नेत्र । आँख [को०] ।

द्वैवदुर्विपाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देव की प्रतिकूलता । भाग्य की खोटाई ।

द्वैवदोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्भाग्य । भाग्य दोष [को०] ।

द्वैवपर—वि० [सं०] भाग्य को सब कुछ माननेवाला । भाग्यवादी ।

द्वैवप्रमाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो भाग्य पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे ।

विशेष—चाणक्य के मत से ऐसे व्यक्तियों को उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए । निर्जन स्थान में पहुँचकर वे अपने आप कर्म करेंगे, अन्यथा कष्ट देगे ।

द्वैवप्रश्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भविष्य कथन । २. ज्योतिष । ३. देव-वाणी । आकाशवाणी । ४. भविष्य सबधी शुभाशुभ की जिज्ञासा [को०] ।

दैवयुग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का युग, जो मनुष्यों के चारों युगों के बराबर होता है।

विशेष—मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक रात दिन होता है।

दैवयोग—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का प्राकस्मिक फल। संयोग। इतिहास। जैसे,—दैवयोग से वह हमें मार्ग ही में मिल गया।

दैवल—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवल ऋषि की सत्ति। २. दे० 'दैवलक' (को०)।

दैवलक—संज्ञा पुं० [सं०] भूतसेवक। भोत। प्रेतपूजक [को०]।

दैवलेशक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैवधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का धर्म जो १३१५२१ सौर दिनों का होता है।

दैवधरा—क्रि० वि० [सं०] संयोग से। दैवयोग से। प्रकस्मात्। कदाचित्।

दैवधरात्—क्रि० वि० [सं०] दे० 'दैवधरा'।

दैववाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राकाशवाणी। २. संस्कृत।

दैववादी—संज्ञा पुं० [सं० दैववादिन्] १. भाग्य के भरोसे रहनेवाला। पुरुषार्थ न करनेवाला। २. भालसी। निरुद्योगी।

दैवचद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैवविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में लिखे पाठ प्रकार के विवाहों में से एक।

विशेष—ज्योतिषीम आदि बड़ा यज्ञ करनेवाला यदि उसी यज्ञ के समय ऋत्विज या पुरोहित को अलंकृत कन्या दान करे तो यह दैवविवाह हुआ।

दैवश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्राद्ध जो देवताओं के उद्देश्य से हो।

दैवसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सृष्टि।

विशेष—सांख्य फारिका में कहा है कि इसके अंतर्गत पाठ भेद हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐंद्र, वैश्व, गांधर्व, यज्ञ, राक्षस और वैशाख।

दैवहीन—वि० [सं०] भाग्यहीन। अभाग। दुर्भाग्यग्रस्त [को०]।

दैवाकरि—संज्ञा पुं० [सं०] दिवाकर अर्थात् सूर्य के पुत्र—१. यम, २. शनि।

दैवाकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य की पुत्री) यमुना नदी।

दैवागत—वि० [सं०] देवी। प्राकस्मिक। सहसा होनेवाला।

दैवात्—क्रि० वि० [सं०] प्रकस्मात्। दैवयोग से। इतिहास से। अचानक। उ०—दैवात्, दो तीन वर्ष यदि उक्त कारणों से किसान को कुछ न मिला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६८।

दैवात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] दैवकृत उत्पात। अचानक आपसे आप होनेवाला अनर्थ।

दैवाधीन—वि० [सं०] भाग्य के अधीन। दैवतन्त्र [को०]।

दैवायस—वि० [सं०] दे० 'दैवाधीन' [को०]।

दैवारिप—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्र।

दैवाहोरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का दिन। देवताओं का रात दिन [को०]।

दैविक—वि० [सं०] १. देवता संबंधी। देवताओं का। जैसे, दैविक श्राद्ध। २. देवताओं का किया हुआ। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहुँ नहि व्यापा।—सुलसी (शब्द०)।

दैवी—वि० स्त्री० [सं०] १. देवता संबंधी। २. देवताओं की हुई। जैसे, देवी लीला। ३. प्राकस्मिक। प्रारब्ध या संयोग से होनेवाली। जैसे, देवी घटना। ४. सात्विक। जैसे, देवी सपत्ति।

दैवी—संज्ञा स्त्री० १. दैव विवाह द्वारा ब्याही हुई पत्नी। २. एक वैदिक छंद।

दैवी—संज्ञा पुं० [सं० दैविन्] ज्योतिषी। गणक [को०]।

दैवी गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वर की की हुई बात। २. प्रारब्ध। भावी। होनहार। भद्रपट्ट।

दैव्य—वि० [सं०] देवता संबंधी।

दैव्य—संज्ञा पुं० १. दैव। २. भाग्य।

दैशिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दैशिकी] १. देश संबंधी। राष्ट्रीय। २. स्थानीय। ३. प्रदर्शक। बतानेवाला।

दैशिक—संज्ञा पुं० १. गुरु। विद्यादान करनेवाला। २. राह दिखातेवाला। पथप्रदर्शक [को०]।

दैष्टिक—वि० [सं०] भाग्य में लिखा हुआ। बदा हुआ [को०]।

दैष्टिक—संज्ञा पुं० नियतिवादी। भाग्य पर विश्वास रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

दैहिक—वि० [सं०] १. देह संबंधी। प्राणीरिक। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा।—सुलसी (शब्द०)। २. देह से उत्पन्न।

दैह्य—वि० [सं०] देह संबंधी। दैहिक [को०]।

दैह्य—संज्ञा पुं० आत्मा। ऊह [को०]।

दौकना—क्रि० प्र० [देश०] गुराना।

दौकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] धोकी।

दौगा—संज्ञा पुं० [हि० द्विरागमन] दे० 'गोना'।

दौचा—संज्ञा स्त्री० [हि० दौच] दे० 'दोच'।

दौचना—संज्ञा स्त्री० [हि० दबोचना या दौचना] दे० 'दोचना'।

दौचना—क्रि० प्र० [हि० दोचना] दबाव में डानना। उ०—तदुल मांगि दौचि के साईं सो दीन्हों उपहार।—सूर (शब्द०)। २. दबा देना। दबाना।

दौर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

दो—संज्ञा पुं० [सं० दोस्] मुजा। बाहु [को०]।

दो—वि० [सं० द्वि] एक और एक। तीन से एक कम।

मुहा०—दो एक=कुछ। थोड़े। जैसे,—उनसे दो एक बातें करके चले आवेंगे। दो गाल हँसने बोलने का मोंका मिलना= दो चार बातें कर लेने का सुप्रसन्न प्राप्त करना। उ०—प्रभासी—(अपने दिल में) खुदा करें भाएँ। दो गाल हँसने बोलने का मोंका मिले।—फिसला०, भा० ३, पृ० १५०। (माँखें) दो चार होना=सामना होना। उ०—दो चार अ

तुम्हें क्यों कर होए हमचरमी के दावे से।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४३। दो दिन का = बहुत ही थोड़े समय का। दो दो दाने को फिरना = बहुत ही दरिद्र दशा में दूसरे से माँगते हुए फिरना। दो दो बातें करना = सख्त प्रश्नोत्तर करना। कुछ बातें पूछना और कहना। दो नावों पर पैर (पाँव) रखना = दो पक्षों का प्रवलबन करना। दो पदार्थों का आश्रय लेना। उ०—दुइ तरंग दुइ नाव पारें धरि ते कहि कवन न मूटे।—सूर (शब्द०)। किसके दो सिर हैं? = किसे फालतु सिर है? किसमें असंभव सामर्थ्य है। कौन इतना समर्थ है कि मरने से नहीं डरता। उ०—अनहित सौर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर, केहि जम चह लीना?—तुलसी (शब्द०)।

दोअक्खी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + अक्ख] भेद छष्टि। एक नजर से न देखना। भेदभाव का वरताव करना। उ०—अभी घटे भर वहाँ बैठे चिकनी छुरही बातें करते रहे तो नहीं देर हुई, मैं क्षण भर को बुलाती हूँ तो भागे जाते हो। इसी दोअक्खी की तो तुम्हें सजा मिल रही है।—काया०, पृ० १२१।

दोआ०—संज्ञा स्त्री० [म० दुआ] दे० 'दुआ'। उ०—फेरि दोआ पढ़ि, आमुखता सुनि, सबक पढ़ावे।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २१८।

दोआतशा—वि० [फ्रा०] जो दो बार अमके में खींचा या घुमाया गया हो। दो बार का खींचा या उतारा हुआ। जैसे, दो आतशा शराब, दो आतशा गुलाब।

विशेष—एक बार अमक या शराब आदि खींच चुकने पर कभी कभी उसको बहुत तेज करने के लिये फिर से खींचते या घुमाते हैं। ऐसे ही अमक या शराब आदि को दोआतशा कहते हैं।

दोआष—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दो नदियों के बीच का प्रदेश। किसी देश का वह भाग जो नदियों के बीच में पड़ता हो।

दोआबा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोआबा] दे० 'दोआब'।

दोई^१—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दो'। उ०—द्वै दल जाइ दोइ में कीन्हा।—घट०, पृ० २३७।

दोई^२—संज्ञा पुं० दे० 'दो'।

दोइसा, दोइति०—संज्ञा पुं० [सं० द्वैत] द्वैत। दो का भाव। दुविधा। उ०—गुरु चेला दोइत बिधि साजा।—घट०, पृ० १६२। (ख) साथ हमारी मातमा हम साधन के दास। पल्लव जो दोइति करे होय नरक में बास।—पल्लव०, भा० ३, पृ० १०६।

दोई—वि० [दश०] दे० 'दोह'। उ०—नीलस कंबल पार दल दोई परे चारि दल सोई हो।—घट०, पृ० ३३।

दोउ^१—वि० [हि० दो] दोनों।

दोउ^२—वि० [हि० दो] दोनों।

दोक—संज्ञा पुं० [हि० दो + का (प्रत्य०)] दो वर्ष की उम्र का बछेड़ा।

दोकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दुकड़ा] दे० 'दुकड़ा'।

दोकरा^१—संज्ञा पुं० [हि० दुकड़ा] दे० 'दुकड़ा'।

दोकला—संज्ञा पुं० [हि० दो + कल] १. दो कल या पेंचवाला ताला। वह ताला जिसके अंदर दो कलें या पेंच होते हैं। २. एक प्रकार की मजबूत बेड़ी।

दोकोहा—संज्ञा पुं० [हि० दो + कोह (= कुबर)] दो कुबरवाला ऊँट। वह ऊँट जिसकी पीठ पर दो कुबर हों।

दोखंभा—संज्ञा पुं० [हि० दो + खंभा] एक प्रकार का नैचा जिसमें कुल्फी नहीं होती। यह नैचा काटकर लोहे की कमानी पर बनाया जाता है।

दोख^१—संज्ञा पुं० [सं० दोष] दे० 'दोष'। उ०—चकृत न आतक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।—तुलसी प्र०, पृ० १०६।

दोखना^१—क्रि० स० [हि० दोष + ना (प्रत्य०)] दोष लगाना। ऐब लगाना।

दोखी^१—संज्ञा पुं० [हि० दोष] १. दे० 'दोषी'। २. ऐबी। जिसमें कोई ऐब हो। ३. शत्रु। द्वेषी। बैरी (हि०)।

दोगंग—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + गंगा] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दोगंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + गंडी (= गोल घेरा या चिह्न)] १. वह चित्ती या हमली का चीन्हा जिसे लडके जुमा खेलवे में बेईमानी करने के लिये दोनों ओर से घिस लेते हैं और जिसके दोनों ओर का कासा अंश निकल जाता और सफेद अंश निकल आता है। २. झगड़ा बखेड़ा करनेवाला मनुष्य। फसावो। उत्पाती। उपद्रवी।

दोगरा^१—संज्ञा पुं० [हि० दूँगर (= पहाड़ी)] दुंगर देश का निवासी जिसे डोगरा कहते हैं।

दोगला—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोगलह] [स्त्री० दोगली] १. वह मनुष्य जो अपनी माता के असली पति से नहीं बल्कि उसके यार से उत्पन्न हुआ हो। जारज। २. वह जीव जिसके माता पिता भिन्न भिन्न जातियों के हों। जैसे, देशी और विलायती से उत्पन्न दोगला कुत्ता।

दोगला^२—संज्ञा पुं० [हि० दो + कल] बाँस की कमचियों का बना एक गोल और कुछ गहरा (टोकरी का सा) पात्र जिससे किसान लोग पानी उलीचते हैं।

दोगा—संज्ञा पुं० [सं० द्विक, हि० दुक्का] १. एक प्रकार का लिहाफ जो मोटे देशी कपड़े पर नेल बूटे छापकर बनाया जाता है। उ०—दोगा पहरे लाल बनात का कनपोट दिए उन्हीं के पीछे खड़ा था।—श्यामा०, पृ० १४५। २. पानी में घोला हुआ चूना जिससे सफेदी की जाती है।

दोगाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दो + गाड़ (= गड़्हा)] दोनसी बटुक।

दोगुना—वि० [हि०] दे० 'दुगना'।

दोगाड़—वि० [देशी] जोड़ा। जुड़वाँ। युग्मक।—देशी०, पृ० २०३।

दोचंद—वि० [फ्रा०] दुगना।

दोच—संज्ञा स्त्री० [हि० दबोच] १. दुबधा। असमजस। २. कष्ट। दुख। उ०—मनहि यह परसीत आई दूरि हरिही दोच।—सूर

प्रभु हिलि मिलि रहौंगी लाज डारों मोच ।—सूर (शब्द०) ।
३ दबाव । दबाए जाने का भाव ।

दोचन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दभोचन] १ दुवधा । प्रसमजस । २. दबाव में पड़ने का भाव । ३ कष्ट । दुःख । उ०—भवन मोहि भाटी सो लागत भरत सोचही सोचन । ऐसी गति मेरी तुम प्रागे करत कहा जिय दोचन ।—सूर (शब्द०) ।

दोचना—क्रि० सं० [हि० दोष] दबाव डालना । कोई काम करने के लिये बहुत जोर देना ।

दोषल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + चला (= पल्ला) ?] वह छाजन जो बीच में उमरी हुई धीरे धीरे दोनों धोर ठाबुरी हो । दोपलिया छाजन ।

दोचित्ता—वि० [हि० दो + चित्ता] [वि० स्त्री० दोषित्ता] जिसका चित्त एकाग्र न हो, दो कामों या बातों में बँटा हो । उद्विग्न-चित्त ।

दोचित्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दो + चित्ता] दोषित होने का भाव । चित्त की उद्विग्नता । ध्यान का दो कामों या बातों में बँटा रहना ।

दोचोवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + फा० चोब] वह बड़ा खेमा जिसमें दो दो चोबें लगती हों ।

दोजड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दो] पक्ष की द्वितीया तिथि । दूज । उ०—दोज ससी ज्यो प्रेम, राजत स्याम सकार में । माझी भीत जु नेम, ता ऊपर हो देख ले ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दोज^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सगीत में षष्ठताल का एक भेद ।

दोजई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] नक्काशों का एक धौजार जो गोलाकार घृत्ता बनाने के काम में आता है । यह छेनी के आकार का होता है ।

दोजक—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दोजख] दे० 'दोखख' । उ०—माल लेवूँ तो दोजक पहुँ, दीन छोड़ दुनियाँ की भरूँ ।—दक्खिनी०, पृ० २० ।

दोजकि(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दोजख] दे० 'दोखख' । उ०—तो पापी मोइ दोजकि आवहि ।—प्राण०, पृ० ३३ ।

दोजख^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दोजख] १ मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार नरक जिसके सात विभाग हैं धीरे जिसमें दुष्ट तथा पापी मनुष्य मरने के उपरांत रहे जाते हैं । उ०—दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४८० । २ पेट ।

दोजख^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके फूल बहुत सुंदर होते हैं ।

दोजखी—वि० [फ़ा० दोजखी] १. दोखख संबंधी । दोखख का । २ पापी । बहुत बड़ा अपराधी जो दोखख में भेजे जाने के योग्य हो ।

दोजग^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० दोजख] दे० 'दोखख' । उ०—प्रागल सुरग कपाट पथ, दोजग भगुमो देख ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ४९ ।

दोजरबा—वि० [फ़ा०] दो बार भभके में खीचा या चुमाया हुआ । दो घातशा । जैसे,—दोजरबा शराब । दोजरबा घरक ।

दोजबी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दोनली बटुक ।

दोजा^१—संज्ञा पुं० [हि० दो] वह पुरुष जिसका दूसरा विवाह हो । दोबारा व्याहृत हुआ भादमी । कल्याणभार्य ।

दोजा^२—वि० [हि० दूजा] दे० 'दूजा' ।

दोजानू—क्रि० वि० [फ़ा० दोजानू] घुटनों के बल या दोनों घुटने टेककर (बैठना) ।

दोजियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + जी या जीव] गर्भवती स्त्री । वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो ।

दोजोरा—संज्ञा पुं० [हि० दो + जोरा] एक प्रकार का चावल ।

दोजोवा—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + जीव] गर्भवती स्त्री । वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो ।

दोटूक—वि० [हि० दो + टुकड़ा] स्पष्ट । साफ साफ । खरी (बात) ।

दोटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दोड़ना' । उ०—नाखे बारबार निसासा, हत्या तेग गही चंद्रहासा । कीधो दाएण काप प्रकासा, दोट सिया सिर देंग ।—रघु० ६०, पृ० २१ ।

दोटो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० डचोड़ी] दे० 'डचोड़ी' । उ०—दोड़ी सिरें दवार नरेह निहारती । मिल कोसल्या मात, उत्तारी आरती ।—रघु० ६०, पृ० ६५ ।

दोती—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० दवात] दे० 'दावात' ।

दोतरफा^१—वि० [फ़ा०] दोनों तरफ का । दोनों धोर सबधी ।

दोतरफा^२—क्रि० वि० दोनों तरफ । दोनों धोर ।

दोतरफा^३—वि० पुं० [फ़ा०] दे० 'दोतरफा' ।

दोतला—वि० [हि०] दे० 'दोतल्ला' ।

दोतल्ला—वि० [हि० दो + तल] दो खड का । दोमजिला । का । दोमजिला जैसे, दोतल्ला मकान ।

दोतही—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + तह] १. एक प्रकार की देसी मोटी चादर जो दोहरी करके बिछाने के काम में आती है । २ दोसूती ।

दोता—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोतही' ।

दोतारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + तार (= सूत)] एक प्रकार का दुशाला ।

दोतारा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दो + तार (= चातु)] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा । एकतारे की अपेक्षा इसमें यह विशेषता होती है कि इसमें बजाने के लिये एक के बदले दो तार होते हैं ।

विशेष—दे० 'एकतारा' ।

दोदना—क्रि० सं० [हि० दो (= दोहराना)] किसी की कही प्रत्यक्ष बात से इनकार करना । प्रत्यक्ष बात से मुकरना ।

दोदरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [नेपाली] एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जो दारजिलिंग, सिकिम, भूटान धीरे पूर्वी बंगाल में पाया जाता है । इसकी लकड़ी काली, चिकनी धीरे कड़ी होती है धीरे हमारत के काम में आती है ।

दोदल—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल] १. चने की दाल या तरकारी ।
२. कचनार की कलियाँ जिसकी तरकारी बनती है और
घनार भी पड़ता है ।

दोदस्ता—वि० [फा० दुदस्तह्] दोनों ओर । दुतरफा [को०] ।

दोदस्ता खिलाल—संज्ञा पुं० [फा० दोदस्ता खिलाल] ताश के
तुरप के खेल में किसी एक खिलाड़ी का एक साथ बाकी
दोनों खिलाड़ियों को मात करना ।

दोदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दोनों हाथों तलवार चलाना ।
२. कुपती का एक दौड़ [को०] ।

दोदा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा फीवा (पक्षी),
जिसकी लंबाई डेढ़ दो हाथ होती है ।

विशेष—इसका रंग काला, तथा चोंच और पैर चमकीले होते
हैं । यह गाँव, देहात या जंगलों में बहुत होता है । इसकी
भादतें मामूली कीड़े की मी होती हैं । यह ऊँचे वृक्षों पर
घोसना बनाता है और पूस से फागुन तक भंडे देता है ।
एक बार में इसके पाँच भंडे होते हैं ।

दोदाना—क्रि० सं० [हि० दोदना] किसी को दोदने में प्रवृत्त करना ।
दोदने का काम दूसरे से कराना ।

दोदामी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुदामी' ।

दोदिन—संज्ञा पुं० [देश०] रीठे की जाति का एक पेड़ जिसके फलों
का व्यवहार साबुन की तरह कपड़े साफ करने में होता है ।
इसके पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं और बीज दवा के
काम में प्राते हैं ।

दोदिला—वि० [फा० दुदिलह्] १. जिसका मन दो कामों या बातों
में बँटा हो, एकाग्र न हो । जिसका चित्त एक बात पर जमा
न हो बल्कि दो तरफ बँटा हो । दोचित्ता । चितित ।
२. बहमी ।

दोदिलो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + दिल] दोदिला होने का भाव ।
चित्त की अस्थिरता । दोषिली ।

दोध—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दोधी] १. ग्वाल । गहीर ।
२. बछड़ा । गाय का बच्चा । ३. वह कवि जो पुरस्कार के
लिये कविता करता हो ।

दोधक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसमें मीम अगस्त्य और अंत
में दो गुरु होते हैं । इसका दूसरा नाम 'बधु' भी है । जैसे,—
भागु न गो दुहि दे नदलाला । पाणि गहे कहतीं ब्रजबाला ।
दोध करै सब आरस बानी । या मिष्ट ले घर जायें सयानी ।

दोधार—संज्ञा पुं० [हि० दो + धार] माला । वरछा (डि०) ।

दोधारा—वि० [हि० दो + धार] [वि० स्त्री० दोधारी] दोहरी
बाढ़ का । जिसके दोनों ओर धार या बाढ़ हो ।

दोधारा—संज्ञा पुं० एक प्रकार का थूहर ।

दोन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणि] दो पहाड़ों के बीच की नीची जमीन ।

दोन—संज्ञा पुं० [हि० दो + नद] १. दो नदियों के बीच की जमीन ।
दोघाबा । २. दो नदियों का संगम स्थान । ३. दो नदियों

का मेल । ४. दो वस्तुओं की सधि या मेल । ६०—तिय
तिय तरणि किसोर वय पुन्यकाल सम दोन । काहू पुन्यनि
पाइयत बैस सधि सकोन । —बिहारी (शब्द०) ।

दोन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] काठ का वह लंबा और बीच से
खोखला टुकड़ा जिससे धान के खेतों में सिचाई की जाती है ।

विशेष—यह धान कूटने की ढेकली के आकार का होता है और
उसी की तरह जमीन पर सगा रहता है । पानी लेने के लिये
इसका एक सिरा बहुत चौड़ा होता है जो एक ताल में रहता
है । इस सिरे को पहले ताल में डुबाते हैं और जब उसमें
पानी भर जाता है तब उसे ऊपर की ओर उठाते हैं, जिससे
उसका दूसरा सिरा नीचे हो जाता है और उसके खोखले मार्ग
से पानी नाली में चला जाता है ।

२. धन्न की एक माप । द्रोण ।

दोनली—वि० [हि० दो + नल] दो नालवाली । जिसमें दो नाँव
हों । जैसे, दोनली बंदूक ।

दोनों—संज्ञा पुं० [हि० दोना] दे० 'दोना' । उ०—दोनों मबरा
चपक फूला । तामे जीव बसे कर तुला ।—कबीर ग्रं०,
पृ० २४० ।

दोना—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० दोनी] पत्तों का बना हुआ
कटोरे के आकार का छोटा गहरा पात्र जिसमें खाने की चीजें
भादि रखते हैं । उ०—कदमूल फल भरि भरि दोना । चले
रंक जनु लूटन सोना ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—दोना चढ़ाना = किसी की समाधि आदि पर फूल
चढ़ाना । दोना देना = (१) दोना चढ़ाना । (२) अपने
भोजन के थाल में से कुछ भोजन किसी को दे देना जिससे
देनेवाले की प्रसन्नता और पावेवाले का सम्मान प्रगट होता है ।
दोना खाना या चाटना = बाजार की मिठाई आदि खाना ।
दोनों की चाट पड़ना = बाजारी भोजन का चस्का पड़ना ।

दोना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोना' (मरवा) ।

दोनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दोना का स्त्री० भत्पा०] छोटा दोना ।
उ०—यक दोनिया महे दियो बतासा । कहाँ देहु यक यक
सब पासा ।—रघुराज (शब्द०) ।

दोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोना का स्त्री० भत्पा०] छोटा दोना ।
उ०—(क) तुलसी स्वामी स्वामिनी ओहे मोही हैं मामिनी,
सोभा सुषा पिये करि ओखियाँ दोनी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) हूष भात की दोनी देहीं सोने चोंच महेहीं । जब सिय
सहित बिखोकि नयन भरि राम लखन उर लैहीं ।—तुलसी
(शब्द०) ।

दोनू—वि० [हि०] दे० 'दोनों' । उ०—तुम दोनू ही एक समान
करी ।—नट०, पृ० ३३ ।

दोनों—वि० [हि० दो + नों (प्रत्य०)] एक और दूसरा । ऐसे
विशिष्ट दो (मनुष्य या पदार्थ) जिनका पहले कुछ वर्णन हो
चुका हो और जिनमें से कोई भी छोड़ा न जा सकता हो ।
उचय । जैसे,—(क) राम और कृष्ण दोनों गए । (ख) वह

कल और आज दोनों दिन आया। (ग) वह धन और मान दोनों चाहता है। (घ) उसके माँ बाप दोनों मरे हैं।

दोपंथो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+पथ] एक प्रकार की दोहरे खाने की जाली, स्त्रियाँ प्रायः जिसकी कुरतियाँ बनाती हैं।

दोपट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुपट्टा'।

दोपलका—वि० [हि० दो+पलक या फलक] १ दो पल्ले का नगीना। वह नगीना जिसके भीतर नकली या हलका नग हो और ऊपर मसल्लो या बढ़िया हो। दोहरा नगीना। २ एक प्रकार का कव्तर।

दोपलिया—वि०, संज्ञा स्त्री० [हि० दो+पल्ल] दे० 'दोपल्ली'।

दोपल्ली—वि० [हि० दो+पल्ल+ई (प्रत्य०)] दो पल्लेवाला। जिसमें दो पल्ले हो।

दोपल्ली—संज्ञा स्त्री० मलमल, अट्टो आदि की एक प्रकार की टोपी जिसमें कपड़े के दो टुकड़े एक साथ सिले होते हैं। इसका व्यवहार लखनऊ, प्रयाग और काशी आदि में अधिकता से होता है।

दोपहर—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+पहर] मध्याह्नकाल। सवेरे और संध्या के बीच का समय। यह समय जब सूर्य मध्य आकाश में रहता है।

मुद्दा—दोपहर ढलना = दोपहर के उपरांत और समय बीतना।

दोपहरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दोपहर'।

दोपहरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दोपहर'। उ०—आ आकर विचित्र पशु पक्षी यहाँ बिताते दोपहरी।—पंचवटी, पृ० ८।

दोपोठा—वि० [हि० दो+पोठ] दोषका। दोनों ओर समान रूप का।

दोपोठा—संज्ञा पुं० कागज आदि का एक ओर छपने के उपरांत दूसरी ओर छपना (मुद्रण)।

दोपौवा—संज्ञा पुं० [हि० दो+पाव] १ पान की आधी ढोली। (तंबोली)। २ किसी वस्तु का घाघा।

दोप्याजा—संज्ञा पुं० [फा० दोप्याजा] एक प्रकार का पका हुआ मांस जिसमें तरकारी नहीं पड़ती और प्याज दो बार पड़ता है। एक प्रकार का मांस जिसमें पानी नहीं पड़ता केवल प्याज पड़ता है। उ०—कोर्मा होता, कलिया होती पुलाव दोप्याजे की तश्तूरियाँ होती और रात रात भर बोतल के काग फटाफट खुलते रहते।—शराबी, पृ० १०४।

दोफसली—वि० [हि० दो+अ० फसल+ई (प्रत्य०)] १ दोनों फसलों के संबंध का। जैसे, दोफसली जमीन। २ जो दोनों ओर लग सके। दोनों ओर काम देने योग्य। जैसे, दो फसली बात।

दोबल—संज्ञा पुं० [देश०] दोष। अपराध। उ०—(क) दोबल कहा देति मोहि सजनी तू तो बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहूतै कीन्ही रहति न तेरी आन।—सूर (शब्द०)। (ख) दोबल देति आन।—सूर (शब्द०)। (ख) दोबल देति सबै मोही को उन पठयो मैं आयो।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।

दोधारा—क्रि० वि० [फा०] दूसरी बार। दूसरी दफा। एक बार होने के उपरांत फिर एक बार।

दोवारा—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ दो भातशा पाराव। २. दो भातशा भरक आदि। ३. दो बार साफ की हुई चीनी। ४. एक बार तैयार होने के उपरांत उसी तैयार चीज से फिर दूसरी बार तैयार की हुई चीज।

दोवाला—वि० [फा० दुवाला] दूना। दुगुना।

दोभा—वि० [देश०] ढोला। मुलायम। उ०—मोछा कूल में भपना दोभा ढावहियाँ। होले बोले होट में मूरख मावहियाँ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १७।

दोभापिया—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुभापिया'।

दोमजिला—वि० [फा० दुमजिलह] दो खड का। दोखडा। जिसमें दो मजिले हो। जैसे, दोमजिला मकान।

दोमट—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+मिट्टी] वह भूमि जिसकी मिट्टी में कुछ बालू भी मिला हो। दूमट भूमि।

दोमहला—वि० [हि० दो+महल] दो खड का। दोमजिला। जैसे, दोमहला मकान।

दाभरगा—संज्ञा पुं० [हि० दो+भार] एक प्रकार का देशी मोटा कपड़ा जिसकी जनानी धोतियाँ बनाई जाती हैं। यह मिर्जापुर में बहुत बनता है।

दोमाहा—संज्ञा पुं० [फा० दुमाहह] दो महीने का वेतन या तनखाह [क्रि०]।

दोमुह—वि० [हि० दो+मुँह] १ दो मुँहवाला। जिसे दो मुँह हों। जैसे, दोमुह साँप। २ दोहरी चाल चलने या बात करनेवाला। कपटी।

दोमुह साँप—संज्ञा पुं० [हि० दोमुह+साँप] १ एक प्रकार का साँप जो प्रायः हाथ भर लंबा होता है और जिसकी दुम मोटी होने के कारण मुँह के समान जान पड़ती है।

विशेष—न तो इसमें विष होता है और न यह किसी को काटता है। इसके विषय में लोगों में यह प्रसिद्ध है कि छह महीने इसकी दुम का सिरा मुँह बन जाता है और पहलेवाला मुँह दुम बन जाता है।

२ दो तरह की बातें कहनेवाला। कुटिल और कपटी व्यक्ति।

दोमुह—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+मुँह] सोनारो का एक औजार जो नक्काशी के काम में आता है।

दोय—वि० [सं० द्यौ] १. दे० 'दो'। २. दे० 'दोनो'।

दोय—संज्ञा पुं० दे० 'दो'।

दोयज—वि० [हि० दोय+सं० ज] दुबिधेवाला। उलझन से भरा। चिंताजनक। उ०—दोयज घधा जगत का लागि रहै दिन रैन। कुटुब महा दुख देत है कैसे पावे चैन।—सहजो०, पृ० ५०।

दोयण—संज्ञा पुं० [सं० दुजन, प्रा० दुज्जण, दुयण] १. दे० 'दुज्ज'। २. शत्रु। दुश्मन। उ०—जाहूर जग जीवाङ्गणी, मानै दोयण मेह।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० २१।

दोयम

दोयम—वि० [फा०] दूसरा । दूसरे नंबर का । जो क्रम में दो के स्थान पर हो ।

दोयरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जगली पेड़ जो दारजिलिंग के जंगलों में बहुत होता है ।

विशेष—इसकी एकड़ी सफेद और मजबूत होती है और सड़क आदि बनाने तथा इमारत के काम आती है । इसकी लकड़ी का कोयला भी बनाया जाता है जो बहुत देर तक ठहरता है ।

दोयल—संज्ञा पुं० [देश०] बया पक्षी ।

दोरंगा—वि० [हिं० दो + रंग] १ दो रंग का । जिसमें दो रंग हों । जैसे, दोरंगा किनारा, दोरंगा कागज । २ जो दो-मुँहा या दोतरफा हो । जो दोनों ओर लग या चल सके । दानो पक्षों में आ सकनेवाला । ३ जो व्यवहार से उत्पन्न हुआ हो । वर्णसंकर । दोरंगला (कव०) ।

दोरंगी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + रंग + ई (प्रत्यय)] १ दो-रंगे या दोमुँहे होने का भाव । दोनों ओर चलने या लगने का भाव । २. छल । कपट ।

दोरंगी^२—वि० स्त्री० [हिं० दोरंगा] दे० 'दोरंगा'—२ । उ०—यह दुनिया दोरंगी भाई । जिव गह शरण असुर की जाई ।—कवीर सा०, पृ० ८१६ ।

दोरा^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दोबारा जोती हुई जमीन । वह जमीन जो दो दफे जोती गई हो ।

दोर^२—संज्ञा पुं० [सं०] डोर । रस्सी । उ०—मन खेलार तन चग नव उड़त रंग रस डोर । हूरिहि डोर बटोर जब जब पारे तब डोर ।—स० सप्तक, पृ० २५१ ।

दोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ डोरी । डोर । २ घागा । डोरा । बीणा के पदों को बांधने में काम आनेवाली ताँत [को०] ।

दोरदंड(पुं०)^१—वि० [सं० दुर्दण्ड] दे० 'दुर्दंड' ।

दोरदंड(पुं०)^२—संज्ञा पुं० [सं० दुर्दण्ड] दे० 'दुर्दंड' ।

दोरना^१—क्रि० प्र० [हिं० दोटना] दे० 'दोटना' । उ०—तब रूप बदनेदा दोरे ई भाए ।—दो सी वाचन०, भा० १, पृ० १६२ ।

दोरसा^१—संज्ञा पुं० [हिं० दो + रस] दे० 'दोमट' ।

दोरसा^२—वि० [हिं० दो + रस] दो प्रकार के स्वाद या रसवाला । जिसमें दो तरह के रस या स्वाद हो ।

दोरसा^३—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पीने का समाक जिसका घुघ्रा कड़ा और भीठा मिला हुआ होता है ।

दोरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] हल के मुठिया के पास लगी हुई बाँस की वह नली जिसमें बोने के लिये बीज डाला जाता है । भाला ।

दोरा^३—संज्ञा पुं० [सं० दोरक] डोरा । डोर । दोरक ।

दोराना^१—क्रि० प्र० [हिं० दोरना] दे० 'दोटना' । उ०—तब तत्काल नाव दोराई ।—दो सी वाचन०, भा० १, पृ० ११० ।

दोराहा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + राह] वह स्थान जहाँ से आगे की ओर दो मार्ग जाते हों ।

दोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोर] दे० 'डोरी' ।

दोरखा—वि० [फा० दोखह] १ जिसके दोनों ओर समान रंग या रंग बूटे हों । जैसे, दोरखा कपड़ा, दोरखी साड़ी, दोरखा साफा । २. जिसके एक ओर एक रंग और दूसरी ओर दूसरा रंग हो । कपड़ों की इस प्रकार की रंगाई प्रायः लखनऊ और बीकानेर में होती है । ३. सोनारों का एक औजार जो हंसुली बनाने के काम में आता है ।

दोरेजी—संज्ञा स्त्री० [फा०] नील की वह दूसरी फसल जो पहले साल की फसल कट जाने के उपरांत उसकी जड़ों से फिर होती है ।

दोर—संज्ञा पुं० [सं०] दो का समासप्राप्त रूप ।

दोर्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यसिद्धांत के अनुसार वह ज्या जो भुज के आकार की हो ।

दोर्दंड—संज्ञा पुं० [सं० दोर्दंड] भुजदंड ।

दोल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ झूला । हिंडोला । उ०—राधा माधव झूलिषों, झलि को झलि प्रति वैन । तेई दोल मनमोल हैं, नील लसे सुख दें ।—दीन० प्र०, पृ० ४ । २. डोली । चंडोल । ३. एक उत्सव । दीनोत्सव ।

दोल^२—संज्ञा पुं० [फा०] डोल । कुएं से पानी निकालने का यंत्रन [को०] ।

दोलड़ा^१—वि० [हिं० दो + लड़] [वि० स्त्री० दोलड़ी] दो लड़ों का । जिसमें दो लड़ें हो ।

दोलत्ती—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुलत्ती' ।

दोलना—क्रि० प्र० [सं० दोलन] १. हिलना । काँपना । लरजना । उ०—हरी बिछली घास । दोलती कलगी छरहरी बाजरे की ।—हरी घास०, पृ० ५७ । २. डोलना । घूमना । उ०—दिन दिन गढ़ जोषाणी डोला । रसना भपट मिटै नहु गेला ।—रा० रू०, पृ० २८४ ।

दोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नील का पेड़ । २. हिंडोला । झूला । ३. डोली या चंडोल । ४. दे० 'दोलायन' [को०] । ५. अनिश्चयात्मक स्थिति [को०] ।

दोलाधिरूढ़—वि० [सं० दोलाधिरूढ़] १ झूने या हिंडोले पर चढ़ा हुआ । २. अनिश्चित (लक्ष०) ।

दोलायन—संज्ञा पुं० [दोलायन] घंटी का एक यंत्र जिसकी म्हायना से वे ओषधियों में शर्क उतारते हैं ।

विशेष—एक घंटे में कुछ द्रव पदार्थ (तेल, घी, पानी आदि) भर कर उसे आग पर चढ़ाते हैं । कुछ ओषधियों की पोटली बाँधकर उस पोटली को एक डोरे में घड़े के मुँह पर रखी हुई लकड़ी से इस तरह चढ़ाया है कि वह पोटली उस द्रव पदार्थ के बीच में रहे पर घड़े की पेंदी से न छू जाय । इस प्रकार उन ओषधियों का शर्क उग तरल पदार्थ में उतर आता है ।

दोलायमान—वि० [सं०] १ झूलता हुआ । हिलता हुआ । २. अस्थिर । चंचल । दुनमुल [को०] । ३. झूलता हुआ चणयात्मा । संशयग्रस्त [को०] ।

दोलायित—वि० [सं०] दोलित । झूलता हुआ [को०] ।

दोलायुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें बार बार दोनों पक्षों की हार जीत होती रहे और जल्दी किसी एक पक्ष की अन्तिम विजय न हो ।

दोलाचाँ—संज्ञा पुं० [?] वह कुर्मा जिसमें दोनों ओर दो गरा-
हियाँ लगी हो ।

दोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हिडोला । झूला । उ०—झूलत
पिय बदलाल, झूलत सब ब्रज की बास, वृंदावन मवल-
कृष्ण खोल दोलिका ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३ ।
२ डोली । पालकी ।

दोलित—वि० [सं०] १ झूलता हुआ । २. कपित । हिलता हुआ ।
उ०—ऊपर प्रोभित मेघ छत्र सित, नीचे समित शील जल
दोलित ।—अपरा, पृ० २४ ।

दोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ डोली । पालकी । २ झूला ।

दोखू—संज्ञा पुं० [?] दाँत (हि०) ।

दोसोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक त्यौहार जिसमें वे
अपने ठाकुर जी को फूलों के हिडोले पर झुलाते हैं । यह
उत्सव फागुन की पूर्णिमा को होता है ।

दोसोही—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुलोही' ।

दोवटी^①—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपट्टी] दे० 'दुपट्टी' । उ०—सेन तेरी
कोई न समझे जीम पकरी मानि । पाँच गज दोवटी माँगी
चून लीयो सानि ।—कबीर ग्रं०, पृ० १६४ ।

दोवड़^②—वि० [देशी] दे० 'दोहरा' । उ०—दूजा दोवड़ चोवड़ा,
ऊँट कटासत छाँए । जिण मुख नागरिवेलियाँ सो करहउ
केकाँए ।—ढोखा०, पृ० ३०६ ।

यौ०—दोवड़ चोवड़ ।

दोवण^③—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मन्स्, हि० दुवन] शत्रु । वैरी । उ०—
महाराजधिराज सुप्रिय मन्त्रिण सारा कारज सारे । कीधो
भूप पुरी केकधा दोवण दूर विदारे ।—रघु० क०, पृ० १५६ ।

दोवाँ—संज्ञा पुं० [हि० देवबाँस] देवबाँस नाम का बाँस जो
बंगाल में बहुत होता । वि० दे० 'देवबाँस' ।

दोश—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लाख जिसका व्यवहार रंग
बनाने में होता है ।

दोशमाल—संज्ञा पुं० [क्रा०] वह भंगोछा या तोलिया जो कसाई
अपने पास रखते हैं ।

दोशाखा—संज्ञा पुं० [क्रा० दुशाखह] १ वह समदान जिसमें दो
बसियाँ हों । दो बालों की दीवारगीर । २ भाँग छानने की
लकड़ी जिसमें दो शाखें होती हैं और जिसमें साँधी बाँध कर
भाँग छानते हैं । इसका आकार ऐसा होता है—<

दोशाला—संज्ञा पुं० [क्रा०] दे० 'दुशाला' ।

दोशीजगी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० दोशीजगी] पल्लव अवस्था । कुवारा-
पन [को०] ।

दोशीजा^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा० दोशीजह्] कुमारी कन्या । पल्लव
और युवा सङ्गती । अकुरितयोवना ।

दोशीजा^२—वि० अकुरितयोवना । पल्लव । उ०—कुत्रों में छिप छिप
छेह रहा दोशीजा कतियों को फागुन ।—ठठा०, पृ० २७ ।

दोष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुरापन । खराबी । अवगुण । ऐब ।
नुबस । जैसे, प्राँस या कान का दोष, लिखने या पढ़ने का
दोष, शासन के दोष आदि ।

मुद्दा०—दोष लगाना = किसी के सबब में यह कहना कि उसमें
अगुण दोष है । दोष का आरोप करना । दोष निकालना =
दोष का पता लगाना । अवगुण को प्रसिद्ध या प्रकट करना ।

यौ०—दोषकर, दोषकारी = दे० 'दोषकृत्' । दोषग्राही । दोषज्ञ ।
दोषत्रय = कफ, पित्त और वायु । दोषदृष्टि । दोषपत्र ।
दोषभाक् = दोषी । अपराधी । दोषदर्शी = दोष दिखसाने-
वाला । ऐब दिखसानेवाला ।

२, लगाया हुआ अपराध । अभियोग । साँझन । कलक ।

मुद्दा०—दोष देना या लगाना = साँझन या कलक का आरोप
करना ।

यौ०—दोषारोपण = दोष देना या लगाना ।

३ अपराध । कसूर । जुर्म । ४. पाप । पातक । ५ वैद्यक के
अनुसार शरीर में रहनेवाले वात, पित्त और कफ, जिनके
कुपित होने से शरीर में विकार प्रयत्न व्यापित उत्पन्न होती
है । ६. न्याय के अनुसार वह मानसिक भाव जो मिथ्या ज्ञान
से उत्पन्न होता है और जिसकी प्रेरणा से मनुष्य भले या
बुरे कार्यों में प्रवृत्त होता है । ७ नव न्याय में वह शक्ति जो
तर्क के प्रयत्नों का प्रयोग करने में होती है । यह तीन प्रकार
की होती है—मातृध्याति, अय्याति और असम्झाव । ८
मीमांसा में वह अष्टफल जो विधि के न करने या उसके
विपरीत आचरण से होता है । ९ साहित्य में वे बातें जिनसे
काव्य के गुण में कमी हो जाती है ।

विशेष—यह पाँच प्रकार का होता है—पददोष, पदांशदोष,
वाक्यदोष, अर्थदोष और रसदोष । इनमें से हर एक के
अलग अलग कई गौण भेद हैं ।

१० भागवत के अनुसार आठ वसुधों में से एक का नाम । ११.
प्रदोष । गोघुलिकाल । १२ विकार । खराबी (को०) । १३
अशुद्धि । गलती (को०) । १४. वत्स । बछटा (को०) ।

दोष^२—संज्ञा पुं० [सं० द्वेप] द्वेप । विरोध । शत्रुता । उ०—सो जन
जगत जहाज है जाके राग न दोष । तुलसी तृष्णा त्यागि के
गह्येउ शील सतोप ।—तुलसी (शब्द०) ।

दोषक—संज्ञा पुं० [सं०] बछटा । गौ का बच्चा ।

दोषकृत्—वि० [सं०] दोष करनेवाला । बुराई करनेवाला । अहितकर
[को०] ।

दोषग्राही—संज्ञा पुं० [सं० दोषग्राहिन्] दुष्ट । दुर्जन ।

दोषज्ज^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रोवध जिससे कुपित कफ, वात और
पित्त का दोष शांत हो ।

दोषज्ज^२—वि० दोषों का शमन करनेवाला [को०] ।

दोषज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] पंडित । विद्वान् ।

दोषण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष । उ०—वयण सगाई वेण, मित्या सवि दोषण मिटै ।—रा० ६०, पु० १३ ।

दोषण^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दोष लगाना [को०] ।

दोषता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दोष का भाव ।

दोषत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दोष का भाव ।

दोषदृष्टि—वि० [सं०] बुराई देखनेवाला । छिद्रान्वेयी । दोष देखने-वाला [को०] ।

दोषन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष । दूषण । अपराध । उ०—महरि तुमहि कछु दोषन नाही । हमको बेखि देखि मुसकाहीं ।—सूर (शब्द०) ।

दोषना^१—क्रि० सं० [सं० दूषण + हि० ना (प्रत्य०)] अपराध सं० दोषण] दोष लगाना । अपराध लगाना । उ०—(क) बोरी होय सुनि पर मोखी । देय जो सुरी वेहि नहि दोखी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कइ कइ फेरा नित यह दोषे । बारहि बार फिरे सतोषे ।—जायसी (शब्द०) ।

दोषपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसपर किसी अपराधी के अपराधों का विवरण लिखा हो । फर्द करारदाद जुर्म ।

दोषरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोष + रण] १. वह जो दोषों को मिटा दे । वह जो भक्तों के दोष को दूर करे । २. दोषों से युद्ध । दोष का संघर्ष । उ०—चलता नहीं हाथ, कोई नहीं साय, उन्नत, विनत माय, दो धरण, दोषरण ।—गीतगुज, पु० ५० ।

दोषल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जिसमें दोष हो । दोषयुक्त । दूषित ।

दोषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि । रात ।

यौ०—दोषाकर ।

२. सव्या । ३. भुजा । बांह ।

दोषाकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा । २. दोषों का आकर । दोष समूह [को०] ।

दोषाक्लेशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वनतुलसी ।

दोषाक्षर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लगाया हुआ अपराध । अभियोग ।

दोषातिलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप । दीपक । दीपा ।

दोषारोपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी पर दोष का आरोप करना । कलक लगाना ।

दोषावह—वि० [सं०] दोषयुक्त । दोषपूर्ण । जिसमें दोष हो ।

दोषास्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप । दीप । दीपा [को०] ।

दोषिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोग । बीमारी ।

दोषिक^२—वि० दे० 'दूषित' ।

दोषित—वि० [सं० दूषित] दोषवाला । दोषयुक्त । ऐसी [को०] ।

दोषिना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दोषी] १. अपराधिनी । २. पाप करने-वाली स्त्री । ३. वह कन्या जिसने कुंवारेपन ही में पुरुषप्रसंग किया हो ।

दोषिला—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० दोषिल्ल] दे० 'दोषल' । उ०—लाग दोष गोहूँ के साये । बिछुरा प्रीतम दोषिल पायें ।—इंद्रा०, पु० ८५ ।

दोषी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोषिन्] [स्त्री० दोषिणी] १. अपराधी । कसूरदार । २. पापी । ३. मुजरिम । अभियुक्त । ४. जिसमें दोष हो । जिसमें ऐब या बुराई हो ।

दोषैकदृक्, दोषैकदृष्टि—वि० [सं०] छिद्रान्वेयी । दोष मात्र ही देखनेवाला [को०] ।

दोस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दोष] दे० 'दोष' ।

दोस^२—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्त] दोस्त । मित्र । जैसे, दोसवार, दोसदारी में 'दोस' ।

दोसत^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्त] दे० 'दोस्त' । उ०—दाहू दोसत जीव का जन रज्जव जग माहि । के जिन सिरजे सो सही तोजा कोई नाहि ।—रज्जव०, पु० ३ ।

दोसदार^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्तदार] मित्र । यार । उ०—किनायत भजब गज है पायदार । फना जिसको हरगिज नहीं दोसदार ।—दक्खिनी०, पु० २१२ ।

दोसदारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० दोस्तदारी] मित्रता । दोस्ती ।

दोसरा^१—वि० [हि०] दे० 'दूसरा' उ०—नायिकाक दोसर शरीर भइसन श्यामाभाति सखी ।—चर्यं०, पु० ५ ।

दोसरता^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दूसरा + ता (प्रत्य०)] द्विरागमन । गोता । मकलावा ।

दोसरा^२—वि० [हि० दूसरा] [वि० स्त्री० दोसरि, दोसरी] दे० 'दूसरा' । उ०—(क) मलेहि रंग ठोहि प्राछरि राता । मोहि दोसरें सौं भाव न बाता ।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० २६१ । (ख) जौं जोगिहि सुठि बंदर काटा । एकै जोग न दोसरि बाटा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० २६८ ।

दोसरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दो] दो बार जोती हुई जमीन ।

दोसरी^२—वि० स्त्री० [हि० दूसरा] दे० 'दूसरा' । उ०—सोवारी रहट घाट बोसीस प्रकार पुरविन्यास, कया कहजोका, जनि दोसरी अपरावति क अवतार भा ।—कीर्ति०, पु० २८ ।

दोसा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दोषा] दे० 'दोषा' ।

दोसा^२—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती है । इसका बहुत भंश पानी में डूबा रहता है और इसमें एक प्रकार के दाने अधिकता से होते हैं ।

दोसाध—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दुसाध] दे० 'दुसाध' ।

दोसाल—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] घरमा के हाथियों की एक जाति ।

विशेष—इस जाति का हाथी कुमरिया से कुछ छोटा होता है और साधारणतः सकड़ियाँ आदि देने या सवारी आदि के काम में आता है ।

दोसाझा^१—वि० [हि० दो + साज (=वर्ष)] दो वर्ष का । दो वर्ष का पुराना ।

दोसाझा^२—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० दुसालह] दे० 'दुसाला' । उ०—केशरि को यह तिलक पीतमर दोसाला ।—सं० दरिया, पु० १०३ ।

दोसाही^१—वि० [हि० दो + ?] दोफसला । (जमीन) जिसमें साध में दो फसलें पैदा हो ।

दोसी^१—सञ्ज्ञा पुं० [दे०] दही ।

दोसी^२—संज्ञा पुं० [सं० दोषी] १० 'दोषी' ।

दोसूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + सूत] दोतही या दुसूती नाम की मोटी चादर जो बिछाने के काम में आती है ।

दोस्त—संज्ञा पुं० [फा०] १. मित्र । स्नेही । २. वह जिसमें अनुचित संबंध हो । यार (बाजारू) ।

दोस्तदार—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'दोस्त' ।

दोस्तदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'दोस्ती' ।

दोस्ताना^१—संज्ञा पुं० [फा० दोस्तानह्] १ दोस्ती । मित्रता । २ मित्रता का व्यवहार ।

दोस्ताना^२—वि० दोस्ती का । मित्रता का ।

दोस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ मित्रता । स्नेह । २. अनुचित संबंध । याराना (बाजारू) ।

दोस्ती रोटी—संज्ञा स्त्री० [फा० दोस्ती + हिं० रोटी] एक प्रकार की रोटी जो घाटे की दो लोहों के बीच में घी लगाकर और एक को दूसरी पर रखकर बेसते और तब तवे पर घी लगाकर पकाते हैं । दो परत की रोटी । दुपड़ी ।

विशेष—पकने पर इसमें की दोनो लोहों छलग हो जाती हैं ।

दोस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ नौकर । दास । २ सेवा । दासत्व । ३ खेल । क्रीडा । ४ खेलनेवाला व्यक्ति [को०] ।

दोह^७^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रोह] दे० 'द्रोह' ।

दोह^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोहन । दूहना । २ दुग्ध । दूध । ३ दूध डुहने का बर्तन । ४ किसी से लाभ उठाना । किसी वस्तु से फायदा प्राप्त करना [को०] ।

यौ०—दोहापनय । दोहज ।

दोहगा^१—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य या दुर्मंग, प्रा० दोहग] विपरीत भाग्य । दुर्भाग्य । उ०—मन मिलिया तन गहिया दोहग दूरि गयाह । सज्जन पाणी खीर ज्यूं खिल्लोखिल्ल थयाह ।
—ढोला०, दू० ५५३ ।

दोहगा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्भाग] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो और जिसकी किसी दूसरे पुरुष ने रख लिया हो । रखनी । सुरेतन । उपपत्नी । उ०—दोहगा सुतिय सोहागिन मेरी । गून जाति भच्छुग कुन केरी । —विश्राम (शब्द०) ।

दोहज—संज्ञा पुं० [सं०] दूध ।

दोहता^१—संज्ञा पुं० [सं० दोहित्र] [स्त्री० दोहती] लड़की का लड़का । नाती । नवामा ।

दोहती^२—संज्ञा स्त्री० [फा० दोस्ती] दे० 'दोस्ती रोटी' ।

दोहती^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दोहितृ] लड़की की लड़की । बेटा की बेटा । नतिनी ।

दोहत्थड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + हाथ या देश० हत्थल] दोनों हाथों से मारा हुआ धप्पड़ ।

क्रि० प्र०—पीटना ।—गाना ।

दोहत्था^१—क्रि० वि० [हिं० दो + हाथ] दोनों हाथों से । दोनों हाथों के द्वारा ।

दोहत्था^२—वि० दोनों हाथों का । जो दोनों हाथों से हो ।

दोहद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गर्भवती स्त्री की इच्छा । उमीना ।

उ०—प्रथम दोहदे नयों करौ निष्कन मुनि यह जान ।—केशव (शब्द०) । २ गर्भवती स्त्री की मनली इत्यादि । ३ गर्भा-वस्था । ४ गर्भ का चिह्न । ५ गर्भ । ६ एक प्राचीन विश्वास । कविसमय । कविप्रसिद्धि ।

विशेष—इसके अनुसार सुदृग् स्त्री के स्वप्न में त्रियगु, पान की पीक थूकने से मोलसिरी, चरणाघात से प्रणोक, दृष्टिघात से तिलक, घालिगन से कुर्वक, मृदुघात से मदार, हँसी से पट्ट, फूँक मारने से चपा, मधुर गान से घाम और नाचने में कच-नार इत्यादि वृक्ष फूलते हैं । इस संबंध में मस्कन साहित्य में निम्नांकित श्लोक प्रचलित है—'स्त्रीणां स्पर्शात् त्रियगुविकसति वकुल शीघ्रगङ्गा चैक'न् । पादाघातादशोकस्त्रिष्वककुरवको वीक्षणालिगनाभ्याम् । मदारा नमवापयात् पटु मृदुहमनात् चम्पको नक्षत्रयातात् । जूनो गीताप्रमेकविकसति च पुरा नत-नात् कणिकार ।

७ कलित ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय दिशा, बार या तिथि के भेद से उनके दोष की शांति के लिये खाए या पीए जानेवाले कुछ निश्चित पदार्थ ।

विशेष—इनकी छलग घनग दिग्दोहद, बारदोहद और तिथि-दोहद कहते हैं । जैसे,—यदि पूर्व की ओर जाने में कोई दोष हो, तो उसकी शांति घी खाने से होनी है । पश्चिम जाने में कोई दोष हो तो वह मछली खाने से, दक्षिण की ओर का दोष तिल की खीर खाने से और उत्तर की ओर का दोष दूध पीने से शांत होता है । इसी प्रकार रविवार को घी, सोमवार को दूध, मंगल को गुड़, बुध को तिल, वृहस्पति को दही, शुक को जी और शनिवार को उबड़ खाने से यात्रा संबंधी बारदोष की शांति हो जाती है । प्रतिपदा को मदार का पत्ता, द्वितीया को चावल का धोया हुआ पानी, तृतीया को घी आदि खाने से यात्रा संबंधी तिथिदोष की शांति हो जाती है । इस प्रकार दोहद से किसी दिशा, बार या तिथि की यात्रा से होनेवाले समस्त अनिष्टों या दुष्ट फलों का निवारण हो जाता है ।

दोहदलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का लक्षण या चिह्न । २ गर्भ-शिशु । भ्रूण । ३ अवस्थांतर । जीवन की एक अवस्था से दूसरी में गमन या प्रवेश [को०] ।

दोहदवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी । गर्भवती स्त्री जिसने गर्भ धारण किया हो ।

दोहदान्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दोहदवती' ।

दोहदी—वि० [सं० दोहदिन्] प्रत्यय इच्छायात् [को०] ।

दोहदोहीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नैदिक गीत या साम ।

दोहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुहना । गाय भैंस इत्यादि के स्तनों से दूध निकालना । २ दोहनी ।

दोहना^७—क्रि० सं० [सं० द्रोह, प्रा० दोह + हिं० ना (प्रत्य०)] प्रथवा सं० दोप + ना (प्रत्य०)] १. दोष लगना । दूषित ठहराना । २ तुच्छ ठहराना । उ०—बेनी नवनामा की यनाय गुही बलमद्र, कुसुम भसन पाट मन मोहियत है । काली

सटकारी नीकी राजत नितब नीचे पन्नग की नारिन की देह दोहियत है।—बलमद्र (शब्द०)।

दोहनी—सखा स्त्री० [सं०] १ दूध दुहने की हाँडी। मिट्टी का वह बरतन जिसमें दूध दुहते हैं। उ०—दोहनी हाथ की हाथे रही न रह्यो मनमोहनी को मन हाथ में।—शमभु (शब्द०)। २ दूध दुहने का काम।

दोहर—सखा स्त्री० [हि० दो + घड़ो (=तह)] एक प्रकार की चादर जो कपड़ों की दो परतों को एक में सीकर बनाई जाती है।

विशेष—इसके चारों ओर गोट लगी रहती है। इसमें कमी कमी कपड़े की दोनो तहे एक ही कपड़े की होती हैं और कमी एक तह किसी मोटे कपड़े या छोट आदि की होती है और दूसरी तह मलमल आदि महीन कपड़े की।

दोहरना^१—क्रि० प्र० [हि० दोहरा] १ दो बार होना। दूसरी प्राप्ति होना। २ दोहरा हाना। दो परतों का किया जाना।

सयो० क्रि०—उठना।—जाना।

दोहरना^२—क्रि० प्र० दोहरा करना।

सयो० क्रि०—देना।

दोहरफ—सखा पुं० [फा०] धक्कार। लानत।

क्रि० प्र०—भेजना।

दोहरा^१—वि० पुं० [हि० दो + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दोहरी] १ दो परत या तह का। २ दुगना।

दोहरा^२—सखा पुं० १ एक ही पत्त में लपटे हुए पान के दो बीड़े (तबोली)। २ कतरी हुई सुपारी। सुपारी के छोटे छोटे टुकड़े। सुपारी, कल्या, लोग, तबाकू, घूने का मिश्रण। ३. दोहा नाम का छंद। उ०—साखी सबदी दोहरा कहि निहनी उपखान। भगति निरूपहि भगत कलि निदहि वेद पुरान।—तुलसी प्र०, पृ० १५१। वि० दे० 'दोहा'।

दोहराना—क्रि० प्र० [हि० दोहरा] १ किसी बात को पुन करना या किसी काम को पुन करना। किसी बात को दूसरी बार कहना या करना। किसी काम या बात को पुनरावृत्ति करना। २ किसी कपड़े या कागज आदि की दो तहें करना। दोहरा करना।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

दोहराहट—सखा पुं० [हि० दोहरा + हट (प्रत्य०)] दोहराने की क्रिया या भाव। दुहरापन। उ०—प्रभाव का अर्थ दोहराहट नहीं और यदि अन्यत्र कही हो तो भी मध्य प्रदेश में बिलकुल नहीं।—शुक्ल अभि० प्र० (सा०), पृ० ८६।

दोहरी पट—सखा स्त्री० [हि० दोहरी + पट] कुश्ती का एक पेंच।

दोहरी सखी—सखा स्त्री० [हि० दोहरी + सखी] कुश्ती का एक पेंच।

दोहल—सखा पुं० [सं०] इच्छा। दोहद।

दोहलबती—सखा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

दोहला—वि० [हि० दो + हला] दो बार की ब्याई हुई (गो आदि) (वह गो आदि) जिसने दो बार बच्चा दिया हो।

दोहली^१—सखा पुं० [सं०] १ श्लोक का वृत्त। २. आक का पेड़। मदार।

दोहली^२—सखा स्त्री० वह भूमि जो ब्राह्मण को दी गई हो।

दोहा—सखा पुं० [हि० दो + हा (प्रत्य०)] १ एक हिंदी छंद, जिसमें होते तो चार चरण हैं, पर जो लिखा दो पक्तियों में जाता है, अर्थात् पहला और दूसरा चरण एक पक्ति में और तीसरा और चौथा चरण दूसरी पक्ति में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण का तुकांत मिलना चाहिए। जैसे,—राम नाम मणि दीप धर, जीह बेहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार।

विशेष—इसी को उलट देने से सोरठा हो जाता है।

२ सकीर्ण राग का एक भेद।

दोहाई—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'दुहाई'। उ०—घरम की दोहाई देने, पाप पाप करने का कौन काम है।—ठेठ०, पृ० २६।

दोहाका—सखा पुं० [सं० दीर्घग्य] दे० 'दोहाग'।

दोहाग^१—सखा पुं० [सं० दीर्घग्य] दुर्भाग्य। वदनसीबी। बद-किस्मती। अभाग्य। उ०—परम सोहाग निवाहि न पारी। भा दोहाग सेवा जब हारी।—जायसी (शब्द०)।

दोहागणी^१—सखा स्त्री० [हि० दोहाग] दुर्भाग्यवती। अभागिन स्त्री। उ०—नामि बिना दोहागणी सुली आवड जाई।—प्राण०, पृ० २१७।

दोहागा^१—सखा पुं० [हि० दोहाग] [स्त्री० दोहागिन] अभाग। बदकिस्मत।

दोहागिण^१—सखा स्त्री० [प्रा० दुहागिणी, हि० दोहागिन] दे० 'दुहागिन'। उ०—उत्तर भाज स उत्तरउ, सीय पडेसी घट्ट। सोहागिण घर भागणइ, दोहागिण रइ घट्ट।—ढोला०, पृ० २६०।

दोहाना^१—सखा पुं० [दे०] नोजवान घेल। वछवा।

दोहापनय—सखा पुं० [सं०] दूध।

दोहाष—सखा पुं० [हि० दूहना] काश्तकारों की गोमों का वह दूध जो जमींदार के घर जाता है।

दोहित^१—वि० [सं०] दूहा हुआ। जिसे दुह लिया गया हो (स्त्री)।

दोहित^२—सखा पुं० [सं० दोहित] बेटो का बेटा। नाती।

दोहिता—सखा स्त्री० [सं० दुहिता] पुत्री। लटकी। तनया। उ०—सुता दोहिता कठ लगाइ। लिए वस्त्र भूखन पहिराइ।—अर्घ०, पृ० ५।

दोहिया—सखा पुं० [दे० ?] एक प्रकार का पोषा।

दोही^१—सखा पुं० [हि० दो] एक छंद जो दोहे की भाँति चार चरणों का होने पर भी दो ही पक्तियों में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में पंद्रह पंद्रह मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक लघु होना चाहिए। जैसे—विरद सुमिरि सुधि करव नित ही, हरि तुव चरन निहार। यह भव जल निधि तें मुहि वुरत, कब प्रभु करिहु पार।

दोही^२—सखा पुं० [सं० दोहिन] १. दूध दुहनेवाला। २. ब्यासा।

दोही^३—सच्चा स्त्री० [हि० दुहाई] दे० 'दुहाई' । उ०—दोहि की भोर कहूँ नहि ठौर फिरी दग रावरे रूप की दोही ।—घनानंद, पृ० ६ ।

दोहुरा—सच्चा स्त्री० [देश०] वह भूमि जिसमें बालू अधिक हो । बलुई जमीन ।

दोछा—वि० [सं०] दूहने योग्य । जो दूहा जा सके ।

दोछा^२—सच्चा पुं० १ दूध । २ गाय, भैंस आदि जानवर जो दूधे जाते हैं ।

दौं^३—प्रत्य० [सं० घयवा] वा । घयवा ।

विशेष—दे० 'घों' ।

दौं^३—सच्चा स्त्री० [सं० दव] दे० 'दो' ।

दौंकना^३—क्रि० प्र० [हि० दमकना] दे० 'दमकना' ।

दौंगड़ा, दौंगरा—सच्चा पुं० [हि० दो (=भाग या गरमी)] वह हलकी वर्षा जो गरमी के दिनों में तभी हुई धरती पर होती है । बौछार ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

दौंच—सच्चा स्त्री० [हि०] ? दे० 'दोच' । २ दाब पड़ने से घात में पड़ी हुई खराब या बिगड़ाना ।

दौंचना^३—क्रि० प्र० [हि० दबोचना] १ दबाव डालकर लेना । किसी न किसी प्रकार लेना । २. लेने के लिये झुटना । उ०—तदुन माणि दौंचि के लाई सो दीनों उपहार । फाटे वसन बाँधि के द्विजवर प्रति दुवल तन हार ।—सूर (शब्द०) ।

दौंजा—सच्चा पुं० [देश०] मवान । पाड़ ।

दौरी—सच्चा स्त्री० [हि० दौना या दौवना] १. एक साथ रस्सी में बंधे हुए दोनों का झुंड जो कटी फसल के बूटलों पर दाना झाड़ने के लिये फिराया जाता है ।

क्रि० प्र०—चपना ।—चपाना ।—नाधना ।—हँकना ।

२ वह रस्सी जिसे उन दोनों के गले में डालते हैं जो दाने के लिये फिराए जाते हैं । ३ झुंड ।

दौ^३—सच्चा स्त्री० [सं० दव] १ भाग । जगल की भाग । उ०—(क) मन पाँचों के बस परा मन के बस नहीं पाँच । जित देखो तित दो खगो, जित भागो तित पाँच ।—कबीर (शब्द०) । (ख) तो लोँ मातु पापु नीके हरिबो । जो लोँ हों ल्यावों रघुबीरहि दिन दश भोर दुसह दुख सहिबो । लक दाह उर आनि मानिबो साँचु रामसेवक को कहिबो । तुलसी प्रभु को सूर सुखस गेहैं मिटि जैहैं सबको सोच दो दहिबो ।—तुलसी (शब्द०) । २ संताप । ताप । जलन । उ०—सखि ते शीतल मोको लागे साईं री तरनि । याके उए बरति अधिक भग भग दो, वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि । सब बिपरीत भये माघो बिनु, हित जो करत अनहित सत को करनि । तुलसीदास स्यामसुंदर बिरह की दुसह दसा सो मोपे परति नहीं बरनि ।—तुलसी (शब्द०) ।

दौकल—वि० [सं०] कपड़े का । दुकूल संबंधी ।

दौकल^२+सच्चा पुं० १. उलूखट सिल्क । उत्तम चीनांशुक । २. रथ या गाड़ी जो रेशमी वस्त्रों से आच्छादित हो [को०] ।

दौगूल—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'दौकल' [को०] ।

दौड़—सच्चा स्त्री० [हि० दोड़ना] १. दोड़ने की क्रिया या भाव । साधारण से अधिक वेग के साथ गति । द्रुतगमन । धावा । तेजी से चलने या जाने की क्रिया ।

यौ०—दोड़ मारना=(१) वेग के साथ जाना । (२) दूर तक पहुँचना । लंबी यात्रा करना । जैसे,—कलकत्ते से यहाँ या पहुँचे, बड़ी लंबी दोड़ मारी । दोड़ लगाना=दे० 'दोड़ मारना' । जैसे,—बड़ी लंबी दोड़ लगाई ।

२. धावा । वेगपूर्वक आक्रमण । चढ़ाई । ३. उद्योग में इधर उधर फिरने की क्रिया । प्रयत्न ।

मुहा०—दोड़ मारना=उद्योग में इधर उधर फिरना । कोहिल में हैरान होना ।

४. द्रुतगति । वेग ।

मुहा०—मन की दोड़ (दोर)=चित्त की सूझ । कल्पना । उ०—भक्ति रूप भगवत की भेष जो मन की दोर ।—कबीर (शब्द०) ।

५. गति की सीमा । पहुँच । जैसे,—मुरली की दोड़ मसजिद तक । ६. उद्योग की सीमा । प्रयत्नों की पहुँच । अधिक से अधिक उपाय या यत्न जो हो सके । ७. बुद्धि की गति । प्रबल की पहुँच । जैसे,—जहाँ तक जिसकी दोड़ होगी वहीं तक न अनुमान करेगा । ८. विस्तार । लंबाई । प्रायत । जैसे, दुसाले की बेल या हाशिये की दोड़ । ९. सिपाहियों का दल जो अपराधियों को एकबारगी पकड़ने के लिये जाय । जैसे, पुलिस की दोड़ ।

क्रि० प्र०—घाना ।—जाना ।—पहुँचना ।

१०. जहाज पर की वह चरखी जिसमें लकड़ी डालकर घुमाने से वह जजोर खिसकती है जिससे पतवार बँधा रहता है । ११. दोड़ने की प्रतियोगिता । जैसे,—इस बार की दोड़ में वह प्रथम भाया है ।

दौड़बपाड़—सच्चा स्त्री० [हि० दोड़+पपाड़] दे० 'दौड़घूप' ।

दौड़घूप—सच्चा स्त्री० [हि० दोड़+घूप] किसी कार्य के लिये इधर उधर फिरने की क्रिया या भाव । किसी काम के लिये बार बार चारों ओर घाना जाना । परिश्रम । प्रयत्न । उद्योग । जैसे,—(क) उसने बहुत दोड़घूप की है । (ख) सभी रोग का धारभ है दोड़घूप करोगे तो अच्छा हो जायगा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दौड़ना—क्रि० प्र० [सं० घोरण, हि० घोरना] १. साधारण से अधिक वेग के साथ गमन करना । द्रुतगति से चलना । मामूली चलने से ज्यादा तेज चलना । जैसे,—(क) दोड़कर न खलो गिर पड़ोगे । (ख) बहु लबका उधर दोड़ा जा रहा है ।

संज्ञो क्रि०—घाना ।—जाना ।

मुहा०—दौड़ पड़ना=एकबारगी वेग के साथ गमन करना।
जैसे,—जहाँ वह दिखाई दिया कि आप उसकी ओर दौड़ पड़े। चढ़ दौड़ना=चढ़ाई करना। घावा करना। आक्रमण करना। दौड़ दौड़कर आना=जल्दी जल्दी आना। बार बार आना। जैसे,—मेरे पास क्या दौड़ दौड़कर आते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता। दौड़ दौड़कर जाना=जल्दी जल्दी जाना। बार बार जाना। जैसे,—उसके घर ब्या रखा है जो दौड़ दौड़कर आते हो ?

२ सहसा प्रवृत्त होना। झुक पड़ना। ठलना। जैसे,—तुम बुरा भला नहीं देखते हो, जो बात हुई उसी के पीछे दौड़ पड़ते हो।
क्रि० प्र०—पड़ना।

३. किसी प्रयत्न में इधर उधर फिरना। किसी काम के लिये चारों ओर बार बार आना जाना। उद्योग करना। कोशिश में हेरान होना। उपाय या चेष्टा करना। जैसे,—(क) नौकरी के लिये बहुत ढोडा, पर न मिली। (ख) उसकी बीमारी में वह बहुत दौड़ा।

यौ०—दौड़ना धूपना।

४. फैलना। व्याप्त होना। छा जाना। जैसे,—स्याही दौड़ना, लाली दौड़ना, चेहरे पर खून दौड़ना।

क्रि० प्र०—जाना।

दौड़ाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दौड़ + घाई (प्रत्य०)] १ दौड़ने का भाव या क्रिया। २. परेशानी। दौड़ धूप।

दौड़ादौड़ी—क्रि० वि० [हि० दौड़ + दौड़] [सञ्ज्ञा दौड़ादौड़ी] अविश्रांत। बेतहाशा। बिना कहीं रुके हुए। जैसे,—भभी वहाँ से दौड़ादौड़ चला आ रहा है।

दौड़ादौड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० १० 'दौड़ादौड़ी'।

दौड़ादौड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दौड़ना] १ दौड़धूप। २ बहुत से लोगों की एक साथ इधर उधर दौड़ने की क्रिया। ३ ग्वारवी। आतुरता। हड़बड़ी। जैसे,—दौड़ादौड़ी में कोई काम ठीक नहीं होता।

दौड़ान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दौड़ना] १ दौड़ने की क्रिया या भाव। द्रुतगमन। २ वेग। झोक। ३ सिलसिला। ४. फेरा। बारी। पारी।

दौड़ाना—क्रि० स० [हि० दौड़ना का सकर्मक रूप] १ दौड़ने की क्रिया कराना। साधारण से अधिक वेग से चलाना। द्रुत-गमन कराना। जैसे, घोड़ा दौड़ाना, मिपाही दौड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

२ बार बार आने जाने के लिये कहना या विवश करना। हेरान करना। जैसे,—चार रुपए के लिये क्यों बार बार दौड़ाते हो ? ३. किसी वस्तु को यहाँ से थहाँ तक ले जाना। एक जगह से खींचकर दूसरी जगह करना। जैसे,—इस चारपाई को जरा उधर दौड़ा दो।

संयो० क्रि०—देना।

१-२०

४. फैलाना। पोतना। जैसे, स्याही दौड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

५. फेरना। जैसे, दीवार पर कूँची दौड़ाना।

दौड़ाहा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दौड़ + हा (प्रत्य०)] दौरा करनेवाला हाकिम। उ०—दौड़ाहा (दौरा करनेवाला हाकिम), किसानों के भूमि संबंधी झगड़ों को निपटाने के लिये आपसी पलटन लेकर तराई में दौरा करने के लिये राणा सरकार की ओर से दूसरे तीसरे वर्ष भेजा जाता था।—नेपाल०, पृ० १२०।

दौड़ा—क्रि० [सं० द्रि + घर्ष] डेढ़। उ०—दौड़ पहर हिंदू सुरक, कहर लड़े रिणु ठाण।—रा० २०, पृ० २७२।

दौत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम।

दौन(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १० 'दमन'।

दौना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दुर्मनस्, हि० दुधन] शत्रु। वैरी। उ०—महाराजा पुरा कोन अहिनिधि सुमै दुरजन दौन।—प्राण०, पृ० २७०।

दौना^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दमनक] एक पीघा जिसकी पत्तियाँ गुल-दाकरी की तरह कटावदार होती हैं और जिनमें से तेज पर कड़ई सुगंध आती है।

विशेष—इस पीघे की डालियों के तरे पर एक पतली सीक में मंजरी लगती है जिसमें महीन महीन फूल होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर उस मंजरी के बीचकोशी में छोटे छोटे बाने पड़ते हैं जो पकने पर झड़ जाते हैं। पीघे बीजों से उत्पन्न होते और बरमात में उगते हैं पर पुराने पेठ भी सालों रह जाते हैं। वैद्यक में दौना शीतल, कड़भा, कसेला, हृदय को हितकारी तथा खुजली, विस्फोटक आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

दौना^४—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १० 'दौना'। उ०—भरी माई मेरो मन हरि लीगहों नंद को डोटोना। चितवन में वाके कछु टोना। .. बोलत नहीं रहत वह मोना। दखि लै छीनि खात रह्यो दौना।—सूर (शब्द०)।

दौना^५—क्रि० स० [सं० दमन हि० दौन] दमन करना। उ०—केकई करी घों चुराई कीन ? राम लखन सिय अनहि पठाए पति पठए सुरभीन। कहा भयो घों भयो भरत को सगे लखन तन दौन।—तुलसी (शब्द०)।

दौनागिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्रोणगिरि] द्रोणगिरि नामक पर्वत जो क्षीरोद समुद्रस्थ सिखा गया है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान भी यहीं मोषधि लेने के लिये भेजे गए थे। उ०—दौनागिरि हनुमान सिखाए। संजीवनी को भेद न पायो सब सब शैल उखायो।—सूर (शब्द०)।

दौनाचक्र(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्रोणाचल] १० 'दौनागिरि'।

दौरे—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० दौर] १. बकुर। भ्रमण। फेरा। २. बिनो का फेर। डालबकुर। ३. धम्युदय काल। बढ़ती का समय।

यो०—दौरदौरा = (१) प्रधानता । प्रबलता । चलती । उ०—
कामवेल के समय में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित होने पर
प्युरिटन लोगों का जैसा दौरदौरा ग्रेट ब्रिटेन में था, वैसा ही,
इस समय अमेरिका के न्यू इंग्लैंड नामक सूबे में है ।—
स्वाधीनता (शब्द०) । (२) घातक । उ०—दुर्भाग्य से भार-
तीय इतिहास की विवेचना में अभी तक इसी लाल बुझकड़
व्याख्याशैली का जोर रहा है और विद्यापियों की पाठ्यपुस्तकों
में तो उसका एकमात्र दौर्दौरा है ।—भारत० नि०, पृ० ७ ।

४ प्रताप प्रभाव । हुकूमत । ५ दे० 'दौरा' । उ०—वीर जीत
पूरब दिसि लीन्हो । वीर दौर पश्चिम को कीन्हो ।—छाल
(शब्द०) । ६ भारी । पारी ।

मुहा०—दौर चलना = शराब के प्याले का भारी भारी से सबके
सामने लाया जाना ।

७. वार । दफा । जैसे,—दूसरे दौर में यह इतना काम भी पूरा
हो जायगा ।

दौर^१—संज्ञा स्त्री० १. दे० 'दौड़' । २ धावा । आक्रमण । उ०—
एक दौर करो रोर मेरो भर कीर कपि एक बार सिधुघार
सबको बहायही ।—हनुमान (शब्द०) । ३. वेग । द्रुतगति ।
उ०—जेती सहुर समुद्र की तेती मन की दौर ।—कवीर
(शब्द०) । ४. प्रयत्नों की पहुँच या सीमा । उ०—सीतापति
रघुनाथ जो तुम लगि मेरी दौर ।—(शब्द०) ।

दौरना^१—क्रि० प्र० [हि० दौड़ना] १ दे० 'दौड़ना' । २
फैलना । छा जाना । उ०—दूरि लो दौरत दशन की दुति
ख्यों अघरा उघरै छति मोठे ।—तोष (शब्द०) ।

दौरनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० देवर] दे० 'देवरानी' । उ०—भावी,
भावी, दौरनी मेरी भावी ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ६१३ ।

दौरा^१—संज्ञा पुं० [प्र० दौर] १ चारों ओर घूमने की क्रिया ।
चक्कर । भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. फेरा । भ्रमण । गश्त । इधर उधर जाने या घूमने की क्रिया ।
३. प्रफसर का घबरे हलाके में जाँच परताल या देखभाल के
लिये घूमना । निरीक्षण के लिये भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दौरे पर रहना या होना = जाँच परताल या देखभाल
के लिये सदर से बाहर रहना या होना । (भ्रसामी या
मुकदमा) दौरा सुपुर्द करना = (भ्रसामी या मुकदमे को)
विचार या फैसले के लिये सेशन जज के पास भेजना । (फौज-
दारी के मारी मुकदमों को मजिस्ट्रेट सेशन जज के पास भेज
देते हैं ।) दौरा सुपुर्द होना = सेशन जज के पास विचार के
लिये भेजा जाना । उ०—हाकिम ने उन्हें दौरा सुपुर्द कर
दिया ।—सेवा०, पृ० १४ ।

४ ऐसा धामा जाना जो समय समय पर होता रहता है ।
सामयिक भागमन । फेरा । जैसे,—डाकुओं के दौरे अब इधर
फिर होने लगे हैं । ५ बार बार होनेवाली बात का किसी
बार होना । ऐसी बात का प्रकट होना जो समय समय पर

होती रहती है । ६. किसी ऐसे रोग का लक्षण प्रकट होना
जो समय समय पर होता हो । आवर्तन । जैसे, मिरगी का
दौरा । पागलपन का दौरा ।

दौरा^२—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० मत्स्या० दौरी] बाँस की फट्टियों,
कास, मूँज, बेंत आदि का बना हुआ टोकरा ।

दौरात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुरात्मा का भाव । दुर्जनता । २.
दुरात्मा का काम । दुष्टता । उ०—कुछ भी मुझकी ज्ञान
न था यह सौष्ठव का दौरात्म्य विशेष । मैं न जानता था
जय में है, उदासीनता ही नि शेष ।—कुंकुम, पृ० ३३ ।

दौरादौरा—क्रि० वि० [हि० दौड़ना] १ लगातार । अनिश्चित ।
२. घुन से । तेजी से ।

दौरादौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दौड़ना] दे० 'दौड़ादौड़ी' । उ०—
आनंद प्रकाशी सब पुरवासी करत ते दौरादौरी । भारती
उतारै सरबस चारै अपनी अपनी पौरी ।—केशव (शब्द०) ।

दौरान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. दौरा । चक्र । २. कालचक्र । दिनों
का फेर । ३. फेरा । भारी । पारी । ४. सिलसिला । श्रृंखला ।

दौराना^१—क्रि० प्र० [हि० दौड़ना] दे० 'दौड़ना' । उ०—
(क) भयो रजायसु जन दोराये ।—जायसी (शब्द०) ।
(ख) दौरावत चहुँ ओर हय देखत वात सजात ।—
गुमान (शब्द०) ।

दौरित—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति । हानि ।

दौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दौरा] बाँस या मूँज की छोटी टोकरों ।
चंगेरी । डलिया ।

दौर्गन्ध्य—संज्ञा पुं० [सं० दौर्गन्ध्य] दुर्गन्धि । बदबू [को०] ।

दौर्ग—वि० [सं०] १ दुर्गं सबधी । दुर्गं का । २ दुर्गा सबधी ।
दुर्गा का ।

दौर्गत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्गति । बुरी हालत । २. गरीबी । ३
व्यथा । पीड़ा [को०] ।

दौर्ग्य—संज्ञा पुं० [सं०] कठिनाई [को०] ।

दौर्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ [को०] ।

दौर्जन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता । दुष्टता ।

दौर्वल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्बलता । कमजोरी ।

दौर्भाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्भाग्य ।

दौर्भाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] भाई भाई का आपसी झगड़ा । भाइयों का
कलह [को०] ।

दौर्मनस्य—संज्ञा पुं० [सं०] 'दुर्मनस' होने का भाव । दुर्जनता । चित्त
की खोटाई ।

दौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूरी । उ०—ज्योतिष वसिष्ठादि ऋषियों की
कृत है । उसमें वेद, धनधन्याय तथा रक्षा बीजमण्डल तथा
सूर्यादि ग्रहों का दौर्य, सामीप्य और आपस का संयोग
वियोग आदिक व्यवहार लिखे हैं ।—अबलराम (शब्द०) ।

दौर्योधनि—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति ।

दौर्युत्य—संज्ञा पुं० [म०] दुराचार । दुर्बल का भाव [को०] ।

दोहाई—सङ्घा पु० [सं०] १. दुहँद होने का भाव । दुष्ट स्वभाव । २. दुर्भाव । वैर ।

दोहँद—सङ्घा पु० [सं०] १. हृदय की खोटाई । दुष्टता । २. दोहद ।

दोहदय—सङ्घा पु० [सं०] १. शत्रुता । वैर । २. मन की मलिनता [को०]

दोहँदिनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] गर्मिणी स्त्री [को०] ।

दोलत—सङ्घा पु० [म०] धन । संपत्ति ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खर्चना ।—लगाना ।

दोलतखाना—सङ्घा पु० [क्रा० दोलतखाना] विवासस्थान । घर ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दूसरे के लिये आदरायक होता है । अपने लिये गरीबखाना लाया जाता है । जैसे,—आपका दोलतखाना कहाँ है ? मेरा गरीबखाना देहली है ।

दोलतमंद—वि० [क्रा०] धनी । संपन्न ।

दोलतमंदी—सङ्घा स्त्री० [फा०] संपन्नता । सासदारी । घनाढ्यता ।

दोलत—सङ्घा स्त्री० [क्रा० दोलत] दे० 'दोलत' । उ०—साहिब के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लिए हैं । भूषण ते बिनु दोलत हूँ के फकीर हूँ देसविदेस गए हैं । लोग कहैं दमि बखिखन जेय सिधोदिया रावरे हाल ठए हैं ? देत रिसाय के उत्तर यों हमही दुनिया ते उदास भए हैं ।—भूषण प्र०, पृ० ७० ।

दौली—अव्य० [दे०] चारों ओर । उ०—दौली चौकी साहरी, विश दिल एकल समाग । सोहै फिर सामुद्र में, ज्वालवती बड़वाग ।—रा० रू०, पृ० ३१ ।

दौलेय—सङ्घा पु० [सं०] कच्छप । कछुवा ।

दौल्लि—सङ्घा पु० [सं०] इद्र ।

दौवारिक—सङ्घा पु० [सं०] १. द्वारपाल । २. एक प्रकार का वास्तु देव ।

दौवारिकी—सङ्घा स्त्री० [सं०] प्रतिहारि । द्वारपालिका [को०] ।

दौवालिक—सङ्घा पु० [सं०] १. एक देश का नाम । उस देश का निवासी ।—(महाभारत) ।

दौश्चर्म्य—सङ्घा पु० [सं०] दुश्चर्मा होने का भाव । दे० 'दुश्चर्मा' ।

दौश्चर्य—सङ्घा पु० [सं०] १. दुष्टता । २. बुरा आचरण । बुरा कर्म [को०] ।

दौषबुद्धि—सङ्घा स्त्री० [सं० दोषबुद्धि] दे० 'दोषबुद्धि' । उ०—सो काहे ते ? जो याते वैष्णव पर दोषबुद्धि कीनी, (और) तासों द्वेष कियो ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ३४२ ।

दौष्कुल—सङ्घा पु० [सं०] निम्न वंश या हीन वंश में उत्पन्न [को०] ।

दौष्ट्य—सङ्घा पु० [सं०] दुष्टता । नीचता [को०] ।

दौष्मन्त—सङ्घा पु० [सं० दौष्मन्त] १. दुष्मत (दुष्पत) का पुत्र । २. दुष्मत के कुल में उत्पन्न व्यक्ति ।

दौष्मन्ति—सङ्घा पु० [सं० दौष्मन्ति] दे० 'दौष्मन्त' ।

दौष्यन्ति—सङ्घा पु० [सं० दौष्यन्ति] १. दुष्यत का पुत्र भरत, जिसका बालपन का नाम सवंदमन था । २. दुष्यत के वंश में उत्पन्न व्यक्ति ।

दोहन—सङ्घा पु० [सं० दोहन] दे० 'दोहन' । उ०—कोई गमनी तजि सौहन, दोहन, भोजन सेवा । भजन भजन, चंदन द्विज पतिदेव निषेवा ।—नद० प्र०, पृ० ४० ।

दोहित्र—सङ्घा पु० [सं०] [स्त्री० दोहित्री] १. लड़की का लड़का । नाती ।

विशेष—धर्मशास्त्र में पौत्र और दोहित्र में कोई विशेष भेद नहीं माना गया है । पौत्र के समान दोहित्र पिंडदान आदि द्वारा उद्धार करता है । जबतक दोहित्र न हो जाय, पिता कन्या के घर भोजन आदि नहीं कर सकता । यदि करे तो नरकगामी होता है ।

२. खट्वा । तलवार । ३. तिल । ४. गाय का घी ।

दोहित्रक—वि० [सं०] दोहित्र सबधी ।

दोहित्रायण—सङ्घा पु० [सं०] दोहित्र का पुत्र [को०] ।

दोहित्री—सङ्घा स्त्री० [सं०] कन्या की कन्या । नतिनी [को०] ।

दोही—सङ्घा स्त्री० [हिं० दुहाई] दे० 'दुहाई' । उ०—दस दिसा साह दोही फिरे । धन बीरा रस भुगिहे ।—पु० रा०, २४।३२४ ।

दोहद—सङ्घा पु० [सं०] वह इच्छा जो स्त्रियों को गर्मिणी होने की वंशा में होती है । दोहद ।

दोहदिनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री ।

द्यविद्यवी—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक दिन ।

द्याकार—सङ्घा पु० [सं०] शूद्र । चतुर्थ वर्ण का व्यक्ति । उ०—ये सब राजकुमार इस समय द्याकारो (शूद्रों) और सुनारो के घरों में छिपे हैं ।—प्रा० भा० प०, पृ० १६२ ।

द्याना—सङ्घा पु० [हिं० दिलाना] १. देना का प्रेरणायक रूप । दिलवाना । दिलाना । उ०—फिर सुधि दै सुधि द्याइयो इहि निरदई निरास । नई नई बहुरयो दई दई उसास उसास ।—बिहारी (शब्द०) । २. देना । प्रदान करना । उ०—भैंस तजइ नहि कोइसी, सरवर सालूराह । राज हिवइ मा पातरउ, आ धणु छउ भवराह ।—ढोला०, दू० ८ ।

द्यावना—सङ्घा पु० [हिं० द्याना] दे० 'दिलाना' ।

द्यु—सङ्घा पु० [सं०] १. दिन । २. आकाश । ३. स्वर्ग । ४. अग्नि । ५. सूर्यलोक ।

द्युक्—सङ्घा पु० [सं०] सलूक । उत्तल [को०] ।

द्युकारि—सङ्घा पु० [सं०] काक । कोयला । वायस [को०] ।

द्युग—सङ्घा पु० [सं०] १. आकाश में गमन करनेवाला प्राणी । २. पक्षी । खग ।

द्युगण—सङ्घा पु० [सं०] ग्रहों की मध्यगति के साधक ग्रह दिन ।

द्युचर—सङ्घा पु० [सं०] १. ग्रह । २. पक्षी ।

द्युज्या—सङ्घा स्त्री० [सं०] ग्रहोरात्र वृत्त की व्यासरूप ज्या ।

द्युत्—सङ्घा पु० [सं०] किरण ।

द्युत—वि० [सं०] प्रकाशवान ।

द्युति—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति । कांति । चमक । २. शोभा । छवि । ३. सावय । ४. रश्मि । किरण ।

श्रुति^२—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम जो चतुर्थ मनु के समय में थे ।
(हरिवंश) ।

श्रुतिकर^१—वि० [सं०] प्रकाश उत्पन्न करनेवाला । चमकनेवाला ।

श्रुतिकर—संज्ञा पुं० घुव ।

श्रुतिस—वि० [सं०] दे० 'द्योतित' [को०] ।

श्रुतिधर^२—वि० [सं०] प्रकाश या कांति को धारण करनेवाला ।

श्रुतिधर^१—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

श्रुतिमंत—वि० [सं० श्रुतिमत्] दे० 'श्रुतिमान्' ।

श्रुतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रुति + मा (प्रत्य०)] प्रभा । प्रकाश ।
तेज । उ०—अग जग मग बासी लखि कहई । श्रुतिमा भवन
कथन में ग्रहई ।—विश्राम (शब्द०) ।

श्रुतिमान्^१—वि० [सं० श्रुतिमत्] [वि० स्त्री० श्रुतिमती] प्रकाश-
वाला । जिसमें चमक या प्रभा हो ।

श्रुतिमान्^२—संज्ञा पुं० १ स्वायम्भुव मनु के एक पुत्र का नाम । २
शाल्व देश के एक राजा का नाम (महाभारत) । ३
प्रियव्रत राजा के पुत्र जिन्हें कौच द्वीप का राज्य मिला था
(विष्णुपुराण) ।

श्रुधुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदाकिनी । भाकाशगंगा [को०] ।

श्रुन—संज्ञा पुं० [सं०] लग्न से सातवाँ स्थान ।

श्रुनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रुधुनि' [को०] ।

श्रुनिवासी—संज्ञा पुं० [सं० श्रुनिवासिन्] देवता [को०] ।

श्रुनिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] महानिश । दिन रात ।

श्रुपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ इन्द्र ।

श्रुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशमार्ग ।

श्रुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ मदार । ३. परिक्षोभित
तर्वा । शोषा हुआ तर्वा ।

श्रुमत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्व देश के एक राजा जो सत्यवान्
के पिता थे । ये दुर्भाग्यवश बंधे हो गए । जब सब लोगों ने
पह्यत्र करके इन्हें गद्दी पर से उतार दिया तब ये अपनी पत्नी
और शिशु को लेकर वन में चले गए । वि० दे० 'सत्यवान्',
'सावित्री' ।

श्रुमद्गान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

श्रुमयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्वक्कर्मा की कन्या । सूर्य की पत्नी ।

श्रुमान्—वि० [सं० श्रुमत्] [वि० स्त्री० श्रुमती] प्रकाशवाला ।
कांतियुक्त । चमकीला ।

श्रुम्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. घन । २. सूर्य । ३. अन्न । ४. वध ।
५. कांति [को०] ।

श्रुयोषित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षरा । स्ववैश्या [को०] ।

श्रुलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्गलोक ।

विशेष—वैदिक ग्रंथों में श्रुलोककी तीन कक्षाएँ कही गई हैं,
पहली 'उदन्वती', दूसरी 'पीलुमती' और तीसरी 'प्रद्यो' है ।
इन तीन कक्षाओं को ही क्रमशः नाक, स्वर्ग और विष्वक्
कहते हैं । उदन्वती कक्षा में चन्द्रमा है, पीलुमती कक्षा में सूर्य

हैं और तीसरी प्रद्यो कक्षा में अनेक लोक लोकोत्तर हैं ।
इन लोकों में जाना ही अश्वमेध आदि बड़े बड़े यज्ञों का फल
कहा गया है ।

श्रुवन्—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ स्वर्ग ।

श्रुषद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता । २ नक्षत्र । ३. ग्रह ।

श्रुसद्वा—संज्ञा पुं० [सं० श्रुसद्वान्] स्वर्ग ।

श्रुसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मदाकिनी ।

श्रुसिन्धु—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रुसिन्धु] स्वर्ग की नदी मदाकिनी ।

श्रुसैधव—संज्ञा पुं० [सं० श्रुसैधव] उर्व्वे श्रवा नामक घोड़ा । इन्द्र
का अश्व [को०] ।

श्रु—वि० [सं०] जुमा खेलनेवाला । जुमारी ।

श्रुत्—संज्ञा पुं० [सं०] जुमा । वह खेल जिसमें दाँव बढ़ा जाय और
हारनेवाला जीतनेवाले को कुछ दे ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि राजा को चाहिए कि जुमा और
पशु पक्षियों का दंगल अपने राज्य में न होने दे । जो जुमा
खेले या खेलावे उसे राजा वध तक का दंड दे सकता है ।
याज्ञवल्क्य ने कूटधूत का इसी प्रकार निषेध किया है ।

श्रुत्कर—संज्ञा पुं० [सं०] जुमा खेलनेवाला जुमारी ।

श्रुत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'श्रुत्कर' ।

श्रुत्कारक, श्रुत्कृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'श्रुत्कर' [को०] ।

श्रुत्क्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुए का खेल । जुमा खेलना [को०] ।

श्रुत्दास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्रुत्दासी] वह दास जो जुए की
जीत में मिला हो ।

श्रुत्पूर्णमा—संज्ञा पुं० [सं०] कोजाग्रती । आश्विन की पूर्णिमा ।
इस दिन प्राचीन काल में जुमा खेला जाता था और लोग रात
को जागते थे ।

श्रुत्प्रतिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रुत्प्रतिपत्] कार्तिक शुक्ल प्रति-
पदा । इस दिन लोग जुमा खेलते हैं ।

श्रुत्फलक—संज्ञा पुं० [सं०] वह चौकी, तस्ता आदि जिसके ऊपर
पासा बिछाया या खेला जाय । वह चौकी जिसपर जुए की
कौड़ी फेंकी जाय ।

श्रुत्बोज—संज्ञा पुं० [सं०] कौड़ी ।

श्रुत्भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ जुमा खेला जाय ।
जुमास्थान ।

श्रुत्मंडल—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुमा
खेला जाय ।

श्रुत्वृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी जीविका श्रुत हो । जुमा खेलनेवाला ।
२ जुमा खेलनेवाला [को०] ।

श्रुत्समाज—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुमा
खेला जाय ।

श्रुताध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकीय अधिकारी जो जुए का
निरीक्षण करता था और जुमारियों से राजकीय भाग ग्रहण
करता था ।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि स्थान स्थाव पर बने हुए जुए

के सरकारी मन्त्रे इसी के निरीक्षण में रहते थे। जो कोई किसी दूसरे स्वाम पर लूभा खेलता था उसे १२ पण जुर्माना देना होता था।

द्युताभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] जुष्ठा सबधी मुकदमा।—(को०)।

द्युतावास—संज्ञा पुं० [सं०] जुष्ठास्थान।—(को०)।

द्यून—संज्ञा पुं० [सं०] लग्न से सातवीं राशि।

द्यौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग। २. आकाश। ३. शतपथ ब्राह्मण और देवीभागवत के अनुसार आठ वसुधों में से एक।

विशेष—महाभारत, अग्निपुराण और भागवत में आठ वसुधों के के जो नाम दिए गए हैं उनमें यह नाम नहीं है। देवीभागवत में इस वसु के सबध में यह कथा लिखी है। एक बार सब वसु अपनी स्त्रियों को लेकर क्रीड़ा कर रहे थे। वे घूमते, फिरते वसिष्ठ के आश्रम पर आ निकले। द्यौ की स्त्री ने वसिष्ठ की गाय नदिनी को देखा और अपने स्वामी से उसे लेने के लिये कहा। द्यौ गाय को हार से गया। इसपर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। इस शाप के कारण द्यौ का पृथ्वीतल पर भीष्म के रूप में जन्म हुआ।

द्यौकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह कारीगर जो प्रासादादि बनाने का काम करता हो। यवई। राजगीर।

द्योत—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। २. आलप। धूप।

द्योतक—वि० [सं०] १. प्रकाशक। प्रकाश करनेवाला। २. दर्शक। ३. बतलानेवाला।

द्योतन^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्योतित] १. दर्शन। २. प्रकाशन। प्रकाशित करने या जलाने का काम। ३. दिग्दर्शन। दिखाने का काम। ४. दीपक। ५. प्रकाश। ६. वह जो प्रकाश करे। प्रकाशक (को०)।

द्योतन^२—वि० १. प्रकाशमान। चमकीला। २. बतलाने या दिखानेवाला। सूचक (को०)।

द्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० द्योतिस्] १. ज्योति। आभा। २. तारा (को०)।

द्योतिस्—वि० [सं०] प्रकाशित।

द्योतिरिङ्गण—संज्ञा पुं० [सं० द्योतिरिङ्गण] खद्योत। जुगलू।

द्योभूमि—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

द्योषद्—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

द्योस^१—पुं० [सं० दिवस्] दे० 'द्योस'।

द्योहरा^१—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह] दे० 'देवघर'।

द्यौहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह या देवस्थान] देवस्थान। वह स्थान जहाँ देवता स्थापित हो। उ०—डागख उपरि दौड़णा, सुख नीदड़ी न सोइ। पुनं पाये द्यौहड़े, मोछी ठौर न खोइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २७।

द्यौ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिवस। दिन। २. आकाश। व्योम। उ०—द्यौ प्रथात् आकाश एक देवता है।—३. अग्नि। ४. स्वर्ग। हिंदु० सभ्यता, पृ० ४१।

द्यौरांनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरांनी] देवर की स्त्री। देवराणी।

उ०—सुभ सीजों घोरानी हमारी मेरे हाथ भरसिया भारी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१४।

द्यौस^१—संज्ञा पुं० [सं० दिवस्] दिन। उ०—राति गंवाई सोइ के, द्यौस गंवाया साय। हीरा जनम अमोल है कोड़ी बढले जाय।—कबीर (शब्द०)।

द्यौ—द्यौस निसि=दिवस निसि। दिन रात। उ०—दुख देखि के देखिही तब मुख मानेंदकद। तपन ताप तपि द्यौस निसि, जैसे शीतल चंद—केशव (शब्द०)।

द्यौसक^१—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, हिं० द्यौस + क (प्रत्यय)] दिन। दिवस। दो एक दिन। उ०—(ग) मोरें गति मोरें बचन भयो बदन रंग धीर। द्यौसक तें पिय चित चढ़ी, कहै चढ़ोहैं रघोर।—बिहारी (शब्द०)।

द्रंक्षण—संज्ञा पुं० [सं० द्रक्षण] तोलने का एक मान जो दो कष प्रथात् एक तोले के बराबर होता था। उ०—कोल को क्षुद्रम वा बटक या द्रक्षण नामो से भी बोलते हैं।—शार्ङ्गधर सं० पु० ७।

पर्या०—कोल। बटक। कषाई।

द्रंग^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रङ्ग] १. वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कबंर से छोटा हो। २. दुर्ग। गढ़। किला। उ०—साहिब कच्छ न आइयइ जहाँ परेरउ द्रग।—डोला०, दू० २२६।

द्रकट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्रवड'।

द्रग^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रग] नेत्र। आँख। चक्षु। उ०—मुहियत द्रगनि के अचरित्त मारे। चलहि आन तन आनहि मारे।—नव० ग्रं०, पृ० १२२।

द्रगड, द्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा। दगड़ा।

द्रदिमा—संज्ञा पुं० [सं० द्रदिमन्] चढ़ता।

द्रदिष्ठ—वि० [सं०] अधिक छड़। बहुत छड़।

द्रप्पन^१—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दर्पण। आइना। उ०—द्रप्पन सम आकास सवत जस भंघृत हिमकर। उज्जल जल सलितता सु सिद्धि सुंदर सरोज सर।—पु० रा०, ६१।४२।

द्रप्स^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २. मट्टा। ३. रस। ४. शुक। ५. दही। दधि (को०)।

द्रप्स^२—वि० १. द्रुतगति युक्त। तेज चलनेवाला। २. चूने या रिसने वाला। प्रलवणशील।

द्रप्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २. मट्टा। ३. शुक। ४. रस।

द्रमिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम। दे० 'तामिल'।

द्रम्म—संज्ञा पुं० [सं० मि० ग्रं० फ्रा० दिरम] १६ पण के मूल्य का चाँदी का एक प्राचीन सिक्का (लीलावती)।

विशेष—मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व इसका व्यवहार विशेष रूप से था। लीलावती में प्रश्न आदि निकालने में इसी का प्रयोग किया गया है। उसमें लिखा है कि २० कोडी बराबर एक काकिणी के, ४ काकिणी बराबर १ पण के, १६ पण बराबर १ द्रम्म के तथा १६ द्रम्म बराबर १ निष्क के होता है।

द्रवसी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रवन्ती] १. नदी। २. मृषकपर्णी। मुसाफानी। झोटा।

द्रव्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रवण । २. बहाव । ३. पलायन । दोड़ । ४. वेग । ५. भासव । ६. रस । ७. परिहास । क्रीड़ा । ८. द्रवत्व ।

द्रव्य^२—वि० १. तरल । पानी की तरह पतला । २. आर्द्र । गीला ।
क्रि० प्र०—करवा ।—होना ।

३. पिघला हुआ । घाँव खाकर पानी की तरह फैला हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्रवक—वि० [सं०] १. भागनेवाला । भगेड़ा । २. बहनेवाला । प्रवाह-युक्त । ३. रसनेवाला । चूनेवाला । क्षरणशील ।

द्रवज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जो रस से बनाई जाय । २. गुड़ ।

द्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्रवित] १. गमन । गति । दोड़ । २. क्षरण । बहाव । ३. पिघलने या पसीजने की क्रिया या भाव । ४. हृदय पर करुणापूर्ण प्रभाव पड़ने का भाव । बिरा के कोमल होने की वृत्ति । ५. पलायन । भागना (को०) ।

द्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रवत्व' ।

द्रवस्पत्री—संज्ञा [सं०] एक पोधा जिसे कहीं कहीं चोंगीनी कहते हैं । बगल में इसे शिमुड़ी भी कहते हैं । यह भोष के काम में आता है ।

द्रवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहने का भाव । पानी की तरह पतला होने का भाव ।

विशेष—वैशेषिक के अनुसार यह एक गुण है जो द्रव्यों में रहता है । यद्यपि वैशेषिक दर्शन में गुणों की परिगणना में द्रवत्व गुण नहीं आया है तथापि प्रणवपाद भाष्य में इसे गुण लिखा है । इस गुण के होने से वस्तुओं का बहना होता है । प्राचीन काल के विद्वानों ने द्रवत्व को भूत और सामान्य गुण माना है और द्रवत्व के दो भेद किए हैं—सांख्यिक अर्थात् स्वाभाविक और नैमित्तिक अर्थात् जो कारणों से उत्पन्न हो । ऐसे लोगों का मत है, कि स्वाभाविक या सांख्यिक द्रवत्व केवल जल में है और पृथ्वी में नैमित्तिक द्रवत्व है जो ससर्ग से आ जाता है । आधुनिक विद्वान् द्रवत्व को द्रव्य का एक रूप या उसकी अवस्था मात्र मानते हैं । उस पदार्थ का, जिसमें यह गुण होता है, कोई निज का आकार नहीं होता, किंतु जिस वस्तु के आधार में वह रहता है उसी के आकार का वह हो जाता है । वही पानी जब बोतल में भर दिया जाता है तब बोतल के आकार का और जब कटोरे, लोटे, गिलास आदि में रहता है तब उन उन पात्रों के आकार का हो जाता है । द्रवत्व और विभुत्व में भेद केवल इतना ही है कि द्रव पदार्थ परिमित अवकाश को धरता है और विभु पदार्थ पूरे अवकाश में व्याप्त रहता है ।

२. बहना । ठलना ।

द्रवना^७—क्रि० प्र० [सं० द्रवण] १. प्रवाहित होना । बहना । २. पिघलना । उ०—निज परिहास द्रव नवनीता । परदुल द्रवहि सुसत पुनीता ।—तुलसी (शब्द०) । ३. पसीजना । दयाई होना । दया करना । उ०—(क) मूक होइ बाबाख पंगु चढ़इ गिरिवर गहन । आसु कृपा, सो दयाल द्रवउ सकल कबिमल दहन ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कहियत परम

उदार कृपानिधि अतर्कामी त्रिभुवन तात । द्रवत हैं आपु देत दासन की रोझत हैं तुलसी के पात ।—सूर (शब्द०) ।

द्रवरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लास । लाह ।

द्रवशील—वि० [सं०] द्रवित होनेवाला । द्रवणशील ।

द्रवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. अजलि । चुल्लू । २. सनु पात्र । छोटा बर्तन (को०) ।

द्रविड—संज्ञा पुं० [सं० द्रविड, ता० तिरमिक] १. दक्षिण भारत का एक देश जो उड़ीसा के दक्षिण पूर्विय सागर के किनारे रामेश्वर तक है । २. द्रविण देश का रहनेवाला ।

विशेष—मनु ने द्रविड़ों को सवर्णा स्त्री से उत्पन्न ब्राह्म क्षत्रियों की सत्ति कहा है । महाभारत में भी लिखा है कि परशुराम के भय से बहुत से क्षत्रिय दूर दूर के पहाड़ों और जंगलों में भाग गए । वहाँ वे अपने कर्म ब्राह्मणों के अदर्शन आदि के कारण भूल गए और वृषलत्व को प्राप्त हो गए । वे ही द्रविड, आभीर, शबर, पुड़ आदि हुए । दे० 'तामिल' ।

३. ब्राह्मणों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत पाँच ब्राह्मण हैं—भांध, कण्टिक, गुर्जर, द्राविड और महाराष्ट्र ।

मुद्रां—द्रविड प्राणायाम = दे० 'द्राविही प्राणायाम' ।

द्रविड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविडी] एक रागिनी का नाम ।

द्रविण—संज्ञा पुं० [सं०] १. घन । २. कांचन । सोना । ३. पराक्रम । बल । ४. पुत्र राजा का एक पुत्र । ५. भागवत के अनुसार कुशद्वीप का एक सीमापर्वत । ६. त्रैलोक्य के अंतर्गत एक वर्ष । ७. महाभारत के अनुसार धुर नामक वसु के एक पुत्र का नाम । ८. पदार्थ । वस्तु (को०) । ९. आकांक्षा । अभिलाषा (को०) ।

द्रविणनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] शोभाजन । सहिजन का पेड़ ।

विशेष—स्मृतियों में शोभाजन भक्षण का निषेध है ।

द्रविणप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

द्रविणाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर । घनपति (को०) ।

द्रविणेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर (को०) ।

द्रविणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] घन की प्राप्ति (को०) ।

द्रविणोदा^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रविणोदस्] वेद का एक देवता जो घन देनेवाला कहा गया है । अग्नि ।

द्रविणोदा^२—वि० घन देनेवाला ।

द्रवित—वि० [सं०] दे० 'द्रवीभूत' ।

द्रवीभूत—वि० [सं०] १. जो द्रव हो गया हो । जो पानी की तरह पतला हो गया हो । २. पिघला हुआ । गला हुआ । ३. पसीजा हुआ । दयाई । दयालु ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्रवेतर—वि० [सं०] द्रव पदार्थ से भिन्न । कड़ा । ठोस (को०) ।

द्रवोत्तर—वि० [सं०] अत्यधिक पतला या तरल (को०) ।

द्रव्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तु । पदार्थ । चीज । वह पदार्थ जो क्रिया और गुण भयवा केवल गुण का आश्रय हो । वह पदार्थ जिसमें गुण और क्रिया भयवा केवल गुण हो और जो समवायि कारण हो ।

विशेष—वैशेषिक में द्रव्य नौ कहे गए हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आत्मा और मन ये छह द्रव्य ऐसे हैं जिनमें क्रिया और गुण दोनों हैं। आकाश, दिक् और काल ये तीन ऐसे हैं जिनमें क्रिया नहीं केवल गुण हैं। पाँच द्रव्यों में से केवल चार सावयव हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। ये चार द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले माने गए हैं। ये परमाणु रूप से नित्य और कार्य (स्थूल) रूप से अनित्य हैं। इन्हीं परमाणुओं के योग से सृष्टि होती है। प्रणस्तपाद भाष्य में लिखा है कि जीवों के कर्मफल भोग का समय जब आता है सब जीवों के घट्ट के बल से वायु के परमाणुओं में चलन उत्पन्न होता है। इस चलन से परमाणुओं में परस्पर संयोग होता है। दो दो परमाणुओं के मिलने से 'द्व्यणुक' और तीन द्व्यणुओं के मिलने से 'त्रसरेणु' उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक महान् वायु की उत्पत्ति होती है। महान् वायु में परमाणुओं के संयोग से क्रमशः जल द्व्यणुक, जल त्रसरेणु और फिर महान् जलनिधि उत्पन्न होता है। इस जल में पृथ्वी परमाणुओं के परस्पर संयोग द्वारा द्व्यणुकादि क्रम से महान् पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। फिर उसी जलनिधि में तेजस् परमाणुओं के परस्पर संयोग से तेजस् द्व्यणुकादि क्रम से महान् तेजोराशि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वैशेषिक ने चार भूतों के अनुसार चार तरह के परमाणु माने हैं,—पृथ्वी परमाणु जल परमाणु, तेज परमाणु और वायु परमाणु। इन्हीं परमाणुओं से ये चार भूत उत्पन्न होते हैं। पाचवाँ द्रव्य आकाश निरवयव, विभु और नित्य है, न उसके टुकड़े होते हैं और न उसका नाश होता है। आकाश की ही तरह काल और दिक् भी विभु और नित्य हैं। आत्मा एक अमूर्त द्रव्य है जो ज्ञान का अधिकरण और किसी किसी के मत से ज्ञान का समवायिकारण है। मन नित्य और मूर्त माना गया है, क्योंकि यदि मूर्त न होता तो उसमें क्रिया न होती। वैशेषिक मन को ऋणरूप मानता है क्योंकि एक क्षण में एक ही इंद्रिय का संयोग उसके साथ हो सकता है। जैनों के अनुसार द्रव्य गुणों और पर्यायों का स्थान है और सदा एकरस रहता है, उसके भीतर भेद नहीं पड़ता। जैन ६ द्रव्य मानते हैं—जीव, धर्म, अशर्म, पुद्गल, आकाश और काल।

पदार्थज्ञान में आजकल पश्चिम के देशों में बहुत उन्नति हुई है। सावयव सृष्टि के वैशेषिक में चार मूल भूत कहे गए हैं और उसी के अनुसार चार प्रकार के परमाणु भी माने गए हैं पर आजकल की परीक्षाओं से ये चारों मूलभूत कहे जानेवाले पदार्थ कई मूल द्रव्यों के योग से बने पाए गए हैं। जल और वायु कई मूल द्रव्यों के योग से बने परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। पाश्चात्य रसायन में शताधिक मूल द्रव्य माने गए हैं, जिनके परमाणुओं के रासायनिक संयोग से भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं। अतः इस हिसाब से भी परमाणु शताधिक प्रकार के हुए। मूल द्रव्यों परमाणुओं के गुणत्व का यदि परस्पर मिलान किया जाय तो उनमें एक हिसाब से खलता हुआ

क्रम पाया जाता है जिससे सिद्ध होता है कि ये सब मूल द्रव्य भी एक ही परम द्रव्य से निकले हैं।

३. सामग्री। सामान। उपादान। वह जिससे कोई वस्तु बनी हो। ४. घन। दौलत। रुपया पैसा। ५. पीतल। ६. घोष। भेषज। ७. मद्य। ८. लेप। ९. गोंद। १०. गाय (को०)। ११. शिष्टता। विनय। विनम्रता (को०)।

द्रव्य^२—वि० १. द्रुम सबधी। पेड़ का। पेड़ से निकला हुमा। २. पेड़ के ऐसा।

द्रव्यक—वि० [सं०] किसी द्रव्य या पदार्थ को उठाने या ले जानेवाला [को०]।

द्रव्यकुश—वि० [सं०] गरीब। धनहीन [को०]।

द्रव्यगण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रिक्त्सा शास्त्र में सत्तीस समान द्रव्यों का समूह [को०]।

द्रव्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] द्रव्य का भाव। द्रव्यपन।

द्रव्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष के अनुसार बिन्न भिन्न द्रव्यों या पदार्थों की अधिपति भिन्न भिन्न राशियाँ। जैसे,—कबल, मसूर, गेहूँ, शाल वृक्ष, औ इत्यादि की अधिपति मेष राशि है। इसी प्रकार घान, कपास, सता इत्यादि मियुन राशि के अधीन हैं। २. द्रव्य का स्वामी। धनी। धनवाला।

द्रव्यपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] धनसंचय। द्रव्य इकट्ठा करना [को०]।

द्रव्यमय—वि० [सं०] १. धन से युक्त। धनवान्। २. किसी द्रव्य से निर्मित। [को०]।

द्रव्यवती—वि० स्त्री० [सं०] द्रव्यवत्। धनवती। संपत्तिवाली [को०]।

द्रव्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार लकड़ियों के लिये रक्षित वन। वह जगल जहाँ से लकड़ी प्राप्ती हो।

द्रव्यवन मोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह जागीर या उपनिवेश जिसमें लकड़ी तथा और जांगलिक पदार्थों की बहुतायत हो।

विशेष—प्राचीन भाषाएँ ऐसे ही उपनिवेश को पसंद करते थे जिसमें जांगलिक पदार्थ बहुतायत से हों। परंतु आणक्य का मत है कि लकड़ियाँ तथा जांगलिक पदार्थ सभी स्थानों में पैदा किए जा सकते हैं। इसलिये उत्तम उपनिवेश वही है जिसमें हाथीवाले जंगल हों।

द्रव्यवनादीपिक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार लकड़ी प्राप्ति के लिये रक्षित जंगल में घाग लगानेवाला।

द्रव्यवाचक—वि० [सं०] वह शब्द जिससे किसी द्रव्य का ज्ञान हो।

द्रव्यवान्—वि० [सं०] द्रव्यवत् [वि० स्त्री० द्रव्यवती] धनवान्। धनी।

द्रव्यशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी द्रव्य या वस्तु को निर्मल करना। किसी चीज को धोकर साफ करना [को०]।

द्रव्यसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाले वस्तुओं की सफाई [को०]।

द्रव्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] बहुमूल्य पदार्थ। उपयोगी पदार्थ।

द्रव्यांतर—संज्ञा पुं० [सं०] द्रव्यान्तर। दूसरा द्रव्य।

द्रव्याबीश—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

द्रव्यार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] धन पैदा करना। संपत्ति कमाना [को०]।

द्रव्याश्रित—वि० [सं०] दीलत पर मुनहसर । द्रव्य में निहित [को०] ।
द्रष्टव्य—वि० [सं०] १. देखने योग्य । दर्शनीय । २. जिसे दिखाना हो । जो दिखाया जानेवाला हो । ३. जिसे बतलाना या जताना हो । ४. साक्षात् कर्तव्य । ५. सुंदर । मोहक (को०) । ६. समझने योग्य । विचारणीय (को०) ।

द्रष्टा^१—वि० [सं० द्रष्टु] १. देखनेवाला । २. साक्षात् करनेवाला । ३. दर्शक । प्रकाशक ।

द्रष्टा^२—संज्ञा पुं० १. सांख्य के अनुसार पुरुष और योग के अनुसार आत्मा ।

विशेष—आत्मा द्रष्टा और भूत करण द्रव्य माना जाता है । इन दोनों का संयोग ही दुःख का कारण है । सुख, दुःख आदि ये बुद्धिद्रव्य के विचार हैं । इन्द्रियों का संबन्ध होने से भूतकरण या बुद्धिद्रव्य ही विषय या सुख दुःख रूप में परिणत होता है, आत्मा नहीं । आत्मा द्रष्टा के रूप में रहता है ।

२. निर्णायक । जज । विचारपति । श्यामाधीश (को०) ।

द्रष्टार—संज्ञा पुं० [सं०] विचारक । द्रष्टा (को०) ।

द्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. हृद । ताल । भील । २. वह स्थान जहाँ गहरा जल हो । बह ।

द्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख । भगूर ।

द्राघिमा—संज्ञा पुं० [सं० द्राघिमन्] १. दीर्घता । लंबाई । २. वे कल्पित रेखाएँ जो भूमध्य रेखा के समानांतर पूर्व पश्चिम को मानी गई हैं । इन रेखाओं से भक्षण सूचित होता है ।

द्राघिष्ठ^१—संज्ञा पुं० [सं०] भालू । भरतुक । रीछ (को०) ।

द्राघिष्ठ^२—वि० सबसे लंबा । बहुत लम्बा (को०) ।

द्राण^१—वि० [सं०] १. सुप्त । सोया हुआ । २. पलायित । भगेड़ ।

द्राण^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वप्न । २. पलायन । भागना ।

द्राप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. धाकाश । २. कीड़ी । ३. मुखें व्यक्ति (को०) । ४. शिव का एक नाम (को०) । ५. कर्दम । कीचड़ । पक (को०) ।

द्राप^२—वि० १. मूर्ख । २. सुप्त ।

द्रामिल^१—वि० [सं० द्राविड] द्रमिल या द्रविड देशवासी ।

द्रामिल^२—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य का एक नाम ।

द्राघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन । २. कारण । ३. बहने या पसीजने की क्रिया । गलने या पिघलने की क्रिया । ४. अनुताप । ५. ताप । ऊष्मा (को०) ।

द्राघक—वि० [सं०] १. द्रवरूप में करनेवाला । ठोस चीज को पानी की तरह पतला करनेवाला । २. बहानेवाला । ३. गलानेवाला । ४. पिघलानेवाला । ५. हृदय पर प्रभाव डालनेवाला । जिससे चित्त भ्रष्ट हो जाय । ६. चतुर । चालाक । ७. पीछा करनेवाला । मगानेवाला । ८. घुरानेवाला । चोर । ९. हृदयप्राही ।

द्राघक^२—संज्ञा पुं० १. चंद्रकांत मणि । २. जार । व्यभिचारी । ३. मोम । ४. सुहागा ।

द्राघककंद—संज्ञा पुं० [सं० द्राघककन्द] तैलकंद तिलकंदरा ।

द्राघकर—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा ।

द्राघण—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रवीभूत करने का कार्य या भाव । गलाने या पिघलाने की क्रिया या भाव । २. मगाने का काम । ३. रीठा ।

द्राघिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सार । २. मोम ।

द्राघिक^१—वि० [सं० द्राघिक] [वि० स्त्री० द्राघिकी] द्रविड़ देशवासी । द्रविड़ संबंधी ।

द्राघिक^२—संज्ञा पुं० [सं० द्राघिक] १. द्रविड़ देश । २. कपूर । ३. ग्रामिया हल्दी ।

द्राघिकक—संज्ञा पुं० [सं० द्राघिकक] १. विट्त्वरण । सोंबर नमक । २. कश्मिया हल्दी ।

द्राघिकगौड़—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो रात के समय गाया जाता है । इसमें श्रृंगार और वीर रस अधिक गाया जाता है ।

द्राघिकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्राघिकी] छोटी इसावधी ।

द्राघिकी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्राघिक] १. द्रविड़ जाति की स्त्री ।

द्राघिकी^३—वि० द्रविड़ संबंधी । द्रविड़ देश का ।

मुहा०—द्राघिकी प्राणायाम = किसी सीधी तरह होनेवाली बात को बहुत घुमाव फिराव के साथ करना ।

विशेष—इस मुहा० की उत्पत्ति ठीक ठीक नहीं मालूम होती । द्रविड़ लोग प्राणायाम करने में पहले दाहिने हाथ की छुटकी बजाते हुए सिर के भास हाथ घुमाते हैं, पीछे नाक दबाकर प्राणायाम करते हैं । शायद इसी में विशेषता देखकर उत्तरीय भारत के लोग ऐसा कहने लगे हों ।

द्राघित—वि० [सं०] १. द्रव किया हुआ । २. गलाया या पिघलाया हुआ । ३. मगाया हुआ ।

द्राघायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम । ये द्रह ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हुए थे । सामवेद के कल्प, श्रौत और गृह्यसूत्र इनके बनाए हुए हैं ।

द्रिग^①—संज्ञा पुं० [सं० दृक्, दृग्] दे० 'दृग्' । उ०—वर तपं च द मन दपं करि तामस द्रिग विकराल मन । सम गवरि भंग भंग सिध उसिध नृपति समंतन भसुर बन ।—पु० रा०, १। ५०५ ।

द्रिदा^①—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़' । उ०—ज्यू सुख ह्यू दुख द्रिद मन शखै एकादसी इकतार करै ।—कबीर ग्रं०, पु० १५० ।

द्रिष्टि^①—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' । उ०—ज्यू वर सुँ वर बधिया यूँ बंधे सब सोई जाके आत्म द्रिष्टि है । साचा जन सोई ।—कबीर ग्रं०, पु० १४९ ।

दु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुःख । २. शाखा । ३. लकड़ी । काष्ठ (को०) । ४. काष्ठ निमित्त कोई भी यंत्र (को०) ।

दुक्लिम—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु ।

दुर्गंध^①—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दे० 'दुर्गंध' । उ०—बहुत सुगंध दुर्गंध करि भरिये आजन झनु । सुंदर सब मैं देखिये सूरय की प्रतिभिनु ।—सुंदर प्र०, भा० २, पु० ७८१ ।

दुग्ध^१—वि० [सं०] १ जिससे द्रोह किया गया हो। जिसके विरुद्ध चाल चली गई हो। २ ग्राह्य [को०]।

दुग्ध^२—सङ्घा पु० बुरा कर्म। जुर्म। अपराध [को०]।

दुग्ध^३—सङ्घा पु० [सं०] १ सोहे का मुगदर। २ परणु या फरसे के आकार का एक मल, जिसका सिरा मुड़ा हुआ होता था। इससे भुकाने, गिराने, फोड़ने और चीरने का काम लेते थे। ३ कुठार। कुल्हाड़ी। ४. ब्रह्मा। ५. भुचपा।

दुग्धनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] कुल्हाड़ी [को०]।

दुग्ध^४—सङ्घा पु० [सं०] १ धनुष। २ खड्ग। ३ विच्छू। भृगी कीड़ा। ५ दुष्ट या कुटिल व्यक्ति [को०]।

दुग्धस—वि० [सं०] जिसकी नाक लबी हो। लबी नाकवाला [को०]।

दुग्धह—सङ्घा पु० म्यान। कोश [को०]।

दुग्धा—सङ्घा स्त्री० [सं०] धनुष की ज्या। धनुष की डोरी।

दुग्धि, दुग्धी—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ कछुही। कच्छपी। २. कनख-धरा। ३. कठवत्। काष्ठवात्र।

दुग्ध^५—वि० [सं०] १ द्रवीभूत। पिघला या गला हुआ। २. शीघ्रगामी। तेज। ३. भागा हुआ। ४. शीघ्रतायुक्त। स्वरायुक्त [को०] ५. मस्पष्ट। विकीर्ण [को०]।

दुग्ध^६—सङ्घा पु० १. विच्छू। २. वृक्ष। ३. बिल्ली। ४. ताल की मात्रा का आधा जिसका चिह्न ० है। इसके देवता शिव और इसकी उत्पत्ति जल से मानी जाती है। इसका उच्चारण बिहिया की बोली के समान होता है।

पर्या०—बिदु। व्यजन। सन्य। अर्धमात्रक। आकाश। व्यजन। कृप। बलय।

५. वह लय जो मध्यम से कुछ तेज हो। दून।

दुग्धगति^१—वि० [सं०] शीघ्रगामी।

दुग्धगति^२—सङ्घा स्त्री० तीव्र वेग। तेज गति [को०]।

दुग्धगामी—वि० [सं०] दुग्धगामिन् [वि० स्त्री०] दुग्धगामिनी शीघ्रगामी। तेज चलनेवाला।

दुग्धत्रिताली—सङ्घा स्त्री० [सं०] दुग्ध + त्रिताल दे० 'जल्द तिताला'।

दुग्धपद—सङ्घा पु० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह मक्षर होते हैं, जिसमें चौपा, ग्यारहवाँ और बारहवाँ मक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं।

दुग्धपाठ—सङ्घा पु० [सं०] वह पाठ जो बच्चों की ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन के लिये सहायक हो। तेजी से पढ़ना। उ०—दुग्धपाठ शिक्षण के उद्देश्य साधारण गद्यपाठ की अपेक्षा भिन्न होते हैं।—भा० शिक्षण, पु० १२७।

दुग्धमध्या—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक अर्धसमष्ट का नाम। इसके प्रथम और द्वितीय पाद में ३ भगण और २ गुरु होते हैं (५॥ ५॥ ५॥ ५॥ ५॥) तथा द्वितीय और तृतीय चरण में १ नगण, २ जगण और १ यगण (॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥) होता है। जैसे,—रामहिं सेवहुं रामहिं गामो। तन मन दै नित सीस

४-२१

नवाग्रो। जन्म अनेकन के भय जारो। हरि हरि गा निष जन्म सुधारो।

दुग्धचिल्वित्त—सङ्घा स्त्री० [सं०] दुग्धचिल्वित्त एक वर्णभूत जिसके प्रत्येक चरण में १ नगण, २ भगण और एक रगण (न भ म र) (॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥) होता है। इसे सुंदरी भी कहते हैं। जैसे,—मज न जो सखि बालमुकुंदरी। जग न सोहव यद्यपि सुंदरी।

दुग्धि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ द्रव। २ गति।

दुग्धै०—क्रि० वि० [सं०] दुग्ध जल्दी हो। शीघ्र हो।

दुग्धख—सङ्घा पु० [सं०] कौटा।

दुग्धपद—सङ्घा पु० [सं०] १ महाभारत के अनुसार उत्तर पांचाल का एक राजा।

विशेष—यह चद्रवशी प्रपत का पुत्र था। द्रोणाचार्य और द्रुपद वचन में एक साथ खेला करते थे और दोनों में बड़ी मित्रता थी। प्रपत के मर जाने पर द्रुपद पांचाल का राजा हुआ। उस समय द्रोणाचार्य जी उसके पास गए और उन्होंने अपनी वचन की मित्रता का परिचय देना चाहा, पर द्रुपद ने उनका विरस्कार कर दिया। जब द्रोणाचार्य जी को भीष्म जी ने कौरवों और पांडवों को शिक्षा देने के लिये बुलाया और द्रोण जी ने उनको बाण विद्या की उत्तम शिक्षा दी तब गुरु-दक्षिणा में उन्होंने कौरवों और पांडवों से यही माँगा कि तुम द्रुपद को बाँधकर मेरे सामने ला दो। कौरव तो उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सके पर पांडवों ने द्रुपद को जीता और उसे बाँधकर अपने गुरु को प्रपित किया। द्रोणाचार्य जी ने द्रुपद से कहा कि तुम गंगा के दक्षिण किनारे राज्य करो, उत्तर के किनारे का राज्य हम करेंगे। द्रुपद उस समय तो मान गया पर उसके मन में द्रोणाचार्य की ओर से द्वेष उत्पन्न रहा। उसने याज्ञ और उपयाज्ञ नामक दो ऋषियों की सहायता से ऐसे पुत्र की प्राप्ति के लिये, जो द्रोणाचार्य का नाश कर सके, यज्ञ करना प्रारंभ किया। यज्ञ के प्रसाद से धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र और कृष्णा नाम की एक कन्या हुई। द्रुपद के एक और पुत्र था जिसका नाम शिखंडो था। कृष्णा धृष्टद्युम्न आदि पांडवों से न्याही गई थी। द्रुपद महाभारत के युद्ध में मारा गया।

२ खमे का पाया। ३ सड़ाई।

द्रुपदा—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक वैदिक ऋचा जिसके आदि में द्रुपद शब्द आता है।

द्रुपदात्मज—सङ्घा पु० [सं०] [स्त्री०] द्रुपदात्मजा १. शिखंडी। २. धृष्टद्युम्न।

द्रुपदादित्य—सङ्घा पु० [सं०] काशीखंड के अनुसार सूर्य की एक मूर्ति जिसे द्रौपदी ने स्थापित किया था।

द्रुम—सङ्घा पु० [सं०] १ वृक्ष। २ पारिजात। ३. कुवेर। ४. एक राजा का नाम जो पूर्वजन्म में क्षिति नामक देश का।

५. हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र के एक पुत्र का नाम जो रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ था।

हुमकटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० हुमकटिका] सेमर का पेड़।

हुमनख—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा।

हुमपातन—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ गिराना। पेड़ काटना। उ०—न्याय को पिता कह हुमपातन की शिक्षा ली।—अपरा, पृ० २१३।

हुमव्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का रोग। २. लाह। साँध। लाक्षा।

हुममर—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा। कटक।

हुमवासी—संज्ञा पुं० [सं० हुमवासीन्] बदर। कपि।

हुमशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का सिरा। २. एक प्रकार की छत या गोल मंडप जो पेड़ की तरह फैला हुआ होता है। ३. ताड़ का पेड़ (को०)।

हुमश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

हुमपड—संज्ञा पुं० [सं० हुमपण्ड] पेड़ों का झुरमुट। तरुनकुण। वृक्षावली (को०)।

हुमसार—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिम। अनार। उ०—अस्तधीज हानीक कर सूक पीक हुमसार। ये दाहिम हमि देख बलि फछु तुम दसनाकार।—नंददाम (शब्द०)।

हुमसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सौरवों के पक्ष का एक योद्धा जो घृष्ट्युध्न के हाथ से मारा गया था। २. महाभारत के अनुसार एक राजा जो पूर्वजन्म में त्रिष्टु नाम का असुर था।

हुमामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का रोग। २. लाक्षा। लाख।

हुमारि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

हुमालय—संज्ञा पुं० [सं०] जंगल।

हुमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृक्षों की पत्ति। पेड़ों की फतार। उ०—उद्योगों की आज देखिए, कैसी छटा निराली है। नए पल्लवों से आभूषित मन मोहती हुमाली है।—सचिता, पृ० १४४।

हुमाश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] (जा पेड़ पर चले) गिरगिट।

हुमिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन। जंगल।

हुमिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक दानव का नाम। यह सोम देश का राजा था। २. नव योगेश्वरों में से एक।

हुमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं। इसके प्रत्येक चरण के अंत में गुरु होता है तथा १० और १८ मात्रा पर यति होती है। जैसे,—उत्तर यह दैके दूत पठे के असद्वान यह रोस भन्यो। बोल्यो सब बीरन कुल के धीरन, जिन न चरन रन सलटि घरयो। तुम करो तयारी सब इस वारी, मैं दिल् यह इतकाद करयो। मुझको तो सरना देर न करना आहुद साहू को काज करयो।—सूदन (शब्द०)।

हुमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. ताल। ताड़ का पेड़। ३. पारिजात।

हुमोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] कणिकार वृक्ष। कनकचपा। कनियारी।

हुवय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी की माप। पैमाना। २. परिमाण।

हुसल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष। चिरोजी का पेड़।

हुह—संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० द्रुही] १. पुत्र। २. वृक्ष। ३. नील।

हुहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रहा। २. शिव (को०)। ३. विष्णु (को०)।

हुहिण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहा। दे० 'द्रुहण'।

हुहिन(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्रुहिण] ग्रहा। उ०—सृष्टाचतुरानन धिपन द्रुहिन स्वयंभू सोष्ट।—अनेकार्यं, पृ० ६६।

हुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

हुह्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन ऋषियों का एक वंश या जनसमूह। उ०—राजवंशों की तालिका देते हुए पाजिटर ने यादव, हैहय द्रुह्य तथा दक्षिणी पंचाल को गिनाया है।—प्रा० भा०, पृ०, पृ० २१। २. शमिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा का ज्येष्ठ पुत्र, जिसने ययाति का बुढ़ापा सेना प्रस्त्रीकार किया था।

विशेष—ययाति से इसने कहा था—जराप्रस्त मनुष्य, स्त्री, रथ, हाथी इत्यादि को नहीं भोग सकता। ययाति ने इसपर इसे शाप दिया कि 'तेरी कोई श्रमितापा पूरी नहीं होगी। जहाँ रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि की सवारी हो नहीं होती, जहाँ खूद फाँदकर चलना पड़ता है, जहाँ 'राजा' शब्द का व्यवहार ही नहीं है यहाँ तुझे रहना पड़ेगा। द्रुह्य के वंश में कोई राजा नहीं हुआ (महाभारत)। पर आसाम के पाम स्थित त्रिपुरा के राजवंश की जो वंशावली 'राजमाला' नाम की है उसमें त्रिपुरा राजवंश का चंद्रवंशी एक राजा द्रुह्यु से चलना लिखा गया है। पर विष्णुपुराण और हरिवंश के अनुसार द्रुह्य को वधु और सेतु नामक दो पुत्र हुए। सेतु के पुत्र का नाम गांधार था जिसके नाम से देश का नाम पड़ा। अस्तु, पुराणों के अनुसार द्रुह्य भारत के पश्चिमी कोने पर गया था न कि पूर्वी। राजमाला की कथा कल्पित है।

द्रु—संज्ञा पुं० [सं०] मोना।

द्रुघाण—संज्ञा पुं० [सं०] हथोड़ा। द्रुघण (को०)।

द्रुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृश्चिक। विचित्र। २. धनुष। धन्वा (को०)।

द्रुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीटिल्य के अनुसार लकड़ी का धनुष।

द्रेका—संज्ञा स्त्री० [सं०] महानिब। बकायन।

द्रेक—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'द्वेकाण'।

द्रेकण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वेकाण' (को०)।

द्रेकण—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'द्वेकाण'।

द्रेकाण—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'द्वेकाण'।

उ०—सूर्य चंद्र जिस ग्रह के राशि द्वेकाण में बैठे हों।—वृहत्, पृ० ३३४।

द्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी का एक कलश या बरतन जिसमें वैदिक काल में सोम रखा जाता था। २. जब आदि रखने का लकड़ी का बरतन। कठवत्। ३. एक प्राचीन माप जो

चार झाड़क या १६ सेर और किसी किसी के मत से १२ सेर की मानी जाती थी ।

पर्या०—घट । कलश । उन्मान । उत्तरण । धर्मण ।

४ पत्तो का दोना । ५ नाव । डोंगा । ६ भरणी की लकड़ी । ७ लकड़ी का रथ । ८ डोम की भा । काला की भा । उ०—करता रव दूर द्रोण था ।—साकेत, पु० ३०६ । ९ बिच्छू । १० वह जलाशय या तालाब जो चार सौ धनुष लंबा चौड़ा हो । यह पुष्करिणी और दीधिका से बड़ा होता है । ११ मेघों के एक नायक का नाम । जिस वर्ष यह मेघनायक होता है उस वर्ष वर्षा बहुत अच्छी होती है । १२ वृक्ष । पेड़ । १३ द्रोणाचल नाम का पहाड़ ।

विशेष—रामायण के अनुसार यह पर्वत क्षीरोद समुद्र के किनारे है और जिसपर विशल्यकी एी नाम की सजीवनी जड़ी होती है । पुराणों के अनुसार यह एक वर्षपर्वत है ।

१४ एक फूल का नाम । १५ नील का पोषा । १६ केला । १७ महाभारत के प्रसिद्ध ब्राह्मण योद्धा जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्रशिक्षा पाई थी । दे० 'द्रोणाचार्य' ।

द्रोणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्रतट पर बसा हुआ चारों ओर से सुरक्षित नगर [को०] ।

द्रोणकलश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का एक पात्र जिसमें यज्ञो मे सोम छाना जाता था । यह वैकक की लकड़ी का बनाया जाता था ।

द्रोणकाक, द्रोणकाकल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काला की भा । डोम का भा ।

द्रोणक्षीरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक दोना दूध देनेवाली गाय [को०] ।

द्रोणगंधिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोणगन्धिका [रास्ता] ।

द्रोणगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम ।

विशेष—पुराणानुसार यह एक वर्षपर्वत है । बाल्मीकाय रामायण में इसे क्षीरोद समुद्र में लिखा है । हनुमान विशल्य-कारिणी सजीवनी जड़ी लेने इसी पर्वत पर गए थे ।

द्रोणघा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रोणक्षीरा' [को०] ।

द्रोणदुग्धा, द्रोणदुधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रोणक्षीरा' ।

द्रोणपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] भूकदली ।

द्रोणपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गुमा ।

द्रोणमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह गाँव जो ४०० गाँवों के बीच प्रधान हो । २ चार सौ गाँवों के बीच का किला ।

द्रोणमेघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गहरी वर्षा करनेवाला बादल । दे० 'द्रोण'—११ [को०] ।

द्रोणवृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोण नामक बादल से होनेवाली वर्षा [को०] ।

द्रोणशर्मपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

द्रोणस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम ।

द्रोणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गुमा ।

द्रोणाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत । द्रोणगिरि ।

द्रोणाचार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्रशिक्षा पाई थी ।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है । गंगाद्वार (हरद्वार) के पास भरद्वाज नाम के एक ऋषि रहते थे । वे एक दिन गंगा-स्नान करने जाते थे, इसी बीच घृताची नाम की अम्बरा नहाकर निकल रही थी । उसका वस्त्र छूटकर गिर पड़ा । ऋषि उसे देखकर कामार्त हुए और उनका वीर्यपान हो गया । ऋषि ने उस वीर्य को द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख छोड़ा । उसी द्रोण से जो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम द्रोण पड़ा । भरद्वाज ने अपने शिष्य अग्निवेश को जो अस्त्र दिए थे अग्निवेश ने वे सब द्रोण को दिए । भरद्वाज के शरीरपात के उपरांत द्रोण ने शरद्वान् की कन्या कृपी के साथ विवाह किया जिससे उन्हें भरवत्थामा नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जन्म लेते ही उच्चैश्रवा घोड़े के समान घोर शब्द किया । द्रोण ने महेंद्र पर्वत पर जाकर पशुशुगम से अस्त्र और अस्त्र की शिक्षा पाई । वहाँ से लौटने पर इनके दिन दरिद्रता में बीतने लगे । द्रुपद नामक एक राजा भरद्वाज के सखा थे । उनका पुत्र द्रुपद आश्रम पर आकर द्रोण के साथ खेलता था । द्रुपद जब उत्तर पाषाल का राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए और उन्होंने उसे अपने बालमित्रों का परिचय दिया । पर द्रुपद ने राजसद के कारण उनका विरस्कार कर दिया । इसपर दुःखित और क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य हस्तिनापुर चले गए और वहाँ अपने साले कृपाचार्य के यहाँ ठहरे । एक दिन युधिष्ठिर आदि राजकुमार गेंद खेल रहे थे । उनका गेंद कूएँ में गिर पड़ा । बहुत यत्न करने पर भी वह गेंद नहीं निकलता था, इसी बीच में द्रोण उधर से निकले और उन्होंने अपने आश्रय से मार मारकर गेंद को कूएँ के बाहर कर दिया । जब यह खबर भीष्म को लगी तब उन्होंने द्रोण को राजकुमारों की अस्त्रशिक्षा के लिये नियुक्त किया । तब से वे द्रोणाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए । इन्हीं की शिक्षा के प्रताप से कौरव और पांडव ऐसे बड़े धनुषधर और अस्त्रकुशल हुए । द्रोणाचार्य के सब शिष्यों में अर्जुन श्रेष्ठ थे । अस्त्रशिक्षा दे चुकने पर द्रोणाचार्य ने कौरवों और पांडवों से कहा,—'हमारी गुरुदक्षिणा यही है कि द्रुपद राजा को बाँधकर हमारे पास लाओ ।' कौरवों और पांडवों ने पंचाल देश पर चढ़ाई की । अर्जुन द्रुपद को युद्ध में हराकर उसे द्रोणाचार्य के पास पकड़कर लाए । द्रोणाचार्य ने द्रुपद को यही कहकर छोड़ दिया कि 'तुम कहो था कि राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, अब भागीरथी के दक्षिण में तुम राज्य करो, उत्तर में मैं राज्य कछौंगा ।' द्रुपद के मन में इस बात की बड़ी कसक रही । उन्होंने ऋषियों की सहायता से पुत्रेष्टि यज्ञ द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से किया । यज्ञ के प्रभाव से उसे धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा (द्रौपदी) नाम की कन्या हुई । कुक्षेत्र के युद्ध में द्रोणाचार्य ने नौ दिन तक कौरवों की ओर से घोर युद्ध किया ।

अंत में जब युधिष्ठिर के मुख से 'अश्वत्थामा मारा गया हाथी' यह सुना तब पुत्रशोक में नीचा सिर करके वे हूब गए। इसी अवसर पर धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया।

द्रोणि^१—सखा पुं० [सं०] १. द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा। २. अष्टम मन्वतर के एक ऋषि।

द्रोणि^२—सखा स्त्री० दे० 'द्रोणी'।

द्रोणिका—सखा स्त्री० [सं०] १. नील का पोधा। २. पात्र। घाल्टी (को०)।

द्रोणी—सखा स्त्री० [सं०] १. डोंगी। २. दोनियाँ। छोटा दोना। ३. लकड़ी का बना हुआ पात्र। कठवत। ४. काठ का प्याला। डोकिया। ५. दो पर्वतों के बीच की भूमि। दून। ६. किला। ७. दर्रा। ८. द्रायन। ९. एक नदी। १०. द्रोण की स्त्री, कृपी। ११. नील का पोधा। १२. एक परिमाण जो दो सूर्य या १२८ सेर का होता था। १३. एक प्रकार का नमक। १४. शीघ्रता।

द्रोणीक्ष—सखा पुं० [सं०] केतकी का फूल।

द्रोणीलवण—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो कर्णाटक देश के मासपास होता है। इसे बिरिया लोन भी कहते हैं। यह अति उष्ण, भेदक, स्निग्ध, शूलनाशक और मलपित्तवर्धक माना गया है।

पर्या०—द्रोण्य। वयेंय। द्रोणीज। वारिज। वाधिभव। द्रोणी। चित्रकूट। खण।

द्रोणोदन—सखा पुं० [सं०] सिंहदु के पुत्र का नाम जो शाक्य मुनि बुद्ध के चाचा थे।

द्रोण्यामय—सखा पुं० [सं०] शरीर के भीतर का एक रोग।

द्रोन(७)†—सखा पुं० [सं० द्रोण] दे० 'द्रोण'।

द्रोनाकार(७)—वि० [सं० द्रोणाकार] चार सौ धनुष लंबा और इतना ही चौड़ा जलाशय आदि। न०—हिम स्त्रीनि सौ धिरथो धद्रि मंडल यह कुरी। सोहत द्रोनाकार सृष्टि सुखमा सुख-पूरी।—का० सुपमा, पृ० ५।

द्रोपती, द्रोपदी(७)—सखा स्त्री० [सं० द्रोपदी] दे० 'द्रोपदी'। उ०—अहिल्या ब्राह्मणी से इंद्र ने छल किया। द्रोपदी पच भरतार कीम्हनी।—कबीर रे०, पृ० ४५।

मुहा०—द्रोपदी (द्रोपती) का चीर होना = किसी चीज का अंत न होना। असीमित होना। अपार होना। उ०—केता ही उझाया तो न पाया पार लोगो। देखो बस कूरम द्रोपती की चीर होगी।—शिक्षर०, पृ० ६०।

द्रोह—सखा पुं० [सं०] [स्त्री०, द्रोही] दूसरे का अहितचिंतन। प्रतिहिंसा का भाव। वैर। द्वेष। अपराध। श्रुति। हिंसन।

द्रोहचिंतन—सखा पुं० [सं० द्रोहचिन्तन] किसी का अहित विचारना। अनिष्टचिन्तन। बुरा सोचना (को०)।

द्रोहबुद्धि^२—वि० [सं०] शत्रुता की बुद्धि रखनेवाला। अनिष्ट चाहने-वाला (को०)।

द्रोहबुद्धि^२—सखा स्त्री० [सं०] शत्रुता की बुद्धि। अनिष्ट करने की नीयत (को०)।

द्रोहभाव—सखा पुं० [सं०] शत्रुता की भावना। बुरी नीयत (को०)।

द्रोहाट—सखा पुं० [सं०] १. वैदाल व्रतिक। ऊपर से देखने में साधु पर भीतर भीतर बुराई रखनेवाला व्यक्ति। २. धृगलुब्धक। शिकारी। व्याध। ३. वेद की एक शाखा। ४. डोंगी या ऋद्धा व्यक्ति (को०)।

द्रोही^१(७)—[सं० द्रोहिन्] [वि० स्त्री० द्रोहिणी] द्रोह करनेवाला। बुराई चाहनेवाला। विरोध करनेवाला।

द्रोही^२—सखा पुं० वह जो द्रोह रखे। वैरी। शत्रु।

द्रौणायन—सखा पुं० [सं०] अश्वत्थामा।

द्रौणायनि—सखा पुं० [सं०] अश्वत्थामा। द्रोणाचार्य का पुत्र।

द्रौणि—सखा पुं० [सं०] १. अश्वत्थामा। २. एक ऋषि जो पुराणानुसार उनतीसवें द्वापर में होंगे।

द्रौणिक^१—सखा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें एक द्रोण (३८ सेर) बीज बोया जाय।

द्रौणिक^२—वि० द्रोण संबंधी।

द्रौणिकी—सखा स्त्री० [सं०] वह बरतन जिसमें एक द्रोण परिमाण की वस्तु भावे।

द्रौणी—सखा स्त्री० [सं०] १. काठ का पात्र। कठवत। २. पर्वत की घाटी (को०)।

द्रौण्य—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का नमक (को०)।

द्रौनी(७)—वि० [सं० द्रावणी] प्रवाहित करनेवाली। द्रवित करने वाली। उ०—के बसुधा पे सुधाधार ग्रहद्रव द्रौनी।—का० सुपमा, पृ० ६। २. पर्वतों के बीच की। पर्वतों के मध्य में स्थित (भूमि)।

द्रौपद्—सखा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रोपदी] द्रुपद का पुत्र।

द्रौपदी—सखा स्त्री० [सं०] राजा द्रुपद की कन्या कृष्णा जो पाँचो पाठवों को व्याही गई थी।

विशेष—राजा द्रुपद ने जब द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया था तब उसे धृष्टद्युम्न नाम का एक पुत्र और कृष्णा नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। जब कन्या बड़ी हुई तब द्रुपद ने उसका विवाह धर्मन से करना विचारा। पर साक्षात्गृह में आग लगने के उपरांत जब पाठवों का पता बहुत दिनों तक न लगा तब द्रुपद ने उपयुक्त घर प्राप्त करने के लिये धूमधाम से एक स्वयंवर रचा। उसमें ऊपर एक मछली टाँग दी गई जिससे कुछ नीचे हटकर एक षष्ठ घूम रहा था। द्रुपद ने प्रतिज्ञा की कि जो कोई उस मछली की आँख को बाण से बेधेगा उसी को द्रोपदी दी जायगी। स्वयंवर में बहुत दूर दूर से राजा लोग आए थे, पाँचो पाँचव भी घूमते घूमते ब्राह्मण के वेश में वहाँ पहुँचे। जब कोई क्षत्रिय लक्ष्यभेद न कर सका तब कर्ण उठा। पर द्रोपदी ने कहा कि मैं सूतपुत्र के साथ विवाह नहीं कर सकती। अंत में ब्राह्मण वेशधारी धर्मन ने उठकर लक्ष्यभेद किया। पाँचो पाँचव उन दिनों धूम रूप से एक

ब्राह्मण के यहाँ माता सहित रहते थे। अतः द्रौपदी को लेकर पाँचों भाई ब्राह्मण के आश्रम पर गए और द्वार पर माता को पुकार कर बोले माँ, आज हम लोग एक रमणीय भिक्षा माँगकर लाए हैं। कुंती ने भीतर से कहा, अच्छी बात है, पाँचों भाई मिलकर भोग करो। माता के वचन की रक्षा के लिये पाँचों भाइयों ने द्रौपदी को ग्रहण किया। नारद के सामने यह प्रतिज्ञा की गई कि जिस समय एक भाई द्रौपदी के पास हो उस समय दूसरा वहाँ न जाय, यदि जाय तो बारह वर्ष उसे वनवास करना पड़े। दुर्योधन के सय जुवा खेलते खेलते युधिष्ठिर जब सब कुछ हार गए तब द्रौपदी को भी हार गए। इसपर दुर्योधन ने भरी समा में दुःशासन के द्वारा द्रौपदी को पकड़ बुलाया। दुःशासन भरी सभा के बीच उसका वस्त्र खींचना चाहता था पर वस्त्र न खिंच सका। इस अपमान पर क्रुपित होकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन, जिस जघे को तूने द्रौपदी को दिखाया है उसे मैं अवश्य तोड़ूँगा और दुःशासन का बायाँ हाथ तोड़कर उसके कलेजे का रक्तपान करूँगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। पुराणों में द्रौपदी की गणना पंचकन्याओं में है।

पर्याय—कृष्णा। पाचाली। सीरिणी। नित्ययौवना। याज्ञेयी। वेदिजा।

द्रौपदेय—संज्ञा पुं० [सं०] द्रौपदी के पुत्र।

द्रौक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] द्रुह के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. युग्म। मिथुन। जोड़ा। उ०—ध्वज कुलिश शकुल कजयुत वन फिरत कंटक जिन सहे। पद कज द्वंद्व मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे।—तुलसी (शब्द०)। २. जोड़ा। प्रतिद्वंद्वी। ३. द्वंद्व युद्ध। दो आदमियों की परस्पर लड़ाई। ४. भगड़ा। कलह। बखेड़ा। उ०—घनि यह द्वैज लख्यो अहो तज्यो एगनि दुख द्वंद्व। तुव भागनि पूरव उयो जहाँ अपूरव चंद—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

५. दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, गर्मी सर्दी, राग द्वेष, सुख दुःख, दिन रात इत्यादि। उ०—एगुनद निकदय द्वंद्व घन। महिपाल विलोकिय दीनजन।—तुलसी (शब्द०)। ६. उलझन। बखेड़ा। झगड़। जंजाल। उ०—जो मन लागे रामचरन अस। देह गेह सुत वित कलस महँ भगन होत बिनु अतन किए अस। द्वंद्व रहित गतमान ज्ञानरत विषयविरत खटाइ नानाकस।—तुलसी (शब्द०)। ७. कष्ट। दुःख। उ०—सोरह सहस घोष कुमारि। देखि सबको श्याम रीके रहैं भुजा पसारि। बोलि लीन्हों कदम के तर इहाँ भावहु नारि। प्रगट भए तहाँ सबनि को हरि काम द्वंद्व निवारि।—सूर (शब्द०)। ८. उपद्रव। झगड़ा। ऊधम। उ०—कहा करों हरि बहुत सिखाई। सहि न सकी रिस ही रिस भरि गई बहुतै डोढ कहाई। मेरो कस्यो नेकु नहि मानत करत आपनी टेक। मोर होत उरहन सै आवत ब्रज की बधू अनेक। किरत जहाँ तहँ द्वंद्व मचावत घर न रहत धन एक। सूर श्याम

त्रिभुवन को करता यशुमति कहति जनेक।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचाना।

९. रहस्य। गुप्त बात। १०. आशंका। भय। डर। ११. दुर्बिधा। दोचितापन। संशय। १२. वह घड़ियाल जिसपर घटा बजाया जाय (को०)। १३. व्याकरण में समास का एक भेद।

विशेष—दे० 'द्वंद्व'।

द्वंद्व—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभी] 'दुन्दुभी'। उ०—बाजे डोल द्वंद्व भी मेरो। मंदिर तूर झंझ चहुँ फेरी।—जायसी (शब्द०)।

द्वंद्वज—वि० [सं०] दे० 'द्वंद्वज'।

द्वंद्वजुद्ध, द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वयुद्ध] दे० 'द्वंद्वयुद्ध'। उ०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले वचन गभीर। द्वंद्वजुद्ध देखहु सकल समित भए प्रति बीर।—मानस, ६। ८८।

द्वंद्वर(उ)—वि० [सं० द्वन्द्वालु] भगदालू। उ०—दीन गरीबी दीन को द्वंद्वर को भूमिमान। द्वंद्वर तो विप से भरा दीन गरीबी जान।—कबीर (शब्द०)।

द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. युग्म। दो वस्तुएँ जो एक साथ हों। जोड़ा। २. स्त्री पुरुष या नर मादा का जोड़ा। ३. दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, शीत उष्ण, सुख दुःख, भला बुरा, पाप पुण्य, स्वर्ग नरक इत्यादि। ४. रहस्य। भेद की बात। गुप्त बात। ५. दो आदमियों की लड़ाई। ६. झगड़ा। बखेड़ा। कलह।

क्रि० प्र०—मचना।—नचाना।

७. एक प्रकार का समास, जिसमें मिलनेवाले सब पद प्रधान रहते हैं और उनका अन्वय एक ही क्रिया के साथ होता है जैसे, हाथ पाँव बाँधो, रोटी दाल खाओ।

विशेष—यह समास और आदि संयोजक पदों का लोप करके बनाया जाया है। जैसे,—हाथ और पाँव से 'हाथ पाँव', रात और दिन से 'रात दिन'।

८. दुर्ग। किला। ९. शका। संदेह (को०)। १०. मिथुन राशि (को०)। ११. एक प्रकार का रोग (को०)।

द्वंद्वचर^१—वि० [सं० द्वन्द्वचर] जोड़े के साथ चलने या रहनेवाला।

द्वंद्वचर^२—संज्ञा पुं० चक्रवाक। चकवा।

द्वंद्वचारी—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वचारिन्] [स्त्री० द्वंद्वचारिणी] चकवा।

द्वंद्वज—वि० [सं० द्वन्द्वज] १. सुख दुःख, राग द्वेष आदि द्वंद्वों से उत्पन्न (मनोवृत्ति)। २. कलह से उत्पन्न। ३. वात, पित्त और कफ नाम के त्रिदोषों में से दो दोषों से उत्पन्न (रोग)।

यौ०—द्वंद्वज गुल्म = वात, पित्त और कफ आदि त्रिदोषों में से किन्हीं दो दोषों से उत्पन्न गुल्म रोग। उ०—गुल्म के मिश्र लक्षण को द्वंद्वज गुल्म कहते हैं।—माधव, पु० १६७। द्वंद्वज बवासीर = बवासीर नामक रोग जो दो दोषों के कारण होता है। उ०—दो दो दोषों के कारण और लक्षण मिलें तो द्वंद्वज बवासीर भई।—माधव, पु० ५४।

द्वंद्वतर्क—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वतर्क] द्वंद्ववाचक शब्दों का तर्क

या दलील । उ०—नवोद्भूत इतिहासभूत सक्तिय, सकरण,
जड़ चेतन । द्वंद्वसकं से भूभिभक्ति पाता युग युग में नूतन ।—
युगवाणी, पृ० ३६ ।

द्वंद्वभि(७)—सखा स्त्री० [सं० द्वन्द्वभि] दे० 'दुन्दुभी' । उ०—पचम
घंटा नाद षष्ठ वीणा धुनि होई । सप्तम बज्जहि भेरि मष्टम
द्वंद्वभि दोई ।—सु दर ग्र०, भा० १, पृ० ४६ ।

द्वंद्वभूत—वि० [सं० द्वन्द्वभूत] अनिश्चित । सदेहास्पव [को०] ।

द्वंद्वमोह—सखा पुं० [सं०] दुविधे के कारण उत्पन्न कष्ट । संदेहजन्य
दुख [को०] ।

द्वंद्वयुद्ध—सखा पुं० [सं० द्वन्द्वयुद्ध] वह लड़ाई जो दो पुरुषों के बीच
में हो । कुशती । हाथा पाई ।

द्वंद्वी—वि० [सं० द्वन्द्वी] १. कलहप्रिय । भगदालू । २. जोड़ा
तैयार करनेवाला । ३. विषम । परस्पर प्रतिकूल [को०] ।

द्वय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वयो] १. दो । २. द्वैत संबंधी ।

द्वय^२—सखा पुं० १. युगल । युगल । जोड़ा (समासांत में प्रयुक्त) ।
२. दो भिन्न प्रकार का स्वभाव या वृत्ति । ३. व्याकरण में
पुं० और स्त्रीलिंग ।

द्वयवादी—वि० [सं० द्वयवादिन्] १. दुविधे की बातें करनेवाला । २.
द्वैतवाद को माननेवाला [को०] ।

द्वयहीन—वि० [सं०] जो द्वय अर्थात् पुलिग और स्त्रीलिंग न हो ।
नपु सक लिंग का । नपु सक (व्याकरण) ।

द्वयाग्नि—सखा पुं० [सं०] जाल चोता ।

द्वयातिग—वि [सं०] जिसके सत्वगुण ने शेष दो गुणों अर्थात् रजस्
और तमोगुण को दबा लिया हो । जिसमें सत्वगुण प्रधान हो,
और शेष दो गुण दबकर अधीन हो गए हो ।

द्वा.स्थ—सखा पुं० [सं०] १. द्वारपाल । २. नदिकेश्वर ।

द्वा.स्थित—सखा पुं० [सं०] दे० 'द्वाम्थ' ।

द्वाष्मा(७)—सखा स्त्री [ष० दुष्मा] दे० 'दुष्मा' । उ०—द्वाष्मा दे
दरवेश पाव नहि गारि पारि जा ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

द्वा—वि० [सं० द्वि] संस्कृत द्वि का समासगत रूप ।

द्वाचत्वारिंश—वि० [सं०] बयालीसवाँ ।

द्वाचत्वारिंशत्^१—वि० [सं०] जो संख्या में बयालीस से दो अधिक
हो । बयालीस ।

द्वाचत्वारिंशत्^२—सखा पुं० [सं०] बयालीस की संख्या ।

द्वाज—सखा पुं० [सं०] किसी स्त्री का वह पुत्र जो उसके पति से उत्पन्न
न हो, दूसरे पुरुष से उत्पन्न हो । जारज । दोगला ।

द्वात्रिंश—वि० [सं०] बत्तीसवाँ ।

द्वात्रिंशत्^१—वि० [सं०] जो संख्या में तीस और दो हो । बत्तीस ।

द्वात्रिंशत्^२—सखा पुं० बत्तीस की संख्या या भ्रक ।

द्वादश^१—वि० [सं०] १. जो संख्या में दस और दो हो । बारह । २.
बारहवाँ ।

द्वादश^२—सखा पुं० बारह की संख्या या भ्रक ।

द्वादशक—वि० [सं०] बारह का ।

द्वादशकर—सखा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय । २. वृद्धस्वपति । ३. कार्ति
केय का एक अनुचर । ४. हव्यं योग ।

द्वादशपत्रक—सखा पुं० [सं०] विष्णु का द्वादशाक्षर मन्त्र । २. ब्रह्मा
द्वारा सनत्कुमार को उपदिष्ट योगविशेष ।

द्वादशपवन—सखा पुं० [सं०] दृढयोग के अनुसार यह साँस जो बारह
अंगुल तक प्रसारित होती है । उ०—द्वादस पवन भर पीठा ।
उसट घर शीघ्र को चढ़ाना ।—गमान०, पृ० ६ ।

द्वादशभाव—सखा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जन्मकृच्छो के
बारह घर जिनके ग्रह से तनु आदि नाम फलानुसार रहे
गए हैं ।

विशेष—जन्मकालीन लग्न से पहले घर से तनु (अर्थात् शरीर
की ओर होगा कि स्थूल, सबल कि निर्बल, नाटा कि सभा
इत्यादि), दूसरे घर से धन और कुटुम्ब, तीसरे से युद्ध और
विक्रम आदि, चौथे से बधु, वाहन, सुख और आलस्य, पाँचवें
से बुद्धि, मंत्रणा और पुत्र, छठे से चोट और शत्रु, सातवें से
काम, स्त्री और पथ, आठवें से धायु, मृत्यु, भ्रष्टवाद आदि;
नवें से गुरु, माता, पिता, पुण्य आदि, दसवें से मान, प्राज्ञा
और कर्म, ग्यारहवें से प्राप्ति और धाय, बारहवें घर से मन्त्री
और व्यवसाय का विचार किया जाता है ।

द्वादशरात्र—सखा पुं० [सं०] बारह दिनों में होनेवाला एक यज्ञ ।

द्वादशलौचन—सखा पुं० [सं०] कार्तिकेय ।

द्वादशवर्गी—सखा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में नीलकण्ठ साजिक
के अनुसार वर्षकाल में ग्रहों का फलाफल निकालने में बारह
वर्गों की समष्टि ।

विशेष—बारह वर्ग ये हैं—क्षेत्र, होरा, द्रव्यकाण्ड, चतुर्थांश,
पंचमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टमांश, नवमांश, दशमांश, एका-
दशांश और द्वादशांश ।

द्वादशवार्षिक—सखा पुं० [सं०] बारह वर्ष का एक व्रत जो ब्रह्महत्या
लगने पर किया जाता है ।

विशेष—इसमें हत्यारे को वन में कुटो बनाकर, उस वासनाघो
को त्याग करके रहना पड़ता है । यदि वनफलों से निर्वाह
न हो तो एक चिह्न धारण करके बस्ती में भिक्षा मांगनी
पड़ती है ।

द्वादशशुद्धि—सखा स्त्री० [सं०] वैष्णव संप्रदाय में तत्रोक्त बारह
प्रकार की शुद्धि ।

विशेष—देवगृह परिष्कार, देवगृह गमन प्रदक्षिणा, ये तीन
प्रकार की पदशुद्धि हैं । पूजा के लिये फूल पत्ते तोड़ना,
प्रतिमोत्थलन (स्पर्श आदि) यह हस्तशुद्धि हुई । भगवान्
का नामकीर्तन वाक्यशुद्धि है । हरिकृपा श्रवण, प्रतिमा
उत्सव आदि का दशन नेत्रशुद्धि हुई । विष्णुपादोदक और
निर्मल्यधारण तथा प्रणाम शिर की शुद्धि तथा निर्मल्य
और गंध पुष्पादि का सूँघना घ्राणशुद्धि है ।

द्वादशांग^१—वि० [सं० द्वादशाङ्ग] जिसके १२ अंग या अवयव हों ।

द्वादशांग^२—सखा पुं० १. बारह गंधद्रव्यों के योग से बनी हुई पूजा
में जलाने की धूप ।

विशेष—बारह द्रव्य ये हैं—गुग्गुल, चंदन, तेजपात, कुट, घगर, केशर, जायफल, कपूर, जटामासी, नागरमोथा, तज और खस ।

२. जैनों का वह ग्रंथसमूह जिसे वे गणधरों का बनाया मानते हैं ।

विशेष—इसके बारह भेद हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समावायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञानधर्मकथा, उपासक दशांग, भक्तकृद्शांग, अनुत्तरोपपत्तिकांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद ।

द्वादसांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशाङ्गी] जैनों के द्वादश ग्रंथों का समूह ।

द्वादशांगुल—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशाङ्गुल] एक बालिष्ठ । एक बिता परिमाण । बारह अंगुल की नाप [को०] ।

द्वादशांशु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

द्वादशांशु—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशांशु] १ कातिकेय । उ०—उभे षष्ठदश द्वादशांशु कहिए पुनि बीस । हैं सहस्र लोचन थके सुंदर ब्रह्म न दीस ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७६५ ।

द्वादशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कातिकेय । २. बुद्धदेव ।

द्वादशाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक मंत्र जिसमें बारह अक्षर हैं । वह मंत्र यह है, 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' ।

द्वादशाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

द्वादशात्मा—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशात्मन्] १ सूर्य । २ आकाश का पेट ।

द्वादशायतन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दर्शन के अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन और बुद्धि का समुदाय ।

द्वादशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बारह दिनों का समुदाय । २ एक यज्ञ जो बारह दिनों में किया जाता था । ३ वह श्राद्ध जो किसी के निमित्त उसके मरने से बारहवें दिन किया जाय ।

द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक पक्ष की बारहवीं तिथि ।

द्वादस—वि० [हि०] १० 'द्वादश' ।

यौ०—द्वादसनगर=पाँच तत्व, तीन गुण, मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार इन्हीं बारह से बना शरीररूपी नगर । द्वादशायसन । उ०—द्वादसनगर मंझार जो पुरुष बिराजहीं ।—घरम०, पृ० ४१ । द्वादस नाड़ी=द्वादश कला युक्त नाड़ी । पिंगला नाड़ी । उ०—षोडश नाड़ी चंद्र प्रकास्या द्वादशनाड़ी भान । सहस्र नाड़ी प्राण का मेला जहाँ अर्धकला सिव यान ।—गोरख०, पृ० ३७ ।

द्वादसवानी—वि० [सं०] ३० 'बाहवानी' । उ०—वह पद-मिनि चित्तज जो आनी । काया कुदन द्वादसवानी ।—जायसी (शब्द०) ।

द्वादसा—संज्ञा पुं० [सं० द्वादश] प्राणवायु । उ०—द्वादसा पञ्च करि सुरति दो दल धरी । दसो परकार अनहद वजायो ।—चरण० बानी, पृ० १३६ ।

द्वादसि—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशी] ३० 'द्वादशी' । उ०—एक समे द्वादसि दिसि घोरी । उठे नद कछु मति भई भोरी ।—नद० प्र०, पृ० ३१४ ।

द्वापर—संज्ञा पुं० [सं०] बारह युगों में तीसरा युग । पुराणों में यह युग ८,६४,००० वर्ष का माना गया है ।

विशेष—भारतों की कृष्ण त्रयोदशी बृहस्पतिवार को इस युग की उत्पत्ति मानी गई है । मत्स्यपुराण के अनुसार द्वापर सगते ही धर्म आदि में घटती आरंभ हुई । जिनके करने से त्रेता में पाप नहीं लगता था वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे । प्रजा लोभी हो चली । अज्ञान के कारण श्रुति स्मृति आदि का यथार्थ बोध लुप्त होने लगा । नाना प्रकार के भाष्य आदि बनने और मतभेद चलने लगे । उक्त पुराण के अनुसार द्वापर में मनुष्यों की परमायु दो हजार वर्ष की थी ।

द्वाव—संज्ञा पुं० [प्रा० दोभावा] दो नदियों के बीच का भूभाग ।

उ०—प्रायः बीस वर्ष तक गया यमुना का द्वाव का भूभाग दक्षिण भारत के शासक के हाथों में रहा ।—पू० म० भा०, पृ० ४० ।

द्वाभा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि+भाभा] रात दिन की संघिवेला । संध्या या उपकाल । उ०—जाहों की सुनी डामा में भूल रही निशि छाया गहरी । डूब रहे निष्प्रभ विषाद में खेत, बाग, गृह, तरु, तट सहरी ।—ग्राम्या, पृ० ६४ ।

द्वाभुष्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पुरुष जो दो मनुष्यों का पुत्र हो (एक का औरस और दूसरे का दत्तक) । २ वह पुरुष जो दो ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । ३ उद्दालक मुनि का नाम । ४ गोतम मुनि का नाम ।

द्धार—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी छोट करनेवाली या रोकनेवाली वस्तु (जैसे, दीवार परदा आदि) में वह छिद्र या खुला स्थान जिससे होकर कोई वस्तु आरपार या भीतर बाहर जा आ सके । मुख । मुहाना । मुहडा । जैसे, गंगाद्वार । २ घर में आने जाने के लिये दीवार में खुला हुआ स्थान । दरवाजा ।

मुद्दा—(किसी बात के लिये) द्वार खुलना=किसी बात के बराबर होने के लिये मार्ग या उपाय निकलना । द्वार द्वार फिरना=(१) कार्यसिद्धि के लिये चारों ओर बहुत से लोगों के यहाँ जाना । (२) घर घर भीख माँगना । द्वार लगना=(१) किवाड़ बंद होना । (२) किसी आसरे में दरवाजे पर खड़ा रहना । उ०—यह जान्यो जिय राधिका द्वारे हरि लागे । गवं कियो जिय प्रेम को ऐसे अनुरागे ।—सूर (शब्द०) । (३) छुपचाप किसी बात की माहट लेने के लिये किवाड़ के पीछे छिपकर खड़ा होना । द्वार लगाना=किवाड़ बंद करना ।

३ इन्द्रियों का मार्ग या छेद । जैसे, आँख, कान, मुँह, नाक आदि । उ०—नो द्वारे का पीजरा तामें पछी पीन । रहने को आश्रय है, गए अचमा कोन ।—कवीर (शब्द०) । ४. उपाय । साधन । जरिया । जैसे,—रुपया कमाने का द्वार ।

विशेष—सांख्यकारिका में अतः करण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेन्द्रियाँ उसका द्वार बतलाई गई हैं ।

द्धारकंटक—संज्ञा पुं० [सं० द्वारकण्टक] १. किवाड़ । कपाट । २. द्वार की अंगला या सितकिनी ।

द्धारकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] द्वार या दरवाजे का पत्ता [को०] ।

द्वारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठियावाड़ गुजरात की एक प्राचीन नगरी । उ०—धर पिच्छम निरखण मनधारे । परसण हरि द्वारका पधारे ।—रा० ६०, पृ० १२ ।

विशेष—पुराणानुसार यह सात पुरियों में मानी गई है । यहाँ द्वारकानाथ जी का मंदिर है । हिंदू लोग इसे चार धामों में मानते हैं और बड़ी श्रद्धा से यहाँ आकर ध्याप लेते हैं । इसे द्वारावती भी कहते हैं । यहाँ श्रीकृष्णचंद्र जरासंध के उत्पत्तियों के कारण मथुरा छोड़कर जा बसे थे । यही उस समय यादवों की राजधानी थी । पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण के देह-त्याग के पीछे द्वारका समुद्र में मग्न हो गई । पोरबंदर से १५ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान लोग अब तक षटलाते हैं । द्वारका का एक नाम कुण्डस्थली भी है ।

द्वारकाधोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रीकृष्णचंद्र । २ कृष्ण की वह मूर्ति जो द्वारका में है ।

द्वारकानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृष्णचंद्र । २ कृष्णचंद्र की वह मूर्ति जो द्वारका में है ।

द्वारकेश—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारकानाथ ।

द्वारगोप—संज्ञा पुं० [सं०] द्वाररक्षक । द्वारपाल [को०] ।

द्वारचार—संज्ञा पुं० [सं० द्वार + चार (= व्यवहार)] वह रीति जो लड़कीवाले के दरवाजे पर धारात पहुँचने पर पर होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्वारछेकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० द्वार + छेकना] १ विवाह में एक रीति । जब वर विवाह कर वधू समेत अपने घर आता है तब कोहबर के द्वार पर उसकी बहन उसकी राह रोकती है । उस समय वर कुछ नेग देता है तब वह राह छोड़ देती है । २. वह नेग जो द्वारछेकाई में दिया जाता है ।

द्वारदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० द्वारदर्शिन्] द्वारपाल । दरवान [को०] ।

द्वारदारु—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन की लकड़ी [को०] ।

द्वारनायक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'द्वारप' [को०] ।

द्वारपट्टि—संज्ञा पुं० [सं० द्वारपट्टित] १. किसी राजा के यहाँ का प्रधान पंडित । २. विद्यार्थियों की जाँच पड़ताल करके उन्हें गुरुकुल या विद्यालय के द्वार के भीतर प्रवेश की अनुमति देनेवाला पंडित । उ०—द्वारपट्टि (विद्यार्थियों को प्रवेश करानेवाले) घमंकोष आदि प्रमुख विश्वविद्यालय के कम चारी थे ।—भा० भा०, पृ० ४६३ ।

द्वारप—संज्ञा पुं० [सं०] १ द्वारपाल । उ०—द्वारपदभूष तब कोपित वेशा । वियो द्वारपन तुरत सदेशा ।—सबल (शब्द०) । २ विष्णु ।

द्वारपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वारपर टंगा हुआ परदा । चिक [को०]

द्वारपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'द्वारपटी' [को०] ।

द्वारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्वारपाली, द्वारपालिन] १ वह पुरुष जो दरवाजे पर रक्षा के लिये नियुक्त हो । दूधोड़ीदार । दरवान ।

पर्या०—प्रतीद्वार । द्वाःस्थ । द्वारप । दर्शक । दो साधिक । वतं-रूप । गर्वाट । द्वारस्थ । क्षता । दोवारिक । दही ।

२ तत्र के अनुसार वह देवता जो किसी मुख्य देवता के द्वार का रक्षक हो । इन देवताओं की पूजा पहले की जाती है । ३. एक तीर्थ । महाभारत में इसे सगस्वती के किनारे लिखा है ।

द्वारपालक—संज्ञा पुं० [सं० द्वारपाल] ।

द्वारपिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारपिण्डी] देहली । दूधोड़ी । दहलीज ।

द्वारपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] भरगल । दरवाजा बंद करने के लिये लगी हुई किल्ली [को०] ।

द्वारपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाह में एक कृत्य जो कन्यावाले के द्वार पर उस समय होता है जब धारात के साथ वर पहले पहल आता है । कन्या का पिता द्वार पर स्थापित कसण भावि का पूजन करके अपने दूध मिर्चों सहित वर को उतारता और मधुपर्क देता है । २. जैनो की एक पूजा ।

द्वारवलिभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बक । बगला । २ काक । कौमा ।

द्वारवलिभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'द्वारवलिभुक्' ।

द्वारयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० द्वारयन्त्र] ताला ।

द्वारवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारावती । द्वारका ।

द्वारसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पुराना नगर ।

विशेष—यहाँ कर्नाटक के राजाओं की राजधानी थी । इसके खहहर भव तक श्रीरंगपट्टन से वायुकोण पर सी मोल पर है ।

द्वारस्थ^१—वि० [सं०] जो द्वार पर बैठा हो ।

द्वारस्थ^२—संज्ञा पुं० द्वारपाल ।

द्वारा^३—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] १ द्वार । दरवाजा । फाटक । उ०—सुनि के शब्द मँडफ भनकारा । बैठेउ प्राय पुरुष के द्वारा ।—जायसी (शब्द०) । २ मार्ग । राह । उ०—साधन धाम मोच्छ करि द्वारा । पाइ न जेहि परलोक संवारा ।—सुलसी (शब्द०) ।

द्वारा^४—अव्य० [सं० द्वारात्] जरिए से । वसीले से । साधन से । हेतु से । कारण से । कर्तृत्व से । मार्फत ।

मुहा०—किसी के द्वारा = (१) किसी के करने से । जैसे,—यह कार्य उसी के द्वारा हुआ है । (२) किसी के योग या सहायता से । किसी की मध्यस्थता द्वारा किसी के मारफत । जैसे,—चिट्ठी आदमी के द्वारा भेज दो । (३) किसी वस्तु के उपयोग से जैसे,—मशीन के द्वारा काम अच्छी होगा ।

द्वाराचार—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'द्वारचार' ।

द्वारादेयशुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] कीटस्थ के अनुसार द्वार पर देय कर । दरवाजे पर लिया जानेवाला महसूल । चुगी ।

द्वाराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल ।

द्वाराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'द्वाराधिप' [को०] ।

द्वारापुर^५—संज्ञा पुं० [सं० द्वार + पुर] द्वारकापुरी । द्वारावती । उ०—हालांकि ते बेहाल, स्वप्न द्वारापुर भायो । चोकि चकित हूँ रहे रूप बेरी को छायो ।—नठ०, पृ० ४२ ।

द्वारामती—सज्ञा स्त्री० [सं० द्वारावती] दे० 'द्वारावती' । उ०—
द्वारामती शरीर न छाड़ा । जगननाथ से व्यड नगाडा ।
—कबीर ग्र०, पृ० २४३ ।

द्वारावति^(५)—सज्ञा स्त्री० [सं० द्वारावती] दे० 'द्वारावती' । उ०—
महो चद रस कद हो, जात भगहि उहि देख । द्वारावति नंद-
नद सों, कहियो बलि सदेस ।—नंद०, ग्र०, पृ० १९२ ।

द्वारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका ।

द्वारासन—सज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वैकुण्ठ के द्वार पर स्थित
भासन जिसके द्वारपाल जय श्रीर विजय कहे गए हैं । उ०—
हिरनाकुश पर जन्म घराई । सो द्वारासन लेही भाई ।—
कबीर सा०, पृ० ८४६ ।

द्वारिक—सज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल । दरबान ।

द्वारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्वारका' । उ०—पूर्व में सविया
परशुराम कुंड से द्वारिका तक ही पहुँच पाए ।—किन्नर०,
पृ० १०२ ।

द्वारी^१—सज्ञा स्त्री० [सं० द्वार + ई (प्रत्य०)] छोटा द्वार । दरवाजा ।
उ०—द्वारी निहारि पछीति की भीति में डेर सखी मुख बात
सुनाई ।—प्रताप (शब्द०) ।

द्वारी^२—सज्ञा पुं० [सं० द्वारिन्] द्वारपाल ।

द्वाल—सज्ञा पुं० [फा० दुवाल] दे० 'दुवाल' ।

द्वालबंद—सज्ञा पुं० [फा० दुवालबन्द] दे० 'दुवालबंद' । उ०—
द्वालबंद कर कसे कमाले तीर भवुक ना होई ।—स० दरिया,
पृ० ११० ।

द्वाला^(५)—सज्ञा पुं० [हि०] दल, छंद या गीत का चरण । उ०—
बिच भवर भवर दालो बरौ जात विरुध सो जाए बै ।
—रघु० रु०, पृ० १४ ।

द्वाली—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दुवाली' ।

द्वारिंश—वि० [सं०] बाईसवाँ ।

द्वारिंशति—वि० [सं०] जो सख्या में बीस और दो हो । बाईस ।

द्वारषष्ठ—वि० [सं०] बासठवाँ ।

द्वारषष्टि—वि० [सं०] जो गिनती में साठ और दो हो । बासठ ।

द्वारसप्त—वि० [सं०] बहतरवाँ ।

द्वारसप्ति—वि० [सं०] जो गिनती में सत्तर और दो हो । बहतर ।

द्वारस्थ—सज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल ।

द्विः—अभ्य० [सं० द्विर्] दो दफा । दो बार [को०] ।

द्वि—वि० [सं०] दो ।

द्विक^१—वि० [सं०] १ जिसमें दो अवयव हों । २ दोहरा । ३
दूसरा । द्वितीय (को०) ।

द्विक^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ काक । २ कोक । चकवा ।

द्विककार—सज्ञा पुं० [सं०] १ चक्रवाक । चकवा । २ कीवा [को०] ।

द्विककुट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] ऊँठ ।

द्विकर—सज्ञा पुं० [सं०] दोनों हाथ । उ०—गहो मेरे द्विकर, ग्रहो, मेरे
प्रवर, ग्रहो मेरे इतर, ग्रहो मेरे चयन ।—भाराघना, पृ० ४७ ।

५-२२

द्विकर्मक—वि० [सं०] (क्रिया) जिसके दो कर्म हों ।

द्विकल—सज्ञा पुं० [हि० द्वि + कल] छंदशास्त्र या विंगल में दो
मात्राओं का समूह ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है । एक में तो तीनों मात्राएँ
पृथक् पृथक् रहती हैं, जैसे,—जल, चल, वन, धन इत्यादि
और दूसरे में एक ही मसर दो मात्राओं का होता है जैसे,—
खा, जा, ला, भा, का इत्यादि ।

द्विस्वार—सज्ञा पुं० [सं०] शोरा और सज्जी ।

द्विगु^१—वि० [सं०] जिसे दो गाएँ हों ।

द्विगु^२—सज्ञा पुं० वह कर्मधारय समास जिसका पूर्वपद सख्या-
वाचक हो ।

विशेष—यह समास तीन प्रकार का होता है—तद्वितार्थ, जैसे—
पंचगु अर्थात् जिसे पाँच गो देकर मोल लिया हो; उत्तरपद,
जैसे,—पचकोण अर्थात् जिसमें पाँच कोण हों, और समा-
हार, जैसे, त्रिलोकी, अर्थात् तीनों लोक, त्रिभुवन । पाणिनि
ने इस समास को कर्मधारय के अंतर्गत रखा है पर और
वेदाकरण इसे एक स्वतंत्र समास मानते हैं ।

द्विगुण—वि० [सं०] दुगना । दूना ।

द्विगुणित—वि० [सं०] १ दो से गुणा किया हुआ । जिसे दुपना
किया गया हो । २ दूना । दुगना । उ०—नौका मेरी
गति से चल पड़ी ।—भरना, पृ० ३४ ।

द्विगूढ—सज्ञा पुं० [सं० द्विगूढ] लास्य के दस धनों में से एक । वह
गीत जिसमें सब पद सम और सुंदर हों, सधियाँ वर्तमान
द्विगुणित हों तथा रस और भाव सुसंपन्न हों (नाट्यशास्त्र) ।

द्विघटिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दो घड़ियों के हिसाब से निकाला
हुआ मुहूर्त ।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है । रात
दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त कर देते
हैं और फिर शुभाशुभ का विचार करते हैं । इस मुहूर्त में
दिन का विचार नहीं होता । सब दिन सब और की यात्रा
हो सकती है । इसका व्यवहार उस स्थल पर होता है जहाँ
कई दिन ठहरने या रुकने का समय नहीं रहता ।

द्विचत्वारिंश—वि० [सं०] बयालीसवाँ ।

द्विचत्वारिंशतू—वि० [सं०] जो बयालीस से दो अधिक हो । बयालीस ।

द्विचरण—सज्ञा पुं० [सं०] दो पैरवाले प्राणी [को०] ।

द्विज^१—सज्ञा पुं० [सं०] जो दो बार उत्पन्न हुआ हो । जिसका जन्म
दो बार हुआ हो ।

द्विज^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मज प्राणी । २ पक्षी । ३ हिंदुओं में
ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के पुरुष जिनको शास्त्रानुसार
यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है । मनु के धर्मशास्त्र
के अनुसार यज्ञोपवीत मनुष्य का दूसरा जन्म माना गया है ।
४. ब्राह्मण । उ०—जीवी कीरि बरीस प्रसीसत द्विज बंदी-
जन बोलत निरुदाय ।—घनानंद, पृ० ४८० । ५. चंद्रमा ।

विशेष—पुराणों में कथा है कि चंद्रमा का दो बार जन्म हुआ था। एक बार ये ऋषिपुत्र हुए थे और दूसरी बार समुद्र के मथन के समय समुद्र से निकले थे।

६ दौत। उ०—द्विज पक्षी को कहत कवि, द्विज कहिए पुनि दत। सीनि घहन द्विज सब भले, जब जानै भगवत।—भनेकार्य०, पु० १३५। ७ तुवुव। नैपाली धनियाँ। ८. तारा। तारका (की०)। ९ अश्वचिकित्सा के अनुसार एक प्रकार का घोड़ा। अश्व का एक भेद (की०)।

द्विजचक्र(७)—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण वर्ण। ब्राह्मणों का समूह। उ०—मद करी मुख रुचि चंद चकता की कियो भूषण भुषित द्विजचक्र स्नान पान सों।—भूषण ग्रं०, पृ० ४९।

द्विजजानि—संज्ञा पु० [सं०] दो पत्नीवाला पुरुष। वह जिसकी दो पत्नियाँ हों (की०)।

द्विजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणत्व। द्विजत्व। उ०—द्विजता सक मासतायिनी, वष में है कष दोषदायिनी।—साकेत, पु० ३७५।

द्विजदंपति—संज्ञा पु० [सं० द्विज + दम्पती] चाँदी का एक पत्तर जिसपर स्त्री पुरुष या लक्ष्मीनारायण का युगल चित्र खुदा रहता है। यह स्त्रियों के मृतक कर्म में दशाह के बाद ब्राह्मण को दान में दिया जाता है।

द्विजदेव—संज्ञा पु० [सं०] अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह का कविता में प्रयुक्त उपनाम। उ०—गिरिधरदास (भारवेदु के पिता) और द्विजदेव (अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह) और सेवक बहुत अच्छे कवि हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६९।

द्विजनारि(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विज + नारी] ब्राह्मणी। उ०—जसुमति महाप्रवीन एक द्विजनारि बुलाई।—नद० ग्रं०, पृ० १६४।

द्विजन्मा^१—वि० [सं० द्विजन्मन्] जिसका दो बार जन्म हुआ हो।

द्विजन्मा^२—संज्ञा पु० दे० 'द्विज'।

द्विजपति—संज्ञा पु० [सं०] १ ब्राह्मण। २. चंद्र। ३ कपूर। ४ गरुड़।

द्विजप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम।

द्विजबंधु—संज्ञा पु० [सं० द्विजबन्धु] सस्कार या कर्महीन द्विज। नाममात्र का द्विज।

द्विजब्रुव—संज्ञा पु० [सं०] १ नाममात्र का द्विज, जिसका जन्म तो द्विज माता पिता से हुआ हो पर वह स्वयं द्विजों के सस्कार और कर्म से हीन हो। २. ब्राह्मणब्रुव। नाम मात्र का ब्राह्मण।

द्विजराज—संज्ञा पु० [सं०] १ ब्राह्मण। २. चंद्रमा। ३ कपूर। ४ गरुड़। ५ श्रेष्ठ ब्राह्मण।

द्विजलिङ्गी—संज्ञा पु० [द्विजलिङ्गिन] १ शूद्र या दूसरे वर्ण का होकर ब्राह्मण का वेश धारण करनेवाला मनुष्य।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड वध लिखा है।

२ क्षत्रिय।

द्विजबाहन—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु।

द्विजव्रण—संज्ञा पु० [सं०] दौत का एक रोग। दंतावृंद।

द्विजशप्त—संज्ञा पु० [सं०] चबूट। भटवाईस। (ब्राह्मण इसे गद्दी खाते)।

द्विजसेवक—संज्ञा पु० [सं०] द्विज का सेवक। शूद्र (की०)।

द्विजांगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विजाङ्गिका] कुटकी।

द्विजांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विजाङ्गी] कुटकी।

द्विजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ब्राह्मण या द्विज की स्त्री।

२. रेणुका। सभालू का बीज। यह गघद्रव्यों में है। ३.

पालक का शाक (यह एक बार काटे जाने पर फिर होता है। ४. भारंगी। ५. पान की बेल। उ०—ताबूली,

महिबल्लरी, द्विजा, पान की बेल।—नद ग्रं०, पृ० १०६।

द्विजाग्रज—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाग्र्य—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाति—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। द्विज।

२. ब्राह्मण। ३. शंखज। ४. पक्षी। ५. दौत।

द्विजानि—संज्ञा पु० [सं०] वह पुरुष जिसके दो स्त्रियाँ हों।

द्विजायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञोपवीत।

द्विजिह्व^१—वि० [सं०] १ जिसे दो जीभें हों। २. इधर उधर लगाने-वाला। सूचक। घुलखोर। ३. खल। दुष्ट। ४. चोर। ५. दुःसाध्य।

द्विजेह्व^२—संज्ञा पु० [सं०] १ साँप। २ एक रोग।

द्विजेन्द्र—संज्ञा पु० [सं० द्विजेन्द्र] १. चंद्रमा। २. ब्राह्मण। ३. गरुड़। ४. कपूर।

द्विजेन्द्रलाल—संज्ञा पु० [सं०] बंगला भाषा के ख्यातनाम कवि और नाटककार का नाम।

द्विजेश—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा। २. ब्राह्मण। ३. कपूर। ४. गरुड़।

द्विजोत्तम—संज्ञा पु० [सं०] द्विजों में श्रेष्ठ। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

द्विट—संज्ञा पु० [सं०] द्विष् शब्द का समासगत रूप।

द्विट्सेवी—संज्ञा पु० [सं० द्विट्सेविन्] राजशत्रुसेवी। वह जो राजा के शत्रु से मिला हो या मित्रता रखता हो।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड वध लिखा है।

द्विठ—संज्ञा पु० [सं०] १. विसर्ग। २. स्वाहा।

द्वित—संज्ञा पु० [सं०] १ एक देवता का नाम। २. एक ऋषि का नाम जो तीन भाई थे—एकत, द्वित और त्रित।

द्वितय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वितयी] १ जिसके दो भक्त हों। जो दो से मिलकर बना हो। २. दोहरा।

द्वितय^२—संज्ञा पु० जोड़ा। मिथुन (की०)।

द्वितिय(७)—वि० [सं० द्वितीय] [वि० स्त्री० द्वितीया] दे० 'द्वितीय'। उ०—(क) बाएँ दाहिने है सहिदानी। एक द्विष धर्म द्वितिय धर्म धानी।—कबीर सा०, पृ० ८२। (ख)

प्रथमा, द्वितिया, बहुरि तृतीया जानिए ।—पोद्दार अभि०
ग्र०, पु० ५२६ ।

द्वितीय'—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वितीया] दूसरा ।

द्वितीय^२—सञ्ज्ञा पुं० १ पुत्र ।

विशेष—आत्मा ही पुत्र रूप से जन्म ग्रहण करता है । इससे
यह नाम पड़ा ।

२ साथी । सहायक । मित्र (विशेषतः समासांत में प्रयुक्त) ।
३. जोड़ । समकक्ष (को०) । ४ वर्ग का दूसरा अक्षर—ख,
ख, ठ, य और फ (को०) । ५. मध्यम पुरुष (व्याकरण) ।
६ भाषा । पद्यभाग (को०) ।

द्वितीय—क्रि० वि० [सं० द्वितीयम्] दूसरी बार । फिर (को०) ।

द्वितीयक—वि० [सं०] दूसरा ।

द्वितीयत्रिफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गभारी ।

द्वितीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि । दूज ।
२. वाम माग के अनुसार मास । ३. पत्नी । स्त्री ।
सहस्रमिणी (को०) ।

द्वितीयाकृत—वि० [सं०] खेत जो दो बार जोता गया हो ।

द्वितीयाभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दारहल्दी ।

द्वितीयाश्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गार्हस्थ्य माश्रम ।

द्वित्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दो भाव । २. दोहरे होने का भाव ।
२. दो की सख्या (को०) ।

द्विदंत—वि० [सं० द्विदन्त] दो दाँतोंवाला । जिससे दो दाँत हों ।

द्विदल^१—वि० [सं०] १, जिसमें दो दल या पिंड हों । जो दो ऐसे
खंडों से मिलकर बना हो जो खूब जुड़े हों, पर कूटने,
दबाने आदि से अलग हो सकें । जैसे, घरदूर, चना आदि
अन्न । २. जिसमें दो पंख हों । ३. जिसमें दो पटल या पंख-
झियाँ हों । ४ जिसमें दो दल हों । जिसमें दो गुट हों ।

द्विदल^२—सञ्ज्ञा पुं० वह अन्न जिसमें दो दल हों । दास ।

द्विदल शासनप्रणाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की
शासन प्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो भिन्न
व्यक्तियों के हाथ में रहता है । द्वैध शासनप्रणाली । दुहत्या
शासन । वि० दे० 'डायार्की' ।

द्विदश—वि० [सं० द्वि + दश] बारह । उ०—वे कार्य भी द्विदश
वत्सर की अवस्था । ऊधो न क्यों फिर नरत्न मुकुट होंगे ।—
प्रिय०, पु० १६६ ।

द्विदामा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्विदाम्नी' । २ दो रस्तियों से
बँधी हुई घोड़ी । उ०—दो रस्तियों में बँधी हुई घोड़ी द्विदामा
तथा खुली हुई घोड़ी उद्दामा कही जाती थी ।—संपूर्ण०
अभि० प्र०, पु० २८४ ।

द्विदाम्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दो रस्तियों से बँधी हो ।
सटखट गाय ।

द्विदेवता^१—वि० [सं०] १. दो देवताओं से संबंध रखनेवाला
(चर आदि) । जो दो देवताओं के लिये हो । २. जिसके
दो देवता हों ।

द्विदेवता^२—सञ्ज्ञा पुं० विधाखा नक्षत्र ।

द्विदेह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

विशेष—पुराणों में कहा है कि गणेश का सिर एक बार कट
गया था, फिर हाथी का सिर जोड़ा गया था ।

द्विद्वादश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष का एक योग । जब
वर के जन्मलग्न से कन्या का जन्मलग्न दूसरे पड़े और कन्या
के जन्मलग्न से वर का जन्मलग्न बारहवें पड़े तो उसे 'द्विद्वादश'
कहते हैं । यह विवाह की गणना में प्रतिषेध अनुष्ठान माना
गया है ।

द्विध—वि० [सं०] दो भागों में बँटा हुआ ।

द्विधा^१—क्रि० वि० [सं०] १. दो प्रकार से । दो तरह से । २. दो
खंडों में । दो टुकड़ों में ।

द्विधा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० दुवधा] दे० 'दुवधा' । उ०—द्विधा रहित
अपलक नयनों की भूखमरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी,
पु० १२ ।

द्विधाकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दो हिस्सों में बाँटना । दो भागों में
विभाजन (को०) ।

द्विधागति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उभर जंतु । २. मगर । ३.
केकड़ा (को०) ।

द्विधातु^१—वि० [सं०] जो दो धातुओं के संयोग से बना हो ।

द्विधातु^२—सञ्ज्ञा पुं० १. दो धातुओं में से बनी हुई मिश्रित धातु ।
२. गणेश ।

द्विधात्मक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

द्विधाद्वंद्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विधाद्वन्द्व] १. सदेह । भ्रम । २. विघ्न ।
बाधा (को०) ।

द्विधालेख्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हिताल का पेड़ ।

द्विनग्नक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुश्चर्म' ।

द्विनवति—वि० [सं०] बानवे ।

द्विनेत्रभेदी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० द्विनेत्रभेदिन्] वह मनुष्य जिसने किसी
की दोनों आँखें फोड़ दी हों ।

विशेष—कीटिल्य ने यह लिखा है कि जो लोग यह अपराध
करते थे उनकी दोनों आँखें योगांजन लगाकर फोड़ दी जाती
थीं । घुरमाने के रूप में ८०० पण देकर लोग इस दंड से बच
सकते थे ।

द्विपंचमूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० द्विपञ्चमूली] दशमूली ।

द्विपंचाशत्—वि० [सं०] बावन ।

द्विपंचाशत्तम—वि० [सं० द्विपञ्चाशत्तम] बावनवाँ ।

द्विप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी । २. नागकेसर ।

द्विपक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसके दो पक्ष हों । २. जिसमें दो पक्ष हों ।

द्विपक्ष^२—सञ्ज्ञा पुं० १. पक्षी । चिड़िया । २. महीना । मास ।

द्विपक्षमूली—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दशमूल ।

द्विपटवान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार दोहरे अर्ज का
करड़ा ।

द्विपथ—सङ्घा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दो पथ आकर मिलते हैं। दोराहा।

द्विपद्¹—वि० [सं०] १ जिसके दो पैर हो। जैसे, मनुष्य, पक्षी।
२ जिसमें दो पद या शब्द हों।

द्विपद्²—सङ्घा पुं० १ वह जंतु जिसके दो पैर हो। २ मनुष्य। ३. ज्योतिष के अनुसार मियुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनु सप्त का पूर्व भाग। ४ वास्तुमंगल का एक कोठा।

द्विपदा—सङ्घा स्त्री० [सं०] वह ऋचा जिसमें केवल दो पद या पाद हों।

द्विपदिक—सङ्घा पुं० [सं०] शुद्धराग का एक भेद।

द्विपदिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'द्विपदी' [को०]।

द्विपदी—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ वह छंद या वृत्ति जिसमें दो पद हों।
२ दो पदों का गीत। ३ एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें किसी बोहे आदि को कोष्ठों की तीन पक्तियों में लिखते हैं।

विशेष—यह चित्रकाव्य इस प्रकार लिखते हैं कि दोहे के पहले चरण का अक्षर पहले कोठे में, फिर एक एक अक्षर छोड़कर पहली पक्ति के कोठों में भरते हैं, इसके उपरांत छूटे हुए अक्षरों को दूसरी पक्ति के कोठों में एक एक करके रख देते हैं। इसी प्रकार तीसरी पक्ति के कोठों में बोहे के दूसरे चरण के अक्षर, एक एक अक्षर छोड़ते हुए, रखते हैं। इन्हीं तीन कोष्ठ पक्तियों से पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है। पढ़ने का क्रम यह होना चाहिए कि पहले कोठे के अक्षर को पढ़कर उसके नीचेवाले कोठे के अक्षर को पढ़ें, फिर पहली पक्ति के दूसरे अक्षर को पढ़कर उसके नीचे के (दूसरी पक्ति के दूसरे) कोठे के अक्षर को पढ़ें। तीसरी पक्ति के कोठों के अक्षरों को नीचे से ऊपर इस क्रम से पढ़ें अर्थात् प्रथम द्वितीय कोष्ठ के क्रम से पढ़कर फिर तृतीय द्वितीय कोष्ठ के अक्षरों को पढ़ें, जैसे,—

रा	दे	न	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	घ	न	द	रि
घा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	घा

रामदेव नरदेव गति, परशु घनन मद धारि।

वामदेव गुरदेव गति पर कुधरन हृद धारि।

द्विपर्णी—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक प्रकार के जंगली बेर का पेड़। बनकोली।

द्विपद्³—वि० [सं०] १ जिसे दो पैर हों। दो पैरोंवाला (पशु)।
२ जिसमें दो पद या चरण हों (छंद आदि)।

द्विपद्⁴—सङ्घा पुं० मनुष्य, पक्षी आदि दो पैरवाले जंतु।

द्विपद्वघ—सङ्घा पुं० [सं०] दोनों पैर काटने का दह।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि जो लोग मृत पुरुष की जाय-दाद आदि की खोरी करते थे, उन्हें यह दह दिया जाता था।

द्विपाय—सङ्घा पुं० [सं०] निदिष्ट दह से दूना दह [को०]।

द्विपायी—सङ्घा पुं० [सं०] द्विपायिन् [स्त्री० द्विपायिनी] हाथी।

द्विपास्य—सङ्घा पुं० [सं०] गणेश (जिनका मुख हाथी के मुख के समान है)।

द्विपृष्ठ—सङ्घा पुं० [सं०] जैनों के नौ वासुदेवों में से एक।

द्विवाहू¹—वि० [सं०] जिसके दो बाहु हो। द्विभुज।

द्विवाहू²—सङ्घा पुं० मनुष्य आदि दो पैरवाले जीव।

द्विविन्दु—सङ्घा पुं० [सं०] द्विविन्दु [को०]।

द्विभात—सङ्घा पुं० [सं०] प्रकाश। चमक। द्यामा [को०]।

द्विभाव¹—सङ्घा पुं० [सं०] दो भाव। दुराव।

द्विभाव²—वि० जिसमें दो भाव हों। कपटी। बुरे स्वभाव का।

द्विभाषी—सङ्घा पुं० [सं०] द्विभाषिन् [स्त्री० द्विभाषिणी] वह पुरुष जो दो भाषाएँ जानता हो। दुभाषिया।

द्विभुज¹—वि० [सं०] जिसके दो हाथ हों। दो हाथवाला।

द्विभुज²—सङ्घा पुं० कोण। वह स्थान जहाँ दो भुज मिलें।

द्विभूम—वि० [सं०] दोतला (घर)।

द्विमातृ—सङ्घा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) जरासभ।

द्विमातृज—सङ्घा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) १ जरासभ। २ गणेश।

द्विमात्र—सङ्घा पुं० [सं०] वह वस्तु जो दो मात्राओं का हो। दीघ।
जैसे,—घा, ऊ, की इत्यादि।

द्विमीढ—सङ्घा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार हस्तिनापुर बसानेवाले महाराज हस्ति का एक पुत्र। यह अजमीढ़ का भाई था।

द्विमुख¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्विमुखी] जिसके दो मुँह हों।

द्विमुख²—सङ्घा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के कृमि जो पेट के मल में उत्पन्न हो जाते हैं। २ दो मुँहवाला साँप। गूँगी।

द्विमुखा—सङ्घा स्त्री० [सं०] जोंक।

द्विमुखी¹—वि० स्त्री० [सं०] दो मुँहवाली।

द्विमुखी²—सङ्घा स्त्री० १ वह गाय जो बच्चा दे रही हो।

विशेष—बच्चा देते समय गाय के पीछे की ओर बच्चे का मुँह निकलता है, इससे देखने में गाय के दोनों ओर मुख दिखाई पड़ता है। ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है।

द्वियजुष¹—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट जो यज्ञों में यज्ञकुंड, मंडप आदि बनाने में काम आती थी।

द्वियजुष²—सङ्घा पुं० यजमान।

द्विर—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'द्विरेफ' [को०]।

द्विरद—सङ्घा पुं० [सं०] १ हाथी। १. दुर्योधन का एक भाई। उ०—
द्विरदहि बहुरि बोलाइ नरेशा। सौंवि गर्वद यूय उपदेशा।—
सबल (शब्द०)।

द्विरद³—वि० दो रद अर्थात् दाँतोवाला।

द्विरदांतक—सङ्घा पुं० [सं०] द्विरदान्तक [सिंह] [को०]।

द्विरदाशन—सङ्घा पुं० [सं०] सिंह।

द्विरसन—सङ्घा पुं० [सं०] साँप।

द्विरसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सपिण। सपिणी। २. दो प्रकार की बातें करनेवाली स्त्री। धूर्ता स्त्री। उ०—जो द्विरसने हम-को मार, कठिन तेरा उचित न्याय विचार।—साकेत, पृ० १७६।

द्विरागमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनरागमन। फिर दूसरी बार भाना। २. वधू का अपने पति के घर दूसरी बार भाना। दोगा।

द्विरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] दो रातों में होनेवाला एक यज्ञ।

द्विराप—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

द्विरुक्त^१—वि० [सं०] दो बार कहा गया। दुहराकर कहा गया।

द्विरुक्त^२—संज्ञा पुं० पुनरुक्त कथन। दो बार कही गई बात [को०]।

द्विरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो बार कथन।

द्विरुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका एक बार एक पति से और दूसरी बार दूसरे पति से विवाह हुआ हो। पुनर्भू।

द्विरेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो भिन्न भिन्न पशुओं से उत्पन्न पशु। जैसे, घोड़े और गधे से उत्पन्न सचचर। २. दोगला।

द्विरेता—संज्ञा पुं० [सं०] द्विरेतस् दोगला पशु [को०]।

द्विरेक—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौरा। उ०—दुर्जन द्विरेक दारुण भ्रकार के मचाने में कभी न चूकेंगे।—श्यामा०, पृ० ४।

द्विवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोमुँहाँ साँप। २. एक कृमिरोग।

द्विवक्त्र^२—वि० दो मुँहवाला [को०]।

द्विवचन—संज्ञा पुं० [सं०] दो का बोध करानेवाला वचन (व्याकरण)।

द्विवक्त्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वह घर जिसमें सोलह कोण हों। सोलहकोना घर।

द्विवाहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूला। द्विठोला [को०]।

द्विबिंदु—संज्ञा पुं० [सं०] द्विविन्दु] विसर्ग।

द्विविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण के अनुसार एक बदर जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था। २. विष्णुपुराण के अनुसार एक बदर। यह नरकासुर का मित्र था। इसे बलबेब जी ने मारा था।

द्विविध^१—वि० [सं०] दो प्रकार का।

द्विविध^२—क्रि० वि० दो प्रकार से।

द्विविधा^३—संज्ञा पुं० [सं०] द्विविध] दुवधा।

द्विवेद—वि० [सं०] दो वेद पढ़नेवाला।

द्विवेदी—संज्ञा पुं० [सं०] द्विवेदिन्] ब्राह्मणों की एक उपजाति। दूबे।

द्विवेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो पहियों की छोटी गाड़ी।

द्वित्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के त्रण या धाव।

विशेष—सुश्रुत ने त्रण दो प्रकार के माने हैं। एक शारीर दूसरा प्राणतुक। जो धाव वायु, रक्त, पित्त और कफ से फोड़े आदि के रूप में होता है उसे शारीर त्रण और जो किसी जंतु के काटने आदि से हो उसे प्राणतुक त्रण कहते हैं।

द्विशत—वि० [सं०] दो सौ।

द्विशत्य—वि० [सं०] दो सौ देकर खरीदा गया [को०]।

द्विशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसके खुर फटे हों। दो खुर-वाला पशु। जैसे, गाय, भेड़, हिरन इत्यादि।

द्विशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार कन्या, मिथुन, घनु और मीन राशियाँ, जिनका प्रथमार्ध स्थिर और द्वितीयार्ध चर माना जाता है।

द्विशिर—वि० [हिं० द्वि + शिर] दो शिरवाला। जिसके दो सिर हों।

मुहा०—कौन द्विशिर है? = किसे फालतू सिर है? किसे अपने मरने का भय नहीं है? उ०—मुझारे दुख का कारण न जानने से हमको बड़ा क्लेश होता है। क्या हमसे कोई अपराध हुआ अथवा और किसी ने द्विशिर होना चाहा है?—कादंबरी (शब्द०)।

द्विशीर्ष^१—वि० [सं०] जिसके दो सिर हों।

द्विशीर्ष^२—संज्ञा पुं० अग्नि।

द्विषंतप—वि० [सं०] शत्रुओं को ताप देनेवाला [को०]।

द्विष^१—वि० [सं०] द्वेष रखनेवाला।

द्विष^२—संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्विष^३—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। दुश्मन।

द्विष^४—वि० दे० 'द्विष'।

द्विषत्—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विष'।

द्विष्ट^१—वि० [सं०] जिससे द्वेष हो।

द्विष्ट^२—संज्ञा पुं० ताम्र। तंबा।

द्विष्ट^३—वि० [सं०] दो में समिलित। उभयनिष्ठ [को०]।

द्विसप्तति^१—वि० [सं०] १. बहत्तर। २. बहत्तरवाँ।

द्विसप्तति^२—संज्ञा स्त्री० बहत्तर की संख्या।

द्विसप्ताह—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। पाख। पंद्रह दिन [को०]।

द्विसम—वि० [सं०] दो समान प्राण या भागवाला [को०]।

द्विसमन्निभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज जिसकी कोई दो रेखाएँ समान हों [को०]।

द्विसहस्र—वि० [सं०] १. दो हजार में क्रीत। २. दो हजार [को०]।

द्विसहस्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शेष नाम [को०]।

द्विसाहस्र—वि० [सं०] दे० 'द्विसहस्र' [को०]।

द्विसीत्य—वि० [सं०] एक बार लबाई और फिर चौड़ाई में जोता हुआ। दो बार जोता हुआ (खेत आदि)।

द्विस्विन्नान्न—संज्ञा पुं० [सं०] उबाले हुए धान का चावल। मुजिया चावल।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण में यति विषया और ब्रह्मचारी के लिये इसका खाना निषिद्ध कहा गया है। देवपूजन आदि में भी इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा गया है।

द्विहन्—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी (जो सूँढ़ से मारता है)।

द्विहरिद्रा—सङ्घा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी ।

द्विहृत्—वि० [सं०] दे० 'द्विसोत्य' [को०] ।

द्विहा—सङ्घा पुं० [सं० द्विहर] हाथी । करी ।

द्विहायन—वि० [सं०] दो वर्ष का [को०] ।

द्विहायनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] दो वर्ष की गाय [को०] ।

द्विहृदया—वि० स्त्री० [सं०] गर्भिणी । गर्भवती ।

द्वीन्द्रिय—सङ्घा पुं० [सं० द्वीन्द्रिय] वह जंतु जिसके दो ही इंद्रियां हों ।

द्वीतः—सङ्घा पुं० [सं० द्वैत] दे० 'द्वैत' । उ०—सुंदर समुह एक है अनसमर्पे की द्वीत । उमे रहित सद्गुरु कहै सोहै बचना-सीत ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६७१ ।

द्वीपंती—सङ्घा स्त्री० [सं० दीपवती] नदी । सरित् । उ०—शैवालनि, स्रोतस्विनी, द्वीपती, जलमाल । आप गान की वार में, सोच कहा है बाल ।—नंद प्र०, पृ० १८ ।

द्वीप—सङ्घा पुं० [सं०] १ स्थल का वह भाग जो चारों ओर जल से घिरा हो ।

विशेष—बड़े द्वीपों को महाद्वीप कहते हैं । बहुत से छोटे छोटे द्वीपों के समूह को द्वीपपुंज या द्वीपमाला कहते हैं । द्वीप दो प्रकार के होते हैं—साधारण और प्रवालज । साधारण द्वीप दो प्रकार से बनते हैं—एक तो भूगर्भस्थ मग्नि के प्रकोप से समुद्र के नीचे से उभड़ आते हैं । दूसरे भासपास की भूमि के चूस जाने से और वहाँ पानी आ जाने से बनते हैं । प्रवालज द्वीपों की सृष्टि भूगर्भ से होती है । ये बहुत सूक्ष्म कृमि हैं जो धूर के पेड़ के आकार के पिंड बनाकर समुद्रतल में जमे रहते हैं । इन्हीं छोटे छोटे कीड़ों के शरीर से सहस्रों वर्ष में इकट्ठा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्र के ऊपर निकल आता है जिसे प्रवालज द्वीप कहते हैं । इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का द्वीप भी होता है जिसे सरिद्धमव कह सकते हैं । इस प्रकार के द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियों के मुहानों पर, जहाँ वे समुद्र में गिरती हैं, बन जाते हैं । उन द्वीपों में कितने तो इतने छोटे होते हैं कि समुद्र में एक छोटे से टीले से अधिक नहीं दिखाई पड़ते पर बड़े द्वीप भी होते हैं जिनमें पेड़ पीछे होते हैं और पशु पक्षी मनुष्य आदि रहते हैं ।

२ पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े विभाग ।

विशेष—पुराणों में पृथ्वी सात सात द्वीपों में विभक्त की गई है । समुद्र और द्वीपों की उत्पत्ति के संबंध में यह कहा है । महाराज प्रियव्रत ने यह सोचा कि एक बार में सूर्य पृथिवी के एक ही ओर उजासा करता है जिससे दूसरी ओर अंधकार रहता है । उन्होंने एक पहिए की एक चमचमाती गाड़ी पर सवार होकर सात बार पृथिवी की परिक्रमा की । गाड़ी के पहिये के चंसने से पृथिवी पर सात वस्तुंसाकार गड्ढे पड़ गए जो सात समुद्र बन गए । इन्हीं सातों समुद्रों से वेष्टित होने से सात द्वीपों की सृष्टि हुई । इनमें सबसे बीच में जवूदीप है जो चारों ओर से सार समुद्र से वेष्टित है और जिसके बीच में भेर पर्वत है । सार समुद्र के उस पार दूसरा द्वीप प्लसद्वीप है

जो जवूदीप से दूना बड़ा है । तीसरा द्वीप शाल्मली द्वीप है । यह प्लसद्वीप से भी द्विगुण है । चौथे द्वीप का नाम कुलद्वीप है जो शाल्मली का भी दूना है । पाँचवाँ द्वीप क्रौंचद्वीप है, जो कुलद्वीप का दूना है । छठवाँ द्वीप शाकद्वीप क्रौंच से दूना बड़ा है और सातवें द्वीप का नाम पुंकरद्वीप है । यह क्रौंचद्वीप का दूना है । पर भास्कराचार्य जी का मत है कि पृथ्वी के प्राये भाग में सारसमुद्र से वेष्टित जवूदीप है और प्राये में शेष प्लसद्वीपादि छह द्वीप हैं । ये सातों द्वीप यथाक्रम सार, सवण, क्षीर, दधि, रस आदि समुद्रों से आवेष्टित हैं ।

३ प्रवलवन का स्थान । आधार । ४. व्याघ्रचर्म ।

द्वीपकपूर—सङ्घा पुं० [सं०] चीनी कपूर ।

द्वीपकुमार—सङ्घा पुं० [सं०] जैन मतानुसार एक प्रकार का देवता । यह भुवनपति नामक देवगण के अंतर्गत है ।

द्वीपस्वर्जूर—सङ्घा पुं० [सं०] महा पारेवत ।

द्वीपवत्—सङ्घा पुं० [सं०] १ समुद्र । २ नद ।

द्वीपवती—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ एक नदी का नाम । २. सूमि ।

द्वीपवान्^१—वि० [सं० द्वीपवत्] द्वीपवाला । जिसमें द्वीप हों [को०] ।

द्वीपवान्^२—सङ्घा पुं० १ समुद्र । २. नद [को०] ।

द्वीपशत्रु—सङ्घा पुं० [सं०] शतावरी । शतावर ।

द्वीपिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] शतावरी । सतावर ।

द्वीपिनख—सङ्घा पुं० [सं०] १. बाघ का नख । २ एक सुगंध द्रव्य [को०] ।

द्वीपो—सङ्घा पुं० [सं० द्वीपिन्] १ व्याघ्र । बाघ । २ चीता । ३. चित्रक वृक्ष । चीता ।

द्वीप्य^१—सङ्घा पुं० [सं०] १. वेदव्यास । २ एक प्रकार का कौमा । ३. रुद्र [को०] ।

द्वीप्य^२—वि० द्वीप में उत्पन्न [को०] ।

द्वीश^१—वि० [सं०] १. जो दो का स्वामी हो । २. जिसके दो स्वामी हों । ३ (चर आदि) जो दो देवताओं के लिये हो ।

द्वीश^२—सङ्घा पुं० विशाखा नक्षत्र ।

द्व्यूच—सङ्घा पुं० [सं०] १ दो ऋचाओं का समूह । ४. वह सूक्त जिसमें दो ही ऋचाएँ हो ।

द्वेष—सङ्घा पुं० [सं०] चित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति । बिड़ । शत्रुता । वैर ।

विशेष—योगशास्त्र में द्वेष उस भाव को कहा गया है जो दुःख का साक्षात्कार होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है ।

द्वेषण^१—सङ्घा पुं० [सं०] १. शत्रु । २. वैर । दुश्मनी । ३. घृणा । ४. शत्रुता [को०] ।

द्वेषण^२—वि० द्वेष करनेवाला [को०] ।

द्वेपी^१—वि० [सं० द्वेषिन्] [वि० स्त्री० द्वेषिणी] विरोधी । वैरी । बिड़ रखनेवाला ।

द्वेपी^२—सङ्घा पुं० शत्रु । वैरी ।

द्वेष्टा—वि० [सं० द्वेष्ट] [ली० द्वेष्टी] द्वेष करनेवाला । विरोधी । वैरी । शत्रु ।

द्वेष्ट्य^१—वि० [सं०] जिससे द्वेष किया जाय ।

द्वेष्ट्य^२—संज्ञा पुं० शत्रु । वैरी ।

द्वेष्ट^३—संज्ञा पुं० [सं० द्वेष] दे० 'द्वेष' । उ०—नेह दुरावत दुहुन की द्वेष्ट देत सुख भूरि । राति मिलत है रति हंसत होत रुखाई दूरि ।—स० सप्तक, पृ० ३७७ ।

द्वै^४—वि० [सं० द्वय] दो । दोनों । उ०—(क) पुर तें निकसी रघुबीर बधू धरि घोर दियो मग ज्यों डग द्वै ।—सुलसी (शब्द०) । (ख) गुन गेह सनेह को भाजन सों सबही सों उठाइ कहों भुज द्वै ।—सुलसी (शब्द०) ।

द्वैक^५—वि० [हि०] दो एक ।

द्वैगुणिक—वि० [सं०] द्विगुणग्राही । दूना व्याज लेनेवाला । दूना सूद खानेवाला (महाजन) ।

द्वैगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों में से किन्हीं दो से युक्त । २. द्वैत । ३. दूना द्रव्य या दूना परिमाण [को०] ।

द्वैज^६—संज्ञा ली० [सं० द्वितीय, प्रा० दुह्य] द्वितीया । दूज । उ०—द्वैज सुधा दीधित कला, यह लखि दीठ लगाय । मनौ भकास भगस्तिथा, एकै कली लखाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो का भाव । युग्म । युगल । २. अपने और पराए का भाव । भेद । अंतर । भेदभाव । उ०—सेवत साधु द्वैत भय भागे । श्री रघुबीर चरन चित लागे ।—तुलसी (शब्द०) । ३. दुग्धा । भ्रम । उ०—सुख सगति सुख द्वैत सों समुक्त नहि गवार । बात करे भद्वैत की पढ़ि गुनि भया लबार ।—कबीर (शब्द०) । ४. भ्रजन । उ०—माधव धव न द्रवहु केहि लेखे । प्रणतपाल प्रण तोर, मोर प्रण जियहु कमलपद देखे । जनक जननि गुरु बधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी । द्वैत रूप तम कूप परो नहीं सो कछु जतन बिचारी ।—तुलसी (शब्द०) । ५. द्वैतवाद ।

द्वैतवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक तपोवन, जिसमें युधिष्ठिर ने बनवास के समय कुछ काल तक निवास किया था ।

द्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] यह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मानकर विचार किया जाता है ।

विशेष—उत्तरमीमांसा या वेदांत को छोड़ शेष पाँचो दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं । द्वैतवादियों का कथन है कि ब्रह्म और जीव का भेद नित्य है पर भद्वैतवादी कहते हैं कि यह भेदज्ञान भ्रम है । जिस समय जीव अपने को ब्रह्म स्वरूप समझ लेता है उस समय वह मुक्त हो जाता है । केवल उपाधि के कारण जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है, उपाधि हट जाने पर वह ब्रह्म में मिल जाता है । द्वैतवादी जीव की उपाधि को नित्य मानते हैं पर भद्वैतवादी उसे हटाने की चेष्टा करने का उपदेश देते हैं । जिस प्रकार भद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' उपनिषद् के इस महावाक्य को मुख

मानकर चलते हैं उसी प्रकार द्वैतवादी भी । पर दोनों उससे भिन्न भिन्न अर्थ लेते हैं । भद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' का सीधा अर्थ लेते हैं कि 'तुम वही (ब्रह्म) हो', पर द्वैतवादी मध्वाचार्य ने सीधे तानकर उसका अर्थ खगाया है 'तस्य त्वमसि' अर्थात् तुम उसके हो । न्याय और वैशेषिक में तीन नित्य पदार्थ माने गए हैं—जीवात्मा, परमेश्वर और परमाणु । इस प्रकार के द्वैतवाद का खडन ही शंकर ने अपने भद्वैतवाद द्वारा किया है । जिस प्रकार शंकराचार्य ने वेदांतसूत्र का भाष्य करके अपना भद्वैतवाद स्थापित किया है उसी प्रकार मध्वाचार्य ने उक्त सूत्र का एक भाष्य रखकर द्वैतवाद का मडन किया है । उनके मत से परमेश्वर स्वतन्त्र है और जीव परमेश्वर के अधीन है । वेदांती लोग जो जगत् को ईश्वर से अभिन्न अथवा रज्जु सर्पवत् मानते हैं और जीव में ईश्वर का आरोप करते हैं वह ठीक नहीं । जगत् और जीव सत्य हैं और ईश्वर से भिन्न हैं । 'एकमेवाद्वितीय' वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, बस कि भद्वैतवादी करते हैं । उसका अर्थ है कि ईश्वर बहुत नहीं एक ही है । 'एव' शब्द से मध्वाचार्य यह ध्वनि निकालते हैं कि ईश्वर सदा एक ही रहता है, एकत्व उसका स्वभाव है वह अनेक हो नहीं सकता । भद्वितीय का अर्थ यह है कि द्वितीय जो जीव और जगत् है सो वह नहीं है । जीव और जगत् उसकी सृष्टि है । इस प्रकार मध्वाचार्य ने द्वैतभाव का मडन किया है । रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद द्वैत और भद्वैत के बीच का मार्ग है, द्वैतवाद से उसमें बहुत अधिक भेद नहीं है । दे० 'वेदांत' ।

२ वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें सूत और चित्शक्ति अथवा शरीर और आत्मा दो भिन्न पदार्थ माने जाते हैं ।

द्वैतवादी—वि० [सं० द्वैतवादिन्] [वि० ली० द्वैतवादिनी] द्वैतवाद को माननेवाला । ईश्वर और जीव में भेद माननेवाला ।

द्वैसात्मिका—वि० ली० [सं०] द्विरूपात्मिका । द्वैतभाव से युक्त । उ०—जोकदृष्टि से ब्रह्म को भगोचर रखनेवाली कौतुकशीला द्वैसात्मिका माया की कीड़ा है ।—शैली, पृ० २ ।

द्वैती—वि० [सं० द्वैतिन्] द्वैतवादी ।

द्वैतीयिक—वि० [सं०] द्वितीय । दूसरा [को०] ।

द्वैध—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध । परस्पर विरोध । राजनीति के षड्गुणों में से एक जिसमें परस्पर के व्यवहार में गुप्त और प्रकट स्वभाव रखना पड़ता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रखकर दूसरा उद्देश्य प्रकट किया जाता है ।

द्वैधशासन प्रणाली—संज्ञा ली० [सं०] दे० 'द्विदल शासनप्रणाली' ।

द्वैधीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज के दो टुकड़े करना ।

द्वैधीभाव^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्विधा भाव । अनिश्चय । २. भीतर कुछ और भाव, बाहर कुछ और भाव ।

द्वैधीभाव^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक से लड़ना तथा दूसरे के साथ संधि करना । २. दोनों और मिलकर रहना ।

विशेष—कामंडक ने लिखा है कि जो राजा सबल न हो और जिसके इधर उधर बलवान राज्य हो वह द्वैधीभाव से काम चलावे अर्थात् अपने आपको दोनों पक्षों का मित्र प्रकट करता रहे।

द्वैप—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाघ से सबंध रखनेवाली या बाघ से निकली या बनी हुई वस्तु। २ व्याघ्रचर्म। बाघ का चमड़ा। ३ द्वीप से संबंधित या उत्पन्न (वस्तु आदि)।

द्वैपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यास जी का एक नाम।

विशेष—वेदव्यास का जन्म यमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

२ एक हृद या ताल जिसमें कुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन भागकर छिपा था।

द्वैप्य—वि० [सं०] द्वीप संबंधी [को०]।

द्वैमातुर^१—वि० [सं०] जिसकी दो माताएँ हों।

द्वैमातुर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ गणेश।

विशेष—स्कंदपुराण के गणेशखंड में लिखा है कि गणेश वरेण्य नामक राजा के घर उनकी रानी पुष्पका देवी के गर्भ से त्रैलोक्य की विज्ज्वांति के लिये उत्पन्न हुए। पर उनकी भ्रातृत्ति और तेज आदि को देखकर राजा डर गए और उन्हें पार्श्वभुनि के आश्रम के पास एक जलाशय में फेरवा दिया। वहाँ मुनि की पत्नी दीपवत्सला ने उन्हें पाला। इस प्रकार दो माताओं के द्वारा पलने के कारण गणेश का नाम द्वैमातुर पड़ा।

२ जरासंध।

द्वैमातृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या देश जहाँ खेती नदी के जल (सिंचाई) द्वारा भी की जाती है और वर्षा से भी होती हो।

द्वैयह्निक—वि० [सं०] जो दो दिन में किया जाय या दो दिन का हो।

द्वैराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य।

विशेष—इसी को वैराज्य भी कहते थे। कौटिल्य ने इसे प्रसभय कहा है। परंतु कहीं कहीं इस प्रकार का राज्य होने का प्रमाण मिलता है।

द्वैविध्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो प्रकार होने का भाव। २ दुबधा।

द्वैपणीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली का एक भेद।

द्वैसमिक—वि० [सं०] दो वर्ष का [को०]।

द्वैसात^१—वि० [सं० द्वि + सात] चौदह। उ०—चौदे (यह) एकारांत है, पुरुष लिंग विख्यात। क्रम से घरे विभक्ति को रूप होत द्वैसात।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ५३४।

द्वैहायन—संज्ञा पुं० [सं०] दो साल का समय [को०]।

द्वौ^१—वि० [हि० दो + ऊ, दोउ] दोनों।

द्वौ^२—वि० दे० 'द्व'।

द्वयक्ष—वि० [सं०] दो नेत्रोंवाला। दो भाँखवाला [को०]।

द्वयगवत्त विभाग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य द्वारा वर्णित वह व्यूह जिसके पक्ष में सैनिक, पार्श्व में हाथी, पीछे रथ और आगे शत्रु के व्यूह के अनुसार व्यूह बना हो।

द्वयगुण—संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो दो भणुओं के संयोग से उत्पन्न हो। दो भणुओं का एक संघात। एक मात्रा जो दो भणुओं की हो।

द्वयर्थ—वि० [सं०] दो अर्थ रखनेवाला। दुहरे अर्थवाला [को०]।

द्वयर्थक—वि० [सं०] दे० 'द्वयर्थ' [को०]।

द्वयशीति—वि० [सं०] जो गिनती में सस्ती से दो अधिक हो। बयासी।

द्वयष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताश्च। ताँबा।

द्वयक्षायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

द्वयग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चीता वृक्ष [को०]।

द्वयात्मक—संज्ञा पुं० [सं०] दो स्वभाव की राशियाँ जो ये हैं—मिथुन, कन्या, धनु और मीन।

द्वयामुज्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो एक से तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरे के द्वारा दत्तक के रूप में ग्रहण किया गया हो और दोनों पिता उसे अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनों को पित्रदान देता है और दोनों की संपत्ति का अधिकारी होता है। वि० दे० 'दत्तक'।

ध

ध—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का सन्तीसवाँ व्यंजन और तवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंतमूल है। इसके उच्चारण में भ्राम्यतर प्रयत्न आवश्यक होता है और जीभ की नोक ऊपरी दाँतों की जड़ में लगानी पड़ती है। बाह्य प्रयत्न सवार, नाद, घोष महाप्राण हैं।

धंक्ना^१—क्रि० भ० [हि० धका] क्रुद्ध होना। क्रुद्धना। स्त्रीजन। उ०—छत्तनकि बान गजि गोम धक। कायर पुलत घुरा निसक।—पृ० रा०, १।६५८।

धका^२—संज्ञा पुं० [हि०] १ दे० 'धक्का'। उ०—सिद्ध की

सिंह चपेट सहे गजराज सहे गजराज को धका।—भूपण प्र०, पृ० ६५। २. चोट। घाघात।

धग^१—संज्ञा पुं० [देश०] कीर्ति। यश। उ०—मन्न गाड़ी ठरकाय दे धवल धंग हिरदेश।—शुक्ल अभि० प्र०, पृ० ८८।

धगर—संज्ञा पुं० [देश०] चरवाहा। ग्वाल। महीर।

धंगरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धोंगरी'। उ०—बात कहत मुँह फारि खात है मिली घमघुसरि धंगरिया—कबीर सा० स०, पृ० ५६।

धंगगा—संज्ञा पुं० [देश०] खोसी। डोसी।

धद^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दन्त] घघा । व्यवसाय । उ०—कीन्हेसि सुख श्री कोटि धनदू । कीन्हेसि दुख बिता श्री धदू ।—जायसी०, प्र०, पृ० २ ।

धंदर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घारीदार कपड़ा ।

धंध^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुध' । उ०—राम बिना ससार घघ कुहेरा ।—कबीर प्र०, पृ० १६५ ।

धंध^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धंधा] घोखा । कपट । छल । उ०—धंध घोखा किया कुमति ठानी ।—कबीर रे०, पृ० ८ ।

धंध^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धधा' । उ०—दादू सतगुरु सो सगा, दूजा घघ विकार ।—दादू०, पृ० २७ ।

धंध^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'द्वध' । उ०—एच बिस जीव सत्व करत है धंध क्ष ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ५८८ ।

धंध^७—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] ज्वाला । उ०—तूलन तोपिके ह्वै मतिमघ हुतामन धध प्रहान चाहै ।—मिखारी० प्र०, भा० २, पृ० ८१ ।

धधक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधा] काम धधे का भाडवर । जजाल । बखेड़ा । उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिक धरम-ध्वज धधकधोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धधक^७—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का ढोल ।

धधकधोरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधक + धोरी] काम धधे का बोझ लादे रहनेवाला । हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला । उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिक धरमध्वज धधकधोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धधका^७—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] [श्री० घल्पा० धधकी] एक प्रकार का ढोल ।

धधरक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधा] काम धधे का भाडवर । जजाल । बखेड़ा ।

धधरकधोरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधरक + धोरी] काम धधे का बोझ लादे रहनेवाला । हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला ।

धधा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धनधान्य या देश०] १ धन या जीविका के लिये उद्योग । काम काज । जैसे,—वह घर का कुछ काम धधा नहीं करती ।

यौ०—काम धधा । गोरखधधा ।

२ उद्यम । व्यावसाय । कारबार । पेशा । रोजगार । जैसे, (क) उसे किसी काम धधे में लगा दो । (ख) भाजकज कोई काम धधा नहीं है, खाली बैठे हैं ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग लिखने पढ़ने की भाषा में 'काम' शब्द के साथ अधिक होता है ।

धधार—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का लंबा शोजार जो भारी पत्थरों या लकड़ियों के उठाने के काम में आता है ।

धधार^२—वि० [देश०] एकाकी । अकेला ।

धधार^३—सञ्ज्ञा श्री० [सं० धूमधार या देश०] ज्वाला । लपट ।

धधारो^३—सञ्ज्ञा श्री० [हि० धधा] गोरखधधा जिसे गोरखपथी साधु लिये रहते हैं ।

५-२३

धधारो^२—सञ्ज्ञा श्री० १ एकांत । निर्जनता । अकेलापन । २. घुन-सान । सझाटा ।

धंधाला—सञ्ज्ञा श्री० [हि० धधा] कुटनी । हूती । दलाल ।

धंधालू—वि० [हि० धधा] काम धधे में लगा रहनेवाला । उ०—बहु धंधालू भाव धरि कासू करइ वदेस ।—ढोला०, दू० १७८ ।

धंधु^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधा] सद्यः । काम । उ०—बधु धधु अवलोकितुव जानि परै मद ढग । बीस बिसे यह बसुमती जैहै तेरे सग ।—मिखारी० प्र०, भा० २, पृ० ६२ ।

धंधूणी^७—क्रि० वि० [सं० धून, प्रा० धूण] हिला हुलाकर । उ०—बोलइ नही ज बाल, धण धंधूणी जोइयउ ।—ढोला०, दू० ६०३ ।

धंमिल^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० तथा प्रा० धम्मिल्ल] स्त्रियों के बाघों का जूठा । उ०—सीस जटा कधि गोविंद एतहि, धोपन सौं धति धमिल जाल है ।—णोहार प्रभि० प्र०, पृ० ४३५ ।

धंस^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ध्वंस' । उ०—राम कृष्ण जय सूर सधि, करन मोहू धध घस ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३५७ ।

धंधरक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधा या ढंग + रच + ढोंग + रच] १. 'धधरक' । उ०—तिन यहँ प्रथम रेख जग मोरी । धिग धरमध्वज धंधरक धोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धंधरकधोरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधरक + धोरी] दे० 'धंधरकधोरी' । उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिग धरमध्वज धधरक धोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धंधला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धधा] १. छल छद्म । कपट का भाडवर । झूठा ढोंग । ढग । उ०—मृत काल कोइ काम न धावे । फोकट फातठ धंधला ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६०६ । २. हीला । बहाना । (स्त्रि०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—(किसी की) धंधले भाते हैं = छल छद्म का प्रयास है ।

धंधलाना—क्रि० प्र० [हि० धंधला] छल छद्म करना । ढग रचना ।

धंधार—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ज्वाला । लपट । उ०—कंधा जरे प्राणि नम लाई । बिरह धंधार जरत न बुझाई ।—जायसी (शब्द०) ।

धंधारी—सञ्ज्ञा श्री० [हि० धधा + रो (प्रत्यय)] दे० 'धंधारी' । उ०—मेखल सिधो चक्र धंधारी । लोन हाय तिरसूल संधारी ।—जायसी (शब्द०) ।

धंधेरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] राजपूतों की एक जाति ।

धंधोर—सञ्ज्ञा पुं० [अनु० धायं धायं (= प्राग दहकने की ध्वनि)] १. होलिका । होली । २. प्राग की लपट । ज्वाला । उ०—(क) रहै प्रेम मन उरभा सटा । बिरह धंधोर परहि सिर जटा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कंधा जरे प्राणि जनु लाए । बिरह धंधोर जरत न जराए ।—जायसी (शब्द०) ।

धंस—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धंसना] जल प्रादि में प्रवेश । डुबकी । गोता । क्रि० प्र०—सेना ।

घँसन—सहा जी० [हि० घँसना] १ घँसने की क्रिया या ढंग । २ घुसने या पैठने का ढंग । गति । चान । उ०—तुलसी मेढी की घँसनि जड़ जनता सनमान ।—तुलसी (शब्द०) ।

घँसना—क्रि० प्र० [सं० दशन (= दाँत घुसना)] २. किसी कड़ी वस्तु का किसी नरम वस्तु के भीतर दाव पाकर घुसना । गड़ना । जैसे, पैर में काँटा घँसना, दीवार में कील घँसना, कीबड़ या दलदल में पैर घँसना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—‘घुसना’ और ‘घँसना’ में अंतर यह है कि ‘घुसना’ का प्रयोग विशेषतः जीवधारियों के शरीर में घुसने के अर्थ में होता है । जैसे, पैर में काँटा घुसना । दूसरी बात यह है कि ‘घुसना’ नुकीली वस्तुओं के लिये आता है, जैसे, काँटा, सुई आदि ।

मुहा०—जी या मन में घँसना—(१) चिन्ता में प्रभाव उत्पन्न करना । मन में निश्चय या विश्वास उत्पन्न करना । दिल में भरकर करना । जैसे,—उसे लाख समझाओ उसके मन में कोई बात घँसती ही नहीं । (२) हृदय में अक्षित होना । अच्छा लगने के कारण ध्यान में बराबर रहना । चिन्ता से न हटना । ध्यान पर बराबर चढ़ा रहना । उ०—मन मई घँसी मनोहर मूरति टरति नहीं वह टारे ।—सूर (शब्द०) ।

२ किसी ऐसी वस्तु के भीतर जाना जिसमें पहले से अवकाश न रहा हो । अपने लिये जगह करते हुए घुसना । इसर उभर दबाकर जगह खाली करते हुए बढ़ना या पैठना । जैसे, पानी में घँसना, भीड़ में घँसना, दलदल में घँसना । उ०—(क) जोर जगी जमुना जल धार में घाय घँसी जलकैलि की मासी ।—(शब्द०) । (ख) आयो जोन तेरी धोरी धारा में घँसत जात तिनको न होत सुरपुर तें निपात है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । पठना ।

①३. नीचे की ओर धीरे धीरे जाना । नीचे खसकना । उतरना । उ०—(क) खरी लसति गोरे गरे घँसति पान की पीक ।—विहारी (शब्द०) । (ख) जनु कलिदनदिनि मनि इदनील सिखर परसि घँसति लसति हँस श्रेणि संकुलन अघिकोहँ ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पति पद्विचानि घँसी मदिन तें, सूर, तिया अभिराम । भावहु कंस लखहु हरि को हित पाव धारिए धाम ।—सूर (शब्द०) । ४ तल के किसी अश का दबाव प्रादि पाकर नीचे हो जाना जिससे गड़ढा सा पड़ जाय । नीचे की ओर बैठ जाना । जैसे,—(क) जहाँ गोला गिरा वहाँ जमीन नीचे घँस गई । (ख) बीमारी से उसकी आँखें घँस गई हैं ।

विशेष—पोली वस्तु के लिये इस अर्थ में ‘पचकना’ का प्रयोग होता है ।

५. किसी गढी या नीवें पर खड़ी वस्तु का जमीन में ओर नीचे तक खसा जाना जिससे वह ठीक खड़ी न रह सके । बैठ जाना । जैसे,—इस मकान की नीवें कमजोर है, बरसात में यह घँस जायगा ।

घँसना④—क्रि० प्र० [सं० घ्वसन] घ्वस्त होना । नष्ट होना । मिटना । उ०—निज आतम प्रज्ञान ते है प्रसीति जग वेद । घँसे सु ताके बोध ते यह भाखत मुनि वेद ।—विचारसागर (शब्द०) ।

घँसनि⑤—सहा जी० [हि०] दे० ‘घँसन’ ।

घँसान—सहा जी० [हि० घँसना] १ घँसने की क्रिया या ढंग । १. ऐसी जमीन जिसपर कीबड़ के कारण पैर घँसता हो । दलदल । ३ ऐसी जमीन जिसपर नीचे की ओर पैर फिसले । ढाल । उतार ।

घँसाना—क्रि० स० [हि० घँसना] १ गड़ाना । चुमाना । नरम चीज में घुसाना । २. पैठाना । प्रवेश कराना । जैसे, पस में घँसाना । ३ तल या सतह को दबाकर नीचे की ओर करना । नीचे की ओर बैठाना ।

घँसाव—सहा पुं० [हि० घँसना] १ घँसने की क्रिया । २. ऐसी जमीन जिसपर पैर घँसे । दलदल ।

ध^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २. कुबेर । ३. गुण । नैतिक गुण । ४. धैर्य स्वरसंकेत (संगीत) । ५. धर्म । ६. धन । सपत्ति [को०] ।

ध^३—[प्रत्य०] धारण करनेवाला [को०] ।

धई—सहा जी० [देश०] एक पोषा जिसकी जड़ या कद को छोटा नागपुर की पहाड़ी जातियों के लोग खाते हैं ।

धरहरा—सहा पुं० [हि०] दे० ‘धीरहर’ ।

धडल④—वि० [हि०] दे० ‘धवल’ । उ०—साने धरती धडल अकास ।—प्राण०, पु० १ ।

धक^२—सहा जी० [धनु०] १ दिन के धड़कने का शब्द या भाव । हृत्कप का शब्द या भाव । हृदय के जल्दी जल्दी चलने, कूदने का भाव या शब्द । (भय या उद्वेग होने अर्थात् किसी बात से चौंक पड़ने पर जी में धडकन होती है) । उ०—गुधर हों निरखीं अब लों मुख पीरी परी छतियाँ धक छार्द ।—गुंघर (शब्द०) ।

मुहा०—जी धक धक करना—भय या उद्वेग से जी धडकना । जी धक हो जाना—(१) भय या उद्वेग से जी धडक उठना । डर से जी दहल जाना । (२) चौंक उठना । जी धक होना, या धक से होना—(१) उद्वेग या घबराहट होना । (२) आशका होना । भय होना । जी दहलना । धक से रह जाना—दे० ‘जी धक होना या धक से रह जाना’ । उ०—हस्त धारा धीर उनकी कुल बहनें धीर भी मुगलानी धीर अम्बासी धक से रह गई ।—फिसाना०, भा० १, पु० २६१ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग खट, पट आदि धीर धनु० शब्दों के समान प्रायः ‘से’ विभक्ति सहित क्रि० वि० वत् हो होता है ।

२ उर्मंग । उद्वेग । चोप । उ०—रहस अछक पै मिटे न धक जीवन की निपट जो नांगी डर काहू के डरे नहीं ।—भूषण (शब्द०) ।

धक^३—क्रि० वि० प्रचानक । एकबारगी । उ०—प्रानन सीकर सी कहिए धक सोवत तें धकुलाय उठी क्यों ?—केदार (शब्द०) ।

धक^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [दृ०] छोटी लूँ । लीख से बड़ी लूँ ।

धकधक—क्रि० वि० [धनु०] धक धक की ध्वनि के साथ । दहकता हुआ । उ०—भाष मनस धक धक कर जला ।—मपरा, पृ० ६ ।

क्रि० प्र०—जलना ।

धकधकाना—क्रि० प्र० [धनु० धक] १ (हृदय का) धडकना । भय, उद्वेग आदि के कारण हृदय का जोर जोर से जल्दी जल्दी चलना । उ०—धकधकात जिय बहुत संभारे । क्यों भारीं सो बुद्धि विचारे ।—सूर (शब्द०) । २. (प्राण का) दहकना । मभकना । लपट के साथ जलना ।

धकधकाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु० धक] १ जो धक धक करने की क्रिया या भाव । धडकन । २. खटका । घाशका । ३. भागा पीछा ।

धकधकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु० धक] १ जो धक धक करने की क्रिया या भाव । जो की धडकन । उ०—(क) धावत देख्यो विप्र जोरि कर रविमनि घाई । कहा कहैगो भानि हिये धकधकी लगाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दसकधर सर धकधकी प्रब जनि धावै धनुषारि ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) खरहू के खरकत धकधकी धरकत, भौन कोन सकुरत सरकत जातु है ।—मिथारी० प्र०, भा० २, पृ० ३३ । २. गले और छाती के बीच का गड्ढा जिसमें स्पन्दन मालूम होता है । धुकधुकी । दुगधुगी ।

मुहा०—धुकधुकी धरकना = छाती धडकना । जो धकधक करना । धकस्मात् प्राशका या खटका होना । उ०—मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगत समय धकधकी धरकी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धकना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दहकना' । उ०—जियरा उड्यो सो डोसै हियरो धकयोई करे ।—घनानन्द०, पृ० ७६ ।

धकपक^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] जो की धडकन । धकधकी । उ०—(क) लुप्त हकीम खाँ ममीरनु के धक सो भी बकसी के जिय मे परी है धकपक सी ।—सूदन (शब्द०) । (ख) इन्द्र लू को धकपक, घातालू की धकपक, संभू जी की सकपक के सोदास को कहे ?—केशव (शब्द०) ।

धकपक^२—क्रि० वि० धडकते हुए जी के साथ । दहलते हुए । डरते हुए ।

धकपकाना—क्रि० प्र० [धनु० धक] जी मे दहलना । दहलत खाना । डरना । उ०—भुषन मनत दिल्लीपति सों धकपकात धाक सुनि राज छत्रसाल मरदाने की ।—भुषन (शब्द०) ।

धकपकना^१—क्रि० प्र० [हि० धकपक] दहल जाना । डरना । उ०—धरनि घसत धकपक धीर धाराधर मुकत ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८५ ।

धकपेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु० धक + पेलना] धक्कमधक्का । रेलापेल । उ०—धमकत साँग करे धकपेल ।—सूदन (शब्द०) ।

धका^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धक्का' । उ०—हुजंत क्रुम कुम्हार का, एके धका दरार ।—वटवाणी०, पृ० २० ।

धका^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] धोर । तरफ । उ०—खाग जरके ले गयो एक धके भलमाल ।—रा० रू०, पृ० ३१३ ।

धकाधक—वि० [धनु०] धर्यधिक मात्रा में । बहुत । उ०—प्राज तो तूने धकाधक भाँग धोर धकाधक जहमान की धच्छी ठहराई ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १७० ।

धकाधकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धक्का] धक्कम धक्का । उ०—कीनी धकाधकी रिस मन में न आहये ।—भक्तमाल, पृ० ४८८ ।

धकाधूम—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु० धक + धूम] भीड़माड । रेलपेल ।

धकाना^१—क्रि० प्र० [हि० दहकाना] दहकाना । सुलगाना । जलाना । उ०—धूनी ध्यान धकाधो रैन दिन फिकिर फाहुरी खोई ।—कबीर (शब्द०) ।

धकापेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धक्का + पेलना] धक्कम धक्का । भीड़माड मे होनेवाली धक्केवाजी ।

धकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध धमसर ।

धकारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [धनु० धक] धकधकी । घाशका । खटका । उ०—तुम तो लीला करत सुरन मन परो धकारो ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।

धकिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धक्का] धाक । प्रभाव । उ०—काल कराल जंजाल डरहिगे भविनासी की धकिया ।—मीरा० श०, पृ० ७२ ।

धकियाना^१—क्रि० प्र० [हि० धक्का] धक्का देना । ढकेलना ।

धकेलना—क्रि० प्र० (हि० धक्का) ढकेलना । ठेलना । धक्का देना । उ०—मेघों को एकत्रित करती हवा, हाथियों को धकेलती, उड़ चलो धरे लोगों उस निर्वल पुण्य पुरुष की करो मदद कुछ, तुम्हें चाहता था जी हतना ।—ददन०, पृ० १०२ ।

सयो० क्रि०—देना ।

विशेष—दे० 'ढकेलना' ।

धकेलू—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धकेलना] ढकेलनेवाला । धक्का देनेवाला ।

धकैत—वि० [हि० धक्का + ऐत (प्रत्य०)] धक्का देनेवाला । धक्कम धक्का करनेवाला । उ०—द्रुत धीर धकैत गयो घँसि कै ।—गोपाल (शब्द०) ।

धकोना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धकियाना' ।

धकौ^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धक्का] धाकमण । हमला । उ०—धको न साहै मोरजाँ, बाहे सार गरज्ज ।—रा० रू०, पृ० ४६ ।

धक्क^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धक' ।

धक्क^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धक्का' । उ०—हा कहत उठत हाँ कहत ठड्ड । गिर परत धक्क जिन कोठ गड्ड ।—पृ० रा०, ६।११५ ।

धक्कपक्क—सञ्ज्ञा स्त्री० क्रि० वि० [हि०] दे० 'धक्कपक' । उ०—धक्क सक्क, धक्क पक्क परपरात धादित जात ।—सूदन (शब्द०) ।

धक्कमधक्का—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धक्का] १ बार बार बहुत अधिक या बहुत से आदमियों का परस्पर धक्का देने का काम । धक्कापेल । २ ऐसी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों । रैलापेल । जैसे,—मंदिर के भीतर बहुत धक्कमधक्का है ।

धक्का—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धम, हि० धमक, धोक या मं० धक्क (= नष्ट करना)] १ एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ ऐसा वेगयुक्त स्पर्श जिससे एक या दोनों पर एकबारगी भारी दबाव पड़ जाय अथवा गति के वेग का वह भारी दबाव जो एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु के एकबारगी जा लगने से एक या दोनों पर पड़ता है । आघात या प्रतिघात । टक्कर । रैला । झोंका । जैसे,—(क) सिर में दीवार का धक्का लगना । (ख) चलती गाड़ी के धक्के से गिर पड़ना ।

क्रि० प्र०—देना ।—पहुँचना ।—पहुँचाना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना ।—सहना ।

यौ०—धक्कापेल । धक्कमधक्का ।

विशेष—केवल गुरुत्व के कारण जो दबाव पड़ता है उसे 'धक्का' नहीं कह सकते, गति के वेग के अघरोघ से जो दबाव एकबारगी पड़ जाता है उसी को धक्का कहते हैं ।

२ किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी जगह से हटाने, खिसकाने गिराने आदि के लिये वेग से पहुँचाया हुआ दबाव अथवा इस प्रकार का दबाव पहुँचाने का काम । ढकेलने की क्रिया । झोंका । चपेट । जैसे,—इसे धक्का देकर निकाल दो ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मारना ।—लगावा ।—सहना ।—होना ।

मुहा०—धक्का खाना = धक्का सहना । उपेक्षित होना । धक्के देकर निकालना = तिरस्कार और अपमान के साथ सामने से हटाना ।

३ ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों । कथमकथ । कसामस । जैसे,—मंदिर के भीतर बड़ा धक्का है, मत जाओ । ४ शोक या दुख का आघात । दुख की चोट । सताप । जैसे,—माई के मर जाने से उसे बड़ा धक्का पहुँचा ।

क्रि० प्र०—पहुँचना ।—पहुँचाना ।

५ आपदा । विपत्ति । आफत । दुर्घटना । ६ हानि । टोटा । घाटा । नुकसान । जैसे,—इस व्यापार में उसे लाखों का धक्का बैठा ।

क्रि० प्र०—खाना ।—बैठना ।

७ कुश्ती का एक पेंच जिसमें बायाँ पैर आगे रखकर विपक्षी की छाती पर दोनों हाथों से गहरा धक्का या चपेट देकर उसे गिराते हैं । छाप । ठोड़ ।

धक्काड़—वि० [हि० धक्का + अड़ना] प्रभावशाली । जिसकी खूब चखती हो ।

धक्कामुक्की—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धक्का + मुक्का] ऐसी लड़ाई

जिसमें एक दूसरे को ढकेले और घूसों से मारे । मुठभेड़ । मारपीट ।

धक्खना—क्रि० प्र० [हि० धक्का] जलना । प्रज्वलित होना । उ०—मद धक्कर भक्खर कोप धले ।—ह० रासो, पु० २१८ ।

धगड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धव (= पति ?)] जार । उपपत्ति ।

धगड़बाज—वि० स्त्री० [हि० धगड़ + बाज] जार के पास आने जानेवाली व्यभिचारिणी । कुलटा ।

धगड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धव (= पति ?)] किसी स्त्री का जार । उपपत्ति ।

धगड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० धगड़ा] व्यभिचारिणी स्त्री । कुलटा स्त्री ।

धगधगना—क्रि० प्र० [हि० धक्ककाना] धक्कक करना । धक्कना (छाती या जी का) । उ०—जब राजा तेहि मारन लाग्यो । देवी काली मन धगधग्यो ।—सूर (शब्द०) ।

धगरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धगड़ा' ।

धगरिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धागर] धागर जाति की स्त्री जो जन्मे हुए बच्चों का नाल काटती है ।

धगवरी—वि० [हि० धगड़ा (= पति या यार)] १ पति की दुलारी । खसम की मुँहलगी । २ कुलटा । छिनाल । व्यभिचारिणी । उ०—जननी के सीकृत हरि रोये झूठहि मोहि लगावति धगरी ।—सूर (शब्द०) ।

धगा—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धागा' (तागा) । उ०—सूरजदास काँच भर कचन एकहि धगा पिरोयो ।—सूर (शब्द०) ।

धगुला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] हाथ में पहनने का कड़ा ।

धगड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धगड़' ।

धक्कचाना—क्रि० प्र० [देश०] डराना । दहलाना ।

धक्कना—क्रि० प्र० [देश०] दलदल में घेंसना ।

धक्का—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] धक्का । झटका । झोंका । आघात ।

मुहा०—धक्का उठाना = नुकसान उठाना । घाटा सहना ।

धच्छना—क्रि० प्र० [सं० धर्षण, हि० धच्छना] मारना । धक्क करना । उ०—सुद्ध सहसच्छ के बिपच्छिन के धच्छिने को मच्छ कच्छ आदि कला कच्छिबो करत हैं ।—पद्माकर प्र०, पु० २४३ ।

धज—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज (= चिह्न, पताका)] १ सजावट । बनाव । सुंदर रचना ।

यौ०—सजधज = तैयारी । साज सामान । जैसे,—परात बड़ी सजधज से निकली ।

२ सुंदर ढंग । मोहित करनेवाली चाल । तरह । ३ बैठने उठने का ढंग । ठवण । ४ ठसक । नखरा । ५ रूप रंग । शोभा । आकृति या ढील डील । ६ झड़ा । ध्वजा । पताका । उ०—रथ ऊपर धज फरहरई । खेहाडबर नवि सुकई भाणु—बी० रासो, पु० १२ ।

धजना—क्रि० प्र० [हि० धज] सजधज करना । सजना ।

उ०—भादर कियो है धज के रीमेहि भाए भजि के ।—ब्रज०
प्र०, पु० ११ ।

धजनेज०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धज + नेज] नेजे में लगी हुई ध्वजा ।
उ०—धजनेज मोख नौसान ढल मनु वसंत रज्जिय विपन ।—
पु० रा०, १ । ६१७ ।

धजवङ्क०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धज (= ध्वजा) + वङ्क (= वढ़ानेवाला)]
सलवार । (हि०) । उ०—धजबड बल मेवाङ्क धर, जीतो तू
यह जोघ ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पु० ७२ ।

धजा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] १ ध्वजा । पताका । उ०—सुने सेत
छत्र धजा नेज माही ।—पु० रा०, १ । ६३२ । २. कपड़े की
धज्जी । कतरन । चोर । ३. धज । रूपरग । डीखडोल ।

धजा०^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धज] सजधज । सजावट । उ०—खिज्यो
रिखि भारी । दियो काम डारी । भयो पुत्र तन्त्र । धजा मोद
सन्त्र ।—पु० रा०, १ । ५७ ।

धजी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'धज्जी' । उ०—साज लपेटो कहाँ
लों रहिय पुनि धीरज की करति धजी है ।—घनानंद,
पु० ३५७ ।

धजीला—वि० [हि० धज + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० धजीली]
सजीला । सरहदार । सुंदर ढग का ।

धज्जी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धटी] १. कपड़े, कागज, चमड़े इत्यादि
(चट्टर के रूप की वस्तुओं) की कटी हुई लंबी पतली
पट्टी । कटा हुआ लंबा पतला टुकड़ा । २. लोहे की चट्टर या
धकड़ी के पतले तख्ते की धज्ज की हुई लंबी पट्टी ।

मुहा०—धज्जियाँ उड़ना = (१) फट या कटकर टुकड़े टुकड़े हो
जाना । विदीर्ण होना । पुरजे पुरजे होना । (२) (किसी की)
खूब दुर्गति होना । निंदा या तिरस्कार होना । दोषों का खूब
उधेङ्गा जाना । धज्जियाँ उड़ाना = (१) टुकड़े टुकड़े करना ।
विदीर्ण करना । खड खड करना । (२) (किसी के) दोषों
को खूब उधेङ्गना । दुर्गति करना । निंदा या उपहास करना ।
उ०—धज्जियाँ उड़ते दहलते जो नही । सिर उतारते किसलिये
वे सी करें ।—धुमते०, पु० ६ । (३) मारकर टुकड़े टुकड़े
करना । बोटी बोटी काट डालना । धज्जियाँ लगना = गरीबी
से कपड़े फटे रहना । बहुत गरीबी घाना । धज्जियाँ लेना =
निंदा या उपहास करना । (किसी के) दोषों को उधेङ्गना ।
बनाना । दुर्गति करना । धज्जी हो जाना = सूखकर ठठरी
हो जाना । बहुत दुखला पतला हो जाना । अत्यंत दुर्बल और
अशक्त हो जाना (रोग आदि के कारण) ।

घट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तुला । तराजू । २. तुला राशि । ३. तुला-
परीक्षा । ४. धर्म ।

घटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तौल जो ४२ रतियों की
होती थी ।

घटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पाँच सेर की एक तौल । पसेरी ।
२ चौर । वस्त्र । ३ कोपीन । लंगोटी । ४ गर्म के पश्चात्
स्त्री द्वारा पहना जानेवाला वस्त्र (को०) ।

घटी^१—सञ्ज्ञा [स्त्री०] १ चौर । कपड़े की धज्जी । २. कोपीन ।

लिंगोटी । ३. वह वस्त्र जो स्त्रियों को गर्भाधान के पीछे
पहनने को दिया जाता था ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार गर्भाधान के पीछे भूल,
श्रवण, हस्त, पुष्य, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्र या मृगशिरा नक्षत्रों
में स्त्री को अच्छे दिन घटी वस्त्र पहनाना चाहिए ।

यौ०—घटीदान = गर्भाधान के बाद स्त्री को पुराना वस्त्र देना ।

घटी^२—वि० [सं० घटिन्] [वि० स्त्री० घटिनी] तुलाधारक । डौड़ी
पकड़नेवाला ।

घटी^३—सञ्ज्ञा पुं० १ तुला राशि । २ शिव । ३. व्यापारी ।
बनिया (को०) ।

घटंग—वि० [हि० घट + घंग] नगा ।

यौ०—नग घटंग ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता 'नग' शब्द
के साथ समस्त रूप में होता है ।

घट्ट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० घट्ट (= घारण करनेवाला)] १ शरीर का
स्थूल मध्य भाग जिसके अंतर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं ।
सिर और हाथ पैर (तथा पशु पक्षियों में पूँछ और पंख)
को छोड़ शरीर का बाकी भाग । सिर और हाथों को छोड़
कटि के ऊपर का भाग । उ०—घट्ट सूखी सिर कगुरे, तउ न
बिसाखें तुज्ज ।—सतवाणी०, पु० ३६ ।

यौ०—घट्टट्टा ।

मुहा०—घट्ट में डालना या उतारना = पेट में डालना । खा
जाना । (किसी का) घट्ट रह जाना = शरीर स्तब्ध हो
जाना । देह सुन्न हो जाना । लकवा मार जाना । घट्ट से सिर
अलग करना = सिर काट लेना । मार डालना ।

२. पेट का वह सब मोटा कड़ा भाग जो जड़ से कुछ दूर ऊपर
तक रहता है और जिससे निकलकर डालियाँ हड्डी उधर
फेली रहती हैं । पेड़ी । तना ।

घट्ट^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी वस्तु के एकबारगी
गिरने, वेग से गमन करने आदि से होता है । जैसे,—(क) वह
घट्ट से नीचे गिरा । (ख) गाड़ी घट्ट से निकल गई ।

यौ०—घट्ट घट्ट ।

विशेष—'खट' 'पट' आदि अनु० शब्दों के समान प्रायः इस
शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि०वि० वत् ही
होता है ।

घङ्क—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु० घट्ट] १. हृदय का स्पंदन । हृदय के
आकुचन प्रसारण की क्रिया जो हृदय रक्त से मालूम होती
है । दिल के चलने या उछलने की क्रिया । हृदय के स्पंदन
का शब्द । दिल के कूदने की आवाज । तड़प । तपाक ।
३. भय, आशंका आदि के कारण हृदय का अधिक स्पंदन ।
अदेशे या दहशत से दिल का जल्दी जल्दी और जोर जोर
से कूदना । जी धक धक करने की क्रिया । ४. आशंका ।
खटका । भ्रम । भय ।

यौ०—वेघङ्क = बिना किसी खटके के । बिना किसी असमंजस

या भागा पीछा के । निर्द्व । बिना किसी रकावट या सकोच के । जैसे,—तुम बेघड़क भीतर चले जाओ ।

५. हिचक । झिझक । सकोच ।

घड़कन—सञ्ज्ञा बी० [हि० घड़क] हृदय का स्पन्दन । दिल का कूटना ।

घड़कना—क्रि० प्र० [हि० घड़क] १. हृदय का स्पन्दन करना । दिल का उछलना या कूटना । छाती का घक घक करना ।

संयो० क्रि०—उठना ।

मुहा०—छाती, जी या दिल घड़कना = भय या आशंका से हृदय का जोर जोर से धीर जल्दी जल्दी उछलना । जी दहलना । हृदय कांपना ।

२. घड़ घड़ शब्द करना । किसी भारी वस्तु के गिरने का सा शब्द करना । जैसे, गोला घड़कना ।

घड़का—सञ्ज्ञा पुं० [प्रनु० घड़] १. दिल की घड़कन । २. दिल के घड़कने का शब्द । ३. खटका । प्रवेश । भय ।

मुहा०—घड़का खुलना = साहस होना । भय जाता रहना ।

४. गिरने पड़ने का शब्द । ५. पयाल का पुतला या डबे पर रखी हुई काखी हाँडी आदि जिसे विडियों को डराकर भगाने के लिये खेतों में रखते हैं । घोखा ।

घड़काना—क्रि० सं० [हि० घड़क] १. दिल में घड़क पैदा करना । जी घक घक कराना । २. जी दहलाना । डराना । खटका या आशंका उत्पन्न करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. घड़ घड़ शब्द उत्पन्न कराना । कोई ऐसी वस्तु फेंकना, गिराना या छोड़ना जिससे भारी शब्द हो । जैसे, गोला घड़काना ।

घड़क्का—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घड़का' ।

यौ०—घूम घड़क्का = घूम भीड़ भाड़ और घूम घाम । गहरी समारोह और ठाटभाट ।

घड़चना^①—क्रि० सं० [सं० घर्षण] १. मारना । उ०—जोरावरी बीच मुज जेहाँ, घड़चे सो तू हिल भवषेस ।—रघु० ६०, पु० २८३ । फाड़ना । विदीर्ण करना । उ०—घड़च कनातां चार सुँ, गोरहवास झुमार ।—रा० ६०, पु० २८३ ।

घड़चा^②—सञ्ज्ञा पुं० [हि० घड़का] भय । आशंका ।

घड़च्छना^③—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'घड़कना' । उ०—सुत आणुद महेस, सगे पंडवेस घड़च्छे ।—रा० ६०, पु० २०६ ।

घड़दूटा—वि० [हि० घड़ + दूटना] १. जिसकी कमर झुकी हुई हो । २. कुबड़ा ।

घड़घड़^१—सञ्ज्ञा बी० [प्रनु०] १. किसी भारी वस्तु के एकबारगी गिरने, फेंके जाने, गमन करने या छूटने से उत्पन्न लगातार होनेवाला भीषण शब्द । २. घड़कन । उ०—जैसा उनके सुग्ग हृदय में घड़ घड़ घड़ था ।—साकेत, पु० ४०३ ।

घड़घड़^२—क्रि० वि० १. घड़ घड़ शब्द के साथ । जैसे, घड़ घड़ गोले छूट रहे हैं । २. बेघड़क । बिना रकावट के ।

घड़घड़ाना—क्रि० प्र० [प्रनु० घड़घड़] घड़ घड़ शब्द करना ।

भारी चीज के गिरने, पड़ने की सी आवाज करना । जैसे,—गोले घड़घड़ा रहे हैं ।

मुहा०—घड़घड़ाता हुमा = (१) घड़ घड़ शब्द धीर वेग के साथ । गड़गड़ाहट और मोक के साथ । जैसे,—गाड़ी घड़घड़ाती हुई निकल गई । (२) बिना रकावट के धीर मोक के साथ । बिना किसी प्रकार के खटके या सकोच के । बेघड़क । जैसे,—तुम घड़घड़ाते हुए भीतर चले जाना ।

घड़ल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [प्रनु० घड़] १. घड़ घड़ शब्द । घड़का । वेग के साथ गिरने, पड़ने, गमन करने आदि का शब्द ।

मुहा०—घड़ल्ले से या घड़ल्ले के साथ = (१) बिना किसी रकावट के । मोक से । (२) बेघड़क । बिना किसी प्रकार के भय या सकोच के । जैसे, जो कुछ कहना हो घड़ल्ले के साथ कहो ।

२. घूमघड़का । भीड़ भाड़ और घूमघाम । ३. कणमकण । कसामस । गहरी भीड़ ।

घड़वा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैना ।

घड़वाई—सञ्ज्ञा पुं० [हि० घड़ा] तोलनेवाला ।

घड़हड़ना^④—क्रि० प्र० [प्रनु०] काँगना । लरजना । उ०—सु दर घरती घड़ेहई गगन लगे उडि धूरि ।—सु दर प्र०, भा० २, पु० ७३६ ।

ढा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० घट] १. परपर लोहे आदि का बोक जो बेंची हुई तौल का होता है और जिसे तराजू के एक पलड़े पर रखकर दूसरे पलड़े पर उसी के बराबर चीज रखकर तोलते हैं । घाट । वटखरा ।

मुहा०—धड़ा करना = कोई वस्तु रखकर तोलने के पहले तराजू के दोनों पलड़ों को बराबर कर लेना ।

विशेष—जब किसी वस्तु को बरतन के सहित तोलना रहता है । तब पहले बरतन को पलड़े पर रखकर दोनों पलड़ों को बराबर कर लेते हैं । इसी को घड़ा करना कहते हैं ।

धड़ा बाँधना = (१) दे० 'धड़ा करना' । (२) दोषारोपण करना । कलक लगाना ।

२. चार सेर की एक तौल ।

विशेष—कहीं कहीं पाँच सेर का घड़ा माना जाता है ।

३. तराजू । तुला ।

मुहा०—घड़ा उठाना = तोलना । वजन करना ।

धड़ा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० घड़क्का] दल । जत्था । झुंड । समूह ।

मुहा०—धड़ा बाँधना = दल बाँधना ।

धड़ाका^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रनु०] दे० 'घड़का' ।

धड़ाका^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्रनु० घड़] 'घड़' 'घड़' शब्द । किसी भारी चीज से गिरने, छूटने, चलने आदि से उत्पन्न धीर शब्द । घमाके या गड़गड़ाहट का शब्द । जैसे, बंदूक का घड़ाका, दीवार गिरने का घड़ाका ।

क्रि० प्र०—होवा ।

मुहा०—घड़ाके से = झट से । जल्दी से । घटपट । बिना रुकावट के । जैसे,—घड़ाके से यह काम कर डालो ।

घड़ाघड़—क्रि० वि० [धनु० घड़] १. लगातार 'घड़' 'घड़' शब्द के साथ । बार बार घड़ाके के साथ । जैसे,—ऊपर से घड़ाघड़ हट्टे गिर रही हैं । उ०—(क) घड़कों की घड़ाघड़ धड़ग की घड़ाघड़ में, हँ रहे कड़ाकड़ सुदतों की कड़ाकड़ी । —पद्माकर प्र०, पृ० ३०७ । (ख) चली तोप धाँ धाँ घड़ा घड़ा जंगी । घड़ाघड़ घड़ाघड़ घड़ा होने लगी । —पद्माकर प्र०, पृ० ११ । २ एक दूसरे के पीछे लगातार । बराबर जल्दी जल्दी । बिना रुके हुए । जैसे,—वह सब बातों का घड़ाघड़ जबाब देता गया ।

घड़ाबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ा + प्रा० बन्दी] १ घड़ा बाँधने का काम । २ लड़ाई के पहले दो पक्षों का अपनी अपनी सेना का बल एक दूसरे के बराबर करना ।

घड़ाम—संज्ञा पुं० [धनु० घड़] ऊपर से एकबारगी कूद या गिरकर जोर से जमीन पानी आदि पर पड़ने का शब्द । जैसे,—छत पर से वह घड़ाम से कूद पड़ा ।

विशेष—खट, पट आदि धनु० शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग केवल 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है ।

घड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका, घटी] १ चार या पाँच सेर की एक तोल । उ०—कहा बोझ सोरा में कहिये सो ऊपर एक घड़ी ।—सतवाणी० पृ० ७७ ।

मुहा०—घड़ी भरना = बजन करना । घड़ी घड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना । इस प्रकार लुटना कि पास में कुछ भी न रह जाय । घड़ी घड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना । खूब लुटना । कुछ भी न छोड़ना । घड़ियों = ढेर का ढेर । बहुत सा । बहुत अधिक ।

२ पाँच सौ रुपए की रकम । ३. रेखा । लकीर । ४. वह लकीर जो मिस्सी लगाने या पान खाने से मोठों पर पड़ जाती है ।

क्रि० प्र०—जमाना = मोठों पर मिस्सी की तह जमाना । —लगाना = दे० 'घड़ी जमाना' ।

घड़ुकना(५)—क्रि० प्र० [हि० घड़कना] गरजना । गड़गड़ाना । उ०—घुरि मसाह घड़ुकया मेह ।—बी० रासो, पृ० ७० ।

घणु(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० घन्या] स्त्री । पत्नी । उ०—घणुक बोल बस्यो मने माँहि ।—बी० रासो, पृ० ३३ ।

घण्णी(५)—संज्ञा पुं० [हि० घनी] स्वामी । मालिक । अधिपति । उ०—सोनीगरा का हँ करूँ बषाण, हाडा बु दी का घण्णी ।—बी० रासो, पृ० ३१८ ।

धत्—प्रत्य० [धनु०] १ दुतकारने का शब्द । तिरस्कार के साथ हटाने का शब्द । दूर हो । हट जा । २. हाथी को पीछे हटाने का शब्द ।

धत—संज्ञा स्त्री० [सं० रत, हि० लत] लत । बुरी बान । खराब भाव । टेव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

धतकारना—क्रि० सं० [धनु० धत्] १ दुतकारना । दुरकारना ।

तिरस्कार के साथ हटाना । २. धिक्कारना । खानत मला-मत करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

धता—वि० [धनु० धत्] चलता । हटा हुआ । जो दूर हो गया हो या किया गया हो । जो भागा या भगाया गया हो (बाजारू) ।

मुहा०—धता करना = चलता करना । हटाना । भगाना । टालना । धता बताना = (१) चलता करना । हटाना । उ०—जब सो डेढ़ सौ रुपए हो जाते, तो वह नोकरी को धता बता देते । किन्नर०, पृ० १०० । (२) जो किसी बात के लिये प्रज्ञा हो उससे इधर उधर का बहाना करके अपना पीछा छुड़ाना । धोखा देकर टालना । टालतूल करना । धता होना = चलता होना । चल देना ।

धतिगड़—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धर्तीगड़' ।

धतिया—वि० [हि० धत] जिसे किसी बात की धत पड़ गई हो । बुरी लत वाला । लती ।

धर्तीगड़—संज्ञा पुं० [देश०] १ बड़े डोल का । बेडोल भादमी । मोटा ताजा भादमी । मुस्टंड । २ जारज । दोगला ।

धर्तीगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धर्तीगड़' ।

धतूरा^१—संज्ञा पुं० [सं० धतूर] दे० 'धतूरा' ।

धतूर^२—संज्ञा पुं० [धनु० धू + सं० तूर] नरसिंहा नाम का बाजा । धूत । सिंहा । तुरही । उ०—दसएँ मास मोहन भए मेरे भगिन बाजे धतूर ।—सूर (शब्द०) ।

धतूरा—संज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर अथवा सं० धतूरक] दो तीन हाथ ऊँचा एक पोधा जिसके पत्ते सात माठ भंगुल तक लंबे और पाँच छह भंगुल चौड़े तथा कोनदार होते हैं ।

विशेष—इसमें घंटों के आकार के बड़े बड़े और सुहावने सफेद फूल लगते हैं । फल इसके घड़ी के फलों के समान गोल और काँटेदार पर उनसे बड़े बड़े होते हैं । अंडी के फल के ऊपर जो काँटे निकले होते हैं वे घने लंबे और मुलायम होते हैं, पर धतूरे के फल के ऊपर काँटे कम, छोटे और कुछ अधिक कड़े होते हैं । कंटकहीन फलवाला धतूरा भी होता है । फलों के भीतर बीज भरे होते हैं जो बहुत बिखले होते हैं । जब ये बीज पृष्ठ हो जाते हैं तब फल फट जाते हैं । धतूरे कई प्रकार के होते हैं पर मुख्य भेद दो माने जाते हैं । सफेद धतूरा और काला धतूरा । कहीं कहीं पीला धतूरा भी मिलता है । इसके फूल सुनहले रंग के होते हैं । काले धतूरे के डठल, टहनियाँ और पत्तों की नसे गहरे धवनी रंग की होती हैं तथा फूलों के निचले भाग भी कुछ दूर तक रक्तकृष्णाम होते हैं । साधारणतः लोगों का विश्वास है कि काला धतूरा अधिक बिखला होता है, पर यह भ्रम है । प्रीषध में लोग काले धतूरे का व्यवहार अधिक करते हैं । वैद्य लोग धतूरे के बीज तथा पत्तों के रस का दम में सेवन कराते और बात की पीड़ा में उसका बाहरी प्रयोग करते हैं । डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन दोनों रोगों में धतूरे को बहुत उपकारी पाया है । सूखे पत्तों या बीजों के धूप से भी वैद्य का कष्ट दूर होता है । पहले डाक्टर

लोग धतूरे के गुणों से अनभिज्ञ थे पर अब वे इसका उपयोग करने लगे हैं। पागल कुत्ते के काटने में भी धतूरा बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। धतूरे के फूल फल शिव को चढ़ाए जाते हैं।

वैद्यक में धतूरा कसेला, उष्ण, गुरु तथा मदाग्नि और वातकारक माना जाता है। औषध के अतिरिक्त विषप्रयोग और मादकता के लिये भी धतूरे का प्रयोग होता है। इसके बीज भाँग और घराब को तेज करने के लिये कभी कभी मिलाए जाते हैं। धतूरा प्रायः गरम देशों में पाया जाता है। भारतवर्ष में यह सर्वत्र मिलता है। प्रदेशभेद से पीघो में थोड़ा बहुत भेद पाया जाता है। दक्षिण देश का धतूरा उत्तराखण्ड के धतूरे से देखने में कुछ भिन्न मालूम होता है। काश्मीर, काबुल और फारस तक से इसके बीज हिंदुस्तान में आते हैं। फारस से ये बीज तागे में गूँथकर माला के रूप में आते हैं और बंबई में 'बर-मूली' के नाम से बिकते हैं।

पर्या०—उन्मत्त। कितव। घूर्त। कनक। कनकाह्वय। मातुल। मदन। घत्तूर। शाठ। श्याम। शिवशेखर। खजुंघन। काह्लापुष्प। लल। कटफल। मोहन। कुलभ। मत्त। शैव। देविका। तूरी। महामोह। शिवप्रिय।

मुहा०—धतूरा खाए फिरना = पागल बना फिरना। उन्मत्त के समान घुमना। उ०—सूरदास प्रभु दरसन कारन मानहुँ फिरत धतूरा खाए।—सूर (शब्द०)।

धतूरिया—संज्ञा पु० [हि० धतूर + इया (प्रत्य०)] ठगों का वह दल या संप्रदाय जो पथिकों को धतूरा खिलाकर बेहोश करता और छूटता पा।

धत्ता^१—संज्ञा पु० [देश०] एक छद जिसके विषम (पहले और तीसरे) चरणों में १८ और सम (दूसरे, चौथे) चरणों में १६ मात्राएँ होती हैं। अतः में तीन लघु होते हैं। यह छद द्विपदी घत्ता कहलाता है और दो ही पक्तियों में लिखा जाता है। जैसे,—श्रीकृष्णमुरारी कुजविहारी कर, भजु जन मन-रजन पदन। ध्यावो बनवारी अनदुसहारी, जिहि नित जप गजन मदन।

धत्ता^२—संज्ञा पु० [देश०] घाली की घारी का डालुवाँ भाग।

धत्ता^३—वि० [हि०] दे० 'घत्ता'। उ०—घन घाह सघत्ता सूर सरसा। मैंगल मत्ता करि घत्ता।—पु० रा०, २५।५४।

धत्तानंद—संज्ञा पु० [?] एक छद जिसकी प्रत्येक पक्ति में ११+७+१३ के विश्राम से ३१ मात्राएँ होती हैं। अतः में एक नगण होता है। जैसे,—अय कदिय कुल कस, बलिविष्वंस, केशिय बक दानव दरम। सो हरि दीनदयाल, भक्तकपाल, कवि सुखदेव कृपा करन—सुखदेव (शब्द०)।

धत्ती^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घरती'। उ०—सिद्ध कहत सुनु राजन बसिय। जो तू तजि भायो निज घत्तिय।—पु० रा०, १।३६८।

धत्तूर—संज्ञा पु० [सं०] धतूरा।

धत्तूरक—संज्ञा पु० [सं०] धतूरा [को०]।

धत्तूरका—संज्ञा पु० [सं०] धतूरा [को०]।

धधक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ भाग की लपट के ऊपर उठने की क्रिया या भाव। भाग की भटक। २. धौच। लपट। लो। उ०—मकर तार मारग खलि पावा ता बिच धधक चढ़ाई।—घट०, पु० ३११।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

धधकना—क्रि० प्र० [हि० धधक] भाग का इस प्रकार चलना कि लपट ऊपर उठे। लपट के साथ चलना। धाये धाये चलना। दहकना। मड़कना।

संयो० क्रि०—उठना।

धधकाना—क्रि० सं० [हि० धधकना] १ भाग को इस प्रकार चलाना कि उसमें से लपट उठे। २. दहकाना। प्रज्वलित करना।

संयो० क्रि०—देना।

धधकारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धधकना] गर्जन। उ०—गगन गुमठ धधकार सुनाऊँ।—घट०, पु० ३७१।

धधकार^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धधुकार'। उ०—धुन धधकार चढ़ भगम मूला।—तुरसी श०, पु० २२।

धधकारना^३—क्रि० सं० [हि० धधकार] जलाना। प्रज्वलित करना। उ०—ग्रहा भगिन भदर धधकारी।—धरम०, पु० १८।

धधाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धधकाना'। उ०—भाग की धधात ताती लपट मिराय गई। पीन पुरवाई लागी सीतल सुहान री।—ठाकुर०, पु० २०।

धनंजय^१—वि० [सं० धनञ्जय] धन को जीतने अर्थात् प्राप्त करनेवाला।

धनंजय^२—संज्ञा पु० १ अग्नि। उ०—भसजोग ते कहूँ कहूँ, एक भयं कबिराई। कहें धनजय धूम बिनु, पावक आग्यों जाई।—मिखारी०, प्र०, भा० २, पु० ७।

विशेष—इनकी पूजा से धन की प्राप्ति होती है।

२ चित्रक वृक्ष। चीता। ३ अर्जुन का एक नाम। ४ अर्जुन वृक्ष। ५. विष्णु। ६ एक नाग का नाम जो जलाशयों का अधिपति कहा गया है। ७ शरीररूप पाँच वायुओं में से एक।

विशेष—यह वायु पोषण करनेवाली मानी गई है (वेदातसार)। सुबोधिनो टोका में लिखा है कि यह मरने पर भी बनी रहती है। इससे शरीर फूलता है। खलाट, स्कंध, हृदय, नाभि, अस्थि और रज्जा इसके रहने के स्थान कहे गए हैं।

धनंत^४—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धन्वतरि'। उ०—सु पारिजात पानय। सुरा धनत मानय।—पु० रा० १। १२३।

धनंतर^१—संज्ञा पु० [सं० धन्वन्तरि] दे० 'धन्वतरि'।

धनंतर^२—संज्ञा पु० [सं० जन्वन्तर (= सोम का एक भेद)] एक घोधा जिसकी पत्तियाँ मोटी और फूल नीले होते हैं।

धनंतर^३—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धन्वतरि'। उ०—रिषिकेस दिव्य ब्रह्म, ताहि धनंतर पद सोई।—पु० रा०, २१। १५३।

धन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वस्तु या वस्तुओं की समष्टि जिससे किसी उपयोगी या इष्ट अर्थ की सिद्धि होती है और जो अथ, पूर्ण या समय लगाने से प्राप्त होती है, विशेषतः अधिक परिमाण में संचित उपयोग की सामग्री। रुपया पैसा, जमीन, जायदाद इत्यादि। जीवनोपाय। संपत्ति। द्रव्य। दौलत।

क्रि० प्र०—कमाना।—भोगना।—लगाना।

यौ०—धनधान्य।

मुहा०—धन उड़ाना = धन को चटपट व्यय कर डालना।

२ औपायों का कुंड जो किसी के पास हो। गाय, भैंस आदि। गोधन। ३ स्नेहपात्र। अत्यंत प्रिय व्यक्ति। जीवनसंबन्ध। जैसे, प्राणधन, जीवनधन। ४ यणित में जोड़ी जानेवाली सख्या या जोड़ का चिह्न। योग सख्या या योग (+)। ऋण या क्षय का चिह्न। ५. वह द्रव्य जिसमें बुद्धि या भाव न समिचित हो। मूल। पूर्ण। ३. जन्मकुंडली में जन्मस्तरन से दूसरा स्थान।

विशेष—इसे देखकर यह विचार किया जाता है कि कच्चा धनी होगा या निर्धन। जैसे, यदि सूर्य धन स्थान में हो तो मनुष्य धनहीन होगा, चंद्रमा हो तो धनधान्य से पूर्ण होगा, इत्यादि। भस्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी ये धनप्रयोग नक्षत्र कहलाते हैं।

७ कच्ची धातु। खान से निकली हुई बिना साफ या शुद्ध की हुई धातु (खानवाले)। ८. लूट का माल (को०)। ९ पुरस्कार (को०)। १०. प्रतिद्वंद्विता। होठ। मुकाबिला (को०)। ११. आवाज। शब्द। ध्वनि (को०)। १२. धनिष्ठा नक्षत्र (को०)।

धन^७—संज्ञा स्त्री० [सं० धनी] युवती स्त्री। वधू। उ०—(क) पुनि धन भरि अंजुलि जल लीन्हा। नखत मोछ न्योछावरि कीन्हा।—जायसी (शब्द०)। (ख) सूरदास सोमा क्यों पावे पिय विहीन धन मटके।—सूर (शब्द०)। (ग) लूपुर पायें उठे भूतनाथ सु जाय सगी धन धाय अरोखे।—देव (शब्द०)।

धन^८—वि० [सं० धन्य] दे० 'धन्य'। उ०—धन के पुरष बडा पणधारी।—र० ६०, पु० २४।

धनक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन की इच्छा। २. राजा कृतवीर्य के पिता।—(भायवत)।

धनक^२—संज्ञा पुं० [सं० धनुष] १. धनुष। कमान। उ०—धनक पिनाक चढ़ाय घरें।—रघु० ६०, पु० ७४। २. एक प्रकार का पतला पोछा जिसे डोपी भाँति में लगाते हैं। ३ एक प्रकार की मोड़नी।

धनक^७—वि० [हि०] दे० 'धनिक'। उ०—पट्टन धनकनि देह दुष गेह कटन ग्रह हृष्य।—पु० रा०, १। ४२२।

धनकटी—संज्ञा स्त्री० [हि० धान+कटवा] १. धान की कटाई का समय। २ एक प्रकार का कपड़ा।

४-२४

धनकर—संज्ञा पुं० [हि० धान+करना] १ वह कटो मिट्टी जिसमें धान बोया जाता है और जिसमें बिना अच्छी वर्षा हुए हथ नहीं चल सकता। २ वह खेत जिसमें धान बोया जाता हो। ३ धान। धान की फसल।

धनकाम, धनकाम्य—वि० [सं०] लोभी (को०)।

धनकुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० धान+कूटना] १. धान कूटने का काम। २. धान कूटने के औजार, मोखली, मूसल।

मुहा०—धनकुट्टी करना = मारते मारते कधुमर निकासना। बहुत पीटना।

३. उड़नेवाला लाल रंग का एक छोटा (जो के बराबर) कीड़ा जिसका मुँह काला होता है। यह अपना भगवा धड़ इस प्रकार नीचे नीचे ऊपर हिलाता है जैसे धान कूटने की डेकली। उ०—कोउ धनकुट्टी कोउ टोड़िन पाँखिन गहि छोड़ी।—प्रेमधन०, भा० १, पु० ४६।

धनकुबेर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो धन में कुबेर के समान हो। अत्यंत धनी मनुष्य।

धनकेलि—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

धनकोटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक भाड़ या पीघा जो हिमालय के कम ठंडे स्थानों में होता है और जिससे नेपाली कागज बगता है। चमोई। सतबरवा। सतपुरा।

धनखर—संज्ञा पुं० [हि० धान] वह खेत जिसमें (कुमारी) धान बोया जाता हो। धनाऊँ।

धनचिढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० धान+चिढ़ी] एक प्रकार की चिढ़िया।

धनतेरस—संज्ञा स्त्री० [हि० धन+तेरस] कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी जो बोवाली के दो दिन पहले होती है।

विशेष—इस दिन रात को लक्ष्मी की पूजा होती है।

धनदंड—संज्ञा पुं० [सं० धनदण्ड] वह दंड जिसमें अपराधी को कुछ धन देना पड़ता है। जुर्माना।

धनद^१—वि० [सं०] धन देनेवाला। दाता।

धनद^२—संज्ञा पुं० १ कुबेर। उ०—व्याय चुको धनद कमाय चुको कामतर पाय चुको पारस रिभाय चुको राम को।—पद्माकर ग्रं०, पु० ३१०।

२. हिज्जल वृक्ष। समुद्रफल। ३. धनपति वायु। ४. धर्मि। ५. चित्रकवृक्ष। चीता। ६. हिमालय या उत्तराखंड के एक देश का नाम। (महामारत)।

धनदत्तार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेरतीर्थ जो ब्रज के अंतर्गत है।

धनद्विशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा (को०)।

धनदा^१—वि० स्त्री० [सं०] धन देनेवाली।

धनदा^२—संज्ञा स्त्री० धार्मिक कृष्ण एकादशी का नाम।

धनदाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ता करज।

धनदायन—संज्ञा पुं० [देश०] एक पीघा जिसके काढ़े से ऊनी कपड़ों पर भाड़ी डैते हैं।

धनदायी—संज्ञा पुं० [सं० धनदायिन्] धर्मि (को०)।

धनदेव—संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर ।

धनघन(उ)—वि० [हिं० धन + घन] घन्य । घन्य घन्य । उ०—गुरु देव संग भँवरि लेइहौं धन धन भाग हमार ।—कबीर सा०, पृ० ८० ।

धनघन्नि(उ)—वि० [हिं० धनघन] घन्य घन्य । उ०—धनवन्ति नरिद सुलोह नरं ।—पु० रा०, १२।१४३ ।

धनधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजाना [को०] ।

धनधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] धन और धान आदि । सामग्री और संपत्ति । जैसे, धन-धान्य-पूर्ण देश ।

धनधाम—संज्ञा पुं० [सं०] घरवार और रुपया पैसा ।

धनधारी—संज्ञा पुं० [सं० धन + धारी] १. कुवेर । उ०—राम निछावरि लेव को हठि होत भिखारी । बहुद्विषत तेहि देखिए मानहु धनधारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. बहुत बड़ा भूमि । परम धनवान् ।

धननन्द—संज्ञा पुं० [सं० धननन्द] सिंहल के महावंश नामक ग्रंथ के अनुसार मगध के नन्दवंश का अंतिम राजा जिसका चाणक्य द्वारा नाश हुआ । दे० 'नन्दवंश' ।

धननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुवेर ।

धनपति(उ)—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुवेर । २. पुराण के अनुसार वायु का नाम ।

विशेष—वराहपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने जब सृष्टि की तब उनके मुख से वायु देवता निकले । ब्रह्मा ने उनसे भूतिमान होकर शांत भाव धारण करने के लिये कहा और वर दिया कि 'देवताओं का जिसना धन है सबके रक्षक तुम हो । जो एकादशी के दिन प्राण में पका धन न खायगा उसके प्रति प्रसन्न होकर तुम धनधान्य दोगे' ।

धनपति(उ)—संज्ञा पुं० [सं० धनपति] दे० 'धनपति' । उ०—जीव जीव धनपति सुहाइय ।—प० रासो, पृ० १४ ।

धनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बही खाता ।

धनपातर(उ)—संज्ञा पुं० [सं० धनपात्र] दे० 'धनपात्र' । उ०—पूछेसि इहाँ साहु कोउ ग्रहई । धनपातर जा कहै जग कहई ।—विना०, पृ० २३४ ।

धनपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धनवान । धनी ।

धनपाल^१—वि० [सं०] १. धन का रक्षक । २. खजांची (को०) ।

धनपाल^२—संज्ञा पुं० कुवेर ।

धनपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धनपिशाच' ।

धनपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविवेकपूर्वक धनसंग्रह करने की वृत्ति । धनलोलुपता । [को०] ।

धनपिशाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनलोलुपता [को०] ।

धनप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] धन को किसी व्यापार में लगाने या व्याज पर उधार देने का कार्य । रुपया लगाने का काम ।

विशेष—मुहूर्तचिन्तामणि, ज्योतिप्रकाश आदि फलित ज्योतिष के ग्रंथों में इस बात का विचार किया गया है कि किन किन नक्षत्रों या दिनों में धनप्रयोग करना चाहिए, किन किन में नहीं ।—

धनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा जामुन ।

धनमद—संज्ञा पुं० [सं०] धन का घमंड ।

धनमान(उ)—वि० [हिं०] दे० 'धनवान' । उ०—संमति हम सोच अपने विख्यात कुलीन धनमानों को देंगे ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २७६ ।

धनमाली—संज्ञा पुं० [सं० धनमालिन्] एक मन्त्र का संहार ।

धनमूल—संज्ञा सं० [सं०] पूँजी । मूलधन [को०] ।

धनराज(उ)—संज्ञा पुं० [सं० धन + राज] धनी । धनवान । उ०—पानि गधियरा दामा दयाल । धनराज कीण भोगी भुपाल ।—पु० रा०, ६६ । १५३ ।

धनवंत—वि० [हिं०] दे० 'धनवान' । उ०—(क) प्राप्ता तृप्ता जेहि घर व्यापे धनवंता सो सो चाहू मिलापे ।—कबीर सा०, पृ० ४८५ । (ख) तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कधिकोतुक तात न जात कही ।—मानस, ७ ।

धनवती^१—वि० स्त्री० [सं०] धन रखनेवाली ।

धनवती^२—संज्ञा स्त्री० धनिष्ठा नक्षत्र ।

धनवा^१—संज्ञा पुं० [हिं० धान] एक प्रकार की घास ।

धनवा^२(उ)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धनवा' । उ०—अए कर अपने भग जाके । खँवत बार बार धनवा के ।—सुकुतला, पृ० ३१ ।

धनवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धनवती] जिसके पास धन हो । धनी । दीनतमद ।

धनवारा(उ)—वि० [हिं० धन + वाला (प्रत्य०)] धनी । उ०—सोऊ नहीं मनभावन नायक, आवत जो बहुते धनवारी ।—मति० ग्रं०, पृ० २६० ।

धनशाली—वि० [सं० धनशालिन्] [वि० स्त्री० धनशालिनी] धनवान् । धनिक ।

धनसार—संज्ञा पुं० [हिं० धान + सार (शाला)] धनाज भरने की कोठरी या घेरा जिसमें केवल दो खिड़कियाँ धनाज रखने और निकालने के लिये होती हैं ।

धनसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० धन + श्री] एक चिड़िया ।

धनसुंघा—संज्ञा पुं० [हिं० धन + सुंघना] धन सुंघनेवाले । सूँघकर धन की जानकारी करनेवाले । उ०—कुछ लोग धनसुंघा होते हैं, और बिना देखे ही जान जाते हैं कि किस चीज में रुपया छिपाया गया है ।—जिप्सी, पृ० ३३ ।

धनसू—संज्ञा पुं० [सं०] धनेस नाम की चिड़िया ।

धनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजाना । २. कुदली में सन से दूसरा स्थान जिसमें पड़े ग्रहों की स्थिति के आधार पर किसी का धनी या निर्धन होना जाना जाता है [को०] ।

धनस्यक^१—वि० [सं०] धन की लालसा रखनेवाला ।

धनस्यक^२—संज्ञा पुं० गोक्षुरक । गोखरू ।

धनस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० धनस्वामिन्] कुवेर ।

धनहटा—संज्ञा स्त्री० [सं० धन + हिं० हट] धान्यहटा । धनाज की मंडी । उ०—मन्त्र पोरेजम पद संहार समीत, धनहटा,

हटा, पनहटा, पक्कानहटा, मछहटा करेजो सुख रक्कया कहते ।—कीर्ति०, पृ० २८ ।

धनहर^१—वि० [सं०] धन हरनेवाला ।

धनहर^१—सङ्ग पु० १ चोर । लुटेरा । २. चोर नामक गंधद्रव्य । ३. उत्तराधिकारी । वारिस (को०) ।

धनहार्य—वि० [सं०] जिसे धन देकर बसीभूत किया जाय [को०] ।

धनहीन—वि० [सं०] निर्धन । दरिद्र । कगास ।

धना^१—सङ्ग बी० [?] एक रागिनी ।

यना^१—सङ्ग बी० [सं०] धनिका, हिं० धनिया (=युवती)] युवती । वधू (गीत या कविता) ।

धनाढ्य—वि० [सं०] धनवान् । मासदार ।

धनाधिकार—सङ्ग पु० [सं०] धन या संपत्ति का अधिकार [को०] ।

धनाधिप—सङ्ग पु० [सं०] कुबेर ।

धनाधीश—सङ्ग पु० [सं०] धन + अधीश] धनपति । धनिक । उ०—
जो सैकड़ों धनाधारों की कामना है ।—ज्ञान०, पृ० ५० ।

धनाध्यक्ष—सङ्ग पु० [सं०] १ सज्जानचो । २ कुबेर ।

धनाना—कि० प्र० [सं० धेनु (=नवसूतिका गाय)] १. गाय का गभवती होना । बच्चे से होना । २. गाय का बरदाना । गाय का सड़ि से संयोग करना ।

धनानी^१—सङ्ग पु० [सं०] धन] धनी । धनिक । उ०—किन्नर भर विद्याधरा यक्षादि धनानी ।—सुदर० प्र०, भा० १, पृ० २०६ ।

धनापहार—सङ्ग पु० [सं०] १ अयंदह । २. लूट । [को०] ।

धनाचित्त—वि० [सं०] मूल्यवान् उपहारों को देकर समुष्ट किया हुआ [को०] ।

धनावह—वि० [सं०] धन + वाह] धनी । धनपति । उ०—मेरा पति धनावह सेठि सहस्रभार स्वर्ण का अधिपति था ।—वैशाली०, पृ० १७१ ।

धनाशा—सङ्ग बी० [सं०] धनप्राप्ति की भाषा [को०] ।

धनाश्री—सङ्ग बी० [सं०] एक रागिनी जो हनुमान् के मत से श्री राग की तीसरी पत्नी मानी जाती है ।

विशेष—इसकी जाति पांडव, ऋषभ वर्जित गुहाश्रयास पड़ज है । गाने का समय किसी किसी के मत से दिन का दूसरा पहर और किसी के मत से तीसरा पहर है । इसका प्रयोग बीर रस में विशेष होता है । इसका सरगम इस प्रकार है—
स । ग । म । प । ध । नि । स ।

भरत के मत से यह गंधार राग की भार्या और कल्लिनाथ के मत से मेघराग की चतुर्थ भार्या है ।

धनि^१—सङ्ग बी० [सं०] धनी] युवती । वधू । उ०—धनि वै धनि सावय की रतियाँ पिय की छतियाँ लजि सोवति हैं ।
—(चन्द०) ।

धनि^२—वि० [सं० धन्य] दे० 'धन्य' । उ०—धनि धनि भारत की छत्रानी ।—हरिश्चन्द्र (चन्द०) ।

धनि^३—सङ्ग पु० [हिं०] दे० 'धनी' । उ०—जी ने धनि का हुकुम किया । जी ने बोध का प्यासा पिया ।—दक्खिनी०, पृ० १२२ ।

धनिक^१—वि० [सं०] १ धनी । जिसके पास धन हो । २ गुणपुरुष (को०) ।

धनिक^२—सङ्ग पु० १. धनी मनुष्य । २. पति । स्वामी । ३. रुपया उधार देनेवाला मनुष्य । महाजन । उत्तमर्ण । ४ धनिया । ५. ईमानदार धनिया । व्यापारी (को०) । ६. प्रियगु का पेड़ (को०) ।

धनिका—सङ्ग बी० [सं०] १. धनी स्त्री । २. भच्छी स्त्री । वधू । युवती । ३. प्रियगु वृक्ष ।

धनिता—सङ्ग बी० [सं०] धनीपना । धनाढ्यता ।

धनिप—सङ्ग पु० [सं०] धनी । स्वामी । उ०—पट्टाम सहस्र पर जिति चखिब दिल्लीय धनिप ।—प० रासो, पृ० ३८ ।

धनिया^१—सङ्ग पु० [सं०] धन्याक, धनिका धनया धनीयक] एक छोटा पौधा जिसके सुगंधित फल मसाले के काम में आते हैं ।

विशेष—यह पौधा हिंदुस्तान में सर्वत्र बोया जाता है । प्राचीन काल में धनिया प्राय भारतवर्ष ही से मिस्र आदि पश्चिम के देशों में जाता था पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस, हंगरी आदि योरप के कई देशों में इसकी खेती अधिक होने लगी है । धनिए का पौधा हाथ भर से बड़ा नहीं होता था । इसकी टहनियाँ बहुत नरम और लता की तरह लचीली होती हैं । पत्तियाँ बहुत छोटी और कुछ बोलाई लिए होती हैं पर उनमें टेढ़े मेढ़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुत से कटाव होते हैं । इन पत्तियों की सुगंध बढ़ी मनोहर होती है जिससे वे चटनी में हरी पीसकर डाली जाती हैं । टहनियों के छोर पर इधर उधर कई सीकें निकलती हैं जिनके सिरों पर छत्ते की तरह फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं । फूलों के झड़ जाने पर गेहूँ से भी छोटे छोटे लंबातरे फल लगते हैं जो सुखाकर काम में लाए जाते हैं ।

भारतवर्ष में इसकी खेती भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न ऋतुओं में होती है । जैसे, बंगाल और उत्तरप्रदेश में जाड़े में, बंबई प्रदेश में बरसात में और मद्रास में शिशिर ऋतु में । मसाले के प्रतिरिक्त योरप में धनिए का तेल भी अबके से अधिक निकालकर निकास जाता है, जो खाने और दवा के काम में आता है । वैद्यक में धनिया शीतल, स्निग्ध, दीपन, पाचन, वीर्यकारक कृमिनाशक तथा पित्तज्वर, खाँसी, प्यास और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है । डाक्टर लोग भी पेट की वायु दूर करने और शरीर में फुरती खाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं ।

पर्या०—धन्याक । धनिक । धानक । धनिका । धन्नाधान्य । कुस्तुबुर । वितुन्नक । सुगांध । सुकमपत्र । जनप्रिय । वेधक । वजिधान्य ।

मुहा०—धनिए की खोपड़ी में पानी पिलाना = प्यासों मारना । बहुत कठिन दह देना । बहुत तंग करना । (लि०) ।

धनिया^२—सङ्ग बी० [सं०] धनिका (=युवती)] युवती । वधू । स्त्री । उ०—सहस्रानन गुन गने गनत न धनियाँ । सूर त्याग सब सुखों पोष धनियाँ ।—सूर (चन्द०) ।

घनियामाला—संज्ञा स्त्री० [हि० घनी + माला] गले में पहनने का एक गहना ।

घनिष्ठ—वि० [सं०] घनी । घनाढ्य ।

घनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्ताहस नक्षत्रों में से तेईसवाँ नक्षत्र जो ६ ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में से है और जिसमें पाँच तारे संयुक्त हैं । इसके अधिपति देवता वसु हैं और इसकी प्राकृति मृदग की सी है । फलित ज्योतिष के अनुसार घनिष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म हो वह दीर्घकाय, कामातुर, कफयुक्त, उत्तम शास्त्रवेत्ता और कौतुमान् होता है ।

पर्याय—अविष्ठा । वसुदेवता । भूति । निधान । घनवती ।

विशेष—दे० 'नक्षत्र' ।

घनी^१—वि० [सं० घनिम्] १ घनवान् । जिसके पास धन हो । मालदार । रुपए पैसेवाला । धौलतमय ।

यौ०—घनी घरी = मर्यादावाला । थापवाला । घनी मानी = घनी और प्रतिष्ठित ।

मुहा०—घात का घना = घात का सच्चा । छद्मप्रतिज्ञ ।

२ जिसके पास कोई गुण आदि हो । दक्षतारसपन्थ । जैसे, तलवार का घनी ।

घनी^२—संज्ञा पुं० १. घनवान पुरुष । मालदार आदमी । २. रखने-वाला आदमी । वह जिसके अधिकार में कोई हो । अधिपति । मालिक । स्वामी । जैसे, कोशलघनी । उ०—सो राम रमानिवास संतव दास वस त्रिभुवन धनी ।—तुलसी (शब्द०) । ३ पति । शोहर ।

घनी^३—संज्ञा स्त्री [सं०] युवती स्त्री । वधू । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्वाम तमाले उठेगि बैठो घनी ।—हरिदास (शब्द०) ।

घनीका—संज्ञा स्त्री [सं०] युवती । तरुणी [को०] ।

घनीमानी^४—संज्ञा पुं० [सं० घन + मान + ई (प्रत्य०)] घनी । घनवान् । उ०—समी घनीमानी एव गुणी व्यक्तियों में साहित्यिक अभिरुचि आप्रत थी ।—भकबरी०, पृ० १६ ।

घनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] घनिया ।

घनुःपट—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष ।

घनुःशाखा—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष ।

घनुःश्रेणी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. मुर्षा । मुरा । २ महेंद्रवारुणी ।

घनु—संज्ञा पुं० [सं०] १ घनुस् । चाप । कमान ।

विशेष—दे० 'घनुस्' ।

२ ज्योतिष की बारह राशियों में से नवीं राशि जिसके मतर्गत मुख और पूर्वाषाढ़ नक्षत्र तथा उत्तराषाढ़ा का एक चरण आता है । इसे तीक्ष्ण भी कहते हैं ।

विशेष—दे० 'राशि' ।

३. फलित ज्योतिष में एक लग्नविशेष जिसका परिमाण ५ । १७ । २० है ।

विशेष—प्रत्येक दिन रात में बारह लग्न माने जाते हैं । पूस के महीने में सूर्योदय घनु लग्न में होता है ।

४. हठयोग के एक भासन का नाम । ५. पियाल वृक्ष । १ बार हाथ की एक माप । ७ गोल क्षेत्र के आधे से कम पक्ष का क्षेत्र । ८ रेतीला तट (को०) । ९ तीरंदाज (को०) ।

घनुधा—संज्ञा पुं० [सं० घन्वन्, घन्वा] १ घनुष । कमान । २. तीर की डोरी की लबी कमान जिससे घुनिए रुई घुनते हैं ।

घनुई^१—संज्ञा स्त्री [सं० घनु + ई (प्रत्य०)] छोटा घनुष ।

घनुक—संज्ञा पुं० [सं० घनुस्] दे० 'घनुस्' । उ०—मोहै घनुक भनुक पे हारा । नैनन्हि साध बान बिय मारा ।—जायसी (शब्द०) ।

घनुकना^२—क्रि० सं० [हि०] दे० 'घुनकना' ।

घनुकघाई—संज्ञा पुं० [हि० घनुक + घाई] लकवे की तरह का एक वायुरोग जिसमें जबड़े बैठ जाते हैं, और मुँह नहीं खुलता ।

घनुजाग^३—संज्ञा पुं० [सं० घनु + यज्ञ] घनयज्ञ । उ०—हिय मुदित भनहित रुदित मुख छबि कहत कबि घनुजाग की ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५ ।

घनुघर^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घनुघर'—१ । उ०—जनु घनुघर सपनि सरत भारत धार सों घाह ।—नद० ग्रं०, पृ० ३६६ ।

घनुराकार—वि० [सं०] घनुष की प्राकृति या । वक्र । टेढ़ा (को०) ।

घनुरासन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भासन (को०) ।

घनुर—संज्ञा पुं० [सं०] घनुस् का समासगत रूप ।

घनुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] घनुष की डोरी । पतबिका । बित्ता ।

घनुर्गुणा—संज्ञा स्त्री [सं०] मुर्षा । मरोर फली । घुरनहार ।

घनुर्मह—संज्ञा पुं० [सं०] १ घनुघर । २ घनुविद्या । ३. घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ४. एक परिमाण जो २७ अंगुल के बराबर थी (को०) ।

घनुर्मह—संज्ञा पुं० [सं०] घनुघर (को०) ।

घनुर्व्या—संज्ञा स्त्री [सं०] घनुष की डोरी । प्रत्यवा (को०) ।

घनुर्दुर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस ।

घनुर्दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मरुस्थल से सुरक्षित स्थान (को०) ।

घनुद्धर—संज्ञा पुं० [सं०] १ घनुष धारण करनेवाला पुरुष । कमनैत । तीरंदाज । २ घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ३ विष्णु (को०) । ४ घनु राशि (को०) ।

घनुर्दारी^१—वि० [सं० घनुर्दारिश्] [स्त्री० घनुर्दारिणी] घनुष धारण करनेवाला ।

घनुर्दारी^२—संज्ञा पुं० घनुघर । कमनैत । वीर योद्धा ।

घनुर्भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ घनुष धारण करनेवाला योद्धा । वीर । २ विष्णु (को०) । ३ घनु राशि (को०) ।

घनुर्मख—संज्ञा पुं० [सं०] घनयज्ञ ।

घनुर्मर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] घनुष की तरह टेढ़ी रेखा (को०) ।

घनुर्माला—संज्ञा स्त्री [सं०] मुर्षा । घुरनहार । मरोरफली । मुरा ।

घनुर्मास—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवधि जब सूर्य घनु राशि में स्थित होता है (को०) ।

धनुर्मुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ अंगुल का एक परिमाण [को०] ।

धनुर्यज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् संबंधी उत्सव । एक यज्ञ जिसमें धनुस् का पूजन तथा उसके चलाते आदि की परीक्षा भी होती थी ।

विशेष—मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के विवाहार्थ वर चुनने के लिये इस प्रकार का यज्ञ किया था । उसने भी छसपूर्वक कृष्ण को बुलाने के लिये इस प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान किया था ।

धनुर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] जवासा ।

धनुर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोमलता । २. धनुष (को०) ।

धनुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय के एक धनुषर का नाम ।

धनुर्वीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुकबाई । २. एक वायुरोग जिसमें शरीर धनुस् की तरह झुककर टेढ़ा हो जाता है ।

धनुर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुस् चलाने की विद्या । तीरदाजी का हनर ।

विशेष—दे० 'धनुर्वेद' ।

धनुर्वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. घामिन का पेड़ । २. बाँस । ३. मिलावा । ४. पीपल का पेड़ ।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें धनुष चलाने की विद्या का निरूपण हो ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सब सम्य देशों में इस विद्या का प्रचार था । भारत के अतिरिक्त फारस, मिस्र, यूनान, रोम आदि के प्राचीन इतिहासों और बिश्रो आदि के देखने से उन सब देशों में इस विद्या के प्रचार का पता लगता है । भारतवर्ष में तो इस विद्या के बड़े बड़े ग्रंथ थे जिन्हें सत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे । मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद लिखा है । आजकल इस विद्या का वर्णन कुछ ग्रंथों में थोड़ा बहुत मिलता है । जैसे, शुक्लीति, कामदकीनीति, अग्निपुराण, वीरचितामणि, वृद्धशाङ्गधर, वृद्धजयार्णव, युक्तिकल्पवृक्ष, नीतिमयूख, इत्यादि । धनुर्वेदसहिता नामक एक अलग पुस्तक भी मिलती है पर उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता में संदेह है ।

अग्निपुराण में ब्रह्मा और महेश्वर इस वेद के आदि प्रकटकर्ता कहे गए हैं । पर मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं कि विश्वामित्र ने जिस धनुर्वेद का प्रकाश किया था, यजुर्वेद का उपवेद नहीं है । उन्होंने अपने प्रस्थानभेद में विश्वामित्रकृत इस उपवेद का कुछ संक्षिप्त व्योरा भी दिया है । उसमें चार पाद हैं—दीक्षापाद, सग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद । प्रथम दीक्षापाद में धनुर्सेखण (धनुस् के अंतर्गत सब हथियार दिए गए हैं) और अधिकारियों का निरूपण है । आधुन चार प्रकार के कहे गए हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और यन्त्रमुक्त । मुक्त आयुध, जैसे चक्र । अमुक्त आयुध, जैसे लड्ग । मुक्ता-मुक्त, जैसे, माला, बरछा । मुक्त को अस्त्र और अमुक्त को

शस्त्र कहते हैं । अधिकारी का सखण कहकर फिर दीक्षा, अभिषेक, शक्रुन आदि का वर्णन है । सग्रहपाद में आचार्यों का सखण तथा अस्त्रशस्त्रादि के संग्रह का वर्णन है । तृतीयपाद में संप्रदाय सिद्ध विशेष विशेष शस्त्रों के अभ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं । प्रयोग नामक धनुर्ग्रंथ पाद में देवाचन, सिद्धि, अस्त्रशस्त्रादि के प्रयोगों का निरूपण है ।

वैशंपायन के अनुसार शाङ्ग धनुस् में तीन जगह झुकाव होता है पर वंणव अर्थात् बाँस के धनुस् का झुकाव बराबर क्रम से होता है । शाङ्ग धनुस् ६॥ हाथ का होता है और अरबा-रोहियों तथा गजारोहियों के काम का होता है । रबी और पैदल के लिये बाँस का ही धनुस् ठीक है । अग्निपुराण के अनुसार चार हाथ का धनुस् उत्तम, साढ़े तीन हाथ का मध्यम और तीन हाथ का अधम माना गया है । जिस धनुष के बाँस में नौ गाँठें हों उसे 'कोदंड' कहना चाहिए । प्राचीन काल में दो डोरियों की गुंथल भी होती थी जिसे उपलक्ष्यक कहते थे । डोरी पाट की और कनिष्ठा उँगली के बराबर मोटी होनी चाहिए । बाँस छीलकर भी डोरी बनाई जाती है । हिरन या भैंसे की तलत की डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है ।—(वृद्धशाङ्गधर) ।

बाण दो हाथ से अधिक लंबा और छोटी उँगली से अधिक मोटा न होना चाहिए । शर तीन प्रकार के कहे गए हैं—जिसका अगला भाग मोटा हो वह स्त्रीजातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुषजातीय और जो सर्वत्र बराबर हो वह नपुंसक जातीय कहलाता है । स्त्रीजातीय शर बहुत दूर तक जाता है । पुरुषजातीय भिदता खूब है और नपुंसक जातीय निशाना साधने के लिये अच्छा होता है । बाण के फल अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे, आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, धधंचद्र, सूचीमुख, मस्त, वत्सदत, द्विभस्त्र, काणिक, काकतुड, इत्यादि । तीर में गति सीधी रखने के लिये पीछे पंखों का लगाना भी आवश्यक बताया गया है । जो बाण सारा लोहे का होता है उसे नाराच कहते हैं ।

सक्त ग्रंथ में लक्ष्यभेद, शराकर्षण आदि के संबंध में बहुत से नियम बताए गए हैं । रामायण, महाभारत, आदि में शब्द-भेदी बाण मारने तक का उल्लेख है । अतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के समय में भी प्रसिद्ध है कि वे शब्दभेदी बाण मारते थे ।

धनुर्वेदी^१—संज्ञा पुं० [सं० धनुर्वेदिन्] शिव । महादेव [को०] ।

धनुर्वेदी^२—वि० धनुर्वेद जाननेवाला [को०] ।

धनुर्वी^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धनुषा' । उ०—सुरति मोड़ नरियर की फोड़ी । अगम पान चढ़ि धनवीं तोड़ी ।—वट०, ८० २४५ ।

धनुष—संज्ञा पुं० [सं० धनुस्] दे० 'धनुस्' ।

धनुषधरन^४—वि० [सं० धनुष्+हिं० धरना] धनुष धारण करने-वाला । धनुर्धर । उ०—मोहि धवधेख मोही ब्रज जीवन, धनुषधरन धर माखनधोर ।—चंद० बं०. पु० १२१ ।

धनुषमख—संज्ञा पुं० [सं०] धनुषयज्ञ । उ०—रामहि चले लिवाद
धनुषमख मिसु करि ।—तुलसी प्र०, पृ० ४८ ।

धनुषाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष का आकार या आकृति । उ०—
मेढत मेढत द्वे धनुषाकृति मेघकटाई की रेख गई रहि ।—
मिसारी० प्र०, भा० १, पृ० १०१ ।

धनुषाकार—वि० [सं०] धनुष के आकार का । धनुष जैसा झुका
हुआ [को०] ।

धनुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनुर्धर । २ धनुषनिर्माता [को०] ।

धनुष्काण्ड—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्काण्ड] धनुष और बाण [को०] ।

धनुष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष बनानेवाला [को०] ।

धनुष्कोटि—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनुष का छोर । २ एक तीर्थ जो
बदरिकाश्रम के मार्ग में स्थित है [को०] । ३ रामेश्वर के
दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित एक तीर्थ [को०] ।

धनुष्कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रामेश्वर से दक्षिणपूर्व एक स्थान
जहाँ समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य है ।

धनुष्पाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में धनुष हो [को०] ।

धनुष्मान्—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्मत्] १ उत्तर दिशा का एक पर्वत ।
(बृहत्संहिता) । २ धनुर्धर [को०] ।

धनुस—संज्ञा पुं० [सं०] १ फनदार तीर फेकने का वह मस्त्र जो बाँस
या सोहे के लचीले डंडे को झुका कर और उनके दोनों छोरों
के बीच, डोरी या तंतु बाँधकर बनाया जाता है । कमान ।

यौ०—धनुर्धर । धनुर्विद्या । धनुर्वेद ।

विशेष—२० 'धनुर्वेद' ।

२ ज्योतिष में एक राशि । धनु राशि । ३ एक लग्न । ४ हठयोग
का एक भासन । ५ पियाल वृक्ष । ६ चार हाथ की एक
माप । ७ गोल क्षेत्र के माघे से कम प्रश का क्षेत्र ।

धनुस्तम्भ—संज्ञा पुं० [सं० धनुस्तम्भ] वातग्रन्थ एक रोग जिसमें शरीर
धनुष के समान टेढ़ा हो जाता है । उ०—जो वायु धनुष के
समान शरीर को बाँका कर दे उसको धनुस्तम्भ कहते हैं ।—
माघव, पृ० १३८ ।

धनुर्हा—संज्ञा पुं० [सं० धनुर्] [स्त्री० धनुही] धनुष ।

धनुर्हाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धनु + हाई] धनुस् की सहाई । उ०—
परम कृपाल जे नृपाल लोक, पालनि ये धनुर्हाई हैं है मन
प्रनुमान के ।—तुलसी (शब्द०) ।

धनुर्हिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'धनुही' ।

धनुही—संज्ञा स्त्री० [हि० धनु + ही (प्रत्य०)] सड़कों के खेलने
की कमान । उ०—बहु धनुही तोरेउ लरिकारि ।—तुलसी
(शब्द०) ।

धनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनुष । २. प्रश्न का मञ्जर [को०] ।

धनुर्क—संज्ञा पुं० [सं० धनुर्] २० 'धनुक' । उ०—धनुक पिनाक
घरे वाम हस्ते ।—पृ० रा०, १।३६० ।

धनेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन का स्वामी । २. कुबेर । ३. सग्न से
दूसरा स्थाव । ४. विष्णु ।

धनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन का स्वामी । २. कुबेर । ३. विष्णु ।
धनेस्—संज्ञा पुं० [सं० धनस् ?] बगले के आकार की एक चिड़िया
जिसकी गरदन और चोंच लंबी होती है ।

विशेष—यह बैर, बरगद आदि के पेड़ों पर रहती है । लोग बाने
के लिये इसका शिकार करते हैं । इसे पकाकर एक प्रकार
का लेख भी निकालते हैं जो वात के दंढ में लगाया जाता है ।

धनेस—संज्ञा पुं० [सं० धनेश] कुबेर । उ०—कहै पदमाकर
प्रमानमाला पुन्यन की गगाजू की धार धनमाला है धनेस
की ।—पदमाकर प्र०, पृ० २६६ ।

धनैया—संज्ञा स्त्री० [सं० धनु + ण्या (प्रत्य०)] छोटा धनुष ।
उ०—नददास प्रभु जानि तोर्यो है पिनाक तानि बाँस की
धनैया जैसे बालक तनक की ।—नद० प्र०, पृ० ३२४ ।

धनैपणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन की इच्छा [को०] ।

धनैयो—वि० [सं० धनैयिन्] धन का इच्छुक । धन चाहनेवाला ।

धनोष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० धनोष्मन्] धन की गरमी [को०] ।

धन्त—वि० [सं० धन्त्य] धन्त्य । उ०—सबके ऊपर टिकस सगाँ,
धन है मुझको घन ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४७३ ।

धन्तधान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धनधान्य' । उ०—कूपर और
सागर सुनीर । सह धन्तधान जोहर सुहोर ।—पृ० रा०, ४।१६

धन्ता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरना' ।

धन्तासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसका ग्रह वृद्ध है और
जो ऋतुजित है । यह वीर और शृंगार रस के लिये गाई
जाती है ।

धन्तासेठ—संज्ञा पुं० [हि० धन + सेठ] बहुत धनी आदमी । प्रसिद्ध
धनाढ्य । भारी मालदार ।

मुद्दा—धन्तासेठ का नाती = बहुत धनाढ्य कुल का (व्यग्य) ।

धन्ति—वि० [सं० धन्त्य] धन्त्य । उ०—धन्ति पुरुष धस नवै
न नाए । श्री सुपुष्ट होइ देस पराए ।—जायसी (शब्द०) ।

धन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० (गो) धन] १. गायों बैलों की एक
जाति जो पञ्जाब में नमकवाले पहाड़ों के आसपास पाई
जाती है । २. घोड़े की एक जाति । उ०—धन्नी, श्रीमापसी,
काठिया, मारवाड़, मधिदेशी ।—रघुराज (शब्द०) । ३.
बेगार का आदमी ।

धन्यमन्य—वि० [सं०] अपने आपकी भाग्यशाली या धन्य मानने-
वाला [को०] ।

धन्य—वि० [सं०] १. पुण्यवान् । सुकृती । श्लाघ्य । प्रशंसा के
योग्य । बड़ाई के योग्य । कृतार्थ । भाग्यशाली ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग साधुवाद देने के लिये प्रायः होता
है । जैसे, किसी को कोई अच्छा काम करते देख या सुन-
कर लोग बोल उठते हैं—धन्य । धन्य । २. धन देने-
वाला । जिससे धन प्राप्त हो ।

धन्य—संज्ञा पुं० १. शशकण्ठ वृक्ष । २. धनिया । ३. दिव्यु ।
४. वास्तिक । ५. भाग्यशाली व्यक्ति [को०] ।

धन्य^३—अथवा साधुवाद या धन्यवाद का व्यंजक [को०] ।

धन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्य होने की स्थिति [को०] ।

धन्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ साधुवाद । शाबाशी । प्रशंसा । वाहवाह । २ किसी उपकार या अनुग्रह के बदले में प्रशंसा । कृतज्ञतासूचक शब्द । शुक्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लेना ।

धन्यधाम—संज्ञा पुं० [सं० धन्य + धाम] भाग्यशाली घर । अच्छा घर । उ०—देखा 'सरोज' को धन्यधाम ।—अनामिका, पृ० १२८ ।

धन्या^१—वि० स्त्री० [सं०] प्रशंसायोग्य । पुण्यशील । भाग्यशालिनी ।

धन्या^२—संज्ञा स्त्री० १ उपमाता । २ वनदेवी । ३. मनु की एक कन्या जिसका विवाह ध्रुव के साथ हुआ था । ४ आमलकी । छोटा भविला । ५ धनिया ।

धन्याक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धन्वंग—संज्ञा पुं० [सं० धन्वङ्ग] धामिन का पेड़ ।

धन्वन्तर—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्तर] चार हाथ की एक माप ।

धन्वन्तरि—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्तरि] १ देवताओं के वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमंथन के समय और सब वस्तुओं के साथ समुद्र से निकले थे ।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि जब ये समुद्र से निकले तब तेज से दिखाएँ जगमगा उठीं । ये सामने विष्णु को देखकर ठिठक रहे, इसपर विष्णु भगवान् ने इन्हें धञ्ज कहकर पुकारा । भगवान् के पुकारने पर इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि यज्ञ में मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय । विष्णु ने कहा भाग और स्थान तो बँट गए हैं पर तुम दूसरे जन्म में विशेष सिद्धि प्राप्त करोगे, अणिमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भ से ही प्राप्त रहेगी और तुम सशरीर देवत्व प्राप्त करोगे । तुम आयुर्वेद को पाठ भागों में विभक्त करोगे । आपर युग में काशिराज 'धन्व' ने पुत्र के लिये तपस्या और ऋग्वेद की आराधना की । ऋग्वेद ने धन्व के घर स्वयं अवतार लिया और भरद्वाज ऋषि से आयुर्वेद शास्त्र अध्यापन करके प्रजा को रोगमुक्त किया ।

भावप्रकाश में लिखा है कि इंद्र ने आयुर्वेद शास्त्र सिखाकर धन्वन्तरि को लोक के कल्याण के लिये पृथ्वी पर भेजा । धन्वन्तरि काशी में उत्पन्न हुए और ब्रह्मा के वर से काशी के राजा हुए । महाराज विक्रमादित्य की सभा के जो नवरत्न गिनाए गए हैं उनमें भी एक धन्वन्तरि का नाम है । पर जब नवरत्नवाली बात ही कल्पित है तब इन धन्वन्तरि का पता लगना कठिन ही है ।

२ विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक (को०) । ३ सूर्य (को०) ।

धन्वन्तरिप्रस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० धन्वन्तरिप्रस्ता] कुटकी ।

धन्व^१—संज्ञा पुं० [सं० धन्व] १. मरुस्थल । मरुस्थल । २ तट । तीर । ३ आकाश । ४. धनुष (को०) ।

धन्व^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुस् । २ मरुस्थल । रेगिस्तान (को०) ।

धन्वचर—वि० [सं०] १. मरुस्थल में चलने या रहनेवाला (को०) ।

धन्वज—वि० [सं०] मरुदेश में उत्पन्न ।

धन्वदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे दुर्ग या गढ़ जिनके चारों ओर पाँच पाँच योजन तक निर्जल और मरुस्थल हो ।

धन्वधि—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की खोली (को०) ।

धन्वन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धामिन का पेड़ । २ धनुष (को०) । ३. इन्द्रधनुष (को०) । ४. धनु राशि (को०) ।

धन्वयवास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा । जवासा ।

धन्वयवासक—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा । जवासा (को०) ।

धन्वयास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा । जवासा (को०) ।

धन्वा—संज्ञा पुं० [सं० धन्व] १. धनुस् । कमान । उ०—प्रभु धन्वा न बढ़ा सके यदि ?—साकेत, पृ० ३५५ । २. जलहीन देश । मरुस्थल । रेगिस्तान । ३ स्थल । सूखी जमीन । ४. आकाश । अंतरिक्ष ।

धन्वाकार—वि० [सं०] धनुष के आकार का । कमान की सुरत का । गोलाई के साथ झुका हुआ । टेढ़ा ।

धन्वायी^१—वि० [सं० धन्वायिन्] धनुर्धर ।

धन्वायी^२—संज्ञा पुं० बद्ध ।

धन्विन—संज्ञा पुं० [सं०] झूकर । भूधर ।

धन्वी^१—वि० [सं० धन्विन्] १ धनुर्धर । कमानेवा । उ०—कूल सरल को मुगधनि बस के जाहिरे ओ जग मनमय धन्वी ।—भिलारी० प्र०, भा० १, पृ० २१४ । २ निपुण । चतुर । चालाक ।

धन्वी^२—संज्ञा पुं० १. दुरालभा । जवासा । २ धनुर्धर । ३ बकुल । मोलसिरी । ४ धनुर्धर पाँडव । ५. विष्णु । ६. शिव । ७ तामस मनु के एक पुत्र । ८ धनु राशि (को०) ।

यौ०—धन्वीस्थान = धनुर्धर की एक मुद्रा या स्थिति । धन्वियों की मुद्राएँ वैक्लव, समपाद, वैशाख, मङ्गल, लीढ और प्रत्यालीढ कही गई हैं—वैक्लव समपाद च वैशाख मङ्गल तथा । प्रत्यालीढ तथा लीढ स्थान्येतानि धन्विनाम् ।

धप^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द ।

धप^२—संज्ञा पुं० धौल । धप्पड । तमाचा ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।

धपना—क्रि० प्र० [सं० धावन या हिं धाप] १. जोर से चलना । दौड़ना । २ झपटना । लपटना । उ०—शीला नाम खालिनी तेहि गहे कृष्ण धपि धाह हो ।—सूर (शब्द०) ।

धपाड़ा—संज्ञा स्त्री० [हिं० धपना] धपने की क्रिया या स्थिति ।

धपाना^१—क्रि० प्र० [हिं० धपना] १ दौड़ाना । २ इधर उधर फिराना । घुमाना । सैर कराना । टहलाना ।

धप्पा—संज्ञा पुं० [धनु० धप] १. धप्पड । धौल । तमाचा । २. हानि का आघात । घाटा । टोटा । नुकसान ।

क्रि० प्र०—झटाना ।—झगना ।

मुहा०—धष्पा भारना=नुकसान करा देना। घोषा देकर कुछ माल ले लेना। उठा लेना।

धष्पाङ—संज्ञा स्त्री० [हि० धष्प] दीड़।

धष्प धव—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द। २. भट्टे, मोटे आदमी के पैर रखने का शब्द।

धवला—संज्ञा पुं० [देश०] १. कटि के नीचे का घंग ढाँकने के लिये कोई ढीलाढाला पहनावा। ढीला पायजामा। २. स्त्रियों का सहंगा। घाघरा।

धवीला—वि० [हि० धन्वा + ईला (प्रत्यय०)] धन्वेदार। धन्वेवाला।

धन्वा—संज्ञा पुं० [देश०] १. किसी सतह के ऊपर थोड़ी दूर तक फैला हुआ ऐसा स्थान जो सतह के रंग के मेल में न हो और भट्टा लगता हो। बाग पड़ा हुआ चित्त जो देखने में बुरा लगे। निशान। जैसे, कपड़े पर स्याही का धन्वा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

२. कलक। दोष। ऐष।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—नाम में धन्वा लगाना=कीर्ति को मिटानेवाला काम करना। (किसी पर) धन्वा रखना=कलक लगाना। दोषा-रोपण करना।

धमंकना^१—क्रि० प्र० [हि० धमक] प्रस्त होना। दहलना। उ०—सही तेज सो है तबस्लो तमके। गजे बोर बानेत धु लो धमके।—पद्माकर प्र०, पृ० २४८।

धम^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा। २. कृष्ण। ३. यमराज। ४. ब्रह्मा [को०]।

धम^३—संज्ञा स्त्री० [धनु०] भारी चीज के गिरने का शब्द। धमाका। जैसे, धम से गिरना, धम से कुएँ में कूटना।

विशेष—खट, पट, आदि और धनु० शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है।

धम^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धम'।

धमक^१—संज्ञा स्त्री० [धनु० धम] १. भारी वस्तु के गिरने का शब्द। भार डालते हुए जमीन पर पड़ने की ध्वनि। आघात का शब्द। २. पैर रखने की आवाज। पैर की आहट। ३. वह कंप जो किसी भारी वस्तु की गति के कारण इधर उधर मालूम हो। आघात आदि से उत्पन्न कंप या विचलन। जैसे,—(क) पत्थर इतने जोर से गिरा कि धमक से भेज हिल गई। (ख) रेल के पास आने पर जमीन में धमक सी मालूम होती है। ४. आघात। चोट। ५. वह आघात जो किसी भारी शब्द से हृदय पर मालूम हो। बहल। ६. गड्ढा (पालकीवाले)।

धमक^२—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धमिका] १. धौंकनेवाला। २. लोहार। कर्मकार।

धमकना—क्रि० प्र० [हि० धमक] १. धम शब्द के साथ गिरना। धमाका करना।

मुहा०—आ धमकना=आ पहुँचना। तुरंत आ जाना। देखते देखते उपस्थित होना। आ धमकना=आ पहुँचना। धमक पड़ना=दे० 'आ धमकना'।

२. आघात सा होता हुआ जान पड़ना। रह रहकर ददं करना। व्यथित होना। (सिर के लिये)। जैसे, सिर धमकना।

३. धूम धाम करना। उ०—रमकि भ्रमकि धमकत धपसा सी धमकत मिलि इकठोरी।—ब्रज० प्र०, पृ० १६५।

४. वजना। उ०—धमकत ढोल, बजत डफ, झंझ झनेक एक सग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४। ५. वेग दिखलाना।

उ०—(क) प्रथम पैठि पाताल सँ धमकि चढ़े आकास।—दरिया०, पृ० १३। (ख) ते ऊँचे चढ़ि के सरहरे।

धमकि धमकि नरकन में परे।—नद० प्र०, पृ० २२६।

धमका—संज्ञा पुं० [सं० धमा] गरमी। ऊमस। उ०—सेवापति नेक दुपहरी के डरत, होत धमका बिपम, ज्यों त पात खरकत है।—कविता०, पृ० ५८।

धमकाना—क्रि० सं० [हि० धमक] १. डराना। भय दिखाना। डट देने या प्रतिष्ठ करने का विचार प्रकट करना। २. डाँटना। घुड़कना।

संयो० क्रि०—देना।

धमकार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धमक] धमक की आवाज। उ०—धम धमकार डेर सुन मुरली फुरक फुरक फुरकाना।—राम० धर्म०, पृ० ३६७।

धमकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दंड देने या प्रतिष्ठ करने का विचार जो भय दिखाने के लिये प्रकट किया जाय। डर दिखाने की क्रिया। आस दिखाने की क्रिया। २. घुड़की। डाँट डपट।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धमकी में आना=डराने से डरकर कोई काम कर बैठना।

धमकका^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धमाका'।

धमगजर—संज्ञा पुं० [धनु० धम + सं० गर्जन] १. उत्पात। ऊधम। उपद्रव। २. सडाई। युद्ध।

धमण^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धौंकनी'। उ०—जउ ते भारण धमण जिमि, दम गमिया बहु दीह।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ४०।

धमधम^४—संज्ञा पुं० [सं०] कातिकेय के गए जो पावँरी के क्रोध से उत्पन्न हुए थे (हरिवंश)।

धमधम^५—संज्ञा पुं० [धनु०] धूमधाम। ठाटबाट। उ०—तुम्ह जानहु भावै पिय साजा। यह धमधम सब मोकहु बाजा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३११।

धमधमाना—क्रि० प्र० [धनु० धम] 'धम धम' शब्द करना। कूद फाँद या चल फिरकर कप और शब्द उत्पन्न करना। जैसे,—घोड़े धमधमाते हुए आ पहुँचे।

धमधुसरि^६—वि० [हि०] दे० 'धमधूसर'। उ०—बात कहत मुँह फारि छातु है मिली धमधुसरि घंगरिया।—कबीर श०, भा० २, पृ० ५६।

धमधूसर—वि० [धनु० धम + सं० धूसर (=मटमैला या गदहा)] भद्दा । मोटा भद्दासी । स्थूल और वेडौन मनुष्य । उ०—धमधूसर होइ रहे बात मे सबसे लड़ते ।—पलटू०, भा० १, पृ० १८ ।

धमनी^१—सङ्घा पु० [सं०] १ हवा से फूँकने का काम । २ पोली नली जिसमें हवा भरकर फूँके । फूँकनी । धौकनी । ३ नरकट । नरसल । नन नामक तृण । ४ गलाना । पिघलाना (को०) ।

धमन^२—वि० १. फूँकनेवाला । २ क्रूर । निष्ठुर (को०) ।

धमना^३—क्रि० सं० [सं० धमन] धौकना । फूँकना । नल आदि में हवा भरकर वेग से छोड़ना ।

धमना^४—क्रि० अ० जलना । प्रज्वलित होना । उ०—जति जति धमिअ जलल, अधिक विमल हेम ।—विद्यापति, पृ० १०२ ।

धमनि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ धमनी । नाडी । २. प्रह्लाद के भाई ह्लाद की स्त्री । वातापि और इत्यव की माँ । ३. वाक् । शब्द । ४ नरकट (को०) । ५ कठ । ग्रीवा (को०) ।

धमनिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] तूर । तुरही । बाजा । (को०) ।

धमनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] शरीर के भीतर की वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदि का संचार होता रहता है ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार धमनियाँ २४ हैं और नाभि से निकलकर १० ऊपर की ओर गई हैं, १० नीचे की ओर तथा चार बगल की ओर । ऊपर जानेवाली धमनियाँ द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रशवास, जमाई, छीक, हैमना, रोना, मोचना इत्यादि व्यापार होते हैं । ये ऊर्ध्वगामिनी धमनियाँ हृदय में पहुँचकर तीन तीन शाखाओं में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं । इनमें से २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ रक्तवहा और २ रसवहा, दस तो ये हैं । इनके अनिरिक्त ८ शब्द, रूप, रस और गंध को वहन करनेवाली हैं । फिर २ से मनुष्य बोलता है, २ से घोष करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, २ धमनियाँ मश्रुवाहिनी हैं और २ स्त्रियों के स्तनों में दूध या पुरुषों के शरीर में शुक्र प्रवर्तित करनेवाली हैं । यह तो हुई ऊर्ध्वगामिनी धमनियाँ भी वात । अब इसी प्रकार अधोगामिनी धमनियाँ वात, मूत्र, पुरीष, दीर्घ, आर्तव इनको नीचे की ओर ले जाती हैं । ये धमनियाँ पहले पित्ताशय में जाकर खाए पीए हुए रस को उष्णता से शुद्ध करके उसे ऊर्ध्वगामिनी और तिर्यगामिनी धमनियों तथा सारे शरीर में पहुँचाती हैं । ये १० अधोगामिनी धमनियाँ भी ग्रामाशय और पक्वाशय के बीच में पहुँचकर तीन तीन भागों में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं । इनमें से दो दो धमनियाँ वायु, पित्ता, कफ, रक्त और रस को वहन करने के लिये हैं । आँतों से लगी हुई २ मूत्रवाहिनी हैं, २ जलवाहिनी हैं और २ मूत्रवस्ति से लगी हुई २ धमनियाँ शुक्र उत्पन्न करनेवाली और २ प्रवर्तित करने या निकालनेवाली हैं । मोटी आँत से लगी हुई २ मल को निकालती हैं । बाकी ८ धमनियाँ तिरछी जानेवाली धमनियों की पक्षीना देती हैं । ४ तिर्यगामिनी धमनियाँ हैं । उनकी सहजों लाखों शाखाएँ होकर शरीर के भीतर जाल की तरह फैली हुई हैं ।

२ वह नली जिसमें हृदय से शुद्ध लाल रक्त हृदय के स्पंदन द्वारा क्षण क्षण पर जाकर शरीर में फैलता रहता है । नाड़ी (प्राधुनिक) ।

विशेष—‘धमनी’ शब्द ‘धम’ धातु से बना है जिसका अर्थ है धौकना । हृदय का जो स्पंदन होता है वह माथी के फूँकने पचकने के समान होता है । अतः शुद्ध रक्तवाहिनी नाडियों को धमनी कहना बहुत उपयुक्त है । दे० ‘नाडी’ ।

३ हलदी । ४ कठ । ग्रीवा । गर्दन (को०) । ५ वाक् । वाणी (को०) । ६ नरकट (को०) ।

धमनील—वि० [सं०] धमनी से युक्त (को०) ।

धमरोल—सङ्घा स्त्री० [देश०] बहुतायत । अधिकता । उ०—चोया सुंदर प्राप दूधे दूधों को धमरोल ।—सुंदर० प्र० (जी०), भा० १, पृ० ४३ ।

धमल^४—वि० [हिं०] दे० ‘धवल’ । उ०—बंस के धमल ताको समय पायो ।—रा० रू०, पृ० १५० ।

धमस—सङ्घा स्त्री० [धनु०] १ श्रमजन्य अनुभूति । थकान । उ०—प्यारी थी वह हमस धमस भी, खूब पसीने बहते थे ।—मिट्टी०, पृ० ६८ । २ चोट । आघात । उ०—ज्यों धोबी की धमस सहि ऊजल होय सुधीर ।—रज्जब०, पृ० २० ।

धमसा—सङ्घा पु० [देश०] धौसा । नगाडा ।

धमसोल^५—सङ्घा पु० [धनु० धम + सोल (= शोर, शेर)] ऊधम । धमाचौकड़ी । उ०—धाम धम बहुते करो अध धध धमसोल ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ३१६ ।

धमाका—सङ्घा पु० [धनु०] १ भारी वस्तु के चले का शब्द । ऊपर से वेग के साथ नीचे पड़ने या कूदने का शब्द । २. बटूक का शब्द । ३ आघात । धक्का । ४. पथरकला बटूक । हाथी पर लादने की तोप ।

धमाचौकड़ी—सङ्घा स्त्री० [धनु० धम + हिं० चौकड़ी] १ उछल कूद । कूदफाँद । कई आदमियों का एक साथ दौड़ना, कूदना, हाथ पैर चलाना या हल्ला करना । उपद्रव । ऊधम । जैसे,—लडको, यहाँ धमाचौकड़ी मत मचाओ और जगह खेती । २. धौगाधीनी । मारपीट ।

क्रि० प्र०—मचाना ।—मचना ।—होना ।

मुहा०—धमाचौकड़ी मचाना = उपद्रव होना । ऊधम होना । उ०—आखिरण कुछ कहो तो यह क्या धमाचौकड़ी मचायी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१५ ।

धमाइना—क्रि० सं० [धनु०] मारना । प्रहार करना ।

धमाधम^१—क्रि० वि० [धनु० धम] १ लगातार कई बार ‘धम’ ‘धम’ शब्द के साथ । लगातार कई धमाकों के साथ । लगातार गिरने का शब्द करते हुए । जैसे, लडके धमाधम नीचे गिरे । २ लगातार कई प्रहार शब्दों के साथ । कई आघातों के शब्द के साथ । लगातार मारने या पीटने की आवाज के साथ । जैसे—(क) वह उसे धमाधम मार रहा है । (ख) इसपर धमाधम घन मारो तब यह दूटेगा ।

धमाधम^२—सङ्गा स्त्री० १ कई बार गिरने से लगातार धम धम शब्द । लगातार गिरने पड़ने की आवाज । २ घाघात । प्रतिघात । प्रहार । मार पीट । उपद्रव । उत्पात ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—होना ।

धमार^१—सङ्गा स्त्री० [धनु०] १, उछलकूद । उपद्रव । उत्पात । धमाचोकड़ी । उ०—बसत झलकी धाम के मोर लगे जिन पर भीर के डेरा जमे, धमार की मार होने लगी ।—श्यामा०, पृ० ८० ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—होना ।

२ नटों की उछलकूद । कलावाजी ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।

३ विशेष प्रकार के साधुओं की दहकती आग पर कूदने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धमार^२—सङ्गा पुं० १ होली के गाने का एक ताल । २ होली में गाने का एक प्रकार का गीत ।

धमारि(उ)—सङ्गा स्त्री० [हिं०] धमाचोकड़ी । उ०—विधि न करए हर खेलए पासा सारि । सापक सगे सिधे रचलि धमारि ।—विद्यापति, पृ० ५११ ।

धमारिया^१—सङ्गा पुं० [हिं० धमार] १ उछलकूद करनेवाला नट । कलाबाज । २ होली के धमार गानेवाला । ३ आग में कूदनेवाला । साधु ।

धमारिया^२—वि० उपद्रव करनेवाला । शात न रहनेवाला । उत्पाती ।

धमारो^१—वि० [हिं० धमार] उपद्रवी । उत्पाती ।

धमारो(उ)^२—सङ्गा स्त्री० [हिं० धमार] धमाचोकड़ी । उत्पात । उ०—पिढ संजोग धनि जीवन धारी । भँवर पुहुप सन करहि धमारी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४८ ।

धमाल—सङ्गा पुं० [हिं० धमार] दे० 'धमार' । उ०—लगु गुह मोहरा लेखवै धारो गीत धमाल ।—रघु० ८०, पृ० १२८ ।

धमासां—सङ्गा पुं० [सं० यवासा] जवासा । हिगुवा । दुलाह ।

धमि—सङ्गा स्त्री० [सं०] फूँकने की क्रिया [को०] ।

धमिका—सङ्गा स्त्री० [सं०] १ लोहारिन । लोहार की स्त्री ।

धमित्र—सङ्गा पुं० [सं०] आग जलाने का एक साधन । धौकनी [को०] ।

धमिल(उ)—सङ्गा पुं० [हिं०] दे० 'धम्मिल्ल' । उ०—धमिल लोलि कहूँ पकरावै ।—नट० प्र०, पृ० १५७ ।

धमूका—सङ्गा पुं० [धनु० धम] १ धमाका । प्रहार । घाघात । उ०—सतगुरु शब्दी खेल है सहै धमूका साध ।—चरण० बानी, पृ० ३ । २ घुँसा । मुक्का ।

धमेख—सङ्गा स्त्री० [सं० धर्मचक्र] काशी से दो कोस पर वह स्तूप जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ बुद्धदेव ने अपना धर्मचक्र प्रणीत धर्मोपदेश आरम्भ किया था । दे० 'सारनाथ' ।

धमोड़ना(उ)—क्रि० सं० [धनु०] घाघात करना । प्रहार करना ।

उ०—(क) घत सत्री मुँह प्राद्य घोड़े, धीप पाड़िया सेल धमोड़े ।—रा० ८०, पृ० २५८ । (ख) उर सेल धमोड़े वेल एम ।—रा० ८०, पृ० २५९ । (ग) पूगा हाथी खात रे, देता कुत धमोड़ ।—रा० ८०, पृ० ८७ ।

धम्म(उ)^१—सङ्गा स्त्री० [धनु०] दे० 'धम' । उ०—मजदूर सकही का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चित हुआ ।—गीतिका (भू०), पृ० ६ ।

धम्मन—सङ्गा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास । दे० 'धरवा' ।

धम्मल—सङ्गा पुं० [सं०] दे० 'धम्मिल्ल' [को०] ।

धम्माल—सङ्गा स्त्री० पुं० [हिं० धमाल] दे० 'धमार' ।

धम्मिल—सङ्गा पुं० [सं०] दे० 'धम्मिल्ल' [को०] ।

धम्मिल्ल—सङ्गा पुं० [सं०] १ लपेटकर बाँधे हुए बाल । बँधो चोटी । जुठा । २ मोतियों, फूलों आदि से सजाया हुआ जुड़ा या केशकलाप [को०] ।

धम्हां—सङ्गा पुं० [देश०] घातु गलाने की मट्टी ।

धय—वि० [पुं०] पीनेवाला । चूलनेवाला । जैसे, स्तनधय ।

विशेष—केवल समासोत्तर रूप में इसका व्यवहार होता है ।

धयना(उ)—क्रि० प्र० [हिं०] दोटना । उ०—देवीसिंह उदत अलैसिह वीर हैं । ए सुजान के सग धए धरि धीर हैं ।—सुजान०, पृ० १२३ ।

धरंग(उ)—सङ्गा पुं० [हिं०] दे० 'धर' । उ०—तरफत सीस धरंग निनारे ।—पृ० रा०, १३।११७ ।

धरंत—वि० [हिं० धरना] धरा हुआ । रखा हुआ ।

धरता(उ)^१—वि० [हिं० धरना] धरनेवाला । पकड़नेवाला ।

धरंती(उ)—सङ्गा स्त्री० [सं० धरणी] दे० 'धरणी' । उ०—पृ० रा०, पृ० १४० ।

धर^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धरा, धरी] १ धारण करनेवाला । ऊपर लेनेवाला । संभालनेवाला । जैसे, धनधर, धनुधर, धनधर, गदाधर, गंगाधर, दिव्याबरधर, भूधर, महीधर आदि । उ०—स्वाद तोष सम सुगति सुधा के । कमठ सेष सम धर वसुधा के ।—मानस, १।२० । २, ग्रहण करनेवाला । ग्रामनेवाला । जैसे, चक्रधर, धनुधर, मुरलीधर ।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग समस्त पदों में ही होता है ।

धर^२—सङ्गा पुं० १ पर्वत । पहाड़ । २ कपास का डोडा । ३ कूर्म-राज । कच्छप जो पृथ्वी को ऊपर लिए है । ४ एक वसु का नाम । ५ विष्णु । ६ श्रीकृष्ण । ७ विट । व्यभिचारी पुरुष ।

धर^३—सङ्गा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी । धरती । उ०—(क) धर, कोइ जीव न जानौ मुख रे बकत कुबोल ।—जायसी प्र० पृ० ८३ । (ख) कान्ह जनमदिन सुर नर फूले । नभ धर निसिबासर समतूले ।—मिखारी० प्र०, भा० १, पृ० २२६ ।

धर^४—सङ्गा स्त्री० [हिं० धरना] धरने या पकड़ने की क्रिया ।

यौ०—धर पकड़ भागते हुए प्रादमियों को पकड़ने का व्यापार। गिरपतारो। उ०—जैसे, जब धर पकड़ी होने लगी तब लुटेरे इधर उधर भाग गए।

धर^७—सखा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी। धरती। उ०—(क) मानहु नेप प्रशेषधर धरनहार बरिबह।—केशव (शब्द०)। (ख) सरजू सरिता तट नगर बसे बर। अवधनाम यशधाम धर।—केशव (शब्द०)।

धर^७†—सखा सं० [हि० धट] दे० 'धट'। उ०—साल अघर में के सुधा, मधुर किए बिनु पान। कहा अघर में लेत हौ, धर मे रहत न प्रान।—मिखारो० प्र०, भा० २, पृ० २४२।

धरक^७—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'धटक'।

धरक^२—सखा पुं० [सं०] अनाज की मंडी में अनाज तोलने का काम करनेवाला। बया।

धरकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धड़कना'। उ०—धरकी हमारी फेर छतियाँ कहूँ धौ बीर।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० २१५।

धरकार—स्त्री० पुं० [देश०] बाँस की डलिया आदि बनानेवाली एक जाति। बेंसोर।

धरक्कना^७—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धरकना'। उ०—धरक्के धरनी करक्के सुसोय।—प० रासो, पृ० ८५।

धरण—सखा पुं० [पुं०] १ धारण। रखने, यामने, ग्रहण करने या संभालने की क्रिया। २ एक तोल जो कहीं २४ रत्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ माशे, कहीं १/४ शतमान, कहीं १६ निष्पाव, कहीं ६ कर्ष, कहीं १/४ पल की मानी गई है। ३ घाघ। पुल। ४ ससार। जगत्। ५. सूर्य। ६. स्तन। ७ धान। ८. एक नाग का नाम। ९ पहाड़ का किनारा (को०)। १०. हिमालय (को०)। ११. सहारा। आधार (को०)।

धरणप्रिया—सखा स्त्री० [सं०] एक जैन देवी जो १६ वें अर्हंत के अनुशासन में रहती है (को०)।

धरणि—सखा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। २. शाल्मलि वृक्ष। ३. नाडी (को०)। ४. गहतीर (को०)।

धरणिधर—सखा पुं० [सं०] १ पृथ्वी को धारण करनेवाला। २ कच्छप। ३ पर्वत। ४ विष्णु। ५ शिव। ६. शेषनाग। ७ राजा (को०)।

धरणी—सखा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। उ०—केवल उनके ही लिये नहीं यह धरणी। है धीरों की भी भार धारिणी भरिणी।—साकेत, पृ० २१३। २. शाल्मलि वृक्ष। ३. नाडी। ४. गहतीर (को०)।

धरणीकंद—सखा पुं० [सं०] एक कंद का नाम। बनकंद।

धरणीकीलक—सखा पुं० [सं०] (पृथ्वी की कील की तरह दबाए रहनेवाला) पर्वत। पहाड़।

विशेष—पुराणों के अनुसार पृथ्वी को पहाड़ दबाकर संभाले हुए है।

धरणीकोश—सखा पुं० [सं०] एक कोश ग्रंथ जिसके रचयिता का नाम धरणीदास था।

धरणीज—सखा पुं० [सं०] १. मगल। २. नरकासुर (को०)।

धरणीजा—सखा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

धरणीधर—सखा पुं० [सं०] दे० 'धरणिधर'।

धरणीधृत—सखा पुं० [सं०] १. पर्वत। २. विष्णु। ३. शेषनाग (को०)।

धरणीपति—सखा पुं० [सं०] राजा (को०)।

धरणीपुत्र—सखा पुं० [सं०] १ मगल। २ नरकामुर। (को०)।

धरणीपुत्री—सखा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

धरणीपूर—सखा पुं० [सं०] समुद्र।

धरणीप्लव—सखा पुं० [सं०] समुद्र (को०)।

धरणीभृत्—सखा पुं० [सं०] १ राजा। २ पर्वत। ३. विष्णु। ४. शेषनाग (को०)।

धरणीमंडल—सखा पुं० [सं० धरणीमण्डल] भूमंडल (को०)।

धरणीय—वि० [सं०] १ जिसे धारण किया जा सके। २ जिसका सहारा लिया जा सके (को०)।

धरणिरुह—सखा पुं० [सं०] वृक्ष (को०)।

धरणेश्वर—सखा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु। ३. शिव (को०)।

धरणीसुत—सखा पुं० [सं०] १ मगल। २. नरकासुर।

धरणीसुता—सखा स्त्री० [सं०] सीता।

धरता—सखा पुं० [हि० धरना या वैदिक घट] १ किसी का रुपया धरनेवाला। देनदार। ऋणी। कर्जदार। २. किसी रकम को देते हुए उसमें से कुछ बंधा हक या धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना। कटौती। ३ धारण करनेवाला। कोई कार्य आदि अपने ऊपर लेनेवाला।

यौ०—कर्ता धरता = सब कुछ करने धरनेवाला।

धरती—सखा स्त्री० [सं० धरिणी] १. पृथ्वी। जमीन।

मुहा०—धरती का फूल = (१) खुशी। छत्रक। कुकुरमुत्ता।

(२) नया उभरा हुआ धनी। नया निकला हुआ अमीर।

(३) भेदक। धरती बाहना = (१) जमीन जोतना। (२) परिश्रम करना। मशक्कत करना।

२ ससार। दुनिया। जगत्।

धरती^७—सखा स्त्री० [धरती] दे० 'धरती'। उ०—चूँडो वीरम धर चक्रवर्ती। धार सार मुँह लयी धरती।—रा० रू०, पृ० १४।

धरधर^७—सखा पुं० [हि०] दे० 'धराधर'।

धरधर^२—सखा स्त्री० [अनु०] दे० 'धड़धड़'।

धरधर^३—सखा पुं० [हि०] दे० 'धरहर'।

धरधरा^७†—सखा पुं० [अनु०] धड़कन। धकधकाहट। उ०—कर धर देखो धरधरा अजौ न उरते जात।—बिहारो (शब्द०)।

धरधराना^७†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धड़धराना'।

धरधराना^२—क्रि० प्र० दे० 'धड़धराना'।

धरधार^७—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'धराधर'। उ०—धरी एक रव रग, तुष्टि धरधार गही धर।—पृ० रा०, १।६५४।

धरन^१—सखा स्त्री० [हि० धरता] १. धरने की क्रिया, भाव, वंश।

उ०—ऐसी घरन घरे जो कोई, निश्चय पार पाइहे सोई ।—
कबोर० सा०, पृ० १०१७ । २ लकड़ी लोहे आदि का वह
सबा लट्ठा जो इसी प्रकार के और लट्ठों के साथ दो खड़ी
समानांतर दोवारों या ऊँचे पर ठहराए हुए दो समानांतर
लट्ठों पर इसलिये आटा रखा जाय जिसमें उसके ऊपर पाटन
(छत आदि) या कोई बोझ ठहर सके । कड़ी । घरनी । ३.
वह नस जो गर्भाशय को हटाने से जकड़े रहती है जिससे वह
इधर उधर नहीं टलता । गर्भाशय का आधार ।

मुहा०—घरन टलना, डिगना, खसकना = गर्भाशय की नस का
अपनी जगह से हट जाना जिससे गर्भाशय इधर उधर हो
जाता है ।

४. गर्भाशय । ५. टेक । हुठ । मड ।

घरन^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घराना' । उ०—सिधुतीर रघुवीर गए
पुनि कियो घरन उतरन को ।—रघुराज (शब्द०) ।

घरनी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० घरणि] घरतो । जमीन ।

घरनी^४—वि० [सं० घरण] धारण करनेवाला । उ०—कल्प कमल
वर विवन के बेगी, बहु जीवन के बहु लाल लीला के घरन
हैं ।—मिखारी० प्र०, भा० २, पृ० २५ ।

घरनहार—वि० [हि० धारना + हार (प्रत्य०)] धारण करने
वाला । उ०—मानह शेष अशेष घर घरनहार बरिवड ।
—केशव (शब्द०) ।

घरना^१—क्रि० सं० [सं० घरण] १. किसी वस्तु को इस प्रकार हड़ता
से स्पर्श करना या हाथ में लेना कि वह जल्दी छूट न सके
अथवा इधर उधर जा या हिन न सके । पकड़ना । धामना ।
ग्रहण करना । जैसे,—(क) चोर घरना । (ख) इसका हाथ
सोर से घरे रहो, नहीं तो माग जायगा । (ग) यह चिमटा
अच्छी तरह घरती नही ।

यो०—करना घरना । घरना पकड़ना ।

सयो० क्रि०—लेना ।

मुहा०—घर दबाना या दबोचना = (१) पकड़कर वश में कर
लेना । अनपूर्वक अधिकार में कर लेना । किसी पर इस प्रकार
आ पड़ना कि वह विरोध या बचाव न कर सके । आक्रांत
करना । जैसे—कुत्ते ने बिल्ली को घर दबोचा । (२) तर्क
या विवाद में परास्त करना । घर पकड़कर = जबरदस्ती ।
बलात् । जैसे,—घर पकड़कर कहीं काम होता है ?

२ स्थापित करना । स्थित करना । रखना । ठहराना । जैसे,—
(क) पुस्तक आले पर घर दो । (ख) बोझ सिर पर घर
लो । उ०—कोल खुने कच गूँदती मूँदती चार नखत अगद
के तर । दोहद मे रति के समभार बडे बल के घरती पग भू
पर ।—मिखारी प्र०, २, पृ० २३७ ।

सयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

३ पास रखना । रक्षा में रखना । जैसे,—(क) वह हमारी
पुस्तक घरे हुए है, देता नही । (ख) यह चीज उनके यहाँ
घर दो, कहीं जायगी नहीं ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

यो०—घर रखना ।

मुहा०—घरा ढका = समय पर काम आने के लिये बचाकर रखी
हुई वस्तु । संचित वस्तु । जैसे,—कुछ घरा ढका होगा, लामो ।
घरा रह जाना = काम न आना । व्यर्थ हो जाना ।

४ धारण करना । देह पर रखना । पहनना । जैसे, सिर पर
टोपी घरना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

५. आरोपित करना । अवलंबन करना । अंगीकार करना ।
जैसे, रूप घरना, वेश घरना, धैय घरना । ६ व्यवहार के लिये
हाथ में लेना । ग्रहण करना । जैसे, हथियार घरना । ७
सहायता या सहारे के लिये किसी को धरना । पल्ला पकड़ना ।
आश्रय ग्रहण करना । जैसे,—उन्हीं को धरो, वे ही कुछ कर
सकते हैं । ८ किसी फैसलेवाली वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में
लगना या छू जाना । जैसे—फूस गोला है इसी से आग घरती
नही है । ९ किसी स्त्री को रखना । बैठा लेना । रखेली की
तरह रखना । उ०—व्याहो लाख, धरो दस कुबरी अतहि कान्ह
हमारो ।—सूर (शब्द०) । १० गिरवी रखना । गहन
रखना । रेहन रखना । बधक रखना । जैसे,—(क) अपना
चीज घरकर तब रुपया लाए है । (ख) कोई चीज घरकर
भी तो रुपया नहीं देता । ११ अपनाना । ग्रहण करना ।
उ०—पर जो मेरा गुण, कर्म, स्वभाव धरेंगे वे भी तार पार उतरेंगे ।—साकेत, पृ० २१६ ।

घरना^२—सञ्ज्ञा पुं० कोई बात या प्रायना पूरी कराने के लिये किसी के
पास या द्वार पर मड़कर बैठना और जबतक वह बात या
प्रार्थना पूरी न कर दी जाय तबतक मन्न न ग्रहण करना ।
जैसे,—हमारा रुपया न दोग तो हम तुम्हारे दरवाजे पर धरना
देगे । दे० 'घरन' ।

क्रि प्र०—देना ।—बैठना ।

घरनि^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० घरणि] दे० 'घरणी' । उ०—घुरवा
होहि न मलि यहै घुमाँ घरनि चहुँ कोद । जारत धावत जगत
को पावस प्रथम पयोद ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४६५ ।

घरनिधनी^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० घरणि + हि० धनी (- स्वामी)]
राजा । भूपति । उ०—या जग मे धनि धन्य तू महुँ सलाने
गात । घरनिधनो जो ब्रम कियो कहा और की बात ।—
पद्माकर प्र०, पृ० १३० ।

घरनिधर^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० घरणिधर] १. पवत । झुंघर । उ०—
गुननिघन हिमवान घरनिधर घुरघनि । मैता तामु परनि घर
त्रिभुवन तियमनि ।—तुलसी प्र०, पृ० २६ । २ हिमालय ।
पावती के जनक । उ०—लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुस
कर । कन्यादान सकलप कीन्ह घरनिधर ।—तुलसी प्र०,
पृ० ४१ । ३ दे० 'घरणीधर' ।

घरनिसुता^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० घरणिमुता] जानकी । सीता ।
उ०—सिय पितु मातु सनेह बस विकल न सकी संभारि ।
घरनिसुता घोरजु घरेउ समउ सुघरमु विचारि ।—मानस,
२ । २८५ ।

घरनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० घरणी] दे० 'घरणी' । उ०—अगनित
पुन ससि मनो घरनी पर धावे ।—घनानंद, पृ० ४५५ ।

मुहा०—घरनी मिलाना = मिट्टी में मिलाना । समाप्त करना ।
उ०—हते अष्टक सूर घरनी मिलायो । —प० रासो, पृ० ४५ ।

घरनी^२—सच्चा स्त्री० [हि० धारना या सं० धारण] किसी बात पर दृढ़तापूर्वक अड़े रहना । टेक । उ०—तुलसी जब राम को दास कहाइ हिये घर चातक की घरनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

घरनीतल—सच्चा पुं० [हि० घरनी + तल] पृथ्वी की सतह । समस्त पृथ्वी । उ०—दारिद दो करि बारिद सों दलि तयो घरनीतल सीतल कीनो ।—भूषण ग्र०, पृ० ४८ ।

घरनीघर^३—सच्चा पुं० [सं० घरणीघर] १ शेषनाग । उ०—तुलसी जिन्हें धाए धुके घरनीघर धोर घकानि सों मेर हले हैं । ते रनतीर्थनि लखन लाखन दानि ज्यो दारिद दाबि दले हैं ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६० । २ विष्णु या राम । उ०—जह पच मिले जेहि देह करो, करनी लख घों घरनीघर की । जन की कहू क्यों करिहैन सँभार, जो सार करे सचराचर की ।—तुलसी ग्र०, पृ० २०४ । ३ दे० 'घरणीघर' ।

घरनीघरन^३—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'घरणीघर' । उ०—शेष, महाप्रहि, संपति, घरनीघरन, अनत ।—प्रनेकार्यं, पृ० ६० ।

घरनेत—सच्चा पुं० [हि० धरना + एत (प्रत्य०)] धरना देनेवाला । किसी बात के लिये अड़कर बैठनेवाला ।

घरन्नी^३—सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'घरनी' । उ०—अनल पक्ष मनु परिय दूटि आकास घरन्नीय । भयो सोर बर सद् परघी महि छत्र बरन्नीय ।—हम्मीर रा०, पृ० ११३ ।

घरपकड़—सच्चा स्त्री० [हि० धरना + पकड़ना] १ गिरपतारी । पकड़ धकड़ । २ रोकथाम । नियन्त्रण ।

घरपत्ती^३—सच्चा पुं० [सं० घर + पत्ति] राजा । उ०—घर हर धस हुए घरपत्ती ।—रा० रू०, पृ० ६ ।

घरम^३—सच्चा पुं० [सं० घर्म] दे० 'घर्म' ।

घरमदुवार^३—सच्चा पुं० [हि० घरम + दुवार] घर्मद्वार । स्वर्ग । उ०—घरम दुवार गयो छोड़े घर ।—रा० रू०, पृ० २६४ ।

घरमपण^३—वि० [हि०] दे० 'घर्मपरायण' । उ०—दहवाण रुद्र एकादशी प्राणपूर पति घरमपण ।—रघु० रू०, पृ० ३ ।

घरमबहिर्मुख—वि० [हि० घरम + सं० बहिर्मुख] घर्मविरोधी । उ०—जेन असर्धा निदक नास्तिफ घरम बहिर्मुख ।—नद० ग्र०, पृ० २४ ।

घरमराइ^३—सच्चा पुं० [हि० घरम + राइ] घर्मराज । उ०—घरमराइ नीरजन होई ।—घट०, पृ० २१४ ।

घरमसारा^३—सच्चा स्त्री० [सं० घर्मशाला] १ घर्मशाला । २ सदावर्त । खेरानखाना । उ०—रागी घर्मसार पुनि साजा । बदि मोख जेहि पावहि राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

घरमाच्छेप^३—सच्चा पुं० [सं० घर्म + आक्षेप] घर्माक्षेप । उ०—घर्माच्छेप सदा इहै बरनत सब मुख पाइ ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४५८ ।

घरमादी^३—सच्चा पुं० [सं० घर्म + अधीन] घर्मात्मा । घामिक । उ०—विश्वगुप्त घरमादी राजा ।—घरनी०, पृ० ५३ ।

घरमावतार^३—सच्चा पुं० [सं० घर्म + अवतार] दे० 'घर्मावतार' । उ०—घर हृदय भए कामा उदार । करदन तैं भी घरमावतार ।—हम्मीर रा०, पृ० ५ ।

घरमी^३—वि० [हि०] दे० 'घर्मी' । उ०—(क) घर यह तुम्हारी रूप घरमि के घरमहि मोहै ।—नद ग्र०, पृ० ११ । (ख) जे अनभजतनि भजें तीन घरमी सुखकारी ।—नद० ग्र०, पृ० ३१ ।

घरम्म^३—सच्चा पुं० [सं० घर्म] दे० 'घर्म' । उ०—भइ पूतारे आपरा घारे साथ घरम्म ।—रा० रू०, पृ० २६० ।

घरम्मूरत—वि० [हि० घरम + मूरत] घर्ममूर्ति । साधु । घरम्मूरत में तो भावैई हो ।—श्री निवास० ग्र०, पृ० ५६ ।

घरवान^३—सच्चा पुं० [हि० घर] घरा । पृथ्वी । भूमि । उ०—जाइ सपत्नी समर चपि छिल्लो घरवान । चहुआना रे हृथ्य दूत दीनी फुरमान ।—पृ० रा०, २४ । ३६ ।

घरवाना^३—क्रि० सं० [हि० धरना का प्र० रूप] १ घरने का काम कराना । पकड़ाना । बसाना । २ रखवाना । ३. गिरपतार या बंदी कराना ।

घरषणा^३—क्रि० सं० [सं० घर्षण] १ दबाना । मर्दन करना । उ०—(क) रिपुबल घरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज । पुलक शरीर नयन जल गहे राम पदकज ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) डगे दिगकुजर कमठ कोल कलमले डोले घराघर धारि घराघर घरषा ।—तुलसी (शब्द०) । २. चूण करना (की०) । ३. फाटना (की०) ।

घरसना^३—क्रि० प्र० [सं० घषण] दब जाना । डर जाना । सहम जाना । उ०—बिलसत उर बरहार लसत मणि उड़गन धरसत ।—गोपाल (शब्द०) ।

घरसना^२—क्रि० सं० दबाना । अपमानित करना ।

घरसनी^३—सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'घर्षणी' ।

घरहरा^३—सच्चा स्त्री० [हि० धरना + हर (प्रत्य०)] १ घर पकड़ । लोगों को इस प्रकार पकड़ने का कार्य कि वे इसर उधर भाग न सकें । गिरपतारी ।

क्रि० प्र०—होना ।

२. दो या अधिक लड़नेवालों को घर पकड़कर लड़ाई गढ़ करने का कार्य । बीच विचाव । उ०—लखित अहिंसिधु निकर मनहु ससि सन समर मरत घरहरि करत शिर जनु जुग फनी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. मारे या मार जाने से बचाने का काम । बचाव । रक्षा । ४. घेरना । घेरना । उ०—सन सूकयो, बीत्यो बनो, ऊखी लई उखारि । हरी हरी घरहर अजो घर घरहर हिय नारि ।—बिहारी (शब्द०) ।

घरहर^३—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'घरहरा' । उ०—घरहर तिवे बरवे इहु ।—प्राण०, पृ० ६६ ।

घरहरना^७—क्रि० प्र० [घनु०] घड़घड़ाना। घड़ घड़ शब्द करना। उ०—रथ राजत चाका घरहरे पर परजा का घर हरे।—गोपाल (शब्द०)।

घरहरा—संज्ञा पुं० [सं० घवल गृह] खम्भे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। घोरहर। मीनार। जैसे, माधव-राय का घरहरा।

घरहराना^७—क्रि० सं० [हि० घरहरना] घबराना। घड़कन पैदा होना। उ०—यद्यथा देश देश के गणपति सुन धाक घरहरात।—प्रकवरी ०, पृ० १०८।

घरहरि^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'घरहर'। उ०—(क) जो पहिले प्रपुने सिर परई। सो का काहु के घरहरि करई।—जायसी पं०, पृ० २५७। (ख) जब जमजाल पसार परेगो हरि विनु कौन करेगो घरहरि।—सूर (शब्द०)।

घरहरि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० धैर्य ?] दृढ़ विश्वास। निश्चय। उ०—जम करि मुह तरहरि पर्यो इहि घरहरि चित लाउ। विषण्णुषा परिहरि अजो नरहरि के गुन गाउ।—बिहारी (शब्द०)।

घरहरियाँ—संज्ञा पुं० [हि० घरहरि] बीच बिचाव करा देनेवाला। घर पकड़ करके बचानेवाला। बचाव करनेवाला। रक्षक। उ०—जनहु दीन्ह ठगलाइ देख प्राय तस बीच। रहा न कोउ बरहरिया करे जो दोउ महुँ बीच।—जायसी (शब्द०)।

धरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। जमीन। वरती। २. ससार। दुनिया। उ०—धरा को प्रमाण यही तुलसी जो फरा सो भरा सो बरा लो बुताना।—तुलसी (शब्द०)। ३. गर्भाशय। ४. एक दण्डवत्, जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और गुफ होता है। जैसे,—राधा कहो। बाधा टरे। श्यामा कहो। कामा सरे। ५. मेद। ६. नाडी। ७. भेंट। भेंट या दान स्वरूप ब्राह्मणों को दी जानेवाली स्वरुं आदि की राशि (को०)। ८. मज्जा (को०)।

धरा^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धरात्] १. तौल की बराबरी। किसी वस्तु की तौल के बराबर का वाट या बोझ। वटखरा।

क्रि० प्र०—बाँवना।—साधना।

२. चार सेर की एक तौल।

धराउरी—संज्ञा पुं० [हि०] १. धरोहर। २. जतन से रखी हुई चीज या वस्तु।

धराऊ—वि० [हि० धरना + घाऊ (प्रत्य०)] जो साधारण से अधिक अच्छा होने के कारण नित्य व्यवहार में न लाया जाय, यत्न के साथ रखा रहे और कभी कभी विशेष अवसरों पर निकाला जाय। मामूली से अच्छा। बहुमूल्य। जैसे, धराऊ कपड़ा, धराऊ जोड़ा।

धराक^७—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धडाक'।

धराकदंब—संज्ञा पुं० [सं० धराकदम्ब] एक प्रकार का कदंब। धाराकदंब।

धराकाँ—संज्ञा पुं० [हि० धडाका] दे० 'धडाका'।

धरातल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी। धरती। २. सतह। केवल लवाई चौड़ाई का गुणनफल जिसमें मोटाई गहराई या ऊँचाई का कुछ भी विचार न किया जाय। ३. रकबा। लंबाई और चौड़ाई का गुणनफल।

धरात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगलग्रह। २. नरकासुर।

धरात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीता।

धरादेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण (को०)।

धराधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पृथ्वी को धारण करे। राजा। उ०—कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसी, और धरा-धरन को मेट्यो महमेय है।—भूषण पं०, पृ० ५१। २. शेष नाग। ३. पर्वत। ४. विष्णु।

धराधरन^७—संज्ञा पुं० [सं० धरा + धरण] दे० 'धराधर'।

धराधरा—संज्ञा पुं० [सं०] मगीत में एक ताल का नाम।

धराधव—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु (को०)।

धराधार—संज्ञा पुं० [सं०] जेपन, न।

यौ०—धराधारधारी = महादेव।

धराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

धराधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराधीश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराना—क्रि० सं० [हि० धरना का प्रे० रूप]। १. पकड़ाना। यमाना। २. धारण करना। पहनाना। उ०—तब श्री गुर्दाई जी ने एक बाग तों श्री नवनीतप्रिय जी कों धरायो।—दो सौ धावन, भा० १, पृ० १७२।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. स्थिर करना। ठहराना। निश्चिज करना। मुकदर करना। जैसे, दिन धराना, नाम धराना। उ०—(क) राम तिसक हित लगन धराई।—सुभसी (शब्द०)। (ख) सुदिन, सुन खत, सुधरी सोचाई। वेगि वेद विधि लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)।

धरापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु (को०)।

धरापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मगलग्रह। उ०—धरापुत्र ज्यो स्वरुंमाला प्रकाशे।—केशव (शब्द०)।

धरापृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० धरा + पृष्ठ] धरती की सतह। धरतीतल। भूतल। पृथ्वी। उ०—जब उसक अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं दबो।—कजाल, पृ० ७८।

धराभुक्—संज्ञा पुं० [सं० धराभुक् या धराभुज] राजा (को०)।

धराभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत (को०)।

धराभर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण (को०)।

धरारी^७—वि० [हि० धरना] धारण करनेवाली। उ०—वित्ररेष अपछरि सगीन अति रूप धरारी।—पु० रा०, २५।७२।

धराव—संज्ञा पुं० [हि० धरना + घाव (प्रत्य०)] १. पकड़ने की क्रिया या स्थिति। २. पकड़। ३. पहुँच।

धरावटा—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + घावट (प्रत्य०)] जमीन की वह माप या क्षेत्रफल जो कृतकर गान लिया गया हो ।

धरावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'धराना' ।

धराशायी—वि० [सं० धराशायिन्] १ धरती पर गिरा हुआ । गिरा हुआ । पराजित । उ०—प्राज धराशायी है मानव, गिरा नजर से मैं तो क्या ।—मिट्टी०, पृ० १०६ । २ धरती पर सोनेवाला । ३ युद्ध में मृत ।

धरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धरासूत' (को०) ।

धरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण । उ०—भुजदह पीन मनोहरायत सर धरासुर पद लस्यो ।—तुलसी (शब्द०) ।

धरासूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ मगलग्रह । २ नरकासुर (को०) ।

धरास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र ।

विशेष—विश्वामित्र और वशिष्ठ की लड़ाई में विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर यह अस्त्र चलाया था ।

धराहर—संज्ञा पुं० [हि० धुर (=ऊपर)+धर] खमे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ लगी हों । मीनार । उ०—देखि धराहर कर उजियारा । छिपि गए चांद सुख भो तारा ।—जायसी (शब्द०) ।

धरिंगा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल ।

धरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती । पृथ्वी ।

यौ०—धरित्रीभूत = राजा ।

धरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० धरिमन्] १ तगाड़ा । २. आकार । शकल (को०) ।

धरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० धरना] पृथ्वी । धरती । उ०—पवन को पलट कर सुन्न मे घर किया, धरिया में प्रघर भरपूर देखा ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६६ ।

धरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धरा] चार सेर की एक तोल ।

धरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना] रखनी । रखनी स्त्री ।

धरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० ढार] ढार । बिरिया । कान में पहनने का स्त्रियों का एक गहना ।

धरुण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रह । २ स्वर्ग । ३ जल । पानी । ४ समति । राय । ५ वस्तु को सुरक्षित रखने का स्थान । ६ अग्नि । ७ दूध पीनथाला बछड़ा । ८ आधार । सहारा । ९. कछी मिट्टी । १० होज (को०) ।

धरेचा—संज्ञा पुं० [हि० धरना + एचा (प्रत्य०)] दे० 'धरेला' ।

धरेजा^१—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का अस्त्र । उ०—चलै चक्र त्रिसूल सुतेजा । सक्ति पास धनू बनि धरेजा ।—हम्मीर रा०, पृ० १०५ ।

धरेजा^२—संज्ञा पुं० [हि० धरना + एजा (प्रत्य०)] १. किसी स्त्री को रख लेना । रखनी रखना । २ छोटी जातियों में एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी स्त्री को बिना ब्याह किए पत्नी की तरह रखना ।

विशेष—इसमें भात लेकर विरादरीवाले उस स्त्री को जाति के भीतर स्थान देते हैं ।

धरेजा^३—संज्ञा स्त्री० दे० 'धरेल' ।

धरेध—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + एधा (प्रत्य०)] खेली स्त्री । ऐसी स्त्री जिसे कोई बिना ब्याह के घर में रख ले ।

धरेल—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + एल (प्रत्य०)] उपपत्नी । खेल ।

धरेला—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + एला (प्रत्य०)] वह पति जिसे कोई स्त्री बिना ब्याह के ही ग्रहण कर ले ।

धरेली—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + एली (प्रत्य०)] उपपत्नी । खेली ।

धरेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०) ।

धरेस^१—संज्ञा पुं० [सं० धर + ईश] राजा । धरापति । उ०—कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो, और धराधरन को भेटो ग्रहमेव है ।—भूषण प्र०, पृ० ५१ ।

धरैया—संज्ञा पुं० [हि० धरना + ऐया (प्रत्य०)] १ धरनेवाला । पकड़नेवाला । २ धारण करनेवाला । उ०—(क) घँसि-घँसि धरनि धर के धरैया कहत जमकातर रठे ।—पद्माकर प्र०, पृ० १६ । (ख) घोसा घुकारन घसमसै धर के धरैया कसमसै ।—पद्माकर प्र०, पृ० ८ ।

धरोड़ा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धरोहर' ।

धरोहर—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना (धर) + देशी० ओहर] वह वस्तु या द्रव्य जो किसी के पास इस विश्वास पर रखा हो कि उसका स्वामी जब माँगेगा तब वह दे दिया जायगा । याती । प्रमानत । उ०—(क) प्रात धरोहर हैं घन प्रानंद लेहु न तो सब लेहिगे गाहक ।—घनानंद (शब्द०) । (ख) जो कोई धरी धरोहर नाटे । ग्रह पच्छिन के पर जो काटे । साधुहि दोष लगावे जोई । सोइ विष्टा कर कीरा होई ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—धरना ।—रखना ।

धरोहरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरोहरा' उ०—जस घुम्रा के धरोहरा, जस बालू के रेत । हवा लगे सब मिटि गए, जस करतब के प्रेत ।—धरम०, पृ० ८ ।

धरौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो भारतवर्ष में प्रायः सब जगह विशेषतः हिमालय की तराई में व्यास नदी के किनारे से लेकर सिक्किम तक पाया जाता है । यह अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के गरम भागों में भी होता है ।

विशेष—इसकी टहनियाँ लंबी और पत्तियाँ सीक के दोनों ओर घामने सामने लगती हैं । इसमें सफेद लाल या पीले फूल लगते हैं । इस पेड़ के किसी भाग में यदि घाव किया जाय तो उसमें से पीला दूध निकलता है जिसे पानी में घोलने से खासा पीला रंग तैयार हो सकता है । इसके बीजों के ऊपर कुछ रोई सी होती है । बीजों का तेल दवा के काम में आता है । छाल और जड़ सान काटने और बिच्छू के डंक मारने की दवा समझी जाती है । लकड़ी इसकी भीतर से सफेद चिकनी और मजबूत निकलती है और इसपर खराद और नक्काशी का काम बहुत अच्छा होता है ।

धरौवा—संज्ञा पुं० [हि० धरना + मोवा (प्रत्य०)] बिना विधिपूर्वक, बिना ब्याह किए स्त्री को रखने की बात ।

धर्म्मस, धर्म्मसि, धर्म्मा—वि० [सं०] १ टेकनेवाला । २ बसवान् । समय । ३ टिकाऊ । सुदृढ [को०] ।

धर्त्ता^१—सङ्घा पु० [सं० वैदिक धर्त्ता] १ धारण करनेवाला । २ कोई काम ऊपर लेनेवाला ।

धर्त्ता^२—वि० [हि० धरता या धार] ऋणी । कर्जदार ।

यौ०—कर्त्ता धर्त्ता = जिसे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो ।

धर्त्ता^३—सङ्घा स्त्री० [हि० धरती] दे० 'धरती' ।

धर्त्तूर—सङ्घा पु० [सं०] धर्त्तूरा [को०] ।

धर्म्नि^४—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'धरणी' । उ०—सो फरो धर्म्नि मुच्छा सु खाय ।—हम्मीर रा०, पृ० ४६ ।

धर्म्नी^५—सङ्घा स्त्री० [सं० धर्म्नी] दे० 'धरणी' । उ०—हन्वी अस्व मलखान धर्म्नी मिलाय ।—प० रा०, पृ० ८४ ।

धर्म्म—सङ्घा पु० [सं०] १ घर । भवन । २ यज्ञ । ३ गुण । नैतिकता । ४ सहारा । टेक । ५ पुण्य [को०] ।

धर्म—सङ्घा पु० [सं०] किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो । प्रकृति । स्वभाव, नियम । जैसे, ब्राह्म का धर्म देखना, शरीर का धर्म बलात होना, सप का धम काटना, दुष्ट का धर्म दुख देना ।

विशेष—ऋग्वेद (१ । २२ । १८) में धर्म गवद इम अर्थ में आया है । यह अर्थ सबसे प्राचीन है ।

२. प्रलंकार शास्त्र में वह गुण या वृत्ति जो उपमेय और उपमान में समान रूप से हो । वह एक ही बात जिसके कारण एक वस्तु की उपमा दूसरी से दी जाती है । जैसे, कमल के ऐसे कोमल और लाल चरण, इम उदाहरण में कोमलता और ललाई साधारण धर्म हैं । ३ किसी मान्य प्रथ, आचार्य या ऋषि द्वारा निर्दिष्ट वह धर्म या कृत्य जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के अर्थ किया जाय । वह कृत्य या विधान जिसका फल शुभ (स्वर्ग या उत्तम लोक की प्राप्ति आदि) बताया गया हो । जैसे, अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, होम इत्यादि । शुभदृष्टि ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—धर्म कर्म ।

विशेष—मीमांसा के अनुसार वेदविहित जो यज्ञादि कर्म हैं उन्हीं का विधिपूर्वक अनुष्ठान धर्म है । जैमिनि ने धर्म का जो अर्थ दिया है उसका अभिप्राय यही है कि जिसके करने की प्रेरणा (वेद आदि में) हो, वही धर्म है । संहिता से लेकर सूत्रग्रन्थों तक धर्म की यही मुख्य भावना रही है । कर्मकांड का विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले ही धार्मिक कहे जाते थे । यद्यपि श्रुतियों में 'न हिंस्यात्सर्वभूतानि' आदि वाक्यों द्वारा साधारण धर्म का भी उपदेश है पर वैदिक काल में विशेष लक्ष्य कर्मकांड ही की ओर था ।

४ वह कर्म जिसका करना किसी सबंध, स्थिति या गुणविशेष के विचार से उचित और आवश्यक हो । वह कर्म या व्यापार जो समाज के कार्यविभाग के निर्वाह के लिये आवश्यक और उचित हो । वह काम जिसे मनुष्य को किसी

विशेष कौटि या अवस्था में होने के कारण अपने निर्वाह तथा दूसरों की सुगमता के लिये करना चाहिए । किसी जाति, कुल, वर्ग, पद इत्यादि के लिये उचित ठहराया हुआ व्यवसाय या व्यवहार । कर्तव्य । कर्म । जैसे, ब्राह्मण का धर्म, क्षत्रिय का धर्म, माता पिता का धर्म, पुत्र का धर्म इत्यादि ।

विशेष—स्मृतियों में आचार ही को प्रथम धर्म कहा है और वरुण और आश्रम के अनुसार उसकी व्यवस्था की है, जैसे ब्राह्मण के लिये पढ़ना पढ़ाना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ कराता, क्षत्रिय के लिये प्रजा की रक्षा करना, दान देना, वैश्य के लिये व्यापार करना और शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा करना । जहाँ देश काल की विपरीतता से अपने अपने वर्ण के धर्म द्वारा निर्वाह न हो सके वहाँ शास्त्रकारों ने आपद्धम की व्यवस्था की है जिसके अनुसार किसी वर्ण का मनुष्य अपने से निम्न वर्ण की वृत्ति स्वीकार कर सकता है, जैसे ब्राह्मण—क्षत्रिय या वैश्य की, क्षत्रिय—वैश्य की, वैश्य या शूद्र—शूद्र की, पर अपने से उच्च वर्ण की वृत्ति ग्रहण करने का आश्रयकाल में भी निषेध है । इसी प्रकार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी इनके धर्मों का भी प्रत्येक भक्षण निरूपण किया गया है । जैसे ब्रह्मचारी के लिये स्वाध्याय, भिक्षा माँगकर भोजन, जंगल से लकड़ी चुनकर लाना, गुरु की सेवा करना इत्यादि । गृहस्थ के लिये पत्र महायज्ञ, बलि, पतिविधियों की भोजना और भिक्षुक, संन्यामियों आदि की भिक्षा देना इत्यादि । वानप्रस्थ के लिये सामग्री सहित गृह की अग्नि को लेकर वन में वास करना, जटा, नश, प्रमथ्रु आदि रखना, भूमि पर सोना, कीर्तताप सहना, अग्निहोत्र दशपौर्णमास, बलिकर्म आदि करना इत्यादि । संन्यासी के लिये सब वस्तुओं को त्याग अग्नि और गृह से रहित होकर भिक्षा द्वारा निर्वाह करना, नख आदि को कटाए और दंड कमंडलु लिए रहना । यह तो वर्ण और आश्रम के प्रत्येक भक्षण धर्म हुए । इन दोनों के संयुक्त धर्म को वर्णश्रम धर्म कहते हैं । जैसे ब्राह्मण ब्रह्मचारी का पलाशदंड धारण करना । जो धर्म किसी गुण या विशेषता के कारण हो उसे गुणधर्म कहते हैं—जैसे, जिसका शास्त्रोक्त रीति से अभिषेक हुआ हो, उस राजा का प्रशासन करना । निमित्त धर्म वह है जो किसी निमित्त से किया जाय । जैसे शास्त्रोक्त कर्म न करने वा शास्त्रविरोध करने पर प्रायश्चित्त करना । इसी प्रकार के विशेष धर्म कुलधर्म, जातिधर्म आदि हैं ।

५ वह वृत्ति या आचरण जो लोक या समाज की स्थिति के लिये आवश्यक हो । वह आचार जिससे समाज की रक्षा और सुख शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में भी उत्तम गति मिले । कल्याणकारी कर्म । सुकृत । सदाचार । अर्थ । पुण्य । सत्कर्म ।

विशेष—स्मृतिकारों ने वर्ण, आश्रम, गुण और निमित्त धर्म के अतिरिक्त साधारण धर्म भी कहा है जिसका मानना ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक के लिये समान रूप से आवश्यक है । मनु ने वेद, स्मृति, साधुओं के आचार और अपनी आत्मा की तुष्टि को धर्म का साक्षात् लक्षण बताकर साधारण धर्म

में दस बातें कहीं हैं—वृत्ति (धैर्य), क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध । मनुष्य मात्र के लिये जो सामान्य धर्म निरूपित किया गया है वही समाज को धारण करनेवाला है, उसके बिना समाज की रक्षा नहीं हो सकती । मनु ने कहा है कि रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है । अतः प्रत्येक सभ्य देश के जनसमुदाय के बीच श्रद्धा भक्ति, दया प्रेम, आदि चित्त की उदात्त मनो-वृत्तियों से मनुष्य रखनेवाले परोपकार धर्म की स्थापना हुई है, यहाँ तक कि परलोक आदि पर विश्वास न रखने-वाले योरोप के आधिभौतिक तत्त्ववेत्ताओं को भी समाज की रक्षा के निमित्त इस सामान्य धर्म का स्वीकार करना पड़ा है । उन्होंने इस धर्म का लक्षण यह बताया है कि जिस कर्म से अधिक मनुष्यों को अधिक सुख मिले वह धर्म है । बौद्ध शास्त्रों में इसी धर्म को शील कहा गया है । जैन शास्त्रों ने ग्रहिया को परम धर्म माना है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—धर्म कमाना=धर्म करके उसका फल संप्रिप्त करना । धर्म की धूम=धर्म का अत्यधिक प्रचार । उ०—पवित्र वैदिक धर्म की ही धूम थी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७५ । धर्म खाना=धर्म की शरण खाना । धर्म की दुहाई देना । धर्म बिगाड़ना=(१) धर्म के विरुद्ध आचरण करना । धर्म-भ्रष्ट करना । (२) स्त्री का सतीत्व नष्ट करना । धर्म रखना=धर्म के विरुद्ध आचरण करने से वचना या बचाना । धर्म लगनी कहना=धर्म का ध्यान रखकर कहना । ठीक ठीक कहना । सत्य कहना । उचित बात कहना । जैसे,—हम तो धर्म लगनी कहेंगे, चाहे किसी को भला लगे या बुरा । धर्म से कहना=सत्य सत्य कहना । ठीक ठीक कहना । उचित बात कहना ।

६ किमी आचार्य या महात्मा द्वारा प्रवर्तित ईश्वर, परलोक आदि के सबध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली । उपासनाभेद । मत । संप्रदाय । पथ । मजहब । जैसे, हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।—बदलना ।

विशेष—इस शब्द में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन नहीं है । ७ परस्पर व्यवहार मनुष्यो नियम जिसका पालन राजा, आचार्य या मनुष्य द्वारा कराया जाय । नीति । न्याय-व्यवस्था । कायदा । कानून । जैसे, हिंदू धर्मशास्त्र ।

शौ०—धर्मराज । धर्मधिकारी । धर्मध्यक्ष ।

विशेष—आचार्य और व्यवहार दोनों का प्रतिपादन स्मृतियों में हुआ है । राजवत्स्य स्मृति में आचाराध्याय और व्यव-हाराध्याय अलग अलग हैं । दायविभाग, सीमाविवाद, श्रृणादान, दण्डयोग्य अपराध आदि सब विषय अर्थात् दीवानी और फौजदारी के सब मामलों व्यवहार के अंतर्गत हैं । राज

सभा में या धर्मध्यक्ष के सामने इन सब व्यवहारों (मुक-दमों) का निरूपण होता था ।

८ उचित अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति । न्याय-बुद्धि । विवेक । ईमान । उ०—जैसा तुम्हारे धर्म में भावे करो, भारो चाहे छोड़ो ।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०) ।

मुहा०—धर्म में माना=मत करण में उचित जान पड़ना ।

१ धर्मराज । यमराज । १० धनुष । कमान । ११ सोमपायी । १२ वर्तमान अवसर्पिणी के १५ वें अर्धत्वं का नाम (जैन) । १३ जन्मलग्न से नवें स्थान का नाम जिसके द्वारा यह विचार किया जाता है कि बालक कहाँ तक भाग्यवान् और धार्मिक होगा । १४ युधिष्ठिर । धर्मराज (को०) । १५ सत्संग (को०) । १६ प्रकृति । स्वभाव । तरीका । ढंग । १७ आचार (को०) । १८ ग्रहिया (को०) । १९ एक उपनिषद् (को०) । २० आत्मा (को०) । २१ निष्पक्ष होने का भाव या स्थिति (को०) ।

धर्मकथक—संज्ञा पु० [सं०] विश्व, नियम या कानून का व्याख्याता [को०] ।

धर्मकर्म—संज्ञा पु० [सं०] १ वह कर्म या विधान जिसका करना किसी धर्मग्रंथ में आवश्यक ठहराया गया हो । जैसे, संन्यो-पासन आदि । २ विहित या उचित कर्म (को०) ।

धर्मकाम—वि० [सं०] १ धर्मकृत्य में सलग्न । उचित कार्य करने-वाला [को०] ।

धर्मकाय—संज्ञा पु० [सं०] १ बुद्ध । २ एक जैन मुनि [को०] ।

धर्मकारण—संज्ञा पु० [सं०] धर्म का प्रेरक हेतु [को०] ।

धर्मकार्य—संज्ञा पु० [सं०] धार्मिक कृत्य । धर्म का काम [को०] ।

धर्मकील—संज्ञा पु० [सं०] १ राज्यशासन । शासन । २ पति (को०) ।

धर्मकृच्छ्र—संज्ञा पु० [सं०] धर्म के निवार से किसी कार्य को किया जाय या न किया जाय, यह द्वैधीभाव । धर्मपालन के मार्ग में उत्पन्न बाधक स्थिति [को०] ।

धर्मकृत्य—संज्ञा पु० [सं०] धार्मिक कार्य या कर्मकांड [को०] ।

धर्मकेतु—संज्ञा पु० [सं०] १ कश्यपवंशीय सुकेतु राजा के पुत्र का नाम २ बुद्धदेव ।

धर्मकोश, धर्मकोष—संज्ञा पु० [सं०] कानूनों या नियमों का संग्रह । विधानकोष [को०] ।

धर्मक्रिया—संज्ञा स्त्री [सं०] धार्मिक कृत्य । धर्मकार्य [को०] ।

धर्मक्षेत्र—संज्ञा पु० [सं०] १ कुरुक्षेत्र । २ भारतवर्ष जो धर्म के संघर्ष के लिये कर्मभूमि माना गया है । ३ धार्मिक पुरुष (को०) ।

धर्मगुप्त^१—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु [को०] ।

धर्मगुप्त^२—वि० धर्म का रक्षण और पालन करनेवाला [को०] ।

धर्मग्रंथ—संज्ञा पु० [सं० धर्मग्रन्थ] वह ग्रंथ या पुस्तक जिसमें किसी जनसमाज के आचार व्यवहार और उपासना आदि के सबध में शिक्षा हो ।

धर्मघट—संज्ञा पु० [सं०] सुगंधित जल से भरा हुआ घड़ा जिसके वैशाख

में दान देने का माहात्म्य काशीखंड, हेमाद्रि दानखंड आदि में है ।

धर्मघड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + हि० घड़ी] बड़ी घड़ी जो ऐसे स्थान पर लगी हो जिसे सब कोई देख सके ।

धर्मघ्न—वि० [सं०] धर्मघातक । धर्महीन । अधार्मिक [को०] ।

धर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्म का समूह । २. प्राचीन काल का एक प्रकार का चक्र (वाल्मीकि०) । ३. बुद्ध की धर्मशिक्षा जिसका प्रारंभ काशी से हुआ था । ४ बुद्धदेव । ५. यशोक स्तंभ पर निर्मित चक्र जो तिरंगे झंडे पर है । उ०—धर्मचक्र रक्षित तिरंग ध्वज उठ अविजित फहराता ।—युगपय, पु० ८८ ।

धर्मचरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्मचर्या' [को०] ।

धर्मचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म का आचरण ।

धर्मचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी । २. पतिव्रता [को०] ।

धर्मचारी—वि० [सं० धर्मचारिन्] [वि० स्त्री० धर्मचारिणी] धर्म का आचरण करनेवाला ।

धर्मचिंतक—वि० [सं० धर्मचिन्तक] १ धर्म का विचार करनेवाला । २. स्मृतिकार [को०] ।

धर्मचिन्तन—संज्ञा पुं० [सं० धर्मचिन्तन] धर्म की गवना । धर्मसंबंधी बातों का विचार ।

धर्मचिन्ता—संज्ञा पुं० [सं० धर्मचिन्ता] दे० 'धर्मचिन्तन' [को०] ।

धर्मच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का अतिक्रमण या उल्लंघन [को०] ।

धर्मच्युत—वि० [सं०] धर्मभ्रष्ट । पतित [को०] ।

धर्मज^१—वि० [सं०] धर्म से उत्पन्न ।

धर्मज^२—संज्ञा पुं० १ धर्मपत्नी से उत्पन्न प्रथम श्री रस पुत्र (क्योंकि उसके द्वारा पिता पितृश्रेष्ठ से मुक्त होता है) । २ धर्मपुत्र युधिष्ठिर । ३ एक बुद्ध का नाम । ४. नरनारायण ।

धर्मजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० धर्मजन्मन्] युधिष्ठिर [को०] ।

धर्मजन्य—वि० [सं०] धर्म से संबंधित । धर्म विषयक [को०] ।

धर्मजिज्ञासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धर्म के विषय में जानकारी करने की इच्छा । २ धर्मनिकूल आचरण की जिज्ञासा [को०] ।

धर्मजीवन^१—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्य करारकर जीविका अर्जन करनेवाला आहार ।

धर्मजीवन^२—वि० १ जाति धर्म के अनुकूल आचरण करनेवाला । धर्मनिकूल आचरण करनेवाला [को०] ।

धर्मज्ञ—वि० [सं०] धर्म को जाननेवाला ।

धर्मण—संज्ञा पुं० [सं०] १ धार्मिक वृत्ति । २ धार्मिक सौंप । ३ धार्मिक पक्षी ।

धर्मतः—अव्य० [सं०] धर्म से । धर्म का ध्यान रखते हुए । धर्म को साक्षी करके । सत्य सत्य । जैसे,—जो कुछ हुआ हो मुझसे धर्मतः कहो ।

धर्मतात—संज्ञा पुं० [सं० धर्म+तात] युधिष्ठिर । उ०—धर्मतात सृ प्रजातरिषु कीर्त्य क्रुराह ।—सनेकापं०, पु० ३४ ।

धर्मत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्म का आचरण न करना । २ अपना धर्म छोड़ देना [को०] ।

धर्मद^१—वि० [सं०] अपने धर्म का फल दूसरे को देनेवाला [को०] ।

धर्मद^२—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक अनुचर [को०] ।

धर्मदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धार्मिक कर्म करानेवाले को दिया जानेवाला द्रव्य या धन [को०] ।

धर्मदा—वि० स्त्री० [सं० धर्म+दा] धर्म प्रदान करनेवाली । उ०—धरा जिनको देहदा । बिनको न भूमा धर्मदा ।—अग्नि०, पु० ६२ ।

धर्मदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जो किसी निमित्त से या विशेष फल की प्राप्ति (जैसे, ग्रहों की शांति आदि) के अर्थ न किया जाय, केवल धर्म या सात्विक बुद्धि की प्रेरणा से किया जाय ।

धर्मदापन—संज्ञा पुं० [सं०] समझाने बुझाने से या अपने आप जब श्रेणी श्रेणी का धन लोटावे, तो उसको धर्मदापन कहते हैं ।

धर्मदार—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपत्नी ।

धर्मदारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपत्नी । ब्याह कर लाई हुई स्त्री [को०] ।

धर्मदुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसका दूध केवल धार्मिक कृत्यों के लिये दुहा जाता हो [को०] ।

धर्मदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मोपदेशक [को०] ।

धर्मद्रवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी ।

धर्मद्रोही^१—वि० [सं०] धर्म न माननेवाला । अधर्मो [को०] ।

धर्मद्रोही^२—संज्ञा पुं० राक्षस । दैत्य [को०] ।

धर्मधक्का—संज्ञा पुं० [सं० धर्म+हि० धक्का] १ वह कष्ट जो धर्म के लिये उठाना पड़े । वह हानि या कठिनाई जो परोपकार आदि के लिये सहनी पड़े । २. वह कष्ट या प्रयत्न जिससे निज का कोई लाभ न हो । व्यर्थ का कष्ट ।

धर्मधातु—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

धर्मधारी—वि० [सं० धर्म+धारिन्] धार्मिक । धर्मनिकूल आचरण करनेवाला । उ०—महा धर्मधारी कर्मचंद भूप । तिनके रत्नसिंघ मनमथरूप ।—प० रासो, पु० ६ ।

धर्मधुर्य—वि० [सं०] जो न्याय करने में सबसे आगे हो [को०] ।

धर्मध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का आचरण स्थापित करनेवाला मनुष्य । धार्मिकों का सा बेला और डग बनाकर लोगों से पुजानेवाला मनुष्य । पाखंडी । उ०—धर्म धर्मध्वज ध्वज धोरी ।—तुलसी (शब्द०) । २. मिथिला के एक जनक-वंशीय राजा जिनकी कथा महाभारत के शांतिपर्व में है । ये सन्यासधर्म और मोक्षधर्म के जाननेवाले परम ब्रह्मज्ञानी राजा थे ।

विशेष—एक बार सुलभा नाम की एक संन्यासिनी सारी पृथ्वी पर घूमती हुई धर्मध्वज की परीक्षा के लिये उनकी सभा में योगबल से अत्यंत मनोहर रूप धारण करके आई । राजा अकित होकर उसका परिचय आदि पूछ रहे थे कि उधने

अपनी बुद्धि द्वारा राजा की बुद्धि में भीर नेत्र द्वारा राजा के नेत्र में यह देखने के लिये प्रवेश किया कि वे मोक्षधर्म के वेत्ता हैं या नहीं। राजा उसका अभिप्राय समझ गए और लिंग शरीर धारण करके उससे उसका परिचय पूछने लगे और उसे उसके आचरण के लिये भला बुरा कहने लगे। राजा ने कहा—'तुमने अपनी बुद्धि द्वारा जो हमारे शरीर में प्रवेश किया उससे अनुचित सहयोग हुआ, इससे तुम्हें तो व्यभिचार दोष लगा ही, मैं भी उसका भागी हूँगा'। सुलभा ने आत्मज्ञान की अनेक बातें कहकर राजा को इस प्रकार समझाया—'मेरा संपर्क तो अपने शरीर के साथ नहीं है, आपके शरीर के साथ संयोग हो सकता है? मैंने अपने सत्वगुण के बल से आपके शरीर में प्रवेश किया। यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश से आपका कोई अपकार नहीं हो सकता। वन के बीच शून्य कूटी में प्रवेश करना सन्यासी का धर्म है अतः मैंने भी आपके बेधशून्य शरीर में प्रवेश किया है और आज भर रहकर कल चली जाऊँगी'। राजा यह सुनकर चुप हो रहे।

धर्मध्वजो—संज्ञा पुं० [सं० धर्मध्वजिन्] पालडी। दे० 'धर्मध्वज'।

धर्मनन्दन—संज्ञा पुं० [सं० धर्मनन्दन] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मनन्दी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मनन्दिन्] एक बौद्ध पंडित जिन्होंने कई बौद्धशास्त्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

धर्मनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनो के पद्मदेव तीर्थंकर।

विशेष—जैन ग्रंथों के अनुसार ये रत्नपुरी नाम की नगरी में इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम भानुराज और माता का नाम सुव्रता देवी था। इनका उम्र ४५ धनुष का और आयु दस लाख वर्ष की थी। दीक्षा के लिये इन्होंने दो दिन का उपवास किया था। दधिवर्ण वृक्ष इनका दीक्षावृक्ष था। शुक्ला महाप्रयोदशी को इनकी दीक्षा हुई थी। दीक्षा के पीछे दो वर्षों तक ये छद्मस्थ रहे, फिर पुनः की पूर्णिमा को इन्होंने ज्ञानलाभ किया।

धर्मनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. एक नदी का नाम।

धर्मेनिरपेक्ष—वि० [सं० धर्म+निरपेक्ष] (यह राज्य या शासन) जहाँ किसी धर्म की मुख्यता न हो, सभी धर्मों का समान आदर हो।

धर्मनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म में भक्ति या निष्ठा [को०]।

धर्मनिष्ठ—वि० [सं०] धर्मपरायण। धर्म में जिसकी आस्था हो। धार्मिक।

धर्मनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म में आस्था। धर्म में श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कर्तव्यपालन। २. नैतिक या धार्मिक आचरण [को०]।

धर्मपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यवस्थापन जो किसी राजा या धर्माधिकारी की ओर से दिया जाय।

धर्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष। धर्मात्मा। २. वरुण देवता।

धर्मपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार कूर्मविभाग में दक्षिण देश के पास का एक जनस्थान जो कदाचित् प्राच्यनिक धर्मापटम (जिला मलावार) के आसपास रहा हो। २. श्रावस्ती नगरी। ३. गोल मिर्च।

धर्मपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके साथ धर्माशाल को रीति से विवाह हुआ हो। विवाहिता स्त्री।

विशेष—दक्षस्मृति में लिखा है कि प्रथमा स्त्री ही धर्मपत्नी है। न्याय कर साईं दूसरी स्त्री को कामपत्नी कहा गया है।

धर्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर (जिसके पत्ते यज्ञादि धर्मकार्यों में काम आते हैं)।

धर्मपथ—संज्ञा पुं० [सं०] धर्ममार्ग। नैतिक मार्ग [को०]।

धर्मपर—वि० [सं०] धर्मानुयायी। धर्मानुसृत आचरण करनेवाला [को०]।

धर्मपरायण—वि० [सं०] धर्मानुयायी। धर्मानुसार कार्य करनेवाला [को०]।

धर्मपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] योग दर्शन के अनुसार सब भूतों और इन्द्रियों के रूप या स्थिति से दूसरे रूप या स्थिति में प्राप्त होने की वृत्ति। एक धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की प्राप्ति। जैसे, मिट्टी के पिष्टारूप धर्म के निवृत्त होने पर घटस्वरूप धर्म की प्राप्ति।

विशेष—पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में चित्त के जिस प्रकार निरोध, समाधि और एकाग्रता ये तीन परिणाम कहे हैं उसी प्रकार सूक्ष्म, स्थूल भूतों तथा इन्द्रियों के भी तीन परिणाम बतलाए हैं—धर्मपरिणाम, सक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाम। पुरुष के अतिरिक्त और सब वस्तुएँ इन परिणामों के अधीन अर्थात् परिणामी हैं। प्रत्येक धर्मो अर्थात् प्राकृतिक द्रव्य तीन प्रकार के धर्मों से युक्त है—शांत, उचित और अव्यपदेश्य। वस्तु का जो धर्म अपना व्यापार कर चुका हो, वह शांतधर्म कहलाता है। जैसे, घट के फूट जाने पर घटत्व, बीज के अंकुरित हो जाने पर बीजत्व। जो धर्म विद्यमान रहता है उसे उचित कहते हैं, जैसे, घट के बने रहने पर घटत्व। जो धर्म प्राप्त होनेवाला है और व्यक्त या निर्दिष्ट न हो सकने पर भी शक्ति रूप से स्थित या निहित रहता है उसे अव्यपदेश्य कहते हैं, जैसे बीज में ब्रह्म होने का धर्म।

धर्मपरिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मसभा। न्याय करनेवाली सभा। न्यायाध्यक्षों का मंडल।

धर्मपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशाल का अध्यापक [को०]।

धर्मपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का पालन या रक्षा करनेवाला। २. दंड (जिसके भय से लोग धर्म का पालन करते हैं) ३. राजा दशरथ के पुरुष संनो का नाम।

धर्मपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्म का प्रधान स्थान । २ काशी ।
३ वह स्थान जहाँ धर्म की व्यवस्था मिले ।

धर्मपोढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मपीठा] धर्म या न्याय के विरुद्ध
आचरण ।

धर्मपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्म के पुत्र युधिष्ठिर । २ नरनारायण ।
३ धर्मानुसार पुत्र कहकर जिसका ग्रहण किया गया हो ।

धर्मपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपुरी जहाँ शरीर छूटने पर प्राणियों
के किए हुए धर्म अधर्म का विचार होता है । २ कचहरी ।
न्यायालय ।

धर्मपुस्तक—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + पुस्तक] धर्म विषयक पुस्तक ।
धर्मग्रन्थ [को०] ।

धर्मप्रचार—संज्ञा पुं० [सं०] (लाक्ष०) सत्कार [को०] ।

धर्मप्रतिरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] परायों को दिया हुआ ऐसे सशक्त
भोर सपक्ष मनुष्य का दान जिसके अपने लोग (कुटुंबी
आदि) कष्ट में हों ।

विशेष—मनु ने कीर्ति, यथा आदि के लिये दिए हुए ऐसे दान को
धर्म नहीं कहा है, धर्म का प्रतिरूपक (नकल) कहा है ।

धर्मप्रधान—वि० [सं०] जिसमें धर्म मुख्य या निर्दिष्ट हो [को०] ।

धर्मप्रभास—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम ।

धर्मप्रवृत्ता—संज्ञा पुं० [सं० धर्मप्रवृत्त] १ नियम या कानून का
व्याख्याता । २ धर्म का अध्यापक [को०] ।

धर्मप्रवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुद्ध का एक नाम । २ धर्म की
व्यवस्था या कृतव्यवस्था [को०] । ३ नियम या कानून की
व्याख्या [को०] ।

धर्मवल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के आचरण का दस [को०] ।

धर्मवाणिजिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो बने के समान धर्म
द्वारा लाभ पाने की चेष्टा करना है । २. वह जो धार्मिक
कार्य फलाशा से करता है, जैसे लान की भाषा से बनिया
व्यापार करता है [को०] ।

धर्मवाह्य—वि० [सं०] धर्मविरुद्ध [को०] ।

धर्मबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म अधर्म का विवेक । भले बुरे
का विचार ।

धर्मबुद्धि—वि० १ धर्मानुकूल आचरण करनेवाला । २ उचित
अनुचित का विचार करनेवाला [को०] ।

धर्मभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जो धर्म के नाते सहन हो । २
गुरुकन्या [को०] ।

धर्मभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपरायण पत्नी [को०] ।

धर्मभाणक—संज्ञा पुं० [सं०] कथा पुराण बानेवाला । कथकड़ ।

धर्मभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० धर्मभ्रातृ] १ गुरुभाई । २ धर्म के नाते
भाई । ३ गुरुपुत्र [को०] ।

धर्मभिक्षुक—संज्ञा पुं० [सं०] यह जिसने धर्मार्थ भिक्षावृत्ति ग्रहण
की हो ।

विशेष—मनु ने दो प्रकार के धर्मभिक्षुक गिनाए हैं—पुत्र की

अपेक्षा से विवाह चाहनेवाला, यज्ञ की इच्छा रखनेवाला,
पक्षिक; जो यज्ञ में अपना सर्वस्व लगाकर निधन हो गया
हो; गुरु माता भोर पिता के भरणपोषण के लिये दान
चाहनेवाला, अध्ययन की इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी भोर
रोगी । ये नव धर्मभिक्षुक ब्राह्मण श्रेष्ठ स्नातक हैं । इन्हें
यज्ञ की वेदी के भीतर बैठकर दक्षिणा के सहित ग्रन्थदान
देना चाहिए । इनके प्रतिरिक्त जो भोर ग्राहण हों उन्हें
वेदी के बाहर बैठाना चाहिए ।

धर्मभोरु—वि० [सं०] जिसे धर्म का भय हो । जो अधर्म करते हुए
बहुत डरता हो ।

धर्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजा । २ धर्मपरायण व्यक्ति । धर्म-
निष्ठ व्यक्ति [को०] ।

धर्मभ्रष्ट—वि० [सं०] वह जो धर्म से पतित हो गया हो ।
धर्मभ्रुत [को०] ।

धर्ममति—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्मवृत्ति' ।

धर्ममहापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मविभाग का मंत्री [को०]

धर्ममूल—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के आधार वेद [को०] ।

धर्ममेघ—संज्ञा पुं० [सं०] योग में धर्मप्रज्ञात समाधि के अंतर्गत एक
समाधि जिसमें वैराग्य के अभाव से चित्त सब वृत्तियों से
रहित हो जाता है अर्थात् इतना असंख्य हो जाता है कि
उसका रहना न रहना बराबर हो जाता है, केवल कृप
शुद्धकार मात्र रह जाता है ।

धर्मयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा यज्ञ जिसमें किसी की बलि न दी
जाय [को०] ।

धर्मयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ययुग ।

धर्मयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह युद्ध जिसमें किसी प्रकार का अन्याय
या नियम का भंग न हो । २ धर्म की रक्षा या प्रचार के
लिये किया जानेवाला युद्ध । जिहाद ।

धर्मयूप, धर्मयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

धर्मरक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] योग (यवन) देशों का एक बौद्ध धर्म
पदेशक या स्थविर जिसे महाराज अशोक ने अपरातक
(बिल्किस्तान) देश में उपदेश देने के लिये नज़ावा ।

धर्मरत्न—वि० [सं०] धर्मानुयायी । धर्मपरायण । [को०] ।

धर्मरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मानुराग । धर्मप्रेम [को०] ।

धर्मरति—वि० धर्मपरायण [को०] ।

धर्मराज, धर्मराई(उ)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + राज] दे० 'धर्मराज' ।
उ०—तीजे प्रकाश रहे धर्मराई । नरकं सुगं जिन लीन बनाई ।
कश्मल फल जीवन भुगतार्ई । ऐसा बदल पसारा है ।—कबीर
श०, भा० १, पृ० ६२ ।

धर्मराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्म का पालन करनेवाला, राजा ।
२ युधिष्ठिर । ३ यमराज । ४. जिन । ५ न्यायवर्ता ।
न्यायाधीश । उ०—सेनापति बुधजन, मंगल गुरुगण, धर्मराज
मन बुद्धि धनी ।—केशव (शब्द०) ।

धर्मराज^२—वि० धर्मशील [को०] ।

धर्मराज^३—सञ्ज्ञा पु० [सं० धर्मराजन्] युधिष्ठिर [को०] ।

धर्मराजपरीक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृतियों के अनुसार धर्म में अभियुक्त दापो है या निर्दोष, इसकी एक दिव्य परीक्षा ।

विशेष—वृद्धस्पति, पितामह आदि स्मृतिकारों ने जो विधान लिखे हैं वे थोड़े बहुत भिन्न होने पर भी वस्तुतः एक ही से हैं । धर्म और अधर्म की दो श्वेत और कृष्ण मूर्तियाँ भोजपत्र पर बनाकर और उनकी प्राणप्रतिष्ठापूर्वक पूजा करके मिट्टी के दो घरावर पिठों में उन्हें रखे । फिर दोनों पिठों को दो नए घड़ों में रखकर अभियुक्त को बुलावे और किसी घड़े पर हाथ रखने के लिये कहे । यदि उसका हाथ धर्मपिठवाले घड़े पर पड़े तो उसे निर्दोष समझे ।

धर्मराजिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सारनाथ का एक बौद्ध स्तूप [को०] ।

धर्मराय(७)—सञ्ज्ञा पु० [सं० धर्मराज] धर्म । दे० 'धर्मराज' । उ०—
छोखे जीव विनोयहो धर्मराय धरि स्थाय ।—कबीर सा०, पृ० १५२२ ।

धर्मरोधी—वि० [सं० धर्मरोधिन्] धर्मविरुद्ध । अन्यायपूर्ण । [को०] ।

धर्मलक्षण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. धर्म या व्यवस्था का मूल चिह्न या लक्षण । २. वेद [को०] ।

धर्मलक्षणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा दर्शन [को०] ।

धर्मलुप्ता उपमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] वह उपमा जिसमें धर्म अर्थात् उपमान और उपमेय में समान रूप से पाई जानेवाली बात का कथन न हो । दे० 'उपमा' ।

धर्मलोप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. अधम । अनाचार । २. कर्तव्य का लोप [को०] ।

धर्मवत्सल—वि० [सं०] जिसे धर्म वा कर्तव्य प्यारा हो [को०] ।

धर्मवर्ती—वि० [सं० धर्मवर्तिन्] धार्मिक । धर्मानुयायी । धर्माचरण करनेवाला [को०] ।

धर्मवर्धन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शिव [को०] ।

धर्मवर्मा—सञ्ज्ञा पु० [सं० धर्मवर्मन्] धर्मरक्षक [को०] ।

धर्मवाद—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धर्म या कर्तव्य के विषय में उत्पन्न वाद पर विचार [को०] ।

धर्मवान्—वि० [सं० धर्मवत्] धर्मनिष्ठ । धर्मात्मा [को०] ।

धर्मवासर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. पूर्णिमा । २. बीता हुआ दिन या कल [को०] ।

धर्मवाहन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसका वाहन धर्म हो । शिव । २. धर्मराज का वाहन महिष । भैंसा ।

धर्मविजयी—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह जो नग्नता या विनय ही से सतुष्ट हो जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार दुषल राजा को पहले धर्मविजयी राजा का सहारा लेना चाहिए ।

धर्मविद्—वि० [सं०] धर्मज्ञाता [को०] ।

धर्मविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मविधान या कर्तव्य का ज्ञान [को०] ।

धर्मविधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. धर्म संबंधी व्यवस्था । २. नियम या कानून की व्यवस्था [को०] ।

धर्मविक्षेप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. धर्म का व्यतिक्रम । २. धार्मिक श्रुति या उपलब्ध पुथल [को०] ।

धर्मविपर्यय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धर्मपरिवर्तन । उ०—अकबर के पूर्व मुसलमानों के जो आक्रमण हुए थे उनमें मूर्तियों के खंडन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्मविपर्यय आदि के दृष्टियों ने जनता में अवतारवाद के विरुद्ध भावना भर दी ।—अकबरी० (भू०), पृ० ३ ।

धर्मविवेचन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. धर्म के स्वभाव में चिंतन । २. धर्म अधर्म का विचार । ३. दूसरे के किए हुए कर्म का विचार कि वह सदोष है या निर्दोष । किसी के दोषों या निर्दोष होने का निर्णय ।

धर्मवीर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह जो धर्म करने में माहुर हो ।

विशेष—रसनिर्णय के ग्रंथों में वीररस के अंतर्गत चार प्रकार के वीर कहे गए हैं—युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और दयावीर ।

धर्मवृद्ध—वि० [सं०] जो धर्माचरण द्वारा श्रेष्ठ हो ।

धर्मवैतसिक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह जो पाप के द्वारा धन कमाकर लोगों को दिखाने और धार्मिक प्रसिद्धि होने के लिये बहुत दानपुण्य करता हो ।

धर्मव्यवस्था—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी प्रश्न पर अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रदत्त धर्मानुमोदित मत या निर्णय । २. निर्णय । फैसला [को०] ।

धर्मव्याघ—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मिथिलापुर निवासी एक व्याघ जिसने कौशिक नामक एक तपस्वी वेदाध्यायी ब्राह्मण को धर्म का तत्त्व समझाया था ।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में इसकी कथा इस प्रकार है ।

कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे बैठकर वेदपाठ कर रहे थे इतने में एक बगली ने पेड़ पर से उनके ऊपर छोट कर दी । कौशिक ने क्रुद्ध होकर उसकी ओर देखा और वह मरकर गिर पड़ी । इसपर कौशिक को बड़ा दुःख हुआ और वे भिक्षा माँगने के लिये एक परिचित गृहस्थ के घर पहुँचे । उसकी गृहिणी उन्हें बैठाकर भीतर अन्न आदि लाने गई । पर इसी बीच में उसका पति भूखा व्यास कहीं से आ गया और वह उसकी सेवा में लग गई । पीछे जब उसे द्वार पर बैठे हुए ब्राह्मण की सुघ दृष्टि तब वह भिक्षा लेकर तुरत बाहर आई और विलम्ब का कारण बताकर क्षमाप्रार्थना करने लगी । कौशिक इसपर बहुत विगड़े और ब्राह्मण के कोप का भयकर फल बताकर उसे डराने लगे । इसपर उस स्त्री ने कहा—'मैं बगली नहीं हूँ । आपके क्रोध से मेरा क्या हो सकता है ? मैं पति को अपना परम देवता समझती हूँ । उनकी सेवा से छुट्टी पाकर तब मैं भिक्षा लेकर आई हूँ । क्रोध बहुत बुरी वस्तु है । जो क्रोध के वश में नहीं होता देवता उसी को ब्राह्मण समझते हैं । यदि आपको धर्म का यथार्थ

तत्त्व जानना हो तो मिथिला में धर्मव्याध के पास जाइए।
कौशिक भवाक् हो गए और धन को धिक्कारते हुए मिथिला
की ओर चले पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि धर्मव्याध
नाना प्रकार के पशुओं का मांस रखकर बेच रहा है। धर्म-
व्याध ने ब्राह्मण देवता को देखने ही मादर से उठकर बैठाया
और कहा—‘आपको एक ब्राह्मणी ने मेरे पास भेजा है।’
कौशिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने धर्मव्याध से
कहा—‘तुम इतने ज्ञानसंपन्न होकर ऐसा निकृष्ट कर्म क्यों
करते हो?’ धर्मव्याध ने कहा, ‘महाराज! यह पितृपरंपरा
से चला आता हुआ मेरा कुलधर्म है, अतः मैं इसी में स्थित
हूँ। मैं अपने माता पिता और प्रतियोगियों की सेवा करता हूँ,
देवपूजन और शक्ति के अनुसार दान करता हूँ, झूठ नहीं
बोलता, बेईमानी नहीं करता। जो मांस बेचता हूँ वह दूसरों
के मारे हुए पशुओं का होता है। मेरी वृत्ति भयकर भयंकर
है, पर किया क्या जाय? मेरे लिये वही निर्दिष्ट की गई है।
वही मेरा कुलोचित कर्म है, उसका त्याग करना उचित नहीं।
पर साथ ही सदाचार के आचरण में मुझे कोई बाधा नहीं।’
इसके उपरांत धर्मव्याध ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत इस
प्रकार सुनाया—‘मैं पूर्वजन्म में देवाव्याधो ब्राह्मण था। मैं
एक दिन अपने मित्र एक राजा के साथ शिकार में गया और
वहाँ जाकर मैंने एक भृगी के ऊपर तीर चलाया। पीछेब्रान
पड़ा कि भृगी के रूप में एक ऋषि थे। ऋषि ने मुझे शाप
दिया कि ‘तूने मुझे बिना अपराध मारा इससे तू भूदयोगिनी में
जाकर एक व्याध के घर उत्पन्न होगा।’

धर्मप्रत—वि० [सं०] धर्म का प्रत लेनेवाला। धर्मपरायण [को०]।

धर्मप्रता—सका श्री० [सं०] विषयरूपा के धर्म से उत्पन्न धर्म नामक
एक राजा की कन्या।

विशेष—वायुपुराण में आख्यान है कि इसने पातिव्रत्य की प्राप्ति
के लिये धार तप किया था। मरीचि ऋषि ने उसे पुष्पी पर
सब से बड़ी पतिव्रता देख उसके साथ विवाह किया था।

धर्मशास्त्रा—सका पु० [सं०] वह मकान जो पथिकों या यात्रियों के
ठिकने के लिये धर्मिय बना हो और जिसका कुछ माड़ा प्रादि
न लगाता हो। २. वह स्थान जहाँ पुण्य के लिये नियमपूर्वक
दान प्रादि दिया जाता हो। सत्र। ३. वह स्थान जहाँ धर्म
अधर्म का निर्णय हो। न्यायालय। विचारालय।

धर्मशासन—सका पु० [सं०] दे० धर्मशास्त्र [को०]।

धर्मशास्त्र—सका पु० [सं०] किसी जनसमूह के लिये उचित
आचार व्यवहार की व्यवस्था जो किसी महात्मा या आचार्य
की ओर से होने के कारण मान्य समझी जाती हो। वह यथ
जिसमें समाज के शासन के निमित्त नीति और सदाचार
संवधी नियम हो। जैसे, मानव धर्मशास्त्र।

विशेष—हिंदुओं के धर्मशास्त्र ‘स्मृति’ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन
में मनुस्मृति सबसे प्रधान समझी जाती है। मनु के अतिरिक्त
यम, वसिष्ठ, अत्रि, दंड, विष्णु, अगिरा, उल्लूक, बृहस्पति,
व्यास, आपस्तम्ब, योतम, कात्यायन, नारद, बाह्यवल्क्य,

पराशर, संवत्त, शाल और हारीत भी स्मृतिकार हुए हैं।
दे० ‘स्मृति’।

धर्मशास्त्री—सका पु० [सं० धर्मशास्त्रिन्] धर्मशास्त्र के अनुसार
व्यवस्था देनेवाला। धर्मशास्त्र जाननेवाला पंडित।

धर्मशील—वि० [सं०] धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला।

धर्मशीलता—सका श्री० [सं०] धर्मशील होने का भाव।
धर्मधारण की वृत्ति।

धर्मसंकट—सका पु० [सं० धर्मसंकट] विवेक की वह स्थिति जिसमें
किसी कार्य को करना भी उचित लगे और न करना भी
उचित। कार्य को करने की कठिनाई [को०]।

धर्मसंग—सका पु० [सं० धर्मसङ्ग] १. धर्मनुराग। धर्म से लगाव।
२. ढोंग [को०]।

धर्मसंगीति—सका श्री० [सं० धर्मसङ्गीति] १. धर्म के संबंध में वाद-
विवाद। २. बौद्धों का धर्मसम्मेलन [को०]।

धर्मसंध—सका पु० [सं० धर्म + सन्ध] धर्म का संगठन। धर्मसभा [को०]

धर्मसहिता—सका श्री० [सं०] विधि विधानों का समुच्चय, जिनकी
रचना मनु और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों ने की है [को०]।

धर्मसभा—सका श्री० [सं०] १. न्यायालय। कचहरी। वह स्थान
जहाँ बैठकर न्यायाधीश न्याय करे। अदालत। उ०—धर्मसभा
महं रामहि जानो। श्वान चलो निज पीर बलानो।—केशव
(शब्द०)। २. वह स्थान जहाँ धार्मिक विषयों की चर्चा या
उपदेश हो।

धर्मसमय—सका पु० [सं०] नियम या कानून की अनिवार्यता [को०]।

धर्मसहाय—सका पु० [सं०] धर्मकृत्यों में साथ देनेवाला [को०]।

धर्मसार—सका पु० [सं०] १. पुण्य कर्म। उत्तम कर्म। २. धर्मतत्व
[को०]।

धर्मसारी—सका श्री० [सं० धर्मशाला] धर्मशाला। उ०—राजा
इक पंडित पीरि सुन्हारी। ‘हूँट पेंड दे बसुवा हनकी तहाँ
रची धर्मसारी।—सूर (शब्द०)।

धर्मसावणि—सका पु० [सं०] पुराणों के अनुसार ग्यारहवें मनु।

धर्मशीलता—सका श्री० [सं० धर्मशीलता] दे० ‘धर्मशीलता’।
उ०—यह कवि धर्मशीलता तोरी। हमहूँ सुनी कृत पर त्रिय
चोरी।—मानस, ६।२२।

धर्मसुत—सका पु० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मसू—सका पु० [सं०] १. धर्मप्रेरक। २. धूमपाट पक्षी।

धर्मसूत्र—सका पु० [सं०] जैमिनि प्रणीत धर्मनिर्णय पर एक ग्रंथ।

धर्मसेतु—सका पु० [सं०] सेतु की तरह धर्म को धारण करनेवाला।

धर्मसेन—सका पु० [सं०] १. एक प्राचीन महात्माविर या बौद्ध
महात्मा जो ऋषिपत्तन (सारनाथ, काशी) सध के प्रधान थे।

विशेष—अनुराधापुर (सिंहवद्रोप) के राजा दुःश्यामिनी ने जब
महास्तूप की स्थापना की थी (ई० पू० १५७) तब ये बारह
हजार अनुचरों के साथ उपस्थित हुए थे।

२. जैनो के द्वादश भगविदों में से एक।

धर्मसेवन—सका पु० [सं०] धर्म का आचरण या पावन [को०]।

^१धर्मस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० धर्मस्कन्ध] धर्मस्तिकाय पदार्थ । (जैन) ।

धर्मस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माध्यक्ष । न्यायाधीश ।

विशेष—भारतीय प्रायों में लोक को व्यवस्थित करनेवाले नियम जिनका पालन राज्य करता था, धर्म ही कहलाते थे । कानून भी धर्म कहलाते थे । कानून धर्म से अलग नहीं माना जाता था ।

धर्मस्व^१—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक कार्य करनेवाली सत्त्वा या समाज [को०] ।

धर्मस्व^२—वि० धर्मकार्यों के लिये समर्पित (द्रव्य आदि) ।

धर्मस्थीय^१—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय ।

धर्मस्थाय^२—वि० धर्म विषयक । नियम या कानून संबंधी [को०] ।

धर्मस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मस्वामिन्] बुद्ध [को०] ।

धर्माग—संज्ञा पुं० [सं० धर्माग] बक । बगला (जिसका अंग धर्म के समान शुभ्र होता है) ।

धर्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अन्तर] भिन्न धर्म ।

धर्मांतरण—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अन्तरण] धर्म परिवर्तन । भिन्न धर्म स्वीकार करना [को०] ।

धर्माध—वि० [सं० धर्म + अध] धर्म में अध श्रद्धा रखनेवाला । कट्टर धार्मिक [को०] ।

धर्माशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

धर्माशु^१—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्माशु' । उ०—जयति धर्माशु संवत्स सपाति नवपञ्च लोचन दिव्य देह दाता ।—तुलसी (शब्द०) ।

धर्मा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धर्म' । उ०—कर्मा धर्मा स्त्रावग जैनी ।—घट०, पृ० २६३ ।

धर्मागम—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + आगम] धर्मग्रंथ [को०] ।

धर्माचरण—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + आचरण] धर्मानुसार आचरण । पुण्य कृत्य [को०] ।

धर्माचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म की शिक्षा देनेवाला गुरु । २. ऋग्वेदियों में उन ऋषियों में एक जिनके निमित्त तर्पण किया जाता है ।

धर्मातिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अतिक्रमण] धर्म का उल्लंघन । धर्म या धोचित्य का विरोध [को०] ।

धर्मात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०] ।

धर्मात्मा—वि० [सं० धर्मात्मन्] धर्मशील । धर्म करनेवाला । धार्मिक ।

धर्मादा—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + दाय] धर्म कार्य के लिये निकाला हुआ धन [को०] ।

धर्माधर्म—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधर्म] धर्म और अधर्म [को०] ।

धर्माधर्मविद्—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधर्म + विद्] धर्म और अधर्म का ज्ञाता । मीमांसक [को०] ।

धर्माधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ राजा व्यवहारों (मुकदमों) पर बिचार करता है । बिचारागार ।

धर्माधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म अधर्म की व्यवस्था देनेवाला । बिचारक । न्यायाधीश [को०] ।

धर्माधिकरणी—संज्ञा पुं० [सं० धर्माधिकरणिन्] दे० 'धर्माधिकरणिक' [को०] ।

धर्माधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मकृत्यों का निरीक्षण । २. न्याय व्यवस्था । ३. न्यायाधीश का पद [को०] ।

धर्माधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म अधर्म की व्यवस्था देनेवाला । बिचारक । न्यायाधीश । २. वह जो किसी राजा या बड़े आदमी की ओर से धर्मार्थ निकाले हुए द्रव्य को पात्रापात्र का बिचार करके बाँटने आदि का प्रबंध करता है । पुण्य जाते का प्रबंधकर्ता । दानाध्यक्ष ।

धर्माधिकृत—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधिकृत] धर्माध्यक्ष । [को०] ।

धर्माधिकृतान—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय [को०] ।

धर्माधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्माधिकारी । २. विद्वान् । ३. शिव ।

धर्मानुप्राणित—वि० [सं० धर्म + अनुप्राणित] धर्म से प्रभावित । धर्ममय । उ०—भारतीय प्रत्येक कार्य धर्मानुप्राणित होता है ।—उ० शास्त्र, पृ० १२७ ।

धर्मानुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माचरण ।

धर्मानुस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + अनुस्मृति] धर्म के विषय में बित्तम [को०] ।

धर्मापेक्ष^१—वि० [सं०] धर्मरहित । अन्यायपूर्ण [को०] ।

धर्मापेक्ष^२—संज्ञा पुं० १. अधर्म । २. अन्याय [को०] ।

धर्माभास—संज्ञा पुं० [धर्म + आभास] धर्म का भ्रम । श्रुति स्मृति से भिन्न शास्त्रों द्वारा निरूपित असद्धर्म [को०] ।

धर्माभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अभिनिवेश] धर्म का प्रवेक्ष । धर्म का ग्रहण । उ०—वह कहते हैं कि धर्मग्रह (धर्माभिनिवेश) दो प्रकार का है : सहज और विकल्पित ।—संस्कृत-प्रमि० प्र०, पृ० ३३६ ।

धर्मारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सपोवन । २. एक तीर्थ जिसके विषय में वराहपुराण में यह कथा लिखी है कि जब चन्द्रमा ने गुरुपत्नी तारा का हरण किया तब धर्म व्याकुल होकर एक सघन वन में घुस गया । उस वन का नाम ब्रह्मा ने धर्मारण्य रखा । ३. गया के अंतर्गत एक तीर्थस्थान । ४. कूर्मविभाग के मध्य भाग में एक देश (बृहत्संहिता) ।

धर्मार्थ—क्रि० वि० [सं०] धर्म के निमित्त । केवल धर्म या पुण्य के उद्देश्य से । परोपकार के लिये । जैसे,—उसने (१००) धर्मार्थ दिए हैं ।

धर्मावसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. साक्षात् धर्मस्वरूप । अत्यंत धर्मात्मा ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग सभोधन के रूप में छोटों की ओर से बड़ों के प्रति आदरार्थ होता है ।

२. धर्माधर्म का निर्णय करनेवाला पुरुष । न्यायाधीश । ३. युधिष्ठिर ।

धर्मावसथि—संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य विभाग का अधिकारी ।

विशेष—प्राणिक के समय में इसका कार्य यात्रियों तथा वैरागियों को बहुर में ठहरने के लिये स्थाव देना था ।

कारीगर तथा शिल्पी अपनी जिम्मेवारी पर रिश्तेदारों, साधुओं सन्यासियों तथा श्रोत्रियों को अपने मकान में बसाते थे। यही बात व्यापारियों को करनी पड़ती थी।

धर्मावस्थीयी—संज्ञा पुं० [सं०] पूण्य विभाग का अधिकारी। दे० 'धर्मावस्थी'।

धर्माश्रित—वि० [सं०] १ धर्मानुसारी। धर्मसम्मत। २ न्यायपूर्ण [को०]।

धर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन या चौकी जिसपर बैठकर न्यायाधीश न्याय करता है। उ०—हे प्रतिहारी, तू हमारा नाम लेकर पिशुन मंत्री से कह दे कि बहुत जागने से हममें धर्मासन पर बैठने की सामर्थ्य नहीं रही इसलिये जो कुछ काम काज प्रजासबधी हो, लिखकर हमारे पास यहीं भेज दे।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

धर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार छह द्रव्यों में से एक जो एक भस्वी पदार्थ है और जीव और पुद्गल की गति का आधार या सहायक होता है।

धर्मिणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पत्नी। २ रेणुका।

धर्मिणी^२—वि० धर्म करनेवाली।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग समस्त पदों में हो होता है, जैसे, सहधर्मिणी।

धर्मिणी^३—वि० [सं० धर्मिक] धर्मावरण करनेवाला। धार्मिक। उ०—बरनो राजकुंभर की बानी। धर्मिणी श्री पंडित जानी।—इंद्रा०, पृ० ६।

धर्मिष्ठ—वि० [सं०] धार्मिक। पूण्यात्मा। सदाचारी।

धर्मी^१—वि० [सं० धर्मिन्] [स्त्री० धर्मिणी] १ जिसमें धर्म हो। धर्म या गुणविशिष्ट। जैसे, प्रमवधर्मी। २. धार्मिक। पूण्यात्मा। ३ मत या धर्म को माननेवाला। जैसे, मित्रधर्मी।

धर्मी^२—संज्ञा पुं० १ धर्म का आधार। गुण या धर्म का आश्रय। जैसे द्रवत्व धर्म का आधार जल है। २ धर्मिन्मा मनुष्य। ३ विष्णु।

धर्मीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। नाटक का कोई पात्र या अभिनयकर्ता।

धर्मेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० धर्मेन्द्र] १ यमराज। २ युधिष्ठिर [को०]।

धर्मेयु—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवशी राजा रोद्राश्व का एक पुत्र।

धर्मेश, **धर्मेश्वर**—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज [को०]।

धर्मोत्तर—वि० [सं० धर्म + उत्तर] धर्म से परे। धर्म से बड़ा। महान्। देवी। उ०—है काम तुम्हारा धर्मोत्तर।—अपरा, पृ० १७८।

धर्मोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + उन्माद] धार्मिक या सांप्रदायिक कट्टरता या असहिष्णुता जनित पागलपन।

धर्मोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म की शिक्षा। वह कथन या व्याख्यान जो धर्म का तत्व समझाने या धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिये हो। २ धर्म की व्यवस्था। धर्मशास्त्र।

धर्मोपदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का उपदेश देनेवाला।

धर्मोपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

धर्म्य—वि० [सं०] जो धर्म के अनुकूल हो। धर्म या न्याययुक्त।

धर्म्यविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में जो विवाह गिनाए गए हैं उन में से ब्राह्म, दैव, धार्प, गाथवं और प्राजापत्य ये पांच धर्म्यविवाह कहलाते हैं।

धर्माट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'घड़घटाहट'। उ०—घोड़ों और सामान का बाहर निकलना या कि तबेला 'धरर धर्माट' करके गिर गया।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १, पृ० ३६।

धर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनिीत व्यवहार। ध्वनिय। धृष्टता। गुस्ताखी। संज्ञोच या गिष्टता का अभाव। २ असहनशीलता। सुनुकमिजाजी। ३ धैर्य का अभाव। धवीरता। वेस्यो। ४ शक्तिवधन। अशक्त होने या करने का भाव। बेकाम करने या होने का भाव। ५ रोक। दबाव। ६ नापद करने या होने का भाव। ७ नामर्द। नपुंसक। हिजडा। ८ हिंसा। जो दुखाने का कार्य। ९ पनादर। अपमान। हतक। १०. (स्त्री का) सतीत्वहरण।

धर्पक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दबानेवाला। दमन करनेवाला। २ अपमान करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। ३ असहनशील। ४. सतीत्वहरण करनेवाला। ध्वमिचारी। ५ ध्वमिनय करनेवाला। नकल करनेवाला। नट।

धर्पक^२—वि० १ दमन करनेवाला। २ अपमान या तिरस्कार करने वाला। ३ ध्वमिचारी। ४ डिडाई करनेवाला [को०]।

धर्पकारी—वि० [सं० धर्पकारिन्] [वि० स्त्री० धर्पकारिणी] १ दबाने या दमन करनेवाला। हंगनेवाला। नीचा दिखानेवाला। २. अपमान करनेवाला। ध्वज्जा करनेवाला।

धर्पकारिणी—वि० [सं०] जिसका सतीत्व नष्ट हुआ हो। अपती। ध्वमिचारिणी।

धर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धर्पणीय, धर्पित] १ अपनादर। अपमान। ध्वज्जा। २ दबोचना। धाकमण। दबान या दमन करने का कार्य। हंगने का कार्य। नीचा दिखाने का कार्य। ३ असहनशीलता। ४ एक अस्त्र का नाम। ५ स्त्रीप्रसंग। रति। ६. शिव।

धर्पणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपमानना। ध्वज्जा। अपमान। हतक। २ दबाने या हराने का कार्य। नीचा दिखाने का कार्य। ३ सतीत्वहरण। ४ सभोग। रति।

धर्पणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपती स्त्री। कुलटा [को०]।

धर्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपती स्त्री। कुलटा।

धर्पणीय—वि० [सं०] धर्पण के योग्य।

धर्पित^१—वि० [सं०] १ जिसका धर्पण किया गया हो। दबाया या दमन किया हुआ। परिभूत। हराया हुआ। २ जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित।

धर्पित^२—संज्ञा पुं० १. रति। मैथुन। २ अभिमान (को०)। ३. असहिष्णुता (को०)।

धर्पिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। ध्वमिचारिणी स्त्री [को०]।

धर्षी—वि० [सं० धर्षिन्] [वि० स्त्री० धर्षिणी] १ धर्षण करनेवाला ।
२. धर दबानेवाला । आक्रमण करनेवाला । दबोचनेवाला ।
३. हरानेवाला । ४. नीचा दिखानेवाला । ५. अपमान करने-
वाला । ५. सभोग करनेवाला (कौ०) ।

धलंठ—सका पुं० [सं० धलण्ड] अकोल का पेड़ । डेरा ।

धव—सका पुं० [सं०] १. एक जगली पेड़ जिसकी पत्तियाँ भ्रमरुव
या शरीफ की पत्तियों जैसी होती हैं । उ०—कुतक खिदर
धव काठरा, निदर पञ्चावण वेस ।—बाँकी० प्र०, भा० २,
पृ० ८६ ।

विशेष—इसकी छाल सफेद और चिकनी तथा हीर की लकड़ी
बहुत कड़ी और चमकीली होती है । फल छोटे छोटे होते हैं ।
इसकी कई जातियाँ होती हैं जो हिमालय की तराई से लेकर
दक्षिण भारत तक पाई जाती हैं । बड़ी जाति का जो पेड़
होता है उसे घोरा या बाकली कहते हैं । इसकी लकड़ी बहुत
मजबूत होती है और नाव, खेतों के सामान आदि बनाने के
काम में आती है । कोयला भी इसका बहुत अच्छा होता है ।
पत्तियों से चमड़ा सिन्नाया और कमाया जाता है । इसके पेड़
से एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छोट छापनेवाले काम
में लाते हैं । छोटी जाति का पेड़ विष्य पर्वत पर तथा दक्षिण
भारत की ओर होता है । धव के नाम से प्रायः यही अधिक
प्रसिद्ध है और दवा के काम में आता है । वैद्यक में धव चरपरा
कसेला, कफवातनाशक, पित्ताशक, दीपन, रुचिवर्धक और
पाण्डुरोग को दूर करनेवाला माना जाता है । पत्ती, फल और
जड़ तीनों दवा के काम में आते हैं ।

पर्या०—पिशाचवृक्ष । शकटाख्य । धुरधर । द्रवत । गौर ।
कषाय । मधुरत्वक् । शुष्कग । पादुवर । धवल । पादुर ।
घट । नदितर । स्थिर । पीतफल ।

२ पति । स्वामी । जैसे, माधव । ३ पुरुष । मंद । ४ धूर्त
आदमी । ५ एक वसु का नाम ।

धवई—सका स्त्री० [सं० धातकी, धावनी] एक पेड़ जो हिमालय से
लेकर सारे उत्तरीय भारत में अधिकता से होता है । दक्षिण में
यह कम मिलता है । इसे घाय भी कहते हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अनार की पत्तियों से मिलती जुलती
पर कुछ पोलावन लिए और खुरदुरी होती हैं । फल साल रस
के होते हैं और दवा तथा रेंगाई के काम में आते हैं । ये फूल
शिशिर से वसंत तक लगते हैं और इकट्ठे करके सुखाए जाते
हैं । प्रदर रोग में वैद्य लोग इन फूलों का काड़ा देते हैं । छाल
भी दवा के काम में आती है । वैद्यक में धवई या घाय
चरपरी, शीतल, कसेली, मदकारक, कड़ुई, रक्तप्रवाहिका,
तथा पित्त, तृषा विसर्प ग्रण, कृमि और अतिसार को दूर
करनेवाली मानी जाती है । पर और अगों की अपेक्षा फूलों
में अधिक गुण कहा जाता है । धवई के पेड़ से एक प्रकार का
गोंद भी निकलता है ।

पर्या०—घाय । धातकी । ताम्रजुग्गो । धानी । धावनी । धावु-
५-२७

पुष्पिका । वहिपुष्पी । अग्निज्वाला । सुभिक्षा । पार्वती ।
कुमुदा । सीधुपुष्पी । कुजरा । माद्यवासिनी । गुच्छपुष्पी ।
बह्निशिखा इत्यादि ।

धवणि^७—सका स्त्री० [हि०] दे० 'धवनी' । उ०—धवणि धवती
रह गई, बुझि गये अगार ।—कबीर प्र०, पृ० ७५ ।

धवनी^८—सका पुं० [हि०] दे० 'धावन' । उ०—पुण्यि रमन धवन
नहीं करिया । पैठि पताल नहीं बलि छलिया ।—कबीर बी०
पृ० २६९ ।

धवना^९—क्रि० सं० [हि० धौकना] धौकना । उ०—धवणि धवती
रहि गई बुझि गए अगार ।—कबीर प्र०, पृ० ७५ ।

धवनी^१—सका स्त्री० [सं० धमनी] लोहारों की धौकनी । भायी ।
उ०—भट्टो मोह कृशानु रवि धवनि स्वास मद दाह । निसि
दिन धन दरवी बरष क्रम कुट काल लोहाह ।—(शब्द०) ।

धवनी^२—सका स्त्री० [सं०] शालिपर्णी । सरिवन ।

धवर^३—सका पुं० [सं० धवल] एक पक्षी जिसका कंठ लाल और सारा
शरीर सफेद होता है ।

विशेष—भावप्रकाश में धवल पक्षी का मांस वातघ्न बताया
गया है ।

धवर^४^१—वि० [सं० धवस] सफेद । उजला ।

धवरहर—सका पुं० [सं० धवल + गृह] खंभे की तरह ऊपर
दूर तक गया हुआ मकान का एक भाग जिसपर चढ़ने के
लिये भीतर सीढ़ियाँ बनी हों । बरहरा । मोनार । उ०—
चढ़ि धवरहर विसोकि दक्षिण दिसि नुझ धौ पयिक कहाँ ते
भाए वे हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

धवरा^१—वि० [सं० धवस] [वि० स्त्री० धवरी] उजला । सफेद ।

धवराना^७—क्रि० सं० [!] स्तन पिसाना । उ०—पेट घरे जायो
पेछे, धवरायो मल घोय ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ९० ।

धवराहर—सका पुं० [हि० धवरहर] दे० 'धवरहर' । उ०—सात
खट धवराहर साजा ।—जायसी (शब्द०) ।

धवरी^१—वि० स्त्री० [हि० धवरा] सफेद । उजली ।

धवरी^२—सका स्त्री० १ धवर पक्षी की मादा । २. सफेद रंग की गाय ।

धवल^१—वि० [सं०] १. श्वेत । उजला । सफेद । २. निर्मल ।
भ्रूकामुक । ३. सुंदर । मनोहर ।

धवल^२—सका पुं० १. धव का पेड़ । २. चोनिया कपूर । ३. सिद्धर ।
४. सफेद मिर्च । ५. धवर पक्षी । सफेद परेवा । ६. भारी
बेल । महोक्ष । उ०—तू धवूँ गणपत नाम ले, जोति धवलो
ज्यार ।—बाँकी प्र०, भा० १, पृ० ३७ । ७. क्षुब्ध धव का
४५वाँ मेघ । ८. धजुन वृक्ष । ९. श्वेत कुष्ठ । सफेद कोढ़ ।
१०. एक राग जो भरत के मत से हिंडोल राग का आठवाँ
पुत्र माना जाता है । ११. सफेद रंग । श्वेत वर्ण (कौ०) ।

धवल^३—सका पुं० [सं०] महल । आराम करने का स्थान । निवास ?
उ०—गुरु बार सुभ जोग । राजा सपन्न धवस मनमोह ।
—पृ० २०, २४ । २८२ ।

धवलकौष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० धवलकौष्टिन्] वैश्यों की एक जाति ।
 धवलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम । धवलगिरि ।
 धवलगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १ धूवा से पुता हुआ कंघा-भवन । २.
 महल [को०] ।
 धवलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी । उजलापन ।
 धवलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सफेदी । उजलापन ।
 धवलना(५)—क्रि० सं० [सं० धवल] उजल करना । निखारना ।
 चमकाना । प्रकाशित करना । उ०—स्वामिकाज करिहों रन-
 रारी । जस धवलहों भुवन दस चारी ।—तुलसी (शब्द०) ।
 धवलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुक्ल पत्र । उजला पत्र । २. हस
 (जिसके पर सफेद होते हैं) ।
 धवलमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिया मिट्टी । डुब्दी ।
 धवलश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें पंचम और
 गंधार वजित हैं ।
 धवलहर(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धवलहर' । उ०—धणी बिहूणा
 धवलहर ठहि ठहि ठेर पिपाह ।—राम० धर्म०, पृ० ६८ ।
 धवलांग—संज्ञा पुं० [सं० धवलाङ्ग] हस ।
 धवला^१—वि० स्त्री० [सं०] सफेद । उजली ।
 धवला^२—संज्ञा स्त्री० १ सफेद गाय । २. गौर वर्णवाली स्त्री (को०) ।
 धवला^३—संज्ञा पुं० [सं० धवल] सफेद वेल ।
 धवला(५)^४—संज्ञा पुं० [देश०] लहंगा । उ०—लाला की मौसी
 धावेगी, धवला में सोंठि चुरावेगी ।—पोद्दार अभि० प्र०,
 पृ० ६२५ ।
 धवला(५)^५—संज्ञा पुं० [सं० धवल] १. सफेदी । श्वेतता । २.
 बुद्धावस्था । उ०—जय जोबन जासी धवला भासी तब करि
 बैठासी ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २३६ ।
 धवलार्द्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल + आर्द्धि (प्रत्य०)] सफेदी ।
 उजलापन ।
 धवलगिरि—संज्ञा पुं० [सं० धवल + गिरि] हिमालय पहाड़ की एक
 प्रख्यात चोटी ।
 धवलित—वि० [सं०] १ जो सफेद किया गया हो । जैसे, तुयार-
 धवलित शृंग । २. जो साफ भूक किया गया हो ।
 धवलिमा—संज्ञा पुं० [सं० धवलमिन्] १. सफेदी । श्वेतता । २.
 पीलापन । पांढर वर्ण [को०] ।
 धवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद गाय । २ एक रोग जिसमें बाल
 सफेद हो जाते हैं । ३ सफेद मिर्च ।
 धवलीकृत—वि० [सं०] जो सफेद किया गया हो ।
 धवलीभूत—वि० [सं०] जो सफेद हुआ हो ।
 धवलोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद ।
 धवस(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धवस' । उ०—यह कहि धुकार धवसन
 लगिय सत्तर सहस्र पलानियव ।—प० रासो, पृ० १३४ ।
 धवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धव' ।
 धवाणक—संज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

धवान(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुमा' । उ०—धवान दे दवान
 की कृपान हीय सज्जियो ।—सुमान०, पृ० ३० ।
 धवाना—क्रि० सं० [हिं० धावना का प्रे० रूप] दोड़ाना । उ०—(क)
 तहाँ सुधन्वा रथहि धवाई । अर्जुन दल बानन भरि सारि ।—
 रघुराज (शब्द०) । (ख) तिनके काज गहीर पठाए ।
 विलम करहु जिनि तुरत धवाए ।—सूर (शब्द०) ।
 धवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिरन के चमड़े का पत्रा (को०) ।
 धस—संज्ञा पुं० [हिं० धंसना (= पैठना)] १ जल घादि में प्रवेश ।
 डुबकी । गोता । उ०—(क) जो पय मिला महेसहि सेई ।
 भयो समुद मोही धस लेई ।—जायसी (शब्द०) । (ख)
 जस धस लोह समुद मरजोया ।—जायसी (शब्द०) ।
 (ग) तेहि का कहिय रहन कहें जो है प्रीतम लाग । जो
 वहि सुनै लेइ धस, का पानी का प्राग ।—जायसी (शब्द०) ।
 क्रि० प्र०—लेना ।
 २. एक प्रकार की जमीन या मिट्टी जो भुरभुरी होती है ।
 धसक^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में
 गले से निकलता है । २ सूखी खाँसी । ठसक ।
 धसक^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] किसी के लाभ या बढ़ती को
 देख दुःख से दब जाने की वृत्ति । डाह । ईर्ष्या ।
 धसक^३—संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] १ धसकने की प्रिया या
 भाव । २ डर । भय । दहशत । जैसे,—उनके मन में
 कुछ धसक बैठ गई ।
 धसकन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धसक' ।
 धसकना^१—क्रि० प्र० [हिं० धंसना] १ नीचे को धंस जाना ।
 नीचे को धसक जाना । दब जाना । बैठ जाना । उ०—(क)
 दोस्त पङ्क रेत में नए खोज या डार । धागे उठि पाछे
 धसकि रहे नितवन भार ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।
 (ख) तजो घोर धरणि धरनिधर धसकत धराधर घोर भार
 सहि न सकतु है ।—तुलसी (शब्द०) । २ किसी का
 लाभ या बढ़ती देख दुःख से दबना । डाह करना ।
 ईर्ष्या करना ।
 धसकना^२—क्रि० प्र० [हिं० धंसना] मन में भय उत्पन्न होना ।
 जो दहलना । उ०—गवनचार पदमावति सुना । उठा धसकि
 जिव भी सिर घुना ।—जायसी (शब्द०) ।
 धसका—संज्ञा पुं० [हिं० धसक] शोषाओं का एक रोग जो कफों
 में होता है । यह रोग खून से फैलता है ।
 धसना(५)^१—क्रि० प्र० [सं० धवसन] ध्वस्त होना । नष्ट होना ।
 मिटना । उ०—निज प्रातम प्रज्ञान ते हैं प्रतीत जग वेद ।
 धसै सुता के बोध ते यह भाखत मुमि वेद ।—निश्चल
 (शब्द०) ।
 धसना^२—क्रि० प्र० [हिं० धंसना] दे० 'धंसना' । उ०—उनके
 मग में जग जय मसका । उनके दग से कुल क्षय धसका ।—
 अर्चना, पृ० ४७ ।
 धसनि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धंसनि', 'धसन' ।

धसमसकना④—[हि० धसना + मसकना] धसमसाना । कपना ।
उ०—धसमसक धरणी कसक कूरम, ससक नासा सेस ।—
रघु० ६०, पु० २२० ।

धसमसाना④—क्रि० प्र० [हि० धंसना] धंस जाना । धरती में
समाना । उ०—मेरु धसमसे समुद्र सुखाई ।—जायसी (शब्द०) ।

धसरना—क्रि० प्र० [हि० धसना का धनु०] धंसना । प्रवेश करना ।
उ०—बर बारन ज्यों जल में धसरे । सत सत धनु बहुत दिशि
पय पसरे ।—नद० प्र०, पु० २८० ।

धसान^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धंसना] दे० 'धंसान' ।

धसान^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धशाणं] एक छोटी नदी जो पुरबी
मालवा और बुंदेलखंड से होकर बहती है ।

विशेष—पुरबी मालवा प्राचीन काल में दशाणं देश कहलाता
था और यह नदी भी उसी नाम से प्रसिद्ध थी ।

धसाना—क्रि० स० [हि० धंसाना] दे० 'धंसाना' ।

धसाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धंसाव] दे० 'धंसाना' ।

धसोरा④—सञ्ज्ञा पुं० [?] दोष ग्रन्थाय । धाँसी । उ०—हरे वन
बिराना धसोरा लगावै ।—चरनी०, पु० ६ ।

धह④—क्रि० वि० [सं० धावन्] दौड़ाकर । उ०—धह मणि ग्रंथि
मगल पवन । सब होइ जोजन समथ ।—पु० रा०, २५।५१ ।

धहधहाना—क्रि० प्र० [धनु०] धक्कना । उ०—हाँ धक्क तक एक
कलेजे में दुख की भाग धहधहा रही है, धक्क तक एक जन
की भाँखों से भाँसू बहता है, वह देवबाला के लिये बावला
बन रहा है ।—ठेठ०, पु० ७६ ।

धहलना④—क्रि० प्र० [हि० दहलना] दहलना । डरना । उ०—
इम उलट कमला कदम प्रायो, पुरी लक प्रजास । तो लकाल
जो लकाल कपडर धहलियों लकाल । रघु० ६०, पु० १६४ ।

धांधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धान्धा] इलायची ।

धाँक—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति जिसकी रहन सहन
भीखों से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

धाँख④—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धाम] उमग । उ०—रिणवास पधारे
सुर कज सारे मग अपारे धाँख घरे ।—रघु० ६०, पु० २३५ ।

धाँगड़—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ एक धनायं जंगली जाति जो विष्य
और कैमोर पहाड़ियों पर रहती है । २. एक जाति जो
कुएँ और तालाब खोदने का काम करती । उ०—भर कठ
धाँगड़ देखि प्रीय जाइ तें । गोरु मारि मिसिमल कए पाइतें ।
—कीर्ति०, पु० ६० ।

धाँगर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धाँगड़' ।

धाँदल④—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाँदल' । उ०—मुल्का पो चढ़
के दुपमन धाँदल मँचाया देखो ।—दक्खिनी०, पु० २६६ ।

धाँधना—क्रि० स० [ध्या०] १. बंद करना । भेडना । उ०—(क)
बारण पार्श्वहि भगन बाँधी । राख्यो ताहि कोठरी बाँधी ।—
रघुराज (शब्द०) । (ख) पुनि सकरी पट भगनि बाँधी ।
भाग लगायो कोठरि बाँधी ।—कबीर (शब्द०) । २. बहुत
अधिक खा लेना । ठूसना ।

धाँधल—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] १. ऊँचम । उपद्रव । नटखटी ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

२. फरेब । धोखा । दगा । ३. बहुत अधिक जल्दी । जैसे,—पुम
तो धाते ही खाने के लिये धाँधल मचाने लगते हो ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

धाँधलपन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धाँधल + पन (प्रत्य०)] १. पाओपन ।
सरारत । २. धोखेबाजी । दगाबाजी ।

धाँधला④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धाँधल'—२ । उ०—धारे ऊहड़
धाँधला साम तणै छल सार ।—रा० ६०, पु० ७१ ।

धाँधली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धाँधल] १ गढबड़ी । अव्यवस्था । २.
धोखेबाजी । ३. मनमानी । ४. धनाचार । उपद्रव । ५.
नीधता । जल्दबाजी ।

धाँधली^२—वि० १ ऊँचम करनेवाला । उपद्रवी । २. धूर्त ।
धोखेबाज ।

धाँधाली—वि० [हि० धाँधल + ई (प्रत्य०)] १. उपद्रवी । खरीर ।
पाथी । नटखट । २. धोखेबाज । दगाबाज ।

धौम④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धाम' । उ०—भवसथ, वसति, रु
भावसति, धाम, कुंज सुषवास ।—नंद० प्र०, पु० १०८ ।

धौय—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाय' ।

धौस—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] सूखे तंबाकू या मिर्च आदि की तेज गंध
जिससे खाँसी घाने लगती है ।

धौसना—क्रि० प्र० [धनु०] पशुओं का खाँसना ।

धौसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] धोटे की खाँसी ।

धा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा । २. बृहस्पति ।

धा^२—वि० धारक । धारण करनेवाला ।

धा^३—प्रत्य० तरह । भाँति । प्रकार । जैसे, नवधा भक्ति । उ०—
देखि देही सबै कोटिधा के मनो । जीव जीवेश के बीच माया
मनो ।—केशव (शब्द०) ।

धा^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धैवत] संगीत में 'धैवत' शब्द या स्वर का
सकेत ।

धा^५—सञ्ज्ञा पुं० [धनु०] तबले का एक बोल । जैसे, धा धा धिनता ।

धा^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाय' ।

धा^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धव' ।

धाड़ी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धाय] दे० 'धाय' । उ०—हाँ तो धाड़
तिहारे सुत की मया करत ही रहियो ।—पोद्दार अभि० प्र०,
पु० १५७ ।

धाड़ी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धव] धव का पेड़ । उ०—राजति है यह ज्यों
कुसुमग । धाड़ विराजति है संग धन्या ।—केशव (शब्द०) ।

धाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धाय] दे० 'धाय' ।

धाउ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धाव] नाच का एक भेद । उ०—बहु उठपति
तियेगपति मझास । भरु लाग धाउ रायउ रंगल ।—केशव
(शब्द०) ।

धाका^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धावन] वह भादमी जो आवश्यक कामों के लिये बीड़ाया जाय। हरकारा। उ०—नाऊ वारी महुर सब धाऊ धाय समेत। नेगचार पाए भ्रमित रह्यो जासु जस हेव। —रघुराज (शब्द०)।

धाऊ^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धातकी] धव का पेठ।

धाक^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धृष। २. माहार। भोजन। मात। ३. भस्त्र। घनाज। ४. स्तम्भ। खमा। ५. धाधार। ६. हीज (को०)। ७. ब्रह्मा (को०)।

धाक^४—सञ्ज्ञा स्त्री० १. रोब। दबदबा। धातक। उ०—(क) घरम धुरंधर घरा में धाक धाए ध्रुव ध्रुव सों समुद्रत प्रताप सर्व काल है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) महाधीर शत्रुसास नदराय भाव सिंह तेरी धाक भरिपुर जात भय भोय से।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—धाक जमाना=प्रभाव होना। रोब या दबदबा होना। धाक बांधना—रोब या दबदबा होना। धातक छाना। जैसे,—शहर में उसके बोलने की धाक बँध गई। धाक बांधना=रोब जमाना। जैसे,—ये जहाँ जाते हैं वहाँ धाक बांध देते हैं। धाक होना=धातक होना। प्रभाव होना। रोब होना। उ०—देश देश में हमारी धाक थी।—चुमते० (सू०), पृ० २।

२. प्रसिद्धि। शोहरत। शोर। उ०—सूरदास प्रभु खात ग्वाल संग ब्रह्मलोक यह धाक।—सूर (शब्द०)।

धाक^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ठाक] ठाक। पलाश।

धाकना^६—क्रि० प्र० [हि० धाक+ना (प्रत्य०)] धाक जमाना। रोब जमाना। उ०—दास तुलसी के विरुद्ध बरतन बिदुष बीर विरुद्ध बर बैरि धाके।—तुलसी (शब्द०)।

धाकर^७—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. कान्यकुब्ज और सरस्वती नदी के बीच में वह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलों के मतर्गत न हो और इससे नीचा समझा जाता हो। २. राजपूतों की एक जाति जो आगरे के आसपास पाई जाती है। ३. पंजाब का एक धान जो बिना पानी के पैदा होता है।

धाकरा^८—वि० दोगला।

धाका^९—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धाक] दे० ‘धाक’।

धाख्रा^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पलाश का पेड़।

धागा^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० तागा] बटा हुआ सूत। डोरा। तागा।

यौ०—धागा गंडा=तन मंत्र से पवित्र किया हुआ वह डोरा जो हाथ की कलाई में बांधा जाता है। उ०—उसके माता पिता ने बड़े बड़े गुणी तथा पंडितों को बुलाकर धागा गंडा बंधवाया।—कबीर मं०, पृ० ४७७।

मुहा०—धागा भरना=कपड़े के छेद आदि में तागे भरकर उसे रफू करना। धागे धागे करना=किसी कपड़े के बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े करना। बिघड़े बिघड़े करना।

धाङ्गा^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] मृदंग का धमाका। उ०—शोर हँसी हुल्लड़, हुल्लड़ग। धमक रहा धाङ्गा मृदंग।—ग्राम्या, पृ० ४६।

धाजा^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘धजा’। उ०—दिवि दिप्ति धाजा सेत। सब मर्म होत निकेत।—सं० दरिया, पृ० ८।

धाङ्गा^{१४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. दे० ‘डाङ्’। २. दे० ‘दहाङ’। ३. दे० ‘डाङ्’।

मुहा०—धाङ मारकर=जोर से चिल्लाकर।

धाङ्गा^{१५}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धार] १. डाकुओं का धाक्रमण।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. जल्दी। शीघ्रता।

मुहा०—धाङ पड़ना=बहुत जल्दी होना। बहुत शीघ्रता होना।

जैसे,—ऐसी कीन सी धाङ पड़ी है जो अभी उठकर चले।

३. लुटेरों का समूह। उ०—धाङ्गे पुकार पड साखि धाङ। रवि उदय भस्त्रलग पंच राहु।—रा० रू०, पृ० ७३। ४. जरा। कुड। गिरोह। जैसे, धाङ की धाङ बदर भा गए।

धाङना^{१६}—क्रि० प्र० [हि० दहाङना] दे० ‘दहाङना’।

धाङना^{१७}—क्रि० प्र० [हि० धाङ] डाका मारना। उ०—दिन दिन धाङ दीडती, दूधै साँवण मास।—राम० धर्म०, पृ० २५६।

धाङवी^{१८}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धाङ] डाकू। उ०—रामदास जी महाराज के वास्ते एक दुष्ट धाङवी ने बुरी नजर से देखा कि कहीं चले गए इनको रास्ते के बीच ही खोंस लेऊँगा।—राम० धर्म०, पृ० २८८।

धाङसा^{१९}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘धारस’।

धाङा^{२०}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘धाङ्’-१। उ०—उ०—परा सखि रात को धाङा।—घट०, पृ० ३०६।

धाङी^{२१}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धाङ] भारी लुटेरा या डाकू।

धाणक^{२२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का परिमाण। २. एक धनार्थ छोटी जाति।

धाणा^{२३}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘धाङ’। उ०—कर कर बाढा कपटरा धाणा पाडण धाम।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ७।

धात^{२४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धातु] दे० ‘धातु’। उ०—मर्दनीक मर्दन करे, बड़े धात तन बेल।—पृ० १०, ६। १३०।

धात^{२५}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धातु (वेद्यक)] उ०—इस धात उन्न खरप कीता आखिर फिर पछताया।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

धातकी^{२६}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. धव का फूल। २. एक प्रकार का फल जो सारे भारत में होता है और जिसके फूलों का व्यवहार रंगाई के काम में होता है।

विशेष—साल में एक बार इसके पत्ते झड़ जाते हैं।

धातविक^{२७}—वि० [सं०] १. धातु से निर्मित। २. धातु से संबंधित [को०]।

धाता^{२८}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धातु] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। महादेव। ४. भृगुमुनि के पुत्र का नाम। ५. ४६ वायुर्गों में से एक। ६. शेषनाग। ७. १२ सूर्यों में से एक। ८. ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम। ९. विधाता। विधि। १०. साठ संवत्सरों में से एक। ११. टण के आठवें भेद की सञ्ज्ञा (II।I।)। १२।

स्रष्टा (को०) । १३. रक्षक । धारक (को०) । १४. धारमा (को०) ।
१५. सप्तवि (को०) । १६. जार । उपपत्ति (को०) । १७.
प्रवधक । व्यवस्थापक (को०) । १८. पोषक (को०) ।

यौ०—धातापुत्र = सनस्कृमार ।

धाता^२—वि० १. पालक । पालनेवाला । २. रक्षक । रक्षा करने-
वाला । ३. धारण करनेवाला ।

धातापुष्पिका—सका स्त्री० [सं० धातृ + पुष्पिका] धातकी [को०] ।

धातापुष्पी—सका स्त्री० [सं० धातृ + पुष्पी] धातकी [को०] ।

धातु^१—सका स्त्री० [सं०] १. वह मूल द्रव्य जो अपारदर्शक हो, जिसमें
एक विशेष प्रकार की चमक हो, जिसमें से होकर ताप और
विद्युत् का संचार हो सके तथा जो पीटने पर चटाई के रूप
में खींचने से खंडित न हो । एक खनिज पदार्थ ।

विशेष—प्रसिद्ध धातुएँ हैं—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा
और राँगा । इन धातुओं में मुख्य होता है, यहाँ तक कि राँगा
जो बहुत हलका है वह भी पानी से सात गुना अधिक घना या
भारी होता है । ऊपर लिखी धातुओं में केवल सोना,
चाँदी और ताँबा ही विशुद्ध रूप में मिलते हैं, इससे इन
पर बहुत प्राचीन काल में ही लोगो का ध्यान गया । कहीं
कहीं, विशेषतः उत्कापिठों में, लोहा भी विशुद्ध रूप में मिलता
है । युरोपियों के जाने के पहले अमेरिकावाले उत्कापिठों के
लोहे के प्रतिरिक्त और किसी लोहे का व्यवहार नहीं जानते
थे । सीसा और राँगा विशुद्ध धातु के रूप में प्रायः नहीं
मिलते, बल्कि खनिज पिठों की गलाकर साफ करने से निकलते
हैं । राँगा, सीसा, जस्ता आदि शुद्ध रूप में न मिलनेवाली
धातुओं का ज्ञान लोगों की कुछ काल पीछे, जब वे मिश्र धातु
आदि बनाने लगे, तब हुआ । बहुत दिनों तक लोग पीतल तो
बना लेते थे पर जस्ते की अच्छी तरह नहीं जानते थे । यही
हाल राँगे का भी सम्भिए । पारे की भी लोग बहुत दिनों से
जानते हैं । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पारा
शुद्ध धातु के रूप में भी बहुत मिलता है । पारा प्रघट्टव
प्रवस्था में मिलता है इसी से युरोप में बहुत दिनों तक लोग
उसे धातुओं में नहीं गिनते थे । पीछे मालूम हुआ कि वह
सरदी से जम सकता है और उसका पत्तार बन सकता है ।
मूल धातुओं के योग से मिश्र धातुएँ बनती हैं—जैसे ताँबे और
राँगे के योग के काँसा आदि । इनके प्रतिरिक्त अब प्लु-
मिनियम, प्लेटिनम, निकल, कोबाल्ट आदि बहुत सी नई
धातुओं का पता लगा है । इस प्रकार धातुओं की संख्या अब
बहुत हो गई है । रेडियम नामक धातु का पता लगे अभी थोड़े
ही दिन हुए हैं ।

यद्यपि साधारणतः धातु उन्हीं द्रव्यों को कहते हैं जो पीटने से
बिना खंडित या चूर हुए बढ़ सकें, तथापि अब धातु शब्द के
अंतर्गत चूर होनेवाले द्रव्य भी लिए जाते हैं और अर्ध-
धातु कहलाते हैं, जैसे सल्विया, हरताल, सुरमा, सज्जीसार
इत्यादि । इस प्रकार क्षार उत्पन्न करनेवाले मूल पदार्थ
भी धातु के अंतर्गत आ गए हैं । ऊपर कहा जा चुका है कि
धातुओं की गणना मूल द्रव्यों में है । आधुनिक रसायन

शास्त्र में मूल द्रव्य उसको कहते हैं जिसका विश्लेषण
करने पर किसी दूसरे द्रव्य का योग न मिले । इन्हीं मूल द्रव्यों
के अणुयोग से जगत् के भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं । आज तक
१०० से अधिक मूल द्रव्यों का पता लग चुका है जिनमें से
गंधक, फास्फोरस, अम्लजन, उज्ज्वल, इत्यादि १९ की गणना
धातुओं में नहीं हो सकती बाकी सब धातु ही माने जाते हैं ।

तबे हुए लोहे, सीसे, ताँबे आदि के साथ जब अम्लजन नामक
वायव्य द्रव्य का योग होता है तब वे विकृत हो जाते हैं
(मुरखा इसी प्रकार का विकार है) । विकृत होकर जो
पदार्थ उत्पन्न होता है, उसे अस्म या क्षार कह सकते हैं,
यद्यपि वैद्यक में प्रचलित अस्म और दूसरे प्रकार से प्राप्त
द्रव्यों को भी कहते हैं । वैसी वैद्य अस्म, क्षार और लवण मे
प्रायः भेद नहीं करते, कहीं कहीं तीनों शब्दों का प्रयोग वे एक
ही पदार्थ के लिये करते हैं । पर आधुनिक रसायन में क्षार
और अम्ल के योग से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनको
लवण कहते हैं । इस प्रकार आजकल वैज्ञानिक व्यवहार में
लवण शब्द के अंतर्गत तृतिया, हीरा, कसीस आदि भी आ
जाते हैं । ताँबे के चूरे को यदि हवा में (जिसमें अम्लजन
रहता है) तपा या गलाकर उसमें थोड़ा सा गंधक का
तेजाब डाल दें तो तेजाब का अम्ल गुण नष्ट हो जाएगा
और इस योग से तृतिया उत्पन्न होगा । अतः तृतिया भी
लवण के अंतर्गत हुआ ।

इधर के वैद्यक के ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, लोहा,
सीसा और जस्ता ये सब धातु माने गए हैं । सोनामाखी,
रूपामाखी, तृतिया, काँसा, पीतल, सिंदूर और शिलाजतु ये
सात उपधातु कहलाते हैं । पारे को रस कहा है । गंधक,
ईशुर, अन्नक, हरताल, मैनसिल, सुरमा, सुहागा, रावटी,
चुबक, फिटकरी, गेरू, खड़िया, कसीस, खपरिया, बालू,
मुरदासख, ये सब उपरस कहलाते हैं । धातुओं के अस्म का
सबन वैद्य लोग अनेक रोगों में कराते हैं ।

२. शरीर को धारण करनेवाला द्रव्य । शरीर को बनाए रखने-
वाले पदार्थ ।

विशेष—वैद्यक में शरीरस्थ सात धातुएँ मानी गई हैं—रस,
रक्त, मांस, मेद, अस्थिमज्जा और शुक्र । सुश्रुत में इनका
विवरण इस प्रकार मिलता है । जो कुछ खाया जाता है
उससे जो द्रव रूप सूक्ष्म सार बनता है वह रस कहलाता है
और उसका स्थान हृदय है जहाँ से वह धमनियों के द्वारा
सारे शरीर में फैलता है । यही रस अशुद्ध अवस्था में श्लेष्म
(पित्त के कार्य) के साथ मिश्रित होकर लाल रस का
हो जाता है और रक्त कहलाता है । रक्त से मांस, जो
से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र
बनता है । वात, पित्त और कफ की भी धातु सहा है ।

३. बुद्ध या किसी महात्मा की अस्थि आदि जिसे बौद्ध लोग
हिम्ने में बंद करके स्थापित करते थे ।

यौ०—धातुगर्भ ।

४. शुक्र । वीर्य ।

मुहा०—धातु गिरना=पेशाब के साथ या यों ही वीर्य गिरने का रोग होना । प्रमेह होना ।

धातु^३—सङ्घा पुं० १ भूत । तत्त्व । उ०—जाके उदित नचत नाना विधि गति भपनी भपनी । सूरदास सब प्रकृति धातुमय भति विचित्र सजनी ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—पञ्चभूतों और पञ्चतन्मात्र को भी धातु कहते हैं । वीर्यों में झठारह धातुएँ मानी गई हैं—चक्षुधातु, घ्राणधातु, श्रोत्रधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, स्थातव्यधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञान धातु, घ्राणविज्ञानधातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु, मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु ।

२ शब्द का मूल । क्रियावाचक प्रकृति । वह मूल जिससे क्रियाएँ बनी हैं या बनती हैं । जैसे, संस्कृत में स, क, घृ इत्यादि (व्याकरण) ।

विशेष—यद्यपि हिंदी व्याकरण में धातुओं की कल्पना नहीं की गई है, तथापि की जा सकती है । जैसे, करना का 'कर' हंसना का 'हंस' इत्यादि ।

३ परमात्मा ।

धातुकाक्ष—सङ्घा पुं० [सं० धातु + काल] इतिहास में वह युग जब मनुष्य ने अपने विकासक्रम में धातु का उपयोग करना सीखा । धातुयुग । उ०—यह जातियी पाषाणकाल के उत्तरकाल में से धातुकाल तक पहुँच गई थीं ।—प्रा० भा० प० (भू०), पृ० ग ।

धातुकाशीश—सङ्घा पुं० [सं०] कसीस ।

धातुकासीस—सङ्घा पुं० [सं०] कसीस ।

धातुकुशल—सङ्घा पुं० [सं०] धातु के कार्य में निपुण [को०] ।

धातुक्षय—सङ्घा पुं० [सं०] १. खाँसी का रोग जिससे शरीर क्षीण हो जाता है । २ प्रमेह आदि रोग जिसमें शरीर से बहुत वीर्य निकल जाता है । क्षयरोग ।

धातुगर्भ—सङ्घा पुं० [सं०] वह कशूरेदार डिब्बा या पात्र जिसमें बौद्ध लोग बुद्ध या अपने दूसरे भारी साधु महात्माओं के दाँत या हड्डियाँ धाँधि रखते हैं । देहगोप ।

धातुगोप—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'धातुगर्भ' ।

धातुघ्न—सङ्घा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिससे शरीर का धातु नष्ट हो । जैसे, काँजी, पारा आदि ।

धातुचैतन्य—वि० [सं०] धातु (वीर्य) को उत्पन्न या चैतन्य करनेवाला । जिससे वीर्य बढ़े ।

धातुज—सङ्घा पुं० [सं०] खान या पर्वत से उत्पन्न तेल [को०] ।

धातुद्रावक—सङ्घा पुं० [सं०] सोहागा, जिसके डालने से सोना धाँधि गल जाता है ।

धातुनाशक—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'धातुघ्न' ।

धातुप—सङ्घा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर में का वह रस या पतला धातु जो भोजन के उपरांत तुरंत ही तैयार होता है और जिससे शेष धातुओं का पोषण होता है ।

विशेष—दे० 'धातु' ।

धातुपाक—सङ्घा पुं० [सं० धातु + पाक] शुक्रजन्य एक रोग जिसमें रोग की वृद्धि के साथ साथ बख क्षीण होता जाता है । उ०—धातु पाक कहिए उत्तरोत्तर रोग की वृद्धि और बख की हानि होकर शुक्रादि धातु सहित मूत्रादिको का जो पाक होय उसे धातुपाक कहते हैं ।—माधव०, पृ० २८ ।

धातुपाठ—सङ्घा पुं० [सं०] पाणिनि की व्याकरणिक पद्धति पर निमित्त धातुओं की सूची ।

विशेष—इन धातुओं की रचना समवत्त. पाणिनि ने ही अपने सूत्रों के परिशिष्ट के रूप में की है ।

धातुपुष्ट—वि० [सं०] वीर्य को गाढ़ा करनेवाला । जिससे वीर्य गाढ़ा होकर बढ़े ।

धातुपुष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं०] धातुओं की पुष्टि । धातुपोषण [को०] ।

धातुपुष्पिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] घब का फूल ।

धातुपुष्पी—सङ्घा स्त्री० [सं०] घब का फूल ।

धातुप्रधान—सङ्घा पुं० [हि०] वीर्य ।

धातुभृत्—सङ्घा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।

धातुभृत्^२—वि० जिससे धातु का पोषण हो ।

धातुवैरी—सङ्घा पुं० [सं० धातुवैरिन्] गंधक ।

धातुमत्ता—सङ्घा स्त्री० [सं०] धातुमान् होने का गुण या भाव [को०] ।

धातुमय—वि० [सं०] खनिज पदार्थों से परिपूर्ण । जिसमें खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो [को०] ।

धातुमर्म—सङ्घा पुं० [सं०] कच्ची धातु को साफ करना, जो ६४ कलाओं के अंतर्गत है । धातुवाद । उ०—सूचिक्रम धातुमर्म सूत्र श्रीठनोसिद्ध ।—विभ्राम (शब्द०) ।

धातुमल—सङ्घा पुं० [सं०] १ वैद्यक के अनुसार कफ, पित्त, पसीन, नाखून, बाल, माँस या कान की मेल आदि जिसकी सृष्टि किसी धातु के परिपक्व हो जाने पर उसके बचे हुए, निरर्थक अंश या मल से होती है । २ सीसा [को०] ।

धातुमाक्षिक—सङ्घा पुं० [सं०] सोनामक्खी नाम की उपधातु ।

धातुमान्—वि० [सं० धातुमत्] जिसमें या जिसके पास धातुएँ हो [को०] ।

धातुमारिणी—सङ्घा स्त्री० [सं०] सुहागा ।

धातुमारी—सङ्घा पुं० [सं० धातुमारिन्] गंधक [को०] ।

धातुयुग—सङ्घा पुं० [सं० धातु + युग] दे० 'धातुकाल' ।

धातुराग—सङ्घा पुं० [सं०] धातुओं से निकला हुमा रंग । जैसे, हंगुर, गेरू, मैन्सिल आदि । उ०—सिय भग सिले धातुराग सुमननि भूषन विभाग तिलक करनि क्यों कहाँ कलानिधान की ।—तुलसी (शब्द०) ।

धातुराजक—सङ्घा पुं० [सं०] शुक्र या वीर्य जो शरीर के सब धातुओं में श्रेष्ठ माना जाता है ।

धातुरेचक—वि० [सं०] वीर्य को बढ़ानेवाला । जो वीर्य को बढ़ाकर विकास दे ।

धातुवर्द्धक, धातुवर्धक—वि० [सं०] वीर्य को बढ़ानेवाला। जिससे वीर्य बढ़े।

धातुवल्गु—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

धातुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ चौसठ कलाओं में से एक, जिसमें कच्ची धातु को साफ करते, तथा एक में मिली हुई अनेक धातुओं को मलग मलग करते हैं। २. रसायन बनाने का काम। ३. तबि से सोना बनाना। ४. कीमियागिरी। उ०—धातुवाद निरुपाधि सब सद्गुरु लाभ सुनीत। देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे समीत।—तुलसी (शब्द०)।

धातुवादी—संज्ञा पुं० [सं० धातुवादिन्] रसायन की सहायता से सोना या चाँदी बनानेवाला। कारवमी। रसायनी। कीमियागर।

धातुवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] धातुवैरिन्] गधक।

धातुशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कसीस। २ सीसा।

धातुशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा [को०]।

धातुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा।

धातुसंभव—संज्ञा पुं० [सं० धातुसम्भव] सीसा [को०]।

धातुसाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] धातु, पित्त, कफ की सम्यक् अवस्था। अन्ध्रा स्वास्थ्य [को०]।

धातुस्तम्भक—वि० [सं० धातुस्तम्भक] वीर्य को रोकनेवाला। जिससे वीर्य का स्तम्भ हो और वह देर में स्थित हो।

धातुह्न—संज्ञा पुं० [सं०] गधक।

धातू—संज्ञा स्त्री० [सं० धातु] दे० 'धातु'।

धातूपल—संज्ञा पुं० [सं०] खरिया मिट्टी। खरी। दुधिया या दुब्दी।

धातुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार।

धातुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव के फूल।

धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव के फूल।

धात्र—संज्ञा पुं० [सं०] पात्र। धरतन।

धात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धाँवला।

धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ माता। माँ। २ वह स्त्री जो किसी शिशु को दूध पिलाने और उसका लालन पालन करने के लिये नियुक्त की जाय। दाई। उ०—धात्री कहिए धाँवले धात्री धाय बखान।—अनेकार्य०, पृ० १३६। ३ गायत्री स्वरूपिणी भगवती। ४ गंगा। ५ धाँवला। ६ भूमि। पुष्पी। ७ सेना। फौज। ८ गाय। ९ धार्या छंद का एक भेद जिसमें १६ गुरु और १६ लघु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीकर्म—संज्ञा पुं० [सं० धात्रीकर्मन्] धाय का काम। दाई का काम [को०]।

धात्रीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ तालीस पत्र। २ धाँवले की पत्ती।

धात्रीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। धाय का लड़का।

धात्रीफल—संज्ञा पुं० [सं०] धाँवला। धामला।

धात्रीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसकी सहायता से दाह्या गम्बती स्त्रियों को प्रसव कराती और प्रसूता तथा शिशु की

रक्षा आदि करती हैं। लड़का जनाने और उसे पालने आदि की विद्या।

धात्रेयिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई। [को०]।

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई।

धात्वर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धातु से निकलनेवाले (किसी शब्द के) अर्थ। मूल और पहला अर्थ।

धात्वोय—वि० [सं०] १. धातुनिमित्त। २. धातु से संबंधित [को०]।

धाधक हाहूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] कष्ट। पीड़ा। हाहाकार। उ०—बड़ेउ कमठ कहे दाहूँ कराहूँ। चकाचाक भा धाधक हाहूँ।—हंदा०, पृ० ६८।

धाधना—क्रि० स० [देश०] देखना।

धाधिन—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल के धजने का एक स्वर या ठाल। उ०—उड़ रहा ढोल धाधिन, धाधिन।—ग्राम्या, पृ० ३१।

धानंतर—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्तरि] दे० 'धन्वन्तरि'। उ०—लखी रूप हरि भगति, धरम हिंदु धानतर।—रा० ६०, पृ० १८०।

धान—संज्ञा पुं० [सं० धान्य] तृण जाति का एक पौधा जिसके बीज की गिनती अन्धे अन्नों में है। धालि। व्रीहि।

विशेष—भारतवर्ष तथा आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में यह जंगली होता है। इसकी बहुत अधिक खेती भारत, चीन, बर्मा, मलाया, अमेरिका (संयुक्त राज्य और ब्रिजिल) तथा थोड़ी बहुत इटली और स्पेन आदि यूरोप के दक्षिणी भागों में होती है। इसके लिये तर जमीन और गरमी चाहिए। यह सभार के उन्हीं गरम भागों में होता है जहाँ वर्षा अच्छी होती है या सिंचाई के लिये खूब पानी मिलता है। धान की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आ रही है इसी से उसके अनेक भेद हो गए हैं।

ऋग्वेद में धाना और धान्य शब्द आए हैं। धाना शब्द का अर्थ सायण ने कृता दुग्धा जो किया है, पर 'धान्य' का अर्थ दूसरा नहीं किया है। इसके प्रतिरिक्त भयवैवेद, शांखायन ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन श्रौतसूत्र इत्यादि में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। पर कहीं कहीं धान्य शब्द अन्न-मात्र के अर्थ में भी है। तैत्तिरीय संहिता, वाजसनेय संहिता आदि में व्रीहि शब्द बार बार आया है। कृष्णयजुर्वेद में शुक्ल और कृष्ण व्रीहि का उल्लेख है। फारसी में भी 'विरज' शब्द चावल के लिये वर्तमान है जो निश्चय ही व्रीहि से सबंध रखता है। उससे स्पष्ट है कि प्राचीन धार्यों को धान का पता उस समय भी था जब उनका विस्तार मध्य एशिया तक था। ईसा से २८०० वर्ष पूर्व शिवनग राजा के समय में चीन में एक द्योहार मनाया जाता था जिसमें ५ प्रकार के अन्नों की कुपाई प्रारंभ होती थी। उन पाँच अन्नों में धान का नाम भी है। चीन में धान जगली भी पाए जाते हैं और धान की खेती भी बहुत दिनों से होती आ रही है।

जापान, चीन, हिंदुस्तान, ब्रह्मा, मलाया इत्यादि में चावल बहुत खाया जाता है। यद्यपि इसमें मांस बनानेवाला पशु बहुत कम होता है तथापि गरम देशों के लिये यह धान बहुत उपयुक्त होता है।

भारतवर्ष में सबसे अधिक धान बगाल में होता है। वहाँ इसके तीन मुख्य भेद माने जाते हैं—(१) भामन (भगहनी), जो जेठ भापाड़ में बोया जाता है, और भगहन पूस में कटता है। (२) भाउस (भदई) जो वैशाख जेठ में बोया जाता है और भादों कुषार में कटता है, और (३) जो पूस माघ में बोया जाता और वैशाख जेठ में कटता है। जो धान एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाकर पैदा किया जाता है उसे जड़हन कहते हैं, क्योंकि वह जाड़े में तैयार होता है। यों तो भिन्न भिन्न स्थानों में धान की बोवाई पूस से लेकर भापाड़ तक होती है और कटाई जेठ से भगहन तक, पर उत्तरीय भारत में अधिकतर धान भापाड़ सावन में बोया जाता है। साधारण धान तो भादों कुषार तक तैयार हो जाता है पर जड़हन भगहन में कटता है। महीन चावल के धान अच्छे समझे जाते हैं। अच्छी जाति के बढ़िया चावल प्रायः जड़हन के ही होते हैं। धान या चावल के बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८७२ में मजयाबखर में रखने के लिये जो चावलों का समूह हुषा बा उसमें पाँच हजार प्रकार के चावल बतलाए गए थे। इस सूची की ठीक न मानकर आधी तिहाई भी लें तो भी बहुत भेद होते हैं। महीन सुगंधित चावलों में बासमती सबसे प्रसिद्ध है। जड़हनिया चावलों में बासमती के प्रतिरिक्त लटेरा, रामभोग, रानीकाजर, तुलसीबास, मोतीचूर, समुद्र-फेन, कनकजीरा इत्यादि भी अच्छे चावल समझे जाते हैं। साधारण धान भी बहुत प्रकार के होते हैं, जैसे बगरी, दुली, साठी सरया, रामजवाहन इत्यादि। पहाड़ों के बीच की तराई जमीन में भी धान अच्छे होते हैं—जैसे, कागडे मे, ह्यो-केश के पास तपोवन में तथा जबू प्रांत में कश्मीर में भी अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे चावल होते हैं।

मुहा०—धान का खेत प्यार से जानना।—फल प्रयत्न प्रयत्न से कार्य का महत्व समझना। उ०—ज्यों कछु भक्ष किए उद-गारत कैसे हैं राखि सकै न प्रधानो। सुदरवास प्रसिद्धि दिवावत धान को पेत प्यार ते जानो।—सुदर० प्र०, भा २, पृ० ६३०।

धान^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धन्या] दे० 'धनी'। उ०—हुस भीनी पजर हई। धान नू भावई तिज्वा सरि न्हाए।—बो० रासो, पृ० १७।

धान^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्यान'। उ०—धान न भावे नोद न भावे, बिरह सतावे कोय।—सतवाणी०, पृ० ७१।

धानक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया। २. एक रत्ती का चौथाई भाग।

धानक^२—संज्ञा पुं० [सं० धानुक] १. धनुष चलानेवाला। धनुर्धारी।

तीरंदाज। कमनैत। उ०—गौह धनुष धन धानक दूसर सरि न कराय। गगन धनुक जो समये साजहि सो छवि जाय।—जायसी (शब्द०)। २. धनिया। रुई धुनेवाला। ३. एक पहाड़ी जाति का नाम जो पूरब में पाई जाती है।

धानकी—संज्ञा पुं० [हिं० धानुक] १. धनुर्धर। धनुर्धारी। २. कामदेव (टि०)।

धानख^१—संज्ञा पुं० [हिं० धनुष] एक विशेष प्रकार का धनुष जिसकी लंबाई साढ़े तीन हाथ होती है। उ०—हाथी तहवर जान रो, गो सो धानख मज्ज।—रा० रू०, पृ० ४६।

धानजई—संज्ञा पुं० [हिं० धान + जई] एक प्रकार का धान।

धानपान^१—संज्ञा पुं० [हिं० धान + पान] विवाह से कुछ ही पहले होनेवाली एक रसम जिसमें घर पक्ष की ओर से कन्या के घर धान और हल्दी भेजी जाती है।

विशेष—जहाँ तिसर होता है वहाँ प्रायः तिसर के बाद यह रसम होती है। इस रसम के उपरांत विवाह समय प्राय पूण रूप से निश्चित हो जाता है।

धानपान^२—वि० दुबला पतला। नाजुक। (धाना)।

धानमाली—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूगरे के बत्ताए हुए फल को रोकने की एक प्रिया। उ०—प्रथम विनोद तिमिर मत्तहि प्रसमन तैसहि सार विमाली। रुचिर श्रुति मत विदु सोमनस बन धानहु घृत माली।—रघुराज (शब्द०)।

धानप^१—संज्ञा पुं० [सं० धानुक] दे० 'धानुक'। उ०—धानप पर धानप चढ़ि भाए।—हिंदी प्रेमसागा०, पृ० २२४।

धाना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूना हुआ ओया चावल। बहुरी। २. धनिया। ३. धन का कण। खुद्दो। ४. सलू। ५. धान। ६. धन मान।

धाना^२—क्रि० प्र० [सं० धायन] १. दीड़ना। सेजो से बचना। भागना। उ०—धूम ध्याम धोरी धन धाए। सेठ धुबा बा पाति दिलाए।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—धाय पूजना = दूर रहना। प्रयत्न रहना। हाथ जोड़ना। सबध न रखना। जैसे—धाय पूजे दूध नोकरी से २ कोसित करना। प्रयत्न करना।

धानाचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सलू।

धानाभर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] धनाज गूतना [को०]।

धानावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक गधर्व का नाम।

धानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो धारण करे। वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। २. स्थान। जगह। जैसे, राजधानी। उ०—समयल ऊँच नीच नहि कहैं पूर्ण धर्म धन धानी। सरस सुरस रजित नीरस हठ कोसलपति रजधानी।—रघुराज (शब्द०)। २. पीछ का पेड़। ३. धनिया।

धानी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० धान + ई (पत्य०)] एक प्रकार का हलका हरा रंग जो धान की पत्ती के रंग का सा होता है। तोखई।

विशेष—यह प्रायः पीले और नीले रंग को मिलाकर बनाया जाता है ।

धानी^१—वि० धान की पत्ती के रंग का । हलके हरे रंग का ।

धानी^२—सज्ञा स्त्री० [सं० धाना] भूना हुआ जौ या गेहूँ ।

यौ०—गुहधानी ।

धानी^३—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धान्य' ।

धानी^४—सज्ञा स्त्री० सपूर्ण जाति की एक सकर रागिनी ।

धानुक—सज्ञा पुं० [सं० धानुक] १ धनुर्धर । धनुर्धारी । धनुष चलातेवाला । कमनैत । २ एक जाति । इस जाति के लोग प्रायः व्याह सादी में तुरही आदि बजाते हैं ।

धानुर्दण्डिक—सज्ञा पुं० [सं० धानुर्दण्डिक] दे० 'धानुक' [को०] ।

धानुपंधर^५—सज्ञा पुं० [हि० धनुष + धर] धनुष धारण करनेवाला । धनुर्धर । धनुर्धारी । उ०—अनेक धानुपंधर अनेक चक्र सेंबर । चले अबद्ध पेदय परे भरेति वेदय ।—पु० रा०, २।११४ ।

धानुष्क—सज्ञा पुं० [सं०] धनुस् चलाकर अपनी जीविका का निर्वाह करनेवाला । कमनैत । धनुर्धर ।

धानुष्का—सज्ञा स्त्री० [सं०] धनमार्ग । बिचड़ा ।

धानुष्य—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस ।

धानेय, धानेयक—सज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धान्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ चार तिल का एक परिमाण या तोल । २ धनिया । ३ केवर्नी मुस्तक । एक प्रकार का नागरमोया । ४ धान । छिलके समेत चावल । ५. अन्न मात्र ।

विशेष—अन्न मात्र को धान्य कहते हैं । किसी किसी स्मृति में लिखा है कि खेत में के अन्न को शस्य और छिलके सहित अन्न के दाने को धान्य कहते हैं ।

यौ०—धनधान्य ।

६ प्राचीन काल का एक प्रकार का मस्र जिसका प्रयोग शत्रु के शस्त्र निष्फल करने में होता था और जो वाल्मीकि के अनुसार दिश्वामित्र से रामचंद्र को मिला था ।

धान्यक—सज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया । २. धान्य । धान ।

धान्यकल्क—सज्ञा पुं० [सं०] अन्न के दाने का छिलका [को०] ।

धान्यकूट—सज्ञा पुं० [सं०] अन्न रखने का स्थान । बखार [को०] ।

धान्यकोश—सज्ञा पुं० [सं०] बखार [को०] ।

धान्यकोष्ठक—सज्ञा पुं० [सं०] १० 'धान्यकोष्ठक' [को०] ।

धान्यकाष्ठक—सज्ञा पुं० [सं०] अनाज भरन के लिये बना हुआ घर या बरहन । कोठना । गोला ।

धान्यक्षेत्र—सज्ञा पुं० [सं०] धान का खेत [को०] ।

धान्यचमस—सज्ञा पुं० [सं०] चूड़ा [को०] ।

धान्यचारी—सज्ञा पुं० [सं० धान्यचारिन्] पक्षी [को०] ।

धान्यजीवो—सज्ञा पुं० [सं० धान्यजीविन्] पक्षी [को०] ।

१-२८

धान्यतुपोद—सज्ञा पुं० [सं०] काँजी ।

धान्यधेनु—सज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक कल्पित गाय जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है ।

विशेष—इसका दान विपुष संश्रुति या कार्तिक मास में सब प्रकार का सुख, सोमाभ्य और पुण्य संघष करने के लिये होता है ।

धान्यपंचक—सज्ञा पुं० [सं० धान्यपञ्चक] १. भावप्रकाश के अनुसार शालि, शोहि, शूक, शिवी और सुद्र ये पाँचो प्रकार के धान । २. वैद्यक में एक प्रकार का पाचक पानी जो पाँचो प्रकार के धान, बेल और आम आदि को मिलाकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार आम, शूल तथा घृतिसार आदि रोगों में होता है । ३. वैद्यक में एक पाचक औषध, जिसे धनिया, सोठ, बेलगिरी, नागरमोथा और त्रायमाण को मिलाकर बनाते हैं ।

विशेष—इसका व्यवहार आमातिमार तथा उदरशूल आदि रोगों में होता है ।

धान्यपति—सज्ञा पुं० [सं०] १ चावल । २, जौ ।

धान्यपानक—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पन्ना जो धनिया से बनाया जाता है ।

विशेष—इसके बनाने के लिये पहले धनिया को सिल पर पीसकर पानी के साथ छान लेते हैं और तब उसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगंधित पदार्थ आदि छोड़ देते हैं ।

धान्यबीज—सज्ञा पुं० [सं०] १ धनिया । २. धान का बीज ।

धान्यभोग—सज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या जागीर जिसमें अन्न बहुत होता हो ।

धान्यमालिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] रावण के यहाँ रहनेवासी एक राक्षसी जिसे उसने जानकी को समझाने के लिये बियुक्त किया था ।

विशेष—किसी किसी का मत है कि रावण की छोरी मदोदरी का ही दूसरा नाम धान्यमालिनी था ।

धान्यमाय—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनाज का व्यापारी । २. अन्न तोलने वाला [को०] ।

धान्यमाप—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो दो धान के बराबर होता था ।

धान्यमुख—सज्ञा पुं० [सं०] मुद्ग के अनुसार एक प्रकार का मस्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चौरकांड में होता था ।

धान्यमूज—सज्ञा पुं० [सं०] काँजी ।

धान्ययूप—सज्ञा पुं० [सं०] काँजी ।

धान्ययोनि—सज्ञा पुं० [सं०] काँजी ।

धान्यराज—सज्ञा पुं० [सं०] जौ ।

धान्यवनि—सज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न का डेर [को०] ।

धान्यवर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] पाँचों प्रकार के धान । धान्यपञ्चक ।

धान्यवर्धन—सखा पु० [सं०] अन्न उधार देने का व्यवहार जिसमें अन्नी से देड़ा या सवाया लिया जाता है ।

धान्यवाप—सखा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह स्थान जिसमें अन्न बहुतायत से पैदा होता हो ।

धान्यबीज—सखा पु० [सं०] दे० 'धान्यबीज' ।

धान्यवीर—सखा पु० [सं०] उरद । माष ।

धान्यशर्करा—सखा स्त्री० [सं०] चीनी मिला हुआ धनिया का पानी जो घृतदाह नात करने के लिये पिया जाता है ।

धान्यशीर्षक—सखा पु० [सं०] धान की मजरी ।

धान्यशुंठी—सखा स्त्री० [सं०] धान्यशुंठी । वैद्यक में एक औषध जो ज्वरातिसार और कफ के प्रकोप को शांत करता है ।

विशेष—इसे बनाने के लिये एक तोला धनिया और २ तोला सोंठ कूटकर भाष सेर पानी में मिलाते और उसे घाग पर चढ़ा देते हैं, और जब आध पाव पानी बच जाता है तब उसे उतार लेते हैं ।

धान्यशूक—सखा पु० [सं०] दूँड़ [को०] ।

धान्यशूल—सखा पु० [सं०] पुराणानुसार धान करने के लिये वह कल्पित पर्वत जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है ।

विशेष—कहते हैं कि इसके दान करनेवाले को स्वर्ग में सेवा के लिये अप्सराएँ और गवर्ग मिलते हैं और यदि वह किसी प्रकार इस लोक में आ जाय तो राजा होता है ।

धान्यसंग्रह—सखा पु० [सं०] धान्यसङ्ग्रह] अनाज का भण्डार [को०] ।

धान्यसार—सखा पु० [सं०] तहल । चावल ।

धान्या—सखा स्त्री० [सं०] धनिया ।

धान्याक—सखा पु० [सं०] धनिया ।

धान्याकृत—सखा पु० [सं०] खेतिहर । कृषक ।

धान्याभ्रक—सखा पु० [सं०] १ वैद्यक में अन्न बनाने के लिये धान की सहयोगता से शोषा और साफ किया हुआ अन्नक ।

विशेष—पहले अन्नक को सुखाकर खरल में खूब महीन पीस लेते हैं और तब उस खूण को चौपाई धान के साथ मिलाकर एक कवल में बाँधकर तीन दिन तक पानी में रखते हैं । तीन दिन बाद उस पीटली को हाथ से इतना मलते हैं कि वह छनकर नीचे पानी में गिर जाता है । उसी अन्नक को निधारकर सुखा लेते हैं । अन्न बनाने के लिये ऐसा अन्नक बहुत अच्छा समझा जाता है ।

२ अन्नक को इस प्रकार शोषने की क्रिया ।

धान्याम्लक—सखा पु० [सं०] धान से बनाई हुई खटाई या काँजी ।

विशेष—दूने जल के साथ धान को एक बंद बरतन में रखकर गाढ़ दे । सात दिन पीछे उसे निकालकर उसका पानी छान ले । यह खट्टा पानी काँजी है ।

धान्यारि—सखा पु० [सं०] चूहा ।

धान्यार्थ—सखा पु० [सं०] चावल या अनाज के रूप में संपत्ति [को०] ।

धान्याशय—सखा पु० [सं०] अन्नशाला । भण्डार घर ।

धान्यास्थि—सखा स्त्री० [सं०] भूसी [को०] ।

धान्योत्तम—सखा पु० [सं०] शालि । धान ।

धान्वत्तय—सखा पु० [सं०] धान्वन्त्यं] धन्वन्तरि देवता के होम आदि । वह होम आदि जिनमें धन्वन्तरि आदि देवता प्रधान हों ।

धान्व—वि० [सं०] धन्व देश सबधी । धन्व देश का ।

धान्वन्—वि० [सं०] दे० 'धान्व' [को०] ।

धाप^१—सखा पु० [हि० टप्पा] १. दूरी की एक नाप जो प्राय एक मील की और कहीं दो मील की मानी जाती है । २ लंबा चौड़ा मैदान । ३ खेत की नाप या लंबाई चौड़ाई ।

धाप^२—सखा पु० [हि० धार] पानी की धार (लक्ष०) ।

धाप^३—सखा स्त्री० [हि० धापना] जो भरना । तृप्ति । सतोष ।

धापना^४—क्रि० प्र० [सं० तपण ?] सतुष्ट होना । तृप्त होने । मधाना । जो भरना । उ०—(क) सपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी । भक्ष भक्ष भयेय पान करि कबहुँ न मनसा धापी । —सूर (शब्द०) । (ख) दूतन कल्यो बहो यह पापी । इन तो पाप किए हैं धापी । —सूर (शब्द०) । (ग) कबिरा मोघी खोपड़ी कबहुँ धापी नाहि । तीन लोक की सपदा कब धावे घर माँहि । —कबीर (शब्द०) ।

धापना^२—क्रि० स० संतुष्ट करना । तृप्त करना ।

धापना^३—क्रि० प्र० [सं० धावन ?] दोड़ना । भागना । जल्दी जल्दी चलना । उ०—द्रुमन चढ़े सब सखा पुकारत मधुर सुनारहु वैन । जनि धापहुँ बलि चरन मनोहर कठिन कटि मग ऐन । —सूर (शब्द०) ।

धावरी—सखा स्त्री० [देश०] कबूतरों का दरवा ।

धावा—सखा पु० [देश०] १ छत्र के ऊपर का कमरा । घटारी । वह स्थान जहाँ पर कच्ची या पक्की रसोई (मोल) मिलती हो ।

धावाई—सखा पु० [हि० धा (= धाय) + आई] दूधमाई ।

धाम^१—सखा पु० [सं०] १ महाभारत के अनुसार एक प्रकार के देवता । २ विष्णु ।

धाम^२—सखा पु० [सं० धामम्] १ गृह । घर । मकान । उ०—अने अपने धाम कहें, कूच मवासिन कीन ।—प० रासो, पु०, १०७ । २ देह । शरीर । तन । ३ बागडोर । लगाम । ४ शोभा । ५ प्रभाव । ६ देवस्थान या पुण्यस्थान । जैसे, परम धाम, चारो धाम आदि । ७ जन्म । ८. विष्णु । ९ ज्योति । १० ब्रह्म । ११ चारदीवारी । शहरपनाह । १२ किरण । १३ तेज । १४ परलोक । १५ स्वर्ग । १६ अवस्था । गति ।

धाम^३—सखा पु० [देश०] फालसे की जाति का एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो मध्य और दक्षिण भारत में पाया जाता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन से छह अ तक लंबी और गोलाई लिए होती हैं ।

धामक—सखा पु० [सं०] माशा (तीस) ।

धामक धूमक^४—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'धूमधाम' । उ०—बल्लु मलय है बहुत पसारा धामक धूमक भरि कोई भले ।—रामानंद०, पु० ३५ ।

धामकेशी—सखा पुं० [सं० धामकेशिन्] सूर्य [को०] ।

धामच्छुद्—सखा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

धामन^१—सखा पुं० [देश०] १ फालसे की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो देहरादून से भासाम तक साल आदि के जंगलों में होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी प्रायः बहंगी के ढहे या कुल्हाड़ी आदि के दस्ते बनाने के काम में आती है ।

२. एक प्रकार का बाँस ।

धामन^२—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'धामिन' ।

धामन^३—सखा स्त्री० [सं० दामन्] एक प्रकार की घास जो नरम और रेतोली भूमि में बहुत अधिकता से होती है ।

विशेष—यह प्रायः वर्षा ऋतु में बहुत होती है और पशुओं के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है ।

धामनिका—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'धमनी' ।

धामनिधि—सखा पुं० [सं०] सूर्य ।

धामनी—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'धमनी' ।

धामभाज्—सखा पुं० [सं०] यज्ञस्थान में भाग लेनेवाला देवता ।

धामश्री—सखा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ बह से २८ बह तक है ।

धामसधूमस^३—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूमधाम' । उ०—धामस धूमस लागि रह्यो सठ धाय धचानक सोहि पछारे ।—सु दर० प्र०, भा० १, पृ० ४११ ।

धामा^१—सखा पुं० [सं० धाम] १ भोजन का निमन्त्रण । खाने का नेवता । २. धनाज आदि रखने का बड़ा टोकरा । (पश्चिम) ।

धामार्गव—सखा पुं० [सं०] १ साल बिचड़ा । ३ धीयातोरी ।

धामासा—सखा पुं० [हिं०] दे० 'धमासा' ।

धामिन—सखा स्त्री० [हिं० धाना (= दोहना ?)] १. एक प्रकार का साँप जो कुछ हरापन या पीलापन लिए सफेद रंग का होता है ।

विशेष—यह बहुत लंबा होता है और इसकी पूँछ में बहुत विष होता है । यह काटता नहीं बल्कि पूँछ से ही कोड़े की तरह मारता है । शरीर के जिस स्थान पर इसकी पूँछ लग जाती है उस स्थान का मांस गल गलकर गिरने लगता है । यह बहुत तेज दोड़ता है ।

२ एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत, राजपूताने तथा भासाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और भुरे रंग की होती है और देज कुरसी और छलमारी आदि बनाने के काम में आती है ।

धामिनो^३—सखा पुं० [हिं०] दे० 'धाम' । उ०—धामन में तुम भाय गए घर, छड़ि दए घर के पुर धामिनि । नट०, पृ० ४१ ।

धामिया—सखा पुं० [हिं० धाम] एक पक्ष का नाम । २ इस पक्ष का आदमी ।

धार्य^१—सखा स्त्री० [अनु०] किसी पदार्थ के जोर से गिरने या तोप, बंदूक आदि छूटने का शब्द ।

विशेष—खट, पट, आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही प्रायः होता है ।

धार्य धार्य^२—क्रि० वि० [अनु०] १. धार्य धार्य की आवाज के साथ । २ वेग के साथ जलते हुए ।

धार्य^३—सखा स्त्री० [सं० धात्री] वह स्त्री जो किसी दूसरे के बालक को दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करने के लिये नियुक्त हो । धात्री । दाई ।

धार्य^४—सखा पुं० [सं० धातकी] धवई का पेड़ ।

विशेष—दे० 'धवई' ।

धार्य^५—वि० [सं०] धायक [को०] ।

धायक—वि० [सं०] अधिकार में रखनेवाला । स्वत्व में रखने-वाला [को०] ।

धाय भाई^१—सखा पुं० [हिं० धाय + भाई] धाय से उत्पन्न होने के कारण भाई जैसा ।

धायी—सखा स्त्री० [सं०] अग्नि प्रज्वलित करते समय पड़ा जाने-वाला वेदमंत्र [को०] ।

धायी—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'धाय' ।

धय्य—सखा पुं० [सं०] पुरोहित ।

धय्या—सखा स्त्री० [सं०] वह वेदमंत्र जो अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़ा जाता है ।

धार^१—सखा पुं० [सं०] १ जोर से पानी बरसना । जोर की वर्षा । उ०—धार से निखरे हुए ऋतु के सुहाए बाग में । धाम भरने के न झोले बन गए तो क्या हुआ ?—वेला, पृ० ६६ । २. इकट्ठा किया हुआ वर्षा का जल जो वैद्यक के अनुसार त्रिदोष नाशक, लघु, सौम्य, रसायन, वनकारक, तृप्तिकर और पाचक तथा मूर्च्छा, तंद्रा, दाह, यकावट और प्यास आदि को दूर करनेवाला है । कहते हैं, सावन और भादो में यह जल बहुत ही हितकारक होता है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह जल दो प्रकार का होता है—गांग और समुद्र । आकाशगंगा से जल लेकर मेघ जो जल बरसाते हैं वह गांग कहलाता है और अधिक उत्तम माना जाता है, और समुद्र से जो जल लेकर मेघ वर्षा करते हैं वह जल सामुद्र कहलाता है । आश्विन मास में यदि सूर्य स्वाती और विशाखा नक्षत्र में हो तो उस महीने की वर्षा का जल गांग होता है । इसके अतिरिक्त शेष जल सामुद्र होता है । साधारणतः सामुद्र जल खारा, नमकीन, शुक्रनाशक, दृष्टि के लिये हानिकारक, बलनाशक और दोषप्रदायक माना जाता है । पर अगस्त तारे के उदय होने के उपरान्त सामुद्र जल भी गांग जल की तरह गुणकारी माना जाता है ।

३. धार । उधार । कर्ज । ४. प्रातः । प्रदेश ।

[सं०] गभीर । गहरा ।

[सं० धारा] १ किसी धा

अथवा निराधार द्रव पदार्थ की गतिपरंपरा । प्रवाह प्रवाह । पानी आदि के गिरने या बहने का तार । जैसे, नदी की धार, पेशाब की धार, खून की धार । उ०—गुरु सिष सार धार एक जानी । ज्यों जल मिलि जलधार समानी ।—घट०, पृ० २४६ ।

यौ०—धारधूरा ।

मुहा०—धार चढ़ाना = किसी देवी देवता या पवित्र नदी आदि पर दूध जल आदि चढ़ाना । धार टूटना = गिरने का प्रवाह खंडित होना । लगातार गिरना या निकलना बंद हो जाना । धार देना = (१) दूध देना । (२) कोई उपयोगी काम करना । (व्यंग्य) । जैसे,—यहाँ बैठे हुए क्या धार देते हो ? (३) दे० 'धार चढ़ाना' । धार निकलना = दूध बहना । स्तनों से दूध निकलना । धार मारना = धोर से पेशाब करना । (किसी चीज पर) धार मारना या (किसी चीज को) धार पर मारना = किसी चीज को बहुत ही तुच्छ और अप्राह्य समझना । जैसे,—हम ऐसे रूप पर धार मारते हैं, या ऐसा रूप धार पर मारते हैं । धार बँधना = किसी तरल पदार्थ का धार बनकर गिरना । धार बाँधना = किसी वस्तु पदार्थ को इस प्रकार गिराना जिसमें उसकी धार बन जाय ।

३ पानी का सोता । चश्मा । ४. जल इमरूमव्य (लश०) ।

५. किसी काटनेवाले हथियार का वह तेज सिरा या किनारा जिससे कोई चीज काटते हैं । बाढ़ । जैसे, तलवार की धार चाकू की धार, कैंची की धार ।

मुहा०—धार बँधना = मंत्र आदि के बल से काटनेवाले अस्त्र की धार का निकम्मा हो जाना । धार बाँधना = मंत्र आदि के बल से किसी हथियार की धार को निकम्मा कर देना ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था कि मंत्र के बल से हथियार की धार निकम्मी की जा सकती है और तब वह हथियार काट नहीं सकता ।

६ किनारा । सिरा । धोर । ७ सेना । फौज । ८. किसी प्रकार का डाका, आक्रमण या हल्ला । उ०—जात सबन कहँ देखिए कहै कबीर पुकार । चेतका होहु तो चेत ले दिवस परत है धार ।—कबीर (शब्द०) । ९. ओर । तरफ । दिशा । उ०—महिर पैठत सदन भीतर छीक बाँई धार ।—सूर (शब्द०) । १०. जहाजों के तरतों की सवि या जोड़ । कस्तूरा (लश०) ।

धार^१—संज्ञा पुं० [सं० धारण] चोबदार या द्वारपाल (दि०) ।

धार^२—संज्ञा पुं० [सं० धारण] वह पेड़ का तना या काठ का टुकड़ा जो कच्चे कूएँ के मुँह पर इसलिये लगा दिया जाता है जिसमें उसका ऊपरी भाग घट्टर न गिरे ।

धारक^१—वि० [सं०] १ धारण करनेवाला । धारनेवाला । २ रोकनेवाला । ३. ऋण लेनेवाला । कर्जदार ।

धारक^२—संज्ञा पुं० [सं०] कलश । घड़ा ।

धारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि । रथी की मूर्तद्रिय ।

धारण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ को अपने ऊपर रखना अथवा

अपने किसी अंग में लेना । धामना, लेना या अपने ऊपर ठहराना । जैसे, शेष जी का पृथ्वी को धारण करना, शिव जी का गंगा को धारण करना, हाथ में छड़ी या अस्त्र धारण करना । २. परिधान । पहनना । जैसे, वस्त्र या आभूषण धारण करना । ३. सेवन करना । खाना या पीना । जैसे, शिव जी का विष धारण करना, शीघ्र धारण करना । ४. प्रवलवन करना । अंगीकार करना । ग्रहण करना । जैसे, पदवी धारण करना । मोन धारण करना । ५. ऋण लेना । कर्ज लेना । उधार लेना । ६ कश्यप के एक पुत्र का नाम । ७ शिव जी का एक नाम ।

धारणक—संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी । कर्जदार [को०] ।

धारणशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धारण करने की शक्ति । टिकाए रखने की क्षमता ।

धारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धारण करने की क्रिया या भाव । २ वह शक्ति जिससे कोई बात मन में धारण की जाती है । समझने या मन में धारण करने की वृत्ति । बुद्धि । प्रबल । समझ । ३ दृढ़ निश्चय । पक्का विचार । ४ मर्यादा । जैसे,—नीति की यह धारणा है कि पानी में मुँह न देखा जाय । ५ मन या ध्यान में रखने की वृत्ति । याद । स्मृति । ६. योग के आठ अंगों में से एक । मन की वह स्थिति जिसमें कोई और भाव या विचार नहीं रह जाता केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है ।

विशेष—उस समय मनुष्य केवल ईश्वर का चिंतन करता है, उसमें किसी प्रकार की वासना नहीं उत्पन्न होती और न उसकी इन्द्रियाँ विचलित होती हैं । यही धारणा पीछे स्थायी होकर 'ध्यान' में परिणत हो जाती है ।

७ बृहत्संहिता के अनुसार एक योग जो ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी से एकादशी तक एक विशिष्ट प्रकार की वायु चलने पर होता है ।

विशेष—इससे इस बात का पता लगता है कि आगामी वर्षा ऋतु में यथेष्ट पानी बरसेगा या नहीं । यह वर्षा के गर्भधारण का योग माना जाता है, इसी लिये इसे धारणा कहते हैं ।

धारणायोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ गभीर समाधि । २ एक प्रकार का योग । दे० 'धारण'—७ [को०] ।

धारणावान्—संज्ञा पुं० [सं० धारणावत्] [स्त्री० धारणावती] वह जिसकी धारणा शक्ति बहुत प्रबल हो । मेधाशाली ।

धारणाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० धारणा + शक्ति] किसी बात या तथ्य को अधिक समय तक मस्तिष्क में धारण किए रहने की क्षमता [को०] ।

धारणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋणी । धरता । कर्जदार । २ वह आदमी या कोठी जिसके पास धन जमा किया गया हो ।

धारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाहिका । नाड़ी । २ श्रेणी । पक्ति । ३ धारण करनेवाली । पृथ्वी । ४. सीधी लकीर । ५. बौद्ध तंत्र का एक अंग जो प्रायः हिंदू तंत्र के कवच के समान है ।

विशेष—इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, तथा बरमा के बौद्धों में अधिकता से है । बौद्ध तान्त्रिक इसे असीष्टसिद्धि और दीर्घ

जीवन का साधन मानते हैं। इसके अधिकार के उपदेष्टा बुद्ध और श्रोता भानन्द या वज्रपाणि माने जाते हैं।

६. १६० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊंची नाव।
(युक्तिकल्पतरु)।

धारणीमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि।

धारणीय^१—वि० [सं०] धारण करने योग्य। जो धारण किया जा सके। रखने योग्य।

धारणीय^२—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक प्रकार का यंत्र जो सोने की कलम से केसर, रोचन, लास, कस्तूरी, चंदन और हाथी के मूत्र से लिखा जाता है।

विशेष—यह यंत्र पूजा के यंत्र से भिन्न होता है और शरीर पर धारण किया जाता है। जमीन या शव से छू जाने, चलने अथवा संधि जाने से यह यंत्र अशुद्ध हो जाता है और धारण करने योग्य नहीं रहता।

धारणीया^१—वि० [सं०] धारण करने योग्य। रखने योग्य। जो धारण किया जा सके। उ०—बहों की बात है अविवारणीया, मुकुट मणि तुल्य शिरसा धारणीया।—साकेत, पु० ६३।

धारणीया^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ धारणीकद। २. दे० 'धारणीय'।

धारदार—वि० [हिं० धार + दार] धारवाला। पैना।

धारधूरा—संज्ञा पुं० [हिं० धार + धूरा (= धूल)] नदी की रेत से बनी हुई या नदी के हट जाने से निकली हुई जमीन। गगनरार।

धारन—संज्ञा पुं० [सं० धारण] १. हाथी के खिलाने के लिये तैयार की हुई दवा। २. दे० 'धारण'।

धारना^१—क्रि० सं० [सं० धारण] १. धारण करना। अपने ऊपर लेना। २. ऋण करना। उधार लेना।

धारना^२—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'धारना'।

धारयिता—संज्ञा पुं० [सं० धारयितृ] [स्त्री० धारयित्री] धारण करनेवाला।

धारयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारण करनेवासी। २. पृथ्वी।

धारयिष्णु—वि० [सं०] धारण या ग्रहण करने योग्य [को०]।

धारयिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धैर्य [को०]।

धारस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धारस'।

धारांकुर—संज्ञा पुं० [सं० धाराङ्कुर] १ सरल का गोंद। २. घनोपल। मोला। बिनीरी।

धाराग—संज्ञा पुं० [सं० धाराङ्ग] एक प्राचीन तीर्थ का नाम। २. खड्ग।

धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े की चाल।

विशेष—प्राचीन भारतवासियों ने घोड़ों की पाँच प्रकार की चालें मानी थी—पास्कपित, धारितक, रेचित, वल्लित और प्लुत।

२. किसी द्रव पदार्थ की गतिपरंपरा। पानी आदि का बहाव या गिराव। प्रखंड प्रवाह। धार। ३. लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ। ४. पानी का भरना। सोटा। धरमा। ५. काटनेवाले हथियार का तेज सिरा। बाढ़। धार। ६. बहुत

अधिक वर्षा। ७. समूह। झुंड। ८. सेना अथवा ससका अगला भाग। ९. घड़े आदि में बनाया हुआ छेद या सुरास। १०. सतान। मोलाद। ११. उत्कर्ष। उन्नति। तरबकी। १२. रथ का पहिया। १३. यश। कीर्ति। १४. प्राचीन काल की एक नगरी का नाम जो दक्षिण देश में थी। १५. महा-भारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। १६. वाक्यावलि। पक्ति। १७. लकीर। रेखा। १८. पहाड़ की चोटी। १९. मालवा की एक राजधानी जो राजा भोज के समय में प्रसिद्ध थी। कहते हैं, भोज ही उज्जयिनी से राजधानी धारा लाए थे। २०. बाग का घेरा (को०)। २१. रात्रि (को०)। २२. हल्दी (को०)। २३. कान का सिरा (को०)। २४. वाणी (को०)। २५. कर्ज। ऋण (को०)। २६. एक प्रकार का पत्थर (को०)। २७. अफवाह। खर्चा (को०)। २८. क्रम। पद्धति। २९. नियम या विधान का एक अंग। ठफा (को०)। ३०. साहित्यिक प्रवृत्ति अथवा उपविभाजन। साहित्य का कोई प्रवाह या उपविभाग। जैसे, छायावादी काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा।

धारोकद्व—संज्ञा पुं० [सं० धाराकद्व] एक प्रकार का कदम का पेड़।

धारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह स्थान या घर जिसमें फुहारा लगा हो।

धाराग्र—संज्ञा पुं० [सं०] बाण का चौड़ा सिरा [को०]।

धाराट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चातक। २. मेघ। बादल। ३. घोड़ा। ४. मस्त हाथी।

धाराघर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. खड्ग। तलवार।

धारानिपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलधारा का गिरना। वर्षा होना। २. तेज वर्षा [को०]।

धारापात—संज्ञा पुं० [सं०] जलधारा का गिरना। वर्षा होना। २. तेज वर्षा [को०]।

धारापूष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूषा (पकवान) जो मैदे की घी मिले हुए दूध में सानकर और तब घी में छानकर बनाया जाता है और जिसमें पीछे से खाँड़ या चीनी मिला दी जाती है।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह बलकारक, रविकारक और पित्त तथा वातनाशक है।

धाराप्रवाह—वि० [सं० धारा + प्रवाह] लगातार। धारिराम [को०]।

धाराफल—संज्ञा पुं० [सं०] मदनवृक्ष। मेनफल वृक्ष।

धारायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० धारायन्त्र] वह यंत्र जिससे पानी की धार छूटे। फुहारा।

धाराल—वि० [सं०] १ जिसकी धार तेज हो। धारदार (हथियार)। २ धारा में बहनेवाला (को०)।

धारातो—संज्ञा स्त्री० [सं० धाराल] १ तलवार। खड्ग। कटारी। (हिं०)।

धारावनि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

धारावर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

धारावप—सज्ञा पुं० [सं०] लगातार वृष्टि । अविराम वृष्टि [को०] ।

धारावषण्—सज्ञा पुं० [सं०] धारावर्ष [को०] ।

धारावाहिक—वि० [सं०] धाराप्रवाह । अविराम गति से चलने-वाला [को०] ।

धारावाहिकता—सज्ञा स्त्री० [सं० धारावाहिक + ता (प्रत्य०)] धारा-वाहिक होने की स्थिति । निरंतरता । उ०—पद के अंत में दो गुरु मात्राओं के स्थान पर सघु गुरु या दो सघु मात्राओं का प्रयोग कथोपक्रम की धारावाहिकता के लिये अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है ।—रजत० (विज्ञप्ति) ।

धारावाही—वि० [सं०] जो धारा के रूप में भागे बढ़ता हो । बिना रोक टोक बढ़ने या चलनेवाला ।

धारावपि—सज्ञा पुं० [सं०] खड्ग । तलवार ।

धारासंपात—सज्ञा पुं० [सं० धारासम्पात] बहुत तेज और अधिक वृष्टि । जोरों की धारिश ।

धारासभा—सज्ञा स्त्री० [सं० धारा + सभा] व्यवस्थापिका सभा ।

धारासार—वि० [सं०] लगातार वृष्टि । बराबर पानी बरसना ।

धारासुहो—सज्ञा स्त्री० [सं०] तिधारा धूहर ।

धारि०—सज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १ दे० 'वार' । २ समूह । झुंड । उ०—(क) धावो धावो धरो सुनि धाए जातुधान वारिधार सते दे जलद ज्यों नसावनो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रामकृपा धरैव सुधारी । विवुध धारि भइ गुनद गोहागी ।—तुलसी (शब्द०) । ३ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण और एक सघु होता है । जैसे,—री सखी न । जात भौन । वस्र हारि । भौन धारि ।

धारिणी^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ धरणी । पृथ्वी । भूमि । जमीन । २ शात्मसी । मेमर का पेड़ । ३ चोदह देवताओं की स्त्रियाँ जिनके नाम ये हैं—शची । वनस्पति । गार्गी । धूम्रोणी । रुचिराकृति । सिन्धीवाला । कुहू । राका । अनुमति । प्रायाति । प्रज्ञा । सेला । वेला ।

धारिणी^२—वि० स्त्री० धारण करनेवाली ।

धारित^१—वि० [सं०] १. धारण किया हुआ । २. सम्हाला हुआ । रखा हुआ [को०] ।

धारित^२—सज्ञा पुं० [सं०] धोड़े की एक चाल [को०] ।

धारितक—सज्ञा पुं० [सं०] धोड़े की एक चाल । धारित [को०] ।

धारी^१—वि० [सं० धारिन्] [स्त्री० धारिणी] १ धारण करनेवाला । जिसने धारण किया हो ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग योगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, धारिधारी ।

२. किसी अर्थ के तात्पर्य को भली भाँति जाननेवाला । ३ श्रृणु लेनेवाला । कर्जदार । ३ पीलू का पेड़ ।

धारी^२—सज्ञा पुं० १. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पहले तीन चरण और तब एक चरण होता है । जैसे,—जु काव भँह धवि

देखत चीते । तुम्होर प्रभु गुण गावत ही ते । कृपा करि देहु वहै गिरिधारी । याचो कर जोरि सुभक्ति तिहारी । २ दे० 'धारि'—३ । ३ पीलू का पेड़ ।

धारी^३—सज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १. सेना । फौज । २ समूह । झुंड । ३. रेखा । लकीर । जैसे,—यदि इस कपड़े पर कुछ धारियाँ होतीं तो और भी अच्छा होता ।

यौ०—धारीदार ।

४ पुत्रता ।

धारो०^५—सज्ञा स्त्री० [प्रा० धाव्य] लुटेरों की एक जाति । उ०—सतगुरु नायक के संग मिलि चल लुट सकै नहि धारी ।—चरण० बानी, पृ० ६७ ।

धारीदार—वि० [हि० धारी + प्रा० दार] जिसमें लंबी लंबी धारियाँ या लकीरें पड़ी भयवा बनी हों । जैसे, धारीदार मलमल ।

धारुजल—सज्ञा पुं० [हि०] खड्ग । तलवार ।

धारोष्ण—सज्ञा पुं० [सं०] धन से निकला हुआ ताजा दूध जो प्रायः कुछ गरम होता है और स्तन से निकलने के कुछ समय बाद तक गरम रहता है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दूध अमृत के समान और भ्रम हरनेवाला, निद्रा लानेवाला, वीर्य और पुरुषार्थ बढ़ानेवाला ? पुष्टिकारक, अग्नि को बढ़ानेवाला, प्रति स्वादिष्ट और विशेष को हरनेवाला होता है ।

धार्तराष्ट्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ काले रंग की चोंच और पैरों वाला हंस । २ एक नाग का नाम । ३ [स्त्री० धार्तराष्ट्री] धृतराष्ट्र के वंश का मादमी ।

धार्तराष्ट्रपदी—सज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता । साल रंग का लज्जालु ।

धार्म—वि० [सं०] धर्म संबंधी ।

धार्मिक—वि० [सं०] १. धर्मशील । धर्मात्मा । धर्माचरण करने वाला । पुण्यात्मा । जैसे—प्राप बड़े हो धार्मिक हैं । २ धर्म-संबंधी । जैसे, धार्मिक क्रियाएँ ।

धार्मिकता—सज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशीलता । धार्मिक होने का भाव ।

धार्मिक्य—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धार्मिकता' ।

धार्मिण—सज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक व्यक्तियों की सभा [को०] ।

धार्मिण्य—सज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक स्त्री का पुत्र [को०] ।

धार्मिणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] धार्मिक स्त्री की पुत्री [को०] ।

धार्य^१—वि० [सं०] धारण करने के योग्य । धारणीय ।

धार्य^२—सज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र । कपड़ा ।

धार्यत्व—सज्ञा पुं० [सं० धार्यत्व] धारण करने का भाव या क्रिया ।

धालना०—क्रि० घ० [हि०] दे० 'ढालना' । उ०—उपजो ग्यान ध्यान प्रेम रस धाला ।—रामानंद०, पृ० ५० ।

धाष्ट—सज्ञा पुं० [सं०] धृष्टता ।

धाष्ट्य—सज्ञा पुं० [सं०] धृष्टता [को०] ।

धाव'

धाव^१—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक प्रकार का लबा और बहुत सुंदर पेड़ जिसे गोलरा, धावरा, बकली और खरघाया भी कहते हैं।

विशेष—दे० 'धव'।

धाव^२—संज्ञा स्त्री० [?] लवाई। उ०—प्रथम ही प्रयोध्या नगर जिसका बणाव, बारें जोजन तो छोड़े सोले जोजन की धाव।—रघु० क०, पृ० २३७।

धाव^३—वि० [सं०] धोनेवाला। साफ करनेवाला [को०]।

धावक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीड़कर चलनेवाला। हरकारा। उ०—धावक प्रायः महोब कहें, सोम बबी सुनु वत्त।—प० रासो, पृ० ११०। २. घोड़ी। रजक। ३. संस्कृत साहित्य के एक प्राचार्य और कवि जिनका नाम कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक तथा काव्यप्रकाश और साहित्यसार में आया है।

धावड़ा—संज्ञा पुं० [हि० धव + ढा (प्रत्य०)] धव का पेड़।

धावण—संज्ञा पुं० [सं० धावन] दूत। हरकारा (हि०)।

धावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत जल्दी या दीड़कर जाना। २. दूत। हरकारा। चिट्ठी या संदेशा पहुँचानेवाला। उ०—(क) द्विविद करि कोप हुरि पुरी आयो। तूष सुदक्षिणा जर्यो जरी वाराणसी धाय धावन जबहि यह सुनायो।—सूर (शब्द०)। (ख) एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे भाइ। गुरु अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेस मनाइ।—तुलसी (शब्द०)। ३. धोने या साफ करने का काम। ४. वह चीज जिससे कोई चीज धोई या साफ की जाय। उ०—निद्रा हास्य मदशंत बोले। तबि रद धावन झूठ न बोले।—विश्राम (शब्द०)।

धावना^१—क्रि० प्र० [सं० धावन (=गमन)] वेग से चलना। दौटना। भागना। जल्दी जल्दी जाना। उ०—घाराघर धावत घरा पै गरजत है।—हम्मीर०, पृ० २४।

धावनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धावन (=गमन)] १. जल्दी जल्दी चलने की क्रिया या भाव। दीड़। उ०—बा पट पीत की फहरान। कर धरि चक्र चरन की धावनि नहि बिसरति वह बान।—सूर (शब्द०)। २. धावा। चढ़ाई। उ०—सिंधु पार परे सब भानद सो भरे कपि गाँव शंख बाजे शंख बाजे प्रब लका पर धावनि।—हनुमान (शब्द०)।

धावनि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पुश्तिपर्णी लता।

धावनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटकारिका। कटेरी। २. पिठवन। पुश्तिपर्णी। ३. कंटीली मकोय।

धावनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुश्तिपर्णी लता। पिठवन। २. कटकारी। ३. धव का फूल।

धावमान—वि० [सं०] दीड़ता हुआ।

धावर—वि० [सं० धाव + र (ठ) (प्रत्य०)] दीड़नेवाला। धावक। उ०—धावर सुकन्ह बहुमान की। बोलि नीर चचिबग महर।—पृ० रा०, १७। ३०।

धावरा—संज्ञा पुं० [सं० धव + हि० रा (प्रत्य०)] दे० 'धव'।

धावरा^२—संज्ञा पुं० [हि० धवरा] दे० 'धवरा'।

धावरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] सफेद गाय। घोरी।

धावरी^२—वि० सफेद। उज्ज्वल। उ०—यगन सता तें बलित हैं जहं

तमाल तरजाल। धेनु धावरी रावरी लखि आई गोपाल।—रामसहाय (शब्द०)।

धावल्य—संज्ञा पुं० [सं०] धवलता। सफेदी [को०]।

धावा—संज्ञा पुं० [सं० धावन] १. शत्रु से लड़ने के लिये दस बस सहित तैयार होकर जाना। आक्रमण। हमला। चढ़ाई।

मुहा०—धावा बोलना = (१) अधिकारी का अपने सैनिकों को आक्रमण करने की आज्ञा देना। (२) चढ़ाई कर देना। (३) किसी काम के लिये जल्दी जल्दी जाना। दीड़। धावा मारना = जल्दी जल्दी चलना। जैसे,—इस धूप में हम तीन कोस का धावा मारकर आ रहे हैं।

धावित—वि० [सं०] १. स्वच्छ किया हुआ। धोया हुआ। २. दीड़ता हुआ। ३. तेजी से जाता हुआ [को०]।

धाविता—संज्ञा पुं० [सं० धावितृ] दीड़कर जानेवाला। धावक [को०]।

धाह^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] जोर से चिल्लाकर रोना। धाड़। उ०—(क) देखे नद चले घर धावत। पैठत पीरि छीक भइ आई रोइ दाहिने धाह सुनावत।—सूर (शब्द०)। (ख) ऊन आई बादरी बरसन लगा अंगार। ऊठि कबीरा धाह दै दाकत है ससार।—कबीर (शब्द०)। (ग) जिन्ह रिपु मारि सुरारि नारि तेइ सीस उधारि दिवाई धाहैं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—धाह मारना = दे० 'धाड़ मारना'। धाह मेलना = जोर जोर से रोना।

धाह^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाड़'। उ०—जाग न रोवे धाह दे, सोवत गई बिहाइ।—दादू०, पृ० ७३।

धाहड़ना^१—क्रि० प्र० [हि० धाह] पुकारना। उ०—(क) ममे मेढी मुच पईला कंदरि करिया धाहड़े।—दादू०, पृ० ५१०। (ख) देवलि देवलि धाहड़ी।—कबीर प्र०, पृ० ११।

धाहना^२—क्रि० प्र० [सं० ध्वसन] ढाहना। ध्वस करना। नष्ट करना। उ०—देवगिर दुग है पुरनि गाहि। बालका जीति दै जय गाहि।—पृ० रा०, १। ३७५।

धाही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। धाय। उ०—तस्य देवान घृष्टुधि नामा। रही आई धाही तेहि धामा।—विश्राम (शब्द०)।

धिगा—सं० स्त्री० [सं० दृढाङ्ग या अनु० धीगाधीगी] धीगाधीगी। ऊषम। उपद्रव। शरारत। उ०—अरु ह्यो भवानी सिंह। गढ़ लेन सपिय धिगा।—सूदन (शब्द०)।

धिगाड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धींगरा'—२। उ०—प्राण ते दूसरा धिगाठ ठाढ़ा किया।—कबीर रे०, पृ० ३२।

धिगारा—संज्ञा पुं० [हि० धीगारा] दे० 'धींगरा'।

धिगाई—संज्ञा पुं० [सं० दृढाङ्ग] १. बदमाश। शरीर। उपद्रवी। २. वेशम। निलंजज।

धिगाई—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्गी] १. शरारत। उपद्रव। ऊषम। बदमाशी। उ०—जानि बूझि इन करो धिगाई। मेरी बलि पवंतहि चढ़ाई।—सूर (शब्द०)। २. वेशमी। निलंजजता।

धिगाधिगी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धीगाधीगी'।

धिगाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं धिग] धीगाधीगी करना । उपद्रव करना । ऊषम मचाना ।

धिगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्गी] बढमाण स्त्री । निर्लज्ज स्त्री । हुडदगी धीरत ।

धि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भाहार । भागार [को०] ।

विशेष—यह समास के शत में प्रयुक्त होता है । जैसे, उदधि, हपुधि, वारिधि, जलधि ।

धिआ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीमा] १. बेटी । कन्या । २. कोई छोटी लड़की ।

धिआन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्यान] दे० 'ध्यान' ।

धिआना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'ध्याना' या 'ध्यावना' ।

धिक—अव्य० [सं०] १. तिरस्कार, घनादर या पृणासुचक एक शब्द । लानत । २. निंदा । शिकायत ।

धिक—अव्य० [सं० धिक्] धिक् । लानत । उ०—धिक धमंज्वज घघकघोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धिकना—क्रि० प्र० [सं० दग्ध या हिं० दहकना] गरम होना । तप्त होना । भाग की गरमी से लाल हो जाना । उ०—जरहि जो पर्वत लाग भकासा । वनलंड धिकहि पलास कोपासा ।—जायसी (शब्द०) ।

धिकवना—क्रि० सं० [हिं० धीकना] गरम करना । तपाना । उ०—तोहि से परिहि सो बगरा जम धिकवे भायी । स्वारथ के सब लोग भीसर के कोऊ न सायी ।—पलटू, भा० १, पृ० ५५ ।

धिकाना—क्रि० सं० [सं० दग्ध या हिं० दहकना] तपाना । खूब गरम करना । तपकर लाल करना ।

धिकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार, घनादर या पृणाव्यजक शब्द । लानत । फटकार ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

धिकारना—क्रि० सं० [सं० धिक्] धिक् कहकर बहुत तिरस्कार करना । बहुत बुरा मला कहना । लानत मसामत करना । फटकारना ।

धिकृत—वि० [सं०] जो धिकारा जाय । जिसे 'धिक्' कहा जाय । जिसका तिरस्कार हो ।

धिकृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिरस्कार । लताड़ [को०] ।

धिक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धिकार' ।

धिकृपाकष्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डाँट फटकार । निंदा [को०] ।

धिख—अव्य० [हिं०] दे० 'धिक्' । उ०—मिठपाल गजगव विटप भट्ट, धिख गदा व भीषण उवरघर ।—रघु० ६०, पृ० २२४ ।

धिग—अव्य० [सं० धिक्] दे० 'धिकार' ।

धिगानौ—वि० [हिं० धिग] तिरस्करणीय । धिकार के योग्य । उ०—ग्यान ही इठावत है सायो तू धिगानौ रे ।—ब्रज० प्र०, १३२ ।

धिगदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धिगदण्ड] दंड के रूप में धिकार [को०] ।

धिगवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संकर जाति को ब्राह्मण पिता और अयोग्यी माता से उत्पन्न मानी जाती है ।

धिग्वद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिरस्कारपूर्ण वाक्य या वचन [को०] ।

धित—वि० [सं०] १. रखा हुआ । २. सतृप्त । तृप्त [को०] ।

धिप्सु—वि० [सं०] १. घोखा देने की इच्छा करनेवाला । २. घोखेबाज [को०] ।

धिमचा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की हमसी ।

धिजाइ—क्रि० सं० [हिं० धीरज] धीरज दिनाकर । विधवा उत्पन्न करके । उ०—सुध वृध जीव धिजाइ करि, माला सकल बाहि ।—दादू०, पृ० २८७ ।

धिजावना—क्रि० सं० [?] पुकारना । बुलाना । उ०—दुष्ट धिजावे बहुत बिधि आनि नवावे सीस ।—सुदर० प्र०, भा० २, पृ० ७२३ ।

धिङग—वि० [हिं०] दे० 'धङग' । उ०—दुर्बल रोगी, नग धिङग जिनके शिशुगन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५६ ।

धिद्धर—वि० [सं० धृष्ट] धृष्ट । ढोठ । उ०—तन सहस्र वेप दस्त, भुभक्त जस्त धिद्धर ।—पृ० रा०, ६ । ११८ ।

धिन—वि० [हिं०] दे० 'धन्य' । उ०—तृतीय बदि धिन सतहु, सब के लागू पाय ।—राम० घमं०, पृ० १८५ ।

धिनी—वि० [हिं०] दे० 'धन्य' । उ०—जय धिनी पक्षी जात, सुख पक्ष जेण सु गात ।—रा० रू, पृ० ६८ ।

धिन्न—वि० [हिं०] दे० 'धन्य' । उ०—दिल्ली खेतन छडियो, धारण चारण धिन्न ।—रा० रू०, पृ० ४० ।

धिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] १. कन्या । बेटी । उ०—शमी गरम में प्रनल ज्यों त्यों तेरी धिय सत । धारति तेज दिवो जो नुर प्रजा हेत दुष्यत ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । २. लड़की । बालिका ।

धियापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धियाम्पति] वृहस्पति [को०] ।

धिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धिय' ।

धियान—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] 'ध्यान' । उ०—वामदेव से देव वति जाको घरत धियान ।—नद० प्र०, पृ० ६२ ।

धिरकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धिकार] दे० 'धिकार' । उ०—नाम बिना धिरकार है, सुदर धनवत भूप ।—सतवाणी०, पृ० १५५ ।

धिरग—अव्य० [हिं०] दे० 'धिक्' । उ०—धन छोटा पन सुख महा धिरग बढ़ाई खार ।—सहजो०, पृ० ३६ ।

धिरज—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धीरज' । उ०—परतिरि मानव तीति बिरबै मनोभव जोति ।—विद्यापति, पृ० १५७ ।

धिरवना—क्रि० सं० [सं० धरण] धमकना । उ०—(क) समय परे की बात बाज कहें धिरवे फुदकी ।—गिरधर (शब्द०) । (ख) मुख भगरति मानद उर धिरवति है घर जाहु ।—सूर (शब्द०) । (ग) कोउ उठि भागत पुनि नहि धावत धिरवत भोगुलि दिखाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

धिराना^१—क्रि० स० [हि० धिरवना] डराना । धमकाना । भय दिखाना । उ०—(क) जाति पाति सो कहाँ भचगरी यह कहि सुवाहि धिरावति ।—सूर (शब्द०) । (ख) आना मारव मोहि धिरावै देखे मोहि न भावत ।—सूर (शब्द०) ।

धिराना^२—क्रि० प्र० [सं० धीर] १. धीमा होना । गति में मद पडना । उ०—उपहार विचार किए न धिरानो ।—केशव (शब्द०) । २. स्थिर होना । धैर्य धारण करना ।

धियावसु—संज्ञा पुं० [सं०] सरस्वती के वरु के एक वैदिक देवता जो 'धी' अर्थात् बुद्धि के देवता माने जाते हैं ।

धिषण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति । २. ब्रह्मा । ३. नारायण । विष्णु । ४. शुक । शिशु । ५. निवास । वासस्थान (को०) ।

धिषण^२—वि० [सं०] बुद्धिमान । प्रसन्नमद । समझदार ।

धिषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि । प्रकल । २. स्तुति । ३. वाक्शक्ति । ४. पुष्टी । ५. स्थान । ६. प्याला (को०) ।

धिषणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

धिषन^१—संज्ञा पुं० [सं० धिषण] दे० 'धिषण' । उ०—लष्टा चतुरानन धिषन, द्रुहिन स्वयम्भु सोइ ।—प्रनेकार्थ०, पृ० ६६ ।

धिष्ट^१—वि० [हि०] दे० 'घृष्ट' । उ०—परि परिष्ट सम धिष्ट धिष्ट धारन धर धुम्बर ।—पु० रा०, १२।१४७ ।

धिष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थान । जगह । २. घर । ३. नक्षत्र । ४. भाग । ५. शक्ति । ६. शुक्राचार्य ।

धिष्ट्य^१—वि० [सं०] १. जिसकी प्रशंसा की जाय । २. जिसके विषय में गंभीर रूप से सोचा जाय । ३. जो उच्च स्थान का अधिकारी हो । ४. सजग । सावधान । ५. उदार । दयालु (को०) ।

धिष्ट्य^२—संज्ञा पुं० १. हवन कुंड । २. शुक्राचार्य । ३. शुक्र ग्रह । ४. शक्ति । बल । ५. स्थान । ६. भवन । घर । ७. उत्का । ८. प्रणि । ९. तारा (को०) ।

धिस्त^१—संज्ञा पुं० [सं० धिषण] दे० 'धिषण' । उ०—प्रपन धिस्त पुनि प्रासपद भालप निलप निकेत ।—प्रनेकार्थ०, पृ० ४३ ।

धिस्त^२—संज्ञा पुं० [सं० धिषण] भवन । घर । उ०—गेह, वेस्म, संकेत, लय, महप, धिस्त, प्रासपद ।—नद० प्र०, पृ० १०८ ।

धींग^१—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर (= शठ) या ष्ठांग] हट्टा कट्टा मनुष्य । उ०—धींगरी धींग चाचरि करै मोहि दुखावत सालि ।—सूर (शब्द०) ।

धींग^२—वि० १. मजबूत । जोरावर । २. शरीर । बदमाश । उपद्रवी । ३. कुमार्गी । पापी । बुरा । उ०—प्रपनायो तुलसी सो धींग धमघूसरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

धींगड़ा—वि० [सं० डिङ्गर] [स्त्री० धींगडी] १. पाजी । बदमाश । दुष्ट । २. हट्टा कट्टा । हट्ट पुष्ट । ३. वरुणेंकर । दोगला । हरामी ।

धींगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धींगड़' ।

५-२६

धींगधुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग] १. धींगामुखी । २. पाजीपन । धींगमधूंगा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धींगधींगी' । उ०—मरे ही रे पलटू आखिर बड़े से बड़े दिन चार का धींगमधूंगा ।—पलटू, भा०, पृ० ७७ ।

धींगरा—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर] १. हट्टा कट्टा । मुसंड । मोटा ताजा । २. शठ । बदमाश । कुकर्म । गुहा ।

धींगरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग + री (प्रत्य०)] पाजी । उपद्रव करनेवाली स्त्री । उ०—धींग तुम्हारी पूत धींगरी हमको कीन्ही ।—सूर (शब्द०) ।

धींगा—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर (= शठ)] शरीर । बदमाश । उपद्रवी । पाजी ।

धींग—धींगामुखी ।

धींगधींगी—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग] १. शरारत । बदमाशी । उपद्रव । पाजीपन । २. जबरदस्ती । बलप्रयोग ।

धींगामस्ती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धींगामुखी' ।

धींगामुखी—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग + मुखी] १. शरारत । बदमाशी । उपद्रव । पाजीपन । २. जबरदस्ती लडना । हायाबाही ।

धीन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० धीन्द्रिय] वह इन्द्रिय जिससे किसी बात का ज्ञान किया जाय । जैसे मन, प्राण, कान, त्वक्, जीम, नाक । ज्ञानेंद्रिय ।

धीवर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धीवर' ।

धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि । प्रकल । समझ ।

विशेष—दे० 'बुद्धि' ।

२. मन । ३. कर्म । ४. कल्पना (को०) । ५. विचार (को०) । ६. भक्ति (को०) । ७. यज्ञ (को०) । ८. उद्देश्य (को०) ।

धी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीमा] लडकी । बेटा । उ०—भडे ले लेकर निकली धी और बहूटी पडित की ।—बेला, पृ० ४७ ।

धी^३—वि० धीयवान । सुस्थिर । उ०—नाटक प्रमान कथय । सुनि राजन धी दिल्लीस ।—पु० रा०, २५।७ ।

धीआ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धीया' ।

धीगम^१—संज्ञा पुं० [हि० धीगा] मनमाना । अन्याय । उ०—पधरम भाठी गौठि न्याव बिनु धीगम सूदा ।—पलटू, भा०, पृ० १०२ ।

धीगुण—सं० पुं० [सं०] सुश्रूषा, श्रवण आदि बुद्धि के आठ धर्म (को०) ।

धीजना—क्रि० स० [सं० √ धृ, धार्य, धैर्य] १. ग्रहण करना । स्वीकार करना । अंगीकार करना । उ०—(क) पाती से के चल्थो विप्र छिप्रवहि पुरी गयो, नयो चाव जाव्यो एपे कैथे तिया धीजिए । कहौ तुम जाइ रानी बैठी सत आई मोको बोल्थो न सोहाय प्रभु सेवा माँझ भोजिए ।—प्रियादास (शब्द०) । (ख) धरिया कूँ धीजूँ नहीं गहूँ मधर की बाहि । धरिया मधर पहिचानियाँ तो कछु धरावहि नाहि ।—कबीर

(शब्द०) । २ धीरज घरवा । धैर्य युक्त होना । उ०—प्राय
मिली अलिन में, लालन की ध्यान हिये, पिये मद मानो
गृह भाई तब धोजी है ।—प्रियादास (शब्द०) । ३ अति
प्रसन्न होना । संतुष्ट होना । उ०—(क) घरे सब जाय प्रभु
सुकर वनाय दियो कियो सरबोपरि ले चल्तो मति धोजिए ।
—प्रियादास (शब्द०) । (ख) उज्जल देखि न धोजिए वग
ज्यो मदि ध्यान । धीरे बैठि चपेटि सी यों ले वूढ़े ज्ञान ।
—कबीर (शब्द०) ।

घीट(पु) —वि० [हि०] दे० 'घृत' । उ०—ऊ पच्छिम ओढ गयो अणभगी
घीट बढा वृष पारिया ।—रघु० रू०, पृ० ११८ ।

घोठ—वि० [हि०] दे० 'घृष्ट' ।

घोहर(पु)—वि० [हि०] दे० 'घृष्ट' । स०—लीक सुवच्छं सुदध कच्छ,
हम गच्छं घोहरं ।—पृ० रा०, ६।१।६ ।

घोण(५) — संज्ञा स्त्री० [सं० घेनु] गाय । उ० — घर घर में घोणाँ घणाँ
घर घर घुमे माट । — दाँकी प्र०, भा० ३, प० ६१ ।

धीत-वि० [सं०] १. जो पिया गया हो। २ जिसका पनादर हुआ हो। ३ जिसकी माराधना की जाय। ४ विचारित। चितित सोचा हुआ (को०)।

धोति—सन्ना खो० [सं०] १. पान करने की क्रिया । पीना । २ श्याम ।
३ विचार । धितन (को०) । ४ भक्ति । धाराधना । श्रद्धा
(को०) । ५ अनादर (को०) ।

घोदा'—सषा स्त्री० [सं० दुहिता का प्रा० रूप] १ कन्या । कुँपारी
सहकी । २ पृथ्वी । बेटी । ३ मनीषा (को०) ।

धीदा^२—वि० स्त्री० बुद्धि प्रदान करनेवाली [कौ०] ।

धीदाता—वि० [सं० धी + दातृ] बुद्धि देनेवाला । ज्ञान देनेवाला ।
उ०—सो धीदाता पलक में, तिरै, तिरावरण जोग ।—दादू०,
पृ० ६ ।

धीन—सषा पुं० [दिश०] लोहा । (दि०) ।

धीपति—सच्चा पु० [सं०] बृहस्पति ।

धीमन्त्री—संज्ञा पु० [सं० धीमन्त्री] समति देनेवाला मन्त्री । सलाह-कार [को०] ।

धीम॑पु॒त—वि० [हि०] दे० 'घोमा' ।

घोमर—सना पुं० [हिं० घीवर] दे० 'घीवर' । उ०—घरे मच्छ पहिना
भौ रोहू । घोमर घरत करै नहि छोहू ।—जायसी (शब्द०) ।

धीमा—वि० [स० मध्यम ?] [वि० स्त्री० धीमी] १. जिसका वेग या गति मंद हो। जिसकी चाल में बहुत ठेकी न हो। जो माहिस्त। चले। जैसे, धीमी चाल, धीमी हवा। २. जो अधिक प्रचंड, तीव्र या उग्र न हो। हलका। जैसे, धीमी भाँच, धीमी रोशनी। ३. कुछ नीचा मीठ साधारण से कम (स्वर)। जैसे, धीमा स्वर, धीमी भावाज। ४. जिसका जोर घट गया हो। जिसकी तेजी कम हो गई हो। जैसे,—(क) पहले तो वह बहुत बिगड़ा पर पीछे धीमा हो गया। (ख) जब उनका गुस्सा कुछ धीमा हुआ तब उसने सारा हाल उनसे कह सुनाया।

क्रि० प्र०—करना ।—पठना ।—होना ।

भीमा तिताला—सब पं० [हि० धोमा+तिताला] संगीत में सोलह

मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन भागात और एक खाली होता है। इसके मृदंग के बोल ये हैं,—

✕
 घेत घेत धेने नाग, द्रगे छेटे फेटे ताग, गंदेताफ घागे, तेटेक तागदि
 धेने । प्रौर तवसे के बोल ये हैं ।

+
 घा दिन दिन घा, दिन् घागे तेरेकेटे दिन नादिन तिन ता,
 दिन घागे तेरेकेटे दिन । घा ॥

घोमान्—सज्ञा ५० [सं० घोमत्] [स्त्री० घोमती] १. वृहस्पति । २
बुद्धिमाय । समझदार । प्रथममंद । ३०—घोमान् कहते हैं तुम्हें
लोग, जयसिंह, सिंह हो तुम, खेले शिकार खूब हिरनों का।—
अपरा, पृ० ८६ ।

धीमे—प्रत्य० [हि० धीमा] धीमी गति से । धीरे धीरे ।

घीयः—व्या स्त्री० [सं० दुहिता] १. दे० 'घी' । उ०—बुद्धि मनोषा
सेमुषी मेघा घिपना घीय । घनेकार्य०, पृ० ६६ । २. जमाई ।
जामाता । दामाद (हि०) ।

धीया—भक्षा श्री० [सं० दृहिता, प्रा० घोदा धीया] लहकी । बेटी ।

धीर^१—वि० [सं०] १. जिसमें धैर्य हो । जो जल्दी घबरा न जाय ।
छद्म धीर शास्त्र चिन्तवासा । २०—जीवन में सुख दुःख निरंतर
घाते जाते रहते हैं । सुख तो सभी भोग लेते हैं, दुःख धीर ही
सहते हैं ।—साकेत, पृ० ३७१ । २. बलवान् । ताकतवर । ३.
विनीत । नम्र । ४. गंभीर । ५. मनोहर । सुंदर । ६
साद । धोमा ।

धीर^३—सद्वा पु० १ केसर । २. ऋषभ नामक घोषधि । ३ मन्त्र ।
४ राजा बलि ।

धीर^५—सषा पु० [सं० धैर्य] १. धैर्यं । धीरज । ढाढ़स । मन
की स्थिरता । २. सतोय । सद्ग ।

क्रि० प्र०—करना ।—घरना ।—रखना ।

घोरक—सज्ञा पु० [सं० घीर] 'घैर्य' । उ०—दिये घीरक उसे हथ
वजा वेहिसाब, उठ्या वृत्ति दरहास तोता शिताब ।—
दक्खिनी०, पृ० ६१ ।

धीरज(५१) — सखा पु० [स० धैर्यं] दे० 'धैर्य' । उ० — होइ न कहैं प्रनद
 पञ्जीरन । तसैं षष्ठ धीरज चचन मन । — भारतेन्दु प्र०,
 भा० १, पृ० ६०७ ।

घोरचेता—वि० [सं० घोरचेतस्] दुःप्रमति । स्थिर चित्तवांसा [को०] ।
 घोरजता—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० घोरज + ता (प्रत्य०)] घोरज ।
 घैर्यं । ल०—वेटा । स्थाबास तेरी घोरखता को ।—दो सौ
 बावन०, भा० १, पृ० २०२ ।

धीरजमान—सहा पुं० [हि० धीरज + मान] दे० 'धैर्यवान्' या 'धीर' ।

घोरट—सका पु० [?] हस पक्षी । (डि०) ।

धीरता—धृष्टा (को०) [सं०] १. चित्त की स्थिरता । मन की दृढ़ता । धैर्य । २. स्थिरता । ३. संतोष । सन्न । ४. चतुराई (को०) । ५. पांडित्य । बुद्धिमत्ता (को०) । ६. गम्भीरता (को०) ।

धीरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] धीर होने का भाव । धीरसा ।

धीरपत्रो—सज्ञा स्त्री० [सं०] जमीकंद ।

धीरप्रशांत—सज्ञा पुं० [सं० धीरप्रशान्त] दे० 'धीरशांत' ।

धीरमति—वि० [सं० धीर + मति] धैर्यवान् । धीरज रखनेवाला ।

उ०—वे धरम धुंधर धीरमति सूर सिरामन सत जन ।—
ग्रज० प्र०, पृ० ६५ ।

धीरललित—सज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सदा बना-
ठना धीर प्रसन्नचित्त रहता हो ।

धीरवना—वि० प्र० [सं० धीर] धैर्य धरना । धीरतायुक्त होना ।
उ०—जह धीरा मन धीरवद, सउ मन भीतर छाह ।—ढोला०,
दू० २१६ ।

धीरशास्त्र—सज्ञा पुं० [सं० धीरशान्त] साहित्य में वह नायक जो
सुशील, दयावान्, गुणवान् धीर पुण्यवान् हो ।

धीरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ साहित्य में वह नायिका जो अपने
नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर व्यग्न से
कोप प्रकाशित करे । साने से अपना क्रोध प्रकट करनेवाली
नायिका । २ गुरिच । गिलोय । ३ काकोली । ४. माल-
कंगनी ।

धीरा^२—वि० [सं० धीर] मद । धीमा ।

धीरा^३—सज्ञा पुं० [सं० धैर्य] धीरज । धैर्य ।

धीराधी—सज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ [को०] ।

धीराधीरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो अपने
नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर कुछ गुप्त
धीर कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध जतला दे ।

धीरावी—सज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

धीरी—सज्ञा स्त्री० [?] भाख की पुतली ।

धीरे—क्रि० वि० [हि० धीर] १ आहिस्ते से । मद मद । धीमी
गति से । 'धीरे से' का उलटा । २ चुपके से । इस प्रकार
जिसमें कोई सुन या देख न सके । इस प्रकार जिसमें किसी
को आहत न मिले । जैसे,—धीरे से चल दो ।

धीरे धीरे—अव्य [हि० धीरे + धीरे] १. आहिस्ते । मद मद गति
से । क्रमशः । ३ धीमे स्वर से ।

धीरोदात्त—सज्ञा पुं० [सं०] १ साहित्य के अनुसार वह नायक जो
निरभिमान, दयालु, समाशील, बलवान्, धीर, दृढ़ धीर
योद्धा हो । जैसे, रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि । २ वीर-रस-
प्रधान नाटक का मुख्य नायक ।

धीरोदात्त—सज्ञा पुं० [सं० धीरोदात्त] दे० 'धीरोदात्त' । उ०—
जेण विषं प्रभेद जनाव धीरोदात्त धीरललिताहि घन ।—
वांकी० प्र०, भा० ३, ११५ ।

धीरोद्धत—सज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो बहुत प्रचंड
धीर चवन हो धीर दूसरे का गर्व न सह सके धीर सदा
अपने ही गुणों का बखान किया करे । जैसे, भीमसेन ।

धीरोद्धत—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धीरोद्धत' । उ०—जेण विषं
प्रभेद जताय धीरोदात्त धीर ललिताहि घन । धीर सात
धीरोद्धत घाव ।—वांकी० प्र०, भा० ३, पृ० १५० ।

धीरोष्णी—सज्ञा पुं० [सं० धीरोष्णिन्] एक विश्वदेव [को०] ।

धीर्ज—सज्ञा पुं० [सं० धैर्य] दे० 'धीरज' । उ०—धीर्ज शब्द सों छत्र
उजियारा, सुमत शब्द सों बल पसारा ।—कबीर सा०,
पृ० ६०२ ।

धीर्य—सज्ञा पुं० [सं०] कातर ।

धीर्य^२—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धैर्य' । उ०—भापा तर्पण देय धीर्य
छड़ता गहो । समा भील सतोष दया धारे रहो ।—मक्ति प०
पृ०, ७८ ।

धीलटि—सज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । कन्या [को०] ।

धीलटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । कन्या [को०] ।

धीवर—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धीवरी] १. एक जातिविशेष जो
प्राय मछली पकड़ने धीर बेचने का काम करती है । इस
जाति का छुआ जल द्विज लोग ग्रहण करते हैं । मछुवा
मल्लाह । केवट । उ०—सुनो, मैं शुक्रावतार का धीवर हूँ ।—
शकुंतला, पृ० १०१ । २. खिदमतगार । सेवक । ३. काला
मनुष्य । ४. मत्स्यपुराण के अनुसार एक देश । ५. उक्त देश
का निवासी ।

धीवरक—सज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह । मछुवा [को०] ।

धीवरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. मल्लाहिन । २. मछली मारने की
कटिया । ३. मछली रखने की टोकरी [को०] ।

धीहड़ो—सज्ञा स्त्री० [हि० धी] पुत्री । लटकी ।

धुंकार—सज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि + कार] जोर का शब्द । गरज ।
गड़गड़ाहट । उ०—धुंकार धौसन की बढ़ी हुंकार सुमिपतीन
यो ।—गोपाल (शब्द०) ।

धुंजा—वि० [हि० धुध] धुंधली । मददृष्टि । उ०—बिनु गोपाल
देरिनि मइ कुजै । "सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को मग जोवत
मंखियां भइ धुजै ।—सूर (शब्द०) ।

धुंद^१—सज्ञा स्त्री० [हि० धुध] दे० 'धुध' ।

धुद^२—सज्ञा पुं० [हि० दुद] दे० 'धुंद' ।

धुदा—वि० [हि० धुध] अघ ।

धुंदुल—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक पेड़ ।

विशेष—यह बंगाल धीर मलाबार में अधिकता से होता है ।
इसकी लकड़ी सफेद रंग की होती है धीर गाड़ियों के पहिए
तथा मेज कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है । इसके
फलों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो जलाया धीर
सिर में लगाया जाता है । इसमें से एक प्रकार का गोद भी
निकलता है ।

धुंध^१—सज्ञा स्त्री० [सं० धुध + ध्व] १. वह धंधेरा जो हवा में
मिली धूल के कारण हो ।

यौ०—धंधाधुंध ।

२. हवा में उड़ती हुई धूल । ३. आँख का एक रोग जिसके कारण
ज्योति मंद हो जाती है धीर कोई वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती ।

धुंध^२—वि० घना । अत्यधिक । उ०—साधो ऐसा धुंध धंधि-
यारा । इस घट अंतर बाग बगीचे इसी में सिरजनहारा ।—
कबीर सा०, भा० १, पृ० ६३ ।

धुंधक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुध' ।

धुंधकार—संज्ञा पुं० [हि० धुंधकार] १ धुंधकार । गरज । गडगड़ाहट ।
२ धधकार । धंधेरा ।

धुंधकारी—संज्ञा पुं० [सं० धुंधकारिन्] १ गोकर्ण के भाई का नाम जो अपने भाई से भागवत सुनकर तर गया था । २. उपद्रवी या घनाचारी व्यक्ति (ला०) ।

धुंधमई—वि० [हि० धुध + मई (प्रत्य०)] धुंधला । मलीन । जो साफ दिखाई न पड़े । स्पष्ट । उ०—धुधमई का मेला नाही, नहीं गुरु नहि चेला । सकल पसारा जिहि दिन नाही, जिहि दिन पुरुष मकेला ।—कवीर श०, भा० २, पृ० ६१ ।

धुंधमार—संज्ञा पुं० [धुधुमार] दे० 'धुधुमार' । उ०—बिक्रम में बिक्रम धरम सुत धरम में, धुधमार धीर में, धनेस धारी धन में ।—मतिराम प्र०, पृ० ३७३ ।

धुधमाल—संज्ञा पुं० [सं० धुधुमार] दे० 'धुधुमार' ।

धुंधरा—संज्ञा स्त्री [हि० धुध] १ गंदं गुबार । हवा में उड़ती हुई धूल । २. गंदं या धूल उड़ने के कारण होनेवाला धंधेरा । सारीकी ।

धुंधरि०—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धुधर' । उ०—दसौ दिसा धुधरि रहिय, जलद ओण धरवत ।—प० रासो, पृ० ३२ ।

धुंधु—संज्ञा पुं० [सं० धुधु] एक राक्षस का नाम जो मधु राक्षस का पुत्र था ।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि धुधु एक बार मरुभूमि में वात के नीचे छिपकर ससार को नष्ट करने की कामना से कठिन तपस्या कर रहा था । वह जब साँस लेता था तब उसके साथ धुंध्रा और भगारे निकलते थे, भूकण होता था और बड़े बड़े पहाड़ तक हिलने लगते थे । जब महाराज वृहदश्व वानप्रस्थ ग्रहण करके और अपने राज्य अपने लड़के कुवलयाश्व को लेकर वन की ओर जाने लगे तब महर्षि उत्तक ने जाकर उनसे धुध की शिकायत की और कहा कि यदि आप इस दुष्ट राक्षस को न मारेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा । वृहदश्व ने कहा कि मैं तो वानप्रस्थ ग्रहण कर चुका हूँ और अब भ्रम नहीं उठा सकता । हाँ, मेरा लड़का कुवलयाश्व उसे अवश्य मार डालेगा । तदनुसार कुवलयाश्व अपने सौ लड़कों को लेकर उत्तक के साथ धुधु को मारने चला । उस समय विष्णु ने भी लोकहित के विचार से उसके शरीर में प्रवेश किया था । कुवलयाश्व और उसके लड़कों को देखकर धुधु क्रोध में फुफकार छोड़ने लगा जिससे कुवलयाश्व के ६७ लड़के मारे गए । अंत में कुवलयाश्व ने उसे मार डाला । उसी से कुवलयाश्व का नाम धुंधुमार पड़ गया ।

धुधुकार—संज्ञा पुं० [हि० धुधु + कार] १ धधकार । धंधेरा । २ धुंधलापन । ३ नगाड़े का शब्द । धुधकार । उ०—घराघर हल घरघर धुधुकारन सौं धीर नर तजेंगे धरेया बल बाहु के ।—गुमान (शब्द०) ।

धुंधुमार—संज्ञा पुं० [सं० धुधुमार] १ राजा त्रिशंकु का पुत्र । २. कुवलयाश्व का एक नाम ।

विशेष—दे० 'धुधु' ।

धुंधुरि—संज्ञा स्त्री [हि० धुंध] गंदं गुबार या धूँ के कारण होनेवाला धंधेरा । उ०—ढोल बजाती गावती गीत मचावती धुधुरि धुरि के धारनि ।—द्विजदेव (शब्द०) । (ख) वीर धवीर की धुधुरि में कछु फेर सों कै मुख फेरि कै भाँकी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ग) विकट कटक सबि नल के चलत दल धुंधुरि प्रताप शिपी धूम मलिनार्ई है ।—गुमान (शब्द०) ।

धुंधुरित—वि० [हि० धुंधुर + इत (प्रत्य०)] १ धुंधला किया हुआ । धूमिल । उ०—मुवन धुधुरित धूलि धूलि धुधुरित सुधूमह ।—पद्माकर (शब्द०) । २. दृष्टिहीन । धुंधसी दृष्टिवाला । उ०—कलि गुलाल सौं धुधुरित सकल ग्वालिनो ग्वाल । रोरी मोड़न के सुमिस गोरी गहे गुपाल ।—पद्माकर (शब्द०) ।

धुंधूकार०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुधकार' । उ०—प्रलय होय जब धुधूकारा ।—कवीर सा०, पृ० २८८ ।

धुंधूकारि—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुधुकार' । उ०—प्रापि गुरु प्रापे ही चेला । धुधूकारि प्रभु रहै मकेला ।—प्राण०, पृ० ६७ ।

धुधसक०—वि० [हि०] दे० 'धुधसक' । उ०—प्रायो रक्षक जूधस को । धुधसक असुर बस कस को ।—नद० प्र०, पृ० २२७ ।

धुंध्राँ—संज्ञा पुं० [सं० धूमक] दे० 'धुध्राँ' ।

धुंध्राँस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुध्राँस' [को०] ।

धुंध्राँसाँ—संज्ञा पुं० [हि० धुध्राँ] अत्यधिक धूँध्रा लगने से उत्पन्न कालिख [को०] ।

धुंध्राँसाँ^१—वि० १. धुँ के कारण काला । २. धुँ के स्वाद का ।

धुंध्राँना—क्रि० सं० [हि० धुंध्राँ] धुँ से युक्त होना । अधिक धुंध्राँ के कारण काला होना ।

धुंध्राँयध—संज्ञा स्त्री [हि० धुंध्राँ] धुँ की गंध । धुँ के कारण उत्पन्न गंध ।

धुंध्राँरा—वि० [हि० धुंध्राँ] धुँ के रंग का काला ।

धुंध्री—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धुंध्री' ।

धुंध्रकार—संज्ञा स्त्री [सं० ध्वनि + कार] जोर का शब्द । गरज । गडगड़ाहट । उ०—कहै पद्माकर त्यों दुधुभी धुंध्रकार सुनि मकबक बोले यो गनीम मो गुनाही हैं ।—पद्माकर (शब्द०) ।

धुंध्रार—संज्ञा स्त्री [सं० धूँ + धाधार] बघार । तड़का । छौंक । उ०—तुरई बचेरे टेढ़स तरे । जीर धुंध्रार मेल सब घरे ।—जायसी (शब्द०) ।

धुंध्रारना^१—क्रि० सं० [हि० धुंध्रार] बघारना । छौंकना । तड़का देना । उ०—छोछ छबीली घरी धुंध्रारी । ऊहरे उठत आर की न्यारी ।—सूर (शब्द०) ।

धुंध्रारना^२—क्रि० सं० [धनु०] मारना । पीटना ।

धुंधला ०—वि० [हि०] दे० 'धुंधला' । उ०—उसका मस्तिष्क धुंधला हो गया ।—ज्ञानदान, पृ० १५७ ।

धुँध^७—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुँधुमि'। उ०—जोगी होइ निसरा जो राजा। सुन नगर जानहुँ धुँध बाजा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३६७।

धुँधका—संज्ञा पुं० [हिं० धूम्रा] दीवार या छत पर बना हुआ वह बड़ा छेद जो धूम्रा निकलने के लिये बनाया जाता है। धोषका। धुंधारा।

धुँधराना—क्रि० प्र० [हिं० धुँधला] दे० 'धुँधलाना'। उ०—नव-पल्लव दीखत धुँधराये। होम धुम्रा जिन ऊपर छाये।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

धुँधलका^१—वि० [हिं० धुँधलका] दे० 'धुँधला'। उ०—इस कारण उनकी कथाओं का वातावरण प्रायः रहस्यमय, धुँधलका और कुछ कुछ भय भोगा रोमांच जगा देनेवाला सा हो गया है।—शुक्ल प्रसि० प्र०, पृ० ६२।

धुँधलका^२—संज्ञा पुं० वह स्थिति जब कुछ उजाला और कुछ अंधकार के कारण चीजें धुँधली दिखती हैं। यह स्थिति सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय से पूर्व हम्रा करती है।

धुँधला—वि० [हिं० धुध+ला] १ कुछ कुछ काला। धूएँ के रंग का। २. अस्पष्ट। जो साफ दिखाई न दे। ३ कुछ कुछ अंधेरा। मुहा०—धुँधले का वक्त = वह समय जब कुछ अंधेरा हो जाय और स्पष्ट दिखाई न दे। बहुत सवेरे या संध्या का समय।

धुँधलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुँधला+लाई (प्रत्य०)] दे० 'धुँधलापन'।

धुँधलाना—क्रि० प्र० [हिं० धुँधला]। धुँधला पढ़ना।

धुँधलापन—संज्ञा पुं० [हिं० धुँधला+पन] धुँधले या अस्पष्ट होने का भाव। कम दिखाई देने का भाव।

धुँधली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूँधल+ई (प्रत्य०)] दे० 'धुध'।

धुँधली^२—वि० स्त्री० [हिं० धुध] अस्पष्ट। धूमिल। वह दृष्टि जिससे कम दिखाई दे। उ०—प्राज्ञ जब ब्राह्मण ने प्राकृति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुएँ से उसकी दृष्टि धुँधली हो रही थी, प्राकृति अग्नि ही में पड़ी।—शकुंतला, पृ० ६७।

धुँधियाला—संज्ञा पुं० [हिं० धुँधला] धुँधलापन। अंधेरा। उ०—ज्यों मोन शिशिर में धुँधियाली बन व्यथा किया करती श्रीढा।—दीप०, पृ० १०६।

धुँधुआँ—संज्ञा पुं० [हिं० धुधु] धुम्रा निकलने के लिये छत में बना हुआ मोखा या बड़ा छेद।

धुँधुआना—क्रि० प्र० [हिं० धुम्रा] धुएँ के साथ जलना। धुम्रा देते हुए जलना।

धुँधुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुँधुरि] १. गंदे गुबार से उत्पन्न अंधेरा। २. धुँधलापन। ३. घाँस का धुध नामक रोग।

धुँधुरी—वि० [हिं०] दे० 'धुँधुली'। उ०—धुँधुरी दिस दिस सबग दिस। दिशि पीत सु पत्तिय अढ़ निस।—पृ० रा०, २४। १८४।

धुँधुवाना^७—क्रि० प्र० [सं० धूम्र, हिं० धुम्रा] धुम्रा देना। धुम्रा दे देकर जलना। उ०—बिता ज्वाल शरीर बन दावा ली,

लगी जाय। प्रगट धुम्रा नहि देखिए उर अंतर धुँधुवाय।—गिरिधर (शब्द०)।

धुँधेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुध या धुधुरि] धुँध। गंदे गुबार के कारण होनेवाला अंधेरा। उ०—दिग्गज दबत दबकत दिग्गपाल भूरि, धूरि की धुँधेरी सों अंधेरी घामा भानु की।—गुमान (शब्द०)

धुँधेला^१—संज्ञा पुं० [हिं० धुध+ऐला (प्रत्य०)] १. बदमाश। पावो। २. दगाबाज। धोखेबाज।

धुँवाँ—संज्ञा पुं० [सं० धूम] दे० 'धुम्रा'।

धुँवाँकश—संज्ञा पुं० [हिं० धुँवा+कश] दे० 'धुम्राँकश'।

धुँवादान—संज्ञा पुं० [हिं० धुँवा+फा० दान (प्रत्य०)] दे० 'धुम्रादान'।

धुँवाधार^१—वि० [हिं० धुम्राधार] दे० 'धुम्राधार'।

धुँवाधार^२—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'धुम्राधार'।

धुँध—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव'। उ०—उवरयो नाक सु नाग धुम्र दिव अस्तुति परमान।—पृ० रा०, १। १६६।

धुँध्रा^१—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] १. सुलगती या जलती हुई चीजों से निकलकर हवा में मिलनेवाली भाप जो कोयले के सूक्ष्म अणुओं से लदी रहने के कारण कुछ नीलापन या कालापन लिए होती है। धूम। उ०—बिता ज्वाल शरीर बन दावा लगी लगी जाय। प्रगट धुम्रा नहि देखिए उर अंतर धुँधुवाय।—गिरिधर (शब्द०)।

धुँध्रा^२—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] १. धुम्रा होना। धुम्रा फैलना। (२) शोरगुल। हल्ला गुल्ला। उ०—गरमागरम कचोड़ी मसाले-दार चिल्लाते धुम्रा धक्कड़ मचाते हलुवाई लोग अपनी ठूकान की नोकियों बढ़ाते चले जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४।

क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—होना।

मुहा०—धुएँ का धोरहर = थोड़े ही काल में मिटने या नष्ट होनेवाली वस्तु या आयोजन। अणुभंगुर वस्तु। उ०—(क) कविरा हरि की भक्ति बिन धिक जीवन ससार। धुम्रा का सा धोरहर जात न लागे बार।—कवीर (शब्द०)। (ख) धुम्रा को सो धोरहर देखि तू न भूले रे।—तुलसी (शब्द०)। धुएँ के बादल उड़ाना = भारी गप हाँकना। झूठ मूठ बड़ी बड़ी बातें कहना। धुम्रा देना = (१) सुलगती हुई वस्तु का धुम्रा छोड़ना। धुम्रा निकालना। जैसे,—यह तेल जलने में बहुत धुम्रा देता है। (२) धुम्रा लगाना। धुम्रा पहुँचाना। जैसे,—उसकी नाक में मिर्चों का धुम्रा दो। धुम्रा निकालना या काटना = बढ़ बढ़कर बातें कहना। शेखी हाँकना। उ०—जस अपने मुँह काढ़े धुम्रा। चाहेसि परा नरक के कुम्रा।—जायसी (शब्द०)। धुम्रा रमना = धुएँ का छाया रहना। धुम्रा सा मुँह होना = चेहरे की रंगत उड़ जाना। चेहरा फीका पड़ जाना। लज्जा से मुख मलिन हो जाना। (किसी वस्तु का) धुम्रा होना = काला पड़ना। भाँवरा होना। धूमला होना। मुँह धुम्रा होना = दे० 'धुम्रा सा मुँह होना'।

२. घटाटोप । उमड़ती हुई वस्तु । भारी समूह । ३. घुरा । घञ्जी । उ०—घुमाँ देखि खरदूपण केरा । जाय सुपनखा रावण प्रेरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—घुएँ उठाना = घञ्जियाँ उठाना । छिन्न भिन्न करना । टुकड़े टुकड़े करना । नाश करना । घुएँ बखेरना = दे० घुएँ उठाना ।

धुआँकश—सञ्ज्ञा पु० [हि० घुमाँ + कश (= खीचना)] भाप के जोर से चलनेवाली नाव या जहाज । मगिनबोट । स्टीमर ।

धुआँदान—सञ्ज्ञा पु० [हि० घुमाँ + सं० प्राधान से हि० प्रत्य० दान] छत में घुमाँ निकलने के लिये बना हुआ छेद । चिमनी ।

धुआँधार^१—वि० [हि० घुमाँ + धार] १. घुएँ से भरा । घूममय । २. गहरे रंग का । भटकीला । तड़क भटक का । भव्य । ३. घुएँ का सा । कासा । स्याह । ४. बड़े जोर का । बड़े वेग का और बहुत अधिक । प्रचंड । घोर । जैसे, घुमाँधार वर्षा, घुमाँधार घटा, घुमाँधार नशा । उ०—मट्टो नहि सिल लोढ़ा नहि घोरधार । पलकन की फेरन में चढ़त घुमाँधार ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ८७ ।

धुआँधार^२—क्रि० वि० बड़े वेग से और बहुत अधिक । बहुत जोर से । जैसे, घुमाँधार बरसना ।

धुआँना—क्रि० प्र० [हि० घुमाँ से नामिक धातु] घुएँ से बस जाना । अधिक घुएँ में रहने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ जाना (पकवान आदि के लिये) ।

धुआँयँध^१—वि० [हि० घुमाँ + गंध] जिसमें घुएँ की महक बस गई हो । घुएँ की तरह महकनेवाला ।

धुआँयँध^२—सञ्ज्ञा स्त्री० घन्त न पचने के कारण घानेवाली डकार । घूम ।

धुआँरा—सञ्ज्ञा पु० [हि० घुमाँ + रा (प्रत्य०)] छत में घुमाँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या सिडकी । चिमनी ।

धुआँस—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुवाँस' ।

धुआँसा^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० घुमाँ] घर की छत में जमी हुई घुएँ की कजली । प्राग जनने के स्थान के ऊपर की छत में जमा कालिख या धूमाँ ।

धुआँसा^२—वि० घुएँ से बसा हुआ । धाँस ठीक न लगने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ा हुआ (पकवान आदि के लिये) ।

धुआँ^३—सञ्ज्ञा पु० [हि०] नाश । मरण ।

घुई^३—सं० स्त्री० [हि०] दे० 'घुई' । उ०—घर्घं पुड लिलाट रेखा चक्र भ्रम सुहावन । चंद्रहास सिंगार वीरी घुई ध्यान जराबन ।—पलद०, भा० ३, पृ० ६४ ।

धुकंतो^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] प्राग । मग्न । जवाला । दाह । उ०—विणजारा री भाह जिडे, गया धुकती मेल्ह ।—ढोला०, दू० १६३ ।

धुक—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कलाबत्तू बटने की सलाई ।

—सञ्ज्ञा पु० [प्रनु०] १. भय आदि की प्राशका से

होनेवाली चित्त की अस्थिरता । घबराहट । २. प्रागा पीछा । पसोपेश ।

धुकड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी थैली । बटुआ ।

धुकधुकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [धुक धुक से प्रनु०] १. वक्षस्थल का वह भाग जो नीचे होता है । पेट और छाती के बीच का भाग जो कुछ गहरा सा होता है । २. कलेजा । हृदय । ३. कलेजे की घड़कन । कप । उ०—प्राज धुकधुकी मे मेरी भी ऐसा ही उद्दीप्त मतीत ।—साकेत, पृ० २८३ । ४. डर । भय । खौफ ।

क्रि० प्र०—लगना ।

५. एक गहना जो गले में पहना जाता है और छाती पर लटकता रहता है । पदिक । जुगनू ।

धुकना^३—क्रि० प्र० [हि० झुकना] नीचे की ओर ढलना । निहुरना । नवना । उ०—डगमगात गिरि परत पद्म पर भुव भ्राजत नदलाल । जनु श्रीधर श्रीधरत प्रधोमुख धुकत धरनि मानो नमि नाख ।—सूर (शब्द०) । २. गिर पड़ना । उ०—(क) सेत उसास नयन जल भरि भरि धुकि जु परो धरि धरणी ।—सूर (शब्द०) । (ख) रुड पर रुड धुकि परे धरि धरणि पर गिरत ज्यों सग करि बज्र वारे ।—सूर (शब्द०) । ३. वेग से दूटना । झपटना । दूट पड़ना । उ०—(क) तुलसिदास रघुनाथ नाम धुनि अकनि गीध धुकि धायो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मानो प्रतच्छ परबत की नभ लोक लसी कपि ज्यों धुकि धायो ।—तुलसी (शब्द०) । ४. घातकित होना । अस्त होना । सबडाना । उ०—राजन राव सबे उमराव खुमान की धाक धुके यों कहैं हैं ।—भूषण प्र०, पृ० १२७ ।

धुकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनी' । उ०—मुगध को धुकनी से मल्लान नाकों में दम भा गया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२ ।

धुका—सञ्ज्ञा पु० [प्रनु०] एक प्रकार का बाजा । उ०—बाजे बाजन झूझि के, धुका दमामा भरि ।—चित्रा०, पृ० १६१ ।

धुकाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धमकना] धुंधकार । धुकार । घोर शब्द । गड़गड़ाहट का शब्द । उ०—सेपद समर्थ भूप प्रलो मकबर दल, चलत वजाय मारु दुहुमी धुकान की ।—गुमान (शब्द०) ।

धुकाना^३—क्रि० सं० [हि० धुकना] १. झुकाना । नवाना । उ०—भूषण को भ्रम औरग के सिब भौसिला भूप की धाक धुकाए ।—भूषण प्र०, पृ० ६५ । २. गिराना । ठकेलना । ३. पछाड़ना । पटकना । उ०—करत सरस जल केलि कबहू मीनहि गहि लावत । कबहू हूँ असवार धाय डह्दार धुकावत ।—सुदन (शब्द०) ।

धुकाना^३—क्रि० सं० [सं० धूम + करण] धुनी देना ।

धुकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [धु से प्रनु०] १. नगाड़े का शब्द । उ०—दं दुहुमी धुकार गगन महँ बरसे फूल अमाने ।—रघुराज (शब्द०) ।

२. ध्वनि । धावाज । उ०—भननात गोलिन की भनक अनु धुनि धुकार भिलीन की ।—हिम्मत०, छंद ८० ।

धुकारी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धुकार + ई (प्रत्य०)] दे० 'धुकार' ।

धुकुरधुकुर—सञ्ज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'धुकुरधुकुर' ।

धुकना०—क्रि० प्र० [हि० धुकना] दे० 'धुकना' ।

धुक्करना—क्रि० प्र० [हि० धुकार] गरजना । बिल्लाना । चीखना । उ०—मदजल धार बरषत जिमि धाराधर, धक्कनि सौ धुक्करे धरनिधर धाए तैं ।—मति० प्र०, पृ० ३८६ ।

धुक्कारना०—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धुकाना' ।

धुखना०—क्रि० प्र० [हि० धुकना] जलना । भमकना । उ०—घडके डर कातर सीर धुखे ।—रा० रू० पृ० ३४ ।

धुगधुगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुकधुकी' ।

धुज०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्वज] दे० 'ध्वजा' ।

धुजटी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धुजटि] दे० 'धुजटि' ।

धुजा०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजा] १ दे० 'ध्वजा' । २ विष्णु के तलवे का झंडे का चिह्न । उ०—बिनवत जुग प्रफुलित जलज, करि कलि कैरु समान । धुजा भुजा की छाँह में, देह प्रभय पद दान ।—भारतेंदु प्र० भा० २, पृ० ६२६ ।

धुजाना०—क्रि० प्र० [सं० धुज (= कंपन), गुज० धुजवुं] १. कपित करना । उ०—मुगट उतार सुघट दसमुखरा, लेकर उघट धुजाई लका ।—रघु० रू०, पृ० १८० । २. उठाना । फैलाना । उ०—पगनि धरत मग धरनि धुजावें धुरि ।—हम्मीर०, पृ० २३ ।

धुजिनी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजिनी] सेना । फौज । उ०—कपि धुजिनी महँ वसे, धाय खल खलमल भयो न थोरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

धुज्ज०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्वज हि० धुज] दे० 'धुज' । उ०—गुजत निसान फहरात धुज्ज ।—ह० रासो, पृ० ८१ ।

धुङ्गी०—वि० [हि० धुङ्ग + गी] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, केवल धूल ही धूल हो ।

धुणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्वनि' । उ०—घासगु धरती धुणि प्रकाश । उधं कमल मुखि कीधा बिगासु ।—प्राण०, पृ० १३४ ।

धुत^१—वि० [सं०] १ कपित । हिलता हुआ । २ व्यक्त । तबा हुआ । ३ तिरस्कृत । डोटा या लताड़ा हुआ [को०] ।

धुत^२—अव्य० [हि०] दे० 'धुत' ।

धुतकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुतकार' ।

धुतकारना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धुतकारना' ।

धुताई०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूत + आई (प्रत्य०)] दे० 'धूतता' ।

धुतारा०—वि० [सं० धूत (= धुत) + हि० धारा (प्रत्य०)] धूत । धात्री । दुष्ट । उ०—पीसुन मिले सबहि धुतारा सबहीं शान लावनहारा ।—कबीर सा०, पृ० ५३७ ।

धुति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ हिलना । काँपना [को०] ।

धुत—सञ्ज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'धूत' ।

धुतूरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर] दे० 'धूतूरा' ।

धुत्ता—वि० [धनु०] वेहोश । वेसुष । नशे में चुर ।

धुत्ता^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूतता] धूतता । दगाबाजी । कपट । छल । क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।

धुत्ता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

धुधराना०—क्रि० प्र० [हि० धुंध] जलाना । उजाना । नष्ट करना । उ०—इन मुडियन मेरा घर धुधरावा ।—कबीर प्र०, पृ० ३१७ ।

धुधुक्का०—क्रि० प्र० [धनु०] दे० 'धधक्का' । उ०—जैहि विधि धधुक्क नाद भनाहद तेहि विधि सुरत लगावै ।—भीखा० शा०, पृ० १७ ।

धुधुकार—सञ्ज्ञा स्त्री० [धुधु से धनु०] १ धू धू शब्द का शोर । धोर शब्द । कड़ा शब्द । गरज के समान शब्द । उ०—बाजन भवाजन को कहाँ ली गनावे कोउ धमकनि धौसा की धुकारन सी धुधुकार ।—गोपाध (शब्द०) ।

धुधुकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुधुकार' । उ०—माची धौसन की धुधुकारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

धुधुकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'धुधुकार' ।

धुन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धून, धातुरूप धुनोति से] काँपने की क्रिया या भाव । कपन ।

धुन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धुनना] १ किसी काम को निरंतर करते रहने की प्रतिवार्य प्रवृत्ति । बिना प्रागा पीछा सोचे धीर रुके कोई काम करते रहने की इच्छा । लगन । जैसे,—प्राज कल उन्हें खपया पैदा करने की धुन है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—समाना ।

धुन^३—धुन का पक्का = वह जो आरम्भ किए हुए काम को बिना पूरा किए न छोड़े ।

२. मन की तरंग । मोज । जैसे,—धुन ही तो है, उठे और चल पड़े । ३ सोच । विचार । फिक्र । चिन्ता । खयाल । जैसे,—इस समय वे किसी धुन में बैठे हैं, उनसे बोलना ठीक नहीं ।

मुहा०—धुन समा जाना = विचार में आ जाना । मति निषिद्ध हो जाना । उ०—एक दिन धुन जो समाई तो प्राजाद मिरजा ऐन वक्त कचहरी से नदारत हो गए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५० ।

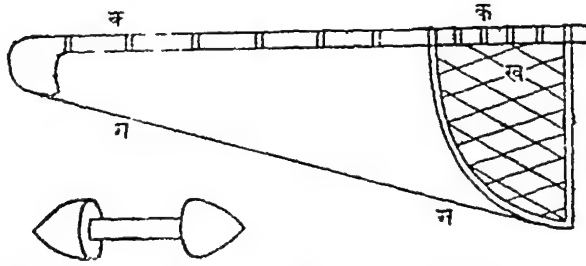
धुन^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] १ स्वरों के उतार चढ़ाव आदि के विचार से किसी गीत को गाने का ढंग । गाने का तर्ज । जैसे,—यह मजन कई धुनों में गाया जा सकता है । २. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । ३. दे० 'ध्वनि' ।

मुहा०—धुन धुन रोना = मिर धुन धुन कर रोना । अत्यधिक दुःखी होना । उ०—सुख तबि जम के बधि परे मुद धुने धुन रोत ।—प्राण०, पृ० २५३ ।

धुनकना—क्रि० सं० [धनु०] दे० 'धुनना' ।

धुनकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] ध्वनि । भावाज । स्वर । उ०—
पच शब्द धुनकार धुन, बाजै गगन निसान । —कबीर सा०
सं०, पृ० १० ।

धुनकी—संज्ञा स्त्री० [सं० धनुस्] १ धुनियों का वह धनुस् के
भाकार का औजार जिससे वे रई धुनते हैं । पिजा । फटका ।



विशेष—इसमें (दे० चित्र) क क हलकी पर मजबूत लकड़ी
का एक डंढा होता है और इसके सिरे पर काठ का एक और
टुकड़ा ख होता है । इस सिरे से क क लकड़ी के दूसरे सिरे
तक एक ताँत ग ग खूब कसकर बँधी होती है । धुननेवाला क
क डंढे को बाँए हाथ में पकड़कर उकड़ू बैठ जाता है और ताँत
को रई के ढेर पर रखकर उसपर बार बार प्रायः हाथ भर
सभी लकड़ी के एक दस्ते से, जिसके दोनों सिरे अधिक मोटे
और सट्टादार होते हैं और जिसे मुठिया, बेलन या हस्या
कहते हैं, धापात करता है जिससे रई के रेशे भलग भलग हो
जाते और बिनीले निकल जाते हैं । कभी कभी अधिक सुबोते
के लिये क क डंढे को ऊपर छत में लटकते हुए किसी छोटे
धनुस् से भी बाँध देते हैं ।

२ छोटा धनुस् जो प्रायः लड़कों के खेलने प्रयत्न कभी कभी
घोड़ी बहुत रई धुनने के भी काम में आता ।

धुनना—क्रि० सं० [हि० धुनकी] १ धुनकी से रई साफ करना
जिसमें उसके बिनीले भलग हो जायें, गंदें निकल जाय और
रेशे भलग भलग हो जायें । २. खूब मारना पीटना ।

मुद्दा०—धुन के रख देना = बहुत अधिक पीटना । बहुत मारना ।
उ०—तुम लोगों की कजा आई है । सब में धुन के रख
दूंगा । —फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०० । —सिर धुनना =
दे० 'सिर' के० मुद्दा० ।

सयों० क्रि०—डालना ।—देना ।

३ बार बार कहना । कहते ही जाना । जैसे,—तुम तो अपनी ही
धुनते हो, दूसरे की सुनते ही नहीं । ४ किसी काम को बिना रुके
बराबर करते जाना । जैसे,—धुने चलो सब घोड़ी हो दूर है ।

धुनवाना—क्रि० सं० [हि० 'धुनना' का प्रे० रूप] धुनने का काम
दूसरे से कराना । दूसरे को धुनने में प्रवृत्त कराना । २. संयोग
कराना (बाजारू) ।

धुनवी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनकी' ।

धुनही०—संज्ञा स्त्री० [सं० धनुष] धनुष । धनुही । उ०—तीन पनच
धुनहीं करन । बडे कटन तडीर ।—पृ० रा०, ७७६ ।

धुना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुनिया' ।

धुनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धुनना] १ पिटाई । मरम्मत । २ धुने
का पारिश्रमिक ।

धुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । उ०—वा जमुना के तीर सोई धुनि
आखिन आवे । —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३३२ ।

धुनि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] १ दे० 'ध्वनि' । उ०—भानन सरद
सुधाकर सम तसु बोले मधुर धुनि बानी ।—विद्यापति, पृ०
२१८ । २ चक्र और कुडखिनी शक्ति के संपर्क से उत्पन्न
ध्वनि । उ०—बाँधिया मूल देखिया अस्थूल, गगन गरजत धुनि
ध्यान लागी । —रामानंद०, पृ० ३ ।

धुनिया०—संज्ञा पुं० [हि० धुनिया] दे० 'धनिया' ।—बणरत्ना-
कर, पृ० १ ।

धुनिकारि०—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] दे० 'ध्वनि' । उ०—निर्भर
भरे मनहु दुधुनिकारि ।—प्राण०, पृ० १११ ।

धुनियाँ—संज्ञा पुं० [हि० धुनना] वह जो रई धुनने का काम करता
हो । देहवा ।

विशेष—भारत में प्रायः मुसलमान ही रई धुनने का काम
करते हैं ।

धुनिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनी' । उ०—कोठा ऊपर कोठरी,
जोगी धुनिया रमाया हो । भग मसूत लगायके जोगी रैन
गंवाया हो ।—कबीर सा०, भा० २, पृ० ७७ ।

धुनिहावा—संज्ञा पुं० [देश०] हड़्डी में का दर्द ।

धुनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

यौ०—सुरधुनी ।

धुनी०^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] दे० 'ध्वनि' ।

धुनी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनी' ।

धुनीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सागर । समुद्र ।

धुनेचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के सन का पीधा जिसे बगाल में
काली मिर्च की बेलों पर छाया रखने के लिये लगाते हैं ।

धुनेहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुनिया' ।

धुन्नना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'धुनना' । उ०—घम्म सुमिर निज
सीस धुन्नइ ।—कीर्ति०, पृ० १८ ।

धुन्नी०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्वनि' । उ०—बजे वाज भन्नेक
धुन्नी भपार ।—पृ० रा०, पृ० १७७ ।

धुपना—क्रि० प्र० [हि० धुलना] धुलना । धोना । उ०—(क)
सेहुँड को सों प्राँक तपाये प्रगट सखायो । नैन नीर सों
धुप्यो और हूँ जन चमकायो । —व्यास (शब्द०) । (ख)
मूरत नैन सभाय धूपै केहँ नहि धोये ।—व्यास (शब्द०) ।

धुपाना—क्रि० प्र० [हि० धूप (= सुगंधि द्रव्य)] धूप देना । धूप के
धूपे से सुवासित करना । उ०—मनसा मंदिर माहि धूप धुपाइये ।
प्रेम प्रीति की माल राम बढाइये ।—रै० बानी, पृ० ६६ ।

धुपाना^२—क्रि० सं० [हि० धूप (= सूर्यातप)] किसी चीज को सुखाने
भादि के लिये धूप में रखना । धूप दिखाना ।

धुपेना—संज्ञा स्त्री० [हि० धूप+एना (प्रत्यय०)] वह पात्र जिसमें प्रायः
रखकर ऊपर से धी डाल देते हैं । धूप सुलगाने का पात्र ।
धूपदानी ।

धुपेली—सका स्त्री० [हि० धूप + एषा (प्रत्य०)] गरमी में पसीने के कारण निकलनेवाली फुंसी। घोंघोरी। पिली।

धुपेली—सका स्त्री० [बोल०] धोखा। छल। प्रवचना।

धुपेली—सका स्त्री० [बोल०] धुपल।

धुपु—सका पुं० [हि०] दे० 'धूप'। उ०—बहु जागि न सोवै साइ न मुष्ठा जिसदे धुपु न छाही।—सुंदर ग्रं०, भाग १, पृ० २०६।

धुपु—वि० [सं० धूप, हि० धूप] क्रोध से जलते हुए। उ०—प्रतिसेन तहन्वर भावहते। मिल लाल खले धुप एक मते।—रा० रू०, पृ० ८१।

धुपली—सका पुं० [सं०] सहंगा। घवरा।

धुबिया—सका पुं० [हि०] दे० 'धोबी'। उ०—धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजें धोय।—पलटू०, भा० १, पृ० ४।

धुवे—वि० [हि० धूप (= प्रचंड) वेग] प्रबल (वेग)। मयकर। उ०—जबना राठोठा धुवे जग। उण दिसा भीम धायी भ्रमंग।—रा० रू०, पृ० ७३।

धुमई—वि० [सं० धूम + ई (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का। जिसका रंग धूएँ की तरह काला हो।

धुमई—सका पुं० [सं० धूम] वह बैल जिसका रंग धूएँ का सा हो।

विशेष—ऐसा बैल साधारणतः मजबूत और तेज समझा जाता है।

धुमक—सका स्त्री० [हि०] दे० 'धमक'। उ०—तदनंतर भठ कइसन, धुमक सम्मार—वरण०, पृ० १५।

धुमरा—वि० [सं० धूम + ई (प्रत्य०)] दे० 'धूमिल'।

धुमला—सका पुं० [सं० धूम + हि० ला (प्रत्य०)] जिसे दिखाई न दे। भवा।

धुमलाई—सका स्त्री० [हि० धूमिल + लाई (प्रत्य०)] १. धूमिल होने का भाव। २. भ्रमकार। घोंघेरा।

धुमारा—वि० [सं० धूम + आरा (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का। धूमिल।

धुमिला—वि० [हि०] दे० 'धूमिल'।

धुमिलना—क्रि० प्र० [हि० धूमिल] धूमिल होना। धुंधलाना।

धुमिलाना—क्रि० प्र० [हि० धूमिल से नामिक धातु] धूमिल करना। धुंधला करना।

धुमैला—वि० [हि०] दे० 'धूमिल' उ०—मुखज तावुन देई अघर सुरग लेइ सो काहे भेन धुमैला।—विद्यापति, पृ० ८४।

धुमैला—वि० [हि०] दे० 'धुमैला'।

धुमेली—वि० [हि० धूमिल] मस्पष्ट। धुंधली। उ०—छा। वर्ष तक हम लोग श्री नगर में रहे। मुझे वहाँ की बहुत ही धुमेली सी याद है।—अश्विनी, पृ० ४१।

धुम्म—सका पुं० [हि०] दे० 'धूम'। उ०—मुझाग भाग मेर नाग ५-३०

इंद्र दाग दमकय। बरन्त धुम्म धुम्मरं, सुरं पुरं सु धुम्भयं।—पृ० रा०, २। १४७।

धुम्मर—वि० [हि० धूमिल] धूमिल। धुंधला। उ०—मुझाग भाग मेर नाग इन्द्र दाग दमकय। बरन्त धुम्म धुम्मरं, सुरं पुरं सु धुम्भय।—पृ० रा०, २। १४७।

धुरंधर—वि० [सं० धुरन्धर] १. भार उठानेवाला। २. जो सब में बहुत बड़ा, भारी या बली हो। जैसे, धुरंधर पंडित। ३. श्रेष्ठ। प्रधान।

धुरंधर—सका पुं० १. बौद्ध होनेवाला जानवर। जैसे, बैल, खच्चर, गधा आदि। २. वह जो बौद्ध होता हो। बौद्ध होनेवाला कोई जीव। ३. रामायण के अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्त का मंत्री था। ४. धौ का पेड़।

धुर—सका स्त्री० [सं०] १. जूमा जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है। २. बौद्ध। भार। ३. गाड़ी आदि का धुरा। भक्ष। ४. खूँटी। ५. शीपेंस्थान। अच्छी और ऊँची जगह। ६. उंगली। ७. चिनगारी। ८. भाग। अंश। ९. धन। संपत्ति। १०. गंगा का एक नाम।

धुर—सका पुं० [सं० धुर] १. गाड़ी या रथ आदि का धुरा। भक्ष। २. शीपें या प्रधान स्थान। ३. भार। बौद्ध। उ०—जो न होत जग जन्म भरत को। सकल धर्म धुर धरणि भरत को।—तुलसी (शब्द०)। ४. प्रारंभ। शुरू। उ०—धुर ही ते छोटी छाये है लिए फिरत सिर भारी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—धुर सिर से = बिलकुल प्रारंभ से। बिलकुल शुरू से। जैसे,—तुमने बना बनाया काम बिगाड़ दिया, अब हमें फिर धुर सिर से करना पड़ेगा।

५. जूमा जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है। ६. जमीन की माप जो बिस्वे का बीसवाँ भाग होता है। बिस्वांसी। ७. प्रथम। उ०—जलवा काज नरुकी जादम। धुर ऊठी पतिबरत वणें धम।—रा० रू०, पृ० १७। ८. आसामी। उ०—बदले तुसरे वाणिज्य, धुर गोड़ा ले धान।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ६५।

धुर—अव्य० [सं० धुर] न उधर न अधर। बिलकुल ठीक। सटीक। सीधे। जैसे, धुर ऊपर, धुर नीचे। उ०—अंत पुर धुर जाय उतारें प्रारंभी। निरखि पुत्र को रूप सखा बिभारती।—रघुनाथ (शब्द०)। २. एक दम दूर। बिल्कुल दूर। उ०—मोती लादन पिय गए धुर पटना गुजरात।—गिरिधर (शब्द०)।

धुर—वि० [सं० धुर] पक्का। दृढ़।

धुरई—सका स्त्री० [हि० धुर + ई] कुरें के खमों आदि के बीच में बाड़े टिके हुए वे दोनों बाँस या लकी लकड़ियाँ जिनके जमीन पर वाले सिरे आपस में सटाकर मजबूती से बाँधे रहते हैं और दूसरे सिरे के बीच में वह छोटी लकड़ी या खूँटी जड़ी रहती है जिसमें गराही पहनाई होती है।

धुरकट—संज्ञा पुं० [हि० धुर (= सिर या आगे, आरंभ) + कुट (= कटौती या कूत)] वह लगान जो भसामी जमींदार को जेठ में पेशगी देते हैं ।

धुरकिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० घुरा + कील] गाड़ी में वह कील जो धुरी को घाँक से घटकाने के लिये भीतर की ओर धुरी के सिरे पर लगा दी जाती है ।

धुरचट—संज्ञा पुं० [?] अधिकता । प्रचुरता ।

धुरजटी(५)—संज्ञा पुं० [सं० घूर्जटि हि०] दे० 'घूर्जटि' ।

धुरड्डो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घुल्लेंडी' ।

धुरना(५)—क्रि० सं० [सं० घूर्ण] १. पीटना । मारना । २. बजाना । उ०—पहुँचे जाय राजगिरि द्वारे घुरे निशान सुदेश । —सूर(शब्द०) । ३. घाँटें हुए घान के पयास को भूसा बनाने के लिये फिर से दाना । पुष्पारी करना ।

धुरपद—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूपद' ।

धुरमुटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुरमुख' ।

धुरवा—संज्ञा पुं० [सं० घुर + वाह] बादल । मेघ । उ०—जाल-रघु मुख भगर घूम जनु जलघर धुरवा । —नद० ग्रं०, पृ० २०३ ।

धुरहट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घुल्लेंडी' । उ०—दोपहर को धुरहट्टा खेलने के समय नशे में रहने के कारण कुछ लोगों में दगा हो गया । —प्रसिद्ध, पृ० ९६ ।

धुरहरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घुल्लेंडी' । उ०—फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अग्नि बुझोरी । —भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ५०५ ।

धुरा—संज्ञा पुं० [सं० घूर] लकड़ी या लोहे का वह डंडा जो पहिए की गराही के बीचोबीच रहता है । वह डंडा जिसमें पहिया पहनाया रहता है और जिसपर वह घूमता है । भक्ष ।

धुरा—संज्ञा पुं० [सं०] मार । बोक ।

धुराधुर(५)—संज्ञा पुं० [हि० घुरा] सहारा । आधार ।

धुराना—संज्ञा पुं० [पुराना का अनु०] भत का । छोर का । उ०—अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे घराने घुराने डाग, बड़े घाघ यह खटराग लाए । —ठेठ० (उपोद्घात), पृ० २ ।

विशेष—इसका प्रयोग पुराना के साथ ही होता है । जैसे—पुराना घुराना । पुरानी घुरानी ।—

धुरियाधुरंग—वि० [देश०] वह गाना जो बाजे या साज के साथ न गाया जाय । जिस (गाने) को बाजे या साज की अपेक्षा न हो । २. फकेला । जिसके साथ और कोई न हो ।

धुरियाना—क्रि० सं० [हि० घूर] १. किसी वस्तु को धूल से ढँकना । किसी वस्तु पर धूल डालना । २. ऊँख के खेत को पहले पहल गोड़ना । ३. किसी ऐश या बदनामी को किसी मुक्ति से दबा देना ।

धुरियाना—क्रि० प्र० १. किसी चीज का धूल से ढँका जाना ।

२. ऊँख के खेत का पहले पहल गोड़ा जाना । ३. किसी ऐश या बदनामी का किसी प्रकार दबना या दबाया जाना ।

धुरियामल्लार—संज्ञा पुं० [देश० धुरिया + मल्लार] एक प्रकार का मल्लार जो सपूर्ण जाति का है और जिसमें सब कुछ स्वर लगते हैं ।

धुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घुरा] दे० 'घुरा' ।

धुरीण—वि० [सं०] १. बोक सँभालनेवाला । २. मुख्य । प्रधान । ३. धुरधर । ४. जिसे कोई काम सौंपा जाय । जिसे कोई उत्तरदायित्व प्रदान किया जाय ।

धुरीण—संज्ञा पुं० १. रथ आदि में जोते जानेवाले घोड़े आदि । २. कार्यभार सँभालनेवाला व्यक्ति । ३. प्रमुख व्यक्ति । प्रणाली पुरुष ।

धुरीन—वि० [सं० धुरीण] दे० 'धुरीण' ।

धुरीय—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'धुरीण' [को०] ।

धुरीराष्ट्र—संज्ञा पुं० [हि० घुरी + सं० राष्ट्र] प्रमुख राष्ट्र । बड़े देश । दूसरे महायुद्ध के पहले जर्मनी, इटली और जापान जिनका विश्व की राजनीति में एक गुट था ।

धुरेंडी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घुल्लेंडी' ।

धुरेटना(५)—क्रि० सं० [हि० घूर + एटना (प्रत्य०)] धूल से लपेटना । धूल से ढँकना । धूल लगाना । उ०—(क) सग कुँवरटे चाच पट को लपेटे भग मोरज धुरेते ये हैं वेते नदराय के । —दीनदयाल (शब्द०) । (ख) त्यों द्विजदेव छ नाहक ही मुख भोरे घने भरविद धुरेटत । —द्विजदेव (शब्द०) ।

धुरेता(५)—संज्ञा पुं० [हि० धूल] धूल ।

धर्मपान(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूमपान' । उ०—का जल सयन साधे निसु व्याकुल का धर्मपान धुंभा द्विग राता । —सं० दरिया, पृ० ६१ ।

धुर्य—संज्ञा पुं० [सं० घुर्य] १. ऋषभ नामक श्लेषवि जो लहसुन की तरह होती और हिमालय पर मिलती है । २. विष्णु । ३. बैल ।

धुर्य—वि० [सं० घुर्य] १. घुरंघर । २. श्रेष्ठ । ३. बोक देनेवाला ।

धुरी—संज्ञा पुं० [हि० घूर] किसी चीज का अत्यंत छोटा भाग । कण । रजकण । जरा । भुमा ।

मुहा०—धुरें उठाना या उड़ा देना = (१) किसी वस्तु के अत्यंत छोटे छोटे टुकड़े कर डालना । अस्त व्यस्त या नष्ट भष्ट कर डालना । बहुत दुर्गति करना । (२) बहुत अधिक मारना या पीटना । धुरें बिगाडना = दे० 'धुरें उठाना' ।

धुलना—क्रि० प्र० [हि० धोना का प्र० रूप] १. पानी की सहायता से साफ या स्वच्छ किया जाना । धोया जाना । जैसे,—कपड़े धुल गए हों तो ले आओ । २. लगातार पानी पड़ने या बहने से जमीन आदि का कटना ।

धुलवाना—क्रि० सं० [हि० धुलना का प्रे० रूप] धोने का काम दूसरे से कराना । किसी को धोने में प्रवृत्त करना ।

धुलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धोना] १. धोने का काम । २. धोने

का भाव । ३ धोने की मजदूरी । ४ मारने पीटने का काम ।
पिटाई (साक्ष०) ।

धुलाना—क्रि० सं० [सं० धूल] धोने का काम दूसरे से कराना ।
धुलवाना ।

धुलि०—उष्ण स्त्री० [हि०] दे० 'धूल' । उ०—धुलि क समूह,
भ्रमरानिल क वेग ।—वख०, पृ० १६ ।

धुलियापोर—संज्ञा पुं० [हि० धूल + फा० पोर] एक कल्पित पोर
जिसका नाम बच्चे खेल आदि में लिया करते हैं ।

धुलियामिटिया—वि० [हि० धूल + मिट्टी] १० जिसपर धूल या
मिट्टी पड़ी हो भयवा डाली गई हो । २. दबाया या शांत
किया हुआ (भगड़ा बखेड़ा आदि) ।

धुलेंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूल + उड़ाना या धूल + हाड़ी] १. हिंदुओं
का एक त्योहार जो होली जलने के दूसरे दिन चैत बदी
१ को होता है । इस दिन प्रातःकाल लोग होली की राख
मस्तक पर लगाते और दूसरी पर धबीर गुलाल आदि
सूखे चूर्ण डालते हैं । उ०—फिर तो धुलेंडी मच जाती है ।
कौचड, गोबर राख कुछ नहीं बचने पाता ।—शुक्ल अभि०
प्र०, पृ० १४० । २ उक्त त्योहार का दिन ।

धुव०—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव' । उ०—ध्रुव ते ऊँच
पेम ध्रुव उवा । सिर दे पाउ देह सो छुवा ।—जायसी प्र०
(गुप्त), पृ० २०२ ।

ध्रुव^१—संज्ञा पुं० [हिं०] कोष । क्रोध । गुस्सा ।

ध्रुवकाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्रुवक] गीत का पहला पद । टेक ।

ध्रुवच्छर०—वि० [सं० ध्रुव + चक्षर] भविनाथी । भविनश्वर ।
उ०—सनकादिक रिषदेव हस मोहनी ध्रुवच्छर ।—सुजान०,
पृ० ३ ।

ध्रुवन^१—संज्ञा पुं० [सं०] घाग ।

ध्रुवन^२—वि० चलानेवाला । कंगनेवाला । हिलानेवाला ।

ध्रुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुम, हिं० ध्रुवा] दे० 'ध्रुमा' । उ०—नवपल्लव
दीप्त ध्रुवाए, होम ध्रुवा जिन ऊपर आए ।—लक्ष्मणसिंह
(शब्द०) ।

ध्रुवाँकश—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्रुवाँकश' ।

ध्रुवाँधार—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ध्रुवाँधार' ।

ध्रुवाँधज०—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुमध्वज] अग्नि । (हिं०) ।

ध्रुवाँरा—संज्ञा पुं० [हिं० ध्रुवाँ+द्वार] छत में ध्रुवाँ निकलने के लिये
बना हुआ छेद या खिडकी । चिमनी ।

ध्रुवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० ध्रुव + माप] या ध्रुमसी] उरद का
घाटा जिससे पापह या कचोड़ी बनती है ।

ध्रुवाना—क्रि० सं० [हिं० 'धोना' क्रिया का प्रे० रूप] दे० 'धुलाना' ।

ध्रुवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का पखा
जो हिरन के चमड़े आदि से बनाया जाता था और जिसका
व्यवहार याज्ञिक लोग यज्ञ की घाग दहकाने के लिये करते
थे । २ ताड़ का पखा (को०) ।

ध्रुस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] धतुरा [को०] ।

ध्रुस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] धतुरा ।

ध्रुस्स—संज्ञा पुं० [सं० ज्वस] १ गिरे हुए घरों की मिट्टी या ईंट
पत्थर का ढेर । मिट्टी आदि का ऊँचा ढेर । टीला । २. नदी
आदि के किनारे पर बाँधा हुआ बाँध । बंद । ३ चौड़ या
ठोकर जिसमें खून न निकले ।

ध्रुस्सा—संज्ञा पुं० [सं० द्विषाट] मोटे ऊन की लोई जो मोढ़ने के
काम आती है ।

धूँकल०—संज्ञा पुं० [?] उपद्रव । उ०—सुरक घड़ा नव तेरही
तेरह साख कमध । इल धूँकल कलि ऊपजे ज्याँ कपिदल
दसकध ।—रा० रू०, पृ० ७० ।

धूँड़ना०—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'हूँड़ना' । उ०—वम्भन आया
धूँड़त धूँड़त लगत लगत गाँव में ।—दक्खिनी०, पृ० ४५ ।

धूँण०—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुन' । उ०—रज्जब पीवे धूँण
दे । दीरघ दावे गाय ।—रज्जब०, पृ० १० ।

धूँघ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुघ' । उ०—बूम धूँघ छाई घर प्रवर
चमकत बिच बिच जाल ।—सूर (शब्द०) ।

धूँघय०—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुंघ' । उ०—मिरे भय घोम सु
धूँघय भार ।—पृ० रा०, १६।२२० ।

धूँघर^१—वि० [सं० ध्रुघ] धुँधला ।

धूँघर^२—संज्ञा स्त्री० १ हवा में छाई हुई धूल । उ०—भिर पिचकारी
की मचो भाँधी उड़त गुलाल । यह धूँघरि धँसि लीजिए पकरि
छबीने लाल ।—सं० सप्तक, पृ० ३६० । २ अंधेरा जो हवा
में छाई हुई धूल के कारण हो । ३. धूमधाम । उत्सव । उ०—
धूँघर करो भली हिलि मिलि कै प्रभाधुध मचो री । न सूक्त
कछु चहुँ प्रीरी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७६२ ।

धूँघरि०—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूँघर' । उ०—धूँघरि बिलक
चौघ बीघ चौघ सों टिकै ।—घनानंद, पृ० ४४ ।

धूँघरी—वि० स्त्री० [हिं० धूँघर] दे० 'धूँघली' । उ०—कुसुम धूरि
धूँघरी सु कुजै ।—नंद० प्र० पृ० १६५ ।

धूँघला^१—वि० [हिं० धूँघला] दे० 'धूँघला' ।

धूँघाना०—क्रि० प्र० [हिं० धूँघ] धुँघा देना । धुँघा देते हुए
घोरे घोरे जलना । उ०—दव की दाघी लाकड़ी सिलग सिलग
धूँघाय ।—राम० घमं०, पृ० १६ ।

धूँधूँकार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धूँधूँकार' । उ०—उनमन जोगी
दसवै द्वार । नार व्यद ले धूँधूँकार ।—गोरख०, पृ० ४७ ।

धूँसा^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोसा' ।

धूँ^१—वि० [सं० ध्रुव] स्थिर । प्रचल ।

धूँ^२—संज्ञा पुं० १. ध्रुव तारा । २. दे० 'ध्रुव' । उ०—रामकथा
वरनी न बनाय, सुनी कथा प्रहलाद न धूँ की ।—तुलसी
(शब्द०) । ३. धुरी । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्वामी
को समयो अब नीको हिलि मिलि केलि मटल भई धूँ पर ।—
स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

धूँ^३—संज्ञा पुं० [?] सिर । उ०—पृथुल महान बाते सुनि धूँ धून्यो
करे ।—नट०, पृ० ६६ ।

धू^१—सषा स्त्री० [सं० दुहिता] दे० 'घी' । उ०—पिगल राजा
तास धू मेल्हा पाकह पास ।—ढोसा०, दू० १६६ ।

धू^२—सषा पुं० [हि०] दे० 'धुम्रा' ।

मुहा०—धूमां घक्क मवाना=हलचल वेदा करना । उपद्रव
करना ।

धू^३—सषा पुं० [हि०] दे० 'धुम्रावार' ।

धू^४—सषा स्त्री० [हि० धूमा] धूनी ।

धू^५—सषा पुं० [सं०] १. वायु । २. धूर्त मनुष्य । ३. काल । ४.
धनि (को०) ।

धू^६—सषा पुं० [प्रा० दूक (=तफसा)] कलाबत्तू बटने की सलाई ।
धू^७—सषा पुं० [हि० दुकना] किसी भीर बढ़ना या
झुटना । उ०—हस्ती घोड घाह जो धूका । ताहि कीन्ह सो
रहिर भसका ।—जायसी (शब्द०) ।

धू^८—सषा पुं० [सं० धूजटि] शिव । महादेव ।

धू^९—सषा स्त्री० [हि०] दे० 'धूस' । उ०—मोठी धूड मिलाविया,
ते सादूस समांम ।—बांकी० प्र०, भा० १, पृ० ३५ ।

धू^{१०}—सषा स्त्री [हि०] दे० 'धूल' । उ०—खाजे बावू हण्णहा, धूडि
मरेसी मूठि ।—ढोसा०, दू० ३६१ ।

धू^{११}—सषा पुं० [सं०] धूप का धुम्रा या धूनो (को०) ।

धू^{१२}—वि० [सं०] १. कपित । कपता हुआ । धरधराता हुआ । डग-
मगाता हुआ । हिलता हुआ । २. जो धमकाया गया हो ।
जो डाँटा गया हो । ३. त्यक्त । छोड़ा हुआ । ४. तर्कित ।
सुविचारित । उ०—घो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत ।—अपरा,
पृ० २०२ ।

धू^{१३}—वि० [सं० धूत] धूर्त । दगाबाज । उ०—(क) ऐसेई
जन धूत कहावत ।—सूर (शब्द०) । (ख) समय सगुन मारग
मिरहि छन मलीन खल धूत ।—तुलसी (शब्द०) ।

धू^{१४}—वि० [सं० धावन] दोड़ा हुआ । दोड़कर पहुँचा हुआ ।
उ०—धूत दूत कलधीत सन हंस सरूप विराज ।—पु० रा०,
२५ । ८२ ।

धू^{१५}—सषा पुं० [सं० धूत] जुपा । उ०—कं करि चोरी धूत हि
खेसी । कं काहू को गुस्सा खेखी ।—वरण० बानी,
पृ० २१८ ।

धू^{१६}—वि० [सं०] पापमुक्त । निष्पाप । पवित्र (को०) ।

धू^{१७}—सषा पुं० [सं०] १. सदाचार । २. सहिचार । सद्गुण (को०) ।

धू^{१८}—सषा पुं० [हि० धूत] धूर्तता करना । धोखा देना ।
ठगना । उ०—(क) हों तेरे हो संग जरीगी यह कहि त्रिया
पूति धन सायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) सत्य वचन मानस
विमल कपट रहित करतूति । तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न
कसियुग पूति ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) तुम गलानि
जिय जानि करहु समुक्ति मातु करतूति । सात कैकहि दोष
नहि गई गिरा मति पूति ।—तुलसी (शब्द०) ।

धू^{१९}—वि० बंधना करनेवासी । धसनेवासी । उ०—इनके वेप

मात्र पूतना । महापापिनी जगत धूतना ।—मद० प्र०,
पृ० २७३ ।

धू^{२०}—वि० [सं०] जिसके पाप दूर हो गए हों । जो पाप या दोष
से रहित हो गया हो ।

धू^{२१}—सषा स्त्री० [सं०] काशी की एक पुरानी छोटी नदी या नाला
जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पंचगंगा के पास
गंगा में मिलती थी । यह नदी अब पट गई है ।

विशेष—काशीखंड में इसके माहात्म्य के संबंध में एक कथा है ।
पूर्व काल में वेदशिरा नामक एक ऋषि वन में तपस्या कर
रहे थे । उस वन में शुचि नाम की एक अम्बरा को देख मुनि
ने कामातुर होकर उसके साथ सम्भोग किया । सम्भोग से धूत
पापा नाम की कन्या उत्पन्न हुई । पिता की आज्ञा से वह कन्या
घोर तप करने लगी । अंत में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे शर
दिया तू ससार में सबसे पवित्र होगी, तेरे रोम रोम में सत्र
तीर्थ निवास करेंगे । एक दिन धूतपापा को अकेले देख धर्म
नामक एक मुनि उससे विवाह करने के लिये कहने लग । धूत
पापा ने पिता की आज्ञा लेने के लिये कहा । पर धर्म बार-
बार उसी समय गांधर्व विवाह करने का हठ करने लगे । इस
पर धूतपापा ने क्रुद्ध होकर शाप दिया, 'तुम जड़ नद होकर
बहो' । धर्म ने धूतपापा को शाप दिया, 'तुम पत्थर हो जाओ' ।
पिता ने जब यह वृत्तांत सुना तब कन्या से कहा, 'अन्या
तू काशी में चंद्रकांत नाम की जिला होगी । चंद्रोदय होने पर
तुम्हारा शरीर द्रवीभूत होकर नदी के रूप में बहेगा और तुम
अत्यंत पवित्र होगी । उसी स्थान पर धर्म भी धर्मनंद होकर
बहेगा और तुम्हारा पति होगा ।

महाभारत (भीष्म पर्व ६ अ०) में भी धूतपापा नाम की एक
नदी का उल्लेख है पर कुछ विवरण नहीं है । इससे कहा नहीं
जा सकता कि इसी नदी से अभिप्राय है या किसी दूसरी से ।

धू^{२२}—सषा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या ।

धू^{२३}—सषा स्त्री० [हि०] दे० 'धूर्तता' । उ०—माता सों इन कीन्ही
धूता ।—कबीर सा०, पृ० २४८ ।

धू^{२४}—वि० [हि०] दे० 'धूर्त' । उ०—धूतारा ते जे धूर्त प्राप,
भिय्या भोजन नहीं सताप ।—गोरख०, पृ० १६ ।

धू^{२५}—सषा स्त्री० [हि० धूत] धूर्तता । छल । कपट ।

धू^{२६}—सषा स्त्री० [सं०] १. कपन । हिलना । २. हवा करना । ३.
हठयोग के मतगंत शरीरशुद्धि की एक क्रिया (को०) ।

धू^{२७}—सषा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया । उ०—बाँस बटेर सब घोर
सिचान । धूती व चिप्पका बटक मान ।—सूदन (शब्द०) ।

धू^{२८}—सषा स्त्री० [हि०] दे० 'धूधर' । उ०—मैं भई धूधल तू
सुरज मेरा ।—माधवानन्द०, पृ० १६६ ।

धू^{२९}—सषा पुं० [अनु०] प्राग के दहकने का शब्द । प्राग की सपट
उठने का शब्द । उ०—चार जने मिल खाट उठाइन चहुँ दिख
धूधू कठल हो । कहल कबीर सुनो भाई साधो जग से नाथा
छूटल हो ।—कबीर सा०, भा० १, पृ० ३ ।

धून'—वि० [सं०] १. कपित । २. गरमी भयवा प्यास से पीड़ित (को०) ।

धून^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दून' ।

धूनक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाने हुलानेवाला । चालाक । २. साल का गोंद । राल । ३. धूप ।

धूनन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हवा । २. कंपन । ३. विचलन । क्षोभ (को०) ।

धूनना^(१)—क्रि० सं० [हि० धूनी] धूनी देना । किसी वस्तु को जलाकर उसका धुआँ उठाना । सुलगाना । जलाना । उ०—
पाँवरनि पाँवड़े परे हैं पुर पोरि लगी धाम धाम धूपनि के
धूम धूनियत हैं ।—देव (शब्द०) ।

धूनना^२—क्रि० सं० [हि० धुनना] दे० 'धुनना' ।

धूना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धूनी] गुग्गुलु की जाति का एक बड़ा पेड़ जो आसाम तथा खसिया की पहाड़ियों पर बहुल होता है ।

विशेष—इसका गोंद भी धूप की तरह जलाया जाता है और यह वारनिश बनाने के काम में आता है ।

धूना^२—सञ्ज्ञा [हि०] दे० 'धूनी' । उ०—पद्म नाम हरी पद
सुना । छठवाँ चदर अघर पर धूना ।—घट०, पृ० १६ ।

धूनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हिलाना । कंपना (को०) ।

धूनित^(१)—वि० [हि०] दे० 'ध्वनित' । उ०—ताकरि सब बन
धूनित कियो । काहू माँक रह्यो नहिं हियो ।—नद० प्र०,
पृ० २६३ ।

धूनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूर्ई] १. गुग्गुलु, लोबान आदि गन्धद्रव्यों या और किसी वस्तु को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । धूनी । धूप ।

मुहा०—धूनी देना = गन्ध मिश्रित या विशेष प्रकार का धुआँ उठाना या पहुँचाना । जैसे, इसे मिर्चों की धूनी दो तो भूत छोड़ेगा ।

२. वह भाग जिसे साधु या तो ठंड से बचने के लिये भयवा शरीर को तपाने या कष्ट पहुँचाने के लिये अपने सामने जलाए रहते हैं । साधुओं के तापने की भाग । उ०—विरहाग्नि
धूनी चारों ओर लगाई ।—भारतेन्दु प्र०, भा० १, पृ० ४५६ ।

मुहा०—धूनी जगना या लगना = (साधुओं के पास की) (१) भाग जलना । (२) शरीर तपाना । तप करना । (३) साधु होना । विरक्त होना । योगी होना । धूनी रमाना = (१) सामने भाग जलाकर शरीर तपाने बैठना । तप करना । (२) साधु हो जाना । विरक्त हो जाना । घर बार छोड़ देना ।

धूनी^(२)—सञ्ज्ञा, पुं० [हि०] दे० 'धुनिया' । उ०—रज मोद बकी
करवकी कमान । धुने तूल धूनी मनो कट्टु यान ।—पृ० रा०,
१२ । ३१६ ।

धूप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. देवपूजन में या सुगन्ध के लिये कपूर, भाग, गुग्गुलु, आदि गन्धद्रव्यों को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । सुगन्धित धूम ।

क्रि० प्र०—देना ।

२. गन्धद्रव्य जिसे जलाने से सुगन्धित धुआँ उठता और फैलता है । जलाने पर महकनेवाली चीज ।

विशेष—धूप के लिये पाँच प्रकार के द्रव्यों में से किसी न किसी का व्यवहार होता है—(१) निर्गन्ध अर्थात् गोंद । जैसे, गुग्गुलु, राल । (२) चूर्ण । जैसे, जायफल का चूर्ण । (३) गन्ध । जैसे, कस्तूरी । (४) काष्ठ । जैसे, अमर की लकड़ी । (५) कृत्रिम अर्थात् कई द्रव्यों के योग से बनाई हुई धूप । कृत्रिम धूप कई प्रकार की होती है, जैसे, पचाग धूप, अष्टाग धूप, दशाग धूप, द्वादशाग धूप, षोडशाग धूप । इनमें से दशाग धूप अधिक प्रसिद्ध है जिसमें दस चीजों का मेल होता है । ये दस चीजें क्या क्या होनी चाहिए इसमें मतभेद है । पद्मपुराण के अनुसार कपूर, कुष्ठ, अमर, चन्दन, गुग्गुलु, फेसर्, सुगन्धबाला तेजपत्ता, खस और जायफल ये दस चीजें होनी चाहिए । साराश यह कि साल और सलई का गोंद, मेनसिल, अमर, देवदार, पचाख, मोचरस, मोया, जटामासी इत्यादि सुगन्धित द्रव्य धूप देने के काम में आते हैं ।

धूप^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १. सूर्य का प्रकाश और ताप । धाम । आतप । जैसे,—धूप में मत निकलो ।

मुहा०—धूप खाना = इस स्थिति में होना कि धूप ऊपर पड़े । धूप में गरम होना या तपना । जैसे,—(क) चार दिन धूप खायगी तो लकड़ी सूख जायगी । (ख) जाड़े में लोग बाहर धूप खाते हैं । धूप खिलाना = धूप में रखना । धूप लगने देना । धूप चढ़ना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश और ताप फैलना । धाम प्राना । धूप पड़ना = सूर्य का ताप अधिक होना । धूप में बाल या तूँड़ा सफेद करना = बूढ़ा हो जाना और कुछ जानकारी न प्राप्त करना । बिना कुछ अनुभव प्राप्त किए जीवन का बहुत सा भाग बिता देना । धूप लेना = गरमी के लिये शरीर को धूप में रखना । धूप ऊपर पड़ने देना । जैसे, जाड़े में धूप लेने के लिये बाहर बैठना ।

२. चौड़ा या धूप सरल नाम का वृक्ष जितने गन्धविरोजा निकलता है । वि० दे० 'चौढ़' ।

धूपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धूप आदि सुगन्धित वस्तुएँ बेचनेवाला । गद्दी (को०) ।

धूपघड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूप + घड़ी] एक यंत्र जिससे धूप में समय का ज्ञान होता है ।

विशेष—काठ या धातु का एक गोल चक्कर बनाकर उसके चार भाग कर से और एक एक भाग में छह छह समान भाग करे और उस चक्कर की कोर थोड़ा छोड़ दे । उस कोर में साठ भाग करे और बीच में एक एक ग्रंथुल चौड़ी दो पट्टियाँ ऐसी लगावे जिनसे उस चक्कर के चार विभाग पूरे हो जायें । दोनों पट्टियाँ जहाँ मिलें वही बीचोबीच एक छेद करके एक कील लगा दे और धुबक की सुई से या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक जान ले । उस स्थान के बितने प्रकाश हों उतनी यह कील उत्तर की ओर उठी रहे । उस कील की छाया मध्याह्न से पहले पश्चिम की ओर और मध्याह्न के पीछे पूर्व की ओर पड़ेगी । मध्याह्न के बिन्दु से

पश्चिम की ओर जिस चिह्न पर छाया हो उतनी ही घड़ी मण्डप में घटती जाने। इसी प्रकार पूर्व का भी जान ले।

धूपछाँव—सब्बा स्त्री० [हि० धूप + छाँव] धूप और छाया। प्रकाश और छाया।

मुहा०—धूपछाँव होना = कभी धूप कभी छाया की तरह बराबर बदलते रहना। उ०—जमाना क्या धूपछाँव है। यही जोगिन अभी कल तक खाना खराब थी आज यह ठाठ है कि सदहा बादमी इनके सबब से परिवर्तित पाते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १।

धूपछाँह—सब्बा स्त्री० [हि० धूप + छाँह] एक रंगीन कपड़ा जिसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़ता है कभी दूसरा।

विशेष—यह कपड़ा इस प्रकार बुना जाता है कि ताने का सूत एक रंग का होता है और बुने का दूसरे रंग का। इसी से देखनेवाले की स्थिति और कपड़े की स्थिति के अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा। दो रंगों में से एक रंग लाल होता है, दूसरा हरा, नीला या बैंगनी।

यौ०—धूपछाँह का रंग = दो इस प्रकार मिले हुए रंग कि एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़े, कभी दूसरा।

धूपछाँही—वि० [हि० धूपछाँह] विविध। वह रूप जिसमें एक प्रकट होता है और दूसरा छिपता है। उ०—उन सभी साहित्यकारों की दायाँ में भोज, शक्ति, भाषा तथा सरल भाषा के अनेक धूपछाँही रूप सजीव हो उठे हैं।—इति०, पृ० २२।

धूपट—क्रि० वि० [?] पूर्ण रूप से। उ०—धूपट तीनों लोक घुजायो, जेत करो जम दीत।—रघु०, पृ० २११।

धूपदान—सब्बा स्त्री० [हि० धूपदान] १. धूप रखने का डिब्बा या बरतन। २. वह बरतन जिसमें गंधद्रव्य या धूपबत्ती रखकर सुगंध के लिये जलाई जाती है। अगियारी।

धूपदानो—सब्बा स्त्री० [हि० धूपदान] धूप रखने का छोटा बरतन।

धूपन—सब्बा पुं० [सं०] [वि० धूपित] १. धूप देने की क्रिया। गंधद्रव्य जलाकर सुगंधित धुआँ उठाने का कार्य। २. धूप द्रव्य (को०)। ३. केतु का अदर्शन (ज्योतिष) (को०)।

धूपना—क्रि० प्र० [सं० धूपन] धूप देना। गंधद्रव्य जलाना।

धूपना—क्रि० प्र० धूप देना। गंधद्रव्य जलाकर सुगंधित धुआँ पहुँचाना। सुगंधित धुआँ से बासना। उ०—बारन धूपि भगारन धूपि के धूम अंधारी पसारी महा है।—मतिराम (शब्द०)।

धूपना—क्रि० प्र० [सं० धूपन (= सतप्त वा आत होना)] दोड़ना। हैरान होना।

विशेष—केवल समस्त पद में इसका प्रयोग होता है।

यौ०—दोड़ना धूपना।

धूपपात्र—सब्बा पुं० [सं०] धूप रखने का बरतन। वह बरतन जिसमें गंध द्रव्य जलाकर धूप देते हैं।

धूपबत्ती—सब्बा स्त्री० [हि० धूप + बत्ती] मसाला लगी हुई सीक या बत्ती जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठकर फैलता है।

धूपवास—सब्बा पुं० [सं०] स्नान के पीछे सुगंधित धुआँ से शरीर, बाल आदि बासने का कार्य।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवासी स्नान के उपरांत कुछ काल सुगंधित धुआँ में रहकर गीले शरीर या बाल को सुखाते थे जिसमें वह सुगंध से बस जाय। रघुवश, मेघदूत आदि कान्यों में इस प्रथा का उल्लेख है।

धूपवृक्ष—सब्बा पुं० [सं०] सलई या गुग्गुलु का पेड़ जिसका गोंद धूप की सामग्री है। सरल वृक्ष।

धूपसरल—सब्बा पुं० [सं० सरल] चीड़ का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० 'चीड़'।

धूपग—सब्बा पुं० [सं० धूपग] सरल का पेड़ (को०)।

धूपायित—वि० [सं०] १. सुगंधित धुआँ से बसा हुआ। धूप दिया हुआ। २. चलने आदि से थका हुआ। हैरान। आत और सतप्त।

धूपिक—सब्बा पुं० [सं०] धूप आदि सुगंधित वस्तुएँ बेचनेवाला।

धूपित—वि० [सं०] १. धूप दिया हुआ। सुगंधित धुआँ से बसा हुआ। उ०—सेज बसन सब धूपित करे।—नद० प्र०, पृ० १५५। २. चलने आदि से थका हुआ। हैरान। आत और सतप्त।

धूम—सब्बा पुं० [सं०] १. धुआँ। धूमाँ।

पर्या०—मरुद्वाह। खतमाख। शिखिध्वज। अग्निवाह। तरी।

२. अजीर्ण या अपच में उठनेवाली डकार। ३. विशेष प्रकार का धुआँ जिसका कई रोगों में सेवन कराया जाता है।

विशेष—सुश्रुत ने पाँच प्रकार के धूम कहे हैं—प्रायोगिक (जो मसाले से लपेटो हुई सीक जलाने से हो), स्नेहन (जो बत्ती में मसाला छपेटकर घी या तेल में जलाने से हो), वैरेचन (जो पिप्पली, विडंग, अपामार्ग इत्यादि नस्य द्रव्यों की बत्ती से हो), कासघ्न (जो काकडासिगी, कटकारी, वृहती आदि कासघ्न औषधों की बत्ती से हो), और वामनीय (जो स्नायु, चमड़े, सींग, सूखी मछली या कृमि आदि को जलाने से हो)।

४. धूमकेतु। ५. उल्कापात। ६. एक ऋषि का नाम।

धूम—सब्बा स्त्री० [सं० धूम (= धूमाँ)] १. बहुत से लोगों के इकट्ठे होने, जाने जाने, शोर गुल करने, हिलने डोलने आदि का व्यापार। रेलपेल। हलचल। भाँदोलन। जैसे, मेले तमाशे की धूम, उत्सव की धूम। लूटमार की धूम।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

२. हल्ला और उछल कूद। उपद्रव। उत्थाप। ऊधम। जैसे,—यहाँ धूम मत मचाओ, और जगह खेले। उ०—बदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

मुहा०—धूम बालना = ऊधम करना। हल्ला गुल्ला करना। उ०—तेरे रखसार व कद में धूम छासा है गुलिस्ताँ में। उधर बुलबुल सिसकती है इधर कुमरी बिलकती है।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४३।

३. भीड़ भाड़ और तैयारी। ठाट वाट। समारोह। भारी आयोजन। जैसे,—बारात बड़ी धूम से निकसी। उ०—घाई धाम धाम धूम धोसा की धुकार धूरि।—हम्मोर०, पृ० २४।

यौ०—धूमघडका । धूमधाम ।

४. कोलाहल । हल्ला । शोर । उ०—दृष्ट्यो धनुष धूम भइ भारी ।—कवीर सा०, पृ० ३७ । ५. चारो ओर सुनाई देने वाली चर्चा । जनरव । शोर । प्रसिद्धि । जैसे,—शहर में इस बात की बड़ी धूम है ।

मुहा०—धूम होना=धक या प्रतिष्ठा होना । प्रभाव होना । उ०—स्वर्ग में हमारी धूम थी ।—चुमते० (दो दो बातें), पृ० १ ।

धूम^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो तालों में होती है ।

धूमक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ । २. एक शाक का नाम ।

धूमकधूया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० धूम] उछल कूद और हल्ला गुल्ला । उपद्रव । उत्पात । शोरगुल ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

धूमकेतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है) । १. केतु ग्रह ।

धूमकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है) । २. केतुग्रह (जिसका चिह्न है धुएँ या भाप के आकार की पुँछ) । पुच्छल तारा ।

विशेष—दे० 'केतु' ।

३. शिव । महादेव । ४. वह घोड़ा जिसकी पूँछ में भँवरी हो ।

विशेष—ऐसा बड़ा बहुत प्रमंगल समझा जाता है ।

५. रावण की सेना का एक राक्षस । उ०—कुमुल, प्रकपन, कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

धूमगंधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूमगन्धि] रोहिण तृण । रूसा घास ।

धूमगन्धिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूमगन्धिक] धूमगन्धि [को०] ।

धूमग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राहुग्रह ।

धूमज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. (धुएँ से उत्पन्न) बादल । २. मुस्तक । मोथा ।

धूमजांगल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूमजाङ्गल] वज्रसार + नोसादर ।

धूमजात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बादल । उ०—रख रखे भीहें सतर नहि सोहे ठहरात । मान हितु हरि बात तें धूमजात लों जात ।—स० सप्तक, पृ० २६७ ।

धूमदर्शी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूमदर्शिन] वह मनुष्य जिसकी आँख के सामने धुआँ सा दिखाई पड़ता हो । धुँधला देखनेवाला आदमी ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार धुँधला दिखाई पड़ने का रोग शोक, श्रम और सिर की पीड़ा के कारण होता है ।

धूमघडका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धूम + घड़ाका] भीड़ भाड़ और तैयारी समारोह । भारी आयोजन । ठाट बाट । जैसे,—न्याह में धूम घडका मत करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूमधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । प्राग ।

धूमधाम—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० धूम + धनु० धाम] भीड़ भाड़ और तैयारी । ठाट बाट । समारोह । भारी आयोजन । जैसे,—

बड़ी धूम धाम से सवारी निकली । उ०—धूमधाम धु धारित भूमि असमान न सुज्झै ।—हम्मीर०, पृ० ३१ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूमधामी—वि० [हिं० धूमधाम] १. धूमधाम से युक्त । तड़क भड़क-वाला । २. घाटवरपूर्ण । दिखावटी ।

धूमध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । प्राग ।

धूमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केतु का मदर्शन या अस्पष्टता [को०] ।

धूमप—वि० [सं०] केवल होम का धुआँ पीकर तपस्या करनेवाला [को०] ।

धूमपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ निकलने का रास्ता । २. पितृपान ।

धूमपान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार विशेष प्रकार का धुआँ जो नख के द्वारा रोगी को सेवन कराया जाता है ।

विशेष—नेत्ररोग तथा फोड़े फुसी आदि में सुश्रुत ने कुछ मसालों तथा औषधियों के धुएँ को नल के द्वारा मुँह में खींचने का विधान बताया है ।

२. तमाकू, छुरट आदि पीने का कार्य ।

धूमपोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धुआँकस । अग्निबोट ।

धूमप्रभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नरक जो सदा धुएँ से भरा रहता है ।

धूमयोनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] (धुएँ से उत्पन्न) बादल ।

धूमरी^१—वि० [हिं०] दे० 'धूसल' । उ०—धूमर धूलि मान रग जोती ।—हिं० क० का०, पृ० २२३ ।

धूमर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूम्र] दे० 'धूम्र' । उ०—उरग ठोढ़ जिण रा रिषां आश्रम जाग धूमर जागिया ।—रघु० रू०, पृ० १२६ ।

धूमरज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. घर का धुआँ । २. घर के धुएँ की कालिख जो छत और दीवार में लग जाती है ।

धूमरी^३—वि० [सं० धूम्र] [वि० स्त्री० धूमरी] कृष्ण लोहित वर्ण का । धुएँ के रंग का । कालापन लिए हुए लाल । सुँघनी रंग का ।

धूमरि^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का खेल । वि० दे० 'धूमर' । उ०—बड़े खिरकि में धूमरि खेलत ।—नद० प्र०, पृ० ३८७ ।

धूमरी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा [को०] ।

धूमल^६—वि० [सं०] धुएँ के रंग का । लालिमा युक्त काले रंग का । सुँघनी रंग का ।

धूमल^७—सञ्ज्ञा पुं० १. बँगनी रंग । २. एक वाद्य [को०] ।

धूमलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] टेढ़े मेढ़े धुएँ की राशि । कुंचित धूमराशि [को०] ।

धूमला—वि० [सं० धूमल] [स्त्री० धूमली] १. धुएँ के रंग का । ललाई लिए काले रंग का । सुँघनी रंग का । २. धुँधला । जो चटकीला न हो । जो धोख न हो । ३. जिसकी कात्ति मंद हो । मसिन । उ०—जैसे, यह बात सुनते ही उसका जेहरा धूमला पड़ गया ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

धूमली^८—वि० [हिं० धूमिल] धुँधला । धूमिल । उ०—धूमली रत्ति में बंक पग, मनोँ चद ह्वै विस्तरिय ।—पू० २^४, ११।३५३ ।

धूमली^२—कि० सं० [?] कँपाना । हिलाना । उ०—घजा पताप
रूमली, समूह सेन समली । दर्शित दूत दोरय, करे सनाह
खोरय ।—पृ० रा०, २।११५ ।

धूमवान्—वि० [सं० धूमवत्] [स्त्री० धूमवती] जिसमें या जहाँ धुमा हो । धुएँ वाला ।

विशेष—बाहुल्य या अधिकता के अर्थ में धूमि विशेषण होता है ।

धूमसहति—सङ्घ स्त्री० [सं०] समगति [को०] ।

धूमसपूत^७—सङ्घ पुं० [हि० धूम + सपूत] मेघ । उ०—मुदिर
बलाहक तडितपति कामुक धूमसपूत ।—अनेकार्थ०, पृ० ८२ ।

धूमसार—सङ्घ पुं० [सं०] घर का धुमा ।

धूमसी—सङ्घ स्त्री० [सं०] १ धुमास । उरद का भाँटा ।

विशेष—यह शब्द भावप्रकाश में मिलता है, किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं, इससे गड़ा हुआ जान पड़ता है ।

२ उरद का बड़ा (को०) ।

धूमांग^१—वि० [सं०] समान [जिसका अंग धुएँ के समान हो ।

धूमांग^२—सङ्घ पुं० शीतल का पेड़ ।

धूमाक्ष—वि० [सं०] [स्त्री०] धूमाली [धुएँ के रंग की भाँखीवाला (को०)] ।

धूमाग्नि—सङ्घ पुं० [सं०] बिना ज्वाला या लपट की भाग (जैसी लपट निकल जाने पर गोहरे या उपले की होती है) ।

धूमाभ—वि० [सं०] धुएँ के रंग का ।

धूमायन—सङ्घ पुं० [सं०] १ धुमा देना । आप देना । २ गरमी । क्षाप [को०] ।

धूमायमान—वि० [सं०] धुएँ से परिपूर्ण [को०] ।

धूमावती—सङ्घ स्त्री० [सं०] दश महा विद्याओं में से एक देवी ।

विशेष—तंत्रों में इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है । एक बार पार्वती को बहुत भूख लगी और उन्होंने महादेव से कुछ पाने को माँगा । महादेव ने थोड़ा ठहुरने के लिये कहा । पर पावती सुधा से भरपूर पातुर होकर महादेव की निगल गई । महादेव को निगलने पर पावती के शरीर से धुमा निकलने लगा । अंत में महादेव ने प्रकट होकर कहा—‘तुमने जब हमें साधा तब दिखया हो चुकी । हमारे वर से तुम इस वेश में पूजा आयोगी ।’ धूमावती देवी का ध्यान बड़ा मलिन और भयंकर बनाया गया है ।

धूमिका—सङ्घ स्त्री० [सं०] कोहरा [को०] ।

धूमित^१—वि० [सं०] १ लज्जित धुमा लगा हो । २ जो धुएँ से धुँधला हो गया हो (को०) ।

धूमित^२—सङ्घ पुं० उर्ध्व के अनुसार वह दूषित मन्त्र जो सादे प्रक्षरों का हो ।

धूमिता—सङ्घ स्त्री० [सं०] वह दिशा जिसमें सूर्य जानेवाला हो ।

धूमिनो—सङ्घ स्त्री० [सं०] २० ‘धूमी’ [को०] ।

धूमिला^७—वि० [सं० धूमिल] १. धुएँ के रंग का । सलाई लिए

काला रंग का । २. धुँधला । उ०—मुख भरविद धार मिलि
सोभित धूमिल नील भगाध । मनहु बाल रवि रस समोर
संकित तिमिर कूट ह्वै भाध ।—सूर (शब्द०) ।

धूमिलता—सङ्घ स्त्री० [हि० धूमिल + ता (प्रत्य०)] धूमिल होने का भाव । धुँधलापन । उ०—तुम विश्वास करो मेरे कवन तन, चदन मन पर, धूमिलता की रेख नहीं सग पाएगी ।—ठहारा, पृ० ४३ ।

धूमो^१—वि० [सं० धूमिन्] जिसमें या जहाँ बहुत धुमा हो । धुएँ से भरा हुआ ।

विशेष—जहाँ बाहुल्य या अधिकता का भाव नहीं होता वहाँ धूमवान् रूप होता है ।

धूमो^२—सङ्घ स्त्री० १. भजमीठ की एक पत्नी का नाम । २. अग्नि की एक जिह्वा का नाम ।

धूमोत्थ^१—वि० [सं०] धुएँ से निकला हुआ ।

धूमोत्थ^२—सङ्घ पुं० वज्रधार । नौसादर ।

धूमोद्गार—सङ्घ पुं० [सं०] अजीर्ण या अपच के कारण आनेवाली धुएँ की सी कड़वी डकार ।

धूमोपहत^१—सङ्घ पुं० [सं०] एक रोग [को०] ।

धूमोपहत^२—वि० धुएँ के कारण जिसका गला घुट गया हो [को०] ।

धूमोर्णा—सङ्घ स्त्री० [सं०] १. यमपत्नी । २. मार्कंडेय पत्नी ।

धूम्या—सङ्घ स्त्री० [सं०] धूमराणि [को०] ।

धूम्याट—सङ्घ पुं० [सं०] एक पक्षी । भिंगराज नाम की एक चिड़िया । शृंग ।

धूम्र^१—वि० [सं०] धुएँ के रंग का । कृष्णलोहित । ललाई लिए काले रंग का । सुँधनी या भूरे रंग का । बैंगनी ।

धूम्र^२—सङ्घ पुं० १. कृष्णलोहित धुएँ । ललाई लिए काला रंग । सुँधनी या भूरा रंग । २. शिलारस नाम का गन्धद्रव्य । ३. एक असुर का नाम । ४. शिव । महादेव । ५. मेढ़ा । ६. कुमार के एक अनुचर का नाम । ७. फलित ज्योतिष में एक योग का नाम । ८. मानिक या लाल का धुँधलापन जो एक दोष समझा जाता है । ९. राम की सेना का एक भालू । १०. पाप (को०) । ११. शरारत । दुष्टता (को०) । १२. ऊँट (को०) ।

धूम्रक—सङ्घ पुं० [सं०] ऊँट ।

धूम्रकांत—सङ्घ पुं० [सं० धूम्रकान्त] एक रत्न या नग का नाम ।

धूम्रकेतु—सङ्घ पुं० [सं०] भरतराजा के पुत्र का नाम (भागवत) ।

धूम्रकेश—सङ्घ पुं० [सं०] १. राजा पृथु के एक पुत्र का नाम । २. कृष्णाश्व का एक पुत्र जो अग्नि नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था (भागवत) ।

धूम्रपत्रा—सङ्घ स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम जो आयुर्वेद में तीता, रुचिरारक, गरम, अग्निदीपक तथा क्षोष, कृमि और खाँसी को दूर करनेवाला माना गया है ।

पर्या०—सुलभा । स्वयमुवा । धूम्रपत्रा । धूम्राक्षी । कृमिघ्नी ।

धूम्रपान—संज्ञा पुं० [सं० धूम्रपान] दे० 'धूमपान' [को०] ।
 धूम्रमलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली नामक लुण ।
 धूम्ररक्त—वि० [सं० धूम्ररक्त] कृष्ण लोहित वर्ण का [को०] ।
 धूम्रलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कबूतर । २. शुभ नामक दानव का एक सेनापति ।

विशेष—शुभ निशुंभ के वध के लिये जब देवी ने एक परम सुंदरी का रूप धारण करके कहा था कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा उसे मैं वरमाता पहनाऊँगी तब शुभ ने उन्हें पकड़ने के लिये इसी धूम्रलोचन को भेजा था ।

धूम्रलोहित^१—संज्ञा पुं० [सं०] शकर । शिव [को०] ।
 धूम्रलोहित^२—वि० गहरा लाल या गुलाबी [को०] ।
 धूम्रवर्ण^१—वि० [सं०] घुएँ के रंग का । ललाईपन लिए काला । धूमला ।
 धूम्रवर्ण^२—संज्ञा पुं० १ घुएँ का रंग । ललाई लिए काला रंग । २. लोबान [को०] ।
 धूम्रवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] माँद में रहनेवाला एक जानवर । लोमड़ी [को०] ।

धूम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।
 धूम्रशूक—संज्ञा पुं० [सं०] कंठ ।
 धूम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार की ककड़ी । २. दुर्गा [को०] ।
 ३ सूर्य की बारह कलाओं में से एक [को०] ।
 धूम्राक्ष^१—वि० [सं०] जिसकी आँखें धूमले रंग की हों ।
 धूम्राक्ष^२—संज्ञा पुं० १ रावण का एक सेनापति जो राम-रावण-युद्ध में हनुमान के हाथ से मारा गया था । २. विदुर्वंशीय राजा हेमचंद्र के पुत्र । (भागवत) ।

धूम्राक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रे रंग का मोती [को०] ।
 धूम्राट—संज्ञा पुं० [सं०] धूम्याट पक्षी । भिगराज ।
 धूम्राभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. वायुमंडल [को०] ।
 धूम्राचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओं में से एक । (शारदातिथक) ।

धूम्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।
 धूम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।
 धूर^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूल' । उ०—मानुष हो कोइ मुवा नहि मुवा सो डगर धूर ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६५ ।
 धूर^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जाति ।
 धूर^३—प्रत्यय [हिं०] दे० 'धूर' । उ०—गवं गुमान में जो है पूरा रहै सदा सो धूर धूम्रा ।—कबीर सा०, पृ० ५८६ ।
 धूरकट—संज्ञा पुं० [हिं०] कलान का कुछ पेशगी बिसे प्रसामी जेठ प्रसाइ में कभीकर लो लेते हैं ।

धूरजटी^१—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि' ।
 धूरडोमर—संज्ञा पुं० [देश०] सोंगनाला चोपाया । डोर ।

धूरत^१—वि० [सं० धूर्त] दे० 'धूर्त' । उ०—कपट रूप तुझ सो मिले करि धूरत का भेष ।—अर्थ०, पृ० ४४ ।

धूरतताई^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूरत + ताई (प्रत्यय०)] धूर्तता । छल । उ०—धूरतताई करि नदलाल ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६८ ।

धूरधान—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + धान] धूल की राशि । गर्द का ढेर । उ०—बानन के बाहिबे को कर में कमान कसि धाई धूरधान आसमान में मढ़े लगी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

धूरधानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूरधान] १ गर्द की ढेरी । धूल की राशि । २ ध्वंस । विनाश । उ०—लंकपुर जारि, मकरी विदारि वार वार जातुधान धारि धूरधानी करि डारी है ।—तुलसी (शब्द०) । ३ पथरकला बढ़क ।

धूरवा^१—वि० [हिं०] दे० 'ध्रुव' । उ०—तीजे सुनी जब धूरवा सीति, कछु बिभिचार को मारग लीजे ।—नट०, पृ० ५६ ।

धूरसंभार^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धूल + संघा] गोधूली का समय । संघा ।

धूरा—संज्ञा पुं० [हिं० धूर] १ धूल । गर्द । २ चूर्ण । बुकनी । धूरा ।

मुहा०—धूरा करना या देना = शीत से अंग सुन्न होने पर गरम राख, सोंठ की बुकनी आदि मलना । धूरा देना = इधर उधर की बात कहकर या चापलूसी करके गों पर लाना । अपने अनुकूल करना । बहकाना । धोखा देना ।

धूरि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि] दे० 'धूल' । उ०—कंठके कवलु कलेवर मुख माखल धूरि ।—विद्यापति, पृ० २६५ ।

मुहा०—धूर लपेटा मानिक = धूलि में लिपटने से छिपा हुआ मानिक । सामान्य वेश में असामान्य जन । उ०—फेरे भेख रहै मा तपा । धूरि लपेटा मानिक छपा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६ ।

धूरिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [हिं० धूरि + क्षेत्र] पृथ्वी । धरती । उ०—धूरिक्षेत्र में आइ कमं करि, हरिपद पावे ।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६ ।

धूरियावेला—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + वेला] एक प्रकार का बेला ।

धूरिया मल्लार—संज्ञा पुं० [हिं० धूर + मल्लार] मल्लार राग का एक भेद ।

धूरीण^१—वि० [हिं०] दे० 'धूरीण' । उ०—धूरीण विद्वान् बना दिया ।—कबीर ग्रं०, पृ० २४७ ।

धूर्जटि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । मद्वादेव ।

धूर्जटी—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि' । उ०—जटी, पिनाकी, धूर्जटी, नीलकण्ठ, मृदु, सोद ।—नंद० ग्रं०, पृ० ६२ ।

धूर्त^१—वि० [सं० धूर्त] १ मायावी । झूठी । चाबबाब । २. कपक । प्रतारक । धोखा देनेवाला । कलकल । ३. कंठ [को०] । ४. कतिवस्त [को०] ।

धूर्त^२—संज्ञा पुं० १. बाहिल्य में बठ नामक का एक भेद । २. कि

सबण । खारी नमक । ३. लोहकिट्टी । लोहकिट्टी । छोहे की
मैल । ४. घतूरा । ५. चोर नामक गंधद्रव्य । ६. जुमारी ।

७. दीवपेच करनेवाला आदमी । ८. सति पहुँचाना (को) ।

धूर्तक—संज्ञा पुं० [सं० धूर्तक] १. जुमारी । २. शृगाल । गीदड़ ।
३. कोरव्य फूल का माग । (महाभारत) ।

धूर्तकितव—संज्ञा पुं० [सं०] जुमारी (को) ।

धूर्तकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] घतूरा (को) ।

धूर्तकृत्—वि० बेईमान । चालबाज (को) ।

धूर्तचरित—संज्ञा पुं० [सं० धूर्तचरित] १. धूर्तों का चरित्र । २.
सकीर्ण नाटक का एक भेद ।

धूर्तजंतु—संज्ञा पुं० [सं० धूर्तजन्तु] मनुष्य (को) ।

धूर्तता—संज्ञा स्त्री० [सं० धूर्तता] माया । चालबाजी । वचकता ।
ठगपना । चालाकी ।

धूर्तमता—संज्ञा स्त्री० [हि० धूर्त + मता (= मति या बुद्धि)]
धूर्तता । घोखा । उ०—धूर्तमता तीन लोक मह भाना ।—
कबीर सा०, पृ० ३६७ ।

धूर्तमानुषा—संज्ञा स्त्री० [सं० धूर्तमानुषा] रास्ता ।

धूर्तरचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] छल । कपट । घोखा । दुष्टता (को) ।

धूर्तर—संज्ञा पुं० [सं०] बोझा ढोनेवाला । भारवाही ।

धूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

धूर्सह—वि० [सं०] १. भार ढोनेवाला । २. कार्य का भार
संभालनेवाला (को) ।

धूर्सह—संज्ञा पुं० बोझ ढोनेवाला जानवर (को) ।

धूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रथ का भगला भाव ।

धूल—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि] १. मिट्टी, रेत आदि का महीन चुर ।
रेणु । रज । गर्द ।

मुहा०—(कहीं) धूल उड़ना = (१) ध्वस होना । सत्यानाश
होना । बरबादी होना । तबाही भाना । (२) उदासी छाना ।
बहल पहल न रहना । सन्नाटा होना । रीनक न रहना ।
(किसी की) धूल उड़ाना = (१) दोषों और श्रुटियों का
उपेक्षा जाना । बुराईयों का प्रकट किया जाना । बदनामी
होना । (२) उपहास होना । दिल्लगी उड़ाना । किसी की धूल
उड़ाना = (१) दोषों और श्रुटियों को उपेक्षा । बुराईयों को
प्रकट करना । बदनामी करना । (२) उपहास करना । हँसी
करना । धूल उड़ाते फिरना = मारा मारा फिरना । जीबिका या
अर्थसिद्धि के लिये इधर उधर घूमना । दीन दसा में फिरना ।
आकुल घूमना । धूल उड़ाई जाना = तिरस्कार या अवहेलना
होना । उ०—धूल उनकी है उड़ाई जा रही । धूल में मिल
धूल वे हैं फाँकते ।—चुमते०, पृ० २७ । धूल की रस्सी
बटना = ऐसी बात के लिये श्रम करना जो कभी न हो सके ।
अव्यर्थता की बात के पीछे पड़ना । व्यर्थ परिश्रम करना । धूल
चाटना = (१) बहुत मिङ्गिड़ाना । बहुत बिनती करना ।
(२) अत्यंत नम्रता दिखाना । धूल खाना = मारा मारा
फिरना । हैरान घूमना । जैसे,—सुम्हारी बीज में कहाँ कहाँ की

धूल छानते रहे । (किसी की) धूल झड़ना = (किसी पर)
मार पड़ना । पिटना । (विनोद) । (किसी की) धूल झड़ना =
(१) (किसी को) मारना । पीटना । (विनोद) । (२)
सूझूपा करना । छुशामद करना । जैसे,—उसका तो दिन भर
झमोरी की धूल झड़ते जाता है । (किसी बात पर) धूल
खालना = (१) (किसी बात को) इधर उधर प्रकट न होने
देना । फैलने न देना । दबाना । (२) ध्यान न देना । जैसे,
अपराधों पर धूल डालना । धूल फाँकना = (१) मारा मारा
फिरना । दुर्दशा में होना । उ०—धूल उनकी है उड़ाई जा
रही । धूल में मिल धूल वे हैं फाँकते ।—चुमते०, पृ० २७ ।
(२) सरासर झूठ बोलना । जैसे—क्यों धूल फाँकते हो,
मैंने तुम्हें छुद देखा था । धूल में फूल उगाना = मित्र जगह
में भी अच्छाई या अच्छी बात दिखाना । उ०—दूसरे धूल में
फूल उगाते हैं, हमें फूल में भी धूल ही हाथ आती है ।—
चुमते० (दो दो बातें), पृ० ५ । (कहीं पर) धूल बरसना =
उदासी बरसना । बहल पहल न रहना । रीनक न रहना ।
उ०—घाज दिन धूल है बरसती वाँ । इन बरसता रहा जहाँ
सब दिन ।—चुमते०, पृ० २४ । धूल में मिलना = नष्ट होना ।
बीपट होना । खराब होना । ध्वस्त होना । जाता रहना । न
रह जाना । उ०—धूल उनकी है उड़ाई जा रही । धूल में
मिल धूल वे हैं फाँकते ।—चुमते०, पृ० २७ । धूल में मिल
जाना = दे० 'धूल में मिलना' । उ०—धूल में धाक मिल गई
सारी । रह गए रोब दाब के न पते ।—चुमते०, पृ० २४ ।
धूल में मिला देना = दे० 'धूल में मिलाना' । उ०—बीज को
धूल में मिलाकर भी । लो नहीं धूल में मिला देते ।—चुमते०,
पृ० ८ । धूल में मिशाना = नष्ट करना । बीपट करना ।
खराब करना । बरबाद करना । धूल में रस्सी बटना = दे०
'धूल की रस्सी बटना' । उ०—धूल में मत बटा करो रस्सी ।
माँख में धूल डालते क्यों हो ।—चोखे०, पृ० १६ । (कहीं
की) धूल से डालना = (कहीं पर) बहुत अधिक धोर बार
बार जाना । बराबर पहुँचा रहना । बहुत फेरें लगाना ।
धूल हाथ भाना = नि सार वस्तु का हाथ लगना । निरर्थक
बीज पाना । उ०—दूसरे धूल में फूल उगाते हैं, हमें फूल में
भी धूल ही हाथ आती है ।—चुमते० (दो दो बातें), पृ०
५ । धूलि में मिला देना = दे० 'धूल में मिलाना' । उ०—
आयें जाति की धूलि में मिला दिया ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० २६१ । पैर की धूल = अत्यंत तुच्छ वस्तु या व्यक्ति ।
नाबीज । सिर पर धूल डालना = पछताना । सिर घुनना ।
उ०—पदमिनी गवन हस गए दूरी । हस्ति साज मेसहि सिर
धूरी ।—आयसी (शब्द०) ।

२ धूल के समान तुच्छ वस्तु । जैसे,—इनके सामने वह धूल है ।

मुहा०—धूल समझना = अत्यंत तुच्छ समझना । किसी गिनती
में न जाना । बिल्कुल नाबीज समझना ।

धूलक—संज्ञा पुं० [सं०] बिब । बहुर ।

धूलधक्कड़—संज्ञा पुं० [हि० धूल + धक्का] चारों ओर लड़नेवाली
धूल । गर्द नुबार ।

धूलधानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूल + धान] धूल धुल होने का भाव । ध्वस । विनाश ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] टुकड़ा । खड । कतरा । उ०—ईद्री बस रस कीन्ही धूला ।—घट०, पृ० २८७ ।

धूलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] धूल । गदं । रेणु । रज ।

धूलिकदम्ब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धूलिकदम्ब] एक प्रकार का कदम्ब ।

धूलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. महीन जलकणों की झड़ी । २. कुहरा ।

धूलिकुट्टिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हूह । धुस्स । २. जोता हुआ खेत [को०] ।

धूलिकेदार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हूह । धुस्स । २. जोता हुआ खेत [को०] ।

धूलिगुच्छक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमीर जो होली में डाखा जाता है ।

धूलिधूसर—वि० [सं० धूलि + धूसर] १. जो धूल से सना हुआ हो । २. जो धूल लगने में भरे रंग का हो गया हो [को०] ।

धूलिधूसरित—वि० [सं० धूलि + धूसरित] दे० 'धूलिधूसर' [को०] ।

धूलिध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

धूलिपटल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धूल या गद का बादल [को०] ।

धूलिपुष्पिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी ।

धूलिपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी [को०] ।

धूलियापीर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धूलि + फा० पीर] एक प्रकार का कल्पित पीर जिसका नाम बच्चे खेल खेल में लिया करते हैं ।

धूँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुम्र' ।

धूसना—क्रि० स० [ध्वसन] १. मर्दित करना । मलना दलना । गोंजना । २. ठूसना ।

धूसर^१—वि० [सं०] १. धूल के रंग का । खाकी । ईषत् पांडु वणं । मटमैला । मटोला । उ०—सव्या है धाज भी तो धूसर क्षितिज में ।—लहर०, पृ० ६५ । २. धूल लगा हुआ । जिसमें धूल लिपटी हो । धूल से भरा । उ०—(क) धसर धूरि घुटुरुवन रेंगनि बोलनि धवन रसास की ।—सूर (शब्द०) । (ख) धसर धूरि भरे तनु ध्राए । भूपति विहंसि गोद बैठाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—धूलधूसर=धूल से भरा । जिसे गदं लिपटी हो ।

धूसर^२—सञ्ज्ञा पुं० १. मटमैला रंग । पीलापन लिए सफेद रंग । भूरा रंग । २. गदहा । ३. ऊँट । ४. कबूतर । ५. बनियों की एक जाति । ६. तेली [को०] । ७. मटोले रंग की कोई वस्तु [को०] ।

धूसरच्छदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद वीना ।

धूसरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धूसर + ता (प्रत्य०)] मटमैलापन । मलिनता । उ०—सव्या की उस धूसरता में उमड़ा करुणा का उग्रेक ।—साकेत, पृ० २६६ ।

धूसरपत्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हाथीसूँड का पीघा ।

धूसरा^१—वि० [सं० धूसर] [स्त्री० धूसरी] १. धूल के रंग का । मटमैला । खाकी । २. धूल लगा हुआ । जिसमें धूल लिपटी हो । उ०—नियम करत बीते दिवस दूबर भग लखात । सीस एक बेवी भरे वसन धूसरे पात ।—सहस्रनामसिंह (शब्द०) ।

धूसरा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० पांडुफली ।

धूसरित—वि० [सं०] १. धूसर किया हुआ । जो धूल से मटमैला हुआ हो । २. धूल से भरा हुआ । जिसमें धूल लिपटी हो । उ०—बास विभूषन वसन धर धूरि धूसरित भग । बालकैलि रघुपति करत बालबधु सब संग ।—तुलसी (शब्द०) ।

धूसरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी ।

धूसरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूसर' । उ०—धूरि धूसरी बेह रज पाँसु सरकरा मद ।—प्रवेकार्थ०, पृ० ४४ ।

धूसला—वि० [हि०] दे० 'धूसरा' । उ०—धुधो धरा धूसली धूम गुबार । मानी प्रलैकास की घोर प्रध्वार ।—सुदन (शब्द०) ।

धूस्तुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धतूरा [को०] ।

धूस्तूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धतूरा ।

धूँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दूह] दे० 'हूह' ।

धूहा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० दूह] १. हूह । २. चिड़ियों को डराने का पुतला, काली हाड़ी आदि ।

धृक—प्रत्य० [सं० धिक्] दे० 'धिक्' । उ०—तुमहि बिना मन धृक धर धृक धर । तुमहि बिना धृक धृक माता पितु धृक धृक कुल की काम लाज डर ।—सूर (शब्द०) ।

धृगा—प्रत्य० [हि०] दे० 'धृक्' । उ०—प्रह ह्यो सब कोउ धृस धृग करे ।—नद० प्र०, पृ० २२५ ।

धृत^१—वि० १. धरा हुआ । पकड़ा हुआ । उ०—हुए जीवन मरण के मध्य धृत से वे ।—साकेत, पृ० ५१ । २. धारण किया हुआ । ग्रहण किया हुआ । ३. स्थिर किया हुआ । निश्चित । ४. पतित । ५. सीखा हुआ [को०] । ६. तैयार किया हुआ । प्रस्तुत [को०] ।

धृत^२—सञ्ज्ञा पुं० १. तेरहवें मनु रोष्य के पुत्र का नाम । २. दुष्ट, बंध्य धर्म का पुत्र (भागवत) ।

धृत^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. गिरना । पतन । २. अस्तित्व । स्थिरता । ३. ग्रहण । पकड़ । ४. धारण करने की क्रिया । ग्रहणना । ५. सड़ने की एक पद्धति [को०] ।

धृतकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के बहनोई (गर्गसंहिता) ।

धृतदंष्ट—वि० [सं० धृतदण्ड] १. दंड देनेवाला । २. जिसको दंड दिया जाय [को०] ।

धृतदीधिति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

धृतदेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवक की एक कन्या का नाम ।

धृतपट—वि० [सं०] जिसने वस्त्र धारण किया हो [को०] ।

धृतमानस—वि० [सं०] दृढ़निश्चय [को०] ।

धृतमाञ्जी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धृतमालिन्] धस्त्रों को निष्फल करने का एक धस्त्र । धस्त्रों का एक संहार (रामायण) ।

धृतराष्ट्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जो अन्धे राजा के शासन में हो । २. वह जिसका राज्य दृढ़ हो । ३. एक कौरव राजा जो दुर्योधन के पिता श्रीर विचित्रवीर्य के पुत्र थे ।

विशेष—इनकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है ।

पुरुवंश में शांतनु नाम के एक राजा हुए जिन्होंने गंगा से विवाह किया। गंगा से उन्हें देवव्रत नामक पुत्र हुए जो भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्म ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके अपने पिता का विवाह सत्यवती या मत्स्यगंधा से होने दिया। यह सत्यवती जब बवारी थी तभी उसे पराशर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम द्वेपायन पड़ा था। यही द्वेपायन महाभारत के कर्ता प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यास हुए। सत्यवती के गर्भ से शांतनु को दो पुत्र हुए। विचित्रवीर्य और चित्रांगद। चित्रांगद युवावस्था के पूर्व ही एक गधर्व द्वारा मारे गए। विचित्रवीर्य राजा हुए और उन्होंने काशिराज की भबिका और अवालिका नाम की दो कन्याओं से विवाह किया। कुछ दिनों पीछे विचित्रवीर्य बिना कोई सतान छोड़े मर गए। वंश स्थिर रखने के लिये सत्यवती ने अपने पुत्र वेदव्यास को बुलाकर दोनों पुत्रवधुओं के साथ नियोग करके के लिये कहा। भबिका ने समागम के समय वेदव्यास का कृष्णवर्ण और जटाश्रुत देख पाँखें मूँद ली। इसपर वेदव्यास ने कहा कि इसके गर्भ से परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा, पर वह अपनी माता के दोष से बंधा होगा। अवालिका के साथ नियोग होने पर पांडु की उत्पत्ति हुई और सुदेष्णा दासी के साथ नियोग होने पर विदुर का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र भये थे, इसलिये पांडु राजा हुए। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार देश के राजा की कन्या गांधारी से हुआ था। इन्हीं गांधारी के गर्भ से दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण, चित्रसेन इत्यादि सो पुत्र हुए जो कौरव कहलाए और महाभारत के युद्ध में पांडवों के हाथ से मारे गए।

४ एक नाग का नाम। ५ गधर्वों के एक राजा का नाम (वौद्ध)। ६ जनमेजय के एक पुत्र का नाम। ७. एक प्रकार का हंस।

धृतराष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की पत्नी ताम्रा से उत्पन्न ५ कन्याओं में से एक जो हंसों की आदिमाता थी। २ धृतराष्ट्र की स्त्री।

धृत्तलक्ष्य—वि० [सं०] जो अपना लक्ष्य प्राप्त करने में लगा हो [को०]।

धृत्तवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० धृत्तवर्मन्] १. वह जो कवच धारण किए हों। २ त्रिगर्त का राजकुमार जिसके साथ अर्जुन को उस समय युद्ध करना पड़ा था जब वे अश्वमेध के घोड़े के साथ गए थे।

धृत्तविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तोलकर कोई पदार्थ बेचना (को०)।

धृत्तव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जिसने व्रत धारण किया हो। २. पुरुवंशीय जयद्रथ के पुत्र विजय का पौत्र। ३. इन्द्र (को०)। ४. वरुण (को०)। ५. अग्नि (को०)।

धृत्तव्रत—वि० १ जिसने कोई व्रत धारण किया हो। धार्मिक क्रिया करनेवाला। निष्ठाशील। जिसकी निष्ठा बढ़ हो।

धृतात्मा—वि० [सं० धृतात्मन्] आत्मा को स्थिर रखनेवाला। धीर।

धृतात्मा—संज्ञा पुं० १. धीर पुरुष। २. विष्णु।

धृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारण। धरने या पकड़ने की क्रिया। २.

स्थिर रहने की क्रिया या भाव। ठहराव। ३. मन की दृढ़ता चित्त की प्रविचलता। धैर्य। धीरता। उ०—कृश देह, विमा भरी भरी, धृति सुखी, स्मृति ही हरी हरी।—साकेत, पृ० ३२१।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भावों में से एक है। मनु ने इसे धर्म के दस लक्षणों में कहा है।

४ सोलह मातृकामों में से एक। ५ अठारह अक्षरों के बुराओं की सजा। ६ दक्ष की एक कन्या और धर्म की पत्नी। ७ अश्वमेध की एक ग्राहृति का नाम। ८. फलित ज्योतिष में एक योग। ९ चंद्रमा की सोलह कसामों में से एक। १०. ब्रह्म। आनंद (को०)। ११. विचार। सावधानता (को०)। १२. अक्षर (१८) की संख्या (को०)। १३. यज्ञ (को०)।

धृति—संज्ञा पुं० १. जयद्रथ राजा का पौत्र। २. एक विश्वदेव का नाम। ३. यदुवशीय वभु का पुत्र।

धृतिगृहीत—वि० [सं०] धृतिशील। धृतिमान् (को०)।

धृतिमान्—वि० [सं० धृतिमत्] १ धैर्यवान। धीर। उ०—देखकर भी न कदापि मधोर हुए तुम लोकोत्तर धृतिमान्—सागरिका, पृ० ८। २ सतुष्ट (को०)।

धृतिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह कार्य में किया जानेवाला होम [को०]।

धृत्वरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

धृत्वा—संज्ञा पुं० [सं० धृत्वा] १ विष्णु। २ ब्रह्मा। ३ सद्गुण। धार्मिकता। ४ आकाश। ५ समुद्र। ६. चतुर घादमी [को०]।

धृम(७)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धर्म'। उ०—अयार घंग सखी प्रमान धृम द्वादश अंग दिहा।—पृ० रा०, २५।४५७।

धृमजघट(७)—संज्ञा पुं० [?] धर्मयुद्ध। उ०—उठे सुगु धृमजघट घायो घोग क्रोध उर दारि।—रघु० क०, पृ० १५३।

धृषित—वि० [सं०] बहादुर। धीर। साहसी [को०]।

धृषु—संज्ञा पुं० [सं०] ढेर। राशि। समूह [को०]।

धृषु—वि० १ बहादुर। धीर। २ चतुर। होशियार [को०]।

धृष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धृष्टा] १. सकोच या सज्जा न करनेवाला। जो कोई अनुचित या बेढगा काम करते हुए कुछ भी न सहमे। निसंज्ज। बेहया। प्रगल्भ।

विशेष—साहित्य में 'धृष्ट नायक' उसको कहते हैं जो अपराध करता जाता है, अनेक प्रकार का तिरस्कार सहता जाता है, पर अनेक बहाने करके बातें बनाकर नायिका के पीछे लगा ही रहता है।

२ अनुचित साहस करनेवाला। डीठ। गुस्ताख। उदत। ३ बहादुर। साहसी (को०)। ४. आत्मविश्वासी (को०)। ५. निर्दयी। क्रूर।

धृष्ट—संज्ञा पुं० १. वेदिवंशीय कुंति का पुत्र (हरिवंश)। २. सप्तम मनु के एक पुत्र का नाम (भागवत)। ३. प्रसों का सहार (बाल्मीकि०)। ४. साहित्य के अनुसार वह नायक जो बार बार अपराध करता है, अनेक प्रकार के अपमान

सहता है, पर फिर भी किसी न किसी प्रकार बातें बनाकर नायिका के साथ लगा रहता है। उ०—लाज धरे मन में नहीं, नायक धृष्ट निदान।—मतिराम (शब्द०)।

धृष्टकेतु—सखा पु० [सं०] १. चेदि देश के राजा शिशुपाल का पुत्र जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ा था और द्रोणाचार्य के हाथ से मारा गया था। २. जनकवशीय सुज्वति के पुत्र (रामायण)। ३. मनु रोहित के पुत्र। ४. सन्नति राजवशीय सुकुमार का एक पुत्र (हरिवंश)।

धृष्टता—सखा स्त्री [सं०] १. ठिठार्ह। अनुचित साहस। गुस्ताखी। २. निर्लज्जता। सकोच का भाव। बेहयाई।

धृष्टद्युम्न—सखा पु० [सं०] राजा द्रुपद का पुत्र और द्रौपदी का भाई जो पांडवों की सेना का एक नायक था।

विशेष—पुष्य राजा का द्रुपद नामक एक पुत्र था। पुष्य राजा से भरद्वाज ऋषि की बहुत मित्रता थी, इससे वे नित्य द्रुपद को लेकर ऋषि के आश्रम पर जाया करते थे। क्रमशः द्रुपद और ऋषिपुत्र द्रोण में बड़ा स्नेह हो गया था। द्रुपद जब राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए; पर उसने उनकी भवशा की। इसपर द्रोण दोन भाव से इधर उधर घूमने लगे और अंत में उन्होंने कौरवों और पांडवों की अस्त्रशिक्षा का भार लिया। धृष्टद्युम्न गुरु के भवमान का बदला चुकाने के लिये द्रुपद को बदो करके लाए। द्रुपद ने द्रोण को भाषा राज्य देकर छुटकारा पाया। इस भवमान का बदला लेने के लिये द्रुपद ने याज्ञ और अनुयाज नामक दो ऋषिकुमारों की सहायता से एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ से एक अत्यंत तेजस्वी पुरुष खड्ग, चर्म, धनुर्बाण से सुसज्जित उत्पन्न हुआ। देववाणी हुई कि यह राजपुत्र द्रुपद के शोक का नाश करेगा और द्रोणाचार्य का वध इसी के हाथ से होगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जिस समय द्रोणाचार्य अपने पुत्र भवत्वामा की मृत्यु की बात सुनकर योग में मग्न हुए थे उस समय इसी धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काटा था। महाभारत के युद्ध के पीछे भवत्वामा ने अपने पिता का बदला लिया और सोते में धृष्टद्युम्न का सिर काट लिया।

धृष्टधी—वि० [सं०] निर्लज्ज। बेहया [को०]।

धृष्टमानी—वि० [सं० धृष्टमानिन्] १. अपने को बहुत बड़ा समझने वाला। २. धृष्ट। ढोठ [को०]।

धृष्टवादी—वि० [सं० धृष्टवादिन्] १. अशिष्टतापूर्वक बात करनेवाला। २. दुड़ता या साहस से बात करनेवाला [को०]।

धृष्टा—सखा स्त्री [सं०] असती स्त्री। कुलटा [को०]।

धृष्टि^१—सखा पु० [सं०] १. हिरण्यक्ष का एक पुत्र। २. दशरथ के एक मंत्री का नाम। ३. एक यज्ञपात्र।

धृष्टि^२—वि० दृढ़। साहसी [को०]।

धृष्टि^३—सखा स्त्री [सं०] दृढ़ता। साहस [को०]।

धृष्ट्याक्—वि० [सं० धृष्ट्याक्] १. बहादुर। साहसी। २. निर्लज्ज। बेहया [को०]।

धृष्ट्यासा—सखा स्त्री [सं०] धृष्टता।

धृष्ट्यात्थ—सखा पु० [सं०] धृष्टता।

धृष्टि—सखा पु० [सं०] किरण।

धृष्टि^१—वि० [सं०] १. धृष्ट। प्रगल्भ। २. ढोठ। उद्धत। ३. निर्लज्ज। बेहया [को०]। ४. दृढ़। शक्तिशाली [को०]।

धृष्टि^२—सखा पु० १. वैवस्वत मनु के एक पुत्र। २. सावरण मनु के एक पुत्र। ३. एक रुद्र का नाम।

धृष्ट्यवोजा—सखा पु० [सं० धृष्ट्यवोजस्] कातवीर्य के एक पुत्र।

धृष्ट्य—वि० [सं०] धर्षण योग्य। धवणीय।

धेख^१—सखा पु० [सं० देष ?] ईर्ष्या। उ०—करबा एक राह मन कीधी। लेख प्रमाण धेख व्रत लीधी।—रा० रू०, पृ० ५७।

धेठो^१—वि० [सं० धृष्ट] ढोठ। धृष्ट। उ०—धेठो भणौ इसारत धारे। बात करे उर घात विचारे।—रा० रू०, पृ० २२५।

धेड़^१—सखा पु० [देश०] दे० 'धेर'। उ०—जा तन सूँ मुजे कछु नहि प्यार। असते के नहि हिंदु धेड़ चंभार।—दक्खिनी०, पृ० १००।

धेड़ी कौवा—सखा पु० [देश० धेड़ी + हिं० कौवा] बड़ा काला कौवा। डोम कौवा।

धेधक धीना^१—सखा पु० [धनु०] रास रंग। ताल धिनाधिन। नाच। गान। उ०—धेधक धीना ह्वं गये सु हरिबोलो हरिबोल।—सुंदर पं०, भाग १, पृ० ३१६।

धेन^१—सखा पु० [सं०] १. समुद्र। २. नद।

धेन^२—सखा स्त्री [सं० धेनु] दे० 'धेनु'। उ०—बधी धेन मारे। प्रलंबं प्रहारे।—पु० रा० २।४६।

धेना—सखा स्त्री [सं०] १. नदी। २. वाणी। ३. दुही गाय [को०]।

धेनिका—सखा स्त्री [सं०] धनिया [को०]।

धेनु—सखा स्त्री [सं०] १. वह गाय जिसे बच्चा जने बहुत दिन न हुए हों। सवत्सा गो।

पर्या०—नवप्रसूतिका। नवसूतिका।

२. गाय। उ०—कौसल्यादि मानु सब भाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. पृथ्वी [को०]। ४. भेंट [को०]।

धेनुक—सखा पु० [सं०] १. एक राक्षस का नाम जिसे बलदेव जी ने मारा था (हरिवंश)। २. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ। यहाँ स्नान करके तिल की धेनु दान करने का विधान है। ३. रतिमजरी के अनुसार सोलह प्रकार के रतिवर्षों में से एक।

धेनुकसूदन—सखा पु० [सं०] बलराम [को०]।

धेनुका—सखा स्त्री [सं०] १. धेनु। २. हस्तिनी स्त्री। ३. उपहार। भेंट [को०]। ४. मादा पशु [को०]। ५. धनिया [को०]। ६. कटार [को०]। ७. पार्वती [को०]।

धेनुदुग्ध—सखा पु० [सं०] १. गाय का दूध। २. चिनिटा।

धेनुदुग्धकरे—सखा पु० [पु०] बाबर।

धेनुमात्रिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] बड़े मच्छड़ जो बीपायों को लगते हैं। डाँसा। डस।

धेनुमती—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. गोमती नदी। २. भरतवंशीय देवद्युम्न की पत्नी।

धेनुमुख—सङ्घा पुं० [सं०] गोमुख नाम का बाजा। उ०—बाजे विपुल शंख धरियारा। भेरि धेनुमुख पेंवरि दुबारा।—सबलसिंह (शब्द०)।

धेनुष्टरी—सङ्घा स्त्री० [सं०] वह सवत्सा गाय जिसने दूध देवा बंद कर दिया [को०]।

धेनुष्या—सङ्घा स्त्री० [सं०] वह गाय जो बंधक रखी हो।

धेय^१—वि० [सं०] १. धारण करने योग्य। धायं। ध्येय। उ०—धेय सदा पद भ्रजुज सार। धगणित गुण महिमा जु धपार।—नद० प्र०, पृ० ३२६। २. पोषण करने योग्य। पोष्य। ३. पीने योग्य। पीने का। पेय।

धेय^२—सङ्घा पुं० १. पोषण। २. पान। ३. पकड़। ग्रहण (को०)।

धेयना^३—क्रि० प्र० [सं० ध्यान] ध्यान करना। उ०—सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी। पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट विगारी।—तुलसी (शब्द०)।

धेर—सङ्घा पुं० [देश०] एक प्रनायं जाति।

विशेष—इस जाति के लोग राजस्थान पञ्जाब और कहीं कहीं उत्तर प्रदेश के बाहर रहते हैं। राजस्थान में मरे हुए गाय बैल आदि का चमड़ा निकालकर ये चमारों के हाथ बेचते हैं। राजस्थान के धेर सुभर का मास नहीं खाते।

धेरां—वि० [देश०] भेंगा।

धेरियां—सङ्घा स्त्री० [हि० धी] लड़की। पुत्री।

धेखचा—सङ्घा पुं० [हि० धेला] पुराने धागे पैसे के बराबर का सिक्का। धधेले के मूल्य का सिक्का।

विशेष—अब यह सिक्का कहीं नहीं बनता।

धेलां—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'धधेला'।

धेलीं—सङ्घा स्त्री० [हि० धधेल] भाषा रुपया। पाठ पाने का सिक्का। धठली।

धेतालां—वि० [अनु० धै+हि० ताल] १. चपल। चचल। ३. उजड़। उ०—छोड़ विचारे को धेतास।—प्रताप (शब्द०)।

धैनव^१—वि० [सं०] गाय से उत्पन्न।

धैनव^२—सङ्घा पुं० गाय का बछड़ा।

धैना^३—क्रि० स० [हि० धरना] पकड़ना। उ०—बिहतर कदु होय संत से नइ के चलिए। जुरे सो आगे धरे गोइ धै सेवा करिए।—पलटू०, भा० १, पृ० ५३।

धी०—धै धै=पकड़ पकड़कर। उ०—मैंदिल सुन विठ धनतै बसा। सेल नागिनी धै धै डसा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३५६।

धैना^४—क्रि० स० [हि० धरना या धंधा] १. पकड़ी हुई टैब। धावत। स्वभाव। उ०—कह बिरघर कबिराव फुहर के

याही धैना। कजरीटा नहि होइ लुकाई धैना।—गिरिधर (शब्द०)। २. काम धंधा।

धैनु^५—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'धेनु'। उ०—धीरी धूमरि धैनु विविध रंग सोभित ठाऊं ठाऊं।—नद० प्र०, पृ० ३४६।

धैनुक—सङ्घा पुं० [सं०] १. एक रतिवध। २. गायों का झुंड।—संपूर्ण० अभि० प्र०, पृ० २४६।

धैया धामक धैया^६—सङ्घा पुं० [अनु०] नृत्य का ताल। उ०—धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट। गरे जास भाँझि परभन कत्त कत्त त त त त त धैया धामक धैया।—प्रकबरी०, पृ० ४५।

धैर्य—सङ्घा पुं० [सं० धैर्य] १. धीरता। चित्त की स्थिरता। संकट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर धराहट का न होना। धैर्यप्रता। धैर्याकुसता। धीरज। जैसे,—बुद्धिमान् विपत्ति में धैर्य रखते हैं। २. उतावला न होने का भाव। हड़बड़ी न मचाने का भाव। सन्न। जैसे, घोडा धैर्य धरो, धभी धे आते होंगे। ३. चित्त में उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव। निर्विकारचित्ताता।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार धैर्य नायक या पुरुष के आठ सत्वज गुणों में से एक है।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—धरना।—रखना।

४. साहस (को०)। ५. धृष्टता (को०)।

धैवत—सङ्घा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वरों में से छठा स्वर जो मध्यम के आगे खींचा जाता है।

विशेष—नारदीय शिक्षा के अनुसार घोड़े के हिनहिनाते के समान जो स्वर निकले वह धैवत है। तानसेन ने इस स्वर को भेड़क के स्वर के समान कहा है। संगीतदामोदर के मत से जो स्वर नाभि के नीचे जाकर बन्ति स्थान से फिर ऊपर दोढ़ठा हुमा कंठ तक पहुँचे वह धैवत है। संगीतदर्पण के मत से यह स्वर ऋषिकुञ्ज में उत्पन्न और सन्निय वर्ण का है। इसका वर्ण पीत, जन्मस्थान श्वेतद्वीप, ऋषि तु बरु, देवता गणेश और छंद उष्णिक् (मतांतर से जगती) माना गया है। यह धावत जाति का स्वर माना गया है। इसकी ७२० तानें मानी गई हैं जिनमें प्रत्येक के ४८ भेद होने से सब ३४,५६० तानें हुईं। श्रुतियाँ इसकी तीन हैं—रम्या, रोहिणी और मदती।

धैवत्य—सङ्घा पुं० [सं०] चतुराई। होशियारी (को०)।

धौक^७—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'धोखा'। उ०—सत गुरु के परताप सो, मिट गए सबही धौक।—कबीर सा०, पृ० ८५७।

धौंछाल—वि० [हि० धौंघा ?] (जमीन या मिट्टी) जिसमें ढेले, कंकड़ परत के ढोके हों।

जोधकां—सङ्घा पुं० [सं० धूम्र, हि० धुमां] [स्त्री० धौंघकी] धर का धुमा निकलने के लिये बाँगे की तरह निकला हुआ छेद।

धौंघा—सङ्घा पुं० [सं० धुण्ड] १. लोंडा। बेडोल पिडा। उ०—मैं भी मिट्टी का धौंघा ही हूँ।—सरस्वती (शब्द०)। २. मढ़ा और बेडोल लरीर। मोटी और बेडोल मृत्ति।

मुहा०—मिट्टी का धोंधा = (१) मूल। नासमझ। जड़। (२) निकम्मा। भालसी।

घोंघों पोपों—सच्चा स्त्री० [अनु०] घोंघों पोपों की ध्वनि। उ०—इतने में बाजों की धोधो पोपों सुनाई दी।—काया०, पृ० ३५८।

घोघन०—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'घोघन'। उ०—दूसरी ने कहा था, रमानाथ तो उसके पोपों का घोघन भी नहीं है।—ठेठ, पृ० ३१।

घोघाउरि०—वि० [हि० घोना] घुला हुआ। उ०—घोघाउरि घाने मदिश सांघ, देउरि माँगि मसीद बांध।—कीर्ति०, पृ० ४४।

घोई—सच्चा स्त्री० [हि० घोना] १ छिलका निकाली हुई उरद या मूंग की दाल।

विशेष—पानी में भिगोई हुई दाल को हाथ से मलकर छिलका मलग करते हैं इसी लिये दाल को घोई कहते हैं।

२. अफीम के बरतन का घोघन।

घोई०—सच्चा पुं० [हि० यवई] राजगीर। यवई। उ०—राजा केर लाग गढ घोई। फूट जहाँ सँवारे सोई।—जायसी (शब्द०)।

घोक०—सच्चा पुं० [?] नमस्कार। साष्टांग प्रणाम। उ०—गह चढ़िया सतोष गज, घर पढ ज्याँ मूँ धोक। चढ़िया ज्याँ मूँ खहरजे, लालच गरघम घोक।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ५६।

घोक०—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'घोखा'। उ०—भा काठां चढ़ी प्रबस, घरणीघर दे घोक।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० २।

घोकड़—वि० [दे०] हट्टा कट्टा। मोटा ताजा। हट्ट पुष्ट। मुट्टडा।

घोकड़ा—सच्चा पुं० [दे०] एक प्रकार का वृक्ष जो राजस्थान में होता है।

घोकाः—संज्ञा पुं० [सं० स्तोत्र, प्रा० योक] पाँच मुट्टी भर ठठलों का पूला।

घोकाः—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घोखा'।

घोख०—सच्चा पुं० [हि०] दे० 'घोखा'। उ०—(क) घोख दगा माया काया में, एक तखत बना है।—रामानंद०, पृ० ३६। (ख) भाइहु लावहु घोख जनि पाजु काज बह मोहि। सुनि सरोष बोले सुभट वीर अघोन न होहि।—तुलसी (शब्द०)।

घोखा—सच्चा पुं० [सं० घूकता (= घूतता)] १ मिथ्या व्यवहार जिससे दूसरे के मन में मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो। घूतता या छल जिससे दूसरा भ्रम में पड़े। ऐसी युक्ति या वासाकी जिसके कारण दूसरा कोई अपना कर्तव्य भूल जाय। मुलावा। छल। दगा। जैसे, हमारे नाथ ऐसा घोखा।

यौ०—घोखा धड़ी। घोखेबाज।

२. किसी की घूतता, चालाकी, झूठ बात आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति। ऐसी बात का विश्वास जो ठीक न हो और जो किसी के रंग डग या बात चीत आदि से हुआ हो। दूसरे के छल द्वारा उपस्थित भ्रांति। डाला हुआ भ्रम। मुलावा।

मुहा०—घोखा खाना = किसी की घूतता या चालाकी न समझकर कोई ऐसा काम कर बैठना जो विचार करने पर ठीक न

ठहरे। किसी के छल या कपट के कारण भ्रम में पड़ना। ठगा जाना। प्रतारित होना। उ०—घोर न घोखा देत जो प्रापुहि घोखा खात।—ध्यास (शब्द०)। घोखा देना = (१) ऐसी मिथ्या प्रतीति उत्पन्न करना जिससे दूसरा कोई अयुक्त कार्य कर बैठे। भ्रम में डालना। मुलावा देना। मुला देना। छलना। जैसे,—सोगों को घोखा देने के लिये उसने यह सब उग रचा है। (२) भ्रम में डाल या रखकर भ्रान्ति करना। झूठा विश्वास दिलाकर हानि करना। विश्वासघात करना। किसी को ऐसी हानि पहुँचाना जिसके सबब में वह सावधान न हो। जैसे, यह नौकर किसी न किसी दिन घोखा देगा। उ०—रहिए लटपट काटि दिन बर घामहि में सोय। छाँह न वाकी वैठिए जो तब पतरो होय। जो तब पतरो होय एक दिन घोखा देहै। जा छित बहै बयार टूटि वह जर से जैहै।—गिरिवर (शब्द०)। (३) एकस्मात् मरकर या नष्ट होकर दुख पहुँचाना। जैसे,—(क) इस बुढ़ापे में वह पुत्र को लेकर दिन काटता था, उसने भी घोखा दिया (अर्थात् वह चल बसा)। (ख) यह चिमनी बहुत कमजोर है किसी दिन घोखा देगी।

३. ठीक ध्यान न देने या किसी वस्तु के बाहरी रूप रंग आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति। भ्रम। भ्रांति। मूल। जैसे, (क) इस रंगे पत्थर को देखने से भ्रमस तग का घोखा होता है। (ख) लुम्हारे सुनने में घोखा हुआ, मैंने ऐसा कभी नहीं कहा था। उ०—पड़ित हिये परे नहि घोखा।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—घोखा खाना = भ्रम में पड़ना। भ्रांत होना। घोर का घोर समझना। उ०—जिमि कपूर के हस सों हंसी घोखा खाय।—हरिवंश (शब्द०)। घोखा पड़ना = मूल चूक होना। भ्रम होना।

४. ऐसी वस्तु या विषय जिससे मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो। भ्रांति उत्पन्न करनेवाली वस्तु या आयोजन। भ्रम में डालनेवाली वस्तु। भ्रम वस्तु। माया। जैसे,—(क) यह संसार घोखा है। (ख) राम भरोसा भारी है घोर सब घोखा भारी है।

मुहा०—घोखे की टट्टी = (१) वह परदा या टट्टी जिसकी छोट में छिपकर शिकारी शिकार छेसते हैं। (२) यथार्थ वस्तु या बात को छिपानेवाली वस्तु। भ्रम में डालनेवाली चीज। उ०—मैं उनके आगे से घोखे की टट्टी हटाता हूँ।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (३) ऐसी वस्तु जिसमें कुछ ठग न हो। दिखाऊ चीज। घोखा सड़ा करना या रचना = भ्रम में डालने के लिये बाटबर सड़ा करना। माया रचना। उ०—चित घोखा, मन निर्मला, बुधि उत्तम, मति घोर। सो घोखा नहि बिरबही खतपुत्र मिले कबीर।—कबीर (शब्द०)।

५. जानकारी का अभाव। ध्यान का न होना। अज्ञान।

मुहा०—घोखे में या घोखे से = ज्ञान में नहीं। ज्ञान झुंझकर नहीं। भूल से। जैसे,—घोखे से सब क्या जमा करना।

उ०—(क) जिमि घोखे मदपान करि सचिव सोच वेहि भाति ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) काज कहा नरतन घरि सास्यो । पर उपकार सार श्रुति को सो घोखेहु में न विचारयो ।—तुलसी (शब्द०) ।

६. अनिट की समावना । जोखों । जैसे,—(क) यह बडे घोखे का काम है । (ख) इसमें जान जाने का घोखा रहता है ।

मुहा०—घोखा उठाना = झूठी बात का विश्वास करके हानि सहना । भ्रम में पड़कर हानि या कष्ट उठाना । सावधान न रहने के कारण नुकसान सहना । उ०—ग्रच्छी तरह जान लिया करो, नहीं तो घोखा उठाओगे ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

७. ग्रन्थया होने की समावना । जैसा समझा या कहा जाय उसके विश्वास होने की आशंका । शक । उ०—(क) या मे कछु घोखो नहीं नेही सूर समान । दोऊ सम्मुख सहत हैं द्यग अनियारे बान ।—रतनहजारा (शब्द०) ।

मुहा०—घोखा पढ़ना = ग्रन्थया होना । धीर का धीर होना । जैसा समझा या कहा जाय उसके विश्वास होना । उ०—पंडितन कहा परा नहि घोखा । फोन भगस्त समुद्रहि सोछा ।—जायसी (शब्द०) ।

८. मूल । चूक । प्रमाद । भ्रुति । कसर । जैसे,—जितना काम मुझसे हो सकेगा उसमें घोखा नहीं लगाऊंगा ।

मुहा०—घोखा लगना = चूक या कसर होना । भ्रुति होना । कमी होना । उ०—हीरामन तैं प्रान परेवा । घोख न लाग करत तुव सेवा ।—जायसी (शब्द०) । घोखा लगाना = चूक या कसर करना । भ्रुति करना । कमी करना । जैसे,—कहने में अपनी धीर से मैं घोखा नहीं लगाऊंगा ।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग प्रायः निषेध वाक्य (या काकु से प्रश्न) में ही होता है ।

९. लकड़ी में पयाल, कपड़ा आदि लपेटकर बनाया हुआ पुतला जिसे किसान बिड़ियों को डराने के लिये खेत में खड़ा करते हैं । बिछूला । भुचकाक । उ०—तुला बिनाक साहु दृष त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोखे । परसुराम से सूर सरोमनि पल महँ मए खेत के घोखे ।—तुलसी (शब्द०) । १०. रस्सी लगी हुई लकड़ी जो फलदार पेड़ों पर इसलिये बाँधी जाती है कि नीचे से रस्सी खींचने से खट खट शब्द हो धीरे बिड़िया दूर रहें । खटखटा । ११. वेसन का एक पकवान जिसके भीतर नरम कटहल, मसाला आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखने से कबाब का भ्रम होता है ।

घोखेबाज—वि० [हि० घोखा + बाज] [वि० सबा घोखेबाजी] घोखा देनेवाला । छली । कपटी । चूतें ।

घोखेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोखेबाज] छप । कपट । चूतेंता ।

घोटा—सं० पु० [हि० या देश०] १०. 'घोटा' ।

घोड़—संज्ञा पु० [सं० घोड] एक प्रकार का जीव ।

घोतरा—संज्ञा पु० [सं० घोडवल] एक छोटा कपड़ा जो बाड़े की तरह का होता है । जमींदार ।

घोतरा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोती' ।

घोतरा^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'घोतरा' । उ०—घोतरा न पीवो रे धवसू भागिन खावो रे भाई ।—गोरख०, पृ० ७६ ।

घोति—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोती' । उ०—गजमोदियन को चौक सो तहाँ पुराएए । तापर नारियर घोति, मिष्टान्न घरा दए ।—कधीर श०, भा० ४, पृ० ४ ।

घोती—संज्ञा स्त्री० [सं० मधोवल, हि० मधोतर या सं० घोट (घीत वस्त्र)] नौ दस हाथ लंबा और दो हाई हाथ चौड़ा कपड़ा जो पुरुष की कटि से लेकर घुटनों के नीचे तक का धीरे धीरे स्त्रियों का प्रायः सर्वांग ढाकने के लिये कमर में लपेटकर बाँधा या छोड़ा जाता है । उ०—मूरज जेहि की तपे रसोई । नितहि बसदर घोती घोई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) घीत पुनीत मनोहर घोती । हरत बाल रवि दामिनि बोती ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पहनना ।

मुहा०—घोती बाँधना = (१) घोती पहनना । उ०—मुद्रा धवन जनेऊ कांधे । कनक पत्र घोती कटि बांधे ।—जायसी (शब्द०) । (२) तैयार होना । सज्ज होना । घोती ढीली करना = डर जाना । भयभीत होना । डरकर भागना । घोती ढीली होना = भय होना । डर होना । उ०—यह सामान देखकर चढ़ापीड़ की घोती ढीली हुई ।—गदाधरसिंह (शब्द०) ।

घोती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० घीति] १. योग की एक क्रिया । दे० 'घोति' । २. एक मंगल चौड़ी और चौवन (५४) मंगल सरी कपड़े की धाँजी जिसे हठयोग की 'घोति' क्रिया में मुँह से निगलते हैं ।

घोती^३—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बाज जिसकी मादा को वेसरा कहते हैं ।

घोना—क्रि० सं० [सं० धावन] पानी डालकर किसी वस्तु पर से मैल गंद आदि हटाना । पानी से साफ करना । जल से स्वच्छ करना । प्रक्षालित करना । पखारना ।

विशेष—जिस वस्तु पर से गंद मैल आदि हटाई जाती है तथा जो लगी हुई वस्तु (गंद मैल आदि) हटाई या छुड़ाई जाती है, दोनों का प्रयोग कर्म में होता है । जैसे, हाथ घोना, कपड़ा घोना, घर घोना, बरतन घोना । इसी प्रकार मील घोना, कालिख घोना, रंग घोना इत्यादि । उ०—(क) जिन एहि बारि न मानम घोए । ते कायर कलिकाव विगोए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सूरदास हरि कृपा बारि मों कचिमल घोय बहावे ।—सूर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—(किसी वस्तु से) हाथ घोना = खो देना । गंवा देना । बचित रहना । जैसे,—जो कुछ उनके पास था वे उससे भी हाथ खो बैठे । हाथ छोड़कर पीछे पड़ना = सब काम धाम छोड़कर प्रवृत्त होना । सब छोड़कर लज जाना । घोना धाया = (१) निष्कर्ष । निर्दोष । साफ । (२) देखा अनुपपन्न जो बुराई करके भी जोरों के सामने उसी प्रकार लजबत न हो बिना प्रकार निर्दोष साधनी । निर्दोष । देहना । कृष्ट ।

२ दूर करना । हटाना । मिटाना । उ०—(क) करी गोपाल की सय होय । जो अपने पुरुवारथ मानत अनि मूठो है सोय । सावन मय, यत्र, उद्यम, बल यह सब डारी धोय । जो कछु लिखि राखी नंदनंदन भेटि सकै नहि कोय ।—सूर (शब्द०) । (ख) तू ने शकुंतला के अपमान का दुख सब धो दिया है ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—झालना ।

मुहा०—धो बहाना = न रहने देना । छोड़ देना या खो देना ।

धोप०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धूर्षा, धर्वन् (= काटनेवाला) ?] तलवार । खंग । उ०—(क) छत्रमाल जेहि दिसि पिले काढि धोप कर माहि । तेहि दिशि सोस गिरीस पै बनव बटारत नाहि ।—लाल (शब्द०) । (ख) भूषण हालि उठे गढ़ भूमि पठान कबचन के धमके ते । मीरन के अथसान गये मिटि धोमनि सो चपला चमके ते ।—भूषण (शब्द०) । (ग) एक हाथ धोप द्वै सौ कोप यह जनावत है एक तीय हाथ पर ठोंक्यो एक भाल सौ —हनुमान (शब्द०) । (घ) अगद सुग्रीव एक दोनों गए राम ढिग सुनो महाराज सिवु करी बात धोप की ।—हनुमान (शब्द०) ।

धोब—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धोवना] धुलावट । धोए जाने की क्रिया ।

मुहा०—धोब पढ़ना = धोया जाना । धुलने की क्रिया होना । जैसे,—इस कपड़े पर कई धोब पड़े पर रंग नहीं उड़ा ।

धोवइना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धोविन] दे० 'धोविन'-३ । उ०—धोवइना, तलीचटैया, कौडेनी, चम्मा इत्यादि ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २० ।

धोविन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धोविन' ।

धोविषटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धोबी + घाट] वह घाट जहाँ धोबी कपड़ा धोते हैं ।

धोविन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धोबी] १ कपड़ा धोनेवाली स्त्री । धोबी जाति की स्त्री । २ धोबी की स्त्री । ३ दस बारह प्रगुल लंबी एक बिड़िया जो जल के किनारे रहती है । उ०—वाएँ अकासी धोविनि आई । लोवा दरसन आई देखाई ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २१२ ।

विशेष—यह पत्थर आदि के नीचे अड़े देवी है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है ।

धोविन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमान के काम में आती है ।

विशेष—इसकी लकड़ी परतदार होती है । अर्थात् इसमें एक मोटी तह सफेद लकड़ी की होती है और तब उसपर काले रंग की बहुत पतली एक धोर तह होती है । इसी तह पर मे इस लकड़ी के रखने बहुत सहज में खोरे जा सकते हैं ।

धोबिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धोबी' । उ०—नैहर में दण लगाय भाइ बुंदरी । ऊँरगरेजवा को मरम न जानै, नहि मिले धोबिया कौन करे उजरी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २३ ।

५-३२

धोबी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धोवन] [स्त्री० धोविन] १. कपड़ा धोनेवाला । वह जो मैले कपड़ों को धो और साफ करके अपनी जीविका करता हो । रजक । उ०—गुरु धोबी, सिख कापड़ा सावुन सिरजनहार । सुरति सिला पर धोइए निकसे रंग अपार ।—कबीर (शब्द०) । २. वह जाति जो कपड़ा धोने का व्यवसाय करती है ।

विशेष—हिंदुओं में यह जाति पहले नीच और अस्पृश्य समझी जाती थी ।

मुहा०—धोबी का कुत्ता = वह जो एक ठिकाने जमकर कोई काम न करे । व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला । निकम्मा आदमी । धोबी का छेला = (१) दूसरे के भाल पर इतरानेवाला । मँगनी या पराई चीज का धमक करनेवाला । (२) मँगनी कपड़े पहनकर निकलनेवाला ।

धोबोघास—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धोबी + घास] ष्ठी हूब । धूर्वा ।

धोबी पछाड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धोबी + पछाड़ना] कुश्ती का एक पेंच जिसमें जोड़ का हाथ पकड़कर कंधे की ओर खींचते हैं और उसे कमर पर लादकर चित गिरा देते हैं ।

धोबीपाट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धोबी + पाट] दे० 'धोबीपछाड़' ।

धोम—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूम' । उ०—भगाय अग्नि तब किया होम । षष्ठ स्वान मास प्रतिवास धोम ।—पु० रा०, १।३७७ ।

धोयी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक कवि ।

विशेष—इसका उल्लेख जयदेव ने गीत गोविंद में किया है जिससे यह पता चलता है कि यह कहीं का राजा था । इसका रचा हुआ वायुदूत ग्रंथ अब तक मिलता है और मेघदूत के ढंग का है ।

धोयी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धोया] उड़द, मूँग आदि की बिना छिलके की दाल ।

धोर—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० घर (= किनारा)] १. पास । सामीप्य । निकटता । २ किनारा । घार । बाढ़ । उ०—खोदि लई मणिकणिका, भूमि चक्र की धोर । सो थथ भरघो प्रस्वेदजल भयो हरन अघ धोर ।—केशव (शब्द०) ।

धोरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सवारी । २ घोड़े की सरपट चाल । ३. दौड़ ।

धोरणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ श्रेणी । परंपरा । २. निरंतर गति । प्रवाह गति (को०) ।

धोरणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धोरणि' [को०] ।

धोरित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आघात करना । चोट पहुँचाना । २ गति । गमन । ३ घोड़े की दुलकी चाल । घोड़े की तेज चाल [को०] ।

धोरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धोरेय] १ धुरे को उठानेवाला । भार उठानेवाला । उ०—(क) फेरत मनहि मातुकुत खोरी । चखत भगति बल धोरज धोरी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तिन महे प्रथम देख जग मोरी । विग घरमव्वज धक्क धोरी ।—तुलसी (शब्द०) । २ बैल । धुवभ । उ०—समरथ धोरी कध धरि रथ ले और निबाहि । मारग माहि न मेलिछ

पीछाहि विरुद लजाहि ।—दाहु (शब्द०) । ३. प्रधान । मुखिया । सरदार । उ०—(क) मन में मजु मनोरथ जोरी । सोहर गोरि प्रसाद एक तें कौसिक कृपा चौगुनी भोरी । कुअर कुअरि सब मगल मूरति नृप दोउ घरम धुरंधर घोरी । राज समाज भूरि भागी जिन्ह चौगुन साहु लही एहि ठोरी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भय यह फोज सूट ही लोचै । घोरिन घाउ न कोऊ कीजै ।—लाल (शब्द०) । ४. खेठ पुरुष । बडा प्रादमी । उ०—स्लेच्छ चमार बूहरे कोरी । तिनतें भरवावत द्विज घोरी ।—निदल (शब्द०) ।

घोरे^१—क्रि वि० [सं० घर (= किवारा)] पास । निकट । समीप । उ०—उज्जवल देखि न घोजिए घग ज्यों मदि ध्यान । घोरे कैठि चपेटसी धों से बूढे ज्ञान ।—कधीर (शब्द०) । (ख) बिनवै चतुरानन कहि भोरें । सुख प्रताप जा-यों नहि प्रभु सु कर स्तुति कर जोरें । अपराधी मतिहीन नाथ हों धूक परी निज घोरें । हम कृत दोष छमो करुणामय ज्यों धू परसत भोरें ।—सूर (शब्द०) । (ग) भूमिखियाँ भनकैगी खरी खनकैगी धुरी तनिकी तन ठोरे । दास स्र जागती पास भलीं परिहास करेगीं सबै उठि भोरें । सौह विहारो हों भागि न जाहूँगी भाई हों लाल तिहारे ही घोरे । कैलि की रेनि परी है घरीक गई करि जाहु बई के निहोरे । दास (शब्द०) ।

घो०—घोरे घोरे=मास पास ।

घोरे^२—वि० [सं० घवल] १. घवल । २. धुले हुए । उ०—देखन के सब गोरे नव नव पानिप घोरे ।—नद० प्र०, पृ० २०५ ।

घोल^१—वि० [हि०] दे० 'घवल' । उ०—मोति सु भाई नीयरी भयी श्याम तें घोल ।—सु दर प्र०, भा० १, पृ० ३१७ ।

घोला^२—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोल' ।

घोलधक—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

घोलहरा^३—सज्ञा पुं० [हि० घोरहर] महल । भव । उ०—घोल-हरा चमरा दुलै, उ आराखी भास ।—बांकी० प्र०, भा० १, पृ० २ ।

घोला—सज्ञा पुं० [सं० दुरालभा] जवासा । धमासा । हिगुवा ।

घोलाना^४—क्रि० सं० [हि० घुलाना] दे० 'घुलाना' ।

घोली^५—वि० स्त्री० [प०] घोली । सीधी सादी । उ०—मैंहरी जिद तुसाहे नाल लगी मैं घोली ब्रजमोहन मसवालिया ।—घनानन्द, पृ० ५१९ ।

घोषली^६—सज्ञा स्त्री० [सं० घोषली] घोसी । (कव०) । उ०—टटकी घोई घोवती, चटकीली मुख जोति । फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति ।—बिहारी (शब्द०) ।

घोवन—सज्ञा पुं० [हि० घोना] १. धोने का भाव । पछारने की क्रिया । २. वह पानी जिससे कोई वस्तु धोई गई हो । जैसे, पैर का घोवन, आवल का घोवन ।

मुहा०—किसी के पैर का घोवन होना=किसी की अपेक्षा प्रत्यत तुच्छ होना । किसी के मुकाबले बिल्कुल नाचीज होना ।

घोवना^७—क्रि० सं० [हि० घोना] जल की सहायता से शाफ करना । घोना । उ०—मुँह घोवति एही घसति हँसति भनगवति सीर । घंसति न ह्दीवर नयनि कालिंदी के नीर ।—बिहारी (शब्द०) ।

घोवा^८—सज्ञा पुं० [हि० घोना] १. घोवन । २. जल । प्रकं । उ०—सग नील बधू लिये दोई मटा पर बैठे बिलोकत जोई भरी । रघुनाथ गुलाब को घोवो बनाइ मंगाई के वाखणी पास घरी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

घोवा^९—वि० स्त्री० घोई हुई । जैसे, घोवा दाल ।

घोवाना^{१०}—क्रि० सं० [हि० घोना] धुलाना । उ०—कोउ परात कोउ लोटा लाई । शाहू समा सब हाथ घोवाई ।—बायसी (शब्द०) ।

घोवाना^{११}—क्रि० प्र० [हि० घोना का प्रकर्मक०] धुलना । धो जाना । साफ होना । उ०—गोये गोय न जाहि से घोये ठे न घोवाई । भली लाल लासी जुई सोयन कोयन माहि ।—शृ० सत० (शब्द०) ।

घोसा—सं० पुं० [हि० ठोस] गुड़ आदि का सूखा हुआ सोंदा । भिस्सा । भेली ।

घों^{१२}—अव्य० [सं० अघवा हि० दँव, दह] १. एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और सशय का भाव अधिक होता है । विचिकित्सा सूचक एक शब्द । व जाने । कौन जाने । मालूम नहीं । कहा नहीं जा सकता । उ०—(क) कौन मोहनी धों हुत ठोही । जो तोहि बिया सो उपजा मोहीं ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कला निधान सकल गुन आगर गुरु धों कहा पढ़ाए ।—सूर (शब्द०) । (ग) सीय स्वयंवर देखिय जाई । ईस काहि धों देहि बड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) चितवत मोहि ली चोधी सी जानों न कौन कहाँ ते धों माए ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रश्न के रूप में आनेवाले दो विकल्प या सदेहसूचक वाक्यों में से दूसरे या दोनों के पहले लगनेवाला शब्द । कि । या । अथवा । (इस अर्थ में प्रायः 'कि' या 'के' के साथ आता है) । उ०—(क) सुनत सुदामा जात मनहि मन चोम्है धों नाहीं ।—सूर (शब्द०) । (ख) की धों वह पणकुटी कहूँ भोर, किधों वह सङ्गण होय नही ।—केशव (शब्द०) । ३. एक शब्द जिसका प्रयोग जोर देने के लिये ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'यसा' के अर्थ में होता है जिसका उत्तर काफ़ी से 'नहीं' होता है । यह प्रायः 'कहूँ' या 'कहो' के साथ आता है और 'कहो तो' का अर्थ देता है । उ०—(क) तुलसी जेहि के रघुबीर से नाथ समर्थ सो सेवत रीभत घोरे । कहा भवभीर परी तेहि धों बिचरें घरनी तिनसों तिन तोरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कध न देह मसखरी करई । कहूँ धों कौन भाँति निस्तरई ।—जायसी (शब्द०) । (ग) मोहि परतीति यहि भाँति नहि भावई । प्रीति कहूँ धों सु नर बानरहि क्यों भई ।—केशव (शब्द०) । (घ) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहो धों उदार कौन की भई ।—केशव (शब्द०) । ४. किसी वाक्य के पूरे होने पर उससे

मिले हुए प्रश्नवाक्य का प्रारंभसूचक शब्द जो 'कि' अर्थ देता है। उ०—(क) हमदु न जानें धौ सो कहाँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहो सो विपिन है धौ केति दूर?—तुलसी (शब्द०)। ५ विधि, प्रादेश प्रादि वाक्यों के पहले जानेवाला एक शब्द जो केवल जोर देने के लिये उसी प्रकार आता है जिस प्रकार 'सोचिए तो', 'कर तो', 'समझ तो' प्रादि वाक्यों में 'तो'। उ०—जिमि भानु बिनु दिन, प्रात बिनु सनु, चंद बिनु जिमि जामिनी। तिमि प्रबध तुलसीबास प्रभु बिनु समुझ धौ जिय भामिनी।—तुलसी (शब्द०)।

धौक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] १ प्राग दहकाने के लिये भायी को दबाकर निकाला हुआ हवा का झोंका। अग्नि पर पहुँचाया हुआ वायु का आघात।

क्रि० प्र०—मारना—लगाना।

२. गरमी की लपट। ताप। लू।

मुहा०—धौक लगना=शरीर पर ताप का प्रभाव पड़ना। लू लगना।

धौकना—क्रि० स० [सं० धम् (= धौकना, फूँकना)] धमक = धौकनेवाला] १. प्राग पर, उसे दहकाने के लिये, भायी दबाकर हवा का झोंका पहुँचाना। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये उसपर वायु का आघात पहुँचाना।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. ऊपर डालना। भार डालना या सहन कराना। ३. दह प्रादि खगाना। जैसे, किसी पर जुरमाना धौकना।

धौकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] १ बाँस या घातु की एक चली जिससे लोहार सोनार प्रादि प्राग फूँकते हैं। फूँकनी। २ भायी।

मुहा०—धौकनी लगना = साँस चढ़ना। दम फूलना।

धौकल(५)—वि० [देश०] उपद्रव। उ०—मजबूतहाद प्रसपत्तिर्था, प्रगत दिखायो पाँख। ऊनी दिन धौकल हला, ऊनी दिन माराण।—रा० रू०, पृ० २०२।

धौका—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] गरमी में चलनेवाली गरम हवा। तप्त वायु। लू।

क्रि० प्र०—चलना।

मुहा०—धौका लगना=गरमी के दिनों में तपी हुई हवा का शरीर में प्रसर करना। लू लगना।

धौकिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धौकना] १. भायी चलानेवाला। प्राग फूँकनेवाला। २. एक प्रकार के व्यापारी जो भायी प्रादि लिए नगरों की गलियों में फिरकर फूटे बरतनों की मरम्मत किया करते हैं।

धौकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धौकना] धौकनी।

धौज—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० धौजना] १. बौध धूप। धाव धूप। उ०—एक करे धौज एक सोज से निकारे एक धौज पानी पीके सीकै बनत न भावनो।—तुलसी (शब्द०)। २. धवराहट। उद्विग्नता। हैरानी। न्याकुलता। उ०—प्रायो प्रायो प्रायो सोई बानर बहुरि धयो सोर चहुँ मोर खंका प्राये युवराज के। एक काई

सोज एक धौज करे फह हूँ है पोष भई महा सोज सुमट समाज के।—तुलसी (शब्द०)।

धौजन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० धौज] दे० 'धौज'।

धौजना^१—क्रि० स० [सं० ध्वञ्जन (= चलना फिरना)] दोड़ना धूपना। दोड़धूप करना।

धौजना^२—क्रि० स० १. किसी वस्तु को पैरों से रौंदना। २. रौंदकर या मज दलकर वह बिगाड़ना (कपड़े प्रादि की)। जैसे, विस्तर धौजना।

धौटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० धंघ + धोट] कोल्हू में चलनेवाले दैल की भाँखों का ढक्कन। भ्रँघियारी। ढोका।

धौताल—वि० [हि० धनु + ताल] १. जिसे किसी बात की धुन लग जाय। फुरतीला। चुस्त चालाक। काम को कुछ न समझने-वाला। २. साहसी। दृढ़। ३. हट्टा कट्टा। मजबूत। हेकड़। ४. निपुण। पटु। तेज। जैसे,—वह खाने में बड़ा धौताल है। ५. शरारती। उ०—होरी के दिन चारिक तेँ तुम भए हो निपट धौताल हो।—घनानंद, पृ० ५६२।

धौधौ—सञ्ज्ञा पुं० [धनु०] दमामा बजाने से निकलनेवाली आवाज। उ०—बसन धुआ पताका प्रति फरफरात गरजि गरजि धौ धौ दमामो री बजायो।—नद० प्र० पृ० ३७३।

धौधौमार—सञ्ज्ञा स्त्री० [धनु० धमधम + हि० मार] हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

धौना(५)—क्रि० स० [हि०] दे० 'धौना'। उ०—ना धिर रहे न धुटका माने, पलक पलक उठि धौना।—जग० रा०, पृ० ६५।

धौर—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक प्रकार की ईख जो सफेद होती है।

धौस—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० दंश] १. धमकी। धुड़की। डाँट। ठपट। उ०—कोई रोता है कोई हँसता है कोई नाचे है कोई गाता है। कोई छीने मरपटे से आगे कोई धौस का डर दिखलाता है।—तबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—दिखाना।—देना।

२. धाक। अधिकार। रोब दाव।

क्रि० प्र०—जमाना।—जमाना।—बँधना।—बाँधना।

३. झप्पा पट्टी। मुलावा। घोखा। छल।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—धौसपट्टी।

मुहा०—धौस की चलना = चाल चलना।

४. वह रूपया जो मालगुजारी या लगान ठीक समय पर न देने के कारण दंडस्वरूप जमींदार या भसामी से वसूल किया जाय। बाकी वसूल होने का खर्च जो जमींदार या भसामी को देना पड़े।

मुहा०—धौस बाँधना = खर्च जिम्मे करना। खर्चा मढ़ना।

धौसना—क्रि० स० [सं० दधसन, दशन] १. दबाना। दड देना। दमन करना। धमकी देना। धुड़की देना। डराना। उ०—

अपने नृप को यह सुनायो। ब्रजनारी वटपारिन हैं सब चुगली
आपुहि जाय लगायो। राजा बड़े बात यह समझी तुम को
हम पै घोंसि पठायो। फँसिहारिन कैसे तुम जानी तुम कह
नाहिन प्रकट देखायो। ब्रजवनिता फँसिहारी जो सब महतारी
काहे न बनायो। फदा फाँसि धनुष बिष काहूँ सूर प्रगम नहि
हमै बतायो।—सूर (शब्द०)। ३ मारना। पीटना।

घोंसपट्टी—सखा स्त्री० [हि० घोंस + पट्टी] भुलावा। भाँसा पट्टी।
दम दिलासा।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—घोंस पट्टी में आना = भुलावे में आना। वहकाने से कोई
काम कर बैठना।

घोंसा—सखा पुं० [हि० घोंसना] १ बड़ा नगरा। ढका। उ०—
(क) दादुर दमामें भाँकि भिल्लो गरजनि घोंसा दामिनि
मसाले देखि दुरै जगजीव से।—देव (शब्द०)। (ख)
जरासघ सब प्रसुर सेना ले घोंसा दे चला।—लल्लू (शब्द०)।
(ग) घुकार घोंसन की बढ़ी हुकार भूमिपतीन की।—गोपाल
(शब्द०)। (घ) घोंसा लगे घहरान सख लगे हहरान
छत्र लागे थहरान केतु लगे फहरान।—गोपाल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—घजवाना।—घजाना।

मुहा०—घोंसा देना या बजाना = चढ़ाई का ढका घजाना।
चढ़ाई की घोषणा करना। उ०—जरासघ सब प्रसुर सेना ले
घोंसा दे चला।—लल्लू (शब्द०)।

२. सामर्थ्य। शक्ति। इस्तिथार। वृत्ता। उ०—उसका क्या
घोंसा है जो इतना खर्च उठावे।

घोंसिया—सखा पुं० [हि० घोंसना] १ घोंस जमानेवाला। घोंस
से काम चलानेवाला। २ भाँसा पट्टी देनेवाला। घोखेबाज।
३ धोखेबाजा। नगरा बजानेवाला। ४ वह जो मालगुजारी
के बाकीदारों से मालगुजारी वसूल करने का खर्च लेता है।

घो—सखा पुं० [सं० घव] एक ऊँचा भाड़ या सदावाहार पेठ जो
हिमालय पर ५००० फुट की ऊँचाई तक होता है और
भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र जगलों में मिलता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्रमृद की पत्तियों से मिलती जुलती
होती हैं और छाल सफेद होती है जो चमड़ा सिक्काने के
काम में आती है। इसके फूल को रंगसाज भाल के रंग में
मिलाकर लाल रंग बनाते हैं। इससे एक प्रकार का गोद
निकलता है जिसे छोपी रंगों में मिलाकर कपड़ा छापते हैं।
लकड़ी इसकी सफेद होती है और हल, मूसल, कुल्हाड़ी का
वेट आदि बनाने के काम में आती है। इसका प्रयोग भोष
में भी होता है और वैद्यक में यह चरपरा, कसेला, कफ-वात-
नाशक, रुचिकारक और दीपन बतलाया गया है। वैद्य लोग
इसका प्रयोग पाहुरोग, प्रमेह, मर्श और वात रोग में करते हैं।

पर्या०—पिशाचवृक्ष। घुरंघर। गोर। पांहुर। नदितरु। स्थिर।
शुष्क तरु। घवल। शाकटाभ्या।

घोकरा—सखा पुं० [सं० घव] बाकली की जाति का एक प्रकार का
वृक्ष जो भवध, बुदेलखंड और मध्यप्रदेश में पाया जाता है।

विशेष—इसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने के काम में
आती है।

घोत^१—वि० [सं०] १. धोया हुआ। साफ। जैसे, घोत वसन। घोत
पाप इत्यादि। २ उजला। जैसे, घोत शिला। ३ नहाया
हुआ। स्नात। उ०—हरि को विमल यश गावत गोपागना।
मणिमय प्रागिन नदगाय को बाल गोपाल तहाँ करे रंगना।
गिरि गिरि परत घुटुखनि टेकत खेलत हैं दोउ छगन मंगना।
घूसरि घूरि घोत तनु मडित मानि यशोदा सेत चछंगना।
—सूर (शब्द०)।

घोत^२—सखा पुं० रूपा। चाँदी।

घोतकट—सखा पुं० [सं०] मोटे कपड़े का थैला [को०]।

घोतकोपज—सखा पुं० [सं०] माटो किया हुआ या स्वच्छ किया
हुआ रेशम [को०]।

घोतकौशेय—सखा पुं० [सं०] दे० 'घोतकोपज' [को०]।

घोतखंडो—सखा स्त्री० [सं० घोतखण्डो] मिथी [को०]।

घोतय—सखा पुं० [सं०] सेधा नमक [को०]।

घोतशिला—सखा स्त्री० [सं०] स्फटिक। बिल्वोर।

घोतात्मा—वि० [सं० घोतात्मन्] जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई हो।
पवित्रात्मा।

घोति—सखा स्त्री० [सं०] १ शुद्ध। २ हठयोग की एक क्रिया जो शरीर
को भीतर और बाहर से शुद्ध करने के लिये की जाती है।

विशेष—पेरुडसहिता में इसका पूरा वर्णन है। उसमें घोति चार
प्रकार की कही गई है—प्रतघोति; दतघोति, हृदोति और
मूलशोधन। प्रतघोति के भी चार भेद हैं—वातसार, वारि-
सार, वह्निसार, और वहिष्कृत। वातसार में मुँह को कीबे की
चोच की तरह निवालकर हवा खींचकर पेट में भरते हैं और
उसे फिर मुँह से निकालते हैं। वारिसार में गले तक पानी
पीकर प्रधोमार्ग में निकालते हैं। वह्निसार में साँस को
रोककर और गेट को पचकाकर नाभि को सी बार मेरुदंड
(रीढ़) से लगाया पड़ता है। वहिष्कृत में कीबे की चोच की
तरह मुँह करके पेट में हवा भरते हैं और उसे चार दंड वहाँ
रखकर प्रधोमार्ग से निकालते हैं। इसके पीछे नाभि तक जल
में खड़े होकर नाँव को बाहर निकालकर मल धोते हैं और
फिर उन्हें उदर में स्थापित करते हैं। दतघोति भी पाँच
प्रकार की होती है—दतमूल, जिह्वामूल, रघ, कण्ठद्वार और
कपालरघ। इनमें से जिह्वामूल की शुद्धि जीभ को चिमटी से
खींचकर करते हैं। रघ घोति में नाक से पानी पीकर मुँह
से और मुँह से सुझकर नाक से निकालना पड़ता है। इसी
प्रकार और भी शुद्धियों को समझिए।

३. योग की एक क्रिया।

विशेष—इसमें दो अंगुल चौड़ी और आठ दस हाथ लंबी कपड़े
की घञ्जी मुँह से पेट के नीचे उतारते हैं, फिर पानी पीकर
उसे धीरे धीरे बाहर निकालते हैं। इस क्रिया से पाँचें शुद्ध
हो जाती हैं।

४ योग की क्रिया में काम आनेवाली कपड़े की संघी घञ्जी।

धौती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धौति' [को०] ।

धौतेय—संज्ञा पुं० [सं०] संधा नमक [को०] ।

धौम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि जो देवल के भाई और पांडवों के पुरोहित थे ।

विशेष—ये उत्कंच नामक तीर्थ में रहते थे । चित्रस्थ के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने इन्हें अपना पुरोहित बनाया था ।

२ एक ऋषि जो महाभारत के अनुसार व्याघ्रपद नामक ऋषि के पुत्र और बड़े शिवभक्त थे ।

विशेष—ये सतयुग में थे और बचपन में ही माँ से छूट होकर शिव का तप करके अजर अमर और दिव्यज्ञान संपन्न हो गए थे ।

३ एक ऋषि का नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे ।

विशेष—इनके आरुणि, उपमन्यु और वेद नामक तीन पुत्र थे ।

४ एक ऋषि जो तारा रूप में पश्चिम दिशा में स्थित हैं ।

विशेष—इनका नाम महाभारत में उषगु, कवि और परिव्याघ के साथ आया है ।

धौम्र^१—वि० [सं०] घुए के रंग का । घुमैला [को०] ।

धौम्र^२—संज्ञा पुं० धूम्र वर्ण [को०] ।

धौर^१—संज्ञा पुं० [हिं० धौरा (= सफेद)] एक चिड़िया । सफेद परेवा ।

धौर^२—वि० [सं० धवल] श्वेत । सफेद । उ०—हाड़ देखि के तजत तिय ज्यों कोली के कूप । त्यों ही धौरे केस लखि बुरो लगत नर रूप ।—ब्रज० प्र०, पृ० ७८ ।

धौरहर^३—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौराहर' । उ०—नए धौरहर सुखद सुपासा । जनु घर पर दूसर कैलासा ।—नद० प्र०, पृ० ११६ ।

धौरहरिया^४—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धौराहर' । उ०—सेयाँ मोर सुतल धौरहरिया ।—घरम०, पृ० ६३ ।

धौरा^१—वि० [सं० धवल] [वि० स्त्री० धौरी] श्वेत । सफेद । उजला । उ०—धूम, प्रयाम, धवरे धन धाए । श्वेत वृजा बग पाति दिलाए ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धौरी धेनु बजावन कारन मधुरे धेनु बनावै ।—सूर (शब्द०) । (ग) आयो जीन तेरी धौरी धारा में धंसत जात तिनको न होत सुरपुर ते निपात है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

धौरा^२—संज्ञा पुं० १ धौ का पेड़ । २. सफेद रंग का बैल । ३ एक पक्षी । एक प्रकार का पड़क जो कुछ बड़ा और खुलते रंग का होता है । उ०—धौरी पड़क कहि पिय ठाऊँ । जो चित रोख न दूसर नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

धौरा^३—संज्ञा पुं० दे० 'बाकली' ।

धौरादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिवपुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

धौराहर—संज्ञा पुं० [हिं० धूर (= ऊपर) + धर] ऊँची छतारी । मवन का वह भाग जो खंभे की तरह बहुत ऊँचा गया हो और जिसपर चढ़ने के लिये भीतर सीढ़ियाँ बनी हों । घरहरा । बुर्ज । उ०—(क) पदमावति धौराहर चढ़ी ।—जायसी

(शब्द०) । (ख) राम जपु राम जपु राम जपु आवरे । भव नीर निधि नाम निज नाव रे । जग वभ वाटिका है फलि फूल रे । धुम्राँ कैसी धौराहर देखि तू न भूल रे । तुलसी (शब्द०) । (ग) बोरे मन रहन अटल करि न धन दारा सुत बधु कुटुंब कुन निरखि निरखि बौराना । जन्म सपनो सो समुक्ति देखि अल्पमन माही । बादर छाहँ धौराहर जैसे धिर न रहाही ।—सूर (शब्द०) ।

धौरितक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पाँच चालों में से एक ।

धौरिय^५—संज्ञा पुं० [सं० धौरेय] बैल । उ०—नैनन कधे । धरे नहीं धुर लाइ । कैसे मन को बोझ धरि धर लो चलाइ ।—रसनिधि (शब्द०) ।

धौरियाँ—संज्ञा पुं० [सं० धौरेय] दे० 'धौरेय' ।

धौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौरा] १ सफेद रंग की गाय । उ०—साँझ की कारी घटा धरि आई महा भर सों बरसे सावन । धौरिहु कारिहु आइ गई सु रम्हाइ के घाड़ के बुलावन ।—देव (शब्द०) । २ एक प्रकार की ठाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

धौरी^२—वि० स्त्री० श्वेत । सफेद ।

धौरी^३—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'बाकली' ।

धौरे—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'धौरे' ।

धौरेय^४—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धौरेयी] १ धुर खींचनेवाला । आदि खींचनेवाला । २ भार या बोझ ले जाने योग्य (को०)

धौरेय^२—संज्ञा पुं० १ वह बैल जो गाड़ी खींचता है । २ (को०) । ३. बोझ ले जानेवाला जानवर (को०) । ४. प्रधान । नेता (को०) ।

धौरेहरा^५—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौराहर' । उ०—पलटू नर जात है घास के ऊपर सीत । धूर्पा का धौरेहरा ज्यो की भीत ।—पलटू०, भा० १, पृ० २२ ।

धौर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता । वेईमानी । दुष्टता [को०] ।

धौर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता [को०] ।

धौर्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता ।

धौर्य—संज्ञा पुं० [सं० धौर्य] घोड़े की एक चाल । धोरण ।

धौल^१—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १ हाथ के पजे का भारी आघात सिर या पीठ पर पड़े । धप्पा । चाँटा । धप्पड़ । उ०—भाषइ तो इक धौल लगे सब पदति दूर दुरे चट तें गोपाल (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना

धौल^२—धौल धप्पड़ । धौल धप । धौल धक्का । धौल धप्पा ।

मुहा०—धौल कसना, या जमाना=चाँटा लगाना,

मारना । धौल खाना=चाँटा सहना । धप्पड़ की मार

२ हानि का आघात । नुकसान का धक्का । हानि ।

जैसे,—बैठे बैठाए ५०० की धौल पड़ गई ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लगना ।

धौल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धवल] १ धीर नाम की ईख जिसकी खेती कानपुर, बरेली आदि में होती है। २ ज्वार का हरा डंठल।

धौल^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धवल] धौ का पेड़। धीरा। बकली।

धौल^४—वि० [सं० धवल] उजला। सफेद। उ०—देव कहें अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे। देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे। सोहै सितारित को मिलिबो तुलसी झुलसै हिय हेरि हिलोरे। मानो हरो तुन चार चरं वगरे सुरधनु के धौल कलौरे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—धौल घूत = गहरा घूत। पक्का चालबाज। उ०—ऊधो हम यह कैसे मानें। घूत धौल लपट जैसे पट हरि तैसे धीरन जाने।—सूर (शब्द०)।

धौल^५—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धीराहर] धरहरा। धीराहर। उ०—कटक बनाए वेश राम ही को जायो पापी मेरो मन घुमा को सो धौल नभ छायो है।—हनुमान (शब्द०)।

धौल^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धवल] हाथी। उ०—धौल मदलिया बैलर बावो।—कबीर ग्रं०, पृ० ६२।

धौलघक्कड़—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धौल + घक्का] मारपीट। दगा। ऊधम। उपद्रव।

धौलघक्का^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धौल + घक्का] मारघात। चपेट। उ०—तुलसी जिनहें घाए धुके धरनी घर, धौलघकान तें मेर हलै हैं।—तुलसी (शब्द०)।

धौलघक्का—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धौल + घक्का] मारघात। चपेट।

धौलघप्पड़—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धौल + घप्पा] १ मारपीट। घक्का मुक्का। २ दगा। उपद्रव। ऊधम।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

धौलघप्पा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धौल + घप्पा] दे० 'धौलघप्पड़'। उ०—धौलघप्पा उस शरापा नाज का शेवा नहीं। हम ही कर बैठे ये गालिव पेशदस्ती एक दिन।—गालिव०, पृ० १८५।

धौलहर^८—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धीराहर] धीराहर। उ०—कविरा हरि की भक्ति बिनु धिक जीवन संसार। घूमा का सा धौलहर जात न लागे बार।—कबीर (शब्द०)।

धौलहरा^९—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौलहर'।

धौलाजर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धवल + जल] एक पर्वत जो पंजाब के कांगड़ा जिले में है।

धौला^{१०}—वि० [सं० धवल] [वि० स्त्री० धौली] सफेद। उजला। श्वेत। उ०—दाहू काले ये धौला भया।—दाहू०, पृ० २०७।

धौला^{११}—सञ्ज्ञा पुं० १ धौ का पेड़। धीरा। २ सफेद बैल।

धौला^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धवल] धवलता। श्वेतता। सफेदी। उ०—सहजो धौले प्राह्या भठने लागे दौत। तन गु मल पड़ने लगी सुखन लागी मात।—सहजो० पृ० २६।

धौलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० धौल + लाई (प्रत्य०)] सफेदी। उजलापन।

धौला खैर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० धौला + खैर] बबूल की जाति का एक पेड़

जिसकी छाल सफेद होती है। यह बंगाल, बिहार, आसाम और दक्षिण भारत में होता है।

धौलागिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] दे० 'धवलगिरि'।

धौलाघर^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धीराहर'। उ०—साठ कोठा धौलाघर नाऊं। तीनो लोक मही तेहि ठाऊं।—घट०, पृ० ४६।

धौली^{१४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक बड़ा पेड़ जो जाड़े में पत्तियाँ झड़ता है।

विशेष—इसकी लकड़ी नरम और सूरी होती है तथा पालकी, खिलोने, खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी भीतर की छाल दवाओं में पड़ती है और चमड़ा सिक्कने के काम में भी आती है। यह पेड़ पंजाब, अवध, मध्यप्रदेश तथा मद्रास में भी थोड़ा बहुत होता है।

धौली^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] एक पर्वत जो उड़ीसा में भुवनेश्वर के दक्षिण में है।

विशेष—यहाँ अनेक प्राचीन मंदिर हैं। इसके शिखर पर महाराज अशोक के अनुशासन खुदे हैं।

ध्मांक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्माक्ष] दे० 'ध्वाक्ष'।

ध्मांक्षजंघा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षजंघा] काकजंघा [को०]।

ध्मांक्षजंतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्माक्षजंतु] काकजंतु [को०]।

ध्मांक्षतुडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षतुडी] एक प्रकार की लता। काकमासा [को०]।

ध्मांक्षदन्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षदन्ती] काकतुडी [को०]।

ध्मांक्षनखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षनखी] काकतुडी [को०]।

ध्मांक्षनाशिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षनाशिनी] हाकबेर।

ध्मांक्षपुष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्माक्षपुष्ट] कोकिल [को०]।

ध्मांक्षवल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षवल्ली] कोमाठोठी। काकनासा।

ध्मांक्षदन्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षदन्ती] काकतुडी।

ध्मांक्षाराति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्माक्षाराति] उल्लू [को०]।

ध्मांक्षी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षी] १. ककौलिका। शीतसन्धीनी। १. कीवे की मादा [को०]।

ध्मांक्षोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षोली] काकोली।

ध्माकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

ध्मात—वि० [सं०] १ फुलाया हुआ। २ फूँककर बजाया हुआ। ३ सरोजित किया हुआ। उभारा हुआ। लुब्ध किया हुआ [को०]।

ध्मान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] (फूँककर) बजाने की क्रिया [को०]।

ध्मापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फूँककर फुलावे की क्रिया [को०]।

ध्मापित—वि० [सं०] राख किया हुआ। राख में परिणत [को०]।

ध्मंम^{१६}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धम'। उ०—नाचंत तेन पैरव सुयल घरनि ध्मंम बुज्जिय बसकि।—पु० रा०, ६। १११।

ध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विचार। चिंतन [को०]।

ध्यात—वि० [सं०] चिंतित। विचारा हुआ। ध्यान किया हुआ।

ध्यातव्य—वि० [सं०] १. ध्यान देने योग्य । विचारणीय । २. जिस-
पर ध्यान दिया जाय । ध्यान देने योग्य । विचारणीय ।
३ ध्यान में लाने योग्य [को०] ।

ध्याता—वि० [सं० ध्यातृ] [वि० ली० ध्यातृ] १. ध्यान करने-
वाला । २. विचार करनेवाला । ड०—ज्ञाता ज्ञेयऽरु ज्ञान जो
ध्याता धेयऽरु ध्यान । द्रष्टा दृश्यरु दृश्य जो त्रिपुरी शब्दा-
मान ।—कबीर (शब्द०) ।

ध्यात्व—संज्ञा पुं० [सं०] विचार । मनन [को०] ।

ध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाह्य इंद्रियों के प्रयोग के बिना केवल
मन में लाने की क्रिया या भाव । अंतःकरण में उपस्थित
करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । जैसे, किसी
देवता का ध्यान करना, किसी प्रिय व्यक्ति का ध्यान करना ।
उ०—बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किशोर देखि किन
लेहू ?—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—ध्यान में डूबना या मग्न होना = कोई बात इतना
मन में लाना कि और सब बातें भूल जायें । ध्यान धरना =
मन में स्थापित करना । स्वरूप आदि को मन में लाना ।
(किसी के) ध्यान में लगना = मन में लाकर मग्न होना ।
उ०—परसत पोंछत लखि रहत लखि कपोल के ध्यान ।
कर लै पिय पाटल विमल प्यारी पठए पान ।—बिहारी
(शब्द०) ।

२. सोच विचार । चिंतन । मनन । जैसे,—भाजकल तुम किस
ध्यान में रहते हो । ३ भावना । प्रत्यय । विचार । खयाल ।
जैसे,—(क) चलते समय तुम्हें यह ध्यान न हुआ कि घोड़ी
लेते चलें ? (ख) मन में इस बात का ध्यान बना
रहता है ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ध्यान आना = भावना होना । विचार उत्पन्न होना ।
ध्यान जमना = विचार स्थिर होना । खयाल बैठना । ध्यान
बैठना = विचार का बराबर या बहुत देर तक बना रहना ।
लगातार खयाल बना रहना । जैसे,—उसे जिस बात का ध्यान
बैध जाता है, वह उसके पीछे पड़ जाता है । ध्यान रखना =
विचार बनाए रखना । न भूलना । ध्यान लगना = मन में
विचार बराबर बना रहना । बराबर खयाल बना रहना ।
जैसे, मुझे तुम्हारा ध्यान बराबर लगा रहता है । उ०—ध्यान
लगो मोहि तोरा रे ।—गीत (शब्द०) ।

४. रूपों या भावों को धीतर लेने या उपस्थित करनेवाला अंतः-
करण विधान । चित्त की ग्रहण वृत्ति । चित्त । मन । जैसे,—
तुम्हारे ध्यान में यह बात कैसे आई कि मैंने तुम्हारे साथ ऐसा
क्रिया होगी ।

क्रि० प्र०—में आना ।—में लाना ।

मुहा०—ध्यान में न लाना = (१) चित्त न करना । परवाह न
करना । (२) न सोचना समझना । न विचारना ।

५. चित्त का एकले या इंद्रियों के सहित किसी विषय की ओर

लक्ष्य जिससे उस विषय का स्थान अंतःकरण में सबके
हो जाय । किसी के सबध में अंतःकरण की जाग्रत
चेतना की प्रवृत्ति । चेत । खयाल । जैसे,—(क) इसकी
गरी को ध्यान से देखो तब खूबी मालूम होगी । (ख)
ध्यान दूसरी ओर था, फिर से कहिए । (ग) इधर
दो ओर सुनो ।

मुहा०—ध्यान जमना = मन का एक ही विषय के ग्रहण
बराबर तत्पर रहना । खयाल इधर उधर न जाना ।
एकाग्र होना । ध्यान जाना = चित्त का किसी ओर
होना । दृष्टि पड़ना और बोध होना । जैसे,—जब मेरा
उधर गया तब मैंने उसे टहकते देखा । ध्यान दिलाना
दूसरे का चित्त प्रवृत्त करना । खयाल कराना, दिखाना
जताना । चेत कराना । चेताना । सुझाना । ध्यान देना
(अपना) चित्त प्रवृत्त करना । चित्त प्रवृत्त करना ।
एकाग्र करना । खयाल करना । गौर करना । ध्यान
चढ़ना = मन में स्थान कर लेना । चित्त से न हटना ।
लगने या और किसी विशेषता के कारण न भूलना । जैसे,
तुम्हारे ध्यान पर तो वही चीज चढ़ी हुई है, और
चीज पसंद ही नहीं आती । ध्यान बैठना = चित्त का
भी रहना उधर भी । चित्त एकाग्र न रहना । खयाल
उधर होना । जैसे,—काम करते समय कोई बातचीत
है तो ध्यान बैठ जाता है । ध्यान बैठाना = चित्त को
न रहने देना । खयाल इधर उधर ले जाना । ध्यान बैठना
किसी ओर चित्त स्थिर होना । चित्त एकाग्र होना ।
लगना = चित्त प्रवृत्त होना । मन का विषय के ग्रहण
तत्पर होना । चित्त एकाग्र होना । जैसे,—उसका ध्यान
तब तो वह पड़े । ध्यान लगाना = १० 'ध्यान देना' ।

६ बोध करनेवाली वृत्ति । समझ । बुद्धि ।

मुहा०—ध्यान पर चढ़ना = १० 'ध्यान में आना' । ध्यान
जमना = मन में बैठना । चित्त में निश्चित होना । विश्वास
रूप में स्थिर होना ।

७ धारणा । स्मृति । याद ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ध्यान आना = स्मरण होना । याद होना ।
दिलाना = स्मरण कराना । याद दिलाना । जैसे,—जब
तब तुम्हें ध्यान दिला दूँगे । ध्यान पर चढ़ाना = स्मृति
आना । स्मरण होना । याद होना । ध्यान रखना =
बनाए रखना । याद रखना । न भूलना । ध्यान रहना
स्मृति में न रहना । याद न रहना । विस्मृत होना । भूलना
चित्त की चारों ओर से हटाकर किसी एक विषय (
परमात्मचित्तन) पर स्थिर करने की क्रिया । चित्त
एकाग्र करके किसी ओर लगाने की क्रिया । जैसे,
का ध्यान लगाना ।

विशेष—योग के आठ अंगों में 'ध्यान' सातवाँ अंग है ।
धारणा और समाधि के बीच की अवस्था है । जब
प्रत्याहार द्वारा अपने चित्त की वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त

लेता है तब उन्हें चारों ओर से हटाकर नाभि आदि स्थानों में से किसी एक में लगाता है। इसे धारणा कहते हैं। धारणा जब इस अवस्था को पहुँचती है कि धारणीय वस्तु के साथ चित्त के प्रत्यय की एकता ज्ञात होती है तब उसे ध्यान कहते हैं। यही ध्यान जब चरमावस्था को पहुँच जाता है तब समाधि कहलाता है जिसमें ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता अर्थात् ध्याता ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपनी सत्ता भूल जाती है। बौद्ध और जैन धर्मों में भी ध्यान एक आवश्यक अंग है। जैन शास्त्र के अनुसार उत्तम सहनन युक्त चित्त के अवरोध का नाम ध्यान है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—लगाना।

मुद्रा०—ध्यान व्रतना = चित्त की एकाग्रता का नष्ट होना। चित्त इधर उधर हो जाना। उ०—रोवन लग्यो सुत मृतक जान। रुदन करत छूटयो श्रृंग ध्यान।—सूर (शब्द०)। ध्यान धरना = ध्यान लगाना। परमात्मचित्तन आदि के लिये चित्त को एकाग्र करके बैठना।

ध्यानगम्य—वि० [सं०] केवल ध्यान से प्राप्य [को०]।

ध्यानतत्पर—वि० [सं०] ध्यानस्थ। ध्यानलीन। विचारों में डूबा हुआ [को०]।

ध्यानना०—क्रि० सं० [सं० ध्यान] ध्यान करना। (व०)। उ०—बिनु हरि भक्त सब जगत की यही रीति मयो हरि भक्ति की अनंत पद ध्यानिये।—प्रियादास (शब्द०)।

ध्याननिष्ठ—वि० [सं०] ध्यानलीन। विचारों में डूबा हुआ [को०]।

ध्यानपर—वि० [सं०] ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानमग्न—वि० [सं०] ध्यानलीन। ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानमुद्रा—संज्ञा स्त्री [सं०] किसी देवी या देवता का ध्यान करने की विहित मुद्रा [को०]।

ध्यानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान अंग हो। २ तन्त्र या इन्द्रजाल की एक क्रिया जिसके द्वारा मन में किसी प्राकृति की कल्पना करके शत्रु का नाश किया जाता है।

ध्यानरत—वि० [सं०] ध्यान में डूबा हुआ। ध्यानमग्न [को०]।

ध्यानरम्य—वि० [सं० ध्यान + रम्य] ध्यान करने में प्रिय। जिसका ध्यान करना अच्छा लगे। उ०—नहिं ज्ञे जाता नहिं ज्ञान गम्य नहिं ध्ये व्याता नहिं ध्यान रम्य।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ७८।

ध्यानलीन—वि० [सं०] ध्यानरत। ध्यानमग्न [को०]।

ध्यानशील—वि० [सं०] ध्यानस्थ। ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानसाध्य—वि० [सं०] ध्यान से साधित या सिद्ध होनेवाला [को०]।

ध्यानस्थ—वि० [सं०] ध्यानरत। ध्यानलीन [को०]।

ध्याना०—क्रि० सं० [सं० ध्यान] १. ध्यान करना। उ०—(क) हिंदू ध्यावहि देहरा, मुसलमान मसीत। दास कधीर तहें ध्यावहि जहाँ दोनों परसीत।—कधीर (शब्द०)। (ख) मजुमन नद नदन चरन। परम पकज अति मनोहर सकल सुख के करत। सनक शंकर जाहि ध्यावत निगम धरन बरन। शेष

धारद श्रृंग सुनारद संत चितत चरन।—सूर (शब्द०)। २ स्मरण करना। सुमरना। उ०—हरि हरि हरि सुमरो सब कोई। हरि हरि सुमिरत सब सुख होई। ... हरिहि मित्रविदा चित ध्यायो। हरि तहाँ जाइ विलंब न लायो।—सूर (शब्द०)।

ध्यानाभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान लगाने का अभ्यास। समाधि [को०]।

ध्यानावधार—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवता।

ध्यानावस्थित—वि० [सं० ध्यान + अवस्थित] ध्यान में डूबा हुआ। ध्यान में मग्न। उ०—अथवा बैठे होंगे आप रहस्य शिखर पर। अमर सोक के, निभूत मोन में ध्यानावस्थित।—युगपथ, पृ० ११४।

ध्यानिक—वि० [सं०] ध्यानसाध्य। जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो। ध्यान से सिद्ध होने योग्य।

ध्यानिबुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के बुद्ध।

विशेष—इनकी संख्या कोई ५ या ६ और कोई १० से भी अधिक बताते हैं।

ध्यानिबोधिसत्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ध्यानिबुद्ध' [को०]।

ध्यानी—वि० [सं० ध्यानिन्] १. ध्यानयुक्त। समाविस्थ। २. ध्यान करनेवाला। जो ध्यान में रहता हो।

ध्याम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दमनक। दोना। २. गधतृण।

ध्याम^२—वि० १. श्यामल। साँवला। २. गदा। मिला [को०]।

ध्यामक—संज्ञा स्त्री [सं०] रोहिंस घास। रोहिंस सोधिग।

ध्यावना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ध्याना'। उ०—सदा निरभय राज नित सुख, सोई कैसव ध्यावन।—केशव० अमी०, पृ० २।

ध्येय^१—वि० [सं०] १. ध्यान करने योग्य। २. जिसका ध्यान किया जाय। जो ध्यान का विषय हो।

ध्येय^२—संज्ञा पुं० १. ध्यान की वस्तु। ध्यान का विषय। २. लक्ष्य। ध्येय [को०]।

ध्रगदा०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुर्ग'। उ०—कै जासी सुर ध्रंगदै, कै आसो रणजीत—बाँकी प्र०, भा० १, पृ० ८।

ध्र—वि० [सं०] धारण करनेवाला।

विशेष—यह समासांत में प्रयुक्त होता है। जैसे, नहीध्र, क्रुध्र।

ध्रजि—संज्ञा स्त्री [सं०] वेगपूर्ण गति (वायु आदि की) [को०]।

ध्रतारा०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ध्रुवतारा'। उ०—ध्रतारो कम छड्ड ठामि?—बी० रासो, पृ० ६०।

ध्रम०—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] दे० 'धर्म'। उ०—रहि जुगल नीच सुचित, ध्रम स्वामि धरि हरि मित।—प० रासो, पृ० ८०।

ध्रमसुत०—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसुत] दे० 'धर्मसुत'। उ०—एकाक्षर से पचदह विक्रम जमि ध्रमसुत। त्रितय साक प्रियराज को लिख्यो विप्र गुन गुता।—प० रासो, १। ३६५।

ध्रवना०—वि० सं० [सं० ध्र + धावन्] तृप्त करना। उ०—ध्रुन मुधरी पृहमी ध्रवै, दुसह निवार दुकाल।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ५३।

प्राक्षा—सखा श्री० [सं०] प्राक्षा । दाख ।

प्राजि—सखा श्री० [सं०] १ वेगपुणं गति । २ प्रवृत्ति । ३. आंधी ।
तूफान [को०] ।

प्रीह—सखा श्री० [?] ध्वनि । आवाज । घाह । उ०—सखी
भमीणी साहिबी सुणे नगरा प्रीह ।—बांकी० प्र०, भा०
१, पृ० ६ ।

ध्रुव—सखा पु० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—ध्रुव सगलानि जपेउ
हरि नाऊं । पायेउ भवल भनूपम ठाऊं ।—मानस, १ । २६ ।

ध्रुति—सखा श्री० [सं०] १. विधि । भाग्य । २. प्रयोगति । कदाचार
[को०] ।

ध्रुपद—सखा पु० [सं० ध्रुवपद] एक गीत जिसके चार तुक होते हैं—
अस्थायी, अतरा, सचारी और आभोग । कोई मिलातुक नामक
इसका एक पाँचवाँ तुक भी मानते हैं । इसके द्वारा देवताओं
की लीला, राजाओं के यज्ञ तथा युद्धादि का वर्णन गूढ़ राग
रागिनियों से युक्त गाया जाता है ।

विशेष—इसके गाने के लिये स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यक-
कता नहीं । इसमें यद्यपि द्रुतलय ही उपकारी है, तथापि यह
विस्तृत स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी मला
मालूम होता है । किसी किसी ध्रुपद में अस्थायी और अतरा
दो ही पद होते हैं । ध्रुपद कानड़ा, ध्रुपद केदारा, ध्रुपद
एमन आदि इसके भेद हैं । इस राग को संस्कृत में ध्रुवक
कहते हैं । संगीतदामोदर के मत से ध्रुपद सोलह प्रकार
का होता है—जयत, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुतल,
कमल, सानद, चंद्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कदर्प, जय-
मंगल, तिलक और ललित । इनमें से जयत के पाद में
ग्यारह अक्षर होते हैं फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक
अक्षर अधिक होता जाता है, इस प्रकार ललित में सब २६
अक्षर होते हैं । छह पदों का ध्रुपद उत्तम, पाँच का मध्यम
और चार का अधम होता है ।

ध्रुव^१—वि० [सं०] १ सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला । इधर उधर
न हटनेवाला । स्थिर । भ्रमल । २ सदा एक ही अवस्था में
रहनेवाला । निश्चय । ३ निश्चित । दृढ़ । ठीक । पक्का ।
जैसे,—उनका आना ध्रुव है ।

ध्रुव^२—सखा पु० १ प्राकाश । २. शकु । कील । ३. पर्वत । ४
स्थान । खमा । धून । ५. वट । वरगद । ६. घाठ वसुधो मे
से एक । ७ ध्रुवक । ध्रुपद । ८ एक यज्ञपात्र । ९ अरारि
नामक पक्षी । १० विष्णु । ११ हर । १२ फलित ज्योतिष
में एक शुभ योग जिसमें उत्पन्न बालक बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान्
और प्रसिद्ध होता है । १३ ध्रुवतारा । १४. नाक का अगला
भाग । १५ गाँठ । १६. पुराणों के अनुसार राजा उत्तानपाद
के एक पुत्र जिनकी माता का नाम सुनीति था ।

विशेष—राजा उत्तानपाद की दो स्त्रियाँ थीं; सुरवि और
सुनीति । सुरवि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव उत्पन्न हुए ।
राजा सुरवि को बहुत चाहते थे । एक दिन राजा उत्तम को
गोद में लिए बैठे थे इसी बीच में ध्रुव बचते हुए वहाँ का

पहुँचे और राजा की गोद में बैठ गए । इसपर उनकी
सुरवि ने उन्हें अज्ञा के साथ वहाँ से उठा दिया । ध्रुव
अपमान को सह न सके, और घर से निकलकर तप करने
गए । विष्णु भगवान् उनकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए
उन्हें वर दिया कि 'तुम सब लोकों और ग्रहों नक्षत्रों के
उनके आधार स्वरूप होकर भ्रमल भाव से स्थित रहोगे
जिस स्थान पर तुम रहोगे वह ध्रुव लोक कहलावेगा ।
उपरांत ध्रुव ने घर आकर पिता से राज्य प्राप्त किया
शिशुमार को कन्या भ्रमि से विवाह किया । इसका नाम
इनकी एक और पत्नी थी । भ्रमि के गर्भ से कल्प और
तथा हला के गर्भ से उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न हुए । एक
इनके सीतेले भाई उत्तम को यक्षों ने मार डाला इसलिये
उनसे युद्ध करना पड़ा जिसे पितामह मनु ने शांत किया ।
में छत्तीस हजार वर्ष राज्य करते ध्रुव विष्णु के दिए
ध्रुवलोक में चले गए ।

१७ शरीर की भौरी ।

विशेष—वक्षस्थल, मस्तक, रघ्र, उपरघ्र, माल और अपान
स्थानों की भौरियाँ ध्रुव कहलाती हैं । (शब्दार्थचिन्तामणि)

१८ सुगोल विद्या में पृथ्वी का अक्ष देश । पृथ्वी के वे दोनों
जिससे होकर अक्षरेखा गई हुई मानी जाती है ।

विशेष—सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी लट्टू की तरह घूमती हुई
है । एक दिन रात में उसका इस प्रकार का घूमना एक
ही जाता है । जिस प्रकार लट्टू के बीचोबीच एक कील
होती है जिसपर वह घूमता है उसी प्रकार पृथ्वी के
से गई हुई एक अक्षरेखा मानी गई है । यह अक्षरेखा ।
दो सिरों पर निकली हुई मानी गई है उन्हें 'ध्रुव' कहते
ध्रुव दो हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव
कुमेरु । इन स्थानों से २३½ अंश पर पृथ्वी के तल पर
एक वृत्त माने गए हैं जिन्हें उत्तर और दक्षिण
कहते हैं । ध्रुवों और इन वृत्तों के बीच के प्रदेश अत्यंत
हैं । उनमें समुद्र आदि का जल सदा जमा रहता है ।
प्रदेश में दिन रात २४ घंटों का नहीं होता, वर्ष भर
होता है । जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं तब तक
ध्रुव पर दिन और दक्षिण ध्रुव पर रात और जब
दक्षिणायन रहते हैं तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन
उत्तर ध्रुव पर रात रहती है । अर्थात् मोटे हिसाब से
जा सकता है कि वहाँ छत्र महीने की रात और छह
का दिन होता है । इसी प्रकार वहाँ सध्या और उषा
भी लंबा होता है । वहाँ सूर्य और चंद्रमा पूर्व से
जाते हुए नहीं मालूम होते बल्कि चारों ओर कोलू के
की तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं । ध्रुव प्रदेश में उषा
और संध्या काल की लसाई मिलित है ऊपर वीथी
तक घूमती दिखाई पड़ती है । वहाँ तक नहीं,
युक्त रात्रिचक्र भी ध्रुव के चारों ओर घूमता दिखाई पड़ता

शब्द की गति ध्रुव प्रदेश में बहुत तेज होती है, मीला पर होनेवाला शब्द ऐसा जान पड़ता है कि पास ही हुआ है। इस भूभाग में सबसे मनोहर मेरुज्योति है जो चित्र विचित्र और नाना वर्णों के प्रालोक के रूप में कुछ काल तक दिखाई देती है।

१६. फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रगण जिसमें उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तर भाद्रपद और रोहिणी है। २०. रण का अठारहवां भेद जिसमें पहले एक सधु, फिर एक गुरु और फिर तीन सधु होते हैं। २१. तालु का एक रोग जिसमें सलाई और सुजन आ जाती हैं। २२. सोमरस का वह भाग जो प्रातः काल से सायंकाल तक बिना किसी देवता को अर्पित हुए रखा रहे।

ध्रुवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थाणु। धून। खमा। २. ध्रुपद नामक गीत। ३. ध्रुपद की टेक (को०)। ४. नक्षत्र की दूरी।

विशेष—मीन राशि के शेष से जिस नक्षत्र का योग तारा जितनी दूर पर रहता है उतने को उस नक्षत्र का ध्रुवक कहते हैं।

ध्रुवका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्रुपद।

ध्रुवकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति के अनुसार एक प्रकार का केतु तारा।

विशेष—इस प्रकार के केतुओं का न तो आकार नियत है, न वर्ष या प्रमाण, यहाँ तक कि उनकी गति भी नियत या निश्चित नहीं होती। देखने में वे स्तिग्ध होते हैं और फलित ज्योतिष में इनके बीच भेद जाने गए हैं, दिव्य, आंतरिक्ष और भीम। इनका कर्म भी अनियत है—कभी अच्छा, कभी बुरा, कभी बुरा।

ध्रुवमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्रुव का अत्युत्तम स्थिति (को०)।

ध्रुवचरम्—संज्ञा पुं० [सं०] दृढता के बारह भेदों में से एक भेद।

ध्रुवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थिरता। अचलता। उ०—किस मकय कल्प से मानव तेरी ध्रुवता को गाते, हो प्रार्थी, प्रत्याणी वे उसकी हैं सीध नवाते।—इत्यलम्, पृष्ठ ७४। २. दृढता। पक्कापन। ३. निश्चय।

ध्रुवतारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ध्रुवतारा' (को०)।

ध्रुवतारा—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव + तारक, हि० तारा] वह तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरु के ऊपर रहता है, कभी इधर उधर नहीं होता है।

विशेष—यह तारा बहुत चमकीला नहीं है और सप्तर्षि के सिरे पर के दो तारों की सीध में उत्तर की ओर कुछ दूर पर दिखाई पड़ता है। इसकी पहचान यही है कि यह अपना स्थान नहीं बदलता। तारा राशिचक्र इसके किनारे फिरता हुआ जान पड़ता है और यह अपने स्थान पर अचल रहता है। रात के प्रत्येक पहर में लठ उठकर इसके साथ सप्तर्षि को ही देखने से इसका अनुभव हो सकता है। जिस प्रकार सप्तर्षि में सात तारे हैं उसी प्रकार जिस शिशुमार नामक तारकपुंज के अंतर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातों में ध्रुव

पहला और सबसे उज्ज्वल है। ध्रुव तारा सदा एक ही नहीं रहता। पृथ्वी के अक्ष या मेरु से जिस तारे का व्यवधान सबसे कम होता है अर्थात् पृथ्वी के अक्षबिंदु की सीध से जो तारा सबसे कम हटकर होता है वही ध्रुवतारा होता है। आजकल जो ध्रुवतारा है वह मेरु या अक्षबिंदु से १२ अंश पर है। अयनवृत्त के चारों ओर नाहोमहस के मेरु को पीछे छोड़ता हुआ उसकी सीध से बहुत हट जायगा और तब अभिजित नामक नक्षत्र ध्रुवतारा होगा। आज से पाँच हजार वर्ष पहले ध्रुवन नामक तारा ध्रुवतारा था। वर्तमान ध्रुव का व्यवधानांतर आजकल मेरु से १२ अंश है पर सन् १७८५ ई० में २ अंश २ कला था और दो हजार वर्ष पहले १२ अंश था।

भारतवासियों को ध्रुव का परिचय अत्यंत प्राचीन काल से है। विवाह के वैदिक मंत्र में ध्रुवतारा का नाम आता है। भारतीय ज्योतिर्विदों के मतानुसार दो ध्रुवतारे हैं—एक उत्तर ध्रुव की सीध में, दूसरा दक्षिण ध्रुव की सीध में।

ध्रुवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवता (को०)।

ध्रुवदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तर्षिमंडल। २. कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के संस्कार के अंतर्गत एक कृत्य जिसमें वर वधू को मंत्र पढ़कर ध्रुवतारा दिखाया जाता है।

ध्रुवधार्य—वि० [सं० ध्रुव + धार्य] निश्चित रूप से धारण करने योग्य। उ०—इस रसकलस में भी ध्रुवधार्य धार्य काल के आदर्श उपस्थित कर . . . सफल प्रयास किया है।—रसक०, पृ० ५।

ध्रुवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दुहते समय चुपचाप खड़ी रहे।

ध्रुवनंद—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवनन्द] नंद के एक भाई का नाम।

ध्रुवनाउ—क्रि० सं० [हि० घुंवा] बरसना। उ०—पृथ्वी पाहण रुख पखेरु ध्रुवे चखा जलधारा।—रघु० क०, पृ० १३६।

ध्रुवपद—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवक। ध्रुपद।

ध्रुवमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जिसके द्वारा दिशाओं का ज्ञान होता है। कुतुबनुमा (नवीन)।

ध्रुवद्वारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मातृका जो कुमार या कार्तिकेय की अनुचरी है।

ध्रुवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक लोक जो सत्यलोक के अंतर्गत है और जिसमें ध्रुव स्थित है।

ध्रुवसंधि—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवसन्धि] सूर्यवंशीय राजा सुसंधि के पुत्र (रामायण)।

ध्रुवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञपात्र जो वेकड की लकड़ी का बनता है। २. मूर्वा। मरोड़फली। ३. शालपर्णी। सरिवन। ४. ध्रुपदगीत। ५. साध्वी स्त्री। सती स्त्री। ६. दोहनकाल में स्थिर रहनेवाली गाय (को०)। ७. प्रत्यक्षा। घनुष की डोरी (को०)। ८. संगीत का एक ठाल जिसमें मात्रा का निश्चय करतल की ध्वनि से होता है (को०)। ९. ऊर्ध्व स्थिति (को०)।

ध्रुवाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] बिष्णु (को०)।

ध्रुवाधिकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्रुव + अधिकरण] भूमिकर का अधिकारी ।—भा० भा०, पु० ४४५ ।

ध्रुववार्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ घोड़े की भौरी जो ललाट, केश, रघ्र, उपरघ्र, वक्ष इत्यादि में होती है । २. वह घोड़ा जिसके ऐसी भौरियाँ होती हैं ।

ध्रुवि—वि० [सं०] ध्रुव । प्रचल । घटल । निश्चित [को०] ।

ध्रुवीय—वि० [सं० ध्रुव] १. ध्रुव संबंधित । २. ध्रुव प्रदेश का [को०]

ध्रू—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ध्रुव । उ०—फिर ध्रू प्रह्लाद विभीषण से मन धारि के नाथ यो भीर करी ।—नट०, पु० ३१ ।

ध्रूव—वि० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—दिखे सु नयन पुह करि प्रसिद्ध । कियो पाप इन ध्रूव करि ।—पु० रा०, १।५८२ ।

ध्रोह—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'द्रोह' । उ०—जाल पसारया सगला ध्रोह ।—प्राण०, पु० ३ ।

ध्रौव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ध्रुवत्व । ध्रुवता २ निश्चयत्व । ३. स्थायित्व [को०] ।

ध्वंस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विनाश । नाश । क्षय । हानि ।

विशेष—न्याय और वैशेषिक में 'ध्वंस' एक अभाव माना गया है । पर सत्कार्यवादी सांख्य और वेदांत ध्वंस का अभाव नहीं मानते केवल तिरोभाव मानते हैं । वे वस्तु का नाश नहीं मानते, उसका अवस्थांतर मानते हैं ।

२. भवन या इमारत का ढहना या गिरना [को०] ।

ध्वंसक—वि० [सं०] नाश करनेवाला ।

ध्वंसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० ध्वंसनीय, ध्वंसित, ध्वस्त] १. नाश करने की क्रिया । २. नाश होने का भाव । क्षय । विनाश । तबाही ।

ध्वंसावशेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्वंस + अवशेष] ध्वंस से बचे हुए भाग । खंडहर ।

ध्वंसित—वि० [सं०] १. विनाशित । नष्ट किया हुआ । २. भग्न किया हुआ । हुआ हुआ [को०] ।

ध्वंसी—वि० [सं० ध्वंसिनी] १ नाश करनेवाला । विनाशक । २. नश्वर । नष्ट हो जानेवाला [को०] ।

ध्वंसी^२—सञ्ज्ञा पुं० पहाड़ी पीलू का पेड़ ।

ध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चिह्न । निशान । २. वह लंबा या ऊँचा डंडा जिसे किसी बात का चिह्न प्रकट करने के लिये खड़ा करते हैं या जिसे समारोह के साथ लेकर चलते हैं । बाँस, लोहे, लकड़ी आदि की लंबी छड़ जिसे सेना की चढ़ाई या और किसी तैयारी के समय साथ लेकर चलते हैं और जिसके सिरे पर कोई चिह्न बना रहता है, या पताका बंधी रहती है । निशान । झंडा ।

विशेष—राजाओं की सेना का चिह्नस्वरूप जो लंबा दंड होता है वह ध्वज (निशान) कहलाता है । यह दो प्रकार का होता है—सपताक और निष्पताक । ध्वजदंड बकुल, पलाश, कदंब आदि कई लकड़ियों का होता है । ध्वजा परिमाला से सजाया हुआ प्रकार की होती है—जया, विजया, भीमा, चपला,

वैजयंतिका, दीर्घा, विशाला और लोला । जया पक्ष हाथ होती है, विजया छह हाथ की, इसी प्रकार एक एक हाथ का जाता है । ध्वज में जो चौखूँटा या तिकोना करड़ा बंधा हो है उसे पताका कहते हैं । पताका कई वर्णों की होती है । उनमें विग्र आदि भी बने रहते हैं । जिस पताका में हाथी, घोड़ा आदि बने हों वह जयती, जिसमें हउ, मोर आदि बने हों । अष्टमगखा कहलाती है; इसी प्रकार और भी समझिए (युक्तिकल्पतरु) ।

३ ध्वजा लेकर चलनेवाला आदमी । शौडिक ।

विशेष—मनु ने शौडिक को अतिशय नीच लिखा है ।

४ खाट की पट्टी । ५ लिंग । पुरुषेन्द्रिय ।

यौ०—ध्वजभग ।

६ दर्प । गर्व । घमंड । ७ वह घर जिसकी स्थिति पूर्व की ओर हो । ८ हृदय का निशान । ९ मदिरा का व्यवसायी कलास [को०] ।

ध्वजगृह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें झंडा रखा जाय [को०]

ध्वजग्रीव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस (रामायण) ।

ध्वजदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्वज + दंड] ध्वजा का डंडा । उ०—ध्वजदंड बना यह तिनका, सुने पथ का एक सहारा ।—इत्यलम्, पु० १४७ ।

ध्वजद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ताल । ताड़ का पेड़ ।

ध्वजनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज + नी (प्रत्यय)] सेना । उ०—प्रतनी, ध्वजनी, बाहिनी, चमू, बरुयिन ऐत ।—नट०, पु० ८८ ।

ध्वजपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] झंडा [को०] ।

ध्वजपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्लीबता । नपुंसकता [को०] ।

ध्वजप्रहरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०] ।

ध्वजभंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ध्वजभङ्ग] एक रोग जिसमें पुरुष स्त्रीसंभोग की शक्ति नहीं रह जाती । क्लीबता । नपुंसकता

विशेष—इस रोग में पुरुषेन्द्रिय की पेशियाँ और नाडियाँ क्षिप्त पड़ जाती हैं । चरक आदि आयुर्वेद के आचार्यों के मतानुसार यह रोग अम्ल, क्षार आदि के अधिक भोजन दुष्टयौनि-गमन से, क्षत आदि लगने से, वीर्य के प्रतिरोध से तथा ऐसे ही और कारणों से होता है । भावप्रकाश लिखा है कि संयोग के समय भय, शोक, क्रोध आदि संचार होने से अतमिप्रेता या द्वेष रखनेवाली स्त्री साथ गमन करने से मानस क्लेश उत्पन्न होता है । रोग अधिकतर अधिक शुक्रक्षय और इन्द्रियचालन से उत्पन्न होता है ।

ध्वजमूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खुशीघर की सीमा [को०] ।

ध्वजयष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वजा का डंडा [को०] ।

ध्वजवान्—वि० [सं० ध्वजवत्] [वि० स्त्री० ध्वजवती] १ ध्वजवाला जो ध्वजा या पताका लिए हो । २ चिह्नवाला । चिह्नयुक्त । जो (ब्राह्मण) अन्य ब्राह्मण की हत्या करके प्रा

विषय के लिये उसकी खोपड़ी लेकर मित्रा मांगता हुआ तीर्थों में घूमे (स्मृति) । ४ शौडिक । कसवार ।

ध्वजांशुक—सषा पुं० [सं०] ध्वजपट [को०] ।

ध्वजा—सषा स्त्री० [सं० ध्वज] १. पताका । झंडा । निशान । उ०—
(क) ध्वजा फरवके शून्य में बाजे अनहद तूर । सकिया है मैदान में पहुँचेंगे कोहलूर ।—कवीर (शब्द०) । (ख) करि कपि कटक चले लका को छिन में बाँधो सेत । उत्तरि गए पहुँचे लका पै विजय ध्वजा सकेत ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'ध्वज' ।

मुहा०—ध्वजा फहराना=कीर्ति प्राप्त करना । यशस्वी बनना ।
उ०—भवासा सार सार जोरिमाना । ध्वज भमान ध्वजा फहराना ।—कवीर सा०, पु० १५३८ ।

२. एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है एक मलखम पर की दूसरी चौरगी । मलखम पर यह कसरत तौल के ही समान की जाती है । केवल विशेष इतना ही करना पड़ता है कि इसमें मलखम को हाथ से सपेटकर उसकी एक बगल में सारा शरीर सीधा दहाकर तोलना पड़ता है । इसे संस्कृत में 'ध्वज' कहते हैं । चौरगी में हाथ पाँव अटो से बाँध खड़े रखे जाते हैं ।

३ छद्म शास्त्रानुसार ठगण का पहला भेद जिसमें पहले लघु फिर गुरु आता है ।

ध्वजादि गणना—सषा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार की गणना जिससे प्रश्न के फल कहे जाते हैं ।

विशेष—इसमें नौ कोष्ठों का एक ध्वजाकार चक्र बनाया जाता है । इनमें से पहले घर में प्रश्न रहता है, फिर भागे यथाक्रम ध्वज, घुम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांश रहते हैं । प्रश्नकर्ता को किसी फल का नाम लेना पड़ता है, फिर फल के आदि वर्णों के अनुसार उसका वर्ण निश्चय करके ज्योतिषी राशि ग्रहादि द्वारा फल बतलाता है । 'ध्वज' के कोठे में स्वर, घूम में कवर्ग, सिंह में तवर्ग, श्वान में टवर्ग, वृष में तवर्ग, खर में पवर्ग, गज में अंतस्थ, ध्वांश में थ थ स ह समझना चाहिए ।

ध्वजारोपण—सषा पुं० [सं०] ध्वजा स्थापित करना । झंडा गाढ़ना [को०] ।

ध्वजारोहण—सषा पुं० [सं०] १ ध्वजा स्थापित करना । झंडा गाढ़ना [को०] । २ झंडा फहराना । ध्वजोत्तोलन ।

ध्वजाहृत—सषा पुं० [सं०] १ स्मृतियों के अनुसार पंद्रह प्रकार के दासों में से एक । वह दास जो लड़ाई में जीतकर पकड़ा गया हो । २. वह धन जो लड़ाई में शत्रु की जीतने पर मिले ।

विशेष—यह धन अधिभाज्य कहा गया है ।

ध्वजिक—वि० [सं०] धर्मध्वजी । पाखंडी ।

ध्वजिनी—सषा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक । वह सीमा या हद जिसपर निशान के बिन्दु पेट आदि खगे

हैं । २. सेना का एक भेद जिसका परिमाण कुछ लोग बाहिनी का दूना मानते हैं ।

ध्वजी^१—वि० [सं० ध्वजिन्] [वि० स्त्री० ध्वजिनी] १ ध्वजवाला । जो ध्वजा पताका लिए हो । २. चिह्नवाला । चिह्नयुक्त ।

ध्वजी^२—सषा पुं० १ ग्राह्यण । २. पर्वत । ३. रण । संग्राम । ४. साँप । घोड़ा । मयूर । मोर । ७. सीपी । ८. ध्वजा लेकर चलनेवाला । शौडिक । कसवार ।

ध्वजोत्तोलन—सषा पुं० [सं० ध्वज + उत्तोलन] झंडा फहराना । झंडोत्तोलन [को०] । ध्वजारोहण ।

ध्वजोत्थान—सषा पुं० [सं०] इद्र के समान में उत्थव । इद्रध्वज महोत्सव [को०] ।

ध्वन—सषा पुं० [सं०] १ ध्वनि । २. गुजार । मनमनाहुट ।

ध्वनमोदी—सषा पुं० [सं० ध्वनमोदिन्] भौरा [को०] ।

ध्वनन—सषा पुं० [सं०] ध्वनि । ध्वनि करना । उ०—शब्द दिग्द्वयी सत्ता है । जिसका व्यापार ध्वनन है ।—संपूर्ण । अभि० प्र०, पु० ११२ ।

ध्वनि—सषा स्त्री० [सं०] १ श्रवणेंद्रिय में उत्पन्न संवेदन भयवा वह विषय जिसका ग्रहण श्रवणेंद्रिय में हो । शब्द । नाद । आवाज । जैसे, मृदंग की ध्वनि, कठ की ध्वनि ।

विशेष—भाषापरिच्छेद के अनुसार श्रवण के विषय मात्र को ध्वनि कहते हैं, चाहे वह वर्णमय हो, चाहे अवर्णमय । दे० 'शब्द' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ध्वनि उठना = शब्द उत्पन्न होना या फैलना ।

२ शब्द का स्फोट । शब्द का फूटना । आवाज की गुंज । नाद का तार । लय । जैसे, मृदंग की ध्वनि गीत की ध्वनि ।

विशेष—शरीरक भाष्य में ध्वनि उसी को कहा है जो दूर से ऐसा सुना जाय कि वर्ण वर्ण भ्रमल और साफ न मालूम हो । महाभाष्यकार ने भी शब्द के स्फोट को ही ध्वनि कहा है । पाणिनि दर्शन में वर्णों का वाचकत्व न मानकर स्फोट ही के बल से अर्थ की प्रतिपत्ति मानी गई है । वर्णों द्वारा जो स्फुटित या प्रकट हो उसको स्फोट कहते हैं, वह वर्णविरक्त है । जैसे, 'कमल' कहने से अर्थ की जो प्रतीति होती है वह 'क' 'म' और 'ल' इन वर्णों के द्वारा नहीं, इनके उच्चारण से उत्पन्न स्फोट द्वारा होती है । वह स्फोट नित्य है ।

३. वह काव्य या रचना जिसमें शब्द और उसके साक्षात् अर्थ से व्यंग्य में विशेषता या चमत्कार हो । वह काव्य जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो ।

विशेष—जिस काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से सूचित होनेवाले अर्थ की अपेक्षा प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में विशेषता होती है वह 'ध्वनि' कहलाता है । यह उत्तम माना गया है । वाच्यार्थ या अभिधेयार्थ से अतिरिक्त जो अर्थ सूचित होता है वह व्यङ्ग्य द्वारा । जैसे, छूट्यो सबे कृच के तट चंदन, नैव निरजन दूर बसाई । रोम उठे तब गाव

लखातऽरु साफ भई भ्रमरान लखाई। पीर हितून की जानति तू न, मरी ! वच बोलत भूठ सदाई। ध्याये बापी गई इतसो, तिहि पापी के पास गई न तहाँई।—(शब्द०)। अपनी हूती से नायिका कहती है कि तेरी पान की लसाई, चदन, भजन आदि छूटे हुए हैं, तू बावली में नहाने गई, चघर ही से जरा उस पापी के यहाँ नहीं गई यहाँ यहाँ चदन, भजन आदि का छूटना नायक के साथ समागम प्रकट करता है। 'पापी' शब्द भी 'तू समागम करने गई थी' यह बात व्यंग्य से प्रकट करता है। इस पद्य में व्यंग्य ही प्रधान है—इसी में चमत्कार है।

४ आशय। गूढ़ अर्थ। मतलब। जैसे,—उनकी बातों से यह ध्वनि निकलती थी कि बिना गए रुपया नहीं मिल सकता।

ध्वनिक—वि० [सं० ध्वनि] ध्वनि से सम्बन्धित [को०]।

ध्वनिकार—सङ्घा पुं० [सं०] ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्तक भानंदवर्धनाचार्य। इनका ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' है। उ०—फिर भी ध्वनिकार ने कहा है कि कवि को एकमात्र रस में सावधानी के साथ प्रयत्नशील होना बाछनीय है।—बी० श० महा०, पृ० ३।

ध्वनिकाव्य—सङ्घा पुं० [सं० ध्वनि + काव्य] वह काव्य जिसमें व्यंग्य की प्रधानता हो। व्यंग्यप्रधान काव्य [को०]।

ध्वनिकृत्—सङ्घा पुं० [सं०] 'ध्वन्यालोक' के रचयिता भानंदवर्धनाचार्य [को०]।

ध्वनिग्रह—सङ्घा पुं० [सं०] कान।

ध्वनिसं—वि० [सं०] १ शब्दित। २ व्यंजित। प्रकट किया हुआ। ३ बजाया हुआ। वादित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वनित^२—सङ्घा पुं० बाजा। जैसे मृदंग आदि।

ध्वनिनाला—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. बीणा। २. वेणु।

ध्वनिवाद—सङ्घा पुं० [सं० ध्वनि + वाद] ध्वनि को काव्य का मुख्य गुण मानने का सिद्धांत।

ध्वनिसिद्धांत—सङ्घा पुं० [सं० ध्वनि + सिद्धान्त] दे० 'ध्वनि ३'।

ध्वन्य—सङ्घा पुं० [सं०] १ व्यंग्यार्थ। २ एक प्राचीन राजा जो लक्ष्मण का पुत्र था। इसका नाम ऋग्वेद में आया है। ३. ध्वनित होने योग्य [को०]। ४ ध्वनित होनेवाला [को०]।

ध्वनिषिकार—सङ्घा पुं० [सं०] १ अथ या दुःखजन्य स्वरपरिवर्तन। २. काकु [को०]।

ध्वन्यमान—वि० [सं०] ध्वनित होनेवाला। साहित्य जिसकी ध्वनि निकले। उ०—भाचार्यों ने कुछ दिन के तीसरा भेद किया जिसे वे ध्वन्यमान अर्थ कहने लगे शास्त्र, पृ० ४।

ध्वन्यात्मक—वि० [सं०] १ ध्वनि स्वरूप या ध्वनिमय। २. () जिसमें व्यंग्य प्रधान हो। उ०—अतएव ऐसे शब्द ध्वन्यात्मक कहते हैं क्योंकि वह ध्वनि पर ही है।—रस० क०, पृ० २।

ध्वन्यार्थ—सङ्घा पुं० [सं० ध्वन्यार्थ] वह अर्थ जिसका बोध वाच्यार्थ व होकर केवल ध्वनि या व्यञ्जना से हो।

ध्वस्त—वि० [सं०] १ च्युत। गलित। गिरा पड़ा। २. टूटा फूटा। भग्न. ३. नष्ट। ४. परास्त। परा. उ०—जय जयकार किया मुनियों ने, दस्युराज यों हुआ।—साकेत, पृ० ३७६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वस्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] नाश। विनाश।

ध्वांत्—सङ्घा पुं० [सं० ध्वाङ्क्ष] १. काक। कौमा। २. मछली वाली एक चिड़िया। ३. तक्षक। ४. भिक्षुक।

ध्वांत—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्त] १ भ्रमकार। भ्रमेरा। उ०—पावन सारस्वत प्रदेश दुःस्वप्न देखता पड़ा बलात। फैला चारो ओर ध्वांत।—कामयानी, पृ० १६०। २. एक न का नाम। तमिल। ३. एक मरुत् का नाम।

ध्वांतचर—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्तचर] निशाचर। राक्षस। उ०—मगलागार संसार भारापहर वानराकार विग्रह पुरारी। रोषानल ज्वालमालाभिध्वांतचर सज्जम संहारकारी। तुलसी (शब्द०)।

ध्वांतवित्त—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्तवित्त] खद्योत। ज़ुगुन।

ध्वांतशत्रु—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्तशत्रु] १ सूर्य। २. अग्नि। चंद्रमा। ४. श्वेत वरुण। ५. श्योनाक। छोटा।

ध्वांतशात्रव—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्तशात्रव] दे० 'ध्वांतशत्रु' [को०]।

ध्वांताराति—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्ताराति] दे० 'ध्वांतशत्रु' [को०]।

ध्वांतोन्मेष—सङ्घा पुं० [सं० ध्वान्तोन्मेष] जुगल। खद्योत [को०]।

ध्वान—सङ्घा पुं० [सं०] १. शब्द। २. गुंजन। अनमन [को०]।

न

न—एक व्यंजन जो हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का बीसवाँ और तवर्ग का पाँचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारणस्थान दंत है। इसके उच्चारण में माध्यतर प्रयत्न और जीभ के अगले भाग का दाँतों की जड़ से स्पर्श होता है; और बाह्य प्रयत्न हंसार, नाद, घोष और मत्प्राण है। काव्य आदि में इस वर्ण का विन्यास सुखद होता है।

नंकना(७)—क्रि० [सं० लङ्घन, हि० नाँवना] दे० 'नाँवना'। उ पढ़त वेद बानीन सह सब विद्या भवगाहि। घने जने नंकन जहाँ तँवरपति गाहि।—प० रासो, पृ० ४।

नंखना—क्रि० स० [सं० नङ्क्ष, प्रा० णङ्क्ष] केटना। उ०—मनि सुष नखियो, करि कचन के ग्राम। घतरीख उडि ययो, नरवाहव के ग्राम।—प० रासो, पृ० ३४।

नंगा^१—संज्ञा पुं० [सं० नग] १. नगता । नंगावन । नंग होने का भाव । २. गुप्त धन । जैसे,—(क) उसने अपना नग दिखा दिया । (ख) मैंने उसका नग देखा ।

नंगा^२—वि० वदमाश और बेहया । लुच्चा । नंगा । जैसे,—उससे कौन बोले, वह तो बड़ा नग है ।

नंगा^३—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. सज्जा । शर्म । २. दोष [को०] ।

यौ०—नगे इसानियत=मानयता को कलकित करनेवाला कार्य । नगे खानदान=कुलांगार । नगोनाम, नगोनामूस=(१) लज्जा । गैरत । इस्मत । (२) मर्यादा । प्रतिष्ठा ।

नंगघडंग—वि० [हि० नगा+घडंग (घनु०) प्रख्या घड+भंग (= ऊपरी शरीर और घुमाय)] बिलकुल नगा । जिसके शरीर पर एक भी वस्त्र न हो । दिनम्बर । निवस्त्र । जैसे, बाबाज सुनकर वह नगघडंग बाहर निकल गया ।

नंगमुनंगा—वि० [हि०] दे० 'नगघडंग' ।

नगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'लगर' ।

नगरवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० संगर+वासा] समुद्र में बसनेवाली वह साधारण नाव जो तूफान के समय किसी रक्षित स्थान पर लगर डालकर ठहर जाती हो । (सं०) ।

नंगा^१—वि० [सं० नग] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । जो कोई कपड़ा न पहने हो । दिगंबर । विवस्त्र । वस्त्रहीन ।

यौ०—नंगा उघाड़ा=जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । विवस्त्र । बलिफ नंगा या नंगा मादरजाद = बिलकुल नगा । २. निर्लज्ज । बेहया । बेशर्म । ३. लुच्चा । पाजी ।

यौ०—नंगालुच्चा = वदमाश और पाजी ।

४. जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो । जो किसी तरह ढंका न हो । खुला हुआ । जैसे, नगासिर (जिस सिर पर पगड़ी या टोपी आदि न हो), नगे पैर (जिन पैरों में जूता आदि न हो), नगी तलवार (म्यान से बाहर निकली हुई तलवार), नगी पीठ (जिस घोड़े आदि की पीठ पर जीन आदि न हो) ।

नंगा^२—संज्ञा पुं० [हि०] १. शिव । महादेव । २. काश्मीर की सीमा पर एक बहुत बड़ा पर्वत ।

नंगामोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नगामोली' ।

नंगामोली—संज्ञा स्त्री० [हि० नगा + मोरहा (= किसी चीज को धिराने के लिये हिलाना)] किसी के पहने हुए कपड़ों आदि को उतरवाकर धयवा यों ही अच्छी तरह देखना जिसमें उसकी छिपाई हुई चीज का पता लग जाय । कपड़ों की तलाशी । जामातलाशी । जैसे,—इस लड़के ने जरूर पेंसिल छुपाई है, इसकी नगामोली लो ।

विशेष—जब यह संदेह होता है कि किसी मनुष्य ने अपने कपड़ों में कोई चीज छिपाई है, तब उसकी नगामोली ली जाती है ।

क्रि० प्र०—सेना ।—देना ।

नंगालुंगा—वि० [हि० नगा + गुगा (घनु०)] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । २. जिसके ऊपर कोई आवरण न हो ।

नंगालुच्चा, नंगालूचा—वि० [हि० नगा + लूचा (= छाली)] जिसके पास कुछ भी न हो । बहुत दरिद्र ।

नंगा मादरजाद—वि० [हि० नगा + फ्रा० मादरजाद] ऐसा नंगा जैसा माँ के पेट से निकलने के समय (बालक) होता है । जिसके शरीर पर एक सूत भी न हो । बिलकुल नगा । बलिफ नगा ।

नंगामुनंगा—संज्ञा पुं० [हि० नंगा + मुनगा (घनु०)] बिलकुल नगा ।

नंगालुच्चा—वि० [हि० नगा + लुच्चा] नीच और दुष्ट । वदमाश ।

नंचना^५—क्रि० प्र० [सं० नच्य, प्रा० नच्च, नच + हि० ना नाचना] नृत्य करना । नाचना । उ०—करि मन कोप जग को नचे । —ह० रासो०, पृ० ७४ ।

नंद^१—संज्ञा पुं० [सं० नन्दन्त] १. बेटा । २. राजा । ३. मित्र ।

नंद^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दन्ती] पुत्री । बेटो [को०] ।

नंद—संज्ञा पुं० [सं० नन्द] १. प्रानंद । हर्ष । २. सच्चिदानंद पर-मेश्वर । ३. पुराणानुसार नौ निधियों में से एक । ४. स्वामी कातिक के एक अनुचर का नाम । ५. एक नाग का नाम । ६. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ७. वसुदेव के एक पुत्र का नाम जो मदिरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । ८. श्रीचंद्र द्वीप के एक वर्ष पर्वत का नाम । ९. विष्णु । १०. मेंढक । ११. भागवत के अनुसार यज्ञेश्वर (परमात्मा) के एक अनुचर का नाम । १२. एक प्रकार का मृदंग । १३. चार प्रकार की वेणुओं या बांसुरियों में से एक ।

विशेष—वह ग्यारह भगुल की होती और उत्तम समझी जाती है । इसके देवता रुद्र माने जाते हैं ।

१. एक राग का नाम ।

विशेष—इसे कोई कोई मालकोस राग का पुत्र मानते हैं ।

१५. पिंगल में ढगण के दूसरे भेद का नाम ।

विशेष—इसमें एक गुरु और एक लघु होता है—(५१) और जिसे ताल तथा ग्वाल भी कहते हैं । जैसे, राम । लाल । ताल ।

१६. लड़का । बेटा । पुत्र । १७. गोकुल के गोपों के मुखिया ।

विशेष—इनके यहाँ श्रीकृष्ण को उनके जन्म के समय, वसुदेव जाकर रख आए थे । श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था इन्हीं के यहाँ बीती थी । इनकी स्त्री का नाम यशोदा था । कस के मय से ये पीछे श्रीकृष्ण को लेकर वृंदावन जा रहे थे । जब कृष्ण ने मथुरा में कस को मारा था तब वे भी उनके साथ ही थे । इसके उपरांत जब कृष्ण मथुरा से वृंदावन नहीं लौटे तब वे बहुत दुःखी हुए थे । इसके बहुत दिन बाद जब हंस और हंसिक का दमन करने के लिये वे गोवर्धन गए थे तब इन्होंने उन्हें बहुत रोकना चाहा था, पर कृष्ण ने नहीं माना । भागवत में लिखा है कि एक बार ये एकादशी का व्रत करके रात के समय यमुना में स्नान करने गए थे । उस समय वरुण के दूत इन्हें पकड़कर वरुण की सभा में ले गए । उस समय कृष्ण ने वहाँ

जाकर इन्हें छुड़ाया। इसके प्रतिरिक्त उसमें यह भी लिखा है कि नंद पूर्व जन्म में दक्षप्रजापति थे और यशोदा उनकी स्त्री थी। जब यज्ञ में सती वे शिव जी की निंदा सुनकर अपने प्राण त्याग दिए तब दक्ष दुःखी होकर अपनी स्त्री सहित तपस्या करने के लिये चले गए। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सती ने प्रकट होकर उनसे कहा था कि द्वापर में फिर एक बार मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगी पर उस समय न मैं अधिक समय तक तुम्हारे पास रहूँगी और न तुम मुझे पहचान सकोगे। तदनुसार सती ने कन्यारूप में नंद के यहाँ यशोदा के गर्भ से जन्म लिया था। श्रीकृष्ण को नंद के यहाँ रखकर वसुदेव इसी कन्या को अपने साथ ले गए थे जिसे पीछे से कस ने जमीन पर पटक दिया था और जो जमीन पर गिरते ही आकाश में चली गई थी।

१८. महात्मा बुद्ध के भाई जो उनकी विमाता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बुद्ध ने बोधिज्ञान प्राप्त करने के उपरांत कपिलवस्तु में आकर इन्हें दीक्षित किया था।

विशेष—जब ये बुद्ध के साथ जा रहे थे तब कई बार अपनी छोटी भद्रा को देखने के लिये ये लौटना चाहते थे, पर बुद्ध ने इन्हें लौटने नहीं दिया था। बुद्ध ने इन्हें भिक्षु बनाकर सांसारिक वधनों से छुड़ाकर स्वर्ग और नरक के दृश्य दिखाए थे।

१९. मगध देश के कई राजाओं का नाम जिनका राज्य विक्रम सवत् से २५० वर्ष पहले तक रहा और जिनके पीछे मौर्य वंश का राज्य हुआ। दे० 'नंदवंश'।

नंदक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दक] १. श्रीकृष्ण का खग। २. मेंढक। ३. इन्द्र का एक अनुचर। ४. घृतराष्ट्र का एक पुत्र। ५. एक नाग का नाम। ६. राजा नंद जिनके यहाँ कृष्ण बाल्यावस्था में रहते थे। ७. प्रसन्नता।

नंदक^३—वि० १. भानददायक। २. कुलपालक। ३. संतोष देनेवाला।

नंदकि—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दकि] पीपल।

नंदकिशोर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकिशोर] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदकी—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकिन्] विष्णु।

नंदकुंवर—संज्ञा पुं० [सं० नन्द + हि० कुंवर] दे० 'नंदकुमार'।

नंदकुमार—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकुमार] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदगाँव—संज्ञा पुं० [सं० नन्दग्राम] घृदावन का एक गाँव।

विशेष—यह मथुरा से चौदह कोस पर है और यहाँ नंद गोप रहते थे।

नंदगोपिता—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दगोपिता] रास्ना या रायसन नामक ओषधि।

नंदग्राम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दग्राम] १. नंदगाँव। २. नदिग्राम। अयोध्या के समीप का एक गाँव जहाँ बैठकर राम के वनवास काल में भरत ने तपस्या की थी। उ०—अवधि में पूरन धरम रहै। नदिग्राम में नदी वासे के—ये ही धरम कहै।—देवस्वामी (शब्द०)।

नंदद—संज्ञा पुं० [सं० नन्दद] भानंद देनेवाला, पुत्र। दे० 'नंदक'।

नंददुखारो—संज्ञा पुं० [सं० नन्द + हि० दुखारो] (= ३) कृष्ण। उ०—निकसो नंददुखारो प्राज बनि ठनि काण।—नंद० प्र०, ३६५।

नंदनंद—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्द] नंद के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र।
नंदनंदन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।
नंदनदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दनदिनी] नंद की कन्या योगमाया। वसुदेव कंस के भय से श्रीकृष्ण को रखकर इसी कन्या को साथ ले गए थे, और जब पटका था तब यह उड़कर आकाश में चली गई थी।

विशेष—दे० 'नंद' १७।

नंदनंदन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] दे० 'नंदनंदन'। नंददास नंदनंदन सुं होन लागे नयनौ पखक की ओर होते जुग चार।—नंद० प्र०, पृ० ३५५।

नंदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इन्द्र के उपवन का नाम जो माना जाता है।

विशेष—पुराणानुसार यह सब स्थानों से सुंदर माना और जब मनुष्यों का भोगकाल पूरा हो जाता है तब वन में सुखपूर्वक बिहार करने के लिये भेज दिए।
२. कामाख्या देश का एक पर्वत।

विशेष—पुराणानुसार जिसपर कामाख्या देवी की लिये इन्द्र सदा रहते हैं। इस पर्वत पर जाकर की पूजा करते हैं।

३. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। ४. एक विष। ५. महादेव। लिख। ६. विष्णु। ७. मेंढक। शास्त्र के अनुसार वह वह मकान जो षट्कोण हो विस्तार बत्तीस हाथ हो और जितमें सोलह शृंग केसर। १०. चंदन। ११. छटका। वेटा। जैसे, १२. एक प्रकार का अस्त्र। उ०—ये सब अस्त्र नित जोन तुम्हें सिखलाऊँ। महा अस्त्र विद्याधर नंदन जेहि नाऊँ—रघुराज (शब्द०)। १३. येष १४. एक वर्णवृत्त जिसमें प्रत्येक चरण में क्रम जगण, भगण, जगण और दो रगण (II। ISI। SI। SI।) होते हैं। यथा—भजत सनेम सो सुमति जीत मोह को। १५. साठ सवत्सरों में से छब्बीसवाँ सवत्सर।

विशेष—कहते हैं कि इस सवत्सर में भस्म खूब होता है दूध देती है और लोग नीरोग रहते हैं। १६. भानंद

नंदन—वि० भानंद देनेवाला। प्रसन्न करनेवाला।

नंदनक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनक] वेटा। पुत्र।

नंदनकावन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनकानन] इन्द्र का उपवन।

नंदनज—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनज] १. हरिचंदन। २. श्रीकृष्ण

नंदनदा—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] नंदनंदन। श्रीकृष्ण उपमा कहै ना नटनागर वो नंदनदा, तावै ससि भोम सरमैदा है।—नट०, पृ० ६३।

नंदनद्वय—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनद्वय] नंदन वन का द्वय।

नन्दनप्रधान—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनप्रधान] नन्दनवन के स्वामी, इंद्र ।

नंदनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दनमाला] पुराणानुसार एक प्रकार की माला जो श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय थी ।

नंदनवन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनवन] १ इंद्र की वाटिका । २ कपास ।

नंदना^१—क्रि० प्र० [सं० नन्दन] प्रानदित होना । प्रसन्न होना ।

नंदना^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दना] पुत्री । लडकी । बेटा ।

नंदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नदिनी' ।

नन्दपाल—संज्ञा पुं० [सं० नन्दपाल] वरुण ।

नन्दपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दपुत्री] दे० 'नंदनदिनी' ।

नन्दप्रयाग—संज्ञा पुं० [सं० नन्दप्रयाग] बदरिकाश्रम के निकट का एक तीर्थ जो सात प्रयागों में से है ।

नन्दरानी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्द+हिं० रानी] नंद की स्त्री यक्षोदा ।

नन्दरुख—संज्ञा पुं० [हिं० नन्द+रुख] भगवत् की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खाने के लिये दी जाती हैं ।

नन्दलाल—संज्ञा पुं० [सं० नन्द+हिं० लाल (=बेटा)] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण ।

नन्दवंश—संज्ञा पुं० [सं० नन्दवंश] मगध का एक विख्यात राजवंश जिसका अंतिम राजा उस समय सिंहासन पर था जिस समय सिकंदर ने ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व पंजाब पर चढ़ाई की थी ।

विशेष—इस वंश का उल्लेख विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मांडपुराण आदि में मिलता है । विष्णुपुराण में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से महानदि का पुत्र महापद्मनद होगा जो समस्त क्षत्रियों का विनाश करके पृथिवी का एकछत्र भोग करेगा । उसके सुमानि आदि आठ पुत्र होंगे जो क्रमशः सो वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कौटिल्य के हाथ से नदों का नाश होगा और मौर्य लोग राजा होंगे । इसी प्रकार का वरुण भागवत में भी है । ब्रह्मांडपुराण में कुछ विशेष व्योश है । उसमें लिखा है कि राजा विचित्राक्ष (कदाचित् बिंबसार जो गौतमबुद्ध के समय तक था और जिसका पुत्र अजातशत्रु बुद्ध का शिष्य हुआ था) २८ वर्ष तक, उसका पुत्र अजातशत्रु ३५ वर्ष तक, फिर उदायी २३ वर्ष तक, नदिवर्धन ४२ वर्ष तक और महानदि ४० वर्ष तक राज्य करेंगे । शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न महानदि का पुत्र क्षत्रियों का नाश करनेवाला नद होगा । वह और उसके आठ पुत्र मोटे हिसाब से १०० वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कौटिल्य के हाथ से सब मारे जायेंगे ।

कयासरिस्तागर में भी नद का उपाख्यान एक रोचक कहानी के रूप में इस प्रकार दिया गया है । इंद्रदत्त, व्याधि और वररुचि भयोंपार्जन के लिये नद की सभा में पहुँचे । पर उनके पहुँचने के कुछ पहले नद मर गए । इंद्रदत्त ने शोकबल से नद के मृत शरीर में प्रवेश किया जिससे नद जी उठे । व्याधि इंद्रदत्त के

शरीर की रक्षा करने लगे । राजा के जी उठने पर मन्त्रि शकटार को कुछ सदेह हुआ और उसने आज्ञा दे दी कि नगर में जितने मुर्दे हों सब तुरत जला दिए जायें । इस प्रकार इंद्रदत्त का पहला शरीर जला दिया गया और उनकी आत्मा नंद के शरीर में ही रह गई । नंद देहधारी इंद्रदत्त योगानंद नाम से प्रसिद्ध हुए । योगानंद ने ब्रह्महत्या का अपराध लगाकर शकटार को सपरिवार कैद कर लिया और अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा । शकटार के सब पुत्र तो यंत्रणा से मर गए, पर शकटार ने प्रतिकार की इच्छा से अपनी प्राणरक्षा की । वररुचि योगानंद के मंत्री हुए । उनके कहने से नंद ने शकटार को छोड़ दिया । धीरे धीरे नंद अनेक प्रकार के प्रत्याचार करने लगा । एक दिन उसने वररुचि पर क्रुद्ध होकर उन्हें मार डालने की आज्ञा दी । शकटार ने उन्हें छिपा रखा । एक दिन राजा फिर वररुचि के लिये व्याकुल हुए । इसपर शकटार ने उन्हें लाकर उपस्थित किया । पर वररुचि ने उदास हो वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया ।

शकटार यद्यपि नंद के मंत्री रहे तथापि उसके विनाश का उपाय सोचते रहे । एक दिन उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण कुशों को उखाड़ उखाड़कर गड्ढा खोद रहा है । पूछने पर उसने कहा, 'ये कुश मेरे पैर में चुमे थे, इससे उन्हें बिना समूल नष्ट किए न रहूँगा ।' वह ब्राह्मण कौटिल्य चाणक्य था । शकटार ने चाणक्य को अपने कार्यसाधन के लिये उपयोगी समझकर उसे नंद के यहाँ जाने के लिये आह्वाण का निर्मंत्रण दे दिया । चाणक्य नंद के प्रासाद में पहुँचे और प्रधान आसन पर बैठ गए । नंद को यह सब खबर नहीं थी; उसने वह आसन दूसरे के लिये रखा था । चाणक्य को उसपर बैठा देकर उसने उठ जाने का इशारा किया । इसपर चाणक्य ने प्रत्यत क्रुद्ध होकर कहा—'सात दिन में नंद की मृत्यु होगी' । शकटार ने चाणक्य को घर ले जाकर राजा के विरुद्ध और भी उत्तेजित किया । अंत में अभिचार क्रिया करके चाणक्य ने सात दिन में नंद को मार डाला । इसके उपरांत योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त को मारकर उसने नंद के पुत्र चंद्रगुप्त को राज-सिंहासन पर बैठाया और आप मंत्री का पद ग्रहण किया ।

बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी नंद का वृत्तांत मिलता है पर भेद इतना है कि पुराणों में तो महापद्मनद को महानदि का पुत्र माना है, चाहे शूद्रा के गर्भ से सही, पर जैन और बौद्ध ग्रंथों में उसे सर्वथा नीच कुल का और अस्मात् आकर राज-सिंहासन पर बैठनेवाला लिखा है । कयासरिस्तागर में चंद्रगुप्त को जो नंद का पुत्र लिखा है उसे इतिहासज्ञ ठीक नहीं मानते । मौर्यवंश एक दूसरा राजवंश था । कोई कोई इतिहासज्ञ 'नवनंद' नन्द का भयं नए नंद करते हैं जो झूठ है । उनके अनुसार नंदवंश बुद्ध क्षत्रियवंश का और 'नवनंद' झूठ है ।

नंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दा] १ दुर्गा । २ कौरी । ३ एक प्रकार की कामधेनु । ४. एक मातृका का बाहवद् ।

विशेष—इसके पिचम में यह माना जाता है कि इसके कारक

बालक अपने जीवन के पहले दिन, पहले मास और पहले वर्ष में ज्वर से पीड़ित होकर बहुत रोता और भवेत हो जाता है।

५. शुभ। उत्तम। किसी पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि। उ०—परिवा, छट्टि एकादसि नंदा। दुश्जि, सप्तमी द्वादसि मवा।—जायसी (शब्द०)। ६. सवत्ति। सपदा। ७. एक प्रकार की सक्रांति। ८. हर्ष की स्त्री।

विशेष—यहाँ 'प्रसन्नता' से तात्पर्य है।

९. सगीत में एक मुच्छंता का नाम। १०. एक प्रप्तरा का नाम। ११. विभीषण की कन्या का नाम। १२. वर्तमान अवसर्पिणी के दसवें मर्हत् की माता का नाम (जैन)। १३. पुराणानुसार कुवेर की पुरी के निकट बहनेवाली नदी का नाम। १४. मिट्टी का घड़ा या झरुरादि जिसमें पानी रखते हैं। १५. पुराणानुसार शाकद्वीप की एक नदी का नाम। १६. पति की बहन। ननद। १७. एक तीर्थ का नाम। विशेष—३० 'नंदातीर्थ'। १८. बरवे छद का एक नाम। १९. भानद देनेवाली।

नंदातीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० नन्दातीर्थ] एक नदी और तीर्थ जो हेमकुट पर्वत पर है।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि यहाँ सदा बहुत ठेज हवा बहती रहती है, जोर से पानी बरसता रहता है, साधारण लोग पहुँच नहीं सकते, और सदा वेदध्वनि सुनाई पड़ती है पर कोई वेद पढ़नेवाला दिखाई नहीं देता। सवेरे और संध्या यहाँ अग्निदेव के दर्शन होते हैं। यहाँ बैठकर यदि कोई तपस्या करना चाहे तो उसे मक्खियाँ काटने लगती हैं। युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ एक बार इस तीर्थ में गए थे।

नंदात्मज—संज्ञा पुं० [सं० नन्दात्मज] श्रीकृष्ण।

नंदात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दात्मजा] योगमाया।

नंदादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दादेवी] दक्षिणी हिमालय की एक चोटी।

विशेष—यह २५००० फुट से अधिक ऊँची है और यमुनोत्तरी के पूर्व है।

नंदापुराण—संज्ञा पुं० [सं० नन्दापुराण] एक उपपुराण जिसमें नंदामाहात्म्य दिया गया है।

विशेष—इसके वक्ता कातिक है। मत्स्य और शिवपुराण के मत से यह तीसरा उपपुराण है।

नंदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० नन्दार्थ] शाकद्वीपी ब्राह्मणों का एक संप्रदाय।

नंदालय—संज्ञा पुं० [सं० नन्दालय] नंद का मवन। उ०—सो प्रेमलता की प्रासक्ति बाललीला मे बहोत है। तते ये नंदालय मे अष्ट प्रहर रहति हैं।—दो सो लावन० भा० १, पृष्ठ १०८।

नंदाश्रम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दाश्रम] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

नंदि—संज्ञा पुं० [सं० नन्दि] १. भानद। २. वह जो भानधम्य हो। ३. सच्चिदानंद परमेश्वर। ४. शिव के द्वारपाल बैल का

१-३४

नाम। नंदिकेश्वर। ५. शिव। ६. विष्णु (को०)। ७. कर्म (को०)। ८. वह जो नाटक में प्रस्तावना या का पाठ करता है (को०)। ९. समृद्धि। सपन्नता (को०)।

नंदिक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिक] १. नदीमुख। तुन का पेड़। २. का पेड़। ३. भानद। ४. जल का छोटा कलश (को०)। शिव का एक गण। नदी (को०)।

नंदिकर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकर] शिग।

नंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दिका] १. मिट्टी की नाँद जिसमें रखते हैं। २. नंदन वन जहाँ इद्र क्रीड़ा करते हैं। ३. पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि। हंसमुख स्त्री।

नंदिकावर्त—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकावर्त] बृहत्संहिता के अनुसार प्रकार का मणि।

नंदिकुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकुण्ड] महाभारत के अनुसार प्राचीन तीर्थ।

नंदिकेश—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकेश] १. शिव के द्वारपाल, श्वर। २. शिव (को०)।

नंदिकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकेश्वर] १. शिव के द्वारपाल का नाम। २. एक उपपुराण जो नदी का कहा हुआ चौपा उपपुराण माना जाता है। इसे नंदीश्वर और न भी कहते हैं। ३. शिव (को०)।

नंदिग्राम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिग्राम] अयोध्या से चार कोस पर गाँव।

विशेष—यहाँ भरत ने राम के वियोग में चौदह वर्ष त किया था।

नंदिघोष—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिघोष] १. अर्जुन के रथ का जिसे उन्हें अग्निदेव ने प्रसन्न होकर दिया था। उ० गाहिव धनु लीन्हों। नदिघोष रथ हुतभुक् दीन्हों (शब्द०)। २. वकीलों की घोषणा। ३. किसी शुभ या मंगल घोषणा।

नंदित^१—वि० [सं० नन्दित] भानदित। सुखी। भानदयुक्त। उ०—सुखी समीर नव गधित, बहु चली छद से नदित। भाया सलिल कमल सित, कोमल सुगंध नभ छाया गीतगुज, पृ० ४०।

नंदित^२—वि० [हि० नादना] बजता हुआ।

क्रि० प्र०—करना। उ०—नाथि प्रबानक हों उठे बिनु बन मोर। जानति हों, नदित करी यह दिसि नदकिशोर बिहारी २०, दो० ४६९।—होना।

नंदितरु—संज्ञा पुं० [सं० नन्दितरु] घव का पेड़।

नंदितूर्य—संज्ञा पुं० [सं० नन्दितूर्य] प्राचीनकाल का एक बाजा जो उत्सव या भानद के क्षणों में बजाया जाता था

नंदिन^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली जो बगान घासाम में पाई जाती है।

विशेष—यह तीन फुट तक लंबी होती है और तौल में प्रायः मन तक की होती है।

नंदिन^२ (७)—सखा स्त्री० [सं० नन्द (= वेदा)] लड़की, बेटा। पुत्री।

नंदिनी—सखा स्त्री० [सं० नन्दिनी] १. कन्या। पुत्री। लड़की। बेटा। २. रेणुका नामक गणद्रव्य। ३. जटामासी। बालछड़। ४. उमा। ५. गंगा का एक नाम। ६. ननद। पति की बहन। ७. दुर्गा का एक नाम। ८. तेरह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसमें एक सगण, एक जगण, फिर दो सगण और अंत में एक गुरु होता है। इसे कलहस और सिहनाद भी कहते हैं। जैसे,—सजि सी सिंगार कलहस गती सी। बलि बाइ राम छवि मढप दीसी। ९. वसिष्ठ की कामधेनु का नाम जो सुरभि की कन्या थी।

विशेष—राजा दिलीप ने इसी गौ को वन में चराते समय सिंह से उसकी रक्षा की थी और इसी की धारापना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया था। महाभारत में लिखा है कि यो नामक वसु अपनी स्त्री के कहने से इसे वसिष्ठ के आश्रम से छुरा लाया था जिसके कारण वसिष्ठ के शाप से उसे भीष्म बनकर इस पृथिवी पर जन्म लेना पड़ा था। जब विश्वामित्र बहुत से लोगों को अपने साथ लेकर एक बार वसिष्ठ के यहाँ गए थे तब वसिष्ठ ने इसी गौ से सब कुछ लेकर सब लोगों का सत्कार किया था। यह विशेषता देखकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से यह गौ माँगी, पर जब उन्होंने इसे नहीं दिया तब विश्वामित्र उसे जबरदस्ती ले चले। रास्ते में इसके चिल्लाने से इसके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में से म्लेच्छों और यवनों की बहुत सी सेनाएँ निकल पड़ीं जिन्होंने विश्वामित्र को परास्त किया और इसे उनके हाथ से छुड़ाया।

१०. पत्नी। स्त्री। जोरू। ११. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। १२. व्याधि मुनि की माता का नाम।

यौ०—नदिनीतनय, नदिनीसुत = व्याधि मुनि।

नदिपटह—सखा पुं० [सं० नन्दिपटह] तूय [को०]।

नदिपुराण—सखा पुं० [सं० नन्दिपुराण] देवी पुराण का एक उपपुराण [को०]।

नदिमुख^१—सखा पुं० [सं० नन्दिमुख] १. एक प्रकार का पक्षी। २. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल। ३. शिव का एक नाम।

नदिमुख^२—सखा पुं० [सं० नान्दीमुख] दे० 'नांदीमुख'। उ०—किय छाद नदिमुख बेद बुद्धि। सब जातकर्म किन्नी सु सुद।—हम्मीर०, पृ० ३२।

नदिमुखी—सखा स्त्री० [सं० नन्दिमुखी] १. तंद्रा। २. भावप्रकाश के अनुसार वह पक्षी जिसकी चोंच का ऊपरी भाग बहुत कड़ा और गोल हो।

विशेष—ऐसे पक्षी का मांस पित्तनाशक, चिकना, भारी, मोठा, और वायु, कफ, बल तथा शुक्रवर्धक माना जाता है।

नदिरुद्र—सखा पुं० [सं० नन्दिरुद्र] शिव का एक नाम।

नंदिवर्धन^१—सखा पुं० [सं० नन्दिवर्धन] १. शिव। २. पुत्र। बेटा। ३. मित्र। दोस्त। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का विमान। ५. वास्तु शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का मंदिर।

विशेष—प्राचीन वास्तु शास्त्र के अनुसार वह मंदिर जिसका विस्तार चौबीस हाथ हो, जो सात भूमियों से युक्त हो और जिसमें २० शृंग हो।

६. मगध के राजा बिम्बसार के लड़के अजातशत्रु के परपोते का नाम। ७. शुक्ल पद की द्वितीया या प्रथिमा तिथि (को०)।

नंदिवर्धन^२—वि० भानद बढ़ानेवाला। जो भानद बढ़ावे।

नंदिवारलक—सखा पुं० [सं० नन्दिवारलक] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है।

नदिपेण—सखा पुं० [सं० नन्दिपेण] कुमार के एक अनुचर का नाम।

नदी^१—सखा पुं० [सं० नन्दिन्] १. घब का पेड़। २. गर्दमांड वृक्ष। पाखर का पेड़। ३. बट वृक्ष। बरगद का पेड़। ४. तुल का पेड़। ५. शिव के एक प्रकार के गण।

विशेष—ये तीन प्रकार के होते हैं—कनकनदी, गिरिनंदी, और शिवनदी।

६. शिव का द्वारपाल, बैल।

विशेष—कहते हैं कि पूर्वजन्म में यह शालकायण मुनि का पुत्र था।

७. शिव के नाम पर दागकर उत्सर्ग किया हुआ कोई बैल। ८. वह बैल जिसके शरीर पर गठे हों।

विशेष—ऐसा बैल खेती के काम का नहीं होता। इसे फकीर लोग लेकर घुमाते और लोगों को उसके दर्शन कराके पैसे माँगते हैं।

९. विष्णु। १०. जैनों के एक श्रुतिपारग। ११. उड़द (दि०)। १२. बगाल की कायस्थ, तैसा, नाई आदि कई जातियों की उपाधि।

नंदी^२—वि० भानदयुक्त। जो प्रसन्न हो।

नदीगण—सखा पुं० [हि० नदी + सं० गण] १. शिव के द्वारपाल, बैल। २. दागकर उत्सर्ग किया हुआ बैल। साँठ।

नदीघटा—सखा पुं० [हि० नन्दी + घटा] बैलों के गले में बाँधने का बिना ढाँही का घटा।

नंदोपति—सखा पुं० [सं० नन्दीपति] शिव। महादेव।

नंदीमुख^३—सखा पुं० [सं० नान्दीमुखी] दे० 'नांदीमुख'।

नदीमुख^४—सखा पुं० [सं० नन्दिमुख] दे० 'नदिमुख'।

नदीवृक्ष—सखा पुं० [सं० नन्दीवृक्ष] १. तुल का पेड़। २. मेढासिंगी।

नंदीश—सखा पुं० [सं० नन्दीश] १. शिव। २. तालों के साठ भेदों में से एक (संगीत)। ३. नदी।

नंदीश्वर—सखा पुं० [सं० नन्दीश्वर] १. शिव। २. नदीश ताल। ३. वृंदावन का एक तीर्थ। ४. शिव का एक गण।

विशेष—यह पुराणानुसार तोटक का अवतार माना जाता है। कहते हैं कि यह वामन है, इसका रंग काला है और सिर मुँहासा हुआ तथा मुँह बदर का सा है।

नंदेऊ^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नंदोई] दे० 'नंदोई' ।
 नंदोई—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ननद + ओई (प्रत्य०)] ननद का पति ।
 पति की बहन का पति । पति का बहनोई ।
 नंदोसी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नंदोई' ।
 नंद्यावत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नन्द्यावत्त] १ एक प्रकार की इमारत ।
 ऐसी इमारत के पश्चिम ओर द्वार नहीं रहना चाहिए । २
 तगर का पेड़ ।
 नवर—वि० [अ०] १ सख्या । अंक । अदद । जैसे,—उसपर
 अंगरेजी में कुछ नवर लिखा हुआ था ।
 क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।
 २. गिनती । गणना । ३. किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदि
 की कोई एक सख्या या अंक । जैसे,—(क) उस मासिक पत्र
 के अंकी तीन ही नवर निकले हैं । (ख) तुम्हारी पुस्तकमाला
 का चौथा नवर अभी तक नहीं आया । ४ कपड़े आदि नापने
 का सोहे का वह गज जो ३ फुट या ३६ इंच लंबा होता है ।
 ५ स्त्रीप्रसंग । भोग । (वाजाल) ।
 मुहा०—नवर दागना या लगाना = स्त्री प्रसंग करना ।
 नवरदार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० नवर + फा० दार] गाँव का वह जमींदार
 जो अपनी पट्टी के ओर हिस्सेदारों से मालगुजारी आदि वसूल
 करने में सहायता दे ।
 नवरवार—क्रि० वि० [अ० नवर + फा० वार (प्रत्य०)] यथाक्रम ।
 सिलसिलेवार । क्रमशः । एक एक करके । जैसे,—इन सब
 किताबों को नवरवार लगा दो ।
 नवरिंग मशीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का यंत्र जिससे
 रसीदी, टिकटों आदि पर क्रमसख्या छापते हैं ।
 नवरी—वि० [अ० नवर + ई (प्रत्य०)] १ नवरवाला । जिस
 पर नवर लगा हो । २ प्रसिद्ध । मशहूर । कुख्यात जैसे,
 नवरी डाकू, नवरी चोर ।
 नवरी गज—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नवरी + फा० गज] दे० 'नवर'-४ ।
 नवरी सेर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नवरी + सेर] तौलने का सेर जो
 अंगरेजी रुपये से ८० भर का होता है । अंगरेजी सेर ।
 बीसगंडी सेर ।
 नवूदरी—सञ्ज्ञा पुं० [मल० नवूतिरि] मालाबार प्रांत के ब्राह्मणों की
 एक जाति ।
 विशेष—आद्य शकगाचार्य केरलीय ब्राह्मणों की इसी शाखा में
 पैदा हुए थे ।
 नषना^५—क्रि० सं० [हि०] डालना । गिराना । छोटना । उ०—
 थप्पी सुवत्त अतुं द उरग । सुरनि सीस नपे सुमन ।—
 पु० रा०, १।१७ ।
 नस^५—वि० [सं० नाश] जिसका नाश हुआ हो । नष्ट । उ०—
 कौतुक केलि करहि दुख नसा । खूँदहि कुरलहि जनु सर
 हंसा ।—जायसी ।
 नंस^२—सञ्ज्ञा पुं० नाश । बरबादी ।
 नंसना^५—क्रि० सं० [सं० नाश] नाश करना । विनाश करना ।
 नंगटा^५—वि० [हि० नंग + टा (प्रत्य०)] दे० 'नगा' ।

नंगपैरा^५—वि० [हि० नंगा + पैर + धार (प्रत्य०)]
 पाँव नंगे हो । जिसके पैरों में जूता न हो ।
 नंगियाना^२—क्रि० सं० [हि० नगा से नामिक धातु] १
 करना । शरीर पर वस्त्र न रहने देना । २. सब कुछ
 लेना । कुछ भी पास न रहने देना ।
 नंगियाना^२—क्रि० प्र० १ नंगा होना । २ नंगेपन पर
 आना । वेशमं होना ।
 नंगियावना^२—क्रि० सं० [हि० नंगा से नामिक धातु] नंग
 की क्रिया ।
 नंग्याना^५—क्रि० सं० [हि०] दे० 'नंगियाना' ।
 नंग्यावना^५—क्रि० सं० [हि०] नंगा करना । उ०—भी
 बपुरो अरु अजुन नारि नंग्यावत ही बल रीधो ।
 प्र०, पु० १४० ।
 नंदरानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] नंदरानी । यशोदा । उ०—
 प्रभु मुदित नंदरानी ही हो रस सागर में खेलत ।—
 प्र०, पु० ३८७ ।
 नंदलाल^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नदलाल' । उ०—आ
 नंदलाल पहिरे फूल माला ।—नद० प्र०, पु० ३७५ ।
 नंदसुवन^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण । उ०—नददास
 मुरलि सुर मगन होति ब्रजबास । नद० प्र०, पु० ३७७ ।
 नंदोला^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नदि + ओला (प्रत्य०)] मि
 बड़ी धथवा छोटी नदि ।
 न^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उपमा । २ रश्मि । ३ सोना । ४
 ५. बघ । ६. मोती (को०) । ७. गणेश (को०) । ८
 सपत्ति (को०) । ९ युद्ध (को०) । १० उपहार (को०) ।
 न^२—वि० १ पतला । २. रिक्त । शून्य । ३ अनुत्पन्न । सद्गुण ।
 ४. अश्रात । नथका हुआ । ५ प्रशंसित । ६
 अविभाजित (को०) ।
 न^३—अव्य० १ निषेधवाचक शब्द । नहीं । मत । जैसे,—तुम
 तो कोई हजं है ? (ख) उसे कुछ न देना ही ठीक है
 विशेष—विधि, अनुज्ञा, हेतुहेतुमद भाव आदि कुछ विशेष
 पर भी 'नही' के स्थान में 'न' आता है ।
 जैसे,—२ कि नहीं । या नहीं । (क) तुम वहाँ जाओ
 (ख) वे दिनभर तो वहाँ रहेंगे न ?
 विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग प्रपञ्चात्मक वाक्य के
 ही होता है ।
 नह^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नई] दे० 'नई' । उ०—कोउ
 अधिक अमिस्तिर सुर जुत गति नह । सबको छेकि ।
 अदभुत गान करत नह ।—नद० प्र०, पु० ३४ ।
 नह^२—अव्य० [हि० कर्मकारक का प्रत्यय ने । अन्य रूप नूँ, कूँ,
 कौ, कहूँ] को । उ०—(क) उत्तर दिसि उपराठिया,
 समिहियाहि । कुरभाँ एक संदेसठठ डोलानइ कति
 डोला०, दू० ६४ । (ख) भाई कहि बतलावसूँ
 निरेत । हउ हउ करहा, कुँवर नइ, मत खे जाय ।
 —डोला०, दू० ३२६ ।

नई^३—प्र० [सं० प्रत्यय ?] निश्चयसूचक प्रत्यय । दे० 'मीर' । उ०—
बाबहुयउ नई बिरहणी, दुहुवाँ एक सहाव । जब ही बरसई
बल षणउ तबही कहई प्रियाव ।—ढोला०, दू० २७ ।

क्रि०—इसके अन्य रूप हैं—'मनई', 'मने', 'ने' ।

नई^४—संज्ञा पु० [सं० नयन] दे० 'नयन' । उ०—ऊनमि आई
बहूनी, डोलत घायत चित । यो बरसई रितु भापणी, नदण
हमारे नित ।—ढोला०, दू० ४१ ।

नई^५—संज्ञा स्त्री० [सं० नोका] नाव । उ०—हों मपराधी बहुत
जुगन को नईया मोर उबारो ।—घरम०, पृ० २५ ।

नईवेद^६—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नैवेद्य' । उ०—ज्वालनिय मास
तृप्य नृपति प्रति सुदेव नईवेद जुत ।—पृ० रा०, २४।२७६ ।

नईहरा^७—संज्ञा पु० [सं० ज्ञातिगृह] हि० नैहर] स्त्रियों की माता का
घर । पीहर । मायका ।

नई^८—वि० पु० [सं० नय + हि० ई (प्रत्य०)] नीतिवान् । नीतिज्ञ ।

नई^९—वि० स्त्री० [सं० नव] 'नया' का स्त्री रूप ।

नई^{१०}—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी' ।

नई^{११}—संज्ञा स्त्री० [हि०] नवमी तिथि । उ०—काल जोगण भद्रा
नहीं पुष नक्षत्र नई कातिक मास ।—वी० रासो, पृ० ४० ।

नईजी^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि० लीची] लीची नामक फल । उ०—कोई
नारंग कोई भार चिरईजी । कोई कटहर बडहर कोई
नईजी ।—जायसी (शब्द०) ।

नउ^{१३}—वि० [सं० नव] १ दे० 'नव' । उ०—ताकहें गुरु करई प्रस
माया । नउ प्रवतार देह नई काया ।—जायसी (शब्द०) ।

२. दे० 'नौ' । उ०—नउ पठरी बाँकी नउ सडा । नउ ऊजो
षड जाइ ब्रह्मडा ।—जायसी (शब्द०) ।

नउआ^{१४}—संज्ञा पु० [हि० नाऊ] [स्त्री० नउनियाँ] दे० 'नाऊ' ।
उ०—रोवत देखि जननि मकुलानी लियो तुरत नउमा को
ऊरकी ।—सूर (शब्द०) ।

नउका^{१५}—संज्ञा स्त्री० [सं० नोका] दे० 'नोका' ।

नउत^{१६}—वि० [हि० नवना, नवत] नीचे की ओर झुका हुआ ।
उ०—विषधि गयो मन लागि ज्यों ललित त्रिभगी संग । सूघो
होत न ओर तनि नउत रहै वह प्रग ।—रसनिधि (शब्द०) ।

नउतोया^{१७}—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नैवतहरी' । उ०—राजमती कउ
रचउ बीबाह, ब्यारी खड जीव नउतोया, मिला हो चउरासिया
अत न पार ।—वी० रासो, पृ० ३७ ।

नउना^{१८}—वि० [हि०] झुका हुआ । नम्र । नत ।

नउनियाँ^{१९}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नाइन' । उ०—अति बड़ भाग
नउनियाँ छुए नख हाथ सो हो ।—सुलसी प्र०, पृ० ५ ।

नउनिया^{२०}—स्त्री० स्त्री० [हि०] दे० 'नउनियाँ' । उ०—नैन
विशाल नउनिया भों चमकावइ हो ।—सुलसी० प्र०, पृ० ४ ।

नउमि^{२१}—वि० स्त्री० [सं० नवमी] नवीं । नवीं । उ०—नउमि
दशा देखि गेसाहे नड़ाए दसमि दशा सगपति भेखि आए ।—
विद्यापति, पृ० ५२८ ।

नउरंगा^{२२}—संज्ञा स्त्री० [हि० नारंगी] दे० 'नारंगी' ।

नउरा^{२३}—संज्ञा पु० [सं० नकुल] दे० 'नैवला' ।

नउरता^{२४}—संज्ञा पु० [हि०] नवरात्र । उ०—नव दिन पूर्णा
नउरता बलि वाकुल पूजा रचो ठाई ।—वी० रासो, पृ० ५० ।

नउलि^{२५}—वि० [सं० नवस] नया । नवीन । ताजा । उ०—सबई
नउलि पिय सग न सोई । कंस पास जनु बिगसी कोई ।—
जायसी (शब्द०) ।

नऊड़ा^{२६}—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोडा] दे० 'नवोड़ा' । उ०—प्रथमहि
मुगध नऊड़ा होय । पुनि बिभन्द नऊड़ा सोय ।—नव० प्र०,
पृ० १४५ ।

नएवंज^{२७}—संज्ञा पु० [देश०] पाँच वर्ष की अवस्था का घोड़ा । जवान
घोड़ा । (चाबुक सवार)

नथोढ़^{२८}—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोडा] दे० 'नवोड़ा' ।

नफंद^{२९}—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो काँड़े
में होता है ।

नककटा^{३०}—वि० [हि० नाक + कटना] [वि० स्त्री० नककटी] १ जिसकी
नाक कटी हो । २ जिसकी बहुत दुर्दशा हुई हो । ३. जिसकी
अप्रतिष्ठा या बदनामी हुई हो । ४ जिसके कारण अप्रतिष्ठा
हो । ५. निर्लज्ज । बेहया । वेशर्मा ।

नककटापंथ^{३१}—संज्ञा पु० [हि० नककटा + पंथ] एक कल्पित
पंथ का नाम ।

विशेष—एक कहानी है कि एक बार किसी प्रकार एक आदमी
की नाक कट गई । तब उसने और लोगों को भी अपने ही
समान बनाने के उद्देश्य से लोगों से यह कहना प्रारंभ कर
दिया कि नाक के कट जाने के कारण ही मुझे ईश्वर के
दर्शन होने लगे हैं । उसकी बात पर विश्वास करके बहुत से
लोगों ने नाक कटा डाली । ईश्वर के दर्शन तो किसी को
न होते थे, पर नककटे होने के प्रपवाद से बचने और दूसरों
को भी अपने समान बनने के लिये वे उस पहले नककटे की
बात का खूब समर्थन करते थे । इसी कहानी के आधार पर
लोगों ने इस 'नककटे पंथ' की कल्पना कर ली ।

नककटी^{३२}—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + कटना] १ नाक कटने की
क्रिया । २. दुर्दशा, अप्रतिष्ठा या बदनामी आदि ।

नकचिसनी^{३३}—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + चिसनी] १ नाक को जमीन
पर रगड़ना । जमीन पर नाक रगड़ने की क्रिया । २ बहुत
अधिक दीनता । आज्ञा ।

नकचिपटा^{३४}—वि० [हि० नाक + चिपटा] [वि० स्त्री० नकचिपटी]
बैठी नाकवाला ।

नकचड़ा^{३५}—वि० [हि० नाक + चड़ना] [वि० स्त्री० नकचड़ी]
चिड़चिड़ा । बदमिजाज ।

नकछिकनी^{३६}—संज्ञा स्त्री० [सं० छिकनी] एक प्रकार की घास
जिसकी पत्तियाँ महीन महीन और कटावदार होती हैं ।

विशेष—इसके फूल घुँडी के आकार के और गुलाबी होते हैं जिन्हें
घुँबने से छीक पाने समी है । वैद्यक में इसे चरपरी, कबी,

गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक, पित्तकारक और वात, कफ, कृष्ट, कृमि, रक्तविकार और दृष्टिदोष का नाशक माना है।

पर्या०—संवकृत। तीक्ष्ण। छिक्किका। घ्राणदुःखदा। उग्रा। सवेदनापटु। उग्रगंधा। सवक। छिक्कनी।

नकटा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाक + कटना] [वि० स्त्री० नकटी] १. वह जिसकी नाक कट गई हो। २. एक प्रकार का गीत।

विशेष—इसे स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर और विशेषतः विवाह के समय गाती हैं।

३. वह अवसर या उत्सव जब उक्त गीत गाया जाता है। ४. एक प्रकार की चिट्ठिया।

नकटा^२—वि० १. जिसकी नाक कटी हो। २. निर्लज्ज। बेशर्म। बेहया। ३. अप्रतिष्ठित। जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो।

नकटेसर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पीघा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

नकड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाक] बालों का एक रोग।

विशेष—इसमें उनकी नाक सूज जाती है और इसके कारण उन्हें साँस लेने में बहुत कठिनाता होती है।

नक्त^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नक्त] नक्तप्रत। रात्रिकाल में किया जानेवाला व्रत। उ०—कतहु नक्त कतहु रोजा।—कीर्ति०, पृ० ४२।

नक्तोड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाक + तोड़ना] कुश्ती का एक पेंच।

नक्तोड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाक + तोड़ (= गति)] अभिमानपूर्वक नाक भी चढ़ाकर नखरा करना अथवा कोई बात कहना।

मुहा०—नक्तोड़े उठाना=अनुचित अभिमान सहना। नखरा बरदाश्त करना। नक्तोड़े तोड़ना=बहुत अधिक और अनुचित नखरा करना।

नक्तोरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नक्तोड़ा] दे० 'नक्तोड़ा'। उ०—'आबरू' को नहीं कम जर्क की सुहृवत का दिमाग। किसको बरदाश्त है हर यक्त के नक्तोरो को।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

नकद^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० नक्रद] तैयार रुपया। रुपया पैसा। धन जो सिक्कों के रूप में हो। जैसे,—उनके पास नकद बहुत है।

नकद^२—वि० १. (रुपया) जो तैयार हो। (धन) जो तुरत काम में लाया जा सके। प्रस्तुत (द्रव्य)। जैसे,—हम नकद रुपया लेंगे कोई चीज नहीं लेंगे। २. खास।

नकद^३—क्रि० वि० तुरत दिए हुए रुपए के बदले में। तुरत रुपया पैसा देकर या लेकर। 'उधार' का उलटा। जैसे,—हमने सब मास नकद लिया है या वेचा है।

नकद^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नगद] दे० 'नगद'।

नकदाबा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] चने या मटर की दाल के साथ पकाई हुई बरी या कुम्हड़ीरी।

नकदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० नक्रद + प्रा० ई (प्रत्य०)] १. रोकड़।

धन। रुपया पैसा। सिक्का। २. जमई। वह धूमि लगान नकद रुपयों में लिया जाय।

नकना^१—क्रि० सं० [सं० लङ्कृत हि० नाकना] १. करना। लाँचना। डाँकना। फाँटना। उ०—(क) औरत जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज (शब्द०) (ख) घारी नकी गिरिन की ठाड़ी। देखी तहाँ बाड़ी।—लाल (शब्द०)। २. चलना। उ०—सुकुमार नद के कुमार ताहि धाएँ री मनावन सय नकि कै।—केशव (शब्द०) ३. त्यागना। छोड़ना।

नकना^२—क्रि० प्र० [हि० नकियाना] नाक में दम हैरान होना।

नकन^१—क्रि० सं० नाक में दम करना।

नकन्यानाङ्ग—क्रि० प्र० [हि०] नाकों दम होना। परेशान नकपोड़ाङ्ग—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाक'।

नकफूल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाक + फूल] नाक में पहनने की चीज। उ०—तन सुख सारी लाही भँगिया भँतरीटा छवि चारि चारि चुरी पट्टीचीन पट्टीची बनी नकफूल जेब मुख बारि चौका कोधे सभ्रम—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

नकब—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० नक्रब] चोरी करने के लिये किया हुआ वह बड़ा छेद जिसमें से होकर चोर किसी या कोठरी आदि में घुसता है। सेंध।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

नकबजन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० नक्रब + प्रा० जन] वह जो चोरी के लिये दीवार में छेद करे। सेंध लगानेवाला।

नकबजनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० नक्रब + प्रा० जनी] सेंध की क्रिया।

नकबानी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाक + बानी ?] नाक में हैरानी। उ०—अनके भाल लिखी लिपि मेरो सुख। निसानी। तिन रंजन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—घाना।—करना।—होना।

नकबेसर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाक + बेसर] नाक में पहनने की नय। बेसर। उ०—नकबेसर कनफूल बन्यो है छवि कटि धावै लू।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४६।

नकमोती—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाक + मोती] नाक में पहनने का जिसे सटकन भी कहते हैं।

नकल—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० नक्रल] ? वह जो सच्चा, सारा या न हो बल्कि असल को देखकर रूप, रंग, आकृति उसी के अनुसार बनाया गया हो। वह जो किसी ढंग पर या उसकी तरह तैयार किया गया हो। कापी। जैसे,—(क) वह मकान उस सामनेवाले की है। (ख) इस नकल ने तो असल को भी मात कर २. एक के अनुरूप दूसरी वस्तु बनाने का कार्य।

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना । बनाना ।—होना ।

३ लेख भावि की प्रशंसा प्रतिलिपि । कापी । जैसे,—(क) इस शिलालेख की एक नकल हमारे पास भी भाई है । (ख) इस दस्तावेज की नकल करा लो तो बड़ा काम हो ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना ।—होना ।—होना ।

४. किसी के वेश, हाव भाव या बातचीत आदि का पूरा पूरा अनुकरण । स्थागि । जैसे,—(क) वह उनकी खूब नकल उतारता है । (ख) कल महफिल में भाइयों ने नवाब साहब की एक बहुत अच्छी नकल की थी ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—उतारना ।—करना ।—बनना ।—होना ।

५. अद्भुत और हास्यजनक प्राकृति । जैसे,—प्राज्ञ तो प्राप बिलकुल नकल बनकर आए है । उ०—नकल है कोई शख्स घरे सुं उने साहर कुं प्राया तमाशा देखने ।—दक्खिनी०, पृ० ३८१ । ६ हास्य रस की कोई छोटी मोटी कहानी या बात चीत । चुटकुला ।

नकलची—वि० [हि० नकल + ची (प्रत्य०)] नकल करनेवाला ।

नकलनवीस—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नकल + फ्रा० नवीस] वह आदमी, विशेषतः मदालत या दफ्तर आदि का मुद्दिर जिसका काम केवल दूसरे के लेखों की नकल करना होता है ।

नकलनवीसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नकल + फ्रा० नवीसी] १. नकलनवीस का काम । २. नकलनवीस का पद ।

नकलनोर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की विडिया जिसे मुनिया भी कहते हैं । विशेष—दे० 'मुनिया' ।

नकलपरवाना—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नकल + फ्रा० परवाना] परती का भाई । साबा । (हास्य) ।

नकलबही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नकल + बही] दफ्तरों या दुकानों की वह बही या कापी आदि जिसमें भेजी जानेवाली विडियों की नकल रहती है ।

नकली—वि० [प्र० नकल + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १ जो नकल करके बनाया गया हो । जो असली न हो । कृत्रिम । बनावटी । जैसे, नकली होरा, नकली केंसर, नकली घड़ी ।

विशेष—नकली चीज प्रायः निकम्मी और निकृष्ट समझी जाती है और लोगों में इसका आदर नहीं होता ।

२. जो असली न हो । खोटा । जाली । झूठा । जैसे,—नकली दस्तावेज बनाने के अपराध में उसको दो बरस की सजा हो गई ।

नकलेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाक + लेल (प्रत्य०)] १. नाव खींचने के लिये गोवरखे में बंधी हुई वह रस्सी जो और सब रस्सियों से आगे रहती है । २. दे० 'नकेल' ।

नकलोला^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'नकलनोर' ।

नकलोला^२—वि० [हि०] १ मदी या बेडोल नाकवाला । बेवकूफ ।

नकवानी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नकबानी' । उ०—भरि भरि सुं डनि डारत पानी डारत मोहि भरत नकवानी ।—नद० पं०, पृ० १६७ ।

नकवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १. नया प्रकुर । कल्ला । २. सूई का वह छेद जिसमें तागा पिरोया जाता है । नाका । ३. तराश की डंडी का वह छेद जिसमें पलड़े की रस्सियाँ पिरोकर बांधी जाती है ।

नकवानी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नकबानी' ।

नकश—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श] १ दे० 'नक्श' ।

विशेष—नकश के योगिक शब्दों के लिये दे० 'नक्श' के योगिक । २ एक प्रकार का छुपा जो दो या अधिक आदमी ताश के पत्तों से खेलते हैं ।

विशेष—इसमें सब खिलाड़ियों को पहले एक एक पत्ता बाँट दिया जाता है और तब एक एक खिलाड़ी को भलग भलग उसके माँगने पर और पत्ते दिए जाते हैं । इसमें पत्तों की वृत्तियों को गिनकर हार जीत होती है ।

नकशमार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श + हि० मारना] नक्श नामक छुपा जो ताश के पत्तों से खेला जाता है । विशेष—दे० 'नक्श' ।

नकशा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्शह] दे० 'नक्शा' ।

नकशानवीस—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श + फ्रा० नवीस] दे० 'नक्शानवीस' ।

नकशी—वि० [प्र० नक्श + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दे० 'नक्शी' ।

नकशीमैना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नक्शा + मैना] तेखिया नाम की एक प्रकार की मैना ।

नकशोनिगार^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श + फ्रा० निगार] १. फूनपत्ती । बेशवूटा । २. मूर्ति । प्रतिमा । प्राकृति । उ०—हरमानी मतन में न बदर नकशोनिगार ।—कबीर प्र०, पृ० ३६० ।

नकसमार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नक्शमार] दे० 'नक्शमार' ।

नकसा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नक्शा] दे० 'नक्शा' ।

नकसिका^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नक्षिका] दे० 'नक्षिका' । उ०—हुजूर नकसिक से कितनी दुरस्त है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५ ।

नकसीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाक + सं० क्षीर (=जल)] आपसे आप नाक से रक्त बहना जो प्रायः गरमी के दिनों में होता है ।

विशेष—वैद्यक में इसे रक्तपित्त रोग के अतर्गत माना है । रक्तपित्त में मुँह, नाक, घ्राण, कान, गुदा और योनि या लिंग से रक्त बहता है । यदि यह रक्त अधिक मात्रा में बहे तो मनुष्य थोड़ी ही देर में मर भी सकता है । अधिक घ्राण या धूप लगने, रास्ता चलने और शोक, व्यायाम या मैथुन करने से मिस्र मिस्र मामों से रक्त बहने लगता है । स्त्रियों का रज रुक जाने से भी यह रोग हो जाता है । विशेष—दे० 'रक्तपित्त' ।

क्रि० प्र०—फूटना ।

मुहा०—नकसीर भी न फूटना=कुछ भी हानि न पहुँचना । जरा भी तकलीफ या नुकसान न होना ।

नकाना^१—क्रि० प्र० [हि० नकियाना] नाक में दम होना । बहुत परेशान होना । उ०—तहँ माडो इक भीषट आयो । सब करि अपत राय लकायो—साध (कन्द०) ।

नकाना^{७२}—क्रि० सं० [हि० नकियाना] नाक में दम करना ।
बहुत परेशान करना ।

नकाब—संज्ञा स्त्री० पुं० [अ० नकाब] १ महीन रंगीन कपड़े या जाली का वह टुकड़ा जो मुँह छिपाने के लिये सिर पर से गले तक ढाल लिया जाता है ।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः अरब देश की स्त्रियों में और उनके ससुरों से युरोप की स्त्रियों में भी होता है । मुसलमान स्त्रियाँ अपना चेहरा छिपाने के उद्देश्य से इसका व्यवहार करती हैं, पर युरोपियन स्त्रियाँ घूल और कीर्तियों पतंगों आदि से बचने तथा शोभा बढ़ाने के लिये करती हैं । प्राचीन काल में कहीं कहीं आवश्यकता पड़ने पर पुरुष भी इसका व्यवहार करते थे ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—ढालना ।

मुहा०—नकाब उलटना = चेहरे पर से नकाब हटाना ।

यौ०—नकाबपोश जिसके चेहरे पर नकाब हो । जो चेहरे पर नकाब डाले हो ।

२. साड़ी या चादर का वह भाग जिससे स्त्रियों का मुँह ढँका रहता है । घूँघट ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—ढालना ।

मुहा०—नकाब उलटना = मुँह पर से घूँघट हटाना ।

नकार—संज्ञा पुं० [सं०] न या नहीं का बोधक शब्द या वाक्य ।
नहीं । २ इनकार । अस्वीकृति । ३ 'न' अक्षर ।

नकारची—संज्ञा पुं० [हि० नक्कारची] दे० 'नक्कासी' ।

नकारना—क्रि० प्र० [हि० नकार + ना (प्रत्य०)] इनकार करना । अस्वीकृत करना ।

नकाराङ्ग^१—वि० [फा० नाकार] खराब । बुरा । निकम्मा । जो किसी काम का न हो ।

नकारा^{७२}—संज्ञा पुं० [हि० नक्कारा] दे० 'नक्कारा' । उ०—
मुसाफिर उठ सुभे चलना है मजिल । बजे है कूच का हुरदम
नकारा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४१ ।

नकारात्मक—वि० [सं०] अस्वीकार्य । जो न मानने योग्य हो ।

नकारात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नकार । अस्वीकार ।

नकाश—संज्ञा पुं० [हि० नक्काश] दे० 'नक्काश' ।

नकाशना^१—क्रि० सं० [हि० नकाश से नामिक घातु] किसी पदार्थ पर बेल बूटे आदि बनाना । घातु, पत्थर आदि पर खोदकर चित्र फूल पत्ती आदि बनाना ।

नकाशी—संज्ञा स्त्री० [हि० नक्काशी] दे० 'नक्काशी' ।

नकाशीदार—वि० [अ० नक्काशी + फा० दार] जिसपर नक्काशी हो । बेल बूटेदार ।

नकासी^१—संज्ञा पुं० [हि० नक्काश] दे० 'नक्काश' ।

नकासी^२—संज्ञा पुं० [हि० नक्कास] दे० 'नक्कास' ।

नकासना—क्रि० सं० [हि० नक्काशना] दे० 'नक्काशना' ।

नकासी—संज्ञा स्त्री० [हि० नक्काशी] दे० 'नक्काशी' । उ०—रचित

प्रभा सी भासी भवलि मकानन की जिनमें नकासी फड़े
नकासी है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २८१ ।

नकासीदार—वि० [हि० नकाशीदार] दे० 'नकाशीदार' ।

नक्किचन—वि० [सं० नक्किचन] जिसके पास कुछ न हो ।

अत्यन्त दरिद्र [को०] ।

नकियाना^१—क्रि० प्र० [हि० नाक + घाना (प्रत्य०)]
नाक से बोलना । शब्दों का अनुनासिकवत् उच्चारण
२ नाक में दम घाना । बहुत दुखी या हैरान होना ।
हाथ बुढ़ापा तुम्हरे मारे हम तो अब नकियाय गयन ।
घरत कुछ बनतै नाहिन कहाँ घान अरु कैसे करन ।—
रायण (शब्द०) ।

नकियाना^२—क्रि० सं० नाक में दम करना । बहुत परेशान करना ।

नकीब—संज्ञा पुं० [अ० नकीब] १ वह आदमी जो राजाओं के आगे उनके तथा उनके पूर्वजों के यश का गान करता चलता है । चारण । बंदीजन । भाट ।

विशेष—बादशाहों या नवाबों के यहाँ के नकीब केवल आगे विरदावली का बखान करते ही नहीं चलते, बल्कि को उपाधि या पद आदि मिलने के समय अथवा किंस पदाधिकारी के दरबार में आने के पूर्व उसकी घोषणा करते हैं ।

२ कहला गानेवाला पुरुष । कड़वैत ।

नकुच—संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़ ।

नकुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाक ।

नकुनियौ^{७१}—संज्ञा स्त्री० [हि०] तराजू की डडी के दोनों उ०—घाट बाट सोघ सेइ सम रहै नकुनियौ ।
सुरति चाहि केरि होय तनियौ ।—मल्लक०, पृ० २५ ।

नकुराङ्ग^१—संज्ञा पुं० [हि० नाक + उरा (प्रत्य०)] न नासिका ।

नकुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ नेवला नाम का प्रसिद्ध जल ।
दे० 'नेवला' । २ पाहु राजा के चौथे पुत्र का नाम
अश्विनीकुमार द्वारा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि जिस समय पांडु कारण अपनी दोनों स्त्रियों की साथ लेकर वन में उस समय जब कृती को तीन सङ्के हुए तब माद्री ने से पुत्र के लिये कहा था । उस समय कुती ने माद्री कहा कि तुम किसी देवता का स्मरण करो । इसपर ने अश्विनीकुमारो का स्मरण किया जिससे दो बालक उनमें से बड़े का नाम नकुल और छोटे का सहदेव था । बहुत ही सुंदर थे और नीति, धर्मशास्त्र तथा युद्धविद्या में पारंगत थे । पशुओं की चिकित्सा की विद्या भी इन्होंने थी । अज्ञातवास के समय जब पांडव बिराट के यहाँ थे तब नकुल का नाम तन्त्रिपाल था और वे गोएँ का काम करते थे । युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ था तब इन्होंने पश्चिम की ओर जाकर महर्षि और

भादि देशों को परास्त किया था, श्रीर तदुपरांत द्वारका में दूत भेजकर वासुदेव से भी युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकृत कराई थी। इनका विवाह चेदिराज की कन्या करेणुमती से हुआ था जिसके गर्भ से निरमित्र नामक एक पुत्र भी हुआ था।

३ वेदा । पुत्र । ४ शिव । महादेव । ५ प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा । ६ वह जो नीच कुल में उत्पन्न हुआ हो (की०) ।

नकुल^२—वि० १. जिसका कोई कुल न हो । कुलरहित । २ नीच कुल में उत्पन्न (की०) ।

नकुल^३—सङ्घा पुं० [घ० नुकल (= चाट)] वह जो दोपहर के समय पुर भादि चलावेवालों को पीने के लिये दिया जाता है ।

नकुलकंद—सङ्घा पुं० [सं० नकुलकन्द] गंधनाकुली वा रास्ना नामक कंद ।

नकुलक—सङ्घा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गहना । २ रुपया भादि रखने की एक प्रकार की थैली ।

नकुलतैल—सङ्घा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल ।

विशेष—यह नेवले के मांस में बहुत सी दूसरी ओषधियाँ मिलाकर बनाया जाता है। इसका व्यवहार पान, अभ्यंग और वस्त्रिक्रिया में होता है। वैद्यक के अनुसार इससे आमवात, शरीर के सब अंगों का कफ और कमर, पीठ, जाँघ भादि का वात का दरद दूर होता है।

नकुलांधता—सङ्घा स्त्री० [सं० नकुलान्धता] दे० 'नकुलांध रोग' ।

नकुलांध रोग—सङ्घा पुं० [सं० नकुलान्ध रोग] सुश्रुत के अनुसार प्राँख का एक रोग ।

विशेष—इसमें प्राँखें नेवले की प्राँखों की तरह चमकते लगती हैं और पीजें रंग बिरंगी दिखाई देने लगती हैं। इस रोग में पित्तवर्धक पदार्थों का सेवन करना मना है।

नकुला—सङ्घा स्त्री० [सं०] पार्वती ।

नकुला^१—सङ्घा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला' ।

नकुला^२—सङ्घा पुं० [हि०] वह जिसका कुल से संबंध न हो । भ्रज । भ्रजन्मा । उ०—नमो निकलक नमो नकुला नमो नित्य नरायनम । नमो भ्रमर नमो भ्रमर नमो पीव परायनम ।—राम० धर्म०, पृ० ५१ ।

नकुलाढ्या—सङ्घा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली । नकुलकद ।

नकुली—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ जटामासी । २ केसर । ३. शस्त्रिनी । ४. नेवले की मादा ।

नकुलीश—सङ्घा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक भैरव का नाम ।

नकुलीश पाशुपतदर्शन—सङ्घा पुं० [सं०] एक दर्शन जिसका उल्लेख सर्वदर्शनसंग्रह में है ।

विशेष—इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इसमें शिव ही परमेश्वर और सब प्राणी उनके पशु माने गए हैं। जीवों के अधिपति होने के कारण महादेव पशुपति कहलाते हैं। इस दर्शन में मुक्ति दो प्रकार की कही गई है—प्रत्यंत दुःखनिवृत्ति और परमेश्वर्यप्राप्ति। दृक्शक्ति और क्रियाशक्ति के भेद से परमेश्वर्य

प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है। दृक्शक्ति वा ज्ञान द्वारा पदार्थ ज्ञानपथ में भाते हैं और क्रियाशक्ति द्वारा वे सपन्न होते हैं।

नकुलीश—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'नकुलीश' ।

नकुलीषटा—सङ्घा स्त्री० [सं०] रास्ना । रायसन ।

नकुलीषठी—सङ्घा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो तारों से बजाया जाता था ।

नकुली—सङ्घा पुं० [हि० नाक + उवा (प्रत्य०)] १. नाक । २. तराजू की डी की सुराख ।

नकेल—सङ्घा स्त्री० [हि० नाक + एल (प्रत्य०)] १ ऊँट की नाक में बंधी हुई रस्सी जो लगाम का काम देती है और जिसके सहारे ऊँट चलाया जाता है। मुहार ।

मुहा०—किसी की नकेल हाथ में होना = किसी पर सब प्रकार का अधिकार होना । किसी से बलपूर्वक मनमाना काम करा लेने की शक्ति होना । जैसे,—उनकी चिंता मत कीजिए, उनकी नकेल तो हमारे हाथ में है ।

२. गाय की नाक में पहनाई हुई रस्सी ।

नक्का^१—सङ्घा पुं० [हि० नाक] सूई का वह छेद जिसमें डोरा पहनाया जाता है। सूई में डोरा पिरोने का छेद । नाका ।

नक्का^२—सङ्घा पुं० १ ताण के पत्तों में का एक्का । २ दे० 'नक्की' और 'नक्कीमूठ' । ३ कीड़ी ।

नक्का दूआ—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'नक्कीमूठ' ।

नक्कार—सङ्घा पुं० [सं०] भवज्ञा । प्रपमान । तिरस्कार । भवहेलना ।

नक्कारखाना—सङ्घा पुं० [घ० नक्कारह + फा० खाना] वह स्थान जहाँ पर नक्कारा बजता है। नौबत बजने का स्थान । नौबतखाना ।

विशेष—ऐसा स्थान प्रायः बड़े बड़े मकानों में बाहर के दरवाजे के ठीक ऊपर बना रहता है ।

मुहा०—नक्कारखाने में तूती की आवाज कीन सुनता है = (१) बहुत भीड़ भाड़ या शोर गुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती । (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटे आदमियों की बात कोई नहीं सुनता ।

नक्कारची—सङ्घा पुं० [घ० नक्कारह + तु० ची (प्रत्य०)] नगाड़ा बजानेवाला । वह जो नक्कारा बजाता हो ।

नक्कारा—सङ्घा पुं० [घ० नक्कारह] डगडगी या बाएँ की तरह का एक बहुत बड़ा बाजा जिसमें एक बहुत बड़े कूँड़े के ऊपर चमड़ा मड़ा रहता है। नगाड़ा । डंका । नौबत । बुदुभी ।

विशेष—इसके साथ में इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा होता है। इन दोनों को सामने सामने रखकर लकड़ी के दो दहों से, जिन्हें बोल कहते हैं, बजाते हैं ।

मुहा०—नक्कारा बजाते फिरना = हुगहुगी पीटते फिरना । चारों ओर प्रकट करते फिरना । नक्कारा बजा के = खुलमखुलना । डंके की बोट । नक्कारा हो जाना = फूलकर बहुत बढ़ना । बहुत फुसना ।

नक्काल—सब्बा पुं [प्र० नक्काल] १ अनुकरण करनेवाला । नकल करनेवाला । २ भांड । ३ बहुलिया ।

नक्काली—सब्बा स्त्री [प्र० नक्काली] नकल करने का काम । नकल करने की क्रिया या विद्या । २. भांड का काम या विद्या । बहुलिया का काम या विद्या ।

नक्काश—सब्बा पुं [प्र० नक्काश] नक्काशी का कारीगर । वह जो खोदकर बेल बूटे आदि बनाता हो ।

नक्काशी—सब्बा स्त्री [प्र० नक्काशी] १ घातु या पत्थर आदि पर खोदकर बेल बूटे आदि बनाने का काम या विद्या । २ वे बेल बूटे आदि जो इस प्रकार खोदकर बनाए गए हों ।

नक्काशीदार—वि० [प्र० नक्काशी + फा० दार (प्रत्य०)] जिसपर खोदकर बेल बूटे बनाए गए हों ।

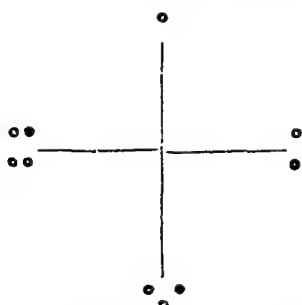
नक्की^१—सब्बा स्त्री [हि० एक] १. नक्कीमूठ खेल में 'एक' का दांव (दे० 'नक्कीमूठ') । ताश के पत्तों में का एकका । (क्व०) । ३ छूए के किसी खेल में वह दांव जिसके लिये 'एक' का चिह्न नियत हो भयवा जिसकी जीत किसी प्रकार के 'एक' चिह्न के माने से हो ।

नक्की^२—वि० [हि० एक] १ ठीक । दुस्त । २. पक्का । ३ पूरा । ४ चुकाया हुआ । चुकता । सफा (हिसाब) ।

नक्कीपूर—सब्बा पुं [हि०] दे० 'नक्कीमूठ' ।

नक्कीमूठ—सब्बा स्त्री [हि० नक्की + मूठ (= मूठ्ठी)] छूए का एक खेल जो प्रायः स्त्रियाँ और बालक कौड़ियों से खेलते हैं । नक्कीपूर ।

विशेष—इस खेल में एक दूसरी को काटती हुई दो सीधी खकीरें खींचते हैं और उनके चारों सिधों में से एक सिरे पर एक बिंदी, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और चौथे पर चार बिंदियाँ बना दी जाती हैं । इनको क्रमशः नक्की, दूध्या, सीया और पूर कहते हैं । इसमें दो से चार तक खिलाड़ी होते हैं जो एक एक दांव ले लेते हैं । एक खिलाड़ी अपनी मूठ्ठी में कुछ



कौड़ियाँ लेकर अपने दांव पर मूठ्ठी रख देता है । तब बाकी खिलाड़ी अपने अपने दांव पर कुछ कौड़ियाँ लगाते हैं । इसके उपरांत वह पहला खिलाड़ी अपनी मूठ्ठी की कौड़ियाँ गिनकर चार का भाग देता है । जब भाग देने पर १ कौड़ी बचे तो नक्कीवाले की, २ बचें तो दूध्यावाले की, ३ बचें तो सीयावाले की और कुछ भी न बचे तो पूरवाले की जीत होती है ।

५-३५

जिसकी जीत होती है दूसरी बार वही मूठ खाता है । मूठ खानेवाले का दांव भाता है तो वह दांव पर रखी सबकी कौड़ियाँ जीत लेता है नहीं तो जिसकी जीत उसको उसे उतनी ही कौड़ियाँ देनी पड़ती हैं जितनी दांव पर लगाई हों ।

नक्कू—वि० [हि० नाक] १. बड़ी नाकवाला । जिसकी नाक हो । अपने भापको बहुत प्रतिष्ठित समझनेवाला । जैसे, भी बड़े नक्कू बनते हैं । (बोलचाल) । २ जिसके आदि सब लोगों के आचरण के विपरीत हों । सबसे धीर उलटा काम करनेवाला, जो प्रायः बुरा समझा जाता जैसे,—हमें क्या गरज पड़ी है जो हम नक्कू बनने जायें ।

नक्ख^१—सब्बा स्त्री [हि० नाक] दे० 'नाक' । उ बालक बूढ़ सु दीन । धरे मुख नक्ख सुबैत सहीन । रासो, पुं ८ ।

नक्त'चर^१—सब्बा पुं [सं० नक्तञ्चर] [स्त्री० नक्तचरी] गुग्गुल । गुग्गुल । २ राक्षस । ३ चोर । ४. बिल्ली । उल्लू ।

नक्त'चर^२—वि० रात के समय विचरण करनेवाला ।

नक्तचरी—वि० [सं० नक्तञ्चरी] राक्षसी ।

नक्त'चर्या—सब्बा स्त्री [सं० नक्तञ्चर्या] रात का विचरण ।

नक्त'चारी—वि० पुं [सं० नक्तञ्चारिन्] [स्त्री० नक्तचारि] दे० 'नक्तचारी' ।

नक्त जात—सब्बा पुं [सं० नक्तञ्जात] बहुत प्राचीन काल की प्रकार की ओषधि जिसका उल्लेख वेदों में है ।

नक्तदिन—अव्य० [सं० नक्तन्दिन] रात दिन ।

नक्तदिव—अव्य० [सं० नक्तन्दिव] दे० 'नक्त दिन' ।

नक्त^१—सब्बा पुं [सं०] १ वह समय जब दिन केवल एक ही रह गया हो । बिलकुल संध्या का समय । २ रात्रि । ३. एक प्रकार का व्रत जो भगहन महीने के पक्ष की प्रतिपदा को किया जाता है ।

विशेष—इसमें दिन के समय बिलकुल भोजन नहीं किया केवल रात को तारे देखकर भोजन किया जाता है । किसी के मत से इस व्रत में ठीक संध्या के समय, दिन केवल मुहूर्त भर रह गया हो, भोजन करना यह व्रत प्रायः यति और विधवाएँ करती हैं । इस व्रत में के समय विष्णु की पूजा भी की जाती है ।

४. शिव । ५. राजा पुण्ड्र के पुत्र का नाम ।

नक्त^२—वि० लज्जित । जो शरमा गया हो ।

नक्तक—सब्बा पुं [सं०] १ मैला या गद्दा कपड़ा । २ जीण वस्त्र (को०) ।

नक्तचर—सब्बा पुं [सं०] १ रात को घूमनेवाला । २ शिव । ३. राक्षस । ४ उल्लू ।

नक्तचारी^१—सब्बा पुं [सं० नक्तचारिन्] [स्त्री० नक्तचारिणी] बिल्ली । २. उल्लू ।

नक्तचारी^२—वि० [वि० औ० नक्तचारिणी] रात के समय विचरण करनेवाला ।

नक्तभोजी—वि० [नक्तभोजिन्] १. रात को भोजन करनेवाला ।
२. नक्त नामक व्रत करनेवाला ।

नक्तमाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष । कजे का पेड़ ।

नक्तमुखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रात ।

नक्तव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नक्त' ।

नक्तान्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नक्तान्ध] वह जिसे रात की दिखाई न दे । वह जिसे रतौंधी होती हो ।

नक्तान्ध्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नक्तान्ध्य] आँख का वह रोग जिसमें रात के समय कुछ भी दिखाई नहीं देता । रतौंधी ।

नक्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियारी नामक विपैला पोषा । २. हलदी । ३. रात ।

नक्ताह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष । कंजा ।

नक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रात ।

नक्द—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्द] दे० 'नकद' । उ०—छोड़ते कब हैं नक्द दिल को सनम । जब य करते हैं प्यार की बातें ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २४ ।

नक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नाक नामक जलजंतु । २. मगर नामक जलजंतु । ३. घड़ियाल या कुंभीर नामक जलजंतु । ४. नाक । ५. पटाव । भरेठ (को०) । ६. घुम्रिक राशि (को०) । ७. चौखट की ऊपरी लकड़ी (को०) ।

नक्रकेतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मकरकेतन' (को०) ।

नक्रराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ियाल । २. मगर । ३. नाक नामक जलजंतु ।

नक्रहारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा जलजंतु । नाक ।

नक्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाक । नासिका । २. भौंरों या भिड़ का झुंड (को०) ।

नक्ल—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नक्ल] दे० 'नकल' ।

नक्लनवीस—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्ल + फ्रा० नवीस] दे० 'नक्लनवीस' ।

नक्लनवीसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नक्ल + फ्रा० नवीसी] दे० 'नक्लनवीसी' ।

नक्लपरवाना—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्ल + फ्रा० परवानह्] दे० 'नक्ल परवाना' ।

नक्लबही—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नक्ल + हिं० बही] दे० 'नक्लबही' ।

नक्श^१—वि० [प्र० नक्श] जो प्रकित या चित्रित किया गया हो । खींचा, बनाया या लिखा हुआ ।

मुद्दा—मन में नक्श करना या कराना = किसी के मन में कोई बात अच्छी तरह बैठना या बैठाना । किसी बात का निश्चय करना या कराना । जैसे,—हमने यह बात उनके मन में नक्श करा दी है । नक्श होना = किसी बात का अच्छी तरह मन में जम जाना । पूर्ण निश्चय हो जाना ।

नक्श^२—सञ्ज्ञा पुं० १. तसवीर । चित्र । २. खोदकर या कलम से बनाया हुआ बेलबूटे या फूलपत्ती आदि का काम ।

यौ०—नक्शनिगार ।

३. मोहर । छाप ।

मुद्दा—नक्श बैठाना = अच्छी तरह अधिकार जमाना । रग जमाना । नक्श बिगाडना = अधिकार या प्रभाव न रह जाना । रग खलना ।

४. सारणी या कोष्ठक के रूप में बना हुआ यत्र । तालीज ।

विशेष—यह अनेक प्रकार के रोगों आदि को दूर करने के लिये कागज, भोजपत्र आदि पर लिखकर बाँह या गले आदि में पहनाया जाता है ।

५. जादू । टोना । ६. एक प्रकार का गाना जो प्रायः कठ्वाल गाया करते हैं । ७. एक प्रकार का ताश का लूमा । दे० 'नक्श' । ८. सिक्का (को०) । ९. प्रभाव । प्रसर (को०) । १०. चरणचिह्न (को०) ।

नक्शदार—वि० [प्र० नक्श + फ्रा० दार (प्रत्य०)] जिसपर नक्श हो (को०) ।

नक्शनिगार—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० नक्श व निगार] बनाए हुए बेल बूटे आदि । नकाशी ।

नक्शबंद—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श + फ्रा० बंद] नक्शा या चित्र बनानेवाला व्यक्ति (को०) ।

नक्शबंदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नक्श + फ्रा० बंद] नक्शा या चित्र बनाने का काम (को०) ।

नक्शमार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श + हिं० मार] दे० 'नक्शमार' ।

नक्शा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नक्श] १. चित्र । प्रतिमूर्ति । तसवीर । रेखाओं द्वारा आकार आदि का निर्देश ।

क्रि० प्र०—उतारना ।^२—खींचना ।—बनाना ।

मुद्दा—(भाँखों के सामने) नक्शा खिंच जाना = किसी के सामने न रहने पर भी उसके रूप रंग आदि का ठेक ठीक ध्यान हो जाना ।

२. बनावट । प्राकृति । शक्ल । ढाँचा । गढ़न । जैसे,—उनका रंग चाहे जैसा हो, पर नक्शा अच्छा है । ३. किसी पदार्थ का स्वरूप । प्राकृति । जैसे—तुमने छह महीने में ही इस मकान का सारा नक्शा बिगाड दिया । ४. चाल ढाल । तरज । ठग । ५. अवस्था । दशा । हाल । जैसे,—(क) आजकल उनका कुछ और ही नक्शा है । (ख) एक ही मुकदमे ने उनका सारा नक्शा बिगाड दिया । ६. ढाँचा । ठप्पा ।

मुद्दा—नक्शा जमाना = बहुत अधिक प्रभाव होना । खूब चलती होना । जैसे,—आजकल शहर के रईसों में उनका नक्शा भी खूब जमा हुआ है । नक्शा जमाना = खूब प्रभाव खालना । रग बाँधना । नक्शा तेज होना = दे० 'नक्शा जमाना' ।

७. किसी घरातल पर बना हुआ वह चित्र जिसमें पृथिवी या खगोल का कोई भाग अपनी स्थिति के अनुसार प्रकट और किसी विचार से चित्रित हो ।

विशेष—साधारणतः पृथिवी या उसके किसी भाग का जो नक्शा

होता है उसमें यथास्थान देश, प्रदेश, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, भौलें और नगर आदि दिखलाए जाते हैं। कभी कभी इस बात का ज्ञान कराने के लिये कि प्रमुख देश में कितना पानी बरसता है, या कौन कौन से अन्न आदि उत्पन्न होते हैं अथवा इसी प्रकार की किसी और बात के लिये नक्शे में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रंग भी भर दिए जाते हैं। कभी कभी ऐसे नक्शे भी बनाए जाते हैं जिनमें केवल रेल लाइनें, नहरें अथवा इसी प्रकार की और चीजें दिखलाई जाती हैं। महा-द्वीपों आदि के अतिरिक्त छोटे छोटे प्रदेशों और यहाँ तक कि जिलों, तहसीलों और गाँवों तक के नक्शे भी बनते हैं। शहरों या गाँवों आदि के भिन्न भिन्न भागों के ऐसे नक्शे भी बनते हैं जिनमें यह दिखलाया जाता है कि किस गली या किस सड़क पर कौन कौन से मकान, खंडहर, अस्तबस्त्र या कुएँ आदि हैं। इसी प्रकार खेतों और जमीन आदि के भी नक्शे होते हैं जिनसे यह जाना जाता है कि कौन सा खेत कहाँ है और उसकी प्राकृति कैसी है। खगोल के चित्रों में इसी प्रकार यह दिखलाया जाता है कि कौन सा तारा किस स्थान पर है।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।

नक्शानवीस—संज्ञा पु० [अ० नक्शा + फा० नवीसह] किसी प्रकार का नक्शा लिखने या बनानेवाला।

नक्शानवीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्शा + फा० नवीसी] नक्शा बनाने का काम।

नक्शी—वि० [अ० नक्शा + फा० ई (प्रत्य०)] जिसपर बेल-बूटे बने हों।

नक्शोनिगार—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्शा + फा० व + निगार] दे० 'नक्शानिगार'। उ०—मोर आया बाद अर्थात् आपस सवार। जिसके हर एक पर मे कई नक्शोनिगार।—दक्खिनी०, पु० १७५।

नक्षत्र—संज्ञा पु० [सं०] १ चंद्रमा के पथ में पड़नेवाले तारों का वह समूह या मुख्य जिसका पहचान के लिये आकार निर्दिष्ट करके कोई नाम रखा गया हो।

विशेष—इन तारों को ग्रहों से भिन्न समझना चाहिए जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं और हमारे इस सौर जगत् के अंतर्गत हैं। ये तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं हैं। ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं—अर्थात् एक तारा दूसरे तारे से जिस ओर और जिसतनी दूर भाज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा। इस प्रकार ऐसे दो चार पास पास रहनेवाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सबको दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं। पहचान के लिये यदि हम उन सब तारों के मिलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारकपुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुभीता होगा। नक्षत्रों का विभाग इसीलिये और इसी प्रकार किया गया है।

चंद्रमा २७-२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता खगोल में यह भ्रमणपथ इन्हीं तारों के बीच से होकर हुआ जान पड़ता है। इसी पथ में पड़नेवाले तारों के अलग दल बाँधकर एक एक तारकपुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है। इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में होकर नक्षत्र चक्र कहलाता है। नीचे तारों की संख्या प्राकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं—

नक्षत्र	तारासंख्या	प्राकृति और
अश्विनी	३	घोड़ा
भरणी	३	त्रिकोण
कृत्तिका	६	अग्निशिखा
रोहिणी	५	गाड़ी
मृगशिरा	३	हरिणमस्तक वा विडालपद
आर्द्रा	१	उज्ज्वल
पुष्यसु	५ या ६	धनुष या घर
पुष्य	१ वा ३	मासिक्य वर्ण
अश्लेषा	५	कुत्ते की पूँछ वा कुलालचक्र
मघा	५	हल
पूर्वाषाढा	२	खट्वाकार ×
उत्तराषाढा	२	उत्तर दक्षिण शय्याकार ×
हस्त	५	उत्तर दक्षिण हाथ का पंजा
चित्रा	१	मुक्तावत् उज्ज्वल
स्वाती	१	कृकृम वर्ण
विशाखा	५ व ६	तीरण या माला
अनुराधा	७	सूप या जलधारा
ज्येष्ठा	३	सर्प या कुडल
मूल	६ या ११	शस्त्र या सिंह की पंजा
पूर्वाषाढा	४	सूप या होथी का दाँत
उत्तराषाढा	४	सूप
श्रवण	३	वाण या त्रिशूल
धनिष्ठा	५	मर्दल बाजा
शतभिषा	१००	मण्डलाकार
पूर्वभाद्रपद	२	भारवत् या
उत्तरभाद्रपद	२	दो मस्तक
रेवती	३२	मछली या मृदग

इन २७ नक्षत्रों के अतिरिक्त अभिजित् नाम का एक और पहले माना जाता था पर वह पूर्वाषाढा के भीतर ही जाता है, इससे अब २७ ही नक्षत्र गिने जाते हैं। नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रखे गए हैं। महीने की पूर्णिमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्तिक की पूर्णिमा को चंद्रमा कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पर रहेगा,

की पूर्णिमा को मृगशिरा वा आर्द्रा पर, इसी प्रकार और समझिए ।

जिस प्रकार चंद्रमा के पथ का विभाग किया गया है उसी प्रकार उस पथ का विभाग भी हुआ है जिसे सूर्य १२ महीनों में पूरा करता हुआ जान पड़ता है । इस पथ के १२ विभाग किए गए हैं जिन्हें राशि कहते हैं । जिन तारों के बीच से होकर चंद्रमा घूमता है उन्हीं पर से होकर सूर्य भी गमन करता हुआ जान पड़ता है, खचक्र एक ही है, विभाग में भिन्न है । राशिचक्र के विभाग बड़े हैं जिनमें से किसी किसी के अंतर्गत तीन तीन नक्षत्र तक आ जाते हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि यह राशि-विभाग पहले पहल मिस्रवालों ने किया जिसे यवन लोगों (यूनानियों) ने लेकर और और स्थानों में फैलाया ।

पश्चिमी ज्योतिषियों ने जब देखा कि बारह राशियों से सारे अंतरिक्ष के तारों और नक्षत्रों का निर्देश नहीं होता है तब उन्होंने और बहुत सी राशियों के नाम रखे । इस प्रकार राशियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती गई । पर भारतीय ज्योतिषियों ने खगोल के उत्तर और दक्षिण खंड में जो तारे हैं उन्हें नक्षत्रों में बाँधकर निर्दिष्ट नहीं किया । नक्षत्र या तारे ग्रहों की तरह छोटे छोटे पिंड नहीं हैं, वे बड़े बड़े सूर्य हैं जो हमारे इस सूर्य से बहुत दूरी पर हैं । इनकी संख्या अपरिमित है । वर्तमान काल के युरोपीय ज्योतिषियों ने बड़ी बड़ी दूरबीनों आदि की सहायता से खगोल का बहुत अनुसंधान किया है । उन्होंने तारों का वार्षिक सन्न (किसी नक्षत्र से एक रेखा सूर्य तक और दूसरी पृथ्वी तक खींचने से जो कोण बनाता है उसे उस नक्षत्र का लम्बन कहते हैं) निकालकर, उनकी दूरी निश्चित करने में बड़ा उद्योग किया है । यदि किसी नक्षत्र का यह कोण एक सेकंड है तो समझना चाहिए कि उसकी दूरी सूर्य की दूरी की अपेक्षा २०६०० गुनी अधिक है । कोई नक्षत्र कम दूरी पर है, कोई अधिक, जैसे स्वाती, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्र रविमार्ग से बहुत दूर हैं और रोहिणी, पुष्य और चित्रा उनकी अपेक्षा निकट हैं । जो तारे ध्रुवों की अपेक्षा निकट हैं उनके प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में तीन साढ़े तीन वर्ष लग जाते हैं, दूरवालों का प्रकाश तीन तीन चार चार सौ वर्ष में पहुँचता है । प्रकाश की गति एक सेकंड में १८६००० मील ठहराई गई है । इसी से इनकी दूरी का अंदाजा हो सकता है ।

२ तारा । तारक (को०) । ३ मोती (को०) । ४ वह हार जिसमें २७ मोती गुंहे गए हों (को०) ।

नक्षत्रकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का एक परिशिष्ट जिसमें चंद्रमा की स्थिति आदि का वर्णन है ।

नक्षत्रक्रांतिविस्तार—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रक्रान्तिविस्तार] सफेद ज्वार । ज्वार या यावनाल का सफेद गुच्छा ।

नक्षत्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों का मलग मलग समूह या गण ।

विशेष—वृहत्संहिता में लिखा है कि रोहिणी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद और उत्तरफाल्गुनी इन चारों नक्षत्रों को

द्रुवगण कहते हैं । द्रुवगण में अभिचक्र, शान्ति, धूम्र, नगर धर्म, बीज और द्रुव कार्य का आरम्भ करना उचित है । मूल आर्द्रा, ज्येष्ठा और आश्लेषा के स्वामी तीक्ष्ण हैं इसलिये इनके समूह को तीक्ष्णगण कहते हैं । इनमें अभिघात, मन्त्रसाधन, वेताल, वध वध, और भेद सबंधी कार्य सिद्ध होते हैं । पूर्वाषाढा, पूर्वफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, भरणी और मघा ये पाँचो नक्षत्र उग्रगण कहलाते हैं, उजाड़ने, नष्ट करने, शठता करने, बधन, विष, दहन और शस्त्राघात आदि की सिद्धि के लिये इस गण के नक्षत्र बहुत उपयुक्त हैं । हस्त, अश्विनी और पुष्य के समूह को लघुगण कहते हैं, इसमें पुण्य, रति, ज्ञान, भूषण, कला, शिल्प आदि के कार्य की सिद्धि होती है । अनुराधा, चित्रा, मृगशिरा और रेवती को मृदुगण कहते हैं और ये वस्त्र, भूषण, मंगल गीत और मित्र आदि के सबंध में हितकारी और उपयुक्त हैं । विशाखा और कृत्तिका को मृदुतीक्ष्णगण कहते हैं, इनका फल मृदु और तीक्ष्ण गणों के फल का मिश्रण होता है । श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति ये पाँचों 'चरगण' कहलाते हैं, और इनमें चरकर्म हितकारी होता है ।

नक्षत्रचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तांत्रिकों के अनेक चक्रों में से एक ।

विशेष—इसके अनुसार दीक्षा के समय नक्षत्रों आदि के विचार से गुरु यह निश्चय करता है कि शिष्य को कौन सा मन्त्र दिया जाय ।

२. राशिचक्र ।

नक्षत्रचिन्तामणि—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रचिन्तामणि] एक प्रकार का कल्पित रत्न ।

विशेष—इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उससे जो कुछ माँगा जाय वह मिलता है ।

नक्षत्रदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो नक्षत्र देखता हो । २. ज्योतिषी ।

नक्षत्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न पदार्थों का दान ।

विशेष—जैसे, रोहिणी नक्षत्र में घी, दूध और रत्न, मृगशिरा नक्षत्र में बछड़े सहित गौ, आर्द्रा में खिचड़ी, हस्त में हाथी और रथ, अनुराधा में उत्तरीय सहित वस्त्र, पूर्वाषाढा में बरतन समेत दही और साना हुआ सलू, रेवती में काँसा, उत्तराभाद्रपद में मांस आदि । इस प्रकार के दान से बहुत अधिक पुण्य होता है और स्वर्ग मिलता है ।

नक्षत्रनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

विशेष—पुराणानुसार दक्ष की अश्विनी आदि सत्ताईस (नक्षत्रों) कन्याओं का विवाह चंद्रमा के साथ हुआ था, इसलिये चंद्रमा को नक्षत्रनाथ कहते हैं ।

नक्षत्रनेमि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का एक नाम । २ चंद्रमा ।

३. द्रुवतारा [को०] ।

नक्षत्रनेमि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेवती नामक नक्षत्र [को०] ।

नक्षत्रप—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

नक्षत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

नक्षत्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ नक्षत्रों के चलने का मार्ग । २ तारों भरा आकाश (को०) ।

नक्षत्रपदयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार का योग जो उस समय होता है जब सूर्य जन्म-राशि से छठे स्थान में अथवा रेष राशि में हो और चंद्रमा वृष राशि में हो ।

विशेष—कहते हैं, इस योग में यदि राजा युद्ध के लिये यात्रा करे तो वह अपने शत्रु को उसी प्रकार परास्त कर सकता है जिस प्रकार हवा बादलों को उड़ा देती है ।

नक्षत्रपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी (को०) ।

नक्षत्रपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पुरुष जिसकी कल्पना भिन्न भिन्न नक्षत्रों को उसके भिन्न भिन्न अंग मानकर की जाती है ।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि मूल नक्षत्र को नक्षत्रपुरुष के पाँच, रोहिणी और अश्विनी को जाँघ, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा को उर, उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी को गुह्य, कृत्तिका को कमर, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वाभाद्रपदा को पाश्वर्य, रेवती को कोल, अनुराधा को छाती, धनिष्ठा को पीठ, विशाखा को बाँह, हस्त को कर, पुनर्वसु को उँगलियाँ, अश्लेषा को नाखून, ज्येष्ठा को गरदन, श्रवण को कान, पुष्य को मुख, स्वाति को दाँत, शतभिषा को हास्य, मघा को नाक, मृगशिरा को आँख, चित्रा को सलाह, भरणी को सिर और आर्द्रा को बाल मानकर नक्षत्रपुरुष की कल्पना करनी चाहिए । वामन पुराण के अनुसार इसका व्रत सुदरता प्राप्त करने के उद्देश्य से चैत्र के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को, जब चंद्रमा मूल-नक्षत्रयुक्त हो, किया जाता है । व्रत के दिन विष्णु और नक्षत्रों की पूजा करके दिन भर उपवास करना चाहिए । नक्षत्रपुरुष के परोवाले नक्षत्र से आरंभ करके प्रतिमास हर एक अंग के नक्षत्र के नाम से भी व्रत करने का विधान है ।

नक्षत्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नक्षत्र के रहने का समय ।
- नक्षत्रकाल ।

नक्षत्रमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह हार जिसमें सत्ताईस मोती हो । २ तारक समूह (को०) । ३ चंद्रमा के मार्ग के नक्षत्रों की स्थिति । ४. हार जो हाथियों को पहनाया जाता है (को०) ।

नक्षत्रमालिनी^१—वि० [सं० नक्षत्र + मालिनी] नक्षत्रों की माला-वाली । उ०—नक्षत्रमालिनी प्रकृति ह्रीरे नीलम से जड़ी पुतली के समान उसकी आँखों का खेल बन गई ।—आकाश०, पृ० १०१ ।

नक्षत्रमालिनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलोंवाली एक सत्ता का नाम । जाती (को०) ।

नक्षत्रयाजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो ग्रहों और नक्षत्रों आदि के दोषों की क्षति कराता हो ।

विशेष—महाभारत के अनुसार ऐसा ब्राह्मण निकृष्ट और चांडाल के समान होता है ।

नक्षत्रयोग—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों के साथ ग्रहों का योग ।

नक्षत्रयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जो विवाह के निषिद्ध हो ।

नक्षत्रराज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों के स्वामी, चंद्रमा ।

नक्षत्रलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह लोक जिसमें नक्षत्र यह लोक चंद्रलोक से ऊपर माना जाता है ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि जब दक्ष कन्या ने के लिये कठिन तपस्या की थी तब उन्होंने प्रसन्न होकर ज्योतिषचक्र में चंद्रलोक से ऊपर एक स्वतंत्र लोक में का वर दिया था ।

नक्षत्रवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रवर्त्मन्] आकाश (को०) ।

नक्षत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या (को०) ।

नक्षत्रवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में गति के अनुसार तीन नक्षत्रों के बीच का कल्पित मार्ग ।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों में एक होती है । स्वाति, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि । रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में गजवीथि, पुनर्वसु, और अश्लेषा में ऐरावत; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और च. ल्गुनी में वृषभ, अश्विनी, रेवती और पूर्वा एवं उत्तरा में गोवीथि, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में ज. अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में मृगवीथि, हस्त, विशाखा चित्रा में अजावीथि, तथा पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में वीथि । इस प्रकार २७ नक्षत्रों में ६ वीथियाँ होने पर वीथि तीन बार होती है अतः इनमें तीन तीन सूर्यमार्ग के उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं । फिर भी प्रत्येक यथाक्रम उत्तर, मध्य और दक्षिण होती जैसे, तीन नागवीथियाँ हैं, उनमें से प्रथम २१. दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमार्गस्था हुई । इन का विचार फलित में होता है—जैसे, शुक्र जिस समय ७ वीथि में होकर उदित वा अस्त होता है उस समय सुभिक्ष मंगल होता है, मध्यवीथि में होने से मध्यफल और वीथि में होने से मदफल होता है ।

नक्षत्रवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा दूटना । उत्कापात होना ।

नक्षत्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह चक्र विखलाया जाता है कि किन किन पदार्थों और जातियों का स्वामी कौन नक्षत्र है ।

विशेष—बृहत्संहिता के १५वें अध्याय में लिखा है फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, भूत की भाषा खान में काम करनेवाले, हज्जाम, द्विज, कुम्हार, और वर्षफल आवेनेवाले कृत्तिका नक्षत्र के अधीन हैं । पुण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गौ, बैल, किसान, और पर्वत रोहिणी के अधिकार में हैं । कुसुम, फल, रत्न, वनचर, पक्षी, भृग, यज्ञ में

करनेवाले, गंधर्व, कामी और पत्रशाहक मृगशिरा के अधिकार में हैं। वध, वध, परदारहरण, शठता और भेद करनेवाले मारुति के अधिकार में हैं। इसी प्रकार और भी भिन्न भिन्न पदार्थों आदि के सबंध में यह बतलाया है कि वे किस नक्षत्र के अधिकार में हैं।

नक्षत्रव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह व्रत जो किसी विशिष्ट नक्षत्र के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष—जिस नक्षत्र के उद्देश्य से व्रत किया जाता है, व्रत के दिन उस नक्षत्र के स्वामी देवता का पूजन भी किया जाता है।

नक्षत्रशूल—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में काल का वह वास जो किसी विशिष्ट दिशा में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने के कारण माना जाता है।

विशेष—यदि पूर्व दिशा में श्रवण या ज्येष्ठा, दक्षिण में अश्विनी या उत्तराभाद्रपद, पश्चिम में रोहिणी या पुष्य और उत्तर में उत्तर फाल्गुनी या हस्त नक्षत्र हों तो उस दिशा में यात्रा आदि के लिये, नक्षत्रशूल माना जाता है।

नक्षत्रसन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० नक्षत्रसन्धि] चंद्रमा आदि ग्रहों का पूर्व नक्षत्र मास में से उत्तर नक्षत्र में सक्रमण।

नक्षत्रसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक विशेष प्रकार का यज्ञ जो नक्षत्रों के निमित्त किया जाता है।

विशेष—यह यज्ञ नक्षत्रमास के अनुसार होता है।

नक्षत्रसाधक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

नक्षत्रसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह गणना जिसके अनुसार यह जाना जाता है कि किस नक्षत्र पर कौन सा ग्रह कितने समय तक रहता है।

नक्षत्रसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्योतिषी जो स्वयं आरी गणना आदि न कर सकता हो, केवल दूसरों के मत के अनुसार ज्योतिष सबंधी साधारण काम करता हो।

नक्षत्रसूची—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रसूचिन्] दे० 'नक्षत्रसूचक'।

नक्षत्रामृत—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में यात्रा आदि कार्यों के लिये एक बहुत ही उत्तम योग।

विशेष—यह किसी विशिष्ट दिन में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने पर माना जाता है। जैसे, रविवार को हस्त, पुष्य, रोहिणी या मूल आदि नक्षत्रों का होना, सोमवार को श्रवण, अनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, अश्विनी या हस्त आदि का होना, मंगलवार को रेवती, पुष्य, आश्लेषा, कुत्तिका या स्वाती आदि का होना, आदि आदि। ऐसे योग में व्यतीपात आदि के दोषों का नाश हो जाता है।

नक्षत्रिद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता जिनका नक्षत्रों में रहना माना जाता है।

नक्षत्रिय—वि० [सं०] १ नक्षत्र से सबंध रखनेवाला। २. क्षत्रिय से भिन्न। ३ सत्ताईस।

नक्षत्री—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रिन्] १. चंद्रमा। २. विष्णु।

नक्षत्री—वि० [सं० नक्षत्र + ई (प्रत्य०)] जिसका जन्म नक्षत्र में हुआ हो। भाग्यवान्। खुशकिस्मत।

नक्षत्रेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २ कपूर।

नक्षत्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

नक्षत्रेष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नक्षत्रों के उद्देश्य से किया जाय।

नक्सगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नक्श गीरी] धातु या पत्थर पर चित्र या बेल बूटे बनाने का काम। उ०—जड़े पाथरी नक्सगीरी करावे।—घरनी०, पृ० ६।

नख—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ या पैर का नाखून।

विशेष—दे० 'नाखून'।

पर्या०—पुनर्भव। करवह। नखर। कामाकुश। करज। पाणिष। कराग्रज। करकंटक। स्मराकुश। रतिपय। करचद्र। कराकुश।

२. एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जो सीप या घोंघे आदि की जाति के एक प्रकार के जानवर के मुँह का ऊपरी आवरण या ढकना होता है।

विशेष—इसका आकार नाखून के समान चंद्राकार या कभी कभी बिलकुल गोल भी होता है। यह छोटा, बड़ा, सफेद, नीला कई प्रकार और रंग का होता है, जिनमें से छोटा और सफेद रंग का अच्छा माना जाता है। छोटे को वैद्यक ग्रंथों में **सुर**-नखी और बड़े को शखनखी, व्याघ्रनखी, वृहन्नखी कहते हैं। किसी किसी का आकार घोड़े के सुम या हाथी के कान के समान भी होता है। इसे जलाने से बदबू निकलती है, पर तेल में डालने से खुशबू निकलती है। इसका व्यवहार दवा के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह हलका, गरम, स्वादिष्ट, शुक्र-वर्धक और व्रण, विष, प्रलेप्ता, वात, ज्वर, कुष्ठ और मुख की दुर्गंध दूर करनेवाला है।

३ खड। टुकड़ा। ४ बीस की संख्या (को०)। ५ मलीब। नपु सक (को०)।

नख—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नख] १ एक प्रकार का बड़ा हुमा महीन रेशमी तागा जिससे गुठ्ठी उड़ाते और कपड़ा सीते हैं। २ गुठ्ठी उड़ाने के लिये वह पतला तागा जिसपर माँझा दिया जाता है। डोर।

नखकर्तनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाखून काटने का औजार। नहरनी।

नखकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] हज्राम। नार्ड।

नखक्षत—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दाग या चिह्न जो नाखून के गडने के कारण बना हो। २. स्त्री के शरीर पर का, विशेषतः स्तन आदि पर का, वह चिह्न जो पुष्प के मर्दन आदि के कारण उसके नाखूनों से बन जाता है।

नखखादी—संज्ञा पुं० [नखखादिन्] वह जो दाँतों से अपने नाखून कुतरता हो।

विशेष—मनु के अनुसार ऐसे मनुष्य का बहुत जल्दी नाश हो जाता है।

नखगुच्छफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सेम ।

नखचारी—संज्ञा पुं० [सं० नखचारिन्] पंजे के बल चलनेवाला जीव ।

नखच्छत०—संज्ञा पुं० [सं० नखक्षत] दे० 'नखक्षत' ।

नखछोलिया०—संज्ञा पुं० [सं० नख+हि० छोलना] दे० 'नखक्षत' ।

नखजाह—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून का पिछला भाग । नखमूल ।

नखत०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्र] दे० 'नखत्र' ।

नखतपति०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रपति] दे० 'नखत्रपति' । उ०—
जिमि फारि महातम निकर की निकरत नम में नखतपति ।—
पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६४ ।

नखतर०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्र] दे० 'नखत्र' ।

नखतराज०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रराज] चंद्रमा ।

नखतराय—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रराज] दे० 'नखतराज' ।

नखता—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की बिड़िया जो भारत के सिवा
भोर कहीं नहीं होती ।

विशेष—यह बरसात के प्रारंभ में दिन भर उड़ा करती है और
भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न स्थानों पर रहती है । यह
कीड़े मकोड़े और फल आदि खाती है और पाली भी जा
सकती है ।

नखताली०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रावली] नखत्रपति । नखत्रसमूह ।
उ०—सरसी गभीर और हंसनि की जासु तीर तहाँ उदय हूँ
रहूँ विचित्र नखताली री ।—दीन० ग्रं०, पृ० ८ ।

नखदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नखक्षत' । उ०—श्यामा का नखदान
मनोहर मुक्ताओं से प्रयित रहा ।—स्कंद०, पृ० १६ ।

नखदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नहरनी । २. बाज । श्वेत
पक्षी (को०) ।

नखतेश०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रेश] दे० 'नखत्रेश' ।

नखत्र०—संज्ञा पुं० [सं० नखत्र] दे० 'नखत्र' ।

नखना^१—क्रि० प्र० [हि० नाखना] उल्लंघन होना । ठाँका जाना ।

नखना^२—क्रि० स० उल्लंघन करना । पार करना । उ०—मानहि
मान ते मानिन केशव मानस ते कुछ मान टरेगो । मान है री
सु जु माने नहीं परिमान नखे अभिमान भरेगो ।—केशव
(शब्द०) ।

नखना^३—क्रि० स० [सं० नष्ट] नष्ट करना । उ०—जो लो इह
तन प्रान पठान न रक्खिहो । मऊ फरक्काबाद खोदि क
नक्खिहो ।—सूदन (शब्द०) ।

नखनिष्याध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सेम ।

नखपद—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून घँसने से बना चिह्न । नखक्षत (को०) ।

नखपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिछुवा घास ।

नखपुजफला—संज्ञा स्त्री० [सं० नखपुञ्जफला] सफेद सेम ।

नखपुष्पो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पा या प्रसवरग नाम का गधद्रव्य ।

नखपूर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरी सेम ।

नखफलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम (को०) ।

नखवान०—संज्ञा पुं० [सं० नख] नख । नाखून । उ०—सेज
मिलत सामी कहूँ लावे उर नखवान । जेहि गुन सबै सिध
सो सखिनि, सुलतान ।—जायसी (शब्द०) ।

नखबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० नखबिन्दु] दे० 'नखबिंदु' (को०) ।

नखमुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोजी का पेड़ । २. घनुष (को०) ।

नखरंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नखरञ्जनी] नहरनी ।

नखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नख । नाखून । २. प्राचीन काल
एक मन्त्र ।

नखरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नखरह] १. वह पुलबुलापन, चेष्टा
चंचलता आदि जो खानी की उमग में प्रयत्न प्रिय
रिश्ताने के लिये की जाती है । चोचला । नाज । हाव भाव
जैसे,—उसे बहुत नखरा आता है ।

यौ०—नखरातिल्ला । नखरेबाज ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखाना ।—निकालना ।

मुहा०—नखरा बघारना = नखरा करना ।

२. साधारण चंचलता या पुलबुलापन । बनावटी चेष्टा । ३.
बनावटी इनकार । जैसे,—(क) जब कहीं चलने का
होता है तब तुम एक न एक नखरा निकाल बैठते हो
(ख) ये सब इनके नखरे हैं, ये करेंगे वही जो तुम कहोगे ।

नखरातिल्ला—संज्ञा पुं० [फ्रा० नखरा+हि० तिल्ला (प्रत्य०)]
नखरा । चोचला । नाज ।

नखरायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. शेर । २. चीता । ३. कुत्ता ।
मुरगा (को०) ।

नखराह—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़ ।

नखरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख वाम का गधद्रव्य ।

नखरीला—वि० [फ्रा० नखरा+हि० ईला (प्रत्य०)] चोचलेबाज
नखरा करनेवाला ।

नखरेख०—संज्ञा स्त्री० [सं० नख+रेखा] शरीर में खगा हुआ
नखो का चिह्न जो समोग का चिह्न माना जाता है । नखरोट
उ०—मरकत भाजन सलिलगत इदुकला के बेख । भीन
में भलमले स्यामगात नखरेख ।—बिहारी (शब्द०) ।

नखरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नखक्षत । नाखून का दाग । २.
कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो बादलों की माता थी । उ
दारा से तृणपुष्प जोन लागत पर काजे । नखरेखा सुत
कोटि छप्पन उपराजे ।—विश्राम (शब्द०) ।

नखरेबाज—वि० [फ्रा० नखरह+बाज] जो बहुत नखरा
हो । नखरा करनेवाला ।

नखरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नखरह+बाजी (प्रत्य०)]
करने की क्रिया या भाव ।

नखरौट—संज्ञा स्त्री० [सं० नख+हि० खरोट] नाखून की खरोट
शरीर पर का वह निशान जो नाखून घुमाने से होता है ।

नखबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० नखबिन्दु] वह गोल या चक्राकार
जो स्त्रियाँ नाखून के ऊपर मेहदी या महावर से बनाती हैं

उ०—जागत अनेक तमिं जावक को विदु भी अनेक नखविदुन की कला सरसत है ।—चरण (शब्द०) ।

नखविष—सङ्घा पुं० [सं०] वह जिसके नाखूनों में विष हो । जैसे, मनुष्य, बिल्ली, कुत्ता, बदर, मगर, मेंढक गोह, छिपकली आदि ।

नखचिह्निकर—सङ्घा पुं० [सं०] वह जानवर जो अपने शिकार को नाखून से काटकर खाता हो । जैसे, शेर, बाज आदि ।

विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार ऐसे जानवरों का मांस नहीं खाना चाहिए ।

नखवृक्ष—सङ्घा पुं० [सं०] नील का पेड़ ।

नखव्रण—सङ्घा पुं० [सं०] नाखून से बनी खरोंच । नखक्षत ।

नखशख—सङ्घा पुं० [सं० नखशङ्ख] छोटा शङ्ख ।

नखशस्त्र—सङ्घा पुं० [सं०] नहरनी ।

नखशिख^१—सङ्घा पुं० [सं०] १. नख से लेकर शिख तक के सब भग ।

मुहा०—नखशिख से सिर से पैर तक । ऊपर से नीचे तक ।

जैसे,—वह नखशिख से दुस्त है ।

२ वह काव्य जिसमें किसी देवता या नायक नायिका के सभी भगों का वर्णन हो ।

नखशिख^२—क्रि० वि० प्रभुत्वचन । पूर्णतया । उ०—विश्व सम्पत्ता का होना या नखशिख नव रूपांतर ।—प्राप्त्या, पु० ५२ ।

नखशूल—सङ्घा पुं० [सं०] नाखून का वह रोग जिसमें उसके आस पास या जड़ में पीड़ा होती है ।

नखसिख^३—सङ्घा पुं० [सं० नखशिख] दे० 'नखशिख' । उ०—नख सिख से रवि नैन वासिका, इष्ट बनाया को । उसी को खोज करो बासा ।—धरम०, पु० ५७ ।

नखहरणी—सङ्घा स्त्री० [सं०] नहरनी ।

नखाक—सङ्घा पुं० [सं० नखाङ्क] १ व्याघ्रनखी । व्याघ्रनख । विशेष—दे० 'नख' । २ नाखून गठने का चिह्न ।

नखांग—सङ्घा पुं० [सं० नखाङ्ग] १ नख नामक गधद्रव्य । २. नखिका या नली नामक गधद्रव्य ।

नखाघात—सङ्घा स्त्री० [सं०] नाखून का घात । नखक्षत ।

नखानखि—सङ्घा स्त्री० [सं०] ऐसी लड़ाई जिसमें दोनों दल परस्पर नाखून का प्रयोग करें ।

नखायुध—सङ्घा पुं० [सं०] १. शेर । २. चीता । ३. कुत्ता । ४. मुरगा (को०) ।

नखारि—सङ्घा पुं० [सं०] सिध के एक अनुचर का नाम ।

नखास्त्रि—सङ्घा पुं० [सं०] छोटा शङ्ख ।

नखालु—सङ्घा पुं० [सं०] नील वृक्ष । नील का पेड़ ।

नखाशी^१—सङ्घा पुं० [सं० नखाशान्] उल्लू ।

नखाशी^२—वि० जो नाखूनों की सहायता से खाता हो ।

नखास—सङ्घा पुं० [सं० नखास] १ वह बाजार जिसमें पशु, विशेषत घड़े बिकते हैं । २. साधारणतः कोई बाजार ।

मुहा०—नखास पर भोजना या चढ़ाना = बेचने के लिये बाजार भोजना । नखास की घोड़ी या नखासवानी = कसब कमाने-वाली स्त्री । खानगी । (बाजार) ।

नखियाना^४—क्रि० स० [सं० नख + इयाना (प्रत्य०)] नाखून गठाना या नाखून से खरोंचना ।

नखी^१—सङ्घा पुं० [सं० नखिन्] १. शेर । २. चीता । ३. वह जानवर जो नाखून से किसी पदार्थ को चीर या काट सकता हो । ४. बड़े हुए नाखूनवाला । उ०—लाखों मीनी फिर लाखों बाघबरी । उर्ध्वमुखी भी नखी लाखों सोह लगरी । लाखों जल में पड़े (लाखों) घूरि की छानतें । भरे हैं पलटू जामें राजी राम भी कोउ नहि जानते ।—पलटू०, भा० २, पु० ६२ ।

नखी^२—सङ्घा स्त्री० [सं०] नख नामक गधद्रव्य ।

नखेदा^३—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'निपेध' । उ०—ग्रह्या हाय चार छिय वेदा । तीन लोक महुं करत नखेदा ।—कवीर सा०, पु० २४८ ।

नखोटना^४—क्रि० स० [सं० नख + ओटना (प्रत्य०)] नाखून से खरोचना या नोचना । उ०—कान्हू बलि जाउं ऐसी मारि न कोलै । बरजत बरजत बिरुझने । करि क्रोध मनहि प्रकुलाने । घरत घरणि पर लोटे । माता की चीर नखोटे । भोग भ्रातृपण सब तोरे । लवनी दधि भाजन फोरे ।—सूर (शब्द०) ।

नखोरा^१—सङ्घा पुं० [हि०] निमोना । हरी मटर आदि से बनाया गया सालन ।

नखास—सङ्घा पुं० [सं० नखास] दे० 'नखास' ।

नग^१—वि० [सं०] १ न गमन करनेवाला । न चलने फिरने-वाला । अचल । स्थिर ।

नग^२—सङ्घा पुं० १ पर्वत । पहाड़ । २. पेड़ । वृक्ष । ३. साल की सख्या । ४. सपं । साप । ५. सूर्य । ६. कोई वनस्पति (को०) ।

नग^३—सङ्घा पुं० [फा० नगीना, सं० नग] १ शीशे या पत्थर आदि का रंगीन बढ़िया टुकड़ा जो प्रायः भंगूठियों आदि में बड़ा जाता है । नगीना ।

मुहा०—नग बँठाना = नग जड़ना ।

२ अदत । सख्या । जैसे, पाँच नग लोटा ।

नगवाना^४—क्रि० प्र० [हि० नगीच से नामिक धातु] दे० 'नगिचाना' ।

नगज^१—सङ्घा पुं० [सं०] हाथी ।

नगज^२—वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हो ।

नगजा—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ पार्वती । २ पाषाणभेदा सता । पत्थानभेद ।

नगण—सङ्घा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र में तीन लघु भस्वरों का एक गण (॥) । जैसे, कमल, मदन, चरण, क्षरण, समर वयस आदि ।

विशेष—इस गण से छंद का आरंभ करना शुभ माना जाता है।
नगण—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

नगण्य—वि० [सं०] जो गणना करने के योग्य न हो। बहुत ही साधारण या ग़या बीता। तुच्छ। जैसे,—इस विषय पर केवल एक ही पुस्तक मिली, परन्तु वह भी नगण्य ही है।

नगदंती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नगदन्ती] विभीषण की स्त्री का नाम।
उ०—नगदंती केहरि मुख जाई। सो बल्लभा विभीषण पाई।
—विश्राम (शब्द०)।

नगद^१—सञ्ज्ञा पुं० [घ० नकद] दे० 'नकद'।

नगद^२—वि० १ तैयार (रूपया)। २ खास। उ०—हरीचंद नगद दमाद भ्रमिमानी के।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

नगद^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नागदमनी] नागदमनी।

नगदनारायण—सञ्ज्ञा पुं० [घ० नकद + सं० नारायण] द्रव्य। रूपया पैसा।

नगदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [घ० नकद + फा० ई (प्रत्यय०)] दे० 'नकदी'।

नगधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पर्वत के धारण करनेवाले, श्रीकृष्णचंद्र। गिरिधर। उ०—कहा कहों अंग घंग की सोभा नगधर पिय सों तू अनुगंगी—छोत०, पृ० ७१।

नगधरन०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नगधारण] दे० 'नगधर'।

नगनंदिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नगनन्दिनी] पार्वती जो हिमालय की कन्या मानी जाती है।

नगन०—वि० [सं० नग] १ जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। २ जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो।

नगनदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी जो किसी पहाड़ से निकली हो।

नगना०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नग्ना] दे० 'नग्ना'।

नगनिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] १ संगीत में सकीर्ण राग का एक भेद। २. श्रीहा नामक वृत्त का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक यगण और एक गुरु होता है। उ०—उगै चारो। हरी तारो। करौ श्रीहा। रखी बीड़ा (शब्द०)।

नगनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नग्ना] १ वह कन्या जो रजोधर्म की प्राप्ति न हुई हो। वह कन्या जिसके स्तन न उठे हो और जो अपना ऊपरी शरीर खोले धूम फिर सकती हो। २. कन्या। पुत्री। बेटा। उ०—अपि तनया कह्यो मोहि विवाहि। कब कह्यो तू गुरु नगनी चाहि।—सूर (शब्द०)। ३. नगी स्त्री।

नगन्निकाछंद—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नगनिका + छंद] दे० 'नगनिका'।

नगपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हिमालय पर्वत। २ चंद्रमा (वृक्ष, वनस्पति, मोषधि के स्वामी होने से)। ३ कैलाश के स्वामी, शिव। ४ सुमेरु। उ०—चतुरानन बल संभारि मेघनाब आयो। मानो घन पावस मे नगपति है छायो—सूर (शब्द०)।

नगपेच०—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] मिर या कपाल का एक गहना। उ०—किय सेखर सतचंद जटित नगपेच बिंब परि। स्वाम सचिक्कन चिकुर आभ सों स्यम भए घिरि।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ३३३।

नगफँगी—वि० [?] नटखट। शरीर। उ०—हो भले नगफँग गढ़ीबै अब ए गढ़न महिर मुख जोए।—तुलसी (शब्द०)।

नगभिद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पखानभेद लता। २. प्राचीन काल पत्थर तोड़ने का एक प्रकार का यंत्र। ३. इद्र।

विशेष—पुराणानुसार इद्र ने पहाड़ों के पर काटे थे, इसी उनका यह नाम पड़ा।

नगभू^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छोटी पखानभेद लता। २ पहाड़ी जमीन नगभू^२—वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हुआ हो।

नगमा—सञ्ज्ञा पुं० [घ० नगमह] १ मधुर स्वर। २ गीत गाना। ३. राग। उ०—कोकिलो, तुमको नई ऋतु के न नगमे मुधारक।—मिलन०, पृ० १२८।

नगमासंज—वि० [घ० नगमह + फा० संज] गाना गानेवाला [को०]

नगमासजो—सञ्ज्ञा स्त्री० [घ० नगमह + फा० संज + ई (प्रत्यय०)] गाना। गीत [को०]।

नगमूर्धा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नगमूर्धन्] पर्वत का शिखर। चोटी [को०]

नगरंघ्रकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नगरन्ध्रकर] कार्तिकेय का एक नाम।

नगवाहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

नगर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो गाँव या क़ादिस से बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशों लोग रहते हैं। शहर।

विशेष—हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस स्थान पर बहुत सी जातियों के अनेक व्यापारी और कारीगर रहें हैं और प्रधान न्यायालय हो, उसे नगर कहते हैं। युक्तिकाल तक नामक ग्रंथ में लिखा है कि राजा को शुभ मूर्हत में लंबा चौकोर, तिकोना या गोल नगर बसाना चाहिए। इसमें तिकोना और गोल नगर बुरा समझा जाता है। लंबा नग बहुत ही शुभ और स्थायी तथा चौकोर नगर चारों प्रकार फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का देनेवाला माना जाता है। पर्या०—पुर। पुरी। नगरी। पत्तन। पट्टन। पटभेदन। निगम कटक। स्थानीय। पट्ट।

यौ०—राजनगर। नगरवसेरा। नगरनारि। नगरकीर्त आदि।

नगरकाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीच या कुटिल व्यक्ति [को०]।

नगरकीर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह गाना बजाना या कीर्तन, विशेष ईश्वर के नाम का भजन या कीर्तन, जिसे नगर की शक्ति और सड़कों में धूम धूमकर कुछ खोग करें।

नगरघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हत्या।

नगरतीर्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गुजरात प्रांत का एक प्राचीन तीर्थ जहाँ किसी समय शिव का निवास माना जाता था।

नगरनायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नगर + नायिका] वेश्या। रंडी।

नगरनारि०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नगरनारी] वेश्या।

नगरनारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रंडी। वेश्या।

नगरपाल—सङ्घा पुं० [सं०] वह जिसका काम सब प्रकार के उपद्रवों आदि से नगर की रक्षा करना हो ।

नगरपालिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] नगर की व्यवस्था आदि करनेवाली संस्था । अ० म्युनिसिपैलिटी ।

नगरप्रदक्षिणा—सङ्घा स्त्री० [सं०] किसी मूर्ति के साथ नगर की परिक्रमा करना [को०] ।

नगरप्रात—सङ्घा पुं० [सं० नगरप्रान्त] नगर के समीप का भाग या भूमि [को०] ।

नगरमंडना—सङ्घा पुं० [सं० नगरमण्डना] वेश्या । रङ्गी ।

नगरमर्दी—सङ्घा पुं० [सं० नगरमर्दिन्] मस्त हाथी ।

नगरमार्ग—सङ्घा पुं० [सं०] शहर में का बड़ा और चौड़ा रास्ता । राजमार्ग ।

नगरमृत्ता—सङ्घा स्त्री० [सं०] नागरमोघा ।

नगररक्षी—सङ्घा पुं० [सं० नगररक्षिन्] शहर की रक्षा करनेवाला । शहर का पहरेदार ।

नगरवा—सङ्घा पुं० [सं०] ईश्वर की एक प्रकार की बोभाई जो मध्यप्रदेश के उन प्रांतों में होती है जहाँ की मिट्टी कासी या करैली होती है । पलवार ।

विशेष—इसमें खेतों के सींचने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि बारसात के बाद जब ईश्वर के अंकुर फूटते हैं तब जमीन पर इसलिये पतियाँ बिछा देते हैं जिसमें उसमें का पानी आप बिनकर उठ न जाय ।

नगरवासी—सङ्घा पुं० [सं० नगरवासिन्] नागरिक । शहर में रहनेवाला । पुरवासी ।

नगरविवाद—सङ्घा पुं० [सं० नगर+विवाद] दुनिया के झगड़े वखेड़े । उ०—घनमद जोवनमद राजमद भूल्यो नगर विवाद । —स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

नगरसेठ—सङ्घा पुं० [सं० नगर+हि० सेठ] नगर का प्रमुख धनपति या प्रधान व्यापारी । उ०—रूप नगर में बसत है नगरसेठ सुव नैन ।—स० सप्तक, पु० १८४ ।

नगरह्वा—सङ्घा पुं० [हि० नगर+ह्वा (प्रत्य०)] शहर में रहनेवाला । नागरिक ।

नगरहार—सङ्घा पुं० [सं०] प्राचीन भारत का एक नगर जो किसी समय वर्तमान जलालाबाद के निकट बसा था ।

विशेष—चीनी यात्री हुएनसांग ने अपनी यात्रा में इसका वर्णन किया है । उस समय यह नगर कपिला राज्य के अधीन था । किसी समय इस नाम का एक राज्य भी था जो उत्तर में काबुल नदी और दक्षिण में सफेद कोह तक था ।

नगरा^१—सङ्घा पुं० [हि०] देशी हल का वह भाग जिसमें हरोस, मुठिया और फाख लगा रहता है ।

नगरा^२—सङ्घा पुं० [सं० नगर+नि० घा (प्रत्य०)] छोटा गाँव ।

नगराई^३—सङ्घा स्त्री० [हि० नगर+आई (प्रत्य०)] १. नागरिकता । शहरातीपन । २. चतुराई । चालाकी । उ०—

सुरदास स्वामी रति नागर नागरि देखि गई नगराई । —सूर (शब्द०) ।

नगरादि, सन्निवेश—सङ्घा पुं० [सं०] नगर का स्थापन और निर्माण । शहर बनाना या बसाना ।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि शहर बसाने के लिये राजा को पहले एक या आधा योजन सबा सुंदर स्थान चुनना चाहिए और वानार आदि बनवाने चाहिए । नगर में अग्निकोण में सुनारों आदि के लिये, दक्षिण में नाचने गानेवालों और वेश्याओं आदि के लिये, नैऋत्य में नटों और केशवों आदि के लिये, पश्चिम में रथ और शस्त्र आदि बनानेवालों के लिये, वायुकोण में नौकर चाकरों और दासों आदि के लिये, उत्तर में ब्राह्मणों, यति और सिद्धों आदि के लिये, ईशान कोण में फल फलहरी और अन्न आदि बेचनेवालों के लिये और पूर्व में योद्धाओं आदि के रहने के लिये स्थान बनवाना चाहिए । इसके प्रतिरिक्त पूर्व में क्षत्रियों के लिये, दक्षिण में वैश्यों के लिये और पश्चिम में शूद्रों के लिये स्थान बनाना चाहिए, और नगर के चारों ओर सेना रखनी चाहिए । दक्षिण में श्मशान, पश्चिम में गोमों आदि के रहने और चरने आदि के लिये परती जमीन और उत्तर में खेत होने चाहिए । नगर में स्थान स्थान पर देवमंदिर होने चाहिए ।

नगराधिकृत—सङ्घा पुं० [सं०] नगररक्षको का प्रधान अधिकारी ।

नगराधिप—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'नगराध्यक्ष' ।

नगराध्यक्ष—सङ्घा पुं० [सं०] नगर का स्वामी या रक्षक । वह जिस पर नगर की रक्षा आदि का पूरा पूरा भार हो ।

विशेष—महाभारत से पता चलता है कि प्राचीन काल में राजा की ओर से शासन और न्याय आदि के कामों के लिये जो अधिकारी नियुक्त किया जाता था वह नगराध्यक्ष कहलाता था ।

नगराभ्याश, नगराभ्यास—सङ्घा पुं० [सं०] नगर की निकटता या समीपता [को०] ।

नगरी^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] नगर । शहर ।

नगरी^२—सङ्घा पुं० [सं० नगरिन्] शहर में रहनेवाला मनुष्य । नागरिक । शहराती ।

नगरीकाक—सङ्घा पुं० [सं०] बगला ।

नगरीबक—सङ्घा पुं० [सं०] काक । कौआ [को०] ।

नगरीय—वि० [सं०] नगर का । नगर से संबंधित । नागरिक ।

नगरोत्था—सङ्घा स्त्री० [सं०] नागरमोघा ।

नगरोपात—सङ्घा पुं० [सं० नगरोपान्त] नगर का बाहरी भाग । उपनगर ।

नगरोका—सङ्घा पुं० [सं० नगरोक्] शहर का निवासी । नागरिक ।

नगरोषधि—सङ्घा स्त्री० [सं०] केसा ।

नगबास^३—सङ्घा पुं० [सं० नागबास] शत्रु को बांधने या फँसाने के लिये एक प्रकार का फंदा । नागपाश ।

नगवासी(७)—वि० [हि० नगवास + ई] नागपाश का । नागपाश संबंधी । उ०—जान पुद्गार जो भा बनवासी । रोंव रोंव परे फद नगवासी ।—जायसी (शब्द०) ।

नगवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।

नगस्वरूपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वरुणवृत्त ।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में एक जगण, एक रगण, एक सधु और एक गुठ होता है । इसे प्रमाणी और प्रमाणिका भी कहते हैं । जैसे—जरा सगाव चित्ता ही । भजो जु नद नद ही । प्रमाणिका हिये गहो । जु पार भी लगा चहो । (शब्द०) ।

नगा(७)—वि० [हि० नागा] दे० 'वग' । उ०—वग सहि नगा । सेन सेन भगा । सार धार मगा । कूह कूह बगा ।—पु० रा०, १ । ६४६ ।

नगाटन^१—संज्ञा पुं० [सं०] बदर । कपि ।

नगाटन^२—वि० पहाड़ पर विचरण करनेवाला ।

नगाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० नगारा] दे० 'नगरा' ।

नगाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिमालय पर्वत । २ सुपेठ पर्वत ।

नगाधिपति, नगाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नगाधिप' (को०) ।

नगरा—संज्ञा पुं० [प्र० नक्कारहू] हुगहुगी या बाएँ की तरह का एक प्रकार का बहुत बड़ा और प्रसिद्ध बाजा । नगाड़ा । डका । घोंसा । उ०—गज ते भासन सधरहि धारा । चले राय तब बजे नगरा ।—कबीर सा०, पु० ४८७ ।

विशेष—जिसमें एक बहुत बड़ी कूँड़ी के ऊपर चमड़ा मड़ा रहता है । कभी कभी इसके साथ इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा भी होता है । इन दोनों को धामने सामने रखकर लकड़ी के दो डंडों से, जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं । मुहावरों के लिये दे० 'नक्कारा' ।

नागारि—संज्ञा पुं० [सं०] इद, पुराणानुसार जिन्होंने पर्वतों के पर काटे थे ।

नगवास—संज्ञा पुं० [सं०] मोर ।

नगाश्रय^१—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीकद ।

नगाश्रय^२—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला । पर्वतीय ।

नगिचाना(७)—क्रि० प्र० [हि० नगीच से नामिक धातु] नजदीक घाना । समीप घाना । उ०—गोता लीजै खाय नाम के सरवर माहीं । भवधि भाइ नगिचान धीव फिर ऐसा नाहीं ।—पलटू, भा० १, पु० २४ ।

नगी(७)^१—संज्ञा स्त्री० [फा० नगीनहू से हि० नंग + ई (प्रत्य०)] रत्न । मणि । नगीना । नग । उ०—कंचन की भूख रूप डबीन मैं खोल घरी मानो नील नगी है ।—सुदरीसबैस्व (शब्द०) ।

नगी(७)^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नग (= पर्वत)] १ पर्वत की कन्या । पार्वती । उ०—नगी किधौ पन्नग की जाई । कमला किधौ देह धरि भाई ।—सबल (शब्द०) । २ पर्वत पर रहनेवाली स्त्री । पहाड़ी स्त्री । उ०—पन्नगी नगी कुमारि भासुं

निहारि डारौ बारि किन्नरी नरी गमारि नारिक —केशव (शब्द०) ।

नगीच^१—क्रि० वि० [फा० नजदीक] दे० 'नजदीक' । उ०—चं कीच चढ़ायहूँ बीच परे नहि राँच । मोच नगीच न घाह लहि बिरहानल घाँच ।—स० सप्तक, पु० २५७ ।

नगीना—संज्ञा पुं० [फा० नगीनहू, तुल० सं० नग] १ पत्थर का का वह रंगीन चमकीला टुकड़ा जो शोभा के लिये मंगू आदि में जड़ा जाता है । रत्न । मणि ।

मुहा०—नगीना सा = बहुत छोटा और सुंदर । २ एक प्रकार का चारखानेदार देशी कपड़ा ।

नगीनागर—संज्ञा पुं० [फा० नगीनहू + गर (प्रत्य०)] १ 'नगीनासाज' ।

नगीनासाज—संज्ञा पुं० [फा० नगीनहू + साज (प्रत्य०)] वह नगीना बनाता या जड़ता हो । नगीना बनाने या जड़ने का काम करनेवाला ।

नगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नगेन्द्र] पर्वतराज । हिमालय ।

नगेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नगेंद्र' ।

नगेसरि(७)^१—संज्ञा पुं० [सं० नागकेशर] नागकेशर ।

नगोच्छ्राय—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत की ऊँचाई (को०) ।

नगौक—संज्ञा पुं० [सं० नगौकस्] १. पक्षी । बिडिया । २ सिंह और । ३. कौआ ।

नग(७)—संज्ञा पुं० [सं० नाग] दे० 'नाग' । उ०—सजे भग्न प मद मोष नग । तिन भग्न भातस्स म्भार उत्तगं ।—पु० रा १ । ६३७ ।

नगर(७)—संज्ञा पुं० [सं० नगर] दे० 'नगर' । उ०—ये ही बाज है जिसे पहाड़ के लोग गर्व से नगर कहते हैं ।—भस्मावृत पु० १३० ।

नग्न^१—वि० [सं०] १ जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । नगा २ जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो ।

नग्न^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के दिगंबर जैन जो कौपी और कषाय वस्त्र पहनते हैं ।

विशेष—ये पाँच प्रकार के होते हैं—द्विकच्छ, कच्छशेष, मुक्तकच्छ, एकधासा और अधासा ।

२. पुराणानुसार वह जिसे शास्त्रों आदि का ज्ञान न हो अ जिसके कुल में किसी ने वेद न पढ़ा हो ।

विशेष—ऐसे आदमियों का धन ग्रहण करना वर्जित है ।

३ वह जो गृहस्थाश्रम के उपरांत बिना धानप्रस्थ ग्रहण किए संन्यासी हो गया हो ।

विशेष—पुराणानुसार ऐसा आदमी पातकी समझा जाता है ।

नग्नक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नग्न' ।

नग्नक्षपणक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध संन्यासी या मिथु

नग्नजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. गांधार के एक बहुत पुराने राजा नाम जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है । २. पुराणानुस

कोशल के एक राजा का नाम जिसकी सत्या या नामजित्ती नामक कन्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ था।

नग्नता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नग्न होने का भाव। नग्नपन। वस्त्र-विहीनता।

नग्नपर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम।

नग्नमुक्षित—वि० [सं०] जिसका सब कुछ लुट गया हो, यहाँ तक कि उसके पास शरीर का वस्त्र भी न रह गया हो।

नग्ननाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो सदा नगा रहता हो, २ दिगंबर सप्रदायी जैन या बौद्ध भिक्षु [स्त्री०]।

नग्ननाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नग्ननाट' [स्त्री०]।

नग्नमा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नग्नमा'।

नग्न—नग्नमासज = दे० 'नग्नमासज'। नग्नमासज = दे० 'नग्नमासज'।

नग्नता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नगर'। उ०—यसो नग्न रम्य रचो भूप केरो। किये चारु चौकत यायत हेरो।—हम्मीर रा०, पृ० १७६।

नग्नो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नगरी'। उ०—घार नग्री प्रायो वीसल राव। जानी बासठ दीपी तिणि ठाव।—बी० रासो, पृ० १६।

नग्नोप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नग्नोप [वटवृक्ष] बड़ का पेड़।

नग्नना—क्रि० सं० [सं०] नग्नना। लौघना। डौकना। पार करना। उ०—भीमसेन भजुन दोठ धाए। हेरत हेरत पुर नधि धाए।—रघुराज (शब्द०)।

नग्नाना—क्रि० सं० [सं०] लघ्वन [लघ्वन] लघ्वन कराना। डका देना। उ०—बोले बघन पुकारिके विपिन जो देह नघाय। हँ से मुद्रा साहि हम दँहँ तुरत गहाय।—रघुराज (शब्द०)।

नग्नपु—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नग्नप'। उ०—दुग्ध दोष नपु कृत कित्त भपपनो सु हृषो।—पृ० रा०, ५५। ४६।

नग्नपुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नग्नपुत्र [दे० 'नग्नप']। उ०—नग्नपुत्र राजसू जग्य कर कर कुट कूप जन।—पृ० रा०, ५५। ३६।

नग्नन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नग्नन [दे० 'नाच']। उ०—हरि की सी बनि बन ते भावनि गावनि रस रगी। हरि की सी गेदु क रक्षम नचन पुनि होन त्रिभगी।—नव० प्र०, पृ० २६।

नग्नना—क्रि० सं० [हि०] नाचना। नृत्य करना। उ०—(क) सजनी सज नीरद निरखि हरखि नचत इत मोर।—केशव (शब्द०)। (ख) काली की फनाली पे नचत बनमाली है।—पद्माकर (शब्द०)।

नचन^२—वि० १. जो नाचता हो। नाचनेवाला। २ जो बराबर इधर उधर घूमता रहता हो, एक स्थान पर न रहता हो।

नचनित—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] नाचना [नाच]। नृत्य।

नचनित्या—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] नाचना + द्या- (प्रत्य०) [नाचने-वाला]। नृत्य करनेवाला।

नचनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] नाचना [करधे की वे दोनों खकड़ियाँ जो बेसर के कुलवाँसे से सटकती होती हैं]।

विशेष—इन्हीं के नीचे चकडोर से दोनों राखें बँधी रहती हैं। इन्हीं की सहायता से राखें ऊपर नीचे जाती घोर घाती हैं। इन्हें चक या कलहरा भी कहते हैं।

नचनी^२—वि० स्त्री० [हि०] नाचना [१ नाचनेवाली]। जो नाचती हो। २ बराबर इधर उधर घूमती रहनेवाली स्त्री (स्त्री०)।

नचवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] नाचना + वाई (प्रत्य०) [१ नृत्य]। नाच। २. नाचने का ढंग या पद्धति। ३ नाचने का परिश्रमिक या ठहरोनी।

नचवाना—क्रि० सं० [हि०] नाचना का प्रे० रूप [३० 'नचाना']।

नचवैया—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] नाचना + वैया (प्रत्य०) [नाचनेवाला] जो नाचता हो।

नचाना—क्रि० सं० [हि०] नाचना का प्रे० रूप [१ दूसरे को नाचने में प्रवृत्त करना। नाचने का काम दूसरे से कराना। नृत्य कराना। जैसे, रही नचाना बदर नचाना। २ किसी को बार बार उठने बैठने या घोर कोई काम करने के लिये विवश करके तग करना। अपने व्यापार कराना। हैरान करना। उ०—(क) जीव चराचर बस के राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे। भृकुटि विलास नचावै ताहो। अस प्रभु छाडि मजिय कहू काही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) देखो जीव नचावै जाहो। देखी भगति जो छोरइ ताहो।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—नाच नचाना = घूमने फिरने या घोर कोई काम करने के लिये विवश करके तग करना या हैरान करना। उ०—कबिरा बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावै नाच।—कबीर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना। मारना।

३ किसी चीज को बार बार इधर उधर घुमाना या हिलाना। चक्कर देना। भ्रमण कराना। जैसे, हाथ में छड़ी या ताली लेकर नचाना। लट्ट नचाना।

मुहा०—घाँखें (या ठीन) नचाना = चंचलतापूर्वक घाँखों की पुतलियों को इधर उधर घुमाना। उ०—(क) नैन नचाय कही मुमकाय लला फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) कछु नैन नचाय नचावति भौंह नचै कर दोऊ घोर आप नचै (शब्द०)।

४ इधर उधर दौड़ाना। हैरान या परेशान करना।

नचित^१—वि० [हि०] दे० 'नचित'। उ०—चित लिखी सुरताण नूँ, हूँ नचित नबाब।—र० ख०, पृ० ३३८।

नचिकेता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नचिकेतस् [१ वाजश्रवा ऋषि का पुत्र जिसने मृत्यु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था]।

विशेष—वाजश्रवा ने एक बार दक्षिणा में अपना सर्वस्व दे डाला था। उस समय नचिकेता ने अपने पिता से कई बार पूछा था कि मुझे किसकी प्रदान करते हैं। पिता ने खिजलाकर कह दिया कि मैं तुमको मृत्यु के धर्मिण करता हूँ। इसपर वह मृत्यु

के पास चला गया था और वहाँ तीन दिन तक निराहार रहकर उससे उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था।

२ अनिनि ।

नचिर—वि० [सं०] थोड़ी देर रहनेवाला । अल्पकालवाला । क्षणस्थायी (को०) ।

नचीत^७—वि० [हि०] दे० 'निश्चित' । उ०—भक्तवत्सल को विरद सुनि रज्जव दीन्हो रोय । जब सुनियो पावन पतित रह्यो नचीतो सोय ।—राम० धर्म०, पृ० २६७ ।

नचीला^७—वि० [हि०] [स्त्री० नचीली] नाचनेवाला । अस्थिर । चंचल ।

नचौहाँ^७—वि० [हि० नाचना + ओहाँ (प्रत्य०)] जो सदा नाचता या इसर उधर घूमता रहे । चंचल । अस्थिर उ०—देत रचौहैं चित्त कहैं नेह नचौहैं नैन ।—विहारी (शब्द०) ।

नचचना^७—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'नाचना' । उ०—हरषी जु हरषि अछर हरषि, जुगिन वृंद सु नचिचयव ।—हम्मीर रा०, पृ० १२३ ।

नच्छत्र^७—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र' । उ०—कि नीख परवत की इक सिखर पर, गिरा है नच्छत्र हट ऊपर ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८८६ ।

नच्यंत^७—वि० [हि०] दे० 'निश्चित' । उ०—काल सहृणै यों खड़ा जागि पियारे म्यत । राम सनेही बाहिरा, तूँ क्यूँ सोवै नच्यत ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२ ।

नछत्तर^७—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र' । उ०—भर्म सुत सबही छुटे री हेली सोन नछत्तर नाल ।—चरण० बानी०, पृ० १४५ ।

नछत्र—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र' ।

नछत्री^७—वि० [सं० नक्षत्र + ई (प्रत्य०)] भाग्यवान् । भाग्यशाली । जिसका जन्म अच्छे नक्षत्र में हुआ हो । उ०—परम नक्षत्री ख्यात जात छत्रीवर बलधर ।—गोपाल (शब्द०) ।

नछित्त^७—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र' । उ०—सब समा पूरि जैसे नछित्त । बहुमान बीच अनु चद रत्त ।—पृ० रा०, १ । ३६८ ।

नजदीक—वि० [फा० नजदीक] [संज्ञा नजदीकी] निकट । पास । करीब । समीप ।

नजदीकी^१—संज्ञा स्त्री० [फा० नजदीकी] पास या नजदीक होने का भाव । समीप्य ।

नजदीकी^२—वि० निकट का ।

नजदीकी^३—संज्ञा पुं० निकट का संबंध ।

नजम—संज्ञा स्त्री० [अ० नज्म] कविता । पद्य । छंद ।

नजर^१—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर] १. दृष्टि । निगाह । चितवन ।

मुहा०—नजर अदाज करना = ध्यान न देना । नजर हटा लेना । नजर भाना = दिखाई देना । दिखाई पड़ना । दृष्टिगोचर होना । उ०—नजर भाता है कोई अपना न पराया मुस्करी ।

—प्रमानत (शब्द०) । नजर करना = देखना । उ०—जब मैंने उधर नजर की तब देखा कि आप खड़े हैं । नजर पर चढ़ना = पसंद आ जाना । भा जाना । भला मालूम होना । नजर पढ़ना = दिखाई देना । देखने में आना । जैसे कोई दिन से तुम नजर नहीं पड़े । नजर फिसलना = चमक या आकाशोप के कारण किसी वस्तु पर दृष्टि का अच्छी तरह न जमना । नजर फेंकना = (१) दूर तक देखना । दृष्टि डालना । (२) सरसरी नजर से देखना । नजर में आना = दिखाई पड़ना । दिखाई देना । नजर में तोलना = देखकर किसी के गुण और दोष आदि की परीक्षा करना । नजर बाँधना = जादू या मंत्र आदि के जोर से किसी की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न कर देना । कुछ का कुछ कर दिखाना ।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि जादू के जोर से दृष्टि में भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है । आजकल भी कुछ लोग इस बात को मानते हैं ।

२. कृपादृष्टि । मेहरबानी से देखना । जैसे, आपकी नजर रहेगी तो सब कुछ हो जायगा ।

मुहा०—नजर रखना = कृपादृष्टि रखना । मेहरबानी रखना ।

३. निगरानी । देख रेख । जैसे, जरा आप भी इस काम पर नजर रखा करें ।

क्रि० प्र०—रखना ।

४. ध्यान । खयाल । ५. परख । पहचान । शिनाख्त । जैसे, इन्हें भी जवाहिरात की बहुत कुछ नजर है । ६. दृष्टि का वाक्यप्रभाव जो किसी सुंदर मनुष्य या अच्छे पदार्थ आदि पर पड़कर उसे खराब कर देनेवाला माना जाता है ।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था और अब भी बहुत से लोगों का विश्वास है कि किसी किसी मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव होता है कि जिसपर उसकी दृष्टि पड़ती है उसमें कोई न कोई दोष या खराबी पैदा हो जाती है । यदि ऐसी दृष्टि किसी खराब पदार्थ पर पड़े तो वह खानेवाले को नहीं पचता और भविष्य में उस पदार्थ पर से खानेवाले की रुचि भी हट जाती है । यह भी माना जाता है कि यदि किसी सुंदर बालक पर ऐसी दृष्टि पड़े तो वह बीमार हो जाता है । अच्छे पदार्थों आदि के संबंध में माना जाता है कि यदि उनपर ऐसी दृष्टि पड़े तो उनमें कोई न कोई दोष या विकार उत्पन्न हो जाता है । किसी विशिष्ट अवसर पर केवल किसी विशिष्ट मनुष्य की दृष्टि में ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव माना जाता है ।

मुहा०—नजर उतारना = बुरी दृष्टि के प्रभाव को किसी मंत्र वा युक्ति से हटा देना । नजर खाना या खा जाना = बुरी दृष्टि से प्रभावित हो जाना । नजर जलाना = दे० 'नजर भाड़ना' । नजर भाड़ना = बुरी दृष्टि का प्रभाव हटाना । नजर लगाना = बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना । नजर होना या हो जाना = दे० 'नजर लगना' ।

७. विचार । पीर (को०) ।

नजर^२—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजर] १ भेंट । उपहार । जैसे, (क) सीपागर ने प्रकवर शाह को एक सो घोड़े नजर किए । (ख) अगर यह किताब आपको इतनी ही पसंद है तो लीजिए यह आपकी नजर है । (ग) भरि भरि काँवरि सुघर कहारा । तिमि भरि शकटन ऊँट अपारा । सातानद भर सचिव लिवाई । कोशलपालहि नजर कराई ।—रघुराज (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

२. अधीनता सूचित करने की एक रस्म जिसमें राजाभो, महाराजों और जमींदारों आदि के सामने प्रजाधर्म के या दूसरे अधीनस्थ और छोटे लोग दरबार या श्योहार आदि के समय प्रपञ्च किसी विशिष्ट पदसर पर नगद रुपया या मशरफी आदि हुयेसी में रखकर सामने लाते हैं ।

विशेष—यह धन कभी तो ग्रहण कर लिया जाता है कभी केवल छूकर छोड़ दिया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—गुजारना ।—देना ।

नजरअंदाज—क्रि० वि० [प्र० नजर + फा० अंदाज] दृष्टि का फटना । ध्यान का न होना । उ०—मैंने एहतराम कहीं नजरअंदाज नहीं होने दिया है ।—गोदान, पृ० २३ ।

नजरअंदाजी—संज्ञा पुं० [प्र० नजर + फा० अंदाजी] जाँच । छानबीन । परख [को०] ।

नजरनाउ—क्रि० प्र० [प्र० नजर से नामिक धातु] १ देखना । उ०—(क) कारीगरी में करो बहुतै नजरी गई तो कछुवे न मलाई ।—वेनी प्रवीन (शब्द०) । (ख) नजरेई सब रहत हैं एक नजरिया और । उतनेही में चोर ही चित बित तुव दगचोर ।—रसनिधि (शब्द०) । (ग) न जरे जो नजरे रहे प्रीतम छूम मुख चद ।—रसनिधि (शब्द०) । २ नजर लगाना । दे० नजर ।

नजरबंद^१—वि० [प्र० नजर + फा० बंद] जो किसी ऐसे स्थान पर कड़ी निगरानी में रखा जाय जहाँ से वह कहीं भा जा न सके । जिसे नजरबंदी की सजा दी जाय । उ०—भूले लोधी नेन सों छवि रस भाए चाख । दग तारे देखे इन्हें नजरबंद कर राख ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नजरबंद^२—संज्ञा पुं० जादू या इद्रजाल आदि का वह खेल जिसके विषय में लोगों का यह विश्वास रहता है कि वह लोगों की नजर बाँधकर किया जाता है । लोगों की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करके किया जानेवाला खेल । जैसे, वह मदारी नजरबंद के बहुत अच्छे अच्छे खेल करता है ।

नजरबंदी—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजर + फा० बंदी] १. राज्य की ओर से वह दंड जिसमें दंडित व्यक्ति किसी सुरक्षित या नियत स्थान पर रखा जाता है और उसपर निगरानी रहती है । जिसे यह दंड मिलता है उसे कहीं भ्राने जानें या किसी से मिलने जुलने की आशा नहीं होती । २. नजरबंद होने की दशा । ३. लोगों की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करने की क्रिया । जादूगरी । बाजीगरी ।

नजरबाग—संज्ञा पुं० [प्र० नजर + फा० बाग] वह बाग जो महलों या बड़े बड़े मकानों आदि के सामने या चारों ओर उनके ग्रहाते के मंदिर ही रहता है ।

नजरबाज—वि० [प्र० नजर + फा० बाज (प्रत्य०)] घालें लहानेवाला । प्रेम की दृष्टि से देखनेवाला ।

नजरबाजी—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजर + फा० बाजी] १. नजरबाज होने की क्रिया या भाव । २. घालें लहाना ।

नजरसानी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] किसी किए हुए कार्य या लिखे हुए लेख आदि को, उसमें सुधार या परिवर्तन करने के लिये फिर से देखना । पुनर्विचार या पुनरावृत्ति ।

नजरहा—वि० [हि० नजर + हा (प्रत्य०)] दे० 'नजरहाया' । उ०—नजरहा छैना रे नजर लगाये जसा जाय, नजर सगो वेहोस भई मैं जिया मोरा मकुसाय ।—भारतेन्दु प्र०, पृ० १८८ ।

नजरहाया—वि० [प्र० नजर + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० नजर-हाई] जो नजर लगावे । जिसकी नजर पड़ते ही कोई दोष उत्पन्न हो । नजर लगानेवाला ।

नजराउ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नजर' । उ०—नानक नजरा निहाल पलक मे निहाला ।—तुरसी श०, पृ० ३४६ ।

नजराननाउ^१—क्रि० स० [हि० नजर से नामिक धातु] १. भेंट में देना । उपहार स्वरूप देना । २. नजर लगाना । दे० 'नजर ६' ।

नजराना^१—क्रि० प्र० [हि० से नामिक धातु] नजर लग जाना । घुरी दृष्टि के प्रभाव में घाना । जैसे, मालूम होता है कि यह लडका कहीं नजरा गया है ।

नजराना^२—क्रि० स० नजर लगाना ।

नजराना^३—संज्ञा पुं० [प्र० नज्जाह] १. भेंट । उपहार । २. जो वस्तु भेंट में दी जाय ।

नजरिउ—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजर] दे० 'नजर' ।

नजला—संज्ञा पुं० [प्र० नजलह] १. यूनानी हिकमत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें गर्मी के कारण सिर का विकारयुक्त पानी ढलकर भिन्न भिन्न भागों की ओर प्रवृत्त होता और जिस भाग की ओर ढलता है उसे खराब कर देता है ।

विशेष—कहते हैं, यदि नजले का पानी सिर में ही रह जाय तो बाल सफेद हो जाते हैं । घालों पर उतर भावे तो दृष्टि कम हो जाती है, कान पर उतरे तो घादमी बहना हो जाता है, नाक पर उतरे तो जुकाम होता है, गले में उतरे तो खाँसी होती है और ग्रंथकोश में उतरे तो उसकी बुद्धि हो जाती है ।

क्रि० प्र०—उतरना ।—गिरना ।

२. जुकाम । सरदी ।

नजलावंद—संज्ञा पुं० [प्र० नजलह + फा० बंद (प्रत्य०)] अफीम और घूने आदि का वह फाहा जो नजले को गिरने से रोकने के लिये दोनों कनपटियों पर सपाया जाता है ।

नजाकत—संज्ञा स्त्री० [फा० नजाकत] १ नाजुक होने का भाव सुकुमारता । कोमलता । मृदुलता । २ सुकृमता । बारीकी (को०) । ३ क्षीणता (को०) । ४ नाजुकमिजाजी (को०) ।

नजात—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १ मुक्ति । मोक्ष । २ छुटकारा । रिहाई ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

नजामत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजामत] १ नाजिम का पद । २ नाजिम का मुहकमा या विभाग । ३ नाजिर का दफ्तर, जहाँ बैठकर नाजिर काम करता हो ।

नजारत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजारत] १ नाजिर का पद । २ नाजिर का मुहकमा । ३ नाजिर का दफ्तर, जहाँ बैठकर नाजिर काम करता हो ।

नजारा—संज्ञा पुं० [प्र० नज्जारह] १. दृश्य । २. दृष्टि । नजर । ३. दर्शन । दृश्य । ४ स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को लालसा या प्रेम की दृष्टि से देखना । (बाजारू) ।

क्रि० प्र०—लहना ।—लहाना ।—मारना ।

५ सैर । दृश्य । तमाशा (को०) ।

नजारेबाजी—संज्ञा स्त्री [हि० नजारा + फा० बाजी] स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को प्रेम या लालसा की दृष्टि से देखना (बाजारू) ।

नजिकाना—क्रि० सं० [हि० नजीक (= नजदीक) + प्राना (प्रत्यय०)] निकट पहुँचना । नजदीक पहुँचना । पास पहुँचना उ०—(क) जोर करि ज्यों ज्यों मृग बन नजिकत त्यो त्यों मो तैं महीपति को मन नजिबात है ।—रसकुसुमाकर (शब्द०) । (ख) सकल सुयोग सहित सो सुदिवस आइ जबहि नजिकाना ।—रघुराज (शब्द०) । (ग) बन पुर पहन गरजत नजिकाने निधि तीर ।—हनुमान (शब्द०) । (घ) मरण प्रवस्था जब नजिक आई । ईश सखा के मन यह आई ।—सूर (शब्द०) ।

नजिस—वि० [प्र०] मैला । गदा । अपवित्र । अशुद्ध । उ०—मगर यहाँ तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं, यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं ।—कायाकल्प, पृ० ५० ।

नजीक—क्रि० वि० [फा० नजदीक] निकट । पास । समीप । उ०—(क) हे नजीक वही जहाँ छिति में विभूषित है खरे ।—गुमान (शब्द०) । (ख) कौन की सीख घरी मन में चलि कै बलि काहे नजीक न जाति है ।—प्रताप (शब्द०) ।

नजीब—संज्ञा पुं० [प्र०] कुलीन व्यक्ति जिसका खानदान शुद्ध हो । उ०—नजीबों का मजब कुछ हाल है इस दौर में धारो । जहाँ पूछो वही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं ।—शेर०, पृ० २१० ।

नजीम—संज्ञा पुं० [प्र० नाजिम] दे० 'नाजिम', उ०—बंगाली कूँम को नजीम नाँ कहायो । मेरो नाम मुरज्जा मोखबी बतायो ।—शिखर०, पृ० ६३ ।

नजीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजोर] १. उदाहरण । दृष्टांत । मिसाल । २. किसी मुकदमे का वह फैसला जो उसी प्रकार के किसी दूसरे मुकदमे में वैसे ही फैसले के लिये उपस्थित किया जाय । क्रि० प्र०—दिखलाना ।—देना ।

नजूम—संज्ञा पुं० [प्र०] ज्योतिष विद्या ।

नजूमी—संज्ञा पुं० [प्र०] ज्योतिषी ।

नज्जारा—संज्ञा पुं० [प्र० नज्जारहू] १ दर्शन । दीदार । २ दृश्य । तमाशा (को०) ।

यौ०—नज्जारागाह = सैरगाह । विनोद का स्थल ।

पसंद = जिसे नज्जाराबाजी पसंद हो । जो अच्छे दृश्य देखने का शौकीन हो । नज्जाराफरेब = को लुभानेवाला । नज्जाराबाज = (१) नज्जारा देखने शौकीन । (२) ताक भाँक करनेवाला । नज्जाराबाजी = भाँक । ताकाभाँकी । भाँखें लहना या सेकना ।

नज्जल^१—संज्ञा पुं० [प्र० नुजूल] सरकारी जमीन । शहर की वह जो सरकार के अधिकार में हो ।

नज्जल^२—संज्ञा पुं० [प्र० नजलह] दे० 'नजला' ।

नट—संज्ञा पुं० [सं०] १ दृश्य काव्य का अभिनय करनेवाला मनुष्य जो नाट्य करता हो । नाट्यकला में प्रवीण पुरुष । प्राचीन काल की एक सकर जाति ।

विशेष—इसकी उत्पत्ति शोचकी स्त्री और शौडिक पुरुष से गई है और इसका काम गाना बजाना घतलाया गया है ।

३ मनु के अनुसार क्षत्रियों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति क्षत्रियों से मानी जाती है । ४. पुराणानुसार एक सकर जिसकी उत्पत्ति मालाकार पिता और शूद्रा माता से जाती है । ५ एक नीच जाति जो प्रायः गा बजाकर और तरह के खेल तमाशे आदि करके अपना निर्वाह करती उ०—दीठि बरत बाँधी घटनि चढ़ि धावत न डरात । इतें मन दुहुन के नट लो आवत जात ।—बिहारी (शब्द विशेष—उत्तर प्रदेश में इस प्रकार के जो लोग पाए जाते वे बाँसों पर तरह तरह की कसरतें करते और रस्स अनेक प्रकार से चलते हैं । बगाल में इस जाति के लोग गाने बजाने का पेशा करते हैं ।

६ एक नाग का नाम ।

विशेष—इसे भट नामक एक दूसरे नाग के साथ मयु निकट उरुमुंड नामक पर्वत पर बुद्धदेव ने बोद्धा दीक्षित किया था । इसने तथा भट ने उस स्थान पर बिहार भी बनवाए थे ।

७ संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं

विशेष—कुछ आचार्य इसे मालकोश राग का और आचार्य इसे श्री राग का पुत्र मानते हैं । कुछ लोगो मत है कि यह वागीश्वरी, मधुमाध और पूरिया के से बना हुआ है और किसी क मत से कुमकुम, केदारा और बिलावल के मेल से बना हुआ सकर है । रागमाला में इसे राग नदी बल्कि रागिनी मान एक और शास्त्रकार ने इसे दीपक राग की बतलाया है । उनके मत से यह संपूर्ण जाति रागिनी है और इसके गाने का समय तीसरा पहर संध्या है । भिन्न भिन्न रागों के साथ इसे मिलाने से

संकर राग भी बनते हैं। जैसे, केदारनट, छायानट, कामोदनट आदि।

८ भणोक वृक्ष। ९. श्योनाक वृक्ष। १०. नर्तक (की०)। ११. एक प्रकार का वेतस या वेत (की०)।

नटई^१—सङ्घा श्री० [हि०] १. गला। गरदन। २. गले की घंटी। घांटी।

नटक—सङ्घा पु० [सं०] वह जो नाट्य करता हो। अभिनेता (की०)।

नटखट—वि० [हि० नट + खट] १. जो सदा कुछ न कुछ उपद्रव करता रहे। ऊधमी। उपद्रवी। चवल। शरीर। २. चालाक। चालबाज। घूर्त। मक्कार।

नटखटी—सङ्घा श्री० [हि० नटखट] बदमाशी। शरारत। पाजीपन।

नटचर्या—सङ्घा श्री० [सं०] अभिनय।

नटता—सङ्घा श्री० [सं०] १. नट का भाव। २. नट का काम।

नटन—सङ्घा पु० [सं०] १. नृत्य करना। नाचना। २. अभिनय करना (की०)।

नटना^१—क्रि० प्र० [सं० नट] १. नाट्य करना। उ०—कहूँ नटत नट कोटि, भौट वर गावत गुण गनि।—गुमान (शब्द०)। २. नाचना। नृत्य करना।

नटना^२—क्रि० प्र० [हि०] इनकार करना। कहकर बदल जाना। मुकरना। उ०—(क०) भौहन नासति मुख नटति भाँखनि सो लपटाति।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजि जात।—बिहारी (शब्द०)।

नटना^३—क्रि० स० [सं० नट] नष्ट करना। उ०—नटै लोक दोऊ हठी एक ऐसे।—केशव (शब्द०)।

नटना^४—क्रि० प्र० नष्ट होना।

नटना^५—सङ्घा पु० [देश०] १. बस की बनी छलनी जिससे रस छाना जाता है। २. मछली पकड़ने का वह बड़ा टोकरा जिसका पेंदा कटा होता है। टाप।

नटनागर—सङ्घा पु० [सं० नट + नागर] कृष्ण। उ०—जिन हठ करि री नटनागर सों। भैरों ही है देव गान।—नद० प्र०, ३६७।

नटनायक—सङ्घा पु० [सं०] नटों में प्रधान, श्रीकृष्ण। उ०—नटनायक नंदलाल को मन पकरि नचावै।—घनानंद पु० ४४५।

नटनारायण—सङ्घा पु० [सं०] एक राग जो हनुमत के मत से मेघ राग का तीसरा पुत्र और भरत के मत से दीपक राग का पुत्र है। लेकिन सोमेश्वर और कल्लिनाथ के मत से यह छह रागों में से एक है और कामोदी, कल्याणी, भाभीरी, नाटिका, सारंगी और नट हथीरा ये छह इसकी रागिनियाँ हैं।

विशेष—यह सपूर्ण जाति का एक राग है, इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह हेमंत ऋतु में रात के समय २१ दह से २६ दह तक गाया जाता है। कुछ लोग इसे मधुमाघ, बिलावल के मेल से बना हुआ संकर राग भी मानते हैं।

एक और शास्त्रकार के मत से यह पाञ्चव्रजति का राग है। इसमें निषाद वर्जित है और यह बरसात में तीसरे पहर गाया जाता है। उसके अनुसार बिलावल, कामोदी, सावेरी, सुहवी और सोरठ इसकी रागिनियाँ और शुद्धनट, मेघनट, हम्मौरनट, सारंगनट, छायानट, कामोदनट, केदारनट, मेघनट, गोहनट, भूपालनट, जयजयनट, शंकरनट, हीरनट, श्यामनट, वराहोनट, विभासनट, विहागनट, और शंकराभरणनट इसके पुत्र हैं। पर वास्तव में ये सब संकर राग हैं जो नट तथा भिन्न भिन्न रागों के मेल से बनते हैं।

नटनि^१—सङ्घा श्री० [सं० नटन] नृत्य। नाच।

नटनि^२—सङ्घा श्री० [हि० नटना] इनकार। प्रस्वीकृति। उ०—सनख हिये खिनखिन नटनि अनख बढ़ावत लाल।—विहारी (शब्द०)।

नटनी—सङ्घा श्री० [सं० नट + नी (प्रत्य०)] १. नट की स्त्री। २. नट जाति की स्त्री। उ०—नटनी होमिन ढाटिनि सहनायन परकार। निरतत नाद विनोद सों विहंसत खेलत नार।—जायसी (शब्द०)।

नटपत्रिका—सङ्घा श्री० [सं०] वंगन। माँटा।

नटबट्टा^१—सङ्घा पु० [सं० नट + बट] नट का गेंद। उ०—घ्रागे खबर किये भोहट्टा। बाटौं दूतय या नटबट्टा।—रा० रू०, पु० ६५।

विशेष—नट या बाजीगर खेल दिखाने समय कई गेंद हाथ में लेकर एक साथ हवा में उछालते हैं। गेंदों का ऊपर जाना और आना बड़ी तेजी से होता है और ऐसा लगता है मानो जो गेंद ऊपर जा रही थी वह बीच से ही वापस लौट पाई हो।

नटबाजी—सङ्घा श्री० [सं० नट + हि० बाजी] नट का कार्य। अभिनय। उ०—एह नटबाजी नट जेव नाचे किमि करि या गति चीन्हा।—सं० दरिया, पु० १६३।

नटभूषण—सङ्घा पु० [सं०] हरताल।

नटमडन—सङ्घा पु० [सं० नटमण्डन] हरताल। (हि०)

नटमडल—सङ्घा पु० [सं० नटमण्डल] हरताल।

नटमल—सङ्घा पु० [सं०] एक प्रकार का राग।

नटमल्लार—सङ्घा पु० [सं०] सपूर्ण जाति का एक संकर राग।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह नट और मल्लार के योग से बनता है।

नटरंग—सङ्घा पु० [सं० नटरङ्ग] १. रंगमंच। २. वह वस्तु जो भ्रम हो (ला०) (की०)।

नटराज—सङ्घा पु० [सं०] १. निपुण नट। नटों में प्रधान या श्रेष्ठ नट। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहूँ नर्तत नटराज।—केशव (शब्द०)। २. श्रीकृष्ण। ३. भगवान् शंकर। ४. शिव की एक प्रसिद्ध मूर्ति का नाम।

नटवना^१—क्रि० स० [सं० नट से नामिक घातु] नाट्य करना। अभिनय करना। स्वांग भरना। उ०—माधो जू बुनिये ब्रज

न्योहारा एक ग्वालि नटवति बहु लीला एक कर्म गुन गावति ।
—सुर (शब्द०) ।

नटवर^१—वि० [सं०] बहुत चतुर । चालाक ।

नटवर^२—सङ्घा पु० १ प्रधान नट । नाट्यकला में बहुत प्रवीण मनुष्य । २ श्रीकृष्ण जो नाट्यकला और नाटक शास्त्र के प्राचार्य थे । ३ सूत्रधार (कौ०) ।

नटवा(उ)^१—सङ्घा पु० [हि० नाटा] [स्त्री० नटिया] छोटे कद का या कम उमर का बाल ।

नटवा(उ)^२—सङ्घा पु० [सं० नट] नट । उ०—बिन पग नटवा निरत करत हैं, बिन कर बाजै ताख ।—घरम०, पु० ५६ ।

नटवासरसों—सङ्घा पु० [हि० नाटा (= छोटा) + सरसों] साधारण सरसों ।

विशेष—दे० 'सरसों' ।

नटसंज्ञक—सङ्घा पु० [सं०] १ गोदती । हरताल । २. नट । अभिनेता ।

नटसार(उ)^१—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'नाट्यशाला' ।

नटसारा(उ)—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'नाट्यशाला' ।

नटसारी(उ)—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'नटसार' । उ०—जिन नटवै नटसारी साजी । जो खेले सो दीसे बाजी ।—कबीर प्र०, पु० २०७ ।

नटसाल—सङ्घा स्त्री० [सं० नट (= तिरोहित) + शल्य] कटि का वह भाग जो निकाल लिए जाने पर भी टूटकर शरीर के भीतर रह जाता है । उ०—सगन जो हिए दुसार करि तऊ रहत नटसाल ।—बिहारी (शब्द०) । २ बाण की गाँसी जो शरीर के भीतर रह जाय । ३ फाँस जो बहुत छोटी होने के कारण नहीं निकाली जा सकती । उ०—सालति है नटसाल सी क्यों हैं निकसति नाहि ।—बिहारी । (शब्द०) । ४. कसम । पीडा । ऐसी मानसिक व्यथा जो सदा तो न रहे पर समय समय पर किसी बात या मनुष्य के स्मरण से होती हो । उ०—उठै सदा नटसाल सी सोतिन के उर सालि ।—बिहारी (शब्द०) ।

नटांतिका—सङ्घा स्त्री० [सं० नटान्तिका] लज्जा । शरम ।

विशेष—लज्जा होने से नाट्य नहीं हो सकता, इसलिये इसे 'नटांतिका' कहते हैं ।

नटाई—सङ्घा स्त्री० [देश०] जोलाहों का वह भीजार जिससे किनारे का ताना ताना जाता है ।

नटित^१—सङ्घा पु० [सं०] अभिनय । हावभाव [को०] ।

नटित^२—वि० ऊँचा हुमा । यका हुमा [को०] ।

नटिन—सङ्घा स्त्री० [सं० या हि० नट] १ नट की स्त्री । २. नट जाति की स्त्री ।

नटी—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ नट जाति की स्त्री । २. नाचनेवाली स्त्री । नर्तकी । उ०—बाज्रत ताल मृदग धुनि, नाचति नटी ५-३७

नवीन ।—हम्मीर०, पु० ३३ । ३. अभिनय करनेवाली स्त्री अभिनेत्री । ४. अभिनय करनेवाले नट की स्त्री । ५. वेश्य । ६. नखी नामक गंधद्रव्य । ७. मुख्य अभिनेत्री जो सूत्रा की पत्नी होती थी (कौ०) ।

नटुआ^१—सङ्घा पु० [हि० नट + उआ (प्रत्य०)] दे० 'नट' ।

नटुआ^२—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'नटई' ।

नटुवा(उ)^१—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'नट' । उ०—ब्रजनिधि निधान निपट नव नागर नटुवा । रह्यो रीझि मैं झूमि भू धूमत ज्यों लटुवा ।—ब्रज० प्र०, पु० १८ ।

नटुवा^२—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'नटई' ।

नटेश—सङ्घा पु० [सं०] दे० 'नटेश्वर' । उ०—देखा मनु ने नटित नट हत चेत पुकार उठे विशेष ।—कामायनी, पु० २५४ ।

नटेश्वर—सङ्घा पु० [सं०] महादेव । शिव ।

नट्ट—सङ्घा पु० [सं० नट या हि० नट] [स्त्री० नट्टिन] दे० 'नट' ।

नटथा—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ सगीत में एक प्रकार की रागिनी प्रायः नट के समान होती है । २ नटों की मङ्गली ।

नठना^१(उ)^१—क्रि० स० [सं० नट] नट करना । उ०—नठै सँ दोऊ हठी एक ऐसे ।—केशव (शब्द०) ।

नठना^२(उ)^२—क्रि० प्र० [सं० नट] नट होना ।

नट्ट^१—सङ्घा पु० [सं० नट] १ नरसल । नरकट । २ एक ग प्रवर्तक ऋषि का नाम । ३ एक जाति जिसका पेशा शं की छुड़ियाँ बनाना है ।

नट्ट^२—सङ्घा पु० [सं० नट, हि० नाला] दे० 'नाला' । उ०—म वेश उपनियाँ, नट्ट जिम निसरे याँह ।—ढोला०, दू० ४८ ।

नट्टक—सङ्घा पु० [सं० नट्टक] १ कथों के मध्य की हड्डी । २. ह के भीतर का छेद [को०] ।

नट्टनेरि—सङ्घा पु० [सं०] एक प्रकार का नृत्य [को०] ।

नट्टप्राय—वि० [सं०] नरसल की अधिकता से पूर्ण [को०] ।

नट्टभक्त—सङ्घा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ नरसल की बहुतायत [को०] ।

नट्टमीन—सङ्घा पु० [सं० नट्टमीन] किंगा मछली ।

नट्टवन—सङ्घा पु० [सं०] नरसल का वन [को०] ।

नट्टश—वि० [सं०] नरसल से भरा हुमा या ढका हुमा [को०] ।

नट्टह—वि० [सं०] लट्टह । सुदर । सुधर । खूबसूरत । सुरूप [को०] ।

नट्टिनी—सङ्घा स्त्री० [सं० नट्टिनी] १ वह नदी जिसमें सरपत प्रवि हो । नरसल का ढेर ।

नट्टिल, नट्टवान्—वि० [सं० नट्टिल, नट्टवत्] [वि० स्त्री० नट्टवती] नरसल की बहुतायतवाला [को०] ।

नट्टी—सङ्घा स्त्री० [हि० नली ?] एक प्रकार की घातिशबाजी ।

नट्टवल—सङ्घा पु० [सं०] १ सरपत की चटाई । २. वह प्रदेश ज

पर सरपत या नरसल या घास बहुत अधिक हो। ३. एक वैदिक देवता का नाम।

नट्वला—सङ्गा स्त्री० [सं०] १ पुराणानुसार वैराज मनु की स्त्री का नाम। २ नरसल की राशि या ठेरी (को०)।

नट्वाभू—सङ्गा स्त्री० [सं०] तल। फर्श। कुट्टिम [को०]।

नट्वा—क्रि० सं० [सं० नट, प्रा० नट्ट से नामिक घातु] १. गूँथना। पिरोना। २. घँघना। कसना। उ०—छोटव जन वैकुण्ठ जात को लागे परिकर नटन।—देव (शब्द०)।

नटवङ्ग—सङ्गा पुं० [सं० नितम्ब] उ०—कुटिल कैसे वय स्याम गौर गुन वाम काम रति। घोर घनी उभित नतव (जानि) रवि विष बोल गति।—पु० रा०, १२।२४८।

नट^१—वि० [सं०] १ मुड़ा हुआ। टेढ़ा। २. नम्र। विनीत। झुका हुआ। ३ प्रणत। नमन करता हुआ। ४ पराजित। परास्त [को०]।

नट^२—सङ्गा पुं० [सं०] १. तगर की जड़। तगरमूल। २ मध्याह्न रेखा से खमध्य या किसी ग्रह की दूरी। ६ झुकने की स्थिति। ४ नितव। जैसे नततट [को०]।

नटइत^३—सङ्गा पुं० [हिं०] दे० 'नतैत'।

नटकाज—सङ्गा पुं० [सं०] याम्योत्तर या खमध्य से काल सबधी दूरी (ज्यो०)।

नटकुर्ता—सङ्गा पुं० [हिं० नाती] बेटे का बेटा। बेटे की सतान नवासा। नाती।

नटगुल्ला—सङ्गा पुं० [देश०] घोघा।

नटघटिका—सङ्गा स्त्री० [सं०] एक घटा या घड़ी का कोण (ज्यो०)।

नटहुम—सङ्गा पुं० [सं०] एक प्रकार का शासवृक्ष जिसे लतापाल कहते हैं।

नटनासिका, नटनाडी—सङ्गा स्त्री० [सं०] १ खमध्य से किसी तारे की कालगत दूरी। २. मध्याह्न के बाद धीरे धीरे अर्धरात्रि के बीच अन्त की कोई घड़ी या जन्मकाल [को०]।

नटनासिक—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला [को०]।

नटपाल—सङ्गा पुं० [सं० नट + पालक] प्रणाम करनेवाले का पालन करनेवाला। प्रणतपाल। शरणपाल। उ०—कान्हू कृपाल बड़े नटपाल गए खस खेचर खीस खलाई।—तुलसी (शब्द०)।

नटभ्र—वि० स्त्री० [सं०] खिरछी मोहोवाली [को०]।

नटम—वि० स्त्री० [सं० नट (= टेढ़ा)] बाँका (हिं०)।

नटमी—सङ्गा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो आसाम प्रदेश में बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत धीरे धीरे रंग की होती है, धीरे धीरे भेज, कुरसियाँ धीरे धीरे नाव आदि बनाई जाती है।

नटर^४—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नटर'।

नटर^५—वि० [हिं०] निरतर। निरय। हमेशा। उ०—फागुन

मास सुहावनों, ब्रजनिधि आए होत। नतर कुलाहल करत हैं, भौर भौर पिक गोत।—ब्रज० प्र०, पु० २२।

नतरक^६—क्रि० वि० [हिं० न + तो] नहीं तो। उ०—कहत सबे कवि कमल से मो मत नैन पखान। नतरक बट इन विय लगत उपजत विरह कृपान।—विहारी (शब्द०)।

नतर^७—क्रि० वि० [हिं० न + तो] नहीं तो। अन्यथा। उ०—(क) नतर प्रजा पुरजन परिवार। हमहि सहित सब होत सुभार।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नतर लखन सिय राम वियोग। हहरि मरत सब लोग कुरोग।—तुलसी (शब्द०)।

नतशिर—वि० [सं०] नम्र। विनीत। उ०—मेरे उस योवन के मधु अभिपेक में नतशिर देख मुझे।—लहर, पु० ६६।

नताग—वि० पुं० [सं० नताङ्ग] १ जिसका अंग या शरीर झुका हो। २ झुका हुआ। नत [को०]।

नतागी^१—सङ्गा स्त्री० [सं० नताङ्गी] १ स्त्री। धीरठ।

नतागी^२—वि० झुके हुए अंगोंवाली। विनीता।

नतांश—सङ्गा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका केंद्र भूकेंद्र पर होता है धीरे जो विषुवत रेखा पर लंब होता है।

विशेष—यह वृत्त ग्रहों आदि की स्थिति निश्चित करने में काम आता है।

नतामुल—सङ्गा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट पर्वत पर बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी नरम होती है जिससे भेज कुरछी आदि बनती है। इसके रेशे मजबूत होते हैं जिनसे रस्ते बनाते हैं। इसके पेठ से एक प्रकार की जहरीली राल निकलती है जिसे तीरों में लगाकर उन्हें जहरीला बनाते हैं। इसे जसूद भी कहते हैं।

नति—सङ्गा स्त्री० [सं०] १ झुकाव। उतार। २. नमस्कार। प्रणाम। ३. विनय। विनती। ४ नम्रता। साकसारी। ५ ज्योतिष में एक प्रकार की गणना। ६. वक्रता। टेढ़ाई (को०)।

नतिनी—सङ्गा स्त्री० [हिं० नाती का स्त्री रूप] सड़की की लकड़ी। नातिन।

नतीजा—सङ्गा पुं० [प्र० नतीजह] १. परिणाम। फल। उ०—तुम्हें देखि पावै, सुख पावै बहु भाँति, ताहि दीजै नेकु निरखि, नतीजा नेह नाथे को।—कालिदास (शब्द०)।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकासना।—पाना।—मिसना।

२. परीक्षाफल (को०)। ३. मृत (को०)।

नतु^८—क्रि० वि० [हिं० न + तो] अन्यथा सं० न + तु] नहीं तो। अन्यथा। उ०—कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद।—केशव (शब्द०)।

नतैता—सङ्गा पुं० [हिं० नाता + ऐत (प्रत्यय)] संबंधी। रिश्तेदार। नातेदार। उ०—नाते हावे लिखि के नतैतन ते भाय गुरु लोगन देलाय के करम केते डर के।—रघुनाथ (शब्द०)।

नट्या—सङ्गा स्त्री० [हिं०] दे० 'नय'।

नट्यी—सङ्गा स्त्री० [हिं० नय (= प्रासुषण) या नायना] १ कागज या कपड़े आदि के कई टुकड़ों को एक साथ मिलाकर धीरे

भारपार छेद करके सबको बोरे या झालपीन आदि से एक ही में बाँधना या फँसाना । २ इस प्रकार एक ही में नाथे हुए कई कागज आदि जो प्रायः एक ही विषय से संबंध रखते हैं । मिस्स ।

नत्थूह—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पत्ती ।

नत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य [को०] ।

नथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाथना (= नाथ का अगला भाग)] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं । उ०—(क) सहजै नथ नाक ते खोलि धरी करयो कौन धौं फद या सेसरि को । —कमलापति (शब्द०) । (ख) इहि द्वै ही मोरी सुगय तू नय गरब निसाँक । बिहि पहिरे अग दग प्रसति हँसति खसत सी नाँक ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—यह बिल्कुल वृत्ताकार बाली की तरह का होता है और सोने आदि का तार खीचकर बनाया जाता है । इसमें प्रायः गुँज के साथ चबक, बुलाक या मोतियों की जोड़ी पहनाई रहती है । छोटी नथ को बेसर कहते हैं । हिंदुओं में नथ सोभाग्य का चिह्न समझी जाती है ।

नथना^१—संज्ञा पुं० [सं० नस्त (= नाक)] १ नाक का अगला भाग । नाक का वह चमड़ा जो छेदों के परदे का काम देता है ।

मुहा०—नथना फुलाना=क्रोध करना । गुस्सा दिखलाना । नथना फूलना=क्रोध माना ।

२ नाक का छेद ।

नथना^२—क्रि० प्र० [हिं० नाथना का क० रूप] १. किसी के साथ नत्थी होना । नाथा जाना । एक सूत्र में बंधना । २ छिदना । छेदा जाना । जैसे,—मेरे पैर काँटों से नथ गए हैं ।

नथनी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ + नी (प्रत्यय)] १ नाक में पहनने की छोटी नथ । २. बुलाक । ३. तलवार की मुठ पर लगा हुआ छल्ला । ४. नथ के आकार की कोई चीज ।

नथनी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथना (= नाथा जाना)] बेल की नाक में नथी हुई रस्सी । नाथ ।

नथियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ + इया (प्रत्यय)] दे० 'नथ' ।

नथुना^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नथनी' ।

नथुनी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथनी] नाक में पहनने की नथ । उ०—बैनन बैन को बैन बजै यह नासिका रासथली नथुनी की ।—गुमान (शब्द०) ।

मुहा०—नथुनी उतारना=कुमारी का कीमार नष्ट करना । कुमारी के साथ प्रथम समागम करना । चोरा उतारना । सिर ठेंकाई करना ।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग केवल वेश्याओं की लड़कियों के संबंध में होता है ।

नथुना^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नथुना' । उ०—नथुना से जादू केरि बहुत सुधावै फूल ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ३६६ ।

नथूनी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नथुनी' । उ०—छोटी नथूनी बड़े मुठियान बड़ी धुलियान बड़ी सुपरे है ।—ठाकुर०, पृ० ५ ।

नथूली^३—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नासाछिद्र । नथना । उ०—तनक तनक सी नाक नथूली । राजत नील सुषीत अँगूली ।—नद० प्र०, पृ० २४५ ।

नथ्य^४—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नथ' । उ०—बनी कि कँ नासिका, सु गध्य नथ्य नासिका ।—ह० रासो, पृ० २४ ।

नद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ी नदी अथवा ऐसी नदी जिसका ना पुल्लिङ्गवाची हो, जैसे, सोन, दामोदर, ब्रह्मपुत्र । उ०—मित्यो महानंद सोन सुहावन ।—तुलसी (शब्द०) । २. ए श्रृंग का नाम । ३. समुद्र (को०) । ४. मेघ । बादल (को०) ।

नदथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाद । गर्जन । २. बेल का ढकरना । ३. रुदन (को०) ।

नदन—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द करना । आवाज करना ।

नदनदीपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर । समुद्र ।

नदना^५—क्रि० प्र० [सं० नदन (= शब्द करना)] १ पशुओं व शब्द करना । रँभाना । बँवाना । उ०—महिषी सुरभि पू पय धारणि वृषभ नदत सानदा ।—रघुराज (शब्द०) । २. बजना । शब्द करना । उ०—(क) एक भोर जलद । माचे घहरारे मंजु एक भोर नाकन के नदत नगारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) नदत हुडुभि डका बदत मा हका, बसत लागत घंका कहत आगे ।—सूदन (शब्द०) ।

नदनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । बादल । २. सिंह । शेर । शब्द । आवाज । गर्जन । ४. स्तुति की ध्वनि (को०) । युद्ध । संग्राम (को०) ।

नदपति—[सं०] समुद्र (को०) ।

नदम—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास ।

नदर^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] नद या नदी के आसपास का प्रदेश ।

नदर^२—वि० जिसे किसी प्रकार का भय न हो । निडर ।

नदराज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नदान^६—वि० [फ़ा० नादान] बे समझ । बुद्धिहीन । उ०—दान दे रे जिय को नदान चिदई कान्हू, बसी सब रैन मोरि भव घर जान दे ।—देव (शब्द०) । २. छोटी उम्र का इतनी छोटी उम्र का जो ससार का व्यवहार बिल्कुल समझ सकता हो । उ०—(क) जो जसुमति तेँ जा पुकारें । लखि नदान तहँ हम ही हारें ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) भैया तोर निपट नदान छोटी ननदी ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३४० ।

नदामत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. पश्चात्ताप । २. लज्जित होने का भाव । हया । उ०—खोजे खलक नहिँ आप में । नाह्य नदामत को सहे ।—तुरसी० प्र०, पृ० २७ ।

नदारता^७—वि० [फ़ा० नदारद] दे० 'नदारद' ।

नदारद—वि० [फ़ा०] गायब । अप्रस्तुत । जो मौजूद न हो लुप्त । जैसे,—जब बस खोला तब उसमें रुपया पैसा न नदारद था ।

नदी—वि० [सं०] भाग्यशाली [को०] ।

नदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुति ।

नदिष्ठा^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी' । उ०—नदिष्ठा जोर भठ मयाह । भीम मुधंगम पय चलसाह ।—विद्यापति, पु० ३३३ ।

नदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी नदी या नाला [को०] ।

नदिवा^(२)—संज्ञा पुं० [सं० नदीव] बंगाल प्रांत का एक प्रसिद्ध नगर जो न्यायशास्त्र का विद्यापीठ माना जाता है ।

नदिवा^(३)—संज्ञा स्त्री० [सं० नदिका, अपवा हि० नदी + इया (अप०)] दे० 'नदी' ।

नदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जल का वह प्राकृतिक और भारी प्रवाह जो किसी बड़े पर्वत या जमाव या प्रादि से निकलकर किसी निश्चित मार्ग से होता हुआ प्रायः बारहों महीने बहता रहता हो । दरिया ।

विशेष—(क) पहाड़ों पर बरफ के गलने या वर्षा होने के कारण जो पानी एकत्र होता है वह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार नीचे की ओर ढलता और मैदानों में से होता हुआ प्रायः समुद्र तक पहुँचता है । कभी यह पानी अपनी स्वतंत्र धारा में समुद्र तक पहुँचता है और कभी समुद्र तक जानेवाली किसी दूसरी बड़ी धारा में मिल जाता है । जो धारा सीधी समुद्र तक पहुँचती है वह भौगोलिक परिभाषा में मुख्य नदी कहलाती है और जो दूसरी धारा में मिल जाती है वह सहायक नदी कहलाती है । ऐसा भी होता है कि नदी या तो जाकर किसी झील में मिल जाती है और या किसी रेतीले मैदान प्रादि में लुप्त हो जाती है जिस स्थान से नदी का प्रारंभ होता है उसे उसका उद्गम कहते हैं, जिस स्थान पर वह किसी दूसरी नदी से मिलती है उसे संगम कहते हैं और जिस स्थान पर वह समुद्र में मिलती है उसे मुहाना कहते हैं । नदी जिस मार्ग से बहती है वह मार्ग गति कहलाता है और उसके बहाव के कारण जमीन में जो गड्ढा बन जाता है वह गर्म कहलाता है । साधारणतः नदियाँ बारहों महीने बहती रहती हैं, पर छोटी नदियाँ गरमी के दिनों में बिलकुल सूख जाती हैं । वर्षा में प्रायः सभी नदियों का जल बहुत अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उन दिनों घास पास के प्रात का वर्षा का जल भी आकर उनमें मिल जाता है । इससे उसका पानी बहुत अधिक मटमैला भी होता है ।

(ख) 'नदी' वाचक शब्द से ईश, नाथ, प, पति, वर इत्यादि पति वाची शब्द या प्रत्यय लगाने से बहु 'समुद्र' वाची शब्द हो जाता है । जैसे, नदीश, सरिस्पति, आपगानाथ, सटिनीवर इत्यादि ।

पर्या०—सरि । सरिता । आपगा । तरगिणी । शैवलिनी । तटिनी । हृदिनी । घुनी । स्रोतस्वती । स्रवती । निम्नगा । निम्नरणी । सरस्वती । समुद्रगा । कूलवती । कूलंकपा । कलोलिनी । स्रोतस्विनी । श्रुपिकुल्या । स्रोतोवहा ।

यो०—नदीच = समुद्र ।

मुहा०—नदी नाथ संयोग = ऐसा संयोग जो बार बार न हो, कभी एक बार हलिकाफ हो जाय ।

२. किसी तरल पदार्थ का बड़ा प्रवाह । जैसे,—रक्त की नदी बह निकली ।

नदीकदंब—संज्ञा पुं० [सं० नदीकदम्ब] १. बड़ी मोरमुंडी । २. नदियों का समूह [को०] ।

नदीकांत—संज्ञा पुं० [सं० नदीकान्त] १. समुद्र । २. समुद्रपक्ष । ३. विपुवार नामक वृक्ष । ४. वरुण [को०] ।

नदीकाता—संज्ञा पुं० [सं० नदीकाता] १. जामुन का पेड़ । २. काकजमा ।

नदीकूल—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का तट [को०] ।

नदीकूलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेत ।

नदीकूट—संज्ञा पुं० [सं० नदीकूट] नेपाली बोझी का एक तीर्थ । विशेष—कहते हैं कि एक विविष्ट योग में यही स्नान करने से एश्वर्य की शक्ति और शत्रुओं का नाश होता है ।

नदीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के दोनों किनारों के बीच का स्थान । यह गड्ढा स्थान से होकर नदी का पानी बहता है ।

नदीगूलर—संज्ञा पुं० [हि०] सिंघा ।

नदीज^(१)—संज्ञा पुं० [सं०] १. कासा सुरमा । २. सेषा नमक । ३. मजुन वृक्ष । ४. समुद्रफल । ५. महामारक मनुष्य जो गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ६. कमल [को०] ।

नदीज^(२)—वि० जो नदी से उत्पन्न हुआ हो ।

नदीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निमय वृक्ष । धरणी का पेड़ ।

नदीजामुन—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी + हि० जामुन] छोटा जामुन ।

नदीतर—संज्ञा पुं० [सं०] नदी पार करना [को०] ।

नदीतरस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] यह स्थान जहाँ से नदी पार की जाय । याट ।

नदीदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम ।

नदीदुग—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के बीच में या द्वीप में बना हुआ दुग । ऐसा दुग से निरुद्ध माना गया है ।

नदीदोह—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो नदी पार करने के बदले में दिया जाय । नदी पार होने का महसूल ।

नदीधर—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा को मस्तक पर धारण करनेवाले, शिव । महादेव ।

नदीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. वरुण देवता । ३. वरुण या बन्ना नामक जगती पेड़ जो पलाश की तरह का होता है ।

नदीनिवास^(१)—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । उ०—नदीनिवास उत्तरा, प्राण एक विधि ।—ढोला, पू० २३० ।

नदीनिष्पाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसका आवस कड़ा होता है । बोरो ।

विशेष—वैद्यक में यह कड़वा, कसैला, भारी, रुखा, वात और कफ उत्पन्न करनेवाला और विष दोष-नाशक माना गया है ।

नदीपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र । २. वरुण ।

नदीपूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नदी जिसके किनारे बाढ़ आने से डूबे हों [को०] ।

नदीभल्लातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मिलाबाँ जो जल के किनारे होता है ।

विशेष—इसके पत्ते गूमा के पत्तों के समान होते हैं, और फल लाल रंग का होता है । वैद्यक में यह कटु, प्रा, कसैवा, मधुर, ठंडा, ग्राही वातकारक और कफपित्त, रक्तपित्त तथा श्लेष्मनाशक माना जाता है ।

नदीभव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक ।

नदीभव—वि० जो नदी में उत्पन्न हुआ हो ।

नदीभाषक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मानकद या मानकचू नामक कद ।

नदीमारुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह देश जहाँ की खेती बारी का सारा काम केवल नदी के जल से होता हो और जहाँ वर्षा के जल की कोई आवश्यकता न हो । जैसे, मिस्र देश ।

नदीमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ समुद्र में नदी गिरती हो । नदी का मुहाना

नदीरय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नदी का प्रवाह या धारा [को०] ।

नदीवंक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नदीवङ्क] नदी का मोड़ [को०] ।

नदीवट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बट या बड़ का पेड़ ।

नदीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नदीध्व—वि० [सं०] १. नदी में स्नान करनेवाला । २. नदी के सकटपूर्ण स्थलों, गहराई और धारा को जाननेवाला । ३. अनुभव । ४. दक्ष । कुशल । पारगत [को०] ।

नदीसर्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रजुंन वृक्ष ।

नदेया—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भूमि जवू । छोटी जामुन ।

नदोला—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नाद + ओला (प्रत्य०)] मिट्टी की छोटी नाँद ।

नद^०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाद] दे० 'नाद' । उ०—हलकत घाव वाहत घोर । क्लिप्त नद नारद बीर ।—पृ० २१०, १६६० ।

नद^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नद] दे० 'नद' ।

नदना^०—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'नदना' ।

नदी^०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी' ।

नद्ध^१—वि० [सं०] १. बंधा हुआ । बद्ध । नड़ा हुआ । नया हुआ । २. छिपा हुआ । भीतरी तौर पर छुना हुआ या गुंथा हुआ [को०] । ३. संयुक्त । संबद्ध [को०] ।

नद्ध^२—सञ्ज्ञा पुं० नध । बंधन । प्रथि । गाँठ [को०] ।

नद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बाँधने या गाँठ देने की क्रिया या स्थिति [को०] ।

नधी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नद्धि] दे० 'नाधा' ।

नध्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़े की डोरी । ताँत । २. चमड़े की पट्टी [को०] ।

नध—वि० [सं०] १. नदी से उत्पन्न । २. नदी संबंधी [को०] ।

नद्याम्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समठिला । कोकुभा का पीषा ।

नद्यावर्तक—सञ्ज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में यात्रा के लिये एक शुभ योग ।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब बुध अपनी राशि पर हो और बृहस्पति या शुक्र लग्न में हो अथवा मंगल उच्चस्थित हो और शनि कुम्भ राशि में हो । कहते हैं, इस योग में यात्रा करने से सब प्रकार के शत्रुओं का बहुत सहज में नाश हो जाता है । इसे नद्यावर्तक भी कहते हैं ।

नद्यत्सृष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो नदी के हट जाने से निकल आया हो । चर । गगवरार ।

नधना—क्रि० प्र० [सं० नद्ध + हिं० ना (प्रत्य०)] १. रस्सी या तस्मे के द्वारा बेल, घोड़े आदि का उस वस्तु के साथ जुड़ना या बंधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना हो । जुतना । जैसे, बेल का गाड़ी या हल में नधना ।

मुहा०—काम में नधना = काम में लगना । जैसे,—तुम तो दिन रात काम में नधे रहते हो ।

२. जुड़ना । सबद्ध होना । ३. किसी कार्य का अनुष्ठित होना । काम का ठनना । जैसे,—जब यह काम नध गया है तब इसे पूरा हो कर डालना चाहिए ।

नधाना^०—क्रि० प्र० [हिं० नाधना का सक० रूप] दे० 'नाधना' । उ०—तीरथ बरत के बेला हो, मन देहु नधाय ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३६ ।

नधाव—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नधना] सिचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाने में ऊपर उलीचने के लिये जो कई गड्ढे बनाने पड़ते हैं उनमें सबसे नीचे का गड्ढा ।

ननंद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] दे० 'ननद' ।

ननंदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] दे० 'ननद' [को०] ।

ननंद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] ननद । पति की बहन ।

नन^०—अव्य० [सं० ननु] दे० 'ननु' । उ०—नन चले चित्त ज्यों ज्यों धवल, करत क्रिया त्यों त्यों प्रमित ।—ह० रासो, पृ० २५ ।

ननका^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नन्हा' ।

ननकारना^०—क्रि० प्र० [हिं० न + करना] इनकार करना । अस्वीकार करना । मज़ूर न करना ।

ननकारी^०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] नकारने की क्रिया । नकार । अस्वीकार । उ०—कहि जोधराज यह भंस मैं ननकारी नाहिन करत ।—हम्मीर रा०, पृ० १६३ ।

ननकारु^०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] नकारने का भाव । अस्वीकार । उ०—जिह सिमरन नाही ननकार ।—कबीर श०, पृ० २६० ।

ननकिलाटा^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० खांग क्लाय] एक प्रकार का सूती कपड़ा । उ०—ननकिलाट दस गज ।—मैला०, पृ० १०५ ।

ननकिलाठ^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ननकिलाट' ।

ननद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] पति की बहन ।

ननदिया^०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० ननद + इया (प्रत्य०)] ननद । पति

की बहन । उ०—उठो मोरी लहुरी ननदिया सुम ठकुराइन हो ।—घरम०, पृ० ६३ ।

ननदी—सच्चा स्त्री० [सं० ननन्द] दे० 'ननद' ।

ननदीई—सच्चा पुं० [सं० ननन्दपति या ननन्दु पति, प्रा० एनदा + वह (=पति), हिं० ननद + ओई (प्रत्य०)] ननद का पति । पति का बहुव्रीहि ।

ननसार—सच्चा स्त्री० [हिं० नाना + शाला] ननिहाल । नाना का घर । उ०—रामचन्द्र लक्ष्मण सहित घर राखे दशरथ । बिदा कियो ननसार को संग पा पुष्प भररथ ।—केशव (शब्द०) ।

नना—सच्चा स्त्री० [सं०] १. माता । २. कन्या । लड़का । ३. वाक्य ।

ननिआउर्रा—सच्चा पुं० [हिं०] दे० 'ननिहाल' ।

ननिआउर्रा—सच्चा पुं० [हिं०] दे० 'ननिहाल' ।

ननियाससुर—सच्चा पुं० [हिं० नानी + इया (प्रत्य०) + ससुर] स्त्री या पति का नाना ।

ननिया सास—सच्चा स्त्री० [हिं० नाना + या (प्रत्य०) + सास] स्त्री या पति की नानी ।

ननिहारी—सच्चा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की हँट ।

ननिहाल—सच्चा पुं० [हिं० नाना + शाला] नाना का घर । ननसार ।

ननु—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका व्यवहार कुछ पूछने, सदेह प्रकट करने अथवा वाक्य के प्रारम्भ में किया जाता है (पव०) ।

ननुआ—वि० [सं० लावण्य] सुंदर । सलोना । उ०—ननुआ नयन नलिन जनु अनुपम बक निहारइ धीरा ।—विद्यापति, पृ० ६२७ ।

ननुकारना—क्रि० प्र० [हिं०] इनकार करना । मस्वीकार करना । उ०—जनु ननुकारति मानिनि तिया । भान युवति रत जाग्यो पिया ।—नद० प्र०, पृ० ११६ ।

ननुनच—क्रि० वि० [सं० ननु + नच] भानाकानी । भ्रामापीछा । उ०—द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों के वध करने में भी उन्होंने ननुनच नहीं की ।—श्री० श० महा०, पृ० २३४ ।

ननोई—सच्चा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली घान जो बिना जोते बोए वर्षा में जलाशयों में स्वयं पैदा होता है । पसही । तिन्नी ।

नन्ना^१—सच्चा पुं० [हिं०] दे० 'नाना' ।

नन्ना^२—वि० [हिं०] दे० 'नन्हा' ।

नन्यौरा—सच्चा पुं० [हिं०] दे० 'ननिहाल' ।

नन्हा—वि० [सं० न्यञ्च या न्यून] [वि० स्त्री० नन्हीं] छोटा ।

मुहा०—नन्हा सा बड़हत छोटा । जैसे, नन्हा सा बच्चा, नन्हा सा हाथ ।

नन्हाई—सच्चा स्त्री० [हिं० नन्हा + ई (प्रत्य०)] १. छोटापन । छोटाई । २. अप्रतिष्ठा । बदनामी । हेठी । उ०—(क) वृद्ध वयस सुत भयो नन्हाई । नदमहर को करे नन्हाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) ब्रज परगन सरदार महर तू तिनकी करत नन्हाई ।—सूर (शब्द०) ।

नन्हियाँ—सच्चा पुं० [हिं० नन्हा] १. एक प्रकार का घान । २. इस घान का बावज ।

नन्हेया—वि० [हिं० नन्हा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'नन्हा' । उ०—छुटकी देहि नचावे सुत जानि नन्हेया ।—सूर (शब्द०) ।

नपत्ता—सच्चा स्त्री० [हिं०] दे० 'नपाई' ।

नपत्ता—सच्चा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसके डेनो पर कासी या साल बित्तियाँ होती हैं ।

नपना^१—सच्चा पुं० [हिं० नाप] दे० 'नपुमा' ।

नपना^२—क्रि० प्र० [हिं०] नप जाना । नापने का काम होना ।

नपरका—सच्चा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और पेट लाल, और पैर तथा चोंच पीली होती है ।

नपराजित—सच्चा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

नपाई—सच्चा स्त्री० [हिं० नाप + आई (प्रत्य०)] १. नापने की मजदूरी ।

नपाक—वि० [क्रा० नापाक] अपवित्र । अशुद्ध ।

नपात—सच्चा पुं० [सं०] देवयान पथ ।

नपुंस—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'नपुंसक' [को०] ।

नपुंसक—सच्चा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार वह पुरुष जिसमें कामेच्छा विलुप्त न हो अथवा बहुत ही कम हो और किसी विशेष उपाय से जाग्रत हो ।

विशेष—नपुंसक पाँच प्रकार के माने गए हैं । आसेक, सुगंधी, कुभीक, ईपंक और पट ।

२. वह जो न पुरुष हो न स्त्री । बट । कसीब । हिजड़ा । नामर्द ।

विशेष—मनुष्यों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो न तो पूरे पुरुष कहें जा सकते हैं न स्त्री । उनमें मूत्र की कोई इद्रिय स्पष्ट नहीं होती और न मूँछ दाढ़ी या पुरुषत्व ही होता है । वैद्यक के अनुसार जब पिता का धीर्य और माता का रज दोनों समान होते हैं तब सतान नपुंसक होती है ।

३. कायर । डरपोर । (क्व०) । ४. संस्कृत व्याकरण में एक लिंग (को०) ।

नपुंसकता—सच्चा स्त्री० [सं०] १. नपुंसक होने का भाव । हिजड़ापन । २. एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का धीर्य विलुप्त नष्ट हो जाता है और वह स्त्रीसंभोग के योग्य नहीं रह जाता । नामर्दी ।

नपुंसकत्व—सच्चा पुं० [सं०] नामर्दी । नपुंसकता ।

नपुंसकमंत्र—सच्चा पुं० [सं० नपुंसक मन्त्र] जैनियों के अनुसार वह मन्त्र जिसके मंत्र में 'नम' हो ।

नपुंसक वेद—सच्चा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से स्त्री के साथ भी संभोग करने की इच्छा होती है और बालक या पुरुष के साथ भी ।

नपुआ—सच्चा पुं० [हिं० नापने उपा (प्रत्य०)] नापने का पात्र । वह वस्तु जिसमें रखकर कोई चीज नापी जाय । मान ।

नपुत्री—वि० [हिं०] दे० 'नपुत्री' ।

नपुँसा—सच्चा पुं० [हिं०] दे० 'नपुंसक' । उ०—क्या किरपव

सूँजी की माया नाव न होय नपुंसे से ।—सुंदर० प्र०,
भा० १, पु० २३ ।

नप्ता—सब्बा स्त्री० [सं० नप्ट] [स्त्री० नप्ती] लड़की या लड़के
की संतान । नाती या पोता ।

नप्टका—सब्बा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

विशेष—इसका मांस हृषका, ठंडा, मोठा, कसेला और
दोषनाशक माना जाता है ।

नप्स०—सब्बा पुं० [प्र० नप्स] काम । वासना । शहवत । उ०—
(क) यह बदगी तब होयगी इस नप्स की गहि मार ।—
सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २८३ (ख) नप्स सेतान की
प्रापुनी कैद करि क्या दुनी में परधा खाइ गोता । है गुनहुगार
भी गुनह ही करत है खाइगा मार सब फिरैगा रोता ।—
सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ३६५ ।

नफर—सब्बा पुं० [प्र० नफर] १ दास । सेवक । जैसे,—नीकर के
भागे चाकर, चाकर के भागे नफर । उ०—कबिरा भूलि
बिगारिया करि करि मैला चित्त । सहब गरुषा चाहिए
नफर बिगारो नित ।—कबीर (शब्द०) । २. व्यक्ति ।
जैसे, दस नफर मजदूर ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार केवल बहुत छोटा
काम करनेवालों की संख्या आदि प्रकट करने के लिये
होता है ।

नफरत—सब्बा स्त्री० [प्र० नफरत] घिन । घृणा ।

नफरी—सब्बा स्त्री० [प्रा० नफ्री] फटकार । लानत [को०] ।

नफरी—सब्बा स्त्री० [प्रा० नफरी] १ एक मजदूर की एक दिन की
मजदूरी । २ एक मजदूर का एक दिन का काम । ३ मजदूरी
का दिन । जैसे,—दो नफरी में वह चौकी तैयार हो जायगी ।

नफस—सब्बा पुं० [प्र० नफस] दम । श्वास । साँस । [को०] ।

नफसानफसी—सब्बा स्त्री० [प्र० नफस] १ वह विवाद या झगडा
जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का ध्यान रखकर किया जाय ।
खीचतान । २. चलाचली । वैमनस्य । लड़ाई ।

नफा—सब्बा पुं० [प्र० नफा] लाभ । फायदा । उ०—(क) भजा
मोल ले बीचन देई । चमैं नफा पर अपना लेई ।—रघुनाथ
(शब्द०) । (ख) घनहित रखम किहिस अपारा । होय
नफा नही घटा निहारा ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।

नफाखोर—वि० [प्र० नफा + प्रा० खोर] १. लाभ या नफा खाने
वाला । २. अनुचित रीति से मुनाफा करने या कमानेवाला ।
उ०—क्या हिंदू क्या मुसलमान, हैं एक प्राण, है सूख बही ।
हिंदू मुसलिम नफाखोर की घन बीखत में भेद नहीं ।—
हस०, पु० ३३ ।

नफासत—सब्बा स्त्री० [प्र० नफासत] नफीस होने का भाव । उमदापन ।

नफीरी—सब्बा स्त्री० [प्रा० नफीरी] तुरही । शहनाई ।

नफीस—वि० [प्र० नफीस] १ उत्तम । उमदा । बढ़िया । २ साफ ।
स्वच्छ । ३ जिसकी बनावट बहुत अच्छी हो । सुंदर ।

नफेरी०—सब्बा स्त्री [हि०] दे० 'नफीरी' । उ०—सितार कमा
भर मुहचगा । ताल मृदग नफेरी संग ।—कबीर सा
पु० २४६ ।

नफेरि०—सब्बा स्त्री० [हि०] दे० 'नफीरी' । उ०—नब नह नपे
भेरी सभाल । तरकत तेग मनो बिजु वाल ।—पु० २।
१२।८० ।

नफस—सब्बा पुं० [प्र० नफस] १. अस्तित्व । २ सत्यता ।
कामेच्छा । कामवासना । ४ खुलासा । ५ लिंग । शिष्ट
६ आला [को०] ।

यौ०—नफसकुश = इन्द्रियनिग्रही । नफसकुशी = इन्द्रियनिग्रह
नफसपरस्त = कामी । विषयी । नफसपरस्ती = कामुकता
लपटता । नफसमजमून = लेख का अभिप्राय या खुलासा ।

नफसानफसी—सब्बा स्त्री० [हि०] दे० 'नफसानफसी' ।

नफसानियत—सब्बा स्त्री० [प्र० नफसानियत] १ कामशक्ति ।
अभिमान [को०] ।

नफसानी—वि० [प्र० नफसानी] वासनात्मक [को०] ।

नबात—सब्बा स्त्री० [प्र०] वनस्पति । पेड़ पीधे । उ०—वो बहरे क
हैं व भावेहयात । हुए जिदा इन्सा व हैवा नबात ।—दक्खि
पु० २१३ ।

नबी—सब्बा पुं० [प्र०] ईश्वर का दूत । पैगंबर । रसूल ।

नबीन०—वि० [हि०] दे० 'नवीन' । उ०—बेग खलो, न विर
करो, लखि बाल नवेखि की नेह नबीनो ।—मति० प्र
पु० ११२ ।

नवेड़ना—क्रि० सं० [सं० निवारण, हि० निपटाना] १ निपटा
तै करना । (झगडा आदि) समाप्त करना । जैसे,—तुम्हें दू
की क्या पड़ी है, तुम अपनी नवेड़ो । २ अपने मतलब
खीज ले लेना और बाकी छोड़ देना । छुटना । (क्व०)
दे० 'निबेरना' ।

नवेड़ा—सब्बा पुं० [हि० नवेड़ना] फैसला । न्याय । निपटारा ।

नवेरना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'नवेड़ना' ।

नवेरा—सब्बा पुं० [हि०] दे० 'नवेड़ा' ।

नवेली०—वि० स्त्री० [हि० नवेली] १ नई । नवीना । २. ।
उम्र की । उ०—दिप देह दीपति गयो दीप बयारि बुझा
अचल छोट किए सऊ चली नवेली जाइ ।—मति० प्र
पु० ४५२ ।

नव्दीगर—सब्बा पुं० [प्रा० नमदागर] चारजामा बनानेवाला आदर्भ
नब्ज—सब्बा स्त्री० [प्र० नब्ज] हाथ की वह रक्तवहा नाली जिस
चाल से रोग की पहचान की जाती है । नाड़ी ।

क्रि० प्र०—देखना ।—दिलाना ।

मुहा०—नब्ज चलाना = नाड़ी में गति होना । नब्ज न रहना
नाड़ी की गति का अन्त हो जाना । नाड़ी में गति न
जाना । प्राण न रहना । नब्ज छूटना = दे० 'नब्ज न रहना' ।

नब्बे—वि० [सं० नवति] जो गिनती में पचास और बासीस ।
सौ से दस कम ।

नभ्वे^२—सखा पुं० [सं० नवति] चालिस श्रीर पचास की सख्या या एक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६० ।

नभःकेतन—सखा पुं० [सं०] सूर्य ।

नभःक्रान्त—सखा पुं० [सं० नभःक्रान्त] सिंह [को०] ।

नभःक्रांती—सखा पुं० [सं० नभःक्रान्तिन्] सिंह ।

नभःपाथ—सखा पुं० [सं० नभःपाथ] सूर्य ।

नभःप्रभेद—सखा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

विशेष—ये विरूप के वंशज थे । ऋग्वेद में इनके कई मंत्र मिलते हैं ।

नभःप्राण—सखा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

नभःश्वास—सखा पुं० [सं०] वायु । हवा [को०] ।

नभःसद्—सखा पुं० [सं०] १ देवता । २ आकाश में विचरनेवाले पक्षी आदि ।

नभःसरित्—सखा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा ।

नभःसुत—सखा पुं० [सं०] पवन । हवा ।

नभःस्थल—सखा पुं० [सं०] १. शिव । २. आकाश [को०] ।

नभःस्थित^१—वि० [सं०] जो आकाश में स्थित हो । आकाशस्थ [को०] ।

नभःस्थित^२—सखा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

नभःस्पृक्—वि० [सं० नभःस्पृक्] गगनचुंबी । आकाश को छूनेवाला [को०] ।

नभः^१—सखा पुं० [सं० नभः] १ पञ्च तत्त्व में से एक । आकाश । आसमान ।

पर्या०—आकाश । गगन । व्योम ।

२ शून्य स्थान । आकाश । ३ शून्य । सुप्ता । सिंघर । ४ श्रावण मास । सावन का महीना । ५ भादों का महीना । उ०—नभसित हरिश्चत करो नरेशा ।—रघुनाथ (शब्द०) । ६ आश्रय । आघार । ७ पास । निकट । नजदीक । उ०—नभ आश्रय नभ भाद्रपद नभ श्रावण को मास । नभ आकाश नभ निकट ही घट घट रमा निवास ।—नददास (शब्द०) । ८ राजा नल के एक पुत्र का नाम । ९ हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के वंश के एक राजा का नाम । १० हरिवंश के अनुसार चाक्षुस मुनि के एक पुत्र का नाम । ११. चाक्षुस मन्वन्तर के सप्तविंशों में से एक का नाम । १२ शिव । महादेव । १३ अन्नक । १४, जल । १५ जन्मकुडली में लग्न स्थान से दसवाँ स्थान । १६ मेघ । बादल । १७ वर्षा । १८ मृणाल सुत्र । कमल की जड़ के सूत्र या सुतला । १९ विष-तनु । २० वाष्प । कुहरा [को०] । २१ जीवन की अवधि । आयु [को०] । २२. घ्राण [को०] ।

नभः^२—वि० [सं०] हिंसक ।

नभग^१—सखा पुं० [सं०] १ पक्षी । २ हवा । ३ बादल । ४ भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम ।

नभग^२—वि० [सं०] १ आकाशगामी । आकाश में विचरनेवाला । २ आन्यहीन । अभागा ।

नभगनाथ—सखा पुं० [सं०] गरुड़ । उ०—बोलेउ कागमुसुहि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ।—मानस, ७।७० ।

नभगामी—सखा पुं० [सं० नभोगामिन्] १ चंद्रमा । (डि०) । २ पक्षी । ३. देवता । ४ सूर्य । ५ तारा ।

नभगेश—सखा पुं० [सं०] गरुड़ ।

नभचर—सखा पुं० [हि० नभ + सं० चर] दे० 'नभचर' ।

नभधुज^(७)—सखा पुं० [सं० नभध्वज] मेघ । बादल ।

नभध्वज—सखा पुं० [हि० नभ + सं० ध्वज] दे० 'नभोध्वज' ।

नभनदी—सखा स्त्री० [सं० नभोनदी] आकाशगंगा । उ०—कहै 'मतिराम' नभनदी के कुसुम सम, उठै उठगन सुठ अनिल उढाये तैं ।—मति० ग्र०, पृ० ३८६ ।

नभनीरप—सखा पुं० [सं० नभनीरप] चातक । पपीहा ।

नभश्चक्षु—सखा पुं० [सं० नभश्चक्षुस] सूर्य ।

नभश्चमस—सखा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. इंद्रजाल ।

नभश्चर^१—सखा पुं० [सं०] १. पक्षी । २. बादल । ३. हवा ४ देवता, गंधर्व और ग्रह आदि ।

नभश्चर^२—वि० आकाश में चलनेवाला ।

नभसंगम—सखा पुं० [सं० नभसङ्गम] चिडिया । पक्षी ।

नभस^१—सखा पुं० [सं०] १ हरिवंश के अनुसार दसवें मन्वन्तर के सप्तविंशों में से एक का नाम । २. आकाश [को०] । ३ पावस [को०] । ४ समुद्र [को०] ।

नभस^२—वि० बाष्पमय । कुहरेवाला [को०] ।

नभस्तल—सखा पुं० [सं०] १ आकाश का निचला भाग । २ वायुमंडल [को०] ।

नभस्थल—सखा पुं० [सं०] १ आकाश । २ शिव ।

नभस्थली—सखा स्त्री० [सं०] आकाश । उ०—उसके ऊपर है नभस्थली ।—साकेत, पृ० ३२१ ।

नभस्थित^१—सखा पुं० [सं०] एक नरक का नाम ।

नभस्थित^२—वि० जो आकाश में हो । आकाश में उहरा हुआ ।

नभस्मय—सखा पुं० [सं०] सूर्य ।

नभस्य^१—सखा पुं० [सं०] १ भादों का महीना । २ हरिवंश के अनुसार स्वरोचिष मनु के एक पुत्र का नाम ।

नभस्य^२—वि० कुहरेवाला । वाष्पमय [को०] ।

नभस्वान्—सखा पुं० [सं० नभस्वत्] वायु । हवा ।

नभाक्—संज्ञा पुं० [सं०] १ भ्रंशरा । भ्रंशकार । २ राह । ३. एक ऋषि का नाम । ४ मेघ । बादल [को०] । ५. आकाश [को०] ।

नभि—सखा स्त्री० [सं०] पहिया । चक्र ।

नभोग—सखा पुं० [सं०] १ आकाश में चलनेवाले पक्षी, देवता, ग्रह आदि । २ जन्मकुडली में लग्नस्थान से दसवाँ स्थान । ३ दसवें मन्वन्तर के सप्तविंशों में से एक का नाम ।

नभोगति—सखा पुं० [सं०] वह जो आकाश में चलता हो । जैसे, पक्षी, देवता, ग्रह आदि ।

नमोद—सङ्घा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक विश्वदेव का नाम ।

नमोदुह—सङ्घा पुं० [सं०] मेघ । बादल ।

नमोदेश—सङ्घा पुं० [सं०] आकाश । उ०—नमोदेश मे विमल चद्रमडल सा सस्थित विध्यपुष्ठ पर है मनोज्ञ वाघव प्रति विस्तृत ।—प्रभाजलि, पृ० ४२ ।

नमोद्वीप—सङ्घा पुं० [सं०] बादल ।

नमोध्वज—सङ्घा पुं० [सं०] बादल ।

नमोनदी—सङ्घा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा ।

नमोमणि—सङ्घा पुं० [सं०] सूर्य ।

नमोयोनि—सङ्घा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

नमोरूप—वि० [सं०] नीले रंग का । जिसका रंग नीला हो ।

नमोरेणु—सङ्घा पुं० [सं०] कुहरा । कुहासा ।

नमोलय^१—सङ्घा पुं० [सं०] धूम्र ।

नमोलय^२—वि० [सं०] जो आकाश में लीन हो जाय ।

नमोवट—सङ्घा पुं० [सं०] आकाशमंडल ।

नभ्य^१—सङ्घा पुं० [सं०] १ पहिए के बीच का भाग । २ घुरी ।
अथ । ३ वह तेल या चिकनाई जो पहिए में दी जाय ।

नभ्य^२—वि० १ मेघमय । २ वाष्पयुक्त । कुहरेवाला [को०] ।

नभ्यसी—सङ्घा पुं० [सं० नभस्य] भाद्रपद । भादों का महीना ।
उ०—फिरे दास भारी बुले राग बैन । मनो नभ्यसी मास केबिज गैन ।—पू० रा०, १४।११३ ।

नभ्राज—सङ्घा पुं० [सं०] बादल । मेघ ।

नमः^१—क्रि० वि० [सं० नमस्] प्रणाम या स्वागत आदि का व्यञ्जक शब्द [को०] ।

नमः^२—सङ्घा पुं० दे० 'नमः' [को०] ।

नमः^३—वि० [फा०] [सङ्घा नमी] गीला । तर । भीगा हुआ ।
आद्र ।

नमः^४—सङ्घा पुं० [सं० नमस्] १ नमस्व । २ त्याग । ३ अन्न । ४ वज्र । ५ यज्ञ । ६ स्तोत्र ।

नमक—सङ्घा पुं० [फा० या सं० लवणक] १. एक प्रसिद्ध खार पदार्थ जिसका व्यवहार भोज्य पदार्थों में एक प्रकार का स्वाद उत्पन्न करने के लिये थोड़े मान में होता है । लवण । नीन ।

विशेष—नमक ससार के प्रायः सभी भागों में दो रूपों में पाया जाता है—एक तो जमीन में, चट्टानों या स्तरों के रूप में और दूसरा समुद्रों, झीलों और तालाबों आदि के खारे जल में । भारत में पंजाब, कोहाट, तथा कांगड़े की मछी नामक रियासत में नमक को खाने हैं जिनमें से बहुत प्राचीन काल से नमक निकाला जाता है । सिंध भी नमक के लिये प्रसिद्ध था । इसी से वहाँ के नमक को सेंधव (सेंधा) कहते थे । पंजाब की खान का नमक भी सेंधा कहलाता है । यह प्रायः साफ और सफेद रंग का होता है और इसमें किसी प्रकार की गंध नहीं रहती । इसके प्रतिरिक्त समुद्र या झीलों के खारे

पानी आदि को सुखाकर भी कई प्रकार के नमक निकाले जाते हैं । इस प्रकार का नमक करकच कहलाता है । कहीं कहीं रेह या मिट्टी में से भी एक प्रकार का नमक निकाला जाता है जो खारी कहलाता है । एक और प्रकार का नमक होता है जो काला नमक कहलाता है । यह साधारण नमक को हड़, बहेड़े और सज्जी के साथ गलाकर बनाया जाता है । इसके प्रतिरिक्त शोषधि और रसायन आदि के काम के लिये और भी अनेक वनस्पतियों और दूसरे पदार्थों को जलाकर खार या नमक तैयार करते हैं । वैद्यक में सेंधव (सेंधा), शाकंभरी (सांभर), समुद्र-लवण (करकच), विहलवण सोवचंछ, (काला नमक, सोबर), काचलवण (नीली मिट्टी से बनाया हुआ कचिया नमक), झोदभिद, शोषर, रोमक और द्रोणी आदि कई प्रकार के लवण गिनाए गए हैं जिनमें से सेंधा नमक सबसे अच्छा माना गया है ।

मुहा०—नमक अदा करना = अपने पात्रक या स्वामी के उपकार का बदला चुकाना । मालिक के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना । (किसी का) नमक खाना = (किसी के द्वारा) पालित होना । (किसी का) दिया खाना । जैसे,—आपने पाँच बरस तक उनका नमक खाया है, आज अगर उन्होंने आपको दो बातें कह ही दी तो क्या हो गया ? नमक मिर्च मिलाना या लगाना = किसी बात को अधिक रोचक या प्रभावशाली बनाने के लिये उसमें अपनी ओर से भी कुछ बढ़ा देना । किसी बान को बढ़ाकर कहना । जैसे,—उन्होंने यहाँ का सारा हाल तो कह ही दिया, साथ ही अपनी तरफ से भी नमक मिर्च लगा दिया । नमक फूटकर निकलना = नमकहरामों की सजा मिलना । कृतघ्नता का दंड मिलना । नमक से या नमक पानी से अदा होना = दे० 'नमक अदा करना' । कटे पर नमक छिड़कना = किसी दुखी को और भी दुख देना । पीड़ित को और भी पीड़ित करना । नमक का सहारा = थोड़ा सहारा । थोड़ी सहायता ।

यौ०—नमकखार । नमकहराम । नमकहरामी । नमकहलाल । नमकहलाली ।

२ कुछ विशेष प्रकार का सौंदर्य जो अधिक मनोहर या प्रिय हो । लावण्य । सलोनापन ।

नमकखार—वि० [फा० नमकखार] नमक खानेवाला । पालित होनेवाला । जिसका किसी दूसरे के द्वारा पालवपोषण या जीविकानिर्वाह हो ।

नमकदान—सङ्घा पुं० [फा० नमकदान (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्ला० नमकदानो] बिसा हुआ नमक रखने का पात्र ।

नमकसार—सङ्घा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ नमक निकलता या बनता हो ।

नमकहराम—सङ्घा पुं० [फा० नमक + अ० हराम] वह जो किसी का दिया हुआ धन साकर उसी का झोह करे । अपने मालिकता को ही हाथ पड़वानेवाला अनुषंग । कृतघ्न ।

नमकहरामी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० नमक + प्र० हराम + ई (प्रत्य०)]
नमकहरामपन । कृतघ्नता ।

नमकहलाल—संज्ञा पुं० [फा० नमक + प्र० हलाल] वह जो अपने स्वामी या अन्नदाता का कार्य धर्मपूर्वक करे । सदा अपने मालिक की भलाई करनेवाला मनुष्य । स्वामिनिष्ठ । स्वामिमत्त ।

नमकहलाली—संज्ञा स्त्री० [फा० नमक + प्र० हलाल + फा० ई (प्रत्य०)] नमकहलाल होने का भाव । स्वामिनिष्ठा । स्वामिमत्ति ।

नमकीन^१—वि० [फा०] १ जिसमें नमक का सा स्वाद हो । जैसे,—
चने का साग नमकीन होता है । २ जिसमें नमक पड़ा हो ।
जैसे, नमकीन बुंदिया, नमकीन सुरमा । ३ जिसके चेहरे पर नमक हो । सुंदर । खूबसूरत । सखीना ।

नमकीन^२—संज्ञा पुं० वह पकवान आदि जिसमें नमक पड़ा हो ।
जैसे, समोसा, सेव, पापड़, दालमोट आदि ।

नमगीरा—संज्ञा पुं० [फा० नमगीरह्] वह कपड़ा जिसे घोस आदि से रसित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में तान देते हैं । २ पाल या तिरपाल आदि जिसे धूप और वर्षा से रसित रखने के लिये किसी स्थान के ऊपर तानते हैं ।

नमत^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभु । स्वामी । २ नट । अभिनेता ।
३ घुमा । ४ मेघ (को०) ।

नमत^२—वि० १ नम्र । जो झुके । २. वक्र । टेढ़ा (को०) ।

नमदा—संज्ञा पुं० [फा० नमदह्] जमाया हुआ ऊनी कंबल या कपड़ा ।

मुहा०—दुम में नमदा बाँधना = दे० 'दुम' के मुहा० ।

नमन^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नमनीय, नमित] १ प्रणाम ।
नमस्कार । २. झुकाव । ३ नमस्कार करना (को०) । ४ झुकने की क्रिया (को०) ।

नमन^२—वि० १. झुकनेवाला । झुका हुआ । २. पराजित होनेवाला ।
पराभूत । ३ झुकानेवाला । नत करवाला (को०) ।

नमना^१—क्रि० प्र० [सं० नमन] १. झुकना । २. प्रणाम करना ।
नमस्कार करना ।

नमनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नमन] दे० 'नमन' ।

नमनीय—वि० [सं०] १. नमस्कार करने योग्य । आदरणीय ।
पूजनीय । माननीय । जिसे नमस्कार किया जाय । उ०—
किन्नरी नदी सुनारि पन्नगी नगी कुमारि घासुरी घुरीन हू
निहारि नमनीय है ।—किशोर् (शब्द०) । २. जो झुक सके
या झुकाया जा सके ।

नमनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लचक । लोच । भंगिमा । उ०—मववहू
की पुलक भरी मृदु मृदु लज्जा उसके मुख पर प्रभासित
होकर उसे ऐसी कमनीय नमनीयता प्रदान कर रही थी जो
मेरे प्रति रक्तकण को एक अनिवंचनीय हर्ष की अनुभूति से
तरंगित करती थी ।—जिप्सी, पृ० १७३ ।

नमस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकना । नमन । २ प्रणाम । नमस्कार ।

३ त्याग । छोड़ देना । ४. यज्ञ । ५. अन्न । ६. वज्र ।
७ स्तोत्र ।

नमस्—वि० [सं०] प्रसन्न (को०) ।

नमस्कारना^१—क्रि० सं० [सं० नमस्कार से नामिक धातु]
नमस्कार करना ।

नमसित—वि० [सं०] जिसे नमस्कार किया गया हो । पूजित ।

नमस्करण—संज्ञा पुं० [सं०] आदरपूर्वक या श्रद्धापूर्वक नमस्कार
करने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

नमस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १ झुककर अभिवादन करना ।
प्रणाम । २ एक प्रकार का विष ।

नमस्कारो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लज्जावंती । सजानू । २
वराहक्रीता । ३. खदिरा या खदिरिका नामक छुप ।

नमस्कार्य—वि० [सं०] १. जो नमस्कार करने योग्य हो । पूज्य ।
बदनीय । २ जिसे नमस्कार किया जाय ।

नमस्कृत—वि० [सं०] जिसे आदर सहित नमस्कार किया
गया हो (को०) ।

नमस्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नमस्करण' (को०) ।

नमस्कृत्या—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'नमस्कार' ।

नमस्ते—[सं०] एक वाक्य जिसका अर्थ है—आपको नमस्कार है ।

नमस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ नमस्कार करने के योग्य । पूज्य ।
आदरणीय । २ नम्र । विनयशील (को०) ।

नमस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा । श्रद्धा । २ आदर ।
समान (को०) ।

नमास्त्यत—वि० [सं०] दे० 'नमसित' ।

नमस्त्यु—वि० [सं०] १ पूजा या श्रद्धा करनेवाला । २ आदर
मान करनेवाला (को०) ।

नमाज—संज्ञा स्त्री० [फा० नमाज, मि० सं० नमस्] मुसलमानों की
ईश्वर प्रार्थना जो नित्य पाँच बार होती है ।

विशेष—दैनिक पाँच बार की नमाज के प्रतिरिक्त सूर्य या
चंद्रग्रहण के समय, ईद के दिन, किसी के मरने पर तथा
इसी प्रकार के घोर अवसरों पर भी नमाज पढ़ी जाती है ।

क्रि० प्र०—प्रदा करना ।—गुजारना ।—पढ़ना ।

मुहा०—नमाज कजा होना = नियत समय पर नमाज न पढ़ा
जा सकना ।

नमाजगाह—संज्ञा स्त्री० [फा० नमाजगाह] मसजिद में वह जगह
जहाँ नमाज पढ़ी जाती है ।

नमाजबंद—संज्ञा पुं० [फा० नमाजबंद] कुरती की एक प्रकार
का पेश ।

नमाजी—संज्ञा पुं० [फा० नमाजी] १ नमाज पढ़नेवाला । २.
वह वस्त्र जिसपर खड़े होकर नमाज पढ़ी जाती है ।

नमाना^१—क्रि० सं० [सं० नमन] १. झुकाना । २ दबाकर
अपने अधीन करना । पस्त करना । काबू में करना ।

नमित—वि० [सं०] १. झुका हुआ । २ टेढ़ा । वक्र (को०) ।

नमिस—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा० नमिश्क] एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ दूध का फेन जो जाड़े में खाया जाता है।

विशेष—पहले दूध को उबाल लेते हैं तब उसमें चीनी या भिसरी, इलायची, केसर आदि मिलाकर रात भर उसे मयानी से मथते हैं जिससे फेन निकलता है।

नमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा०] गीलापन। आर्द्रता। तरी। जैसे,—इस जमीन में बहुत नमी है।

नमुचि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम। २. एक दानव का नाम जो विप्रचित्ति नामक दानव का पुत्र था।

विशेष—यह पहले इद्र का सखा था। इद्र ने इससे प्रतिज्ञा की थी कि मैं न तो तुम्हें दिन में मारूँगा और न रात में, न सूखे ऋतु से मारूँगा न गीले ऋतु से, पर पीछे इसने उनका बल हरण कर लिया था। इद्र ने सरस्वती और अश्विनी-कुमारों से समुद्र के भाग के समान एक बज्जाल लेकर उससे इसे मारा था।

यौ०—नमुचिद्विप्, नमुचिहर् = इद्र।

१. पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो शुभ और निशुभ का छोटा भाई था। ४ कामदेव।

नमुचिसूदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नमुचि को मारनेवाला इद्र।

नमूद—सञ्ज्ञा स्त्री० [क्रा० नमुद] १. आविर्भाव। २. धूमधाम। तड़क भटक। ३. उगना। ४. अस्तित्व। हस्ती। ५. ख्याति। घोहरत। उ०—माता, मुझे नाम नमूद की बहुत चाह नहीं है।—मान०, पृ० २७७।

नमूदार—वि० [क्रा०] जो उदित हुआ हो। प्रकट। दृग्गोचर।

नमूना—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० नमूनह] १. किसी बड़े या अधिक पदार्थ में से निकाला हुआ वह छोटा या थोड़ा अंश जिसका उपयोग उस मूल पदार्थ के गुण और स्वरूप आदि का ज्ञान कराने के लिये होता है। बानगी। जैसे, कपड़े का नमूना, चावल का नमूना। २. वह जिससे उसके सदृश दूसरी वस्तुओं के स्वरूप और गुण आदि का ज्ञान हो जाय। जैसे, नमूने का थान, नमूने की टोपी। ३. वह जिसके अनुकरण पर वैसी ही और वस्तुएँ बनाई जायें। ४. ढाँचा। ठाट। खाका।

नमेरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्राक्ष का पेड़। २. एक प्रकार का पुष्पाग।

नमेरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नमेरु'।

नमोगुरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण। २. दीक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

नम्य—वि० [सं०] १. दे० 'नमस्य'। २. झुकने या टेढ़ा होनेवाला [को०]।

नम्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नम्य + ता] झुकने या टेढ़ा होने की क्रिया या गुण [को०]।

नम्र—वि० [सं०] १. विनीत। जिसमें सम्रता हो। २. झुका हुआ। ३. वक्र। टेढ़ा [को०]। ४. पूजा करवाया [को०]। ५. अदालत [को०]।

नम्रक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बेत।

नम्रक^२—वि० नत। झुका हुआ। टेढ़ा [को०]।

नम्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नम्र होने का भाव।

नम्रत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नम्रता'।

नम्राङ्ग—वि० [सं० नम्राङ्ग] टेढ़ा। झुका हुआ [को०]।

नम्रित—वि० [सं०] झुका हुआ [को०]।

नय^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीति। २. सम्रता। ३. एक प्रकार का जुमा। ४. विष्णु। ५. जैन दर्शन में प्रमाणों द्वारा निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति।

विशेष—यह सात प्रकार की होती है—नैगम, समग्र, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुद्ध और एवम्भूत।

१. ले जाने की क्रिया या स्थिति [को०]। ७. नेतृत्व या नायकत्व करने की क्रिया या स्थिति [को०]। ८. राजनीति [को०]। ९. व्यवहार। चलावा [को०]। १०. सिद्धांत। मत [को०]। ११. दूरदर्शिता [को०]। १२. पद्धति। ढंग। विधि [को०]। १३. योजना [को०]। नैतिकता [को०]।

नय^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नय] सदी। उ०—इक भीजे चहुँसे पड़े बूढ़े बड़े हजार। केते भोगुन जग करत नव वय चढ़ती बार।—बिहारी (शब्द०)।

नय^३—वि० [हि०] नया। नवीन। उ०—नय मुखिय कुमुदिय अचित प्रमुदिय, सदा पत्त सुभासयं।—पृ० रा०, २४। ११६।

नयऋति^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नैऋत] १०. 'नैऋत'।

नयक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी व्यवस्था करनेवाला व्यक्ति। २. कुशल या विपुल राजनीतिज्ञ [को०]।

नयकारी^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नयकारी] २. नतकों के दल का नायक। नाचनेवालों का मुखिया। उ०—कितनी बार हुआ मैं तेरा नृत्य खेल दल नयकारी।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। २. नाचनेवाला। नचनिया। उ०—निज शिशुगण को मोद चक्र में साथ नचावे नयकारी।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

नयकोविद—वि० [सं०] १. नीतिनिपुण। २. राजनीति में कुशल [को०]।

नयग—वि० [सं०] नीति के अनुसार चलनेवाला या व्यवहार करनेवाला [को०]।

नयचक्षु—वि० [सं०] राजनीति में दक्ष। दूरदर्शी [को०]।

नयज्ञ—वि० [सं०] राजनीति में प्रवीण [को०]।

नयन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चक्षु। नेत्र। आँख।

यौ०—नयनगोचर।

विशेष—'नयन' के मुहाविरों के लिये देखो 'आँख' के मुहाविर।

२. ले जाना। ३. नेतृत्व करना [को०]। ४. शासन करना [को०]।

५. बिताना। यापन [को०]।

नयन^२—वि० १. ले जानेवाला। २. मार्गदर्शन करनेवाला। नायकत्व करनेवाला। ३. व्यवस्था करनेवाला [को०]।

नयन^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली।

नयनगोचर—वि० [सं०] दिखाई पड़नेवाला । जो आँखों के सामने हो । समक्ष ।

नयनपट—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आँख की पलक । उ०—छवि समुद्र हरि रूप बिलोकी । एकटक रहे नयनपट रोकी ।—तुलसी (शब्द०) ।

नयनाचल—सञ्ज्ञा पु० [सं० नयनाचल] १ आँख का कोना । २ तिरछी चितवन [को०] ।

नयनाल—सञ्ज्ञा पु० [सं० नयनाल] दे० 'नयनाचल' [को०] ।

नयना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कनौनिका । आँख की पुतली [को०] ।

नयना^२—क्रि० प्र० [सं० नयन] १ नम्र होना । २ झुकना । सटकना । उ०—नए जु फल फूलनि के भार । लगि लगि रही धरनि द्रुम डार ।—नंद० प्र०, पृ० २७६ । ३ नमस्कार करना ।

नयना^३—सञ्ज्ञा पु० [सं० नयन] आँख । नेत्र । चक्षु ।

नयनागर—वि० [सं०] नीतिज्ञ । नीतिनिपुण ।

नयनाभिघात—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आँख का एक रोग [को०] ।

नयनाभिराम—वि० [सं०] नयनों को सुंदर लगनेवाला । प्रिय-दर्शन [को०] ।

नयनामोषी—वि० [सं० नयनामोषिन्] आँखों को दृष्टिशून्य करनेवाला [को०] ।

नयनिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नयन] लोचनत्व । नेत्रों का धर्म । उ०—निखर उठी नीलिमा, नयनिमा सी मनत की ।—रजत०, पृ० १४१ ।

नयनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली ।

नयनी^२—वि० स्त्री० आँखवाली ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्द के मत में होता है । जैसे, मृगनयनी, कमलनयनी ।

नयनू—सञ्ज्ञा पु० [सं० नयनीत] १ भवखन । २ एक प्रकार की मलमल जिसपर सफेद सूत की बूटियाँ बनी होती हैं ।

नयनेता—वि०, सञ्ज्ञा पु० [सं० नयनेतृ] राजनीति का ज्ञाता [को०] ।

नयनौषध—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पुष्प कसीस । पीला कसीस ।

नयनोत्सव—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ दीपक । २ आँखों का आनंद । ३ सुदर्शन दृश्य या वस्तु [को०] ।

नयनोपांत—सञ्ज्ञा पु० [सं० नयनोपान्त] आँख की कोर । अग्रग [को०] ।

नयन^३—सञ्ज्ञा पु० [सं० नयन] दे० 'नयन' । उ०—घरे तृणदत्त कि दीन बयन्न । किये नियरूप सखे जु नयन ।—हु० रासो, पृ० ८ ।

नयपीठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शतरंज की बिसात [को०] ।

नयप्रयोग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] राजनीति में कुशलता । [को०] ।

नयवादी—वि० सञ्ज्ञा पु० [सं० नयवादिन्] राजनीतिज्ञ [को०] ।

नयविद्, नयविशारद—वि० सञ्ज्ञा पु० [सं०] राजनीतिज्ञ [को०] ।

नयर^३—सञ्ज्ञा पु० [सं० नगर, प्रा० नगर, नयर] शहर । पुर ।

नगर । उ०—जोयो छै तोडउ जेसलमेर । जउमो छइ नयर प्रयोध्या को देश ।—वी० रासो, पृ० ७ ।

नयशास्त्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ राजनीति शास्त्र । राजनीति विषयक कोई ग्रंथ । ३ नीतिविषयक ग्रंथ [को०] ।

नयशाली—वि० [सं० नयशालिन्] सदाचारवाला । विनयशील [को०] ।

नयशील—वि० [सं०] १ नीतिज्ञ । २ विनीत ।

नयसील^३—वि० [सं० नयनशील] १ नीतिज्ञ । २ विनीत । उ०—तुम कपीस भगद नल नीला । जामवत माहति नयसीला ।—तुलसी (शब्द०) ।

नया—वि० [सं० नव, मि० प्रा० नौ] १ जिसका सगठन, सृजन, आविष्कार या आविर्भाव बहुत हाल में हुआ हो । जो थोड़े समय से बना, चला या निकला हो । नवीन । नूतन । ताजा । हाल का । पुराना का उलटा । जैसे, नया कपड़ा, नया पान, नए विचार, नई (हाल की बनी या छपी हुई) किताब ।

मुहा०—नया करना = (१) कोई नया फल या फनाज मौसम में पहले पहल खाना । मौसम की नई चीज पहले पहल खाना (२) कपड़ा आदि फाड़ या जला देना । जैसे,—इसे कपड़ा पहनाओ वहीं नया करके रख देता है ।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः प्रथम बात मुँह से निकालने से बचने के लिये करती हैं ।

नया पुराना करना = (१) पुराना हिसाब साफ करके नया हिसाब चलाना (महाजनी) । (२) पुराने को हटाकर उसके स्थान पर नया करना या रखना ।

यौ०—नया नवेला = नवयुवक । नौजवान ।

२ 'जिसका अस्तित्व तो पहले से हो परंतु परिचय हाल में मिला हो । जो थोड़े समय से मालूम हुआ हो या सामने आया हो । जैसे,—(क) कोलकाता ने एक नए महाद्वीप का पता लगाया था । (ख) अशोक का एक नया शिलालेख मिला है । (ग) नए आदमी को देखकर यह सडका घबरा जाता है । ३. पहलेवाले से भिन्न । जो पहले था उसके स्थान पर आने-वाला दूसरा । जैसे,—(क) मैंने कल एक नया घोड़ा खरीदा है । (ख) बंगाल में नए लाट आए हैं । ४ जो पहले किसी के व्यवहार में न आया हो । जिससे पहले किसी ने काम न लिया हो । जैसे,—पहली किताब इसने खो दी थी, यह तो इसे नई लेकर दी गई है । ५ जिसका आरंभ पहले पहल प्रथवा फिर से, परंतु बहुत हाल में हुआ हो । जैसे, नई जिंदगी पाना, नए सिरे से कोई काम करना, नया खाँद देखना । ६ जिसका नामकरण किसी पुराने नाम पर हुआ हो । जिसका नाम किसी पुराने (स्थान आदि) के नाम पर रखा गया हो । जैसे, नया गोदाम, नई बस्ती, नया बाजार आदि ।

नयापन—सञ्ज्ञा पु० [सं० नव, हि० नया + पन (प्रत्य०)] नया होने का भाव । नवीनता । नूतनत्व ।

नयाबत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नयाबत] नायब का पद और कार्यालय ।

उ०—दिल्लीशाही जमाने में नयाबत का सदर मुकाम बरियागढ़ रक्ता गया था।—शुक्ल अमि० प्र०, पृ० ७१।

नयाम—सङ्गा पुं० [फा०] तलवार का म्यान। तलवार की खोल।

नय्या(उ)—सङ्गा स्त्री० [हिं०] देखो 'नैया'। उ०—निदय हलकोरों से डबमग बढ़ती मेरी नय्या।—हिल्लोल, पृ० १०२।

नरग—सङ्गा पुं० [सं० नारङ्ग] १ नारंगी का पेड़। २ पुरुषेद्रिय (को०)। ३ मुहासा।

नरंद(उ)—सङ्गा पुं० [सं० नरेन्द्र] राजा। उ०—प्रीत नरदा देह पण रीत समदा बंध।—रा० ह०, पृ० ४३।

नरंधि—सङ्गा पुं० [सं० नरन्धि] सासारिक जीवन [को०]।

नरंधिष—सङ्गा पुं० [सं० नरन्धिष] विष्णु [को०]।

नरम(उ)—वि० [फ्रा० नर्म] नरम। मुलायम। चिकना। कोमल। उ०—रेसमी डोरि पट्टी नरम। रहै सोत छहँ दुषित गरम।—पृ० रा०, ७।५८।

नर^१—सङ्गा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ शिव। महादेव। ३ अर्जुन। ४ धर्मराज और दक्षप्रजापति की एक कन्या से उत्पन्न एक पौराणिक ऋषि।

विशेष—पौराणिक गायानुसार यह ईश्वर के अशावतार माने जाते थे। ये और नारायण दोनों भाई थे। विशेष—दे० 'नरनारायण'।

५. एक देव योनि। ६ पुरुष। मर्द। आदमी। ७ एक प्रकार का क्षुप।

विशेष—इसे रायकपूर, रोहिस, सेंधिया और गघेल भी कहते हैं। विशेष—दे० 'गघेल'।

८ वह खूँटी जो छाया आदि जानने के लिये छड़े बल गाड़ी जाती है। शकु। लब। ९ सेवक। १०. गय राक्षस के पुत्र का नाम। ११ सुघृति के पुत्र का नाम। १२ भवमन्य के पुत्र का नाम। १३ दोहे का एक भेद जिसमें १५ गुरु और १८ लघु होते हैं। जैसे,—विश्वभर नामे नहीं, मही विश्व में नाहि। दुइ मँह भूठी कोन है, यह सणय जिय माहि।—(शब्द०)। १४ छप्पय का एक भेद जिसमें १० गुरु और १३ लघु होते हैं। १५ मनुष्य। आदमी (को०)। १६ शतरज का मोहरा (को०)। १७ परम पुरुष। पुराण पुरुष (को०)। १८ आदमी की लबाई का परिमाण। पुरुष। १९. घोड़ा (को०)। २० जीवात्मा (को०)।

नर^२—वि० जो (प्राणी) पुरुष जाति का हो। मादा का उलटा।

नर^३—सङ्गा पुं० [हिं० नल] नल जिसमें से होकर पानी जाता है। उ०—नर की अरु नर नीर की एकै गति कर ओह। जेतो नीचे ह्वे चले तेतो ऊँचे होह।—विहारी (शब्द०)।

नर^४—सङ्गा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट'।

नर^५—सङ्गा पुं० [सं० नीर] जल। पानी। उ०—पुत्री वनिक सराप दिय भर पुहकर नर लोह। असुर होइ बीसल नृपति नरपल-चारी सोह।—पृ० रा०, १।४६१।

नरई—सङ्गा स्त्री० [देश०] १ गेहूँ की बाल या बठल। २ किसी घास का ठल जो अदर से पोखा हो। ३ एक प्रकार की

घास जो प्रायः जलाशयों के पास होती है। उ०—घोंघन के जाल, जामें नरई सेवाल ब्याल, ऐसे पापी ताल को मरास ले कहा करे —इतिहास, पृ० २७३।

नरकंत(उ)—सङ्गा पुं० [सं० नरकान्त] राजा। नृप।

नरक—सङ्गा पुं० [सं०] १ पुराणों और धर्मशास्त्रों आदि के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा पाप का फल भोगने के लिये भेजी जाती है। वह स्थान जहाँ दुष्कर्म करनेवालों की आत्मा दंड देने के लिये रखी जाती है। दोख। जहन्नुम।

विशेष—अनेक पुराणों और धर्मशास्त्रों में नरक के सबंध में अनेक बातें मिलती हैं। परंतु इनसे अधिक प्राचीन ग्रंथों में नरक का उल्लेख नहीं है। जान पड़ता है कि वैदिक काल में लोगों में इस प्रकार की नरक की भावना नहीं थी। मनुस्मृति में नरकों की संख्या २१ बतलाई गई है जिनके नाम ये हैं—तामिस्र, अघतामिस्र, रौरव, महारौरव, नरक, महानरक, कालसूत्र, संजीवन, महावीचि, तपन, प्रतापन, सहात, काकोल, कुड्मल, प्रतिभूतिक, लोहशकु, अजीष, शात्मली, वैतरणी, अक्षिपन्नवन और लोहदारक। इसी प्रकार भागवत में भी २१ नरकों का वर्णन है जिनके नाम इस प्रकार हैं—तामिस्र, अघतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुभीपाक, कालसूत्र, अक्षिपन्नवन, शूकरमुख, अधकूरा, कृमिभोजन, सदर्श, तप्तशूभि, वज्रकटक-शात्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीची और अय वान। इसके अतिरिक्त क्षार-मदन, रसोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, धवत्निरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख ये सात नरक और भी माने गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पुराणों में और भी अनेक नरककुंड माने गए हैं जैसे—वमाकुंड, तप्तकुंड, सूर्यकुंड, चक्रकुंड। कहते हैं, भिन्न भिन्न पाप करने के कारण मनुष्य की आत्मा को भिन्न भिन्न नरकों में सहस्रो वर्ष तक रहना पड़ता है जहाँ उन्हें बहुत अधिक पीड़ा दी जाती है। मुसलमानों और ईसाइयों में भी नरक की कल्पना है, परंतु उनमें नरक के इस प्रकार के भेद नहीं हैं। उनके विश्वास के अनुसार नरक में सदा भीषण आग जलती रहती है। वे स्वर्ग को ऊपर और नरक को नीचे (पाताल में) मानते हैं।

मुद्दा०—नरक होना = नरक में भेजा जाना। नरक भोगने का दंड होना।

क्रि० प्र०—भोगना।

२ बहुत ही गंदा स्थान। ३ वह स्थान जहाँ बहुत ही पीड़ा या कष्ट हो। ४ पुराणानुसार कलि के पुत्र का नाम जो कलि के पुत्र भय और कलि की पुत्री मृत्यु के गर्म से उत्पन्न हुआ था और जिसने अपनी बहुत यातना के साथ विवाह किया था। ५. विप्रचित्ति दानव के एक पुत्र का नाम। ६ निकृत् के गर्म से उत्पन्न अतृप्त के एक पुत्र का नाम। ७ दे० 'नरकासुर'।

नरककुंड—सङ्गा पुं० [सं० नरककुण्ड] नरक का वह कुंड जिसमें पापी जीव को मग्न करने के लिये डाला जाता है [को०]।

नरकगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार वह कर्म जिसके करने से मनुष्य को नरक में जाना पड़े ।

नरकगामी—वि० [सं० नरकगामिन्] नरक में जानेवाला ।

नरकधनुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी जिस दिन घर का सारा कूड़ा कतवार निकालकर फेंका जाता है ।

नरकचूर—संज्ञा पुं० [सं० नर + हि० कचूर] दे० 'कचूर' ।

नरकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरकातक' [को०] ।

नरकट—संज्ञा पुं० [सं० नल] बेंत की तरह का एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों की तरह पतली और लची होती हैं ।

विशेष—इसके ठठल लंबे, मजबूत और बीच से पोले होते हैं और कलमे तथा चटाइयाँ आदि बनाने के काम में आते हैं । इसके प्रतिरिक्त इसके ठठलों का उपयोग हुक्के की निगाहियाँ, दोरियाँ और बैठन के लिये मोड़े आदि बनाने और छतों पाटने में भी होता है । कहीं कहीं इसके रेशों से रस्से भी बनाए जाते हैं ।

नरकदेवता—संज्ञा पुं० [सं० नरक + देव + ता] निश्च्युति [को०] ।

नरकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] आदमी की खोपड़ी [को०] ।

नरकभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमपुरी । यमलोक की भूमि [को०] ।

नरकभूमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरक लोक (जैन) ।

नरकल—संज्ञा पुं० [सं० नल] दे० 'नरकट' ।

नरकस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट' ।

नरकस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नदी ।

नरकांतक—संज्ञा पुं० [सं० नरकान्तक] विष्णु ।

नरकामय—संज्ञा पुं० [सं०] १ नरक रूपी रोग । २ प्रेत [को०] ।

नरकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०] ।

नरकावास—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो नरक में हो । २ नरक में वास [को०] ।

नरकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध असुर ।

विशेष—कहते हैं, जिस समय भगवान् ने बाराह का अवतार लिया था उस समय उन्होंने पृथ्वी के साथ गमन किया था जिससे उसे गर्भ रह गया था । जब देवताओं को मालूम हुआ कि इस गर्भ में एक बच्चा और बली असुर है तब उन्होंने पृथ्वी का प्रसव रोक दिया । इसपर पृथ्वी ने भगवान् से प्रार्थना की । भगवान् ने वर दिया कि भेता में जब रामचंद्र के हाथ से रावण का वध होगा तब तुम्हारे गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा । और इस बीच में तुम्हें कोई कष्ट न होगा । जिस समय रावण मारा गया उस समय पृथ्वी के गर्भ से उसी स्थान पर इस असुर का जन्म हुआ जिस स्थान पर सीता का जन्म हुआ था । पृथ्वी के इस बासक को राजा जनक ने १६ वर्ष की आयु तक अपने यहाँ रखकर पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया था । जब नरक १६ वर्ष का हो गया तब पृथ्वी उसे जनक के यहाँ से ले आई । उस समय पृथ्वी ने

अपने पुत्र को उसके जन्म के सवध की सारी कथा सुनाई और विष्णु का स्मरण किया । विष्णु नरक को लेकर प्राग्योतिषपुर गए और उन्होंने उसे वहाँ का राजा बना दिया । उसी समय विदभं की राजकुमारी माया के साथ नरक का विवाह भी हो गया । उस समय विष्णु ने उसे समझा दिया था कि तुम ब्राह्मणों और देवताओं आदि के साथ कभी विरोध न करना, उन्होंने उसे एक दुर्भेद्य रख दिया था । नरक कुछ दिनों तक तो बहुत अच्छी तरह राज्य करता रहा पर जब बाणासुर धूमता फिरता प्राग्योतिषपुर पहुँचा तब नरक भी उसके ससर्ग के कारण दुष्ट हो गया और देवताओं आदि को कष्ट देने लगा । उसी अवसर पर एक बार वशिष्ठ कामाक्षा देवी का दर्शन करने के लिये वहाँ गए थे लेकिन नरक ने उन्हें नगर में घुसने तक नहीं दिया । इसपर वशिष्ठ ने बहुत नाराज होकर शाप दिया था कि शीघ्र ही तुम्हारे पिता के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी । इसपर बाणासुर की सम्मति से नरक तपस्या करने लगा जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि तुम्हें देवता, असुर, राक्षस आदि में से कोई न मार सकेगा और तुम्हारा राज्य सदा बना रहेगा । इसके बाद उसे भगदत्ता, महाशीर्ष, भस्वान और सुमाली नामक चार पुत्र हुए । तब उसने हयग्रीव, गुरु, और उपसुद आदि असुरों की सहायता से इंद्र को जीता और बहुत ही भयानकता करना प्रारम्भ किया । भूत में श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर प्राग्योतिषपुर पर चढ़ाई की और विष्णु ने अपने सुदशन चक्र से नरक का सिर काट डाला । कहते हैं कि इसके भाँडार में जितना धन आदि था उतना कुबेर के भाँडार में भी नहीं था । वह सब धन रत्न आदि श्रीकृष्ण अपने साथ द्वारका ले गए थे ।

नरकी—वि० [सं० नारकी] दे० 'नारकी' ।

नरकुल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट' ।

नरकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेशरिन्] तृसिंह जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं ।

नरकेसरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेसरिन्] दे० 'नरकेशरी' । उ०—
राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकालु ।
जीपक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु । —मानस १।२७ ।

नरकेहरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेसरिन्] दे० 'नरकेसरी' ।

नरकौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] मदारी का खेल ।

नरखड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] गला ।

नरगण^१—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक गण जिसमें उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा नक्षत्र सम्मिलित हैं ।

विशेष—इस गण में जन्म लेनेवाला सुशील और बुद्धिमान होता है । राक्षसगण के साथ इस गण का विरोध माना जाता है । इसे मनुष्य गण भी कहते हैं ।

नरगण^२—वि० [हि० नर + गण] दे० 'गण'-७ ।

नरगिस—संज्ञा पुं० [फा०] १. एक पौधा जो ठीक प्याज के पेड़ सा होता है।

विशेष—इसकी जड़ भी प्याज की गूँठ सी होती है। इसमें कटोरी के आकार का सफेद रंग का फूल लगता है जिसमें गोल कासा घन्ना होता है। नरगिस की सुगंध भी बड़ी मनोहर होती है। फारसी और उर्दू के कवि इस फूल के साथ आँख की उपमा देते हैं। इसके फूल का रंग बहुत अच्छा बनता है।

२ इस पौधे का फूल। उ०—कुतए हसरतदार हैं या रब किस्के, नस्त ताफूत में जो फूल लगे नरगिस के।—श्री निवास प्र०, पृ० ८५।

नरगिसी^१—संज्ञा पुं० [फा] १ एक प्रकार का कपड़ा जिसपर नरगिस की तरह के फूल बने होते हैं। २ एक प्रकार का तला हुआ भंडा।

नरगिसी^२—वि० नरगिस की तरह या रंग आदि का। नरगिस सबाही। उ०—घपनी नरगिसी निमानी आँखों का बीमार किया।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६२।

नरगिस(उ)—संज्ञा स्त्री० [फा० नरगिस] दे० 'नरगिस'। उ०—आधीन नरगिस श्री असोक।—ह० रासो, पृ० ६३।

नरन्धा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पाट या पटुआ।

नरजी(उ)—वि० [हि] तोल करनेवाला। उ०—नैन किये नरजी दिन रैन रतीबल कचन-रूपहि तोलै।—घनानंद, पृ० ५६२।

नरतना(उ)—क्रि० प्र० [सं० नर्तन] नाचना। उ०—जहँ चबल तुरंग नरतत मन मुग्ध बनावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

नरतात—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृपति। उ०—इमि अनेक उत्पात, भए श्यामपुर जात तैंह। तिहि न गिन्यो नरतात समर सूर विरूपात मुख।—गोपाल (शब्द०)।

नरत्राण—संज्ञा पुं० [म०] १ नरपाल। राजा। २ श्रीकृष्ण।

नरत्न—संज्ञा स्त्री० [म०] नर होने का भाव। नरता।

नरद^१—संज्ञा स्त्री० [फा० नर्द] १ चौसर खेलने की गोटी। उ०—तुरत डारिये मार नरद कच्ची करि दीजै।—गिरधर (शब्द)। २ एक पौधा जिसके फूलों का धरक खींचा जाता है और जिसकी पत्तियाँ मसाले के काम में आती हैं।

नरद^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्द] शब्द। ध्वनि। नाद।

नरदन—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्दन (= नाद)] नाद करना। गरजना। उ०—वनपति सम नरदन प्रमित बल निसि मानमाला गरे।—गोपाल (शब्द०)।

नरदवाँ—संज्ञा पुं० [फा० नाबदान] नल। पनाला।

नरदाँ—संज्ञा पुं० [फा० नाबदान] मेला पाना वहने की नाली।

नरदारा—संज्ञा पुं० [सं० नर + सं० दारा] १. जनाना। जनजा। हिजड़ा। नपुंसक। २. जो पुरुष होकर भी स्त्रियों का काम करे। डरपोक। कायर। उ०—वेव भयानक लल्लि बिकरारा। चहुँ दिशि भागि चले नरदारा।—सबल (शब्द०)।

नरदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। नृपति। २. ब्राह्मण।

नरदेवकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनकी कथा अर्ध भागवत में है।

नरद्विष्—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस [को०]।

नरनाइक(उ)—संज्ञा पुं० [सं०] सवार। जगत्। विश्व [को०]।

नरधि—संज्ञा पुं० [सं० नरनायक] दे० 'नरनायक'। उ०—नरनाइक अतुर विनाइक राकसपति हिय हारि गए केशव प्र०, पृ० १७१।

नरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृपति। नृपाल।

नरनायक—संज्ञा पुं० [सं०] नृप। राजा। भूपति।

नरनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] नर और नारायण नाम के दो जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

विशेष—कहते हैं, ये दोनों माई थे और नारायण इन बड़े थे। महाभारत में लिखा है कि एक बार नर नारायण गंधमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। उस वक्ष का यज्ञ हो रहा था। इस यज्ञ में दक्ष ने रुद्र के भा कल्पना नहीं की थी जिससे क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ नष्ट के लिये रुद्र ने एक मूल फेंका था। वह मूल यज्ञ नष्ट का उपरांत जाकर बड़े जोर से नारायण के वक्षस्थल पर गिरा उसी समय नारायण के हुंकार से पराजित और घाहत फिर शंकर के हाथ में जा पहुँचा। इसपर रुद्र क्रोध करके नारायण पर चढ़ दौड़े। नारायण ने तो रुद्र का गला लिया और नर ने उन्हें मारने के लिये एक धीक उड़ा बड़ा भारी पशु बन गई। नारायण और रुद्र में भीषण होने लगा। उसमें पृथ्वी तथा आकाश में अनेक प्रकार उपद्रव होने लगे। जब ब्रह्मा ने आकर रुद्र को समझाये स्वयं नारायण के अवतार हैं और किसी समय तु भी सृष्टि इन्हीं के क्रोध से हुई थी तब रुद्र ने प्रार्थना नारायण को प्रसन्न किया। इसके उपरांत रुद्र के साथ नारायण की घनिष्ठ मित्रता हो गई। महाभारत के नारायण नामक दो ऋषियों ने नारायणी अर्थात् भगवत का प्रचार किया था और उनके कहने से जब नारद श्वेतद्वीप गए थे तब स्वयं भगवान् ने उनको इस घ उपदेश किया था। देवीभागवत में लिखा है कि ब्रह्मा भगवत ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया था जिनमें से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र हुए थे। इनमें से हरि और कृष्ण तो योगाभ्यास करते थे नरनारायण हिमाचल पर कठिन तपस्या करते थे। उस इन्द्र ने डरकर इनकी तपस्या भग करने के लिये काम, और लोभ की सृष्टि की और उन तीनों को नर नारायण सामने भेजा, परंतु नरनारायण की तपस्या भग नहीं तब इन्द्र ने कामदेव की शरणा ली। कामदेव अपने साथ और रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को लेकर नरनायक के पास पहुँचे। उस समय अप्सराओं के गाने आदि से नारायण की आँखें खुलीं। उन्होंने सब बातें समझ लीं और क्रोधित करने के लिये तुरंत अपनी बाँध के एक बहुत

अप्सरा उत्पन्न की जिसका नाम सर्वेशी पड़ा। इसके उपरांत उन्होंने इन्द्र की सेजी हुई हजारों अप्सराओं की सेवा करने के लिये उनसे भी अधिक हजारों दासियाँ उत्पन्न की। इसपर सब अप्सराएँ नरनारायण की स्तुति करने लगीं। इन अप्सराओं ने नारायण से यह भी वर माँगा था कि आप हम लोगों के पति हों। इसपर उन्होंने कहा था कि आप में जब हम अवतार लेंगे तब तुम लोग राजकुल में जन्म लोगी। उस समय तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तदनुसार नारायण तो श्रोकृष्ण और नर अर्जुन हुए थे। कालिका-पुराण में लिखा है कि महादेव ने जब शरम पक्षी का रूप धारण करके अपने दाँतो की चोट से नरसिंह के दो टुकड़े कर दिए थे तब नरसिंह के नररूपी भाँधे शरीर से नर तथा सिंहरूपी भाँधे शरीर से नारायण की उत्पत्ति हुई थी।

नरनारि०—सखा स्त्री० [सं० नरनारी] नर अर्थात् अर्जुन की स्त्री। द्रौपदी। पाचाली। उ०—विपुल भूपति सदसि मेह नरनारि कह्यो प्रभु पाहि। सकल समरथ रहे काहु न वसन दोन्हों ताहि।—तुलसी (शब्द०)।

नरनारी—सखा स्त्री० [सं०] १. अर्जुन की स्त्री। द्रौपदी। २. पुरुष और स्त्री [को०]।

नरनाह०—सखा पुं० [सं० नरनाथ] राजा। नृप। नृपाल। उ०—चदर भरन रत, ईस विमुख सब भए प्रजा नरनाह।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४८५।

नरनाहर—सखा पुं० [सं० नर + हि० नाहर] नरसिंह भगवान्।

नरनी—सखा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पोषा।

नरपति—सखा पुं० [सं०] राजा। नृपति। नृपाल। भूप।

नरपत्नी०—सखा पुं० [सं० नरपति] दे० 'नरपति'। उ०—साहू दिलासा मोकलै, भव क्यूँ राखी दूर। नरपत्नी जसराज रो, लावी पुत्र हजूर।—रा० ख०, पृ० २७।

नरपद—सखा पुं० [सं०] १. नगर। २. देश।

नरपलचारी—वि० पुं० [सं० नर + पल + चारी] मनुष्य के मांस को खानेवाला। नरमांसभक्षक। उ०—पुत्री बलिक सराप दिय भर पुहकर नर लोह। असुर होइ बीसम नृपति नरपल-चारी सोइ।—पृ० रा०, १।४६१।

नरपशु—सखा पुं० [सं०] १. नरसिंह। २. वह मनुष्य जो पशु ऐसा आचरण करे। नराधम। नीच आदमी (को०)। ३. यज्ञ आदि में बलिदान के योग्य या उपयुक्त मनुष्य (को०)।

नरपाल—सखा पुं० [सं० नृपाल] नृप। राजा। भूपाल। भूपति।

नरपालि—सखा पुं० [सं०] छोटा शाख।

नरपिशाच—सखा पुं० [सं०] जो मनुष्य होकर भी पिशाचों का सा काम करे। बड़ा भारी दुष्ट और नीच मनुष्य।

नरपुर—सखा पुं० [सं०] भूलोक। मनुष्यलोक।

नरप्रिय—सखा पुं० [सं०] नील का पेड़।

नरवदा—सखा स्त्री० [सं० नर्मदा] दे० 'नर्मदा'।

नरभक्षी—सखा पुं० [सं० नरभक्षिन्] मनुष्यों को खानेवाला राक्षस। दैत्य।

नरभू—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'नरभूमि'।

नरभूमि—सखा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष।

नरम०^१—सखा पुं० [सं० नर्मन्] दे० 'नर्म'। उ०—प्रानसम सहचरि विखाखा नरम वचननि बोलि। भायना नववधू मुख तें देति घूँघट खोलि।—घनानन्द, पृ० ३००।

नरम^२—वि० [फ्रा० नर्म] १. कोमल। मृदु। २. लोचदार। ३. शिथिल। ढीला। ४. नजाकत से युक्त (प्रेम प्रसंग का हास-परिहास)। उ०—लहि जाको आघात गात मुरझात नरम भट।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६।

नरमट—सखा स्त्री० [हि० नरम] वह जमीन जहाँ की मिट्टी मुलायम हो।

नरमदा—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'नर्मदा'।

नरमरोखाँ—सखा पुं० [हि० नरम + रोमाँ] बुनाई के लिये लाल या सफेद रंग का रोमाँ जो सदा बहुत मुलायम होता है।

नरम लोहा—सखा पुं० [हि० नरम + लोहा] अग्नि में साख करके हवा में ठंडा किया हुआ लोह जो मुलायम हो जाता है।

नरमा—सखा स्त्री० [हि० नरम] १. एक प्रकार की कपास जिसे मनवा, देवकपास या रामकपास भी कहते हैं। २. सेमर की रुई। ३. कान के नीचे का भाग। लोल। ४. एक प्रकार की ईख।

नरमाई०^१—सखा स्त्री० [हि० नरम + माई (प्रत्य०)] दे० 'नरमी'। उ०—अधम पुरुष बदरी फल समान जाके बाहिर सौ दिसं नर-माई दिल तग है।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १, पृ० १०१।

नरमाना^१—क्रि० स० [हि० नरम + माना (प्रत्य०)] १. नरम करना। मुलायम करना। २. शांत करना। घोमा करना।

नरमाना^२—क्रि० प्र० १. नरम होना। मुलायम होना। शांत होना। ठंडा होना।

नरमावड़ी—सखा स्त्री० [देश०] वन कपास।

नरमानिका—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'नरमानिनी'।

नरमानिनी—सखा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसे मूँछ या दाढ़ी हो।

नरमाला—सखा स्त्री० [सं०] मनुष्यों के कपास या खोपड़ी की माला [को०]।

नरमालिनी—सखा स्त्री० [सं०] १. नरमुँहों की माला पहननेवाली स्त्री। २. दाढ़ी मूँछवाली स्त्री। नरमानिका [को०]।

नरमा रोहा—सखा पुं० [हि०] एक प्रकार का नया गेहूँ जो नया विकसित हुआ है और जिसकी उपज ज्यादा होती है।

नरमी—सखा स्त्री० [फ्रा० नर्म] नरम होने का भाव। मुलाय-मियत। कोमलता। मृदुता।

नरमेध—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें प्राचीनकाल में मनुष्य के मांस की आहुति दी जाती थी।

विशेष—यह यज्ञ चैत्र शुक्ला दशमी से आरंभ होता था और चालीस दिन में समाप्त होता था।

नरयंत्र—सखा पुं० [सं० नरयन्त्र] सूर्यसिद्धांत के अनुसार एक प्रकार का शकुन जिसका व्यवहार धूप में समय जानने के लिये होता था।

नरयान—सखा पुं० [सं०] ऐसी सवारी (पालकी या डोली) जिसे आदमी खींचे या ढोए ।

नररथ—सखा पुं० [सं०] दे० 'नरयान' [को०] ।

नरलोक—सखा पुं० [सं०] मनुष्यलोक । मृत्युलोक । ससार ।

नरवई^(५)—सखा पुं० [सं०] नरपति, प्रा० एरवई [नरपति । राजा ।
उ०—भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवई । —तुलसी
प्र०, पृ० ४५ ।

नरवध—सखा पुं० [सं०] मनुष्यों का वध या हत्या [को०] ।

नरवर—सखा पुं० [सं०] उत्कृष्ट मनुष्य । नर श्रेष्ठ ।

नरवरी—सखा स्त्री० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति ।

नरवा^१—सखा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

नरवा^(५)^२—सखा पुं० [हिं०] नाला] दे० 'नाला' । उ०—गाँव
ते गाँव बड़ी पुर ते पुर लाधि नदी नरवा घर को तन ।—
श्यामा०, पृ० १७० ।

नरवाई—सखा स्त्री० [हिं०] दे० 'नरई' । उ०—बालि छाँडि के सूर
हमारे अब नरवाई को लुनै ।—सूर (शब्द०) ।

नरवाह—सखा पुं० [सं०] वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढोकर
ले चले । जैसे, पालकी, तामजान इत्यादि ।

नरवाहन^१—सखा पुं० [सं०] १ वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या
ढोकर ले चले । २ कुवेर । ३ किन्नर । ४ वत्सनरेश
उदयन का पुत्र ।

नरवाहन^२—वि० मनुष्यों द्वारा खींची या ढोई जानेवाली सवारी पर
चलनेवाला ।

नरविष्वण—सखा पुं० [सं०] राक्षस [को०] ।

नरवीर—सखा पुं० (सं०) वीर मनुष्य । बहादुर आदमी । योद्धा [को०] ।

नरव्याघ्र—सखा पुं० [सं०] १ मनुष्यों में श्रेष्ठ । २ जल में
रहनेवाला एक प्रकार का जानवर ।

विशेष—इसके शरीर के नीचे का भाग मनुष्य के आकार का
और ऊपर का भाग बाघ के आकार का होता है ।

नरशक्र—सखा पुं० [सं०] नरेंद्र । राजा । नृप ।

नरशार्दूल—सखा पुं० [सं०] दे० 'नरव्याघ्र' [को०] ।

नरशृंग—सखा पुं० [सं०] नरशृङ्ग] असंभव बात । खपुष्प [को०] ।

नरससर्ग—सखा पुं० [सं०] मनुष्यसमाज [को०] ।

नरसख—सखा पुं० [सं०] नारायण जो नर के सखा हैं [को०] ।

नरसल—सखा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट' ।

नरसार—सखा पुं० [सं०] नौसादर ।

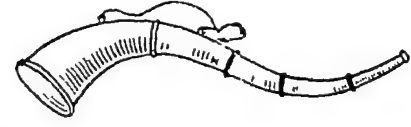
नरसिंग—सखा पुं० [हिं०] एक प्रकार का विलायती फूल ।

नरसिंगा—सखा पुं० [हिं०] दे० 'नरसिंघा' ।

नरसिंघ—सखा पुं० [सं०] नरसिंह] दे० 'नरसिंह' ।

नरसिंघा—सखा पुं० [हिं०] नर (= बड़ा) + सिंघा (= सींग का बना एक
प्रकार का बाजा)] तुरही की तरह का एक प्रकार का नल के
आकार का तबले का बड़ा बाजा जो फूँककर बजाया जाता है ।

विशेष—यह जिस स्थान से फूँककर बजाया जाता है उस स्थान
पर बहुत पतला होता है और उसके आगे का भाग बरा
चोड़ा होता जाता है । बीच में से इसके दो भाग भी



लिए जाते हैं और बजाने के बाद पतला भाग अलग करके
भाग के अंदर रख लिया जाता है । प्राचीन काल में इस
व्यवहार रणक्षेत्र में होता था और आजकल यह देहात
विवाह आदि के अवसर पर बजाया जाता है ।

नरसिंह—सखा पुं० [सं०] दे० 'नरसिंह' ।

नरसिंहज्वर—सखा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार
ज्वर जो चोथिया या चातुर्थिक का उलटा है ।

विशेष—यह ज्वर तीन दिन तक चढ़ा रहता है और चोथे
उतर जाता है, और फिर वही क्रम चलता है ।

नरसिंहपुराण—सखा पुं० [हिं०] दे० 'नरसिंहपुराण' ।

नरसी^(५)—सखा पुं० [हिं०] दे० 'नरसल' । उ०—नरसी जल
घर करे मनसा चढ़े पहाड़ । —रामानंद०, पृ० १२ ।

नरसेज—सखा पुं० [देश०] तिघारा नामक धूपहर जिसमें पत्ते
होते । विशेष—दे० 'प्रतिघारा' ।

नरसों^१—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'प्रतरसों' ।

नरसों^२—सखा पुं० १ बीते हुए परसों के पहले का दिन । २ आने
परसों के बाद का दिन ।

नरस्कंध—सखा पुं० [सं०] नरस्कन्ध] जनसमुदाय [को०] ।

नरहड़ी—सखा पुं० [सं०] नलक + हिं० हड़] धुंने और पाँव
बीच की लंबी हड्डी ।

नरहत्या—सखा स्त्री० [सं०] मनुष्यवध । नरवध [को०] ।

नरहय—सखा पुं० [सं०] घोड़े और मनुष्य में होनेवाला युद्ध [को०]

नरहर^१—सखा स्त्री० [देश०] अथवा सं० नलक + हिं० हड़ या हर
पैर की वह हड्डी जो पिंडली के ऊपर होती है ।

नरहर^(५)^२—सखा पुं० [सं०] नरहरि] दे० 'नरहरि' । उ०—नर
समरता नह बीते नाणो, लवसुं तिको न लेवै ।—रघु० क
पृ० २७ ।

नरहरि—सखा पुं० [सं०] नरसिंह भगवान जो दस अवतारों में च
अवतार हैं । उ०—तब ले खड्ग खम में मारयो लब्ध भ
भति भारी । प्रगट भए नरहरि वपु धरि कटकट क
उच्चारो ।—सूर (शब्द०) ।

नरहरी^१—सखा पुं० [हिं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक पद
१४ और ५ के विराम से १६ मात्राएँ और अंत में १ ना
१ गुरु होता है । जैसे,—हरि सुनत भक्त की बानी, दुख भरे
भट प्रगटे खभा फारी, तिहि धरी । रिपु हन्यो दीन सुख भा
दुख हरी । मन सदा भजो चित लाई, नरहरी (शब्द०)

नरहरी^७—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] दे० 'नरहरि' । उ०—परधन परदारा परिहरी । तूफे निकट बसहि नरहरी ।—कवीर सा०, पृ० ३१ ।

नरहा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष ।

नरहा^२—वि० दे० 'चिल्ली' ।

नरहा^३—वि० [हि० नाला] नालेवाला या नाले से संबंधित ।

नरहीरा—संज्ञा पुं० [हि० नर (= बहा) + हि० हीरा] वह भाठ पहल या छह पहल का बड़ा हीरा जिसके किनारे खूब तेज हों ।

विशेष—कहते हैं, ऐसा हीरा जिसके पास होता है वह राजा हो जाता है और उसका वैभव बहुत बढ़ जाता है ।

नरांग—संज्ञा पुं० [सं० नराङ्ग] १. पुरुष की इद्रिम् । २. मुँहासा [को०] ।

नरांतक—संज्ञा पुं० [सं० नरान्तक] रावण के एक पुत्र का नाम जो राम-रावण युद्ध में अंगद के हाथ से मारा गया था ।

नरा—संज्ञा पुं० [हि० नल या नरकट] नरकट की एक छोटी नली जिसके ऊपर सूत लपेटा रहता है (जोलाहे) ।

नराच—संज्ञा पुं० [सं० नाराच] १. तीर । धार । शर । २. पक्ष चामर या नागराज नामक वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, और अंत में एक गुरु होता है । जैसे,—जु रोज रोज गोप तीय कृष्ण सग धावती । सुगीत नाथ पाँव सों लगाय चित्त गावती ।

नराचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वितान वृक्ष का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में सगण, रगण, सधु और गुरु होता है । जैसे, तोरी सगे नराचिका । मोरी कटे भवधाचिका ।

नराजा—वि० [फ्रा० नाराज] दे० 'नाराज' ।

नराजना^७—क्रि० प्र० [फ्रा० नाराज] अप्रसन्न करना । नाराज करना । उ०—उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी । सहिरि अकास लागि मुहँ बाजी ।—जायसी (शब्द०) ।

नराजना^२—क्रि० प्र० अप्रसन्न होना । नाराज होना ।

नराट^७—संज्ञा पुं० [सं० नरराट्] नरेंद्र । राजा । नृपाल । उ०—अभिवादन सब करत नराट । मिले पार्यसुत दुपद विराट ।—सबल (शब्द०) ।

नराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । वरपति । नृपाल ।

नरायन—संज्ञा पुं० [सं० नारायण] दे० 'नारायण' ।

नराश—संज्ञा पुं० [सं०] मानवमखी राक्षस [को०] ।

नराशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नराश' ।

नरिद^७—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] राजा । नराधिप । नरपति ।

नरिअर^३—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेर या नारिकेल] दे० 'नारियल' ।

नरिअरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नारियल] नारियल की खोपड़ी का भाषा भाग ।

नरिबाहना^७—क्रि० प्र० [सं० निर्वह] निर्वह करना । उ०—ज्युं बोलह ते नरिबाहज्यो, बचन तुमारह लागि छह नार ।—बी० रासो, पृ० ७८ ।

नरियर^३—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेर या नारिकेल] दे० 'नारियल' ।

नरियरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नरियर + ई (प्रत्य०)] दे० 'नरियरी' ।

नरिया^३—संज्ञा पुं० [हि० नाली] एक प्रकार का मिट्टी का खपड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम में आता है ।

विशेष—यह अर्धवृत्ताकार और लंबा होता है और इसे 'यपुषा' खपड़े की संघियों पर घोंघाकार रख देते हैं जिससे उन संघियों में से पानी नीचे नहीं टपकने पाता ।

नरियाना^३—क्रि० प्र० [सं० नर्दन तुलनीय प्र० नम्रह्] चिल्लाना । और मचाना । हल्का करना ।

नरी^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. बकरी या बकरे का रंगा हुआ चमड़ा । २. लाल रंग का चमड़ा । ३. सिक्काया हुआ चमड़ा । मुलायम चमड़ा । ४. नार । ठरकी के भीतर की नली जिसपर तार लपेटा रहता है (जुलाहा) । ५. एक प्रकार की घास जो ताल या नदी के किनारे होती है ।

नरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] १. नली । बाली । छुच्छी । पुपली । २. वह बाँस की नली जिससे सुनार सोग भाग सुलगाते हैं । फुँकनी ।

नरी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० नर] स्त्री । नारी ।

नरी^४—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगुला ।

नरु^७—संज्ञा पुं० [सं० नर] दे० 'नर' ।

नरुई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नली] छुच्छी । पुपली । छोटी नली ।

नरुवा^३—संज्ञा पुं० [हि० नल] घनाज के पौधों की ढंकी जो अंदर पोली होती है ।

नरेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] १. राजा । नृप । नरेश । २. वह जो सौंप, बिच्छू आदि के काटने का हलाक करे । बिषवेद्य । ३. शयोनाक वृक्ष । ४. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं, जिसमें सोलह मात्राओं पर विराम और अंत में दो गुरु होते हैं । जैसे,—भीत चोतनी घरे सीस पे, पीतांबर मन मानो । पीत यज्ञ उपवीत विराजत, मनो बसती बानो ।

विशेष—इसे सार और ललितपद भी कहते हैं ।

नरेतर—संज्ञा पुं० [सं०] पशु । जानवर [को०] ।

नरेची—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

विशेष—इस पेड़ की छाल से एक प्रकार का खाकी रंग का गोंद निकलता है जो शीघ्र सूख जाता है और चमकीला होता है । यह प्रायः शिवसागर और सिलहट (आसाम) में पाया जाता है ।

नरेली^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. नारियल का ढुक्का । २. छोटा नारियल ।

नरेश—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों का स्वामी । राजा । नृप ।

नरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरेश' [को०] ।

नरेश^७—संज्ञा पुं० [सं० नरेश] दे० 'नरेश' ।

नरेश्वर^७—संज्ञा पुं० [सं० नरेश्वर] दे० 'नरेश' । उ०—सेतराम सकवध नरेश्वर । इल(ण) सग राजस पूरब अंतर ।—रा० रू०, पृ० ११ ।

नरेह^७—वि० [हि०] १. निरीह । २. निष्कपट । उ०—दोही
सिरे दिवार नरेह निहारती ।—रघु० ६०, पृ० ६५ ।
नरोः—सङ्गा स्त्री० [हि० नरसों] परसों से पहले या बाद का एक
दिन । अंतरसों ।
नरोत्तम—सङ्गा पुं० [सं०] १. ईश्वर । भगवान् । विष्णु । २. श्रेष्ठ
नर या मनुष्य (को०) ।
नरोह—सङ्गा स्त्री० [देश०] १. पिहली की हड्डी । नली । २. कोल्हू
की वह नली जिसमें से रस गिरता है ।
नर्क^१—सङ्गा पुं० [सं०] नरक । नाक (को०) ।
नर्क^७—सङ्गा पुं० [सं० नरक] दे० 'नरक' ।
नर्कट—सङ्गा पुं० [हि०] दे० 'नरकट' ।
नर्कटक—सङ्गा पुं० [सं०] नासिका । नाक । घ्राणेंद्रिय ।
नर्गिस—सङ्गा पुं० [फा० नरगिस] दे० 'नरगिस' ।
नर्गिसी—सङ्गा पुं०, वि० [फा० नरगिसी] दे० 'नरगिसी' ।
नर्जीव—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव' । उ०—नर्जीव शब्द
धारा ।—पृ० रा०, १४।१५ ।
नर्त^१—सङ्गा पुं० [सं०] नाचनेवाला । जो नाचता हो ।
नर्त^२—सङ्गा पुं० नृत्य । नाच (को०) ।
नर्तक—सङ्गा पुं० [सं०] [स्त्री० नर्तकी] १. नट । नाचनेवाला ।
नृत्य करनेवाला । २. एक प्रकार का नरकट । ३. चारण ।
बदीजन । ४. केलक । खड्ग की धार पर नाचनेवाला । ५.
हाथी । ६. महादेव का एक नाम । ७. महुषा । ८. नरकट ।
९. महुषा । १०. एक प्रकार की सकर जाति जिसकी उत्पत्ति
घोबी पिता और वेश्या माता से मानी जाती है । ११. राजा ।
१२. मयूर । मोर । (को०) । १३. अभिनेता (को०) ।
नर्तकी—सङ्गा स्त्री० [सं०] १. नाचनेवाली, रङ्गी । वेश्या । नटी ।
२. नलिका नामक सुगंध द्रव्य । नली । ३. अभिनेत्री (को०) ।
४. हथिनी (को०) । ५. मोरिनी (को०) ।
नर्तन—सङ्गा पुं० [सं०] १. नृत्य । नाच । २. वह जो नृत्य
करे (को०) ।
नर्तनगृह—सङ्गा पुं० [सं०] दे० 'नर्तनशाला' (को०) ।
नर्तप्रिय^१—सङ्गा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २. मयूर ।
मोर (को०) ।
नर्तनप्रिय—वि० नृत्य का शौकीन । नाच का प्रेमी (को०) ।
नर्तनशाला—सङ्गा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पर नाच होता
हो । नाचघर ।
नर्तनशील—वि० [सं०] नाचने के गुणवाला । नाचनेवाला ।
नर्तनशाला^७—सङ्गा स्त्री० [सं० नर्तनशाला] दे० 'नर्तनशाला' । उ०—
नर्तनशाला जाव किन, इत पोष परकास ।—भारतेंदु ग्रं०,
भा० १, पृ० १०६ ।
नर्तना^७—क्रि० प्र० [सं० नर्तन] नृत्य करना । नाचना । उ०—
सरत कहूँ नायक सुभट कहूँ नर्तन नटराज ।—केशव (शब्द०) ।
नर्तित^१—वि० [सं०] १. नाचता हुआ । नृत्यशील (को०) ।

नर्तित^२—सङ्गा पुं० नृत्य । नाच (को०) ।
नर्तित^३—वि० [सं०] नाचती हुई । उ०—नर्तित^३ अपवर्ग की अपभ्रंश
सी वह शिक्षा मेरा माल छूती है ।—इत्यम्, पृ० १०५ ।
नर्तु—वि० [सं०] तलवार की धार पर नाचनेवाला (को०) ।
नर्तु, नर्तु—सङ्गा स्त्री० [सं०] १. नर्तकी । २. अभिनेत्री (को०) ।
नर्द^१—सङ्गा स्त्री० [फा०] चौसर की गोटी ।
नर्द^२—वि० [सं०] डकरने या गरजनेवाला (को०) ।
नर्दकी—सङ्गा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे कटील,
निमरी और नर्द भी कहते हैं ।
नर्दक—सङ्गा पुं० [सं०] ७० अक्षरों का एक वृत्त या छंद (को०) ।
नर्दन—सङ्गा स्त्री० [सं०] १. नाद । गरज । भीषण ध्वनि । २. उच्च
स्वर में गुणकीर्तन ।
नर्दवान—सङ्गा [देश०] १. काठ की सीढ़ी । २. मार्ग ।
रास्ता (लण०) ।
नर्दी—सङ्गा पुं० [देश०] मेला बहने की नाली ।
नर्दित^१—वि० [सं०] गरजा हुआ (को०) ।
नर्दित^२—सङ्गा पुं० एक प्रकार का पासा या पासे का हाथ (को०) ।
नर्दा—वि० [सं० नर्दिन्] गरजनेवाला (को०) ।
नर्दंदा—सङ्गा स्त्री० [सं० नर्मदा] दे० 'नर्मदा' ।
नर्म^१—सङ्गा पुं० [सं० नर्मन्] १. परिहास । हँसी ठट्ठा । दिल्लगी ।
२. सखाओं का एक भेद । हँसी ठट्ठा करनेवाला सखा । उ०—
नर्म सखन लै अपने संग । भावै करन फागु रस रगा ।
—रघुराज (शब्द०) ।
नर्म^२—वि० [फा०] १. जो कडा न हो । मुलायम । कोमल । २.
सहल । सरल । ३. धीमा । सुस्त । ४. विनीत । नम्र ।
यौ०—नर्म नर्म = भला बुरा या सस्ता महंगा । नर्मदिल = मुलायम
हृदयवाला ।
नर्मकील—सङ्गा पुं० [सं०] पति (को०) ।
नर्मगर्भ^१—वि० [सं०] परिहासपूर्ण । विनोदपूर्ण (को०) ।
नर्मगर्भ^२—सङ्गा पुं० १. गुप्त प्रेमी । २. नायक द्वारा वह कार्य जो
गुप्त रहे (को०) ।
नर्मट—सङ्गा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मिट्टी का पात्र । खप्पर (को०) ।
नर्मठ—सङ्गा पुं० [सं०] १. दिल्लगीबाज । वह जो परिहास आदि में
कुशल हो । २. उपपति । स्त्री का यार । ३. ठोड़ी । ४.
स्तन का अग्रभाग । ५. संभोग । मैथुन (को०) ।
नर्मद^१—सङ्गा पुं० [सं०] दिल्लगीबाज । मसखरा । मीठ । हँसोड़ ।
विद्रुषक ।
नर्मद^२—वि० आनंद देनेवाला । मनोरंजन करनेवाला ।
नर्मदा—सङ्गा स्त्री० [सं०] १. पुष्का या अपवर्ग नामक गंधद्रव्य । २.
एक गंधर्व स्त्री जो सुदरी, केतुमती और वसुदा की माता
थी । ३. मध्यप्रदेश की एक नदी जो अमरकंटक से निकलकर
भड़ौच के पास खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

नर्मदेश्वर—सखा पु० [सं०] एक प्रकार के शिवलिंग जो नर्मदा नदी से निकलते हैं।

विशेष—ये प्रायः स्फटिक के या लाल अथवा काले रंग के पत्थर के और विलकुल झड़ाकार होते हैं। पहाड़ों पर से पत्थर के जो टुकड़े नदी में गिरते हैं वे ही जलपात के स्थान पर भँवर में पड़कर झड़ाकृति हो जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रकार के लिंगों के पूजन का बहुत माहात्म्य है।

नर्मद्युति^१—सखा स्त्री० [सं०] १ नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रतिमुख सवि के तेरह अंगों में से एक। वह परिहाम जो किसी पहले परिहास से उत्पन्न आनन्द अथवा दोष छिपाने के लिये किया जाय। जैसे,—रत्नावली में सुसगता के यह कहन पर कि 'प्यारी सखी, तू बड़ी निठुर है। महाराज तेरी इतनी खातिर करते हैं, तो भी तू प्रसन्न नहीं होती।' सागरिका भौंह चढ़ाकर कहती है—'अब भी तू चुप नहीं रहती, सुसगता'। २ परिहासप्रियता। परिहास का आनन्द (को०)।

नर्मद्युति^२—वि० आनन्द से उल्लसित। उल्लसित [को०]।

नर्मसचिव—सखा पु० [सं०] वह मनुष्य जो राजा के साथ उसे हँसाने के लिये रहता है। विदूषक।

नर्मसुहृद्—सखा पु० [सं०] दे० 'नर्मसचिव'।

नर्मसाचिव्य—सखा पु० [सं०] १ मनोरंजन। प्रियवादिता। २ किसी राजा, राजकुमार या सरदार के मनोविनोद सबंधी सचिव का पद [को०]।

नर्मस्फूर्ज—सखा पु० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार कैशिकी वृत्ति के चार भेदों में से एक।

नर्मस्फोट—सखा पु० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार कैशिकी वृत्ति के चार भेदों में से एक।

विशेष—कैशिकी वृत्ति के चार भेद ये हैं, नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगंध।

नर्म^१—सखा स्त्री० [फा०] दे० 'नरमो'।

नर्मी—सखा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊपर जमीन में भी होती है। २ एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में होता है।

नर्स—सखा स्त्री० [अ०] १ वह जो रोगियों, घायलों या बुढ़ों आदि की देखभाल या परिचर्या करे। २ रोगी परिचर्या में विधिवत् प्रशिक्षित व्यक्ति। वह स्त्री जो दूसरों के बच्चों आदि का पालन करे। ३ घाय। घात्री।

नल^१—सखा पु० [सं०] १ नरकट। २ पद्म। कमल। ३ निषध देश के चंद्रवर्षी राजा वीरसेन के पुत्र का नाम।

विशेष—यें बहुत ही सुंदर और बड़े गुणवान् थे और विशेषतः घोड़ों आदि की परीक्षा और संचालन में बड़े दक्ष थे। ये विदम्भ देश के तत्कालीन राजा भीम की कन्या दमयंती के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर ही उसपर धासक्त हो गए थे। एक दिन जब ये बाग में दमयंती की चिंता में बैठे हुए थे तब कहीं से कुछ हंस उड़ते हुए आकर इनके सामने बैठ गए। नल

ने उनमें से एक हंस को पकड़ लिया। उस हंस ने कहा—महाराज, आप मुझे छोड़ दें, मैं विदम्भ देश में जाकर दमयंती के सामने आपके रूप और गुण की प्रशंसा करूँगा। इनके छोड़ देने पर हंस विदम्भ देश में गया और वहाँ दमयंती के बाग में जाकर इसने उसके सामने नल के रूप और गुण की खूब प्रशंसा की, जिसे सुनकर नल के प्रति उसका पहला अनुराग और भी बढ़ गया और उसने हंस से कह दिया कि मैं नल के साथ ही विवाह करूँगी, तुम यह बात जाकर उनसे कह देना। हम ने वैसे ही किया। जब राजा भीम ने दमयंती का स्वयंवर रचा तब उसमें बहुत से राजाओं के प्रतिरिक्त भ्रनेक देवता भी आए थे। जब इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण स्वयंवर में जा रहे थे तब उन्हें बाग में नल भी जाते हुए मिले। इन चारों देवताओं ने नल को आज्ञा दी कि तुम जाकर दमयंती से कहो कि हमलोग भी जा रहे हैं, हममें से ही किसी को तुम वरुण करना। नल ने जब दमयंती से जाकर यह बात कही तब उसने कहा कि मैं तो सुनूँ ही पति बनाने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, यही बात देवताओं से तुम कह देना। नल ने उसे देशताओं की ओर से बहुत समझाया पर दमयंती ने नहीं माना और कहा कि देवता धर्म के रक्षक होते हैं उन्हें मेरे धर्म की रक्षा करनी चाहिए। नल ने ये सब बातें देवताओं से कह दी। इसपर वे चारों देवता नल का रूप धरकर स्वयंवर में पहुँचे और नल के समीप ही बैठे। दमयंती पहले तो नल के समान पाँच मनुष्यों को देखकर घबराई, पर पीछे से उसने असली नल को पहचानकर उन्हीं के गले में जयमाल पहनाई। इस पर चारों देवताओं ने प्रसन्न होकर नल को आठ वर दिए। दमयंती के साथ नल का विवाह तो हो गया पर कलियुग और द्वापर ने असंतुष्ट होकर नल को कष्ट पहुँचाना चाहा। कलियुग सदा नल के शरीर में प्रवेश करने का भवसर ढूँढा करता था। पर बारह वर्ष तक उसे भवसर ही न मिला। इस बीच में नल को इद्रसेन नामक एक पुत्र और इद्रसेना नामक एक कन्या भी हुई। एक दिन भवसर पाकर कल ने स्वयं तो नल के शरीर में प्रवेश किया और उधर उनके भाई पुष्कर को उनके साथ झूझा खेलकर निषध जीत लेने के लिये उभाड़ा। तदनुसार जूए में नल अपना सबस्व हार गए। पुष्कर ने आज्ञा दे दी कि नल या उनके परिवार के लोगों को कोई आश्रय या भोजन आदि न दे। दमयंती ने अपने पुत्र और कन्या को पिता के घर भेज दिया। जब तीन दिन तक नल दमयंती को भ्रम भी न मिला तब वे दोनों जंगल में निकल गए। वहाँ वर्षा की बड़े बड़े कष्ट मिले। एक दिन नल ने सोने के रंग के कुछ पक्षी देखे और उन्हें पकड़ने के लिये उनपर अपना कपड़ा डाला। पर ये पक्षी उनका कपड़ा लेकर ही उड़ गए। बहुत दुःखी होकर नल ने दमयंती से विदम्भ जाने के लिये कहा, पर उसने नहीं माना। उस समय उन दोनों के पास एक ही बख बच गया था। उसी को पहनकर दोनों चलने लगे। एक स्थान पर दमयंती थककर जब सो गई तब नल उसका पाधा बख फाड़कर और उसे उसी दशा में

छोड़कर चले गए। जब दमयंती सोकर उठी तब बहुत विलाप करती हुई अपने पति को ढूँढ़ती ढूँढ़ती और अनेक प्रकार के कष्ट उठाती अपने पिता के घर पहुँची। उधर नल भी अनेक कष्ट भोगते हुए अयोध्या पहुँचे और राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि हुए। बहुत पता लगाने पर दमयंती को सूत्र लगा कि ऋतुपर्ण के यहाँ बाहुक नामक जो सारथि है वह कदाचित् नल हो। भीम ने ऋतुपर्ण के यहाँ बहलाया कि कल हमारी कन्या का फिर से स्वयंवर होगा। उनके सारथि बाहुक (या नल) ने एक ही दिन में उन्हें विदर्भ पहुँचा दिया। वहाँ दमयंती ने नल को पहचाना और तीन वर्ष तक घोर कष्ट भोगने के उपरांत दंपति फिर मिले। उस समय तक कल ने भी उनका पीछा छोड़ दिया था। इसके उपरांत ऋतुपर्ण ने नल से क्षमा माँगी। एक मास तक विदर्भ में रहने के उपरांत नल ने फिर पुष्कर के पास जाकर उससे लूभा खेला और फिर अपना राज्य जीत लिया। तब से दोनों फिर सुखपूर्वक रहने लगे। दमयंती का पातिव्रत आदर्श माना जाता है और घोर कष्ट भोगने के लिये नल दमयंती प्रसिद्ध हैं।

४ राम की सेना का एक वदर जो विश्वकर्मा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—कहते हैं, इसी ने पत्थरों को पानी पर तैराकर रामचंद्र की सेना के लिये लकाविलय के समय समुद्र पर पुल बाँधा था। पुराणानुसार यह ऋतुवज ऋषि के शाप के कारण घृताची के गर्भ से बंदर के रूप में उत्पन्न हुआ था।

५ एक दानव का नाम जो विप्रचित्ति का चौथा पुत्र था और सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ६ यदु के एक पुत्र का नाम। ७ एक नद का नाम। ८ प्राचीन काल में एक प्रकार का चमड़े का मड़ा हुआ बाजा जो घोड़े की पीठ पर रखकर युद्ध के समय बजाया जाता था।

नल^१—सखा पुं० [सं० नाल] १ ढंढे के रूप में कुछ दूर तक गई हुई वस्तु जिसके भीतर का स्थान खाली हो। पोली लबी चीज। २ धातु, काठ या मिट्टी आदि का बना हुआ पोला गोल खड।

विशेष—यह कुछ लंबा होता है और एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी, हवा, धुआँ, गैस आदि के ले जाने के काम में आता है।

३ इसी प्रकार का ईंट पत्थर आदि का बना हुआ वह मार्ग जो दूर तक चला गया हो और जिसमें से होकर गंदगी और मैला आदि बहता हो। पनाला। ४ पेड़ के अंदर की वह नली जिसमें से होकर पेशाब नीचे उतरता है। नली।

मुहा०—नल टलना—किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है।

नल^२—सखा पुं० [हिं०] दे० 'नर'। उ०—जो चीन्हे तेहि निर्मल अगा। अनचीन्हे नल भए पतगा।—कबीर जी०, पृ० २५।

नलक—सखा पुं० [सं०] १ वह गोलाकार हड्डी जिसके अंदर मज्जा

हो। नली के आकार की हड्डी। २ कालदेवल के भतीजे। नाम जिसे बुद्ध ने उपदेश दिया था।

नलका^१—सखा स्त्री० [सं० नलिका] नली। नाल।

नलकिनी—सखा पुं० [सं०] जघा। जाँघ।

नलकी—सखा स्त्री० [हिं०] छोटी नली। नलिका। उ०—क नलकी में समाता है कहीं देयाह।—हरी घास०, पृ० १४

नलकील—सखा पुं० [सं०] जानु। घुटना।

नलकूप—सखा पुं० [हिं०] पानी निकालने के लिये जमीन के न गहराई तक छेदकर बैठाया गया एक विशेष प्रकार का न जो मशीन द्वारा संचालित होता है। ट्यूबवेल।

नलकूबर—सखा पुं० [सं०] १ कुबेर के एक पुत्र का नाम।

विशेष—इसका उल्लेख महाभारत में है। महाभारत में लि है कि एक बार यह अपने भाई मणिप्रोव के साथ खूब शर पीकर कैलास पर्वत पर गया के किनारे एक उपवन में स्नान क साथ क्रीड़ा कर रहा था। उन दोनों को इस दुदशा देखकर नारद ने शाप दिया था कि तुम अजुन वृक्ष जाओ। कहते हैं, इसी शाप के अनुसार ये दोनों वृक्षों में यमलाजुन हुए। यहाँ श्रीकृष्ण ने उन्हें स्पष्ट करके श मुक्त किया। रामायण में लिखा है कि एक बार जब राव दशविजय करके लौट रहा था तब रास्ते में उसे नलकूबर यहाँ जाती हुई रभा नामक अप्सरा मिली। रावण ने जबरदस्ती पकड़कर अपने साथ ले गया। उसी समय रभा उसे शाप दिया था कि यदि तुम किसी स्त्री के स बलात्कार करोगे तो तुरंत मर जाओगे। कहते हैं, इसी से रावण ने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया था।

२ संगीत ताल के सात मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार और चार लघु मात्राएँ होती हैं।

नलकोल—सखा पुं० [देश०] एक प्रकार का बैल।

नलदंबु—सखा पुं० [सं० नलदम्बु] नीम का पेड़।

नलद—सखा पुं० [सं०] १ पुष्परस। मकरद। २ उषीर। खस ३ जटामासी। बालछह। ४ लामज्जक नामक घास।

नलदा—सखा स्त्री० [सं०] जटामासी। बालछह।

नलनी—सखा स्त्री० [सं० नलिनी] दे० 'नलिनी'। उ०—कहीं कब नलनी के सुगना तोहि कवन पकरो।—कबीर श०, भा० पु० १४०।

नलनीरुह—सखा पुं० [सं० नलिनीरुह] मृशाल। कमल की नाल

नलपुर—सखा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिस उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में है।

नलबाँस^१—सखा पुं० [हिं० नल+बाँस] हिमालय की तराई होनेवाला एक प्रकार का बाँस जिसे विघुली और देवबाँस कहते हैं।

नलबाँस^२—वि० दे० 'देवबाँस'।

नलमीन—सखा पुं० [सं०] मीना मछली।

नल्लवा—सखा पुं० [हि०] बाँस की टोटी जिससे बैल को घी पिलाया जाता है। चोगा।

नल्लसेतु—सखा पुं० [सं०] रामेश्वर के निकट का समुद्र पर बँधा हुआ वह पुल जो रामचन्द्र ने नल नील आदि से बनवाया था।

नल्ला—सखा पुं० [हि० नल] १ पेड़ के अंदर की वह नाली जिसमें से होकर पेशाब नीचे उतरता है।

मुह्ला—नला टलना = किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नाली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है।

२. हाथ या पैर की नली के आकार की लंबी हड्डी।

नल्लाना—क्रि० सं० [हि० निराना] जिस खेत में फसल बोई गई हो उसमें की निरर्थक घास आदि दूर करना।

नल्लाई—सखा स्त्री० [हि० नलाना] १ नलाने या निराने का भाव। २ नलाने की क्रिया। ३ नलाने की मजदूरी।

नल्लिका—सखा स्त्री० [सं०] १ नल के आकार की कोई वस्तु। चोंगा। नली। २ मूँगे के आकार का एक प्रकार का गधद्रव्य।

विशेष—वैद्यक में यह तीता, कड़ुवा, तीक्ष्ण, मधुर और कृमि, वात, पित्त और शूल रोग का नाशक और मलशोधक माना गया है।

पर्या—विद्रुमल्लिका। कपोलचरण। नल्लिनी। रक्तदला। नर्तकी। नटी। प्रवाली।।

३. प्राचीन काल का एक मल।

विशेष—इसके विषय में कुछ लोगों का अनुमान है कि यह आजकल की बटूक के समान होता था और इसके द्वारा लोहे की बहुत छोटी छोटी गोलियाँ या तीर छोड़े जाते थे। इसका उल्लेख रामायण और महाभारत के अतिरिक्त वेदोक्त में पाया जाता है। शुक्रनीति में इसका अच्छा वर्णन है। इसे नालक और नाल भी कहते थे।

४ तरकश जिसमें तीर रखते हैं। ५ करेमू का साग। ६ पुदीना। ७ वैद्यक में एक प्रकार का प्राचीन यंत्र जिसकी सहायता से जलोदर के रोगी के पेट से पानी निकाला जाता था।

नल्लित—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो नाड़िका साग भी कहलाता है।

विशेष—वैद्यक में यह तिक्त, पित्तनाशक और शुक्रवर्धक माना गया है।

नल्लिन—सखा पुं० [सं०] [स्त्री० भल्ला० नल्लिनी] १ पद्म। कमल। २ नीलिका। नील। ३ जल। पानी। ४. नीम। ५ सारस पक्षी। ६ करोंदा।

नल्लिनी—सखा स्त्री० [सं०] १ कमलिनी। कमल। २ वह देश जहाँ कमल अधिकता से होते हैं। ३. पुराणानुसार गंगा की एक धारा का नाम। देवगंगा। ४ नारियल की शराब। ५ नल्लिनी नामक गधद्रव्य। ६. नाक का बायाँ नथना।

७ नदी। ८. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में पाँच सगण होते हैं।

विशेष—इसे मनहरण और भ्रमरावली भी कहते हैं।

९ कमलों का समूह (को०)। १०. कमलनाल (को०)। ११ हद्रपुरी (को०)।

नल्लिनीनन्दन—सखा पुं० [सं० नल्लिनीनन्दन] कुवेर के उपवन का नाम।

नल्लिनोरुह—सखा पुं० [सं०] १ मृणाल। कमल की नाल। २ ब्रह्मा।

नल्लिनेशय—सखा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

नल्लियाँ—सखा पुं० [हि०] बहेलिया।

नल्ली^१—सखा स्त्री० [सं०] १. मैनसिल। २ नल्लिका नाम का गधद्रव्य।

नल्ली^२—सखा स्त्री० [हि० नल का स्त्री० भल्ला०] १ छोटा या पतला नल। छोटा चोंगा। २ नल के आकार की भीतर से पोली हड्डी जिसमें मज्जा भी होती है। ३ घुटने से नीचे का भाग। पैर की पिंढली। ४ बटूक की नली जिसमें होकर गोली पहले गुजरती है। ५. जुलाहों की नाल। विशेष—दे० 'नाल'। ६ दे० 'नल'।

नल्लीमोज—सखा पुं० [फा०] वह कव्बतर जिसके पजे तक पर होते हैं।

नल्लुआ—सखा पुं० [हि० नल (= गला)] १. पशुओं का एक रोग जिसमें सूजन हो जाती है। २ छोटा नल या चोंगा। ३ बाँस की पोर। बाँस की दो गाँठों के बीच का टुकड़ा।

नल्लुवा^३—सखा पुं० [हि०] दे० 'नल्लुआ-२'। उ०—वा याम कों बाँस के एक नल्लुवा में घरि के लाठी करि वह बाहिर निकस्यो।—दो सो बावन, भा० १, पृ० १६६।

नल्लोत्तम—सखा पुं० [सं०] देवनल। बड़ा नरसल।

नल्लो—सखा स्त्री० [सं० नली] १ दे० 'नली'। २. एक प्रकार की घास जिसे पलवान भी कहते हैं। विशेष—दे० 'पलवान'।

नल्व—सखा पुं० [सं०] प्राचीन काल की जमीन की एक प्रकार की नाप या परिमाण।

विशेष—यह किसी के मत से सो हाथ का और किसी के मत से चार सो हाथ का होता है।

नल्वण—सखा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मान।

विशेष—यह किसी के मत से सोलह सेर का और किसी के मत से बत्तीस सेर का होता है।

नल्वषत्मेगा—सखा स्त्री० [सं०] काकजघा।

नल्वर—सखा पुं० [सं०] अंगरेजी मास का ग्यारहवाँ महीना जो ३० दिनों का तथा अक्टूबर के बाद और दिसंबर से पहले होता है।

नल्व^१—सखा पुं० [सं०] १. स्तव। स्तोत्र। २ लाल रंग की गदहपूरना। विशेष—दे० 'पुनर्नवा'। ३ हरिवंश के अनुसार उद्योतर नामक राजा के लड़के का नाम। ४. काक। कौआ (को०)।

नव^२—वि० [सं०] नया । नवीन । नूतन ।

नव^३—वि० [सं० नवन्] नौ । आठ और एक । दस से एक कम ।

विशेष—‘नव’ शब्द से कहीं कहीं ग्रह और रत्न आदि उन पदार्थों का भी अभिप्राय लिया जाता है जो गिनती में नौ होते हैं । जैसे—स्तर किरिट प्रति लसत जटित नव नव कनगुरे ।—गिरधर (शब्द०) ।

नवक^१—वि० [सं०] दे० ‘नौ’ ।

नवक^२—सङ्घा पुं० [सं०] एक ही तरह की नौ चीजों का समूह । जैसे, (नौ) धातुओं का नवक, (नौ) ग्रहों का नवक ।

नवका^३—सङ्घा स्त्री० [सं० नौका, प्रा० हि० नवका] दे० ‘नाव’ । उ०—उहुप पोत, नवका, पखन, तरि, वहिन जलजान । नाम नाव चढ़े भव उदधि, केते तरे भजान ।—नद० प्र०, पु० ६१ ।

नवकार—सङ्घा पुं० [सं०] जैनियों का एक मन्त्र ।

नवकारिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] स्त्री । नवोढा स्त्री ।

नवकार्षि गूगल—सङ्घा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का घृणं जिसमें गूगल, त्रिफला और पिप्पली सब चीजें बराबर होती हैं ।

विशेष—इसका व्यवहार शोथ, गुल्म, भगदर और बवासीर आदि को दूर करने में होता है ।

नवकालिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ युवा स्त्री । नवयौवना । नौजवान औरत । २ वह युवती जो हाल में पहले पहल रजस्वला हुई हो ।

नवकुमारी—सङ्घा स्त्री० [सं०] नौ रात्र में पूजनीय नौ कुमारियाँ जिनमें निम्नलिखित नौ देवियों की कल्पना की जाती है कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काशी, चण्डिका, शांभवी, दुर्गा और सुमद्रा ।

विशेष—दे० ‘नवरात्र’ ।

नवखंड—सङ्घा पुं० [सं० नवखण्ड] भूमि के नौ विभाग, यथा—भरत, इलावर्त, किपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश ।

नवग्रह—सङ्घा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह । विशेष—दे० ‘ग्रह’ ।

नवच्छिद्र—सङ्घा पुं० [सं०] दे० ‘नवद्वार’ ।

नवछावरि(पुं०)—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० ‘न्योछावर’ । उ०—लेति बलाय करति नवछावरि बलि भुजदह कनक प्रति भासी । नरनारी के नेत्र निरखि करि चतक तृपित चक्री प्यासी ।—सूर (शब्द०) ।

नवजात—वि० [सं०] सद्य उत्पन्न । तुरत का पैदा हुआ (को०) ।

नवज्वर—सङ्घा पुं० [सं०] प्रारम्भिक ज्वर । चढ़ता बुखार । वह बुखार जिसका प्रभी प्रारम्भ हुआ हो । विशेष—दे० ‘ज्वर’ ।

नवड़ा—सङ्घा पुं० [देश०] मरसा ।

नवड़ा^३—सङ्घा स्त्री० [सं० नवोढा] दे० ‘नवोढा’ । उ०—नित नित्य विचार सहित सब साधन साधै । कै इह नवड़ा ना धारि उर मे धाराधै ।—ब्रज० प्र०, पु० ६१ ।

नवतन—सङ्घा पुं० [सं० नवतन्तु] महाभारत के अनुसार विश्वाकि के एक खड्के का नाम ।

नवता^३—वि० [सं० नवीन] नवीन । नया । ताजा ।

नवता^१—सङ्घा पुं० [सं० नमन] ढालुपौ जमीन । उतार (कहार)

नवता^२—सङ्घा स्त्री० [सं०] नवीनता । नयापन

नवति^१—वि० [सं०] प्रस्ती और दस । सौ से दस कम । नवें

नवति^२—सङ्घा स्त्री० [सं०] नव्वे की सख्या जो इस प्रकार लि जाती है—६० ।

नवदंड—सङ्घा पुं० [सं० नवदण्ड] राजाओं के तीन प्रकार के द में से एक प्रकार के छत्र का नाम ।

नवदंडक—सङ्घा पुं० [सं० नवदण्डक] दे० ‘नवदण्ड’ (को०) ।

नवदल—सङ्घा पुं० [सं०] १. कमल का वह पत्ता जो उसके के पास होता है । २ नया पत्ता (को०) ।

नवदीधिति—सङ्घा पुं० [सं०] मंगल ग्रह ।

नवदुर्गा—सङ्घा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार नौ दुर्गाएँ जिनकी नव में नौ दिनों तक क्रमशः पूजा होती है । यथा—शैलपु ब्रह्मचारिणी, चंद्रघटा, कुम्भाढा, स्कंदमाता, काश्याय कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदा । विशेष—दे० ‘दुर्गा’ ।

नवद्वार—सङ्घा पुं० [सं०] शरीर में के नौ द्वार, यथा—दो घाँव दो कान, दो नाक, एक मुख, एक गुदा और एक लिंग भग ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था और अब भी कुछ लं का विश्वास है कि जब मनुष्य मरने लगता है तब उस प्राण इन्हीं नौ द्वारों में से एक द्वार से निकलता है ।

नवद्वीप—सङ्घा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध नगर और विद्या जो राजा लक्ष्मणसेव की राजधानी थी ।

विशेष—यह नगर गंगा नदी के बीच में एक चर पर । हुआ है । कहते हैं, वहाँ छोटे छोटे नौ गाँव हैं जि समूह को पहले नवद्वीप कहते थे । प्राधुनिक ‘नदिया’ इसी का अपभ्रंश है । यह स्थान विशेषतः न्यायशास्त्र लिये बहुत प्रसिद्ध है ।

नवधा अंग—सङ्घा पुं० [सं० नवधा अङ्ग] शरीर के नौ अंग—य दो घाँवें, दो कान, दो हाथ, दो पैर और एक नाक ।

नवधातु—सङ्घा स्त्री० [सं०] नव धातुएँ ।

विशेष—हेमतारारनागाश्व तात्ररगे च तीक्ष्णकम् । कांस कातलोह च घातको नव कीर्तितः ।

नवधा भक्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] नौ प्रकार की भक्ति । यथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, ध्यान, वंदन, सख्य, द और आत्मनिवेदन । विशेष—दे० ‘भक्ति’ ।

नवन^७—संज्ञा पुं० [सं० नमन] दे० 'नमन' ।

नवना^७—क्रि० प्र० [सं० नमन] १ भुक्तना । २ नम्र होना ।

नवनि^७—संज्ञा स्त्री० [हिं० नवना] १. भुक्तने की क्रिया या भाव । २ सभ्रता । दीनता । उ०—नवनि नीच की प्रति दुखदाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नवनिधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निधि' ।

नवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवनीत । मक्खन ।

नवनीत—संज्ञा पुं० [सं०] १ मक्खन । २. श्रीकृष्ण ।

ननीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृत । घी । २. मक्खन ।

नवनीत गणप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक गणेश या गणपति का नाम ।

नवनीत धेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित गौ जिसकी कल्पना मक्खन के ढेर में की जाती है ।

विशेष—कहते हैं, इस गौ के दान से शिवसामुज्य प्राप्त होता है और विष्णुलोक में वास होता है । वराह पुराण में इसका विस्तृत विवरण दिया हुआ है ।

नवपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले, अनार, घान, हल्दी, मानकचू, कचू, बेल, अशोक और जयंती इन नौ वृक्षों के पत्ते ।

विशेष—इनका व्यवहार नवदुर्गा के पूजन में होता है ।

नवपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मूर्ति जिसकी उपरसना जैन लोग करते हैं ।

नवपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपई या जनकरी छंद का एक नाम । विशेष—दे० 'चौपई' ।

नवप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] नया अन्न या फल आदि खाना ।

नवफलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवकालिका' ।

नवभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवधा भक्ति' ।

नवम—वि० [सं०] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो । नवा ।

नवमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमेली । २ नेवारी ।

नवमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नवांश' ।

नवमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण और यगण (III ISI SII ISS) होता है । इसे 'नवमालिनी' भी कहते हैं । २ नेवारी का फूल ।

नवमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवमल्लिका' ।

नवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाद्र मास के किसी पक्ष की नवी तिथि ।

विशेष—धार्मिक कृत्यों के लिये मृष्टमीविद्धा नवमी प्राह्य होती है । कुछ विशिष्ट मासों के विशिष्ट पक्ष की नवमी के अलग अलग नाम हैं । जैसे, माघ के शुक्ल पक्ष की नवमी का नाम महानदा, चैत्र शुक्ला नवमी का नाम रामनवमी ।

नवयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नए अन्न के निमित्त किया जाय ।

नवयुवक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नवयुवती] नौबवान । तरुण ।

नवयुवा—संज्ञा पुं० [सं०] जवान । तरुण ।

नवयोनिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का न्यास ।

नवयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके यौवन का धारम हो । नौजवान औरत ।

नवरग—वि० [सं० नव + हिं० रग] १ सुंदर । रूपवान । नई छटावाला । उ०—सूरदास युगभरि भीतत छिनु । हरि नवरग कुरष पीव विनु ।—सूर (शब्द०) । २ नए ढंग का । नवेला । नई घोषामुक्त । उ०—घाज बनी नवरग किसोरी ।—सूर (शब्द०) ।

नवरंगी^१—वि० [हिं० नवरग + ई (प्रत्य०)] १. नित्य नए आनंद करनेवाला । उ०—ऐसे हैं त्रिमंगी नवरंगी मुखदाई री । सूर स्वाम विन न रहों ऐसी बनि दाई री ।—सूर (शब्द०) । २ रंगीली । हंसमुख । पुष्पमिवाज । उ०—नाउति धोलहु महावर वेग । सास टका अरु झुमक सारी देहु दाई की नेग ।—सूर (शब्द०) ।

नवरंगी^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'नारंगी' ।

नवरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूंगा, सहस्रुनिया, पप्पराग और नीलम ये नौ रत्न या आवाहिर ।

विशेष—पुराणानुसार ये नौ रत्न अलग अलग एक एक ग्रह के दोषों की शांति के लिये उपकारी हैं । जैसे, सूर्य के लिये सहस्रुनिया, चंद्रमा के लिये नीलम, मंगल के लिये मानिक, बुध के लिये पुष्कराज, बृहस्पति के लिये मोती, शुक के लिये हीरा, शनि के लिये नीलम, राहु के लिये गोमेद और केतु के लिये पन्ना ।

२ राजा विक्रमादित्य की एक कल्पित सभा के नौ पंडित जिनके नाम ये हैं—धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शकु, वेतालमृद घटम्पेर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि ।

विशेष—ये सब पंडित एक ही समय में नहीं हुए हैं बल्कि भिन्न भिन्न समयों में हुए हैं । लोगों ने इन सबको एकत्र करके कल्पना कर ली है कि ये सब राजा विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्न थे ।

३ गले में पहनने का एक प्रकार का हार जिसमें नौ प्रकार के रत्न या जवाहरात होते हैं ।

नवरस—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य के नौ रस, यथा शृंगार, हास्य, करुण, रोद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, उद्भुत और शांत । विशेष—दे० 'रस' ।

नवरा^१—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला' ।

नवरा^७—वि० [सं० नवल] नया । उ०—हाटे बाटे मिले बटोही लगा वरद है नवरा ।—सं० दरिया, पृ० १४१ ।

नवरात^७—संज्ञा पुं० [सं० नवरात्र] दे० 'नवरात्र' । उ०—अलि अगम नवरात को सबको मन हुलसात । सखन रामलीला ललित सजि सजि सबही जात ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ६६० ।

नवराता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नवरात्र' ।

नवरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का नौ दिनों तक होने-वाला एक प्रकार का यज्ञ । २. चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक के नौ नौ दिन जिनमें लोग नवदुर्गा का व्रत, घटस्थापन तथा पूजन आदि करते हैं ।

विशेष—हिंदुओं में यह नियम है कि वे नवरात्र के पहले दिन घटस्थापन करते हैं और देवी का आवाहन तथा पूजन करते हैं । यह पूजन बराबर नौ दिनों तक होता रहता है । नवें दिन भगवती का विसर्जन होता है । कुछ लोग नवरात्र में व्रत भी करते हैं । घटस्थापन करनेवाले लोग अष्टमी या नवमी के दिन कुमारीभोजन भी कराते हैं । कुमारी-भोजन में प्रायः नौ कुमारियाँ होती हैं जिनकी अवस्था दो और दस वर्ष के बीच की होती है । इन नौ कुमारियों के के कल्पित नाम भी हैं । जैसे—कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चडिका, शामबी, दुर्गा और सुमन्ना । नवरात्र में नवदुर्गा में से नित्य क्रमशः एक एक दुर्गा के दर्शन करने का भी विधान है ।

नवराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] महामारत के अनुसार एक प्राचीन देश जिसे सहदेव ने दक्षिण की ओर दिग्विजय करते समय जीता था ।

नवरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] नाव । उ० । उ०—गंग जमून दोठ बहुइय तीक्ष्ण धार । सुमति नवरिया बैसल उतरब पार ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६ ।

नवल^१—वि० [सं०] १. नवीन । नूतन । नव्य । नया । २. सुंदर । ३. जवान । युवा । नवयुवक । ४. उज्ज्वल । शुद्ध । साफ । स्वच्छ ।

नवल^२—संज्ञा पुं० [अ० नेवल (जहाजी) ?] माल का किराया जो जहाजवालों को दिया जाता है (लश०) ।

नवल अनंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवल अनङ्गा] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक ।

नवलकिशोर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र ।

नवलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक ।

नवला^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीन स्त्री । तरुणी ।

नवला^२—वि० स्त्री० नई । नवीना । चढ़नी वय की । उ०—का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि । चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २० ।

नवलेखा—संज्ञा पुं० [सं० नव + सं० लेख, हि० लेखा (= कीचड़ का लेप)] वह कीचड़ जो बड़ी हुई नदी के उतरने से किनारे पर रह जाती है । नदी के किनारे की दलदल ।

नववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वर्ष' (पृथ्वी के विभाग का देश) ।

नवबल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भगर जिसे दाह भगर कहते हैं, और जिसकी गिनती गवद्रथों में होती है ।

३-४०

नववासुदेव—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नसारानुसार जैन लोगों के : वासुदेव जिनके नाम ये हैं—त्रिपुष्ट, द्विपष्ट, स्वयम्भु, पुरुषोत्त सिंहपुरुष, पुंडरीक, दत्ता, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण ।

विशेष—कहते हैं कि ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थंकरों के समय में जन्म गये ।

नवबास्तु—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक राजर्षि का नाम ।

नवविंश—वि० [सं०] उनतीसवाँ । जो क्रम में अट्ठाईस के बाद हो

नवविंशति^१—वि० [सं०] बीस और नौ । बीस से एक कम ।

नवविंशति^२—संज्ञा स्त्री० बीस और नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—२९ ।

नवविष—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रनाभ, हारिद्रक, सकतुक, प्रदीप सोराष्ट्रक, श्रंगक, कालकूट, हलाहल और ब्रह्मपुत्र ये नौ विष

नवव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

नवशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार प्रभा, माया, जया, सूक्ष्म विशुद्धा, नदिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिवाये शक्तियाँ ।

नवशायक—संज्ञा पुं० [सं०] पराशर संहिता के अनुसार ग्वाल माली, तेली, जोछाहा, हलवाई, बरई, कुम्हार, लोहार आदि हज्जाम ये नौ जातियाँ ।

विशेष—उक्त संहिता के अनुसार ये नौ जातियाँ सकर हैं आ शुद्ध शूद्र जाति के अंतर्गत हैं । बंगाल में नवशायकों के हाथ का जल ब्राह्मण लोग पीते और उनका दान ग्रहण करते हैं ।

नवशिक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने अभी हाल में कुछ या सीखा हो । नौसिखुमा । २. वह जिसे आधुनिक ढंग शिक्षा मिली हो ।

नवशोभ—संज्ञा पुं० [सं०] नई शोभावाला । तरुण । जवान । युवक

नवश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्राद्ध जो प्रेत के लिये किया जाता ।

विशेष—यह मरनेवाले दिन से आरम्भ किया जाता है तथा एक दिन के अंतर पर अर्थात् तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें आदि ग्यारहवें दिन किया जाता है ।

नवसंगम—संज्ञा पुं० [सं० नवसङ्गम] प्रथम समागम । नया मिलाप पति से पत्नी की पहली भेंट ।

नवसत^१—संज्ञा पुं० [सं० नव + हि० सत (= सप्त)] नव आ सात, सोलह शृंगार । उ०—नवसत साजि भई सब ठा को छवि सके बखानी ।—सूर (शब्द०) ।

नवसत^२—वि० सोलह । षोडश ।

क्रि० प्र०—सजना, साजना = सोलहों शृंगार करना । उ०—नवसत साजि सिंगार युवति सब दधि मटुकी लि भावत ।—सूर (शब्द०) ।

नवसप्त—संज्ञा पुं० [सं०] नौ और सात, सोलह शृंगार ।

क्रि० प्र०—सजना, साजना = सोलहों शृंगार करना । उ०—(क) खलि त्याग सीतहि सखी नादर सजि सुमंगल भामिनी

नवसत साजे सुंदरी सब मल कुत्रर गामिनी।—सुलसी (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ सूप छुप मिलि मासिनि। सजि नवसत सकल दुति दामिनि।—सुलसी (शब्द०)।

नवसर^१—संज्ञा पुं० [सं० नव+हि० नी] नी लड़का द्वार। उ०—कठसिरी दुलरी तिसरी की धीर द्वार एक नवसर।—सूर (शब्द०)।

नवसर^२—वि० [सं० नव+वत्सर] नववयस्क। जिसकी नई उमर हो। उ०—सूरस्याम स्यामा नवसर मिलि रोके नदकुमार।—सूर (शब्द०)।

नवससि^३—संज्ञा [सं० नवशशि] द्वितीया का चंद्रमा। दूज का चाँद। नया चाँद।

नवसात^४—संज्ञा पुं० [सं० नव+सत] दे० 'नवसत'।

क्रि० प्र०—करना=सोलहो शृंगार करना। उ०—पाठरे गात किये नवसात निकाई सों नाक चढ़ाएँई बोले।—घनानंद, पृ० २०६।

नवसिखा—संज्ञा पुं० [सं० नव+हि० सीखना] दे० 'नोसिखुमा'।

नवहठ^५—संज्ञा पुं० [सं० नव+हि० हठ (=हँड़ी)] मिट्टी का नया बरतन। नई हँडी। नोहँड़। उ०—कोउ सीधा, नवहठ ह्यावत मोदीखाने सन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६।

नवांग—संज्ञा पुं० [सं० नवाङ्ग] सोंठ, पोपल, मिर्च, हड, बहेडा, भाँवला, चाव, चीता और बायविडंग ये नौ पदार्थ।

नवांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवाङ्गा] काकडासिंगी।

नवांश—संज्ञा पुं० [सं०] एक राशि का नवाँ भाग जिसका व्यवहार फलित ज्योतिष में किसी नवजात बालक के चरित्र, प्रकार और चिह्न आदि का विचार करने में होता है।

नवाँ—वि० [सं० नवम] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो। आठवें के बाद और दसवें के पहले का। नौवाँ।

नवाँ—वि० [हि०] दे० 'नया'।

नवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नवना] विनीत होने का भाव। उ०—सूर नवाई नवखंड यह। सात दीप दुनी सब नए।—जायसी (शब्द०)।

नवाई^१—वि० नया। नवीन। उ०—यह मति प्राप कहाँ धों पाई। आजु सुनी यह बात नवाई।—सूर (शब्द०)।

नवागत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नवागता] नया आया हुआ। जो अभी आया हो।

नवागतसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] नई भरती की हुई फौज। रगरुटों की सेना।

विशेष—कीटिल्य ने लिखा है कि नवागत तथा दूरयात (दूर से आने के कारण यके) सैन्य में से नवागत सैन्य दूसरे देश से आकर पुरानों के साथ मिलकर युद्ध कर सकती है। दूरयात सैन्य के संबंध में यह बात नहीं है, क्योंकि यह एकावट के कारण लड़ाई के प्रयोग्य होती है।

नवाज—वि० [फ़ा० नवाज] कृपा करनेवाला। दया दिखानेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल योगिक शब्दों

के अर्थ में होता है। जैसे, नदानवाज। गरीबनवाज=दीन-दयालु। उ०—मुफ्फ़ी पूछा तो कुछ गजब न हुआ। मैं गरीब धीर तु गरीबनवाज।—गालिब०, पृ० १५७।

नवाजना^१—क्रि० सं० [फ़ा० नवाज] कृपा करना। दया दिखलाना।

नवाजिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवाजिश] मेहरबानी। कृपा। दया। उ०—नवाजिश हुए बेजा देखता हूँ। शिकायत हुए रंगी का गिला बया।—गालिब, पृ० ५५।

नवाड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की नाव। नवारा। उ०—घावों से लोहू की नदी बह निकली, जिसमें भुजाएँ मगरमच्छों सी जनाती थी, कटे हुए हाथियों के मस्तक घड़ियाल से दूबते उछलते जाते थे। बीच बीच रख बड़े नवाड़े से बहे जाते थे।—सत्त्व (शब्द०)।

नवाना^१—संज्ञा पुं० [सं० नवान] दे० 'नवान'।

मुहा०—नवान करना = फसल का नया आया हुआ अन्न भून या पकाकर पहले पहल खाना। उ०—जो की कच्ची बालों को भूनकर गुठ मिलाकर लोग नवान कर रहे हैं।—तितली, पृ० १३३।

नवाना—क्रि० सं० [सं० नवन या नमन] झुकाना। विनीत करना। जैसे, सिर नवाना।—उ०—गज तबहि कछु दुप पाया। अक्रुश के धीर नवावा।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १२२।

नवान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ फसल का नया आया हुआ अनाज। २ एक प्रकार का आटा जो प्राचीन काल में नया अन्न तैयार होने पर पितरों के चर्द्दथ से होता था। ३ ताजा पकाया हुआ अन्न। रोषा हुआ अन्न।

नवाब^१—संज्ञा पुं० [अ० नव्वाब] १ बादशाह का प्रतिनिधि जो किसी बड़े प्रदेश के शासन के लिये नियुक्त हो।

विशेष—भारत में इसका प्रयोग पहले पहल मुगल सम्राटों के समय उनके प्रतिनिधियों के लिये हुआ था। जैसे, लखनऊ के नवाब, सूरत के नवाब।

२ एक उपाधि जो आजकन छोटे मोटे मुसलमानों राज्यों के मालिक अपने नाम के साथ लगाते हैं। जैसे, रामपुर के नवाब। ३ एक उपाधि जो भारतीय मुसलमान धर्मियों को अंगरेजी सरकार की ओर से मिलती थी और जो प्रायः राजा की उपाधि के समान होती थी।

नवाब^२—वि० बहुत शान शोक्त और धमोरी ढंग से रहने तथा खूब खर्च करनेवाला। जैसे,—(क) जब से उनके बाप मर गए हैं तब से वे नवाब बन गए हैं। (ख) ऐसे नवाब मत बनो नहीं तो साल दो साल में भी खर्च माँगने लगोगे।

नवाबजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवाबजादह्] १ नवाब का पुत्र। नवाब का बेटा। २ वह जो बहुत बड़ा शोकीन हो—(व्यंग्य)।

नवाबपसद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का घान जो आदों के अर्थ या क्वार के आरम्भ में तैयार होता है।

नवाबी—संज्ञा स्त्री० [हि० नवाब+ई (प्रत्यय०)] १ नवाब का पद। २. नवाब का काम। ३. नवाब होने की दशा।

४. नवाबों का राजत्वकाल । जैसे,—नवाबी में अवध की हालत कुछ भोर ही थी । ५. नवाबों की सी हुकुमत । जैसे,—जुपचाप बैठो, यहाँ तुम्हारी नवाबी नहीं चलेगी । ६. बहुत अधिक प्रमीरी या प्रमीरों का सा अव्यय । जैसे,—प्रमी कहीं से सी दो सी रुपए उन्हें मिल जायें, फिर देखिए उनकी नवाबी । ७ एक प्रकार का कपड़ा जिसे पहले प्रमीर लोग पहना करते थे ।

नवारना—क्रि० प्र० [हि०] १ चलना । टहलना । २ यात्रा करना । सफर करना ।

नवारा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी नाव ।

नवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नेवारी' ।

नवासंज—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] गायक । उ०—किसी को दे के दिल कोई नवासंज फुगा क्यों हो । न हो जब दिल ही सीने में तो मुँह में फिर जबाँ क्यों हो ।—गालिब०, पृ० २५३ ।

नवासा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नवासह्] [स्त्री० नवासी] बेटी का बेटा । दोहित्र ।

नवासाज—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० नवासाज] गायक [को०] ।

नवासी^१—वि० [सं० नवासीति] नौ प्रौर प्रस्ती । एक कम नम्बे ।

नवासी^२—सञ्ज्ञा पुं० नौ प्रौर प्रस्ती की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८१ ।

नवासी^३—वि० स्त्री० [हि० नाना (= डालना)] समोग की तीव्र इच्छा या लालसावाली । (बाजारू) ।

नवाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण का वह पाठ जो नौ दिन में समाप्त किया जाता है । २. किसी सप्ताह, पक्ष, मास या वर्ष आदि का नया दिन ।

नवि^७—प्र० [प्रा० नवि] न । नहीं तो । अन्यथा । उ०—पावस प्रायः साहिबा, बोलर लागा भोर । कता तूँ धरि आव नवि, जीवन कीधर जोर ।—ढोला०, पृ० ३८ ।

नवी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्ती जिससे गाय के पैर में बछड़े का गला बाँधकर दूध दुहते हैं । नोई ।

नवी^७—वि० [सं० नव, तुलनीय फा० नवी (= नया, प्राधुनिक)] दे० 'नई' । उ०—नवी बाली कू नली (?) कदम में भेजे, प्रीत प्याले भरकर पियाला बसत ।—दक्खिनी०, पृ० ७४ ।

नवीन^१—वि० [सं०] १. जो अभी का या थोड़े समय का हो । प्राचीन का उलटा । हाल का । ताजा । नया । नूतन । २. विचित्र । अपूर्व ।

नवीन^२—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० नवीना] नवयुवक । तरुण । जवान ।

नवीनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नवीनत्व] नूतनत्व । नूतनता । नवीन या नया होने का भाव ।

नवीस—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] लिखाई । लिखने की क्रिया या भाव ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है । जैसे, भरजीनवीस ।

नवीसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] लिखाई । लिखने की क्रिया या भाव ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है । भरजीनवीसी ।

नवेद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निवेदन प्रयवा फा०] १. निमंत्रण । न्यो । २. वह चिट्ठी जिसमें न्योता लिखकर भेजा जाय । निमः पत्र । ३. शुभ सूचना । खुशखबरी (को०) ।

नवेला—वि० [सं० नवल] [स्त्री० नवेली] १ नवीन । नया । तरुण । जवान ।

नवेली^१—वि० स्त्री० [सं० नवल] नई उमर की । तरुणी ।

नवेली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० नई स्त्री । युवती । तरुणी ।

नवैग्रह^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नवग्रह] दे० 'नवग्रह' । उ०—३ नवैग्रह सिव प्रसन, हरि आग्या मुर राय ।—रा० पु० ३६६ ।

नवैयत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रकार । भेद । किस्म ।

नवोद्गा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० नवोद्गा] १. विवाहिता स्त्री । बधू । नवयोवना । युवती स्त्री । २. साहित्य में मुग्धा के आश्रितयोवना नायिका का एक भेद । वह नायिका जो स और भय के कारण नायक के पास न जाना चाहती हो ।

नवोद्भूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मकखन ।

नव्य^१—वि० [सं०] १. नया । नवीन । नूतन । ताजा । २. करने के योग्य ।

नव्य^२—संज्ञा पुं० गवहपूर्ता । रक्त पुनर्नवा ।

नव्वाव—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १ बादशाह का प्रतिनिधि या नायक उसकी ओर से किसी क्षेत्र का शासन करता हो । २. रियासत का मुसलमान शासक ।

नव्वाबी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १. नव्वाब का पद । २. शासन । हुकुमत । ३. सश्रद्धि । संपन्नता । ४. अपठ फिजूलखर्ची ।

नश, नशान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नाश, विनाश । २. हानि । क्ष ३ विलोप । लोप [को०] ।

नशाना^७—क्रि० प्र० [सं० नाश] नष्ट होना । बरबाद हो बिगड़ जाना ।

नशा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नशह] १ वह अवस्था जो शराब, अफीम या गाँजा आदि मादक द्रव्य खाने या पीने से है । मादक द्रव्य के व्यवहार से उत्पन्न होनेवाली दशा ।

विशेष—शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि एक प्रकार के हैं । इनके व्यवहार से शरीर में एक प्रकार की गरमी होती है जिससे मनुष्य का मस्तिष्क क्षुब्ध भोर हो उठता है, तथा स्मृति (याद) या धारणा कम हो है । इसी दशा को नशा कहते हैं । साधारणतः लोग शराब, भाँग, गाँजा आदि से छूटने या शारीरिक शिथिलता दूर करने अथवा मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं । बहुत लोग इन द्रव्यों के इतने मग्न हो जाते हैं कि वे प्रति इनका व्यवहार करते हैं । साधारण नशे की अवस्था

चित्त में अनेक प्रकार की उमंगें उठती हैं, बहुत सी नई नई धीर विलक्षण बातें सुझती हैं धीर चित्त कुछ प्रसन्न रहता है। लेकिन जब नशा बहुत हो जाता है तब मनुष्य के करने लग जाता है अथवा बेहोश हो जाता है।

मुहा०—नशा उतरना = नशे का न रहना। मादक द्रव्य के प्रभाव का नष्ट हो जाना। नशा किरकिरा हो जाना = किसी अप्रिय बात के होने के कारण नशे का मजा बीच में बिगड़ जाना। नशे का बीच में ही उतर जाना। नशा चढ़ना = नशा होना। मादक द्रव्य का प्रभाव होना। (भाषा में) नशा छाना = नशा चढ़ना। मस्ती चढ़ना। नशा जमना = अच्छी तरह नशा होना। नशा टटना = नशा उतरना। नशा हिरन होना = किसी असमावित घटना आदि के कारण नशे का विलक्षण उतर जाना।

१ वह चीज जिससे नशा हो। मादक द्रव्य। नशा चढ़ानेवाली चीज। नशीली वस्तु।

यौ०—नशापाती = मादक द्रव्य और उसकी सामग्री। नशे का सामान।

३ घन, विद्या, प्रभुत्व या रूप आदि का घमड़। अभिमान। मय। गर्व।

मुहा०—नशा उतरना = गर्व या घमड़ घूर होना। नशा उतारना = घमड़ दूर करना।

नशाक—सङ्घा पु० [फा०] एक प्रकार का कौआ (को०)।

नशाखोर—सङ्घा पु० [फा० नशाखोर] वह जो किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। नशेबाज।

नशाना^१—क्रि० सं० [सं० नशन] नष्ट करना। बरबाद करना। बिगाड़ डालना।

नशाना^२—क्रि० प्र० खो जाना।

नशाघना^३—वि० [सं० नाश] नाश करना।

विशेष—समास में 'नष्ट करनेवाला' अर्थ भी होता है।

नशीन—वि० [फा०] बैठनेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, गद्दीनशीन, तख्तनशीन।

नशीनी—सङ्घा स्त्री० [फा०] बैठने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, तख्तनशीनी। गद्दीनशीनी।

नशीला—वि० [फा० नशा + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० नशीली] १ नशा उत्पन्न करनेवाला। नशा लानेवाला। मादक। २ जिसपर नशे का प्रभाव हो।

मुहा०—नशीली भाँखें = वे भाँखें जिनमें मस्ती छाई हो। मदमत्त भाँखें।

नशेदी—वि० [हि०] नशेबाज।

नशेबाज—सङ्घा पु० [फा० नशेबाज] वह जो बराबर किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। वह जिसे कोई नशा करने की आदत हो।

नशेमन—सङ्घा पु० [फा०] घोंसला। नींद। आवास। आश्रय स्थल। उ०—कबाबी सीख समझें बुलबुलें चाये नशेमन को। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

नशोहरा—वि० [सं० नशा + मोहर] नाश करनेवाला। उ०—सुमति सृष्टि कर निपुन विघाता। विघन नशोहर विमल विघाता।—रघुराज (शब्द०)।

नश्वर—सङ्घा पु० [फा०] एक प्रकार का बहुत तेज छोटा चाकू जिसका अगला भाग नुकीला और टेढ़ा होता है और प्रायः जिसके दोनों ओर धार रहती है। इसका व्यवहार कोड़े आदि चीरने और फसद छोड़ने में होता है।

मुहा०—नश्वर देना या लगागा = नश्वर से कोड़ा चीरना। नश्वर लगना = कोड़े का चीरा जाना।

नश्यत्प्रसूतिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] जिसका बच्चा मर गया हो। मृतपुत्रिका।

नश्वर—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला। जो नष्ट हो जाय या जो नष्ट हो जाने के योग्य हो। जो ज्यों का त्यों न रहे। जैसे,—शरीर नश्वर होता है।

नश्वरता—सङ्घा स्त्री० [सं०] नश्वर होने का भाव।

नप^१—सङ्घा पु० [सं० नख] दे० 'नख'।

नपत^२—सङ्घा पु० [सं० नखत, हि० नखत] दे० 'नखत'।

नपसिप^३—सङ्घा पु० [सं० नखशिख] दे० 'नख शिख'।

नषाना^४—क्रि० सं० [?] नषाना। चलाना। घुमाना। उ०—जाके घर ताजी तुरकीन को तबेला बँधो ताके भागे केरि केरि टटुवा नषाए।—सुदर० प्र०, भा० २, पृ० ४६६।

नष्ट—वि० [सं०] १. जो अदृश्य हो। जो दिखाई न दे। २. जिसका नाश हो गया हो। जो बरबाद हो गया हो। जो बहुत दुर्दशा को पहुँच गया हो। जैसे,—भाग लगने के कारण सारा महत्त्वा नष्ट हो गया। ३. अयम। नीच। बहुत बड़ा दुराचारी या पापी। ४. निष्कल। व्यर्थ। ५. घनहीन दरिद्र। ६. पलायित (को०)।

विशेष—योगिक में यह शब्द पहले लगता है। जैसे, नष्टधीर्य, नष्टमुद्रि।

नष्टक्रिय—वि० [सं०] कृतघ्न (को०)।

नष्टचंद्र—सङ्घा पु० [सं० नष्टचंद्र] आदो के महीने की दोनों पक्षों की चतुर्थी को दिखाई पड़नेवाला चंद्रमा जिसका दशम पुराणानुसार निषिद्ध है।

विशेष—कहते हैं, उस दिन चंद्रमा को देखने से कोई न कोई कलंक या अपवाद लगता है। कुछ लोग केवल शुक्ल चतुर्थी के चंद्रमा को ही नष्ट चंद्रमा मानते हैं।

नष्टचित्त—वि० [सं०] अन्मत्त।

नष्टचेतन—सङ्घा पु० [सं०] अचेत। बेहोश। बेखबर।

नष्टचेष्ट—वि० [सं०] जिसकी चेष्टा या गति नष्ट हो गई हो।

नष्टचेष्टता—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. मुच्छा। बेहोशी। २. अवयव। ३. एक प्रकार का सात्विक भाव।

नष्टजन्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नष्टजन्मन्] जारज। वरुणसंकर।
दोगला।

नष्टजातक—सञ्ज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार की
क्रिया या उपाय जिसके अनुसार ऐसे मनुष्य की जन्मकुण्डली
प्राप्ति बनाई जाती है जिसके जन्म के समय और तिथि
प्रादि का कुछ भी पता नहीं रहता।

नष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नष्ट होने का भाव। २. वाह्यातपन।
दुराचारिता।

नष्टदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो। अज्ञा।
दृष्टिहीन।

नष्टधन—वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो [को०]।

नष्टप्रभ—वि० [सं०] तेजहीन। कातिरहित।

नष्टबुद्धि—वि० [सं०] मूर्ख। बेवकूफ। बुद्धिहीन।

नष्टभ्रष्ट—वि० [सं०] जो बिलकुल टूटफूट या नष्ट हो गया हो।

नष्टराज्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम।

नष्टरूपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अनुष्टुप छंद के एक भेद का नाम।

नष्टविष—वि० [सं०] (वह जहरीला जानवर) जिसका विष
नष्ट हो गया हो।

नष्टबीज—वि० [सं०] फसल या पौध जो बोने पर न उगा हो।

नष्टशल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाण का वह भगला टुकड़ा जो
टूटकर शरीर के भीतर ही रह गया हो [को०]।

नष्टशुक्र—वि० [सं०] जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो।

नष्टसंज्ञ—वि० [सं०] बेहोश [को०]।

नष्टस्मृति—वि० [सं०] जिसकी याददाश्त कमजोर या नष्ट हो
गई हो [को०]।

नष्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। रही। २. व्यभिचारिणी।
कुलटा।

नष्टाग्नि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह साग्निक ब्राह्मण या द्विज जिसके
यहाँ की अग्नि प्रमाद या आसत्य के कारण लुप्त हो
गई हो।

नष्टात्मा—वि० [सं० नष्टात्मन्] दुष्ट। खरा।

नष्टापिसूत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खोई हुई चीजों का कुछ अंश
मिलना जिससे बाकी चीजों का भी सूत्र मिले।

नष्टार्थ—वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो। दरिद्र।

नष्टाशंक—वि० [सं० नष्टाशङ्क] शंकारहित। निर्भय।
भयशून्य [को०]।

नष्टाश्वदग्धरथन्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत शास्त्रों में प्रसिद्ध एक
न्याय जिसका तात्पर्य है दो आदमियों का इस प्रकार मिलकर
काम करना जिसमें दोनों एक दूसरे की चीजों का उपयोग
करके अपना उद्देश्य सिद्ध करें।

विशेष—यह न्याय निम्नलिखित घटना या कहानों के आधार
पर है। दो आदमी अलग अलग रथ पर सवार होकर
किसी धन में गए। वहाँ सदोगवत्ता भाग लगने के कारण

एक आदमी का रथ जल गया और दूसरे का घोड़ा
गया। कुछ समय के उपरांत जब दोनों मिले तब एक
पास केवल घोड़ा और दूसरे के पास केवल रथ
उस समय दोनों ने मिलकर एक दूसरे की चीज
उपयोग किया। घोड़ा रथ में जोता गया और वे
निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच गए।

नष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। विनाश। बरबादी।

नष्टेदुकला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नष्टेदुकला] १. प्रतिपदा। परिव
२. प्रमादस्या। क्रूर [को०]।

नष्टेन्द्रिय—वि० [सं० नष्टेन्द्रिय] सञ्चारहित। सञ्ज्ञाशून्य [को०]

नसंकुण्ठा—वि० [सं० निशङ्क] निर्भय। निडर। बेखोफ।

नस्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नाक। नासिका [को०]।

नसु—नसुसूत्र = छोटी नासिका।

नस^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० स्नायु तुलनीय म० नसा (= वह रग जो क
के नीचे से टखने तक है)] १. शरीर के भीतर तंतुओं
वह बंध या लच्छा जो पेशियों के छोर पर उन्हें दूस
पेशियों या अस्थि प्रादि कड़े स्थानों से जोड़ने के लिये होत
(जैसे, घोड़ा नस)। साधारण बोलचाल में कोई शरी
तंतु या रक्तवाहिनी नली।

विशेष—नसों के तंतु छद्म और चामड होते हैं, लचीले
होते। वे खींचने से बढ़ते नहीं। नसों शरीर की सबसे
और मजबूत सामग्री हैं। वही कभी वे ऐसे आघात से भी न
टूटती जिससे हड्डी टूट जाती और पेशियाँ कट जाती हैं।

मुहा०—नस चढ़ना या नस पर नस चढ़ना = खिचाव, बंध
या झटके प्रादि के कारण शरीर में किसी स्थान
विशेषतः पैर की पिठली या बांह की किसी नस का अ
स्थान से इधर उधर हो जाना या बल खा जाना जि
कारण उस स्थान पर सनाव और पीड़ा होती है और क
कभी सूजन भी हो जाती है। नसों ढीली होना = थका
पाना। शिथिलता होना। पस्त होना। नस नस में = स
शरीर में। सर्वांग में। जैसे,—उनकी नस नस में शराब स
पठी है। नस नस फड़क उठना = बहुत अधिक प्रसन्न
होना। प्रति आनंद होना। उमंग होना। जैसे,—
आपके चुटकुले सुनकर तो नस नस फड़क उठती है। व
भड़कना = (१) दे० नस चढ़ना। (२) विस्मित होना
पागल होना।

यौ०—घोड़ानस = पैर की वह बड़ी नस जो पीछे की अ
पिठली के नीचे होती है। इसके कट जाने से बहुत अधिक
खून बहता है जिससे लोग कहते हैं, आदमी मर जाता है
२. लिंग। पुरुष की मूत्रेन्द्रिय। (व००)।

मुहा०—नस या नसों ढीली पड़ जाना = लिङ्गेन्द्रिय का क्षिपि
हो जाना। पुंसत्व की कमी हो जाना।

३. पतले रेशे वा तंतु जो पत्तों में बीच बीच में होते हैं।

नसु^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निश] दे० 'निश'। उ०—सागे सा

सुहृमणुव, नस भर कुम्हियाँह। जल पोइणिए छाइयउ,
कहउ त पूगल जाँह।—डोला०, ६० २४५।

नसकटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नस = लिङ्ग + कटना] नपुंसक। हिजडा।

नसतरंग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नस + तरंग] यहनाई के आकार का पीतल का एक प्रकार का बाजा।

विशेष—इसके पतले सिरे पर एक छोटा सा छेद होता है। इस छेद पर मकड़ी के भट्टों के ऊपर सफेद छत्ता रखते हैं, फिर उस सिरे को गले की घटी के पास की नसों पर रखकर गले से स्वर भरते हैं जिससे उस बाजे में शब्द उत्पन्न होता है। ऐसे दो बाजे गले की घटी के दोनों ओर रखकर एक ही साथ बजाए जाते हैं।

नसतालीक—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नस्तालीक] १ फारसी या अरबी लिपि लिखने का वह ढग जिसमें अक्षर खूब साफ और सुंदर होते हैं। 'वसीट' या 'शिकस्त' का उलटा। २ वह जिसका रंग ढग बहुत अच्छा और सुंदर हो। सम्य या शिष्ट व्यक्ति।

नसना^१—क्रि० प्र० [सं० नशन] १ नष्ट होना। बरबाद होना। २ बिगड़ जाना। खराब हो जाना।

नसना^२—क्रि० प्र० [प० सुल० हि० नटना] भागना। दौड़ना।

नसफाड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नस + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके पैर सूज जाते हैं।

नसर—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नस] गद्य। पद्य या वज्र का उलटा।

यौ०—नसरनिगार = गद्यलेखक। नसरनिगारी = गद्यरचना।

नसरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक प्रकार की मधुमक्खी। २ इस मक्खी के छत्ते का मोम। विशेष—दे० 'कुतली'।

नसल—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नसल] वंश। खानदान।

नसवार—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नास + वार (प्रत्य०)] सुघने के लिये समाक के पीसे हुए पत्ते। सुघनी। नास।

नसहाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नस + हा (प्रत्य०)] जिसमें नसें हों।

नसा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नासा। नाक।

नसा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नशा] दे० 'नशा'।

नसाना^१—क्रि० प्र० [सं० नाश] १ नाश को प्राप्त होना। नष्ट हो जाना। २ बिगड़ जाना। खराब हो जाना।

नसाना^२—क्रि० प्र० १ नष्ट करना। २, नाश करना। ३ बिगाड़ना। खराब करना।

नसावनाई—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'नसाना'।

नसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कुसी की नोक। हल के फार की नोक।

नसीठाँ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बुरा शकुन। असुख।

नसीवई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नसीहत'।

नसीनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। जीना। नसेनी।

नसीपूजा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नसी (= कुसी का नोक) + पूजा] इस की पूजा जो बोन के मौसम के पीछे की जाती है। हल पूजा।

नसीब—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। तकदीर।

मुहा०—किसी को नसीब होना = किसी को प्राप्त होना। जैसे,—
ऐसा मकान मुझे नसीब कहाँ है? ('नसीब' के बाकी मुहावरों के लिये देखिए 'किस्मत' के मुहा०।)

नसीबजला—वि० [प्र० नसीब + हि० जलना] जिसका भाग्य खराब हो। अभाग।

नसीबवर—वि० [प्र०] भाग्यवान्। सौभाग्यशाली। जिसका नसीब अच्छा हो।

नसीबाँ—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नसीबह] दे० 'नसीब'।

नसीम—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] ठडी, घीमी और बढ़िया हवा।

यौ०—नसीम आसा = जिसकी साँस नसीम की तरह घीमी और मृदु हो।

नसीला^१—वि० [हि० नस + ईला (प्रत्य०)] जिसमें नसें हों। नसदार।

नसीला^२—वि० [हि० नशीला] दे० 'नशीला'।

नसीहत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १ उपदेश। शिक्षा। सीख। २ अच्छी समति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

यौ०—नसीहतगर, नसीहतगुजार, नसीहतगी = उपदेशक। सीख देनेवाला।

नसीहाँ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मुलायम मिट्टी के जोतने के लिये हलका हल।

नसूझियाँ—वि० [हि० नासूर + ह्या (प्रत्य०)] जिसके देखने, छूने अथवा किसी प्रकार के संघर्ष से कोई दोष या हानि हो। मनहूस। जैसे,—तुम हर एक चीज में बिना अपनी नसूझियाँ हाथ लगाए नहीं मानते।

नसूर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नासूर] दे० 'नासूर'।

नसेनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। जीना।

नस्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाक। २ सुघनी [को०]।

नस्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जानवरों की नाक में नाथ पहनाने के लिये किया हुआ छेद [को०]।

नस्तकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार भिक्षु लोग नाक में दवा डालने के लिये करते थे।

नस्तरन—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा०] सफेद गुलाब। सेवती। २ एक प्रकार का कपड़ा।

नस्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पशुओं की नाक का छेद जिसमें रस्सी डाली जाती है।

नस्तित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसकी नाक में छेद करके रस्सी डाली जाय। जैसे, बैल, ऊँट आदि।

नस्तोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नस्तित'।

नस्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नास। सुघनी। २. नसों की नाक की रस्सी। नाथ। ३ घी आदि में बनी हुई वह दवा या घुँघुँ आदि जिसे नाक के रास्ते दिमाग में चढ़ाते हैं। यह दो प्रकार का होता है। दे० 'शिरोविरेचन' और 'स्नेहन'। ४. वाक के बाँध (को०)।

नस्य^१—वि० १. नासिका से संवध रखनेवाला । नाक का । २. नाक से बहने या निकलनेवाला [को०] ।

नस्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाक । २. नाक का छेद । ३. नाथ ।

नस्याधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पान जिसमें सुंघनी रखी जाती है । नासदानी ।

नस्योत्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पणु जिसकी नाक में रस्सी मारि डालने के लिये छेद किया गया हो ।

नस्यरु^१—वि० [सं० नस्यर] दे० 'नस्यर' ।

नह^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो उत्तर प्रदेश में होता है ।

नह^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नख] दे० 'नाखून' ।

नहखू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नसखोर] १. विवाह की एक रस्म जिसमें घर की हजामत बनसी है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी मारि लगाई जाती है । २. विवाह के पूर्व की एक रस्म जिसमें कन्या के नाखून काटे जाते हैं और उसे स्नान कराया जाता है ।

नहट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नहं (= नाखून)] नाखून से की हुई खरोंच । नखक्षत ।

नहन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पुरवट खींचने की मोटी रस्सी । नार ।

नहना^१—क्रि० सं० [हि० नाघना] । लगाना । जोतना । काम में तत्पर करना । उ०—पसु लौ पसुपाल ईस बात छोरत नहत ।—मुलसी (शब्द०) ।

नहनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नहना] दे० 'नहना' । उ०—चलनि कहनि बिहंसनि रहनि गहनि सहनि सब ठाम । चहनि नेह की नहनि सौं कियो जगत वधा राम ।—रघुराज (शब्द०) ।

नहनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नहरनी] दे० 'नहरनी' ।

नहर—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नह] १. वह कृत्रिम नदी या जलमार्ग जो सेतों की सिंचाई या यात्रा आदि के लिये तैयार किया जाता है । २. जल बहाने के लिये बनाया हुआ रास्ता । उ०—(क) राम घर यादवन सुभट्ट ताके हूते रुधिर के नहर सरिता बहाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) बाग तडाग मुहावन लागे । जल की नहर सकल महि भागे ।—रघुराज (शब्द०) ।

मुहा०—नहर काटना या खोदना = नहर तैयार करना ।

विशेष—साधारणतः एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी ले जाने, खेत सींचने आदि के लिये नदियों में जोड़कर जल-मार्ग तैयार किया जाता है । बड़ी बड़ी नहरें प्रायः साधारण नदियों के समान हुपा करती हैं और उनमें बड़ी बड़ी नावें चलती हैं । कहीं कहीं दो भीलों या बड़े जलाशयों का पानी मिलाने के लिये भी नहरें बनाई जाती हैं ।

नहरनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नखहरणी] १. हज्जामों का एक औजार जिससे नाखून काटे जाते हैं ।

विशेष—यह लोहे का एक लंबा गोला ठुकरा होता है और जिसका एक सिरा चपटा और धारदार होता है ।

२. इसी प्रकार का पोस्ते की डोढ़ी पीरने का एक औजार ।

नहरम—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो भारतवर्ष सब नदियों में पाई जाती है ।

विशेष—पहाड़ी झरनों में यह अधिकता से होती है ।

नहरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] छोटी नहर । उ०—प्रागे की । से एक नहरिया निकाली है ।—किन्नर०, पृ० १२ ।

नहरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नहर + ई (प्रत्य०)] वह जमीन नहर के पानी से सींची जाय ।

नहरी^२—वि० नहर से संबध रखनेवाला ।

नहरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० नहर ।

नहरुआ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रोग जो प्रायः क के निचले भाग में होता है । उ०—ग्रहकार प्रति दृ दमरुमा । दम कपट मद मान नहरुमा ।—मानस, ७ । १२

विशेष—पानी के साथ एक विशेष प्रकार के कीड़े शरीर प्रविष्ट हो जाने के कारण यह रोग होता है । इसमें प किसी स्थान पर सूजन होती है । फिर छोटा सा घाव पड़ है और तब उस घाव में से डोरी की तरह का कीड़ा धीरे निकलने लगता है जो प्रायः गर्जों लंबा होता है । रोग से कभी कभी पैर आदि अंग बेकाम हो जाते हैं ।

विशेष—दे० 'नारु' ।

नहरुआ^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नहरुमा' ।

नहरुआ^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नारु] दे० 'नहरुमा' ।

नहल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] नहर । उ०—घसि चदन च चहल महलनि नहल फिराई । विषम गरम शीषम ठरु न गरम लखाई ।—सं० सप्तक, पृ० ३६२ ।

नहला^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नी] ताश के खेल में वह पत्ता जिनी चिह्न या घुटियाँ हों ।

मुहा०—नहले पर दहला = ईंट का जवाब परपर । बात होना । उ०—सही मौखि सुम्हीं दिखे पहले । नहले पर रहे दहले ।—अर्चना, पृ० ५८ ।

नहला^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] करनी की तरह का एक औजार नक्काशी बनाने के काम में आता है ।

नहलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नहलाना + ई (प्रत्य०)] १. नहलाने किया या भाव । २. वह धन जो नहलाने के बदले दिया जाय ।

नहलाना—क्रि० सं० [हि० नहलाना का प्रे० रूप] दूसरे को । में प्रवृत्त करना । स्नान कराना । नहवाना ।

नहवाना—क्रि० सं० [हि० नहलाना का प्रे० रूप] दे० 'नहलाना' ।

नहस—वि० [सं० नहस] प्रशुभ । प्रसंगिक । मनहूस [को०] ।

यौ०—नहसकदम = जिसका घना प्रशुभ हो । नहसरू = दर्शन । जिसका दर्शन शुभ न हो ।

नहसुत^१—क्रि० सं० [सं० नखसुत] नख की रेखा । नाखून निशान । उ०—नहसुत कील कपाट सुलच्छन दे हा भगोट ।—सूर (शब्द०) ।

नहसुत^१—संज्ञा पुं० [सं० नख (= एक पेड़)] पलाय की तरह का एक पेड़ जिसे फरहद भी कहते हैं। दे० 'फरहद'।

नहीं^१—संज्ञा पुं० [देश०] १ पहिए के ठीक बीच का सूराल जिसमें घुरी पहनाई जाती है। २ † घर के आगे का प्रांगण।

नहीं^१—संज्ञा पुं० [हिं० नहें] दे० 'नाखून'।

नहान—संज्ञा पुं० [सं० स्नान] १ नहाने की क्रिया। जैसे, कुंभ का नहान, छट्ठी का नहान। २ स्नान का पर्व।

क्रि० प्र०—सगना।—होना।

नहाना^१—क्रि० प्र० [सं० स्नान, प्रा० हारण, वृ० दे० हनाना] १. पानी के स्रोत में, बहती हुई पार के नीचे या सिर पर से पानी ढालकर शरीर को स्वच्छ करने या उसकी शिथिलता दूर करने के लिये उसे घोंना। स्नान करना।

संयो० क्रि०—ढालना।

मुहा०—दूधों नहाना पूर्वों फलना = धन और परिवार से पूर्ण होना। (भाषीर्वाद)।

विशेष—शरीर में जितने रोमरूप हैं, नहाने से उन सबका मुँह खुल और साफ हो जाता है और शरीर की पकावट दूर हो जाती है। भारत सरीखे गरम देशों में लोग नित्य सबेरे उठकर शीघ्र आदि से निवृत्त होकर नहाते हैं और कभी सबेरे और संध्या दोनों समय नहाते हैं। पर ठंडे देशों के लोग प्रायः नित्य नहीं नहाते, सप्ताह में एक या दो बार नहाते हैं।

२. रजोधर्म से निवृत्त होने पर स्त्री का स्नान करना। ३ किसी तरल पदार्थ से सारे शरीर का धालुप्त हो जाना। शराबोर हो जाना। बिलकुल तर हो जाना। जैसे, पसीने से नहाना। खून से नहाना।

विशेष—इस धर्म में 'नहाना' शब्द के साथ प्रायः 'उठना' या 'जाना' संयोज्य क्रिया लगाई जाती है।

नहाना^१—क्रि० सं० [हिं०] नाचना। उ०—सुरत निरत के बेल नहायन, ओत खेत निर्वाणी। दुबिषा छूब छोलकर बाहर, बोया नाम की घानी।—कबीर श०, भा०, पृ० ५१।

नहानी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नहाना] १. रजस्वला स्त्री। २ स्त्री का रजस्वला होना।

नहार—वि० [क्रा० नाहार (= जो सबेरे से भूखा हो) का लघु रूप, मि० सं० निराहार] जिसने सबेरे से कुछ खाया न हो। जिसने जलपान आदि कुछ न किया हो। बासी मुँह।

मुहा०—नहार तोड़ना = जलपान करना। सबेरे के समय हलका भोजन करना। नहार मुँह = बिना जलपान आदि किए हुए। नहार रहना = सुखे रहना। बिना भोजन के रहना। उपवास करना।

नहारी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० नहार] १ वह हलका भोजन जो सबेरे किया जाता है। जलपान। कलेवा। नाश्ता। २. वह गुड़ या गुड़ मिला घाटा जो घोड़े को सबेरे, घायला प्राधा रास्ता पार कर लेने पर खिलाया जाता है (एक्केवान)। ३. मुसलमानों के यहाँ बननेवाला एक प्रकार का क्षीरवेदार

सालन जो रात भर पकता है और जिसके साथ खमीरी रोटी खाई जाती है।

नहावन^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नहान'।

क्रि० प्र०—सगना।—होना।

नहिँ^१—अव्य० [सं० नहि] दे० 'नहीं'।

नहिँन^१—अव्य० [हिं०] दे० 'नहीं'। उ०—मानहिरण पृथुप में देखे। अपनी बारी नहिँन सुपेखे।—नद० प्र०, पृ० १२७।

नहिँयना^१—संज्ञा पुं० [हिं० नह (= नख)] बिछिया की तरह का एक गहना जो पैर की छोटी उँगली में पहना जाता है।

नहिँ—अव्य० [सं०] नहीं। बिलकुल नहीं। निश्चित रूप से नहीं [को०]

नहिँयाँ^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नह = नख] बिछिया की तरह का एक गहना जिसे नहिँयन भी कहते हैं।

नहिँयाँ^१—अव्य० दे० 'नहीं'। उ०—नैनन में चाह करे, नैनन में नहिँयाँ।—मति० प्र०, पृ० ३४८।

नहिरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नहरनी'।

नहीं^१—अव्य० [सं० नहिँ] एक अव्यय जिसका व्यवहार निषेध या भस्वीकृति प्रकट करने के लिये होता है। जैसे—(क) उन्होंने हमारी बात नहीं मानी। (ख) प्रश्न—घाप वहाँ जायेंगे? उत्तर—नहीं।

मुहा०—नहीं तो = उस दशा में जब कि वह बात न हो। इसके न होने की दशा में। जैसे,—घाप सबेरे ही मेरे पास पहुँच जाइएगा, नहीं तो मैं भी न जाऊँगा। नहीं सही = यदि यह बात न हो तो कोई बिता नहीं। यदि ऐसा न हो तो कोई परवा या हानि नहीं। जैसे,—(क) अगर वे नहीं आते हैं तो नहीं सही। (ख) यदि घाप न पड़े तो नहीं सही।

नहीं^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नह] नख। नाखून। उ०—तुम रंगमीने सुनत ही गई मेरे पाय की नहीं। सुनिही कुँवर और काहि लगाऊँ आधि रेनि गई, इहाँ हम तुम ही।—नद० प्र०, पृ० ३५३।

नहुर^१—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नहर नाखून] नाखून। नख। उ०—किसुक कलिन बेखि भम पाई। नाहुर की सी नहुरे माई।—नद० प्र०, पृ० १३६।

नहुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ अयोध्या के एक प्राचीन इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम जो मन्त्रिणी का पुत्र और ययाति का पिता था। महाभारत में इसे चद्रवशी प्रायु राजा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—पुराणानुसार यह बड़ा प्रतापी राजा था। जब इंद्र ने ब्रह्मासुर को मारा था उस समय इंद्र को ब्रह्महत्या लगी थी। उसके भय से इंद्र १००० वर्ष तक कमलनाल में छिपकर रहा था। उस समय इंद्रासन शून्य देख गुरु बृहस्पति ने इसको योग्य जान कुछ दिनों के लिये इंद्र पद दिया था। उस अवसर पर इंद्राणी पर मोहित होकर इसने उसे अपने पास बुलाना चाहा। तब बृहस्पति की सम्मति से इंद्राणी ने कहला दिया कि 'पालकी पर बैठकर सप्तविंशों के कंधे पर हमारे यहाँ आओ तब हम तुम्हारे साथ चलें'। यह सुन राजा ने

चदनुसार ही किया और घबराहट में आकर सप्तपियो से कहा—सर्प सर्प (जल्दी चलो), इसपर अगस्त्य मुनि ने शाप दे दिया कि 'जा, सर्प हो जा'। तब वह वहाँ से पतित होकर बहुत दिनों तक सर्प योनि में रहा। महाभारत में लिखा है कि पाँडव लोग जब द्वैतवन में रहते थे तब एक बार भीम शिकार खेलने गए थे। उस समय उन्हें एक बहुत बड़े साँप ने पकड़ लिया। जब उनके लौटने में देर हुई तब युधिष्ठिर उन्हें ढूँढ़ने निकले। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि एक बड़ा साँप भीम को पकड़े हुए है। उनके पूछने पर साँप ने कहा कि मैं महाप्रतापी राजा नहुष हूँ, ब्रह्मर्षि, देवता, राक्षस और पक्ष्य आदि मुझे कर देते थे। ब्रह्मर्षि लोग मेरी पालकी उठाकर चला करते थे। एक बार अगस्त्य मुनि मेरी पालकी उठाए हुए थे, उस समय मेरा पैर उन्हें लग गया जिससे उन्होंने मुझे शाप दिया कि जाओ, तुम साँप हो जाओ। मेरे बहुत प्रायश्चित्त करने पर उन्होंने कहा कि इस योनि में राजा युधिष्ठिर तुम्हें मुक्त करेंगे। इसके बाद उसने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न भी किए थे जिनका उन्होंने यथेष्ट उत्तर दिया था। इसके उपरांत साँप ने भीम को छोड़ दिया और दिव्य शरीर धारण करके स्वर्ग को प्रस्थान किया।

२ एक नाग का नाम। ३ एक ऋषि का नाम जो मनु के पुत्र और ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्रष्टा माने जाते हैं। ४. पुराणानुसार कुशिकवधो एक ब्राह्मण राजा का नाम। ५ एक राजर्षि का नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है। ६ हरिवंश के अनुसार एक मरु का नाम। ७ विष्णु का एक नाम। ८ मनुष्य। ९ दाम्पत्य।

नहुपाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] तगर पुष्प।

नहुपात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति [को०]।

नहुष्य^१—वि० [सं०] मानव मन्त्रो [को०]।

नहुष्य^२—संज्ञा पुं० मनुष्य। दाम्पत्य [को०]।

नहूर—संज्ञा स्त्री० [५१०] एक प्रकार की भंड।

विशेष—यह तिब्बत में होता है और कभी कभी नेपाल में भी आ जाती है। बहुत बर्फ पड़ने पर इसके भुंड पर्वत की चोटी से उतरकर सिंधु नदी के किनारे तक भी आ जाते हैं।

नहूसत—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनहस होने का भाव। उदासीनता। खिन्नता। मनहूसी। जैसे,—घापके चेहरे से नहूसत बरसती है।

क्रि० प्र०—टपकना।—बरसना।

२ अशुभ लक्षण।

नात—वि० [सं० न + अन्त] अन्त। अंतहीन [को०]।

नातरीयक—वि० [सं० नान्तरीयक] जो पृथक् करने योग्य न हो। घनिष्ट रूप से संबद्ध वा संबंधित [को०]।

नात्र—संज्ञा पुं० [सं० नान्त्र] स्तुति। प्रशंसा [को०]।

नांदन^१—वि० [सं० नान्दन] तोषकारक। हर्षकारक [को०]।

नादन^२—संज्ञा पुं० १. आनंदप्रद उपवन। २ स्वर्ग का उपवन [को०]।

नादिकर—संज्ञा पुं० [सं० नान्दिकर] वह जो नाटी पाठ करे [को०]।

४-४१

नादी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नान्दी] १. अभ्युदय। सृष्टि। २. वह आशीर्वादात्मक श्लोक या पद्य जिसका पाठ सूत्रधार नाटक आरंभ करने के पहले करता है। मंगलाचरण।

विशेष—संस्कृत नाटको में विघ्नशान्ति के लिये इस प्रकार के मंगलपाठ की चाल है। साहित्य दर्पण के अनुसार नादी आठ या बारह पदों की भी लिखी है। नादीपाठ मध्यम स्वर में होना चाहिए।

नादी^२—संज्ञा पुं० [सं० नान्दिन्] १ नाटक के आरंभ में नादीपाठ करनेवाला व्यक्ति। २ नाटक के आरंभ में मंगलवाद्य बजानेवाला व्यक्ति।

नादीक—संज्ञा पुं० [सं० नान्दिक] १ तोरण का स्तंभ। २. नादीमुख आदि।

नादीकर—संज्ञा पुं० [सं० नान्दिकर] नादीपाठक। नादीपाठ करनेवाला व्यक्ति [को०]।

नांदीघोष—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीघोष] मंगल वाद्यों की आवाज या ध्वनि [को०]।

नादीनाद—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीनाद] प्रसन्नता या हर्ष की अधिकता में चिल्लाना [को०]।

नादीनिनाद—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीनिनाद] दे० 'नादीनाद' [को०]।

नादीपट—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीपट] कुएँ का ढकना।

नादीमुख—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीमुख] १ कुएँ का ढकना। २. एक आभ्युदयिक आदि जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है। वृद्धिआदि।

विशेष—निर्गुणसिंधु में लिखा है कि पुत्र कन्या जन्म, विवाह, उपनयन, गर्भाधान, यज्ञ, पुसवन, तद्वागादि प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, अन्नप्राशन इत्यादि में नादीमुख आदि करना ही चाहिए। वृद्धि हुई हो तब तो यह आदि करना ही चाहिए, जिस कार्य से अभ्युदय या वृद्धि की संभावना हो उसमें भी इसे करना चाहिए। पहले माता का आदि करना चाहिए, फिर पिता का, उसके पीछे पितामह, मातामह आदि का। और आदि तो मध्याह्न में किए जाते हैं पर यह पूर्वान्न में होता है। पुत्रजन्म के समय का नियम नहीं है।

नादीमुखी संज्ञा स्त्री० [सं० नान्दीमुखी] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, दो तगण और दो गुण होते हैं। जैसे,—नित गहि दुइ पादें गुरु कर जाई। दशरथ सुत चारी लहे माद पाई। हिय में घरि के ध्यान शृंगी ऋषि को। मुदित मन कियो आदि नादीमुखी को।

नाँस—संज्ञा पुं० [सं० नामन्] दे० 'नाम'।

यौ०—नाँस गौड'।

नाँको^१—संज्ञा पुं० [सं० नासा] दे० 'नाक'। उ०—सुधा सो नाँक कठोर पेंवारी। वह कोवलि तिल पुड़प सेंवारी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १८३।

नाँको^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाका] १ भीतर घुसने का मार्ग। प्रवेशद्वार। २ मोड़। वह स्थान जहाँ से रास्ता दूसरी ओर

मुह जाय । ३ कोई प्रमुख स्थान । उ०—दसव दुपार गुपुन एक नाँकी । अगम चढ़ाव वाट सुठि बाँकी ।—जायसी प्र०, पृ० २६५ ।

नौखना^५—क्रि० सं० [हि०] १ डालना । २ परे करना । अलग रखना । उ०—मैं कहूँ सो सत्य मानों, सगुन डारी नौखि ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३१८ ।

नौगट^५—वि० [सं० नगट] दे० 'नगट' । उ०—एक तजों नौगट अघोके उमत ।—विद्यापति, पृ० ६०५ ।

नौगा^१—वि० [हि० नगा] दे० 'नगा' ।

नौगा^२—संज्ञा पुं० [हि० नगा] एक प्रकार के साधु जो नगा हो रहते हैं ।

नौगी—वि० स्त्री० [हि०] नगी । उ०—तुम यह बात असमय भाषत नौगी भावहु नारी ।—सूर (शब्द०) ।

नौघना^५—क्रि० सं० [सं० लङ्घन] लाँघना । हम पार से उस पार उछलकर जाना । उ०—जो नौघइ सत जोजन सागर । करे सो राम काज अति प्रागर ।—तुलसी (शब्द०) ।

नौठना^५—क्री० प्र० [सं० नष्ट] नष्ट होना । बिगड़ जाना । उ०—मुनि अति विकल मोह मति नौठी । मणि गिरि गई छूट जनु गौठी ।—तुलसी (शब्द०) । वि० दे० 'नाठना' ।

नौद—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दक] मिट्टी का एक बड़ा घोर चौड़ा बरतन जिसमें पशुओं को चारा पानी आदि दिया जाता है । होदी ।

विशेष—यह बरतन पीतल इत्यादि धातुओं का भी बनता है जिसमें गृहस्थ लोग पानी रखते हैं ।

नौदना^५—क्रि० प्र० [सं० नाद] १ शब्द करना । शोर करना । २ छोकना ।

नौदना^२—क्रि० प्र० [सं० नन्दन] १ आनन्दित होना । खुश होना । उ०—नेकु न जानी परति यों पच्यो विरह तन छाम । उठति दिया लो नौदि हरि लिए तुम्हारो नाम ।—बिहारी (शब्द०) । २ दीपक का बुझने के पहले कुछ भस्मकर जलना ।

नौयौ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाम' ।

नौयौ^२—अव्य० [हि०] दे० 'नहीं' ।

नौवँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाम' ।

नौवरा^५—संज्ञा पुं० [हि० नाव + रा (प्रत्य०)] दे० 'नाम' ।

नौसी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाश] नाश करने या मारने की स्थिति या प्रकृति । उ०—जा मुख हाँसी लसी घनआनद कैसे सुहाति बसी तहाँ नौसी । जयाय हितै हुनिए न हितै हंसि बोलनि की कित कीजत हाँसी ।—घनानन्द, पृ० १३ ।

नौह^५—संज्ञा पुं० [सं० नाथ] स्वामी । पति ।

ना^१—अव्य० [सं०] एक शब्द जिसका प्रयोग प्रसवीकृति या निषेध सूचित करने के लिये होता है । नहीं । न ।

ना^२—संज्ञा पुं० [सं० नर अथवा नृ] मनुष्य । (हि०) ।

ना^३—संज्ञा पुं० [सं० नामि] नामि । (हि०) ।

नाआगाह—वि० [फ़ा०] न जाननेवाला । अनजान [को०] ।

नाआजमूदा—वि० [फ़ा० नाआजमूदह्] जिसे अनुभव या ज्ञान न हो [को०] ।

यौ०—नाआजमूदाकार = जो अनुभवी न हो । नाआजमुदाकारी = अनुभवहीनता ।

नाआश्ना—वि० [फ़ा०] १ अपरिचित । २ अनभिज्ञ । अनादी [को०] ।

नाइंसाफ—वि० [फ़ा० ना + आ० इसाफ] अन्यायी । न्याय न करनेवाला [को०] ।

नाइंसाफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ना + इसाफ + फ़ा० ई (प्रत्य०)] अनीति । अन्याय । वैईमानी [को०] ।

नाइक^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नायक' ।

नाइत्तिकाफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ना + अ० इत्तिकाफ + फ़ा० ई (प्रत्य०)] मेल का अभाव । फूट । मतभेद । विरोध । धिगाह । रजिहा ।

नाइन—संज्ञा स्त्री० [हि० नाई] १ नाई जाति की स्त्री । २ नाई की स्त्री ।

नाइव^५—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'नायब' ।

नाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० न्याय] समान दशा । एक ही गति ।

नाई^२—वि० स्त्री० समान । तुल्य । उ०—समरथ को नहि दोष गुसाई । रवि पावक सुरसरि की नाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाई^३—संज्ञा पुं० [सं० नापित] नाऊ । हज्जाम । नापित ।

नाई^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाकुत्तो कद ।

नाई^५—संज्ञा पुं० [हि० नाम] दे० 'नाम' । उ०—प्रति लालसा बसहि मन माहीं । नाईं गाउँ वृक्षत सकुचाही ।—मानस, २ । ११० ।

नाउ^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नाव' ।

नाउत—संज्ञा पुं० [देश०] मत्त यत्र से सूत प्रेत फाड़नेवाला । सयाना । फाड़ फूँक करनेवाला । झोझा ।

नाउना—संज्ञा स्त्री० [हि० नाऊ] दे० 'नाहन' ।

नाउस्मेद—वि० [फ़ा० नाउस्मीद] निराश । हताश । हतोत्साह । हतसाहस । पस्तहोसला ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाउस्मेदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाउस्मीदी] १ निराशा । मायूसी । २ उत्साहहीनता । पस्तहिम्मती [को०] ।

नाऊ^५—संज्ञा पुं० [हि० नाऊ] नाम । उ०—घुम सगलानि जपेउ हरि नाऊ । थापेउ अचल अनूपम ठाऊ ।—मानस, १ । २६ ।

नाऊ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाई' ।

नाकद—वि० [फ़ा० ना + कंदह] बिना निकाला हुआ (घोड़ा आदि) । अलहज़ । अशिक्षित । बिना सिखाया हुआ । उ०—(क) नाकद बछेडे कूद चुके सब घोर दुलत्तो मत छोटी ।—नजीर (शब्द०) । (ख) सुरेंग बछेरे नैन तुव यद्यपि हैं नाकद । मन सोदागर ने कही ये हैं बहुत पसद ।—रसनिधि (शब्द०) ।

नाक^१—सज्ञा स्त्री० [सं० नक, पा० नक्क,] १ मुखमंडल की मांस-पेशियों और ग्रन्थियों के समार से बना हुआ नल के रूप का वह अवयव जिसके दोनों छेद मुखविवर और फुस्फुस से मिले रहते हैं और जिससे घ्राण का अनुभव और श्वास प्रश्वास का व्यापार होता है। सूँघने और साँस लेने की द्रव्य। नासा। नासिका।

विशेष—नाक का भीतरी अस्तर छिद्रमय मांस की झिल्ली का होता है जो बराबर कपालघट और नेत्र के गोलकों तक गई रहती है, इसी झिल्ली तक मस्तिष्क के वे सवेदनसूत्र प्राए रहते हैं जिनसे घ्राण का व्यापार अर्थात् गंध का अनुभव होता है। इसी से होकर वायु भीतर जाती है जिसमें गंधवाले अणु रहते हैं। इस झिल्ली का ऊपरवाला भाग ही गंधवाहक होता है, नीचे का नहीं। नीचे तक सवेदनसूत्र नहीं रहते। नासारध्र का मुखविवर, नेत्रगोलक, कपालघट आदि से संबध होने के कारण नाक से स्वर और स्वाद का भी बहुत कुछ साधन होता है तथा कपाल के भीतर कोशों में इकट्ठा होनेवाला मल और घ्राण का आसु भी निकलता है। जीवविज्ञानियों का कहना है कि उठी हुई नाक मनुष्य की उन्नत जातियों का चिह्न है, हथेली आदि असंभ्य जातियों की नाक बहुत चिपटी होती है।

यौ०—नाक का बाँसा = दोनों नयुनों के बीच का परदा। नाक घिसनी = बिनती और गिडगिड़ाहट। नाककटी या नाक-कटाई = अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। नाकबद = घोड़े की पूजी।

मुहा०—नाक कटना = प्रतिष्ठा नष्ट होना। इज्जत जाना। नाक कटाना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगाड़ना। नाक काटना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगाड़ना। नाक काटकर चूतड़ों तले रख लेना = लोक लज्जा छोड़ देना। निलंज हो जाना। अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान छोड़ लज्जाजनक कार्य करना। बेहयाई करना। नाक कान काटना = कड़ा दंड देना। नाक का बाँसा फिर जाना = नाक का बाँसा टेढ़ा हो जाना जो मरने का लक्षण समझा जाता है। (किसी की) नाक का बाल = वह जिसका किसी पर बहुत अधिक प्रभाव हो। सदा साथ रहनेवाला धनिष्ठ मित्र या मंत्री। वह जिसकी सलाह से सब काम हो। नाक की सीध में = ठीक सामने। बिना इधर उधर मुड़े। नाक घिसना = दे० 'नाक रगड़ना'। नाक चढ़ना = क्रोध प्राना। त्योरी चढ़ना। नाक चढ़ाना = (१) क्रोध से नयुने फुलाना। क्रोध की आकृति प्रकट करना। क्रोध करना। (२) धिन खाना। घृणा प्रकट करना अरुचि दिखाना। नापसद करना। तुच्छ समझना। नाकों चने चबवाना = खूब तग करना। हैरान करना। नाक चोटी काट कर हाथ देना = (१) कठिन दंड देना। (२) दुर्दशा करना। अपमान करना। नाक चोटी काटना = कड़ा दंड देना। नाक तक खाना = बहुत ठूसकर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक तक भरना = (१) मुँह तक भरना (वरतन आदि को)। (२) खूब ठूसकर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक न दी जाना = बहुत दुर्गंध

प्राना। बहुत बदबू मालुम होना। नाक पर उँगली रखकर बात करना = औरतों की तरह बात करना। नाक पकड़ने दम निकलना = इतना दुर्बल रहना कि छू जाने से भी मरने का डर हो। बहुत अशक्त होना। नाक पर गुस्सा होना = बात बात पर क्रोध प्राना। चिडचिडा स्वभाव होना। (कोई वस्तु) नाक पर रख देना = तुरत सामने रख देना। चट दे देना। (जब कोई अपने रूप या और किसी वस्तु को कुछ बिगडकर माँगता है तब उसके उत्तर में ताव के साथ लोग ऐसा कहते हैं)। नाक पर दीया बालकर प्राना = सफ़नता प्राप्त करके प्राना। मुख उज्जल करके प्राना।—(श्री०)। चाहे इधर से नाक पकड़ो चाहे उधर से = चाहे जिस तरह कहो या करो बात एक ही है। नाक पर पहिया फिर जाना = नाक चिपटी होना। नाक इधर कि नाक उधर = हर तरह से एक ही मतलब। नाक पर मक्खो न बैठने देना = (१) बहुत ही खरी प्रकृति का होना। थोड़ा सा भी दोष या ग़ुटि न सह सकना। (२) बहुत साफ रहना। जरा सा दाग न लगने देना। (३) किसी का थोड़ा निहोरा भी न लेना। जरा सा एहसान भी न उठाना। (किसी की) नाक पर सुपारी तोड़ना = खूब तग करना। नाक फटने लगना = असह्य दुर्गंध होना। नाक बैठना = नाक का चिपटा हो जाना। नाक बहना = नाक में से कपाल-कोशों का मल निकलना। नाक बोधना = नथनी आदि पहनाने के लिये नाक में छेद करना। नाक भी चढ़ाना या नाक भी सिकोड़ना = (१) अरुचि और अप्रसन्नता प्रकट करना। (२) धिनाना और चिड़ना। नापसद करना। नाक में दम करना या नाक में दम लाना = खूब तग करना। बहुत हैरान करना। बहुत सताना। नाक मारना = घृणा प्रकट करना। धिन करना। नापसद करना। नाक में तीर करना या नाक में तीर डालना = खूब तग करना। बहुत सताना या हैरान करना। नाक में तीर होना = बहुत हैरान होना। बहुत सताया जाना। नाक रगड़ना = बहुत गिडगिड़ाना और बिनती करना। मिन्नत करना। नाक रगड़े का वच्चा = वह वच्चा जो देवताओं की बहुत मनोती पर हुमा हो। नाकों प्राना = हैरान हो जाना। बहुत तग होना। उ०—नाक बनावत आयो हों नाकहि नाही धिनाकिहि नेकु निहारो।—तुलसी (शब्द०)। नाक में बोलना = नासिका से स्वर निकालना। नकियाना। नाक लगाकर बैठना = बहुत प्रतिष्ठा पाना। बनकर बैठना। बड़ा इज्जतवाला बनना। नाक सिकोड़ना = अरुचि या घृणा प्रकट करना। धिनाना। उ०—सुनि प्रथ नरकहु नाक सिकोरी।—तुलसी (शब्द०)।

२ कपाल के कोशों आदि का मल जो नाक से निकलता है। रेंट। नेटा।

क्रि० प्र०—प्राना।—बहना।

यौ०—नाक सिनकना = जोर से हुवा निकालकर नाक का मल बाहर फेंकना।

३ चरखे में लगी हुई एक चिपटी लकड़ी जो घगले खूँट के घागे निकले हुए धूलन के सिरे पर लगी रहती है और जिसे 'पकड़कर चरखा घुमाते हैं' । ० लकड़ी का वह डंडा जिसपर 'चढ़ाकर चरतन खरादे जाते हैं' । ५ प्रतिष्ठा की वस्तु । श्रेष्ठ वा प्रधान वस्तु । शोभा की वस्तु । जैसे,—वे ही तो इस गृह की नाक हैं । ६ प्रतिष्ठा । इज्जत । मान । उ०—नाक पिनाकहि सग सिधाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—नाकवाला = इज्जतवाला ।

मुहा०—नाक रख लेना = प्रतिष्ठा की रक्षा कर लेना ।

नाक^२—सखा स्त्री० [सं० नक्र] मगर की जाति का एक जलजन्तु ।

विशेष—मगर से इसमें यह अंतर होता है कि यह उतनी लंबी नहीं होती, पर चौड़ी अधिक होती है । मुँह भी इसका अधिक चिपटा होता है और उसपर घड़ा या लूथन नहीं होता । पूँछ में काँटे स्पष्ट नहीं होते । यह जमीन पर मगर से अधिक दूर तक जाकर जानवरों को खींच ला सकती है । सरल तथा उसमें मिलनेवाली और छोटी छोटी नदियों में यह बहुत पाई जाती है ।

नाक^३—सखा पुं० [सं०] १ स्वर्ग ।

यौ०—नाकनटी । नाकपती ।

२ अतरिख । आकाश । ३ अश्व का एक आघात । ४ सुयं (को०) ।

नाक^४—वि० [सं० न + प्रकम् (= दुःख)] कष्टहीन । प्रसन्न । सुखी (को०) ।

नाकचर—सखा पुं० [सं०] देवता । सुर (को०) ।

नाकट^१—वि० [देश०] १ नाक कटानेवाला । आबरू उतारनेवाला ।

उ०—पेटकट, नाकट, कनकट, नाकट, मुण्डफोलुट नडितोलुष ।—वर्ण०, पृ० १ ।

नाकड़ा—सखा पुं० [हि० नाक + ड्रा (प्रत्य०)] नाव वा एक रोग जिसमें नाक के बाँसे के भीतर जलन और मूजन होती है और नाक पक जाती है ।

ना कदर—वि० [फा० ना + कद + कद] १ जिसकी कोई कदर न हो । जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो । २ जो किसी की कदर करना न जानता हो । जिसमें गुणग्राहकता न हो ।

ना कदरो—सखा स्त्री० [फा० ना + कद + कद + ई (प्रत्य०)] ना कदर होने की क्रिया या भाव ।

ना कवूल्—वि० [फा० ना + कवूल्] अस्वीकृत । नामसूर (को०) ।

नाकनटी—सखा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नर्तकी । अस्तरा । उ०—सुमन बरसि सुर हनहि निसाना । नाकनटी नाचहि करि गाना ।—मानस, १ । ३०६ ।

नाकनदी—सखा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की गंगा या मदामिनी (को०) ।

नाकना^१—क्रि० सं० [सं० लङ्घना, हि० नाचना] १ लाँघना । उल्लंघन करना । पार करना । डौकना । उ०—अनि तनु धनु रेखा, नेक बाकी न जाकी ।—केशव (शब्द०) । २ अतिक्रमण करना । पार करना । बढ़ जाना । माव का

देना । उ०—चैत्ररथ कामवन नंदन की नाकी छवि, कहै रघुराज राम काम को समारा है ।—रघुराज (शब्द०) ।

३ चारों ओर से घेरना ।

नाकनाथ—सखा [सं०] स्वर्गपति । इद (को०) ।

नाकनायक—सखा पुं० [सं०] दे० 'नाकनाथ' (को०) ।

नाकनारी—सखा स्त्री० [सं०] घमरा (को०) ।

नाकपति—सखा पुं० [सं०] दे० 'नाकनाथ' उ०—सपने होई भिखारि नर, रक नाकपति होइ ।—तुलसी प्र०, पृ० १०३ ।

नाकपृष्ठ—सखा पुं० [सं०] स्वर्ग ।

नाकबुद्धि—वि० [हि० नाक + बुद्धि] जिसका विवेक नाक ही तक हो । जो नाक से सूँघकर गंध द्वारा ही भक्ष्याभक्ष्य, भवे बुरे आदि का विचार कर सके, बुद्धि द्वारा नहीं । तुच्छबुद्धि । धुंध बुद्धिवाला । मोछी समझ का । उ०—घपने पेट दियो तैं उनकों नाकबुद्धि तिय सबै कहै रो ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—स्थियों की निंदा में प्रायः लोग कहते हैं कि उनकी बुद्धि नाक ही तक होती है, अर्थात् यदि उन्हें नाक न हो तो वे भक्ष्याभक्ष्य सब खा जायें ।

नाकवेसरि^१—सखा स्त्री० [हि० नाक + वेसर] दे० 'नकवेसर' । उ०—कासी जाय वरनि बनक नाकवेसरि की ।—नद० प्र०, पृ० ४२० ।

नाकदर्दा—वि० [फा० नाकदर्द] न किया हुआ ।

यौ०—नाकदर्दकार = कोई विशेष का मन करनेवाला । अननुमवी । नाकदर्दिगुनाह = (१) न किया हुआ गुनाह । उ०—नाकदर्दिगुनाहों की भी हसरत की मिले दाद । या रब अगर इन कर्दा गुनाहों की सजा है ।—गलिब०, पृ० ४१६ । (२) जिसके कसूर न किया हो । नाकदर्दजुम = दे० 'नाकदर्दिगुनाह' ।

नाकलोक—सखा पुं० [सं०] नाक । स्वर्ग (को०) ।

नाकवनिता—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'नाकनटी' ।

नाकवास—सखा पुं० [सं०] स्वर्ग का वास (को०) ।

नाकपेधक—सखा पुं० [सं०] इंद्र ।

नाकसद्—सखा पुं० [सं०] १ देव । देवता । २ गधर्व (को०) ।

नाका^१—सखा पुं० [हि० नाकना] १ किसी रास्ते आदि का वह छोर जिससे होकर लोग किसी ओर जाते मुड़ते, निकलते या कहीं घुसते हैं । प्रवेशद्वार । मुहाना । उ०—(क) हरीचंद तुम बिनु को रोकै ऐसे ठग को नाका ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ६५० । २ वह प्रधान स्थान जहाँ से किसी नगर, बस्ती आदि में जाने के मार्ग का प्रारंभ होता है । गली या रास्ते का प्रारंभस्थान । जैसे,—नाके नाके पर सिपाही तैनात थे कि कोई जाने न पावे । उ०—धनकी होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन घर नाके नाके ।—घनानंद, पृ० ५८० ।

यौ०—नाकावदी । नाकेदार ।

३ नगर, दुर्ग आदि का प्रवेशद्वार । फाटक । निकलने पठने का रास्ता । जैसे, शहर का नाका ।

मुहा०—नाका छेकना या घाँघना = घाने जाने का मार्ग रोकना ।

४ वह प्रधान स्थान या चौकी जहाँ निगरानी रखने, या किसी

प्रकार का महसूल आदि वसूल करने के लिये तैनात हो ।
५. सूई का छेद । ६. आठ गिरह लबा जुलाहों का एक भोजार जिसमें ताने के तागे बांधे जाते हैं ।

नाका^२—सखा पुं० [म० नक्र] मगर की जाति का एक जलजंतु ।
नक्र । दे० 'नाक' ।

नाकापगा—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'नाकनदी' [को०] ।

नाकावंदी^१—सखा स्त्री० [हि० नाका + फा० वंदी] १ प्रवेश-
द्वार का अवरोध । किसी रास्ते से कही जाने या घुसने की
रुकावट । २ फाटक आदि का छेका जाना ।

नाकावंदी^२—सखा पुं० १ वह सिपाही जो फाटक या नाके पर
पहरे के लिये खड़ा किया गया हो । १ सिपाही । कांस्टेबल ।
चौकीदार । पहरेदार ।

नाकाबिल—वि० [फा० ना + बिल काबिल] अयोग्य ।

नाकाम^१—वि० [फा०] १ जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो ।
विफलमनोरथ । असफल । २ निराश । मायूस (को०) ।

नाकाम^२—वि० [हि० ना + काम] [सखा स्त्री० नाकामो] निरर्थक ।
वेकार । व्यर्थ । उ०—उनके साहस को नाकाम बना दिया
था ।—प्रेम० मोर गोर्की, पृ० २ ।

नाकामयाब—वि० [फा०] [सखा स्त्री० नाकामयाबी] १. विफल-
मनोरथ । ३ अनुत्तीर्ण । असफल (को०) ।

नाकारा—वि० [फा० नाकारह्] १. निकम्मा । खराब । बुरा ।
निष्प्रयोजनी । २ व्यर्थ । वेकार (को०) ।

नाकिस—वि० [फ० नाकिस] बुरा । खराब । निकम्मा ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाकिह—सखा पुं० [फ०] विवाह करनेवाला । निकाह करनेवाला
[को०] ।

नाकी—सखा पुं० [सं० नाकिन्] (नाक या स्वर्ग में रहनेवाला)
देवता । उ०—ज्ञान कासिद बिबेक नाकी बने ।—तुरसी० श०,
पृ० २१ ।

नाकीव—सखा पुं० [फ० नकीव] राजा, महाराजाधों या श्रेष्ठ
पुरुषों की सवारी के आगे विरुद्ध का उद्घोष करनेवाला ।
चोबदार । छहीदार । दरबार में मुलाकातियों को पुकारकर
उपस्थित करनेवाला । उ०—छरी बरदार चोपदार आसा
लिए निकलि नाकीव सब हाँक पारी ।—स० हरिया, पृ० ७८ ।

नाकु—सखा पुं० [सं०] १. दीमक की मिट्टी का ढूँह । वेमीठ ।
बल्मीक । २ भीटा । टोला । ३ पर्वत । पहाड़ । ४ एक
मुनि का नाम ।

नाकुल^१—वि० [सं०] नेवले के ऐसा । नेवला संबन्धी ।

नाकुल^२—सखा पुं० १ नकुल की सतति । २ रास्ना । ३ सेमर
का मूसला । ४ नव्य । ५ यवतिक्ता ।

नाकुलक—वि० [सं०] नकुल का पूजक [को०] ।

नाकुलि—सखा पुं० [सं०] नकुल का वंशज । [को०] ।

नाकुली^१—वि० [सं० नकुल] १. नेवला संबन्धी । २ नकुल नामक
पंडित का बनाया हुआ । जैसे, नाकुली शालिहोत्र ।

नाकुली^२—सखा स्त्री० [म० नकुल] १ एक प्रकार का कंद जो सब
प्रकार के विषों, विशेषकर सर्प के विष को दूर करता है ।

विशेष—नाकुली दो प्रकार का होता है । एक नाकुली दूसरा
गघनाकुली । गुण दोनों का एक सा है । गघनाकुली कुछ
भच्छी होती है ।

पर्या०—नागसुगधा । नकुलेष्टा । भुजंगाक्षी । सर्पांगी । विष-
नाशिनी । रक्तपत्रिका । ईश्वरी । सुरसा ।

२ यवतिक्ता लता । ३ रास्ना । ४ चव्य । चविका । ५ श्वेत
कटकारी । सफेद भटकैया ।

नाकू—सखा पुं० [सं० नक्र] घड़ियाल या मगर नामक जलजंतु ।

नाकूस—सखा पुं० [फ० नाकूस] शख । कबु । उ०—तेरा दम
भरते हैं हिंदू अगर नाकूस बजता है । तुझे ही शेष ने प्यारे
अर्जा देकर पुकारा है ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५१ ।

नाकेदार^१—सखा पुं० [हि० नाका + फा० दार (प्रत्य०)] १ नाके
या फाटक पर रहनेवाला सिपाही । २. वह अफसर या
कर्मचारी जो आने जाने के प्रधान प्रधान स्थानों पर किसी
प्रकार का कर महसूल आदि वसूल करने के लिये तैनात हो ।

नाकेदार^२—वि० जिसमें नाका या छेद हो । जैसे, नाकेदार सूई ।

नाकेवदी^१—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'नाकावदी' ।

नाकेवदी^२—सखा पुं० दे० 'नाकावदी' ।

नाकेश—सखा पुं० [सं०] (स्वर्ग के अधिपति) इन्द्र ।

नाकेश्वर—सखा पुं० [सं०] इन्द्र (को०) ।

नाक्षत्र—वि० [सं०] नक्षत्र संबन्धी । जैसे, नाक्षत्र दिन । नाक्षत्र
मास, नाक्षत्र वर्ष ।

विशेष—जितने काल में चंद्रमा २७ नक्षत्रों पर एक बार घूम
जाता है उसे नाक्षत्र मास कहते हैं । मास का प्रथम दिन वह
समय माना जाता है जिसमें चंद्रमा अश्विनी नक्षत्र पर रहता
है । अश्विनी नक्षत्र पर चंद्रमा ६० दंड, भरणी पर ६३
दंड, इसी प्रकार सब नक्षत्रों पर कुछ काल तक रहता है ।
फलित ज्योतिष में आयुगणना आदि के लिये नाक्षत्र दिन
मास आदि निकाले जाते हैं ।

नाक्षत्रिक—सखा पुं० [सं०] नाक्षत्र मास ।

नाक्षत्रिकी—वि० स्त्री० [सं०] नक्षत्र संबन्धी । जैसे, नाक्षत्रिकी
दशा । दे० 'दशा' ।

नाख—सखा स्त्री० [फा० नाशपाती] नाशपाती नाम का फल ।

नाखना(१)^१—क्रि० सं० [म० नष्ट] १ नाश करना । नष्ट कर
देना । बिगाड़ देना । उ०—(क) जे नखचंद भजन खल
नाखत रमा हृदय जेहि परसत ।—सूर (शब्द०) । (ख)
जो हरिचरित ध्यान उर राखे । भानद सदा दुरित दुख नाखे
—सूर (शब्द०) । २ फेंकना । गिराना । डालना । उ०
जो उर भरन ही भरसी मृदु मालती माल वहै मग नाखे ।—
(शब्द०) ।

नाखना^२—क्रि० सं० [हि० नाकना] । उल्लंघन करना । उ
(क) नीच नल भगद सहित भामवत हनुमंत से भनव

नोरनिधि नाखोई।—केशव (शब्द०) । (ख) पाछे ते सोय हरी विधि मर्पाद राखी । जो पै दसकध बली रेखा कथों न नाखी ।—सूर (शब्द०) ।

नाखलफ—वि० [फा० ना + फ० खलफ] जो लङ्का बाप के सदाचार पर न चले । कपूत । उ०—वज्रधर हुजुर नाखलफ है, और क्या कहूँ, खुदा सातवें दुश्मन को भी ऐसी झोलाद न दे ।—काया०, पृ० २१३ ।

नाखून—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाखून] नख [को०] ।

यौ—नाखूनतराश = नहन्ना ।

नाखुना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाखूनह] १ भ्राँख का एक रोग जिसमें एक लाल क्लिस्ली सी भ्राँख की सफेदी में पैदा होती है और बढ़कर पुतली को भी ढक लेती है । २ मोटे लाल डोरे जो घोड़ों की भ्राँख में पैदा हो जाते हैं । ३ चोरा बाँधने का नोकदार मगुश्ताना ।

नाखुर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० नहेंछू ।

नाखुश—वि० [फा० नाखुश] मरसन्न । नाराज ।

यौ०—नाखुशगवार = अरुचिकर । नाखुशगवारी = (१) मरसन्नता । (२) अरुचि ।

नाखुशो—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नाखुशो] १ मरसन्नता । नाराजी । २ क्रोध । गुस्सा (को०) । ३ बीमारी (को०) ।

नाखून—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाखून] १ उँगलियों के छोर पर चिपटे किनारे वा नोक को तरह निकली हुई कड़ी वस्तु । नख । नह ।

विशेष—नाखून वास्तव में ठोस और कड़ा जमा हुआ उपरी त्वक् है । पशुओं के सींग, खुर आदि भी इसी प्रकार ऊपरी त्वक् की जमावट से बनते हैं ।

मुहा०—नाखून लेना = नाखून काटकर धलंग करना । नाखून नीले होना = मरने के लक्षण दिखाई पड़ना । मृत्यु के चिह्न प्रकट होना । ऐसे ऐसे नाखूनो में पड़े हैं = ऐसे ऐसे बहुत देखे भाले हैं । ऐसों की गिनती नहीं ।

२ चौपायों के टाप या खुर का बड़ा हुमा किनारा ।

मुहा०—नाखून लेना = (१) नाखूना काटन । (२) घोड़े का ठोकर लेना ।

नाखूना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाखूनह] १ दे० 'नाखूना' । २. गबरून की तरह का एक कपड़ा जिसका ताना सफेद होता है और बाने में अनेक रंग की धारियाँ होती हैं । यह भांगरे में बहुत बनता है । ३ बड़इयों की बहुत पतली रखानी जिससे बारीक काम किया जाता है ।

नाख्वाँदा—वि० [फा० नाख्वाँदह] १ निरक्षर । अनपढ़ । अशिक्षित । उ०—ताहम मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छद ढोले ढोले नहीं होते । फिर भी हैं, तो नाख्वाँदा ही ।—कुकुम (सु०), पृ० १६ । २ अनिमज्जित । अनाहूत ।

नाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नागिन] १ सर्प । साँप ।

मुहा०—नाग खेलना = ऐसा कार्य करना जिसमें प्राण का भय हो । खतरे का काम करना ।

२ कद्रू से उत्पन्न कश्यप की सजान जिनका स्थान पाताल लिखा गया है ।

विशेष—वराहपुराण में नगों की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा लिखी है । सृष्टि के आरंभ में कश्यप उत्पन्न हुए । उनकी पत्नी कद्रू से उन्हें ये पुत्र उत्पन्न हुए—अनंत, वासुकि, कवल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शल, कुलिक और अपराजित । कश्यप के ये सब पुत्र नाग कहलाए । इनके पुत्र, पौत्र बहुत ही क्रूर और विषधर हुए । इनसे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी । प्रजा ने जाकर ब्रह्मा के यहाँ पुकार को, ब्रह्मा ने नागों को बुलाकर कहा, जिस प्रकार तुम हमारी सृष्टि का नाश कर रहे हो उसी प्रकार माता के शाप से तुम्हारा भी नाश होगा । नागों ने डरते डरते कहा — महाराज, आप ही ने हमें कुटिल और विषधर बनाया, हमारा क्या अपराध है ? अब हम लोगों के रहने के लिये कोई अलग स्थान बतलाइए जहाँ हम लोग सुख से पड़े रहे । ब्रह्मा ने उनके रहने के लिये पाताल, वितल और सुतल ये तीन स्थान या लोक बतला दिए ।

एक बार कद्रू और विनता में विवाद हुआ कि सूर्य के घोड़े की पूँछ काली है या सफेद । विनता सफेद कहती थी और कद्रू काली । अंत में यह ठहरी कि जिनकी बात ठीक न निकले वह दूसरी की दासी होकर रहे । जब कद्रू ने अपने पुत्रों से यह बात कही तब उन्होंने कहा कि पूँछ तो सफेद है, अब क्या होगा ? अंत में जब सूर्य निकला तब सबके सब नाग उर्च्य श्वा की पूँछ से लिपट गए जिससे वह काली दिखाई पड़ी । जिन नागों ने पूँछ को काला कहना अस्वीकार किया उन्हें कद्रू ने नष्ट होने का शाप दिया जिसके अनुसार वे जनमेजय के सर्पयज्ञ में नष्ट हुए ।

पुराणों में बहुत से नागों के नाम दिए हुए हैं । पर उनमें मुख्य पाठ हैं—अनंत, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोटक और शल । ये अष्टनाग और इनका कुल अष्टकुल कहलाता है ।

३ एक देश का नाम । ४ उस देश में बसनेवाली जाति ।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार 'नाग' एक जाति की एक शाखा थी जो हिमालय के उस पार रहती थी । तिब्बतवाले अपने को नागवशी और अपनी भाषा को नाग भाषा कहते हैं । जनमेजय की कथा से पुरुवशियों और नागवशियों के वैर का आभास मिलता है । यह वैर बहुत दिनों तक चलता रहा । जब सिकंदर भारत में आया तब पहले पहले उससे तक्षशिला का नागवशी राजा मिला जो पंजाब के पोरव राजा से द्रोह रखता था । सिकंदर के साधियों ने तक्षशिला के राजा के यहाँ बड़े बड़े साँप पले देखे थे जिनकी पूजा होती थी । विशेष—दे० 'नागवश' ।

५ एक पर्वत ।—(महाभारत) । ६ हाथो । हस्ति । ७ राँगा । सीसा (घातु) ।

विशेष—भावप्रकाश में लिखा है कि वासुकि एक नागकन्या को देख मोहित हुए । उनके स्वलिज वीर्य से इस घातु की उत्पत्ति हुई ।

मुहा०—नाग फूकना = घातु फूकना ।

६ एक प्रकार की घास । १० नागकैसर । ११ पुन्नाग । १२ मोथा । नागरमोथा । १३ पान । तावूल । १४ नागवायु । १५ ज्योतिष के करणों में से तीसरे करण का नाम । १६ बादल । १७ आठ की संख्या । १८ दुष्ट या क्रूर मनुष्य । १९ अश्लेषा नक्षत्र ।

नागकंद—संज्ञा पुं० [सं० नागकन्द] हस्तिकद ।

नागकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नागकन्या' [स्त्री०] ।

नागकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाग जाति की कन्या ।

विशेष—पुराणों में नागकन्याएँ बहुत सुंदर बतलाई गई हैं ।

नागकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी का कान । २ एरंड । अड़ी का पेड़ ।

नागकिञ्जल्क—संज्ञा पुं० [सं० नागकिञ्जल्क] नागकैसर ।

नागकुमारिका—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] १ गुरुष । गिलोय । २ मजीठ । मजिष्ठा ।

नागकैसर—संज्ञा स्त्री० [सं० नागकैसर या नागकैसर] एक सीधा सदाबहार पेड़ जो देखने में बहुत सुंदर होता है ।

विशेष—यह द्विदल अक्रुर से उत्पन्न होता है । पत्तियाँ इसकी बहुत पतली और घनी होती हैं, जिससे इसके नीचे बहुत अच्छी छाया रहती है । इसमें चार दलों के बड़े और सफेद फूल गरमियों में लगते हैं जिनमें बहुत अच्छी महक होती है । लकड़ी इसकी इतनी कड़ी और मजबूत होती है कि काटनेवाले की कुल्हाड़ियों की धारें मुड़ मुड़ जाती हैं, इसी से इसे वज्रकाठ भी कहते हैं । फलों में दो या तीन बीज निकलते हैं । हिमालय के पुरबी भाग, पूरबी बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, सिंहल आदि में इसके पेड़ बहुतायत से मिलते हैं । नागकैसर के सूखे फूल औषध, मसाले और रंग बनाने के काम में आते हैं । इनके रंग से प्रायः रेशम रंगा जाता है । सिंहल में बीजों से गाढ़ा, पीला तेल निकालते हैं, जो दीया जलाने और दवा के काम में आता है । मदरास में इस तेल को वातरोग में भी मलते हैं । इसकी लकड़ी से अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । लकड़ी ऐसी अच्छी होती है कि केवल हाथ से रंगने से ही उसमें वारनिश की सी चमक आ जाती है । वैद्यक में नागकैसर कमेली, गरम, रूखी, हलकी तथा ज्वर, खुजली, दुर्गंध, कोढ़, विष, प्यास, मतली और पसीने को दूर करनेवाली मानी जाती है । खूनी बवासीर में भी वैद्य लोग इसे देते हैं । इसे नागचपा भी कहते हैं ।

नागकैसर^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शुद्ध लोहा या फोलाद [स्त्री०] ।

नागखंड—संज्ञा पुं० [सं० नागखण्ड] पुराणानुसार जवूदोष के अतर्गत भारतवर्ष के नौ खंडों या भागों में से एक ।

नागगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागगन्धा] नकुलकद ।

नागगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी ग्रह की वह गति जो उस समय होती है जब वह अश्विनी, मरणी और कृत्तिका नक्षत्र में रहता है (ज्योतिष) ।

नागगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर ।

नागचंपा—संज्ञा पुं० [सं० नागचम्पक] नागकैसर का पेड़ ।

नागचूड़—संज्ञा पुं० [सं० नागचूड] शिव । महादेव ।

यौ०—नागचूडज = (१) सिंदूर । (२) रांगा ।

नागच्छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदती ।

नागज—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिंदूर । २. बग ।

नागजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनंतमूल । २ शारिवा ।

नागजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन शिला । मैनसिल ।

नागजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] बग । फूँका हुआ रांगा ।

नागभाग^(१)—संज्ञा पुं० [हिं० नाग + भाग] ग्रहिकेन । अफीम ।

नागदंत—संज्ञा पुं० [सं० नागदन्त] १ हाथीदाँत । २ दीवार में ढई खूँटी ।

नागदंतक—संज्ञा पुं० [सं० नागदन्तक] दे० 'नागदंत' ।

नागदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नागादन्तिका] बुधिकाली का पौध

नागदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदन्ती] नखी नामक गधद्रव्य ।

नागदमन—संज्ञा पुं० [सं०] नागबोने का पौधा ।

नागदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबोने का पौधा ।

नागदला—संज्ञा पुं० [सं० नाग + दल] एक पेड़ जो बंगाल, आस बरमा, मालाबार और सिंहल में होता है । बंगाल में 'पोसुर' कहते हैं ।

विशेष—सुंदर वन से इसकी लकड़ी आती है जो बहुत और मजबूत होती है । यह पानी में साबू से भी अधिक तैर सकती है । इससे गाड़ी के पहिए, नाव और अ प्रकार के सामान बनते हैं । इसके बीजों का गाढ़ा तेल ज के काम में आता है ।

नागदलोपम—संज्ञा पुं० [सं०] परुष फल । फालसा ।

नागदवनि^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदमनी] दे० 'नागदौन' स नागदवनि जरजरी राम सुमिरन बरी अनंत रेदास निमेता । —रै० बानी, पृ० २० ।

नागदुमा—वि० [सं० नाग + फा० दुम] (हाथी) जिसकी का सिरा सर्प के फन की तरह का हो ।

विशेष—ऐसा हाथी ऐवी समझा जाता है ।

नागदौन—संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] १ छोटे आकार का पहाड़ी पेड़ जो शिमले और हजारे में बहुत मिलता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से सफेद और मुलायम हो और विशेषतः छड़ियाँ बनाने के काम में आती है । लोग विश्वास है कि इस लकड़ी के पास साँप नहीं आते ।

२ दे० 'नागदौना' ।

नागदौना—संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] १ एक पौधा जिसमें डा और टहनियाँ नहीं होती ।

विशेष—इसके जड़ के ऊपर से ग्वारपाठे की सी पत्तियाँ और निकलती हैं । ये पत्तियाँ हाथ हाथ भर लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती हैं । ग्वारपाठे की पत्तियों की तरह

पत्तियों के भीतर गूदा नहीं होता। इससे इनका दख बहुत मोटा नहीं होता। पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है पर बीच बीच में हलकी चित्तियाँ सी होती हैं। नागदोने की जड़ कद के रूप में नीचे की ओर जाती है। वैद्यक में नागदोना चरपरा, कड़ुपा, हलका, त्रिदोषनाशक, कोठे को शुद्ध करने-वाला, विषनाशक तथा सूजन, प्रमेह और ज्वर को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—नागदमनी। बला। मोटा। विपापहा। नागपत्रा। महा-योगेश्वरी। जाववती। वृक्का। जाववी। मलघ्नी। दुर्धर्षा। दुसहा। विफला। वनकुमारी। श्रोकदा। कदशालिनी।

२ एक प्रकार का कड़ुआ और कंटीला दोना जिसके पेड़ लंबे होते हैं।

विशेष—इसकी सूखी पत्तियाँ लोग कागजों और कपड़ों की तहों के बीच उन्हें कीड़ों से बचाने के लिये रखते हैं।

नागद्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नागद्रुम' [को०]।

नागद्वम—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेंदुड। शूहर। २ नागफनी।

नागद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार भारतवर्ष के नौ भागों में से एक।

नागधर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नागध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सकर रागिनी जो मल्लार और केदार या सहा भयञ्ज कान्हादे और सारंग के योग से बनी है।

विशेष—इसका सरगम इस प्रकार है—नि सा ऋ ग म प।

नाग नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्लेषा नक्षत्र।

नागनग(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] गजमुक्ता। उ०—निज गुण घटत न नागनग परलि न पहिरत कोल। तुलसी प्रभु भूषण दिए गुजा बढ़े न मोल।—तुलसी (शब्द०)।

नागनामक—संज्ञा पुं० [सं०] रागा। टीन [को०]।

नागनामा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागनामन्] तुलसी [को०]।

नागनायक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्लेषा नक्षत्र। २ नागों में अनंत आदि आठ प्रमुख सर्प [को०]।

नागनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का शूड [को०]।

नाननियूह—संज्ञा पुं० [सं०] दीवार की बड़ी लूँटी [को०]।

नागपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० नागपंचमी] सावन सुदी पंचमी।

विशेष—इस तिथि को नागदेवता की पूजा होती है। पुराण में लिखा है कि इस पंचमी तिथि को ही नागों को ब्रह्मा ने साप और वर दिया था। इसमें यह उल्लेख अत्यंत प्रिय है। इस तिथि को नाग की पूजा भारत में स्थिरा प्रायः सर्वत्र करती हैं।

नागपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ सर्पों का राजा वासुकि। २ हापियों का राजा ऐरावत।

नागपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी।

नागपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्षणा नाम का कद।

नागपद्—संज्ञा पुं० [सं०] समोरा का एक आसन [को०]।

नागपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

नागपाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ वरुण के एक घस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बांध लेते थे। २ शत्रु को बांधने के लिये एक प्रकार का बंधन या फंदा।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में मेघनाद का इंद्र से इस घस्त्र को प्राप्त करना लिखा है। पुराणों में भी इसका उल्लेख है। तत्र में लिखा है कि ढाई फेरे के बंधन को नागपाश कहते हैं।

३ नागों का पाश या बंधन (को०)।

नागपाशक—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रतिबध [को०]।

नागपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोगवती नाम की नगरी जो पाताल में मानी गई है। २. हस्तिनापुर। ३ अग्निपुराण के अनुसार एक स्थान। ४ मध्य प्रदेश का एक नगर।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि जब गंगा महादेव जी की जटा से निकल हेमकूट, हिमालय आदि को लाँघकर आई तब स्वलील नामक एक दानव पर्वत के रूप में मार्ग रोकने के लिये खड़ा हो गया। भगोरथ ने कौशिक को प्रसन्न करके उनसे एक नागवाहन प्राप्त किया जिसने उस पर्वतरूपी दैत्य को विदीर्ण किया। जिस स्थान पर यह दैत्य विदीर्ण किया गया, उसका नाम नागपुर रखा गया।

नागपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ नागकेसर। २ पुन्नाग का पेड़। ३ चपा।

नागपुष्पफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेठा।

नागपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीली जूही। २ नागदोना।

नागपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नागदमनी। २ मेढासिंगी।

नागपूत—संज्ञा पुं० [सं० नागपुत्र] कचनार की जाति की एक लता जो सिकिम, बंगाल और बरमा में बहुत होती है।

नागफनी—संज्ञा स्त्री० [हिं नाग + फनी] १ शूहर की जाति का एक पौधा जिसमें टहनियाँ नहीं होती।

विशेष—इस पौधे में साँप के फन के आकार के गूदेदार मोटे दल एक दूसरे के ऊपर निकलते चले जाते हैं। ये दल कुछ नीलापन लिए हरे और काँटेदार होते हैं। काँटे बड़े विपले होते हैं। उनके चुभने पर बड़ी पीड़ा होती है। दलों के सिरे पर पीले रंग के बड़े बड़े फूल लगते हैं। फूल का निचला भाग छोटी गुल्ली के रूप का होता है जिसमें लाल रंग का रस भरा रहता है। यही गुल्ली फूलों के झड़ जाने पर बढ़कर गोल फल के रूप में हो जाती है। ये फल खाने में खटमोठे होते हैं और दवा के काम आते हैं। अचार और तरकारी भी इन फलों की बनती है। नागफनी के पौधे किसी स्थान को घेरने के लिये बाड़ों में लगाए जाते हैं। काँटों के कारण इन्हें पार करना कठिन होता है।

२ सिंघे के आकार का एक बाजा जिसका प्रचार नेपाल में है।

३ कान में पहनने का एक गहना। उ०—विकट शृङ्गि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नगफनियो।—तुलसी (शब्द०)। ४ नागे साधुओं का कोपीन।

नागफल—संज्ञा पुं० [सं०] परबल ।

नागफाँस—संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] दे० 'नागपाश' । उ०—नाग-
फाँस लीने घट भीतर, मूसनि सब जग भारी ।—घट०, पृ०
३६२ ।

नागफेन—संज्ञा पुं० [सं०] धफीम । ग्रहिफेन ।

नागबन्ध—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्ध] १ नाग या सर्प का बधन ।
२ एक वृत्त का नाम [को०] ।

नागबन्धक—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्धक] हाथी फँसानेवाला [को०] ।

नागबन्धु—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्धु] पीपल का पेड़ ।

नागबल—संज्ञा पुं० [सं०] भीम का एक नाम ।

विशेष—भीम की दस हजार हाथियों का बल था, इससे यह नाम पड़ा । यह बल उन्हें उस समय प्राप्त हुआ था जब दुर्योधन ने उन्हें विष देकर जल में फेंक दिया था और वे नागलोक में जा पहुँचे थे । नागलोक में गिरने पर नागों ने उन्हें खूब ढसा जिससे स्थावर विष का प्रभाव उतर गया और वे स्वस्थ होकर उठ बैठे । वहाँ पर कुंती के पिता के मामा ने भीम को पहचाना । अतः वासुकि की कृपा से उन्हें उस कुंड का रसपान करने को मिला जिसके पीने से हजारों हाथियों का बल हो जाता है ।

नागबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगेरन । गुलसकरी ।

नागवेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागवल्ली] १ पान की वेल । पान । २
कोई सर्पाकार वेल जो किसी वस्तु पर बनाई जाय । ३
घोड़े की आँखों की तिरछी चाल ।

नागभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वासुकि की बहन जरश्काय ।

नागभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भारी सर्प ।

नागभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । रुद्र [को०] ।

नागमंडलिक—संज्ञा पुं० [सं० नागमण्डलिक] १ साँप खेतानेवाला ।
संपेरा । मदारी । २ साँप पकड़नेवाला [को०] ।

नागमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम ।

नागमरोड—संज्ञा पुं० [हि० नाग + मरोडना] कुश्ती का एक पेंच
जिसमें जोड़ को अपनी गदन के ऊपर से या कमर पर से एक
हाथ से घसीटते हुए गिराते हैं ।

विशेष—यह पेंच घोड़ी पछाड़ ही जैसा होता है, अतः इनना
होता है कि घोड़ी पछाड़ में दोनों हथों से जोड़ को पीठ पर
से घसीटते हुए फेंकते हैं ।

नागमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत ।

नागमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नागों की माता, कद्रू ।
२ सुरसा ।

विशेष—रामायण में लिखा है कि जिस समय हनुमान समुद्र
लांघ रहे थे, देवताओं ने उनके बल की परीक्षा के लिये नागों
की माता सुरसा को भेजा था ।

२ मन शिला । मेनसिल । ३ मनसा देवी । (ब्रह्मवैवर्त पृ०) ।

१-४२

नागमार—संज्ञा पुं० [सं०] केशराज । काला भेंगरा । कुकुर भेंगरा ।

नागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

नागयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लकड़ी या पत्थर का वह खमा जो
पुष्करिणी या तालाब के बीचोबीच जल में खड़ा किया
जाता है । लाट । लट्ठा ।

विशेष—हयशीर्ष और बृहस्पति के अनुसार यह लाट वेल,
पुलाग, नागकेशर, चपा या बरने की लकड़ी की होनी चाहिए ।
लकड़ी सीधी और सुधील हो । जलाशयोत्सर्गतत्व में लिखा
है कि पहले आठों नागों के नाम अलग अलग पत्रों पर
लिखकर जल से भरे कुडों में डाल देने चाहिए । फिर जल
को खूब हिलाकर एक पत्र हाथ में उठा लेना चाहिए । जिस
नाग का नाम उस पत्र पर हो वही धनदाएँ हुए जलाशय का
अधिपति होगा । उस नाग की पायस नैवेद्य से पूजा करके
तब नागयष्टि की स्थापना करनी चाहिए ।

नागरग—संज्ञा पुं० [सं० नागरङ्ग] नारगी ।

नागर^१—वि० [सं०] [स्त्री० नागरी] १ नगर संबधी । २ नगर
में रहनेवाला या बोला जानेवाला । ३ नगर में उत्पन्न या
घोषित [को०] । ४ नगर में बोली जानेवाली या बोला
जानेवाला [को०] । ५. सभ्य । शिष्ट । नम्र [को०] । ६ चतुर ।
सयाना [को०] । ७ दुष्ट । घूर्त । बुरा । जिसमें नगर संबधी
दोष हों [को०] । ८ नामहीन [को०] ।

नागर^२—संज्ञा पुं० १ नगर में रहनेवाला मनुष्य । २ चतुर आदमी ।
सभ्य, शिष्ट और निपुण व्यक्ति । ३ देवर । ४. सौंठ । ५
नागरमोया । नारगी । ७ गुजरात में रहनेवाले ब्राह्मणों की
एक जाति । ८ व्याख्याता [को०] । ९ क्लाति । श्रम ।
कठिनाई [को०] । १०. मोक्ष की इच्छा [को०] । ११ एक
रतिबध [को०] । १२ नागरी लिपि अथवा अक्षर [को०] ।
१३ राजकुमार जो युद्धरत हो [को०] । १४ किसी नक्षत्र का
दूसरे नक्षत्र से विरोध (ज्योतिष) [को०] । १५ ज्ञान या
जानकारी का अस्वीकार [को०] । १६ वास्तुकला की तीन
पद्धतियों में से एक जो चतुरस्र या चतुष्कोण होती है [को०] ।

नागर^३—संज्ञा पुं० [सं० नाग (=साँप)] दीवार का टढ़ापन जो
जमीन की तंगी के कारण होता है ।

नागरक^१—संज्ञा [सं०] १ शिल्पी । कारीगर । २ चोर ।
३ नगर का शासनकर्ता । नागरिक प्रणिधि [को०] । ४.
नागरिक । नगरवासी [को०] । ५. नम्र या अनुकूल
नायक [को०] । ६ नगर के दोषों से युक्त व्यक्ति [को०] । ७
नगरव्यवस्था करनेवाले राजपुरुषों या पुलिस का प्रधान
[को०] । ८ एक रतिबध [को०] । ९ एक दूसरे के विरोधी
नक्षत्र [को०] ।

नागरक^२—वि० १. नगर में उत्पन्न या घोषित । २. नम्र । अनुकूल ।
३ विदग्ध । चतुर [को०] ।

नागरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ सर्प या हाथी का रक्त । २ सिद्धर ।

नागरधन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोथा ।

नागरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नागरिकता । शहरातीपन । २ नगर का रीति व्यवहार । सम्प्रदाय । उ०—सबे हँसत करताल दै नागरता के नाँव । गयो गरव गुन को सबे बसे गँवारे गाँव ।—ब्रिहारी (शब्द०) । ३ चतुराई ।

नागरवेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागवल्ली] पान की वेल । पान । तावूल ।

नागरमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

नागरमोथा—संज्ञा पुं० [सं० नागरमुस्ता] एक प्रकार का तृण या घास ।

विशेष—इसमें इधर उधर केली या निकली हुई टहनियाँ नहीं होती, जड़ के पाम चारों ओर सीधी लंबी पत्तियाँ निकलती हैं जो शर या मूँज की पत्तियों की सी नोकदार और बहुत कम चौड़ाई की होती हैं । पत्तियों के बीचोबीच एक सीधी सीक निकलती है जिसके सिरे पर फूलों की ठोस मजरी होती है । यह हाथ भर तक ऊँचा होता है और तालों के किनारे प्रायः मिलता है । इसकी जड़ सूत में फँसी हुई गाँठों के रूप की और सुगन्धित होती है । नागरमोथे की जड़ मसाले और औषध के काम में आती है । वैद्यक में नागरमोथा चरपरा, कसैला, ठंडा तथा पित्त, ज्वर, अतिसार, म्रुचि, तृषा और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है । जितने प्रकार के मोथे होते हैं उनमें नागरमोथा उत्तम माना जाता है ।

पथी०—नागरमुस्ता । नादेयी । वृषधमाक्षी । कच्छरुहा । बूडाला । पिडमुस्ता । नागरोत्था । कलापिनी । चक्राक्षा । शिशिरा । उच्चटा ।

नागराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ सपों में बड़ा सपं । २ शेषनाग । ३ हाथियों में बड़ा हाथी । ४ ऐरावत । ५ 'पंचामर' या 'नाराच' छंद का दूसरा नाम ।

नागराह्न—संज्ञा पुं० [सं०] सौंठ ।

नागरि०—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागी । उ०—प्रेम बिबस डोलत नर नागरि हित गति की अधिकारी ।—घनानंद, पृ० ५६० ।

नागरिक^१—वि० [सं०] १ जिसे लोकतन्त्र, जनतन्त्र, प्रजातन्त्रात्मक आदि पद्धति द्वारा शासित राष्ट्रों के सामान्य निर्वाचनों में मतदान का अधिकार प्राप्त हो । २ नगर स्वधी । ३ नगर का । ४. नगर में रहनेवाला । शहराती । ५ चतुर । सम्प्र । दे० 'नागरक' ।

नागरिक^२—संज्ञा पुं० १ लोकतन्त्रात्मक आदि पद्धति द्वारा शासित राष्ट्र का वह निवासी जिसे सामान्य निर्वाचन आदि में मतदाता अधिकार प्राप्त हो । २ नगरनिवासी । शहर का रहनेवाला आदमी । दे० 'नागरक' ।

नागरिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरिक होने का भाव । नागरिक के स्वत्व और अधिकारों से युक्त होने की अवस्था । नागरिक जीवन ।

नागरिपन०—संज्ञा पुं० [सं० नागरिपन (प्रत्य०)] चातुरी । चतुरता । उ०—नागरिपन किछु कहवा चार । कहलहु बुहए सगानी ।—विद्यापति, पृ० ८२ ।

नागरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नगर की रहनेवाली स्त्री । शहर की औरत । २ चतुर स्त्री । प्रवीण स्त्री । ३ स्तुही । थुहर ।

४ भारतवर्ष की वह प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी, मराठी, पाली प्राकृत आदि आजकल प्रायः लिखी और मुद्रित की जाती है । विशेष—दे० 'देवनागरी' । ५ पत्थर की मोटाई की एक बड़ी माप । ६ पत्थर की बहुत मोटी पट्टियाँ । बड़ा मोट ।

नागरी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० नागरवेल] पान । नागवल्ली । उ०—बाड़ी में है नागरी पान देशांतर जाय । जो वहाँ सूँसे वेलही तो परन वहाँ दिनसाय ।—दरिया० बानी, पृ० २ ।

नागरीट—संज्ञा पुं० [सं०] १ लपट । व्यभिचारी । २ जार । ३ वह जो विवाह कराए । घटक (को०) ।

नागरुक—संज्ञा पुं० [सं०] नागरी ।

नागरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धर ।

नागरोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

नागर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ नागरिकता । शहरातीपन । २ चतुराई । बुद्धिमानी ।

नागल—संज्ञा पुं० [दे०] १ हल । २ जूए की रस्सी जिससे बैल जोड़े जाते हैं ।

नागलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पान की लता । पान । २ शिश्न । लिग (को०) ।

नागलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल ।

नागवंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ नागों की कुलपरंपरा । २ शक जाति की शाखा ।

विशेष—प्राचीन काल में नागवंशियों का राज्य भारतवर्ष के कई स्थानों में तथा मिहल में भी था । पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि सात नागवंशी राजा मयुरा भोग करेंगे, उसके पीछे गुप्त राजाओं का राज्य होगा । नौ नाग राजाओं के जो पुराने सिक्के मिले हैं उनपर वृहस्पति नाग, देव नाग, गरुडपति नाग इत्यादि नाम मिलते हैं, ये नागगण विक्रम संवत् १५० और २५० के बीच राज्य करने थे । इन नव नागों की राजधानी कहाँ थी इसका ठीक पता नहीं है पर अधिकांश विद्वानों का मत यही है कि उनकी राजधानी नरवर थी । मयुरा और भरतपुर से लेकर आसियर और उज्जैन तक का भूभाग नागवंशियों के अधिकार में था । इतिहासों में यह बात प्रसिद्ध है कि महाप्रतापी गुप्तवंशी राजाओं ने शक या नागवंशियों को परास्त किया था । प्रयाग के किले के भीतर जो स्तंभ है उसमें स्पष्ट लिखा है कि महाराज समुद्रगुप्त ने गरुडपति नाग को पराजित किया था । इस गरुडपति नाग के सिक्के बहुत मिलते हैं ।

महाभारत में भी कई स्थानों पर नागों का उल्लेख है । पांडवों ने नागों के हाथ से मगध राज्य छीन लिया था । खाडव वन जलाते समय भी बहुत से नाग नष्ट हुए थे । जनमेजय के सपें यज्ञ का भी यही अभिप्राय मालूम होता है कि पुरुवंशी आर्य राजाओं से नागवंशी राजाओं का विरोध था । इन बात का समर्थन सिकंदर के समय के प्राप्त वृत्त से होता है । जिस समय सिकंदर भारतवर्ष में आया उससे पहले पहल तक्षशिला का नागवंशी राजा ही मिला । उस राजा ने सिकंदर का कई दिनों तक तक्षशिला में आतिथ्य किया और

अपने शत्रु पौरव राजा के विरुद्ध चढ़ाई करने में सहायता पहुँचाई। सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला में राजा के यहाँ भारी भारी सर्प पले देखे थे जिनकी नित्य पूजा होती थी। यह शक या नाग जाति हिमालय के उस पार की थी। अब तक तिब्बती अपनी भाषा को नागभाषा कहते हैं।

नागवशी—वि० [सं० नागवशिन] नागों के वश या कुल का।

नागवल्लरी—सखा स्त्री० [सं०] पान।

नागवल्ली—सखा स्त्री० [सं०] पान की डेल। पान। तावूष।

नागवार—वि० [फा०] १ असह्य। २ जो अच्छा न लगे। अप्रिय।

क्रि० प्र०—होना।—गुजरना।

नागवारिक—सखा पुं० [सं०], १ राजा का हाथी। राजकुंजर। २ महावत। फीसवान। ३ मयूर। मोर। ४. गहड। ५ गजराज। हाथियों के झुंड का नायक। ६ किसी सभा या राजसभा का प्रधान व्यक्ति [क्रि०]।

नागवीथी—सखा स्त्री० [सं०] १ शुक ग्रह की चाल में वह मार्ग जो स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रों में हो (वृहत्संहिता)।

विशेष—तीन तीन नक्षत्रों में एक एक वीथी मानी गई है। २ कश्यप की एक पुत्री का नाम। (ब्रह्मवैवर्त)।

नागवृक्ष—सखा पुं० [सं०] नागकेशर।

नागशत—सखा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

नागशुंढी—सखा स्त्री० [सं० नागशुण्डी] डगरी फल। एक प्रकार की लकड़ी।

नागशुद्धि—सखा स्त्री० [सं०] नया घर बनवाने में नागों की स्थिति का विचार।

विशेष—फलिप्त ज्योतिष के ग्रंथों में लिखा है कि भादों, कुम्भार और फातिक इन तीन महीनों में नागों का सिर पूरव की ओर, अग्रहण, पूस और माघ में दक्षिण की ओर, फागुन चैत और वैशाख में पच्छिम की ओर तथा जेठ, असाढ़ और सावन में उत्तर की ओर रहता है। पहले पहल नींव ढालते समय यदि नागों के अस्तक पर आघात पड़ा तो घर बनवानेवाले की मृत्यु, पीठ पर पड़ा तो स्त्री पुत्र की मृत्यु होती है। पेट पर आघात पड़ने से शुभ होता है।

नागसंभव—सखा पुं० [सं० नागसम्भव] १ सिद्धर। २ एक प्रकार का मोती (जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वासुकि, तक्षक आदि नागों के सिर में होता है)।

नागसंभूत—सखा पुं० [सं० नागसम्भूत] दे० 'नागसंभव'।

नागसाहचर्य—सखा पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

नागसुगंधा—सखा स्त्री० [सं० नागसुगन्धा] सर्पसुगंधा। एक प्रकार की रास्ना। रायसन।

नागस्तीकक—सखा पुं० [सं०] वरसनाभ विष। अमृत विष।

नागस्फोता—सखा स्त्री० [सं०] १. नागदंती। २ दंती।

नागहंत्री—सखा स्त्री० [सं० नागहन्त्री] वध्या कर्कोटकी। बाँझ ककोड़ा। बाँझ खखसा।

नागहनु—सखा पुं० [सं०] नख नामक गधद्रव्य।

नागहाँ—क्रि० वि० [फा०] एकाएक। अचानक। अकस्मात्।

नागहानी—वि० स्त्री० [फा०] अकस्मात् भाई हुई। जो एकाएक टूट पड़ी हो। जैसे, नागहानी प्राप्त।

नागांग—सखा पुं० [सं० नागाङ्ग] हस्तिनापुर [क्रि०]।

नागागना—सखा स्त्री० [सं० नागाङ्गना] १. करिणी। हयिनी [क्रि०]।

२ पुराणानुसार नागलोक या पाताल लोक निवासियों की स्त्री। ३ ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन भारत की 'नाग' जाति की अगना। ४ हाथी का शुद्ध। सुँढ [क्रि०]।

नागांचला—सखा स्त्री० [नागाञ्चला] नागयष्टि।

नागाजना—सखा स्त्री० [सं० नागाञ्जना] नागयष्टि।

नागातक—सखा पुं० [सं० नागातक] १ गहड। २ मयूर। ३ सिंह।

नागा^१—सखा पुं० [सं० नग, हिं० नगा] उस संप्रदाय का शैव साधु जिसमें लोग नगे रहते हैं। उ०—जगम सवरा जरै जरै नागा वैरागी। तपसी दूता जरै बचै नही कोऊ भागी।—पलटु०, भा० १, पृ० १०४।

विशेष—नागे पहले किसी प्रकार का वस्त्र धारण नहीं करते थे, एक दम नगे रहते थे। अब अंग्रेजा राज्य में एक कोपीन लगाकर निकलते हैं जिसे नागफनी कहते हैं। ये सिर की जटाओं को रस्सी की तरह बट कर पगड़ों के आकार में लपेटे रहते हैं और शरीर में भस्म पोतते हैं। ये अपने पास भस्म का एक गोला रखते हैं जिसकी नित्य पूजा करते हैं। इनकी उद्वेगता और वीरता प्रसिद्ध है। अगरजी राज्य के पहले ये बड़ा उपद्रव भी करते थे। वैष्णव वैरागियों से इनकी लड़ाई प्रायः हुआ करता थी जिसमें बहुत से वैरागी मारे जाते थे। नागों के भी कई अखाड़े होते हैं जिनमें निरजनी और निर्वाणी दो मुख्य हैं।

२. नगा। नगन। आच्छादनरहित। उ०—भूका पोसणहार यूँ ज्यूँ जग कमलाकत। नागा ढाकणहार इम, जिम तरवरा वसत।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ५६।

नागा^२—सखा पुं० [सं० नागा] १ आसाम के पूव की पहाड़ियों में बसनेवाली एक जंगली जाति। जिनका प्रदेश 'नागा लैंड' कहा जाता है। २ आसाम में वह पहाड़ या स्थान जिसके आसपास नागा जाति की बस्ती है।

नागा^३—सखा पुं० [तु० नागह] किसी निश्चय या निरंतर होनेवाली अथवा नियत समय पर बराबर होनेवाली बात का किसी दिन या किसी नियत अवसर पर न होना। चलती हुई कार्य-परंपरा का भंग। अंतर। बीच। जैसे,—(क) रोज काम पर जाना, किसी दिन नागा न करना। (ख) तुम्हारे कई नागे हो चुके, तनख्वाह कटेगी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नागा देना = बीच डालना। अंतर डालना।—जैसे, रोज न आओ, एक दिन नागा देकर आया करो।

नागाख्य—सखा पुं० [सं०] नागकेशर।

नागानन—सखा पुं० [सं०] गजानन। गणेश।

नागाभिमू—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम ।

नागाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का चमड़ा (को०) ।

नागाराति—संज्ञा पुं० [सं०] १ वध्या कर्कोटकी । २ चक्र कर्कोटकी । ३ गुरु (को०) । ४ मयूर (को०) । ५ सिंह (को०) ।

नागारि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नागाराति' ।

नागार्जुन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन बौद्ध महात्मा या बोधिसत्व जो माध्यमिक शाखा के प्रवर्तक थे ।

विशेष—ऐसा लिखा है कि ये विदर्भ देश के ब्राह्मण थे । किसी किसी के मत से ये ईसा से सौ वर्ष पूर्व और किसी किसी के मत से ईसा से १५०—२०० वर्ष पीछे हुए थे । पर तिब्बत में लामा के पुस्तकालय में एक प्राचीन ग्रंथ मिला है जिसके अनुसार पहला मत ही ठीक सिद्ध होता है । बौद्ध धर्म को दार्शनिक रूप पहले पहल नागार्जुन ही ने दिया, अतः इनके द्वारा सभ्य और पठित समाज में बौद्ध धर्म का जितना प्रचार हुआ उतना किसी के द्वारा नहीं । इनके दर्शन ग्रंथ का नाम माध्यमिक सूत्र है । इसके प्रतिरिक्त बौद्ध धर्म सवधो इन्होंने और कई ग्रंथ लिखे । इन्होंने सात वर्ष तक सारे भारतवर्ष में उपदेश और शास्त्रार्थ करके बहुत से लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया । अतः में ये भोजभद्र नामक प्रधान राजा को दस हजार ब्राह्मणों के सहित बौद्धधर्म में लाए । इनका दर्शन दो भागों में विभक्त है—एक सत्त्व सत्य दूसरा परमार्थ सत्य । सत्त्व सत्य में इन्होंने माया का मूल तथ्य निरूपित किया है और परमार्थ सत्य में यह प्रतिपादित किया है कि चित्त और समाधि के द्वारा महात्मा को किस प्रकार जान सकते हैं । महात्मा को जान लेने पर माया दूर हो जाती है । माध्यमिक दर्शन का सिद्धांत यही है कि साधारण नीतिधर्म के पालन से ही प्राणी पुनर्जन्म से रहित नहीं हो सकता । निर्वाणप्राप्ति के लिये दानशील, शान्ति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन गुणों के द्वारा आत्मा को पूर्णत्व को पहुँचाना चाहिए । ये कहते थे कि विष्णु, शिव, काली, तारा, इत्यादि देवी देवताओं की उपासना सासारिक उन्नति के लिये करनी चाहिए । नागार्जुन ने बौद्ध धर्म को जो रूप दिया वह 'महायान' कहलाया और उसका प्रचार बहुत शीघ्र हुआ । नेपाल, तिब्बत, चीन, तातार, जापान इत्यादि देशों में इसी शाखा के अनुयायी हैं । तांत्रिक बौद्ध धर्म का प्रवर्तक कुछ लोग नागार्जुन ही को मानते हैं । काश्मीर में बौद्धों का जो चोया सघ हुआ था वह इन्होंने किया था ।

ये चिकित्सक भी अच्छे थे । चक्रपाणि पंडित (विक्रम संवत् १००० के लगभग) ने अपने चिकित्सासंग्रह में नागार्जुन कृत नागार्जुनार्जुन और नागार्जुनयोग नामक औषधों का उल्लेख किया है । चक्रपाणि ने लिखा है कि पाटलिपुत्र नगर में उन्हें ये दोनों नुसखे पत्थर पर खुदे मिले थे । ऐसा प्रसिद्ध है कि ये पत्थरों पर इस प्रकार के नुसखे खुदाकर उन्हें स्थान स्थान पर गढ़वा देते थे । कक्षपुट, कीतुहल-चित्तमणि, योगरत्नमाना, योगरत्नावली और नागार्जुनीय

(चिकित्सा) ये और ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं । रस चिकित्सा पद्धति को इन्होंने प्रचारित किया ।

नागार्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी । दुधिया घास ।

नागालायु—संज्ञा पुं० [सं०] गोल घीया । गोल कद्दू । गोल लोकी ।

नागाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुरु । २. मयूर । ३ सिंह ।

नागाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकद ।

नागाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नागकैसर ।

नागाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सधमणा कद ।

नागिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग] १ नाग की स्त्री । सर्प की माता ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि नागिन में बहुत विष होता है, इससे कुटिछ और दुष्ट स्त्री के लिये इस शब्द का प्रयोग प्राय करते हैं ।

२ रीयों की लकी भौरी जो पीठ या गरदन पर होती है ।

विशेष—स्त्रियों में ऐसी भौरी का होना कुलक्षण समझा जाता है ।

३. वैद्य, घोड़े आदि चोपायों की पीठ पर रीयों की एक विशेष प्रकार की भारी जो अशुभ मानी जाती है ।

नागिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग] दे० 'नागिन' ।

नागी—संज्ञा पुं० [सं० नागिन] (नागवाले) शिव । महादेव ।

नागीगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] २४ वर्णों का एक वैदिक छंद जिसके प्रथम दो चरणों में नौ नौ वर्ण होते हैं और तीसरे चरण में केवल छह वर्ण ।

नागुला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] १ नेवला । २ नाकुली नामक जड़ी ।

नागेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नागेन्द्र] १ बड़ा सर्प । २ शेष, वासुकि आदि नाग । ३ बड़ा हाथी । ४ ऐरावत ।

नागेश—संज्ञा [सं०] १ शेषनाग । २. प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण नागेश भट्ट । ३. पतञ्जलि (को०) ।

नागेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ शेषनाग । २ ऐरावत । ३ नागकैसर ।

नागेश्वर रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध रसौषध ।

विशेष—पारा, गंधक सीसा, रंगी, मैनासिल, नौसादर, जवाहार, सज्जो, सोहागा, लोहा, ताँबा और अन्नक इन सबको चूल्हा के दरावर लेकर चूल्हा के दूध में मले । फिर चीते, मछूँ और दती के क्वाथ में मलकर उरद की दाब के बराबर गोली बना लें ।

नागैसर(७)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नागकैसर' ।

नागैसरी—वि० [हिं० नागैसर] नागकैसर के रंग का पीला ।

नागोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोहे का वह तवा या बकतर जिसे अश्वों के घाघात से बचाने के लिये छाती पर पहनते थे । सीनावद । २ एक प्रकार का गर्भरोग । गर्भोपद्रव विशेष (को०) ।

नागोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नागोद' ।

नागोदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में हाथ की रक्षा के लिये पहना जानेवाला दस्ताना । (को०) ।

नागौर^१—संज्ञा पुं० [हि० नव + नगर] मारवाड के अंतर्गत एक नगर जो गायो और बैलों के लिये भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध है।

विशेष—ऐसी जनश्रुति है कि दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज ने कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ने की आज्ञा दी जो गोपों के लिये सबसे अनुकूल हो। लोग चारों ओर दूढ़े। उनमें से एक ने जंगल में देखा कि तुरत की व्याई हुई गाय अपने बछड़े की रक्षा एक बाघ से कर रही है। बाघ बहुत जोर से मारता है पर गाय उसे सींगों से मार मारकर हटा देती है। महाराज के यहाँ जब यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने उसी जंगल को पसंद किया और वहाँ नागौर या नवनगर नाम का नगर और गढ़ बनवाया।

नागौर^२—वि० [हि० नागौर] [वि० स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा आदि)।

नागौरा—वि० [हि० नागौर] [स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा इत्यादि)।

नागौरी^१ वि० [हि० नागौर] नागौर का। अच्छी जाति का (बैल, बछड़ा आदि)।

नागौरी^२—वि० स्त्री० नागौर की। अच्छी जाति की (गाय)।

नाचना—क्रि० सं० [सं० लट्ठन] पार करना। ढाँकना। उलथाना। उ०—देहली नाच कर, दहलीज के उधर, धनोची पर उधर, घड़े रखे बरन।—आराधना, प्र० ७८।

नाच—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य, प्रा० गृच्य, नच्च] १ वह उछल कूद जो चित्त की उमग से हो। अंगों की वह गति जो हृदयोत्साह के कारण मनमानी अथवा संगीत के मेल में ताल स्वर के अनुसार और हावभाव युक्त हो। उ०—करि सिंगार मनमोहनि पातुर नाचहि पाँच। बादशाह गढ़ छँका, राजा भूला नाच।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—नाच की प्रथा सभ्य असभ्य सब जातियों में आदि से ही चली आ रही है, क्योंकि यह एक स्वाभाविक वृत्ति है। संगीतदामोदर में नृत्य का यह लक्षण है—देश की रुचि के अनुसार ताल मान और रस का आश्रित जो अंगविशेष हो उसे नृत्य कहते हैं। नृत्य दो प्रकार का होता है—ताडव और लास्य। पुरुष के नाच को ताडव और स्त्री के नाच को लास्य कहते हैं। ताडव के दो भेद हैं—पेलवि और बहुरूप। अभिनयशून्य अंगविशेष को पेलवि और अनेक प्रकार के हावभाव, वेशभूषा से युक्त अंग-गति को बहुरूप कहते हैं। लास्य के भी दो भेद हैं—छुरित और यौवत। नायक नायिका परस्पर आलिंगन, चुवन आदि पूर्वक जो नृत्य करते हैं उसे छुरित कहते हैं। एक स्त्री लीला और हावभाव के साथ जो नाच नाचती है उसे यौवत कहते हैं। इनके अतिरिक्त अंग प्रत्यंग की चेष्टा के अनुसार अंगों में अनेक भेद किए गए हैं। पर प्राचीन काल में नृत्य विद्या राजकुमार भी सीखते थे। अर्जुन इस विद्या में निपुण थे। भारतवर्ष में नाचने का पेशा करनेवाले पुरुषों को नट

कहते थे। स्मृतियों में नट निकृष्ट जातियों में रखे गए हैं। नाचना अनेक प्रकार के स्वरों के साथ भी होता है, जैसे, नाटक, रासलीला आदि में। विशेष दे० 'नाटक'।

क्रि० प्र०—करना, नाचना, होना।

यौ०—नाचकूद। नाच तमाशा। नाच रंग।

मुहा०—नाच काछना=नाचने के लिये तैयार होना। उ०—मैं अपनी मन हरि सो जोरयो। नाच कछु घूँघट छोरयो तब लोकलाज-सब फटक पछोरयो।—सूर (शब्द०)। नाच दिखाना=(१) किसी के सामने नाचना। (२) उछलना कूदना। हाथ पैर हिलाना। (३) विलक्षण आचरण करना। जैसे, रास्ते में उसने बड़े बड़े नाच दिखाए। नाच नचाना=(१) जैसा चाहना वैसा काम करना। उ०—(क) कबिरा बैरी सबल है एक जीव रिपु पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावे नाच।—कबीर (शब्द०)। (ख) जो कछु कुबजा के मन भावे सोई नाच नचावे।—सूर (शब्द०)। (२) दिक करना। हैरान करना। तग करना। उ०—जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहि। धेरि सकल बहु नाच नचावहि। तुलसी (शब्द०)।

२ नाट्य। खेल। क्रीडा। उ०—टूटे नौ मन मोती फूटे दस मन काँच। लिय समेटि सब अमरन होइगा दुख कर नाच।—जायसी (शब्द०)। ३ कृत्य। घधा। कर्म। प्रयत्न। उ०—साँच कहीं नाच कोन सो जो न मोहि लोम लघु निलख नचायो।—तुलसी (शब्द०)।

नाचकूद—संज्ञा स्त्री० [हि० नाच + कूद] १ नाच। तमाशा। उ०—कतहँ कथा कहै कछु कोई। कतहँ नाच कूद भल होई।—जायसी (शब्द०)। २ आयोजन। प्रयत्न। ३ गुण, योग्यता वहाँ आदि प्रकट करने का उद्योग। ढोंग। ४ क्रोध से उछलना, पटकना।

नाचघर—संज्ञा पुं० [हि० नाच + घर] वह स्थान जहाँ नाचना गाना आदि हो। नृत्यशाला।

नाचना—क्रि० अ० [हि० नाच] १ चित्त की उमग से उछलना, कूदना तथा इसी प्रकार की और चेष्टा करना। हृदय के उत्साह से अंगों की गति देना। हर्ष के भारे स्थिर न रहना। जैसे,—इतना सुनते ही वह आनंद से नाच उठा। उ०—(क) आजु सूर दिन अथवा आजु रेनि ससि बूझ। आजु नाचि जिउ दीजे आजु आगि हमें बूझ।—जायसी (शब्द०)। (ख) सुनि अस व्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हँ विरचि हम साँचे।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सखिमान देखहु मोर गन नाचत वारिद पेखि।—तुलसी (शब्द०)।

सयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

२. संगीत के मेल से ताल स्वर के अनुसार हावभाव पूर्वक उछलना, कूदना, फिरना तथा इसी प्रकार की और चेष्टाएँ करना। थिरकना। नृत्य करना। उ०—(क) करि सिंगार मन मोहनि पातुर नाचहि पाँच। बादशाह गढ़ छँका राजा भूला नाच।—जायसी (शब्द०)। (ख) कबहँ करवाव

बजाह के नाचत मातु सबै मोद भरै।—तुलसी (शब्द०) ।
१. भ्रमण करना । चक्कर मारना । घूमना । जैसे, लट्ठ
का नाचना ।

मुहा०—सिर पर नाचना—(१) धरना । प्रसना । आक्रान्त
करना । प्रभाव डालना । जैसे, सिर पर पाप, घट्ट, दुर्भाग्य
आदि नाचना । (२) पास आना । जैसे, सिर पर काल
या मृत्यु का नाचना । उ०—जेहि घर काल मजारी नाचा ।
पखिहि नावें जीव नहि बाँचा ।—जायसी (शब्द०) । सीस पर
नाचना = दे० 'सिर पर नाचना' । उ०—लखी नरैस बात सब
साँची । तिय मिस मोचु सीस पर नाची ।—तुलसी (शब्द०) ।
विशेष—इस मुहाविरे का प्रयोग काल, मृत्यु, अदृष्ट, दुर्भाग्य
पाप, ऐसे कुछ शब्दों के साथ ही होता है ।

प्राँख के सामने नाचना = प्रत करण में प्रत्यक्ष के समान प्रतीत
होना । ध्यान में ज्यों का त्यों होना । जैसे,—(क) उसमें ऐसा
सुंदर वर्णन है कि दृश्य प्राँख के सामने नाचने लगता है ।
(ख) उसकी सुरत प्राँख के सामने नाच रही है ।

४ इधर से उधर फिरना । दोहना घूमना । उद्योग या प्रयत्न में
घूमना । स्थिर न रहना । जैसे,—एक जगह बैठते क्यों नहीं,
इधर उधर नाचते क्या हो ? उ०—जप माछा छापा तिलक
सरे न ऐकी काम । मन काँचे, नाचे बूथा साँचे राचे राम ।—
विहारी (शब्द०) । ५ थरना । कपना । उ०—बाजा बान
बाँध जस नाचा । जिव गा स्वर्ग परा मुँह साँचा ।—जायसी
(शब्द०) । ६ क्रोध में आकर उछलना । कूदना । क्रोध से
उद्विग्न घोर चंचल होना । बिगडना । जैसे,—तुम सबको कहते
हो, पर तुम्हें जरा भी कोई कुछ कहता है तो नाच उठते हो ।

संयो० क्रि०—उठना ।

नाचमहल—संज्ञा पु० [हि० नाच + महल] उ०—नाचमहल महें बैठो
भीमा । दीप बुझाय क्रोध करि जी मा ।—सबल (शब्द०) ।

नाचरंग—संज्ञा पु० [हि० नाच + रंग] प्रामोद प्रमोद । जलसा ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—होना ।

नाचाक—वि० [फा० ना + तु० चाक] जो स्वस्थ न हो । अस्वस्थ ।
बीमार [को०] ।

नाचाकी—संज्ञा स्त्री० [नाचाक फा० ना + तु० चाक + फा० ई
(प्रत्य०)] १ बिगाड । अनबन । लडाई । वैमनस्य । मन-
मुटाव । २ बीमारी । रोग (को०) ।

नाचार^१—वि० [फा०] १ विवश । लाचार । असहाय । २. तुच्छ ।
व्यर्थ । उ०—इच्छायुत वैराग को करे जो चित्त विचार ।
सदाचार को वेद मत यह विचार नाचार ।—केशव (शब्द०) ।

नाचार^२—क्रि० वि० विवश होकर । हारकर । मजबूरन । उ०—
सुलतान रकुनुद्दीन फोरोजशाह इसनी शराब पीता था कि
माखिर नाचार उसके प्रमीरो ने उसे कैद कर लिया ।—
शिवप्रसाद (शब्द०) ।

नाचारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'लाचारी' ।

नाचिकेत—संज्ञा पु० [सं०] १ अग्नि । २ नचिकेता नामक ऋषि ।

३. अ—वि० [फा० नाचीज] १ तुच्छ । पोच । उ०—अब उनको

नाचीज फोजी गोरे अपने बूट से कुचलने लगे ।—सरस्वती
(शब्द०) । २ निकम्मा ।

नाचीन—संज्ञा पु० [सं०] १. एक देश जो दक्षिण में है । २ इस देश
का राजा (महाभारत) ।

नाजा^१—संज्ञा पु० [हि० अनाज] १. अनाज । अन्न । उ०—खसन
को योष जहाँ नाज ही में देखियत माफ करवे हो माँह होत
करनाशु है ।—गुमान (शब्द०) । २ खाद्य द्रव्य । भोजन
सामग्री । खाना । उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत
ललकत खलि ज्यो कंगाल पातरी सुनाज की ।—तुलसी
(शब्द०) । विशेष—दे० 'अनाज' ।

नाज^२—संज्ञा पु० [फा० नाज] १. ठसक । नखरा । चोचला । हाव
भाव । उ०—अदा में, नाज में चंचल अजब मालम दिखाती
है । वे सुमिरन मोतियों की उँगलियों में जब फिराती
है ।—नजीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—नाज अदा, नाज नखरा = (१) हावभाव । (२)
चटक, मटक । वनाव सिंगार ।

मुहा०—नाज उठाना = चोचला सहना । नाज से पालना = बड़े
लाई प्यार से पालना ।

२ घमंड । अभिमान । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाजनी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजनी] १ सुंदरी स्त्री । २.
नाजुक बदनवाली औरत । कोमलांगी (को०) ।

नाजवरदार—वि० [फा० नाजवरदार] नाज बरदाश्त करनेवाला ।
आशिक ।

नाजवरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजवरदारी] नाज बरदाश्त
करना । आशिकी ।

नाजबू—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजबू] मरुवे का पीछा ।

नाजौं—वि० [फा० नाजौं] घमंड करनेवाला । गर्वित ।

क्रि० प्र०—होना ।

नाजायज—वि० [फा० ना + अ० जायज] जो जायज न हो ।
जो नियमविरुद्ध हो । अनुचित ।

नाजिम^१—वि० [अ० नाजिम] प्रबधकर्ता ।

नाजिम^२—संज्ञा पु० [अ०] मुसलमानी राज्यकाल में वह प्रधान
कर्मचारी जिसके ऊपर किसी देश या राज्य के समस्त
प्रबंध का भार रहता था । उ०—हुमायूँ तख्त पर बैठा ।
उसका भाई कामरौ पहले से काबुल का नाजिम था ।—
शिवप्रसाद (शब्द०) ।

विशेष—यह राजपुरुष उस देश का कर्ता धर्ता होता था और
उसकी नियुक्ति सम्राट की ओर से होती थी ।

नाजिर^१—वि० [अ० नाजिर] १ देखनेवाला । दर्शक ।

नाजिर^२—संज्ञा पु० १ निरीक्षक । देखमाल करनेवाला । २.

लेखकों का अफसर । प्रधान लेखक । ३ खवाजा । महलसरा ।

४ वह दलाल जो वेश्याओं को गाने बजाने के लिये ठोक
करता और लाता हो ।

नाजिरात—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाजिर + घ्रात (प्रत्य०)] वह दलाली जो नाजिर को नाचने गानेवाली वेश्या आदि से मिलती है।

नाजी—सञ्ज्ञा पुं० [जर्मन नात्सी] प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच का एक प्रबल जर्मन राजनीतिक दल। नात्सी।

विशेष—जर्मनी के अधिनायक हिटलर के नेतृत्व में यह दल जर्मनी का प्रमुख दल हो गया था।

नाजी दर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० नाजी + हि० दर्शन] नाजी जर्मनी का एक राजनीतिक सिद्धांत। वि० दे० 'नाजीवाद'। उ०—मानव मन की दुर्बलता से लाभ उठानेवाले नाजी दर्शन ने जनता पर बरसो बोरे डाले।—हस०, पु० ३६।

नाजीवाद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० नाजी + वाद] जर्मनी के नाजियों का राजनीतिक सिद्धांत।

विशेष—नाजीवाद फासिज्म के समान जनतंत्र, व्यक्ति-स्वतंत्रता, अंतरराष्ट्रीय शांति आदि का विरोधी तथा अधिनायकतंत्र का प्रबल पोषक था। हिटलर के काल में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा।

नाजुक—वि० [फा० नाजुक] १ कोमल। सुकुमार। उ०—गढे नुकीले लाल के नैन रहे दिन रैन। तब नाजुक ठोड़ीन में गाढ़ परे मृदु वैन।—शृ० सत० (शब्द०)।

यौ०—नाजुक बदन। नाजुक दिमाग।

२. पतला। महीन। चारीक। ३ सूक्ष्म। गूढ़। जैसे, नाजुक खयाल। ४ थोड़े ही आघात से नष्ट हो जानेवाला। जरा से भटके या धक्के से टूट फूट जायेवाला। थोड़ी प्रसावधानी से भी जिम्मे दूटने का डर हो। जैसे,—शीशे की चीजें नाजुक होती हैं, संभालकर लाना।

यौ०—नाजुक मिजाज = जो थोड़ा सा कष्ट भी न सह सके।

५ जिसमें हानि या अनिष्ट की आशंका हो। जोखों का। जैसे, नाजुक वक्त, नाजुक हालत, नाजुक मामला।

नाजुकखयाल—वि० [फा० नाजुक + खयाल] कोमल भावनाओं-वाला। मदाशय। उच्च विचारोंवाला।

नाजुकखयाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नाजुकखयाली] काव्य में गूढ़ता या सूक्ष्मता का भाव। उ०—कला पर एक प्रकार की रीतिकालीन छाप और उर्दू कविता की नाजुकखयाली का प्रभाव है।—स० शास्त्र, पु० १०६।

नाजुकदिमाग—वि० [फा० नाजुक + अ० दिमाग] १ जो रुचि के प्रतिकूल (जैसे दुर्गंध, कर्कश स्वर आदि) थोड़ी सी बात भी न सहन कर सके। जो जरा जरा सी बात नाक भी सिकोड़े। २ नुनक मिजाज। चिढ़विट्टा।

नाजुकबदन—वि० [फा० नाजुकबदन] १ कोमल और सुकुमार शरीर का। २ डोरिए की तरह का एक महीन कपड़ा। ३ एक प्रकार गुनलाला।

नाजुकमिजाज—वि० [फा० नाजुक मिजाज] दे० 'नाजुकदिमाग'।

नाजो—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नाज] १ नाज करनेवाली। चटक मटक-वाली स्त्री। ठपकवाली स्त्री। २ लाइली प्यारी स्त्री।

नाट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाट्य] १. नृत्य। नाच। २ नकल। स्वा० उ०—पथी इतनी कहियो बात। तुम बिनु यहाँ कुँवर बर होत जिते उत्पात। गोपी गाढ़ सकल लघु दीरघ पीत। कृत गात। परम प्रनाथ देखियत तुम बिनु केहि अवलं प्रात। कान्ह कान्ह के डेरत तब धौं सब कैसे जिय मानत। व्योहार आजु लौं है ब्रज कपट नाट छल ठानत।—(शब्द०)। ३ एक देश का नाम।

विशेष—यह देश कर्नाटक के पास था।।

४. नाट देशवासी पुरुष। ५ एक राग का नाम।

विशेष—इसे कोई मेघ राग का और कोई धीपक राग का मानते हैं। इस राग में धीर रस गाया जाता है।

नाट^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] बाण की गौरी। नाटसा। उ० तिय तन वितन जु पंच सर, लगे पंच ही बाट। चुँवक पी बिनु, धौं निकसहि ते नाट।—नद० अ०, पु० १३५।

नाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाट्य या अभिनय करनेवाला। २ रंगशाला में नटों की प्राकृति, हाव भाव, वेश और आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन। वह दृश्य जिसमें के द्वारा चरित्र दिखाए जाएँ। अभिनय। ३ वह प्रश काव्य जिसमें स्वांग के द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र दृश्यकाव्य, अभिनयग्रन्थ।

विशेष—नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार माने गए हैं—श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एव नाटक माना गया है। पर मुख्य रूप से इसका ग्रहण ही कारण दृश्य काव्य मात्र को नाटक कहने लगे हैं। का नाट्यशास्त्र इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है प्रकीर्ण के दो भेद हैं—काव्य और अभिनय।

में दृश्य काव्य या रूपक के २७ भेद कहे गए हैं—न प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, वीथी, अक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासि, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, काव्य, श्रीनिगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक प्रेक्षण। साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि स्पष्ट रूप से दिए हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य विभाग हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, ईहामृग, अकवीथी और प्रहसन। उपरूपक के छठारा हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीनिगदित, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भणि उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक शब्द दृश्य काव्य या ग्रंथ में बोलते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक व्याप्त वृत्त (प्रसिद्ध भाष्यान, कल्पित नहीं) को लिखना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विचार, सुख,

तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक भ्रम होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजपति होना चाहिए। नाटक के प्रधान या भगी रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रूप से आते हैं। शांति, करुणा आदि जिस रूपक में में प्रधान हो वह नाटक नहीं कहला सक्ता। सधिस्यल में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिए। उपसहार में मगल हो दिखाया जाना चाहिए। वियोगात् नाटक संस्कृत भ्रमकार शास्त्र के विरुद्ध है। अभिनय आरम्भ होने के पहले जो क्रिया (मगलाचरण नादो) होती है, उसे पूर्ववर्ग कहते हैं। पूर्ववर्ग के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते हैं, आकर सभा की प्रशंसा करता है फिर नट, नटी सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसमें खेले जानेवाले नाटक का प्रस्ताव, कवि वंश-वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे वस्तु कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है—प्राधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे 'प्राधिकारी' कहते हैं। इस प्राधिकारी के सबध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे 'प्राधिकारिक वस्तु' कहते हैं, जैसे, रामलीला में राम का चरित्र। इस प्राधिकारी के उपकार के लिये या रसपुष्टि के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आ जाता है उसे प्रासंगिक वस्तु कहते हैं, जैसे सुग्रीव, आदि का चरित्र।

'सामने लाने' अर्थात् दृश्य समुख उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। भूत अवस्थानुरूप अनुकरण या स्वांग का नाम ही अभिनय है। अभिनय चार प्रकार का होता है—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सार्विक। भगो की चेष्टा से जो अभिनय किया जाता है उसे आंगिक, वचनों से जो किया जाता है उसे वाचिक, भस बनाकर जो किया जाता है उसे आहार्य तथा भावों के उद्रेक से कप, स्वेद आदि द्वारा जो होता है उसे सार्विक कहने हैं।

नाटक में बीज, विदु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँचों के द्वारा प्रयोजन सिद्ध होती है। जो बात मुँह से कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धि का प्रथम कारण हो उसे बीज कहते हैं, जैसे वेणीगह्वार नाटक में भीम के क्रोध पर युधिष्ठिर का उत्साहवाक्य द्रौपदी के केशमोचन का कारण होने के कारण बीज है। कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्य से उसका सबध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिनकी दूसरे वाक्य के साथ असंगति न हो 'विदु' है। बीच में किसी व्यापक प्रसंग के वर्णन को पताका कहते हैं—जैसे उत्तरचरित में सुग्रीव का और अभिज्ञान-शाकुन्तल में विदूषक का चरित्रवर्णन। एक देश व्यापी चरित्रवर्णन को प्रकरी कहते हैं। आरम्भ की हुई क्रिया की फलसिद्धि के लिये जो कुछ किया जाय उसे कार्य कहते हैं, जैसे, रामलीला में रावण वध। किसी एक विषयकी

चर्चा हो रही हो, इसी बीच में कोई दूसरा विषय उपस्थित होकर पहले विषय के मेल में मालूम हो वहाँ पताकास्थान होता है, जैसे, रामचरित में राम सीता से कह रहे हैं—'हे प्रिये' तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं, यदि असह्य है तो केवल तुम्हारा विरह, इसी बीच में प्रतिहारी आकर कहता है 'देव' दुर्गुल उपस्थित। यहाँ 'उपस्थित' शब्द से 'विरह उपस्थित' ऐसी प्रतीत होता है, और एक प्रकार का चमत्कार मालूम होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक सबधों ऐसे ही अनेक कोशलों की उद्भावना की गई है और अनेक प्रकार के विभेद दिलाए गए हैं।

आजकल देगभापात्रों में जो नए नाटक लिखे जाते हैं उनमें संस्कृत नाटकों के सब नियमों का पालन या विषयों का समावेश अनावश्यक समझा जाता है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र लिखते हैं—'संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में उनका अनुसंधान करना या किसी नाटकाग में इनकी यत्नपूर्वक रखकर नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन सद्यः रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा सपादन करने से चलता फन होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है।

भारतवर्ष में नाटकों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र बहुत पुराना है। रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणनि ने 'चिंताली' और 'कृष्णार्ध' नामक दो नटसूत्रकारों के नाम लिए हैं। चिंताली का नाम सुषयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपद सूत्र में मिलता है। विद्वानों ने ज्योतिष की गणना के अनुसार शतपथ ब्राह्मण को ४००० वर्ष से ऊपर का चतसाया है। भूत कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यद्दु राय कि ग्रीस या यूनान में ही सबसे पहले नाटक का प्रादुर्भाव हुआ, ठीक नहीं है। हरिवंश में लिखा है कि जय प्रद्युम्न, साव आदि यादव राजकुमार वज्रनाभ के पुर में गए थे तब वहाँ उन्होंने रामजन्म और रमाभिसार नाटक खेले थे। पहले उन्होंने नेपथ्य ब्राँचा या जिसके भीतर से स्त्रियों ने मुर स्वर से गान किया था। पुर नामक यादव रावण बना था, मनोयती नाम की स्त्री रमा बनी थी, प्रद्युम्न नलक्षर और साव विदूषक बने थे। विस्तृत आदि पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि हिंदुओं ने अपने यहाँ नाटक का प्रादुर्भाव अपने आप किया था। प्राचीन हिंदू राजा बड़ी बड़ी रंगशालाएँ बनवाते थे। मध्यप्रदेश में सरगुजा एक पहाड़ी स्थान है, वहाँ एक गुफा के भीतर इस प्रकार की एक रंगशाला के चित्र पाए गए हैं।

यह ठीक है कि यूनानियों के आने के पूर्व के मस्कृत नाटक आजकल नहीं मिलते हैं, पर इस बात से इनका अभाव, इतने प्रमाणों के रहते, नहीं माना जा सकता। मभव है कलासंपन्न यूनानी जानि से जब हिंदू जाति का मिलन हुआ हो तब जिस प्रकार कुछ और और बातें एक ने दूसरे की ग्रहण की इसी प्रकार नाटक के सबध में कुछ बातें हिंदुओं ने भी

अपने यहाँ ली हो। बाह्यपट्टी का 'जवनिका' (कभी कभी 'यवनिका') नाम देख कुछ लोग यवन ससर्ग सूचित करते हैं। श्रंकों में जो 'दृश्य' संस्कृत नाटको में आए हैं उनसे अनुमान होता है कि इन पट्टी पर चित्र बने रहते थे। अस्तु अधिक से अधिक इस विषय में यही कहा जा सकता है कि अत्यंत प्राचीन काल में जो अभिनय दृष्टा करते थे। उनमें चित्रपट काम में नहीं लाए जाते थे। सिकंदर के आने के पीछे उनका प्रचार हुआ। अब भी रामलीला, रासलीला विना परदो के होती ही हैं।

नाटकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर या स्थान जहाँ नाटक होता है।

नाटका देवदारु—संज्ञा पुं० [हि० नाटक + देवदारु] एक छोटा पेड़ या झाड़ जो भारत के दक्षिण और लका में मिलता है।

विशेष—इसकी लकड़ी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो नावों में लगाया जाता है। इस पेड़ के फल और पत्तियों में पाचन, स्वेद और भवन शक्तियाँ होती हैं। भारतवर्ष में इसकी पत्तियाँ और फल दुग्ध में खाए जाते हैं। नमक और मिर्च के साथ लोग पत्तियों का शाक बनाकर भी खाते हैं।

नाटकावतार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नाटक के अभिनय के बीच दूसरे नाटक का अभिनय। जैसा 'उत्तररामचरित' में एक दूसरे नाटक का अभिनय दिखाया गया है।

विशेष—शेक्सपियर के 'हेमलेट' में भी इसी प्रकार अभिनय होना दिखाया गया है।

नाटकिया—संज्ञा पुं० [सं० नाटक + हि० ईया (प्रत्य०)] १ नाटक में अभिनय करनेवाला। स्वांग करनेवाला। उद्गृह्यया।

नाटकी—संज्ञा पुं० [हि० नाटक] नाटक करनेवाला। नाटक करके जीविका करनेवाला। उ०—कहूँ नृत्यकारी नचि गावै। कहूँ नाटकी स्वांग दिखावै।—सबल (शब्द०)।

नाटकीय—वि० [सं०] १ नाटक संबंधी। नाटक के ढंग का। २ अभिनयपूर्ण। अभिनयात्मक (को०)।

नाटना^१—क्रि० प्र० [सं० नाटय (= बहाना)] किसी ऐसी बात को अस्वीकार कर जाना जिसके लिये वचन दिया हो। प्रतिज्ञा आदि पर स्थिर न रहना। इनकार करना। निक्स जाना।

नाटना^२—क्रि० सं० [हि० नटना] अस्वीकार करना। इनकार करना। उ०—जो कोउ धरी धरोहरि नाटे। अरु पच्छिन के पर जो काटे।—विश्राम (शब्द०)।

नाटवसंत—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग।

नाटा^१—वि० [सं० नत (= नीचा)] [वि० स्त्री० नाटी] जिसका डील ऊँचा न हो। छोटे डील का। छोटे कद का। (प्राणियों के लिये) जैसे, नाटा आदमी, नाटा बैन। उ०—नेपाल आदि उत्तराखंड के देशों में लोग नाटे होते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

नाटा—संज्ञा पुं० [स्त्री० नाटी] छोटे डील का बैन या गाय। उ०—उ०—सिगरोइ दूध पियो मेरे मोहन बलिहि देहु नहि घांटी। सूरदास नंद लेहु दोहनी दुहो लाल की नाटी।—सूर (शब्द०)।

नाटा करज—संज्ञा पुं० [हि० नाटा + करज] एक प्रकार का करज।

नाटार—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनेत्री का पुत्र (को०)।

नाटाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

नाटिक^१—संज्ञा पुं० [सं० नाट] नर्तक। नाचनेवाला। उ०—कहूँ कबीर नट नाटिक थाके, मँदला कोन बजावे। गए पपनियाँ उमरी बाजी को काहूँ के भावै।—कबीर ग्रं० पु० ११७।

नाटिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का दृश्य काव्य।

विशेष—यह एक प्रकार का नाटक ही है जिसमें चार अंक होते हैं। पर इसकी कथा कल्पित होती है। नायिका राजकुलोद्भवा और नवानुरागिणी और नायक धीर ललित होता है। इसमें स्त्री पात्र अधिक होते हैं।

२ एक रागिनी।

विशेष—यह नटनारायण, हम्मौर और गहीरी राग के योग से बनती है और सपूर्ण जाति की मानी जाती है। नारद के मत से यह कर्णाटकी और हनुमत के मत से दीपक की पत्नी है। इसका स्वरग्राम यह है—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा।

नाटिका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नाही] दे० 'नाही'। उ०—नाही पाँच मत्तु तुम साधा। नाही नवो नाटिका राधा।—सं० दरिया, पु० ४६।

नाटित^१—वि० [सं०] जिसका अभिनय किया गया हो। अभिनीत।

नाटित^२—संज्ञा पुं० अभिनय।

नाटितक—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकृति। २ स्वांग। अभिनय (को०)।

नाटिन—संज्ञा स्त्री० [सं० नटिनी] दे० 'नटिनी'। उ०—नई नागरी नारि नाटिन नचावे।—धरनी०, पु० ६।

नाट्येय—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनेत्री या नर्तकी का पुत्र। (को०)।

नाटेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाट्येय' (को०)।

नाटेश्वर—संज्ञा पुं० [हि० नाट + ईश्वर] नटराज। शिव। नाट्याचार्य। उ०—जैसे कोऊ अवंतारी नाटेश्वर रूप धरे, एक बीज ही तें दोइ दालि नाम पाए हैं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पु० ६५१।

नाट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ नटों का काम। नृत्य गीत और वाद्य।

पर्या०—तीर्थत्रिक।

२ स्वांग के द्वारा चरित्रप्रदर्शन। अभिनय।

यौ०—नाट्यमंदिर। नाट्यकार। नाट्यशाला। नाट्यरासक। नाट्यशास्त्र।

३. नकल। स्वांग। चेष्टा के द्वारा प्रदर्शन।

क्रि० प्र०—करना।

४ वह नक्षत्र जिनमें नाट्य का प्रारंभ किया जाता है।

विशेष—मनुराधा, घनिष्ठा, पुष्य, हस्त चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा,

शतभिषा और रेवती इन नक्षत्रों में नाटक आरंभ करना चाहिए ।

५. अभिनेता का परिधान या वेशभूषा (को०) । ६ अभिनेता (को०) ।

नाट्यकार—सङ्घ पु० [सं०] नाटक करनेवाला । नट ।

नाट्यधर—वि० [सं०] अभिनेता का वेश धारण करनेवाला (को०) ।

नाट्यधर्मिका—सङ्घ स्त्री० [सं०] अभिनय के नियम या विधान (को०) ।

नाट्यधर्मी—सङ्घ स्त्री० [सं०] दे० 'नाट्यधर्मिका' (को०) ।

नाट्यप्रिय—सङ्घ पु० [सं०] महादेव (जिन्हें नाचना प्रिय है) ।

नाट्यमन्दिर—सङ्घ पु० [सं० नाट्यमन्दिर] नाट्यशाला ।

नाट्यरासक—सङ्घ पु० [सं०] एक प्रकार का उपरूपक । दृश्य काव्य ।

विशेष—इसमें केवल एक ही अक्ष होता है । नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, उपनायक पीठमदं होते हैं । इसमें अनेक प्रकार के गान और नृत्य होते हैं ।

नाट्यवेद—सङ्घ पु० [सं०] अभिनयसंबन्धी शास्त्र । नाट्यशास्त्र । (को०) ।

नाट्यवेदी—सङ्घ स्त्री० [सं०] १ रगमच । २ दृश्य (को०) ।

नाट्यशाला—सङ्घ स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँपर अभिनय किया जाय । नाटकघर ।

नाट्यशास्त्र—सङ्घ पु० [सं०] १ नृत्य, गीत और अभिनय की विद्या ।

२. एक प्राचीन ग्रन्थ जिसकी रचना भरत मुनि ने की थी ।

विशेष—इसका उपदेश आदि में शिव जी ने ब्रह्मा जी को किया था । ब्रह्मा जी ने इंद्र की प्रार्थना पर अनिरुद्धावतार ग्रहण करके नाट्यवेद नामक उपवेद की रचना की । इसी को गवर्णवेद भी कहते हैं । इसमें नृत्य-वाद्य गीतादि की शिक्षा थी । ब्रह्मा जी से भरत मुनि ने यह उपवेद पाकर ससार में इसका प्रचार किया ।

नाट्याग—सङ्घ पु० [सं० नाट्याङ्ग] नाट्य के दस अंग जिसके अतर्गत गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुरुषगडिका, प्रच्छेदक, त्रिगुणक, संधव, द्विगुणक, उत्तमोत्तमक, उक्तप्रयुक्त का समावेश है (को०) ।

नाट्यागार—सङ्घ पु० [सं०] दे० 'नाट्यशाला' (को०) ।

नाट्याचार्य—सङ्घ पु० [सं०] नाट्यकला विशारद । अभिनय का निर्देशक । अभिनय की शिक्षा देनेवाला ।

नाट्यालंकार—सङ्घ पु० [सं० नाट्यालङ्कार] वह विशेष अलंकार जिसके आने से नाटक का सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है ।

विशेष—साहित्यदर्पण में ऐसे अलंकारों की संख्या तैंतीस मानी गई है—आशीर्वाद, आक्रन्द, कपट, अलसा, गर्व, उद्यम, आश्रय, उत्प्रासन, स्पृहा, क्षोभ, पश्चात्ताप, उपपत्ति, आश्रय, मध्यवसाय, विसर्प, उल्लेख, उत्तेजन, परीवाद, नीति, अर्थविशेषण, प्रोत्साहन, साहाय्य, अभिमान, अनुवर्तन, उत्कीर्तन, यांचा, परिहार, निवेदन, प्रवर्तन, आख्यान, युक्ति, प्रहर्ष और शिक्षा (उपदेशन) ।

नाट्यालय—सङ्घ पु० [सं०] दे० 'नाट्यशाला' । उ०—राजकुमा-

रियों के महलों के नाट्यालयों में ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८ ।

नाट्यालापु—सङ्घ पु० [सं०] एक जाति की लोकी (को०) ।

नाट्योक्ति—सङ्घ स्त्री० [सं०] १ वे विशेष विशेष संबोधन शब्द जो विशेष विशेष व्यक्तियों के लिये नाटकों में आते हैं । जैसे,—ब्राह्मण के लिये आय, क्षत्रिय के लिये महाराज, पति के लिये आर्यपुत्र, राजा के सारे के लिये राष्ट्रीय, राजा के लिये देव, वेश्या के लिये अञ्जका, कुमार के लिये युवराज, विद्वान् के लिये भाव । २ नाट्यसंबन्धी उक्ति । जैसे,—स्वगत, प्रकाश, अपवरहित, जनातिक (को०) ।

नाठ^१—सङ्घ पु० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ट] १ नाश । ध्वंस । २ अभाव । अस्तित्व । ३ वह जायदाद जिसका कोई वारिस न हो ।

मुहा०—नाठ पर बैठना = किसी लावारिस माल का अधिकारी होना ।

नाठना^१—सङ्घ पु० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ट] नष्ट करना । ध्वस्त करना । उ०—मुनि अति विकल मोह मति नाठी । मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाठना^२—सङ्घ पु० [सं० नष्ट] नष्ट होना । ध्वस्त होना ।

नाठना^३—सङ्घ पु० [हि० नाटना] भागना । हटना । उ०—(क) कोटि पापी इक पासग मेरे अञ्जामिल कीन वेचारी । नाठयो धम नाम मुनि मेरो नरक दियो हठि तारो ।—सूर (शब्द०) । (ख) राम से साम किए नित है हित, कोमल काज न कोजिए टाँटे । आपनि सूझि कहीं पिय बूझिए बूझिबे जोग न ठाहर नाठे ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाठा—सङ्घ पु० [सं० नष्ट] वह जिसके आगे पीछे कोई वारिस न हो ।

नाड^१—सङ्घ स्त्री० [सं० नाल, नाड] ग्रीवा । गर्दन । दे० 'नार' ।

नाड^२—सङ्घ स्त्री० [सं० नाड] मोटी डोरी या रस्सी । पगहा । उ०—लाता मारियो पिच्छाड । गल मे घाल धोस्यो नाड ।—राम० घर्म०, पृ० १६७ ।

नाडा—सङ्घ पु० [सं० नाड] १. सूत की वह मोटी डोरी जिससे स्थियाँ बाँधरा या धोती बाँधती हैं । हज़ारबद । नावी ।

मुहा०—(किसी का) नाडा खोलना = सभोग करने के लिये नीची खोलना । सभोग करना (मारवाड स्त्रि०) । नाडा छूट करना = पेशाब करना (मारवाड स्त्रि०) ।

२ लाल या पीला रंगा हुआ गडेदार सूत जो देवताओं को चढ़ाया जाता है । कलाया । कलावा ।

नाडिधम^१—वि० [सं० नाडिधम] १ नली को फूँकनेवाला । २ नाडियों को हिलानेवाला । ३ श्वास को जल्दी जल्दी चलानेवाला । हँसानेवाला । ४ जिसे देखते ही नाडी हिल जाय । दहलानेवाला । भयकर ।

नाडिधम^२—सङ्घ पु० सोनार ।

नाडिधय—वि० [सं० नाडिधय] नालिका द्वारा पीने या चुसनेवाला (को०) ।

नाडि—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडि] १ नाडी । २ नली (को०) ।

नाडिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का साग जिसे पटुषा भी कहते हैं । २ नाडी । ३ घटिका । दंड ।

नाडिका—पञ्चा स्त्री० [सं० नाडिका] १ घडो का कान । घडी । २ नली (को०) । ३. किसी वनरात का तने या विस्तार का वह भाग जो भीतर पोला होता है । पोला डठल (को०) । ४. नासूर (को०) । ५. सुर्गकिरण (को०) । ६. घडियाल जिसे बजाकर घडी बीतने की सूचना दी जाती है (को०) । ७. आधे दंड का कालमान (को०) ।

नाडिकेल—पञ्चा पुं० [सं० नाडिकेल] दे० 'नारियल' ।

नाडिपत्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडिपत्र] एक शाक (को०) ।

नाडिया—संज्ञा पुं० [सं० नाडी] (नाडी पकड़नेवाला) वैद्य । चिकित्सक ।

नाडी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडी] १ नली । २ साधारणतः शरीर के भीतर की वे नलियाँ जिनमें होकर रक्त बहता है, विशेषतः वे जिनमें हृदय से शुद्ध रक्त क्षण क्षण पर जाता रहता है । धमनी ।

विशेष—वे नलियाँ, जिनसे शरीर भर में रक्त का प्रवाह होता है, दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो शुद्ध रक्त को हृदय से लेकर और सब भागों को पहुँचाती हैं, दूसरी वे जो सब भागों से अशुद्ध रक्त का इकट्ठा करके उसको हृदय में प्राणवायु के द्वारा शुद्ध होने के लिये छोटा कर ले जाती हैं । पहले प्रकार की नलियाँ ही विशेषतः नाडियाँ कहलाती हैं । क्योंकि स्पंदन अधिकतर उन्हीं में होता है । अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचानेवाली नलियों या शिराओं में प्रायः स्पंदन नहीं होता । अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के द्वारा अशुद्ध रक्त हृदय के दाहिने कोठे में पहुँचता है, वहाँ से फिर वह फुफ्फुस में जाता है, फुफ्फुस में वह शुद्ध होता है । शुद्ध रक्त पर वह फिर हृदय के बाएँ कोठे में पहुँचता है । हृदय का क्षण क्षण पर आकुचन और प्रसारण होता रहता है—वह बराबर सिकुड़ता और फैलता रहता है । हृदय जिस क्षण सिकुड़ता है उसमें भरा हुआ रक्त बृद्धि, जो कि सुले मुँह में क्षिप्त होता है और फिर वही नाडी से उसकी शाखा प्रशाखाओं में पहुँचता है । सबसे पक्की नाडियाँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना नहीं देखी जा सकती । नाडियाँ अधिकतर मांस और पीले तंतुओं की बनी हुई होती हैं । अतः इनमें लचीलापन होता है—ये खींचने से बढ़ जाती हैं । अधिक भर जाने पर भी भीतर से जोर पड़ने पर ये फैलकर चौड़ी हो जाती हैं और जोर हटने पर फिर ज्यों की त्यों हो जाती हैं । हृदय का बायाँ कोठा सिकुड़कर बड़े वेग के साथ १३ छंटाक रक्त बड़ी नाडी में ढकेलता है । नाडियों में तो हर समय रक्त भरा रहता है, अतः जब बड़ी नाडी में यह डेढ़ छंटाक रक्त पहुँचता है तब हृदय के समीप का भाग बढ़कर फैल जाता है । फिर जब रक्त का दूसरा झोका हृदय से आता है तब उसके बाएँ का भाग फैलता है । इसी

आकुचन प्रसारण के कारण नाडियों में स्पंदन या गति होती है । यह स्पंदन बड़ी नाडियों में ही मालूम होता है, छोटी छोटी नलियों में नहीं, क्योंकि अत्यंत सूक्ष्म नाडियों में पहुँचते पहुँचते लहरों का वेग बहुत कम हो जाता है—और फिर जब शिराओं में यही रक्त अशुद्ध होकर पसलता है तब लहर रह ही नहीं जाती । जब कोई नाड़ी कट जाती है तब उसमें से रक्त उछल उछलकर निकलता है, जब कोई अशुद्ध रक्तवाहिनी शिरा कटती है तब उसमें से रक्त धीरे धीरे निकलता है । नाडियों के भीतर का रक्त लाल होता है पर अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के भीतर का रक्त कालापन लिए होता है ।

नाडियों का स्पंदन या फटक इन स्थानों में उँगली दबाने से मालूम हो सकती है—कनपटी में, ग्रीवा में के टेंड्र के दबाने और घाँव, उरस्थि के बीच, पैर के अंगुठे की ओर के गट्टे के नीचे, शिरा के ऊपर की तरफ, कलाई में और बाहु में (बगल की ओरवाले किनारे में) ।

नाडी एक मिनट में उतनी ही बार फटकती है जितनी बार हृदय धड़कता है । नाडीपरीक्षा से हृदय और रक्तप्रमाण की दशा का ज्ञान होता है, उससे नाडियों और हृदय के तथा और भी कई अंगों के रोगों का पता लग जाता है ।

आयुर्वेद के ग्रंथों में रक्तवाहिनी नलियों के स्पष्ट और ठीक विभाग नहीं किए गए हैं । सुश्रुत ने ७०० शिराएँ लिखी हैं जिनमें ४० मुख्य हैं—१० रक्तवाहिनी, १० कफवाहिनी, १० पित्तवाहिनी और १० वायुवाहिनी । इसके अतिरिक्त शुद्ध और अशुद्ध रक्त के विचार से कोई विभाग नहीं किया गया है । २४ धमनियों के जो ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी और तिर्यग्गामिनी ये तीन विभाग किए गए हैं, उनमें भी उपयुक्त विभाग नहीं हैं । सुश्रुत ने शिराओं और धमनियों का मूल स्थान नाभि बतलाया है । आधुनिक प्रत्यक्ष शारीरिक की दृष्टि से कुछ लोगो ने शुद्ध रक्तवाहिनी नाडियों का 'धमनी' नाम रख दिया है । यह नाम सुश्रुत आदि के अनुकूल न होने पर भी उपयुक्त है क्योंकि धात्विक का यदि विचार किया जाय तो 'धम' कहते हैं 'धोक्ने' या 'फूँक्ने' को । जिस प्रकार धोक्नी फूलती और पचकनी है उसी प्रकार शुद्ध रक्तवाहिनी नाडियाँ भी । दे० 'शिरा', 'धमनी' ।

नाडीपरीक्षा का विषय भी सुश्रुत में नहीं मिलता है, श्वर के ही ग्रंथों में मिलता है । आप्य ग्रंथों में न होने पर भी पीछे आयुर्वेद में नाडीपरीक्षा को बड़ी प्रवृत्ति दी गई, यहाँ तक कि 'नाडीप्रकाश' नाम का स्वतंत्र ग्रंथ ही इस विषय पर लिखा गया ।

मुद्रा—नाडी चलना कलाई की नाडी में स्पंदन या गति होना ।

विशेष—नाडी का उछलना प्राण रहने का चिह्न समझा जाता है और उसके अनुपार रोगी की दशा का भी पता लगाया जाता है ।

नाडी घूट जाना = (१) नाडी का न चलना । दबाकर छूने

से नाड़ी में गति न मान्य होना । (२) प्राण न रह जाना । मृत्यु हो जाना । (३) सज्ञा न रहना । मूर्छा आना । बेहोशी आना । नाड़ी देखना = कसाई की नाड़ी देनाकर रोगी की अवस्था का पता लगाना । नाड़ीपरीक्षा करके रोगी का निदान करना । नाड़ी धरना या पकड़ना = दे० 'नाड़ी देखना' । नाड़ी दिखना या धराना = रोग के निदान के लिये वैद्य से नाड़ीपरीक्षा कराना । नब्ज दिखाना । नाड़ी न बोलना = (१) नाड़ी न चलना । गति में गति न मान्य होना । (२) प्राण न रहना । (३) मूर्छा आना । बेहोशी आना ।

३ हठयोग के अनुगार ज्ञानाहिनी, शक्तिवाहिनी और श्वास-प्रश्वास-वाहिनी नलियाँ ।

विशेष—योगियों का कहना है कि मेरुदंड या रीढ़ के एक इस तरफ और एक उस तरफ ऐसी दो नलियाँ हैं । इनमें जो बाईं ओर है उसे इना या इडा और जो दाहिनी ओर है उसे पिण्डला कहते हैं । इन दोनों के बीच में सुषुम्ना नाम की नाड़ी है । स्वरोदय तथा तथ के अनुसार वाएँ नयुने से जो साँस आती जाती है वह इडा नाड़ी से होकर और दाहिने नयुने से जो निकलती है वह पिण्डला से होकर । यदि श्वास कुछ क्षण वाएँ और कुछ क्षण दाहिने नयुने से निकले तो समझना चाहिए कि वह सुषुम्ना नाड़ी से आ रहा है । श्वास की गति के अनुसार स्वरोदय में शुभाशुभ फल भी कहे गए हैं । इडा नाड़ी में चन्द्र की अवस्थिति रहती है और पिण्डला में सूर्य की । अतः इडा का गुण शीत और पिण्डला का उष्ण है । सुषुम्ना नाड़ी त्रिगुणमयी और चद्रसूर्याग्नि स्वरूपा है । यह नाड़ी ब्रह्मस्वरूपा है, इसी में जगत् प्रतिष्ठित है । बिना इन नाड़ियों के ज्ञान के योगाभ्यास में सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती । जो योगाभ्यास करना चाहते हैं वे पहले इडा, फिर पिण्डला और फिर सुषुम्ना को लेकर चलते हैं । सुषुम्ना के सबसे नीचे के भाग को योगी कुडलिनी मानते हैं जिसे जगान का यत्न वे करते हैं । सच पुष्टि तो उसी को जगाने के लिये ही योग का अभ्यास किया जाता है । जाग्रत होनेपर कुडलिनी चंचल होकर सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भीतर सिर की ओर चढ़न लगती है और बारह चक्रों को पार करती हुई ब्रह्मरंध्र तक चली जाती है । जैसे जैसे वह ऊपर ही ओर चढ़ती जाती है, योगी के सांसारिक ग्रहण होने पड़ते जाते हैं और भौतिक शक्तियाँ उसे प्राप्त होती जाती हैं, यहाँ तक कि मन और शरीर से उसका सन्ध छूत जाता है और वह परमानन्द में मग्न होकर परमात्मा का शुद्ध रूप देखने लगता है ।

निश्चर तथ म दस नाडियों त्रिन्त्री हैं जिनमें ऊपर लिखी तीन मुख्य हैं । धेरडसहिता आदि योग के ग्रंथों को देखने से पता लगता है कि अंतर्डियाँ भी नाड़ियों के अंतर्गत मानी गई हैं । प्रक्षालन क्रिया में शक्तिवाहिनी नाड़ी को निकालकर उसके भीतर के मूल को घोंके का विधान है ।

यो०—नाड़ीग्रन्थ ।

४. ग्रन्थरघ । नासूर का उदर ।

५. तद्वरु की नली । ६. काल का एक मान जो छह रात्र का होता है । ७. गन्धर्व । ८. यथागती । ९. किसी वृत्त का पोला उठना । १०. छत्र । ११. मयकारी । १२. वर वधु की गणना बैठने में करिष्य चक्रों में स्थित नक्षत्रमनुद्ध । दे० 'नक्षत्रांग' । १३. मुग्धान । १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००. १०१. १०२. १०३. १०४. १०५. १०६. १०७. १०८. १०९. ११०. १११. ११२. ११३. ११४. ११५. ११६. ११७. ११८. ११९. १२०. १२१. १२२. १२३. १२४. १२५. १२६. १२७. १२८. १२९. १३०. १३१. १३२. १३३. १३४. १३५. १३६. १३७. १३८. १३९. १४०. १४१. १४२. १४३. १४४. १४५. १४६. १४७. १४८. १४९. १५०. १५१. १५२. १५३. १५४. १५५. १५६. १५७. १५८. १५९. १६०. १६१. १६२. १६३. १६४. १६५. १६६. १६७. १६८. १६९. १७०. १७१. १७२. १७३. १७४. १७५. १७६. १७७. १७८. १७९. १८०. १८१. १८२. १८३. १८४. १८५. १८६. १८७. १८८. १८९. १९०. १९१. १९२. १९३. १९४. १९५. १९६. १९७. १९८. १९९. २००. २०१. २०२. २०३. २०४. २०५. २०६. २०७. २०८. २०९. २१०. २११. २१२. २१३. २१४. २१५. २१६. २१७. २१८. २१९. २२०. २२१. २२२. २२३. २२४. २२५. २२६. २२७. २२८. २२९. २३०. २३१. २३२. २३३. २३४. २३५. २३६. २३७. २३८. २३९. २४०. २४१. २४२. २४३. २४४. २४५. २४६. २४७. २४८. २४९. २५०. २५१. २५२. २५३. २५४. २५५. २५६. २५७. २५८. २५९. २६०. २६१. २६२. २६३. २६४. २६५. २६६. २६७. २६८. २६९. २७०. २७१. २७२. २७३. २७४. २७५. २७६. २७७. २७८. २७९. २८०. २८१. २८२. २८३. २८४. २८५. २८६. २८७. २८८. २८९. २९०. २९१. २९२. २९३. २९४. २९५. २९६. २९७. २९८. २९९. ३००. ३०१. ३०२. ३०३. ३०४. ३०५. ३०६. ३०७. ३०८. ३०९. ३१०. ३११. ३१२. ३१३. ३१४. ३१५. ३१६. ३१७. ३१८. ३१९. ३२०. ३२१. ३२२. ३२३. ३२४. ३२५. ३२६. ३२७. ३२८. ३२९. ३३०. ३३१. ३३२. ३३३. ३३४. ३३५. ३३६. ३३७. ३३८. ३३९. ३४०. ३४१. ३४२. ३४३. ३४४. ३४५. ३४६. ३४७. ३४८. ३४९. ३५०. ३५१. ३५२. ३५३. ३५४. ३५५. ३५६. ३५७. ३५८. ३५९. ३६०. ३६१. ३६२. ३६३. ३६४. ३६५. ३६६. ३६७. ३६८. ३६९. ३७०. ३७१. ३७२. ३७३. ३७४. ३७५. ३७६. ३७७. ३७८. ३७९. ३८०. ३८१. ३८२. ३८३. ३८४. ३८५. ३८६. ३८७. ३८८. ३८९. ३९०. ३९१. ३९२. ३९३. ३९४. ३९५. ३९६. ३९७. ३९८. ३९९. ४००. ४०१. ४०२. ४०३. ४०४. ४०५. ४०६. ४०७. ४०८. ४०९. ४१०. ४११. ४१२. ४१३. ४१४. ४१५. ४१६. ४१७. ४१८. ४१९. ४२०. ४२१. ४२२. ४२३. ४२४. ४२५. ४२६. ४२७. ४२८. ४२९. ४३०. ४३१. ४३२. ४३३. ४३४. ४३५. ४३६. ४३७. ४३८. ४३९. ४४०. ४४१. ४४२. ४४३. ४४४. ४४५. ४४६. ४४७. ४४८. ४४९. ४५०. ४५१. ४५२. ४५३. ४५४. ४५५. ४५६. ४५७. ४५८. ४५९. ४६०. ४६१. ४६२. ४६३. ४६४. ४६५. ४६६. ४६७. ४६८. ४६९. ४७०. ४७१. ४७२. ४७३. ४७४. ४७५. ४७६. ४७७. ४७८. ४७९. ४८०. ४८१. ४८२. ४८३. ४८४. ४८५. ४८६. ४८७. ४८८. ४८९. ४९०. ४९१. ४९२. ४९३. ४९४. ४९५. ४९६. ४९७. ४९८. ४९९. ५००. ५०१. ५०२. ५०३. ५०४. ५०५. ५०६. ५०७. ५०८. ५०९. ५१०. ५११. ५१२. ५१३. ५१४. ५१५. ५१६. ५१७. ५१८. ५१९. ५२०. ५२१. ५२२. ५२३. ५२४. ५२५. ५२६. ५२७. ५२८. ५२९. ५३०. ५३१. ५३२. ५३३. ५३४. ५३५. ५३६. ५३७. ५३८. ५३९. ५४०. ५४१. ५४२. ५४३. ५४४. ५४५. ५४६. ५४७. ५४८. ५४९. ५५०. ५५१. ५५२. ५५३. ५५४. ५५५. ५५६. ५५७. ५५८. ५५९. ५६०. ५६१. ५६२. ५६३. ५६४. ५६५. ५६६. ५६७. ५६८. ५६९. ५७०. ५७१. ५७२. ५७३. ५७४. ५७५. ५७६. ५७७. ५७८. ५७९. ५८०. ५८१. ५८२. ५८३. ५८४. ५८५. ५८६. ५८७. ५८८. ५८९. ५९०. ५९१. ५९२. ५९३. ५९४. ५९५. ५९६. ५९७. ५९८. ५९९. ६००. ६०१. ६०२. ६०३. ६०४. ६०५. ६०६. ६०७. ६०८. ६०९. ६१०. ६११. ६१२. ६१३. ६१४. ६१५. ६१६. ६१७. ६१८. ६१९. ६२०. ६२१. ६२२. ६२३. ६२४. ६२५. ६२६. ६२७. ६२८. ६२९. ६३०. ६३१. ६३२. ६३३. ६३४. ६३५. ६३६. ६३७. ६३८. ६३९. ६४०. ६४१. ६४२. ६४३. ६४४. ६४५. ६४६. ६४७. ६४८. ६४९. ६५०. ६५१. ६५२. ६५३. ६५४. ६५५. ६५६. ६५७. ६५८. ६५९. ६६०. ६६१. ६६२. ६६३. ६६४. ६६५. ६६६. ६६७. ६६८. ६६९. ६७०. ६७१. ६७२. ६७३. ६७४. ६७५. ६७६. ६७७. ६७८. ६७९. ६८०. ६८१. ६८२. ६८३. ६८४. ६८५. ६८६. ६८७. ६८८. ६८९. ६९०. ६९१. ६९२. ६९३. ६९४. ६९५. ६९६. ६९७. ६९८. ६९९. ७००. ७०१. ७०२. ७०३. ७०४. ७०५. ७०६. ७०७. ७०८. ७०९. ७१०. ७११. ७१२. ७१३. ७१४. ७१५. ७१६. ७१७. ७१८. ७१९. ७२०. ७२१. ७२२. ७२३. ७२४. ७२५. ७२६. ७२७. ७२८. ७२९. ७३०. ७३१. ७३२. ७३३. ७३४. ७३५. ७३६. ७३७. ७३८. ७३९. ७४०. ७४१. ७४२. ७४३. ७४४. ७४५. ७४६. ७४७. ७४८. ७४९. ७५०. ७५१. ७५२. ७५३. ७५४. ७५५. ७५६. ७५७. ७५८. ७५९. ७६०. ७६१. ७६२. ७६३. ७६४. ७६५. ७६६. ७६७. ७६८. ७६९. ७७०. ७७१. ७७२. ७७३. ७७४. ७७५. ७७६. ७७७. ७७८. ७७९. ७८०. ७८१. ७८२. ७८३. ७८४. ७८५. ७८६. ७८७. ७८८. ७८९. ७९०. ७९१. ७९२. ७९३. ७९४. ७९५. ७९६. ७९७. ७९८. ७९९. ८००. ८०१. ८०२. ८०३. ८०४. ८०५. ८०६. ८०७. ८०८. ८०९. ८१०. ८११. ८१२. ८१३. ८१४. ८१५. ८१६. ८१७. ८१८. ८१९. ८२०. ८२१. ८२२. ८२३. ८२४. ८२५. ८२६. ८२७. ८२८. ८२९. ८३०. ८३१. ८३२. ८३३. ८३४. ८३५. ८३६. ८३७. ८३८. ८३९. ८४०. ८४१. ८४२. ८४३. ८४४. ८४५. ८४६. ८४७. ८४८. ८४९. ८५०. ८५१. ८५२. ८५३. ८५४. ८५५. ८५६. ८५७. ८५८. ८५९. ८६०. ८६१. ८६२. ८६३. ८६४. ८६५. ८६६. ८६७. ८६८. ८६९. ८७०. ८७१. ८७२. ८७३. ८७४. ८७५. ८७६. ८७७. ८७८. ८७९. ८८०. ८८१. ८८२. ८८३. ८८४. ८८५. ८८६. ८८७. ८८८. ८८९. ८९०. ८९१. ८९२. ८९३. ८९४. ८९५. ८९६. ८९७. ८९८. ८९९. ९००. ९०१. ९०२. ९०३. ९०४. ९०५. ९०६. ९०७. ९०८. ९०९. ९१०. ९११. ९१२. ९१३. ९१४. ९१५. ९१६. ९१७. ९१८. ९१९. ९२०. ९२१. ९२२. ९२३. ९२४. ९२५. ९२६. ९२७. ९२८. ९२९. ९३०. ९३१. ९३२. ९३३. ९३४. ९३५. ९३६. ९३७. ९३८. ९३९. ९४०. ९४१. ९४२. ९४३. ९४४. ९४५. ९४६. ९४७. ९४८. ९४९. ९५०. ९५१. ९५२. ९५३. ९५४. ९५५. ९५६. ९५७. ९५८. ९५९. ९६०. ९६१. ९६२. ९६३. ९६४. ९६५. ९६६. ९६७. ९६८. ९६९. ९७०. ९७१. ९७२. ९७३. ९७४. ९७५. ९७६. ९७७. ९७८. ९७९. ९८०. ९८१. ९८२. ९८३. ९८४. ९८५. ९८६. ९८७. ९८८. ९८९. ९९०. ९९१. ९९२. ९९३. ९९४. ९९५. ९९६. ९९७. ९९८. ९९९. १०००. १००१. १००२. १००३. १००४. १००५. १००६. १००७. १००८. १००९. १०१०. १०११. १०१२. १०१३. १०१४. १०१५. १०१६. १०१७. १०१८. १०१९. १०२०. १०२१. १०२२. १०२३. १०२४. १०२५. १०२६. १०२७. १०२८. १०२९. १०३०. १०३१. १०३२. १०३३. १०३४. १०३५. १०३६. १०३७. १०३८. १०३९. १०४०. १०४१. १०४२. १०४३. १०४४. १०४५. १०४६. १०४७. १०४८. १०४९. १०५०. १०५१. १०५२. १०५३. १०५४. १०५५. १०५६. १०५७. १०५८. १०५९. १०६०. १०६१. १०६२. १०६३. १०६४. १०६५. १०६६. १०६७. १०६८. १०६९. १०७०. १०७१. १०७२. १०७३. १०७४. १०७५. १०७६. १०७७. १०७८. १०७९. १०८०. १०८१. १०८२. १०८३. १०८४. १०८५. १०८६. १०८७. १०८८. १०८९. १०९०. १०९१. १०९२. १०९३. १०९४. १०९५. १०९६. १०९७. १०९८. १०९९. ११००. ११०१. ११०२. ११०३. ११०४. ११०५. ११०६. ११०७. ११०८. ११०९. १११०. ११११. १११२. १११३. १११४. १११५. १११६. १११७. १११८. १११९. ११२०. ११२१. ११२२. ११२३. ११२४. ११२५. ११२६. ११२७. ११२८. ११२९. ११३०. ११३१. ११३२. ११३३. ११३४. ११३५. ११३६. ११३७. ११३८. ११३९. ११४०. ११४१. ११४२. ११४३. ११४४. ११४५. ११४६. ११४७. ११४८. ११४९. ११५०. ११५१. ११५२. ११५३. ११५४. ११५५. ११५६. ११५७. ११५८. ११५९. ११६०. ११६१. ११६२. ११६३. ११६४. ११६५. ११६६. ११६७. ११६८. ११६९. ११७०. ११७१. ११७२. ११७३. ११७४. ११७५. ११७६. ११७७. ११७८. ११७९. ११८०. ११८१. ११८२. ११८३. ११८४. ११८५. ११८६. ११८७. ११८८. ११८९. ११९०. ११९१. ११९२. ११९३. ११९४. ११९५. ११९६. ११९७. ११९८. ११९९. १२००. १२०१. १२०२. १२०३. १२०४. १२०५. १२०६. १२०७. १२०८. १२०९. १२१०. १२११. १२१२. १२१३. १२१४. १२१५. १२१६. १२१७. १२१८. १२१९. १२२०. १२२१. १२२२. १२२३. १२२४. १२२५. १२२६. १२२७. १२२८. १२२९. १२३०. १२३१. १२३२. १२३३. १२३४. १२३५. १२३६. १२३७. १२३८. १२३९. १२४०. १२४१. १२४२. १२४३. १२४४. १२४५. १२४६. १२४७. १२४८. १२४९. १२५०. १२५१. १२५२. १२५३. १२५४. १२५५. १२५६. १२५७. १२५८. १२५९. १२६०. १२६१. १२६२. १२६३. १२६४. १२६५. १२६६. १२६७. १२६८. १२६९. १२७०. १२७१. १२७२. १२७३. १२७४. १२७५. १२७६. १२७७. १२७८. १२७९. १२८०. १२८१. १२८२. १२८३. १२८४. १२८५. १२८६. १२८७. १२८८. १२८९. १२९०. १२९१. १२९२. १२९३. १२९४. १२९५. १२९६. १२९७. १२९८. १२९९. १३००. १३०१. १३०२. १३०३. १३०४. १३०५. १३०६. १३०७. १३०८. १३०९. १३१०. १३११. १३१२. १३१३. १३१४. १३१५. १३१६. १३१७. १३१८.

नाड़ीपात्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीपात्र] एक प्रकार की जलपट्टी [को०] ।
नाड़ीमंडल—संज्ञा पुं० [सं० नाडीमण्डल] विपुल रेखा । मरुकाशीय
पातिवृत्त ।

नाड़ीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीयंत्र] सुश्रुत के अनुसार पक्ष-
चिकित्सा या चौरकाङ्क का एक यंत्र जो शरीर की नाडियों
या रीतों में घुसी हुई चीज को बाहर निकालने के काम में
आता था ।

नाड़ीवल्लय—संज्ञा पुं० [सं० नाडीवल्लय] काल या समय निश्चित
करने का एक यंत्र । एक प्रकार की घड़ी । (सिद्धांतशिरों-
मणि) ।

नाड़ीविग्रह—संज्ञा पुं० [सं० नाडीविग्रह] शिव का गण भृंगी जो
मत्स्या कृष्णकाय था । नाडीदेह [को०] ।

नाड़ीवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० नाडीवृत्त] १ क्रांतिवृत्त । २ एक प्राचीन
समयमुचक यंत्र [को०] ।

नाड़ीत्रण—संज्ञा पुं० [सं० नाडीत्रण] वह पाव जिसमें भीतर ही
भीतर नली की तरह छेद हो जाय और उसमें से बराबर
मवाद निकला करे । नासूर ।

नाड़ीशाक—संज्ञा पुं० [सं० नाडीशाक] पटुमा शाक ।

नाड़ीसरथान—संज्ञा पुं० [सं० नाडीसरथान] नाडीजाल [को०] ।

नाड़ीस्नेह—संज्ञा पुं० [सं० नाडीस्नेह] २० 'नाडीदेह' [को०] ।

नाड़ीस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० नाडीस्वेद] नलिका द्वारा संपादित वाष्प-
स्नान [को०] ।

नाड़ीहिगु—संज्ञा पुं० [सं० नाडीहिगु] १ एक वृक्ष जिसमें से एक
प्रकार की हींग या गोद निकलता है ।

विशेष—यह गोद मोपध के काम में आता है । इस वृक्ष के पत्ते
पटमोगरा के पत्तों जैसे होते हैं, गूल सफेद और फल पोस्ते
के डेढ़ के समान होते हैं ।

२ उस वृक्ष से निकली हींग या गोद ।

विशेष—वेद्यक में यह हींग चरपरी, तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक,
तथा रुफ, पात और मोह को दूर करनेवाली मानी गई है ।

पर्याय—पलाशारण । जवुल । रामठी । चणपत्रो । पिटाट्टा ।
सुवीर्या । वेणुपत्रो । पिशा । हिगु । शिवादिवा । हिगुनादिका ।

नाट्टाना—संज्ञा पुं० [सं०] बैलों की एक जाति जो मेसूर में
होगी है ।

विशेष—एक जाति के बैल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती
और मजबूत अधिक होते हैं ।

नाटक—संज्ञा पुं० [सं० नाटक] १ पात्र । २ निरुक्त । २ पद्धति
मुद्रा । विराम ।

नाणक—संज्ञा पुं० [सं०] नािका । प्राचीन भारत का सिक्का [को०] ।

गौं—नाणकरीशा = निरुक्ते के गोटे परे होने की भाँति ।
नाणकरीशी = निरुक्ते की परत ठरगयाला व्यक्ति ।

नाणकपुं—संज्ञा पुं० [सं० नाणक] १ एका पैसा । धन दोनव ।

उ०—वरहूर समरतां जहूँ रोते नाणो, सबसूँ चिका न
लेवे ।—रघु० २०, पु० २७ । २ गरीब । सुदरा । छोटे
सिक्के जिन्हें बड़े सिक्कों को बुनाया जाता है ।

नाता—संज्ञा पुं० [सं० नाति, प्रा० नाति] १ नातेदार । सवधी ।
उ०—जब राजा भा । तहि पाही । बिना मुनाए ताते न
जाही ।—रघुराज (शब्द०) २ नाता । मर्यादा । उ०—
यह विचार नहीं करहुँ दृढ कृष्ट सत्पुत्राद । नाति मानुं नर
नात बलि सुरति विचारि आने जाद ।—तुलसी (शब्द०) ।

नातर—संज्ञा पुं० [हि० नातर] १० 'नातक' । उ०—आहु
विष्णु कहा सुन मोरा । नातर चहुँ दी । होय तोरा ।—
कबीर सा०, पु० १७ ।

नातरा—संज्ञा पुं० [हि० नात + रा (प्रत्यय०)] १. १० 'नात' ।
२ विवाह सम्य । ३. विधवा का साय विवाह । उ०—रीखी
राजानूँ कहइ, सो म्हाँ नातरउ कोष ।—दोसा०, दू० ३ ।

नातरु—संज्ञा पुं० [हि० ना + तो + रु] और नहीं ता । प्रत्यया ।
उ०—(क) भली मई जो गुरु मिले नातरु होती हानि ।
दीपक ज्योति पतन ज्यो पड़ता घाय निदान ।—कबीर
(शब्द०) । (ख) कोऊ मयाव तो बहुत साहो । नातरु
तेह ही रहि जाही ।—मूर (शब्द०) । (ग) नातरु
होँ करिहोँ बनवास । तेही माग छौडि सब मास ।—
सल्लू (शब्द०) ।

नातर्षा—सि० [फा०] दुःख । हीन । निम्न । प्रसक्त ।

नातवान—सि० [फा० नातवा] २० 'नातवा' । उ०—(क)
नातवान तन पे सुनो गी ताकत है न । मन कृपाव मो
सामुहै गज मतवारे नैन ।—रत्ननिधि (शब्द०) । (ख)
मे नातवान हुमा इस कदर कि मुदर ये । न लव से नासा
सीने से घाह निकले है ।—कविता को०, भा० ४, पु० ४५ ।

नाता—संज्ञा पुं० [सं० नाति, प्रा० नाति, हि० नात] १ दो
या कई मनुष्यों के बीच वह लगाव जो एक ही कुल में उत्पन्न
होने या विवाह प्राद क कारण होता है । कुटुंब की
पनिष्ठता । जाति संबंध । रिश्ता ।

क्रि० प्र०—जोड़ना ।—दूटना ।—तोड़ना ।—संगाना ।

२. संबंध । लगाव । उ०—(क) यह रघुति मुकु नातिनि
पाता । मानउँ एत भगति कर नाता ।—तुलसी (शब्द०) ।
सुरदास छिय राम सखन बन कहा प्रथम सा नाता ।
—मूर (शब्द०) ।

यौ०—नाता गोता = सम्बन्ध । स. धी । उ०—धनी जो इसने
नाते गोते के लोग फेरे न निब मा जा रह है ।—झींसी०,
पृ० १५७ ।

नाताकृत—सि० [फा० ना + कृत] जिसे ताकत या बल
न हो । निम्न । प्रसक्त ।

नाताकृती—संज्ञा पुं० [फा० ना + कृत] जिसे ताकत या बल
न होना होने का भाव । दुर्बलता । कमजोरी ।

नातिदूर—सि० [सं०] जो बहुत दूर न हो । कुछ ही दूर का ।

उ०—उससे नातिन लोहार का चपरा भी टूट इसी तरह का है।—किन्नर०, पृ० ४७।

नातिन—सखा श्री० [हि० नाती] लड़की की लड़की। बटी की बेटा।

नाती—सखा पु० [सं० नपु० प्रा० नाति] [श्री० नतिनी, नातिन]

लड़की या लड़के का लड़का। नती। बेटा या बेटा का बेटा।

उ०—(क) नाती पूत कोटि इस भूहा। रोमनहार न एकी रहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।—तुलसी (शब्द०)।

नाते—क्रि० वि० [हि० नाता] १ मवध से। २०—सखि हमरे प्रारति मति ताते। कबहुँ ए प्रावहि एहि नाते।—तुलसी (शब्द०)। २ हेतु। वास्ते। लिये। उ०—दूध दही के नाते बनवत बातें वज्रु गोपाल। गढ़ि गढ़ि छोनत कहा रावरे लूटत हो ब्रजवाल।—सूर (शब्द०)।

नातेदार—वि० [हि० नाता + फा० दार (प्रत्य०)] [सखा नातेदारी] सबधी। रिशवेदार। सगा। उ०—हे सुत है नहि दुस का सामा। नातेदार सीरि तव मामा।—गोपाल (शब्द०)।

नात्र—सखा पु० [सं०] जित।

नात्राता—सखा पु० [राज० नाता + रा (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति। उ०—उनमे नाता (नाथा = विधवा विवाह) होता है, जिसे वे नात्रात (नात्रायत) राजपूत कहलाते हैं।—राज०, पृ० ५०४।

नाथ^१—सखा पु० [सं०] १ प्रभु। स्वामी। धर्मपति। मालिक। २ पति। ३ वह रस्मी जिसे बेल भैसे प्रादि की नाक छेदकर उसमें इसलिये डाल देते हैं जिसमें वे वश में रहे। उ०—रगनाथ ही जाकर हाथ मोही के नाथ। गहे नाथ सो खींचे फेरत फिरे न माथ।—जायसी (शब्द०)। ४ मत्स्येन्द्रनाथ के अनुयायी योगियों की एक उपाधि। गोरखपथी साधुओं की एक पदवी जो उनके नामों के साथ ही मिली रहती है। ५ नाथ मित्रों का परम तत्व। उ०—पिड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरजन करे।—रामानन्द०, पृ० ३। ६ एक प्रकार के मदारी जो साँप पालते घोर नचाते हैं।

मुहा०—नाथ पढ़ना = जिम्मेदारी ग्रहण।

नाथ^२—सखा श्री० [हि० नाथना] १ नाथने की क्रिया या भाव। उ०—रग नाथ ही जाकर हाथ मोही के नाथ। गहे नाथ सो खींचे फेरत फिरे न माथ।—जायसी (शब्द०)।

नाथ^३—सखा श्री० [हि० नथ] २० 'नथ'। उ०—परी नाथ कोइ छुवे न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।—जायसी (शब्द०)।

नाथता—सखा श्री० [सं०] प्रभुता। स्वामित्व।

नाथत्व—सखा पु० [सं०] प्रभुत्व। स्वामित्व।

नाथद्वारा—सखा पु० [सं० नाथद्वार] उदयपुर राज्य के मतगंत बल्बम संप्रदाय के वैष्णवों का एक प्रसिद्ध स्थान जहाँ श्रीनाथजी की मूर्ति स्थापित है।

विशेष—भोरगजेव ने जब मयुरा की सब कृष्णमूर्तियों को तोड़ने

का विचार किया तब मन् १६७१ में उदयपुर के महाराणा गजसिंह श्रीनाथ जी की मूर्ति को मयुरा से उदयपुर की मारतकर मयुरा में लाया चले। इस स्थान पर जब रव पड़वा तब पादुका कोन में रस गया। नागा न कहा कि श्रीनाथजी की इच्छा दसो स्थान पर रहने की है। महाराणा न भारी मंदिर बनवाकर मूर्ति वही स्थापित कर दी।

नाथना—क्रि० सं० [हि० नाथ] १ वन, भैसे प्रादि की नाक छेदकर उसमें इसलिये रस्सी डालना जिसमें वे वश में रहें। नरुन डालना। नाक छेदना। उ०—(क) मयु ससे रावन दम माया। मयु राह करे फत नाया।—जायसी (शब्द०)। (ग) ना तो नाग नाथ हरि लाए सुरनी बाल जिनाए।—सूर (शब्द०)। (ग) तात वन नाथन के कारण माप अवाध्या द्राए।—सूर (शब्द०)।

सया० क्रि०—देना।

मुहा०—न'क पकड़कर नाथना = अनुयायी वश में करना।

२ किसी वस्तु को छेदकर उसमें रस्सी या तागा डालना। ३ किसी वस्तु या कई वस्तुओं के कई भागों को छेदकर रस्सी या तागा के द्वारा एक में जोड़ना। नथी करना। जैसे,—इन सब भागों को एक में नाथकर रख दो। ४ लडा के रूप में जोड़ना।

नाथवत्—वि० [सं०] १ स्वामी या रक्षक से युक्त। २ पगधोन (गो०)।

नाथवान्—वि० [सं० नाथवत्] १० 'नाथवत्'।

नाथ संप्रदाय—सखा पु० [सं० नाथ + सम्प्रदाय] गोरखनाथ का चलाया हुआ एक पथ। उ०—नाथ संप्रदाय के प्रादि प्रवक्त 'मोद नाथ' शिव ही कह जाते हैं।—पू० ग० भा०, पृ० ३३५।

नाथहरि—सखा पु० [सं०] वयु।

नाथित—सखा पु० [सं०] प्रायत। अनुरोध। याचना (को०)।

नाद—सखा पु० [सं०] १ गहरा। ध्वनि। आवाज। २ वयों का अत्यन्त मूल रूप।

विशेष—संगीत के आवाजों के अनुसार प्राकाशमय अग्नि घोर मरु के योग में नाद की उत्पत्ति हुई है। जहाँ प्राण (वायु) की स्थिति रहता है उसे ग्रहण मि कहते हैं। संगीतदर्पण में लिखा है कि भात्मा के द्वारा प्रेरित होकर चित्त देह में अग्नि पर आघात करता है और अग्नि ब्रह्म अग्नि प्राण को प्रेरित करती है। अग्नि द्वारा प्रेरित प्राण फिर ऊपर चढ़ने लगता है। नाभि में पहुँचकर वह अति सूक्ष्म हृदय में सूक्ष्म, गजदेश में पुष्ट, शीर्ष में अत्युष्ट घोर मुख में अत्यन्त नाद उत्पन्न करता है। संगीत दामोदर में नाद तीन प्रकार का माना गया है—प्राणिभव, अप्राणिभव और उभयसंभव। जो मुख प्रादि अंगों से उत्पन्न किया जाता है वह प्राणिभव, जो बीणा प्रादि से निकलता है वह अप्राणिभव और जो नसुरी से निकलता है वह उभयसंभव है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग प्रादि कुछ भी

संभव नहीं। ज्ञान भी उसके बिना नहीं हो सकता। अतः नाद परज्योति वा ब्रह्मरूप है और सारा जगत् नादात्मक है। इस दृष्टि से नाद दो प्रकार का है—आहृत और अनाहृत। अनाहृत नाद को केवल योगी ही सुन सकते हैं।

हठयोग दीपिका में लिखा है कि जिन मुढ़ों को तत्त्वबोध न हो सके वे नादोपासना करें। अंतस्थ नाद सुनने के लिये चाहिए कि एकाम्रचित्त होकर शक्तिपूर्वक आसन जमाकर बैठे। आँख, कान, नाक, मुँह सबका व्यापार बंद कर दे। अभ्यास की अवस्था में पहले तो मेघगर्जन, भरी आदि की सी गभीर ध्वनि सुनाई पड़ेगी, फिर अभ्यास बढ़ जाने पर क्रमशः वह सूक्ष्म होती जायगी। इन नाना प्रकार की ध्वनियों में से जिसमें चित्त सबसे अधिक रमे उसी में रमावे। इस प्रकार करते करते नादस्वी ब्रह्म में चित्त लीन हो जायगा।

३ वणों के उच्चारण में एक प्रयत्न जिसमें कठ न तो बहुत फैलाकर न संकुचित करके वायु निकालनी पड़ती है। ४ अनुस्वार के समान उच्चारित होनेवाला वण। सानुनासिक स्वर। अर्धचंद्र।

पर्याय—अर्धचंद्र। अर्धमात्रा। कलाराशि। सदाशिव। अनुचर्चा। तुरीया। परा। विश्वमातृकला।

५. संगीत।

यौ०—नादविद्या=संगीत शास्त्र।

नादना^१—क्रि० सं० [सं० नदन या हि० नाद] बजाना। उ०—(क) काटू बीन गद्गा कर काह नाद मृदंग। सब दिन अनंद बधाबा रहस कूद डक संग।—जायसी (शब्द०)। (ख) इन ही के आए ते बधाए ब्रज नित नए नादत बढ़त सब सब सुख जियो है।—तुलसी (शब्द०)।

नादना^२—क्रि० प्र० १ बजना। शब्द करना। उ०—शून्य ज्ञान सुपुष्टी होय। अकुलाहट सेना ही सोय।—कबीर (शब्द०)। २ चिल्लाना। गरजना। उ०—भनु करि दन लखि बृद्ध हरि नादि उठयो कदर निकर।—गोपाल (शब्द०)।

नादना^३—क्रि० प्र० [सं० नन्दन] लहकना। लहलहाना। पफुल्लित होना। उ०—नैकु न जानी पति यो परयो विरह तन माय। उठति दिया लौ नादि हरि लिए तिहारो नाम।—विहारी (शब्द०)।

नादमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] तन्त्र की एक मुद्रा।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर अंगूठे को ऊपर की ओर उठाए रहना पड़ता है।

नादवान्—वि० [सं० नादवत्] स्वरमय। ध्वनिमय। ध्वनित (की०)।

नादली—संज्ञा स्त्री० [सं० नाद + अली] नग यशव नामक पत्थर की चौकोर टिकिया जिसपर कुरान की एक विशेष आयत खुदी रहती है और जिसे रोगबाध दूर करने के लिये यत्र की तरह पहनते हैं। होलदिली।

विशेष—आयत का आरम्भ 'नाद अलियन' इस वाक्य से होता है। इसी से यत्र को नादली कहते हैं। हकीमों का कथन है कि

उक्त पत्थर में कलेजे की घड़क आदि दूर करने का विशेष गुण है। छाती पर उसका ससर्ग रहने से होलदिल तथा दिल घड़कने की बीमारी अच्छी हो जाती है। कुछ लोगो का विश्वास है कि बिजली का असर भी जहाँ यह पत्थर रहता है वहाँ नहीं होता।

नादाँ—वि० [फा०] २० 'नादान'। उ०—(क) दिले नाँदा तुम्हे हुमा क्या है। आखिर इस मर्ज की दवा क्या है—गालिब०, पृ० ३०४। (ख) फायदा क्या सोच आखिर तू भी है दाना असद। दोस्ती नादाँ की है जो का जियाँ हो जायगा।—गालिब०, पृ० ६६।

नादान—वि० [फा०] [संज्ञा नादानी] नासमझ। अनजान। मूर्ख। उ०—कबीर मारी अल्लाह की ताको कहत हराम। हलाल कहै अपनी मारी यह नादान कलाम।—कबीर (शब्द०)।

नादानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] अज्ञान। नासमझी।

नादाद—वि० [फा०] १ जो अपने पास कुछ न रखता हो। जिसके पास कुछ न हो। अकिंचन। निर्धन। कगाल। उ०—बाद भज जिके बल्ही लेवे दिल में मखफी वूफ। जिन ताकू नादार भयाने तो मजिन मसकूत तूज।—दक्खिनी, पृ० ५६। २ गजों के खेल में बिना रग या मीर की बाजी।

नादारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गरीबी। निर्धनता। उ०—बी को नादारी में जाँचिए।—लल्लू (शब्द०)।

नादि—वि० [सं०] १ शब्द करनेवाला। २ गर्जग करनेवाला (की०)।

नादित—वि० [सं०] शब्द करता हुआ। धजाया हुआ।

नादिम—वि० [प्र०] लज्जित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नादिया—संज्ञा पुं० [सं० नन्दी] १ नदी। २, वह वेल जिसे जोगी लेकर भीख माँगते हैं।

विशेष—ऐसे वेलो को कोई न कोई भंग अधिक (जैसे टाँग) रहता है जिससे लोगो को कुतूहल होता है।

नादिर—वि० [फा०] अद्भुत। अतोत्सा। उ०—औरंगजेब बादशाह के कोका फिदाई खान का बाग बहुत नादिर बना है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

यौ०—नादिर कलाम=उत्तम वाणी। अच्छी वाणी। उ०—मेकाइल जिब्रैल नादिर कलाम। फरिश्तों को ले सात कीते सलाम।—दक्खिनी० पृ० ३४४।

नादिरशाह—संज्ञा पुं० [फा०] फारस का एक क्रूर और प्रतापी बादशाह।

विशेष—इसने सन् १७३८ में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह पर चढ़ाई की और १७३९ में दिल्ली नगरवासियों की हत्या कराई। प्रातःकाल से सूर्यास्त तक यह हत्याकाण्ड जारी रहा जिसमें लाखों मनुष्य मारे गए।

नादिरशाही^१—संज्ञा स्त्री० [फा०] ऐसा अंधेरे जैसा नादिरशाह ने दिल्ली में मचाया था। मारी अंधेरे या भ्रष्टाचार।

नादिरशाही^२—वि० नादिरशाह के ऐसा । बहुत ही कठोर और उग्र । जैसे, नादिरशाही हुक्म ।

नादिरी—सच्चा स्त्री० [फा०] १ एक प्रकार की सदरी या बड़ी जो मुगल बादशाहों के समय में पहनी जाती थी । इसके किनार पर कुछ काम होता था । इसे कभी कभी खिलमत में दिया करते थे । २ ग 'फ' का वह पत्र जो खेल के समय निकालकर बलग रट दिया जाता है ।

मुहा०—नादिरी चढाना=वेतन मात करना ।

नादिहद—वि० [फा०] न देनेवाला । जिससे रकम वसूल न हो ।

नादिहदी—सच्चा स्त्री० [फा०] किसी को कुछ न देने की प्रवृत्ति । अदातव्यता ।

नादी—वि० [म० नादिन्] [वि० स्त्री० नादिनी] १ शब्द करनेवाला । २ बननवाला । ३ गजन करनेवाला ।

नादेअली—सच्चा स्त्री [म०] कुशन की एक भायत जो नाद मलियन से शुरू होती है और सग यणव के छोटे चोकोर टुकड़े पर खुदी रहती है जिसे रोगवाधा से बचने के लिये गले में पहनते हैं । दे० 'नादली' [को०] ।

नादेय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नादेयी] १. नदी सबधी । नदी का । २ नदी में डानवाला ।

नादेय^२—सच्चा पुं० १ सेंधा नमक । २ सुरमा । ३ काँस नाम की घास । ४ जलवेत । अश्वेतस । ५ नदी (गंगा) के पुत्र । गानेय । भीष्म ।

नादेयी^१—वि० स्त्री० [सं०] १ नदी सबधिनो । नदी की । २ नदी में होनेवाली ।

नादेयी^२—सच्चा स्त्री० १ अश्वेतस । जलवेत । २ भूमिजंबुक । भुईजा मुत्त । ३ वैद्ययतिका । वैजयती । ४ नारंगी । ५. जपा । अड़हल । ६ अग्निमथ वृक्ष । अंगेयू ।

नादेहंद—वि० [फा० नादिहद] दे० 'नादिहद' ।

नाद्य^१—वि० [सं०] १ नदी सबधी । २ नदी में उत्पन्न [को०] ।

नाद्य^२—सच्चा पुं० कमल [को०] ।

नाधन—सच्चा स्त्री० [हि० नाधना] चरखे के तकले में तागे की रोक के लिये लगी हुई एक गोल टिकिया । दिमरखा ।

विशेष—यह टिकिया पिसी हुई मेथी में रई आदि डालकर बनाते हैं और लिपटे हुए तागे के आगे छेदकर पहना देते हैं ।

नाधना—क्रि० सं० [सं० नद्ध (= बँधा या जुड़ा हुआ)] १ रस्सी या तस्मे के द्वारा बेल, घोटे आदि को उस वस्तु के साथ जोड़ना या बाँधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना होता है । जोतना । जैसे, बेल को गाँधी या हल में नाधना । उ०—(क) खसम बिनु तेली के बेल भयो । बैठत नाहि साधु की संगति नाधे जनम गयो ।—कबीर (शब्द०) । (ख) बहत बृषभ बहलन मँह भवे ।—रघुराज (शब्द०) ।

स यो० क्रि०—देना ।

मुहा०—काम में नाधना = काम में लगाना ।

२ जोड़ना । संबद्ध करना । उ०—तुम्हें देखि पावै, सुख बहु भाति ताहि दीजे नेकु निरखि नतीजा नेह नाधे को ।—

कालिदास (शब्द०) । ३ सूँचना । गुहना । उ०—देव जगामग जोतिन की, लर मोतिन की लरकीन सो नाधी ।—देव (शब्द०) । ४ (किसी काम को) ठानना । अनुष्ठित करना । आरम्भ करना । जैसे, काम नाधना । उपद्रव नाधना । उ०—(क) मेरी कही न मानत रावे । ये भवनी मति नमुक्त नाही कुमति कहा पन नाधे ।—सुर (शब्द०) । (ख) यादो को कहायो त्रजराज दिन चार ही में करिहै उजियागी ब्रज ऐसी रीति नाधी है ।—मतिराम (शब्द०) ।

नाधा^१—सच्चा पुं० [हि० नाधना] वह रस्सी या चमड़े की पट्टी जिससे हल या कोल्हू की हर्मि जुए में बाँधी जाती है । नारी ।

नाधा^२—सच्चा पुं० [हि० नाँद] वह स्थान जहाँ पर पानी, कूप, जलाशय आदि से निकालकर फँका जाता है और जहाँ से नालियों में होता हुआ वह सिचाई के लिये खेतों में जाता है ।

नान—सच्चा स्त्री० [फा०] १ रोटो । चरातो । २ एक प्रकार की मोटी लमीरी रोटो जो तदूर में पकाई जाती है ।

थो०—नानखताई । नानवाई । नानपाव ।

नानक—सच्चा पुं० पंजाब के एक प्रसिद्ध महात्मा जो सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे ।

विशेष—इनका जन्म रावी नदी के किनारे तिलोडा नामक गाँव में (आधुनिक रायपुर) सन् १५२६ में फातिकी पूर्णिमा को एक खत्रीकुल में हुआ था । इनके पिता का नाम कालू था । लड़कपन ही से ये सासारिक विषयों से उदासीन रहा करते थे । ऐसा प्रसिद्ध है कि पिता ने एक बार इन्हें ४०) नमक खरीदने के लिये दिए । वे नमक खरीदने चले पर बीच में कुछ सूखे साधु मिले और इन्होंने सब रूपों का अन्न लेकर उन्हें खिला दिया । इन्हें काम काय के योग्य न देख पिता ने इन्हें इनकी बहिन के पाम सुचतानपुर (कपूरथले में) नामक स्थान में भेज दिया । वहाँ का नवाब उस समय दिल्ली के बादशाह इब्राहिम लोदी का सबधी दीलत खाँ नामक पठान था । उसके यहाँ ये मोदीखाने में नौकर हुए । वहाँ भी इन्होंने साधुओं को खिलाना आरम्भ किया जिससे इनपर रूपया खाने का आरोप लगाया गया । पर जब हिसाब लिया गया तब सब ठीक उतरा । इनका विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में गुरुदासपुर जिले के अतर्गत लाखौकी नामक स्थान के रहनेवाले मूचा की कन्या सुलझमी से हुआ था । जिस समय ये दीलत खाँ के यहाँ थे उसी समय ३२ वर्ष की अवस्था में इनके प्रथम पुत्र हरीचंद्र का जन्म हुआ । चार वर्ष पीछे दूसरे पुत्र लखमीदास का जन्म हुआ । दोनों लड़कों के जन्म के उपरांत नानक ने घरबार छोड़ दिया और मरदाना, लहना, बाला और रामदास इन चार साथियों को लेकर वे भ्रमण के लिये निकल पड़े । ये चारों और घूमकर उपदेश करने लगे । इनके उपदेश का सार यही होता था कि ईश्वर एक है उसकी उपासना हिंदू मुसलमान दोनों के

लिये है। मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना को ये अनावश्यक कहते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों पर इनके मत का प्रभाव पड़ता था। लोगो ने तत्कालीन इब्राहीम लोदी से इनकी शिकायत की और ये बहुत दिनों तक कैद रहे। अंत में पानीपत की लड़ाई में जब इब्राहीम हारा और बाबर के हाथ में राज्य गया तब इनका छुटकारा हुआ। पिछले दिनों में इनकी रूपाति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में भी परिवर्तन हुआ। स्वयं विरक्त होकर ये अपने परिवारवर्ग के साथ रहने लगे और दान पुण्य, भडारा आदि करने लगे। जलधर जिले में इन्होंने कतरपुर नामक एक नगर बसाया और एक बड़ी धर्मशाला उसमें बनवाई। इसी स्थान पर आश्विन कृष्ण १०, सवत् १५६७ को इनका परलोकवास हुआ। यह सिखों का एक पवित्र स्थान है।

नानकपंथ—संज्ञा पुं० [हि० नानक + पंथ] गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित मत। सिख धर्म।

नानकपंथी—संज्ञा पुं० [हि० नानक + पंथ + ई (प्रत्य०)] गुरु नानक का अनुयायी। सिख। नानकशाही।

नानकशाही—वि० [हि० नानकशाह + ई (प्रत्य०)] गुरु नानक से राबध रखनेवाला। जैसे, नानकशाही मत। २ नानकशाह का शिष्य या अनुयायी। जैसे, नानकशाही साधु।

नानकार—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की माफी जिसके अनुसार जमींदार को कुछ जमीन की मालगुजारी नहीं देनी पड़ती।

विशेष—इस प्रकार की माफी अवध के नवाबों के समय से चली आ रही है। नानकार दो तरह का होता है—नानकार देही और नानकार इस्मी। यदि किसी गाँव में कुछ जमीन की या किसी तमल्लुके में कुछ गाँवों की मालगुजारी माफ है और वह माफी उस गाँव या तमल्लुके के साथ लगी हुई है तो वह नानकार देही कहलाती है। इस प्रकार की माफी में गाँव के हर एक हिस्सेदार का हक होता है। यदि माफी किसी खास भ्रादमी के नाम से होती है तो उसे 'नानकार इस्मी' कहते हैं। इसमें हिस्सेदारों का हक नहीं होता पर व्यवहार में यह बहुत कम माना जाता है।

नानकीन—संज्ञा पुं० [चीनी नानकिङ्] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो चान देश से बाहर को जाता था।

विशेष—यह कपड़ा मटमैले रंग का होता था। पहले पहल इसका बुनना चीन के नानकिङ् नामक नगर में प्रारंभ हुआ था। आजकल इस प्रकार का कपड़ा यूरोप आदि अनेक देशों में बनता है और इसी नाम से जाना जाता है।

नानकोआपरेशन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'असहयोग-२'।

नानखवाई—संज्ञा स्त्री० [फा० नानखवाई] टिकिया के आकार की एक सोयी खस्ता मिठाई।

विशेष—घी और चीनी के साथ घुले हुए चावल के घाटे की टिकिया (चताशे की आकार की) लोढ़े की एक चद्दर पर

५-४४,

रखते हैं फिर चद्दर को दहकते आगारों से भरे हुए दो थालों के बीच इस प्रकार रखते हैं कि आँच ऊपर और नीचे दोनों ओर से लगे। जब टिकिया पक जाती है और उनमें से सोघाहट आने लगती है तब चद्दर निकाल दो जाती है।

नानखवाह—संज्ञा पुं० [फा० नानखवाह] अजवाइन [को०]।

नानपज—संज्ञा पुं० [फा० नानपज] नानवाई [को०]।

नानपजी—संज्ञा स्त्री० [फा० नानपजी] नानवाई का घधा [को०]।

नानपाव—संज्ञा पुं० [फा०] खमीरी भाटे की बनी एक प्रकार की रोटी। पावरोटी [को०]।

नानपेरिल—संज्ञा पुं० [अ० नॉनपेरिल] एक प्रकार का छोटा टाइप। ६ पाईट का टाइप।

नानवाई—संज्ञा पुं० [फा० नानवा, नानवाफ] रोटियाँ पकाकर बेचनेवाला।

नानस—संज्ञा स्त्री० [हि० 'ननिया सास' का संक्षिप्त रूप] ननिया ससुर। पति या स्त्री का नाना (स्त्रि०)।

नानसरा—संज्ञा पुं० [हि० 'ननिया ससुर' का संक्षिप्त रूप] ननिया ससुर। पति या स्त्री का नाना (स्त्रि०)।

नाना^१—वि० [सं०] १ अनेक प्रकार के। बहुत तरह के। विविध। २ अनेक। बहुत।

नाना^२—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० नानी] माता का पिता। माँ का बाप। मातामह। उ०—सो लका तब नाना केरी। बसे आप मम पितहि खदेरी।—विश्राम (शब्द०)।

नाना^३—क्रि० सं० [सं० नमन] १ झुकाना। नम्र करना। उ०—(क) बुद्धि जो गई आव बौराई। गरब गए तरही सिर नाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) इद्र डरे नित नावहि माथा।—सूर (शब्द०)। २ नीचा करना। ३ डालना। फेंकना। ४ घुसाना। प्रविष्ट करना।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

नाना^४—संज्ञा पुं० [अ०] पुदीना।

यौ०—अर्कनाना = सिरके के साथ भवके में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

नानाकद—संज्ञा पुं० [सं०] पिझातु।

नानाजातीय—वि० [सं०] जिसकी बहुत सी किस्में हों। अनेक प्रकार का [को०]।

नानात्मवादी—वि० [सं० नानात्मवादिन्] सांख्य दर्शन को माननेवाला। प्रत्येक व्याक्त में आत्मा की पुष्प सत्ता स्वीकार करनेवाला [को०]।

नानात्वय—वि० [सं०] विभिन्न प्रकार का। अनेक विधि [को०]।

नानात्व—संज्ञा पुं० [सं०] वैविध्य। अनेकता [को०]।

नानाध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनेक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करनेवाला वाद्ययंत्र। जैसे, गीता सितार आदि [को०]।

नानारस—वि० [सं०] जिसमें अनेक स्वाद हो। अनेक स्वाद-युक्त [को०]।

नानारूप—वि० [सं०] १. अनेक रूपोंवाला । बहुरूपी । २. नानाविध । बहुविध [को०]

नानार्थ—वि० [सं०] १. अनेक उद्देश्योंवाला । बहुद्देशीय । २. अनेक अर्थोंवाला । बहुअर्थी [को०] ।

नानावर्ण—विभिन्न रंग का । बहुवर्ण । अनेक रंगोंवाला [को०] ।

नानाविध—वि० [सं०] अनेक प्रकार का । विभिन्न [को०] ।

नानाश्रय—वि० [सं०] अनेक आश्रयवाला । जिसके रहने के अनेक स्थान या ठौर ठिकाने हों ।

नानिहाल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नानी + घाल सं० (< मालय)] नानी का घर । नाना नानी के रहने का स्थान ।

नानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] माँ की माँ । माता की माता । मातामही । विशेष—इस शब्द के आगे 'इया' प्रत्यय लगाकर सबधसूचक विशेषण भी बनाते हैं । जैसे, ननिया सास ।

मुहा०—नानी मर जाना = होश ठिकाने हो जाना । प्राण सुख जाना । आपत्ति से आ जाना । सकट या दुख सा पड़ जाना । उ०—हरमोहन की नानी तो यानेवालों को देखते ही मर गई थी । —अयोध्या (शब्द०) । नानी याद माना = दे० 'नानी मर जाना' ।

ना नुकर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० न + करना] नाही । इनकार ।

क्रि० प्र०—करना ।

नान्ही—वि० [सं० न्यञ्च (= नाटा, छोटा या न्यून)] १. छोटा । लघु । नन्हा । २. नीच । क्षुद्र । उ०—कहूँ कधीर सुनो हो बाछा । नान्ह जाति लतिआए भाछा । —कबीर (शब्द०) ३. पतला । बारीक । महीन ।

मुहा०—नान्ह कातना = (१) बहुत बारीक काम करना । (२) कठिन या दुष्कर कार्य करना । उ०—अपजस जोग कि जानकी मन चोरी कब कान्ह ? तुलसी लोग रिझाइवो करहि कातिबो नान्ह । —तुलसी (शब्द०) ।

नान्हक—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नानक' ।

नान्हूरिया—वि० [हिं० नान्ह + र, इया (प्रत्य०)] छोटा नन्हा । उ०—मेरो नान्हूरिया गोपाल बेगि बड़ो किन होहि । यहि मुख मधुरे बचन हँसि कबहुँ जननि कहोगे मोहि । —सूर (शब्द०) ।

नान्हा—वि० [सं० न्यञ्च (= नाटा, छोटा) या सं० न्यून] [वि० स्त्री० नान्ही] १. छोटा । लघु । नन्हा । उ०—सर्वस में पहले ही दीनो नान्ही नान्ही दंतुलो दू पर । —सूर (शब्द०) । २. पतला । बारीक । महीन । उ०—मन मनसा की मारि के नान्हा करिके पीस । तब सुख पावै सुदरी पदम फलकै सीस । —कबीर (शब्द०) । ३. नीच । क्षुद्र । उ०—खेलत खात रहे ब्रज भीतर । नान्हे लोग तनक घन ईतर । —सूर (शब्द०) ।

नान्हा—सञ्ज्ञा पुं० छोटा बच्चा । लड़का ।

यौ०—नान्हा बारा = छोटा बालक । उ०—काली जी की छोहरी सेई नान्ही बारि । —देवस्वामी (शब्द०) ।

नाप—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० मापन, हिं० माप] १. किसी वस्तु का

विस्तार जिसका निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि वह एक निदिष्ट विस्तार या कितना गुना है । किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई जिसकी छोटाई बड़ाई (या न्यूनता अधिकता) का निश्चय किसी निदिष्ट लंबाई के साथ मिलाने से किया जाय । परिमाण । माप । जैसे,—यह धोती नाप में सही गत है । २. विस्तार का निर्धारण । किसी वस्तु की लंबाई चौड़ाई आदि कितनी है इसको ठीक ठीक स्थिर करने के लिये की जानेवाली क्रिया । नापने का काम । जैसे,—जमीन की नाप हो रही है ।

यौ०—नाप जोख । नाप तोल ।

३. वह निदिष्ट लंबाई जिसे एक मानकर किसी वस्तु का विस्तार कितना है, यह स्थिर किया जाता है । मान । जैसे,—यहाँ की नाप कुछ छोटी है इसी से कपड़ा घटा । ४. निदिष्ट लंबाई की वह वस्तु जिसका व्यवहार करके स्थिर किया जाय कि कोई वस्तु कितनी लंबी, चौड़ी आदि है । नापने की वस्तु । मानदंड । नपना । पैमाना ।

नापजोख—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नाप + जोख] दे० 'नापतोल' ।

नापतौल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नाप + तोल] १. नापने और तोलने की क्रिया । २. परिमाण या मात्रा जो नाप या तोलकर स्थिर की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नापदान—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाबदान' ।

नापना—क्रि० सं० [सं० मापन] १. किसी वस्तु का विस्तार इस प्रकार निर्धारित करना कि वह एक नियत विस्तार का कितना गुना है । किसी वस्तु को लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई कितनी है, यह निश्चित करना । लंबाई, चौड़ाई आदि की परीक्षा करना । मापना । मापत परिमाण निदिष्ट करना ।

सयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—सिर नापना = सिर बटाना ।

२. अंदाज करना । कोई वस्तु कितनी है इसका पता लगाना । जैसे दूध नापना, शराब नापना ।

नापसंद—वि० [फा०] १. जो पसंद न हो । जो अच्छा न लगे । अनसुहाता । जैसे,—चीज नापसंद हो तो दाम वापस । २. अप्रिय । अरुचिकर । जो न नचे ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नापाक—वि० [फा०] १. अशुद्ध । अशुद्धि । अपवित्र । अष्ट ।

२. मैला कुचैला ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नापाकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] अपवित्रता । अशुद्धता ।

नापायदार—वि० [फा०] १. जो अधिक ठहरने या चलनेवाला न हो । जो टिकाऊ न हो । अणुभंगुर । २. जो दृढ़ या मजबूत न हो ।

नापायदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. अस्थायित्व । अणुभंगुरता । २. अदृढ़ता । अस्थिरता ।

नापास—वि० [हि० ना + घ० पास] जो पास या मज़ूर न हो। जो स्वीकृत न हो। नमज़ूर। अस्वीकृत। (कव०)। जैसे,—कौंसिल में उनका बिल नापास हुआ।

नापित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो घर के बाल मूँड़ने (या काटने), और नाखून आदि काटने का काम करता हो। नाई। नाऊ। हज्जाम।

विशेष—धर्मशास्त्र में नापित की गणना घृष्टे शूद्रों में है। स्मृतियों में नापित सकर जाति के भतर्गत माने गए हैं। पराशर स्मृति में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न सतान का यदि ब्राह्मण द्वारा संस्कार न हुआ हो तो वह नापित कहलाता है। पर परशुराम के अनुसार कुवेरी पुरुष और पट्टिकारी स्त्री के संयोग से नापितों की उत्पत्ति हुई। मनु ने नापितों की गिनती भोज्यान्न शूद्रों में की है।

पर्या०—छुरी। मुंडी। दिवाकीर्ति। भत्यावसायी। सूत्री। नखकुट्ट। ग्रामणी। चद्रिल। भाडपुट।

नापितायनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाई का पुत्र [को०]।

नापित्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाई का घघा। २ नाई का बेटा [को०]।

नापैद—वि० [फा० ना + पैदा] १ जो पैदा न होता हो। २ न मिलनेवाला। अप्राप्य।

नाफ—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नाफ़] १ नाभि। २ केंद्र। मध्य [को०]।

नाफरमा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाफरमा] गुनेलाना का एक भेद जो कुछ नीलापन लिए होता है।

नाफा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाफ़] मृगमद कोश। कस्तूरी की थैली जो कस्तूरीमृगों की नाभि में होती है।

नावदान—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नाव (= नाली)] वह नाली जिससे होकर घर का गलीज, मैना पानी आदि बाहर बहकर जाता है। पनाला। नरदा।

मुहा०—नावदान में मुँह मारना = घृणित कर्म करना। बुरा और घिनोना काम करना।

नाबालिग—वि० [फा० नाबालिग़] जिसका सद्गुणन अभी दूर न हुआ हो। जो अपनी पूरी अवस्था को न पहुँचा हो। जो पूरा जवान न हुआ हो। अप्राप्तवयस्क।

विशेष—फानून में कुछ बातों के लिये २१ वर्ष और कुछ के लिये १८ वर्ष से कम अवस्था का मनुष्य नाबालिग समझा जाता है।

नाबालिगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाबालिगी] नाबालिग रहने की अवस्था।

नाबूद—वि० [फ़ा०] जिसका अस्तित्व न रहा हो। नष्ट। ध्वस्त।
फ़ि० प्र०—करना।—होना।

नाभि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० 'नाभि' का समासात् रूप] १. नाभि। डोडो। घुनी। २. शिव का एक नाम। ३. भागवत में वर्णित एक सूर्यवंशी राजा जो अमोर्य के पुत्र थे। ४. अस्थों का एक संहार।

नाभक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हरीतकी। हड़।

नाभस—वि० [सं०] नमस् संबंधी। आकाश संबंधी। आकाशीय [को०]।

नाभा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रसिद्ध भक्त जिनका नाम नारायण-दास था।

विशेष—कहते हैं, ये जाति के डोम ये और दक्षिण देश में उत्पन्न हुए थे। भक्तमाल के कुछ टीकाकारों ने लिखा है कि इनका जन्म हनुमान वंश में हुआ था। मारवाड़ी भाषा में डोम शब्द का अर्थ हनुमान है। शायद इसीलिये इन टीकाकारों ने इन्हें हनुमानवंशीय लिखा है। पर गद्य भक्तमाल में लिखा है कि तैलंग देश में गोदावरी के समीप उत्तर राममद्राचल पर्वत पर रामदास नामक एक ब्राह्मण हनुमान जी के अशावतार रहते थे। इन्हीं के पुत्र नाभा थे। पर कई कारणों से इनका नीच कुल में उत्पन्न होना ही ठीक प्रतीत होता है। ये जन्माध कहे जाते हैं। बचपन में ही इनके देश में घोर भूकाल पड़ा। माता इन्हें पाल न सकी, वन में छोड़कर चली गई। कीलू जी अपने शिष्य अग्रदास के साथ उस वन से होकर जा रहे थे। उन्होंने बच्चे को उठा लिया और जयपुर के पास गलता नामक स्थान में ले गए। वहाँ महात्माओं की कृपा से और साधुओं का प्रसाद खाते खाते इनकी आँख भी अच्छी हो गई और बुद्धि भी निर्मल हो गई। अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से इन्होंने 'भक्तमाल' लिखा जिसमें अनेक नए पुराने भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। अनुमान से भक्तमाल ग्रंथ संवत् १६४२ और संवत् १६८० के बीच में बनाया गया क्योंकि भक्तमाल में गोसाईं गिरधर जी के विषय में लिखा है कि 'विदुलेश नदन सुभग जग कोऊ नहिं ता समान। श्री वल्लभ जू के वंश में सुरतग गिरधर भ्राजमान।' यह बात निश्चित है कि संवत् १६४२ में श्री विदुलनाथ गोसाईं का परलोक हुआ और उनके पुत्र गद्दी पर बैठे। इस पद से गोस्वामी तुलसीदास जी का भी भक्तमाल बनने के समय वर्तमान रहना पाया जाता है—रामचरण रस भक्त रहत ग्रहनिशि व्रतधारी। संवत् १६८० गोस्वामी जी का मृत्युकाल प्रसिद्ध ही है।

नाभा^२—पंजाब की एक (राज्य) रियासत जो भारतवर्ष की स्वतंत्रता के पूर्व प्रसिद्ध थी।

नाभाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वाल्मीकि के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो ययाति के पुत्र थे।

विशेष—नाभाग के पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। रामायण की वंशावली के अनुसार राजा भरणीय नाभाग के प्रपितामह थे, पर भागवत में भरणीय को नाभाग का पुत्र लिखा है।

२ मार्कंडेय पुराण के अनुसार काश्यप वंश के एक राजा जो दिष्ट के पुत्र थे।

विशेष—इनकी कथा उक्त पुराण में इस प्रकार है—जब ये युवावस्था को प्राप्त हुए तब एक वेश्य की कन्या को देखकर मोहित हो गए और उस कन्या के पिता द्वारा अपने पिता से विवाह की आज्ञा माँगी। ऋषियों की सम्मति से पितृ-

ने भ्राजा दी कि 'पहले एक क्षत्रिय कन्या से विवाह करके तब वैश्य कन्या से विवाह करो तो कोई दोष नहीं। नाभाग ने पिता की बात न मानी। पिता पुत्र में युद्ध छिड़ गया। परिवाट मुनि ने यह युद्ध शांत किया। नाभाग वैश्य कन्या का पाणिग्रहण करके वैश्यत्व को प्राप्त हुए। प्रमति मुनि ने नख को व्यवस्था दी थी कि यदि कोई क्षत्रिय उनकी कन्या को बलपूर्वक विवाह लेगा तो उनका वैश्यत्व टूट जायगा। अतः मे नाभाग भी इसी रीति से फिर क्षत्रिय हो गए।

नाभागारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र।

नाभारत—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभ्यावर्त] वह भौरी जो घोड़े की नाभि नीचे हो। यह दूषित मानी जाती है।

नाभि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चक्रमध्य। पहिए का मध्य भाग। नाह। २ जरायुज जंतुओं के पेट के बीचोबीच वह चिह्न या गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायुनाल जुड़ा रहता है। ढोढी। घुन्नी। तुन्नी। तुदी। तुदिका। तुदकूपी। ३ कस्तूरी।

नाभि^२—संज्ञा पुं० १. प्रधान राजा। २. प्रधान व्यक्ति या वस्तु। ३. गोत्र। ४. क्षत्रिय। महादेव। ६. प्रियव्रत राजा के पुत्र (श्रद्धाढ पुराण)। ७. भागवत के अनुसार भ्रान्तीधरा राजा के पुत्र जिनकी पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव की उत्पत्ति हुई थी।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है। नाभि न पत्नी के सहित पुत्र की कामना से बड़ा भारी यज्ञ किया। उस यज्ञ में प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् साक्षात् प्रकट हुए। नाभि ने वर माँगा कि मेरे तुम्हारे ही ऐसा पुत्र हो। भगवान् ने कहा मेरे ऐसा दूसरा कौन है? अतः मैं ही पुत्र होकर जन्म लूँगा। कुछ काल के पीछे मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव उत्पन्न हुए जो विष्णु के २४ अवतारों में माने जाते हैं। जैनो के आदि तीर्थंकर भी ऋषभदेव माने जाते हैं।

नाभिकण्टक—संज्ञा पुं० [सं० नाभिकण्टक] निकली हुई तुदी या ढोढी।

नाभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी वृक्ष।

नाभिगुडक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का आवर्त। तुदी का उमरा अण।

नाभिगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियव्रत राजा के पुत्र जिनके नाम पर कुण द्वीप के बीच एक वर्ष हुआ।

नाभिगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का आवर्त। तुदी का उमरा अण।

नाभिछेदन—संज्ञा पुं० [सं०] तुरत के जन्मे हुए बच्चे के नाल काटने की क्रिया।

नाभिज—संज्ञा पुं० [सं०] (विष्णु की नाभि से उत्पन्न) ब्रह्मा।

नाभिजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० नाभिजन्मन्] दे० 'नाभिज'।

नाभिनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाडी जो गर्भकाल में माता की रसवहा नाडी से जुड़ी रहती है।

नाभिनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाली [को०]।

नाभिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें नाभि में घाव हो जाता और वह पक जाती है।

नाभिभू—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०]।

नाभिभूल—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का मध्यभाग [को०]।

नाभिल—वि० [सं०] उमरी हुई नाभिवाला। निकली हुई तुदीवाला।

नाभिचर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] नाभिछेदन। नाल काटने की क्रिया।

नाभिवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जलद्वीप के नौ वर्षों में से एक। भारतवर्ष।

विशेष—भ्रान्तीधरा राजा ने अपने नौ पुत्रों को जल द्वीप के नौ खंड दिए। नाभि को जो खंड मिला उसका नाम नाभिवर्ष हुआ। पीछे नाभि के पुत्र भरत के नाम पर वह भारतवर्ष कहा जाने लगा।

नाभिसर्वंध—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रसंघ।

नाभी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभि] दे० 'नाभि'।

नाभील—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्रियों के कटि के नीचे का भाग। उरसधि। २. नाभि की गहराई। नाभि का गड्ढा। ३. कूच्छ। कट। ४. नाभि जो उमरी हुई हो [को०]।

नाभ्य^१—वि० [सं०] नाभि सवधी।

नाभ्य^२—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

नामंजूर—वि० [सं० ना + प्र० मजूर] जो मजूर न हो। जो माना न गया हो। जो कबूल न किया गया हो। अस्वीकृत। जैसे, घरजो नामजूर होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाम^१—संज्ञा पुं० [सं० नामन्, तुल० नाम] [वि० नामो] १. वह शब्द जिससे किसी वस्तु, व्यक्ति या समूह का बोध हो। किसी वस्तु या व्यक्ति का निर्देश करनेवाला शब्द। सज्ञा। आख्या। अभिख्या। आह्वा। जैसे,—इस आदमी का नाम रामप्रसाद है, इस पेड़ का नाम अशोक है।

मुहा०—नाम उल्लाना = बदनामी होना। अपकीर्ति फैलना। निंदा होना। नाम उल्लाना = अपकीर्ति फैलाना। चारों ओर निंदा कराना। जैसे,—वो ऐसा काम करके अपने बाप दादों का नाम उल्लाल रहे हो! नाम उठाना = नाम न रह जाना। चिह्न मिट जाना या खर्चा बंद हो जाना। सोक में स्मरण भी न रह जाना। जैसे,—उसका तो नाम ही ससार से उठ जायगा। नाम करना = नाम रखना। पुकारने के लिये नाम निश्चित करना। किसी दूसरे का नाम करना = दूसरे का नाम लगाना। दूसरे पर दोष लगाना। दूसरे के सिर दोष मढ़ना। जैसे,—आप चुराकर दूसरे का नाम करता है। (किसी बात का) नाम करना = कोई बात पूरी तरह से न करना, कहने भर के लिये घोड़ा सा करना। दिखाने या उलाहना छुड़ाने भर के लिये थोड़ा सा करना। जैसे,—पढ़ते क्या हैं नाम करते हैं। नाम का = (१) नामधारी। जैसे,—इस नाम का कोई आदमी यहाँ नहीं।

(२) कहने सुनने भर को। उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। जैसे,—वे नाम के मयी हैं, काम तो धीर ही करते हैं। (किसी के) नाम का कुत्ता न पालना = किसी से इतना बुरा मानना या घृणा करना कि उसका नाम लेना या सुनना भी नापसंद करना। नाम से चिढ़ना। नाम के लिये = (१) कहने सुनने भर के लिये। थोड़ा सा। अणु मात्र। (२) उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। नाम को = (१) कहने सुनने भर को। ऐसा नहीं जिससे काम चल सके। (२) केवल इतना जितने से कहा जा सके कि एकदम अभाव नहीं है। बहुत थोड़ा। अत्यंत अल्प। नाम को नहीं = जरा सा भी नहीं। अणु मात्र भी नहीं। कहने सुनने को भी नहीं। एक भी नहीं। जैसे,—(क) उस मैदान में नाम को भी पेड़ नहीं है। (ख) घर में नाम को भी नमक नहीं है। (ग) उसने नाम को भी जीवजंतु न छोड़ा। नाम चढ़ना = किसी नामावली में नाम लिखा जाना। नाम दर्ज होना। नाम चढ़ाना = किसी नामावली में नाम लिखाना। नाम दर्ज कराना। नाम चमकना = चारों ओर प्रच्छा नाम होना। कीर्ति फैलना। यश फैलना। प्रसिद्ध होना। नाम चलना = लोगो में नाम का स्मरण बना रहना। यादगार बनी रहना। जैसे,—संतान से नाम चलता है। नामचार को = (१) नामोच्चार भर के लिये। नाम को। कहने सुनने भर को। पूरे तौर से या मन से नहीं। जैसे,—नामचार को वह यहाँ आता है, कुछ काम तो करता नहीं। (२) बहुत थोड़ा। किञ्चित्मात्र। नाम जगाना = नाम की याद कराते रहना। स्मारक बनाए रखना। ऐसा काम करना कि लोगो में स्मरण बना रहे। नाम जपना = (१) बार बार नाम लेना। बार बार नाम का उच्चारण करना। नाम रटना। (२) भक्ति या प्रेम से ईश्वर या देवता का नाम (माला फेरते हुए या यो ही) बार बार लेना। नाम स्मरण करना। ईश्वर या देवता का स्मरण करना। नाम देना = (१) नाम रखना। नामकरण करना। (२) किसी देवता के नाम का मंत्र देना। सांप्रदायिक मंत्र का उपदेश देना। नामधरता = नाम रखनेवाला। नामकरण करनेवाला पिता। बाप। (किसी का) नाम धरना = (१) नाम स्थिर करना। नाम रखना। नामकरण करना। (२) बदनामी करना। बुरा कहना। दोष लगाना। जैसे,—ऐसा काम बयो करो जिससे दस आदमी नाम धरे। (३) अपनी वस्तु का मोल माँगना। अपनी चीज का दाम कहना। जैसे,—पहले तुम अपनी चीज का नाम धरो, जो जेंहेगा मैं भी कहूँगा। (किसी को) नाम धरना = (१) बदनाम करना। बुरा कहना। दोष लगाना। (२) दोष निकालना। ऐब बताना। जैसे,—हमारी पसंद की हुई चीज का तुम नाम नहीं धर सकते। नाम धरवाना = ३० 'नाम धराना'। नाम (नांव) धराना = (१) नामकरण कराना। (२) बदनामी कराना। निंदा कराना। उ०—(क) फिरत घरावत मेरो नामा। मातु न पेति होयगी धामा। (ख) दारि दियो गुरु खोगन को डर, नांव चवाव में नांव धरायो।

—मतिराम (शब्द०) नाम न लेना = प्रवृत्ति, घृणा, भय आदि के कारण चर्चा तक न करना। दूर रहना। बचना। सकल्प या विचार तक न करना। जैसे,—(क) उसने मुझे बहुत दिक किया, अब उसका कभी नाम न लूँगा। (ख) उसका स्वाद इतना बुरा है कि एक बार खाओगे तो फिर कभी नाम न लोँगे। (ग) अब वह यहाँ आने का नाम तक नहीं लेता। तो मेरा नाम नहीं = तो मैं कुछ भी नहीं। तो मुझे तुच्छ समझना। जैसे,—यदि सवेरे मैं उसे न लाऊँ तो मेरा नाम नहीं। नाम निकल जाना = किसी (अली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध हो जाना। किसी विषय में ख्याति हो जाना। किसी बात के लिये मशहूर या बदनाम हो जाना। जैसे,—जिसका नाम निकल जाता है वह अगर कुछ न करे तो भी लोग उसी को कहते हैं। नाम निकलना = (१) किसी बात के लिये नाम प्रसिद्ध होना। (२) तत्र आदि की युक्ति से किसी वस्तु को पुराने वाले का नाम प्रकट होना। (३) नाम का कहीं प्रकट या प्रकाशित होना। जैसे, गजट में नाम निकलना। नाम निकलवाना = (१) बदनामी कराना। नाम में कलंक लगवाना। (२) मंत्र, तत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट कराना। (३) किसी नामावली में से नाम कटवाना। किसी विषय से किसी को अलग कराना। नाम निकालना = (१) (अली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध करना। यश फैलाना या बदनामी करना। (२) मंत्र, तत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट करना। (३) किसी नामावली से नाम काटना। किसी विषय से अलग करना। नाम पड़ना = नाम रखा जाना। नाम करण होना। नाम निश्चित होना। किसी के नाम = (१) किसी के लिये। किसी के पक्ष में। किसी के व्यवहार या उपयोग के लिये। किसी के अधिकार में। किसी को कानून द्वारा प्राप्त। जैसे,—(क) उसकी सब जायदाद स्त्री के नाम है। (ख) उसने अपनी संपत्ति भतीजे के नाम कर दी। (२) किसी को लक्ष्य करके। किसी के सबब में। जैसे,—उसके नाम वारंट निकला है। (३) किसी के प्रति। किसी को संबोधन करके। किसी के हाथ में पड़ने के लिये। किसी को दिए जाने के लिये। जैसे,—किसी के नाम चिट्ठी आना, संमन जारी होना इत्यादि। किसी के नाम पर = किसी को अर्पित करके। किसी के निमित्त। किसी के स्मारक या तुष्टि के लिये। किसी का नाम चलाने या किसी के प्रति आदर, भक्ति प्रकट करने के लिये। जैसे,—(क) ईश्वर के नाम पर कुछ दो। (ख) उसने अपने बाप के नाम पर यह धर्मशाला बनवाई है। किसी के नाम पडना = किसी के नाम के आगे लिखा जाना। जिम्मेदार रखा जाना। किसी के नाम डालना = किसी के नाम के आगे लिखना। किसी के जिम्मे रखना। जैसे,—भगर उनसे रुपया बसुल न हो तो मेरे नाम डाल देना। (किसी के) नाम पर मरना या मिटना = किसी के प्रेम में चीन होना। किसी के प्रेम में खपना। प्रेम के आवेश में अपने हानि लाभ या कष्ट को ओर कुछ भी ध्यान न देना।

(किसी के) नाम पर खूता न लगाना = किसी को ग्रन्थतुच्छ समझना (किसी के) नाम पर बैठना = (१) किसी के भरोसे सतोष करके स्थिर रहना । किसी के ऊपर यह विश्वास करके प्रय धारण करना या उद्योग छोड़ देना कि जो कुछ उसे करना होगा, करेगा । जैसे,—प्रब तो ईश्वर के नाम पर बैठ रहते हैं, जो कुछ होना होगा सो होगा । (२) किसी के आसरे में या किसी के ह्वाल से कोई ऐसा काम न करना जिसका करना स्वाभाविक या आवश्यक हो । जैसे,—(क) यह स्त्री कब तक अपने पति के नाम पर बैठी रहेगी और दुमरा विवाह न करेगी ? (ख) कब तक अपने मित्र के नाम पर बैठ रहोगे, उठो तैयारी करो । नाम पुकारना = ध्यान आकर्षित करने या बुलाने के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाना । (किसी का) नाम बद करना = बदनामी करना । कलक लगाना । दोष लगाना । नाम बदनाम करना = कलक लगाना । ऐव लगाना । बदनामी करना । (किसी का) नाम बद होना = किसी बुरी बात के लिये किसी का नाम प्रसिद्ध हो जाना । नाम निरुल जाना । नाम बाकी रहना = (१) मरने या कहीं चले जाने पर भी कीर्ति का बना रहना । लोगों में स्मरण बना रहना । (२) केवल नाम ही नाम रह जाना और कुछ न रहना । पुरानी बातों के कारण प्रसिद्धि मात्र रह जाना पर उन-बातों का न रहना । जैसे,—सिर्फ नाम बाकी रह गया है कुछ जायदाद प्रब उनके पास नहीं है । नाम बिकना = नाम प्रसिद्ध हो जाने के कारण किसी की वस्तु का भावर होना । नाम मशहूर होने से कदर होना । नाम बिगाड़ना = (१) कोई बुरा काम करके बदनामी करना । (२) बदनामी करना । कलक लगाना । नाम मिटना = (१) नाम जाता रहना । नाम न रहना । स्मारक या कीर्ति का लोप होना । (२) नाम तक शेष न रहना । कोई चिह्न न रह जाना । एक दम प्रभाव हो जाना । नाम मात्र = नाम लेने भर को । बहुत थोड़ा । मृत्युत मृत्यु । (कोई) नाम रखना = (१) नाम निश्चित करना । नामकरण करना । (किसी का) नाम रखना = (१) नाम निश्चित करना । नामकरण करना । (२) कीर्ति सुरक्षित रखना । अच्छा या बड़ा काम करके यश को स्थिर रखना । नाम डूबने न देना । जैसे,—यह लड़का अपने बाप का नाम रखेगा । (३) बदनामी करना । निंदा करना । बुरा कहना । दे० 'नाम धरना' । (किसी को) नाम रखना = (१) बदनाम करना । बुरा कहना । दोष लगाना । (२) दोष निकालना । गुण निकालना । ऐव बताना । दे० 'नाम धरना' । नाम लगना = किसी दोष या अपराध के संवध में नाम लिया जाना । दोष लगना । कलक मड़ा जाना । जैसे,—किया किसी ने और नाम लगा हमारा । नाम लगाना = किसी दोष या अपराध के संवध में नाम लेना । दोष मड़ना । अपराध लगाना । कलक लगाना । जैसे,—खुद तुम्हीं ने यह काम किया और अब दूसरे का नाम लगाते हो । (किसी का) नाम लिखना = किसी

कार्य या विषय में सम्मिलित करने के लिये रजिस्टर, बही आदि में नाम लिखना । किसी मठली, सस्था, कार्यालय आदि में सम्मिलित करना । जैसे,—इस लड़के का नाम अभी स्कूल में नहीं लिखा है । (किसी के) नाम लिखना = किसी के नाम के आगे लिखना । किसी के जन्मे लिखना या टोकरना । जैसे,—इसका दाम हमारे नाम लिख लो । नाम लिखाना = किसी विषय या कार्य में सम्मिलित होने के लिये रजिस्टर बही आदि में नाम लिखाना । किसी मंडली, सस्था या कार्यालय आदि में सम्मिलित होना । जैसे,—इसका नाम स्कूल में जल्दी लिखाओ । (किसी का) नाम लेकर = (१) किसी प्रसिद्ध या बड़े आदमी के नाम से लोगों का ध्यान आकर्षित करके । नाम के प्रभाव से । जैसे,—यह अपने बाप का नाम लेकर भीख माँगेगा और क्या करेगा ? (२) (किसी देवता या पूज्य पुरुष का) स्मरण करके । जैसे,—प्रब तो भगवान का नाम लेकर इस काम को कर चलते हैं । नाम लेना = (१) नाम का उच्चारण करना । नाम कहना । (२) फलप्राप्ति के लिये या भक्तिवश ईश्वर या देवता का नाम बार बार उच्चारण करना । नाव जपना । नाम स्मरण करना । जैसे,—इस उपकार के लिये वे सदा प्रापता नाम लेते रहेंगे । (४) चर्चा करना । जिह्व करना । जैसे,—फिर वहाँ जाने का नाम लेते हो । (५) नाम बदनाम करना । दोष लगाना । जैसे,—बपों व्यर्थ किसी का नाम लेते हो, न जाने किसने यह काम किया है । नाम व निशान = ऐसा चिह्न या लक्षण जिससे किसी वस्तु के होने का प्रमाण मिले । पता । खोज । जैसे,—यहाँ बस्ती का तो कहीं नाम व निशान नहीं है । नाम व निशान मिट जाना = पता न रह जाना । एकदम नाश हो जाना । नाम व निशान न होना = एकदम प्रभाव होना । विलकुल न होना । एक भी या लेशमात्र न होना । (किसी) नाम से = शब्द द्वारा निर्दिष्ट होकर या करके । जैसे, किसी नाम से पुकारना । (किसी) के नाम से = (१) चर्चा से । जिह्व से । जैसे,—मुझे तो उसके नाम से चिढ़ है । (२) (किसी का) सर्वंध बताकर । नाम लेकर । यह प्रकट करके कि कोई बात किसी की ओर से है । (किसी की) जिम्मेदारी बताकर । जैसे,—जितना रुपया चाहना मेरे नाम से ले लेना । (३) (किसी को) हुकदार या मालिक बनाकर । (किसी के) उपयोग या भोग के लिये । जैसे,—वह लड़के के नाम से जायदाद खरीद रहा है । (४) नाम के प्रभाव से । नाम लेकर । ध्यान आकर्षित करके । जैसे,—अपने बड़ों के नाम से भीख माँग खाओगे । (५) नाम लेते ही । नाम का उच्चारण होते ही । जैसे,—उसके नाम से वह काँपता है । नाम से काँपना = नाम सुनते ही डर जाना । बहुत भय मानना । नाम होना = (१) नाम लगना । दोष मड़ा जाना । कलक लगना । जैसे,—बुराई कोई करे, नाम हो हमारा । (२) नाम प्रसिद्ध होना । जैसे,—काम तो दूसरे करते हैं, नाम उसका होता है ।

२ अच्छा नाम । सुनाम । प्रसिद्धि । ख्याति । यश । कीर्ति ।
जैसे,—इधर उनका बड़ा नाम है ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—नाम कमाना=प्रसिद्धि प्राप्त करना । कीर्तिलाभ करना । मशहूर होना । नाम करना=कीर्ति लाभ करना । प्रख्यात होना । जैसे—उसने लड़ाई में बड़ा नाम किया । नाम को धब्बा लगाना=दे० 'नाम पर धब्बा लगाना' । नाम को मरना=सुयश के लिये प्रयत्न करना । अच्छा नाम पाने के लिये उद्योग करना । कीर्ति के लिये जी तोड़ परिश्रम करना । नाम चलना=यश स्थिर रहना । कीर्ति का बहुत दिनों तक बना रहना । नाम जगाना=नाम चमकना । कीर्ति फैलना । ख्याति होना । नाम जगाना=नाम चमकना । उज्ज्वल कीर्ति फैलाना । नाम डुबाना=नाम को कलकित करना । यश और कीर्ति का नाश करना । मान और प्रतिष्ठा खोना । नाम डूबना=(१) नाम कलकित होना । यश और कीर्ति का नाश होना । (२) नाम न चलना । कित्ति का लुप्त होना । स्मारक न रहना । नाम पर धब्बा लगाना=नाम को कलकित करना । यश पर छाछन लगाना । बदनामी करना । जैसे,—क्यों ऐसा काम करके बड़ों के नाम पर धब्बा लगाते हो ? नाम पाना=प्रसिद्धि प्राप्त करना । मशहूर होना । नाम रह जाना=लोगों में स्मरण बना रहना । कीर्ति की चर्चा रहना । यश बना रहना । जैसे,—मरने के पीछे नाम ही रह जाता है । नाम से पुचना=नाम प्रसिद्ध होने के कारण आदर पाना । वाम से बिकना=नाम प्रसिद्ध हो जाने से आदर पाना । नाम ही नाम रह जाना=पुरानी बातों के कारण लोगों में प्रसिद्ध मात्र रह जाना, पर उन बातों का न रहना । जैसे,—नाम ही नाम रह गया है, उनके पास अब कुछ है नहीं ।

नाम^१—सङ्घा पु० [फा०] १ प्रसिद्धि । इज्जत । धाक । दबदबा ।
२ कुल । वंशपरंपरा । नस्ल । ३ यादगार । स्मारक । ४ कलक । लाछन [को०] ।

नामक—वि० [सं०] नाम से प्रसिद्ध । नाम धारण करनेवाला ।
जैसे,—बिहार में पटना नामक एक नगर है ।

नामकरण—सङ्घा पु० [सं०] १ नाम रखने का काम । पहचान के लिये नाम निश्चित करने की क्रिया । २ हिंदुओं के सोलह सत्कारों में से एक जिसमें बच्चे का नाम रखा जाता है ।

विशेष—यह पाँचवाँ सत्कार है । जन्म से ग्यारहवें या बारहवें दिन बच्चे का नामकरण सत्कार होना चाहिए । ग्यारहवाँ दिन इसके लिये बहुत अच्छा है, यदि ग्यारहवें दिन न हो सके तो बारहवें दिन होना चाहिए । गोमिल गृह्यसूत्र में ऐसी ही व्यवस्था है । स्मृतियों में वरुण के अनुसार व्यवस्था मिलती है, जैसे, क्षत्रिय के लिये तेरहवें दिन, वैश्य के लिये सोलहवें दिन और शूद्र के लिये बाईसवें दिन । गोमिल गृह्यसूत्र में

नामकरण का विधान इस प्रकार है बच्चे को अच्छे कपड़े पहनाकर माता वाम भाग में बैठे हुए पिता की गोद में दे । फिर उसकी पीठ की ओर से परिक्रमा करती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो । इसके अनंतर पति वेदमन् का पाठ करके बच्चे को फिर अपनी पत्नी की गोद में दे दे । फिर होम आदि करके नाम रखा जाय ।

नामकरण पद्धति में यह विधान इस रूप में हो गया है नामकरण के दिन पिता गोरी, षोडशमात्रिका आदि का पूजन और वृद्धिश्चाद करके अपनी पत्नी को वाम भाग में बैठावे, फिर पत्थर की पटरी पर दो रेखाएँ खीचे फिर दीपक जलाकर यदि लडका हो तो उसके दाहिने कान के पास 'अमुक देव शर्मा' इत्यादि और लडकी हो तो 'अमुक देवी' इत्यादि कहकर नामकरण करे । नाम के अन्त में यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा और देव, क्षत्रिय हो तो वर्मा या प्राता, वैश्य हो तो भूति या गुप्त, और शूद्र हो तो दास होना चाहिए । पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्प का नाम तद्धितात न होना चाहिए, पर स्त्री का नाम यदि तद्धितात हो तो उतना दोष नहीं, जैसे, गाधारी, कैकेयी ।

नामकर्म—सङ्घा पु० [सं० नामकमन्] १. नामकरण सत्कार । २ जैन शास्त्रानुसार कर्म का वह भेद जिससे जीव गति और जाति आदि पर्यायों का अनुभव करता है ।

विशेष—नामकर्म ३४ प्रकार के माने गए हैं—जैसे नरक गति, तिर्यक् गति, द्वीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, अस्थिर, शुभ, अशुभ, स्थावर, सूक्ष्म इत्यादि ।

नामकीर्तन—सङ्घा पु० [सं०] ईश्वर के नाम का जप या उच्चारण । भगवान् का भजन ।

नामकृत—सङ्घा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पसली चीज का नाम छिपाना और उसका दूसरा नाम बताना । कल्पित नाम बतलाना ।

नामग्रह, नामग्रहण—सङ्घा पु० [सं०] नाम के साथ उल्लेख । नाम लेकर कहना या पुकारना [को०] ।

नामग्राम—सङ्घा पु० [सं०] नाम और पता ।

नामजद—वि० [फा० नामजद] १. जिसका नाम किसी बात के लिये निश्चित कर लिया गया हो या चुन लिया गया हो । जैसे,—वे ६५ साल तहसीलदारी के लिये नामजद हो गए हैं । २ प्रसिद्ध । मशहूर ।

नामजदगी—सङ्घा स्त्री० [फा० नामजदगी] किसी बात या काम के लिये नाम निश्चित करना [को०] ।

नामजाद—वि० [फा० नामजद] दे० 'नामजद-२' । उ०—पाह लोन स्याम कौ हराम पोर कैसे होइ नामजाद जगत में जीतयो पन तोनों है ।—सु दर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८५ ।

नामत.—अव्य० [सं० नामतम्] नाम के द्वारा । नाम से [को०] ।

नामदार—वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो । नामी । प्रसिद्ध ।

नामदेव—सङ्घा पु० [सं०] १. कृष्ण के उपासक एक प्रसिद्ध भक्त ।

विशेष—नामा जो कृत भक्तमाल में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है। नामदेव वामदेव जी के नाती (दोहित्र) थे। वामदेव कृष्ण के उपासक थे इससे नामदेव में भी बाल्यावस्था से ही कृष्ण की सच्ची भक्ति थी। वामदेव कुछ दिनों के लिये बाहर गए और अपने दोहित्र नामदेव से कृष्ण की प्रतिमा को प्रति दिन दूध चढ़ाने के लिये कहते गए। नामदेव ने मूर्ति के आगे दूध रखा और पीने की प्रार्थना का। जब मूर्ति ने दूध न पिया तब नामदेव आत्महत्या करने पर उद्यत हुए। इस पर कृष्ण भगवान् ने प्रकट होकर दूध पिया। वामदेव जब रोकर भाए तब उन्हें यह व्यापार देख बड़ा आश्चर्य हुआ। धीरे धीरे यह बात बादशाह के कानों तक पहुँची। उसने नामदेव को बुलाकर करामात दिखाने के लिये कहा। नामदेव ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन समयवश एक गाय का बछड़ा मर गया और वह उसके शोक में बहुत व्याकुल हुई। नामदेव ने बछड़े को जिला दिया।

२ महाराष्ट्र देश के एक प्रसिद्ध कवि जो सन् १३०० के लगभग वर्तमान थे।

नामद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत जिसमें भगहन सुदी तीज की गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, काँति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इन बारह देवियों की पूजा होती है (देवीपुराण)।

नामधन—संज्ञा पुं० [सं०] एक सकर राग जो मल्लार, शकरामरण, विलावल, सुहे और केदारे के योग से बना माना जाता है।

नामधरार्द्र—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाम + धरना] बदनामी। निंदा। अपकीर्ति।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

नामधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में नाम पर्यात् संज्ञा पदों से निर्मित धातु [क्रि०]।

नामधाम—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + धाम] नाम और पता। नाम ग्राम। पता ठिकाना।

नामधारक—वि० [सं०] केवल किसी नाम को धारण करनेवाला, उस नाम के अनुसार कर्म न करनेवाला। नाम मात्र का।

विशेष—जो ब्राह्मण वेदपाठ आदि कर्म न करते हो उन्हें पराशर स्मृति में 'नामधारक' कहा गया है।

नामधारी—वि० [सं०] नाम धारण करनेवाला। नामवाला। नामक।

नामधेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाम। अभिधान। माह्य। निदर्शक शब्द। २ नामकरण।

नामधेय—वि० नामवाला। नाम का।

नामना—क्रि० सं० [सं० नमन्] झुकाना। नवाना। प्रणमन करना। उ०—नामै सोस अनेक नरैसुर, रेत सुखी प्रणरैह।—रघु० ६०, पु० ६२।

नामनाभिक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [क्रि०]।

नामनिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नामस्मरण (बैन)।

नामनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] नाम का कथन या उल्लेख [क्रि०]।

नामनिशान—संज्ञा पुं० [फा०] चिह्न। पता। ठिकाना। जैसे,—उस मैदान में दस्ती का नाम निशान भी नहीं है।

नामबोला—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + बोलना] नाम लेनेवाला। नाम करनेवाला। विनय और भक्तिपूर्वक नामस्मरण करनेवाला।

नाममात्र—वि० [सं०] १ नाम लेने भर का। श्रव्यत मत्प। कहने भर को [क्रि०]।

नाममाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाम पर्यात् संज्ञा शब्दों का क्रमबद्ध संग्रह या अभिधान। पर्यायवाची या अनेकार्थक शब्दों का कोश। जैसे,—अनेकार्थ नाममाला।

नाममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मुहर जिस पर नाम खुदा हो। वह भँगूठी जिस पर नाम हो [क्रि०]।

नामयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो यज्ञ केवल नाम या तुमधाम के लिये किया जाय। २ भगवत्प्रामसकीर्तन का अनुष्ठान या प्रायोजन।

नामरासी—वि० [सं० नाम + राशि] एक ही नामवाला। समान नाम का।

नामरूप—संज्ञा पुं० [सं०] मन्त्र के आधार स्वरूप प्रगोचर वस्तु तत्त्व के परिवर्तनशील नाना रूप या आकार जो इन्द्रियों का ज्ञान पड़ते हैं तथा उनके भिन्न भिन्न नाम जो भेदज्ञान के अनुसार रखे जाते हैं।

विशेष—वेदांत के अनुसार एक ही प्रगोचर नित्य तत्त्व है। जो अनेक भेद दिखाई पड़ते हैं वे वास्तविक नहीं हैं। वे केवल रूपों या आकारों के कारण हैं जो इन्द्रियों या मन के मस्कार मात्र हैं। समुद्र और तरंग अथवा सोना और गहना दो भिन्न भिन्न नाम हैं। एकीकरण द्वारा आत्मा सोने और गहने में अथवा समुद्र और तरंग में सामान्य गुणवाला एक ही पदार्थ देखती है। सोना एक पदार्थ है पर भिन्न भिन्न भवसरो पर बदलनेवाले आकारों के जो स्फकार इन्द्रियों द्वारा मन पर होते हैं उनके कारण सोने को ही कभी पड़ा, कभी कगन, कभी भँगूठी इत्यादि कहते हैं। इसी प्रकार जगत् में यावत् दृश्य है सब केवल नामरूपात्मक हैं। उनके भीतर वस्तुसत्ता छिपी हुई है। वेदांत में सदा बदलते रहनेवाले नामरूपात्मक रूप दृश्य जगत् को 'मिथ्या' और 'नाशवान' और नित्य वस्तुतत्त्व को सत्य वा अमृत कहते हैं।

नामर्द—वि० [फा०] १ जिसमें दुःख की शक्ति विशेष न हो। नपु सक। बलीव। २ भीरु। सरपोक। कायर।

नामर्दा—वि० [फा० नामर्दह्] दे० 'नामर्द'।

नामर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ नपु सकता। बलीवता। २ कायरपन। भीरुता। साहस का अभाव।

नामलेवा—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + लेना] १ नाम लेनेवाला। नाम स्मरण करनेवाला। २ उत्तराधिकारी। सन्तति। वारिस। जैसे,—नामलेवा रहा न पानी देवा।

नामवर—वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो। नामी। प्रसिद्ध। मशहूर।

नामवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] कीर्ति । प्रसिद्धि । शुहरत ।

नामवर्जित—वि० [सं०] १ नाम से रहित । नामहीन । २ मूर्ख । वेवकूफ [को०] ।

नामवाचक—वि० [सं०] नाम व्यक्त करनेवाला ।

नामवाचक—सञ्ज्ञा पुं० १ नाम । २ व्यक्तिवाचक सज्ञा ।

नामशेष—वि० [सं०] १ जिसका केवल नाम बाकी रह गया हो । जो न रह गया हो । नष्ट । ध्वस्त । २ न । मरा हुआ । ३—नामशेष रह जायें नाम वैरी बस भव से ।—साकेत पु० ४२० ।

नामशय—सञ्ज्ञा पुं० मृत्यु । मोत [को०] ।

नामसत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति या वस्तु का ठीक ठीक नामकथन चाहे वह नाम उसकी अवस्था या गुण के अनुकूल न हो । जैसे,—लक्ष्मीपति यदि दरिद्र है तो भी उसे लोग लक्ष्मीपति ही कहेंगे । (जैन) ।

नामांक—वि० [सं० नामाङ्क] १ 'नामांकित' [को०] ।

नामांकित—वि० [सं० नामाङ्कित] जिसपर नाम लिखा हुआ हो या खुदा हो ।

नामांतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नामान्तर] द्वितीय नाम । उपनाम ।

नामा—वि० [सं० नामन्] नामवाला । नामधारी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुव्रीहि समास के उत्तर पद में होता है ।

नामा—सञ्ज्ञा पुं० नामदेव भक्त ।

नामाकूल—वि० [फा० ना + अ० माकूल] १ अयोग्य । २. अयुक्त । अनुचित ।

नामानुशासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अधिपान । कोश [को०] ।

नामापराध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रतिष्ठित का नाम लेकर अपशब्द प्रयोग [को०] ।

नामाभिधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ 'नामानुशासन' [को०] ।

नामावर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नामवर] पत्रवाहक । ३—व फातिल के यहाँ खत ले गया है । खुदा की ओर नामावर की ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६ ।

नामालूम—वि० [फा० ना + अ० मालूम] जो मातृम न हो । अज्ञात ।

नामावली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ नामों की पक्ति । नामों की सूची । २. वह कपड़ा जिसपर चारों ओर भगवान का नाम खड़ा होता है और जिसे भक्त लोग झोढ़ते हैं । रामनामो ।

नामि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

नामिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाम संबंधी । सज्ञा संबंधी ।

नामित—वि० [सं०] भुक्ता हुआ ।

नामिनेटेड—वि० [अ०] जो किसी पद के लिये चुना गया हो । जो किसी स्थान के लिये पसंद किया गया हो । मनोनीत । नामजद । जैसे, नामिनेटेड मेंबर ।

नामिनेशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] किसी पद के लिये किसी का मनोनीत किया जाना । नामजदगी ।

नामो—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाम + ई (प्रत्यय) अथवा सं० नामिन्] १ नामधारी । नामवाला । जैसे,—रामप्रसाद नामी एक मनुष्य । २ जिसका बड़ा नाम हो । प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर । जैसे, नामी भादमी ।

नामो—नामी गिरामी ।

नाम, गिरामी—वि० [फा०, मि० मं० नामग्राम] जिसका बड़ा नाम हो । प्रसिद्ध । विख्यात ।

नामुनासिब—वि० [फा०] अनुचित । अयोग्य । गैरवाजिव ।

नामुमकिन—वि० [फा० ना + अ० मुमकिन] जो कभी न हो सके । असंभव ।

नामुराद—वि० [फा०] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो । विफलमनोरथ ।

विशेष—पश्चिम में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में होता है ।

नामुवाफिक—वि० [फा० ना + अ० मुवाफिक] जो मुवाफिक या अनुकूल न हो । प्रतिकूल । विरुद्ध ।

नामूसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० नामूस (= इज्जत)] वेइज्जती । अप्रतिष्ठा । बदनामी । निंदा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नामेहरवान—वि० [फा०] जो मेहरवान न हो । भक्तपालु ।

नाम्ना—वि० [वि० स्त्री० नाम्नी] नामवाला । नामधारी ।

नाम्य—वि० [सं०] भुक्ताने योग्य ।

नायँ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाम] १ 'नाम' ।

नायँ^२—अव्य० [हि०] १ 'नही', 'नाही' ।

नायँ^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नय । नीति । २ उपाय । युक्ति । ३ नेता । अगुग्रा । ४ नेतृत्व । अगुग्राई ।

नायँ^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाय] नाय । नौका । किशोरी ।

नायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नायिका] १ जनता को किसी ओर प्रवृत्त करने का अधिकार या प्रभाव रखनेवाला पुरुष । लोगों को अपने कहे पर चलानेवाला भादमी । नेता । अगुग्रा । सरदार । जैसे, सेना का नायक । २. अधिपति । स्वामी । मालिक । जैसे, गणनायक । ३. श्रेष्ठ पुरुष । जननायक । ४—सब नायक होई जाय वैल फिर कौन लदावै ।—रत्न०, भा० १, पृ० ५ । ४ माहित्य में शृंगार का प्रालंबन या साधक रूय-यौवन-संपन्न भयवा वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो ।

विशेष—साहित्यदर्पण में लिखा है कि दानशील, कृती, सुश्रो, रूपवान, युवक, कार्यकुशल, लोकरजक, तेजस्वी, पंडित और सुशील ऐसे पुरुष को नायक कहते हैं । नायक चार प्रकार के होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रज्ञात । जो शास्त्रश्लाघारहित, क्षमाशील, गंभीर, महाबलशाली,

स्थिर और विनयसपन्न हो उसे धीरोदात्त कहते हैं। जैसे राम, युधिष्ठिर। मायावी, प्रचंड, प्रहकार और मातृमन्त्राघा-युक्त नायक को धीरोद्धत कहते हैं। जैसे, भीमसेन। निश्चित, मूढ़ और नृत्यगीतादिप्रिय नायक को धीरलसित कहते हैं। त्यागी और कृती नायक धीरप्रशात कहलाता है। इन चारों प्रकार के नायकों के फिर अनुकूल, दक्षिण, घृष्ट और शठ ये चार भेद किए गए हैं। शृगार रस में पहले नायक के तीन भेद किए गए हैं—पति, उपपति और वैशिक (वैश्यानुरक्त)। पति चार प्रकार के कहे गए हैं—अनुकूल, दक्षिण, घृष्ट और शठ। एक ही विवाहिता स्त्री पर अनुरक्त पति को अनुकूल, अनेक स्त्रियों पर समान प्रीति रखनेवाले को दक्षिण, स्त्री के प्रति अपराधो होकर बार बार अपमानित होने पर भी निलंजितापूर्वक विनय करनेवाले को घृष्ट और छलपूर्वक अपराध छिपाने में चतुर पति को शठ कहते हैं। उपपति दो प्रकार के कहे गए हैं—वचनचतुर और क्रियाचतुर।

५. हार के मध्य की मणि। माला के बीच का नग। ६. संगीत कला में निपुण पुरुष। कलावत। ७. एक वर्णवृत्त का नाम। ८. एक राग जो दोषक राग का पुत्र माना जाता है। ९. दस सेनापतियों के ऊपर का अधिकारी। १०. कौटिल्य के अनुसार बीस हाथियों तथा घोड़ों का मध्यक्ष। ११. शाक्य मुनि का नाम (को०)।

नायिका—सङ्गा स्त्री० [सं० नायिका] १. ३०. 'नायिका'। २. वेश्या की म०। ३. कुटनी। हूती।

नायिकाधिप—सङ्गा पुं० [सं०] राजा। नरेश (को०)।

नायकी—सङ्गा पुं० [सं०] एक राग का नाम।

नायकी कान्हडा—सङ्गा पुं० [सं० नायकी + हिं० कान्हडा] एक राग, जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

नायकी मल्लार—सङ्गा पुं० [सं० नायक + मल्लार] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

नायणी—सङ्गा स्त्री० [हिं० नायन] ३०. 'नायन'। उ०—सहज ललाई सपरित प्रीतम प्यारी पाय। निरखे भरमे नायणी जावक दे मिलि जाय।—वाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ३८।

नायत—सङ्गा पुं० [हिं०] वैद्य।

नायन, नायनि—सङ्गा स्त्री० [हिं० नाई] [स्त्री० नाइन] नाई की स्त्री। नापित का काम करनेवाली स्त्री। उ०—औरन के पाइन दियो, नायनि जावक लाल। प्रान पियारी रावरी परखत तुम्हें रसाल।—मति० ग्र०, पृ० २६३।

नायब—सङ्गा पुं० [सं०] १. किसी की ओर से काम करनेवाला। किसी के काम की देखरेख रखनेवाला। मुनीम। मुख्तार। २. काम में मदद देनेवाला छोटा फकसर। सहायक। सक्षकारी। जैसे, नायब दीवान, नायब तहसीलदार।

नायवी—सङ्गा स्त्री० [सं० नायब + ई (प्रत्यय०)] १. नायब का काम। २. नायब का पद।

नायाब—वि० [फ्रा०] १. जो न मिलता हो। अप्राप्य। २. उत्कृष्ट।

नायिका—सङ्गा स्त्री० [सं०] १. रूप-गुण-सपन्न स्त्री। वह स्त्री जो शृगार रस का मार्जवन हो प्रयत्न किसी काव्य, नाटक आदि में जिसके चरित्र का वर्णन हो।

विशेष—शृगार में प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद बतलाए गए हैं—उत्तमा, मध्यमा, और अधमा। प्रिय के प्रहितकारी होने पर भी प्रहितकारी स्त्री को उत्तमा प्रिय के हित या प्रहित करने पर हित या प्रहित करनेवाली स्त्री को मध्यमा और प्रिय के प्रहितकारी होने पर भी प्रहितकारी स्त्री को अधमा कहते हैं। धर्मानुसार इनके तीन भेद हैं—स्वकीया, परकीया और मामान्या। अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री को स्वकीया या स्वकीया, परपुरुष में प्रेम रखनेवाली स्त्री को परकीया या अन्या और धन के लिये प्रेम करनेवाली स्त्री को मामान्या, साधारण या गणिका कहते हैं। वय क्रमानुसार स्वकीया तीन प्रकार की मानी गई है—मुग्धा, मध्या और प्रीढ़ा। कामचेष्टारहित प्रकृतियोजना को मुग्धा कहते हैं जो दो प्रकार की कही गई है—प्रजातयोजना और शातयोजना। ज्ञातयोजना के भी दो भेद किए गए हैं—नवोद्धा जो लज्जा और भय से पतिसमागम की इच्छा न करे और विश्रब्धनवोद्धा जिसे कुछ अनुराग और विश्वास पति पर हो। प्रवस्था के कारण जिस नायिका में लज्जा और कामवासना समान हो उसे मध्या कहते हैं। कामकला में पूर्ण रूप से कुशल स्त्री को प्रीढ़ा कहते हैं। इनमें से मध्या और मुग्धा ये दो भेद केवल स्वकीया में ही माने गए हैं, फिर मध्या और प्रीढ़ा के धीरा, अधीरा और योगधीरा ये तीन भेद किए गए हैं। प्रिय में परस्त्रीसमागम के चिह्न देख अप्रसहित सादर कोप प्रकट करनेवाली स्त्री को धीरा, प्रत्यक्ष कोप करनेवाली स्त्री को अधीरा तथा कुछ गुप्त और कुछ प्रकट कोप करनेवाली स्त्री को योगधीरा कहते हैं।

परकीया के प्रथम दो भेद किए गए हैं—ऊढ़ा और मूढ़ा। विवाहिता स्त्री यदि परपुरुष में अनुरक्त हो तो उसे ऊढ़ा या परोढा और अविवाहित स्त्री यदि अनुरक्त हो तो उसे मूढ़ा या कन्यका कहते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारभेद से भी कई भेद किए गए हैं—जैसे, गुप्ता, विदग्धा, लसिता इत्यादि। नायिकाओं के अट्टारस अलंकार कहे गए हैं। इनमें हास्य भाव और हेनरा ये तीन प्रगज कहलाते हैं। शोभा, कांति दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, प्रोदार्य और यैयं ये सात प्रयत्नसिद्ध कहे जाते हैं। लीला, विलास, विच्छिन्ति, विव्वोक, कित-किचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विकृत, तपन, मोग्ध, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अठारह स्वभावज कहलाते हैं।

२. पुराणानुसार दुर्गा की शक्ति। ३०. 'मृष्टनायिका' (को०)। ३. स्त्री। परनी (को०)। ४. एक प्रकार की कस्तूरी (को०)।

नारंग—सङ्गा पुं० [सं० नारङ्ग] १. नारंगी। २. गाजर। ३. पिप्पलीरस। ४. यमज प्राणी। ५. विट (को०)। ६. पञ्जाबी ब्राह्मणों की एक उपाधि।

नारंगी—सङ्गा स्त्री० [सं० नारङ्ग, सं० नारंज] १. नींबू की जाति

का एक मझोला पेठ जिसमें मोठे सुगन्धित और रसीले फल लगते हैं।

विशेष—पेड़ इसका नीबू ही का सा होता है। नारंगी का छिलका मुलायम और पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है और गूदे से अधिक लगा न रहने के कारण बहुत सहज में अलग हो जाता है। भीतर पतली भिल्ली से भरी हुई फाँकें होती हैं जिनमें रस से भरे हुए गूदे के रवे होते हैं। एक एक फाँक के भीतर दो या तीन बीज होते हैं। नारंगी गरम देशों में होती है। एशिया के अतिरिक्त युरोप के दक्षिण भाग, अफ्रीका के उत्तर भाग और अमेरिका के कई भागों में इसके पेड़ बगीचों में लगाए जाते हैं और फल चारों ओर भेजे जाते हैं। भारत में जो मोठी नारंगियाँ होती हैं वे और कई फलों के समान अधिकतर आसाम होकर चीन से आये हैं, ऐसा लोगों का मत है। भारतवर्ष में नारंगियों के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं सिलहट, नागपुर, सिकिम, नेपाल, गढ़वाल, कुमायूँ, दिल्ली, पूना और कुर्ग। नारंगी के प्रधान चार भेद कहे जाते हैं—सतरा, कंबला, माल्टा और चीनी। इनमें सतरा सबसे उत्तम जाति है। सतरे भी देशभद से कई प्रकार के होते हैं।

चीन और भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों में नारंगी का उल्लेख मिलता है। संस्कृत में इसे नागरग कहते हैं। 'नाग' का अर्थ है सिद्धर। छिलके के लाल रंग के कारण यह नाम दिया गया। सुश्रुत में नागरग का नाम आया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि युरोप में यह फल अरबवालों के द्वारा गया।

२ नारंगी के छिलके का सा रंग। पीलापन लिए हुए लाल रंग।
नारंगी^२—वि० पीलापन लिए हुए लाल रंग का।

नार^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नाल, नाड] १ गला। गरदन। ग्रीवा।

मुह०—नार नवाना = (१) गरदन झुकाना। सिर नीचे की ओर करना। (२) लज्जा, चिंता, सकोच, मान आदि के कारण सामने न ताकना। दृष्टि नीची करना। लज्जित होने, चिंता करने या रुठने का भाव प्रकट करना। उ०—समुक्ति निज अपराध करनी नार नावति नोचि। बहुत दिन तें बरति है के आँखि दीजे सीवि।—सूर (शब्द०)। नार नीची करना=दे० 'नार नवाना'। उ०—मान मनायो राधा प्यारी। कत हूँ रही नार नीची करि देखत लोचन भूले। सूर (शब्द०)।

२ जुलाहो की डरकी। नाल। ३, (५) कमल की डडी। मृणाल की नाल। उ०—बरनो गोवं कूँज के रीसी। कज नार जनु लागेउ सीसी।—जायसी ग्र०, (गुप्त), पृ० १६२।

नार^२—सञ्ज्ञा पुं० १ उल्लव नाल। आँवल नाल। वह गर्भस्थ पुत्र जिससे जन्म से पूर्व गर्भस्थ शिशु बंधा रहता है। वि० दे० नाल^२।

यौ०—नार बेवार।

२ नाला। ३ बहुत मोटा रस्सा। ४. सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोती की चुनन बाँधती हैं। नारा। नाला। ५ जुवा जोड़ने की रस्सी या तस्मा। ६. चरने के लिये जानेवाले घोषायो का झुंड।

नार^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० नारी] दे० 'नारी'।

नार^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नरसमूह। मनुष्यों की भीड़। २ तुरत का जनमा हुआ गाय का बछड़ा। ३ जल। पानी। उ०—हम घट विरह दून के दहा। लोयन नार समुंद होइ बहा।—चित्रा०, पृ० १७१। ४. सोठ। शूठी।

नार^५—वि० १ नरसवधी। मनुष्यसवधी। २. परमात्मासवधी।

नार^६—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] अनार [को०]।

नार^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ आग। अग्नि। उ०—असम होवे एक दिन में घर दुख की नार।—दक्खिनी०, पृ० १४०। २ नरक (को०)।

नारक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नरक। २ नरकस्थ प्राणी। नरक में रहनेवाला व्यक्ति।

नारक^२—वि० नरक संबंधी। नरक का [को०]।

नारकिक—वि० [सं०] नारकी [को०]।

नारकी—वि० [सं० नारकिन्] नरक भोगनेवाला या नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला। पापी।

नारकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का कीड़ा। अश्वकोट। २ किसी को आशा देकर निराश करनेवाला अभ्रम मनुष्य।

नारकीय—वि० [सं०] नरक संबंधी। नरक का। उ०—काली नारकीय छाया निज छोड़ गया वह मेरे भीतर। पेशाचिक सा कुछ दुखों से मनुज गया शायद उसमें मर।—ग्राम्या, पृ० ३०।

नारजीवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [को०]।

नारद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये देवर्षि माने गए हैं।

विशेष—वेदों में ऋग्वेद महल ८ और ९ के कुछ मंत्रों के कर्ता एक नारद का नाम मिलता है जो कहीं कएव और कहीं वश्यवशी लिखे गए हैं। इतिहास और पुराणों में नारद देवर्षि कहे गए हैं जो नाना लोकों में विचरते रहते हैं और इस लोक का सवाद उस लोक में दिया करते हैं। हरिवंश में लिखा है कि नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। ब्रह्मा ने प्रजासृष्टि की अभिलाषा करके पहले मरीचि, अत्रि आदि को उत्पन्न किया, फिर सनक, सनदन, सनातन, सनत्कुमार, स्कंद, नारद और रुद्रदेव उत्पन्न हुए (हरिवंश अ० १)। विष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने अपने सब पुत्रों को प्रजासृष्टि करने में लगाया पर नारद ने कुछ बाधा की, इसपर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि 'तुम सदा सब लोकों में घूमा करोगे, एक स्थान पर स्थिर होकर न रहोगे।' महामारत में इनका ब्रह्मा से सगीत की शिक्षा लाभ करना लिखा है। भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पीछे के पुराणों में नारद के सबंध में लंबी चोड़ी कथाएँ मिलती हैं। जैसे, ब्रह्मवैवर्त में इन्हें ब्रह्मा के कठ से उत्पन्न बताया है और लिखा है कि जब इन्होंने प्रजा प्रसूतीकार किया तब ब्रह्मा ने इन्हें शाप दिया कि पर्वत पर उपवर्ण नामक गधव हुए। एक

दिन इन्द्र की सभा में रमा का नाच देखते देखते ये काममो हो गए। इसपर ब्रह्मा ने फिर शाप दिया कि 'तुम मनुष्य हो'। द्रुमिल नामक गोप की स्त्री कलावती पति की आज्ञा से ब्रह्मवीर्य की प्राप्ति के लिये निकली और उसने काश्यप नारद से प्रार्थना की। अतः काश्यप नारद के वीर्यभक्षण से उसे गभ रहा। उसी गभ से गधर्व देह त्याग नारद उत्पन्न हुए। पुराणों में नारद बड़े भारी हरिभक्त प्रसिद्ध हैं। ये सदा भगवान् का यश गीणा बजाकर गाया करते हैं। इनका स्वभाव कलहप्रिय भी कहा गया है इसी से इधर की उधर लगानेवाले को लोग नारद कह दिया करते हैं।

२ विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम (महाभारत)। ३ एक प्रजापति का नाम। ४ काश्यप मुनि की स्त्री से उत्पन्न एक गधर्व। ५ चौबीस बुद्धों में से एक। ६ शाकद्वीप का एक पर्वत (मध्यस्थ पुं)। ७ वह व्यक्ति जो लोगों में परस्पर झगडा लगाता हो। लडाई करनेवाला। ८ जलद।

नारदपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १, मठारह महापुराणों में से एक। इसमें सनकादिक ने नारद को संबोधन करके कथा कही है और उपदेश दिया है। इसमें कथाओं के अतिरिक्त तीर्थों और अर्थों के महात्म्य बहुत अधिक दिए हैं। २ बृहन्नारदीय नामक एक उपपुराण।

नारदान^④—संज्ञा पुं० [हिं०] जल निकलने की नाली। दे० 'नाबदान'। उ०—न्यारे न्यारे नारदान मूँदोंगी भरोखा जाल, पाइहे न पानी, पीन भावम न पावेगो।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १५६।

नारदी—संज्ञा पुं० [सं० नारदिन्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारदीय—वि० [सं०] नारद का। नारद संबंधी। जैसे, नारदीय पुराण।

नारना—क्रि० सं० [सं० ज्ञान, प्रा० णाण + हिं० ना] पाह लगाना। पता लगाना। आपना। ताडना। उ०—राधा मन में यह विचारति। मोह ते ये चतुर कहावति ये मन ही मन मोको नारति। ऐसे बचन कहेंगी इन पे चतुराई इनकी मैं झारति।—सूर०, १०। १७७१।

नारफिक—संज्ञा पुं० [अ०] विलायती घोड़े को एक जाति जो नारफाक प्रदेश में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े डीलडोल में बड़े, सुंदर और मजबूत होते हैं।

नार वेवारी—संज्ञा पुं० [हिं० नार + सं० विवार (= फैलाव)] भाँवल नाल। नाल और खेड़ी प्रादि। नारापोटी। उ०—नार वेवार समेत उठावा। लै वसुदेव चले तम छावा।—विश्राम (शब्द०)।

नारमन—संज्ञा पुं० [प०] १ फ्रांस के नारमंडी प्रदेश का निवासी। २ जहाज का रस्सा बाँधने का खूँटा।

नारबोरी—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] नारियल। उ०—कुँ केर केल कहू नारबोर।—प० रासो, पृ० ५५।

नारसिंह^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ नरसिंह रूपधारी विष्णु।

विशेष—तैत्तिरीय आरण्यक में नारसिंह की गायत्री मिलती है।

२ एक तंत्र का नाम। ३ एक उपपुराण जिसमें नरसिंह अवतार की कथा है। ४ १६वें कल्प का नाम (की०)।

नारसिंह^२—वि० दे० 'नारसिंह'।

नारसिंहो—वि० [सं० नारसिंह + ई (प्रत्य०)] नारसिंह संबंधी।

यौ०—नारसिंहो टोना = बडा गहरा टोना।

नारातक—संज्ञा पुं० [म० नारा + क] एक राक्षस जो रावण के पुत्रों में कहा गया है।

नारा^१—संज्ञा पुं० [म०] जल (ग०)।

नारा^२—संज्ञा पुं० [सं० नाल, हिं० नार] १ सूत की ढोरी जिसमें स्त्रियाँ घाघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं घोती की चुनन बाँधती हैं। इजारबद। नीवी। दे० 'नाडा'। उ०—नारायण सूयन जयन।—सूर (शब्द०)। २, लाल रंगा हुआ कच्चा सूत जो पूजन में देवताओं को चढ़ाया जाता है। मोली। कुसुम सूत। ३ हल के जुवे में बंधी हुई रस्सी। ४, बरसाती पानी के बहने का प्राकृतिक मार्ग। छोटी नदी। नाला। उ०—(क) चट्ट दिभि फिरेठ धनुष त्रिभि नारा।—मानस, २। १३३। (ख) बिच त्रिच सोह नदी पो नारा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २१२। ५ दे० 'नार'।

नारा^३—संज्ञा पुं० [फा० नालह] १ भावाज। शोर। २ सामूहिक भावाज। किसी मींग की ओर ध्यान दिलाने या प्रसन्नता और उत्साह व्यक्त करने के लिये बार बार बुलब की जानेवासी सामूहिक भावाज।

नाराइन—संज्ञा पुं० [सं० नारायण] दे० 'नारायण'।

नाराच—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोहे का बाण। वह तीर जो सारा लोहे का हो।

विशेष—शर में चार पल लगे रहते हैं और नाराच में पाँच। इसका चलाना बहुत कठिन है।

२, बाण। तीर। ३ दुर्दिन। ऐसा दिन जिसमें सादन घिरा हो, मध्द चले और इसी प्रकार के और उपद्रव हों। ४ एक वंशवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और चार रण होते हैं। इसे 'महामालिनी' और 'तारका' भी कहते हैं। ५ २४ मात्राओं का एक छंद। जैसे,—तय ससेन काल जीत बाल तीर जाय के। ६ जलहस्ती (की०)। ७ एक प्रकार का घृत (वैद्यक)।

नाराचघृत—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक घृत जो घी में चीते की जड़, त्रिफला, भटकैया, बायबिडग, घादि पकाकर बनाया जाता है और उदररोग में दिया जाता है।

नाराचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाराची' (पृ०)।

नाराची—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा तराजू जिसमें बहुत छोटी छोटी चीजें तोली जाती हैं। सुनारों का काँटा।

नाराज—वि० [फा० नाराज] अप्रसन्न। रुष्ट। नालुश। बका।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाराजगी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाराजगी] अप्रसन्नता।

नाराजी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाराजी] अप्रसन्नता। भ्रूपा। कोप।

नारायण—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। भगवान्। ईश्वर।

विशेष—इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रंथों में कई प्रकार से बतलाई गई है। मनुस्मृति में लिखा है कि 'नर' परमात्मा का नाम है। परमात्मा से सबसे पहले उत्पन्न होने के कारण अथ

को 'नारा' कहते हैं। जल जिसका प्रथम भयन या अधिष्ठान है उस परमात्मा का नाम हुआ 'नारायण'। महाभारत के एक श्लोक के भाष्य में कहा गया है कि नर नाम है आत्मा या परमात्मा का। आकाश आदि सबसे पहले परमात्मा से उत्पन्न हुए इससे उन्हें नारा कहते हैं। यह 'नारा' कारणस्वरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है इससे परमात्मा का नाम नारायण हुआ। कई जगह ऐसा भी लिखा है कि किसी मन्वन्तर में विष्णु 'नर' नामक ऋषि के पुत्र हुए थे जिससे उनका नाम नारायण पड़ा। ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में और भी कई प्रकार की व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में नारायण की गायत्री है जो इस प्रकार है—'नारायणाय विष्णवे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु प्रचोदयात्'। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त और उत्तर नारायण सूक्त तथा शतपथ ब्राह्मण (१३।६।२।१) और शांखायन श्रौत सूत्र (१६।१३।१) में नारायण शब्द विष्णु या प्रथम पुरुष के अर्थ में आया है। जैन लोग नरनारायण को ६ वासुदेवों में से आठवाँ वासुदेव कहते हैं।

- २ पूष का महीना। ३ 'अ' अक्षर का नाम। ४ कृष्ण यजुर्वेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। ५. नर ऋषि के सखा। उ०—नर नारायण की तुम दोऊ।—मानस, ४।५। ६ अजामिल का एक पुत्र (को०)। ७. नारायणी सेना (महाभारत)। ८ एक प्रकार का चूर्ण जो दवा के काम में आता है (को०)। ९ धर्मपुत्र नामक एक ऋषि। १०. एक अस्त्र का नाम।

नारायणक्षेत्र—सखा पु० [सं०] गंगा के प्रवाह से चार हाथ तक की भूमि (बृहद्दशम पुराण)।

नारायणतैल—सखा पु० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल।

विशेष—तिल के तेल में असगंध, भटकट्या, बेल् की जड़ की छाल, देवदार, जटामासी इत्यादि बहुत सी दवाएँ पकाकर इस तेल को तैयार करते हैं।

नारायणप्रिय—सखा पु० [सं०] १. शिव। २. सहदेव। ३ पोतचदन।

नारायणवलि—सखा पु० [सं०] आत्मघात द्वारा बुरी तरह से मरनेवाले पतित मृतक के प्रायश्चित्त के लिये एक बलिकर्म जो नारायण आदि पाँच देवताओं के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष—आत्महत्या करनेवाले की और्ध्वदंडिक क्रिया नियमानुसार समय पर नहीं की जाती। मृत्यु के एक वर्ष पर नारायणवलि और परांनर दाह (फूस के पुतले का दाह) करके तब श्राद्धादिक किए जाते हैं। आत्मघाती का जो दाह आदि करता है उसे भी प्रायश्चित्त करना चाहिए।

नारायणी^१—सखा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. गंगा। ४ सतावर। ५ मुद्गल मुनि की स्त्री का नाम। ६. श्रीकृष्ण की सेना का नाम जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन की सहायता के लिये दिया था। ७ सदानोरा नदी जिसमें नारायणशिला मिलती है।

नारायणी^२—विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारायणीय^१—वि० [सं०] नारायणसंबंधी।

नारायणीय^२—सखा पु० महाभारत का एक उपाख्यान जिसमें नारद और नारायण ऋषि की कथा है। यह शांति पर्व में है।

नाराशंस^१—वि० [सं०] प्रशंसासंबंधी। जिसमें मनुष्यों की प्रशंसा हो। स्तुतिसंबंधी।

नाराशंस^२—सखा पु० १ वेदों के वे मन्त्र जिनमें कुछ विशेष मनुष्यों, जैसे, राजाओं आदि का प्रशंसा होती है। प्रशस्ति। दानस्तुति आदि। २ वह धर्मचा जिसमें पितरों को सोमपान दिया जाता है। ३ पितरों के लिये धर्म में रखा हुआ सोम। ४. पितर।

नाराशंसो—सखा स्त्री० [सं०] १. मनुष्यों को प्रशंसा। २ वेद में मन्त्रों का वह भाग जिनमें राजाओं के दान आदि की प्रशंसा है।

नारिग^१—सखा पु० [सं० नारङ्ग] नारंगी। उ०—कच मग्न भूमि चिह्नकोद गस्सि। नारिग सुमन दारिम विगस्सि।—पु० रा०, १४। ६६।

नारि^१—सखा स्त्री० [सं० नारी] १. दे० 'नारी'। उ०—ऐहें पीव विचारि यो नारि केर फिरि जाय।—मति० प्र०, पु० ३०६। २. ग्रीवा। गर्दन। उ०—तुम सुनिओ सासु हमारी, मेरी नारि की हसुला भारी। तुम सुनिओ जेठानी हमारी मेरे बाँह बाबूबद भारी।—पोद्दार भा० प्र०, पु० ६१४।

नारिक—वि० [सं०] १. जलोय। जल का। जलसंबंधी। २. आत्मासंबंधी। आध्यात्मिक।

नारिकेर—सखा पु० [सं०] दे० 'नारिकेल'।

नारिकेल—सखा पु० [सं०] नारियल।

नारिकेलचीरी—सखा स्त्री० [सं०] नारियल की गिरी की बनी हुई एक प्रकार की खीर या मिठाई।

विशेष—गिरी के महीन महीन टुकड़ों को घी और चीनी के साथ गाय के दूध में पकाते हैं, गाढ़ा होन पर उतार लेते हैं।

नारिकेलखंड—सखा पु० [सं० नारिकेल खण्ड] एक औषध जो नारियल की गिरी से बनती है।

विशेष—नारियल की गिरी को पोसकर घी में मिलावे और फिर चीनी मिले हुए नारियल के पानी में उसे ढालकर पका डाले। एक जाने पर उसमें घनिया, पीपल, वशलोचन, इलायची, नागकेसर, जीरे और तेजपत्ते का चूर्ण ढालकर मिला दे। इसके सेवन से अम्लपित्त, मरुवि, क्षयरोग, रक्तपित्त और शूल दूर होना है तथा पुरुषत्व की वृद्धि होती है।

नारिकेली—सखा स्त्री० [सं०] १. नारियल की बनी मदिश। २. नारियल [को०]।

नारिगोरि^१—सखा स्त्री० [हिं० नाल + गोली] वास्तु। बटूक की गोली। उ०—नारिगोरि सा वत्ति राज मही बावहिंसि।—पु० रा०, २६। ७५।

नारियल—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] १ खजूर की जाति का एक पेड़ जिसके फल की गिरी खाई जाती है।

विशेष—खन के रूप में इसका पेड़ पचास साठ हथ तक ऊपर की ओर जाता है। इसके पत्ते खजूर हो के से होते हैं। नारियल गरम देशों में ही समुद्र का किनारा लिए हुए होता है। भारत के प्रायः पास के टापुओं में यह बहुत होता है। भारतवर्ष में समुद्रतट से अधिक से अधिक सो कोस तक नारियल अच्छी तरह होता है, उसके प्रागे यदि लगाया भी जाता है तो किसी काम का फल नहीं लगता। फल इसके सफेद होते हैं जो पतली पतली सीको में मंजरी के रूप में लगते हैं। फल गुच्छों में लगते हैं जो बारह चौदह भगुल तक लंबे और छह मात भगुल तक चौड़े होते हैं। फल देखने में लबोतरे और तिपट्टे दिखाई पड़ते हैं। उनके ऊपर एक बहुत कड़ा रेशेदार छिलका होता है जिसके नीचे कठो गुठली और सफेद गिरी होती है जो खान में मीठी होती है। नारियल के पेड़ लगाने की रीति यह है कि पके हुए फलों को लेकर एक या डेढ़ महीने घर में रख छोड़े। फिर बरसात में हाथ डेढ़ हाथ गड्ढे खोदकर उनमें उन्हें गाड़ दे और राख और क्षार ऊपर से ढाल दे। थोड़े ही दिनों में कल्ले फूटेंगे और पौधे निकल आएंगे। फिर छह महीने या एक वर्ष में इन पौधों को खोदकर जहाँ लगाना हो लगा दे। भारतवर्ष में नारियल बंगाल, मद्रास और बंबई प्रांत में लगाए जाते हैं। नारियल कई प्रकार के होते हैं। विशेष भेद फलों के रंग और आकार में होता है। कोई बिल्कुल लाल होते हैं, कोई हरे होते हैं और कोई मिले जुले रंग के होते हैं। फलों के भीतर पानी या रस भरा रहता है जो पीने में मीठा होता है। नारियल बहुत से कामों में आता है। इसके पत्तों की चटाई बनती है जो घरों में लगती है। पत्तों की सीकों के झाड़ू बनते हैं। फलों के ऊपर जो मोटा छिलका होता है उससे बहुत मजबूत रस्से तैयार होते हैं। खोपड़े या गिरी के ऊपर के कड़े कोश को चिकना और चमकीला करके प्याले और हुक्के बनाते हैं। गिरी मेंवों में गिनी जाती है। गिरी से एक मीठा गाढ़ा जमनेवाला तेल निकलता है जिसे लोग खाते भी हैं और लगाते भी। पूरी लकड़ों के घर की छाजन में इसका बरेशा लगता है। बंबई प्रांत में नारियल से एक प्रकार का मद्य या ताड़ी बनाते हैं।

वैद्यक में नारियल का फल, शीतल, दुर्जर, वृध्य तथा पित्त और दाहनाशक माना जाता है। ताजे फल का पानी शीतल, हृदय को हितकारी, दीपक और वीर्यवर्द्धक माना जाता है।

एशिया में रूम और मडागास्कर द्वीप से लेकर पूर्व की ओर अमेरिका के तट तक नारियल के जो नाम प्रचलित हैं वे प्रायः सं० नारिकेल शब्द ही के विकृत रूप हैं। यह बात प्रायः सर्वसम्मत है कि नारियल का आदिस्थान भारत और बरमा के दक्षिण के द्वीप (मालद्वीप, लकड्वीप, सिंहल, अरुमान, सुमात्रा, जावा इत्यादि) ही हैं। नारिकेल का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में तो नहीं मिलता पर महाभारत,

सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। कयासरित्सागर में नारिकेल द्वीप का उल्लेख है।

पर्या०—नारिकेल। लागली सदापुष्प। शिर फल। रमफल। सुनुग। कुचशेखर। दंडनील। नीलतरु। मगल्य। तृणराज। स्कधतरु। दाक्षिणात्य। न्यवकफल। दंडफल। तुग। सवाफल। फोशिवफल। फलमुंड। विश्वामित्रप्रिय।

यौ०—नारियल का खोपड़ा = नारियल की कड़ी गुठली जिसके भीतर गिरी को तह रहती है।

मुद्गा०—नारियल तोड़ना = मुसलमानों की एक रीति जो गर्म रहने पर की जाती है। नारियल तोड़कर उससे लड़का या लड़की पैदा होने का शकुन निकालते हैं।

२ नारियल का हुक्का।

नारियलपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [दश०] दक्षिण देश (बंबई प्रांत) का एक त्योहार जिसमें लोग नारियल ले लेकर समुद्र में फेंकते हैं। यह आषाढ़ सावन में होती है।

नारियली—संज्ञा स्त्री० [हि० नारियल] १. नारियल का खोपड़ा। २. नारियल का हुक्का। ३. नारियल की ताड़ी।

नारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। औरत। २. तीन गुण वणों की एक वृत्ति। जैसे—माधो ने। दी तारी। गोपों की। है नारी।

नारी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडि] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर लंबाई लिए भूरे होते हैं। पीठ और पूँछ भी भूरी होती है।

नारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नार] १. वह रस्सी जिससे जुए में हल बांधते हैं। नार। २. रथ और अश्व को युक्त करने वाली रज्जु या चमड़े का तस्मा। उ०—सुंदर रथ न चले बिन नारी।—सुंदर०, भा० १, पृ० ३५३।

नारी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडी] दे० 'नारी'।

नारी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नारी'।

नारीकवच—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशीय मूलक राजा।

विशेष—यह अश्वमेध का पुत्र और सोदास का पोत्र था। जब परशुराम क्षत्रियों का नाश कर रहे थे तब इन्हें स्त्रियों ने घेरकर बचा लिया था इसी से यह नाम पड़ा। इन्हीं से क्षत्रियों का फिर वंशविस्तार हुआ, इससे इन्हें मूलक कहते हैं।

नारीकेल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नारीकेली] नारियल।

नारीच—संज्ञा पुं० [सं०] नालिता शाक।

नारीतरंगक—संज्ञा पुं० [सं० नारीतरङ्गक] स्त्रियों के चित्त को चंचल करनेवाला पुरुष। जार। व्यभिचारी।

नारीतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में वर्णित एक तीर्थ जहाँ पाँच अक्षराएँ ब्राह्मण के शाप से जलजनु हो गई थी। अजुन ने इनका शाप से उद्धार किया था।

नारीदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] मनु द्वारा कथित नारियों के दस दोष [को०]।

नारीमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार कूर्म विभाग से तैश्मन्त की ओर एक देश ।

नारीष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका । चमेली ।

नारुतुद—वि० [सं० नारुतुद] १ जिसके शरीर पर किसी प्रकार का प्राघात न लग सके । अनाहत । २ जो अरुतुद (मर्मपीडक) न हो ।

नारु^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाल] उत्त्व नाल । प्रावल नाल । दे० 'नाल' । उ०—प्रावो, प्रावो, दाईं री मेरी प्रावो, नेक हंसि के नारु कटावो ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६१३ ।

नारु^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ ज्वर । डोल । २. एक रोग ।

विशेष—इस रोग में शरीर पर विशेषतः कटि के नीचे जघा, टाँग आदि में फुसियाँ सी हो जाती हैं और उन फुसियों में से सूत सा निकलता है । यह सूत वास्तव में कीड़ा होता है जो बढ़ते बढ़ते कई हाथ की लवाई का हो जाता है । ये कीड़े जब श्वचा के तलुजाल में होते हैं तब नारु या नहृक्वा होता है, जब रक्त की नलियों में होते हैं तब श्लीपद या फीलपाव रोग होता है । नारु का रोग प्रायः गरम देशों में ही होता है ।

ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं । अधिकतर तो जीवधारियों के शरीर के भीतर रहते हैं पर कुछ तालों और समुद्र के जल में भी पाए जाते हैं । सिरके का कीड़ा इसी जाति का होता है । ये कीट यद्यपि पेट के केचुए से सूक्ष्म होते हैं तथापि इनकी शरीररचना केबुझों की अपेक्षा अधिक पूर्ण रहती है । इन्हें मुँह होता है, भ्रमल अँतड़ी होती है, इनमें भेद होता है ।

नारु^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाली, पुं० हि० नारी] वह बोझाई जो ब्यारियों में होती है ।

नारेल^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] नारियल । उ०—खिरनी सकेलि नारेल वृद ।—ह० रामो, पृ० ३५६ ।

नार्य—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] उत्तर दिशा ।

नार्यत्य—वि० [सं०] नृपसवधी । राजा से सवध रखनेवाला ।

नार्यद^१—वि० [सं०] नर्मदासवधी । नर्मदा नदी का ।

नार्यद^२—सञ्ज्ञा पुं० शिवलिंग जो नर्मदा में पाया जाता है ।

नार्यर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद में वर्णित एक असुर जिसे इन्द्र ने मारा था ।

नार्यग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नार्यङ्ग] नारगी ।

नार्यसिक्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।

नालदा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बौद्धों का एक प्राचीन क्षेत्र और विद्यापीठ जो मगध में पटने से तीस कोस दक्खिन और बड़गाँव से ग्यारह कोस पश्चिम था । किमी किसी का मत है कि यह स्थान वहाँ था जहाँ आजकल तेलंगा है ।

विशेष—बौद्ध यात्रियों के विवरण से जाना जाता है कि पहले पहल महाराज अशोक ने नालदा में एक मठ स्थापित किया । चीनी यात्री उएनचांग (ह्वेन सांग) ने लिखा है कि पीछे शंकर और मृगहनगोमी नामक दो ब्राह्मणों ने इस मठ को

फिर से बड़े विशाल आकार में बनवाया । इसकी दीवारें जो इधर उधर खड़ी मिलती हैं उनमें से कई तीस घंटीस हाथ ऊँची हैं । कहते हैं, इस विद्यापीठ में रहकर नागार्जुन ने कुछ दिनों तक उक्त शंकर नामक ब्राह्मण से शास्त्र पढ़ाया । सन् ६३७ ईसवी में प्रसिद्ध चीनी यात्री उएनचांग ने इस विद्यापीठ में जाकर प्रज्ञाभद्र नामक एक आचार्य से विद्याध्ययन किया था । उस समय इतना बड़ा मठ और इतना बड़ा विद्यापीठ भारत में और कहीं नहीं था । यहाँ सैकड़ों आचार्य और दस हजार से ऊपर ऊपर याजक और शिष्य निवास करते थे । जिस समय काशी में बुद्धपक्ष नामक राजा राज्य करते थे उस समय इस मठ में आग लगी और बहुत सी पुस्तकें जल गईं ।

नालंबी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नालम्बी] शिव की वीणा [को०] ।

नाल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमल, कुमुद आदि फूलों की पोलो लबी डंडी । डाँड़ी । २ पोछे का डठल । काड । ३. गेहूँ, जो आदि की पतली लबी डंडी जिसमें बाल लगती है । ४ नली । नल । ५ बटुक की नली । बटुक के आगे निकला हुमा पोछा डडा । ६. सुनारों की फुँकनी । ७. जुलाहों की नली जिसमें वे सूत लपेटकर रखते हैं । छूँछा । कंढा । छुज्जा । ८. वह रेखा जो कलम बनाते समय छिलने पर निकलता है ।

विशेष—डठल या डंडी के अर्थ में पूरव में इसे पुं० बोलते हैं । पुरानी कविताओं में भी प्रायः पुं० मिलता है ।

नाल^२—सञ्ज्ञा पुं० १ रक्त की नालियों तथा एक प्रकार के मज्जातंतु से बनी हुई रस्सी के आकार की वस्तु जो एक ओर तो गर्भस्थ बच्चे की नाभि से और दूसरी ओर गोल थाली के आकार में फैलकर गर्भाशय की दीवार से मिली होती है । प्रावल नाल । उत्त्वनाल । नारा । नार ।

विशेष—इसी नाल के द्वारा गर्भस्थ शिशु माता के गर्भ से जुड़ा रहता है । गर्भाशय की दीवार से लगा हुआ जो उभरा हुआ थाड़ी की तरह का गोल छत्ता होता है उसमें बहुत सी रक्तवाहिनी नसें होती हैं जो चारों ओर से अनेक शाखा प्रशाखाओं में आकर छत्ते के केंद्र पर मिलती हैं जहाँ से नाल शिशु की नाभि की ओर गया रहता है । इस छत्ते और नाल के द्वारा माता के रक्त के योजक द्रव्य शिशु के शरीर में आते जाते रहते हैं, जिससे शिशु के शरीर में रक्तसंचार, श्वास प्रशवास और पोषण की क्रिया का साधन होता है । यह नाल पिडज जीवों ही में होता है इसी से वे जरायुज कहलाते हैं । मनुष्यों में बच्चा उत्पन्न होने पर यह काटकर छलग कर दिया जाता है ।

क्रि० प्र०—काटना ।

मुद्दा०—क्या किसी का नाल काटा है ? = क्या किसी की दाई है । क्या किसी को जनानेवाली है । क्या किसी की बड़ी बूढ़ी है । जैसे,—क्या तूने ही नाल काटा है ? (स्त्रि०) । कहीं पर नाल गड़ना = (१) कोई स्थान जन्मस्थान के समान प्रिय होना । किसी स्थान से बहुत प्रेम होना, जल्दी न हटना ।

(२) किमी स्थान पर अधिकार होना । दावा होना । जैसे,—यहाँ क्या तेरा नाल गड़ा है ? नाल छीनना = नाल काटना ।

२. लिंग । ३. हस्ताल । ४. जल बहने का स्थान । ५. जल में होनेवाला एक पीधा । ६. एक प्रकार का बाँस जो हिमालय के पूर्वभाग, भासाम और बरमा प्रादि में होता है । टोली । फफोल ।

नाल^३—संज्ञा पुं० [घ० नाल] १. लोहे का वह मर्धचद्राकार खड जिससे घोड़े की टाँप के नीचे या जूतों की एड़ी के नीचे रगड़ से बचाने के लिये जड़ते हैं ।

क्रि० प्र०—जड़ना —बाँधना ।

२. तलवार प्रादि के म्यान के साम जो नोक पर मड़ी होती है । ३. कुंडलाकार गढ़ा हुँपा पत्थर का भारी टुकड़ा जिसके बीचोबीच पकड़कर उठाने के लिये एक दस्ता रहता है । इसे बलपरोखा या मग्नास के लिये कसरत करनेवाले उठाते हैं ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

४. लकड़ी का वह चक्कर जिसे नीचे ढालकर कूँ की जोड़ाई होती है । ५. वह रूपया जिसे जुमारी जुए का मग्ड़ा रखनेवाले को देता है । ६. जुए का मग्ड़ा ।

क्रि० प्र०—रखना ।

७. पर्वत की घाटी । उ०—नाल घात कुरमासरी, प्रायो भाल जवन्त ।—रा० रू०, पृ० १४० ।

नालकटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाल + कटाई] १. तुरत के जनमे हुए बच्चे की नाभि में लगे हुए नाल को काटने का काम । २. नाल काटने की मजदूरी ।

नालकी—संज्ञा स्त्री० [म० नाल (= ढडा)] इधर उधर से खुली पालकी जिसपर एक मिहराबदार छाजन होती है । ग्याह में इसपर दूल्हा बैठकर जाता है । उ०—चढ़ि नालकी नरेश तहँ मयुव चारि कुमार । रगमहल गवन्त भए सग सचिव सरदार ।—(शब्द०) ।

नालकेर—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] दे० 'नारियल' । उ०—कहूँ नालकेर कचेरु बडाम ।—प० रासो, पृ० ५५ ।

नालती—संज्ञा स्त्री० [फा० लानत] लानत । धिक्कार । उ०—नालत इस दुनियाँ को जो दीन में बेदीन करे । साक ऐसे खाने जिन ईमान बँच लिया है ।—मनुक०, पृ० ३१ ।

नालबंद—संज्ञा पुं० [घ० नाल + फा० बंद] खुते की एड़ी या घोड़े की टाँप में नाल जड़नेवाला प्रादमी ।

नालबंदी—संज्ञा स्त्री० [घ०] नाल जड़ने का कर्म ।

नालबाँस—संज्ञा पुं० [सं० नल + हिं० बाँस] एक प्रकार का बाँस जो हिमालय के अंचल में जमुना के किनारे से लेकर पूरबी बगाल और भासाम तक होता है । यह सीधा, मजबूत और कड़ा होने के कारण बहुत अच्छा समझा जाता है ।

नालवंश—संज्ञा पुं० [सं०] नल । नरसल । नरकट ।

नालशतीरी—संज्ञा पुं० [घ० नाल + फा० शतीरी] लकड़ी की एक प्रकार की मेहराब जिसमें कई छोटी मेहराबें कटी होती हैं ।

नालशाक—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन की नाल जिसकी तरकारी बनाकर लोग खाते हैं ।

नाला^१—संज्ञा पुं० [म० नाल, नालक] [स्त्री० मन्पा० नाली] १. पुष्पी पर लकीर के रूप में दूर तक गया हुँगा मग्ड़ा जिससे होकर बरसाती पानी किसी नदी प्रादि में जाता है । जलप्रणाली । २. उक्त मार्ग से बहता हुँगा जल । जलप्रवाह ।

क्रि० प्र०—बहना ।

३. रगीन गंधेदार मूल । दे० 'नाटा' ।

नाला^२—संज्ञा पुं० [सं० नाल] कमल का दंड [शिं०] ।

यौ०—नालायन = बद्ध । प्राग्नेयास्त्र ।

नाला^३—संज्ञा पुं० [फा०] पुकार । मार्तनाद । नितगाहट । जोर की भावाज [शिं०] ।

नालायक—वि० [फा० ना + प्र० लायक] प्रयोग्य । निकम्मा । मूर्ख ।

नालायकी—संज्ञा स्त्री० [फा० ना + प्र० लायक] नालायक का भाव । प्रयोग्यता ।

नालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाली' ।

नालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल । २. भँसा । ३. एक मत्स्य का नाम जिसकी नली में कुछ भरकर चलाते थे । ४. एक प्रकार की बाँसुरी [शिं०] ।

नालिक—संज्ञा स्त्री० [म०] १. छोटी नाल या उठन । २. नाली । ३. जुलाहों की नली जिसमें वे लपेटा हुँगा सूत रखते हैं । ४. नलिता शाक । पटुमा साग । ५. हाथी के कान छेदने का उपकरण या मोजार [शिं०] । ६. घटी । २४ मयवा ६० मिनट का समय [शिं०] । ७. एक प्रकार का गंधद्रव्य ।

नालिकेर—संज्ञा पुं० [सं०] नारिकेल । नारियल ।

नालिकेरी—संज्ञा स्त्री० [म०] एक प्रकार का शाक ।

नालिकेलि, नालिकेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल [शिं०] ।

नालिजघ—संज्ञा पुं० [सं० नालिजङ्घ] द्रोणकाक । डोम कोवा ।

नालिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पटुमा जिसके कीमल पत्तों का माग बनना है ।

नालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक के एक छेद अर्थात् नयने का ताश्चिक नाम ।

नालियर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नालिकेर] दे० 'नारियल' । उ०—जैसे बक नालियर चूँच मारि लटकत मुँदर महत दुख देपि पाही लाहे तें ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ५८० ।

नालिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. किसी के द्वारा पड़े हुए दुख या हानि का ऐसे मनुष्य के निकट निवेदन जो उसका प्रतिकार कर सकता हो । किसी के विरुद्ध प्रभियोग । करियद ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—नालिश दागना = नालिश करना ।

नाली^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाला] १. जल बहने का पतला मार्ग ।

लकीर के रूप में दूर तक गया हुआ पतला गड्ढा जिसमें होकर पानी बहता हो। जल-प्रवाह-पथ। २ गलीज प्रादि बहने का मार्ग। मोरी। ३ वह गहरी लकीर जो तलवार के बीचोबीच पूगे लवाई तक गई होती है। ४. डड करने गड्ढा जिसमें होकर छाती निकल जाय।

मुहा० नाली के डड = यह डड जो नाली में से बदन निकालकर किया जाय। नाली में डड पेलना — म्थीमथीम करना (वाञ्छा)।

५ कुम्हार के श्रविं का वह नीचे की ओर गया हुआ द्वेद जिससे माग ढालते हैं। ६ बोहे की पीठ का गड्ढा। ७ बैन प्रादि चौपायों को दवा पिसाने का चोंगा। ढरका।

नाली^१—संज्ञा स्त्री० [म० नालिका] १ नाड़ी। घघनी। रक्त प्रादि बहने की नली। २. करेसू का माग जिससे उठान नली की तरह पोले होते हैं। ३ हाथियों की नकलदेनी। ४ पट्टी। घटीयथ। ५ घटिका। २४ मि० का नाल (को०)। ६ कमल की नाल (तो०)। ७ कमल।

नालीक—संज्ञा पुं० [म०] १ एक प्रकार का छोटा बाण जो नली में रखकर चलाया जाता था। सुकग। २ पद्ममूढ़। ३ कमल की नाल। कमलदड (को०)। ४ कमलु या जलपात्र जो नारियल का बना हो (को०)।

नालीकिनी—संज्ञा स्त्री० [म०] १ पद्ममूढ़। कमल की डेरी। २ पद्मयुक्त सरोवर (को०)।

नालीदीज—संज्ञा पुं० [फ्रा० नालीदीज] नाली साफ करनेवाला। मगी। उ०—नालीदीज हनाज बेवला कमि मित्रमतभार सुम्हारा।—रे० बानी, पृ० ५१।

नालीप—संज्ञा पुं० [म०] नीप। १८४ (को०)।

नालीप्रणु—संज्ञा पुं० [म० नाडीप्रणु] नाभूर।

नालुक^१—संज्ञा पुं० [म०] एक गघद्रव्य।

नालुक^२—वि० कृश। दुबला।

नालीट—वि० [हि० लोटना? या लट] बात कहकर पलट जानेवाला। मुकुर जानेवाला। इतरा करनवाला।

मुहा०—नालीट हो जाना—मुकुर जाना। साफ इतरा कर जाना। बात में पलट जाना।

नालीर—वि० [हि०] दे० 'नालीट'।

नायें—संज्ञा पुं० [म० नाम] दे० 'नाम'। उ०—गय पूंभरि न न ओगी जाति जनम भी नाय। अयोध्या (गुन) पृ० २६५।

नाय—संज्ञा स्त्री० [म० नो का वह ड०। फा०] नकली लोहे प्रादि की बनी हुई जन के ऊपर तेरले या चलेनेवाली मगानी। जसयान। नोका। किरती।

विशेष—नायें बहुत प्राचीन काल से चरती आई हैं। भारतरथ, मिय, चीन इत्यादि देशों के निवासी व्यापार के लिये समुद्रयात्रा करते थे। श्रुवेद में समुद्र में चलनेवाली जहाज

उल्लेख है। प्राचीन हिंदू सुमात्रा, जावा, चीन प्रादि की ओर यात्रा करने वाले जहाज लेखर जाते थे। ईसा से तीन सौ वर्ष पहले कनिंग देश से लगा हुआ तात्रलिम नगर भारत के प्रसिद्ध बंदरगाहों में था। इसी जहाज पर चंड सिंह के राजा ने प्रसिद्ध बाधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था। १०वीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान चीन प्रान्त की नकल प्रादि लेकर तात्रलिम ही से जहाज पर बैठ सिहल गया था। पश्चिम में किनीनिया के निवासियों ने बहुत पहले समुद्रयात्रा प्रारम्भ की थी। टायर, फार्बेज प्रादि उनके स्थापित बड़े प्रसिद्ध बंदरगाह थे जहाँ ईसा से हजारों वर्ष पहले गुर्गेय तथा उत्तरी अफ्रीका से व्यापार होता था। उनके पीछे ग्रीक और रोमवासी का जलयात्रा में नाम हुआ। पूर्वोक्त और पश्चिमी देशों के बीच का व्यापार बहुत दिनों तक मध्यजाली के हाथ में भी रहा है।

भारतवर्ष में यान दो प्रकार के कहे जाते थे—स्वस्थान और जलयान। जलयान को निष्पद यान भी कहते थे। युक्तिरूप-तक नामक ग्रंथ में गीता बनाने की युक्ति का वर्णन है। यानों में पहले लकड़ी या निचार किया गया है। काष्ठ की भी यात्रा जाती है स्विट की गई हैं—ग्रासुण, शत्रिय, वेस्य और छूद। जो लकड़ी इनकी मुलायम और गढ़ने योग्य हो उसे ग्रासुण जो कड़ी, इनकी धोर न गढ़ने योग्य हो उसे शत्रिय या मुलायम और भारी हो उसे वेस्य तथा जो लकड़ी भारी हो उसे छूद कहा है। इनमें तीन द्विजाति बाण्ड हो नोका के लिये अच्छे कहे गए हैं। सामान्य छोटी नाव दस प्रकार की बनी गई है—धुद्रा, मध्यमा, भीमा, धपला पत्ता, धमगा, दीर्घा, पत्रपुटा, गनेरा और मंथर। इसी प्रकार जहाज या बड़ी नाव भी दस प्रकार की बतलाई गई हैं—दीर्घा, तरणि, लोना, गत्यरा, गामिनी, तरि, जघना, प्लाविनी, घरणी और वेगिनी। जिन नावों पर समुद्रयात्रा होती थी उन्हें प्राचीन भारतवासी साधारण 'यान' मान्य करते थे।

पर्या० नी। नारिया। तरणि। तरी। तरंटी। तरड। या गीनर। तल्लरा। होट। चारंट। चहिन। पीत। बहन। क्रि० प्र० मना। बनाना।

मुहा०—सने में नाव नहीं चलती—पिना कुछ खर्च किए नाम नहीं जाता। उदारता के बिना प्रसिद्धि नहीं होती। प्रेम में नाव चलाता—प्रसन्न कार्य करने की चेष्टा करना। नाव में ल उठाना—(१) मित्र मित्र पर की बात कहना। सरासर झूठ कहना। (२) झूठ घपराय लगाना। शय कलक लगाना।

नावक^१—संज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार का छोटा बाण। एक नाव तरह का तीर। उ०—(क) नावक उर में साय के सिमक उठाने इति नाकि। (ग) नावक भी भ्रमक के गई भरोते। (घ) नावक—विहारी (पृ० २०)। (च) मन्त्रवेदा के दोहरे अनु

नावक के तीर। देखत में छोटे लगे वेधे सकल चरीर। —
(शब्द०)।

२ मधुपक्षी का डंक।

नावक^२—संज्ञा पुं० [सं० नाविक] केवट। माझी। मल्लाह।
उ०—पुनि गौतमधरनी जानत है नावक शवरी जान।—
सूर (शब्द०)।

नावघाट—संज्ञा पुं० [हिं०] नावो के ठहरने का घाट। नदी,
झील आदि के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें ठहरती हैं।

नावडियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० नाव+डिया (प्रत्य०)] मल्लाह।
नावाला। उ०—नाव बिरे नहँ नीर में निपली नावडि-
याह।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १५।

नावना—क्रि० सं० [सं० नामन] १ भुक्ताना। नवाना। उ०—
अमुपतीक सिरमौर कहावइ। मकुस गज नावइ। उ०—
जायसी (शब्द०)।

२ डालना। फेंकना। गिराना। उ०—माखन तनक घापने
कर ले तनक बदन में नावत।—सूर (शब्द०)। ३
प्रविष्ट करना। घुसाना।

नावनीत^१—वि० [सं०] मुलायम। कोमल। मृदुल [को०]।

नावनीत^२—संज्ञा पुं० मक्खन का घी। मक्खन से बना घी।

नावर^०—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव] १ नाव। नौका। उ०—को
करि सके सहाय वहै करिया विनु नावर।—गिरिधर
(शब्द०)। २ नाव की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीच में ले
जाकर खकुर देते हैं। उ०—वहू भट वहूहि चड़े खग जाहीं।
जनु नावरि खेलाहि जल माहीं।—तुलसी (शब्द०)।

नावरा—संज्ञा पुं० [दश०] दक्षिण में होनेवाला एक पेड़ जिसकी
लकड़ी बहुत साफ, चिकनी और मजबूत होती है। भेज, कुरसी
आदि सजावट के सामान इसके बहुत अच्छे बनते हैं।

नावरि^०—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नाव की क्रीड़ा। दे० 'नावर'।

नावी^१—संज्ञा पुं० [सं० नामन्] वह रकम जो किसी के नाम
लिखी हो।

नावकिफ—वि० [फा० ना+फ० वाकिफ] अनजान। अनभिज्ञ।

नावाज—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

नावाजिव—वि० [फा० ना+फ० वाजिव] जो वाजिव या ठीक न
हो। अनुचित।

नाविक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मल्लाह। माझी। केवट। २ नाव पर
यात्रा करनेवाला व्यक्ति। नौकारोही [को०]।

नावी^२—संज्ञा पुं० [सं० नाविन्] दे० 'नाविक' [को०]।

नावी^०—संज्ञा पुं० [सं० नापित] नाई। हज्जाम। उ०—नावो
फोरइ उठावला, स्वाती वखन घाठमी परणोत।—बी० रासो,
पृ० २०।

नावेल—संज्ञा पुं० [सं०] उपन्यास।

नावेलिस्ट—संज्ञा पुं० [सं०] उपन्यासकार।

नाव्य^१—संज्ञा पुं० [सं० नाव] १ नौवतता। नवीनता। नयापन।
२ गहरा जल या नदी आदि जो नौका से पार करने योग्य
हो [को०]।

नाव्य^२—वि० [सं०] १ नाव से पार करने योग्य। २. प्रतया योग्य।
प्रशसनीय [को०]।

नाव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी जो नाव से पार की जाय [को०]।

नाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ न रह जाना। शेष। ध्वंस। उखाड़ी।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—साक्ष्यबाल कारण में तब हीन जो ही नाश पहुँचे है
क्योंकि जो वस्तु है उसका प्रभाव नहीं हो सकता। कारण में
तब ही जान से मृत्यु के कारण वस्तु का बोध नहीं होता।
जब कोई कार्य कारण में इस प्रकार तीन हो जाता है कि वह
फिर कार्यरूप में नहीं आ सकता तब प्रात्यक्षिक नाश होता
है। नैयामिक नाश को ध्वंसाभाव मानते हैं।

२ नाश होना। प्रशयन। ३ पनापन। ४, संहत [को०]। ५
निघन [को०]। ६. अनुपपन्न [को०]।

नाशक—वि० [सं०] १. नाश करनेवाला। ध्वंस करनेवाला। उखाड़
करनेवाला। २. मारनेवाला। मथ करनेवाला। ३. दूर करने-
वाला। न रहने देनेवाला। जैसे, रोगनाशक।

नाशकारी—वि० [सं० नाशकारिन्] [वि० आ० नाशकारिणो] नाश
करनेवाला।

नाशन^१—वि० [सं०] नाश करनेवाला। विध्वंस करनेवाला। नाशक।
उ०—जानत है किधों जात नाहिन तू अपने मद नाशन
को।—केशव (शब्द०)।

नाशन—संज्ञा पुं० १ मृत्यु। मरण। २ विध्वंस। भूतना। ३ नष्ट
करना। नाश करना। ४ हुटाना। दूर करना [को०]।

नाशाना^०—क्रि० सं० [सं० नापन] २० 'नासना'।

नाशपाती—संज्ञा स्त्री० [तु०] मन्मथ डोल डोल का एक पेड़ जिसके
फल मेवों में गिने जाते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्रमस्त की पत्तियों के इतनी बड़ी पर
चिकनी और घमकीली होती हैं। फूल सफेद होते हैं पर
फूलों के केसर हल्के बेगनी होते हैं। फल गोच और उनके
गूदे की बनावट कुछ टानेदार होती है। बीज गूदे के भीतर
बीचो बीच चार छोटे कोशों में रहते हैं। फल का विशेष प्रस
सफेद कड़ा गूदा हो जाता है। इसमें इसके टुकड़े कटे हुए कटे
मिर्ची के टुकड़ों के समान जान पड़ते हैं। काश्मीर में नाशपाती
के पेड़ जंगली मिलते हैं। काश्मीर के प्रतिरिक्त हिमालय के
किनारे सर्वत्र, दक्षिण में नीलगिरि, वगैर आदि में तथा
भारतवर्ष में थोड़े बहुत सब स्थानों में इसके पेड़ लगाए जाते
हैं। फलम और पेड़ से भी इसके पेड़ लगते हैं जो डोल डोल
में छोटे होते हैं। काश्मीर की नाशपाती अच्छी होती है और
नाश या नाक के नाम से प्रसिद्ध है। नाशपाती युरोप और
अमेरिका के प्रायः उन सब स्थानों में होती है जहाँ सरसो
अधिक नहीं पड़ती। युरोप में नाशपाती की लकड़ी पर
लक्ष्मणी होती है और उसके हल्के सामान बनते हैं। आयुर्वेद
में नाशपाती का नाम समूतफल (इसमें इसे कही कहीं
अमरुद भी कहते हैं) भी है जो घातुवर्धक, मधुर, भारी, रेशक
तथा अम्ल वात-नाशक माना गया है। सेव और नाशपाती एक
ही जाति के पेड़ हैं।

नाशवान्—वि० [सं० नाशवत्] नाश को प्राप्त होनेवाला । नश्वर ।
मनित्य ।

नाशाइस्ता—वि० [फा० नाशाइस्तह] घनुचित । नामुनासिव ।
उ०—ऐसे नाशाइस्ता कल्मे भूलकर भी जवान पर न
लाना ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७ ।

नाशित—वि० [सं०] जिसका नाश किया गया हो ।

नाशी—वि० [सं० नाशिन] [वि० स्त्री० नाशिनी] १ नाश
करनेवाला । नाशक । २ नष्ट होनेवाला । नश्वर ।

नाशुक—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला । नश्वर ।

नाशुकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] अकृतज्ञता । एहसान फरामोशी ।
उ०—जहाँ खुदा ने नमतों की वर्षा की हो, वहाँ उन नेमतों
का भोग न करना नाशुकी है ।—मानसरोवर, भा० १,
पृ० १३८ ।

नास्ता—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नास्तह] कलेवा । जलपान । प्रातःकाल
का भस्पाहार । पनपियाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नास्य—वि० [सं०] नाश के योग्य । ध्वसनीय ।

नाष्टिक—वि० [सं०] जिसको वस्तु नष्ट हुई हो । (स्मृति) ।

नाष्टिकधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खोया हुआ धन । (स्मृति) ।

नास^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नासा] १. वह द्रव्य जो नाक में डाला
जाय । वह श्लेष्म जो नाक से सुरकी या सूँघी जाय ।

क्रि० प्र०—लेना ।

२ सुँघनी । ३ नासिका । नाक (बोलचाल) ।

नास^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाश] नाश । उ०—चढ्यो कोष
प्रीतिवती भूप ऐसे । कढ्यो दैत्य के नास जभारि जैसे ।—
सुजान०, पृ० २६ ।

नासक^३—वि० [सं० नाशक] दे० 'नाशक' । उ०—अम तम
नासक प्रेम प्रकासक मुखससि मारद नमो नमो ।—घनानन्द,
पृ० ४६२ ।

नासदान—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नास + दान (< सं० प्राधान)] सुँघनी
की ढिबिया ।

नासत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्निर्नाकुमार ।

नासत्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निर्वती नक्षत्र ।

नासना^४—क्रि० सं० [सं० नाशन] १. नष्ट करना । बरबाद
करना । २ मार डालना । बच करना ।

नासपाल—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ कच्चे घनार का खिलका जो
रंग निकालने के काम में आता है । २. कच्चा घनार । ३.
एक प्रकार की आतिशबाजी ।

नासपाली—वि० [फा०] नासपाल के रंग का । कच्चे घनार के
छिलके के रंग का ।

नासबूर^५—वि० [हि० ना + फा० बूर] बेसम । ३१५हीन ।
उ०—तू साहेब लीये खड़ा बदा नासबूरा ।—मनक०,
पृ० २४ ।

नासमम्—वि० [हि० ना + समम्] जिसे समम् न हो । जो
समम्भदार न हो । जिसे बुद्धि न हो । निबुद्धि । वेवकुफी ।

नासमम्मी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नासमम्] मुखंठा । वेवकुफी ।

नासा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० नास्य] १ नासिका । नाक ।
२ नासारघ्न । नाक का छेद । नयना । ३. द्वार के ऊपर
लगी हुई लकड़ी । भरेटा । ४. हाथी की सूँड । हस्तिणुड
(को०) । ५ मड़ूसा ।

नासाग्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक का अगला भाग । नाक की नोक ।

नासाछिद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासा^२' ।

नासाज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो नाक के भीतर प्याज
की गाँठ की तरह का फोड़ा होने से होता है । इस ज्वर में
सिर और रोंह में बड़ा दर्द होता है ।

नासादारु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भरेटा (को०) ।

नासानाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें धातु के
साथ कफ मिलकर नाक के छेद को बंद कर देता है ।
प्रतिनाह । प्रतीनाह ।

नासापरिस्त्राव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासास्त्राव' ।

नासापरिशोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नासाशोष रोग ।

नासापाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक में
बहुत सी फुंसियाँ निकलने के कारण नाक पक जाती है ।

नासापुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह चमड़ा जो छेदों के
किनारे परदे का काम देता है । नयना ।

नासावेध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह छेद जिसमें नय प्रादि
पहनी जाती है ।

नासायोनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह नपुंसक जिसे घ्राण करने पर
उद्दीपन हो । सौगधिक नपुंसक ।

नासारंघ्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नासारंघ्र] नाक का छिद्र । नयना ।

नासारोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक में होनेवाले रोग जिनकी मन्व्या
सुश्रुत के अनुसार ३१ और भावप्रकाश के मत से ३४ है ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं—घोनीनस्य
(पीनस), पृतिवस्य, नासापाक, रक्तपित्त, पूयशोणित, क्षत्र्यु,
अश्रु, द्योति, प्रतिनाह, परिस्त्राव, नासाशोष, ४ प्रकार के घण,
४ प्रकार के शोष, ७ प्रकार के धनुंद् और ५ प्रकार के प्रति-
श्याय । भावप्रकाश में इससे इतनी विशेषता की है कि एक
रक्तपित्त के स्थान पर चार प्रकार के रक्तपित्त लिख दिए हैं ।

नासालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कायफल ।

नासावंश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक के ऊपर बीचोबीच गई हुई
पतली हड्डी । नाक का बाँस ।

नासाचिवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासारंघ्र' ।

नासाशोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक में कफ सूख जाने का रोग ।

नासासंवेदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काहवेन । चिटचिट । चिचड़ी ।

नासास्त्राव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक से
सफेद और पीला मवाद निकला करता है ।

नासिकंधम—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० नासिकंधम] नासिका से फूँकने प्रयत्न स्वर निकालनेवाला (को०) ।

नासिकंधय—वि० [सं० नासिकंधय] नासिका से पान करनेवाला (को०) ।

नासिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नासिकय] महाराष्ट्र देश में एक तीर्थ जो उस स्थान के निकट है जहाँ से गोदावरी निकलती है । इसी के पास पंचवटी वन है जहाँ वनवास के समय रामचंद्र ने कुछ काल निवास किया था और लक्ष्मण ने शूषणमा के नाक कान काटे थे ।

नासिक^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नासिका] नाक । नासिका । उ०—नासिक देखि लजानेउ मूषा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १२६ ।

नासिक^३—वि० [प्रा० नासिक] दे० 'नासिक' । उ०—बड़ी नासिक जात है महती किसी की नहीं होती ।—गोदान, पृ० ३४ ।

नासिका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाक । नासा । २ हाथी की सूँड़ (को०) । ३ नाक के धाकार की वस्तु (को०) । ४ भरेटा (को०) । ५ मयिनी नक्षत्र (को०) ।

यौ०—नासिकामल ।

नासिका^२—वि० श्रेष्ठ । प्रधान ।

नासिक्य^१—वि० [सं०] नासिका से उत्पन्न ।

नासिक्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ नासिका । २ माण्डवी नदी । ३ बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण रा एक देश । नासिक । ४ अनुनासिक स्वर ।

नासिक्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाक । नासिका (को०) ।

नासिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गजलेखक । गजहार । २ मददगार । सहायक । ३ विजयी । विजेता (को०) ।

नासी^१—वि० [सं० नासी] दे० 'नासी' ।

नासीर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोहनापक के आगे चलनेवाला दल जो ब्रह्मनाद उच्चारण करता चलाता था । नासाय । हाथवत ।

नासीर^२—वि० १ प्रायः बरकरार गूँजरनेवाला । २ अग्रसर । प्रगुमा (को०) ।

नासूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समार । उ०—फैलवा मुकाम शीतानी कहना मजिल नासूत केरी । शरिफ की जय गाने लगे सा दगा तर उतरे पेरी । दक्खिनी० पृ० ५४ ।

नासूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धार, जोड़ यादिक भीतर दूर तक गया हुआ नती फा सा छेद जिससे बराबर मवाद निकलता करता है और जिसके कारण धारा जलदी भरती नहीं होता । नासाग्रण ।

क्रि० प्र०—गटना ।

मुहा०—नासूर जलना—नसूर पैदा करना । घाव करना । दातो में नासूर डालना—बुराई फैलाना । बहुत तंग करना । नासूर भरना—नासूर का घाव भरना हो जाना ।

नास्ता—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० नास्ताह] जलपान । नुदम आहार । कलेवा । उ०—करत नास्ता इक गाँव की पुनि उठि कै भट ।—प्रेम-पन०, भा० १, पृ० २० ।

नास्ति—अव्य० [सं०] नहीं है । अविद्यमानता । अस्तित्व । उ०—जेहि ते वट होय नो इच्छा कहावै, जेहि ते नास्ति होय ऐमी अनिच्छा कहावै ।—कबीर सा०, पृ० ६२२ ।

नास्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो ईश्वर, परलोक आदि को न माने । ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करनेवाला ।

विशेष—जा हनुमाला अर्थात् तक का आश्रय लेकर वेद को अस्वीकार करे, उसका प्रमाण न माने, हिंदू शास्त्र में उसको भी नास्तिक कहा है । हिंदू शास्त्रकारों के अनुसार चार्वाक, बौद्ध और जैन ये तीनों नास्तिक मत हैं । इन मतों में सृष्टि की उत्पत्ति का जो और चलावेवाला कोई नित्य और स्थिर चेतन नहीं माना गया है । नास्तिकों को बाह्यस्पृश्य, चार्वाक और लोकायतिक भी कहते हैं ।

नास्तिकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नास्तिक होने का भाव । ईश्वर, परलोक आदि को न मानने की बुद्धि ।

नास्तिकत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'नास्तिकता' । उ०—नास्तिकत्व का प्रवेश करा पीछे से पछतावा व्यर्थ है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०८ ।

नास्तिक दर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकों का दर्शन । वि० दे० 'दर्शन' ।

नास्तिक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकता । ईश्वर, परलोक आदि में अविश्वास ।

नास्तिकद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का पेड़ ।

नास्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का पेड़ ।

नास्तिवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकों का तर्क ।

नास्य^१—वि० [सं०] १ नासिका संबंधी । नाक का । २ नासिका से उत्पन्न ।

नास्य^२—सञ्ज्ञा पुं० दैन की नाक में लगी हुई रस्सी । नाय ।

नाह^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाह, प्रा० नाह] १ नाथ । स्वामी । मालिक । २ स्या का पति ।

नाह^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नाम] पहिए का छेद । नाभि ।

नाह^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बधन । २ हिरन फँसान का फंदा । ३ वाटवद्धता । कविवचन (को०) ।

नाहक—क्रि० वि० [प्रा० ना + भा० हक] वृथा । व्यर्थ । बेफायदा । व्यमतलब । निष्प्रयोजन ।

नाहट^१—वि० [देश०] तु । नग्न ।

नाहट^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नाही] 'नहीं, नहीं' शब्द । इनकार ।

नाहमवार^१—वि० [प्रा०] जो हमवार या समतल न हो । ऊबड़ खावड़ । ऊँचा नीचा । २ अमध्य । उजड़ (को०) ।

नाह^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाह । २ नाहरी । ३ सिंह । शेर । ४ नाथ ।

नाहर^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा०] टेमू का फूल ।

नाहरसाँस—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नाहर + साँस] घोड़ों की एक बीमारी जिसमें उनका दम फूलता है ।

नाहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नाहर] सिंहनी । शेरनी । उ०—नारि कहीं की नाहरी, चख सिख से यह खाय । जल बूझा तो ऊपर भग बूझा तो जाय ।—सतवाणी०, पृ० ५८ ।

नाहरू^१—संज्ञा पुं० [देश०] नारु नाम का रोग । नहरूवा ।

नाहरू^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाहर' ।

नाहिन^१—अव्य० [हि० नाहि + न (प्रत्य०)] नहीं । उ०—नाहिन रहो मन मे ठोर ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १७८ ।

नाहिनै^२—वाक्य [हि० नाही] नहीं है ।

नाहिनै^३—अव्य० [हि०] नाहिन । नहीं । उ०—ब्रजपति हूँ के मन भय भयो । नामकरन जु नाहिनै भयो ।—नद० ग्र०, पृ० २४३ ।

नाही—अव्य० [हि०] दे० 'नही' ।

नाहुष, नाहुषि—संज्ञा पुं० [सं०] नहुष के पुत्र ययाति ।

निडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निडिका] मटर ।

नित^१—क्रि० वि० [सं० नित्य] दे० 'नित्य' । उ०—जेठि नारि हसि पुँछे प्रमिय बचन जिमि नित ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३७२ ।

निता^२—संज्ञा स्त्री० [सं० निमित्त] कारण । निमित्त । उ०—मानुस चित आन कछु निता । करै गुसाई न मन मँह चिता ।—जायसी ग्र०, पृ० ३१५ ।

निद^३—वि० [सं० निन्ध] दे० 'निन्ध' ।

निदक—संज्ञा पुं० [सं० निन्दक] निंदा करनेवाला । दूसरों के दोष या बुराई कहनेवाला । उ०—मान देव निदक अभिमानी ।—मानस, ७।६७ ।

निन्दन—संज्ञा पुं० [सं० निन्दन] [वि० निदनीय, निदित, निन्ध] निंदा करने का काम ।

निदनीय^१—क्रि० सं० [सं० निन्दन] निंदा करना । बदनाम करना । बुरा कहना । उ०—(क) पिता मदमति निदत तेही । दख शुक्र सम्व यह देही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हरि सब के मन यह उपजाई । सुरपति निदत गिरिहि बडाई ।—सूर (शब्द०) ।

निदनीय—वि० [सं० निन्दनीय] १ निंदा करने योग्य । बुरा कहने योग्य । २ बुरा । गह ।

निंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] १ (किसी व्यक्ति या वस्तु का) दोषकथन । बुराई का वर्णन । ऐसी बात का कहना जिससे किसी का दुर्गुण, दोष, तुच्छता इत्यादि प्रगट हो । अपवाद । जुगुप्सा । कुत्सा । बदगोई । २ अपकीर्ति । बदनामी । कुख्याति । जैसे,—ऐसी बात से लोक में निंदा होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विशेष—यद्यपि निंदा दोष के कथन मात्र को कह सकते हैं चाहे कथन यथार्थ हो चाहे अयथार्थ पर मनुस्मृति में ऐसे दोष के कथन को 'निंदा' कहा है जो यथार्थ न हो । जो दोष वास्तव में हो उसके कथन को 'परीवाद' कहा है । कुल्लुक ने अपनी व्याख्या में कहा है कि विद्यमान दोष के अभिधान को 'परीवाद' और अविद्यमान दोष के अभिधान को 'निंदा' कहते हैं ।

निंदास्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दास्तुति] १ निंदा के बहाने स्तुति । व्याजस्तुति । २ दोषकथन और प्रणसा ।

निंदित—वि० [सं० निन्दित] जो बुरा कहा गया हो । जिसे लोग बुरा कहते हो । दूषित । बुरा ।

निन्दु—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दु] मर बच्चे को जन्म देनेवाली माता । मृतवत्सा माँ [को०] ।

निन्ध—वि० [सं० निन्ध] १ निंदा करने योग्य । निंदनीय । २ दूषित । बुरा ।

निन्दा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] दे० 'निंदा' । उ०—असतुति निन्दा प्राप्ता छडि, तजै मान अभिमाना । लोहा कचन समि करि देखे, ते मूरति भगवाना ।—कबीर ग्र०, पृ० १५० ।

निन्ध—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्ध] १ नीम का पेड़ ।

यौ०—पचनिब । महानिब ।

२ एक वृक्ष । पारिभद्र (को०) ।

निन्धतरु—संज्ञा पुं० [सं० निन्धतरु] १ नीब का पेड़ । २ मदार वृक्ष । ३ महानिब । बकायन [को०] ।

निन्धपंचक—संज्ञा पुं० [सं० निन्धपंचक] नीब के पाँच अंग—पत्ती, फूल, फल, छाल और जड़ [को०] ।

निन्धवोज—संज्ञा पुं० [सं० निन्धवोज] राजावनी वृक्ष । चिरौजी का पेड़ [को०] ।

निन्धर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'परिज' ।

निन्दादती^१—वि० [सं० निन्दादित्य] निन्दाक संप्रदाय का अनुयायी । उ०—निन्दादती होइ तो तू कामना कटुक त्यागि, प्रमृत् को पान करि अधिक अघाइए ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ९१२ ।

निन्दादित्य—संज्ञा पुं० [सं० निन्दादित्य] निन्दाक संप्रदाय के प्रादि आचार्य । इनका दूसरा नाम 'अक्षरिण' भी था । ये श्री राधिका जी के ककण के अवतार माने जाते हैं ।

विशेष—बृदावन के पास ध्रुव नामक पहाड़ी पर ये रहते थे । वही पर इनके शिष्यों ने इनकी गद्दी स्थापित की । कहते हैं, इनके पिता का नाम जगन्नाथ था । बाल्यावस्था में इनका नाम भास्कराचार्य था । बहुत से लोग इन्हें सूर्य के अग्र से उत्पन्न कहते थे । ये कृष्ण के बड़े भारी भक्त थे । इनके नाम के कारण इनके सवध में एक विलक्षण कथा भक्तमाल में लिखी है । एक सन्यासी वा जैन यति इनसे दिन भर शास्त्रार्थ करता रहा । सूर्यास्त हो रहा था । इन्होंने उससे भोजन के लिये कहा । सूर्यास्त के उपरांत भोजन करने का नियम उसका नहीं था । इसपर निन्दाक ने सूर्य को रोक रखा । जबतक सन्यासी ने भोजन नहीं कर लिया तबतक सूर्य देवता एक नीम के पेड़ पर बैठे रहे ।

निन्दाक—संज्ञा पुं० [सं० निन्दाक] १. निन्दादित्य । २. निन्दादित्य का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय ।

विशेष—निन्दाक मत वैष्णव धर्म के चार प्रमुख संप्रदायों (रामानुज, माध्व, विष्णुस्वामी तथा निन्दाक) में से एक है । द्वैताद्वैत अध्यात्म दर्शन को माधवार मान कर इसमें राधा और कृष्ण के युगलस्वरूप समभाव से उपासना स्वीकृत है ।

निवृत्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निम्बू] नीवू ।

निवृक्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निम्बूक] दे० 'निवू' ।

निन्दरना—क्रि० सं० [सं० निन्दा] निंदा करना । बदनाम करना । बुरा कहना ।

निन्दरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] नींद । निन्दा । उ०—मेरे लाल को भाव निन्दरिया काहे न भाव सुभावे ।—सूर (शब्द०) ।

निर्दाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निराई] १ खेत के पीछे के पास की घास, तृण आदि को उखाड़कर या काटकर भलग करने का काम । २ निराने की मजदूरी ।

निदाना—क्रि० सं० [सं०] दे० 'निराना' ।

निदासा—वि० [हि० नीद + प्रासा (प्रत्य०)] १ जिसे नींद आ रही हो । उनीदा । २ भालस्ययुक्त । भलसाया ।

निदिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीद + द्या (स्वा० प्रत्य०)] नीद । ऊँच । जैसे,—भाव री निदिया भाव (वचनों के सुलाने का वाक्य) । उ०—सोमो मुख निदिया प्यारे ललन ।—हरिश्चन्द्र (शब्द०) ।

निबकौरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब + हि० कौरी] नीम का फल । निबोरी ।

निबरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीम + बारी] वह बारी या कुज जिसमें सब पेड़ नीम के ही हों ।

निः—प्रत्य० [सं० निस्] एक उपसर्ग । दे० 'निस्' ।

नि.अच्छरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नि + प्रक्षर] ब्रह्म । ईश्वर । वह जिसका वर्णन प्रक्षरों के द्वारा न हो सके । उ०—नि प्रच्छर भव मिला प्रच्छर को ले क्या करना ।—पलदू, भा० १, पृ० १७३ ।

निःकंप—वि० [सं० निष्कम्प] कपनरहित । अचल ।

नि.कपट—वि० [सं० निष्कपट] दे० 'निष्कपट' ।

निःकाज—सञ्ज्ञा पुं० [नि + हि० काज] बिना कार्य के । निष्प्रयोजन । उ०—नि काज राज विहाय नृप इव स्वप्न फारागृह परयो ।—सुलसी प्र०, पृ० ५२४ ।

नि काम—वि० [सं० निष्काम] दे० 'निष्काम' ।

नि कारण—वि० [सं० निष्कारण] दे० 'निष्कारण' ।

निःकासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कासन] दे० 'निष्कासन' ।

नि कासित—वि० [सं० निष्कासित] निष्कासित । निकाला हुआ [को०] ।

नि.कामित—वि० [सं० निष्कामित] निकाला या मगाया हुआ ।

निःक्षेत्र—वि० [सं०] क्षत्रियरहित । क्षत्रियशून्य (देश आदि) ।

नि.क्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निक्षेप । फेंकना । प्रक्षेपण । २ जमा । गिरवी । भाड़ । ३ बिना किसी प्रतिवध के जमा किया हुआ । सामान्य जमा । ४ प्रेषित करना । ५ परित्याग । ६ पौछना । सुखाना । ७ गड़ा घन । भूगर्भस्थ घन [को०] ।

निःक्षोभ—वि० [सं०] क्षोभहीन । जिसको क्षोभ न हो ।

निःछल—वि० [सं० निश्छल] दे० 'निश्छल' ।

नि पक्ष—वि० [सं० निष्पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' ।

निःपाप—वि० [सं० निष्पाप] दे० 'निष्पाप' ।

नि.प्रभ—वि० [सं०] निष्प्रभ । प्रभाहीन । नष्टप्रभ [को०] ।

निःप्रयोजन—वि० [सं० निष्प्रयोजन] दे० 'निष्प्रयोजन' ।

निःफल—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल' ।

नि.शंक—वि० [सं० नि शङ्क] भयहीन । निडर । निर्भय । जिसे डर न हो । २ जिसे किसी प्रकार का खटका या द्विषक न हो ।

निःशत्रु—वि० [सं०] शत्रुरहित । जिसका कोई शत्रु न हो [को०] ।

निःशब्द—वि० [सं०] शब्द से रहित । जहाँ शब्द न हो या जो शब्द न करे ।

नि शम—वि० [सं०] १ क्रोध । २ वेचैनो । प्रणात [को०] ।

नि शरण—वि० [सं०] शरणहीन । भ्रक्षित [को०] ।

नि शलाक—वि० [सं०] निर्जन । एकांत । सुनसान । निराला ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि मन्त्रणा नि शलाक स्थान में करनी चाहिए ।

नि.शल्य—वि० [सं०] दे० 'नि शल्या' ।

निःशल्या—वि० [सं०] १ शल्यरहित । २ खटकनेवाली चीज से युक्त । प्रतिवधरहित । निष्कटक ।

नि शल्या—सञ्ज्ञा स्त्री० दती वृक्ष [को०] ।

निःशाख—वि० [सं०] शाखारहित [को०] ।

नि.शील—वि० [सं०] शीलरहित [को०] ।

नि.शुक्र—वि० [सं०] १. शक्तिरहित । भोजहीन । २ उत्साहहीन [को०] ।

नि.शूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का घान ।

नि.शून्य—वि० [सं०] रिक्त । खाली [को०] ।

नि.शेष—वि० [सं०] १ जिसमें कुछ शेष न हो । जिसका कोई भंश न रह गया हो । समूचा । सब । २ समाप्त । पुरा । खतम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निःशोक—वि० [सं०] शोकरहित । चिन्तामुक्त [को०] ।

निःशोध्य—वि० [सं०] जिसका साफ करना अनावश्यक हो । स्वच्छ । साफ [को०] ।

निःश्रीक—वि० [सं०] श्रीहीन । कातिहीन । तेजरहित [को०] ।

निःश्रयणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निश्रेणी' ।

निःश्रयिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नि श्रेणी' ।

नि श्रेणिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की घास । २ निश्रेणी [को०] ।

नि.श्रेणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ काठ या बाँस आदि की सोड़ी । २ खजूर का वृक्ष [को०] ।

नि.श्रेणी—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का उत्तम भक्ष्य [को०] ।

नि.श्रेयस—वि० [सं०] १ मोक्ष । मुक्ति । २ मंगल । कल्याण । ३. भक्ति । ४ विज्ञान । ५ शिव । शरर [को०] ।

निःश्वसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्वास का बाहर निकालना ।

निःश्वास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणवायु का नाक से निकलना ।

या नाक से निकाली हुई वायु। साँस। २. लंबी साँस। दीर्घ श्वास।

निःसंकल्प—वि० [सं० निःसङ्कल्प] इच्छारहित।

निःसंकोच—क्रि० वि० [सं० निःसङ्कोच] बिना संकोच के। बेधड़क। जैसे—प्राप निःसंकोच चले पाइए।

निःसंख्य—वि० [सं० निःसङ्ख्य] संख्यारहित। भगणित। बेगुमार।

निःसंग—वि० [सं० निःसङ्ग] १ बिना मेल या लगाव का। जो मेल या लगाव न रखता हो। २. निर्लिप्त। ३ जिसमें अपने मतलब का कुछ लगाव न हो।

निःसंचार—वि० [सं० निःसञ्चार] जिसमें गति न हो। जो संचरण न करे [को०]।

निःसंज्ञ—वि० [सं०] सज्ञाशून्य। मूर्छित [को०]।

निःसंतान—वि० [सं० निःसन्तान] जिसके सतान न हो। निपूता या निपूती। लावल्ड।

निःसंदेह—वि० [सं० निःसन्देह] सदेहरहित। जिसे या जिसमें कुछ संदेह न हो। जैसे,—किसी आदमी का निःसंदेह होना, किसी बात का निःसंदेह होना।

निःसंदेह^२—अव्य० १ बिना किसी संदेह के। २ इसमें कोई संदेह नहीं। ठीक है। बेशक।

निःसन्धि—वि० [सं० निःसन्धि] १ सन्धिशून्य। जिसमें कहीं से दरार या छेद न हो। २ टढ़। मजबूत। ३ कसा हुआ। गठा हुआ।

निःसंपात—वि० [सं० निःसम्पात] १. गमनागमनशून्य। जहाँ या जिसमें आना जाना न हो। जहाँ या जिसमें आवागमन न हो। जहाँ या जिसमें आमदरपत न हो। जैसे, निःसंपात मार्ग। २. रात। रात्रि।

निःसंवाध—वि० [सं० निःसम्बाध] १. विस्तीर्ण। फैला हुआ। प्रवाध [को०]।

निःसशय—वि० [सं०] संदेहरहित। शकारहित।

निःसत्त्व—वि० [सं० निःसत्त्व] १. जिसकी कुछ सत्ता न हो। जिसमें कुछ असलियत न हो। २ जिसमें कुछ तत्त्व या सार न हो। बिना मत का।

निःसपत्न—वि० [सं०] १ शत्रुरहित। जिसका कोई शत्रु न हो। २ निष्कटक। ३ प्रतिरोधीरहित। अद्वितीय [को०]।

निःसरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निकलना। २ निकलने का रास्ता। निकास। ३ कठिनाई से निकलने का रास्ता। ४ निर्वाण। ५ मरण।

निःसार^१—वि० [सं०] १ जिसमें कुछ सार न हो। जिसमें कुछ तत्व न हो। २ जिसमें कुछ असलियत न हो। ३ जिसमें प्रयोजन या महत्त्व की कोई बात न हो।

निःसार^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शाखोट वृक्ष। सहारे का पेड़। २ शयानाक वृक्ष। मोनापाठा।

निःसारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० निःसरित] १ निकासना। २. निकास। निकलने का द्वार या मार्ग।

निःसारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष। कदली [को०]।

निःसरित—वि० [सं०] निकाला हुआ। निष्कासित। बर्खास्त किया हुआ।

निःसारु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक।

निःसीम—वि० [सं०] १ जिसकी सीमा न हो। बेहद। २ बहुत बड़ा या बहुत अधिक।

निःसुकि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गेहूँ जिसके दाने छोटे होते हैं और जिसकी धाल में दूँड़ या सीगुर नहीं होते।—(भावप्रकाश)।

निःसृत—वि० [सं०] निकला हुआ।

निःस्नेहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तीसी। अलसी।

निःस्पंद—वि० [सं० निःस्पन्द] जिसमें स्पंद न होता हो। जो हिलता डोलता न हो। निश्चल। स्थिर।

निःस्पृह—वि० [सं०] १ इच्छारहित। जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो। २. जिसे प्राप्ति की इच्छा न हो। निर्लोभ।

निःस्त्रव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निकास। २ अवशेष। बचत। निकासी (याशवल्य)।

निःस्त्राव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ व्यय। खर्च करने का भाव। २. नाह। [को०]

निःस्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जिसका अपना कुछ न हो। जिसके पास कुछ न हो। धनहीन। दरिद्र।

निःस्वादु—वि० [सं०] स्वादरहित [को०]।

निःस्वार्थ—वि० [सं०] १. जो अपना अर्थसाधन करनेवाला न हो। जो अपना मतलब निकालनेवाला न हो। जो अपने लाभ, सुख या सुभीते का ध्यान न रखता हो। २. (कोई बात) जो अपने अर्थसाधन के निमित्त न हो। जो अपना मतलब निकालने के लिये न हो। ३ निःस्वार्थ सेवा।

नि^१—अव्य० [सं०] एक उपसर्ग जिसके लगने से शब्दों में इन अर्थों की विशेषता होती है—१. सघ या समुह। जैसे निकर। २. प्रथोभाव। जैसे, निपतित। ३. भृश, प्रत्यत। जैसे, निगृहीत। ४. आदेश। जैसे, निदेश। ५. निश्चय जैसे, निश्चिष्ट। ६. कोशस। जैसे, निपुण। ७. बघन जैसे, निबध। ८. प्रतर्भाव। जैसे, निपित। ९. समीप। जैसे, निकट। १०. दर्शन। जैसे, निदर्शन। ११. उपरम। जैसे, निवृत्त। १२. आश्रय जैसे, निलय। भेदनी कोश में ये अर्थ और वतलाए गए हैं—१३. सशय। १४. क्षेप। १५. न। १६. मोक्ष। १७. विन्यास और १८. निषेध।

नि^२—सञ्ज्ञा पुं० विवाद स्वर का संकेत।

निश्चर^१—अव्य० [सं० निकट, प्रा० निमग्न] निकट। पास। समीप।

निश्चर^२—वि० समान। तुल्य।

निश्चराना^१—क्रि० सं० [हि० निश्चर] निकट जाना। समीप पहुँचना। उ०—आइ नगर निश्चरानि बरात बजावत।—तुलसी (शब्द०)

निष्कारना^२—क्रि० अ० निकट आना । पास होना । दूर न रह-
जाना । उ०—आगे चले वहुनि रघुराया । श्रव्यमूक पर्वत
निष्काराया—तुलसी (शब्द०) ।

निष्कारु^३—सङ्घा पु० [सं० न्याय] दे० 'न्याय' । उ०—नीक
सगुन बिबरिहि भगर होइहि घरम निष्कारु ।—तुलसी प्र०,
पृ० ६३ ।

निष्कारु^४—सङ्घा स्त्री० [सं० नि प्रथं अथवा निधन] घनहीनता ।
दरिद्रता । उ०—साथी भायि निष्कारि जो सके साथ निर-
बाहि । जो जिउ जोरे पिउ मिले भेटु रे जिउ जरि जाहि ।
—जायसी (शब्द०) ।

निष्कारु^५—सङ्घा पु० [सं० निदान] अत । परिणाम । उ०—जो
निष्कारन तन होइहि छारा । माटिहि पोखि मरे को मारा ।—
जायसी प्र०, पृ० ५४ ।

निष्कार^६—अव्य० अंत में । आखिर ।

निष्कारा^७—क्रि० वि० [हि० न्यारा] न्यारा । भ्रमण । उ०—घनु
राजा सो जरै निष्कारा । बादसाह के सेव न माना ।—जायसी
(शब्द०) ।

निष्कारमत—सङ्घा स्त्री० [अ०] अच्छा धोर बहुमूल्य पदार्थ ।
अलम्प्य पदार्थ ।

निष्कारा^८—वि० [हि०] दे० 'न्यारा' ।

निष्कर्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] नैऋत्य या दक्षिणपश्चिम कोण की
अधिष्ठातृ देवी । २ अलक्ष्मी । लक्ष्मी की बड़ी बहन दरिद्रा ।
३ मृत्यु । नाश । ४ पृथ्वी का तत्व । ५ विपत्ति [को०] ।

निष्कर्ति^१—सङ्घा पु० १. नैऋत्य कोण के अधिपति दिक्पाल । २.
राक्षस । ३ मरण । ४ घाठ वसु में से एक वसु । ५ एक
रुद्र । रुद्र का एक रूप । ६ मूल नामक नक्षत्र [को०] ।

निष्कर्ति^२—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'निष्कर्ति' ।

निकटक^३—वि० [सं० निष्कण्टक] दे० 'निष्कण्टक' ।

निकटन—सङ्घा पु० [सं० नि + कन्दन (= नाश, वध)] नाश ।
विनाश ।

निकटना^४—क्रि० सं० [सं० निकन्दन] नाश करना । सहार
करना उ०—धारति निकदन मिलावे नदनदन सु ।—घनानन्द,
पृ० १४६ ।

निकट्रोग—सङ्घा पु० [सं०] एक योनिरोग । दे० 'योनिकट' ।

निक^५—वि० [हि० नीक] नीका । अच्छा । मला । उ०—
कृपिन पुरुष केँ केधो नहिँ निक कह ।—विद्यापति, पृ० ३८० ।

निकट^६—वि० [सं०] १ पास का । समीप का । जो दूर न हो । २.
संबंध में जिससे विशेष प्रसर न हो । जैसे, निकट संबंधी ।

निकट^७—क्रि० वि० पास । समीप । नजदीक ।

मुहा०—किसी के निकट = (१) किसी के प्रति । किसी से ।
जैसे,—किसी के निकट कुछ माँगना । (२) किसी के
सेखे में । किसी की समझ में । जैसे,—तुम्हारे निकट तो
यह काम कुछ भी नहीं है ।

निकटता—सङ्घा स्त्री० [सं०] समीपता । सामीप्य ।

निकटपना—सङ्घा पु० [सं० निकट + पना (प्रत्य०)] निकटता ।
सामीप्य ।

निकटवर्ती—वि० [सं० निकटवर्तिन्] [वि० स्त्री० निकटवर्तिनी]
पासवाला । समीपस्थ । नजदीक का ।

निकटस्थ—वि० [सं०] १. जो निकट हो । पास का । २. सबंध
में जिससे बहुत प्रसर न हो । जैसे, निकटस्थ सखी ।

निकटदू^३—वि० [हि०] दे० 'निष्कटदू' । उ०—बहुत दिनों
में निकटदू आए । ऐसा एक न पूँजी लाए ।—दक्खिनी०
पृ० ३१० ।

निकटी—सङ्घा स्त्री० [सं० निष्क + मिति] छोटा तराशु । फाँटा ।

निकम्मा—वि० [सं० निष्कर्म, प्रा० निकम्म] [वि० स्त्री०
निकम्मी] १ जो कोई काम घधा न करे । जिससे कुछ
करते धरते न उने । जैसे, निकम्मा आदमी । २. जो किसी
काम का न हो । जो किसी काम में न आ सके । बेमसरफ ।
बुरा । जैसे, निकम्मी बीज ।

निकर^४—सङ्घा पु० [अ० निकर वाकजं] एक प्रकार का घुटने
तक का खुला पायजामा ।

निकर^५—सङ्घा पु० [सं०] १ समूह । झुंड । उ०—विचरहि यामें
रसिकवर, मधुर निकर प्रपार ।—रसखान०, पृ० १२ ।
२ राशि । डेर । ३ न्यायदेय धन । ४ सार (को०) । ५.
निधि । खजाना ।

निकरना^६—क्रि० अ० [हि०] दे० 'निकलना' ।

निकर्त^७—सङ्घा पु० [सं०] १ काटना । २ विदारण करना ।
फाड़ना [को०] ।

निकर्मा—वि० [सं० निष्कर्मा] जो काम न करे । आलसी । जो
कुछ उद्योग घधा न करे ।

निकर्षण—सङ्घा पु० [सं०] १ नगर या नगर के समीप खेल का
मैदान । क्रीडाभूमि । २ घर के आगे खुला चतुर्तरा या प्रवेश-
द्वार के पास का आँगन । ३ पड़ोस । ४ परती । बिना जोती
भूमि [को०] ।

निकलंक—वि० [सं० निष्कलङ्क] दोषरहित । निर्दोष । वेदाग ।
उ०—बुरो दुगई जो तजै नो मन खरो सकात । ज्यों निकलक
मयक लखि गनै लोक उत्तपात ।—बिहारी (शब्द०) ।

निकलकी^१—सङ्घा पु० [सं० निष्कलङ्क] विष्णु का दसवाँ अवतार
जो कलि के अंत में होगा । कल्कि अवतार । उ०—द्वादश ये
युग लक्षण गायो । निकलकी अवतार बतायो ।—
रघुनाथ (शब्द०) ।

निकलकी^२—वि० दे० 'निकलक' ।

निकल—सङ्घा स्त्री० [अ०] एक धातु जो सुरमे, कोयले, गंधक,
सखिया आदि के साथ मिनी हुई खानों में मिलती है ।

विशेष—साफ होने पर यह चूँदी की तरह चमकती है । यह
बहुत कड़ी होती है और जल्दी गलती नहीं तथा लोहे की
तरह चुंबक शक्ति को ग्रहण करती है । सन् १७५१ में एक
जर्मन ने इसका पता लगाया । इसका साफ करना बहुत
कठिन काम है । तब के साथ मिलाने से यह विलायती

चाँदी के रूप में हो जाती है। अलुमीनम के साथ इसे मिला देने से इसमें अधिक कड़ापन आ जाता है। यह धातु कठोर, राजपूताना तथा सिंहल द्वीप में थोड़ी बहुत मिलती है। कम मिलने के कारण इसका मूल्य कुछ अधिक होता है, इससे छोटे सिक्के बनाने के काम में यह लाई जाने लगी है।

निकलना—क्रि० प्र० [हि० निकालना] १ बाहर होना। भीतर से बाहर आना। निर्गत होना। जैसे, घर से निकलना, संदूक से निकलना, प्रकुर निकलना, आँसू निकलना।

सयो० क्रि०—आना।—चलना।—जाना।—पडना।—भागना।

मुहा०—निकल जाना = (१) चला जाना। आगे बढ़ जाना। जैसे,—भव तो वे बहुत दूर निकल गए होंगे। (२) न रह जाना। खो जाना। नष्ट हो जाना। ले लिया जाना। जैसे,—हाथ से चीज, काम या भ्रमर निकल जाना। (३) घट जाना। कम हो जाना। जैसे,—पाँच में से तीन निकल गए, दो बचे। (४) न पफड़ा जाना। भाग जाना। जैसे,—चोर निकल गया। (स्त्री का) निकल जाना = किसी पुरुष के साथ अनुचित संबंध करके घर छोड़कर चला जाना।

२ व्याप्त या भोतप्रोत वस्तु का भ्रम होना। मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज का भ्रम होना। जैसे,—बीज से तेल निकलना, पत्ती से रस निकलना, फल का छिलका निकलना।

सयो० क्रि०—आना।—जाना।

३ पार होना। एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। अतिक्रमण करना। जैसे,—इस छेद में से गेंद नहीं निकलेगी।

सयो० क्रि०—आना।—जाना।

मुहा०—निकल चलना = वित्त से बाहर काम करना। इतराना। प्रति करना।

४ किसी श्रेणी आदि के पार होना। उत्तीर्ण होना। जैसे,—इस बार परीक्षा में तुम निकल जाओगे।

सयो० क्रि०—जाना।

५ गमन करना। जाना। गुजरना। जैसे,—(क) वह रोज इसी रास्ते से निकलता है। (ख) बरात बड़ी हूँ से निकली।

सयो० क्रि०—जाना।

६ उदय होना। जैसे, चंद्रमा निकलना, सूर्य निकलना।

सयो० क्रि०—आना।

७ प्रादुर्भूत होना। उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे,—इतने बिस्ते कहीं से निकल पड़े। ८ उपस्थित होना। दिखाई पडना। ९ किसी ओर को बढ़ा हुआ होना। जैसे,—(क) घर का एक कोना पच्छिम ओर निकला हुआ है। (ख) कील की नोक नहीं निकली है।

सयो० क्रि०—आना।—जाना।

१. निश्चित होना। ठहराया जाना। उद्भावित होना। जैसे, ५-४७

रास्ता निकलना। दोष निकलना, परिणाम निकलना, उपाय निकलना।

सयो० क्रि०—आना।—पडना।

११. खुलना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। जैसे,—वाक्य का अर्थ निकलना, धोने पर कपड़े का रंग निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

१२ मेल में से अलग होना। पृथक् होना। जैसे,—गेहूँ में से बहुत ककड़ी निकली है।

सयो० क्रि०—आना।—जाना।

१३ छिड़ना। प्रारंभ होना। जैसे, बात निकलना, चर्चा निकलना। १४ प्राप्त होना। सिद्ध होना। सरना। जैसे, काम निकलना, मतलब निकलना।

सयो० क्रि०—आना।—जाना।

१५ हल होना। किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर प्राप्त होना। जैसे,—इतना सीधा सवाल तुमसे नहीं निकलता।

१६ लगातार दूर तक जानेवाली किसी वस्तु का प्रारंभ होना। जैसे,—यह नदी कहीं से निकली है। १७ लकीर के रूप में दूर तक जानेवाली वस्तु का विधान होना। फैलाव होना। जारी होना। जैसे, नहर निकलना, सड़क निकलना।

१८ प्रचलित होना। जारी होना। जैसे, कानून निकलना, कायदा निकलना, रीति निकलना, चाल निकलना।

१९ फँसा, बंधा या जुड़ा न रहना। छूटना। मुक्त होना। जैसे,—गले से फंदा निकलना, बंधन से निकलना, बटन निकलना।

संयो० क्रि०—जाना।

२० नई बात का प्रगट होना। आविष्कृत होना। ईजाद होना। जैसे,—कोई नई युक्ति निकलना, कल निकलना। २१ शरीर के ऊपर उत्पन्न होना। जैसे,—फोड़े फुसी निकलना, जेचक निकलना।

संयो० क्रि०—आना।—जाना।

२० नई बात का प्रगट होना। आविष्कृत होना। ईजाद होना। जैसे,—कोई नई युक्ति निकलना, कल निकलना। २१ शरीर के ऊपर उत्पन्न होना। जैसे,—फोड़े फुसी निकलना, जेचक निकलना।

सयो० क्रि०—आना।

२२ प्रमाणित होना। सिद्ध होना। साबित होना। जैसे,—(क) वह नौकर तो चोर निकला। (ख) उनकी कही हुई बात ठीक निकली। २३ लगाव न रखना। किनारे हो जाना। अलग हो जाना। जैसे,—दूसरों को इस काम में फँसाकर तुम तो निकल जाओगे।

सयो० क्रि०—जाना।—भागना।

२४ अपने को बचा जाना। बच जाना। जैसे,—कोई आघी बात कहकर निकल तो जाय।

संयो० क्रि०—जाना।—भागना।

२५ अपनी कही हुई बात से अपना संबंध न बताना। कहकर नहीं करना। मुकरना। नटना। जैसे,—बात कहकर सब निकले जाते हैं।

संयो० क्रि०—जाना ।

२६ खपना । बिकना । जैसे,—जितनी पुस्तकें छपाई थीं सब निकल गईं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२७ प्रस्तुत होकर सर्वसाधारण के सामने घाना । प्रकाशित होना । जैसे,—उस प्रेस से अच्छी पुस्तकें निकली हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२८ हिसाब किताब होने पर कोई रकम जिम्मे ठहरना । चाहता होना । जैसे,—तुम्हारा जो कुछ निकलता हो हमसे लो । २९ फटकर भलग होना । उचड़ना । जैसे,—कुरता मोढ़े पर से निकल गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३० प्राप्त होना । पाया जाना । मिलना । जैसे,—(क) हमारा रुपया किसी प्रकार निकल आता तो बड़ी बात होती । (ख) उसके पास चोरी का माल निकला है ।

संयो० क्रि०—घाना ।

३१ जाता रहना । दूर होना । हट जाना । मिट जाना । न रह जाना । जैसे,—(क) दवा लगाते ही सब पीड़ा निकल गई । (ख) एक चाँटा दंगे तुम्हारी सब बदमाशी निकल आयगी ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३२ व्यतीत होना । बीतना । गुजरना । जैसे,—इसी झुल्ल में सारा दिन निकल गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३३ घोड़े बैल, आदि का सवारी लेकर चलना आदि सीखना । शिक्षित होना । जैसे,—यह घोड़ा अभी निकला नहीं है ।

निकलवाना—क्रि० सं० [हि० निकालना का प्रे० रूप] निकालने का काम दूसरे से कराना ।

निकलाना—क्रि० सं० [हि० निकालना] दे० 'निकलवाना' ।

निकष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कसौटी । २ कसौटी पर चढ़ाने का काम । ३ हथियारों पर सान चढ़ाने का पत्थर । ४ कसौटी पर कसने से बनी रेखा (को०) । ५ कोई वस्तु या कार्य जिससे किसी की परीक्षा हो । (ला०) ।

निकषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कसौटी । २ कसौटी पर चढ़ाने का काम । ३ सान पर चढ़ाने का काम । ३ घिसने वा रगड़ने का काम ।

निकषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमालि की कन्या और विश्वा की पत्नी एक राक्षसी जिसके गर्भ से रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए थे ।

निकषात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] निषाचर । रात्रिचर । राक्षस (को०) ।

निकषोपल—संज्ञा पुं० [सं०] वह काला पत्थर जिसपर सोचा कसकर परखा जाता है । कसौटी (को०) ।

निकस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकष' ।

निकसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निकलना' । उ०—सूतल तें निकसति कहूँ बिज्जुछटा की लोइ ।—शकुन्तला, पृ० २१ ।

निकसनी—वि० [हि० निकसना] निकलनेवाली । बाहर निकलने की । उ०—तियन की नहिंन निकसनी वेर । वेग जाहु घर होति प्रवेर ।—नद ग्रं०, पृ० ३१६ ।

निकाई^१—संज्ञा पुं० [सं० निकाय] दे० 'निकाय' ।

निकाई^२—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नेक, हि० नोक] १ भलाई । अच्छापन उम्दगी । २ खबसूरती । सौंदर्य । सुंदरता । उ०—गज मनि माल बीच भ्राजत, कहि जाति न पदक निकाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निकाज—वि० [हि० नि+काज] बेकाम । निकम्मा । उ०—जोवन चपल ढोठ है करै निकाजहि काज ।—जायसी ग्रं०, पृ० २३८ ।

निकाना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'निराना' ।

निकाव—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नकाव] नकाव । पर्दा । उ०—झाँखों में लाल बोरे शराब के बदले । हैं जुफ छुटी रुख पर निकाव के बदले ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० २०३ ।

निकाम^१—वि० [हि० नि+काम] १ निकम्मा । २ बुरा । खराब ।

निकाम^२—क्रि० वि० अर्थ । निःप्रयोजन । फजूल ।

निकाम^३—वि० [सं०] १ इष्ट । अभिलषित । २ यथेष्ट । पर्याप्त । काफी । ३ इच्छुक । ४ बहुत । प्रतिशय ।

निकाम^४—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकामन' (को०) ।

निकामन—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश । इच्छा । अभिलाषा (को०) ।

निकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ समूह । झुंड । उ०—देखि सिधु हरखाय निषाय चकोर निहारें ।—दीन० ग्रं०, पृ० १६८ । २ एक ही मेल की वस्तुओं का ढेर । राशि । ३ निलय । वासस्थान । घर । ४ परमात्मा । ५ शरीर । देह (को०) । ६ लक्ष्य (को०) । ७ वायु । पवन (को०) ।

निकाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] आवास । निवास । घर (को०) ।

निकार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ पराभव । हार । २ अपकार । ३ अपमान । अपमानना । मानहानि । ४ तिरस्कार । ५ अनाज भोसना (को०) । ६ वध करना । मारण । हिंसन (को०) । ७ दुष्टता । बदमाशी (को०) । ८ विरोध । द्वेष (को०) । ९ उरपापन । उठाना (को०) ।

निकार^२—संज्ञा पुं० [हि० निकारना] १ निकालने का काम । निष्कासन । २ निकलने का द्वार । निकास । ३ ईख का रस पकाने का कड़ाहा ।

निकारण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण । वध ।

निकारना^१—क्रि० सं० [हि० निकालना] दे० 'निकालना' ।

निकाल—संज्ञा पुं० [हि० निकालना] १ निकास । २. पैच का काट । वह युक्ति जिससे कुश्ती में प्रतिपक्षी की घात से बचा जाय । तोड़ । ३ कुश्ती का एक पंच ।

विशेष—इसमें अपना दाहिना हाथ जोड़ की बाईं ओर से उसकी गरदन पर पहुँचाकर अपने बाएँ हाथ से उसके दाहिने हाथ को ऊपर उठाते हैं और फिर कुश्ती के साथ उसके दहने भाग

पर झुककर अपनी छाती उसकी दहनी पसलियों से भिड़ाते तथा अपना बायाँ हाथ उसकी दहनी जाँघ में बाहर की ओर से डालकर उसे चित कर देते हैं ।

निकालना—क्रि० सं० [सं० निष्कासन, हिं० निकासना] १ बाहर करना । भीतर से बाहर लाना । निर्गत करना । जैसे, घर से निकालना, बरतन में से निकालना, घुमा हुआ काँटा निकालना ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना । —ले जाना ।

मुहा०—(स्त्री को) निकाल लाना या ले जाना=स्त्री से अनुचित संबंध करके उसे उसके घर से अपने यहाँ लाना या लेकर कहीं चला जाना ।

२ व्याप्त या श्रोतश्रोत वस्तु को पुष्पक करना । मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज को अलग करना । जैसे, बीज से तेल निकालना, पत्ती से रस निकालना, फल से छिलका निकालना ।

सयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना ।

३ पार करना । एक ओर से दूसरी ओर ले जाना या बढ़ाना । अतिक्रमण कराना । जैसे,—दीवार के छेद में से इसे उस पार निकाल दो ।

संयो० क्रि०—देना । —ले चलना । —ले जाना ।

४ गमन कराना । ले जाना । गुजर कराना । जैसे,—(क) वे बारात इसी सड़क से निकालेंगे । (ख) हम उसे इसी ओर से निकाल ले जायेंगे ।

संयो० क्रि०—ले चलना । —ले जाना ।

५. किसी ओर को बड़ा हुआ करना । जैसे,—चबूतरे का एक कोना उधर निकाल दो ।

सयो० क्रि०—देना ।

६ निश्चित करना । ठहराना । उद्भावित करना । जैसे, उपाय निकालना, रास्ता निकालना, दोष निकालना, परिणाम निकालना ।

सयो० क्रि०—देना । —लेना ।

७ प्रादुर्भूत करना । उपस्थित करना । मौजूद करना ।

८ खोलना । व्यक्त करना । स्पष्ट करना । प्रकट करना । जैसे,—वाक्य का अर्थ निकालना । ९ छेड़ना । प्रारम्भ करना । चलाना । जैसे—वात निकालना, चर्चा निकालना । १०. सबके सामने लाना । देख में करना । जैसे,—अभी मत निकासो, लड़के देखेंगे तो रोने लगेंगे । ११. मेल या मिलेजुले समूह में से अलग करना । पुष्पक करना । जैसे,—(क) इनमें से जो ग्राम सडे हों उन्हें निकाल दो । (ख) इनमें से जो तुम्हारे काम की चीजें हों उन्हें निकाल लो ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना ।

१२. घटना । कम करना । जैसे,—पाँच में से तीन निकाल दो ।

सयो० क्रि०—देना । —डालना ।

१३ फँसा, बँधा, जुड़ा या लगा न रहने देना । अलग करना ।

छुड़ाना । मुक्त करना । जैसे,—गले से फँदा निकालना कोट से बटन निकालना ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना ।

१४ काम से अलग करना । नौकरी से छुड़ाना । बरखास्त करना । जैसे,—इस नौकर को निकाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

१५ पास न रखना । दूर करना । हटाना । जैसे,—इस घोंघे को अब हम निकाल देंगे ।

सयो० क्रि०—देना ।

१६ बँचना । छपाना । जैसे, माल निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

१७ सिद्ध करना । फलीभूत करना । प्राप्त करना । जैसे,—अपना काम निकालने में वह बड़ा पक्का है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१८ निर्वाह करना । चलाना । जैसे,—किसी प्रकार काम निकालने के लिये यह प्रयत्न है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१९ किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर निश्चित करना । हल करना । जैसे,—यह सवाल तुम नहीं निकाल सकते २०. लकीर की तरह दूर तक जानेवाली वस्तु का विधात करना । जारी करना । फँलाना । जैसे, नहर निकालना सड़क निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२१. प्रचलित करना, जारी करना । जैसे, कानून निकालना कायदा निकालना, रीति निकालना । २२. नई बात प्रकट करना । आविष्कृत करना । ईजाद करना । जैसे, नई तरकीब निकालना, कल निकालना । २३. सकट, कठिनाई आदि से छुटकारा करना । बचाव करना । विस्तार करना । उद्धार करना । जैसे,—इस सकट से हमें निकालो । २४ प्रस्तुत करके सर्वसाधारण के सामने लाना । प्रचारित करना । प्रकाशित करना । जैसे,—(क) उस प्रकाशक ने अच्छी पुस्तकें निकाली हैं । (ख) अखबार निकालना । २५. रकम जिम्मे ठहराना । ऊपर श्रृणु या देना निश्चित करना । जैसे,—उसने सी रुपए हमारे जिम्मे निकाले हैं । २६. प्राप्त करना । हूँदकर पाना । बरामद करना । जैसे,—पुलिस ने उसके यहाँ चोरी का माल निकाला है । २७ दूसरे के यहाँ से अपनी वस्तु ले लेना । जैसे, बैंक से रुपया निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२८. घोड़े, बैल आदि को सवारी लेकर चलना या गाड़ी आदि खींचना । सिलाना । शिक्षा देना । जैसे,—(क) यह सवार घोड़ा निकालता है । (ख) यह घोड़ा अभी गाड़ी में नहीं निकाला गया है । २९. प्रवाहित करना । बहाना । ३०. सुई से बेल बूटे बनाना ।

निकाला—घञ् प्र० [हिं० निकालना] १. निकालने का काम ।

२ किसी स्थान से निकाले जाने का दंड। बहिष्कार।
निकालना।

क्रि० प्र०—मिलना।—होना।

यौ०—देशनिकाला। नगरनिकाला।

निकाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जहाँ तक दृष्टि जाती हो वह स्थान। दृष्टिक्षेत्र। क्षितिज। २ प्रकाश। ज्योति। ३ एकात। ४ सामीप्य। समीपता। ५. सादृश्य [को०]।

निकाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खुरचना। रगड़ना। घसना। मलना [को०]।

निकास—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निकसना, निकासवा] १ निकलने की क्रिया या भाव। २ निकालने की क्रिया या भाव। ३ वह स्थान जिससे होकर कुछ निकले। निकलने के लिये खुला स्थान या छेद। जैसे, बरसाती पानी का निकास। ४. द्वार। दरवाजा। जैसे,—घर का निकास दक्खिन ओर मत रखो। ५ बाहर का खुला स्थान। मैदान। उ०—(क) खेलत बने घोष निकास।—सूर (शब्द०)। (ख) खेलन चले कुँवर कन्हौई। कहत घोष निकास जइए तहाँ खेलै घाई।—सूर (शब्द०)। ६ दूर तक जाने या फैलनेवाली चीज का प्रारम्भ स्थान। सद्गम। मूलस्थान। जैसे, नदी का निकास। ७ वंश का मूल। ८. सकट या कठिनाई से निकलने की युक्ति। बचाव का रास्ता। रक्षा का उपाय। छुटकारे की तद्वीर। जैसे,—भव तो इस मामले में फँस गए हो, कोई निकास सोचो।

क्रि० प्र०—निकालना।

९ निर्वाह का ढग। ढर्रा। वसीला। सिलसिला। जैसे,—इस समय तो तुम्हारे लिये कोई काम नहीं है, खैर कोई निकास निकालेंगे। १० लाभ या भाय का सूत्र। प्राप्ति का ढग। ग्रामदनी का रास्ता। ११ भाय। ग्रामदनी। निकासी।

निकासना—क्रि० सं० [हि० निकास] दे० 'निकालना'।

निकासपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निकास + पत्र] वह कागज जिसमें जमाखर्च और वचत का हिसाब समझाया गया हो।

निकासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निकास + ई (प्रत्य०)] १ निकलने की क्रिया या भाव। २ किसी स्थान से बाहर जाने का काम। प्रस्थान। रवानगी। जैसे, बरात की निकासी। ३. वह धन जो सरकारी मालगुजारी आदि देकर जमींदार को बचे। मुनाफा। प्राप्ति। ४ भाय। ग्रामदनी। लाभ। जैसे,—जहाँ चार पैसे की निकासी होती है वही सब जाना चाहते हैं। ५ बिन्ती के लिये माल की रवानगी। लदाई। भरती। ६ बिन्ती। खपत। ७ चुगी। ८ रवन्ना।

निकाह—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों पद्धति के अनुसार किया हुआ विवाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—निकाह पठाना = विवाह करना।

यौ०—निकाहनामा = विवाह की शर्तें या लिखापढ़ी। निकाहे-सानी = विधवा का पुनर्विवाह।

निकियाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निकियाना] निकियाने की मजदूरी। जैसे,—दमड़ी की मुरगी, नो टका निकियाई।

निकियाना—क्रि० सं० [देश०] १. नोचकर घञ्जो घञ्जो घसग करना। २ चमड़े पर से पक्ष या दाख नोचकर घसग करना।

निकिष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकृष्ट] दे० 'निकृष्ट'।

निकुच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुञ्च] चाभी। कुजी। ताली।

निकुचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुञ्चक] १ एक परिमाण या तोल जो आधो भजली के बराबर और किसी किसी के मत से आठ तोले के बराबर होती है। कुडव का चतुर्थांश। २ जलवेत। अयुवेतस।

निकुचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुञ्चन] १ दे० 'निकुचक'। २. सकुचन। सकोचन।

निकुचित—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुञ्चित] सकुचित।

निकुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुञ्ज] १ लतागुह। ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओं से घिरा हो। २ लताओं से आच्छादित मंडप।

निकुजिकाम्रा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुञ्जिकाम्रा] दे० 'निकुजिकाम्ना'।

निकुजिकाम्ना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निकुञ्जिकाम्ना] कुज के वृक्ष का एक भेद। कुचिका। कुजिका।

निकुभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुम्भ] १ कुम्भकण्ठ का एक पुत्र जिसे हनुमान ने मारा था। यह रावण का मन्त्री था। २ प्रह्लाद के एक पुत्र का नाम। ३ शतपुर का एक मसुर राजा जो कृष्ण के हाथों मारा गया। इसने कृष्ण के मित्र ब्रह्मदत्त की कन्याओं का हरण किया था। ४. हर्यश्व राजा का पुत्र (हरिवंश)। ५ एक विश्वदेव। ६ कौरव सेनापतियों में से एक राजा। ७ कुमार का एक गण। ८ महादेव का एक गण। ९ दती वृक्ष। १० जमालगोटा।

निकुम्भाख्यबीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुम्भाख्यबीज] जमालगोटा।

निकुम्भिला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निकुम्भिला] १ लका के पच्छिम एक गुफा। २ उस गुफा की देवी जिसके सामने यज्ञ और पूजन करके मेघनाद युद्ध की यात्रा करता था। ३ मर्चन, पूजन का स्थान [को०]।

निकुम्भो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निकुम्भो] १ दती वृक्ष। २ कुम्भकण्ठ की कन्या।

निकुती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निकुती] मोतीचूर। बुँदिया। उ०—दादी बाँटे सीरनी लाहू निकुती निच। प्रथम कमाई पुत्र की सती अऊत निमित्त।—मर्च०, पृ० १४।

निकुरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुरम्ब] समूह। ढेर। उ०—निकर, प्रकर, निकुरव, ब्रज, पूर, पूग, चय, व्युह। कदल, जाल, कलाप, कुल, निबह, निचय, सद्दह।—नद० प्र०, पृ० १००।

निकुरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुरम्ब] दे० 'निकुरव'।

निकुलीनिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वयानुक्रमगत कला। वंश-परंपरा से चली आ रही कला। २ वह कला जो जाति-विशेष में ही प्राप्त हो [को०]।

निकुट्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिडिया ।

निकूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यह देवता जिसके उद्देश्य से नरमेध यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ में बैठे यूप में पशुहवन होता था —(शुक्ल यजुर्वेद) ।

निकुन्तन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निकुन्तन] १. छेदन । खडन । २. काटने का षोडशर । छेदन करने का मूल (को०) । ३. एक नरक (को०) ।

निकुन्तन^२—वि० [स्त्री० निकुन्तनी] काटने या छेदन करने-वाला (को०) ।

निकृत्—वि० [सं०] १. निकाला हुआ । बहिष्कृत । बदनाम । लोपित । ३. तिरस्कृत । ४. नीच । शठ । ५. वंचित । जो ठगा गया हो । ६. पराभवप्राप्त । पराभूत (को०) ।

निकृत्प्रज्ञ—वि० [सं०] बदमाश । दुष्ट । बुरा सोचनेवाला (को०) ।

निकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार । अस्मिता । २. अपकार । ३. दैन्य । ४. शठता । नीचता । ५. पराभव । पराजय । ६. पुथिवी । ७. वंचना । प्रतारण । ८. सध्या से उत्पन्न धर्मपुत्र । ९. एक वसु । माठवें वसु का नाम ।

निकृती—वि० [सं० निकृतिन्] नीच । शठ । दुष्ट ।

निकृत्त—वि० [सं०] १. मूल से छिन्न । जड़ से कटा हुआ । खडित । २. विदारित । विदीर्ण (को०) ।

निकृष्ट^१—वि० [सं०] १. बुरा । अधम । नीच । तुच्छ । २. मशिष्ट । असम्य । ग्राम्य (को०) । ३. समीप । नजदीक (को०) ।

निकृष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० सामीप्य । समीपता (को०) ।

निकृष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुराई । अधमता । नीचता । मदता ।

निकृष्टत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुराई । नीचता । मदता ।

निकेचाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बार बार सचित करना या एकत्र करना (को०) ।

निकेत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. घर । मकान । स्थान । जगह । २. चिह्न । निशान । प्रतीक (को०) ।

निकेतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकेत' ।

निकेतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वासस्थान । घर । मकान । २. पलाङ्ग । प्याज ।

निकोचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अकोल वृक्ष । डेरा ।

निकोचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सकुचन ।

निकोठक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डेरा । अकोल ।

निकोना—क्रि० सं० [देश०] उखाड़ देना । निकियाना । नीच फेंकना । उ०—बहुतक जीव ठिकानो पहुँच आवागवन न होई । जम के दड दहन पावक की तिनकुँ मूल निकोई । —सहजो, पृ० ५८ ।

निकोश्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपशु के पेट की एक नाड़ी ।

निकोसना^१—क्रि० सं० [सं० निस् + कोष] १. दाँत निकालना । २. दाँत पीसना । कटकटाना । किचकिचाना ।

निकौनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निकाना] १. निराई । निराने का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निका^१—वि० [सं० न्यवन (= नव, नीचा)] [वि० स्त्री० निवकी] छोटा । नन्हा । (पञ्जाबी) ।

निक्रीड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कीतुक । क्रोड़ा । तमाशा । २. सामभेद ।

निकवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वीणाध्वनि । बोन की भूतकार । २. किन्नरो का शब्द ।

निकवाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकवण' (को०) ।

निकृण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चुवन ।

निक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सूँ का घड़ा । लीख ।

निक्षिप्त—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । धाला हुआ । २. डाला हुआ । छोड़ा हुआ । त्यक्त । ३. किसी के यहाँ उसके विश्वास पर छोड़ा हुआ (द्रव्य, संपत्ति आदि) । धरोहर रखा हुआ । अमानत रखा हुआ । ४. रखा हुआ । रक्षित (को०) । प्रेषित । भेजा हुआ (को०) ।

निक्षुभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्राह्मणी । २. सूर्य की एक पत्नी का नाम ।—(भविष्य पुराण) ।

निक्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकने या डालने की क्रिया या भाव । २. चलाने की क्रिया या भाव । ३. छोड़ने या रखने की क्रिया या भाव । त्याग । ४. पोंछने की क्रिया या भाव । ५. धरोहर । अमानत । यात्री । किसी के विश्वास पर उसके यहाँ कोई वस्तु छोड़ने या रखने का कार्य अथवा इस प्रकार छोड़ी या रखी हुई वस्तु । ६. अर्पण करना । अर्पण करने की क्रिया या भाव (को०) । ७. मजदूर को सफाई या मरम्मत के लिये कोई वस्तु देना (को०) ।

निक्षेपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो निक्षेप करता हो । २. यात्री या धरोहर रखनेवाला । ३. धरोहर में रखा हुआ पदार्थ या वस्तु (को०) ।

निक्षेपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० निक्षिप्य, निक्षेप्य] १. फेंकना । डालना । २. छोड़ना । चलाना । ३. त्यागना । ४. यात्री रखना (को०) । ५. देना । अर्पण । अर्पण करना (को०) ।

निक्षेपित—वि० [सं०] १. जिसका निक्षेप कराया गया हो । २. अमानत रखवाया हुआ ।

निक्षेपी—वि० [सं० निक्षेपिन्] १. फेंकनेवाला । छोड़नेवाला । २. धरोहर रखनेवाला ।

निक्षेप्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेपक । फेंकनेवाला । छोड़नेवाला । २. धरोहर रखनेवाला ।

निक्षेप्य—वि० [सं०] निक्षेप के योग्य । फेंकने योग्य । छोड़ने योग्य ।

निखंगु—सञ्ज्ञा पुं० [निषङ्ग] दे० 'निषंग' । उ०—दारु बिन सिंग बानरहित निखंग भयो । —हम्मीर०, पृ० ५४ ।

निखंगी—वि० [सं० निषङ्गिन्] दे० 'निषंगी' ।

निखंड—वि० [सं० निस् + खण्ड] मध्य । न थोड़ा इधर न उधर । सटोक । ठोक । जैसे, निखंड प्राची रात, निखंड बेला ।

निखट्टर^१—वि० [हि० नि + कट्टर (= कड़ा)] १. कड़े दिल का । कठोर चित्त का । २. निष्ठुर । निर्दय ।

निखट्टू—वि० [हि० उप० नि (= वहाँ) + खटना (=

टिकना, ठहरना, न टिकनेवाला, न ठहरनेवाला)] १
मपनी कुचाल के कारण कहीं न टिकनेवाला । जिसका कहीं
ठिकाना न लगे । इधर उधर मारा मारा फिरनेवाला ।
२. जमकर कोई काम घसा न करनेवाला । जिससे कोई काम
काज न हो सके । निकम्मा । भालसी ।

निखनन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खनना । खोदना । २ मृत्तिका ।
मिट्टी । ३. गाढना ।

निखरक(५)†—क्रि० वि० [हि० नि + खटकना] खटक से रहित ।
वेखटके । उ०—निघरक जान झलवेले निखरक धोर,
दुखिया कहै या कहा तहाँ की चचित हो न । —घनानन्द,
पु० १०६ ।

निखरना—क्रि० प्र० [सं० निखरण (= छँटना)] १ मेल छँट-
कर साफ होना । निर्मल और स्वच्छ होना । धुलकर रुक
होना । २ रगत का खुलता होना । उ०—मगल कुकुम
की श्री जिसमें, निखरी हो रुषा की लाली । भोला सुहृग
झलता हो, ऐसी हो जिसमें हरियाली । —कामायनी,
पु० १०० ।

संयो० क्रि०—प्राना । — जाना ।

निखरवाना—क्रि० सं० [हि० निखारना] साफ कराना । धुलवाना ।

निखरहर—वि० [देश०] विछोना रहित । विस्तर रहित । बिना
विस्तर का (खाट, पलंग आदि) ।

निखरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निखरना] पक्की । घो की पकी हुई
रसोई । घृतपक्व । सखरी का उलटा ।

विशेष—खानपान के आचार में घो दूध आदि के साथ पकाया
हुआ भोजन (जैसे खीर, पूरी) उच्च वर्ण के लोग बहुत से
लोगों के हाथ का खा सकते हैं, पर केवल पानी के संयोग
से भाग पर पकाई चीजें (जैसे, रोटी, दाल आदि) बहुत
कम लोगों के हाथ की खा सकते हैं ।

निखर्व^१—वि० [सं०] दस हजार करोड । दस सहस्र कोटि ।

निखर्व^२—सञ्ज्ञा पुं० दस हजार करोड की सख्या ।

निखर्व^३—वि० [सं०] बहुत मोटे डील का । वामन । बोना ।
नाटा ।

निखवख(५)†—वि० [सं० न्यक्ष (= सारा, सब)] बिलकुल । सब ।
और कुछ नहीं । उ०—तेहि भयं लगायो पोति बहायो
निखवख रामे राम लिख्यो । —विश्राम (शब्द०) ।

निखात—वि० [सं०] १ खोटा हुआ । २ गाढ़ा हुआ । ३
खोदकर जमाया हुआ । जैसे, खूँटा [को०] ।

निखाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषाद] दे० 'निषाद' ।

निखार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निखरना] १. निर्मलपन । स्वच्छता ।
सफाई । २. सजाव । शृंगार ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

निखारना—क्रि० सं० [हि० निखरना] १. स्वच्छ करना । साफ
करना । माँजना । २. पवित्र करना । पापरहित करना ।

निखारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निखारना] शक्कर बनाने का कड़ाह
जिसमें डालकर रस उबाला जाता है ।

निखालिस†—वि० [हि० नि + प्र० खालिस] विशुद्ध । जिसमें
और किसी चीज का मेल न हो ।

निखिल—वि० [सं०] सपूर्ण । सब । सारा ।

निखूटना†(५)—क्रि० प्र० [सं० नि + √खुट्] १ घटना । समाप्त
होना । २ झुटित होना । छिन्न होना । खोट पड़ना । उ०—
दूटे सामे निखुटो पानि, द्वार ऊपर झलिकावहि कान । —
कवीर ग्र०, पु० २६६ ।

निखूटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निखुटना' ।

निखेद(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निपेध] दे० 'निपेध' । उ०—इहि विधि सब
रचना करी, काहु न जाने भेद । जैसे है तैसे तब हवी, भय
को करे निखेद । —कवीर सा०, पु० ६१६ ।

निखेध(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० विपेध] दे० 'निपेध' ।

निखेधना(५)—क्रि० सं० [सं० निपेध] निपेध करना । मना करना ।
वारण करना ।

निखोट^१—वि० [हि० उप० मि + खोट] १ जिसमें कोई खोटाई
या दोष न हो । निर्दोष । उ०—नाम मोट लेत ही निखोट
होत खोटे खल, मोट बिनु मोट पाइ भयो ना निहाल को ?
—तुलसी (शब्द०) । २ साफ । जिसमें कुछ लगाव फँसाव न
हो । स्पष्ट । खुला हुआ । जैसे, निखोट बात ।

निखोट^२—क्रि० वि० बिना संकोच के । वेधड़क । खुल्लम खुल्ला ।
खुनकर । उ०—(क) कियो सूर प्रणाम निखोट भली चख
चचल भचल सों ठँपि के । —कमलापति (शब्द०) । (ख)
चढ़ी भटारी वाम वह कियो प्रणाम निखोट । तरनि किरम
ते उगन की करसरोज करि घोट । —मतिराम (शब्द०) ।

निखोडना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निखोरना' ।

निखोड़ा†—वि० [देश०] [स्त्री० निखोड़ी] कठोर चित्र का ।
निर्दय ।

निखोरना—क्रि० सं० [हि० उप० नि + खोवना या सं० नि +
क्षारण] नाखून से नोचना । उचाड़ना ।

निगंठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्गन्ध (= बधन रहित)] जैन धर्मावलम्बी
साधु । उ०—निगंठ जैनों की सञ्ज्ञा यो जो केवल कोपीन
धारण करते थे । —हिंदु० सम्प्रदाय, पु० २१५ ।

निगड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्गन्ध?] जड़ी वृद्धी जो दवा के काम में
प्राती है और रक्तशोधक समझी जाती है ।

विशेष—इस सबध में यह प्रवाद है कि साँप जब केचली से भर
जाने के कारण व्याकुल हो जाता है तब इसे चाट लेता है
जिससे केचली उतर जाती है ।

निगंदना—क्रि० सं० [फा० निगदह (= बखिया, सीवन)] रजाई,
दुलाई आदि रुई भरे कपड़ों में ठागा डालना ।

निगंध(५)—वि० [सं० निर्गन्ध] गंधहीन । निर्गन्ध । जिसमें कोई
गंध न हो ।

निगड—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निगड] १. हाथी के पेर बाँधने की
जजोर । घाँट । उ०—लाज की निगड गड़दार भड़दोर
चहूँ चोंकि चितवनि चरखीन चमकोरे हैं । लोचन भचल ये

निगडन

मतग मतवारे हैं।—देव (शब्द०) । २. वेढी । उ०—जिन तृण सम कुल लाज निगडन सब तोरयो हरि रस माहीं।—भारतेंदु य०, भा० १, पृ० ४१८ ।

निगडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जजीर से बाँधना । २. वेढी डालना [को०] ।

निगडित—वि० [सं०] १, जजीर से बाँधा हुआ । २. वेढी डाला हुआ [को०] ।

निगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हवन आदि से उत्पन्न धुआँ [को०] ।

निगद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भाषण । कथन । २. ऊँचे स्वर से किया हुआ जप । ३. मन्त्र जो ऊँचे स्वर से जपा जाय (को०) । ४. बिना धर्म जाने रटना (को०) ।

निगदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भाषण । कथन । २. याद की हुई या रटी हुई चीज का ऊँचे स्वर से पाठ करना [को०] ।

निगदित—वि० [सं०] कथित । कहा हुआ ।

निगम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मार्ग । पथ । २. वेद । ३. वणिक्-पथ । बनियों की फेरी का स्थान । हाट । बाजार । ४. मेला । ५. माल का घाना जाना । व्यापार । ६. निश्चय । ७. कायस्थों का एक भेद । ८. बड़े नगरों की प्रवक्ता सभा । नगर निगम । म्युनिसिपल कारपोरेशन । ९. नगर । १०. दे० 'निगमन' । ११. न्याय शाल (को०) । १२. वेदार्थबोधक या वेदसम्मत ग्रन्थ (को०) ।

निगमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्याय में अनुमान के पाँच अवयवों में से एक । हेतु, उदाहरण और उपनय के उपरांत प्रतिज्ञा को सिद्ध सूचित करने के लिये उसका फिर से कथन । साबित की जानेवाली बात साबित हो गई, यह ज्ञाताने के लिये दलील वगैरह के पीछे उस बात को फिर कहना । नतीजा । जैसे, 'यहाँ पर भाग है' (प्रतिज्ञा) । 'क्योंकि यहाँ पर धूँआँ है (हेतु) । जहाँ धूँआँ रहता है वहाँ भाग रहती है' (उपनय) । इसलिये यहाँ पर भाग है' (निगमन) ।

विशेष—प्रशस्तपाद के भाष्य में 'निगमन' को प्रात्याम्नाय भी कहा है ।

२. जाना । भीतर जाना (को०) । ३. वेद का उद्धरण (को०) ।

निगमनिवासी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निगमनिवासिन] विष्णु । नारायण ।

निगमबोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीराज रासो के अनुसार दिल्ली के पास जमुना नदी के किनारे एक पवित्र स्थान ।

विशेष—रासो में लिखा है कि दानवराज धुधु (बुढ़ या डुंढा) शाप छुड़ाने के लिये विमान पर चढ़कर काशी जा रहे थे । रास्ते में उन्हें प्यास लगी और वे योगिनीपुर (दिल्ली) जल पीने के लिये उतरे जहाँ उन्हें एक ऋषि (हारिफ) मिले । ऋषि ने उन्हें जमुना के किनारे निगमबोध नाम की गुफा में नारायण की तपस्या करने के लिये कहा । दानवराज तपस्या करने लगे । एक दिन पाहुवशीय (?) राजा अनंगपाल की कन्या सखियों सहित स्नान करने के लिये जमुना के किनारे आई और पानी बरसने के कारण उस गुफा में उसने आश्रय लिया । तपस्वी को देख उसने उसे स्तुति से प्रसन्न किया और यह वर माँगा

कि हमलोग वीरपत्नी हो और सदा एक साथ रहें । दानवराज ने अनंगपाल की कन्या को वर दिया कि तुम्हारा एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और दूसरा पुत्र बड़ा भारी वक्ता होगा । इसके उपरांत दानवराज ने काशी जाकर अपना शरीर १०८ खंडों में काटकर गंगा में डाल दिया । उसके जित्वाण से एक प्रसिद्ध भाट और २० खंडों से २० क्षत्रिय वीर भजमेर में उत्पन्न हुए । इन बीस क्षत्रियों में सोमेश्वर प्रधान थे जिनके पुत्र पृथ्वीराज हुए ।

निगमागम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेद शास्त्र ।

निगमी—वि० [सं० निगमिन्] वेद का ज्ञाता [को०] ।

निगर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन । २ एक घरण की तौल में ५५ मोती चढ़े तो उन मोतियों के समूह का नाम निगर है । ३. हवन का धुआँ (को०) । ४. गला (को०) । ५. पूरा पूरा ग्रहण करना या आत्मसात् करना (को०) ।

निगर^२—वि० [सं० निकर] सब । सारे । उ०—निगर नगारे नगर के बाजे एकहि वार ।—केशव (शब्द०) ।

निगर^३—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'निकर' ।

निगरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भक्षण । निगलना । २. गला । ३. यज्ञाग्नि का धूम । होमधूम ।

निगराँ—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] ०. निगरानी रखनेवाला । २. निरीक्षक । ३. रक्षक ।

निगरा^१—वि० [हि० उप० नि (= नही) + सं० गरण (= गीला या पनीला करना)] (ईख का रस) जो जल मिलाकर पतला न किया गया हो । खालिस । जैसे, निगरा रस ।

निगरा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ५५ मोतियों की लड़ी जो तौल में ३२ रत्ती हो ।

निगरा^३—वि० [हि० निगुरा] दे० 'निगुरा' । बेसहारा उ०—घरे हौ रे पलटू निगरा सिगरा आदि कहो कोई रोगी भोगी ।—पलटू०, पृ० ७६ ।

निगराना^१—क्रि० सं० [सं० नव + करण] १. निरुण्य करना । निबटाना । २. छँटकर भलग भलग करना । पुष्क करना । ३. स्पष्ट करना । उ०—अग्नि पवन रज पानि के, भाँति भाँति व्योहार । प्रापु रहा सब माँहि मित्रि, को निगरावे पार ।—चित्रावली, पृ० १ ।

निगराना^२—क्रि० प्र० १. भलग होना । २. स्पष्ट होना ।

निगरानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] देखरेख । निरीक्षण ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—में रहना ।

निगरु^३—वि० [सं० नि + गुफ] हलका । जो भारी या वजनी न हो । उ०—निगरु देखो भए गिरिगण जलधि में ज्यों पात ।—केशव (शब्द०) ।

निगल, निगलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निगरण' [को०] ।

निगलना—क्रि० सं० [सं० निगरण, निगलन] १. लोल जाना । गले के नीचे उतार देना । घोट जाना । गटक जाना । २. खा

जाना । ३ रूपया या घन पचा जाना । दूसरे का घन या कोई वस्तु मार बैठना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निगाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] निगाह । दृष्टि । नजर ।

यो०—निगहबा = निगहवान । उ०—बघत राफचारों निगहबा किया । मकौ मुक्ति के चार दर बाँ किया ।—कबीर म०, पृ० १३७ ।

निगहवान—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] रक्षक । उ०—हमारे निगहवान हैं चाँद सूरज, मगर हम न समझे कि क्यों ज्योति छाया ।—हृष, पृ० ४६ ।

निगहवानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] रक्षा । देखरेख । रखवाली । चौकसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निगाद—वि० [सं० निगाद] कथन । भाषण ।

निगादी—वि० [सं० निगादिन्] वक्ता ।

निगार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भक्षण ।

निगार^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. चित्र । बेलवूटा । नक्काशा ।

यो०—नवश निगार ।

२ एक फारसी राग (मुकाम) ।

निगारक—वि० [सं०] भक्षक । निगननेवाला [को०] ।

निगाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में पैदा होता है । इसे रिंगाल भी कहते हैं । २. घोड़े की गद्दन । ३ जंजीर । साँकल (को०) ।

निगालक—वि० [सं०] निगलनेवाला । भक्षण करनेवाला [को०] ।

निगालवान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निगालवत्] धरुव । घोड़ा [को०] ।

निगालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घाठ भक्षकों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण रगण और लघु गुरु होते हैं । इसे 'प्रमाणिका' और 'नागम्बरुपिणी' भी कहते हैं । जेमे,—प्रभात मो, सुहात मो । हली छली, जगे बली । तिही घरी उठे हरी । न देर हूँ, कछु करी ।

निगाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निगाल] १ निगाल । बाँस की बनी हुई नली । २. हुक्के की नली जिसे गुँह में रखकर प्राँ खींचते हैं ।

निगाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] । दृष्टि । नजर ।

क्रि० प्र०—करना । — होना ।

२. देखने की क्रिया या ढग । चितवन । तकाई ।

मुहा०—दे० 'दृष्टि', 'नजर' और 'आँख' ।

३ कृपादृष्टि । मेहरबानी ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

४ ब्यापन । विचार । समझ । ५. निरीक्षण । देखरेख । ६ परख । पहचान ।

क्रि० प्र०—होना ।

निगिभ^१—वि० [सं० निगुह्य] अत्यंत गोपनीय । जिसका बहुत लोभ हो । बहुत प्यारी । उ०—निगिभ वस्तु जो होय तिहारी । सोइ सवति सम होय सुधारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

निगीर्य—वि० [सं०] १. निगला हुआ । २. अंतर्भुक्त । समा-विष्ट [को०] ।

निगुफ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निगुम्फ] १. समूह । गुच्छा । २. अत्यंत गुफन या गुँथाई । घनी गुँथाई (को०) ।

निगु^१—वि० [सं०] प्रसन्न करनेवाला । मनोहारी [को०] ।

निगु^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मन । २. मल । ३. मूल । जड़ । ४ चित्र । चित्रण [को०] ।

निगुण^१—वि० [सं० निगुंण] दे० 'निगुंण' ।

निगुणा^१—वि० [सं० निगुंण] १. कृतघ्न । नीच । पहसान फरा-मोश । उ०—(क) निगुणा गुण माने नहीं, कोटि करे जो कोई । दाढ़ सब कुछ सौपिए, सो फिर बेरी होइ ।—सतवाणी०, पृ० ८८ । (ख) सगुण गुण केते करे, निगुणा न माने नीच । दाढ़ साधु सब कहैं, निगुणा के सिर मोच ।—दाहू०, पृ० ४४२ ।

निगुन, निगुना^१—वि० [सं० निगुंण, हि० निगुणा] दे० 'निगुण' 'निगुणा' ।

निगुनी^१—वि० [हि० उप० नि + गुनी] जो गुणी न हो । गुण रहित । उ०—गुनी गुनी सब कोई कहत निगुनी गुनी न होत । सुन्यो कहैं तरु प्रयं ते प्रकं समान उदोत ।—बिहारी (शब्द०) ।

निगुरा—वि० [हि० उप० नि + गुरु] जिसने गुरु न किया हो । जिसने गुरु से मन्त्र न लिया हो । प्रदीक्षित । उ०—गुरुमुख होवे सो भरि पोवे, निगुरा नहीं जल पावता है ।—पलदू०, पृ० ३६ ।

निगूढ़^१—वि० [सं० निगूढ] अत्यंत गुप्त । उ०—माया विवश भए मुनि मुढ़ा । समुक्ति नहीं हरि गिरा निगूढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निगूढ़^२—सञ्ज्ञा पुं० वनमुद् । मोठ ।

निगूढ़ार्थे—वि० [सं०] जिसका अर्थ छिपा हो ।

विशेष—न्यायसभा में उपस्थित दोनों पक्षवालों के जो उत्तर उत्तराभास (जो उत्तर ठीक न हो) कहे गए हैं उनमें निगूढ़ार्थ भी है । जैसे, यदि प्रतिपक्षी से पूछा जाय कि क्या सो हमसे तुम्हारे ऊपर प्राते हैं और वह उत्तर दे कि 'वया मेरे ऊपर इसके रुपये प्राते हैं' । इस उत्तर से यह ध्वनि निकलती है कि दूसरे किसी के ऊपर प्राते हैं ।

निगूना^१—वि० [सं० निगुंण] दे० 'निगुंण' । उ०—मरे सोई जो होइ निगुना । पीर न जाने पिरह बिहूना ।—जायसा (शब्द०) ।

निगूहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोपन । छिपाव ।

निगृहीत—वि० [सं०] १ घरा हुआ । पकड़ा हुआ । घेरा हुआ । २ आक्रामित । आक्रांत । जिसपर आक्रमण किया गया हो । ३ षोडित । ४ दंडित । ५ बधीभूत (को०) । ६ पराजित बाध में परास्त (को०) ।

निगृहीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाधा । रोक । २ पराभव । वश में करना [को०] ।

निगोटिव—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह प्लेट या फिल्म जिसपर फोटो लिया जाता है और जिसपर प्रकाश और छाया की छाप उलटी पड़ती है, अर्थात् जहाँ खुलता और सफेद होना चाहिए काँचा और गहरा होता है और जहाँ गहरा और काला होना चाहिए वहाँ खुलता और सफेद होता है। कागज पर (पाजिटिव) सीधा छाप लेने से फिर पदार्थों का चित्र यथातथ्य उत्तर आता है।

निगोड़ा—वि० [हि० निगुरा, दश०] [स्त्री० निगोड़ी] १ जिसके ऊपर कोई बड़ा न हो। २ जिसके आगे पीछे कोई न हो। जिसके प्राणी न हो। अभागा। ३ अभागा या चपल वा दुष्ट के लिये कभी कभी स्नेह या दुलार के साथ प्रयुक्त पद।

यौ०—निगोड़ा नाठा जिसके आगे पीछे कोई न हो। बिना प्राणी का। लावारिस।

३ दुष्ट। बुरा। नीच। कमीना। (गाँधी स्त्रि०)। उ०—जानवर क्या निगोड़ा मिट्टी का थूहा है।—फिमाना०, भा० ३, पृ० ४।

निगोड़िन—वि० स्त्री० [हि० निगुरा] दे० 'निगोड़ा'। उ०—हमारी ननद निगोड़िन जागे।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

निगोरा—वि० [हि०] दे० 'निगोड़ा'।

निग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोक। प्रवरोध। २ दमन। ३ विकृति। रोकने का उपाय। ४ दंड। ५ पीडन। सताना। ६ वधन। ७ भरसँन। डाँट। फटकार। ८ सीमा। हद। ९ विष्णु। १० शिव। ११ चित्तवृत्ति का निरोध (की०)। १२ अतिलघन (की०)। १३ दे० 'निग्रहस्थान' (की०)।

निग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोकने का कार्य। धामने का कार्य। २ दंड देने का कार्य। ३ वधन। बाधना (की०)। ४ पराजय पराभव। हार (की०)।

निग्रहना—क्रि० सं० [सं० निग्रहण] १ पकड़ना। धामना। उ०—कस केश निग्रहो भूमि को भार उतारों।—सूर (शब्द०)। २ रोकना। ३ दंड देना।

निग्रहस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वादविवाद या शास्त्रार्थ में वह अवसर जहाँ दो शास्त्रार्थ करनेवालों में से कोई उलटी पलटो या नासमझी की बात बहने लगे और उसे चुप करके शास्त्रार्थ बंद कर देना पड़े। यह पराजय का स्थान है।

विशेष—न्याय में जहाँ विप्रतिपत्ति (उलटा पुलटा ज्ञान) या अप्रतिपत्ति (अज्ञान) किसी और से हो वहाँ निग्रहस्थान होता है। जैसे, वादी कहे—आग गरम नहीं होती। प्रतिवादी कहे कि स्पर्श द्वारा गरम होना प्रमाणित होता है। इसपर वादी यदि बगल झुकने लगे और कहे कि मैं यह नहीं कहता कि आग गरम नहीं होती, इत्यादि तो उसे चुप कर देना चाहिए। या मुख कहकर निकाल देना चाहिए। निग्रहस्थान २२ कहे गए हैं—प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञातर, प्रतिज्ञा विरोध, प्रतिज्ञासम्यग्, हेत्वतर, अर्थांतर, निरर्थक, अविज्ञा-ताथ, अपार्थक्य, अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननु-भाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्यो-पेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग, अपसिद्धात और हेत्वाभास।

(१) प्रतिज्ञाहानि वहाँ होती है जहाँ कोई प्रतिद्वष्टात के धर्म को अपने दृष्टांत में मानकर अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ता है। जैसे, एक कहता है—शब्द अनित्य है। क्योंकि वह इन्द्रियविषय है। जो कुछ इन्द्रियविषय हो वह धर की तरह अनित्य है। शब्द इन्द्रियविषय है। अतः शब्द अनित्य है।

दूसरा कहता है—जाति (जैसे घटत्व) इन्द्रियविषय होने पर भी नित्य है इसी प्रकार शब्द ही क्यों नहीं।

इसपर पहला कहता है—जो कुछ इन्द्रियविषय हो वह घट की तरह नित्य है। उसके इस कथन से प्रतिज्ञा की हानि हुई।

(२) प्रतिज्ञातर वहाँ होता है जहाँ प्रतिज्ञा का विरोध होने पर कोई अपने दृष्टांत और प्रतिद्वष्टात में विकलर से एक और नए धर्म का आरोप करता है। जैसे, एक आदमी कहता है—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह घट के समान इन्द्रियों का विषय है।

दूसरा कहता है—शब्द नित्य है, क्योंकि वह जाति के समान इन्द्रियविषय है।

इसपर पहला कहता है कि पात्र और जाति दोनों इन्द्रियविषय हैं। पर जाति सर्वगत है और घट सर्वगत नहीं। अतः शब्द सर्वगत न होने से घट के समान अनित्य है। यहाँ शब्द अनित्य है, यह पहली प्रतिज्ञा थी, शब्द सर्वगत नहीं, यह दूसरी प्रतिज्ञा हुई। एक प्रतिज्ञा की साधक दूसरी प्रतिज्ञा नहीं हो सकती, प्रतिज्ञा के साधक हेतु और दृष्टांत होते हैं।

(३) जहाँ प्रतिज्ञा और हेतु का विरोध हो वहाँ प्रतिज्ञाविरोध होता है, जैसे, किसी ने कहा—द्रव्य गुण से भिन्न हैं (प्रतिज्ञा), क्योंकि उसकी उपलब्धि रूपादिक से भिन्न नहीं होती। यहाँ प्रतिज्ञा और हेतु में विरोध है क्योंकि यदि द्रव्य गुण से भिन्न है तो वह रूप से भी भिन्न हुआ।

(४) जहाँ पक्ष का निषेध होनेपर माना हुआ धर्म छोड़ दिया जाय वहाँ प्रतिज्ञा सन्त्यास होता है। जैसे, किसी ने कहा—'इन्द्रियविषय होने से शब्द अनित्य है'। दूसरा कहता है जाति इन्द्रियविषय है, पर अनित्य नहीं, इसी प्रकार शब्द भी सम्भिए। इस प्रकार पक्ष का निषेध होने पर यदि पहला कहने लगे कि कोन कहता है कि 'शब्द अनित्य है' तो उसका यह कथन प्रतिज्ञासन्त्यास नामक निग्रहस्थान के अंतर्गत हुआ।

(५) जहाँ अविशेष रूप से कहे हुए हेतु का निषेध होने पर उसमें विशेषत्व दिखाने की चेष्टा की जाती है वहाँ हेत्वतर नाम का निग्रहस्थान होता है। जैसे, किसी ने कहा—'शब्द अनित्य है' क्योंकि वह इन्द्रियविषय है। दूसरा कहता है कि इन्द्रियविषय होने से ही शब्द अनित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि जाति (जैसे घटत्व) भी तो इन्द्रियविषय है पर वह अनित्य नहीं। इसपर पहला कहता है कि इन्द्रियविषय होना जो हेतु मैंने दिया है, उसे इस प्रकार का

इन्द्रियविषय समझना चाहिए जो जाति के अंतर्गत लाया जा सकता हो। जैसे, 'शब्द' जाति के अंतर्गत लाया जा सकता है (जैसे, शब्दत्व) पर जाति (जैसे घटत्व) फिर जाति के अंतर्गत नहीं लाई जा सकती। हेतु का यह टाखना हेतुवत्तर कहलाता है।

- (६) जहाँ प्रकृत विषय या अर्थ से संबंध रखनेवाला विषय उपस्थित किया जाता है वहाँ अर्थांतर होता है, जैसे, कोई कहे कि शब्द अनित्य है, क्योंकि वह अस्पृश्य है। विरोध होनेपर यदि वह इसपर उधर की फल्लु बातें बकने लगे, जैसे हेतु शब्द 'हिं' धातु से बना है, इत्यादि, तो उसे अर्थांतर नामक निग्रहस्थान में आया हुआ समझना चाहिए।
- (७) जहाँ वयों की बिना अर्थ की योजना की जाय वहाँ निरर्थक होता है। जैसे कोई कहे क ख ग गिर्य है अ व ग ड से।
- (८) जब पक्ष का विरोध होने पर अपने बचाव के लिये कोई ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगे जो अर्थप्रसिद्ध न होने के कारण अल्हदी समझ में न आए अथवा बहुत जल्दी और अस्पष्ट स्वर में बोलने लगे तब अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान होता है।
- (९) जहाँ अनेक पदों या वाक्यों का पूर्वापर क्रम से अन्वय न हो, पद और वाक्य असंबद्ध हों, वहाँ अपार्थक्य होता है।
- (१०) प्रतिज्ञाहेतु आदि अवयव क्रम से न कहे जायें, प्रागे पीछे चलत पुलटकर कहे जायें वहाँ अप्राप्तकाल होता है।
- (११) प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों में से जहाँ कथन में कोई अवयव कम हो वहाँ ग्यून नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१२) हेतु और उदाहरण जहाँ आवश्यकता से अधिक हो जायें वहाँ अधिक नामक निग्रहस्थान होता है क्योंकि जब एक हेतु और उदाहरण से अर्थ सिद्ध हो गया तब दूसरा हेतु और उदाहरण व्यर्थ है। पर यह बात पहले नियम के मान लेने पर है।
- (१३) जहाँ व्यर्थ पुनः कथन हो वहाँ पुनरुक्त होता है।
- (१४) चुप रह जाने को अननुभाषण कहते हैं। जहाँ वादी अपना अर्थ साफ साफ तीन बार कहे और प्रतिवादी सुन 'ह्र' समझकर भी कोई उत्तर न दे वहाँ अननुभाषण नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१५) जिस बात को समासव समझ गए हों उसी को तीन बार समझाने पर भी यदि प्रतिवादी न समझे तो अज्ञान नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१६) जहाँपर पक्ष का खलन अर्थात् उत्तर न बने वहाँ अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१७) जहाँ प्रतिवादी इस प्रकार टाल टुल कर दे कि 'मुझे इस समय काम है, फिर कहूँगा' वहाँ विक्षेप होता है।
- (१८) जहाँ प्रतिवादी के दिए हुए दोष को अपने पक्ष में अंगीकार करके वादी बिना उस दोष का उद्धार किए

प्रतिवादी से कहे कि 'तुम्हारे कथन में भी तो यह दोष है' वहाँ मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान होता है।

- (१९) जहाँ निग्रहस्थान में प्राप्त हो जानेवाले का निग्रह न किया जाय वहाँ पर्यनुयोज्योपेक्षण होता है।
- (२०) जो निग्रहस्थान में न प्राप्त होनेवाले को निग्रहस्थान में प्राप्त कहे उसे निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रहस्थान में गया समझना चाहिए।
- (२१) जहाँ कोई एक सिद्धांत को मानकर विवाद के समय उसके विरुद्ध कहता है वहाँ अपसिद्धांत नामक निग्रहस्थान होता है।
- (२२) दे० 'हेत्वाभास'।

निग्रही—वि० [सं० निग्रहिन्] १ रोकनेवाला। दबानेवाला। २ दमन करनेवाला। दड देनेवाला।

निग्राह—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ आक्रोश। शाप। २ दड (क्री०)।

निग्राहक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह मनुष्य जो अपराधियों को अनुचित तथा अन्याययुक्त दड दे।

निग्रोध—सञ्ज्ञा पु० [सं० न्यग्रोध] १ राजा अशोक के एक भतीजे का नाम। २. दे० 'न्यग्रोध'। उ०—जटी, कपदी, रक्त फल, बहुपद, ध्रुव, निग्रोध। यह वशीवट देखि बलि, सब सुख निरवधि रोष।—नद० प्र०, पु० १०६।

निघटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निघटिका] एक प्रकार का कद। गुलच। निघट्टु—सञ्ज्ञा पु० [सं० निघट्टु] १ वैदिक शब्दों का संग्रह। वैदिक कोश।

विशेष—यास्क ने निघट्टु की जो व्याख्या लिखी है वह निरुक्त के नाम से प्रसिद्ध है। यह निघट्टु अत्यंत प्राचीन है क्योंकि यास्क के पहले भी शाकपूर्णि और स्थोलष्ठीवी नामक इसके दो व्याख्याकार या निरुक्तकार हो चुके थे। महाभारत में कश्यप को निघट्टु का कर्ता लिखा है।

२. शब्दसंग्रह माथ। जैसे, वैद्यक का निघट्टु।

निघ^१—वि० [सं०] जिसकी बोझाई और ऊँचाई बराबर हो [को०]।

यौ०—निघानिघ = विभिन्न रूपों तथा आकारों का।

निघ^२—सञ्ज्ञा पु० १ कटुक। गंद। २ पाप [को०]।

निघटना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घटना'। उ०—संदेशन क्यों निघटत दिन राति।—सूर (शब्द०)।

निघटना^२—क्रि० सं० [हि० नि + घटना] मिटाना। नष्ट करना।

निघटना^३—क्रि० सं० [हि० निघटना] दे० 'निघटना'। उ०—चलत पय पयनि घरम श्रुति करमनिघटन।—मतिराम (शब्द०)।

निघरघट—वि० [हि० नि (= नहीं) + घरघाट] १ जिसका कहीं घर घाट न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जो घुम फिरकर फिर वहीं आए जहाँ से दुतकारा या हटाया जाय। उ०—खोवत है यों ही आयु की भए निपट हो निघरघट।—प्रज० प्र०, पु० १२५। २ निर्लज्ज। डोढ। बेहया। उ०—अघट घटाई भरयो निपट निघरघट, मो घट क्यों रावरी बडाई लों निबिर है।—घनानंद, पु० ५३।

मुहा०—निघरघट देना = लज्जित किए जाने पर झूठी बातें बनावना कि मैं यही था, मैं वही था। वेहयाई से झूठी सफाई देना। उ०—दूरे न निघरघटी दिए ये रावरी कुचाल। विष सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल।—बिहारी (शब्द०)।

निघरघटपन—सङ्घा पु० [हि०] निलज्जता। वेहयाई। उ०—काम में ला छुला निघरघटपन। नाम मरदानगी मिटाना है।—चोखे०, पु० २६।

निघरा—वि० [हि० नि + घर] जिसके घर बार न हो। निघोडा (गाली)। उ०—मेरी भई यह आनि दशा निघरे विधि तोहि भरे यह पीर न।—गुमान (शब्द०)।

निघर्ष—सङ्घा पु० [सं०] दे० 'निघर्षण' [को०]।

निघर्षण—सङ्घा पु० [सं०] घर्षण। घिसना। रगड़ना।

निघस—सङ्घा पु० [सं०] भोजन। खाद्य। आहार। [को०]।

निघा—सङ्घा स्त्री० [फ्रा० निगाह] दे० 'निगाह'। उ०—सो पात्साह की उनपर वोहोत निघा रहती।—दो सौ बावन०, भा० १, पु० १०६।

निघात—सङ्घा पु० [सं०] १. आह्वान। प्रहार। २. अनुदात्त स्वर।

निघाति—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. लोहदंड। २. वह लोहे का खड जिसपर हथोड़े आदि का आघात पड़े। निहाई।

निघाती—वि० [सं० निघातिन्] [वि० स्त्री० निघातिनी] १. मारनेवाला। प्रहार करनेवाला। २. वध करनेवाला।

निघुष्ट—सङ्घा पु० [सं०] १. ध्वनि। शब्द। २. हल्ला गुल्ला। शोरगुल [को०]।

निघुष्ट—वि० [सं०] १. घषित। रगड़ा हुआ। घर्षणयुक्त। २. मर्दित। पराभूत [को०]।

निघुष्ट^१—सङ्घा पु० [सं०] १. खुर। २. खुर का निशान। ३. वायु। हवा। ४. खच्चर या गदहा। ५. सूअर। ६. मार्ग। सङ्क [को०]।

निघुष्ट^२—वि० १. निम्न। छोटा। तुच्छ। २. घषित। रगड़ा हुआ [को०]।

निघ्न^१—वि० [सं०] १. अधीन। आयत्त। वशीभूत। २. निर्भर। अवलम्बित। ३. गुणित। गुणा किया हुआ।

निघ्न^२—सङ्घा पु० १. सूर्यवंशीय राजा अनुरण्य का पुत्र (हरिवंश)।

निघ्नत—वि० [सं० निघ्नन्त, प्रा० निघ्नित] दे० 'निघ्नित'। उ०—माँगण पयो जाणि कइ तब छडिया निघ्नत।—ढोला०, दृ० १८६।

निघ्नद्र—सङ्घा पु० [सं० निघ्नद्र] एक दानव का नाम।

निघ्नक—सङ्घा पु० [सं०] हस्तिनापुर के एक राजा जो प्रसीमकुण्ड के पुत्र थे। हस्तिनापुर को जब गंगा बहा ले गई तब इन्होंने कोशाबी में राजधानी बसाई।

निघ्नमन—सङ्घा पु० [सं०] थोड़ा थोड़ा पीना।

निचय—सङ्घा पु० [सं०] १. समूह। २. निश्चय। ३. सचय।

निचल—वि० [सं० निचल] दे० 'निश्चल'।

निचला^१—वि० [हि० नीचे + ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० निचली] नीचे का नीचेवाला। जैसे, निचला भाग।

निचला^२—वि० [सं० निश्चल] १. अचल। जो हिलता डोलता न हो। २. स्थिर। शांत। जो चंचल न हो। अचंचल।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

मुहा०—निचला बैठना = (१) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। चंचलता न करना। (२) शिष्टतापूर्वक बैठना।

निचाई—सङ्घा स्त्री० [हि० नीचा + भाई (प्रत्य०)] १. नीचा होने का भाव। नीचापन। जैसे, ऊँचाई निचाई। २. नीचे की ओर दूरी या विस्तार। ३. नीच होने का भाव। नीचता। मोछापन। कमीनापन। उ०—(क) भले भलाई पे सहीहि लहीहि निचाई नीच।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नीच निचाई नहि तजें जो पावें सतसग।—(शब्द०)।

निचान—सङ्घा स्त्री० [हि० नीचा + भान, यान (प्रत्य०)] १. नीचापन। २. ढाल। ढालुवापन। ढलान।

निचित—वि० [सं० निश्चित] चितारहित। बेफिक्र। सुचित।

निचि—सङ्घा पु० [सं०] कानो के सहित गाय का सिर।

निचिकी—सङ्घा स्त्री० [सं०] मच्छी गाय।

निचित—वि० [सं०] १. सचित। इकट्ठा। २. पूरित। व्याप्त। ३. तैयार। निमित्त। ४. संकीर्ण। ५. ढका हुआ (को०)। ६. पुंजीभूत। ढेर लगाया हुआ (को०)।

निचिता—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम (महामारत)।

निचिता^१—क्रि० वि० [सं० निश्चित] दे० 'निचित'। उ०—चेटक-चितहि लगाय निचोते हो भले। जुवती जन मद गजन घातन हो पले।—घनानंद, पु० १६२।

निचुड़ना—क्रि० प्र० [सं० उर० नि + च्यवन (= चुना)] १. रस से भरी या गोली बीज का इस प्रकार दबना कि रस या पानी टपककर निकल जाय। दबकर पानी या रस छोड़ना। गरना। जैसे, घोटी निचुड़ना, नीबू निचुड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. भरे या समाए हुए जल आदि का दाब पाकर मलग होना या टपकना। छूटकर चूना। गरना। जैसे, गोली घोटी का पानी निचुड़ना, नीबू का रस निचुड़ना। उ०—कहे देत रंग रात को रंग निचुरत से नैन।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

३. रस या सारहीन होना। ४. शरीर का रस या सार निकल जाने से दुबला होना। तेज और शक्ति से रहित होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

निचुल—सङ्घा पु० [सं०] १. वेंत। २. हिज्जल वृक्ष। ईजड का पेड़। ३. दे० 'निचोल' (को०)।

निचुलक—सङ्घा पु० [सं०] १. दे० 'निचोल' २. जिरह वस्त्र। कवच। उरलाण [को०]।

निचै०—सझा पु० [सं० निचय] दे० 'निचय' ।

निचोड़—सझा पु० [हि० निचोड़ना] १ वह वस्तु जो निचोड़ने से निकले । निचोड़ने से निकला हुआ जल, रस आदि । २ गार वस्तु । सार । सत । ३ कथन का सारांश । मुख्य तात्पर्य । खुलासा । जैसे, सब बातों का निचोड़ ।

निचोड़ना—क्रि० सं० [हि० निचोड़ना] १ गोली या रसभरी वस्तु को दबाकर या ँँठकर उसका पानी या रस निकालना । गारना । जैसे, गोली धोती निचोड़ना, नीबू निचोड़ना, धोती का पानी निचोड़ना, नीबू का रस निचोड़ना ।

सयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

२ किसी वस्तु का सार भाग निकाल लेना । ३ सप कुछ ले लेना । सर्वस्व हरण कर लेना । निर्धन कर देना । जैसे,—उनके पास अब कुछ नहीं रह गया, लोगों ने उन्हें निचोड़ लिया ।

सयो० क्रि०—लेना ।

निचोना०—क्रि० सं० [सं० नि + चयन] निचोड़ना । उ०—(क) तृपावत सुरसरि विहाय सठ फिरि फिरि पिकत प्रकास निचोयो ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) मुसुहानि भरी वलि धोलनि तें श्रुति माहि पियूष निचाती रही ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

निचोर०—सझा पु० [हि०] दे० 'निचोड़' ।

निचोर०—सझा पु० [सं० निचोल] दे० 'निचोल' । उ०—ध्वजा पताका कलस मय तोरन । मंगल रूप सुरुष निचोरन ।—ह० रासो, पृ० १६ ।

निचोरना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निचोड़ना' । उ०—शशि भोर भानु निचोर, शोभा राखी षोण पर ।—कबीर सा०, पृ० १०४ ।

निचोरनि०—सझा श्लो० [हि० निचोड़ना] निचोड़ने का कार्य । उ०—रुचिर निचोरनि चुवत नीर लखि भ अघोर तनु । तब बिछुरन की पोर चोर अंसुप्रन रोवत जनु ।—नद० प्र०, पृ० ३६ ।

निचोल—सझा पु० [सं०] १. आच्छादन वस्त्र । ऊपर से शरीर ढँकने का कपड़ा । २ ओढ़ार । आच्छादन । ३ स्त्रियों की ओढ़नी । घूँघट का कपड़ा । ४ उत्तरीय वस्त्र । ५ घाघरा । लहंगा । ६ वस्त्र । कपड़ा ।

निचोलक—सझा पु० [सं०] १ चोल । कचुक । अगा । २. सझाह । वस्त्र ।

निचोवना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निचोना' ।

निचौहाँ—वि० [हि० नीचा + चौहाँ (प्रत्य०) (< सं० आवाह)] [वि० श्लो० निचौहाँ] नीचे की ओर किया हुआ या झुका हुआ । नमित । उ०—सखिन मध्य करि दीठि निचौहाँ राधा सकुच मरी ।—सूर (शब्द०)

निचौहें—क्रि० वि० [हि० नीचोहाँ] नीचे की ओर । उ०—बिछुरे जिये सकोच यह मुख ते कहत न वैन । दोऊ दोरि लगे हिए किये निचौहें नेन ।—बिहारी (शब्द०) ।

निच्छवि—सझा श्लो० [सं०] तीरगुक्ति देश । तिग्म ।

निच्छवि—सझा पु० [सं०] एक प्रकार का त्रात्य क्षत्रिय मगधों की से उत्पन्न त्रात्य क्षत्रिय को मना । (मनु०) ।

निच्छका—सझा पु० [सं० नि + चक्र (= मञ्जरी)] १ समया या स्थान जिसमें कोई दूसरा न हो । विराता । एकाद । निर्जन ।

मुहा०—निच्छके म = एकाद म ।

निच्छका—क्रि० वि० [सं० नि + चक्र] निरा । मात्र ।

निच्छत्र—वि० [सं० निच्छत्र] १ अथवा निर पर छत्र न हो । छत्रहीन । बिना छत्र का । २ बिना राजमहिम्ना का । ३ बिना राज्य का ।

निच्छत्र—वि० [सं० निच्छत्र] क्षत्रिय से हीन । बिना क्षत्रिय का । क्षत्रिया ने नहीं । उ०—मागधा मुनि बिहो अपराधहि तामधेनु ले प्राऊ । इकरत मा निच्छत्र तब कीन्हो तहाँ न देने हाऊ ।—तूर (शब्द०) ।

निच्छमा—सझा पु० [सं०] एकाद स्थान । निर्जन स्थान ।

निच्छनियाँ—क्रि० वि० [हि० निछान] १ निछाना । उ०—यशुमति दीरि नये हरि कनियो । गाबु गयो तरा गाय चरावन हो पनि गई निछनियाँ ।—तूर (शब्द०) ।

निछरावल०—सझा श्लो० [हि० निछावर] १ 'निछावर' । उ०—तन मन धन निछरावल करना घटसिधि नवीनधि सारो ए ।—राम० धर्म०, पृ० २२१ ।

निछला०—वि० [सं० निछल] खपटरहित । छत्रहीन ।

निछला—वि० [?] बिना मिचावट का । बिचकुन । एकमात्र ।

निछाना—वि० [हि० उर० नि (= नहीं) + छान (= जो छानने से निकले, अच्छी तरह छान कर निकाला हुआ)] १ खालिस । बिशुद्ध । जिसमें मेल न हो । बिना मिचावट का । २ बिचकुन । निछला । निचवल । एक मात्र । केवल ।

निछान—क्रि० वि० एकदम । बिचकुन ।

निछावर—सझा श्लो० [सं० त्याग + मार्त्ति = त्यागावर्त्ति, वि० प्र० निसार] १ एक उपचार या टोटका जिसमें किसी की रक्षा के लिये कुछ द्रव्य या कोई वस्तु उसी तारे मर्त्य के ऊपर से धुमाकर दान कर देते या डाल देते हैं । उत्सव । वाराकेरा । उत्तारा । यशेर ।

विशेष—इसका अभिप्राय यह होता है कि जो देवता शरीर को कष्ट देनेवाले हों वे शरीर छोड़ भगों के चरने से द्रव्य पाकर सन्तुष्ट हो जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—निछावर करना = उत्सव करना । छोड़ देना । त्यागना । दे डालना । निछावर होना = दे दिया जाना । त्याग दिया जाना । (किसी का) किसी पर निछावर होना = किसी के लिये मर जाना । किसी के लिये प्राण त्यागना ।

२ वह द्रव्य या वस्तु जो ऊपर धुमाकर दान की जाय या छोड़ दी जाय । ३, इनाम । नेम ।

निष्ठावरि—सधा ली० [हि०] दे० 'निष्ठावर' । उ०—(क) करहि निष्ठावरि आरति महा मुदित मन सासुरि ।—मानस, १ । ३३५ । (ख) सभा समेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निष्ठावरि लागे ।—मानस, १ । २६३ ।

निष्ठोह—वि० [हि० नि + छोह] १ जिसे छोड़ या प्रेम न हो । २ निंदय । निष्ठुर ।

निष्ठोही—वि० [हि० नि + छोह] १ जिसे प्रेम या छोह न हो । २ निंदय । निष्ठुर । उ०—कहु ते' ऐस निष्ठोही जोगी । जोउ लेइ कीन्हैसि हो' रोगी ।—चित्रा०, पृ० १३१ ।

निज^१—वि० [सं०] १. अपना । स्वीय । स्वकीय । पराया नहीं । विशेष—आजकल इस शब्द का प्रयोग प्राय 'का' विभक्ति के साथ होता है, जैसे, निज का काम । कर्म की विभक्ति भी इसके साथ लगती है, जैसे, निज को, निजहि । कविता में और विभक्तियाँ भी दिखाई देती हैं पर कम ।

मुहा०—निज का = खास अपना । अपने शरीर, जन या कुटुंब से संबंध रखनेवाला ।

२. खास । मुख्य । प्रधान । उ०—(क) परम चतुर निज दास श्याम के सतत निकट रहत ही । जल बुडत अवलव फेन को फिरि फिरि कहा गहत ही ।—सूर (शब्द०) (ख) कह माखसुत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार निज दास ।—तुलसी (शब्द०) । ३ ठीक । सही । वास्तविक । सच्चा । यथाथं । उ०—(क) अब विनती मम सुनहु शिव जो मोपर निज नेह ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मन मेरो माने सिख मेरो । जी निज भक्ति चढ़ै हरि केरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

निज^२—अव्य० १. निश्चय । ठीक ठीक । सही सही । सटीक ।

मुहा०—निज करके = बीस विस्वे । निश्चय । अवश्य । जरूर । २ खासकर । विशेष करके । मुख्यतः उ०—देखु विचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो ।—तुलसी (शब्द०) ।

निजकाना—क्रि० अ० [प्रा० नजदोक] निकट पहुँचाना । समीप आना । उ०—थाने थाने हनुमान अगद सयाने रहो, जाने निजकाने दिन राखण मरण के ।—हनुमान (शब्द०) ।

निजकारी—सधा ली० [हि० निज + कर] १ बँटाई की फसल । वह जमीन जिसके लगान में उससे उत्पन्न वस्तु ही ली जाय ।

निजघास—सधा पु० [सं०] पार्वती के क्रोध से उत्पन्न गणों में से एक ।

निजन^१—वि० [सं० निजंन, प्रा० निज्जण, हि० नि + जन] एकांत । सन्नाटा । सुनसान । निर्जन ।

निजा—सधा पु० [अ० निजाअ] भगवा । विवाद ।

निजाई—वि० [अ० निजाअ] विवादग्रस्त । झगडातलब ।

निजात—सधा ली० [अ० नजात] १ वधनमुक्ति । छुटकारा । भार-मुक्ति । उ०—प्रेमियारा पुरी तरह निगल लेगा तुमको, तब सारे मयन से निजात मिल जाएगी ।—ठड्ठा०, पृ० ६५ । २. ६० 'नजात'-१ ।

निजाम—सधा पु० [अ० निजाम] १ बंदोबस्त । इंतजाम । २ क्रम । सिलसिला । तरतीब (को०) । ३. शैली । तज । पद्धति । ४. हैबराबाद के नवाबों का पदवीसूचक नाम ।

निजामत—सधा पु० [अ०] १ नाजिम का पद या कार्य । २. वह कार्यालय जिसमें नाजिम और उसके सहायक कर्मचारी रहते हो ।

निजारी—वि० [प्रा० नजार] क्षीण । दुर्बल । कमजोर । उ०—गया था सूँ ज्यों लाल उजार । फिर्मा रख हो सब जाफरानी निजार ।—दक्खिनी०, पृ० १४४ ।

निजि—वि० [सं०] शुद्ध । जो शुद्धि के सहित हो ।

निजी—वि० [सं० निज] दे० 'निज' ।

निजु—वि० [सं० निज] दे० 'निज' । उ०—(क) निति पूछो सब जोगी जगम । कोई निजु बात न कहै बिहगम ।—जायसी ग्र० (गुप्त) ।—पृ० ३६४ । (ख) निजु ये अधिकारी सब सुखकारी सबही विधि सतोपी ।—राम च०, पृ० ४२ ।

निजू—वि० [हि० निज] निज का । खास अपना ।

निजोर^१—वि० [हि० उप० नि + फा० जोर] निर्वल ।

निम्नक^१—वि० [हि० नि + भनक] ज्वनिरहित । नीरव । निर्जन ।

निम्नरना—क्रि० अ० [हि० उप० नि + भरना] १ अच्छी तरह ऋड जाना । लगा या मँटका न रहना । जैसे, पेड़ से फलों का निम्नरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२ लगी हुई वस्तु के ऋड जाने से खाली हो जाना । जैसे, पेड़ से निम्नरना । ३ सार वस्तु से रहित हो जाना । खुल हो जाना । ४. हाथ झाड़कर निकल जाना । दोष से मुक्त बनना । अपने को निर्दोष प्रमाणित करना । सफाई देना । उ०—सदा चतुरई फबती नाही अतिही निम्नर रही हो । सूर 'श्याम धो कहा रहत है' यह कहि कहि जो सही हो ।—सूर (शब्द०) ।

निम्नरना^२—क्रि० अ० [हि०] दे० 'निम्नरना' ।

निम्नरना^३—क्रि० अ० [देश] १. ताक भँक करना । झोंक झोंक करना । झाड़ में छिपकर देखना । २ समाप्त या रिक्त हो जाना । भरकर खत्म होना । ३ जलती हुई अग्नि का बुझना या बुझ सा जाना ।

निम्नरना^४—क्रि० सं० आग बुझाना ।

निम्नरना^५—क्रि० सं० [हि० उप० नि + भरटना] खींचकर धीनना । भरटना ।

निम्नोल—सधा पु० [हि० उप० नि + भोल] हाथों का एक नाम ।

निटरी—वि० [देश०] जिसमें कुछ दम न हो । जिसका जोर मर गया हो । मरा हुआ । जो उपजाऊ न रह गया हो । (खेत या जमीन के लिये) ।

निटक, निटिल—सधा पु० [सं०] कपाल । मस्तक ।

निटलाच, निटलाच—सधा पु० [सं०] शिव । महादेव । शम्भु (को०) ।

निटलेत्तण, निटलेत्तण—सधा पु० [सं०] दे० 'निटलाच' ।

निटोल—सधा पु० [हि० उप० नि + टोला] टोला । मुहत्वा ।

पूरा । बस्ती । उ०—प्रब न कौनो चूक करिहैं यह हमारे बोल । किकरिनि की लाज धरि ब्रज सुबस करो निटोल ।
—सूर (शब्द०) ।

निट्टि^७—क्रि० वि० [देश०] दे० 'नीठि' ।

निठल्ला—वि० [हि० उप० नि (= नहीं) + ठाला] १ जिसके पास कोई काम घषा न हो । खाली । २ बेरोजगार । बेकार । ३ जो कोई काम घषा न करे । निकम्मा । निठल्लू । ठलुमा ।

निठल्लू—वि० [हि०] दे० 'निठल्ला-३' ।

निठाला—सञ्ज्ञा पु० [हि० उप० नि + टहल (= काम)] १ ऐसा समय जब कोई काम घषा न हो । खाली वक्त । २ वह समय जिसमें हाथ में कोई काम घषा या रोजगार न हो । वह वक्त या हालत जिसमें कुछ भ्रामवनी न हो । जीविका का भभाव । जैसे,—ऐसे निठाले में तुम भी माँगने आए ।

निठुर—वि० [सं० निठुर] कठोरहृदय । जिसे दूसरे की पीड़ा का अनुभव न हो । जो पराया कष्ट न समझे । निर्दय । क्रूर । उ०—सहिहि निठुर कठोर उर मोश ।—मानस, ६ । १० ।

निठुरई^७—स्त्री० [हि० निठुर + ई (प्रत्य०)] दे० 'निठुराई' ।

निठुरता^७—स्त्री० [सं० निठुरता] निर्दयता । क्रूरता । हृदय की कठोरता ।

निठुराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निठुर + आई (प्रत्य०)] निर्दयता । हृदय की कठोरता । क्रूरता । उ०—सब प्रसगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहु तनु धारि निठुराई ।—मानस, २ । ४१ ।

निठुरावा—सञ्ज्ञा पु० [हि० निठुर + वाव (प्रत्य०)] निठुराई । निर्दयता ।

निठौर—सञ्ज्ञा पु० [हि० नि + ठौर] १ बुरी जगह । कुर्वाँव । २ बुरा दौव । बुरी दशा । ३ बिना स्थान का व्यक्ति । बेसहारा ।

मुहा०—निठौर पडना = कुर्वाँव में पडना । बुरी दशा में पड़ना । बेसहारा होना । उ०—बहुरि वन बोलन लागे मोर । जिनको पिय परदेश सिधारो सो तिय परी निठौर ।—सूर (शब्द०) ।

निडर—वि० [हि० उप० नि + डर] १ जिसे डर न हो । जो न डरे । निशक । निर्भय । २ साहसी । हिम्मतवाला । ३ ठोठ । घृष्ट ।

निडरपन—सञ्ज्ञा पु० [हि० निडर + पन प्रत्य०] निडर होने का भाव । निर्भीकता । निर्भयता ।

निडरपना—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'निडरपन' ।

निडा^७—प्रत्य० [सं० निकट, प्रा० नियङ्, हि० नियर] निकट । नजदीक । पास । उ०—कान निडा पग दुर रहा, मुहड़ा भावों दीजो हाथ ।—धी० रासो, पु० ५३ ।

निडीन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पक्षी या यान का धीरे धीरे ऊपर से नीचे माना [कौ०] ।

निडे, निडै—प्रत्य० [सं० निकट] दे० 'निडा' ।

निडाल—वि० [हि० उप० नि + डाल (= गिरा हुआ)] १ गिरा हुआ । पस्त । थिथिल । थका मीठा । मशक्त । सुस्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—जो निडाल होना = जो डूबना । धुँधला माना । बेहोशी माना ।

२. सुस्त । मरा हुआ । उस्ताहूहीव ।

निडालपन—सञ्ज्ञा पु० [हि०] सुस्ती । शालस्य । उ०—परंतु यहाँ अनुभव होता है एक निडालपन, सुबह शाम दिसवर का सा जाड़ा खगता है ।—वो दुनिया, पु० १६ ।

निडिला^७—वि० [हि० नि + डीला] १ जो डीला न हो । कसा या तना हुआ । २. कड़ा । उ०—गाढ़े गाढ़े कुच निडिल पिय हिय को ठहराय । उकसोंहै ही तो हिये सवे दई उसकाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

नितंत—क्रि० वि० [सं० नितान्त] दे० 'नितात' ।

नितंब—सञ्ज्ञा पु० [सं० नितम्ब] १ कटि का पश्चादभाग । कमर का पिछला उभरा हुआ भाग । चूतड़ । (विशेषतः स्त्रियों का) । २ स्कंध । कंधा । ३ तीर । तट । ४ पर्वत का ढालुमाँ किनारा । ५ कटि । कमर (कौ०) ।

नितबिनी^१—वि० स्त्री० [सं० नितम्बिनी] सुंदर नितंबवाली ।

नितबिनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० सुंदर नितंबवाली स्त्री । सुंदरी ।

नित—प्रत्य० [सं०] १ प्रतिदिन । रोज । जैसे,—वह यहाँ नित आता है ।

औ०—नित नित = प्रतिदिन । रोज रोज । नित नया = सब दिन नया रहनेवाला । कभी पुराना न पड़नेवाला । सदा ताजा रहनेवाला ।

२ सदा । सर्वदा । हमेशा ।

नितराम्—प्रत्य० [सं०] १ सदा । हमेशा । सर्वदा । २ अत्यंत । अधिक । बहुत अधिक (कौ०) । ३ पूर्यंत । पूरी तरह (कौ०) । ४ एकदम । नितात (कौ०) ।

नितल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सात पातालों में से एक ।

नितात—वि० [सं० नितान्त] १ अतिशय । बहुत अधिक । २ शिल्कुल । सर्वथा । एकदम । निरा । निपट ।

निति^७—प्रत्य० [सं० नित्य] दे० 'नित' । उ०—नीति चदन लागे जेहि देहा । सो तन देखु भरव भव खेहा ।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० १२६ ।

नित्ता^७—वि० [सं० नित्य] दे० 'नित्य' । उ०—नित रास रस मत्त नित गोपीजन वल्लभ । नित निगम यों कहत नित सब तन प्रति दुलस ।—नद० प्र०, पु० ३७ ।

नित्ति, नित्तु^७—प्रत्य० [सं० नित्य] हमेशा । उ०—(क) जिहि जाहू जाहू जस बुझि ह्वै कहो नित्ति उत्तम सुमुख ।—ह० रासो, पु० ६४ । (ख) जेहि घर कता रितु भली, भाउ बसता नित्तु ।—जायसी प्र०, पु० ३४८ ।

नित्य^१—वि० [सं०] १ जो सब दिन रहे । जिसका कभी नाश न हो । शाश्वत । अविनाशी । अकालव्यापी । उत्पत्ति धोर विनाशरहित । जैसे,—ईश्वर नित्य है ।

विशेष—न्याय मत से परमाणु नित्य है । साध्य मत से पुरुष

श्रीर प्रकृति दोनों नित्य हैं। वेदात् इन सबका खंडन करके केवल ब्रह्म को नित्य कहता है।

२. प्रतिदिन का। रोज का। जैसे, नित्यकर्म।

नित्य^२—अव्य० १ प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—वह नित्य यहाँ आता है। २ सदा। सर्वदा। अनवरत। हमेशा।

नित्य^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।

नित्यकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नित्यकर्मन्] १ प्रतिदिन का काम। रोज का काम। २ वह धर्म संबंधी कर्म जिसका प्रतिदिन करना आवश्यक ठहराया गया हो। नित्य की क्रिया। जैसे, सध्या, अग्निहोत्र आदि।

विशेष—मीमांसा में प्रधान या धर्म कर्म तीन प्रकार के कहे गए हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्यकर्म वह है जिसका प्रतिदिन करना कर्तव्य हो और जिसे न करने से पाप होता हो। दे० 'कर्म'।

नित्यकृत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नित्यकर्म'।

नित्यक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नित्यकर्म। जैसे, शोध, स्नान, सध्या आदि।

नित्यगति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

नित्यजात—वि० [सं०] नित्य पैदा होनेवाला।

नित्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नित्य होने का भाव। अनश्वरता।

नित्यत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नित्यता।

नित्यदा—अव्य० [सं०] सर्वदा। हमेशा।

नित्यदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन दान करना। नित्य दान देने की क्रिया [को०]।

नित्यनर्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

नित्यनियम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन का बंधा हुआ व्यापार। रोज का कार्यदा।

नित्यनैमित्तिककर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि कर्म।

विशेष—पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि अवश्य कर्तव्य हैं और किसी निमित्त (जैसे पापक्षय) से भी किए जाते हैं इससे नित्य और नैमित्तिक दोनों हुए।

नित्यप्रति—अव्य० [सं०] प्रतिदिन। हर रोज।

नित्यप्रमुदित—वि० [सं०] हमेशा प्रानदित रहनेवाला [को०]।

नित्यप्रलय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नित्य होनेवाला प्रलय।

विशेष—वेदात् परिभाषा में चार प्रकार के प्रलय कहे गए हैं—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और प्रात्यतिक। इनमें से सुषुप्ति को नित्यप्रलय कहते हैं। जिस प्रकार प्रलयकाल में किसी कार्य का बोध नहीं होता उसी प्रकार इस सुषुप्ति की अवस्था में भी नहीं होता। यह अवस्था प्रतिदिन होती है।

नित्यबुद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पदार्थ को शाश्वत या नित्य समझना [को०]।

नित्यभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शाश्वतता। नित्यता [को०]।

नित्यमित्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जो निस्वार्थ भाव से प्रीति या बढ़े हुए पुराने संबंधों की रक्षा करे।

नित्यमुक्त^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर [को०]।

नित्यमुक्त^२—वि० जो हमेशा के लिये स्वतंत्र या मुक्त हो [को०]।

नित्ययज्ञ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन का कर्तव्य यज्ञ। जैसे, अग्निहोत्र।

नित्ययुक्त—वि० [सं०] हमेशा तैयार या तत्पर रहनेवाला [को०]।

नित्ययौवना^१—वि० स्त्री० [सं०] जिसका यौवन बराबर या बहुत काल तक स्थिर रहे।

नित्ययौवना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० द्रौपदी।

नित्यर्तु—वि० [सं०] हरेक ऋतु में समयानुसार होनेवाला [को०]।

नित्यशः—अव्य० [सं०] १. प्रतिदिन। रोज। २. सदा। सर्वदा।

नित्यश्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह कांति या प्रफुल्लता जो बराबर बनी रहे [को०]।

नित्यसत्त्वस्थ—वि० [सं०] १ सर्वदा सत्त्व गुण से युक्त। २. धर्म का त्याग न करनेवाला [को०]।

नित्यसम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जो २४ जाति धर्मात् केवल साधर्म्य और वैधर्म्य से अयुक्त खडन कहे गए हैं उनमें से एक। वह अयुक्त खडन जो इस प्रकार किया जाय कि अनित्य वस्तुओं में भी अनित्यता नित्य है अतः धर्म के नित्य होने से धर्मों भी नित्य हुआ। जैसे, किसी ने कहा शब्द अनित्य है क्योंकि वह घट के समान उत्पत्ति धर्मवाला है। इसका यदि कोई इस प्रकार खडन करे कि यदि शब्द का अनित्यत्व नित्य है तो शब्द भी नित्य हुआ और यदि अनित्यत्व अनित्य है तो भी अनित्यत्व के अभाव से शब्द नित्य हुआ। इस प्रकार का दूषित खडन नित्यसम कहलाता है।

नित्यसमास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनिवार्य समास। वह समास जिसे तोड़ देने पर उसके अंशों से असोष्ट अर्थ की निष्पत्ति न हो, जैसे, जयद्रथ, पावक [को०]।

नित्यसिद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आत्मा [को०]।

नित्यसेवक—वि० [सं०] हमेशा दूसरों की सेवा करनेवाला [को०]।

नित्यस्नायी—वि० [सं०] नित्यस्नायिन् प्रतिदिन स्नान करनेवाला [को०]।

नित्यस्वाध्यायी—वि० [सं०] नित्यस्वाध्यायिन् प्रतिदिन वेदादि का अनुशीलन करनेवाला [को०]।

नित्यहोता—वि० [सं०] नित्यहोतृ प्रतिदिन हुवन करनेवाला [को०]।

नित्यहोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोज किया जानेवाला होम [को०]।

नित्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती। २ मनसा देवी। ३. एक शक्ति का नाम।

नित्यानन्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नित्यानन्द १. नह प्रानदानुसृति जो सदा बनी रहे। २ वह जो सर्वदा प्रानन्द से रहे [को०]।

नित्यानध्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अवसर, पाहे वह जिस बार या जिस तिथि को पढ़ जाय जिसमें वेद के अध्ययन अध्यापन का निषेध हो।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार जब पानी बरसता, बादल गरजता

और बिजली चमकती हो या माँधी के कारण घूल आकाश में छाई हो या उत्कापात होता हो तब धनध्याय रखना चाहिए ।

नित्यानित्य—वि० [सं०] नश्वर और अवितनश्वर । शाश्वत और क्षणिक [को०] ।

नित्यानित्यवस्तुविवेक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म के सत्य और जगत् मिथ्यात्व का निश्चय [को०] ।

नित्यानिरुद्ध—वि० [सं०] (अग्नि) जिसका निरंतर रक्षण किया जाय ।

नित्याभियुक्त—वि० [सं०] (योगी) जो केवल इतना ही भोजन करके रहे जितने से देहरक्षा होती रहे और सब त्याग करके योगसाधन करे ।

नित्यामित्राभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसा स्थान जहाँ घोर विरोधी या शत्रु निवास करें । वह भूमि जहाँ के लोग सदा दुश्मनी करते हों या जिसमें शत्रु की प्रबलता हो ।

नित्यार०—अव्य० [सं० नित्य + हि० आर (प्रत्य०)] नित्य । निरंतर । सर्वदा । उ०—लीला ललित मुरार की सुक मुनि कही अपार । ते बडभागी देव नर जपत रहत नित्यार । —पृ० रा०, २ । ५६१ ।

नित्यारित्र—वि० [म०] (जलपान) जो अपने आप चले [को०] ।

नित्योदक—वि० [सं०] (स्थान) जो सदा जल से युक्त या पूरित हो [को०] ।

नित्योदकी—वि० [म० नित्योदकिन्] दे० 'नित्योदक' [को०]

नित्योदित—वि० [सं०] १ सदा उत्पन्न होनेवाला । २ अपने आप उत्पन्न होनेवाला । जैसे, ज्ञान [को०] ।

नित्योधुक्त—सञ्ज्ञा पु० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम [को०] ।

नित्यभ०—सञ्ज्ञा पु० [सं० उप० नि + स्तम्भ] खम्भा । स्तम्भ । उ०—रची विरचि वास सी नित्यभ राजिका भली ।—केशव (शब्द०) ।

निथरना—क्रि० अ० [सं० निस्तरण, अथवा हि० उप० नि + थिर + ना (प्रत्य०)] १ पानी या और किसी पतली चीज का स्थिर होना जिससे उसमें घुली हुई मेल आदि नीचे बैठ जाय । थिरकर साफ होना । २ घुली हुई चीज के नीचे बैठ जाने से जल का अलग हो जाना । पानी छन जाना ।

निथार—सञ्ज्ञा पु० [सं० निस्तार अथवा हि० निथरना] १ घुली हुई चीज के बैठ जाने से अलग हुआ साफ पानी । २ पानी के स्थिर होने से उसके तल में बैठे हुए चीज । ३. निथरने की क्रिया ।

निथारना—क्रि० सं० [हि० निथरना] १ पानी और किसी पतली चीज को स्थिर करना जिससे उसमें घुली हुई मेल आदि नीचे बैठ जाय । थिराकर साफ करना । २ घुली चीज को नीचे बैठकर खाली पानी अलग करना । पानी छानना । पानी छानकर अलग करना ।

निथालना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निथारना' ।

निद^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जहर । विष [को०] ।

निद^२—वि० निदक [को०] ।

निदई^३—वि० [सं० निदंयी] दे० 'निदंयी' ।

निदह^४—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसे दाद का रोग न हो । २. मनुष्य । मानव [को०] ।

निदरन^५—वि० [सं० उप० निर् = √ दृ (= नष्ट करना)] निदंलत करनेवाला । नष्ट करनेवाला । उ०—घावहु बलि वैसाख, दुख निदरन सुख फरन पिय ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६५ ।

निदरना^६—क्रि० सं० [सं० निरादर] १ निरादर करना । अपमान करना । अप्रतिष्ठा करना । बेइज्जती करना । उ०—मोर प्रभाव विदित नहीं तोरे । बोलसि निदरि विप्र के भोरे ।—तुलसी (शब्द०) । २ तिरस्कार करना । त्याग करना । ३ मात करना । बढ़ जाना । बढ़कर निकलना । तुच्छ ठहरना । उ०—(फ) नाना जाति न जाहि बखाने । निदरि पवनु जनु चहुत उड़ाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) एक एक जीतहि संसारा । उनहि निदरि पावत को पारा ।—सदल (शब्द०) ।

निदरसना^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निदर्शना] दे० 'निदर्शना' । उ०—जहँ वरनन पद अथ को वरनत है कविराज । निदरसना यह दूसरी, वरनत विबुध समाज ।—मति० ग्रं०, पृ० ३६३ ।

निदरा^८—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] दे० 'निद्रा' । उ०—दिन नहि चैन रात नहि निदरा, सूख खड़ी खड़ी ।—संतवाणी०, पृ० ७७ ।

निदर्शक—वि० [सं०] निदर्शन करनेवाला । बतानेवाला । दिखाने वाला [को०] ।

निदर्शन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ दिखाने का कार्य । प्रदर्शित करने का कार्य । प्रकट करने का कार्य । २ उदाहरण । दृष्टांत ।

निदर्शना—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] एक अथलवार जिसमें एक बात किसी दूसरी बात को ठीक ठीक कर दिखाती हुई कही जाती है । यह ६ प्रकार की होती है । उ०—(क) मरिसगम हित चले ठेलते नाले पथर । दिखलाते पथरोध प्रेमियो का अति दुष्कर । (ख) जात चद्रिका चद्र सह विद्युत् घन सह जाय । पिय मद्रगमन जो तियन को जड हू देत दिखाय । (ग) कहाँ सूर्य को वण अरु कहाँ मोरि मति छुद्र । मैं दूडे सो मोहवश चाहन तरघो समुद्र । (घ) जगजोत जे चहुत है तो सो वेर बढ़ाय । जीवे की इच्छा करत कालकूट ते खाय । (च) उदय होत दिननाथ इत अथवत उत निधिराज । द्वय घटायुत द्विरद की छवि धारत गिरि आज । (छ) लघु उन्नत पद प्राप्त हैं तुरतहि सहत निपात । गिरि तें काँकर बात बस गिरत कहत यह बात ।

विशेष—इस अलंकार के भिन्न भिन्न लक्षण आचार्यों ने लिखे हैं । जहाँ होता दृष्टा वस्तुसंबंध और न होता दृष्टा वस्तुसंबंध दोनों बिबानुविध भाव से दिखाए जाते हैं वहाँ निदर्शना होती है ।

उ०—संपदयुत चिर धिर रहत नहि कोउ जनहि तपाय ।
चरमाचल चलि भानु यह सब कहें रहे जनाय । (साहित्य-
दर्पण) । न होता हुआ वस्तुसंबंध जहाँ उपमा की कल्पना
करे (प्रथम निदर्शना), अथवा जहाँ क्रिया से ही अपने और
अपने हेतु के संबंध की उक्ति हो वहाँ निदर्शना अलंकार होता
है (दूसरी निदर्शना) । उ०—लघु उन्नत पद प्राप्त त्वे
तुरतहि लहत निपात । गिरि ते काँकर बात बस गिरत कहत
यह बात । (काव्यप्रकाश कारिका) । दंडो का यह लक्षण है—
अर्थांतर में प्रवृत्त कर्ता द्वारा अर्थांतर के सदृश जो सत् या
असत् फल दिखाया जाता है वह निदर्शना है । चंद्रालोककार का
लक्षण—सदृश वाक्यांशों की एकता का आरोप निदर्शना है ।

हिंदी के कवि प्रायः चंद्रालोककार का ही लक्षण ग्रहण करके
चले हैं । जैसे,—सरिस वाक्य युग के अर्थ करिए एक
अरोप । भूषण ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दें ओप ।—
भूषण (शब्द०) । प्रथम निदर्शना जो सो, जे ते, पदन करि
असम वाक्य सम कोन । उ०—सुनु खगेष हरि भक्ति बिहाई ।
जे सुख चाहिँ आन उपाई । ते सठ महासिधु विनु तरनी ।
पैर पार चाहत जड करनी ।—तुलसी (शब्द०) । दूसरी
निदर्शना—थापिय गुन उपमान के उपमेयहि के अंग । उ०—
जब कर गहत कमान सर देत अरिन को भीति । भाउसिंह
मे पाइए सब अरजुन की रीति ।—मतिराम (शब्द०) । तीसरी
निदर्शना—थापिय गुण उपमेय को उपमानहि के अंग । उ०—
तुव बचनन की मधुरता रही सुधा महुँ छाये । चार चमक चल
नैन की मीनन लई छिनाय । (शब्द०) ।

निदलन^④—संज्ञा पुं० [सं० निदलन] दे० 'निर्दलन' ।

निदहना^④—क्रि० सं० [सं० निदहन] जलाना ।

निदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] १ गरमो । ताप । २ धूप । घाम । ३.
ग्रीष्मकाल । गरमो । ४ प्रस्वेद । पसीना (को०) । ५ पुलस्त्य
ऋषि का एक पुत्र (विष्णुपुराण) ।

निदाघकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २ मदार । घाक ।

निदाघकाल—संज्ञा पुं० [सं०] गरमो की ऋतु (को०) ।

निदाघवार्पिक—वि० [सं०] ग्रीष्म और वर्षा ऋतु संबंधी महीने ।

निदाघसिधु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्मऋतु की नदी जो शुष्कप्राय
रहती है (को०) ।

निदान^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ आदि कारण । २. कारण । ३
रोगनिर्णय । रोगलक्षण । रोग की पहचान ।

विशेष—सुश्रुत के पृच्छने पर धन्वतरि जो ने कहा है कि वायु
ही प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति और विनाश का मूल है ।
यह शरीर के दोषों का स्वामी और रोगों का राजा है ।
वायु पाँच है—प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान । ये
ही पाँचों वायु शरीर की रक्षा करती हैं । जिस वायु का मुख
में संचरण होता है उस प्राणवायु कहते हैं । इससे शरीर की
रक्षा, प्राणधारण और खाया हुआ अन्न जठर में जाता है ।
इसके दूषित होने से हिचकी, दमा, आदि रोग होते हैं । जो

वायु ऊपर की ओर चलती है उसे उदान वायु कहते हैं । इसके
कुपित होने से कंधे के ऊपर के रोग होते हैं । समान वायु
प्रामाशय और पक्वाशय में काम करती है । इसके बिगड़ने
से गुल्म, मदाग्नि, अतीसार आदि रोग होते हैं । व्यान वायु
सारे शरीर में घूमती है और रसों को सर्वत्र पहुँचाती है । इसी
से पसीना और रक्त आदि निरन्तर है । इसके बिगड़ने से
शरीर भर में होनेवाले रोग हो सकते हैं । अपान वायु का
स्थान पक्वाशय है । इसके द्वारा मूत्र, शुक्र, आतंज, गर्भ,
समय पर स्त्रिचकर बाहर होता है । इस वायु के कुपित होने से
वस्ति और गुप्त स्थानों के रोग होते हैं । व्यान और अपान दोनों
के कुपित होने से प्रमेह आदि शुकुरोग होते हैं (सुश्रुत) ।

४ अत । अवसान । ५ तप के फल की चाह । ६ शुद्धि । ७.
बढ़ने का बधन ।

निदान^२—अव्य० अत में । आखिर । उ०—जहाँ सुमति तहँ सपति
नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

निदान^३—वि० अतिम या निम्न श्रेणी का । निकट । बहुत ही गया
बीता । हृदय दर्जे का । उ०—उत्तम खेती मध्यम बान ।
निरधिन सेवा भोक्ष निदान । (कदावन) ।

निदारुण—वि० [सं०] १ कठिन । गोर । मयानक । २ दुःसह ।
निर्दय । कठोर ।

निदाह^④—संज्ञा पुं० [सं० निदाघ] दे० 'निदाघ' ।

निदिग्ध—वि० [सं०] १ छोटा हुआ लेप किया हुआ । २ बढ़ाया
हुआ । प्रवर्धित (को०) ।

निदिग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची ।

निदिग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निदिग्धा' ।

निदिध्यास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निदिध्यासन' । उ०—कीयो श्रवण
मनन पुनि कीयो ता पीछे कीयो निदिध्यास ।—सुदर० प्र०,
भा० १, पु० १५५ ।

निदिध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] फिर फिर स्मरण । बार बार ध्यान
में लाना ।

विशेष—श्रुतियों और योगदर्शन में भी दर्शन, श्रवण, मनन और
निदिध्यासन आत्मज्ञान के लिये आवश्यक बताया गया है ।

निदिष्ट—वि० [सं०] १, बनाया हुआ । निर्दिष्ट । २
प्रादिष्ट । आज्ञित (को०) ।

निदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा । २ आज्ञा । हुक्म । ३. कथन ।
४ पास । सामीप्य । ५ पात्र । वरतन (को०) ।

निदेशक—वि० [सं०] निदेश करनेवाला । निर्देशक । (अंग्रेजी के
'डाइरेक्टर' पद के लिये प्रयुक्त हिंदी पारिभाषिक शब्द) ।

निदेशिनी^१—वि० स्त्री० [सं०] निदेश करनेवाली । हुक्म या आज्ञा
देनेवाली (को०) ।

निदेशिनी^२—संज्ञा स्त्री० दिशा (को०) ।

निदेशी—वि० [सं० निदेशिन्] [वि० स्त्री० निदेशिनी] आज्ञा
करनेवाला ।

निद्रा—वि० [सं० निद्रा] निद्राक । बताने या आज्ञा देनेवाला [को०] ।

निद्रा—संज्ञा पुं० [सं० निद्रा] दे० 'निद्रा' । उ०—मातु पिता पुत्र स्वामि निद्रा । सकल घरम घरनीघर सेसु ।—मानस, २। ३०५ ।

निद्रा—वि० [सं० निद्रा] दे० 'निद्रा' ।

निद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] दे० 'निद्रा' ।

निद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपसहारक अस्त्र । उ०—जोतिष पावक निद्रा दैत्यमन रति लेख्यो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

निद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सचेष्ट अवस्था के बीच-बीच में होनेवाली प्राणियों की वह विशिष्ट अवस्था जिसमें उनकी चेतन वृत्तियाँ (और कुछ अचेतन वृत्तियाँ भी) रुकी रहती हैं । नींद । स्वप्न । सुप्ति ।

विशेष—गहरी निद्रा की अवस्था में मनुष्य की पेशियाँ ढीली हो जाती हैं, नाड़ी की गति कुछ मन्द हो जाती है, सँस कुछ गहरी हो जाती है और कुछ अधिक अंतर देकर आती जाती है, साधारण सपक से ज्ञानेन्द्रियों में संवेदन और कर्मेन्द्रियों में प्रतिक्रिया नहीं होती, तथा आँतों के जिस प्रवाहवत् चलनेवाले आकुंचन से उनके भीतर का द्रव्य आगे खिसकता है उसकी चाल भी धीमी हो जाती है । निद्रा के समय मस्तिष्क या अतःकरण विश्राम करता है जिससे प्राणी निद्रा या अचेतन अवस्था में रहता है ।

निद्रा के सवध में सबसे अधिक माना जानेवाला वैज्ञानिक मत यह है कि निद्रा मस्तिष्क में कम रक्त पहुँचने के कारण आती है । निद्रा के समय मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है, यह बात तो देखी गई है । बहुत छोटे बच्चों के सिर के बीच जो पुलपुला भाग होता है वह उनके सो जाने पर कुछ अधिक बँसा मालूम होता है । यदि वह नाड़ी छोड़कर हृदय से मस्तिष्क में रुधिर पहुँचाती है, वहाँ जाय तो निद्रा या बेहोशी आवेगी । निद्रा की अवस्था में मस्तिष्क में रक्त की कमी का होना तो ठीक है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस कमी के कारण निद्रा आती है या निद्रा (मस्तिष्क की निष्क्रियता) के कारण यह कमी होती है । हाल के दो वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि निद्रा संवेदनसूत्रों या ज्ञानतंतुओं के घटकों (सेल्स) के संयोग तोड़ने से आती है । संवेदनसूत्र अनेक सूक्ष्म घटकों के योग से बने होते हैं और मस्तिष्कस्थी केंद्र में जाकर मिलते हैं । जाग्रत या सचेष्ट अवस्था में ये सब घटक अत्यंत सूक्ष्म सूत्र की सी उँगलियाँ निकालकर एक दूसरे से जुड़े हुए मस्तिष्कघटकों के साथ सवध जोड़े रहते हैं । जब घटक अंत हो जाते हैं तब उँगलियाँ भीतर सिमट जाती हैं और मस्तिष्क का संबंध संवेदनसूत्रों से टूट जाता है जिससे तद्रा या निद्रा आती है । एक और दूसरे वैज्ञानिक का यह कहना है कि मस्तिष्क के घटक दिन के समय जितना अधिक और जितनी जल्दी जल्दी प्राणद वायु (आक्सीजन) खर्च करते हैं उतनी उन्हें फेफड़ों से मिल नहीं सकती । अतः जब

प्राणद वायु का अभाव एक विशेष मात्रा तक पहुँच जाता है तब मस्तिष्कघटक शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाते हैं । सोने की दशा में आक्सीजन की अपेक्षा प्राणदवायु का खर्च बहुत कम हो जाता है जिससे उसकी कमी पूरी हो जाती है अर्थात् चेतना के लिये जितनी प्राणदवायु की जरूरत होती है उतनी या उससे अधिक फिर हो जाती है और मनुष्य जाग पड़ता है । इतना तो सर्वसम्मत है कि निद्रा की अवस्था में शरीर पोषण करनेवाली क्रियाएँ क्षय करनेवाली क्रियाओं की अपेक्षा अधिक होती हैं ।

निद्रा के सवध में यह ठीक ठीक नहीं ज्ञात होता कि विकास की किस श्रेणी के जीवों से नियमपूर्वक सोने की आदत शुरू होती है । स्तनपायी उष्णरक्त जीवों तथा पक्षियों से नीचे की कोटि के जीवों के यथायं रीति से सोने का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता । मछली सँप कछुए आदि ठंडे रक्त के जीवों की आँखों पर हिलनेवाली पलकों तो होती नहीं कि उनके आँखें मुँदने से उनके सोने का अनुमान कर सकें । मछलियाँ घटो निश्चेष्ट अवस्था में पड़ी पाई गई हैं पर उनकी यह अवस्था नियमित रूप से हुआ करती है, यह नहीं कहा जा सकता ।

पातजल योगदर्शन के अनुसार निद्रा भी एक मनोवृत्ति है, जिसका आलवन अभावप्रत्यय अर्थात् तमोगुण है । अभाव से तात्पर्य शेष वृत्तियों का अभाव है, जिसका प्रत्यय या कारण हुआ तमोगुण । सारांश यह है कि तमोगुण की अधिकता से सब विषयों को छोड़कर जो वृत्ति रहती है वह निद्रा है । निद्रा मन की एक क्रिया या वृत्ति है, इसके प्रमाण में भोज वृत्ति में यह लिखा है कि 'मैं खूब सुख से सोया' । ऐसी स्मृति लोगों को जागने पर होती है और स्मृति उसी बात की होगी जिसका अनुभव हुआ होगा ।

यौ०—निद्रादरिद्र = जिसे नींद न आती हो । निद्राभग = जागरण । निद्रावृक्ष = प्रेधेरा । अवकार ।

निद्रागिण—वि० [सं०] १. सोता हुआ । निद्रित उ०—हृदय गिरी कदरा निद्रागिण पितृवैरि केशरी जागु । —कोटि०, पु० १८ । २. बंद । अविकच । मोलित । मुँदा हुआ ।

निद्राभिभूत—वि० [सं०] नींद से ग्रस्त । निद्रित [को०] ।

निद्रायमान—वि० [सं० निद्रायमाण] जो नींद में हो । सोता हुआ ।

निद्रालस—वि० [सं० निद्रा + अलस] १. निद्रायुक्त । सोया हुआ । २. उनीदा । तद्रालु । उ०—चूक समा माँगी नहीं, विद्रालस वकिम विशाल नेत्र मुँदे रही । —अपरा, पु० ५ ।

निद्रालु^१—वि० [सं०] १. निद्राशील । सोनेवाला । २. उनीदा [को०] । निद्रालु^२—संज्ञा स्त्री० १. बेंगन । भटा । २. बचरी । ममरी । बन-तुलसी । ३. नली नामक गधद्रव्य ।

निद्रालु^३—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम (भागवत) ।

निद्रासंजनन—संज्ञा पुं० [सं० निद्रासंजनन] श्लेष्मा । कफ ।

विशेष—कफ की वृद्धि से निद्रा आती है । अतः श्लेष्मा को निद्रासंजनन कहते हैं ।

निद्रित—वि० [सं०] सुप्त । सोया हुआ ।

निघडक—क्रि० वि० [हिं० नि (= नही) + घडक] १. बेरोक । बिना किसी रकावट के । २. बिना सकोच के । बिना हिचक के । बिना आगा पीछा किए । ३. निशक । देखटके । बिना किसी भय या चिंता के ।

निघन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश । २. मरण । ३. फलित ज्योतिष में लग्न से आठवाँ स्थान ।

विशेष—इस स्थान से अत्यंत सकट, आयु, शस्त्र आदि का विचार किया जाता है । यदि लग्न से चौथे स्थान पर सूर्य हो और ग्रह पर शनि की दृष्टि हो तो जिस दिन निघन स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि होगी उसी दिन मृत्यु होगी ।

४. जन्म नक्षत्र से सातवाँ, सोलहवाँ और तेईसवाँ नक्षत्र ।

५. कुल । खानदान । ६. कुल का अधिपति । ७. विष्णु । ८.

पाँच अवयव या सात अवयवयुक्त साम का अंतिम अवयव ।

यौ०—निघनकारी = नष्टकारक । नाशक । निघनक्रिया = प्रत्येष्टि । निघनपति ।

निघन^२—वि० घनहीन । निर्घन । दरिद्र ।

निघनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घनहीनता । गरीबी [को०] ।

निघनपति—संज्ञा वि० [सं०] प्रलयकर्ता । शिव ।

निघनी—वि० [हिं० नि + घनी] निर्घन । घनहीन । दरिद्र ।
उ०—जैसे निघनी घनहि पाए हरख दिन भर राति । —सूर (शब्द०) ।

निघरका—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'निघडक' । उ०—निघरक बैठि कहै कटु बानी । सुवन कठिनता प्रति अकुलानो । —मानस, २।४१ ।

निघरकता—संज्ञा स्त्री० [हिं० निघरक + ता (प्रत्य०)] निघडकपन । वेधड़की । देखटकी । उ०—ताही प्रकार अपनी टहल निघरकतासों कयो कयो । —दो सो बावन०, भा० १, पृ० २१७ ।

निघातव्य—वि० [सं०] स्थापनीय ।

निघान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्रय । आश्रय । २. निधि । खजाना । ३. लयस्थान । वह स्थान जहाँ आकर कोई वस्तु लीन हो जाय । ४. स्थापन । रखना । ५. धन । सम्पत्ति [को०] । ६. विराम स्थान । आराम की जगह [को०] ।

निधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गढ़ा हुआ खजाना । खजाना ।

विशेष—पृथ्वी में गढ़ा हुआ धन यदि राजा को मिले तो उसे आधा ब्राह्मणों को देकर आधा ले लेना चाहिए । विद्वान् ब्राह्मण यदि पावे तो उसे सब ले लेना चाहिए । यदि अपति ब्राह्मण या क्षत्रिय आदि पावें तो राजा को उन्हें छठा भाग देकर शेष ले लेना चाहिए । यदि कोई निधि पाकर राजा को सवाद न दे तो राजा को उसे दंड देना चाहिए और सारा खजाना ले लेना चाहिए (मिताक्षरा) ।

२. कुवेर के नौ प्रकार के रत्न । ये नौ रत्न ये हैं—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुट, कुद, नील और वच्चं ।

विशेष—ये सब निधियाँ लक्ष्मी की अश्रित हैं । जिन्हें ये प्राप्त होती हैं उन्हें भिन्न भिन्न रूपों में धनागम आदि होता है ।

जैसे, पद्मनिधि के प्रभाव से मनुष्य सोने, चाँदी, ताम्र आदि का खूब उपभोग और क्रयविक्रय करता है, महापद्मनिधि की प्राप्ति से रत्न, मोती, मूँगे आदि की अधिकता रहती है, इत्यादि । मार्कंडेय पुराण इनमें अंतिम निधि को छोड़कर आठ निधि का उल्लेख करता है । अंतिम निधि वच्चं को कहीं कहीं खवं नाम कहा गया है ।

३. समुद्र । ४. आश्रय । घर । जैसे, जलनिधि, गुणनिधि । ५. विष्णु । ६. शिव । ७. नौ की संख्या । ८. जीवक नाम की ओषधि । ९. नलिका नामक द्रव्य । १०. व्यक्ति जो विविध गुणयुक्त हो (को०) । ११. वह स्थान जहाँ संपत्ति, द्रव्य आदि रखा जाय ।

निधिगोप—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदवेदांग में पारगट होकर गुरुकुल से आया हो । अनुज्ञान ।

निधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] निधियों के स्वामी, कुवेर ।

निधिप—संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर ।

निधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर ।

निधिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर ।

निधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुवेर । २. भैरव का एक नाम [को०] ।

निधीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर ।

निधुवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैथुन । २. नर्म । केलि । ३. हँसी ठट्ठा । ४. कंप ।

निधूम^७—वि० [सं० निधूम] घूमरहित । बिना घूर्ण का । उ०—अग्नि के अनु निधूम हैं ठक । किधों विभाकर के धिक् टूक । —नद० प्र०, पृ० २५४ ।

निधेय—वि० [सं०] स्थापनीय । स्थापन करने योग्य ।

निध्यात—वि० [सं०] जिसका मनन या ध्यान किया गया हो । विचारित [को०] ।

निध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. निदर्शन ।

निध्यानि^८—वि० [सं० निध्यान] निध्यान करनेवाला । उ०—नि कामी निध्यानि सोई अविगति यहि विधि जान ।—कवीर सा०, पृ० ५६२ ।

निध्रुव—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि ।

निध्रुवि—वि० [सं०] दृढ़ । विश्वसनीय [को०] ।

निध्वान—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द ।

निनंलु—वि० [सं० निनङ्क्षु] १. मरने की इच्छा रखनेवाला । २. जो भागना या छिपना चाहता हो [को०] ।

निनद—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द । आवाज । घरघराहट । उ०—लाज गहौ धीरज धरो ए पिय चतुर सुजान । लवन सुखद नूपुर निनद ननद न सुनिहै कान ।—स० समक, पृ० ३७२ ।

निनदित—वि० [सं०] दे० 'निनादित' [को०] ।

निनदी—वि० [सं० निनदि] दे० 'निनादी' ।

निनद^९—संज्ञा पुं० [सं० निनद] निनाद । जोर की ध्वनि । उ०—

डका निनद छाये घहद । रनसिह तुर वेहद सद् ।—सुजान०,
पु० १८ ।

निनय—पञ्ज स्त्री० [सं०] नञ्प्रता । नोताई । भाजजी ।

निनयन—सङ्घा पु० [सं०] १ निष्पादन । २. प्रणीता के जल को
कुश से यज्ञ को वेदो पर छिड़कने का कार्य ।

निनरा^१—वि० [सं० नि + निकट, प्रा० निनिघट] न्यारा ।
भ्रमण । जुदा । दूर । उ०—मानहु विवर गए चलि कारे
तजि कैचुरी भए निनरे री ।—सूर (शब्द०) ।

निनाद—सङ्घा पु० [सं०] शब्द । आवाज ।

निनादित^१—वि० [सं०] शब्दित । ध्वनित ।

निनादित^२—सङ्घा पु० शब्द । ध्वनि । आवाज [को०] ।

निनादो—वि० [सं० निनादिन्] [वि० स्त्री० निनादिनी] शब्द
करनेवाला । ध्वनि करनेवाला ।

निनान^१—सङ्घा पु० [सं० निदान] १ भत । २ लक्षण ।

निनान^२—क्रि० वि० अंत में । घाखिर ।

निनान^३—वि० १ परले सिरे का । बिल्कुल । एकदम । धोर ।
२ बुरा । निकृष्ट । उ०— नमन नमन बहु भतरा फविग
नमन निनान । ये तीनों बहुते नवे चीठा, चोर, कमान ।—
कवीर (शब्द०)

निनाया—सङ्घा पु० [देश०] छटमल ।

निनार—वि० [हि०] दे० 'निनारा' । उ०—छाडेन्हि लोग
कुटुंब सब कोऊ । भए निनार दुख सुख तजि दोऊ ।—जायसी
ग्र० ५६ ।

निनारा—वि० [सं० नि + निकट, प्रा० निनिघट, हि० निनर प्रपवा
हि०] १ भ्रमण । जुदा । भिन्न । न्यारा । उ०—विप्र भ्रसास
वितति ओधारा । सुप्रा जीउ नहिं करो निनारा ।—जायसी
ग्र०, पु० ३२ । २ दूर । हटा हुआ ।

निनावी—सङ्घा पु० [हि० नन्हा ?] जीभ, मसूँह तथा मुँह आदि के
भीतर के छोटे भागों में निकलनेवाले महीन लाल बाने
जिनमें छरछराहट और पीड़ा होती है ।

निनावी—सङ्घा स्त्री० [हि० नि (= बुरा) + नाव, नाव] १
बिना नाम की वस्तु । वह वस्तु जिसका नाम लेना अभ्युभ या
बुरा समझा जाता हो । २ चुहेल । भुतनी ।

निनियाना—क्रि० प्र० [अनु०] गिड़गिड़ाना । निन्हियाना ।

निनौना—क्रि० सं० [हि० नवना (= झुकना)] नीचे करना ।
झुकाना । नवना । उ०—नैन निने बहु नेकहूँ कमलनैन नव
नाथ । बालनि के मन मोहि ले वेचे मनमप हाथ ।—केशव
(शब्द०) ।

निनौरा—सङ्घा पु० [हि० नानी + घोर (प्रत्य०)] नाना या
नानी का घर । वह स्थान जहाँ नाना नानी रहते हों ।

निन्नानवे^१—वि० [सं० नञ्प्रवृत्ति, प्रा० नवनवद्] नब्बे और नी ।
जो सख्या में एक कम सी हो ।

निन्नानवे^२—सङ्घा पु० नब्बे और नी की सख्या जो इस प्रकार
लिखी जाती है—६९ ।

मुहा०—निन्नानवे के फेर में घाना या पडना = खपया बढ़ाने
की धुन में होना । घन बढ़ाने की चिन्ता में पडना ।

विशेष—इस मुहावरे के संबंध में एक कहानी है । कोई मनुष्य
बड़ा अपव्ययी था । एक दिन उसके मित्र ने उसे ६६०० खपए
दिए । उसी दिन से वह १०० पूरे करने के फेर में
पड गया । जब १०० पूरे हो गए १०१ करने की चिन्ता
में हुआ । इस प्रकार वह दिन रात खपए के फेर में रहने
लगा भारी रुज्म हो गया ।

निन्नानवे—वि०, सङ्घा पु० [हि०] दे० 'निन्नानवे' ।

निन्नारा^१—वि० [हि०] दे० 'निनारा' ।

निन्हियाना—क्रि० प्र० [अनु० नी नी] गिड़गिड़ाना । दोनता
प्रकट करना । आज्ञा दी दिखाना ।

निपग^१—वि० [सं० नि + पङ्ग] जितके हाथ पैर टूटे हो या
काम न दे सकें । प्रपाटित । निरुत्तम । उ०—बाकी घन
घरती हुरी ताहि न लोके सग । जो चाहे लेतो बने तो करि
डाह निपग ।—गिरधर (शब्द०) ।

निप—सङ्घा पु० [सं०] १ जलपात्र । कलश । २ कदव । कदम का
फूल या पेड़ (शब्द०) ।

निपजी—सङ्घा स्त्री० [हि० निपजना] उपज ।

निपजना^१—क्रि० प्र० [सं० निपज, (+ ते) प्रा० निपज्जइ] १
उपजना । उत्पन्न होना । उगना । जमना । उ०—(क) राम
नाम कर सुमिरन हसि कर भाये खोज । उलटा सुलटा नीपजे
ज्यो खेतन मे खोज ।—कवीर (शब्द०) । (ख) ममिरिख
बरस होरा निपजे घटा परे टक्सार । तहाँ कवीरा पारखी
अनुभव उतरे पार ।—कवीर (शब्द०) । २ बढ़ना । पुष्ट
होना । पकना । उ०—भलो बुद्धि तेरे त्रिय उपजी । ज्यों
ज्यो दिनी भई त्यों निपजी ।—सूर (शब्द०) ३
बनना । तैयार होना । उ०—सिख खाँड़ा गुरु मसकसा चढे
शब्द सरसान । शब्द सहे सम्मुख रहे निपजे शिष्य सुजान ।—
कवीर (शब्द०) ।

निपजी^२—सङ्घा स्त्री० [हि० निपजना] १ लाभ । मुनाफा । २
उपज । उ०—निश्चय, निधो, मिलाय तत, सतगुरु साहस
घोर । निपजी में साझी घना बाँटनहार कवीर ।—कवीर
(शब्द०) ।

निपट—प्रत्य० [हि० नि + पट] १ निरा । विशुद्ध । खाली । घोर कुछ
नही । केवल । एकमात्र । उ०—निपटहिं द्विज करि जानेसि
मोही । मैं जस विप्र मुनावउँ तोही ।—तुलसी (शब्द०) ।
२ सरासर । एकदम । बिल्कुल । निनान । बहुत अधिक ।
उ०—(क) छासे पासे जो फिर निपट पिसावे सोय । कीला
सों लागा रहै ताको विघ्न न होय ।—कवीर (शब्द०) ।
(ख) भानुवस राखिस कलह । निपट निरकुप अनुप भसकू ।—
तुलसी (शब्द०) । (ग) बाग्हन हुत हक निपट बिछारी ।
सो पुनि चला चलत व्यापारी ।—जायसी (शब्द०) । (घ)
मैं तेहि चारहि बार मनायो । सिर सों खेल निपट बिज
लायो ।—जायसी (शब्द०) ।

निपटना—क्रि० प्र० [हि०] २० 'निपटना' ।

निपटान—सधा श्री० [हि०] निपटने की क्रिया या भाव । निपटान ।

निपटाना—क्रि० प्र० [हि०] २० 'निपटाना' ।

निपटारा—सधा पु० [हि०] २० 'निपटारा' ।

निपटावा—सधा पु० [हि०] २० 'निपटावा' ।

निपटेरा—सधा पु० [हि०] २० 'निपटेरा' ।

निपठ, निपठन—सधा पु० [सं०] अध्ययन । पठन [को०] ।

निपतन—सधा पु० [सं०] [वि० निपतित] मध्य पतन । गिरना । गिराव । पतन ।

निपतित—वि० [सं०] गिरा हुआ । पतित । मध्य पतित ।

निपत्या—सधा श्री० [सं०] १. युद्ध की भूमि । २. गीली चिकनी जमीन । ऐसी भूमि जिसपर पैर फिसले ।

निपत्र—वि० [सं० निष्पत्र] पत्रहीन । ठूँठा । उ०—बिन गेठ वृक्ष निपत्र ज्यों ठाढ़ ठाढ़ पे सुख ।—जायसी (स० २०) ।

निपनिया—वि० [हि० नि + पानी] १. पानी रहित । सुखा । उ०—पानी पियो तो यही पियो भाई आगे देश निपनिया ।—कबीर स०, भा० १, पृ० २२ । २. निर्लज्ज । हया हीन ।

निपरिग्रह—सधा पु० [सं० निष्परिग्रह] २० 'अपरिग्रह' । उ०—मध्य निग्रह सग्रह धर्म कथा, निपरिग्रह साधन की पुन है ।—केसव० प्रभो०, पृ० ११ ।

निपत्ताश—सधा पु० [सं०] ऐसा पेड़ जिसके पत्ते झड़ गए हों [को०] ।

निर्पागुर—वि० [हि० नि + पगुर] १. लंगड़ा । २. अपाहिज । जिसके हाथ पैर न चलते हों ।

निपाक—सधा पु० [सं०] बहुत ज्यादा पक जाना [को०] ।

निपाख—वि० [सं० निष्पख] १. पंख से रहित । बिना पंख का । २. पक्ष या सहायक विहीन । निष्पक्ष । उ०—गुननि पकरि ये निपाख करि छोरि देहु ।—रसखान०, पृ० ५५ ।

निपाठ—सधा पु० [सं०] २० 'निपठ' [को०] ।

निपात^१—सधा पु० [सं०] १. पतन । गिराव । पात । २. मध्य पतन । ३. विनाश । उ०—घोर न कुछ देखे तन श्यामहि ताकी करो निपातु । तू जो करे बात सोई चाँची कहाँ करों तोहि मातु ।—गूर (स० २०) । ४. गूरतु । शय । नाश । उ०—यनमासा पहिरावत श्यामहि बार बार मँकवारि भरी घरि । कम निपात करहुन गुमही हम जानी यह बात सही गरि ।—गूर (स० २०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

५. चाँदिको के मत से १८ च० जिसके बने के नियम का पता न पड़े अपाहिज जो व्याकरण में दिए गए सामान्य नियमों के अनुसार निष्पन्न न होकर अनुस्यूत बना हो । ६. दूसरा गिरा । दूसरा भाग [को०] ।

निपात^२—वि० [हि० नि + पात (= पता)] १. बिना पतो का । जिसमें पतो न हों । उ०—साँठिहि रहे, साँधि छन, निचंडहि भागरि भूरा । बिनु गव बिरिछ निपात बिनि टाढ़ टाढ़ पे भूरा ।—जायसी (स० २०) । २. पंख रहित । बिना पंख का । उ०—जेहि पक्षी के निपर होइ रहे बिरह के भाव । सोई पक्षी आइ बरि, साँधि होइ निपात ।—जायसी (स० २०) ।

निपात^३—सधा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार नष्टाने का रस्ता ।

निपातक—सधा पु० [सं०] पात । कुर्म [को०] ।

निपातन—सधा पु० [सं०] १. गिरा का कार्य । २. पतन । शय या पतन करने का कार्य । ३. गिराने का काम । शय करने का कार्य । ४. नीचे गिरना या उड़ने हुए नीचे से पार जाना [को०] । ५. व्याकरण में च० का भाग होना । अनुस्यूत रूप से च० का निष्पन्न होना [को०] ।

निपातना—क्रि० प्र० [हि० निपातन] १. गिराना । नीचे गिराना । उ०—(क) विपर पात दुख भर निपाते । मुख पलहा मरने दुख राते ।—जायसी (स० २०) । (ग) व्याकुल राउ निविह सब गाता । करिनि कषपतक मनहु निपाता ।—तुलसी (स० २०) । २. नष्ट करना । काटकर गिराना । उ०—रुह लकेम कहत किन जाना । केहि सब नासा कान निपाता ।—तुलसी (स० २०) । ३. मारना । मार गिराना । शय करना । उ०—(क) पदन बाग निवारतु तुम कारण बन काटिया । जीवत बिय अनि मारतु मुए ते सभे निपातिया ।—कबीर (स० २०) । (ग) तेसहि मरहि सेन समेता । सानुज निदरि निपातउं सेता ।—तुलसी (स० २०) । (ग) सोजत रह्यो तोहि सुवधाती । पाउ निपाति जुतापट्ट छाती ।—तुलसी (स० २०) ।

निपाती^१—वि० [सं० निपातिन्] १. गिरानेवाला । फेंकनेवाला । चलानेवाला । उ०—सायक निपाती चतुरंग के संपाती ऐसे सोहत नडाती परिपाती उग्रसेन के ।—गोपाल (स० २०) । २. मारनेवाला । पातक ।

निपाती^२—सधा पु० शिव । महादेव ।

निपाती^३—वि० [हि० नि + पाती] बिना पतो का । पत्रहीन । ठूँठा उ०—तेहि दुख भए पलात निपाती । तोहूँ बूढ़ उठी होइ राती ।—जायसी (स० २०) ।

निपात—सधा पु० [सं०] १. तात्पर्य । मद्दा । सत्ता । २. दुर्ण के पात्र दोवार धेरकर बनाया हुआ गुठ या छोटा हुआ गड्ढा जिसमें पशु पक्षियों आदि के पीने के निचे पाणी इकट्ठा रहता है । ३. दूध दुधवे का बरतन । ४. दूध । दुध (वि०) । ५. पी जाना । सब पी जाना [को०] । ६. भाष्यरथा । भाष्यरथल [को०] ।

निपाता—क्रि० प्र० [सं० निष्पत्ते; प्रा० निपग्रह, हि० निपत्रे] उत्पन्न करना । बनाना । उ०—मारवणों भगताविषा नाक राग निपाइ ।—डोभा०, पृ० १०६ ।

निपाता^२—क्रि० प्र० [हि० निपत्ता] लेप करना । पोखर पाती आदि से लेपकर भूमि को सुख करना । उ०—गूर गावरो गोबर मँगाई पर धानिछीनी निपाऊँ । कल्ल कल्ल बधान गुरा मोठिनी पोछ गुराऊँ ।—राय० पवन० पृ० १ ।

निषोद्धक—वि० [सं० निषोद्धक] १. पोछा देनेवाला । दुधसाफक । २. मसा रखनेवाला । ३. निषोद्धीवाला । ४. परनडावा ।

निषोद्धन—सधा पु० [सं० निषोद्धन मयना निषोद्धन] १. कट्ट पतुवाने या पोछा करने का कार्य । पोछा करना । ठकनीच देना ।

२ मलना दलना । ३ पसाना । पसेव निकालना । ४ पेरना ।
पेरकर निकालना (जैसे वेष्ट निकाला जाता है) ।

निपीड़ना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निपीड़ना] ३० 'निपीड़न' (को०) ।

निपीड़ना^२—क्रि० सं० [सं० निपीड़न] १ दबाना । मलना दलना ।
उ०—भुजन भुजा भरि उरोजन उरहि मोड़ि कठ कठ
सों निपीड़े रोप्यो हिय हियो है ।—देव (शब्द०) । २ कण्ठ
पहुँचाना । पीड़ित करना । ३ पेरना निचोड़ना । गारना ।

निपीड़ित—वि० [सं० निपीड़ित] १ दबाया हुआ । २ मारात ।
३ जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो । ४ पेटा हुआ । निचोड़ा
हुआ । ५ आलिङ्गित (को०) ।

निपीत—वि० [सं०] १ मच्छी तरह पान किया हुआ । २ मग्न ।
हुआ हुआ । ३ पूणत भूला हुआ । शोषित (को०) ।

निपीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पीने की क्रिया (को०) ।

निपुड़ना—क्रि० प्र० [सं० निपुट, प्रा० निपुड] (दाँत) खोचना ।
उधारना ।

निपुण—वि० [सं०] १ दक्ष । कुशल । प्रवीण । चतुर । कार्य करने
में पटु । २ पूण । पूरा (को०) । ३ ठीक (को०) ।

निपुणता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षता । कुशलता ।

निपुणार्ह^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निपुण + आर्ह (प्रत्य०)] निपुणता ।
दक्षता । कुशलता । चतुरार्ह ।

निपुत्री—वि० [हि० नि + पुत्री] निपूता । नि सतान । उ०—
(क) वो निपुत्री को घर में क्या सुख कि जिस बिना वह सदा
अधकार रहता है ।—सदल मिश्र (शब्द०) । (ख) जो नर
ब्राह्मण हत्या कीन्हा । जन्म निपुत्री तेहि जग चीन्हा ।—
विश्राम (शब्द०) ।

निपुन^१—वि० [सं० निपुण] दे० 'निपुण' ।

निपुनई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निपुण + ई (प्रत्य०)] निपुणता ।

निपुनता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निपुणता' । उ०—लघु लाग विधि
की निपुनता प्रबलोकि पुर सोभा सही ।—मानस, १ । ६४ ।

निपुनार्ह^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निपुणार्ह' । उ०—पुर शोभा
प्रबलोकि सुहार्ह । लागइ लघु बिरचि निपुनार्ह ।—तुलसी
(शब्द०) ।

निपूत^१—वि० [हि० नि + पूत] [वि० स्त्री० निपूती] अपुत्र ।
पुत्रहीन । उ०—कीनो जिन रावण निपूतो यमहू ते यम कूते
खेत मुँड आजहू ते न सिरात है ।—हनुमान (शब्द०) ।

निपूता—वि० [सं० निपुत्र, प्रा० निवृत्त] [वि० स्त्री० निपूती]
जिसे पुत्र न हो । अपुत्र ।

निपेटो^१—वि० स्त्री० [हि०] मुखड । सूखी । मातुर । उ०—
मोछी बड़ी इतगति लगी मुँह नेकी अघाति न आखि
निपेटो ।—घनानन्द, पृ० १३ ।

निपैद^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नापैद] विलय । नाश । उ०—पैदा करत
निपैद करत हो ।—जग० बानी, पृ० ३५ ।

निपोटा^१—वि० [हि० नि + पोटा (= कूत)] शक्तिहीन ।
असंयत । उ०—हे करताइ हों तोसों कहीं कबहुँ नहि दीजिए

काहु के टोटो । घोर लखो अनि काहु के भाग मे मित्र के
काज महीप निपोटो ।—राम० धर्म०, पृ० २६८ ।

निपोड़ना^१—क्रि० सं० [सं० निपुट, या निपोडन, प्रा० निपुड +
हि० निपोरना] खोलना । उधारना । (दाँत के लिये) ।

मुद्दा^१—दाँत निपोड़ना = व्यर्थ होना ।

निफन^१—वि० [सं० निफन, प्रा० निफन] पूछा । पूरा । सपूर्ण ।

निफन^२—क्रि० वि० पूछा रूप से । मच्छी तरह । उ०—जोते विनु
बोए विनु निफन निराए विनु सुकृत सुखेत सुख सानि कूलि
करिगे । मुनिहुँ मनोरथ को भगम चलभ्य लाभ सुगम सो राम
लघु लोगनि कों करिगे ।—तुलसी (शब्द०) ।

निफरना^१—क्रि० प्र० [हि० निफरना] घुमकर या घँसकर
इस पार से उस पार होना । छिदकर पारपार होना । उ०—
घायल सो घूमि रह्यो खडगी घमड मरो नेजा नोक लागी मोश
केकयी के नद की । निफरि घँसी सो भूमि गोंडा गिरघो घूमि
भूमि छासी रघुराज वाणी कयी रघुनद की ।—रघुराज
(शब्द०) ।

निफरना^२—क्रि० प्र० [सं० नि + स्फुट या/ निफाल] खुलना ।
उद्घाटित होना । स्पष्ट होना । साफ होना । प्रकट होना ।

निफल^१—वि० [सं० निफल, प्रा० निफल] निरयक । निफल ।
व्यय । उ०—(क) नाचै पडुक मोर परेवा । निफल न जाय
काहि की सेवा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) निफल होहि
रावणसर कैसे । सल के सकल मनोरथ जैसे ।—तुलसी
(शब्द०) । (ग) ज्यों तिय मुरत समय सितकारा । निफल
जाहि जौ बधिर बनारा ।—नद० प्र०, पृ० ११२ ।

निफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता ।

निफाफ—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० निफाफ] १ विरोध । विद्रोह । वेर । २,
फूट । भेद । विगाड । मनबन ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

निफारना^१—क्रि० सं० [हि० नि + फारना] १ इस पार से उस
पार तक छेद करना । पार पार करना । वेधना । २. इस
पार से उस पार निकालना ।

निफारना^२—क्रि० सं० [सं० नि + स्फुट] खोलना । उद्घाटित
करना । प्रकट करना । स्पष्ट करना । साफ करना ।

निफालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दण्ड । प्रबलोकन ।

निफोट—वि० [सं० नि + स्फुट] स्पष्ट । साफ साफ । उ०—
सुन ले निफोट मोट वज्र की न बचै फोऊ लागे भेद चोट
सावधान को अचानक ।—हनुमान (शब्द०) ।

निफोटक^१—वि० [हि० निफोट] स्पष्ट । साफ । कं मिलि कर मेरो
कह्यो कै कर मेरो घात । पाछे बचन संभारियो कह्यो
निफोटक यात ।—हनुमान (शब्द०) ।

निवध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवध] १ वधन । २ वह व्याख्या जिसमें
अनेक मतों का संग्रह हो । ३ लिखित प्रवच । लेख ।
रचनात्मक गद्य साहित्य की एक विधा । ४ गीत । ५
नीम का पेड़ । ६ मानाह रोग । पेशाब बंद होने की
बीमारी । करक । ७ वह वस्तु जिसे किसी को देने का
वादा कर दिया गया हो । ८ कीदित्य के अनुसार सरकारी

प्राज्ञा । ११ प्रतिबंध । रोक (को०) । १० संलग्न होना ।
संलग्नता (को०) । ११ बंधन या जोड़ने का कार्य (को०) ।
१२ कारण (को०) । १३ आधार । नींव (को०) ।

निबंधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निबन्धन] [वि० निबद्ध] १ बंधन ।
उ०—तनु कबु कठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिए ।
अविनीत हृदिय निग्रही तिनके निबधन जानिए ।—केशव
(शब्द०) । २. व्यवस्था । नियम । वधेज । ३ कर्त्तव्य ।
बंधन । ४ हेतु । कारण । ५ गाँठ । ६ बीणा या सिनार
की खूँटो । उपनाह । कान । ७. माश्रय । आधार (को०) ।

यौ०—निबधन पुस्तक = रजिस्टर ।

निबंधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निबन्धनी] १ बंधन । २ वेडी ।

निबधा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निबध्ना] १ लेखक । २. बाँधनेवाला (को०) ।

निबंधी—वि० [सं० निबन्धिन्] १ निबध करनेवाला ।
बाँधनेवाला । २ सलग्न । संबद्ध । ३. कारण रूप । आधार-
स्वरूप (को०) ।

निव—सञ्ज्ञा स्त्री० [घ०] लोहे की चद्दर की बनी हुई चौच जो अंगरेजी
कलमो की नोक का काम देती है । जीमी । (यह ऊपर से
खोसी जाती है) ।

निवकौरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीव, नीम + कौड़ी] १ नीम का
फल । निबोली । निबोरी । २ नीम का बीज ।

निवटना—क्रि० प्र० [सं० निवर्त्तन, प्रा० निवट्ठना] [सञ्ज्ञा निबटेरा,
निबटान] १ निवृत्त होना । छुट्टी पाना । फुरसत पाना ।
फारिग होना । खाली होना । जैसे, सब कामों से निवटना ।
२ समाप्त होना । पूरा होना । किए जाने की बाकी न रहना ।
भुगतना । जैसे, काम निवटना । ३ निर्यात होना । तै होना ।
अनिश्चित दशा में न रह जाना । जैसे, भगड़ा निवटना । ४
चुक्रना । खतम होना । न रह जाना । उ०—हे मुँदरी तेरो
सुकुत मेरो ही सी हीन । फल सो जाग्यो जात है मैं निरने
कर लीन । अधिक मनोहर असन नख उन अंगुरिन की पाय ।
गिरी फेर तू आय जब पुन गयो निवटाय ।—लक्ष्मणसिंह
(शब्द०) । ५ शीघ्र आदि से निवृत्त होना ।

निवटान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] निवटने की क्रिया या भाव ।

निवटाना—क्रि० स० [हि० निवटना] १ पूरा करना । समाप्त
करना । खतम करना । करने को बाकी न छोड़ना जैसे, काम
निवटाना । २ भुगताना । चुकाना । देवाक करना । जैसे,
कच्ची निवटाना । ३ तै करना । निर्यात करना । भंडा न
रखना । जैसे, भगडा निवटाना ।

सयो० क्रि०—डालना ।—देना—लेना ।

निवटारा, निवटाव—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निवटना] १ निवटने की
भावना या क्रिया । निबटेरा । २ ऋण्डे का फैसला ।
निर्णय ।

निवटेरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निवटना] १ निवटन का भाव या
क्रिया । छुट्टी । २ समाप्ति । ३ ऋण्डे का फैसला । निश्चय ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निबद्ध^१—वि० [सं० निबद्ध] घना ।

निबडना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निवटना' ।

निबड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा घड़ा ।

निबद्ध^१—वि० [सं०] १ बंधा हुआ । २ निरुद्ध । रुका हुआ । ३
ग्रथित । गुंथा हुआ । ४ बैठाया हुआ । जड़ा हुआ । निवेशित ।
५ लिखा हुआ । प्रणीत । रचित (को०) । ६ आवृत (को०) ।

निबद्ध^२—सञ्ज्ञा पुं० वह गीत जिसे गाते समय अक्षर, ताल, मान,
गमक, रस आदि के नियमों का विशेष ध्यान रखा जाय ।

निबर—वि० [हि०] दे० 'निबल' ।

निबरक^३—वि० [हि० निबर + क (प्रत्य०)] निबल । निरीह ।
उ०—निबरक सुत ल्यो कोरा । राम मोहि मारि कलि विष
बोरा ।—कवीर ग्र०, पृ० २१३ ।

निबरना—क्रि० प्र० [सं० निवृत्त, प्रा० निवट्ठ] १. बंधो, फँसी
या लगी वस्तु का अलग होना । छूटना । २. मुक्त होना
उद्धार पाना । बच निकलना । पार पाना । उ०—(क) पाप
के उराहुनो उराहुनो न दीजे मोहि कालिकाला कासीनाथ कहे
निबरत हों ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कब लों, कही पूजि
निबरेंगे बचिहैं बैर हमारे ?—सूर (शब्द०) । (ग) कैसे
निबरें निबल जन करि सवलन सों बैर ।—सभाविलास
(शब्द०) । ३ छुट्टी पाना । अवकाश पाना । फुरसत पाना ।
खाली होना । निवृत्त होना । उ०—हरि छवि जल जब ते
परे तब तैं छित निबरे न । भरत ढरत, बूढत, तरत रहत
घरी लों नैन ।—बिहारी (शब्द०) । ४ (काम) पूरा
होना । समाप्त होना । भुगतना । सपरना । निवटना ।
चुक्रना । उ०—(क) सुरदास विनती कहा विनवै दोषनि
देह भरी । आपन विरद सँभारोगे तो यामें सब निबरी ।—
सूर (शब्द०) । (ख) चितवत जितवत हित हिए किए
तिरीछे नैन । भीजे तन दोऊ कपैं क्यों हूँ जप निबरे
न ।—बिहारी (शब्द०) । ५. निर्यात होना । तै होना ।
फैसला होना । ६ एक में मिली जुली वस्तुओं का अलग
होना । विलग होना । उ०—नैना भए पराए चरे । नदलाल
के रग गए रगि अब नाहीं बस मेरे । जद्यपि जतन किए
जुगवति हों श्यामल शोभा धरे । तउ मिलि गए दूष पानी
ज्यो निबरत नाहि निबरे ।—सूर (शब्द०) । ७ उलझन
दूर होना । सुलझना । फँसाव या अडचन दूर होना ।

सयो० क्रि०—जाना ।

न जाता रहना । दूर होना । न रह जाना । खतम होना ।
उ०—अब नीके के ससुझि परी । जिन लागि हती बहुत उर
प्रासा सोऊ बात निबरी ।—सूर (शब्द०) । ९ खतम होना ।
मिट जाना । खेत रहना । समाप्त होना । उ०—घरी एक
भारत भा, भा असवारन मेल । जूझि कुवर सब निबरे गोरा
रहा अकेल ।—जायसी ग्र०, पृ० २६१ ।

निबर्हण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मारण । नष्ट करने की क्रिया या भाव ।

निबर्हण^२—वि० विवाशक । नष्टकारक ।

निबल^①—वि० [सं० निबल] निबल । दुबल । उ०—कैसे निबल
निबल जन करि सबजन सों वैर ।—समाविलास (शब्द०) ।

निबलाई, निबलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निबल] निबलता ।

निबह^②—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निबह] समूह । झुंड । दे० 'निबह' ।
उ०—मनहु उडगन निबह आए मिलत तम तजि हेतु ।—
तुलसी (शब्द०) ।

निबहना—क्रि० प्र० [हि० निबाहना] १ पार पाना । निकलना ।
बचना । छुट्टी पाना । छुटकारा पाना । उ०—(क) मेरे हठ
व्यों निबहन पेहो ? अब तो रोकि सबनि को राख्यो कैसे के
तुम जेहो ?—सूर (शब्द०) । (ग) कैसे निबहैं निबल जन
करि सबजन सों वैर ।—समाविलास (शब्द०) । २ विवाह
होना । बराबर चला चलना । किसी स्थिति, सबध आदि का
लगातार बना रहना । पालन या रक्षा होना । जैसे, साथ
निबहना, मित्रता निबहना, प्रीति निबहना । उ०—(क)
महमद चारिउ मोत मिलि भए जो एकहि चित्त । यहि जग साथ
जो निबहा ओहि जग बिछुरहि कित्त ।—जायसी (शब्द०) ।
(ख) काल बिलोकि कहे तुलसी मन मे प्रभु की परतीति
अघाई । जन्म जहाँ तहाँ रावरे सो निबहै भरि देह सनेह
सगाई ।—तुलसी (शब्द०) । ३ बराबर होता चलना ।
पूरा होना । सपरना । जैसे,—यहाँ का काम तुमसे नहीं
निबहेगा । ४ किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना ।
पालन होना । पूरा होना । चरितार्थ होना । जैसे,—बचन
निबहना, प्रतिज्ञा निबहना ।

सयो० क्रि०—जाना ।

निबहुरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नि + बहुरा] वह स्थान जहाँ से जाकर
कोई न लोटे । यमद्वार ।

निबहुरा—वि० [हि० नि + बहुरा] जो चला जाय और न लोटे ।
सदा के लिये चला जानेवाला । (गाली) ।

निबाज^③—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नमाज] दे० 'नमाज' । उ०—बाँग
निबाज न होय जेह, सवन कथा हरि बेस ।—ह० रासो,
पृ० ५६ ।

निबाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवाह] १ निबाहने की क्रिया या भाव ।
रहन । रहायस । गुजारा । कालक्षेप । किसी स्थिति के बीच
जीवन व्यतीत करने का कार्य । जैसे,—वहाँ तुम्हारा निबाह
नहीं हो सकता । उ०—(क) उषरहि प्रत न होय निबाह ।—
तुलसी (शब्द०) । (ख) लोक लाह परलोक निबाह ।—
तुलसी (शब्द०) । २ लगातार साधन । (किसी बात को)
चलाए चलने या जारी रखने का कार्य । किसी बात के
अनुसार निरंतर व्यवहार । सबध या परपरा की रक्षा ।
जैसे,—(क) प्रीति का निबाह, दोस्ती का निबाह । (ख)
काम तो मैंने अपने ऊपर ले लिया पर निबाह तुम्हारे हाथ
है । ३ चरितार्थ करने का कार्य । पूरा करने का कार्य ।
पालन । साधन और पून । जैसे, प्रतिज्ञा का निबाह । ४
छुटकारे का ढग । बचाव का रास्ता । जैसे,—बड़ी प्रवृत्त में
फँसे हैं, निबाह नहीं दिखाई देता ।

निबाहक—वि० [सं० निवाहक] निबाह करनेवाला ।

निबाहना—क्रि० प्र० [सं० निवाहन] १ निवाह करना । (किसी
बात को) बराबर चलाए चलना । जारी रखना । बनाए
रखना । संबध या परपरा की रक्षा करना । जैसे, नाता
निबाहना, प्रीति निबाहना, मित्रता निबाहना धर्म निबाहना ।
उ०—(क) पहिले सुख नेहहि जब जोरा । पुनि होय कठिन
निबाहत मोरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) निबाहो बाँह
गहे की लाज ।—सूर (शब्द०) । २ पूरा करना । पालन
करना । चरितार्थ करना । किसी बात के अनुसार निरंतर
व्यवहार करना । जैसे, बचन निबाहना । उ०—यह परतिज्ञा
जो न निबाहों । तो तनु अपने पावक दाहों ।—सूर
(शब्द०) । ३ निरंतर साधन करना । बराबर करते जाना ।
सपराना । जैसे,—अभी काम न थोड़ी थोड़े दिन और
निबाह दो ।

सयो० क्रि०—देना ।

निबिड़—वि० [सं० निबिड] दे० 'निबिड़' ।

निबुझा^④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नीबू' ।

निबुझना^⑤—क्रि० प्र० [सं० निभुंक्त, प्रा० निभुत्ता, या सं०
निभुंक्त] १ छुटकारा पाना । छूटना । बचन से निकलना ।
उ०—(क) निबुकि चढ़ेउ कपि कनक मटारी । भई समीत
निसाचर नारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुग्रीव के मुरझा
बीती । निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ग) दोठि निसेनो धड़ि चत्यो ललचि सुषित मुख मोर ।
चिबुक गटारे सेत में निबुकि गिरयो चित चोर ।—शृ० सत०
(शब्द०) । २ बचन आदि का खिसकना । ३ समाप्त होना ।
खरम होना । सपन्न होना ।

सयो० क्रि०—जाना ।

निवेडना^⑥—क्रि० प्र० [सं० निवृत्त, प्रा० निवृत्ति] १ (बचन
आदि) छुड़ाना । उन्मुक्त करना । बंधो, फँसी, या लगी वस्तु
को भलग करना । २ परस्पर मिली हुई वस्तुओं को भलग
करना । बिलगाना । छूटना । चुनना ३ उलझन दूर
करना । सुलझाना । लगाव फँसाव दूर करना । ४ निबटाना ।
निगुंथ करना । ते करना । केमथा करना । ५ धाड़ना ।
हटाना । दूर करना । भगन करना । ६ पूरा करना ।
निबटाना । सपराना । भुगताना ।

निवेडा^⑦—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निवेडना] १ छुटकारा । मुक्ति । २
वचाव । उद्धार । ३ एक में मिली जुली वस्तुओं के भलग
होने की क्रिया या भाव । बिलगाव । धाड़ । चुनवा । ४
सुलझाने की क्रिया या भाव । उलझन या फँसाव दूर होना ।
५ रपग । ६ निबटारा । भुगतान । समाप्ति । चुकती । ७
निगुंथ । फँसला ।

निवेरना^⑧—क्रि० प्र० [सं० निवृत्ता, प्रा० निवृत्ति, अथवा हि०]
१ (बचन आदि) छुड़ाना । उन्मुक्त करना । बंधो, फँसी या
लगी वस्तु को भलग करना । उ०—घोरन की तोहि का परो
अपनी आप निवेर ।—कबीर (शब्द०) । २ एक में मिली
हुई वस्तुओं को भलग भलग करना । बिलगाना । छूटना ।

चुनना । उ०—(क) नेता भए पराए चेरे । नंदलाल के रग गए रंगि भव नाहीं बस मेरे । यद्यपि जतन किए जुगवति हों, श्यामल शोभा घेरे । तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निवरत नाहि निवेरे ।—सूर (शब्द०) । (ख) भागे भए हनुमान पाछे नील जावजान लका के निसंक सूर मारे हैं निवेरि के ।—हनुमान (शब्द०) । ३ उलझन दूर करना । सुलझाना । फँसाव या भड़चन दूर करना । ४ निरुंय करना । तै करना । फँसला करना । उ०—(क) जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निवेरो । तेहि कौतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रण करि के भूठो करि डारत सकल धरम तेहि केरो । जात रसातल जनु ते तुरतहि वेद पुरान निवेरो ।—रघुराज (शब्द०) । ५ छोड़ना । त्यागना । तजना । उ०—मारी मरे कुसग की ज्यों केरे ठिग बेर । वह हाले वह जोरइ साकट सग निवेर ।—कबीर (शब्द०) । ६ दूर करना । हटाना । मिटाना । उ०—मिटै न विपति भजे बिनु रघुपति श्रुति सदेह निवेरो ।—तुलसी (शब्द०) । ७ (काम) पूरा करना । निबटाना । सपराना । भुगताना । उ०—प्रमुदित मुनिहि भावरी केरो । नेग सहित सब रीति निवेरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

निवेरा—सखा पु० [हि० निवेरना] १ छुटकारा । मुक्ति । उद्धार । बचाव । उ०—अपाकुल प्रति भवजाल बीच परि प्रभु के हाथ निवेरो ।—सूर (शब्द०) । २ मिली जुली वस्तुओं के अलग अलग होने कि क्रिया या भाव । बिलगाव । छूट । चुनाव । ३ सुलझने की क्रिया या भाव । उलझन या फँसाव का दूर होना । ४. निरुंय । फँसला । निबटेरा । उ०—(क) जैसे बरत भवन तजि भजिए तैसहि गए फेरि नही हेरयो । सूर श्याम रस रसे रसीले पाकौ करे निवेरो ।—सूर (शब्द०) । (ख) ब्राह्मण नृपति युधिष्ठिर केरो । जानै सब गुन जान निवेरो ।—सबल (शब्द०) । ५ (काम का) निबटेरा । भुगतान । समाप्ति । पूर्ति ।

निवेसित—वि० [सं० निवेशित] दे० 'निवेशित' ।

निवेहना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निवेरना' ।

निबोध—सखा पु० [सं०] १ समझना । सोखना । जानना । २ बतलाना । समझाना [को०] ।

निबोधन—सखा पु० [सं०] समझने या बतलाने की क्रिया । निबोध [को०] ।

निबोली—सखा श्री० [हि० नीम] दे० 'निबोली' । उ०—पाप गुलीचा घरम निबोली देखि देखि फल चीख रे ।—रै० बानी, पु० ४० ।

निबौरी—सखा श्री० [हि० निमोरी] दे० 'निबोली' । उ०—(क) दाख छाड़ि के तजि कटुरु निबौरी को भपने मुख छेहे । गुणनिधान तजि सूर साँवर फी गुणहीन निवेहे ।—सूर (शब्द०) । (ख) तो रस राचा आन बग कालो कुटिल मति कूर । जीभ निबौरी त्रयो नगे वोगी चाख खजर ।—बिहारी (शब्द०) ।

१-५०

निबौली—सखा श्री० [सं० निम्ब + फल या वत्तुल] निबकौरी । नीम का फल ।

निभ^१—सखा पु० [सं०] १. प्रकाश । प्रभा । चमक दमक । २. छल कपट (को०) । ३. व्याज । चहाना (को०) । ४. प्राकट्य । अभिव्यक्ति (को०) ।

निभ^२—वि० तुल्य । समान । उ०—छतज नयन उर बाहु बिसाला । हिमगिरि निभ तनु कछु एक चाला ।—तुलसी (शब्द०) ।

निभना—क्रि० प्र० [हि० निबहना] १. पार पाना । निकलना । बचना । छुट्टी पाना । छुटकारा पाना । २. निबोह होना । बराबर चला चलना । जारी रहना । लगातार बना रहना । सवध, परपरा आदि की रखा होना । जैसे, (क) साथ निभना, प्रीति निभना, मित्रता निभना, नाता निभना । (ख) इनकी उनकी मित्रता कैसे निभेगी ? ३. किसी स्थिति के अनुकूल जीवन व्यतीत होना । गुजारा होना । रहायस होना । जैसे,—(क) तुम वहाँ निभ नहीं सकते । (ख) जैसे इतने दिन निभा वैसे ही थोड़े दिन भीर सही । ४. बराबर होता चलना । पूरा होना । सपरना । भुगतना । जैसे,—यहाँ का काम तुमसे नहीं निभेगा । ५. किसी बात के अनुसार निरतर व्यवहार होना । पालन होना । पूरा होना । चरितार्थ होना । जैसे, वचन निभना, प्रतिज्ञा निभना । दे० 'निबहना' । ६ समाप्त होना । ब्रुक्तता । उ०—चलते पथ, चरण वितत, दीप निभा, हवा लगी ।—वेला, पु० ५० ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निभरम^१—वि० [सं० निभ्रम] भ्रमरहित । जिसे या जिससे किसी प्रकार की शका न हो । जिसे या जिससे कोई खटका न हो ।

निभरम^२—क्रि० वि० नि शक । देखटके । वेघटक ।

निभरमा^१—वि० [सं० निभ्रम] जिसका परदा ढका न हो । जिसकी कलाई खुल गई हो । जिसकी थाप या मर्यादा न रह गई हो । जिसका विश्वास उठ गया हो ।

निभरमी^१—वि० [हि० निभरम + ई] दे० 'निभरम' । उ०—हँडवाई गाड़ी क हूँ भीर । नगदी माल निभरमी ठोर ।—धवं०, पु० २४ ।

निभरोसा^१—वि० [हि० निभरोसा] [सखा निभरोसा] जिसे भरोसा न हो । निराश । हताश ।

निभरोसी^१—वि० [हि० नि (=नही)+भरोसा] १ जिसे कोई भरोसा न रह गया हो । निराश । हताश । २ जिसे किसी का आसरा भरोसा न हो । निराश्रय । निराधार । बिना सहारे का । हीन । उ०—कीन्हेसि कोई निभरोसी कीन्हेसि कोई बरियार । छारहि ते सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार ।—जायसी (शब्द०) ।

निभाउ^१—सखा पु० [हि०] दे० 'निबाह' ।

निभागा^१—वि० [हि० नि + भाग, सं० भाग्य] भागा । बदकिस्मत ।

निभाना—क्रि० सं० [हिं० निबाहना] १ निर्वाह करना । (किसी बात को) बराबर चलाए चलना । बनाए धीर जारी रखना । सवध या परपरा रक्षित रखना । जैसे, नाता निभाना, प्रीति निभाना, घमं निभाना । २ किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार करना । चरितार्थ करना । पूरा करना । पालन करना । जैसे, प्रतिज्ञा निभाना, वचन निभाना । उ०—सारंग वचन कही करि हरि को सारंग वचन निभावति ।—सूर (शब्द०) । ३ निरंतर साधन करना । बराबर करते जाना । सपराना । चखाना । भुगताना । जैसे,—घमो काम न छोडो, थोड़े दिन धीर निभा दो ।

सयो० क्रि०—देना ।

निभार^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निभावन] देखना । धर्षन । उ०—जमुन तट भए दिग पसार । राधे गेनदे खेलन देखि निभार ।—विद्यापति, पृ० १२६ ।

निभाजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दर्शन । प्रत्यक्षीकरण [को०] ।

निभाव^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] दे० 'निबाह' । उ०—भूतक छोह निभाव उर धारो ।—कबीर सा०, पृ० ६ ।

निबाह^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] दे० 'निबाह' । उ०—मेछी राह निमाह कज, विलो ओरंग साह । ज्यूँ सामद सजाद सुँ यूँ रहियो खम दाह ।—रा० रू०, पृ० १७ ।

निभूत—वि० [सं०] भूत । व्यतीत । बीता हुआ ।

निभूत^१—वि० [सं०] १ घरा हुआ । रखा हुआ । घृत । २ निश्चल । घटल । ३. गुप्त । छिपा हुआ । ४ बद किया हुआ । ५ निश्चित । स्थिर । ६ नञ् । विनीत । ७. शात । अनुद्विग्न । धीर । ८ निर्जन । एकांत । सूना । उ०—दो काठो की सधि बीच उस निभूत गुफा में प्रपने । अग्निशिखा वुझ गई, जागने पर जैसे सुख सपने ।—कामायनी, पृ० १३६ । ९ भरा हुआ । पूर्ण । युक्त । (समाप्त में प्रयुक्त) । १० प्रसूत होने के निकट (सूर्य या चंद्रमा) ११ घोर । धैर्यशाली (को०) । १२. प्रावृष । प्राच्छादित (को०) । १३ घीमा । मद । (को०) ।

यौ०—निभूताश्मा=प्रविचल । घोर ।

निभूत^२—सञ्ज्ञा पुं० नञ्प्रता । विनीतता [को०] ।

निभै^७—वि० [सं० निर्भय] दे० 'निर्भय' । उ०—करनहरा दुरनेस खीवकन, तेजल देवै प्राद निभै तन ।—रा० रू०, पृ० ३१२ ।

निभ्रात^७—वि० [सं० निर्भ्रात] दे० 'निभ्रात' ।

निमंत्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] [वि० निमंत्रित] १. किसी कार्य के लिये नियत समय पर प्राप्ति के लिये ऐसा अनुरोध जिसका प्रकरण पालन व करने से दोष का भागी होना पड़ता है । बुलावा । प्राह्वान ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

२ भोजन आदि के लिये नियत समय पर आने का अनुरोध । खाने का बुलावा । न्योता ।

क्रि० प्र०—करना । देना ।

विशेष—'ग्रामन्त्रण' धीर 'निमन्त्रण' में यह भेद है कि निमन्त्रण का पालन न करने पर दोष का भागी होना पड़ता है ।

निमंत्रणपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रणपत्र] वह पत्र जिसके द्वारा किसी पुरुष से भोज, उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये अनुरोध किया गया हो ।

निमंत्रना^७—क्रि० सं० [सं० निमन्त्रण] न्योता देना । उ०—पुनि पुनि नृगहि निमन्त्रेउ मुनिवर । मान्यो नृप तब शासन मुनि कर ।—रघुराज (शब्द०) ।

निमंत्रित—वि० [सं० निमंत्रित] जो निमन्त्रित किया गया हो । जिसे न्योता दिया गया हो । भाहूत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शलाका । शकु । कील ।

निमक—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नमक' ।

यौ०—निमकहराम^७=दे० 'नमकहराम' । निमकहरामी^७= (१) दे० 'नमकहरामी' । (२) दे० 'नमकहराम' । उ०—चाकर रहे हज़र होइ ना निमकहरामी ।—पलदू०, पृ० ४५ ।

निमकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नमक] १ नीच का प्रचार । २ घी में तली हुई मैदे की मोयनदार नमकीन टिकिया ।

निमकौड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नीम] दे० 'निक्कीरी', 'निबौली' ।

निमग्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निमग्ना] १ डूबा हुआ । मग्न । २ तन्मय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निमछड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नि + मच्छड़] ऐसा समय जिसमें कोई काम न हो । अवकाश । फुरत । छुट्टी ।

निमज्जक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र आदि जलाशयों में डूबी लगाने-वाला । गोते मारकर समुद्र आदि के नीचे की चीजों को निकासकर जीविका करनेवाला ।

निमज्जथु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गोता लगाना । डूबने की क्रिया । २ सोना । शयन करना [को०] ।

निमज्जन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डूबकर किया जानेवाला स्नान । प्रव-गाहन । उ०—कतहुं निमज्जन कतहुं प्रनामा । कतहुं बिलोकत मन अभिरामा ।—मानस, २ । ३११ ।

निमज्जना^७—क्रि० प्र० [सं० निमज्जन] डूबना । गोता लगाना । प्रवगाहन करना । उ०—(क) सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपोस कियो जग जानत जेसो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) देखि मिटे प्रपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

निमज्जित—वि० [सं०] १. डूबा हुआ । मग्न । निमग्न । २ स्नात । नहाया हुआ ।

निमटना^७—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'निबटना' ।

निमटाना^७—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'निबटाना' ।

निमटेरा^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबटेरा' ।

निमडना^७—क्रि० प्र० [सं० निवृत्त] चुकना । समाप्त होना । उ०—ओघादार बोल्यो अणि पैसे तो निमडि गो ।—शिखर० पृ० ४८ ।

निमिता—वि० [हि० नि + माँता] जो माँता न हो । जो उन्मत्त न उ०—मति निमते गरजहि बाधे । निसि दिन रहैं महुावत कवि ।—जायसी (शब्द०) ।

निमद—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मद स्वर में किया गया उच्चारण जो स्पष्ट हो [को०] ।

निमन—वि० [हि०] समान । उ०—जमीन है जो गाजर की जड़ के निमन । व पानी में ज्यों के कँवल के निमन ।—वकिस्नी०, पृ० ३३७ ।

निमय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वस्तुविनिमय । पदार्थों का बदल बदल ।

विशेष—गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण गो, तिल, दूध, दही, फल, मूल, फूल, ओषधि, मधु, मांस, वस्त्र, सन, रेशम आदि पदार्थों का मुद्रा लेकर विक्रय न करे । यदि उनको ऐसा करने की जरूरत ही पड़े तो वे विनिमय कर लें । अन्नादि का अन्नान्नादि से और पशुओं का पशुओं से ही बदला किया जाय । नमक तथा पक्वान्न के लिये यह नियम नहीं है । कच्चा पदार्थ देकर पक्वान्न लिया जाय । तिलो के क्रय विक्रय में धान्य के सदृश ही नियम हैं ।

निमरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो मध्यभारत में होती है । बरही । बेंगई ।

निमिष—सञ्ज्ञा पु० [सं० निमिष] दे० 'निमिष' । उ०—निमिष एक न्यारा नहीं, तन मन मक्ति समाइ ।—दादू०, पृ० ३६ ।

निमस्कार—सञ्ज्ञा पु० [सं० निमस्कार] दे० 'नमस्कार' । उ०—ग्रथकरता गुरु कू भी इष्ट देवता सु अभेद करिके, ग्रथ की विघनता दूरि करिके के हेतु बहुरि निमस्कार करत है ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८३ ।

निमाज—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नमाज] मुसलमानों के मत के अनुसार ईश्वर की आराधना जो दिनरात में पाँच बार की जाती है । इसलाम मत के अनुसार ईश्वरप्रार्थना ।

क्रि० प्र०—गुजारना ।—पढ़ना ।

निमाजगह—सञ्ज्ञा पु० [फा० नमाजगह] नमाज पढ़ने की जगह । नमाजगह । उ०—दारिगह, वारिगह निमाजगह खोआरगह खोरम ।—कीर्ति०, पृ० ५० ।

निमाजबद—सञ्ज्ञा पु० [फा० नमाजबद] कुश्ती का एक पंच जिसमें जोड़ के दाहिनी ओर बैठकर उसकी दाहिनी कलाई को अपने दाहिने हाथ से खींचा जाता है और फिर अपना बायाँ पैर उसकी पीठ की ओर से लाकर उसकी दाहिनी भुजा को इस प्रकार बाँध लिया जाता है कि वह चूतड़ के बीचोबीच आ जाती है । इसके बाद उसके दाहिने घुँगूँ के अपने दाहिने हाथ से खींचते हुए बाँए हाथ से उसकी जाँघिया पकड़कर उसे उलटकर चित कर देते हैं ।

विशेष—इस पंच के विषय में प्रसिद्ध है कि इसके आविष्कर्ता इसलामी मल्लविद्या के आचार्य अली साहब हैं । एक बार किसी जगह में एक दैत्य से उन्हें मल्लयुद्ध करना पड़ा । उसे बीचो बीच ले भाए, पर चित करने के लिये समय न था,

क्योंकि नमाज का समय बीत रहा था । इसलिये उन्होंने उसे इस प्रकार बाँधा कि उसे उसी स्थिति में रखते हुए नमाज पढ़ सकें । जब वे खड़े होते तब उसे भी खड़ा होना पौर जब बैठते या झुकते तब बैठना या झुकना पड़ता । यही इसका निमाजबद नाम पढ़ने का कारण है ।

निमाजी—वि० [फा० नमाज] १ जो नियमपूर्वक नमाज पढ़ता हो । २ दीनदार । धार्मिक (मुसलमान) ।

निमाणी—वि० [हि० निमानी] मान से रहित । सरल चित्त-वाला । विनीत । दे० 'निमाना' । उ०—सहजे रहे निमाणी सुता । नानक कहै सोई प्रवधूता ।—प्राण०, पृ० १०१ ।

निमान—सञ्ज्ञा पु० [सं० निमन = गड्ढा (वेद), या निपान १ नीचा स्थान । गड्ढा । २ जलाशय । उ०—खोजहुँ दडक जनस्थाना । सैल सिखर सर सरित निमाना ।—(शब्द०) ।

निमान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ माप । २. कीमत । मूल्य [को०] ।

निमाना—वि० [सं० निमन] [वि० स्त्री० निमानो] १. नीचा । ढालुप्रा । नीचे की ओर गया झुका । उ०—फिरत न पाछे नीर ज्यो भूमि निमानो जाय । सो गति मो मन की भई कीजै कौन उपाय ।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०) । २. नम्र । विनीत । सरल स्वभाव का । सीधा साधा । भोलाभाला । ३. दबू ।

निमि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ महाभारत के अनुसार एक ऋषि जो दत्तात्रेय के पुत्र थे । २. राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम । इन्हीं से मिथिला का विदेह वंश चला । उ०—भए विलोचन चारु अचंचल । मनहु सकुचि निमि तजे दगचल ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि एक बार महाराज निमि ने सहस्रवार्षिक यज्ञ कराने के लिये वशिष्ठ जी को बुलाया । वशिष्ठ जी ने कहा मुझे देवराष्ट्र इन्द्र पहले से ही पंचशत वार्षिक यज्ञ में वरण कर चुके हैं । उनका यज्ञ कराके मैं आपका यज्ञ करा सकूँगा । वशिष्ठ के चले जाने पर निमि ने गौतमादि ऋषियों को बुलाकर यज्ञ करना प्रारंभ किया । इन्द्र का यज्ञ हो जाने पर जब वशिष्ठ जी देवलोक से भाए तब उन्हें मालूम हुआ कि निमि गौतम को बुलाकर यज्ञ कर रहे हैं । वशिष्ठ जी ने निमि के यज्ञमंडप में पहुँचकर राजा निमि को शाप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहेगा । वशिष्ठ के शाप देने पर राजा ने भी वशिष्ठ को शाप दिया कि आपका भी शरीर न रहेगा । दोनों का शरीर छूट गया । वशिष्ठ जी तो अपना शरीर छोड़कर मित्रावरुण के वीर्य से उत्पन्न हुए । यज्ञ की समाप्ति पर देवताओं ने निमि को फिर उसी शरीर में रखकर अमर कर देना चाहा पर राजा निमि ने अपने छोड़े हुए शरीर में जाना नहीं चाहा और देवताओं से कहा कि शरीर के त्यागने में मुझे बड़ा दुःख हुआ है, मैं फिर शरीर नहीं चाहता । देवताओं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उनको मनुष्यों की पत्नियों की पलक पर जगह दी । उसी समय से निमि विदेह कहलाए और उनके वंशवाले भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुए ।

३. पत्नियों का मिथना । निमेष ।

निमिष—सङ्घा पुं० [सं० निमिष] दे० 'निमिष' ।

निमित्त - सङ्घा पुं० [सं०] १ हेतु । कारण । २ चिह्न । लक्षण ।
३ शकुन । सगुन । ४ न्याज । बहाना (को०) । ५ उद्देश्य ।
फल की ओर लक्ष्य । जैसे, पुत्र के निमित्त यज्ञ करना ।

यौ०—निमित्तविद = शकुनशास्त्र का ज्ञाता । ज्योतिषी ।
निमित्तशास्त्र = शकुन प्रपशकुन आदि को बतानेवाला शास्त्र ।

निमित्तक^१—वि० [सं०] किसी हेतु से होनेवाला । जनित । उत्पन्न ।
उ०—उदर निमित्तक बहुकृत वेपा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निमित्तक^२—सङ्घा पुं० चुबन का एक भेद । (कामसूत्र) ।

निमित्तकारण—सङ्घा पुं० [सं०] वह जिसकी सहायता और कर्तृत्व से कोई वस्तु बने । जैसे, घड़े के बचने के निमित्त कारण कुम्हार चाक, दंड, सूत्र इत्यादि । (न्याय शास्त्र) । विशेष—
दे० 'कारण' ।

निमित्तकृत—सङ्घा पुं० [सं०] काक । कौआ (को०) ।

निमिराज—सङ्घा पुं० [सं०] १ निमिवशी राजा जनक । उ०—दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात । बैठे सब वट बिटप तर मन मलीन कुशगात ।—तुलसी (शब्द०) । २. दे० 'निमि' ।

निमित्तवध—सङ्घा पुं० [सं०] बाँधने आदि निमित्त से होनेवाला मरण । जैसे, गाय आदि का (को०) ।

निमिष—सङ्घा पुं० [सं०] १ घाँखों का ढँकना । पलकों का गिरना ।
घाँख मिचना । निमेष । २ उतना काल जितना पलक गिरने में लगता है । पलक मारने भर का समय । ३ सुश्रुत के अनुसार एक रोग जो पलक पर होता है । ४ विष्णु का एक नाम (को०) । ५ फूल का सपुटित होना या बंद होना (को०) ।

निमिषक्षेत्र—सङ्घा पुं० [सं०] नैमषारण्य ।

निमिषांतर—सङ्घा पुं० [सं० निमिष + अन्तर] पलक मारने भर का व्यवधान या अंतर (को०) ।

निमिषित—वि० [सं०] निमोलित । मिचा हुआ ।

निमोलन—सङ्घा पुं० [सं०] १ पलक मारना । निमेष । उ०—नेत्र निमोलन करती मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने ।—कामायनी, पु० २३ । २ मरण । ३ पलक मारने भर का समय । पल । क्षण । ४ ज्योतिष के अनुसार पूर्ण या खयास ग्रहण (को०) ।

निमीला, निमीलिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ घाँख की झपक । निमोलन । २ न्याज । छल । ३ देखकर मनदेखा करना (को०) ।

निमीलित—वि० [सं०] १ बंद । ढका हुआ । २ मृत । मरा हुआ ।
३ सुप्त । जड़भूत (को०) । ४ लुप्त । गायब । ५. अपकारा-
च्छन्न । अपकार में निमग्न (को०) ।

निमुखियाँ—वि० [हि० नि + मुख + इया (प्रत्य०)] बिना मुँह-
वाला । उ०—यद्यपि उसकी वह उम्र बीत चुकी थी जिस उम्र के निमुखिये गुंडे से ढूँढ़े हमारे समाज में बड़े उस्ताह से देखे जाते हैं ।—शराबी, पु० २६ ।

निमुह—वि० [हि० नि (= नही) + मुह] [वि० स्त्री० निमुही]

१ जिसे बोलने का मुँह या साहस न हो । २ न बोलनेवाला ।
कम बोलनेवाला । चुपका ।

निमूँद^१—वि० [हि० मुँदना] मुँदा हुआ । मुद्रित । बंद ।
उ०—कोड़ा आँसु बूँद, कसि साँकर बचनी सजल । कीने बदन निमूँद, छग मखिण ढारे रहत ।—बिहारी २०, दो० २३० ।
निमूँद^२—वि० [हि० नि (= नही) + मुँदना] जो मुँदा न हो । खुषा ।

निमूल—वि० [सं०] १ मूलरहित । २ प्रकाशन ।

निमेल—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'निमेष' ।

निमेट^१—वि० [हि० नि + मिटना] न मिटनेवाला । बना रहनेवाला । उ०—काह कहीं हों ओहि सों जेइ दुख मोन्ह निमेट । तेहि दिन प्रागि करे वह जेहि दिन होइ सो भेंट ।—जायसी (शब्द०) ।

निमेय—सङ्घा पुं० [सं०] विनिमय । (वस्तुओं की) बदला बदली (को०) ।

निमेरा^१—सङ्घा पुं० [हि० निबटेरा] दे० 'निबटेरा' । उ०—
नीर छोर का मरम ना जानहि केहि बिधि होइ निमेरा ।—
सं० दरिया, पु० १०६ ।

निमेष—सङ्घा पुं० [सं०] १. पलक का गिरना । घाँख का झपकना ।
उ०—(क) कहा करौ नीके करि हरि को रूप रेख नहि पावति । सगहि सग फिरति निशि वासर नैन निमेष न लावति ।—सूर (शब्द०) । (ख) मो डर ते डरये सुरराजहु सोवत नैन लगाय निमेषे ।—हनुमान (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२ पलक मारने भर का समय । पलक के स्वभावतः उठने और गिरने के बीच का काल । उतना वक्त जितना पलको के उठकर फिर गिरने में लगता है । पल । क्षण । ३ घाँख का एक रोग जिसमें घाँखें फड़कती हैं । ४ एक यक्ष का नाम (महाभारत) ।

यौ०—निमेषद्युत्, निमेषरुच् = जुगनू ।

निमेषक—सङ्घा पुं० [सं०] १ पलक । २ खद्योत । जुगनू ।

निमेषकृत—सङ्घा स्त्री० [सं०] विद्युत् । बिजली ।

निमेषण—सङ्घा पुं० [सं०] पलक गिरना । घाँख मुँदना ।

निमोची—सङ्घा स्त्री० [सं०] राक्षस विशेष ।

निमोना—सङ्घा पुं० [सं० नवान्न] चने या मटर के पिसे हुए हरे दानों को हलदी मसाले के साथ घी में भूनकर बनाया हुआ रसेदार व्यजन । उ०—ककरी, कचरी और कचनारयो । सरस निमोननि स्वाद सेंवारयो ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत मिरिच दै कियो निमोना । देसन के दस बीसका दोना ।—सूर (शब्द०) ।

निमौनी—सङ्घा स्त्री० [सं० नवान्न] वह दिन जब ईश्वर पहले पहल काटी जाती है ।

निम्न—वि० [सं०] १ नीचा । २ गहरा । गभीर ।

यौ०—निम्नवर्ग = समाज का निचला या पिछड़ा हुआ वर्ग ।

निम्नग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीचे जानेवाला ।

निम्नगत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीचा स्थान [को०] ।

निम्नगा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नदी ।

निम्ननाभि—वि० [सं०] दुबला पतला । कुश [को०] ।

निम्नयोधी—वि० [सं० निम्नयोधिन्] किले के नीचे से या नीची जमीन पर से लड़नेवाला । वि० दे० 'स्थलयोधी' ।

निम्नलिखित—वि० [सं०] ३० 'निम्नांकित' ।

निम्नाकित—वि० [सं० निम्न+अङ्कित] नीचे लिखा हुआ । निम्न-लिखित ।

निम्नारण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ों की घाटी [को०] ।

निम्नोन्नत—वि० [सं०] ऊबड़ खाबड़ । जो समतल न हो । विषम [को०] ।

निम्ननी—वि० [हि०] दे० 'नीमन' ।

निम्मल(७)—वि० [सं० निर्मल, प्रा० निम्मल] स्वच्छ । निर्मल । साफ । उ०—सरिता सर निम्मल नीर वहै ।—ह० रासो, पु० २१ ।

निम्लुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यास्त [को०] ।

निम्लोच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का अस्त होना ।

निम्लोचनी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वरुण की नगरी का नाम जो मानसोत्तर पर्वत के पश्चिम है ।

निम्लोचा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक मत्सरा का नाम ।

नियतव्य—वि० [सं० नियन्तव्य] नियमित होने योग्य । प्रतिबद्ध होने योग्य । शासन योग्य ।

नियंता—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० नियन्तृ] [स्त्री० नियत्री] १. नियम बांधनेवाला । व्यवस्था करनेवाला । कायदा बांधनेवाला । २. कार्य को चलानेवाला । विधायक । ३. शिक्षक । नियम पर चलानेवाला । शासक । ४. सारथी (को०) । ५. घोड़ा फेरनेवाला । घोड़ा निकालनेवाला । ६. विष्णु ।

नियन्त्रक—वि० [सं० नियन्त्रक] नियन्त्रण करनेवाला । नियम की व्यवस्था करनेवाला । कार्य को चलानेवाला ।

नियन्त्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नियन्त्रण] १. नियमन । रोक । २. शासन । प्रतिबन्धन । ३. सरकार द्वारा किसी वस्तु के मूल्य, समान वितरण आदि पर लगाया जानेवाला प्रतिबन्ध । कंट्रोल ।

नियन्त्रित—वि० [सं० नियन्त्रित] नियम से बंधा हुआ । कायदे का पाबंद । जिसकी क्रिया मर्बधा स्वच्छद न हो । जिसपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध हो । प्रतिबद्ध ।

यौ०—नियमित भाव = सरकार द्वारा निर्धारित दर । कंट्रोल रेट ।

निय(७)—वि० [सं० निज, प्रा० णिय] निज । उ०—निय तिय तो पिय पहुँ रमै प्रायन चाहत प्राज । साजि भारतो पाउड़े मय मलि तज वह काज ।—स० सप्तक, पु० ३६४ ।

नियत^१—वि० [सं०] १. नियम द्वारा स्थिर । बंधा हुआ । परिमित । सयत । बद्ध । पाबंद । २. ठहराया हुआ । स्थिर । ठीक किया हुआ । निश्चित । मुकर्रर । जेनात । जैसे,—किसी काम के लिये

कोई दिन नियत करना, वेतन नियत करना । ३. नियोजित । स्थापित । प्रतिष्ठित । मुकर्रर । जैसे, किसी पद पर या काम पर नियत करना । ४. बाधा हुआ । जैसे, नियताजलि । ५. सयुक्त । प्राप्त (को०) ।

प्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—नियतकाल = जिसका समय निश्चित हो । नियतव्रत = पवित्र । धार्मिक ।

नियत^२—सञ्ज्ञा पुं० महादेव । शिव ।

नियत^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नीयत' ।

नियत व्यावहारिक काल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पुण्य, दान, व्रत, श्राद्ध, यात्रा, विवाह इत्यादि के लिये नियत समय ।

विशेष—ज्योतिष में कालमात्र नौ प्रकार के माने गए हैं—सौर, सावन, चाद्र, नाक्षत्र, पित्र्य, दिव्य, प्राजापत्य (मन्वन्तर), ग्राह्य (कल्प), और बाह्वस्तर्य । इनमें से ऊपर लिखी बातों के लिये तीन प्रकार के कालमान लिए जाते हैं—सौर, चाद्र और सावन । सन्क्रांति, उत्तरायण, दक्षिणायन आदि पुण्यकाल सौर काल के अनुसार नियत किए जाते हैं । तिथि, करण, विवाह, क्षौर, व्रत, उपवास और यात्रा इत्यादि में चाद्र काल लिया जाता है । जन्म, मरण (सूतक), चाद्रायण आदि प्रायश्चित्त, यज्ञदिनाधिपति, वर्षाधिपति और ग्रहों की मध्यगति आदि का निर्णय सावन काल द्वारा होता है ।

नियतात्मा—वि० [सं० नियतात्मन्] अपने ऊपर प्रतिबद्ध रखनेवाला । सयमी । जितेंद्रिय ।

नियताग्नि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रूपक की पाँच अवस्थाओं में से एक । नाटक में अन्य उपायों को छोड़ एक ही उपाय से फलप्राप्ति का निश्चय । जैसे, किसी का यह कहना कि भव तो ईश्वर को छोड़ और कोई उपाय नहीं है, वे अवश्य फल देंगे (साहित्यदर्पण) ।

नियति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नियत होने का भाव । बंधन । बद्ध होने का भाव । २. ठहराव । स्थिरता । मुकर्ररी । ३. भाग्य । देव । मरुट । ४. बंधो हुई बात । अवश्य होनेवाली बात । ५. पूर्वकृत कर्म का परिणाम जिसका होना निश्चित होता है । ६. आत्मसमय (को०) । ७. जड़ । प्रकृति (जैन) ।

यौ०—नियतिनटी ।

नियतिवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नियति+वाद] नियति या भाग्य को प्रमुख माननेवाला सिद्धांत । भाग्य पर निर्भर रहनेवाला मत [को०] ।

नियतिवादी—वि० [सं० नियतिवादिन्] नियति या भाग्यवाद का सिद्धांत माननेवाला [को०] ।

नियती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा । भगवती ।

नियतेन्द्रिय—वि० [सं० नियतेन्द्रिय] इंद्रियों को वश में करनेवाला । जितेंद्रिय ।

नियम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विधि या निश्चय के अनुसार प्रतिबन्ध । परिमिति । रोक । पाबंदी । नियन्त्रण । जैसे,—तुम कोई काम नियम से नहीं करते ।

क्रि० प्र०—करना ।—बांधना ।

विशेष—जैनग्रंथों में चौदह वस्तुओं के परिमाण बाँधने को नियम कहा है—जैसे, द्रव्यनियम, विनयनियम, उपानहनियम, ताबूल-नियम, आहारनियम, वस्त्रनियम, पुष्पनियम, वाहननियम, शय्यानियम इत्यादि ।

२. दवाव । शासन । ३. वंशा ह्रस्वा क्रम । चला आता ह्रस्वा विधान । परपरा । दस्तूर । जैसे,—(को०) यहाँ तक आने का उनका नित्य का नियम है । (ल) सवेरे उठने का नियम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

४ ठहराई हुई रीति । विधि । व्यवस्था । पद्धति । कायदा । कानून । ज्ञान्ता । जैसे, ब्रह्मचर्य के नियम, व्यवहार के नियम, प्रकृति के नियम ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाँधना ।—होना ।

मुहा०—नियम का पालन = नियम के अनुकूल व्यवहार । कायदे की पाबंदी । नियम का भग = नियम के प्रतिकूल आचरण ।

५. ऐसी बात का निर्धारण जिसके होने पर दूसरी बात का होना निर्भर किया गया हो । शर्त । जैसे,—दानपत्र के नियम बहुत कड़े हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

६ किसी बात को बराबर करते रहने का संकल्प । प्रतिज्ञा । व्रत । जैसे,—प्राज्ञ से यह नियम कर लो कि गूठ न बोलेंगे । विशेष—योग के प्राठ भंगों में एक नियम भी है । शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है । शौच दो प्रकार का होता है—बाह्य और आन्तरिक । जल, मिट्टी आदि से शरीर को साफ रखना बाह्य शौच है । कण्ठा, मैत्री, भक्ति आदि सात्विक वृत्तियों को धारण करना आन्तरिक शौच है । आवश्यक से अधिक की इच्छा न करना ही संतोष है । तप से अप्रामाद है गरमी सरदी सहना, धर्मशास्त्रों में लिखे हुए 'कृच्छ्र चांद्रायण' आदि व्रतों का करना । सब कामों को ईश्वर के नाम पर (ईश्वरार्पण) करना ईश्वरप्रणिधान है । याज्ञवल्क्य स्मृति में दस नियम गिनाए गए हैं—स्नान, मोन, उपवास, यज्ञ-वेदपाठ, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अक्रोध और अप्रमाद ।

जैनशास्त्र में गृहस्थधर्म के अंतर्गत १२ प्रकार के नियम कहे गए हैं—प्राणतिपात विरमण, मृषावाद विरमण, मदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, दिग्भ्रत, भोगोप भोग नियम, धनार्थ दहनिषेध, सामयिक शिक्षाव्रत, देशाव-काशिक शिक्षाव्रत, शौषध और अतिथि सविभाग ।

७. एक अपालकार जिसमें किसी बात का एक ही स्थान पर नियम कर दिया जाय अर्थात् उसका होना एक ही स्थान पर बतलाया जाय । जैसे,—हो तुम ही कलिकाल में गुलगाहक नरराय । ८ विष्णु । ९ महादेव । १० अप्राप्त भण की पूरक विधि (को०) । ११ कवियों की एक वर्णनपद्धति (को०) । १२. सक्षण ।

नियमसंज्ञ—वि० [सं० नियमसंज्ञ] नियमों से बाँधा हुआ । नियमों के अधीन ।

नियमन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० नियमित, नियम्य] १ नियमबद्ध करने का काय । कायदा बाँधना । २ शासन । ३. दमन । निग्रह (को०) । ४. किसी के लिये वह विधान जिससे उसके सिवा अन्य का वारण हो सके (को०) ।

नियमनिष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नियमों का तत्परतापूर्वक पालन (को०) ।

नियमपत्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] प्रतिज्ञापत्र । शर्तनामा ।

नियमपर—वि० [सं०] नियमानुवर्ती । नियमाधीन ।

नियमबद्ध—वि० [सं०] नियमों से बाँधा हुआ । नियमों के अनुकूल । कायदे का पाबंद ।

नियमवली—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म नियमित रूप से होता हो (को०) ।

नियमसेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] क्वार सुदी एकादशी से लेकर कार्तिक के अंत तक की जानेवाली विष्णु की उपासना (को०) ।

विशेष—इसी प्रकार माषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक पर्यंत चातुर्मास्य नियमसेवा का विधान है ।

नियमस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या ।

नियमावली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नियम + अवली] किसी सस्या के सबंध में नियमों का संग्रह ।

नियमित—वि० [सं०] १, बाँधा हुआ । क्रमबद्ध । २. नियमों के अंतर्गत लाया हुआ । नियमबद्ध । बाकायदा । कायदे कानून के मुताबिक ।

नियमी—सञ्ज्ञा पु० [सं० नियमिन्] नियमपालन करनेवाला ।

नियम्य—वि० [सं०] १ नियमित करने योग्य । नियमों से बाँधने योग्य । प्रतिबद्ध होने योग्य । २ शासित होने योग्य । रोके या दबाए जाने योग्य ।

नियरी—अव्य० [सं० निकट, प्रा० निग्रह, तुल० घ० नियर] समीप । पास । नजदीक ।

नियरीई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नियराना] निकटता । सामीप्य ।

नियराना—कि० घ० [हि० नियर से नामिक धातु] निकट पहुँचना । पास होना । नजदीक आना या जाना । उ०—प्रागे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यभृक पर्वत नियरीई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नियरी—अव्य० [सं० निकटे से हि०] दे० 'नियर' ।

नियरी—वि० [सं० न्यायिन्] दे० 'न्यायी' । उ०—साधो मन कुँजडी नीक नियरी ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८ ।

नियाज—सञ्ज्ञा पु० [फ़ा० नियाज] १ इच्छा । कांक्षा । २. प्रयोजन । जरूरत । ३ मुलाकात । साक्षात् । भेंट । ४ प्रार्थना । निवेदन । ५ प्रसाद । चढ़ावा । उ०—निवाजे जिसे पाये साहब नियाज ।

मुहा०—नियाज हासिल करना = (श्रद्धास्पद का) दर्शन होना ।

यौ०—नियाजमद = जरूरतमद । कुछ चाहनेवाला ।

नियातन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'नियामन' (को०) ।

नियान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निदान] प्रत । परिणाम ।

नियान^२—प्रत्यय० प्रत में । आखिर । उ०—(क) भगिनि उठै जरि वृक्षे नियाना । घुषाँ उठा उठि बीच विलाना ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कोउ काहू का नाहि नियाना । मया मोह बाँधा उरझाना ।—जायसी (शब्द०) ।

नियान^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोष्ठ [को०] ।

नियाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नियम ।

नियामक—वि० सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [लो० नियामिका] १ नियम करनेवाला । नियम या कायदा बाँधनेवाला । २ व्यवस्था करनेवाला । विधान करनेवाला । प्रवध करनेवाला । ३ मारनेवाला । ४ पोतवाह । माझी । मल्लाह । ५ सारथि । रथ हाँकने वाला (को०) ।

नियामकगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रसायन में पारे को मारनेवाली श्लेषधियो का समूह ।

विशेष—सर्पाक्षी, बनककड़ी, सतावर, शस्त्राहली, सरफोका, पुनर्नवा (गदहपुर्ना), मूसाकानी, मत्स्याक्षी, ब्रह्मदंडी, शिल्लडिनी (घुँघुची), अन्नता, काकजघा, काकमाची, पोतिक (पोई का साग), विष्णुक्राता, पीली कटसरैया, सहदेइया, महाबला, बला, नागबला, मूर्वा, चकवैड, करज (कजा), पाठा, नील, गोजिह्वा इत्यादि ।

नियामत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० नेमत] १ अलभ्य पदार्थ । दुर्लभ पदार्थ । २ स्वादिष्ट भोजन । उत्तम अन्न । मजेदार खाना । ३ धन । दौलत । माल ।

नियामिका—वि० स्त्री० [सं०] नियम करनेवाली । दे० 'नियामक' ।

नियार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० न्यारा ?] जोहरी या सुनारो की दुकान का कूड़ा कतवार ।

नियारना—क्रि० सं० [सं० निवारण] दे० 'निवारना' ।

नियारा^१—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निन्निमड] [वि० स्त्री० नियारी] अलग । जुदा । दूर । उ०—म्राज नेह सो होइ नियारा । म्राज प्रेम संग चला पियारा ।—जायसी (शब्द०) ।

नियारा^२—सञ्ज्ञा पुं० सुनारो या जोहरियो के यहाँ का कूड़ा करकट ।

नियारिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नियारा, न्यारा] १ मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करनेवाला । २ सुनारों या जोहरियो की राख, कूड़ा करकट आदि में से माल निकालनेवाला । ३ चतुर मनुष्य । चालाक आदमी ।

नियारे^१—प्रत्यय० [हि०] दे० 'न्यारे' ।

नियाव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याय', 'न्याय' ।

नियासा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निराशा, प्रा० निमासा, नियासा] दे० 'निराशा' । उ०—धृक जीवन जेहि कत नियासा । मरे वियोगिन दरस के मासा ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २३८ ।

नियुक्त—वि० [सं०] १ नियोजित । लगाया हुआ । २. (किसी काम में) लगाया हुआ । जोटा हुआ । तैनात । मुकर्रर । ३. तत्पर किया हुआ । प्रेरित । ४. स्थिर किया हुआ । ठहराया हुआ ।

४. नियोग करनेवाला । जिससे नियोग कराया जाय (को०) ।

५. किसी पद या कार्य के लिये तैनात ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नियुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मुकर्ररी । तैनाती ।

नियुत्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु का प्रभु । (वैदिक) ।

नियुत^१—वि० [सं०] १ एक लाख । लक्ष । २. दस लाख ।

नियुत^२—सञ्ज्ञा पुं० १. एक लाख की संख्या । २. दस लक्ष की संख्या ।

नियुत्वत्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

नियुद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाह्ययुद्ध । हाथावाही । कुश्ती ।

नियोक्तव्य—वि० [सं०] नियोजित करने योग्य ।

नियोक्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नियोक्तृ] १. नियोजित करनेवाला । लगानेवाला । २. नियोग करनेवाला ।

नियोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नियोजित करने का कार्य । किसी काम में लगाना । तैनाती । मुकर्ररी । २. प्रेरणा । ३. प्रवधारण । ४. मनु के अनुसार प्राचीन आर्यों की एक प्रथा जिसके अनुसार यदि किसी स्त्री का पति न हो तो या उसे अपने पति से सत्तान न होती हो तो वह अपने देवर या पति के भौर किसी गोत्रज से सत्तान उत्पन्न करा लेती थी । पर कलि में यह रीति वर्जित है । ५. आज्ञा । ६. निश्चय । ७. वह प्रापत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इसी एक उपाय से यह प्रापत्ति दूर होगी, दूसरे से नहीं । (कौटि०) ।

नियोगी^१—वि० [सं०] १ जो नियोजित किया गया हो । जो लगाया या मुकर्रर किया गया हो । २ जो किसी स्त्री के साथ नियोग करे ।

नियोगी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ अधिकारी । २. बगालियो की जातिगत एक उपाधि या मल्ल ।

नियोग्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रभु । स्वामी (को०) ।

नियोजक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नियोजित करनेवाला । काम में लगानेवाला । मुकर्रर करनेवाला ।

नियोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० नियोजित, नियोज्य, नियुक्त] १ किसी काम में लगाना । तैनात या मुकर्रर करना । प्रेरणा । २ स्थिर करना । एक सीमा में, जो अधिक या अत्यंत कम न हो, ठहराना । सीमित करना । जैसे, परिवार नियोजन ।

नियोजित—वि० [सं०] नियुक्त किया हुआ । लगाया हुआ । मुकर्रर । तैनात ।

नियोक्तव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका नियोजन किया जाय । कर्मचारी (को०) ।

नियोद्धा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मल्ल योद्धा । कुश्ती लड़नेवाला पहलवान ।

निरु—प्रत्यय० [सं०] दे० 'निरु' ।

निराकार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निराकार] दे० 'निराकार' ।

निरंकुश—वि० [सं० निरंकुश] जिसके लिये कोई प्रकुश या प्रतिबध न हो । जिसपर कोई दबाव न हो । जिसके लिये कोई रोक या बधन हो । बिना बर दाब का । बेकहा । स्वेच्छापारी । सं०—निपट निरंकुश प्रयुष असक्त ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरंकुशता—सद्या श्री० [सं० निरङ्कुश + ता (प्रत्य०)] अनियन्त्रण ।
अराजकता । वदइतजामी । स्वेच्छाचारिता ।

निरंग^१—वि० [सं० निरङ्ग] अग्राहित । २ केवल । खाली ।
जिसमें कुछ न हो । जैसे,—यह दूध निरंग पानी है । ३
रूपक प्रलकार का एक भेद ।

विशेष—रूपक दो प्रकार का होता है—एक अभेद दूसरा
तादृश्य । अभेद रूपक भी तीन प्रकार का होता है—सम,
अधिक और न्यून । इनमें से 'सम अभेद रूपक' के तीन भेद
हैं—सग या सावयव, निरग या निरवयव और परपरित ।
जहाँ उपमेय में उपमान का इस प्रकार आरोप होता है कि
उपमान के और सब भग नहीं पाते यहाँ निरवयव या निरग
रूपक होता है—जैसे, 'रेन न नींद न चैन हिए छिनहुँ घर मे
कछु और न भावै । सीचन को अब प्रेमलता यहि के हिय काम
प्रवेश लखावै' । यहाँ प्रेम मे केवल लता का आरोप है उसके
और अगों या सामग्रियों का कथन नहीं है । निरग या
निरवयव रूपक भी दो प्रकार का होता है—शुद्ध और माला-
कार । ऊपर जो उदाहरण है वह शुद्ध निरवयव का है
क्योंकि उसमें एक उपमेय मे एक ही उपमान का (प्रेम में
लता का) आरोप हुआ है । मालाकार निरवयव वह है
जिसमें एक उपमेय में बहुत से उपमानों का आरोप हो—जैसे,
'भँवर सँदेह की भल्लेह आपरत, यह गेहूँ त्यों अनम्रता की
देह दुति हारी है । दोष की निधान, कोटि कपट प्रधान जामें,
मान न विश्वास इम ज्ञान की कुठारी है । कहे तोप हरि
स्वगंदार की विघन धार, नरक अपार की विचार अधिकारी
है । भारी भयकारी यह पाप की पिठारी नारी क्यों करि
विचारो याहि भाखै मुख प्यारी है ।

यहाँ एक स्त्री उपमेय में सँदेह का भँवर, अविनय का घर, इत्यादि
बहुत से आरोप किए गए हैं ।

निरंग^२—वि० [हि० उप० नि (= नहीं) + रण] १ बेरग । बद-
रग । विवरण । २ फीका । उदास । बेरोनक । उ०—सो घनि
पान चून भई चोली । रग रगील, निरग भई डोली ।—
जायसी (शब्द०) ।

निरंजन^१—वि० [सं० निरञ्जन] १ अजन रहित । बिना काजल
का । जैसे, निरंजन नेत्र । २ कल्मषशून्य । दोषरहित । ३
माया से निर्लिप्त (ईश्वर का एक विशेषण) । ४ सादा ।
बिना अंजन आदि का ।

निरंजन^२—सद्या पु० १ परमात्मा । २ महादेव ।

निरंजना—सद्या श्री० [सं० निरञ्जना] १ पूणिमा । २ दुर्गा का
एक नाम ।

निरंजनी—सद्या श्री० [सं० निरञ्जनी] १ साधुओं का एक
संप्रदाय ।

विशेष—कहते हैं, इस संप्रदाय के प्रवर्तक कोई निरानंद
स्वामी थे । उन्होंने निरंजन, निराकार ईश्वर की उपासना
चलाई थी, इससे उनके संप्रदाय को निरंजनी संप्रदाय कहने
लगे । किंतु आजकल निरंजनी साधु रामानंद के मतानुसार

साकार उपासना ग्रहण करके उदासी वैष्णवों में हो गए हैं ।
ये कीरीन पहनते तथा तिलक और कठो धारण करते हैं ।
मारवाड में इनके अखाड़े बहुत हैं ।

निरंतर^१—वि० [सं० निरन्तर] १ अंतररहित । जिसमें या जिसके
बीच अंतर या फासला न हो । जो बराबर चला गया हो ।
अविच्छिन्न (देश के संबंध में) । २. निविड । घना ।
गम्भिर । ३ जिसकी परंपरा खंडित न हो । अविच्छिन्न ।
लगातार होनेवाला । बराबर होनेवाला । जैसे, निरंतर
प्रवाह (काल के संबंध में) । ४ सदा रहनेवाला । बराबर
बना रहनेवाला । स्थायी । जैसे, निरंतर नियम, निरंतर प्रेम ।
५ जिसमें भेद या अंतर न हो । जो समान या एक ही हो ।
६ जो अतर्धान न हो । जो दृष्टि से ओझल न हो ।

निरंतर^२—क्रि० वि० लगातार । बराबर । सदा । हमेशा । जैसे,—
उन्नति निरंतर होती आ रही है ।

निरंतरता—सद्या श्री० [सं० निरन्तर + ता] क्रम, गति या प्रवाह
का लगातार चलने रहने का भाव । सातत्य ।

निरंतराभ्यास—सद्या पु० [सं० निरन्तराभ्यास] अनवरत चलने-
वाला किसी कार्य, पाठ या अध्ययन आदि का क्रम । स्वाध्याय
[को०] ।

निरंतराल—वि० [सं० निरन्तराल] १ अंतरालरहित । व्यवधान-
विहीन । घना । २ तग । सक्तीय [को०] ।

निरत्र(पुं०)—वि० [सं० निरन्तर] ६० 'निरतर' । उ०—देहि मसीस
सखी हित प्यासी । रमा निरत्र रहे तोहि दासी ।—इंद्रा०,
पु० १६६ ।

निरध^१—वि० [सं० निरन्ध (= जिससे बढ़कर अधा न हो)] १.
भारी अधा । २ महामूर्ख । ज्ञानशून्य । उ०—जाका गुह है
अधरा चेला खरा निरध । अधे को अधा मिला परा काल के
फद ।—कबीर (शब्द०) । ३. बहुत अधेरा । उ०—अध ज्यो
अधनि साथ निरध कुआँ परिहूँ न हिए पछितानो ।—केशव
(शब्द०) ।

निरध^२—वि० [सं० निरन्धस्] बिना अन्न का । निरन्न ।

निरधु—सद्या पु० [सं० निरन्धु] ६० 'निरधु' ।

निरवकारी—वि० [सं० निर्विकार] ६० 'निर्विकार' । उ०—
अति निरलव अति निरवकारी, महा निराश महा निराधारी ।
प्राण०, पु० ७४ ।

निरंवर—वि० [सं०] वस्त्ररहित । दिगंबर । नगा [को०] ।

निरंबु—वि० [सं० निरम्बु] १ निर्जल । बिना पानी का । २ जो
जल न पिए । जो बिना पानी के रहे । ३ जिसमें बिना जल
के रहना पड़े । जैसे, निरंबु व्रत । उ०—व्रत निरंबु तेहि दिन
प्रभु कीन्हा । मुनिहु कहेँ जल काहु न लीन्हा ।—मानस,
२ । २४६ ।

निरभ—वि० [सं० निरभस्] १ निर्जल । २ जो पानी न पिए ।
बिना पानी पिए रह जानेवाला । उ०—प्रात अरन की खभ
लगी निरदभ निरभ सँभारे न साहुनि ।—देव (शब्द०) ।

निरंश—वि० [सं०] १. जिसे उसका भाग न मिला हो।

विशेष—स्पृतियों में लिखा है कि पतित, क्लीब आदि निरंश हैं, इन्हे सपत्ति का भाग न मिलना चाहिए।

२. बिना प्रकाश का।

निरंश^२—संज्ञा पुं० राशि के भोगकाल का प्रथम और शेष दिन। संक्रांति।

निरस^३—वि० [सं० निरस] १. अप्रारहित। विभागरहित। २. प्रकाश रहित। ३. जिसे अपना प्राप्य भाग न मिला हो। उ०—शेष सहस्र फन नापि ज्यो सुरपति करे निरंस। अग्नि-पान कियो सावरे कहा बापुरो कस।—सुर (शब्द०)।

निरञ्जन^४—संज्ञा पुं० [सं० निरञ्जन] दे० 'निरञ्जन'। उ०—हरिया बाल न घृद्ध ऊ ना तरणाऊ तन्। निरालंब सुन में रमै निराकार निरञ्जन।—राम० धर्म०, पृ० ९१।

निरञ्जक^५—वि० [हि० निर+सं० मञ्ज] बिना रूप रेश वाला। प्ररूप। बिना चिह्नवाला। उ०—निरकार निरञ्जक निरञ्जन निर्विकार निरलस।—केशव० प्रमो०, पृ० ४।

निरञ्जकुस^६—वि० [सं० निरञ्जकुस] दे० 'निरञ्जकुस'। उ०—निरञ्जकुस मति निडर, रसिक जस झरना गायो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४१८।

निरकल्प^७—वि० [सं० निर + कल्प] कल्पनारहित। उ०—करम उपाइ बोहोत करि देखे, मति निरकल्प तृपति नहि पाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८२।

निरकेवला^८—वि० [सं० निर + केवल] १. खाली। खालिस। बिना मेल का। २. स्वच्छ। साफ।

निरक्षदेश—संज्ञा पुं० [सं०] भूमध्य रेखा के आसपास के देश जिनमें रात और दिन बराबर होते हैं।

विशेष—पूर्व में अक्षावर्ष और यमकोटि, दक्षिण में भारतवर्ष और लका, पश्चिम में केतुमालवर्ष, रोमक, उत्तर कुश और सिद्धपुरी निरक्ष देश कहे गए हैं। (सूर्यसिद्धांत)।

निरक्षण^९—संज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण'। उ०—होत विलक्षण यम विदेह की जात निरक्षण अपने प्रजन।—रघुराज (शब्द०)।

निरक्षर^{१०}—वि० [सं०] १. अक्षरशून्य। २. जिसने एक अक्षर भी न पढ़ा हो। अनपढ़। मूर्ख।

यौ०—निरक्षर भट्टाचार्य = पंडित बना हुआ मूर्ख।

निरक्षरता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरक्षर] अक्षरज्ञान का अभाव।

निरक्षरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाडोमडल। निरक्षवृत्त। क्रांतिवृत्त।

निरखना^{११}—क्रि० सं० [सं० निरीक्षण] देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहि गगन विमान।—तुलसी (शब्द०)।

निरग^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० नृग] दे० 'नृग'। (राजा)।

निरगुन^{१३}—वि०, संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण'। उ०—निलल नीच निरधन निरगुन कहे जग दूसरो न ठाकुर ठाउं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३६।

५-५१

निरगुनिया—वि० [हि० निरगुन + इया (प्रत्य०)] दे० 'निरगुनी'।

निरगुनी—वि० [सं०] निर्गुण या हि० (प्रत्य०) निर + गुणी] जिसमें गुण न हो या जो गुणी न हो। अनाड़ी। उ०—रंक निरगुनी नीच जितने निवारने हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४९।

२ निर्गुण ब्रह्म की उपासना करनेवाला।

निरग्नि—वि० [सं०] अग्निहोत्र न करनेवाला। जो श्रौत और स्मार्त विधि के अनुसार अग्निकर्म न करता हो।

निरध—वि० [सं०] निष्पाप। दोषरहित।

निरधिन^{१४}—वि० [सं० निर्धुण] १. क्रूर। कृपाहीन। २. प्रति धृष्ट। उ०—इहवा राजकुंवर सुख भोगी। हों परदेसी निरधिन जोगी।—चित्रा०, पृ० १७६।

निरधुन^{१५}—वि० [सं० निर्धुण] दे० 'निरधिन'। उ०—जदपि बास तव में अहैं जोर्वि दोसी नाथ। ये निरधुन कोतुक लखत तुम क्यों बाके साथ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३७।

निरधोष—संज्ञा पुं० [सं० निर्धोष] दे० 'निर्धोष'।

निरचू—वि० [सं० निश्चित] निश्चित। खासी। जिसे फुरसत मिल गई हो। जिसने छुट्टी पाई हो। उ०—इस काम से तो मैं निरचू हुई अब चलकर उस राजबि का वृत्तात देखूँ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

निरच्छ^{१६}—वि० [सं० निरक्षि] बिना आक्षि का। अघा।

निरच्छर—वि० [सं० निरक्षर] दे० 'निरक्षर'। उ०—बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।—मानस, ७। १००।

निरछेह^{१७}—वि० [हि० निर + छेह] बिना माया मोह का। बे-लगव। जिसे ममता या स्नेह न हो। उ०—दुई अक्षर का सकल पसारा यामें कीन सनेहा। एके लागि सकल जगमोहया एक रहा निरछेहा।—राम० धर्म०, पृ० १३५।

निरज—संज्ञा पुं० [सं०] रजोहीन। रजोगुण से रहित। निर्मल। उ०—मोहन दरस हियो अभिलाखै। रज की परस टगनि रज राखै।—घनानंद, पृ० २६१।

निरजन^{१८}—वि० [सं० निर्जन] दे० 'निर्जन'। उ०—निरजन जंगलो और पर्वतो के हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५।

निरजर^{१९}—वि० [सं० निर्जर] दे० 'निर्जर'। उ०—पसुपति प्रियहि प्रबोध करन निरजर गितनायक।—दीन० ग्रं०, पृ० ६१।

निरजर^{२०}—संज्ञा पुं० देवता। निर्जर।

निरजल—वि० [सं० निर्जल] [वि० स्त्री० निरजला]। दे० 'निर्जल'।

निरजास^{२१}—संज्ञा पुं० [सं० निर्पास] निचोड़। निर्पास। उ०—लहरी परम रस को निरजास। श्री ब्रज वृंदाविपिन विलास।—घनानंद, पृ० २३७।

निरजासु^{२२}—वि० [सं० नि + रजस्क] रजोहीन। शुद्ध। निर्मल।

निरजिउ^{२३}—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—मोन गंवाए गएठ बिमोहो। भा निरजिउ जित दोन्हेंहि मोहो।—पद्मावत, पृ० २७७।

निरजिव^{२४}—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—को चितवे को बोले कासों, निरजिव रूप कहूँ का रो।—कबीर श्रं०, भा० २, पृ० १०४।

निरजी—सखा खी० [देश०] संगतराशों की महीन टांकी जिससे सगममंर पर काम बनाया जाता है ।

निरजुरी—सखा पु० [सं० निजंर] दे० 'निजंर' । उ०—इधक अनु-
राग कर पुरष निरजुर छही ।—रघु० ७० पु० ५७ ।

निरजोस—सखा पु० [सं० निर्यास] १. निचोड़ । २. निरुण्य ।

निरजोसी—वि० [हि० निरजोस] १ निचोड़ निकालनेवाला ।
२ निरुण्य करनेवाला ।

निरजोसु—सखा पु० [हि० निरजोस] दे० 'निरजोस' । उ०—राम
तुम्हहि प्रिय तुम प्रिय रामहि । भेह निरजोसु दोसु बिधि
बामहि ।—मानस, २।२०० ।

निरम्बर—सखा पु० [सं० निम्बर] दे० 'निम्बर' ।

निरम्बरनी—सखा खी० [सं० निम्बरिणी] दे० 'निम्बरिणी' ।

निरम्बरी—सखा खी० [सं० निम्बरी] दे० 'निम्बरी' ।

निरत^१—वि० [सं०] १. किसी काम में लगा हुआ । तत्पर । लीन ।
गशगूल । २ प्रसन्न (को०) । ३ विभ्रात (को०) ।

निरत^२—सखा पु० [सं० नृत्य] दे० 'नृत्य' । उ०—बिन पग नटरा
निरत करत हैं, बिन कर बाजे ताल ।—घरम०, पु० ५६ ।

निरत^३—अभ्य [हि०] लगातार । प्रवर्त ।

निरत^४—सखा खी० [सं० निरति] दे० 'निरति' । उ०—अध ऊरध
विच सुरति समानी । निरक्षा सम्ब निरत मलगानी ।—घट०,
पु० १०८ ।

निरतना—क्रि० सं० [सं० नर्तन] नाचना । नृत्य करना ।

निरताना—क्रि० सं० [सं० निरति से नामिक पातु] निरति करना ।
निश्चित करना । स्थिर करना । उ०—उतपति कारण हम सब
पावा । वंश अश दुनो निरसावा ।—कबीर सा०, पु० ६०१ ।

निरति—सखा खी० [सं०] १ प्रत्यंत रति । अधिक प्रीति । २ लित
होने का भाव । लीन होने का भाव ।

निरतिशय^१—वि० [सं०] जिससे और प्रतिशय न हो सके । हृद
दरजे का ।

निरतिशय^२—सखा पु० परमेश्वर ।

निरत्य—वि० [सं० निरत्यं] दे० 'निरत्यं' ।

निरत्यय^१—वि० [सं०] १ बिना बाधा के । २ जिसमें कोई दोष न
हो । शुद्धिहित । हर प्रकार से सफल (को०) ।

निरत्यय^२—सखा पु० रोक या बाधा का अभाव (को०)

निरथाना—क्रि० प्र० [हि० निर+अरथाना] निश्चय करना ।
स्थिर करना या होवा । निर्धारण करना । उ०—गगन मदिल
बलि थिर ह्वै रहिए, तकि छबि छकि निरथाई ।—जग० श०,
पु० ७६ ।

निरथु^१—वि० [सं० निरथक] बेकार । निष्प्रयोजन । निरथक ।
उ०—देह विलोईर्ष निकले तयु । अस मयोर्ष जल देखु
निरथु ।—प्राण०, पु० २६४ ।

निरदई—वि० [सं० निदंयी, निरदई] दे० 'निदंय' । उ०—यो
दलमलियतु निरदई दई कुसुम सी पातु । कर धरि देखी, घर-
धरा उर की अजों न जातु ।—बिहारी र०, दो० ६५१ ।

निरदय—वि० [सं० निदंय] दे० 'निदंय' ।

निरदाइ—वि० [हि० निरदई] दे० 'निदंय' । उ०—वे निरदाइ
न दाया करही । जीना सबे सपन करि देही ।—हिंदी प्रेम०,
पु० २३६ ।

निरदाग—वि० [हि० निर+अ० दाग] वेदाग । बिना धन्ने
का । प्रछूता । उ०—जग से रहें उदासी बासी मोह माया
निरदाग ।—सत तुरसी०, पु० २१४ ।

निरदाव—वि० [हि० निर+दाव] बिना दाव के । बिना
अवसर के । उ०—जहाँ गोरख जहाँ जान गरीबो दुद बाद
नहीं कोई । निसप्रेही निरदावे बेलें गोरख कहीये सोई ।—
गोरख०, पु० ६५ ।

निरदुंद—वि० [सं० निदुंद] दे० 'निदुंद' । उ०—निरदुंद रहो
गहो सोई मारग जो जेही घाट उतार ।—सत तुरसी०,
पु० २१६ ।

निरदुंदो—वि० [सं० निर+दुंदिम्] दे० 'निदुंद' । उ०—निर-
दुंदी को मुक्ति है, निरसोभी निर्बान ।—कबीर सा०सं०,
पु० ३७ ।

निरदोखी—वि० [सं० निदोख] दे० 'निदोख' । उ०—का में
कीन्ह जो काया पोखी । दूखन मोहि आपु निरदोखी ।—
जायसी ग्रं०, पु० २५८ ।

निरदोषी—वि० [सं० निदोष] दे० 'निदोष' । उ०—भृगुनदन
सुनिये मन मंह गुनिये रघुनदन निरदोषी ।—केशव (शब्द०) ।

निरधन—वि० [सं० निर्धन] दे० 'निर्धन' । उ०—छिन ही में
धन होत होत छिनही में निरधन ।—ब्रज० ग्रं०, पु० १२७ ।

निरधातु—वि० [सं० निर्धातु] वीर्यहीन । शक्तिहीन । अशक्त । उ०—
धातु कमाय सिखे तू जोगी । अब कस अस निरधातु वियोगी ।
—जायसी (शब्द०) ।

निरधार^१—सखा [सं० निर्धारण] निश्चय करने या ठहराने
का कार्य ।

निरधार^२—वि० अवश्यमेव । निश्चयपूर्वक ।

निरधार^३—वि० [सं० निराधार] आधारविहीन । आधाररहित ।

निरधारना—क्रि० सं० [सं० निर्धारण] १ निश्चय करना ।
ठहराना । स्थिर करना । २ मन में धारण करना । सम-
झना । उ०—एक एक नग देखि अनेकन सङ्गन वारिय ।
बसत मनहु सिमुमार चक्र तन इमि निरधारिय ।—गोपाल
(शब्द०) ।

निरधिष्ठान—वि० [सं०] १ निराधार । बिना सहारा । २ स्वतन्त्र
(को०) ।

निरनय—सखा पु० [सं० निरुण्य] दे० 'निरुण्य' । उ०—होत
पक्षमी के दिन निरनय इन कलान को ।—प्रेमचन०, पु० २८ ।

निरना—वि० [हि०] दे० 'निरन्ता' ।

निरनुकोश^१—वि० [सं०] दयाहीन । क्रूर हृदयवाला (को०) ।

निरनुकोश^२—सखा पु० दयाहीनता । निष्ठुरता । क्रूरता (को०) ।

निरनुग—वि० [सं०] जिसका कोई अनुपमन करनेवाला न हो (को०) ।

निरनुग्रह—वि० [सं०] अनुदार । निष्ठुर [को०] ।

निरनुनासिक—वि० [सं०] जिसका उच्चारण नाक के संबंध से न हो । जैसे, निरनुनासिक वर्ण ।

विशेष—वर्णमात्रा के प्रत्येक वर्ण के अंतिम वर्ण और अनुस्वार को छोड़कर शेष सभी वर्ण निरनुनासिक हैं ।

निरनुबंध^१—संज्ञा पुं० [सं० निरनुबन्ध] अर्थ का एक भेद । वह सिद्धि या सफलता जिससे अपना लाभ भावश्यक न हो । दत्त या अनुग्रह द्वारा किसी उदासीन का अर्थ सिद्ध करना (कोटि०) ।

निरनुबंध^२—वि० बिना अनुबंध का बिना करार या शर्तनामा का ।

निरनुयोष्य—वि० [सं०] निर्दोष । त्रुटिरहित [को०] ।

निरनुरोध—वि० [सं०] १. अमैत्रीपूर्ण । अस्निग्ध । विप्रिय [को०] ।

निरनुयोज्यानुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक निग्रहस्थान । दे० 'निग्रहस्थान' ।

निरनै^१—संज्ञा पुं० [सं० निरुण्य] दे० 'निरुण्य' । उ०—भातपत्र को चिह्न जोह ब्रह्मलोक से जान । येहि विधि श्रुति निरनै करत चरन चिह्न परमान ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १८ ।

निरन्त—वि० [सं०] १. अन्तरहित । बिना अन्त का । २. निराहार । जो अन्त न खाए हो । जैसे,—उस दिन वह निरन्त रह गया ।

निरन्ता—वि० [सं० निरन्त] जो अन्त न खाए हो । निराहार ।

मुहा०—निरन्ते मुँह = बिना मुँह में अन्त डाले । बिना कुछ खाए । बासी मुँह । जैसे,—यह दवा निरन्ते मुँह पानी चाहिए ।

निरन्वय—वि० [सं०] १. सतानहीन । २. अयुक्त । असंबद्ध । ३. सदर्भविरुद्ध । अप्रासंगिक । जैसे,—वाक्य में कोई शब्द । ४. तर्कविरुद्ध । अयुक्तियुक्त । ५. दृष्टि से परे । नजर से दूर । ६. असंग । बिना सगी साथी का । ७. सहसा । अनपेक्षित । ८. निश्चिह्न । सपूर्ण लोप [को०] ।

निरपख^१—वि० [सं० निष्पक्ष हिं०, निर + पख] दे० 'निष्पक्ष' । उ०—सोई निरपख होइगा, जाके नाँव निरंजन होइ ।—दादू, पृ० ३१६ ।

निरपच्छो^१—वि० [सं० निष्पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' । उ०—निरपच्छो को भक्ति है निरमोही को ज्ञान ।—कबीर सा० सं०, पृ० ३७ ।

निरपत्रप—वि० [सं०] १. निर्लज्ज । बेधर्म । २. घृष्ट । ढीठ [को०] ।

निरपना—वि० [सं० उप० निर, निर + हिं० अपना] १. जो अपना न हो । जो आत्मीय न हो । २. बिराना । गैर । बेगाना । उ०—जानकी जीवन । मेरे राखे बदन फेरे ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरपराध^१—वि० [सं०] अपराधरहित । बेकसूर । निर्दोष ।

निरपराध^२—क्रि० वि० बिना अपराध के । बिना कोई कसूर किए । जैसे,—तुमने उसे निरपराध मारा ।

निरपराधी^१—वि० [हिं०] दे० 'निरपराध' ।

निरपवर्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें भाजक के द्वारा भाग लगे । (गणित) ।

निरपवर्त^२—वि० [सं०] जिसका अपवर्त न हो सके । जिसका लोटना न हो सके [को०] ।

निरपवर्तन—वि० [सं०] दे० 'निरपवर्त' ।

निरपवाद—वि० [सं०] १. अपवादशून्य । जिसकी कोई बुराई न की जाय । २. निर्दोष । ३. जिसका कभी अन्वया न हो । जैसे निरपवाद नियम ।

निरपाय—वि० [सं०] जिसका विनाश न हो । जिसका विम्लेष न हो ।

निरपेक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसे किसी बात की अपेक्षा या चाह न हो । बेपरवा । २. जो किसी पर अवलंबित न हो । जो किसी पर निर्भर न हो । ३. जिसे कुछ लगाव न हो । अलग । तटस्थ ।

निरपेक्ष^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनादर । २. अवहेलना ।

निरपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपेक्षा या चाह का अभाव । २. लगाव का न होना । ३. अवज्ञा । परवा न होना । ४. निराशा ।

निरपेक्षित—वि० [सं०] १. जिसकी अपेक्षा या चाह न की गई हो । २. जिसके साथ लगाव न रखा गया हो ।

निरपेक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरपेक्षा] दे० 'निरपेक्षा' ।

निरपेक्षी—वि० [सं० निरपेक्षित] १. निरपेक्षा या चाह न रखनेवाला । २. लगाव न रखनेवाला ।

निरपेक्ष^३—वि० [हिं०] १. बिना पैच का । बिना उलझाव का । साफ साफ । सुस्पष्ट उ०—कहे दरिया निरपेक्ष निरबाव सर्वय गहू ज्ञान सनमुख ठाढ़े ।—सं० दरिया, पृ० ७३ ।

निरपेक्ष^४—वि० [सं० निरपेक्ष] दे० 'निरपेक्ष' । उ०—सु दर भजन सबै करहु नारायण निरपेक्ष ।—सु दर० प्र०, भा० २, पृ० ६७६ ।

निरबंध^१—संज्ञा पुं० [सं० निर + बन्ध] ईश्वर या परमात्मा (जो बंधनहीन है) । उ०—बंधे को बंधा मिले, छूटे कीन उपाय । कर सेवा निरबंध की, पक्ष में लैत छुड़ाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १४ ।

निरबंध^२—वि० उन्मुक्त । स्वतंत्र । बंधनहीन । उ०—भातमा कहत गुरु शुद्ध निरबंध नित्य, सत्य करि माने सु तो शब्द है प्रमाण है ।—सु दर० प्र०, भा० २, पृ० ६२५ ।

निरबंधन^१—वि० [निर + बन्ध] बंधनरहित । उ०—निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबंध होय । करम करे करता नहीं, दास कहावै सोय ।—कबीर सा० सं०, पृ० २१ ।

निरबंधी—वि० [सं० निबंध] जिसे बंध या संतान न हो ।

निरबंधी^२—संज्ञा पुं० [सं० निबंध] विरागी । त्यागी ।

निरबल^१—वि० [सं० निबल] दे० 'निबल' ।

निरबहना^१—क्रि० प्र० [सं० विबहना] विभना । चला चलना ।

निर्वाह करना। उ०—साते न तरनि ते, न घोरे सुधाकर हूँ
ते सहज समाधि निरबही है।—तुलसी (शब्द०) ।

निरघात०—वि० [सं० निर्वात] दे० 'निर्वात'। उ०—चद्रमुखी न
हुले न चले निरघात निवास में दीपसिखा सी।—मति० प्र०,
पृ० ३४३ ।

निरघान०—सङ्घा पु० [सं० निर्वाण] दे० 'निर्वाण' ।

निरघार०—सङ्घा पु० [हि० निरवार] दे० 'निरवार'। उ०—
तुम्हरे चरण मोर निरघारा। पकरि हाथ करिहो निस्तारा।
—घर०, पृ० २५१ ।

निरवाहना०—क्रि० सं० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना। निमाना।
चलाए चलना। उ०—देह लग्यो ढिग गेहूपति तऊ नेह निर-
वाहि। नीची झंखियनु ही इतै गई कनखियनु चाहि।
—विहारी (शब्द०) ।

निरविषी—सङ्घा श्री० [सं० निर्विषी] दे० 'निर्विषी' ।

निरवेरा०—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'निवेरा' ।

निरबोध०—वि० [सं० निर्बोध] बिना बोध का। मूख। उ०—
स्वारथपन आग्रह मलीनता लोभ काम अश्रु शोध। कामादिक
सब निरय धरम हैं तन मन के निरबोध।—भारतेंदु प्र०,
भा० २, पृ० ६५० ।

निरभय०—वि० [सं० निर्भय] दे० 'निर्भय' ।

निरभर०—वि० [सं० निर्भर] दे० 'निर्भर' ।

निरभाग०—वि० [हि०] बिना भाग का। बदकिस्मत। भाग्य-
हीन। प्रभागा। उ०—निरभाग पुरुष जित जात तित वैर
विपति अगनित सहित।—अज्ञ० प्र०, पृ० ७६ ।

निरभिभव—वि० [सं०] १. जिसका अभिभव या प्रपमान न हो
सके। २. जिसका अतिक्रमण न हो सके। प्रद्वितीय [को०] ।

निरभिमान—वि० [सं०] अहंकारशून्य। अभिमानरहित। २
चेतनारहित। सज्ञाशून्य [को०] ।

निरभिलाष—वि० [सं०] अभिलाषारहित। इच्छाशून्य।

निरभिसन्धान—सङ्घा पु० [सं० निरभिसन्धान] अभिसन्धान का
प्रभाव [को०] ।

निरभ्र—वि० [सं०] बिना बादल का। मेघशून्य जैसे, निरभ्र आकाश।

निरमत्सर०—वि० [सं० निर्मत्सर] बिना मत्सर का। उ०—
निरमत्सर जे सत तिनकि घूढामणि गोपी।—नंद० प्र०,
पृ० १७ ।

निरमना०—क्रि० सं० [सं० निर्माण] निर्माण करना। बनाना।
उ०—रूपरासि मनु विधि निरमई।—जायसी (शब्द०) ।

निरमर०—वि० [सं० निर्मल] दे० 'निर्मल'। उ०—(क) पद-
मिनि चाहि घाटि दुइ करा। और सबै गुन मोहि निरमरा।—
जायसी (शब्द०) । (ख) तिमिर गए जग निरमर देखा।—
जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २८८ ।

निरमर्ष—नि० [सं०] १. अमर्ष से रहित। क्रोधहीन। बीतराग।
निस्पृह। उदासीन [को०] ।

निरमल०—वि० [सं० निर्मल] [वि० श्री० निरमली] दे० 'निर्मल' ।

निरमली०—सङ्घा श्री० [सं० निर्मली] 'निर्मली' ।।

निरमसोर—सङ्घा पु० [दे०] एक भोवधि या जड़ी जितसे मफीम
के विष का प्रभाव दूर हो जाता है। यह पत्राव में हाती है।

निरमान०—सङ्घा पु० [सं० निर्माण] दे० 'निर्माण' ।

निरमाना०—क्रि० सं० [सं० निर्माण] बनाना। तैयार करना।
रचना।

निरमायल०—सङ्घा पु० [सं० निर्मात्य] दे० 'निर्मात्य' ।

निरमित्र^१—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो।

निरमित्र^२—सङ्घा पु० १. त्रिगर्तराज के एक पुत्र का नाम जो कुक्षेत्र
की लड़ाई में मारा गया था। २. चौथे पाटव नहुल के पुत्र
का नाम।

निरमूल०—वि० [सं० निर्मूल] दे० 'निर्मूल' ।

निरमूलना०—क्रि० सं० [सं० निर्मूलन] १. निर्मूल करना।
उखाड़ना। २. नष्ट करना।

निरमोल—वि० [सं० उप० निष, निर+हि० मोल] १. जिसका
मोल न हो। अनमोल। अमूल्य। २. बहुत बढ़िया।

निरमोलक०—वि० [हि० निरमोल+क (प्रत्य०)] दे० 'निर-
मोल'। उ०—नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा।
तू साहिब समरदय हम मल मुग के कीरा।—दादू०,
पृ० १०२ ।

निरमोलिका, ० निरमोलिका०—वि० [हि० निरमोल+इक
(प्रत्य०)] अनमोल। वेशकीमत। उ०—(क) निकटहि
निरमोलिक नग भैंसै। नैन हीन तिहि पावै कैसै।—नंद०
प्र०, पृ० १४४ । (ख) जीव अछित जीवन गया कहु किया ना
नोका। यहू हीरा निरमोलिका, कोड़ी पर बीका।—कबीर
प्र०, पृ० १४८ ।

निरमोली०—वि० [हि० निरमोल] दे० 'निरमोल'। उ०—
पहिरावति झकझोरि, वेसरि निरमोली है।—नंद प्र०,
पृ० ३८६ ।

निरमोह०—वि० [सं० निर्मोह] दे० 'निर्मोह'। उ०—अजर प्रभाव
सो नि स्वादो। नि कामो निरमोह अनादो।—कबीर सा०,
पृ० ३६३ ।

निरमोहड़ा—वि० [हि० निरमोह+ड़ा (प्रत्य०)] दे०
'निर्मोही'। उ०—आवो हरि निरमोहड़ा रे जानी यारी
प्रीति।—सतवाणी०, पृ० ७४ ।

निरमोही०—वि० [सं० निर्मोही] दे० 'निर्मोही' ।

निरय—सङ्घा पु० [सं०] नरक। दोखल।

निरयण—सङ्घा पु० [सं०] अथनरहित गणना। ज्योतिष में गणना की
एक रीति।

विशेष—सूर्य राशिचक्र में निरतर घूमता रहता है। उसके एक
वर्षकर पूरे होने को वर्ष कहते हैं। ज्योतिष की गणना के
लिये यह आवश्यक है कि सूर्य के भ्रमण का आरंभ किसी
स्थान से माना जाय। सूर्य के मार्ग में दो स्थान ऐसे पड़ते हैं
जिनपर उसके आने पर रात और दिन बराबर होते हैं।

इन दो स्थानों में से किसी स्थान से भ्रमण का आरम्भ माना जा सकता है। पर विपुवरेखा (सूर्य के मार्ग) के जिस स्थान पर सूर्य के जाने से दिनमान की वृद्धि होने लगती है उसे वास्तविक विपुवपद कहते हैं। इस स्थान से आरम्भ करके सूर्यमार्ग को ३६० अंशों में विभक्त करते हैं। प्रथम ३० अंशों को मेघ, द्वितीय को वृष इत्यादि मानकर राशिविभाग द्वारा जो लग्नस्फुट और ग्रहस्फुट गणना करते हैं उसे 'सायन' गणना कहते हैं।

पर गणना की एक दूसरी रीति भी है जो अधिक प्रचलित है। ज्योतिषगणना के आरम्भकाल में मेषराशिस्थित अश्विनी नक्षत्र में आरम्भ में दिन और रात्रिमान बराबर स्थिर हुआ था। पर नक्षत्रगण खसकता जाता है। अतः प्रतिवर्ष अश्विनी नक्षत्र विपुवरेखा से जहाँ खसका रहेगा वही से राशिवर्ग का आरम्भ और वर्ष का प्रथम दिन मानकर जो लग्नस्फुट गणना की जाती है उसे 'निरयण गणना' कहते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर पञ्चांग निरयण गणना के अनुसार बनाए जाते हैं। ज्योतिषियों में 'सायन' और 'निरयण' ये दो पक्ष बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। बहुत से विद्वानों की राय है कि सायन मत ही ठीक है।

निरर्थ^१—वि० [सं०] १ अर्थहीन। २ व्यर्थ। निष्फल।

निरर्थ^२—सञ्ज्ञा पुं० १. हानि। २. नासमझी [को०]।

निरर्थक—वि० [सं०] १ अर्थशून्य। बेमानी।

विशेष—निरर्थक वाक्य काव्य का एक दोष माना गया है (चंद्रालोक)।

२. न्याय में एक निग्रह स्थान। दे० 'निग्रहस्थान'। ३. निष्प्रयोजन। व्यर्थ। बिना मतलब का। ४. निष्फल। जिससे कोई कार्य सिद्ध न हो। बेफायदा।

निरवुद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

निरलंकार—वि० [सं० निर + अलंकार] अलंकारशून्य। सादा। उ०—अलंकमडल में यथा मुखचन्द्र निरलंकार।—गीतिका, पृ० २४।

निरलङ्कृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर + अलङ्कृति] काव्य में अलंकार या अलंकरण का न होना।

निरलस—वि० [सं०] जिसे आलस्य न हो। बिना आलस्य का [को०]।

निरवक^१—वि० [सं० निमल, हि० निरमर] शुद्ध। गिरा। केशल। खालिस। उ०—समुझ परी नहि रामकहानी। निरवक दूध कि सरवक पानी।—कबीर बी०, पृ० १७१।

निरवकाश—वि० [सं०] १ अवकाशरहित। जिसमें स्थान न हो। २. जिसे अवकाश न हो [को०]।

निरवग्रह—वि० [सं०] १ प्रतिवधरहित। स्वतंत्र। स्वच्छद। २ जो दूसरे की इच्छा पर न हो। ३. बिना विघ्न या बाधा का।

निरवच्छिन्न—क्रि० वि० [सं०] १ अनवच्छिन्न। जिसका सिलसिला न टूटे। २ निरंतर। लगातार। ३ विशुद्ध। निमल।

निरवद्य—वि० [सं०] [वि० औ० निरवद्या] १. जिसे कोई बुरा न कहे। अनिष्ट। निर्दोष। जिसमें कोई ऐश या बुराई न हो। २ ईश्वर का एक विशेषण (को०)।

निरवध^१—वि० [सं० निरवधि] दे० 'निरवधि'। उ०—निरवध बेह, अवधि अति प्रगटी मूरति सब सुखदाई।—नद० प्र०, पृ० ३४४।

निरवधि—वि० [सं०] १. अपार। असीम। बेहद। २ निरंतर। लगातार। बराबर। ३ सदा। सतत। हमेशा।

निरवयव—वि० [सं०] १ अंगों से रहित। निराकार। २ अभाज्य। जो बाँटा न जा सके (को०)।

निरवलंब—वि० [सं० निरवलम्ब] १. अवलंबहीन। आधाररहित। बिना सहारे का। २ निराश्रय। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जिसका कोई सहायक न हो।

निरवशेष—वि० [सं०] पूरा। समग्र। संपूर्ण [को०]।

निरवसाद—वि० [सं०] अवसाद से रहित। प्रसन्न [को०]।

निरवसित—वि० [सं०] जो ऊँचो जातियों से अलग हो। (चाँदास आदि) जिसके भोजन या स्पर्श से पात्र आदि अशुद्ध हो जायें।

निरवस्कृत—वि० [सं०] परिष्कृत। साफ किया हुआ।

निरवहानिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निरवहानिका'।

निरवहानिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीर।

निरवानां—क्रि० सं० [हि० निराना का प्रे० रूप] निराने का काम कराना।

निरवार^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निरवारना] १. निस्तार। छुटकारा। बचाव। उ०—यही सोच सब पगि रहै कहुँ नहीं निरवार। ब्रज भीतर नंदभवन में घर घर यहै विचार।—सूर (शब्द०)। २ छुड़ाने या सुलझाने का काम। ३ निबटेरा। फेंसला।

निरवार^२—वि० निश्चित। निश्चित। मुक्त। उ०—पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार।—पद०, पृ० ३।

निरवारना^१—क्रि० सं० [सं० निवारण] १ ठालना। रोकनेवाली वस्तु को हटाना। छेकने या बाधा ढालनेवाली वस्तु को दूर करना। उ०—भागे भागे लाल लता निरवारत, पाछे पाछे आवत नवल लाड़िली।—नददास (शब्द०)। २ वधन आदि खोलना। मुक्त करना। छुड़ाना। उ०—ये सुकुमार बहुत दुख पाए सुत कुबेर के तारों। सूरदास प्रभु कहत मनाहि मन कर वंघन निरवारों।—सूर (शब्द०)। ३. छोड़ना। त्यागना। फिनारे करना। उ०—राना देसपति लाजे, बापकुल रती जाति, मानि लीजे बात वेगि संग निरवारिए।—प्रियादास (शब्द०)। ४. गाँठ आदि छुड़ाना। सुलझाना। उ०—कबहूँ कान्हू आपने कर सों फेंसपास निरवारत।—सूर (शब्द०)। ५. निबटाना। निरुंय करना। ठे करना।

निरवाह^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवाह] दे० 'निवाह'।

निरविष^१—वि० [सं० निविष] दे० 'निविष'। उ०—शङ्ख मव

भुवंग यद् विष भरघां, निरविष वयो हो न होइ । दाहु मित्या
गुह गारडो, निरविष कीया सोइ ।—दाहू० पु० १५ ।

निरवेद^७—सषा पु० [सं० निर्वेद] दे० 'निर्वेद' । उ०—यद्
विचारि चहुमान के, मन उपज्यो निरवेद ।—हम्मीर०,
पु० ६४ ।

निरव्यय—वि० [सं०] शाश्वत । जिसका नाश न हो । अनश्वर
[को०] ।

निरशन^१—सषा पु० [सं०] भोजन का न करना । न खाने का भाव ।
सघन । उपवास ।

निरशन^२—वि० १ भोजनरहित । जिसने खाया न हो या जो न
खाय । २ जिसके मनुष्ठान में भोजन न किया जाय । जो
बिना कुछ खाए किया जाय । जैसे, निरशन व्रत ।

निरश्रि—वि० [सं०] जो बराबर हो । सम (कोटि०) ।

निरष्ट^१—वि० [सं०] निर्वाय । बेधम [को०] ।

निरष्ट^२—सषा पु० चौबीस साल का घोड़ा [को०] ।

निरसक^७—वि० [हि० निर+सक] दे० 'नि सक' ।

निरसध^७—वि० [हि० निर+सध] संघिरहित । एक समान ।
समरस । उ०—व्यापक अखंड एक रस निरसध जु ।—
सुंदर० प्र०, भा० १, पु० ५८८ ।

निरस—वि० [सं०] १ जिसमें रस न हो । रसविहीन । २ बिना
स्वाद का । बदजायका । फीका । ३ पसार । निस्तत्व । ४.
रागहीन । ५ रुखा सुखा । ६ जो भानद न दे । जिससे
भानद न मिले । ७. विरक्त । उ०—रे मन जग सों निरस
हैं सरस राम सों होइ । भलो सिखावन हेतु है निसि दिन
तुलसी तोहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरसन—सषा पु० [सं०] [वि० निरसनीय, निरस्य] १ फेंकना ।
दूर करना । हटाना । २ खारिज करना । रद करना । ३
निराकरण । परिहार । उ०—सांगतार्थं तहें करस मे कुँवर
चारि गोलच्छ । प्रतिग्रह फल निरसन हित दीने द्विजन
प्रतच्छ ।—रघुराज (शब्द०) । ४ निकालना । ५ धुक्का ।
६ नाश । ७ वध ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निरसना^७—क्रि० अ० [सं० निरस] रसशून्य होना । नोरस
उ०—परसे पे निरसे नहि ऐसे । कष्टनि पाइ कृष्णजन जैसे ।
—नंद० प्र०, पु० २८१ ।

निरसहाय^७—वि० [सं० निःसहाय] असहाय । उ०—इक
राह चाह खागो मसुर निरसहाय प्राकार नव ।—रा० ७०,
पु० २० ।

निरसा—सषा श्री० [सं०] नि श्रेणिका नाम की घास जो कोंकण
देश में होती है ।

निरस्त^१—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । छोड़ा हुआ (जैसे, घर) ।
२. त्याग किया हुआ । अलग किया हुआ । निकासी हुआ ।
दूर किया हुआ । ३ खारिज किया हुआ । रद किया हुआ ।
बिगाड़ा हुआ । निराकृत । ४ वर्जित । रहित । ५. धुक्का

हुमा । उगला हुआ । ४ मुँह से अस्पष्ट रूप से जल्दी जल्दी
बोला हुआ । शीघ्र उच्चारित (वाक्य आदि) ।

निरस्त^२—सषा पु० १ फेंकना । फेंकने की क्रिया । २ फेंका हुआ
घर । ३ परित्याग । त्याग । ४ अस्वीकरण । ५ शीघ्र
कथन या उच्चारण [को०] ।

निरस्ति^७—सषा श्री० [हि० निर(=नही) + सं० अस्ति] अस्तित्व
का अभाव । नास्ति । उ०—मापु मापु चेते नहीं, कहें तो
बसुभा होय । कहहि कबीर जो स्वप्ने, निरस्ति अस्ति न
होय ।—कबीर बी० (शिशु०), पु० २६६ ।

निरस्त्र—वि० [सं०] अस्त्रहीन । बिना हथियार का ।

निस्थि—वि० [सं०] जिसमें हड्डी न हो । बिना हड्डी का । [को०] ।

निरस्य—वि० [सं०] निरसन के योग्य ।

निरहंकार—वि० [सं० निरहङ्कार] अभिमान ते रहित ।

निरहंकृत—वि० [सं० निरहङ्कृत] दे० 'निरहंकार' ।

निरहकृति—वि० [सं० निरहङ्कृति] दे० 'निरहंकार' ।

निरहम्—वि० [सं०] अहंभावशून्य । अहंकाररहित ।

निरहेतु—वि० [सं० निहेतु] दे० 'निहेतु' ।

निरहेता—वि० [सं० हेतु] अनादित । तुच्छ । जिसकी कोई कदर
न हो ।

निरात्र—वि० [सं० निरात्र] १ अंतर्दोषविहीन । जिसके अंत न
हो । २ जिसकी अंतर्दृष्टि बाहर झूल रही हो [को०] ।

निरा—वि० [सं० निरालय, पू० हि० निराख] [वि० श्री० निरी]
१ विशुद्ध । बिना मेल का । खालिस । २ जिसके साथ और
कुछ न हो । केवल । एकमात्र । जैसे,—निरी बकवाद से काम
नहीं चलेगा । ३ विपट । नितात । सर्वतोभाव । एकदम ।
बिलकुल । जैसे,—वह निरा बेवकूफ है ।

निराई—सषा श्री० [हि० निराना] १ निराने का काम । फसल के
पौधों के पास पास उगनेवाले तृण, घास आदि को दूर करने
का काम । २ निराने की मजदूरी ।

निराकरण—सषा पु० [सं०] [वि० निराकरणीय, निराकृत] १
छांटना । अलग करना । २. हटाना । दूर करना । ३
मिटाना । रद करना । ४ किसी बुराई को दूर करने का
काम । शमन । निवारण । परिहार । ५ खटन । युक्ति
या दलोख को काटने का काम । जैसे, किसी सिद्धांत का
निराकरण ।

निराकाक्ष—वि० [सं० निराकाक्ष] जिसे अपेक्षा, इच्छा या
आकांक्षा न हो ।

निराकांक्षी—वि० [सं० निराकाक्षिन्] [वि० श्री० निराकाक्षिणी]
निस्पृह । जिसे कुछ इच्छा न हो ।

निराकार^१—वि० [सं०] १ जिसका कोई आकार न हो । जिसके
आकार की भावना न हो । २ विरूप । भट्टा । बदशक्ल
(को०) । ३ छिपा हुआ । छद्मयुक्त (को०) । ४ सीधा सादा ।
सरल (को०) ।

निराकार^२—सषा पु० १ ब्रह्म । ईश्वर । २. आकाश । ३ शिव
(को०) । ४. विष्णु (को०) ।

निराकाश—वि० [सं०] जिसमें अवकाश न हो । जिसमें खाली जगह न हो [को०] ।

निराकुल—वि० [सं०] १ जो आकुल न हो । जो सुख या डोबाडोल न हो । २ जो घबराया न हो । अनुद्विग्न । ३ बहुत व्याकुल । बहुत घबराया हुआ । उ०—व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि यक्यो बलिविक्रम लक्ष्मी की ।—केशव (शब्द०) । ४. व्याप्त । भरा हुआ । परिपूर्ण (को०) ।

निराकृत—वि० [सं०] १ मिटाई हुई । रद्द की हुई । २ दूर की हुई । हटाई हुई । ३ खटन की हुई ।

निराकृति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निराकरण । परिहार ।

निराकृति^२—वि० १. आकृतिरहित । निराकार । २ स्वाध्यायरहित । वेदपाठरहित । ३ कुरूप । बदशाबल (को०) । ४. पंचमहायज्ञ के अनुष्ठान से रहित (मनु०) ।

निराकृति^३—सञ्ज्ञा पुं० रोहित मनु के पुत्र (हरिवंश) ।

निराकृती—वि० [सं० निराकृतिन्] निराकरण करनेवाला [को०] ।

निराक्रन्द^१—वि० [सं० निराक्रन्द] जहाँ कोई पुकार सुननेवाला न हो । जहाँ कोई रक्षा या सहायता करनेवाला न हो । २ जो पुकार न सुने । जो रक्षा या सहायता न करे । ३ जिसकी पुकार न सुनी जाय । जिसकी कोई सहायता न करे ।

निराक्रन्द^२—सञ्ज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई शब्द न सुनाई पड़ सके ।

निराक्रोश—वि० [सं०] जिसपर कोई आरोप न हो । निर्दोष [को०] ।

निरास्वर^१—वि० [सं० निरस्वर] १ जिसमें अक्षर न हों । बिना अक्षर का । २ बिना अक्षर या शब्द का । मोन । ३ जिसे अक्षर का बोध न हो । अपढ़ ।

निराग—वि० [सं०] रागरहित । रागविहीन । विरक्त [को०] ।

निरागस्—वि० [सं०] पापरहित । निष्पाप ।

निराचार—वि० [सं०] आचारहीन । नियमहीन । अनैतिक । असभ्य । उ०—निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी । कलियुग सोइ ज्ञान वैरागी ।—मानस, ७/१६८ ।

निराजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो हस्ते धीरे तरीछी को मिलाने के लिये दोनों के सिरों पर लगी रहती है ।

निराजुकार^१—वि० [सं० निराकार] दे० 'निराकार' । उ०—निराजुकार नाम के प्रकार में अलूकिए ।—राम० धर्म०, पृ० ३२७ ।

निराट—वि० [हि० निराट] जिसके साथ धीरे कुछ न हो । अकेला । एकमात्र । निरा । बिलकुल । निपट । उ०—(क) प्रथम एक जो है किया भयो सो बारह बाट । कसत कसोटी ना टिका पीतर भयो निराट ।—कबीर (शब्द०) । (ख) साधत देह पनेह निराट कहै मति कोई कहै अटकी सी ।—देव (शब्द०) ।

निराडबर—वि० [सं० निराडम्बर] १ बिना डोल का । जिसके पास डोल न हो । २. जिसमें दिखावा न हो । सादा । आडबर-हीन [को०] ।

निरातर्क^१—वि० [सं० निरातर्क] १ अपरहित । निर्भय । २ रोगशून्य । निरोग । ३. आतर्करहित । अनियन्त्रित (को०) ।

निरातर्क^२—सञ्ज्ञा पुं० शिव [को०] ।

निरातप—वि० [सं०] धूप या गरमी से रहित या बचा हुआ । छायादार [को०] ।

निरातपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

निरादर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आदर का अभाव । अपमान । बेइज्जती । क्रि० प्र०—करना ।

निरादर^२—वि० अपमानवाला । आदररहित ।

निरादान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आदान वा देने का अभाव । २. बुद्ध का एक नाम ।

निरादान^२—वि० कुछ न लेनेवाला ।

निरादिष्ट—वि० [सं०] (कर्ज) जो पूरा पूरा चुका दिया गया हो [को०] ।

निरादेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भुगतान । भदा करने या चुकाने का काम ।

निराधार—वि० [सं०] १ अवलंब या आश्रयरहित । जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो । जैसे,—बहु निराधार ठहरा रहा । २ जो प्रमाणों से पुष्ट न हो । बेजड़ बुनियाद का । अयुक्त । मिथ्या । झूठ । जैसे, निराधार कल्पना । ३ जिसे या जिसमें जीविका आदि का सहारा न हो । ४ जो बिना प्रसन्न जल आदि के हो । जैसे,—उसने दूध तक न पिया, निराधार रह गया ।

निराधि—वि० [सं०] १. रोगशून्य । नीरोग । २ वितारहित ।

निरानन्द^१—वि० [सं० निरानन्द] आनन्दरहित । जिसे आनन्द न हो । खिन्न ।

निरानन्द^२—सञ्ज्ञा पुं० १ आनन्द का अभाव । २. दुःख ।

निराना^१—क्रि० प्र० [हि० नियराना] नियराना । नजदीक होना । उ०—हित न लक्षाय कहीं है धाय हाय कहा करों, जहाँ विषज्वाल पे न काल कैसे हूँ निराय ।—धनानन्द०, पृ० ३५ ।

निराना^२—क्रि० प्र० [सं० निराकरण] फसल के पौधों के पासपास उगी हुई घास को खोदकर दूर करना जिसमें पौधों की बाड़ न रहे । नौदवा । निकाना । उ०—कृषी निरावहि चतुर किसान ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरानी^१—वि० [हि० निराला] पुण्य । अलग । उ०—सुरति सत साक्षी अगम समानी । जाइ निरानी राह लए ।—घट०, पृ० २१४ ।

निरापद—वि० [सं०] १ जिसे कोई घापदा न हो । जिसे कोई आफत या डर न हो । सुरक्षित । २. जिससे किसी प्रकार विपत्ति की संभावना न हो । जिससे हानि या अनर्थ की आशंका न हो । जैसे, निरापद उपाय, निरापद मोक्ष । ३ जहाँ अनर्थ या विपत्ति की आशंका न हो । जहाँ किसी बात का डर या खतरा न हो । जैसे, निरापद स्थान ।

निरापन^१—वि० [सं० उप० निर् + हि० आपन, अपना] जो अपना न हो । पराया । बेगाना । उ०—(क) ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए चित न रहै अनुहारि । त्यों सेवतहु निरापने ये मानु पिता सुत नारि ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सब दुःख आपने निरापने सकल सुख जो सों अव भयो न बजाय ।

राजा राम को ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) ऐसन देह निरापन बोरे मुए छुवे नहि कोई हो ।—कबीर (शब्द०) ।

निरापुन^७—वि० [हि०] दे० 'निरापन' । उ०—जउ लहि जिय प्रापुन सब कोई । विनु जिय सबइ निरापुन होई ।—जायसी (शब्द०) ।

निरायाध—वि० [सं०] १ बाधा से मुक्त या रहित । २ अबाध । ३ बिना उपद्रव का [को०] ।

निरामय^१—वि० [सं०] जिसे रोग न हो । नीरोग । भला चंगा । तदुस्त ।

निरामय^२—सञ्ज्ञा पुं० १ जगली बकरा । २ सुपर । ३ कुशल ।

निरामयता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरामय + ता (प्रत्य०)] नीरोग होने की स्थिति । आरोग्य । तदुस्त । उ०—जहाँ चिन्त है जीवन के क्षण, कहीं निरामयता, सचेतन ? अपने रोग भोग से रहकर, निर्वातन के कर मलने दो ।—गीत०, पृ० ४६ ।

निरामालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैय का पेड़ । कपिश ।

निरामिष—वि० [सं०] १ मांसरहित । जिसमें मांस न मिला हो । जैसे, निरामिष भोजन । २ जो मांस न खाये । उ०—वायस पालिय मति अनुरागा । होहि निरामिष कवहुँ कि कागा ।—तुलसी (शब्द०) । ३ जो कामुक या लोलुप न हो (को०) । ४ जिसे पारिश्रमिक न मिलता हो (को०) ।

यौ०—निरामिषभोजी, निरामिषाणी = मांस न खानेवाला । जो मांस न खाये । शाकाहारी ।

निराय—वि० [सं०] १ लामरहित । जिसमें मुनाफा न हो । २ जिसे कुछ प्राय न हो (को०) ।

निरायत—वि० [सं०] १ पुरा केशा हुमा । विस्तृत । २ सकुचित । सिकुड़ा हुमा (को०) ।

निरायति—वि० [सं०] जिसका घत निकट हो । जिसका कोई भविष्य न हो (को०) ।

निरायत्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संकोच । ह्रस्वता । छोटाई (को०) ।

निरायास—वि० [सं०] बिना श्रम का । आसान । जिसमें मेहनत न हो । सरल (को०) ।

निरायुध—वि० [सं०] निरस्त्र । जिसके पास शस्त्राल न हो । निहत्था (को०) ।

निरारंभ—वि० [सं० निरारम्भ] जो हर तरह के काम से दूर हो । २ आरम्भरहित । अनारम्भ (को०) ।

निरारा^१—वि० [हि० निराल या निपारा, न्यारा] अलग । पृथक् । जुदा ।

निरारा^७—वि० [हि० निरार] दे० 'निरार' । उ०—(क) नीर खीर छाने दरबारा । दूर पानि सब करे निरारा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) बातहि जानहु विषम पहारा । हिरदे मिला न होइ निरारा ।—जायसी (शब्द०) ।

निराल^१—वि० [सं० निरालम्ब] [वि० स्त्री० निरालबा] १ बिना आलंब या सहारे का । विराधार । २ निराश्रय । बिना ठिकाने का । ३ जो अपनी मदद आप करता हो (को०) ।

निराल^२—सञ्ज्ञा पुं० ब्रह्म (को०) ।

निरालंबा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरालम्बा] छोटी जटामासी ।

निराल^७—वि० [हि० निराला] १ निराला । अद्वितीय । उ०—साहब आपे आप निराल । भातम राम को नाम गुलाल ।—भीखा श०, पृ० २० । २. अलग । पृथक् । अलित । उ०—भवसागर में यों रही ज्यो जल कँवल निराल ।—सतवाणी०, पृ०, ३७ ।

निरालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समुद्री मछली ।

निरालम^७—वि० [सं० निरालम्ब] १ निराधार । बिना आलंब का । अपने आप । उ०—अउघट घाटि निरालम जोति । दीपक बिन उजियारा होति ।—प्राण०, पृ० १३४ ।

निरालस—वि० [हि०] दे० 'निरालस्य' ।

निरालसी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निरालस] जो भालसी न हो ।

निरालस्य^१—वि० [सं०] जिसमें आलस्य न हो । तत्पर । फुरतीला । चुस्त ।

निरालस्य^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव ।

निराला^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निरालय या देश०] [वि० स्त्री० निराली] एकांत स्थान । ऐसा स्थान जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो । जैसे—(क) वहाँ निराला पड़ता है, चोर डाकू होंगे । (ख) चलो, निराले में बात करें ।

निराला^२—वि० १ जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो । एकांत । निर्जन । २ जिसके ऐसा दूसरा न हो । विलक्षण । सबसे भिन्न । अद्भुत । अजीब । जैसे, निराला ढग, निराली चाल । ३ जिसके जोड़ का दूसरा न हो । अनोखा । अनुपम । अनूठा । अपूर्व । बहुत बढ़िया ।

निरालाप—वि० [सं०] जो बात न करता हो । आलापरहित । मौन (को०) ।

निरालेप^७—वि० [सं० निर्लेप] दे० 'निर्लेप' । उ०—निरालेप निरगुन नाम । निज बैठे अमरा घाम ।—स० दरिया, पृ० ८ ।

निरालोक^१—वि० [सं०] १ आलोकरहित । अंधेरा । २ जो दिखाई न दे । अदृश्य । ३ अघा । दृष्टिहीन (को०) ।

निरालोक^२—सञ्ज्ञा पुं० शिव (को०) ।

निरावधि—वि० [सं० निरवधि] दे० 'निरवधि' । उ०—विरह निरावधि, मैं मतवारी, चिर तरुणी बावली, व्यथित मन ।—रेणुका, पृ० ८१ ।

निरावना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निराना' ।

निरावरण—वि० [सं०] अनाच्छादित । खुला हुमा ।

निरावलंब—वि० [सं० निरावलम्ब] बिना सहारे का । निराधार ।

निरावृत—वि० [सं०] अनाच्छादित । खुला हुमा (को०) ।

निराशंक—वि० [सं० निराशङ्क] निर्भय । जिसे आशंका न हो ।

निराश—वि० [सं०] आशाहीन । जिसे आशा न हो । नाउम्मीद । क्रि० प्र०—करना । होना ।

निराशक—वि० [सं०] बिना आशा का (को०) ।

निराशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नाउम्मेदी । आशा का अभाव ।

निराशावाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निराशा + वाद] १. निराशा का सिद्धांत । २. आदर्शोन्मुख साहित्य के अपने स्थापित मूल्यों से च्युत हो जाने पर और यथार्थ की वास्तविक स्थिति से उसका साक्षात्कार होने पर उन स्थितियों में व्यक्त निराशा का सिद्धांत । ३. मनोज्ञान के अनुसार एक मानसिक रोग । मेलकोलिया ।

विशेष—इसमें रोगी में आत्मविश्वास की कमी हो जाती है । वह अपने वर्तमान जीवन से असंतुष्ट होकर भविष्य के प्रति भी आस्थाहीन बन जाता है ।

निराशावादी—वि० [सं० निराशावादिन्] निराशावाद का सिद्धांत माननेवाला । उ०—पश्चिमी साहित्य के निराशावादियों से हमें सावधान करते हुए शुक्ल जी कहते हैं ।—आचार्य, पृ० १५ ।

निराशिय—वि० [सं०] १. आशीर्वादशून्य । २. तृष्णारहित ।

निराशी—वि० [सं० निराशिन्] १. हताश । नाउम्मीद । २. आशा-तृष्णा - रहित । उदासीन । विरक्त । उ०—तुम्हें कौन पति-आएगा अब, जब तुम हुए निराशी से ?—अपलक, पृ० ७० ।

निराश्रम—वि० [सं०] जो चार आश्रमों में से किसी में भी न हो [को०] ।

यौ०—निराश्रमपद = वह जगल जिसमें एक भी आश्रम न हो ।

निराश्रमो—वि० [सं० निराश्रमिन्] दे० 'निराश्रम' [को०] ।

निराश्रय—वि० [सं०] १. आश्रयरहित । आधारहीन । बिना सहारे का । २. जिसे कहीं ठिकाना न हो । असहाय । अशरण । ३. जिसे शरीर आदि पर ममता न हो । निर्विष ।

निराश्रित—वि० [सं० निराश्रय] दे० 'निराश्रय' । उ०—किंतु विषय की भ्रातृभावना यहाँ निराश्रित ही रोती —साकेत, पृ० ३७१ ।

निरासंग—वि० [सं० निरासङ्ग] १. कौटिल्य के अनुसार अप्रतिहत (सेना) २. आसंग अर्थात् आसक्ति से रहित ।

निरास^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना । निराकरण । २. खंडन । ३. विरोध (को०) । ४. वमन (को०) ।

निरास^२—वि० [सं० निरास] दे० 'निरास' ।

निरासन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना । निराकरण । २. खंडन । निरसन ।

निरासन^२—आसनरहित ।

निरासा^३—स्त्री० सञ्ज्ञा [सं० निराशा] दे० 'निराशा' ।

निरासी^३—वि० [सं० निराशी] १. दे० 'निराशी' । २. उदासीन । विरक्त । उ०—तनक नहीं तिय को सुख जानत ससृति विषय निरासी ।—रघुराज (शब्द०) । ३. उदास । बेरीनक । जहाँ या जिसमें चित्त प्रसन्न न हो । उ०—सुर यथाम विनु यह बन सुनो शशि विनु रैन बिरारी ।—सुर (शब्द०) ।

निरास्वाद—वि० [सं०] वेदवाद । बदजायका । बेमजा [को०] ।

निरास्वाद्य—वि० [सं०] जो कुछ भी आनंद न दे । जो आस्वाद्य के अयोग्य हो [को०] ।

निराहार^१—वि० [सं०] १. आहाररहित । जो बिना भोजन के हो । जिसने कुछ खाया न हो या जो कुछ न खाए । २. जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाता हो । जैसे, निराहार व्रत ।

निराहार^२—सञ्ज्ञा पुं० आहाररहित रहना । उपवास । अनशन [को०] ।

निराह्लाद—वि० [सं० निर् + आह्लाद] अप्रसन्न । दुःखी । उ०—जन जीवन बना न विषद, रहा वह निराह्लाद । विकसित नर वर अपवाद नहीं, जन गुण विवाद ।—ग्राम्या, पृ० ५६ ।

निरिङ्ग—वि० [सं० निरिङ्ग] निश्चल । अचल ।

निरिङ्गिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरिङ्गिणी] चिक । क्लिप्तमित्री । परदा ।

निरिन्द्रिय—वि० [सं० निरिन्द्रिय] १. इन्द्रियशून्य । जिसे कोई इन्द्रिय न हो । २. जिसके हाथ, पैर, शीर्ष, कान आदि न हों या काम के न हों ।

विशेष—मनु ने जन्माध, वलीव, पतित, जन्मवधिर, उन्मरा, जह, मूक इत्यादि को निरिन्द्रिय कहा है और इन्हें पितृघन का अनधिकारी ठहराया है ।

३. प्रमाण या साधनहीन (को०) । ५. अनुवंर (को०) । ६. नपुंसक (को०) ।

निरिधन—वि० [सं० निरिधन] बिना ईधन का [को०] ।

निरिच्छ—वि० [सं०] इच्छारहित । जिसे कोई इच्छा न हो ।

निरिच्छना^३—क्रि० सं० [सं० निरीक्षण] देखना । उ०—सुनि के प्रतच्छ वीस अच्छ बघ रच्छसनि, बैठो जो समच्छ अच्छ अच्छनि सों लक्ष्यो है । पच्छवान शैल सों बिपच्छ पर पच्छिन पै, कीश को निरिच्छो क्षमा छोहरी जो रक्ष्यो है ।—रघुराज (शब्द०) ।

निरी—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'निरा' ।

निरीक्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. देखनेवाला । २. देखरेख करनेवाला ।

निरीक्ष्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० निरीक्षित, निरीक्ष्य, निरीक्ष्यमाण] १. देखना । दर्शन । २. देखरेख । निगरानी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. देखने की मुद्रा या ढग । चितवन । ४. नेत्र । शालि ।

निरीक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देखना । दर्शन ।

निरीक्षित—वि० [सं०] १. देखा हुआ । २. देखामाया हुआ । जांच किया हुआ ।

निरीक्ष्य—वि० [सं०] १. देखने योग्य । २. जांच के लायक । निगरानी के लायक ।

निरीक्ष्यमाण—वि० [सं०] जिसको देखते हो । जो देखा जाता हो ।

निरीखन^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण' । उ०—वरने दीनदयाल तेज सब करे निरीखन ।—दीन० प्र०, पृ० १६७ ।

निरीक्षण^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण' । उ०—

गौर तेरे तोछन द्वे ईछन निरीछन तें पापी सुरलोक जाय
पाय के विमान को ।—दीन० प्र०, पु० १३१ ।

निरीति—वि० [सं०] ईतिरहित । अतिवृष्टि आदि से रहित ।

निरीश^१—वि० [सं०] १. जिसे ईश या स्वामी न हो । बिना
मालिक का । २ जिसकी समझ में ईश्वर न हो । अनीश्वर-
वादी । नास्तिक ।

निरीश^२—सञ्ज्ञा पुं० हल का फाल ।

निरीश्वरवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यह सिद्धांत कि कोई ईश्वर नहीं है ।
भारतीय दर्शन के उन दर्शनों का सिद्धांत जिनमें ईश्वर का
अस्तित्व अस्वीकृत है ।

निरीश्वरवादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निरीश्वरवादिन्] जो ईश्वर का
अस्तित्व न माने ।

निरीष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हल का फाल ।

निरीह—वि० [सं०] १. चेष्टारहित । जो किसी बात के लिये प्रयत्न
न करे । २. जिसे किसी बात की चाह न हो । ३ उदासीन ।
विरक्त । जो सब बातों से किनारे रहे । ४ जो किसी बखेड़े
में न पड़े । तटस्थ । ५ शांतिप्रिय ।

निरीहता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निरीहा' । उ०—छाया पथ में
तारक छुति सी, झिलमिल करने की मधुलीला । अभिनय करती
बयों इस मन में कोमल निरीहता अमयीला ।—कामायनी,
पु० १०४ ।

निरीहत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निरीहा' [को०] ।

निरीहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चेष्टा का अभाव । २ चाह का न
होना । विरक्ति ।

निरुध्दारा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निरुद्धार' ।

निरुध्दारना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'निरुद्धारना' ।

निरुक्त^१—वि० [सं०] १. निश्चय रूप से कहा हुआ । व्याख्या किया
हुआ । २ नियुक्त । ठहराया हुआ ।

निरुक्त^२—सञ्ज्ञा पुं० छह वेदांगों में से एक । वेद का चौथा अंग ।

विशेष—वैदिक शब्दों के निघंटु की जो व्याख्या यास्क मुनि ने
की है उसे निरुक्त कहते हैं । इसमें वैदिक शब्दों के अर्थों का
निर्णय किया गया है । वेद के शब्दों का अर्थ प्रकट करनेवाला
प्राचीन भाष्य ग्रंथ यही है । यद्यपि यास्क ने शाकपूर्णि और
स्थोलश्रीवी आदि अपने से पहले के निरुक्तकारों का उल्लेख
किया है, तथापि उनके ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं । सायणाचार्य
के अनुसार जिसमें एक शब्द के कई अर्थ या पर्याय कहे गए हों
वह निरुक्त है । काशिका वृत्ति के अनुसार निरुक्त पाँच प्रकार
का होता है—वर्णम (अक्षर बढ़ाना), वर्णविपर्यय
(अक्षरों को आगे पीछे करना), वर्णविकार (अक्षरों को
बदलना), नाश (अक्षरों को छोड़ना) और घातु के किसी
एक अर्थ को सिद्ध करना ।

निरुक्त के बारह अध्याय हैं । प्रथम में व्याकरण और शब्दशास्त्र
पर सूक्ष्म विचार हैं । इतने प्राचीन काल में शब्दशास्त्र पर
ऐसा गूढ़ विचार और कहीं नहीं देखा जाता । शब्दशास्त्र पर

२। मत प्रचलित थे इसका पता यास्क के निरुक्त से लगता है ।
कुछ लोगों का मत था कि सब शब्द घातुमूलक हैं और घातु
क्रियापद मात्र हैं जिनमें प्रत्ययादि लगाकर भिन्न शब्द बनते
हैं । यास्क ने इसी मत का खंडन किया है । इस मत के
विरोधियों का कहना था कि कुछ शब्द घातुरूप क्रियापदों से
बनते हैं पर सब नहीं, क्योंकि यदि 'अश्व' से अश्व माना जाय
तो प्रत्येक चलने या भागे बढ़नेवाला पदार्थ अश्व कहलाएगा ।
यास्क मुनि ने इसके उत्तर में कहा है कि जब एक क्रिया से
एक पदार्थ का नाम पड़ जाता है तब वही क्रिया करनेवाले
और पदार्थ को वह नाम नहीं दिया जाता । दूसरे पक्ष का
एक और विरोध यह था कि यदि नाम इसी प्रकार दिए गए
हैं तो किसी पदार्थ में जितने गुण हों उतने ही उसके नाम भी
होने चाहिए । यास्क इसपर कहते हैं कि एक पदार्थ किसी
एक गुण या कर्म से एक नाम को धारण करता है । इसी
प्रकार और भी समझिए ।

दूसरे और तीसरे अध्याय में तीन निघंटुओं के शब्दों के अर्थ प्रायः
व्याख्या सहित हैं, चौथे से छठे अध्याय तक चौथे निघंटु की
व्याख्या है । सातवें से बारहवें तक पाँचवें निघंटु के वैदिक
देवताओं की व्याख्या है ।

निरुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. निरुक्त की रीति से निर्वचन । किसी
पद या वाक्य की ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदि का
पूरा कथन हो । व्युत्पत्ति । किस शब्द का व्याकरण सबंध
और ऐतिहासिक विकास क्रम । २ एक काव्यालंकार जिसमें
किसी शब्द का मनमाना अर्थ किया जाय परंतु वह अर्थ समु-
क्तिक हो । जैसे,—रूप भावि गुण सो भरी तजि कै ब्रज
वनितान । उद्धव कुब्जा बस भए, निगुण वहै निदान । तात्पर्य
यह कि गुणवती ब्रजवनिताओं को छोड़कर 'निगुणरहित' कुब्जा
के वन होने से कृष्ण सचमुच 'निगुण' हो गए हैं ।

निरुच्छ्वास—वि० [सं०] १ (स्थान) जहाँ बहुत से लोग न
घट सकें । संकरा । सकीर्ण । २. जहाँ ठठाठस लोग भरे हों ।
जहाँ खड़े होने तक की जगह न हो । ३ मृत । मरा
हुआ (को०) ।

निरुज^(५)—वि० [सं० नीरुज] दे० 'नीरुज' ।

निरुत्कंठ—वि० [सं० निरुत्कण्ठ] जिसे कोई कामना या इच्छा
न हो (को०) ।

निरुत्तर—वि० [सं०] १. जिसका कुछ उत्तर न हो । लाजवाब ।
२ जो उत्तर न दे सके । जो कायल हो जाय । उ०—बधु-
बधूरत कहि कियो वचन निरुत्तर बालि ।—तुलसी (शब्द०) ।
३. जिससे कोई उत्तर या बड़ा न हो (को०) ।

निरुत्थ—वि० [सं०] जिसका उद्धार न हो सके (को०) ।

निरुत्पात—[सं०] उत्पातारहित । अनिष्ट से परे । (को०) ।

निरुत्सव—वि० [सं०] बिना उत्सव का । धूमधाम रहित (को०) ।

निरुत्साह^१—वि० [सं०] उत्साहहीन । जिसे उत्साह न हो ।

निरुत्साह^२—सञ्ज्ञा पुं० शक्ति या उत्साह का अभाव (को०) ।

निरुत्सुक—वि० [सं०] १. खापरवाह। उदासीन। २. शात।
अनुत्सुक (को०)।

निरुदक—वि० [सं०] जलहीन (को०)।

निरुदर—वि० [सं०] १. बिना पेट का। २. कृश। पतला (को०)।

निरुद्देश्य—वि० [सं०] बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य का। उद्देश्य-हीन (को०)।

निरुद्ध^१—वि० [सं०] १. रुका हुआ। बँधा हुआ। प्रतिबद्ध। २. जो रोका गया हो (को०)।

निरुद्ध^२—संज्ञा पुं० योग में पाँच प्रकार की मनोवृत्तियों में से एक। चित्त की वह अवस्था जिसमें वह अपनी कारणीभूत प्रकृति को प्राप्त कर निश्चेष्ट हो जाता है।

विशेष—मन की वृत्तियाँ योग में पाँच मानी गई हैं—क्षिप्त, मुहु, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त के डाँवाडोल रहने को क्षिप्तावस्था, कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानशून्य होने को मुह्रावस्था, अचलता के बीच बीच में चित्त की स्थिरता को विक्षिप्तावस्था, और एक वस्तु पर निश्चल रूप से स्थिर होने को एकाग्रावस्था कहते हैं। एकाग्र के उपरांत फिर निरुद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है जिसमें स्थिर होने के लिये किसी वस्तु के आलस्य की आवश्यकता नहीं होती, चित्त अपनी प्रकृति में ही स्थिर हो जाता है।

निरुद्धकण्ठ—वि० [सं० निरुद्धकण्ठ] रुँधे गलेवाला। जिसका कण्ठ रुँध गया हो।

निरुद्धगुद—संज्ञा पुं० [सं०] एका रोग जिसमें मलद्वार बंद सा हो जाता है और मल बहुत थोड़ा थोड़ा और कण्ठ से निकलता है।

निरुद्धप्रकाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्रद्वार बंद सा हो जाता है और पेशाब बहुत रुक रुककर और थोड़ा थोड़ा होता है।

निरुद्धमान—वि० [सं०] रोका हुआ। जिसे रोक दिया गया हो (को०)।

निरुद्धवीर्य—वि० [सं०] जिसकी शक्ति रोक दी गई हो। जिसकी शक्ति को स्तम्भित कर दिया गया हो।

निरुद्यम—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्यम न हो। उद्योगरहित। बेकाम।

निरुद्यमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुद्यम होने की क्रिया या भाव। बेकारी।

निरुद्यमी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्यमिन्] जो कोई उद्यम न करता हो। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योग—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्योग न हो। उद्योग-रहित। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योगी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्योगिन्] जो कुछ उद्योग न करे। निकम्मा। बेकार।

निरुद्धेग—वि० [सं०] उद्धेग से रहित। निश्चित।

निरुन्माद—वि० [सं०] १. उन्मादरहित। २. जो घमडी न हो। दपहीन (को०)।

निरुपकाराधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह थाती या धरोहर जो किसी आमदनीवाले काम में न लगी हो।

निरुपकारी—वि० [सं० निरुपकारिन्] उपकार न करनेवाला (को०)।

निरुपक्रम—वि० [सं०] जो ठीक न हो सके। असाध्य (को०)।

निरुपचार—वि० [सं० निरु + उपचार] जो उपचार के परे हो। उपचाररहित। असाध्य। उ०—यदि आत्मा को दे हुआ प्राण वासना ज्वार। जीवन निरीह, संघर्ष विरत हो, निरुपचार।—युगपथ, पु० १३६।

निरुपजीव्य—वि० [सं०] निर्वाह के अयोग्य। जिससे गुजारा न हो (को०)।

निरुपजीव्या भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर किसी की गुजर न हो सकती हो (को०)।

निरुपद्रव—वि० [सं०] १. जिसमें या जहाँ कोई उपद्रव न हो। विघ्नरहित। शांतिमय। २. जो उत्पात या उपद्रव न करता हो। ३. शुभ। कल्याणमय (को०)।

निरुपद्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुपद्रव होने की क्रिया या भाव।

निरुपद्रवी—संज्ञा पुं० [सं० निरुपद्रविन्] जो उपद्रव न करे। शांत।

निरुपधि—वि० [सं०] १. जिसमें किसी प्रकार की उपाधि न हो। वैशिष्ट्य रहित। विशेषण से अनवाछिन्न। २. जो उपद्रव न करता हो।

निरुपपत्ति—वि० [सं०] जिसकी कोई उपपत्ति न हो। अयोग्य।

निरुपपद्—वि० [सं०] १. जिसमें उपपद न हो। उपपदरहित। २. बिना उपाधि या पदवी का (को०)।

निरुपप्लव—वि० [सं०] जो क्षतिग्रस्त न हो। उत्पातरहित। निरुपद्रव (को०)।

निरुपभोग—वि० [सं०] जिसका कोई उपभोग न हो।

निरुपम^१—वि० [सं०] जिसकी उपमा न हो। उपमारहित। बेजोड़।

निरुपम^२—संज्ञा पुं० राष्ट्रकूट वंश के एक राजा का नाम।

निरुपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

निरुपमिता—वि० [सं० निरु + उपमिता] बेजोड़। अद्वितीय। उ०—छवि बेला की नभ की ताराएँ निरुपमिता।—अपरा, पु० ६७।

निरुपयोग—वि० [सं०] जो किसी काम का न हो। व्यर्थ (को०)।

निरुपयोगी—वि० [सं०] जो उपभोग में न आ सके। व्यर्थ। निरर्थक।

निरुपल—वि० [सं०] बिना पत्थर को (को०)।

निरुपलेप—वि० [सं०] १. उपलेपरहित। अवरोध या बाधरहित। २. बिना लेपवाला। सेपरहित (को०)।

निरुपसर्ग—वि० [सं०] १. उपसर्गरहित। उपद्रवरहित। २. जो (धातु या शब्द) उपसर्गयुक्त न हो (को०)।

निरुपस्कृत—वि० [सं०] शुद्ध। पवित्र। पूत। जो उपस्कृत न हो (को०)।

निरुपहत—वि० [सं०] १. जिसे कोई क्षति न पहुँची हो। २. भाग्यवान् (को०)।

निरुपहित—वि० [सं०] (दर्शन में) बिना उपाधिवाला (को०)।

निरुपाख्य^१—वि० [सं०] १. जिसकी व्याख्या न हो सके। २. जो बिल्कुल मिथ्या हो और जिसके होने की कोई संभावना न हो।

निरुपाख्य^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म ।

निरुपादान—वि० [सं०] इच्छा या कामना से मुक्त [को०] ।

निरुपाधि^१—वि० [सं०] १ उपाधिरहित । बाधारहित । २ मायारहित ।

निरुपाधि^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म ।

विशेष—उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव को ब्रह्म का रूप प्राप्त हो जाता है ।

निरुपाधिक—वि० [सं०] २० 'निरुपाधि' [को०] ।

निरुपाय—वि० [सं०] १. जो कुछ उपाय न कर सके । २ जिसका कोई उपाय न हो ।

निरुपेक्ष—वि० [सं०] १ जिसमें उपेक्षा न हो । उपेक्षारहित । २ छल या धूर्तता से रहित [को०] ।

निरुवरना^७—क्रि० प्र० [सं० निवारण] कठिनता आदि का दूर होना । सुलभता । उ०—अस संयोग ईश जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुवरई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरुवारां—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवारण] १ छुड़ाने का काम । मोचन । २ छुटकारा । बचाव । ३ सुलभाने का काम । उलभन मिटाने का काम । ४ तै करने का काम । निवटाने का काम । ५ निर्णय । फैसला । उ०—कहौ जाय करे युद्ध विचार । साँच भूठ होयहै निरुवारा ।—सूर (शब्द०) ।

निरुवारना^७—क्रि० प्र० [हि० निरवार] १ छुड़ाना । मुक्त करना । बधन आदि खोलना । २ सुलभाना । फँसी या गुथी हुई वस्तुओं को अलग अलग करना । उलभन मिटाना । उ०—सब सोइ बुद्धि पाय उजियारा । उर गृह बैठि ग्रथि निरुवारा ।—तुलसी (शब्द०) । ३ तै करना । निवटाना । निर्णय करना । फैसला करना । वि० २० 'निरवारना' ।

निरुष्णता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी या ताप का अभाव [को०] ।

निरुष्णीष—वि० [सं०] बिना पगड़ी का । बिना टोपीवाला [को०] ।

निरुष्मा—वि० [सं० निरुष्मन्] जो गरम न हो । ठंडा [को०] ।

निरुद्ध^१—वि० [सं० निरुद्ध] १ उत्पन्न । २ प्रसिद्ध । विख्यात । साफ या शुद्ध किया हुआ [को०] । ४ अविविहित । कुंभारी ।

निरुद्ध^२—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का पशुयाग ।

निरुद्धलक्षणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्ध लक्षणा] वह लक्षणा जिसमें प्रयोगपरंपरा के कारण शब्द का पुराना लक्ष्यार्थ रूढ़ हो गया हो अर्थात् वह केवल मुख्यार्थबाध या प्रयोजन के कारण ही न ग्रहण किया गया हो । रूढ़ि या प्रसिद्ध को प्राप्त अभिधेयार्थ तुल्य लक्ष्यार्थ बोधक लक्षण । जैसे, कामकुशल । 'कुशल' शब्द का मुख्य अर्थ है कुण सखाठने में प्रवीण । पर यहाँ लक्षणा द्वारा वह साधारणतः दक्ष या प्रवीण के अर्थ में ग्रहण किया जाता है ।

निरुद्धवस्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्धवस्ति] वैद्यक में एक प्रकार की वस्ति या पिचकारी जिसमें रोगी की गुदा में एक विशेष प्रकार की नली के द्वारा कुछ औषधियाँ पहुँचाई जाती हैं । यह क्रिया डाक्टरों एनिमा की क्रिया के समान ही होती है ।

निरुद्धा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्धा] २० 'निरुद्धलक्षणा' ।

निरुद्धा^२—वि० स्त्री० [सं०] अविविहित । कुंभारी ।

निरुद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्धि] १ निरुद्धलक्षणा । २ प्रसिद्धि । ३ पटुता । दक्षता [को०] । ४ सत्यापन । प्रमाणीकरण । पुष्टिकरण [को०] ।

निरुद्धा^७—वि० [सं० नि + रुत] बिना शब्दवाला । चुप । मौन । उ०—घटि घटि गोरप फिरै निरुद्धा को घट जागे को पट सूता ।—गोरख०, पु० १५ ।

निरूप^१—वि० [हि० नि + रूप] १ रूपरहित । निराकार । उ०—मोहन माँग्यो अपना रूप । यहि ब्रज बसत अंचे तुम बैठी ता बिन वहाँ निरूप ।—सूर (शब्द०) । २. कुरूप । बद-शकल । उ०—मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो चंद बहुरूप अनुरूप के बिचारिए ।—केशव (शब्द०) ।

निरूप^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वायु । २ देवता । ३ प्राकाश ।

निरूपक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निरूपिका] किसी विषय का निरूपण करनेवाला ।

निरूपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश । २. किसी विषय का विवेचना-पूर्वक निर्णय न या निर्धारण । विचार । प्रमेय, पदार्थ आदि का भेदोपभेदकपन पूर्वक विस्तृत विवेचन । ३. अन्वेषण । ढूँढ़ना [को०] । ४. आकार । आकृति । रूप [को०] । ५. निदर्शन ।

निरूपणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] २० 'निरूपण' [को०] ।

निरूपना^७—क्रि० प्र० [सं० निरूपण] निर्णय करना । ठहरना । निश्चित करना । उ०—(क) नेति नेति जेहि वेद निरूपा । तुलसी (शब्द०) । (ख) भगति निरूपहि भगत कलि निदर्हि वेद पुरान ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरूपम—वि० [सं०] २० 'निरूपम' ।

निरूपित—वि० [सं०] निरूपण किया हुआ । जिसको विस्तृत विवेचना हो चुकी हो । जिसका निर्णय हो चुका हो ।

निरूपिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्याख्या । २. अनुसंधान । परीक्षण । खानचीन [को०] ।

निरूप्य—वि० [सं०] जो निरूपण करने योग्य हो ।

निरूप्यमाण—वि० [सं०] जिसका निरूपण किया जा रहा हो । जिसपर विचार चल रहा हो । जो विवेचन का विषय हो ।

निरुद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की वस्ति या एनिमा । २. तर्क । ३. निश्चय । ४. पूर्ण वाक्य [को०] ।

निरुद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वस्ति चढाना । एनिमा देना । २. निश्चय करना । ३. तर्क करना [को०] ।

निरुद्धवस्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] २० 'निरुद्धवस्ति' ।

निरैखना^७—क्रि० प्र० [सं० निरीक्षण] देखना । निरखना । निरीक्षण करना । उ०—(क) हनुमान भए द्य भीरई से गज लौ गति मद निरैख्यो री ।—हनुमान (शब्द०) । (ख) न टरै मन मोहनी चाहि रहैं सब सोतैं सकानी निरैख्यो री ।—हनुमान (शब्द०) ।

निरैभ—वि० [सं०] बिना शब्द का । बिना आवाज का [को०] ।

निरै^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निरय] नरक ।

निरैठी

निरैठी^७—वि० [हि० निरी + ऐठी] गुमान भरी । मस्त । उ०—
रूप गुन ऐठी सु प्रमेठी उर पेठी बैठी, लाडनि निरैठी मति
बोलनि हरे हरी ।—घनानन्द, पृ० ५७ ।

निरोग^८—वि० [सं० नीरोग] रोगरहित । जिसे कोई रोग न
हो । स्वस्थ ।

निरोगी^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीरोग] वह व्यक्ति जिसे कोई रोग
न हो । स्वस्थ । तदुस्त ।

निरौठा^{१०}—वि० [देश०] बदसूरत । बदशकल । कुरूप ।

निरौद्धव्य—वि० [सं०] निरोध करने के योग्य [को०] ।

निरोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रोक । अवरोध । रुकावट । वधन ।
२. घेरा । घेर लेना । उ०—तव रावण सुनि लका निरोध ।
उपज्यो तन मन प्रति परम क्रोध ।—केशव (शब्द०) ।
३. नाश । ४. योग में चित्त की ममस्त वृत्तियों को रोकना
जिसमें प्रमत्तास और वैराग्य की आवश्यकता होती है । चित्त-
वृत्तियों के निरोध के उपरांत मनुष्य को निर्धौज समाधि प्राप्त
होती है । ५. दंड देना । चोट पहुँचाना [को०] । ६. वशीभूत
करना । निग्रह [को०] । ७. अग्रवि । नापसंदगी [को०] । ८.
वैराग्य [को०] ।

निरोधक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निरोधिका] रोकनेवाला ।
जो रोकता हो । निरोध करनेवाला ।

निरोधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रोक । रुकावट । २. पारे का छठा
संस्कार (वैद्यक) । ३. दे० निरोध ।

निरोधपरिणाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योग शास्त्र के अनुसार चित्तवृत्ति
की वह अवस्था जो व्युत्थान और निरोध के मध्य में
होती है ।

विशेष—योगशास्त्र में क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त इन तीन राजसिक
परिणामों को व्युत्थान कहते हैं और विमूढ़ सत्त्वगुण की
प्रधानता होने पर जो अवस्था प्राप्त होती है उसे निरोध
कहते हैं । जब व्युत्थान से उत्पन्न संस्कारों का अंत हो जाता
है और निरोध का आरम्भ होने को होता है तब चित्त का
थोड़ा थोड़ा सबध दोनों ओर रहता है । उस अवस्था को
निरोधपरिणाम कहते हैं ।

निरोधी—वि० [सं० निरोधिन्] निरोध करनेवाला । प्रतिवध या
रुकावट करनेवाला ।

निरौनी^{११}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निराना + नीनी (प्रत्य०)] १. खेत
निराने के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का ग्राम्य गीत ।
उ०—वह निरौनी आदि कई प्रकार की ग्राम्य गीतों से भी
मिलती हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५२ । २. निराने की
क्रिया । उ०—होत निरौनी जब धान के खेतन माही ।—
प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४८ । ३. निराने की मजदूरी ।

निरोष—वि० [सं० निर + ओष] १. बिना शोध का । २.
जिसका कोई उपचार न हो । उ०—गरीबदास जी ने देख
लिया कि यह रोग निरोष है ।—कबीर म०, पृ० ६०७ ।

निश्चैत^{१२}—वि० [सं०] १. क्षरित । नष्ट । २. क्षीण । दुर्बल ।
कमजोर [को०] ।

निश्चैति^{१३}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नैश्चैत कोण की स्वामिनी । २.
राक्षसी । ३. मृत्यु । ४. दरिद्रता । ५. विपत्ति । ६. पृथ्वी
का निम्न तल [को०] । ७. मूल नक्षत्र का एक नाम । ८.
'निश्चैति' ।

निश्चैति^{१४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अष्ट वसुधों का नाम । २. एक
रुद्र [को०] ।

निर्केवल^{१५}—वि० [हि० निर् + केवल] १. निखालिस । बिना
मिलावट का । २. शुद्ध । उ०—निर्केवल निर्भय नाम सहाई ।
—दरिया०, पृ० ३१ ।

निर्ख^{१६}—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] भाव । दर ।

यौ०—निर्ख दारोगा । निर्खनामा । निर्खवंदी ।

क्रि० प्र०—मुकरं करना ।—बाधना ।

निर्खदारोगा—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानों के राजत्वकाल में
बाजार का वह दारोगा जो चीजों के भाव या दर प्रादि की
नगरानी करता था ।

निर्खनामा—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानों के राजत्वकाल की वह
सूची जिसमें बाजार की प्रत्येक वस्तु का भाव लिखा
रहता था ।

निर्खवंदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] किसी चीज का भाव या दर निश्चित
करने की क्रिया ।

निर्गंध—वि० [सं० निर्गन्ध] जिसमें किसी प्रकार का गंध न हो ।
गंधहीन ।

यौ०—निर्गंधपुष्पी ।

निर्गंधता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर्गन्धता] निर्गंध होने की क्रिया
या भाव ।

निर्गंधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्गन्धन] बंध । घातन । हस्या
करना [को०] ।

निर्गंधपुष्पी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्गन्धपुष्पी] सेमर का पेड़ ।

निर्ग^{१७}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देश ।

निर्गत^{१८}—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गता] निकला हुआ । बाहर
आया हुआ ।

निर्गत^{१९}—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'निर्यात' । जैसे—निर्गत कर ।

निर्गन^{२०}—वि० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण' उ०—सुवर बीर
सग्राम गुन प्रति गुन निर्गन बंधि ।—पृ० रा०, २५ । ६४७ ।

निर्गम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निकास । निकलने का मार्ग । २. गमन ।
पयान [को०] । ३. द्वार । दरवाजा । ४. वह स्थान जहाँ से
वस्तुओं का निर्यात होता है [को०] ।

निर्गमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निकलने का काम । निकलना । २.
द्वार जिसमें से होकर निकलते हैं । ३. द्वारपाल [को०] ।

यौ०—निर्गमन मार्ग = निकलने, बाहर जाने का रास्ता ।

निर्गमना^{२१}—क्रि० प्र० [सं० निर्गमन] निकलना । उ०—इह
प्रविष्टाहि इह निर्गमहि भीर भूप दरवार ।—तुलसी (शब्द०) ।

निर्गर्व—वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार का पर्व या अभिमान न हो ।

निर्गलित—वि० [सं०] १. बहा हुआ। २. निकल गया हुआ। ३. घुला हुआ। मिला हुआ। गला हुआ [को०]।

निगवाच—वि० [सं०] बिना झरोखे का। जिसमें वातायन या खिड़की न हो [को०]।

निगुंठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निगुंठो] दे० 'निगुंठो'।

निगुंठो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निगुंठो] एक प्रकार का क्षुप। समाल। सम्हाल। सिंदुवार।

विशेष—इसके प्रत्येक सोके में भरहर की पत्तियों के समान पाँच पाँच पत्तियाँ होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचे का भाग सफेद होता है। इसकी घनेक जातियाँ हैं। किसी में काले और किसी में सफेद फूल लगते हैं। फूल आम के बौर के समान मजरी के रूप में लगते हैं और केसरिया रंग के होते हैं। वैद्यक में इसे स्मरणशक्ति वधक, गरम, रूखी, कसेली, चरपरी, हलकी, नेत्रों के लिये हितकारी तथा शूल, सूजन, घामवात, कुमि, प्रदर, कोढ़, मधुचि, कफ और ज्वर को दूर करनेवाली माना है। प्रोषधियों में इसकी जड़ का व्यवहार होता है।

पर्या०—नीलिका। नीलनिगुंठो। सिंदुक। नीलसिंदुक। पीतसहा। भूतकेशी। इद्राणी। कपिका। शेकालिका। शीतभीर। नीलमजरी। वनजा। महत्पुत्री। कर्तरीपत्रा। इद्राणिका। सिंदुवार।

निगुंठोकल्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निगुंठोकल्प] वैद्यक के अनुसार निगुंठो और शहद को मिलाकर एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई प्रोषध।

विशेष—यह साँखों की ज्योति बढ़ानेवाली, और कोढ़, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदर आदि रोगों को दूर करनेवाली तथा बहुत ही पोष्टिक समझी जाती है।

निगुंठीतैल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निगुंठीतैल] वैद्यक में एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ निगुंठो का तेल।

विशेष—यह सब प्रकार के फोड़े, फुंसियों, मधुचि तथा कठमाला आदि को मच्छा करनेवाला माना जाता है।

निर्गुण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से परे। परमेश्वर।

निर्गुण^२—वि० १ जो सत्व, रज और तम तीन गुणों से परे हो। २. जिसमें कोई मच्छा गुण न हो। बुरा। खराब। ३. प्रत्यक्षरहित। (धनुष) जिसमें रौंदा न हो [को०]। ४. विशेषता या गुणों से रहित [को०]।

निर्गुणता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुण होने की क्रिया या भाव।

निर्गुणभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर कुछ भी पैदा न होता हो। ऊपर जमीन (कोटि०)।

निर्गुणिया—वि० [सं० निर्गुण + हि० ह्या (प्रत्य०)] वह जो निर्गुण ब्रह्म की उपासना करता हो।

निर्गुणी—वि० [सं० निर्गुण] जिसमें कोई गुण न हो। गुणों से रहित। मूर्ख।

निर्गुन—वि० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण'।

निर्गुल्म—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गुल्मा] क्षुप या झाड़ी से रहित [को०]।

निर्गूढ़^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्गूढ] वृक्ष का कोटर।

निर्गूढ़^२—वि० जो बहुत गूढ़ हो।

निर्गूढ़—वि० [सं०] गृहहीन। बिना घर का [को०]।

निर्गूहो—वि० [सं० निर्गूह] दे० 'निर्गूह' [को०]।

निर्गौरव—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गौरवा] १ गौरव रहित। सम्मान रहित। २ जिसमें बड़प्पन नहीं [को०]।

निर्ग्रन्थ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्ग्रन्थ] १. बौद्ध संप्रदाय। २. दिगंबर। ३. एक प्राचीन मुनि का नाम। ४. जुमाड़ी [को०]। ५. मूर्ख व्यक्ति [को०]। ६. मारण। वध [को०]।

निर्ग्रन्थ^२—वि० १ निधन। गरीब। २. मूर्ख। बेवकूफ। ३. जिसे कोई सहायता देनेवाला न हो। नि सहाय। ४. वस्त्रहीन। ५. नग्न [को०]। ६. बध करनेवाला [को०]। ७. जिसे किसी प्रकार का वधन न हो [को०]। ८. फलरहित। निष्फल [को०]।

निर्ग्रन्थक^१—वि० [सं० निर्ग्रन्थक] १ एकाकी। अलग। २. फलहीन। निष्फल। ३. चतुर। कुशल। ४. त्याग या छोड़ा हुआ। त्यक्त।

निर्ग्रन्थक^२—सञ्ज्ञा पुं० १ बौद्ध संप्रदाय। २. दिगंबर भेन। ३. जुमाड़ी [को०]।

निर्ग्रन्थन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्ग्रन्थन] वध [को०]।

निर्ग्रन्थिक^१—वि० [सं० निर्ग्रन्थिक] १ चतुर। २. जिसमें गौंठ न हो [को०]।

निर्ग्रन्थिक^२—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'निर्ग्रन्थिक' [को०]।

निर्ग्रन्थिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर्ग्रन्थिका] बौद्ध भिक्षुणी [को०]।

निर्ग्राह्य—वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष या साक्षात् करने योग्य। २. अनुभव के योग्य। ३. लेने या ग्रहण करने लायक [को०]।

निर्घट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्घट] १ शब्द या ग्रन्थसूची। फिहरिस्त। २. दे० 'निघटु' [को०]।

निघट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह हाट या बाजार जहाँ किसी प्रकार का राजकर न लगता हो। २. भरा हुआ या भोड़ भाड़ से युक्त हाट [को०]।

निर्घात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह शब्द जो हवा के बहुत तेज चलने से होता है।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार दिन के भिन्न भिन्न भागों में इस प्रकार के शब्द होने के भिन्न भिन्न शुभ अशुभ परिणाम होते हैं। जिस समय निर्घात होता हो उस समय किसी प्रकार का मंगल कार्य करना निषिद्ध है।

२. बिजली की कड़क। ३. प्राचीन काल का एक प्रकार का मस्त्र। ४. बरबाद। विनाश [को०]। ५. तूफान। वात्याचक्र। बवंडर [को०]। ६. भूकंप। भूचाल [को०]। ७. आघात। धक्का [को०]।

निर्घातन

निर्घातन—सङ्घा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार अस्थिचिकित्सा की एक क्रिया का नाम । २. बाहर करना । निकालना (को०) ।

निर्घृष्ट—वि० [सं०] घोषित (को०) ।

निर्घिन—वि० [सं० निर्घृण] ३० 'निर्घृण' । ८०—निर्घिन ये हम क्योंकि राग से या सघर्ष हमारा ।—सम०, पु० २२ । (ख) ओ स्वर्वासी अमर मनुज सा निर्घिन होता तू भी ।—साम०, पु० २२ ।

निर्घृण—वि० [सं०] १. जिसे घृणा न हो । जिसे गदी और बुरी वस्तुओं से घिन न लगे । २. जिसे बुरे कामों से घृणा या लज्जा न हो । ३. बिना घृणावाले मनुष्यो का । अति नीच । अयोग्य । निकम्मा । निन्दित । ४०—ज्यो त्यों करके अपने निर्घृण जीवन को बिताने का मनसूबा मैंने ठान लिया ।—सरस्वती (शब्द०) । ४. निर्दय । बेरहम । दयाहीन । ८०—रावण बयो न तज्यो तब ही इन । सीय हरी जबहीं वह निर्घृण ।—केशव (शब्द०) ।

निर्घृणा—सङ्घा पुं० [सं०] निर्दयता । क्रूरता । घृष्टता । अविनीतता (को०) ।

निर्घोष^१—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० निर्घोषित] शब्द । आवाज ।

निर्घोष^२—वि० [सं०] शब्दरहित ।

निर्घा—सङ्घा पुं० [हिं०] चँचु नामक साग । विशेष—३० 'चचु' ।

निर्घल^१—वि० [सं० निर्घल] जिसे किसी प्रकार का छल या कपट न आता हो । निष्कपट ।

निर्जंतु—वि० [सं० निर्जंतु] जंतुओं या कीटाणुओं से मुक्त (को०) ।

निर्जन^१—वि० [सं०] १. जहाँ कोई मनुष्य न हो । सुनसान । २. सेवकरहित (को०) ।

निर्जन^२—सङ्घा पुं० उजाड़ जगह । मरुस्थल । सुनसान स्थान (को०) ।

निर्जय—सङ्घा स्त्री० [म०] पूर्ण विजय (को०) ।

निर्जर^१—वि० [सं०] जिसे कभी बुढ़ापा न आवे । कभी बुढ़ा न होनेवाला ।

निर्जर^२—सङ्घा पुं० १. देवता ।

विशेष—देवता लोग जरा अर्थात् बुढ़ापे से सदा रक्षित माने जाते हैं, इसीलिये वे 'निर्जर' कहलाते हैं । उनको चिरकिशोर या चिर तरुण भी इसी कारण कह दिया जाता है ।

२. सुधा । अमृत ।

निर्जरा—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. गुह्य । गिलोय । २. तालपर्णी । ३. सचित्त कर्म का तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना । (जैन) ।

निर्जरायु—वि० [सं०] (सौ०) जिसने कंचुल छोड़ दिया हो । बिना चमड़े का (को०) ।

निर्जल^१—वि० [म०] [वि० स्त्री निर्जला] बिना जल का । जल के संसर्ग से रहित । २. जिममे जल पीने का विधान न हो । जैसे, निर्जल व्रत ।

निर्जल^२—सङ्घा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ जल बिल्कुल न हो ।

निर्जलद—वि० [सं०] मेघ से रहित । बिना बादल का (को०) ।

निर्जल व्रत—सङ्घा पुं० [सं०] वह व्रत या उपवास जिसमें प्रती जल तक न पीए ।

निर्जला एकादशी—सङ्घा स्त्री० [सं०] जेठ सुदी एकादशी तिथि, जिस दिन लोग निर्जल व्रत रखते हैं ।

निर्जाल्य—वि० [सं०] १. जड़ता या मूर्खता से रहित । २. पाला या तुषार से रहित । ३. शीत से मुक्त । ठंडक से रहित (को०) ।

निर्जिज्ञास—वि० वि० [सं०] जानने या समझने की इच्छा न रखनेवाला (को०) ।

निर्जित—सङ्घा पुं० [सं०] १. जीता हुआ । जिसे जीत लिया गया हो । २. जो वश में कर लिया गया हो ।

निर्जिति—सङ्घा स्त्री० [सं०] ३० 'निर्जय' (को०) ।

निर्जितेन्द्रियग्राम—सङ्घा पुं० [सं० निर्जितेन्द्रियग्राम] वह व्यक्ति जिसने इन्द्रियो को जीत लिया हो । यति (को०) ।

निर्जिह्व—सङ्घा पुं० [सं०] मड़क । मेढक (को०) ।

निर्जीव—वि० [सं०] १. जीवरहित । वेजान । मृतक । प्राणहीन । २. अशक्त या उरसाहहीन ।

निर्जीवन—वि० [सं० निर् + जीवन] ३० 'निर्जीव' । ८०—पृथ्वी की बहती लू, निर्जीवन जड़ चेतन ।—अपरा, पु० ६० ।

निर्जीवित—वि० [सं० निर्जीव] ३० 'निर्जीव' । ८०—प्रेयसि कविते । हे निरुपमिते । अधरा मृत से इन निर्जीवित शब्दों में जीवन लामो ।—वीणा, पु० १ ।

निर्ज्ञाति—वि० [सं०] जिसके बहुधाधव या सबधो न हों (को०) ।

निर्ज्ञान—वि० [सं०] [वि० स्त्री निर्ज्ञाना] मूर्ख । असम्य (को०) ।

निर्ज्वर—वि० [सं०] ज्वरविहीन (को०) ।

निर्मर—सङ्घा पुं० [सं०] १. किसी ऊँचे स्थान या पर्वत से निकला हुआ पानी का झरना । सोता । चरमा । झरना । २. सूर्य के एक घोड़े का नाम (को०) । ३. हाथी (को०) । ४. तुषाग्नि । भूसी की भाग (को०) ।

निर्मरिणी—सङ्घा स्त्री० [म०] पहाड़ी नदी । झरने के रूप से निकलकर बहनेवाली नदी (को०) ।

निर्मरि^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] ३० 'निर्मरिणी' (को०) ।

निर्मरि^२—सङ्घा पुं० [सं० निर्मरिन्] पर्वत । पहाड़ (को०) ।

निर्णय—सङ्घा पुं० [सं०] १. औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना । किसी विषय में कोई सिद्धांत स्थिर करना । निश्चय । २. वादी और प्रतिवादी की बातों को सुनकर उनके सत्य अथवा असत्य होने के सत्रध में कोई विचार स्थिर करना । फैसला । निबटारा । (स्मृतियों में यह चतुष्पाद व्यवहार का अंतिम पाद है) । ३. मोर्मांश में किसी स्थिर सिद्धांत से कोई परिणाम निकालना । ४. हटाना । दूर करना (को०) ।

यौ०—निर्णयपाद = ३० 'निर्णय'—२ ।

निर्णयन—सङ्घा पुं० [सं०] निर्णय करना । निबटाना (को०) ।

निर्णयोपमा—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रमाणकार जिसमें उपमेय और उपमान के गुणों और दोषों की विवेचना की जाती है ।

निर्णय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुयं के एक घोड़े का नाम [को०] ।

निर्णायक—पि० [सं०] विखुंय करनेवाला [को०] ।

निर्णायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निश्चय करना । स्थिर करना । २. गंडस्थल । हाथी के कान का बाहरी किनारा [को०] ।

निर्णिक्त—वि० [सं०] १. धोत । धुला हुआ । साफ । शुद्ध किया हुआ । २. जिसके लिये प्रायश्चित्त किया गया हो [को०] ।

निर्णिक्तमना—वि० [सं० निर्णिक्तमनस्] शुद्ध या पवित्र हृदय-वाला [को०] ।

निर्णिकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. धोना । साफ करना । २. प्रायश्चित्त [को०] ।

निर्णोव—वि० [सं०] निर्णय किया हुआ । जिसका निर्णय हो चुका हो ।

निर्णोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निर्णोजन' [को०] ।

निर्णोजक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धोबी [को०] ।

निर्णोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. धोने या नहाने का जल । २. प्रायश्चित्त । ३. शुद्ध करना या धोना [को०] ।

निर्णोता^१—वि० [सं० निर्णोतृ] [वि० स्त्री० निर्णोत्री] निर्णय करनेवाला [को०] ।

निर्णोसा^२—सञ्ज्ञा पुं० १. विचारपति । जज । २. मागंदशंक । ३. प्रमाणपत्र । लेखनस्थ [को०] ।

निर्णोद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वहिष्कार । निष्कासन [को०] ।

निर्त^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नृत्य] नृत्य । नाच ।

निर्तक^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नर्तक] १. नाचनेवाला । नट । २. भांड ।

निर्तना^५—क्रि० म० [सं० नृत्य] नाचना । नृत्य करना ।

निर्द^६—वि० [सं० निर्दण्ड] जिसे सब प्रकार के दण्ड दिए जा सकें ।

निर्द^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शूद्र जिसे सब प्रकार के दण्ड दिए जा सकते हैं ।

निर्द^८—वि० [सं० निर्दम्भ] जिसे दम्भ या अभिमान न हो । दम्भहीन ।

निर्द^९—वि० [हि० निर्दयो] ३० 'निर्दय' ।

निर्दग्ध—वि० [सं०] १. जला हुआ । दग्ध । २. जो न जला हो । प्रदग्ध [को०] ।

निर्दट, निर्दड—वि० [सं०] २. दुर्घट । उग्र । २. निष्ठुर । दयाशून्य । ३. पागल । ४. मनावश्यक । बेकाम का । ५. ईर्ष्यालु [को०] ।

निर्दय—वि० [सं०] जिसे कुछ भी दया न हो । निष्ठुर । बेरहम ।

निर्दयता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दय होने की क्रिया या भाव । बेरहमी । निष्ठुरता ।

निर्दयी^{१०}—वि० [हि०] ३० 'निर्दय' ।

निर्दर^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. झरना । २. कदरा । गुफा । ३. तत्व । सार [को०] ।

निर्दर^{१२}—वि० १. निर्दय । २. कठोर । कठिन । ३. वेशमं । निर-भय [को०] ।

निर्दल—वि० [सं०] १. जिसमें पत्ता न हो । २. गुटबंदी से दूर ।

निर्दलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्यव । वध । विनाश [को०] ।

निर्दशन—वि० [सं०] बिना दाँत का [को०] ।

निर्दहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मिलावें का पेड़ । २. जलाना [को०] ।

निर्दहन—वि० १. दाहरहित । अग्निरहित । २. जलानेवाला । ज्वलनशील [को०] ।

निर्दहना^{१३}—क्रि० सं० [सं० दहन] जला देना । उ०—को न क्रोध निर्दहो काम वस केहि नहि कीन्हा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निर्दहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खलता । चूरनहार । मुर्रा । मरोड़फली ।

निर्दाता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्दातृ] १. देनेवाला । दाता । २. खेत गिराने या काटनेवाला [को०] ।

निर्दारित—वि० [सं०] १. सुपोषित । मोटा ताजा । २. निरक्ष । बिना लगाव का [को०] ।

निर्दिष्ट—वि० [सं०] १. जिसका निर्देश हो चुका हो । २. बतलाया या नियत किया हुआ । जिसके सबधमें पहले ही कुछ बतलाया या निश्चय कर दिया गया हो । ठहराया हुआ । जैसे,—(क) सब लोग निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गए । (ख) आप निर्दिष्ट समय पर आ जाइएगा ।

निर्दोषण—वि० [सं०] ३० 'निर्दोष' ।

निर्देश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ को बतलाना या दिखाना । संकेत करना । २. ठहराना या निश्चित करना । ३. आज्ञा । हुकुम । ४. कथन । ५. उल्लेख । जिक्र । ६. वर्णन । ७. नाम । सज्ञा । ८. उपाय । सामीप्य [को०] ।

निर्देशक—वि० [सं०] १. निर्देश करनेवाला । दिखानेवाला । २. पथप्रदर्शक [को०] ।

निर्देश्य—वि० [सं०] १. निर्देश करने योग्य । २. बतलाने या दिखाने योग्य । ३. प्रायश्चित्त करने योग्य [को०] ।

निर्देश्या—वि० [सं० निर्देश्य] [वि० स्त्री० निर्देश्या] १. बताने या दिखानेवाला । २. मार्ग दिखानेवाला [को०] ।

निर्दैन्य—वि० [सं०] दीनतारहित । जो दीन न हो [को०] ।

निर्दोष—वि० [सं०] १. जिसमें कोई दोष न हो । बेऐब । बे दाग । २. जिसने कोई अपराध न किया हो । बेकसूर ।

निर्दोषता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर्दोष + ता (प्रत्यय)] निर्दोष होने की क्रिया या भाव । अकलकता । शुद्धता । दोषविहीनता ।

निर्दोषी—वि० [हि०] ३० 'निर्दोष'—२ ।

निर्द्वय—वि० [सं०] १. जो भौतिक न हो । २. द्रव्यरहित । धनहीन । गरीब [को०] ।

निर्द्वम—वि० [सं०] वृक्षहीन [को०] ।

निर्द्विह—वि० [सं०] द्वेष या मत्सर से रहित [को०] ।

निर्द्वद्—वि० [सं० निर्द्वन्द्व] ३० 'निर्द्वन्द्व' ।

निर्द्वन्द्व—वि० [सं० निर्द्वन्द्व] १. जिसका कोई विरोध करनेवाला न हो । जिसका कोई द्वन्द्व न हो । २. जो राग, द्वेष, मान, मयमान आदि द्वन्द्वों से रहित या परे हो । ३. स्वच्छन्द । बिना बाधा का ।

निर्धन^१—वि० [सं०] जिसके पास धन न हो। धनहीन।
गरीब। दरिद्र। कगाल।

निर्धन^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। बैल [को०]।

निर्धनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धन होने की क्रिया या भाव।
गरीबी। कगाली। दरिद्रता।

निर्धर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जो धर्म से रहित हो।

निर्धातु—वि० [सं०] हीनवीर्य। अशक्त [को०]।

निर्धार, निर्धारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ठहराना या निश्चित करना।
२. निश्चय। निश्चय। ३. न्याय के अनुसार किसी एक जाति
के पदार्थों में से गुण या कम आदि के विचार से कुछ को
चलाने करना। जैसे,—काली गोएँ बहुत दूध देनेवाली होती
हैं। यहाँ गो जाति में से अधिक दूध देनेवाली होने के कारण
काली गोएँ पृथक् की गई हैं।

निर्धारना—क्रि० सं० [सं० निर्धारण] निश्चित करना। निर्धारित
करना। ठहराना।

निर्धारित—वि० [सं०] जिसका निर्धारण हो चुका हो। निश्चित
किया हुआ। ठहराया हुआ।

निर्धार्य—वि० [सं०] १ निर्धारण के योग्य। जिसका निर्धारण किया
जा सके। २. उद्योगी। उद्यमी। उत्साह से काम करनेवाला।
३. निर्भय। निर्भीक [को०]।

निर्धूत^१—वि० [सं०] धोया हुआ। बहाया हुआ। दूर किया हुआ।
उ०—साधु पद सलिल निर्धूत कल्मष सकल स्वपच ज्वनादि
केवल्यभागी।—तुलसी (शब्द०)।

निर्धूत^२—वि० [सं०] १ खडित। टूटा हुआ। २. जिसका त्याग
कर दिया गया हो। ३. फेंका हुआ। प्रक्षिप्त [को०]। ४.
हिसाया या झुकझोरा हुआ। (को०)।

निर्धूत^३—सञ्ज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसे उसके संबंधियों ने त्याग दिया
हो [को०]।

निर्धूम—वि० [सं०] बिना धुएँ वाला [को०]।

निर्धूत—वि० [सं०] धुला हुआ। साफ। २. चमकदार। चमकीला।

निर्नर—वि० [सं०] जिसे मनुष्यों ने त्याग दिया हो [को०]।

निर्नाय—वि० [सं०] अनाय। बिना अभिभावक का [को०]।

निर्नायता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. रंडापा। वैधव्य। २. सुरक्षा का
अभाव। ३. अनाय की दशा [को०]।

निर्नायक—वि० [सं०] नायकरहित। बिना राजा का। शासक-
हीन [को०]।

निर्निद्र—वि० [सं०] निद्रारहित। बिना नींद का। जागरूक [को०]।

निर्निमित्त, निर्निमित्तक—वि० [सं०] अकारण। बिना वजह।

निर्निमेष^१—क्रि० वि० [सं०] बिना पलक भ्रमकाए। एकटक।

निर्निमेष^२—वि० १. जो पलक न गिरावे। २. जिसमें पलक न
गिरे। जैसे, निर्निमेष दृष्टि।

निर्णय^१—वि० [हि० निर + पक्ष] दे० 'निष्पक्ष'।

निर्णय^२—वि० [हि० निर + फल] दे० 'निष्फल'।

निर्वध^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्वन्ध] १. रुकावट। अड़चन। २.
जिद। हट। ३. आग्रह।

निर्वध—वि० वधनहीन। अबाध। स्वतंत्र।

निर्वधी—वि० [सं० निर्वन्ध] बिना किसी वधन के। बिना किसी
बाधा या रुकावट के। उ०—पवना खेलै तहाँ निर्वधी।—
प्राण०, पृ० ११।

निर्वर्हण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मारण [को०]।

निर्वल—वि० [सं०] बलहीन। कमजोर।

निर्वलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कमजोरी।

निर्वहना^१—क्रि० प्र० [सं० निर्वहन] १. पार होना। अलग होना।
दूर होना। उ०—जे नाथ करि करुणा बिलोके निविध दुख ते
निवहे।—तुलसी (शब्द०)। २. क्रम का चलना। निभना।
पालन होना। उ०—जासों बात राम की कही। प्रीति न
काहू सो निर्वही।—कबीर (शब्द०)।

निर्वाचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्वाचन] दे० 'निर्वाचन'।

निर्वाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्वाण] दे० 'निर्वाण'।

निर्वाध—वि० [सं०] बेरोक। अबाध। २. निर्जन। एकांत। ३. बिना
उपद्रव का। निरुपद्रव [को०]।

निर्वाधित—वि० [सं० निर्वाध] बाधाहीन।

निर्वास^१—वि० [सं० निर + वास] जिसके कोई छास रहने की
जगह न हो। अनिकेत। उ०—निर्दुंदी निर्वासा सहजो अरु
निर्वास। संतोषो निर्मल दसा तके न पर की भास।—
सहजो०, पृ० १६।

निर्वाज—वि० [सं०] जिसमें बीज न हो। दे० 'निर्वाज' [को०]।

निर्वुद्धि—वि० [सं०] जिसे बुद्धि न हो। मूर्ख। बेवकूफ।

निर्वैरता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर्वैर + ता (प्रत्य०)] वैर या द्वेष-
राहित्य। वैरविहीनता। उ०—निर्दुंदी निर्वैरता सहजो अरु
निर्वास। संतोषो निर्मल दसा तके न पर की भास।—
सहजो०, पृ० १६।

निर्वोध—वि० [सं०] जिसे कुछ भी बोध न हो। जिसे अच्छे बुरे
का कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञान। अनजान।

निर्भग्न—वि० [सं०] १. टूटा फूटा। २. झुका हुआ। टेढ़ा। ३.
हीन। निकृष्ट [को०]।

निर्भट—वि० [सं०] कठोर। दृढ़ [को०]।

निर्भय^१—वि० [सं०] १. जिसे कोई डर न हो। निडर। देखौफ।

निर्भय^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार रोच्य मनु के एक पुत्र
का नाम। २. बढ़िया घोड़ा।

निर्भयता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. निडरपन। निडर होने का भाव।
२. निडर होने की अवस्था।

निर्भर^१—वि० [सं०] १. पुष्ट। भरा हुआ। उ०—सबके सर
निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर। कबहि देखिबे नयन भरि

राम सधन दोउ बीर।—तुलसी (शब्द०) । २. युक्त । मिला हुआ । ३. प्रबलवित । प्रश्रित । मुनहसर । ४. गाढ़ । जैसे, निर्भर परिरम (को०) । ५. प्रतिष्ठित । गहरा । प्रत्यक्षिक । जैसे, निर्भर निद्रा (को०) ।

निर्भर^२—सङ्ग पु० [सं०] १. वह सेवक जिसे वेतन न दिया जाता हो । वेगार । २. प्राधिक्य । प्रतिष्ठिता (को०) ।

निर्भरना^३—क्रि० सं० [हि०] प्रबलवित होना । प्रत्यत भार जाना । उ०—प्रभुत निर्भर (२) लाई । चलट दरियाव निर्भरिया ।—रामानन्द०, पु० १० ।

निर्भर्त्सन—सङ्ग पु० [सं०] १. भर्त्सन । डाँट डपट । तिरस्कार । २. निंदा । ३. प्रलप्ता ।

निर्भर्त्सना—सङ्ग स्त्री० [सं०] १. डाँट डपट । बुरा मला कहना । २. निंदा । वदनामी ।

निर्भोग्य—वि० [सं०] भाग्यहीन (को०) ।

निर्भास—सङ्ग पु० [सं०] प्रकाशित होना । उद्भासित होना (को०) ।

निर्भिन्न—वि० [सं०] १. प्रकट । उद्घाटित । २. छिद्रित । ३. विदीर्ण । फटा हुआ (को०) ।

निर्भीक—वि० [सं०] ड़ेडर । निडर । जिसे डर न हो ।

निर्भीकता—सङ्ग स्त्री० [सं०] निर्भीक होने की क्रिया या भाव ।

निर्भीत—वि० [सं०] जिसे भय न हो । निडर ।

निर्भूति—सङ्ग स्त्री० [सं०] प्रतर्धान होना । गायब होना ।

निर्भृति—वि० [सं०] बिना तनखाह का (सेवक) । (मजदूर) जो बिना उजरत के काम करे (को०) ।

निर्भेद—सङ्ग पु० [सं०] १. फाड़ना । २. छेद करना । वेधन । ३. खोचना । पर्दाफाश करना । ४. पता लगाना । ५. नदी का पेठा । ६. भेदरहित कथन । स्पष्ट कथन (को०) ।

निर्भ्रम^१—वि० [सं०] भ्रमरहित । शकारहित । जिसमें कोई संदेह न हो ।

निर्भ्रम^२—क्रि० वि० निघड़क । वेष्टके । बिना सकोष के । स्वच्छदता से । वेष्टर । उ०—श्यामा श्याम सुभग जमुना जल निर्भ्रम करत विहार ।—सूर (शब्द०) ।

निर्भ्रात—वि० [सं० निर्भ्रात] १. भ्रमरहित । निश्चित । जिसमें कोई संदेह न हो । २. जिसको कोई भ्रम न हो ।

निर्मथ, निर्मथन, निर्मथ्य—सङ्ग पु० [सं० निर्मथ, निर्मथन, निर्मथ्य] ३० 'निमथ' (को०) ।

निर्मसिक—वि० [सं०] जहाँ कोई (अर्थात् मक्खी तक) न हो । एकांत । सुनसान (को०) ।

निर्मज्ज—वि० [सं०] मज्जा या चरबी से रहित । दुबला पतला (को०) ।

निर्मथ—सङ्ग पु० [सं०] अरणि जिसे रगड़कर यज्ञों के लिये प्राग निकालते हैं ।

निर्मथन—सङ्ग पु० [सं०] ३० 'निमथ' ।

निर्मथ्या—सङ्ग स्त्री० [सं०] नासिका या नसी नाम का गंधद्रव्य ।

निर्मद—वि० [सं०] १. जिसे घमड न हो । २. अप्रमत्ता । ३. खिन्न (को०) ।

निर्मना^३—क्रि० सं० [सं० निर्माण] ३० 'निर्माणा' ।

निर्मनुज, निर्मनुष्य—वि० [सं०] १. जहाँ भावमी न हों । गैर भाषाद । २. भावभिर्यों द्वारा त्यक्त (को०) ।

निर्मम—वि० [सं०] जिसे ममता न हो । जिसको कोई वासना न हो ।

निर्मर्याद—वि० [सं०] १. मर्यादाहीन । जिसने मर्यादा छोड़ दी हो । २. उद्धत । प्रशिष्ट (को०) ।

निर्मल^१—वि० [सं०] १. मसरहित । साफ । स्वच्छ । २. पापरहित । शुद्ध । पवित्र । ३. दोषरहित । निर्दोष । कलंकहीन ।

निर्मल^२—सङ्ग पु० १. अन्नक । २. निर्मली ।

निर्मलता—सङ्ग स्त्री० [सं०] १. सफाई । स्वच्छता । २. निष्कलंकता । ३. शुद्धता । पवित्रता ।

निर्मला—सङ्ग पु० [सं० निर्मल] १. एक नानकपथी संप्रदाय ।

विशेष—इसके प्रवर्तक रामदास नामक एक महात्मा थे । इस संप्रदाय के लोग गेहूँ वस्त्र पहनते और साधु संन्यासियों की भाँति रहते हैं ।

२. इस संप्रदाय का कोई व्यक्ति ।

निर्मली—सङ्ग पु० [सं० निर्मल] १. एक प्रकार का मसोला सदावहार वृक्ष जो बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण भारत और बरमा में पाया जाता है । कतक । पाय पसारी । चाकसू ।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत भिकनी, कड़ी और मजबूत होती है, और इमारत, खेती के औजार और गाड़ियाँ प्रादि बनाने के काम में आती है । बीरने के समय इसकी लकड़ी का रस मदर से सफेद निकलता है परंतु हवा लगते ही कुछ भूरा या काला हो जाता है । इस वृक्ष के फल का गूदा खाया जाता है और इसके पके हुए बीजों का, जो कुचले की तरह के परंतु उससे बहुत छोटे होते हैं, भाँखों, पेठ तथा मूत्रयंत्र के अनेक रोगों में व्यवहार होता है । गंदले पानी को साफ करने के लिये भी ये बीज उसमें घिसकर डाल दिए जाते हैं जिससे पानी में मिली हुई मिट्टी जल्दी बैठ जाती है ।

२. रीठे का वृक्ष या फल ।

निर्मलोपल—सङ्ग पु० [सं०] स्फटिक ।

निर्मल्य—सङ्ग स्त्री० [सं०] स्पृक्का । असवरण ।

निर्मास—सङ्ग पु० [सं०] वह मनुष्य जो भोजन के प्रभाव के कारण बहुत दुबला हो गया हो । जैसे, तपस्वी या दरिद्र भिक्षुमगा प्रादि ।

निर्माण—सङ्ग पु० [सं०] १. रचना । बनावट । २. बनाने का काम ।

निर्माणविद्या—सङ्ग स्त्री० [सं०] इमारत, नहर, पुस इत्यादि बनाने की विद्या । वास्तुविद्या । इंजीनियरी ।

निर्माता—सङ्ग पु० [सं० निर्मातृ] निर्माण करनेवाला । बनानेवाला । सृष्टा । जो बनावे ।

निर्मात्रिक—वि० [सं०] बिना मात्रा का । जिसमें मात्रा न हो ।

निर्मान^७—वि० [सं० निर् + मान] जिसका मान न हो। बेहूद।
अपार। उ०—नित्य निर्मय नित्ययुक्त निर्मान हरि जाव घन
सच्चिदानंद मूल।—तुलसी (शब्द०)।

निर्माना^७—क्रि० सं० [सं० निर्माण] बनाना। रचना। उत्पन्न
करना। उ०—ब्रह्मा ऋषि मरीचि निर्मायो। ऋषि मरीचि
कश्यप उपजायो।—सूर (शब्द०)।

निर्मायल^७—संज्ञा पुं० [सं० निर्मायल] दे० 'निर्माल'।

निर्मायल^७—वि० [सं० निर्मल] दे० 'निर्मल'। उ० गुर द्रयाउ
सरोवर सत पुरा। अति निर्मायल अमृत भरपुरा।—प्राण,
पृ० १८४।

निर्मायल—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो किसी देवता पर चढ़ चुका
हो। देवता पर चढ़ चुकी हुई चीज। देवापित वस्तु।

विशेष—(क) जो पुष्प, फल और मिष्ठान्न आदि किसी देवता
पर चढ़ाए जाते हैं वे विसर्जन से पहले 'नैवेद्य' और विसर्जन
के उपरांत 'निर्मायल' कहलाते हैं। (ख) शिव के अतिरिक्त
और सब देवताओं के निर्मायल पुष्प और मिष्ठान्न आदि ग्रहण
किए जाते हैं।

निर्माया—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फुक्का। असवरग।

निर्मिस—वि० [सं०] बनाया हुआ। रचित।

निर्मिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्माण। बनाने की क्रिया। रचना।
२. बनाने का भाव।

निर्मुक्त^१—वि० [सं०] १. जो मुक्त हो गया हो। जो छूट गया हो।
२. जिसके लिये किसी प्रकार का बंधन न हो।

निर्मुक्त^२—संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसने अभी हाल में कँचुली
छोड़ी हो।

निर्मुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति। छुटकारा। २. मोक्ष।

निर्मूल—वि० [सं०] १. जिसमें जड़ न हो। बिना जड़ का। २.
जिसकी जड़ न रह गई हो। जड़ से उखाड़ा हुआ। जैसे,
निर्मूल करवा। ३. जिसका कोई आधार, बुनियाद या
असंशय न हो। बेजड़। जैसे, निर्मूल बात। ४. जिसका
मूल ही न रह गया हो। जो सर्वथा नष्ट हो गया हो। जैसे,
रोग को निर्मूल करना।

निर्मूलक—वि० [सं० निर्मूल + क (प्रत्य०)] दे० 'निर्मूल'।

निर्मूलन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मूल होना या करना। विनाश।

निर्मृष्ट—वि० [सं०] जो अच्छी तरह धुला, पोछा या साफ किया
हो। मिटाया हुआ [को०]।

निर्मेष—वि० [सं०] मेघरहित। अनाम। बादल से रहित। उ०—
शुभ्र जो या निर्मेष गगन, सुमग मेरी समी जीवन।—माया,
पृ० ४१।

निर्मेष—वि० [सं०] जिसे मेघा न हो। मूख। बेवक्फ [को०]।

निर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप की कँचुली। २. शरीर के
ऊपर की छाल। ३. पुराणानुसार सावर्णि मनु के एक पुत्र
का नाम। ४. ऋतु के सप्तमियों में से एक का नाम।

५. प्राकाश। ६. कवच। सन्नाह। जिरहबहतर (को०)। ७.
मुक्त करना। छोड़ना। त्यागना (को०)।

निर्मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्ण मोक्ष जिसमें कुछ भी संस्कार बाकी
न रह जाय। २. त्याग।

निर्मोल^७—वि० [सं० निर्मूल्य; सं० नि + हि० मोल] जिसके मूल्य
का अनुमान न हो सके। अमूल्य। उ०—नैना लोमहि
लोभ भरे। जोइ देखै सोइ सोइ निर्मोलै कर ले तहीं धरे।
—सूर (शब्द०)।

निर्मोह^१—वि० [सं०] १. जिसके मन में मोह या भ्रम न हो।
२. दया, ममता से रहित। विष्णु।

निर्मोह^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. रेवत मनु के एक पुत्र का नाम। २.
सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम। ३. शिव (को०)।

निर्मोहिनी—वि० स्त्री० [हि० निर्मोही + इनी (प्रत्य०)] निर्दय।
जिसके चित्त में ममता या दया न हो। कठोरहृदय। उ०—
वा निर्मोहिनी रूप की राशि जो ऊपर के उर मानति
हैं है। भावत हैं नित मेरे लिये इतनी ते विशेष हू जावति
हैं हैं।—ठाकुर (शब्द०)।

निर्मोहिया—वि० [हि० निर्मोही + इया (प्रत्य०)] १. 'निर्मोही'।

निर्मोही—वि० [सं० निर्मोह] जिसके हृदय में मोह या ममता न
हो। निर्दय। कठोरहृदय।

निर्यन्त्रण—वि० [निर्यन्त्रण] १. जो नियंत्रण न माने। बिना
रुकावट का। २. निरकुश। स्वेच्छाचारी [को०]।

निर्यत्न—वि० [सं०] अक्रिय। सुस्त। आलसी। बोदा [को०]।

निर्याण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर निकलना। २. यात्रा। रवानगी।
प्रस्थान। विशेषतः सेना का युद्धक्षेत्र की ओर अथवा पशुओं
का चराई की ओर प्रस्थान। ३. वह सड़क जो किसी नगर
से बाहर की ओर जाती हो। ४. अट्ठय होना। गायब होना।
५. शरीर से आत्मा का निकलना। मृत्यु। ६. मोक्ष। मुक्ति।
७. हाथी की आँख का बाहरी कोना। ८. पशुओं के पैरों में
बाँधने की रस्ती। बंधन। ९. लोह। लोहा (को०)।

निर्यात^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो देश के लिये
विदेश भेजा गया हो। आयात का उल्टा। रपतनी। निर्यात।
जैसे,—निर्यात कर। निर्यात व्यापार।

यौ०—निर्यात कर = विक्रयार्थ बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओं
पर लगनेवाला कर।

निर्यात^२—वि० बाहर गया हुआ। प्रस्थित।

निर्यातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदला चुकाना। २. प्रतीकार। ३.
मार डालना। ४. श्मशान चुकाना। ५. (न्यस्त या धरोहर
की वस्तु को) लौटाना। वापस करना (को०)। ६. उपहार।
भेंट (को०)।

निर्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति। निर्याण। २. जाना।
गमन। प्रयाण। ३. मृत्यु [को०]।

निर्यातित—वि० [सं०] बापस किया हुआ। लौटाया हुआ [को०]।

निर्यापित—वि० [सं०] १. जाने के लिये बाध्य किया हुआ ।
२. प्रपचारित । समाप्त किया हुआ ।

निर्याम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह ।

निर्यामक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सहायक । वह जो किसी काम में मदद करे [को०] ।

निर्यामकत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्याम] सहायकत्व । मदद (सतरण में) मल्लाही । उ०—सुप्पारक के कुशल निर्यामकत्व में सात सौ यात्रियों की नौयात्रा का उल्लेख है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१७ ।

निर्यामण—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] साहाय्य । सहायकत्व । सहायक होने का भाव [को०] ।

निर्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्षों या पौधों में से प्रापसे प्राप प्रपवा ससका तना प्रादि चीरने से निकलनेवाला रस । २. गोंद । ३. बहना या झरना । क्षरण । ४. वषाण । काढ़ा ।

निर्युक्तिक—वि० [सं०] १. विच्छिन्न किया हुआ । भलग किया हुआ । २. निरर्थक । जिसमें कोई तर्क न हो । ३. प्रयोग्य । जो उचित न हो [को०] ।

निर्यूथ—वि० [सं०] झुड से भटका हुआ । दल से बिछुड़ा हुआ । जैसे, ह्वाथो [को०] ।

निर्यूष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २०. 'निर्यास' ।

निर्यूह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वषाण । काढ़ा । २. द्वार । दरवाजा । ३. छिद्र पर पहनी जानेवाली कोई चीज । जैसे, मुकुट प्रादि । ४. दीवार में लगाई हुई वह लकड़ी प्रादि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय । खूँटी ।

निर्लज्ज—वि० [सं०] लज्जाहीन । वेशमं । वेहया ।

निर्लज्जता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेशर्मी । वेहयाई । निर्लज्ज होने का भाव ।

निर्लिङ्ग—वि० [सं० निरलिङ्ग] लिङ्ग प्रयात् लक्षणरहित । जिसमें पहचानने का कोई चिह्न न हो [को०] ।

निर्लिप्त^१—वि० [सं०] १. राग द्वेष प्रादि से मुक्त । जो किसी विषय में प्रासक्त न हो । २. जो लिप्त न हो । जो कोई सबध न रखता हो । वेलास ।

निर्लिप्त^२—सञ्ज्ञा पुं० १. कृष्ण का एक नाम । २. सत [को०] ।

निर्लुचन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर्लुचन] छीलना । नोचना [को०] ।

निर्लुठन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निर्लुठन] १. लुटना । पवदक्षित करना । २. छेदना । फाटना । विद्ध करना [को०] ।

निर्लेखन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी चीज पर जमी हुई मेल प्रादि खुरचना । २. वह चीज जिससे मेल खुरची जाय (सुश्रुत) ।

निर्लेप—वि० [सं०] १. विषयो प्रादि से भलग रहनेवाला । निरलिप्त । २. लेपरहित । कलईरहित । [को०] ।

निरलोभ—वि० [सं०] जिसे लोभ न हो । लालच न करनेवाला ।

निरलोभी—वि० [सं० निरलोभ + ई (प्रत्य०)] २०. 'निरलोभ' ।

निरलोम—वि० [सं०] बिना रोएँ का [को०] ।

निरलोमा—वि० [सं० निरलोमन्] [वि० स्त्री० निरलोम्नी] बिना रोएँ का [को०] ।

निर्वश—वि० [सं०] जिसके प्रागे बश चलानेवाला कोई न हो ।

निर्वशता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वश होने का भाव ।

निर्वचन^१—वि० [सं०] १. मोन । २. निर्दोष । निष्कलक [को०] ।

निर्वचन^२—क्रि० वि० चुपचाप [को०] ।

निर्वचन^३—सञ्ज्ञा पुं० [वि० निर्वचनीय] १. उच्चारण । २. कहावत । लोकोक्तिप्रा । ३. शब्दसूची । ४. निरुक्ति । ५. प्रशंसा [को०] ।

निर्वचनीय—वि० [सं०] कहने योग्य । व्याख्या करने योग्य । निर्वचन के योग्य [को०] ।

निर्वण—वि० [सं०] १. जगल से बाहर । २. नग्न । खुला हुआ । ३. जगल से रहित [को०] ।

निर्वत्सल—वि० [सं०] जो बच्चों को प्यार न करे । जिसमें वत्सलता न हो [को०] ।

निर्वन—वि० [सं०] २०. 'निर्वण' [को०] ।

निर्वपण^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्वपणी] १. तर्पण सबधी । २. देनेवाला [को०] ।

निर्वपण^२—सञ्ज्ञा पुं० १. तर्पण । २. देना । दान । प्रदान । ३. वितरण [को०] ।

निर्वयनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प की केशुल । निर्मोक [को०] ।

निर्वर—वि० [सं०] १. निरञ्ज । वेशरम । २. निर्भय । निडर ।

निर्वर्णन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. देखना । लक्ष्य करना । २. सावधानी से देखना [को०] ।

निर्वर्ति—वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो । निष्पन्न [को०] ।

निर्वसन—वि० [सं०] वस्त्रहीन । नग्न [को०] ।

निर्वसु—वि० [सं०] घनहीन । गरीब [को०] ।

निर्वहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निवाह । गुजर । निर्वह । २. समाप्ति । ३. नाटक में कथा की समाप्ति उपसंहृति [को०] ।

यौ०—निर्वहण सधि = नाटक की पाँच सधियों में से अंतिम इन पाँच सधियों के नाम हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, भवमश और निर्वहण । अंतिम की उपसंहृति भी कहा गया है ।

निर्वहना—क्रि० भ० [सं० निर्वहन] गुजर करना या होना । गिभना । चला चलना । परपरा का पालन होना ।

निर्वाक्—वि० [सं० निर्वाक्] जिसके मुँह से बात न निकले । जो चुप हो ।

निर्वाक्य—वि० [सं०] जो बोल न सकता हो । गूँगा ।

निर्वाचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रतिनिधिक सस्या के सदस्य या प्रतिनिधि के निर्वाचन में वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो । वह जिसे किसी कार्यकर्ता या प्रतिनिधि को वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो । मताधिकारप्राप्त मनुष्य । निर्वाचन करनेवाला ।

निर्वाचकसंघ, निर्वाचकसमूह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उन लोगों का समूह या समाज जिन्हें मताधिकार प्रयात् वोट देने का अधिकार प्राप्त हो । एलेक्टरेट ।

निर्वाचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बहुता में से एक या अधिक को चुनने

या पसद करने का काम। चुनाव। जैसे,—कविताओं का निर्वाचन सुंदर हुआ है। २ किसी को किसी पद या स्थान के लिये, उसके पक्ष में 'वोट' देकर, हाथ उठाकर या बिट्टी जालकर चुनने या पसद करने का काम। जैसे,—व्यवस्थापिका सभा के इस बार के निर्वाचन में अच्छे आदमी निर्वाचित हुए हैं।

यौ०—निर्वाचनक्षेत्र = चुनाव का क्षेत्र।

निर्वाचनी संस्था—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निर्वाचक सभ'।

निर्वाचित—वि० [सं०] १ निर्वाचन किया हुआ। चुना हुआ। जैसे,—इस पुस्तक में उनके निर्वाचित लेखों का संग्रह है। २ जिसका (किसी स्थान या पद के लिये लोगों द्वारा) निर्वाचन हुआ हो। जो (किसी पद या स्थान के लिये लोगों द्वारा) चुना गया हो। जैसे,—वे बनारस द्विजीवन से व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाच्य—वि० [सं०] १ न कहने योग्य। २ जिसपर आपत्ति न की जा सके। निर्दोष [को०]।

निर्वाण^१—वि० [सं०] १. बुझा हुआ (दीपक, अग्नि आदि)। २. अस्त। डूबा हुआ। ३. शांत। धीमा पड़ा हुआ। ४. मृत। मरा हुआ। ५. निश्चल। ६. शून्यता को प्राप्त। ७. बिना बाण का।

निर्वाण^२—संज्ञा पुं० १. बुझना। ठंडा होना। २. समाप्ति। न रह जाना। ३. अस्त। गमन। डूबना। ४. हाथी को घोना या नहाना (को०)। ५. संगम। संयोग। मिलन (को०)। ६. समाप्ति। पूर्णता (को०)। ७. शांति। ८. मुक्ति। मोक्ष।

विशेष—यद्यपि मुक्ति के अर्थ में निर्वाण शब्द का प्रयोग गीता, भागवत, रघुवण, शारीरक भाष्य इत्यादि नए पुराने ग्रंथों में मिलता है, तथापि यह शब्द बौद्धों का पारिभाषिक है। सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा (पूर्व) और वेदांत में क्रमशः मोक्ष, अपवर्ग, निश्चयस, मुक्ति या स्वर्गप्राप्ति तथा केवल्य शब्दों का व्यवहार हुआ है पर बौद्ध दर्शन में बराबर निर्वाण शब्द ही आया है और उसकी विशेष रूप से व्याख्या की गई है। बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ हैं—हीनयान (या उत्तरीय) और महायान (या दक्षिणी)। इनमें से हीनयान शाखा के सब ग्रंथ पाली भाषा में हैं और बौद्ध धर्म के मूल रूप का प्रतिपादन करते हैं। महायान शाखा कुछ पीछे की है और उसके सध ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। महायान शाखा में ही अनेक आचार्यों द्वारा बौद्ध सिद्धांतों का निरूपण गूढ़ तर्कप्रणाली द्वारा दार्शनिक दृष्टि से हुआ है। प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का जिन बौद्ध आचार्यों से शास्त्रार्थ होता था वे प्रायः महायान शाखा के थे। अतः निर्वाण शब्द से क्या अभिप्राय है इसका निर्णय उन्हीं के वचनों द्वारा हो सकता है। बोधिसत्व नागार्जुन ने माध्यमिक सूत्र में लिखा है कि 'भवसतति का उच्छेद ही निर्वाण है, अर्थात् अपने संस्कारों द्वारा हम बार बार जन्म के बंधन में पड़ते हैं इससे उनके उच्छेद द्वारा भवबंधन का नाश हो सकता है। रत्नकूटसूत्र में बुद्ध का यह वचन है 'राग, द्वेष और मोह के क्षय से निर्वाण होता है।

वज्रच्छेदिका में बुद्ध ने कहा है कि निर्वाण अनुपधि है, उसमें कोई संस्कार नहीं रह जाता। माध्यमिक सूत्रकार चंद्रकीर्ति ने निर्वाण के संबंध में कहा है कि सर्वप्रपंचनिवर्तक शून्यता को ही निर्वाण कहते हैं। यह शून्यता या निर्वाण क्या है? न इसे भाव कह सकते हैं, न अभ्यास। क्योंकि भाव और अभ्यास दोनों के ज्ञान के क्षय का ही नाम तो निर्वाण है, जो अस्ति और नास्ति दोनों भावों के परे और अनिर्वचनीय है। माधवाचार्य ने भी अपने सर्वदर्शनसंग्रह में शून्यता का यही अभिप्राय बतलाया है—'अस्ति, नास्ति, उभय और अनुभय इस चतुष्कोटि से विनिमुक्ति ही शून्यत्व है'। माध्यमिक सूत्र में नागार्जुन ने कहा है कि अस्तित्व (है) और नास्तित्व (नहीं है) का अनुभव प्रत्यक्ष ही करते हैं। बुद्धिमान लोग इन दोनों का उरश्मरूप कल्याण प्राप्त करते हैं। उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि निर्वाण शब्द जिस शून्यता का बोधक है उससे चित्त का ग्राह्यग्राहकसंबंध ही नहीं है। मैं भी मिथ्या, संसार भी मिथ्या। एक बार ध्यान देने की है कि बौद्ध दार्शनिक जीव या आत्मा की भी प्रकृत सत्ता नहीं मानते। वे एक महाशून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।

यौ०—निर्वाणभूयिष्ठ = लुप्त। निर्वाणमस्तक = मोक्ष। निर्वाण-वचि = मोक्ष की प्राप्ति में लगा हुआ।

निर्वाणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गधर्वी का नाम।

निर्वाणी—संज्ञा पुं० [सं०] जैनो के एक शासन देवता।

निर्वात—वि० [सं०] १ जहाँ हवा न हो। जहाँ हवा का झोका न लग सके। २ जो चंचल न हो। स्थिर। शांत।

निर्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवाद। निंदा। २. प्रवृत्ति। लापरवाही।

निर्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दान। २ वह दान जो पितरों के उद्देश्य से किया जाय। ३ (बीज आदि) बोना। वपन (को०)। ४ बुझाना। शांत करना (आग, दीया आदि)। दे० 'निर्वपण'।

निर्वापक—वि० [सं०] बुझानेवाला [को०]।

निर्वापण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ठंडा करने की क्रिया। २ तरोताजा करना। ३ बुझाना (प्यास)। ४ आनंदित करना। ५. वध करना। ६ (आग आदि) बुझाना। शांत करना। ७. बीज आदि का बोना। वपन (को०)।

निर्वापित—वि० [सं०] शांत। बुझा हुआ। उ०—उनके सहारे की प्रतिमा फिरण भी निर्वापित हो जायगी।—प्रतिमा, पृ० ११४।

निर्वाय—वि० [सं०] १. जिसका निवारण न किया जा सके। २. जो निर्भय काम करे [को०]।

निर्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १ निर्वासन। निकाल देना। २. प्रवास। विदेशयात्रा। ३. हिसन। वध। मारण [को०]।

निर्वासक—वि० [सं०] निर्वासन करनेवाला।

निर्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मार डालना। वध। २. गाँव, शहर या देश आदि से दंडस्वरूप बाहर निकाल देना। देश-विकावा। ३. निकालना। ४. विसर्जन।

निर्वासित—वि० [सं०] निकाला हुआ। बहुकृत [को०]।

निर्वास्य—वि० [सं०] निर्वासन के योग्य [को०]।

निर्वाह—संज्ञा पु० [सं०] १ किसी क्रम या परंपरा का चला चलना। किसी बात का जारी रहना। निवाह। जैसे, प्रीति का निर्वाह, कार्य का निर्वाह। २ किसी बात के अनुसार बराबर आचरण। पालन। जैसे, प्रतिभा का निर्वाह, वचन का निर्वाह। ३ समाप्ति। पूरा होना। ४ गुजारा।

निर्वाहक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो किसी काम का निर्वाह करे।

निर्वाहण—संज्ञा पु० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार ऐसे पदार्थों का नगर में ले जाना जिनके से जाने का निषेध हो। २ बाटक की पाँच सधियों में एक। निर्वहण सधि (को०)। ३ निभाना। निवाहना। पूरा करना (को०)।

निर्वाहना^७—क्रि० प्र० [सं० निर्वाह + हि० ना (प्रत्य०)] निर्वाह करना। उ०—दोष न कद्र है तुम्हें नेह निवहि को।—पद्माकर (शब्द०)।

निर्विघ्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्विघ्ना] विघ्नाचल से निकली हुई एक छोटी नदी जिसका उल्लेख मेघदूत में है।

निर्विकल्प^१—वि० [सं०] १ जो विकल्प, परिचर्जन या प्रभेदों आदि से रहित हो। २ स्थिर। निश्चित।

निर्विकल्प^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'निर्विकल्प समाधि'।

निर्विकल्प^३—संज्ञा पु० दे० 'निर्विकल्पक'।

निर्विकल्पक—संज्ञा पु० [सं०] १. वेदात के अनुसार वह अवस्था जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय में भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। २ न्याय के अनुसार वह भौतिक भौलौचनात्मक ज्ञान जो इन्द्रियजन्य ज्ञान से विस्कूल भिन्न होता है। बौद्ध शास्त्रों के अनुसार केवल ऐसा ही ज्ञान प्रमाण माना जाता है।

निर्विकल्प समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि जिसमें ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता आदि का कोई भेद नहीं रह जाता और ज्ञानात्मक सच्चिदानंद ब्रह्म के प्रतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

विशेष—इस समाधि की तुलना योग की सुषुप्ति अवस्था के साथ की जा सकती है।

निर्विकार^१—वि० [सं०] विकाररहित। जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्तन न हो।

निर्विकार^२—संज्ञा पु० परब्रह्म।

निर्विकास—वि० [सं०] जो खिला न हो। अनखिला [को०]।

निर्विघ्न^१—वि० [सं०] विघ्नवाधा रहित। जिसमें कोई विघ्न न हो।

निर्विघ्न^२—क्रि० वि० बिना किसी प्रकार के विघ्न या बाधा के। जैसे,—सब कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया।

निर्विचार^१—वि० [सं०] विचाररहित। जिसमें कोई विचार न हो।

निर्विचार^२—संज्ञा पु० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सर्वज्ञ समाधि।

विशेष—यह किसी सूक्ष्म भालवन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और इस समाधि में उस भालवन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल इसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है। ऐसी समाधि सबसे उत्तम समझी जाती है और उससे चित्त निर्मल होता है और बुद्धि सर्वप्रकाशक हो जाती है।

निर्विचिकित्स—वि० [सं०] १. सदेह से रहित। शय्यहीन। २. चित्त से रहित [को०]।

निर्विचेष्ट—वि० [सं०] जिसमें कोई चेष्टा या हरकत न हो। सज्ञाहीन [को०]।

निर्विण्ण—वि० [सं०] १. खिन्न। २. खेद या दुःख से पराभूत। ३. विरागयुक्त। ४. नम्र। ५. ज्ञात। निश्चित [को०]।

निर्वितर्क—वि० [सं०] वितर्करहित। जिसपर तर्क वितर्क न हो सके [को०]।

निर्वितर्क समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सर्वज्ञ समाधि जो किसी स्थूल भालवन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और जिसमें उस भालवन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है।

निर्विद्ध—वि० [सं०] १ धायल। माहृत। २ वियुक्त। एकाकी [को०]।

निर्विद्य—वि० [सं०] विद्याहीन। जो पढ़ा लिखा न हो।

निर्विरोध—वि० [सं०] विरोधरहित। खड्गनरहित। जिसका विरोध न हो [को०]।

निर्विते^७—वि० [सं० निवृत्ता] दे० 'निवृत्त'। उ०—माया से निर्वित भजन को करे बडाई।—पलटू, भा० १, पृ० १३।

निर्विवाद—वि० [सं०] जिसमें कोई विवाद न हो। बिना झगड़े का।

निर्विवेक—वि० [सं०] जो किसी बात की विवेचना न कर सकता हो। विवेकहीन।

निर्विवेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विवेक होने का भाव।

निर्विशेष^१—संज्ञा पु० [सं०] १. परब्रह्म। परमात्मा। २. भेद या अंतर का अभाव (को०)।

निर्विशेष—वि० जिसमें कोई अंतर न हो। समान। बिना भेद का [को०]।

निर्विशेषण—वि० [सं०] विशेषणरहित। विशेषताविहीन। जिसमें कोई गुण न हो [को०]।

निर्विष—वि० [सं०] विषहीन। जिसमें विष न हो।

निर्विषय—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से दूर कर दिया गया हो। २. जिसे कार्य करने को कोई क्षेत्र न हो। ३. बासवा से रहित। जैसे, मन [को०]।

निर्विषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निर्विषी'।

निर्विषो—संज्ञा स्त्री० [सं०] असवर्ग की जाति की एक घास। जदवार।

विशेष—यह पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर और सखपागिरि में

अधिकता से होती है। इसकी जड़ सतीस के समान होती है जिसका व्यवहार साँप बिच्छु आदि के विषों के प्रतिरिक्त शरीर के घोर भी अनेक प्रकार के विषों का नाश करने के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह जड़ कटु, शीतल, प्रण को मरनेवाली घोर कफ, वात, रुधिरविकार, विष को नष्ट करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—निविषा। प्रविषा। विविषा। विषहा। विषहन्त्री। विषाभावा। प्रविषा। विषवेरिणी।

निर्विष्ट—वि० [सं०] १. जो भोग कर चुका हो। २. जो विवाह कर चुका हो। ३. जो अग्निहोत्र कर चुका हो। ४. जो मूक्त हो गया हो। ५. जो पा चुका हो। जैसे, वेतन (को०)। ६. बैठा हुआ (को०)।

निर्विष्टार—वि० [सं०] आनंदहीन। निरानन्द (को०)।

निर्विज्ञ—वि० [सं०] १. बीजरहित। जिसमें बीज न हो। २. पुस्तकहीन। पुस्तक रहित (को०)। ३. जो कारण से रहित हो।

निर्विज्ञ समाधि—सका श्री० [सं०] पातजल के अनुसार समाधि की वह अवस्था जिसमें चित्त का निरोध करते करते उसका प्रवर्तन या बीज भी विलीन हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य को सुख दुःख आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता और उसका मोक्ष हो जाता है।

निर्विज्ञा—सका श्री० [सं०] किशमिश नाम का मेवा।

निर्विर—वि० [सं०] वीरों से रहित। वीरहीन (को०)।

निर्विरा—सका श्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति घोर पुत्र न हो।

निर्विर्य—वि० [सं०] वीर्यहीन। बल या तेज से रहित। कमजोर। निरुतेज। नपुंसक।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] वृक्षहीन (को०)।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] १. सतृप्त। प्रसन्न। २. बेपरवाह। चिंताहीन। ३. समाप्त। पूर्ण (को०)।

निर्वृष्ट—सका पुं० पर। आवास (को०)।

निर्वृष्टि—सका श्री० [सं०] १. संतोष। आनंद। २. विश्रांति। शान्ति। ३. मोक्ष। ४. पूर्णता। ५. स्वतंत्रता। मुक्ति। ३. मरण। नाश (को०)।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] जो पूरा हो गया हो। जिसकी निष्पत्ति हो गई हो।

निर्वृष्टात्मा—सका पुं० [सं० निर्वृष्टात्मन्] विष्णु।

निर्वृष्टि—सका श्री० [सं०] निष्पत्ति।

निर्वृष्ट—सका पुं० [सं०] भृति।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] जिसमें वेग या गति न हो। स्थिर।

निर्वृष्टन—वि० [सं०] अत्यंत निकट। बिना वेतन का (को०)।

निर्वृष्ट—सका पुं० [सं०] १. प्रपन्न। प्रपन्न। २. बेराग्य। ३. रोद। दुःख। ४. अनुताप। ५. साहित्य में नात रस का स्वामी भाव।

निर्वृष्ट—सका पुं० [सं०] कुमन। भेदन की क्रिया (को०)।

निर्वृष्टि—सका [सं०] सुभूत के अनुसार कान देखने का एक प्रकार।

निर्वृष्टा—सका पुं० [सं०] १. भोग। २. वेतन। जनसाह। ३. विवाह। म्याह। शादी। ४. मुर्दा। येहोसी।

निर्वृष्टन—सका पुं० [सं०] दरकी, जुलाहे जिसपर जाने का गूँथ सपेटते हैं (को०)।

निर्वृष्टिकता—सका श्री० [सं०] निर्वृष्ट + वैयक्तिक + ता (भाव०)। वैयक्तिक या निर्वृष्ट का न होने का भाव।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] जिसमें घेर न हो। उप से रहित।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] घेर का प्रभाव (को०)।

निर्वृष्टता—सका श्री० [सं०] निर्वृष्ट + ता (भाव०)। घेर का प्रभाव। निर्वृष्ट। उ०—प्राणा मेंटे हरि मन्त्र तन मन तबे विकार।—सब ही सुँ निर्वृष्टता दाहू यो मत सार।—राम० धर्म०, पु० २८५।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] १० 'निर्वृष्ट' (को०)।

निर्वृष्टन—वि० [सं०] १. पीड़ा से मुक्त। २. स्थिर। शांत (को०)।

निर्वृष्टन—सका पुं० १. छिद्र। बिबर। गुफा। २. प्रायश्चित्त। पीड़ा (को०)।

निर्वृष्टलोक—वि० [सं०] निष्कपट। उत्तररहित। उ०—चंकर हृष पु डरीक निवसत हरि चंकरो निर्वृष्टलोक मानस गृह संतत रहे छाई।—सुससी (सम्ब०)। २. उत्तरता के साथ काम करनेवाला। प्रसन्न। (को०)।

निर्वृष्टवधान—वि० [सं०] व्यवधानरहित। बाधरहित। मुला हुआ। उन्मुक्त (को०)।

निर्वृष्टवस्थ—वि० [सं०] क्रमरहित। कभी यह, कभी यह करनेवाला (को०)।

निर्वृष्टन—वि० [सं०] जिसमें बुरी मत्त न हो। दुर्वृष्टन से मुक्त (को०)।

निर्वृष्टज—वि० [सं०] १. निष्कपट। उत्तररहित। उ०—गूना यह उर पानु। निर्वृष्टज परिण प्यानु।—केनय (सम्ब०)। २. बाधरहित। ३. नैसर्गिक (को०)। ४. गूना। सच्चा (को०)।

निर्वृष्टाधि—वि० [सं०] व्याधि या रोग से मुक्त।

निर्वृष्टाधार—वि० [सं०] १. बेकार। २. निष्क्रिय। गतिहीन (को०)।

निर्वृष्टद—वि० [सं०] निर्वृष्टद १. समाप्त या पूरा किया हुआ। २. परिष्कृत। बड़ा हुआ। ३. प्रमाणित या प्रामाण्य किया हुआ। सिद्ध किया हुआ। ४. परिशुद्ध (को०)।

निर्वृष्टि—सका श्री० [सं०] निर्वृष्टि १. समाप्त। २. डार। दरवाजा। ३. भूँटी। ४. खोबरिदु। ५. क्षाप। काड़ा। ६. कपडो (को०)।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] प्रपन्न। बिना भाव या दण्ड का (को०)।

निर्वृष्ट—सका पुं० [सं०] [वि० निर्वृष्ट] १. सब को बचाने के लिये से जाता। २. निष्कामता। बाहुर करना (को०)। ३. जमाना। ४. नाश करना।

निर्वृष्ट—सका पुं० [सं०] सप्तत्योम। पुरोकोत्तम (को०)।

निर्हार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बाहर निकालना । २ काटना । खींच निकालना । ३ निर्मूलन । उपारना (जड़ आदि) । ४. मलमूत्र का त्याग । ५ व्यक्तिगत निधि । ६ घटाना [को०] ।

निर्हारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो शव को गृह से बाहर करे या स्मशान तक ले जाय [को०] ।

निर्हारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निर्हारिन्] १ निकालनेवाला । २ दूर तक फैलनेवाला । ३ महकनेवाला [को०] ।

निर्हेतु, निर्हेतुक—वि० [सं०] जिसमें कोई हेतु या कारण न हो ।

निर्ह्राद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । आवाज [को०] ।

निर्ह्रास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संक्षिप्ति । छोटा करना [को०] ।

निर्ह्राक—वि० [सं०] जिसे लाज न हो । निलज्ज । बेहया [को०] ।

निलम्बन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निलम्बन] १ लटकते या झूलते रहने का भाव । २ इधर न उधर । बीच की स्थिति । ३ किसी कर्मचारी पर कोई आरोप लगाकर उसे काय न करने देना । मुग्रतली ।

निल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो माली नामक राक्षस की वसुधा नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ या भोर जो विभीषण का मन्त्री था ।

निल्ल^२—वि० [सं० नील] नीले वण का । नीला । उ०—बाध-हिया निल पखिया बाढत दै वै लूण ।—ढोला०, दू० ३३ ।

निल्लज्ज—वि० [सं० निलज्ज, प्रा० निलज्ज] दे० 'निलज्ज' । उ०—रन ते निलज भाजि गृह आवा । इहाँ आइ वक ध्यान लगावा ।—मानस, ६।८४ ।

निल्लजर्ई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निलज + ई (प्रत्य०)] निलज्जता । वेशमी । बेहयाई । उ०—स्त्रीभिर्न लायक करतब कोटि कोटि कटु रीभिन्ने लायक तुलसी की निलजर्ई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निल्लजता^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निलज्जता] निलज्जता । वेशमी । बेहयाई । उ०—निलजता पर रीभि रघुबर वेहु तुलसिहि छोरि ।—तुलसी (ग्रन्थ०) ।

निल्लजी^५—वि० स्त्री० [सं० निलज्ज, हि० निलज] निलज्जा या लाजहीन (स्त्री) । वेशम । बेहया ।

निल्लज्ज—वि० [सं० निलज्ज] दे० 'निलज्ज' । उ०—प्रथम निलज्ज लाज नहि तोही ।—मानस, ५।१६ ।

निल्लय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १, मकान । घर । २ स्थान । अगृह । ३, पशुओं के रहने का स्थान (को०) । ४, घोसला । नोड (को०) । ५, लोप । षट्शून्य (को०) । ६, पूरी तरह लुप्त या गायब होना (को०) । ७, लुकना । छिपना (को०) ।

निल्लयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १, डेरा डालना । २, घर । वासस्थान । ३, उतरना । ४, बाहर जाना [को०] ।

निल्लहा—वि० [सं० नील + हा (प्रत्य०)] नील से सवधित । नीलवाला ।

दौ०—निल्लहा गोरा । निल्लहा साहब ।

निल्लाम—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नीलाम' ।

निल्लिप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निलिप्प] १, देवता । २, मन्त्रगण [को०] ।

यौ०—निलिपनिर्हारी=देवों की नदी । नगा । निलिपाधिप=इन्द्र । देवराज ।

निल्लिपा, निल्लिपिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निलिप्पा, निलिप्पिका] १, गाय । २, घुष घुहने की बालटी [को०] ।

निल्लीन—वि० [सं०] १ बहुत अधिक नील । २, छिया हुआ । लुका हुआ (को०) । ३, परिवर्तित । बदला हुआ (को०) । ४, नष्ट । समाप्त (को०) । ५, पूरा । पुरा (को०) । ६, तरलित । पिघला हुआ (को०) ।

निवक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवक्षस्] वह जो व या पशु जो यज्ञ आदि में उत्सर्ग किया जाय ।

निवचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १, व्याकरण में वचन का प्रभाव । २, बोलते जाना । कहते रहना ।

निवछावर—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'निछावर' ।

निवद्धियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नावर] एक प्रकार की नाव । दे० 'निवाहा' ।

निवना^६—क्रि० प्र० [सं० नमन] झुकना ।

निवपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पितरों आदि के उद्देश्य से कुछ दान करना । २ वह जो कुछ पितरों आदि के उद्देश्य से दान किया जाय ।

निवर^१—वि० [सं०] निवारण करनेवाला । निवारक ।

निवर^२—सञ्ज्ञा पुं० १ वह जो निवारण करे या रोके । निवारक । २ भावरण । रक्षण । बचाव [को०] ।

निवरा—वि० स्त्री० [सं०] जिसके वर न हो । पवित्राहिता । कुमारी ।

निवर्तक—वि० [सं०] १ लौटनेवाला । २ लौटानेवाला । फेर लाने वाला । ३ यम जानेवाला । ४, अपवारित करनेवाला [को०] ।

निवर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन काल में भूमि की एक नाप जो २१० हाथ लंबाई और २१० हाथ चौड़ाई की होती थी । २, निवारण । ३, हटना । लौटना । वापस होना । ४, पोछे हटाना या लौटाना ।

निवर्तित—वि० [सं०] जिसका निवर्तन किया गया हो ।

निवर्त्ती—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवर्त्तिन्] १ वह जो पोछे की ओर हट माया हो । २ वह जो युद्ध में से भाग आया हो । ३ निलसित ।

निवर्हण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निबहण' [को०] ।

निवसति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निवास । वासस्थान । गृह [को०] ।

निवसथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गाँव । २, सीमा । हद (हि०) ।

निवसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवस + वसन] १ गाँव । २ घर । ३ वस्त्र । ४, मत्तरोटा । स्त्री का सामान्य शयनवस्त्र (हि०) ।

निवसना—क्रि० प्र० [सं० निवसेन या निवास] रहना । निवास करना । उ०—(क) यहि मिसि चित्रकूट की महिमा मुनिवर बहुत बखानि : सुनत राम हरखित तहँ निवसे पावन गिरि पहिचानि ।—देवस्वामी (शब्द०) । (ख) बल बालक नंदराज समेता । मम गृह निवसहु कृपानिकेता ।—गोपाल (शब्द०) ।

निवह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १, समूह । ग्रूथ । उ०—किशुक वरन सुप्रसूक

सुखमा सुखन समेत । जनु विधु निवह रहे करि दामिन निकर
निकेत ।—तुलसी (शब्द०) । २. सात वायुओं में से
एक वायु ।

विशेष—फलित ज्योतिष में सात वायुएँ मानी गई हैं जिनमें से
प्रत्येक वायु एक वर्ष तक बहती है । निवह वायु भी उन्हीं में
से एक है । यह न तो बहुत तेज होती है और न बहुत धीमी ।
जिस वर्ष यह वायु चलती है, कहते हैं कि उस वर्ष कोई सुखी
नहीं रहता ।

३ घनन की सात जिह्वाओं में से एक (को०) । ४ वध (को०) ।
५ अनिल । वायु (को०) ।

निवाई—वि० [सं० नव] १ नवीन । नया । २. अनोखा । विल-
क्षण । उ०—पुनि लक्ष्मी यो विनय सुनाई । डरौ देखि यह
रूप निवाई ।—सूर (शब्द०) ।

निवाकु—वि० [सं०] चुप । जो आवाज न करता हो । मौन (को०) ।

निवाज^१—वि० [फ्रा०] कृपा करनेवाला । अनुग्रह करनेवाला ।

विशेष—इसका प्रयोग फारसी और अरबी भादि शब्दों के अंत
में यौगिक में होता है । जैसे गरीबनिवाज

निवाज^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० नमाज] दे० 'नमाज' ।

निवाजना^①—क्रि० सं० [फ्रा० निवाज] अनुग्रह करना । कृपा
करना । कृपापात्र बनाना । उ०—(क) नाम गरीब अनेक
निवाजे । लोक वेद पर बिरद विराजे ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) कायर कूर कपूतन की हृद तेऊ गरीबनिवाज निवाजे ।
—तुलसी (शब्द०) ।

निवाजिश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० नवाजिश] १ कृपा । मेहरबानी ।
२. दया । अनुकंपा ।

निवाड़—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निवार' ।

निवाड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ छोटी नाव । २ नाव की एक क्रीड़ा
जिसमें उसे बीच में ले जाकर चक्कर देते हैं । नावर ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

निवाड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निवारी' ।

निवात^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ रहने का स्थान । घर । २ वह वर्म जो
शस्त्र के द्वारा छेदा न जा सके । ३ वह स्थान जहाँ हवा न
हो (को०) । ४ सुरक्षित स्थान (को०) । ५ दीपक को हवा से
बचाने के लिये बनाया गया एक उपकरण । उ०—जासीदार
चाँदी के बड़े बड़े निवात, जिनके भीतर अन्नक लगे हुए थे,
अपने पचदीप को जैसे अपने भीतर ही भीतर जला रहे थे,
ठीक उसी तरह अग्निमित्र जल रहा था ।—इरावती,
पृ० १०५ ।

यौ०—निवातकवच = (१) एक प्राचीन जाति (जो दैत्य माने
गए हैं) । (२) हिरण्यकशिपु का एक पोत्र ।

निवात^२—वि० १ जहाँ वायु न हो । २ अक्षत । बिना छोट का ।
३. सुरक्षित । ४ (कवच भादि) खूब अच्छे ढंग से ढहने
हुए । ५. घनी या गन्धित बुनावट का (को०) ।

१-५४

निवान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निम्न] १ नीची जमीन जहाँ सीढ़, कीचड़
या पानी भरा रहता हो । २. जलाशय । झील । बड़ा
तालाब ।

निवाना^१—क्रि० सं० [सं० नत्र] नीचे की तरफ करना । झुकाना ।

निवान्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह बिना बछड़े की गाय जो किसी अन्य
गाय के बछड़े से पेन्हुवाकर दुही जाय (को०) ।

निवाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वीज । अनाज । २. पितृतर्पण । तर्पण
(श्राद्ध में) । ३ दान । उपहार (को०) ।

निवार^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नेमि + आर] पहिए के आकार का
लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुएँ की नींव में दिया जाता
है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है । आखन ।
जमवट ।

निवार^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० नवार] बहुत मोटे सूत की बुनी हुई
प्रायः तीन चार अंगुल चौड़ी पट्टी जिससे पलंग आदि बुने
जाते हैं । निवाड । नेवार ।

यौ०—निवारबाफ ।

निवार^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीवार] तिन्नी का धान । मुन्यन्न । पसही ।
उ०—कहूँ मूल फल दल मिलि कूटत । कहूँ कहूँ पके निवारनि
छूटत ।—गुमान (शब्द०) ।

निवार^४—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मूली जो बहुत मोटी और
स्वाद में कुछ मोठी होती है, कड़ई नहीं होती ।

निवार^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निवारण' (को०) ।

निवारक—वि० [सं०] १. रोकनेवाला । रोधक । २. दूर करनेवाला ।
मिटानेवाला ।

निवारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रोकने की क्रिया । २. हटाने या दूर
करने की क्रिया । ३. निवृत्ति । छुटकारा ।

निवारन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवारण] दे० 'निवारण' । उ०—ताते
कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ।—मानस, ३।३८ ।

निवारना^①—क्रि० सं० [सं० निवारण] १. रोकना । दूर करना ।
हटाना । उ०—(क) पोंछि रुमालन सों धमसीकर भौर की
भौर निवारत ही रहे ।—हरिश्चंद्र(शब्द०) । (ख) पलका पे
पोढ़ि अम राति को निवारिए ।—मतिराम (शब्द०) । २.
वचाना । रक्षा के साथ काटना या बिताना । उ०—(क) यह
सुख ठाम को आराम को निहारो नेक, मेरे कहे घरिक निवारि
लीजै घाम को ।—(शब्द०) । (ख) घाम घरीक निवारिए
फलित ललित अलिपुंज । जमुना तीर तमाल तब मिलति
मालती कुज ।—विहारी (शब्द०) । ३. निषेध करना ।
मना करना । उ०—सैनहि लखनहि राम निवारे ।—तुलसी
(शब्द०) । ④ ४. चुकता करना ।

निवार बाफ—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० नवार + बाफ] निवार बुननेवाला ।

निवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली या नेमाली] १ लूही की जाति
का एक फेलनेवाला साढ़ या पोधा जो लूही के पोषों से बड़ा
होता है ।

विशेष—इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबोतरे होते हैं और बरसात में इसमें झूही की तरह के छोटे सफेद फूल लगते हैं। ये फूल ग्राम के बोर की तरह गुच्छों में होते हैं और इनमें से भीनी मनोहर सुगंध निकलती है। वैद्यक में इसे चरपरी, कड़वी, शीतल, हलकी और त्रिदोष, नेत्ररोग, मुखरोग और कण्ठरोग आदि को दूर करनेवाली माना है।

२ इस पीधे का फूल। ३ नेपाल में बोली जानेवाली एक भाषा।

निवाला—सञ्ज्ञा पुं० [क्रा० निवालह्] उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाल जाय। कोर। घास। लुकमा।

निवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रहने की क्रिया या भाव। २ रहने का स्थान। ३ घर। मकान। ४ वस्त्र। कपड़ा।

निवासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ घर। आवास। २. कालक्षेप करना। समय काटना। ३ अल्पकालिक निवास [को०]।

निवासस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रहने का स्थान। वह स्थान जहाँ कोई रहता हो। २. घर। मकान।

निवासी—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवासिन्] [स्त्री० निवासिनी] १ रहनेवाला। बसनेवाला। वासी। २. पोशाक पहननेवाला [को०]।

निवाय—पि० [सं०] रहने योग्य।

निविड—वि० [सं० निविड] १ घना। घन। घोर। २ गहरा बँधा या कसा हुआ। जैसे, निविड मुष्टि। ३ भड़ा [को०]। ४ स्थूल। मोटा [को०]। ५ बृहदाकार [को०]। ६ जिसकी नाक चिपटी या दबी हुई हो।

निविडता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निविडता] वशी या इसी प्रकार के किसी और बाजे के स्वर का गभीर होना जो उसके पाँच गुणों में से एक गुण माना जाता है।

निविडीश, निविडीस—वि० [सं०] दे० 'निविरीश' [को०]।

निविद्धान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो एक ही दिन में समाप्त हो जाय।

निविरीश निविरीस—वि० [सं०] १. घना। गम्भीर। २ कठोर। स्थूल [को०]।

निविल—वि० [सं० निविड] दे० 'निविड'। उ०—निविल मांसल मधकार देपु।—वरुण०, पृ० १६।

निविशमान—सञ्ज्ञा सं० [सं०] वे लोग जिनसे उपनिवेश बसाए जायें।
विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में राज्य ऐसे लोगों को मिला, पशु तथा संपत्ति से सहायता पहुँचाता था।

निविशेष^१—वि० [सं०] जिसमें भेद न हो। एकरूप [को०]।

निविशेष^२—सञ्ज्ञा पुं० भ्रंतर या भेद का अभाव। समानता एकरूपता [को०]।

निविषा—वि० [सं० निविष] दे० 'निविष'।

निविष्ट—वि० [सं०] जिसका चित्त एकाग्र हो। २ एकाग्र। ३ लपेटा हुआ। ४ घुसा या घुसाया हुआ। ५, बाँधा हुआ। ६ स्थित। रुद्धा हुआ।

निविष्टपण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बोरों में मरा हुआ मांस [को०]।

निवीत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोढ़ने का कपड़ा। चादर। २. यज्ञोपवीत [को०]। ३, यज्ञोपवीत को गले में माला की तरह धारण करना [को०]।

निवीती—वि० [सं० निवीतिन्] यज्ञोपवीत को गले में माला की तरह धारण करनेवाला।

विशेष—साधारणतः यज्ञोपवीत वाम कंधे पर धारण किया जाता है। परंतु ऋषिपूजन के अवसर पर उसे गले में माला की तरह धारण करने का विधान है। साधारण ढंग से पहननेवाले को उपवीती और इस विशेष ढंग से पहननेवाले को निवीती कहते हैं।

निवीर्य—वि० [सं०] वीर्यहीन। जिसमें वीर्य या पुरुषत्व न हो।

निवृत्^१—वि० [सं०] १ बंद। घिरा हुआ। २ रोका हुआ। पकड़ा हुआ। प्रस्त [को०]।

निवृत्^२—सञ्ज्ञा पुं० मोढ़ने या लपेटने का कपड़ा [को०]।

निवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घावरण। घेरा। मंडल [को०]।

निवृत्ता—वि० [सं०] १ छूटा हुआ। २. जो अलग हो गया हो। विरक्त। ३ जो छुट्टी पा गया हो। खाली। ४ लौटा हुआ [को०]। ५ दूर गया या भागा हुआ [को०]। ६. अस्तगत [को०]।

यौ०—निवृत्तकारण = (१) जिसका कोई कारण या प्रेरणा न हो। (२) अनासक्त या निस्पृह व्यक्ति। निवृत्तमास = जिसने मास खाना छोड़ दिया हो। निवृत्तायौवन = जिसका यौवन लौट आया हो। निवृत्तराग = रागहीन। विरक्त। निवृत्तलोभ्य = जो इच्छुक न हो। अनाकांक्षा। निवृत्तवृत्ति = अपनी वृत्ति या पेशा त्याग करनेवाला।

निवृत्तवृद्धिक आधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो बिना व्याज पर किसी के यहाँ जमा हो।

निवृत्तसत्तापनीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु के अनुसार एक रसायन जिसमें अठारह भोषधियाँ हैं।

विशेष—कहते हैं, इस रसायन के सेवन से मनुष्य का शरीर युवा के समान और बल सिंह के समान हो जाता है और वह मनुष्य श्रुतिधर हो जाता है। ये सब भोषधियाँ सोमरस के समान वीर्ययुक्त मानी जाती हैं। इनके नाम ये हैं—अजगरी, श्वेतकपोती, कृष्णकपोती, गोनसी, वाराही, कन्या, छत्रा, करेणु, प्रजा, चक्रका, आदित्यवर्णिनी, ब्रह्मसुवर्चला, आवणी, महाश्रावणी, गोलोमी, अजलोमी और महावेगवती।

निवृत्तात्मा^१—वि० [निवृत्तात्मन्] विषयो से अलग रहनेवाला [को०]।

निवृत्तात्मा^२—सञ्ज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

निवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुक्ति। छुटकारा। २ प्रवृत्ति का अभाव या उलटा। २, बौद्धों के अनुसार मुक्ति या मोक्ष। १ एक प्राचीन तीर्थ का नाम। ४. वापस होना। वापसी [को०]। समाप्ति [को०]।

निवेद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवेद्य] दे० 'निवेद्य'।

निवेदक—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निवेदन करनेवाला । प्रार्थी ।
 निवेदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विनय । विनती । २. प्रार्थना । ३. समर्पण । ४. शिव का एक नाम (को०) ।
 निवेदना—क्रि० स० [हि० निवेदन] १. विनती करना । प्रार्थना करना । २. नजर करना । कुछ भोज्य पदार्थ आगे रखना । नैवेद्य चढ़ाना । अर्पित कर देना । उ०—सदा मापु को मोहि निवेदं । प्रेम माल ते अर्पिहि छेदै ।—रघुनाथ (शब्द०) ।
 निवेदित—वि० [सं०] १. चढ़ाया हुआ । अर्पित किया हुआ । २. कहा हुआ । सुनाया हुआ । निवेदन किया हुआ ।
 निवेद्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नैवेद्य (को०) ।
 निवेरना—क्रि० स० [हि० निवेचना] १. निबटना । फैसल करना । २. खतम कर देना । उ०—प्रति बहु केलि गोपिकन केरी । संसैपै मैं कछु क निवेरी ।—रघुनाथ (शब्द०) । ३. छाटना । चुन लेना । ४. छुड़ाना । दूर करना । हटाना । उ०—कुलवत निकारहि नारि सती । गृह आनहि चेरि निवेरि गती ।—तुलसी (शब्द०) ।
 निवेरा—वि० [हि० निवेचना या निवेरना] १. चुना हुआ । छाटा हुआ । उ०—प्राजु भई कैंसी गति तेरी ब्रज में चतुर निवेरी ।—सूर (शब्द०) । २. नवीन । अनोखा । नया । (क) में यह प्राजु निवेरी आई ? बहुते आदर करति सब मिलि पहने की कीलै पहनाई ।—सूर (शब्द०) ।
 निवेसी—क्रि० स० [हि० नवेसी] नए उम्र की । नवेली ।
 निवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह । २. शिविर । डेरा । खेमा । ३. प्रवेश । ४. घर । मकान । ५. फैलाव । विस्तार । परिधि । घेरा (स्तनों का) (को०) । ६. प्रतिलिपि । नकल (को०) । ७. राज्या (को०) । ८. सेवा के पढ़ाव डालने की जगह (को०) । ९. स्थापन । निवेशन (को०) ।
 निवेशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० निवेशनी] १. घोंसला । नीड । २. नगर (को०) । ३. दे० 'निवेश' (को०) ।
 निवेशनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पुथ्वी (को०) ।
 निवेष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह कपड़ा जिससे कोई चीज ढाँकी जाय । २. सामवेद का मंत्रभेद ।
 निवेष्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तोपना । ढकना (को०) ।
 निवेष्ट्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. व्याप्ति । २. वरफ का पानी । ३. जल-स्तन । ४. धवल तुषार । हिमसीकर (को०) । ५. आवर्त । भँवर (को०) । ६. वातचक्र । बवडर (को०) ।
 निवेसना—क्रि० स० [सं० नि+विश] बैठाना । उ०—प्रोतम जब कर पकज धरे । बल करि सेज निवेसित करें ।—नद० ग्रं०, पृ० १४५ ।
 निव्याधी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निव्याधिन्] एक रत्न का नाम ।
 निव्यूढ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निव्यूढ] दे० 'निव्यूढ' (को०) ।
 निश—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । २. हल्दी ।

निशंक^१—वि० [सं० निशङ्क] जिसे किसी बात की शका या भय न हो । निभंय । निडर । बेझोफ ।
 निशक^२—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का नृत्य विशेष ।
 निशाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषङ्ग] दे० 'निषण' ।
 निशा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० निष्] रात्रि । रजनी ।
 निशाचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर' ।
 निशाठ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बलदेव के एक पुत्र का नाम ।
 निशाठ^२—वि० ईमानदार (को०) ।
 निशातर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नशतर] दे० 'नशतर' ।
 निशावद—वि० [सं०] चुप । न बोलता हुआ । मोन (को०) ।
 निशमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. श्रवण । सुनना । ३. जानना । परिचय पाना (को०) ।
 निशरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मारण । घातन । बध करना (को०) ।
 निशाख्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दंती वृक्ष ।
 निशांत^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशान्त] १. रात्रि का अंत । पिछली रात । रात का चौथा पहर । २. प्रभात । तडका । ३. घर । गृह ।
 निशांत^२—वि० जो बहुत ही शांत हो ।
 निशांतनारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [निशान्तनारी] गृहिणी ।
 निशांध^१—वि० [सं० निशान्ध] रात्र्यध । रात का अंधा । जिसे रात को न सुझे । जिसे रतोंघो होती हो ।
 निशांध^२—सञ्ज्ञा पुं० फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग जो उस समय पड़ता है जब सिंहराशि में सूर्य हों ।
 विशेष—कहते हैं, इस योग के पड़ने से मनुष्य को रतोंघो होती है ।
 निशाघा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निशान्घा] १. जनुका या पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ मोषधि के काम में आती हैं । २. राजकन्या । राजकुमारी ।
 निशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि । रजनी । रात । २. हरिद्रा । हल्दी । ३. दासहरिद्रा । ४. फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन आदि छह राशियाँ । दे० 'राशि' । ५. स्वप्न । सपना (को०) ।
 निशाकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । राशि । चाँद । २. कुक्कुट । मुरगा । ३. महादेव । ४. एक महर्षि का नाम । ५. कपूर । ६. एक की संख्या (को०) ।
 यौ०—निशाकरकलामौलि = शिव ।
 निशाकात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशाकान्त] चंद्रमा (को०) ।
 निशाकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (को०) ।
 निशाक्षय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अवनान । रात की समाप्ति (को०) ।
 निशाखातिर—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० खातिर + फा० निशा (खातिर-निशा)] तसल्ली । दिखजमई । प्रबोध ।
 निशाख्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी ।

निशागृह—सङ्घा पु० [सं०] शयनागार [को०] ।

निशाचर—सङ्घा पु० [सं०] १ राक्षस । २ शृगाल । ३ गीदड़ । ४ उल्लू । ५ सर्प । ६ चक्रवाक । ७ भूत । ८ चोर । ९ ग्रथि-परण का एक भेद । १० महादेव । १० चोर नामक गधद्रव्य । ११ बिल्ली । १२ वह जो रात को चले । जैसे, कुलटा, पिशाच आदि ।

निशाचरपति—सङ्घा पु० [सं०] १ शिव । महादेव । २ रावण ।

निशाचरी—सङ्घा स्त्री [सं०] १ राक्षसी । २ कुलटा । ३ केशिनी नामक गधद्रव्य । ४ भूमिसारिका नायिका ।

निशाचर्म—सङ्घा पु० [सं० निशाचर्मन्] गधकार । २ भंघेरा ।

निशाचारी—सङ्घा पु० [सं० निशाचारिन्] १ शिव । २ निशाचर ।

निशाजल—सङ्घा पु० [सं०] १ हिम । पाला । २ ओस ।

निशाट—सङ्घा पु० [सं०] १ उल्लू । २ निशाचर ।

निशाटक—सङ्घा [सं०] गूगल ।

निशाटन^१—सङ्घा पु० [सं०] उल्लू ।

निशाटन^२—वि० जो रात को विचरण करे । निशाचर ।

निशात—वि० [सं०] १ सान घरा हुआ । तेज किया हुआ । २ चमकाया हुआ [को०] ।

निशातिक्रम—सङ्घा पु० [सं०] रात का वीतना [को०] ।

निशातैल—सङ्घा पु० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल ।

विशेष—यह सेर भर कड़वे तेल, घतूरे के पतों का चार सेर रस, भाठ तोले पीसी हुई हलदी और चार तोले गधक के मेल से बनता है । यह तेल कान के रोगों के लिये विशेष उपकारी माना जाता है ।

निशाद—सङ्घा पु० [सं०] १ वह व्यक्ति जो रात को खाता हो । २ दे० 'निषाद' [को०] ।

निशादि—सङ्घा पु० [सं०] रात्रि का प्रारम्भ । सायंकाल [को०] ।

निशाधतैल—सङ्घा पु० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो मगधर के लिये उपकारी माना जाता है ।

विशेष—यह तेल कड़वा तेल, पीसी हुई हलदी, सेंधा नमक, चितामूल और गुग्गुलु आदि के मेल से बनाया जाता है ।

निशाधीश—सङ्घा पु० [सं०] दे० 'निशापति' ।

निशान^१—सङ्घा पु० [सं०] तेज करना । सान पर चढ़ाना ।

यौ०—निशानपट्ट = सान धरने का पट्टर ।

निशान^२—सङ्घा पु० [फा०] १ लक्षण जिससे कोई चीज पहचानी जाय । चिह्न । जैसे,—(क) उस मकान का कोई निशान बता दो तो जल्दी पता लग जायगा । (ख) जहाँ तक पुस्तक पढ़ो उसके आगे कोई निशान रख दो । २ किसी पदार्थ से प्रकृत किया हुआ प्रथवा और किसी प्रकार बना हुआ चिह्न । जैसे, पैर का निशान, श्रौंठे का निशान, वनियों की पहचान के लिये बनाए हुए निशान (प्रक्षर), किताब पर बनाए हुए निशान आदि ।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—लगाना ।—बनाना ।

३ शरीर ग्रथवा और किसी पदार्थ पर बना हुआ स्वाभाविक या और किसी प्रकार का चिह्न, दाग या घन्ना । जैसे, किसी पशु पर बना हुआ गुल का निशान, चेहरे पर बना हुआ गुम्बर का निशान । ४ किसी पदार्थ का परिचय करने के लिये उसके स्थान पर बनाया हुआ कोई चिह्न । जैसे, ज्योतिष में ग्रहों आदि के बनाए हुए निशान, वनस्पति शास्त्र में वृक्ष, झाड़ो और नर या मादा पेड़ या फूल के लिये बनाए हुए निशान । ५ वह चिह्न जो भ्रष्ट आदमी अपने हस्ताक्षर के बदले में किसी कागज आदि पर बनाता है । ६ वह लक्षण या चिह्न जिससे किसी प्राचीन या पहले की घटना प्रथवा पदार्थ का परिचय मिले । जैसे, किसी पुराने नगर आदि का खडहर ।

यौ०—नाम निशान = (१) किसी प्रकार का चिह्न या लक्षण । (२) अस्तित्व का लेश । बचा हुआ थोड़ा प्रथ । जैसे,—वहाँ प्रथ किसी घर का नाम निशान नहीं है ।

७. पता । ठिकाना ।

मुहा०—निशान देना = (१) पता बताना । (२) आसामी को सम्मन आदि तामील करने के लिये पहचनवाना ।

यौ०—निशानदेही ।

८ वह चिह्न या संकेत जो किसी विशेष कार्य या पहचान के लिये नियत किया जाय । ९ समुद्र में या पहाड़ों आदि पर बना हुआ वह स्थान जहाँ लोगों को मार्ग आदि दिखाने के लिये कोई प्रयोग किया जाता है । जैसे मार्गदर्शक प्रकाशालय आदि (लश०) । १० दे० 'लक्षण' । ११ दे० 'निशाना' । १२. दे० 'निशानो' । १३. ध्वजा । पताका । झंडा ।

मुहा०—किसी बात का निशान उठाना या खड़ा करना = (१) किसी काम में अनुप्रा या नेता बनकर लोगों को अपना अनुयायी बनाना । जैसे, बगावत का निशान खड़ा करना । (२) आंदोलन करना ।

निशानकोना—सङ्घा पु० [सं० ईशान+हि० कोना] उत्तर और पूर्व का कोण (लश०) ।

निशानची—सङ्घा पु० [फा० निशान+ची (प्रत्य०)] वह जो किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे झंडा लेकर चलता हो । निशानवरदार ।

निशानदिही—सङ्घा स्त्री [फा०] दे० 'निशानदेही' ।

निशानदेही—सङ्घा स्त्री [फा० निशान+हि० देना या फा० देह (= देना)] आसामी को सम्मन आदि की तामील के लिये पहचनवाने की क्रिया । आसामी का पता बतलाने का काम ।

निशानपट्टी—सङ्घा स्त्री [फा० निशान+हि० पट्टी] चेहरे की बनावट आदि प्रथवा उसका धर्तुन । हुलिया ।

निशानवरदार—सङ्घा पु० [फा०] वह जो किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे झंडा लेकर चलता हो । निशानची ।

निशापति—सङ्घा पु० [सं०] १ चंद्रमा । विशाकर । २ कपूर । कपूर ।

निशाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० निशानह्] १ वह जिसपर ताक कर किसी भस्त्र या शस्त्र आदि का वार किया जाय । लक्ष्य ।

मुहा०—निशाना करना या बनाना = भस्त्र आदि के वार करने के लिये किसी को लक्ष्य बनाना । निशाना होना = निशाना बनना । लक्ष्य होना ।

२ किसी पदार्थ को लक्ष्य बनाकर उसकी ओर किसी प्रकार का वार करना ।

मुहा०—निशाना बाँधना = वार करने के लिये भस्त्र आदि को इस प्रकार साधना जिसमें ठीक लक्ष्य पर वार हो । निशाना मारना या लगाना = ताककर भस्त्र शस्त्र आदि का वार करना । निशान साधना = (१) निशाना बाँधना । (२) निशाना लगाने का अभ्यास करना ।

३. मिट्टी आदि का वह ढेर या ओर कोई पदार्थ जिसपर निशाना साधा जाय । ४ वह जिसपर लक्ष्य करके कोई व्यग्य या वात कही जाय ।

निशानाथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ स्मृति के उद्देश्य से दिया अथवा रखा हुआ पदार्थ । वह जिससे किसी का स्मरण हो । यादगार । स्मृतिचिह्न । जैसे,—(क) हमारे पास यही घड़ी उनकी निशानी है । (ख) चलते समय हमें अपनी कुछ निशानी तो दे जाओ । (ग) बस यही लडका हमारे स्वर्गीय मित्र की निशानी है ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

२ वह चिह्न जिससे कोई चीज पहचानी जाय । निशान । पहचान ।

निशापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर [को०] ।

निशापुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र आदि आकाशीय पिंड । २ दानव । निशाचर [को०] ।

निशापुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुमुदिनी । कोई ।

निशाबल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धन और मकर ये छह राशियाँ जो रात के समय अधिक बलवती मानी जाती हैं ।

विशेष—फलित ज्योतिष में दो प्रकार की राशियाँ मानी जाती हैं—निशाबल और दिनबल । उक्त छह राशियाँ निशाबल और शेष दिनबल मानी जाती हैं । कहा जाता है, जो काम दिन के समय करना हो वह दिनबल राशियों में और जो काम रात के समय करना हो वह रात्रिबल राशियों में करना चाहिए ।

निशाभंगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निशाभङ्गा] दुग्धपुच्छी नामक पौधा ।

निशामणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २ कपूर ।

निशामन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २ आलोचन । ३. श्रवण । सुनना ।

निशामय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

निशामुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सव्याकाल । गोधूलि का समय ।

निशामृग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गौदड़ ।

निशारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रात्रियुद्ध । २ मारण । वध । निशरण [को०] ।

निशारत्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २. कपूर ।

निशारुक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सात प्रकार के रूपक तालों में से एक प्रकार का ताल जिसमें दो सधु और दो गुरु मात्राएँ होती हैं । इसका व्यवहार प्रायः हास्य रस के गीतों के साथ होता है ।

निशारुक—वि० [सं०] बहुत अधिक हिंसा करनेवाला ।

निशावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सन का पौधा ।

निशावसान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रात का अंतिम भाग । प्रभात । तडका ।

निशाविहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रासस ।

निशावेदी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशावेदिन्] कुक्कुट । मुर्गा [को०] ।

निशास्ता^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. गेहूँ को भिगोकर उसका निकाला और जमाया हुआ सत या गुवा । २. माँड़ी । कलफ ।

निशास्ता^२—वि० जमाया हुआ । वैठाया हुआ । स्थापित [को०] ।

निशाहस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुमोदनी ।

निशाहसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका । सिंदुवार । निगुंडी ।

निशाह्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ हलदी । २. जतुका नाम की लता ।

निशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । रात्रि । रजनी । २. हलदी ।

निशिकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । शशि ।

निशिचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशाचर] ३० 'निशाचर' ।

निशिचरराज^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] राससों का राजा विभीषण ।

निशित^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लोहा ।

निशित^२—वि० १ चोखा । तेज । तीखा । जो साव पर चढ़ा हुआ हो । २. उत्तेजित [को०] ।

निशिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रात [को०] ।

निशिदिन—क्रि० वि० [सं०] रातदिन । सदा । सर्वदा ।

निशिनार्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निशानार्थ' ।

निशिनार्थक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निशानार्थ' ।

निशिपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निशापति' ।

निशिपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में भगण, जगण, सगण, नगण और रगण होता है । जैसे,—भाजे सुनि राघव कवींद्र कुल की नई । काव्य रचवा विपुल वित्त तिहि दे दई । वार निशिपाल हम से बुध कवी जने । हो रुप चिरायु अखिलेश कवि यों मने ।—अखिलेश (शब्द) ।

निशिपालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निशिपाल' ।

निशिपुष्पा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निगुंडी नामक फूल का पेड़ । सिंदुवार ।

निशिपुष्पिका, निशिपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निगुंडी । शेफालिका । सिंदुवार ।

निशिवासर—संज्ञा पुं० [सं०] रातदिन । सदा । सर्वदा । हमेशा ।
निशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोने का समय । रात । २. प्राची रात । ३ भागवत के अनुसार रात्रि के एक कल्पित पुत्र का नाम ।

निशोथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

यौ०—निशोथिनीपति = चंद्रमा ।

निशोथिनीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कपूर । २ शशि । चंद्रमा (को०) ।

निशोथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात (को०) ।

निशुभ—संज्ञा पुं० [सं० निशुम्भ] १ वध । २ हिंसा । ३ खडन । तोटना (को०) । ४ पुराणानुसार एक असुर का नाम जिसका जन्म कश्यप ऋषि की स्त्री दनु से गर्भ से हुआ था और जो शुभ तथा निमुचि (नमुचि) का भाई था ।

विशेष—निमुचि तो इंद्र के हाथ से मारा गया था पर शुभ और निशुभ ने देवताओं पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया था और स्वर्ग पर राज्य करना प्रारंभ कर दिया था । जब दोनों ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला तब निशुभ ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्गा को मार डालूंगा । उस समय नर्मदा नदी से निकलकर चंड और मुंड नामक दो और राक्षस भी इन लोगों में मिल गए । पहले शुभ और निशुभ ने दुर्गा से कहा कि तुम हमसे किसी के साथ विवाह करो पर दुर्गा ने कहा कि रण में मुझे जो जीतेगा उसी से मैं विवाह करूंगी । रण में दुर्गा ने पहले धूम्रलोचन, चंड, मुंड, रक्तबीज आदि असुरों तथा उनके साथियों को मारा । फिर शुभ और निशुभ ने युद्ध प्रारंभ किया । देवी ने पहले निशुभ को तब शुभ को मारा जिससे असुरों का उत्पात शांत हुआ और इंद्र को फिर स्वर्ग का राज्य मिला ।

यौ०—निशुभमथनी = दुर्गा । निशुभमदिनी ।

निशुभन—संज्ञा पुं० [निशुम्भन] वध । मार डालना ।

निशुभमदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निशुम्भमदिनी] दुर्गा ।

निशुभी—संज्ञा पुं० [सं० निशुम्भिन्] एक बुद्ध का नाम ।

निशेश—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

निशैत—संज्ञा पुं० [सं०] बक । बगुला ।

निशोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमात । तड़का ।

निश्कुला—वि० [सं०] अपने कुल से निकाली हुई (स्त्री) ।

निश्चंद्र—वि० [सं० निश्चन्द्र] १ चंद्रमारहित । २ जिसमें चमक न हो ।

निश्चंद्र अन्नक — संज्ञा पुं० [सं० निश्चन्द्र अन्नक] वैद्यक में वह अन्नक जो दूध, ग्वारपाठा, आदमी के मूत्र, बकरी के दूध आदि कई पदार्थों में मिलाकर और सो बार उसका पुट देकर तैयार किया जाता है ।

विशेष—कहते हैं, यह पशुराज के समाज हो जाता है । यह योग्यवर्क, रसायन और ज्वरनाशक माना जाता है ।

निश्चक्र—वि० [सं०] ३० 'निशेष' (को०) ।

निश्चक्रिक—वि० [सं०] १ चक्रविहीन । चक्ररहित । २ छत्रविहीन ।

निश्चक्षु—वि० [सं० निश्चक्षुस्] अंधा । बिना आँखवाला (को०) ।

निश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसी धारणा जिसमें कोई संदेह न हो । निश्चय ज्ञान । २ विश्वास । यकीन । ३ निर्णय । जैसे,—इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि यह वस्तु क्या है ।

विशेष—निश्चय बुद्धि की वृत्ति है ।

४ पक्का विचार । दृढ़ संकल्प । पूरा इरादा । जैसे,—मेने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया है । ५ जाँच । प्रत्येक्षण (को०) । ६ एक प्रत्यालंकार जिसमें अन्य विषय का निषेध होकर प्रकृत या यथार्थ विषय का स्थापन होता है । जैसे,—नहिं सरोज यह वदन है नहिं इंदोवर नैन । मधुकर ! जनि घावे गुषा, मानि हमारे देन । यहाँ सरोज और इन्दोवर का निषेध करके यथार्थ वस्तु मुख और नैन की स्थापना हुई है ।

निश्चयात्मक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निश्चयात्मिका] जो बिल्कुल निश्चित हो । ठीक ठीक । असंदिग्ध ।

निश्चयात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चयात्मक होने का भाव । यथायता । असंदिग्धता ।

निश्चयार्थक—वि० [सं० निश्चयार्थ + क] निश्चित अर्थवाला । जिसके अर्थ में हेरफेर न किया जा सके । —उ०—यथार्थ के तत्त्वों द्वारा, निश्चयायक शब्दों में, ज्ञान की किसी स्वचालित व्यवस्था का निर्माण करना विज्ञान का सार है । —पा० सा० सि०, पु० ७ ।

निश्चर—संज्ञा पुं० [सं०] एकादश मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक ।

निश्चल—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से न हटे । अचल । अटल । २ जो जरा भी न हिले डले । स्थिर ।

निश्चलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चल होने का भाव । स्थिरता । दृढ़ता ।

निश्चलांग^१—संज्ञा पुं० [सं० निश्चलाङ्ग] १ बगुला । २. पर्वत आदि जो सदा निश्चल रहते हैं ।

निश्चलांग^२—वि० जिसके भग हिलते डोलते न हों ।

निश्चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शालपर्णी । २ पृथ्वी । ३ मातस्य-पुराण के अनुसार एक नदी का नाम ।

निश्चायक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी बात का निश्चय या निर्णय करता हो । निश्चयकर्ता । निर्णायक ।

निश्चारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवाहिका नाम का रोग जो पतिसार का एक भेद है । यह बच्चों को प्राय होता है और इसमें बहुत दस्त आते हैं । २. वायु । हवा । ३ दुराग्रह । स्वच्छंदता । हठप्रकृति । जिद्दी स्वभाव (को०) । ४ पुरीषस्य । मलस्थाय (को०) ।

निश्चित—वि० [सं० निश्चिन्त] जिसे कोई चिंता या फिक्र न हो या जो चिंता से मुक्त हो गया हो । चिंतारहित । बेफिक्र । जैसे,—(क) प्राय निश्चित रहें, मैं ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा । (ख) अब कहीं जाकर हम इस काम में निश्चित हुए हैं ।

निश्चित

निश्चित^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निश्चित + ई (प्रत्य०)] निश्चित होने का भाव । बेफिक्री ।

निश्चित—वि० [सं०] १. जिसके संबंध में निश्चय हो चुका हो । तै किया हुआ । निर्णयित । जैसे,— (क) हमारे वहाँ जाने की सब बातें निश्चित हो चुकी हैं । (ख) इस काम के लिये कोई दिन निश्चित कर लो । २ जिसमें कोई परिवर्तन या फेर बदल न हो सके । दृढ़ । पक्का । जैसे,—तुम कोई निश्चित बात तो कहते ही नहीं, नित्य नए बहाने निकालते हो ।

निश्चितार्थ—वि० [सं०] १ जिसने किसी बात का निश्चय कर लिया हो । निश्चित धारणावाला । २. उचित या ठीक निर्णय करनेवाला । ३ निश्चित अर्थवाला [को०] ।

निश्चिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय करना ।

निश्चिता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि ।

निश्चिरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

निश्चुक्कण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मिस्सी । २. मजन ।

निश्चेतन—वि० [सं०] १ बेसुध । बेहोश । बदहवास । २ जड़ ।

निश्चेष्ट—वि० [सं०] १ बेहोश । अचेत । २ चेष्टारहित । ३ निश्चल । स्थिर ।

निश्चेष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निश्चेष्ट + ता (प्रत्य०)] १. बेहोशी । सजाशून्यता । २ चेष्टा का प्रभाव । निश्चेष्ट होने की स्थिति । प्रकर्मण्यता । उ०—निश्चेष्टता तथा निर्वलता का न करोगे क्या प्रब शेष । —कुतुम्भ, पृ० ४ ।

निश्चेष्टाकरण—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ वैद्यक में एक प्रकार की ओषध जो मैनसिल से बनाई जाती है । २ कामदेव के एक प्रकार के बाण का नाम ।

निश्चै^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निश्चयन—सञ्ज्ञा सं० [सं०] १ पुराणानुसार वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तपियों में से एक ऋषि का नाम २ महाभारत के अनुसार एक प्रकार की धर्मि ।

निश्छद्—वि० [निश्छन्दस] जिसने वेद न पढ़ा हो ।

निश्छद्म—वि० [सं० निम् + छद्म] बिना आवरण का । खुला हुआ । साफ । उ०—मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किया हो, किंतु हृदय निश्छद्म है ।—घ्रूव०, पृ० ५७ ।

निश्छल—वि० [सं०] छलरहित । सीधा । सरलचित्त । निष्कपट ।

निश्छाय—वि० [सं०] छायाविहीन । बिना छाया का [को०] ।

निश्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न दिया जा सके । अविभाज्य ।

निश्चम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य से न चकना प्रथवा न चबराना । अथवसाय ।

निश्चयणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी ।

निश्चोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सीढ़ी ।

निश्चैणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी [को०] ।

निश्चैणिका तृण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जो रसहीन और गरम होती है और पशुओं को निर्बल कर देती है ।

निश्चैणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सीढ़ी । जीना । २. मुक्ति । ३. खसूर का पेड़ ।

निश्चैयस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्चैयस्] १ मोक्ष । २ दुःख का प्रत्यंत प्रभाव । ३ कल्याण ।

निश्वास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाक या मुँह से बाहर निकलनेवाला श्वास । प्राणवायु के नाक के बाहर निकलने का व्यापार । २. दीर्घ श्वास । लंबी साँस ।

निश्शक—वि० [सं० निश्शक्] १. निडर । निर्भय । बेखोफ । २. संदेहरहित । जिसमें शक न हो ।

निश्शंस—वि० [सं० निश्शङ्क] दे० 'निश्शङ्क' । उ०—ऋषि मुनि मनोहस, रघिवस अवतस कमरत निश्शंस, पूरो मनस्काम ।—भाराधना, पृ० ४८ ।

निश्शक्त—वि० [सं०] निर्बल । नाताकत । जिसमें शक्ति न हो ।

निश्शरण—वि० [सं० नि + शरण] शरणहीन । आश्रयहीन । उ०—सुपमता में असम सवय, वरण में निश्शरण गाय ।—अर्चना, पृ० ८३ ।

निश्शील—वि० [सं०] शीलरहित । बेमुरोबत । बदमिजाज । बुरे स्वभाववाला ।

निश्शीलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट स्वभाव । बदमिजाजी ।

निश्शेष—वि० [सं०] जिसमें से कुछ भी बाकी न बचा हो । जिसका कुछ भी अवशिष्ट न हो ।

निषग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषङ्ग] १. तूण । तूणीर । तरकश । २. खड्ग । ३ प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था । ४ लगाव (को०) । ५ मिलाप । संमिलन (को०) ।

निषंगथि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषङ्गथि] १. घालिगन । २. रथ । ३. कथा । ४. तूण । ५. सारथी । ६. धनुष धारण करनेवाला । धनुर्वर ।

निषगी^१—वि० [सं० निषङ्गिन्] १. तीर चलानेवाला । धनुर्वारी । जिसके पास तूणीर हो । २. खड्ग धारण करनेवाला । ३. अत्यंत आसक्त । अत्यंत लगाववाला (को०) ।

निषगी^२—सञ्ज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

निषकपुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राजस । निशाचर । असुर ।

निषकश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वरसाधन की एक प्रणाली जिसमें प्रत्येक स्वर को दो दो बार मिलापना पड़ता है । जैसे,—सा सा, रे रे, ग ग, म म, प प, य य, नि नि, सा सा । सा सा, नि नि, य य, प प, म म, ग ग, रे रे, सा सा ।

निषक्त—वि० [सं०] अत्यंत आसक्त [को०] ।

निषक्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाप । पिता । जनक ।

निपण—वि० [सं०] १ पैठा हुआ । मोठंगा हुआ । स्थित । २. जिसे सहारा मिला हो । ३. गत । गया हुआ । ४ म्लान । खिन्न । विपरण [को०] ।

निपणणक—संज्ञा पुं० १ भासन । २ एक तरह का शाक या तृण [को०] ।

निपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुस्ती । प्रालम्ब्य । अकर्मण्यता [को०] ।

निपत्र^१—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र' । उ०—सुभ निपत्र गुण कर्णो जु आरज । कथ्यो भीक्ष जन ज्ञान जाति द्विज कुल आचारज ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ८६ ।

निपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की दोषा ।

निपद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ (सगीत में) निषाद स्वर । २. एक राजा का नाम ।

निपदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपवेशन । बैठना । २ बैठने का भासन । ३ रहने का स्थान । प्रालय । घर । मकान [को०] ।

निपद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह स्थान जहाँ कोई चीज बिकती हो । हाट । २ छोटी छाट ।

निपद्यापरोषत—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे स्थान में जहाँ स्त्री, पद्म आदि का प्रागम हो न रहना और यदि इष्टानिष्ट का उपसर्ग हो तो भी अपने चित्त को चलायमान न करना (जैन) ।

निपद्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़ । चहला । २ कामदेव [को०] ।

निपद्वरा, निपद्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात । रजनी ।

निपद्^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । कहते हैं, यह पर्वत हलायुता के दक्षिण हरिवर्ष की सीमा पर है । २ हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के प्रपौत्र और कुश के पौत्र का नाम । ३ महाराज जनमेजय के पुत्र का नाम । ४. पुराणानुसार एक देश का प्राचीन नाम जो विष्णुचल पर्वत पर था ।

विशेष—किसी किसी से मत से यह वर्तमान कुमाऊँ का एक भाग है और दमयंती के पति नल यही के राजा थे ।

५ कुरु के एक लड़के का नाम । ६ सगीत के सात स्वरों में से पचिम या सातवाँ स्वर । निषाद ।

निपद्^२—वि० कठिन ।

निपद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा नल की राजधानी का नाम [को०] ।

निपद्यावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो विष्णु पर्वत से निकलती है ।

निपद्याभास—संज्ञा पुं० [सं०] कुरु के एक लड़के का नाम ।

निपद्याश्व—संज्ञा पुं० [सं०] आक्षेप । अलंकार के पाँच भेदों में से एक ।

निपद्सई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निखिसई' ।

निषाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक बहुत पुरानी जनार्ण जाति जो भारत में भार्य जाति के आने से पहले निवास करती थी । इस जाति के लोग शिकार खेलते, मछलियाँ मारते और डाका डालते थे ।

विशेष—पुराणों में जिस प्रकार और अनेक जनार्ण जातियों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ लिखी हुई हैं उसी प्रकार इस जाति की उत्पत्ति के संबंध में भी एक कथा है । अग्निपुराण में लिखा है कि जिस समय राजा वेणु की जीव

मयी गई थी उस समय उसमें से काले रंग का एक छोटा सा आदमी निकला था । वही आदमी इस वंश का धाँ पुद्गल था । लेकिन मनु के मत से इस जाति की सृष्टि ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से हुई है । मिताक्षरा में यह जाति शूर और पापी कही गई है ।

२ एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख महाभारत, रामायण तथा कई पुराणों में है ।

विशेष—महाभारत के अनुसार यह एक छोटा राष्ट्र था जो विनयान के दक्षिणपश्चिम में था । संभवतः रामायणवाला शृगवेरपुर इस राज्य का राजधानी था ।

३ सगीत के सात स्वरों में अंतिम और सबसे ऊँचा स्वर जिसका संक्षिप्त रूप 'नि' है ।

विशेष—इसकी दो श्रुतिर्था हैं—उग्रता और शोभिनी । नारद के अनुसार यह स्वर हाथों के स्वर के समान है और इसका उच्चारणस्थान ललाट है । व्याकरण के अनुसार यह दंत्य है । सगीतवर्ण के अनुसार इस स्वर की उत्पत्ति असुर वंश में हुई है । इसकी जाति वैश्य, वर्ण विभिन्न, जन्म पुष्कर द्वीप में, ऋषि तु बह्म, देवता सूर्य और छंद जगती है । यह सपूर्ण जाति का स्वर है । और करण इसके लिये विशेष उपयोगी है । इसकी फूट तान ५०४० है । इसका वार शनिवार और समय रात्रि के अंत की २ घड़ी ३४ पल है । इसका स्वरूप गणेश जी के समान माना जाता है ।

निषादकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम ।

निषादी—संज्ञा पुं० [सं० निषादिन्] हाथोवान । महावत ।

निषिक्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] धीर्य से उत्पन्न गर्भ ।

निषिक्त^२—वि० १ सिंचित । सिक्त । २ गर्भित । भीतर डाला हुआ [को०] ।

निषिद्ध—वि० [सं०] १ निषेध निषेध किया गया हो । जिसके लिये मनाही हो । जो न करने योग्य हो । २ खराब । बुरा । दूषित । तुच्छ ।

निषिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] निषेध । मनाही ।

निषिध^३—संज्ञा पुं० [सं० निषिद्ध] बुरा कार्य । अपकर्म । उ०—निषिध छुड़ावण कारने भय उपजायो आइ । मय मास पर-प्रिय गवन इतने नरकहि आइ ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १६८ ।

निषूटना—क्रि० प्र० [देश०] समाप्त होना । चुक जाना । निखूटना । उ०—दह दिसि फूटा, नीर निपटा, लेखा डेवण साल वे । दादू दास कहै बणिजारा तू रत्ता तरणो नाल वे ।—दादू०, पृ० ४८३ ।

निषूदन—वि० [सं०] नाश करनेवाला । मारनेवाला । बघ करनेवाला । जैसे, परिनिषूदन, केशिनिषूदन ।

निषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्भाधान । २ रेत । वीर्य । ३ करण । जूना । टपकना । ४ अस्थी तरह सीधना । सिंचन [को०] । ५. गर्भाधान के अवसर पर होनेवाला संस्कार [को०] । ६ घुसाई के काम आनेवाला जल [को०] । ७ गंदा पानी । ८,

भ्रमके द्वारा भ्रम उतारना (को०) । ६. वीर्य संबंधी प्रयुद्धता (को०) ।

निषेधन—क्रि० सं० [मं०] सींचना । तर करना । मिथोना । धाड़ करना ।

निषेध^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषेध] दे० 'निषेध' । उ०—सतगुरु सन्त जहाज हैं कोइ कोइ पावे भेद । समुंद बुंद एकै भया, किसका कहूँ निषेध ।—कबीर सा० सं०, पृ० ११ ।

निषेध—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. वर्जन । मनाही । न करने का आदेश । २. बाधा । अकवट । ३. इनकार । अस्वीकार (को०) । ४. विधि का उलटा । विधि का विलोम (को०) ।

निषेधक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मना करनेवाला । रोकनेवाला ।

निषेधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० निषेधित, निषिद्ध] निषेध करने का काम । निवारण । मना करना ।

निषेधपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा किसी प्रकार का निषेध किया जाय ।

निषेधविधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] वह बात या आज्ञा जिसके द्वारा किसी बात का निषेध किया जाय ।

निषेधात्मक—वि० [सं० निषेध + आत्मक] निषेध रूप । निषेध-वाला । उ०—गूढ़ विषयों का प्रतिपादन कभी कभी निषेधात्मक रीति से किया जाता है ।—पा० सा० सि०, पृ० १ ।

निषेधित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जिसके लिये निषेध किया गया हो । मना किया हुआ । वर्जित ।

निषेधी—वि० [सं० निषेधिन] १. पीछे हट जानेवाला या बचाव करनेवाला । २. पीछे छोड़ जानेवाला । आगे निकल जाने-वाला (को०) ।

निषेधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० निषेधनीय, निषेधित, निषेध्य] १. सेवा । २. सेवन । व्यवहार । ३. पूजा । अर्पण । अनुष्ठान (को०) । ४. लगाव । लगन । संपर्क (को०) । ५. रहमा । बसना (को०) ।

निषेधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निषेधन' । उ०—अञ्जन, मंजन, चंदन द्विज पति देव निषेधा ।—नद० ग्रं०, पृ० ४० ।

निषेधित—वि० [सं०] १. पूजित । सेवित । प्रायित । समाहृत । २. अनुष्ठित (को०) ।

निषेधी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषेधिन] सेवा करनेवाला ।

निषेध्य—वि० [सं०] सेवनीय । सेवा के योग्य ।

निष्कंचन^(१)—वि० [सं० निष् + कंचन] भक्तिचन । दीन । दरिद्र । उ०—अब सरिकिनी आछी होइ तो काहूँ निष्कंचन गरीब बाहान को विवाह करि देख्यो ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ६६ ।

निष्कटक—वि० [सं० निष्कटक] १. जिसमें किसी प्रकार की बाधा, आपत्ति या अशुभ आदि न हो । शत्रुरहित । बिना खटका । निर्विघ्न । जैसे,—उन्होंने पचीस वर्ष तक निष्कटक राज्य किया । २. काटों से रहित । जिसमें काटा न हो ।

५-५५

निष्कंठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कंठ] वरुण या वरुना नाम का पेड़ ।

निष्कंप—वि० [सं० निष्कम्प] जिसमें किसी प्रकार का कंप न हो । अचल । स्थिर ।

निष्कंभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कम्भ] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

निष्कंभु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कम्भु] पुराणानुसार देवताओं के एक सेनापति का नाम ।

निष्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वैदिक काल का एक प्रकार का सोने का सिक्का या मोहर जिसका मान भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न था ।

विशेष—प्राचीन काल में यज्ञों में राजा लोग ऋषियों और ब्राह्मणों को दक्षिणा में देने के लिये सोने के बराबर तौल के टुकड़े कटवा लिया करते थे जो 'निष्क' कहलाते थे । सोने के इस प्रकार टुकड़े कराने का मुख्य हेतु यह होता था कि दक्षिणा में सब लोगों को बराबर सोना मिले, किसी के पास कम या ज्यादा न धना जाय । पीछे से सोने के इन टुकड़ों पर यज्ञस्तूप आदि के चिह्न और नाम आदि बनाए या खोदे जाने लगे । इन्हीं टुकड़ों ने आगे चलकर सिक्कों का रूप धारण कर लिया । उस समय कुछ लोग इन टुकड़ों को गूँथकर और उनकी मासा बनाकर गले में भी पहनते थे । भिन्न भिन्न समयों में निष्क का मान नीचे लिखे अनुसार था ।

एक निष्क = एक कर्ष (१६ माशे)

" " = " सुवर्ण "

" " = " बीनार १ "

" " = " पल (४ या ५ सुवर्ण) "

" " = चार माशे

" " = १०८ अथवा १५० सुवर्ण ।

२. प्राचीन काल में चाँदी की एक प्रकार की तौल जो चार सुवर्ण के बराबर होती थी । ३. वैद्यक में चार माशे की तौल । टंक । ४. सुवर्ण । सोना । ५. सोने का बरतन । ६. हीरा । ७. निगम । बाहर जाना । प्रस्थान (को०) । ८. बाडाल (को०) । ९. सोने की एक तौल जो १०८ या १५० सुवर्ण की होती थी (को०) । १०. गले में पहनने का एक स्वर्ण-भूषण (को०) ।

यौ०—निष्ककठ, निष्कप्रीव = जिसने गले में सोने का गहना पहन रखा हो ।

निष्कपट—वि० [सं०] जो किसी प्रकार का छल या कपट न जानता हो । निश्छल । छलरहित । सीधा । सरल ।

निष्कपटता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपट होने का भाव । निश्छलता । सरलता । सीधापन ।

निष्कपटी—वि० [सं० निष्कपट] दे० 'निष्कपट' ।

निष्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जिसका कर न देना पड़ता हो ।

निष्करुण्य—वि० [सं०] जिसमें करुणा या दया न हो । करुणारहित । निष्ठुर । निर्दय । बेरहम ।

निष्कर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काटना । फाटना । तार तार करना [को०] ।

निष्कर्म—वि० [सं० निष्कर्मन्] प्रकर्मा । जो कामों में लिप्त न हो ।
उ०—विष्णु नरायण कृष्ण श्री वासुदेव ही ब्रह्म । परमेश्वर परमात्मा विश्वभर निष्कर्म ।—विश्राम (शब्द०) ।

निष्कर्मण्य—वि० [सं०] प्रकर्मण्य । अयोग्य । निष्कम्मा । जो कुछ काम न कर सके ।

निष्कर्मा—वि० [सं० निष्कर्मन्] १ जो कर्मों में लिप्त न हो । प्रकर्मा । २. निष्कम्मा ।

निष्कर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निश्चय । छुवासा । उत्थ । २ निचोड़ । सार । सारांश । ३. राजा का अपने लाभ या कर आदि के लिये प्रजा को दुःख देना । ४. माप । मापन (को०) । ५. निकालने की क्रिया ।

निष्कर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निकालना । छींचकर निकालना । २. घटाना [को०] ।

निष्कर्षी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कर्षिन्] एक प्रकार का मयू ।

निष्कलंक—वि० [सं० निष्कलङ्क] जिसमें किसी प्रकार का कलक न हो । निर्दोष । बेपेच ।

निष्कलकरीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कलङ्करीय] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम जिसमें स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।

निष्कलकित—वि० [सं० निष्कलङ्क] ३० 'निष्कलक' ।

निष्कलङ्की—वि० [सं० निष्कलङ्क] ३० 'निष्कलक' ।

निष्कल^१—वि० [सं०] १. जिसमें कला न हो । कलारहित । २. जिसका कोई भंग या भाग नष्ट हो गया हो । ३. जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो । पुष्ट । ४. नष्ट । ५. पूरा । समूचा ।

निष्कल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा । २. आधार । मास्पद । माश्रय (को०) । ३. शिव (को०) । ४. स्त्री का गुहांग । उपस्थ । भग (को०) ।

निष्कलत्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अविभाज्य होने की अवस्था । किसी पदार्थ की वह अवस्था जिसमें उसके और अधिक विभाग न हो सकें ।

निष्कला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धा स्त्री । बुद्धिया ।

निष्कली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अधिक अवस्थावाली वह स्त्री जिसका मासिक धर्म होना बंद हो गया हो ।

निष्कल्मष—वि० [सं०] देशग । बेपेच । शुद्ध [को०] ।

निष्कषाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह जिसके चित्त में किसी प्रकार का दोष न हो । वह जिसका चित्त स्वच्छ और पवित्र हो । २ मुमुक्षु । ३ एक जिन का नाम (धैत) ।

निष्कात—वि० [सं० निष्कात] जो सुंदर न हो । भद्दा । बद-सूरत [को०] ।

निष्काम—वि० [सं०] १ (वह मनुष्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना, भासक्ति या इच्छा न हो । २ (वह काम) जो बिना किसी प्रकार की कामना या इच्छा के किया जाय ।

विशेष—सांख्य और गीता आदि के मत से ऐसा काम करने से चित्त शुद्ध होता और मुक्ति मिलती है ।

यौ०—निष्कामचारी = बिना किसी इच्छा या आकांक्षा के काम करनेवाला । निष्कामकर्म = वह कार्य जिसके फल की इच्छा न की जाय ।

निष्कामता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निष्काम होने की अवस्था या भाव ।

निष्कामी—वि० [सं० निष्कामिन्] (वह मनुष्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना या भासक्ति न हो ।

निष्कामुक—वि० [सं०] ससारी इच्छाओं से मुक्त [को०] ।

निष्कारण^१—वि० [सं०] १ बिना कारण । बेसबब । २ व्यर्थ । व्यथा ।

निष्कारण^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मारना । बघ करना । २ हटाना । भ्रमण करना । दूर करना [को०] ।

निष्कार्य—वि० [सं०] निष्प्रयोजन । बे मतलब [को०] ।

निष्कालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मूँढे हुए बाल या रोएँ आदि ।

निष्कालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चलाने की क्रिया । २. मार डालने की क्रिया । मारण । ३. पशु आदि को निकाल भगाना [को०] ।

निष्कालिक—वि० [सं०] १ जिसके जीने के दिन थोड़े रह गए हो । २. जिसे जीता न जा सके । मजेय (को०) ।

निष्काश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रासाद आदि का बाहर निकाला हुआ भाग । जैसे, वरामदा । २. तड़का । भोर (को०) । ३. लोप (को०) । ४. निष्काशन (को०) ।

निष्काशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निकालना । बाहर करना ।

निष्काशित—वि० [सं०] १. बहिष्कृत । निकाला हुआ । २. निरदित । जिसकी निंदा की गई हो ।

निष्कास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निकालने की क्रिया या भाव । २ जारी किया हुआ । ३. रखा या जमा किया हुआ । ४. नियुक्त । ५. खुला हुआ । विकसित । ६. जिसे बुरा भला कहा गया हो [को०] ।

निष्कासिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेविका या दासी जिसपर उसके मालिक का कोई बंधन हो [को०] ।

निष्किंचन—वि० [सं० निष्किंचन] प्रकिंचन । धनहीन । दरिद्र । जिसके पास कुछ न हो ।

निष्किल्बिष—वि० [सं०] जो पापी न हो । बेदाग [को०] ।

निष्कुम्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्कुम्भ] दती वृक्ष ।

निष्कुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ घर के पास का बाग । नज्द बाग । पार्स बाग । २ क्षेत्र । खेत । ३. कपाट । किवाड़ा । ४. जनाना महल । स्त्रियों के रहने का घर । ५. एक पर्वत का नाम । ६. पेड़ का खोंदरा । वृक्षकीट (को०) ।

निष्कुटि, निष्कुटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ह्मायची ।

निष्कुटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुमार की अनुचरी एक मात्रिका का नाम ।

निष्कुल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निष्कुला] बिना कुल का । जिसका कोई संबंधी न रह गया हो ।

निष्कूलोकरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. सूसी या छिलका मलग करना ।
२. किसी का कुल या खानदान समाप्त करना [को०] ।

निष्कूलिन—वि० [सं०] निम्न कुल का [को०] ।

निष्कृषित—वि० [सं०] १. कोटा या खाया हुआ । भुक्त । २. बाहर किया हुआ । बहिष्कृत । ३. जिसकी खाल सवेड़ी हुई हो [को०] ।

निष्कृष्ट—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पेड़ का खोड़ा । कोटर ।

निष्कृज—वि० [सं०] कृजनरहित । जहाँ किसी प्रकार का शोरगुल न होता हो । शांत [को०] ।

निष्कृष्ट—वि० [सं०] बिना छल का । जिसमें धोखा न हो [को०] ।

निष्कृत—वि० [सं०] १. मुक्त । छूटा हुआ । स्वतंत्र । २. हटाया या हूर किया हुआ । निकाला हुआ । ३. निश्चय किया हुआ । निश्चित ।

निष्कृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. निस्तार । छुटकारा । २. प्रायश्चित्त । ३. उपेक्षा । ४. घबकाव [को०] । ५. दुराचरण । बुरा व्यवहार [को०] ।

निष्कृप—वि० [सं०] १. तेज । तीक्ष्ण । धारदार । चोखा । २. कृपाविहीन । कृपारहित [को०] ।

निष्कृष्ट—वि० [सं०] १. निचोड़कर निकाला हुआ । २. खींचकर बाहर किया हुआ [को०] ।

निष्क्रेवल—वि० [सं०] विशुद्ध । पूर्ण शुद्ध । खालिस [को०] ।

निष्क्रेतव—वि० [सं०] छलछद्म से रहित । ईमानदार [को०] ।

निष्क्रेतव्य—वि० [सं०] १. मोक्षहीन । २. पूर्ण । समग्र [को०] ।

निष्कोष, निष्कोषण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. सूसी या छिलका मलग करना । २. फाटना । विदारण करना । ३. खींचकर बाहर करना ।

निष्कोषणक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दाँत खोदने का खरिका [को०] ।

निष्क्रम—वि० [सं०] बिना क्रम या सिलसिले का । बेतरतीब ।

निष्क्रम—सञ्ज्ञा पु० १. बाहर निकलना । २. निष्क्रमण की रीति । ३. पतित होना । ४. मन की वृत्ति ।

निष्क्रमण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० निष्क्रात] १. बाहर निकलना । २. हिंदुओं में छोटे बच्चों का एक संस्कार जिसमें जब बालक चार महीने का होता है तब उसे घर से बाहर निकालकर सूर्य का दर्शन कराया जाता है ।

निष्क्रमणिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चार महीने के बालक को पहले पहल घर से निकालकर सूर्य के दर्शन कराना ।

निष्क्रम्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. वेतन । तनखाह । मजदूरी । भाड़ा । २. वह धन जो किसी पदार्थ के बदले में दिया जाय । ३. विनिमय । बदला । ४. विक्री । बेचने की क्रिया । ५. सामर्थ्य । शक्ति । ६. पुरस्कार । इनाम । ७. कौटिल्य के अनुसार वह धन जो छुटकारे के लिये दिया जाय ।

निष्क्रम्यण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. छुटकारे के लिये प्रदत्त धन । २. किसी वस्तु के बदले में प्रदत्त धन [को०] ।

निष्क्रान्त—वि० [सं० निष्क्रान्त] जो जा चुका हो । बहिर्गत [को०] ।

निष्क्रामित—वि० [सं०] निकाला हुआ । बहिष्कृत [को०] ।

निष्क्राम्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. माल का बाहर भेजा जाना । बाहर भेजी जानेवाली बलाव । २. रफ्तानी माल । (कौटि०) ।

निष्क्रम्य शुल्क—सञ्ज्ञा पु० [सं०] बाहर भेजे जानेवाले माल पर का महसूल ।

निष्क्रिय—वि० [सं०] जिसमें कोई क्रिया या व्यापार न हो । सब प्रकार की क्रियाओं से रहित । निश्चेष्ट ।

यौ०—निष्क्रिय प्रतिरोध = किसी कार्य या भाषा का बहु विरोध जिसमें विरोध करनेवाला अपनी समझ से सत्य और उचित काम करता रहता है और इस बात की परवा नहीं करता कि इसके लिये मुझे दंड सहना पड़ेगा ।

२ विहित कर्म को न करनेवाला (को०) । ३. काम धाम न करनेवाला । निष्क्रमा (को०) ।

निष्क्रिय^२—सञ्ज्ञा पु० कर्मशून्य ग्रन्थ ।

निष्क्रियता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निष्क्रिय होने का भाव या अवस्था ।

निष्कलेश—वि० [सं०] १. श्लेशरहित । सब प्रकार के कष्टों से मुक्त । २. बौद्धों के अनुसार वसों प्रकार के क्लेशों से मुक्त ।

निष्कवाथ—सञ्ज्ञा पु० [सं०] भास आदि का रसा । शोरवा ।

निष्कपन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मृनता । जलाना । संकना । पकाना [को०] ।

निष्कप्त—वि० [सं०] १. मच्छी तरह मुना या पका हुआ । २. घला हुआ [को०] ।

निष्कानप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. रव । भावाज । ध्वनि । २. दीर्घ नाद । गर्जन [को०] ।

निष्ठाप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] हलकी गरमी । थोड़ा ताप [को०] ।

निष्ठि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री दिति का एक नाम ।

निष्ठित्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम ।

निष्ठय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. चाबाल । २. म्लेच्छों की एक जाति का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है ।

निष्ठया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वाती नक्षत्र [को०] ।

निष्ठ—वि० [सं०] १. स्थित । ठहरा हुआ । २. तत्पर । लगा हुआ । जैसे, कर्तव्यनिष्ठ । ३. जिसमें किसी के प्रति श्रद्धा या भक्ति हो । जैसे, स्वामिनिष्ठ ।

निष्ठांत—वि० [सं० निष्ठान्त] जिसका नाश अवश्य हो । जो भविनाशी न हो । नष्ट होनेवाला ।

निष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थिति । अवस्था । ठहराव । २. निर्वाह । ३. मन की एकांत स्थिति । चित्त का जमना । ४. विश्वास । निश्चय । ५. धर्मगुरु या बड़े आदि के प्रति श्रद्धा भक्ति । पूज्य वृद्धि । ६. विष्णु जिनमें प्रलय के समय समस्त भूतों की स्थिति होगी । ७. इति । समाप्ति । ८. नाश । ९. सिद्धावस्था की अंतिम स्थिति । ज्ञान की वह अवस्था जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता हो जाती है । १०. याचना [को०] ।

निष्ठान, निष्ठानक

११. व्रत । उपवास (को०) । १२. कोशल । चातुर्यं । दक्षता (को०) । १३. व्याकरण में 'क्त' और 'क्तवु' प्रत्यय ।

निष्ठान, निष्ठानक—पुं० [सं०] चटनी आदि ।

निष्ठापित—वि० [सं०] पूरा किया हुआ । समाप्त किया हुआ (को०) ।

निष्ठावान्—वि० [सं०] निष्ठावत्] जिसमें निष्ठा या श्रद्धा हो ।

निष्ठित—वि० [सं०] १ स्थित । छड़ । ठहरा या जमा हुआ । २ जिसमें निष्ठा हो । निष्ठायुक्त । ३. दक्ष । कुशल । चतुर (को०) ।

निष्ठोव, निष्ठोवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शूक । २ शूक आदि बाहर निकालना (को०) । ३. वैद्यक के अनुसार एक द्रव्य जिसका व्यवहार गले या कफड़े से काम निकालने में किया जाता है । इसके सेवन से रोपी कफ शूकने लगता है ।

निष्ठुर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निष्ठुरा] १ कठिन । कड़ा । सख्त । २ जिसमें दया न हो । कठोर हृदयवाला । क्रूर । बेरहम ।

निष्ठुर—सञ्ज्ञा पुं० पशु वचन । कठोर बात ।

निष्ठुरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ निष्ठुर होने का भाव । कड़ाई । सख्ती । कठोरता । २ निर्दयता । क्रूरता । बेरहमी ।

निष्ठुरिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महामारत में है ।

निष्ठेव, निष्ठेवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शूक ।

निष्ठ्युत्—वि० [सं०] १ उक्त । कथित । २ शूका हुआ । उद्गीर्ण । ३. बहुवृत्त (को०) ।

निष्ठ्युति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शूकने की क्रिया (को०) ।

निष्ण—वि० [सं०] कुशल । होशियार । निष्णात ।

निष्णात—वि० [सं०] १ किसी विषय का बहुत अच्छा ज्ञाता या जानकार । किसी बात का पूरा पंडित । २ विज्ञ । निपुण । ३. पूर्ण किया हुआ । पूरा किया हुआ ।

निष्पंक—वि० [सं०] निष्पङ्क] जिसमें कीचड़ आदि न लगा हो । स्वच्छ । निर्मल । साफ । सुथरा ।

निष्पंद—वि० [सं०] निष्पन्द] जिसमें किसी प्रकार का कप न हो । स्पन्दरहित ।

निष्पक्व—वि० [सं०] १ सुपक्व । २ दग्ध । जला हुआ (को०) ।

निष्पक्ष—वि० [सं०] जो किसी के पक्ष में न हो । पक्षपातरहित ।

निष्पक्षता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पक्ष होने का भाव । पक्षपात न करने का भाव ।

निष्पसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तेजी से झपटना या बाहर निकलना (को०) ।

निष्पताक—वि० [सं०] बिना पताका का । जिसमें फरहरा या ध्वजा न हो (को०) ।

निष्पताकध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का दंड जिसे राजा लोग अपने पास रखते थे ।

विशेष—यह दंड ठीक पताका के दंड के समान होता था, अंतर केवल इतना ही होता था कि इसमें पताका नहीं होती थी ।

निष्पत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. समाप्ति । अंत । २. सिद्धि । परिपाक । ३. दृढ योग के अनुसार नाद की चार प्रकार की अवस्थाओं में से अंतिम अवस्था । ४. निर्वाह । ५. मीमांसा । ६. निष्चय । निर्धारण । ७. उत्पादन । उत्पत्ति (को०) । ८. चर्वणा । अभिव्यंजना । अभिव्यक्ति (को०) ।

निष्पत्र—वि० [सं०] १. जिसमें पत्ते न हों । जैसे, पेड़ । २. जिसके पर न हो (को०) ।

निष्पत्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] करील का पेड़ ।

निष्पद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जिसमें पहिए आदि न हों । जैसे, नाव आदि ।

निष्पद्—वि० [सं०] जिसे पद या पैर न हो (को०) ।

निष्पन्न—वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो । जो समाप्त या पूरा हो चुका हो ।

निष्पयोद्—वि० [सं०] अनन्य । बिना बाध का । मेघरहित (को०) ।

निष्पराक्रम—वि० [सं०] पराक्रमरहित । बेकूवत । जिसमें पराक्रम न हो (को०) ।

निष्परिकर—वि० [सं०] बिना तैयारी का । जिसने कोई तैयारी न की हो (को०) ।

निष्परिग्रह—वि० [सं०] १. जो दान आदि न ले । २. जिसके स्त्री न हो । रंझुआ । ३. अविवाहित । कुंवारा । ४. (साधु) जो परिग्रह अर्थात् पादुका, कथा आदि से रहित हो (को०) ।

निष्परिहार्य—वि० [सं०] जिसे किसी भी कीमत पर न छोड़ा जाय । अनिवार्य (को०) ।

निष्परुष—वि० [सं०] जो सुनने में कर्कश न हो । कोमल ।

निष्पर्यंत—वि० [सं०] निष्पर्यन्त] सीमाहीन (को०) ।

निष्पलक—वि० [सं०] निष् + हिं० पलक] अपलक । निनिमेष । उ०—देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन ।—अपरा, पृ० ४० ।

निष्पसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घान आदि की भूसी निकालना । कूटना छोटना । अनाज को भोसना या सुप आदि से पछोरना ।

निष्पाद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अनाज की भूसी निकालने का काम । दाना । २. बोझा नाम की तरकारी या फली । लोबिया । ३. मटर । ४. सेम ।

निष्पादक—वि० [सं०] निष्पत्ति करनेवाला ।

निष्पादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निष्पत्ति करना ।

निष्पादी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बोझा नाम की तरकारी या फली । लोबिया ।

निष्पाप—वि० [सं०] जो पाप न हो । पापरहित । निर्दोष (को०) ।

निष्पाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी निकालना । कूट छोट । २. सुप की हवा । ३. वायु । हवा (को०) । ४. सेम । लोबिया ।

निष्पावक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सफेद सेम ।

निष्पावी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २० 'निष्पादी' ।

निष्पष्ट—वि० [सं०] १ चूणं किया हुआ । पीसा हुआ । अच्छी तरह पीसा हुआ । २ पीटा हुआ । पीड़ित [को०] ।

निष्पीडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्पीडनं] निचोड़ना । गीले कपड़े को दबाकर उसमें से पानी निकालना ।

निष्पुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुत्रहीन । जिसके भागे पुत्र न हो ।

निष्पुरुष—वि० [सं०] वपुंसक । नामदं ।

निष्पुलाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आगामी उत्सर्पिणी के अनुसार १४ वें महंत का नाम (जेन) ।

निष्पेष, निष्पेषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चूर चूर करना । पीस डालना । मसस देना । २ घर्षण । रगड़ना । ३ परस्पर घर्षण की ध्वनि [को०] ।

निष्पौरुष—वि० [सं०] पौरुषविहीन [को०] ।

निष्प्रकप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्प्रकम्प] पुराणानुसार तेरहवें मन्वतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम ।

निष्प्रकप—वि० प्रकप । कपनविहीन । जो काँपता न हो [को०] ।

निष्प्रकारक—वि० [सं०] १. बिना प्रकार या विशेषता का । २. दे० 'निर्विकल्पक' [को०] ।

निष्प्रकाश—वि० [सं०] जो साफ न हो । घुँघला [को०] ।

निष्प्रचार—वि० [सं०] १ जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके । जिसमें गति न हो । न चल सकने योग्य । २ केंद्रित किया हुआ । एक स्थान पर स्थिर किया हुआ । जैसे, मन [को०] ।

निष्प्रतिकार, निष्प्रतीकार—वि० [सं०] १. जिसका कोई उपाय न हो सके । ला इलाज । २. जिसे रोका न जा सके । प्रतिबंध-हीन [को०] ।

निष्प्रतिग्रह—वि० [सं०] दान या उपहार आदि न लेनेवाला [को०] ।

निष्प्रतिध—वि० [सं०] निर्वध । प्रबाध [को०] ।

निष्प्रतिभ—वि० [सं०] जिसमें प्रतिभा न हो । मदबुद्धि । २. सहानुभूति न रखनेवाला । ३. जिसमें तटक भटक न हो । दोषिशून्य [को०] ।

निष्प्रतोष—वि० [सं०] १. नाक की सीध में देखनेवाला । जो इधर उधर न देखे । २. उदासीन । जैसे, दृष्टि [को०] ।

निष्प्रपंच—वि० [सं० निष्प्रपञ्च] १ छधरहित । ईमानदार । २. विस्तारहीन [को०] ।

निष्प्रम—वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की प्रमा या धमक न हो । प्रमाशून्य । तेजरहित ।

निष्प्रयत्न—वि० [सं०] प्रयत्नरहित । सुस्त [को०] ।

निष्प्रयोजन^१—वि० [सं०] १ प्रयोजन रहित । जिसमें कोई मतलब न हो । स्वार्थशून्य । जैसे, निष्प्रयोजन प्रीति । २. जिससे कुछ फल प्राप्त न हो । ३. व्यर्थ । निरर्थक ।

निष्प्रयोजन^२—क्रि० वि० १ बिना धर्म या मतलब के । २ व्यर्थ । फलहीन ।

निष्प्रवणि, निष्प्रवाण, निष्प्रवाणि—वि० [सं०] कोरा कपड़ा । एकदम नया कपड़ा [को०] ।

निष्प्राण—वि० [सं०] प्राणरहित । मुरदा । मरा हुआ ।

निष्प्रेही^१—वि० [सं० निस्पृह] जिसको किसी वस्तु की चाह न हो । किसी बात की इच्छा न रखनेवाला । उ०—चतुराई हरि ना मिले ये बातों की बात । निष्प्रेही निरधार को गाहक दीनानाथ ।—कबीर (शब्द०) ।

निष्फल^१—वि० [सं०] १. जिसका कोई फल न हो । व्यर्थ । निरर्थक । बेकार । २. अशक्यरहित । जिसके अशक्य न हो । उ०—हे दुर्मति तूने मेरा रूप लेकर इस प्रकार कर्म को किया इसलिये तू निष्फल प्रयात् अशक्यरहित हो जायगा ।—गोपाल भट्ट (वाल्मीकि रामायण) (शब्द०) । ३. फलरहित । बिना फल का । ४ जो किसी कार्य का व हो । बेकार ।

निष्फल^२—सञ्ज्ञा पुं० धान का पयाल । पूला ।

निष्फला—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] वह स्त्री जिसका रजोधर्म होना बंद हो गया हो । बूढ़ा स्त्री ।

विशेष—जटाधर के मत से ५० वर्ष की अवस्था के उपरांत और सुश्रुत के मत से ५५ वर्ष की अवस्था के उपरांत स्त्रियाँ निष्फला हो जाती हैं ।

निष्फल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों के निष्फल करने का अस्त्र ।

विशेष—वाल्मीकि के अनुसार जिस समय विश्वामित्र अपने साथ रामचंद्र को बन में ले गए थे उस समय उन्होंने रामचंद्र को और और अस्त्रों के साथ यह अस्त्र भी दिया था ।

निष्फेन^१—वि० [सं०] आग या फेनरहित । जिसमें आग न हो [को०] ।

निष्फेन^२—सञ्ज्ञा पुं० अफीम [को०] ।

निसंका—वि० [हिं०] दे० 'निराशंक' । उ०—बावरी जो पै कसंक लग्यो तो निसक हूँ क्यों नहि अक लगावति ।—कविता को०, भा० १, पृ० १७९ ।

निसंग^१—वि० [सं० निस्सङ्ग] अकेला । एकाकी ।

निसंवर, निसवल^१—वि० [सं० निस्मवल] सबखविहीन । आश्रय वा आधारहीन । निराश्रय । उ०—(क) सुमिर सनेह सों तू नाम रामराय की । सबर निसवर को सखा असहाय की ।—तुलसी ४०, पृ० ४७५ । (ख) गए राम सरन सबकी भली ।... पगु अघ निरगुनी निसंवल जो न सहे जावे जखी ।—तुलसी ४०, पृ० ३८६ ।

निसस^१—वि० [सं० नृशस] क्रूर । बेरहम । निर्दय ।

निसँठ^१—वि० [हिं० नि + सँठ (= पूँजी)] जिसके पास धन या पूँजी न हो । निधन । गरीब । उ०—साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला । निसँठ जो पुरुष पात जिमि बोला ।—जायसी (शब्द०) ।

निसँस^१—वि० [हिं० नि + सँस] जिसे साँस न आती हो । मृतप्राय । मुरदा सा ।

निसँसना④—क्रि० प्र० [सं० नि श्वसन] हाँफना । नि श्वास सेना ।
उ०—खनहि निसाँस वृद्धि जिउ जाई । खनहि उठइ निसँसइ
बठराई ।—पदुमा०, पृ० ५३ ।

निस④—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निशा' ।

निसक—वि० [सं० नि शक्त] प्रशक्त । कमजोर । दुबल । उ०—
कहै यहै श्रुति समृत सो यहै सयाने लोग । तीन दबावत निसक
ही राजा पातक रोग ।—बिहारी (शब्द०) ।

निसकर④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशाकर] चंद्रमा । चाँद ।

निसचय④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निसचै④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निसव④—वि० [सं० नि सत्य] प्रसत्य । मिथ्या । उ०—जो जानै
सत भापुहि जारे । निसव हिऐं सत करे न पारे ।—जायसी
पं० (गुप्त), पृ० २२३ ।

निसतरना④—क्रि० प्र० [सं० निस्तार] विस्तार पाना ।
छुटकारा पाना । छुट्टी पाना ।

निसतार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निस्तार] दे० 'निस्तार' ।

निसतारना④—क्रि० प्र० [सं० निस्तार+ना (प्रत्य०)] निस्तार
करना । छुटकारा देना ।

निसघोस④—क्रि० वि० [सं० निशा + दिवस] रात दिन ।
नित्य । सदा ।

निसनेहा④—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नि स्नेहा] दे० 'नि स्नेहा' ।

निसवत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० निस्वत] १. सवध । लगाव । ताल्लुक ।
बैधे,—इन दोनों में कोई निसवत नहीं है । २. भंगनी ।
विवाह सवध की बात ।

क्रि० प्र०—माना ।—ठहरना ।

३. तुलना । प्रपेक्षा । मुकाबला । बैधे,—(क) इसकी धोर उसकी
भया निसवत ? (ख) यह बीज उसकी निसवत अच्छी है ।

विशेष—उदाहरण 'स' की कोटि के वाक्यों में 'निसवत' शब्द के
पहले प्रायः फारसी का 'ब' उपसर्ग लगा देते हैं । बैधे,—इसकी
निसवत यह कुछ बढ़ा है ।

मुदा०—निसवत देना = तुलना करना । मुकाबला करना ।

निसवत^२—क्रि० वि० सवध में । बावत ।

निसवती—वि० [प्र० निस्वत + ई (प्रत्य०)] सवधवाला । सवधी ।
रिस्ते का ।

यो०—निसवती भाई = बहनोई ।

निसयाना④—वि० [हि० नि + सयाना ?] जिसकी सुष बुध खो
गई हो । जिसके होष हवास ठिकाने न हों ।

निसरना④—क्रि० प्र० [सं० नि सरण] निकलना । बाहर होना ।
उ०—नव दसन निसरत बदन मँह जो दसन कली समान
तैं ।—सीताराम (शब्द०) ।

निसरमा④—वि० [हि०] दे० 'बेशरम' । उ०—कीधा कीव कीया

तैं करमा । सिरजनहार न भज्यो निसरमा ।—रामानंद०,
पृ० ६ ।

निसरवाना, निसराना—क्रि० प्र० [सं० नि सारण] बाहर
निकलवाना । बाहर निकालना । उ०—दगनि खुभी खूठी खुभी
निसराए निसरे न । बल चख चितवनि चित चुभी बिसराए
बिसरे न ।—स० सप्तक, पृ० १४८ ।

निसर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभाव । प्रकृति । २. रूप । आकृति ।
३. दान । ४. सृष्टि । ५. परित्याग । त्याग (को०) । ६. विनि-
मय (को०) ।

यो०—निसर्गज, निसर्गसिद्ध = स्वाभाविक । निसर्गनिपुण =
जनम का चतुर । निसर्गभिन्न = जो स्वभाव से ही भिन्न लगे ।
निसर्गविनीत = जो स्वभाव से ही नम्र हो ।

निसर्गायु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निसर्गायुस] फलित ज्योतिष में एक
प्रकार की गणना जिससे किसी व्यक्ति की आयु का पता
लगाया जाता है ।

निसवादला④—वि० [सं० नि स्वाद] [वि० स्त्री० निसवादली]
स्वादरहित । जिसमें कोई स्वाद न हो ।

निसवादली④—वि० स्त्री० [हि० निसवादली] बिना स्वाद की ।
जिसमें कोई स्वाद न हो । उ०—जनक झूठ निसवादली कीन
बात परि जाइ । तियसुख रति भारम की नहि झूठयहि
मिटाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

निसवादिल④—वि० [हि० निसवाद + इल (प्रत्य०)] स्वादहीन ।
बेस्वाद । उ०—हैं निसवादिल जात रसो मन तेरे सुभाव
मिठासहि पागे ।—घनानंद, पृ० २१ ।

निसवासर④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिवासर] रात और दिन ।

निसवासर^२—क्रि० वि० निश्चय । सदा । हमेशा ।

निसस④—वि० [सं० नि श्वास] श्वासरहित । अचेत । बेहोश ।
उ०—निसस ऊम मर लीन्है सासा । भइ प्रघार जीवन की
भासा ।—जायसी (शब्द०) ।

निसहाय—वि० [सं० निस्सहाय] दे० 'निस्सहाय' ।

निसाँत④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशान्त] गृह । घर । निशांत । भत पुर ।
उ०—निश्रुति, निशांतज उद्वसित, सरण, पर्य, प्रावास ।—
नंद प्र०, पृ० १०८ ।

निसाँक^१—वि० [सं० नि.शक] १. देखटके । निर्भय । देखौफ ।
२. वेफिक । निश्चित ।

निसाँस④^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्वास] ठंडो साँस । लंबो साँस ।

निसाँस^२—वि० वेदम । मृतकप्राय । उ०—खनहि निसाँस वृद्धि जिउ
जाई । खनहि उठै निसरे बौराई ।—पदुमा०, पृ० ५३ ।

निसाँसा^१—वि० [हि० नि + साँस] [वि० स्त्री० निसाँसी] जिसका
श्वास न चलता हो । श्वास-प्रश्वास रहित । उ०—प्रभ हों
मरौ निसाँसी हिये न प्रावे साँस । रोगिया की को चाले बैदहि
जहाँ उपास ।—जायसी (शब्द०) ।

निसा④^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [निशासातिर ?] संतोष । तृप्ति । उ०—

हैं है तब निसा मेरे लोचन चकोरनि की जब वह प्रमेल
मानन इंदु देखिहों।—मतिराम (शब्द०) ।

मुहा०—निसा भर=जी भर के । खूब अच्छी तरह । उ०—
प्राज निसा भरि प्यारे निसा भरि कीजिए कान्हर केलि खुसी
में।—ठाकुर (शब्द०) ।

निसा^{७२}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निशा] दे० 'निशा' ।

निसा^{७३}—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० नशह] दे० 'नशा' ।

निसा^{७४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] क्षीरत । महिला । स्त्री [को०] ।

निसाकर^{७५}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । निशाकर ।

निसाखातिर^{७६}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निशाखातिर' ।

निसाचर^{७७}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर' ।

निसाट^{७८}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशाट] निशाचर । दे० 'निशाट' । उ०—
पड़ फाट खगे द्रष्ट घाट पगे । जुघकाट निसाट निराट जगे ।—
रा० क०, पृ० १६८ ।

निसाद^{७९}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निषाद] १. भगी । मेहतर । २ दे०
'निषाद' ।

निसान^{८०}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० निशान] दे० 'निशान' ।

निसान^{८१}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नि.सान] नगाडा । घोंसा । उ०—बोस
सहस धुमरहि निसाना । गुलकचन केरहि असमाना ।—जायसी
(शब्द०) ।

निसानना^{८२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशानन] सव्या का समय । प्रदोष
कास ।

निसाना^{८३}—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० निशाना] दे० 'निशाना' ।

निसानाय^{८४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशानाय] दे० 'निशानाय' ।

निसानी^{८५}—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० निशानी] दे० 'निशानी' ।

निसापति^{८६}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशापति] दे० 'निशापति' ।

निसाफ^{८७}—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० इन्साफ] न्याय । इन्साफ ।

निसार^{८८}—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. निछावर । सदाका । उतारा । २
मुगलों के राजश्व काल का एक सिक्का जो चौपाई रुपए या
चार आने मूल्य का होता था ।

निसार^{८९}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समूह । २ सहोरा या सोनापाठा नाम
का वृक्ष ।

निसार^{९०}—वि० [सं० निस्सार] दे० 'निस्सार' ।

निसारा^{९१}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नि स्सरण, हिं० निसरना] निकलने या
बाहर जाने का रास्ता ।

यौ०—निसार पैसार=निर्गम क्षीर प्रवेशपथ ।

निसारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शासक राग का एक भेद ।

निसारत^{९२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशा + रत] रात में होनेवाली रति ।
रात्रिकालीन रति । उ०—वैठी गुर जन साथ में लखी
प्रधानक लाल । नैन इसारन सौं कही सेन निसारत बाल ।—
स० सप्तक, पृ० ३७६ ।

निसारना^{९३}—क्रि० सं० [सं० नि सरण] निकालना । बाहर करना ।

निसारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नि.सारा] केले का पेड़ ।

निसावरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कबूतर ।

निसास^{९४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नि.श्वास] गहरी या ठंडी सांस ।

निसास^{९५}—वि० [हिं० नि (प्रत्य०) + सांस] विगतश्वास ।
बेवम । उ०—गगन घरति जल वृद्धि गह वृद्ध होइ निसास ।
पिय पिय खातक जोहि री मरै सेवाति पियास ।—जायसी
(शब्द०) ।

निसासी^{९६}—वि० [सं० नि श्वास] जिसका सांस न चलता हो ।
बेवम ।

निसिंधु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निसिन्धु] समुद्र नाम का पेड़ ।

निसि^{९७}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निशि] १. दे० 'निशि' । २. एक वृक्ष
का नाम । इसके प्रत्येक चरण में एक भगण और एक सधु
(साँ) होता है ।

निसिकर^{९८}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिकर] दे० 'निशिकर' या
'निशाकर' ।

निसिचर^{९९}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिचर] दे० 'निशाचर' । उ०—
निसिचर निकर फिरहि बन माही ।—मानस, ३ । २४ ।

निसिचारो^{१००}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिचारो] निशाचर । राक्षस ।

निसिदिन^{१०१}—क्रि० वि० [सं० निशिदिन] १. रातदिन । आठो
पहर । २. सदा । सर्वदा । नित्य । हमेशा ।

निसिनाथ^{१०२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिनाथ] दे० 'निशिनाथ' या
'निशानाथ' ।

निसिनाह^{१०३}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिनाथ] चंद्रमा ।

निसि निसि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निशि निशि] भवरात्रि । निशीथ ।
प्राची रात । उ०—निसि निसि निशिथ निशाह निशि होन
लगी भवरात । कोन चले सखि सोय रहूँ बैहों सठि
परभात ।—नददास (शब्द०) ।

निसिपति^{१०४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिपति] चंद्रमा ।

निसिपाल^{१०५}—सञ्ज्ञा पुं० [निशिपाल] चंद्रमा ।

निसिमनि^{१०६}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशामणि] चंद्रमा ।

निसिमुख^{१०७}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशामुख] दे० 'निशामुख' ।

निसियर^{१०८}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशिकर] चंद्रमा । उ०—अनु धनि
तू निसियर निसि माहीं । हों दिनभर जेहि कै तू छाहीं ।—
जायसी (शब्द०) ।

निसियाना^{१०९}—वि० [हिं० नि + सयाना ?] जिसकी सुषुप्ति खो
गई हो । जिसके होश हवास ठिकाने न हों । उ०—अनह
मानि निसियानी बसी । अनि वेसैभार फूल अनु भरसी ।—
जायसी (शब्द०) ।

निसिवासर^{११०}—क्रि० वि० [सं० निशि + वासर] रातदिन । सदा ।
सर्वदा । नित्य ।

निसीठी—वि० [सं० नि + हिं० सीठी] जिसमें कुछ तत्व न हो ।
नि सार । नीरस । थोथा । उ०—तुम बातें निसीठी कहो रिस
में निसरी ते मिठी हमें लागती हैं ।—पद्माकर (शब्द०) ।

निसीथ^{१११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निशीथ] दे० 'निशीथ' ।

निसील^७—वि० [सं० नि शील] शीलरहित । उ०—नीच निसील निरीस निरकी ।—मानस, २ । २२८ ।

निसुधु—सङ्घ पु० [सं० नि सुधु] प्रह्लाद के भाई ह्लाद के पुत्र का नाम ।

निसुभ—सङ्घ पु० [सं० नि शुभ] दे० 'नि शुभ' ।

निसु^७—सङ्घ श्री० [हि० निस] दे० 'निशा' ।

निसुका^७—वि० [सं० निस्वक प्रपञ्च नि शुक्र] १ निर्बल । दरिद्र । गरीब । २ कमजोर । प्रथमयं । निष्कम्पा । ३ निस्तेज । उ०—रहै निगोड़े नैन डिंगि गहूँ न चेउ प्रचेत । हों कसु के रिस केरों ये निमुके हँसि देउ ।—विहारी (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः 'निगोड़ा' शब्द की भाँति करती हैं ।

निसूदक—वि० [सं०] हिंसा करनेवाला । हिंसक ।

निसूदन^१—सङ्घ पु० [सं०] १ हिंसा करना । २ वध करना ।

निसूदन^२—वि० मारने या वध करनेवाला [को०] ।

निसृत—वि० [सं० नि सृत] दे० 'नि सृत' ।

निसृता—सङ्घ श्री० [सं०] निसोय ।

निसृष्ट^१—वि० [सं०] १ छोड़ा हुआ । जो छोड़ दिया गया हो । २ मध्यस्थ । जो बीच में पड़कर कोई बात करे । ३ भेजा हुआ । प्रेरित । ४ दिया हुआ । दत्त । ५ अप्रति किया हुआ ।

निसृष्ट^२—सङ्घ पु० [सं०] दैनिक भृति । रोजाना दी जानेवाली मजदूरी (कोटि०) ।

निसृष्टार्थ—सङ्घ पु० [सं०] १ तीन प्रकार के दूतों में से एक दूत । वह दूत जो दोनों पक्षों का अभिप्राय अच्छी तरह समझकर सब प्रश्नों का उत्तर दे देता और कार्य सिद्ध कर लेता है । २. वह मनुष्य जो धन के प्रायव्यय और कृषि तथा वाणिज्य की देखरेख के लिये नियुक्त किया जाय । ३ वह मनुष्य जो धीरे धीरे धूर हो, अपने मालिक का काम तत्परता से करता रहे और अपना पोषण प्रकट करे ।

यौ०—निसृष्टार्थदूतिका, निसृष्टार्थदूतो = वह दूत जो नायक और नायिका की बातों को सुन समझकर अपनी बुद्धि से कार्य-साधन करे ।

निसेध^७—सङ्घ पु० [सं० निषेध] दे० 'निषेध' । उ०—का करतव्य निषेध रत्न 'गिरिधारन' कोऊ नहीं पहचाने ।—पोद्दार ग्रन्थ ८. पु० ४६२ ।

निसेनिका^७—सङ्घ श्री० [नि श्रेणिका] सीढ़ी । सोपान । उ०—नामो सर त्रिवली निसेनिका रोमराजि सेवल छवि पावति ।—तुलसी प्र०, पु० ४१५ ।

निसेनी^१—सङ्घ श्री० [सं० नि श्रेणी] सीढ़ी । जीना । सोपान । उ०—नरक स्वर्ग प्रपञ्च निसेनी । ज्ञान विराग भगति सुभ देनी ।—मानस, ७ । १२१ ।

निसेष^७—वि० [सं० नि शेष] दे० 'नि शेष' । उ०—काम क्रोध मद्य भोग मोह मद राग द्वेष निषेध करि परिहर ।—तुलसी प्र०, पु० ५६२ ।

निसेस^७—सङ्घ पु० [सं० निशेष] चद्रमा ।

निसैनी—सङ्घ श्री० [सं० नि श्रेणी] दे० 'निसैनी' ।

निसोग^७—वि० [सं० नि शोक] जिसे कोई शोक या चिन्ता न हो ।

निसोच^७—वि० [सं० नि.शोच] चितारहित । निश्चित । बेफिक्र । उ०—सब विधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ।—मानस, २ । २४१ ।

निसोचु^७—वि० [सं० नि शोच] दे० 'निसोच' । उ०—तुलसी की साहसी सराहिए कृपाल नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु हैं ।—तुलसी प्र०, पु० २१७ ।

निसोत^१—वि० [सं० नि सयुक्त] जिसमें और किसी चीज का मेल न हो । शुद्ध । निरा । उ०—(क) तो कत त्रिविध सूल निस वासर सहते विपति निसोती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रीझत राम सनेह निसोते । को अग मद मलिन मति मोते ।—तुलसी (शब्द०) ।

निसोत^२—सङ्घ श्री० [हि० निसोय] दे० 'निसोय' ।

निसोत्तर—सङ्घ पु० [हि०] दे० 'निसोत' ।

निसोथ—सङ्घ श्री० [सं० नि सृता] एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत के जंगलों में और पहाड़ों पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

विशेष—इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं और इसमें गोस फल लगते हैं । यह तीन प्रकार की होती है—सफेद, काली और लाल । सफेद निसोथ में सफेद रंग के, काली में कालापन लिए बैंगनी रंग के और लाल के फल कुछ लाल रंग के होते होते हैं । सफेद निसोथ के पत्ते और फल अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं और वैद्यक में वही अधिक गुणकारी भी मानी जाती है । भारत में बहुत प्राचीन काल से वैद्य लोग इसका व्यवहार करते आए हैं और इसका जुलाब सबसे अच्छा समझते हैं । औषध के काम के लिये बाजार में इसकी जड़ तथा कंठों के कटे हुए टुकड़े मिलते हैं । वैद्यक में इसे गरम, चरपरी, रूखी, रेचक और कफ, सूजन तथा उदर रोगों को दूर करनेवाली माना है ।

पर्या०—त्रिवृत् । सुवहा । त्रिपुटा । त्रिभञ्जो । रेचनी । सरा । सहा । सरसा । रोचनी । मालविका । श्यामा । मसूरी । अघचंद्रा । विदला । सुपेणी । कालिका । कालमेघी । काली । त्रिवेला । त्रिवृत्तिका । सारा । नि सृता ।

निसोघु^७—सङ्घ श्री० [हि० सोघ या सुघ] १. सुघ । सबर । २. संदेहा । कहलाया हुआ समाचार ।

निस—उप० [सं०] एक उपसर्ग । संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार इस उपसर्ग का 'स' 'र', 'विसर्ग', 'घ' और 'व' में परिवर्तित हो जाता है । जैसे, निर्मलिक, नि सग, निषचक्र, निष्काम । हिन्दी में इसका रूप 'निह' 'निहि' भी मिलता है । जैसे, निहकाम, निहिषित, निहिचय आदि ।

निरकी—सङ्घ श्री० [दे०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसे निस्तरी भी कहते हैं ।

निस्केवल—वि० [सं० निष्केवल] बेमेल । शुद्ध । निर्मल । खालिस । (बोलचाल) । उ०—उमा जोग जप दान तप नाना श्रत मख नेम । राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निस्केवल प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) ।

निस्तु—वि० [सं० निस्तु] १ जिसके कोई संतान न हो । सतति-रहित । २ तनुहीन ।

निस्तद्व, निस्तद्वि—वि० [सं० निस्तद्व, निस्तद्वि] १ जिसमें भालस्थ न हो । निरालस्य । २. बलवान् । मजबूत ।

निस्तत्व—वि० [सं० निस्तत्व] जिसमें कोई तत्व न हो । निस्तार ।

निस्तनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवा की गोली । वटिका [को०] ।

निस्तब्ध—वि० [सं०] १ जो गड या जम सा गया हो । जो हिलता होलता न हो । जिसमें गति या व्यापार न हो । २. जड़वत् । निश्चेष्ट ।

निस्तब्धता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तब्ध होने का भाव । खामोशी । २. जरा भी शब्द न होने का भाव । सन्नाटा ।

निस्तमस्क—वि० [सं०] अधकारहीन [को०] ।

निस्तर(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निस्तर] छुटकारा । निस्तार । उ०—जरै देहु दुख जरौ अपारा । निस्तर पाइ जाउँ एक बारा ।—जायसी (शब्द०) ।

निस्तरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निस्तार । छुटकारा । उद्धार । २ पार जाने की क्रिया या भाव ।

निस्तरना(उ)†—क्रि० प्र० [सं० निस्तार] निस्तार पाना । पार होना । मुक्त होना । छूट जाना । उ०—नाथ जीव तब माया मोहा । सो निस्तरदु तुम्हारेहि छोहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निस्तरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसका रेशम वगाल के 'देशी' कीड़ों के रेशम की अपेक्षा कुछ कम मुलायम और चमकीला होता है ।

विशेष—इसके तीन भेद होते हैं—मदरासी, सोनामुखी और कृमि ।

निस्तर्क्य—वि० [सं०] जिसका तर्क करना संभव न हो । अतर्क्य [को०] ।

निस्तर्हण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वध । हत्या [को०] ।

निस्तल—वि० [सं०] १ गोल आकार का । २. बिना पेंदी का । ३ चंचल । ३ अतल । गहरा । तलहीन । उ०—शीतल सुख मेरे तट की निस्तल निभरी, छवि विभावरी ।—अनामिका, पृ० १४४ ।

निस्तला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वटिका । गोली [को०] ।

निस्तार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पार होने का भाव । २. छुटकारा । मोक्ष । ३ बचत । बचाव । उद्धार । ४ अभीष्ट की प्राप्ति । ५ साधन । उपाय [को०] ।

निस्तारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० निस्तारिका] निस्तार करनेवाला । बचानेवाला । छुड़ानेवाला ।

निस्तारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निस्तार करना । बचाना । छुड़ाना । २ पार करना । ३ जीतना । पराजित करना ।

निस्तारन(उ)†—वि० [सं० निस्तारण] दे० 'निस्तारण' ।

निस्तारना(उ)†—क्रि० प्र० [सं० निस्तार + ना (प्रत्यय)] छुड़ाना । मुक्त करना । उद्धार करना ।

निस्तार बीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह उपाय या काम जिससे मनुष्य को इस संसार तथा जन्म, मरण आदि से मुक्ति हो जाय । जैसे, भगवान् के नाम का स्मरण कीर्तन, अर्चन, पादसेवन, वदन, चरणोदक पान, विष्णु के मंत्र का जप आदि ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि कलियुग में जब लोग तपोहीन हो जायेंगे तब इन्हीं सब कामों से उनकी मुक्ति होगी ।

निस्तारा(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निस्तार' ।

निस्तिमिर—वि० [सं०] अधकार से रहित या शून्य ।

निस्तोर्ण—वि० [सं०] १. पार गया हुआ । जो तै या पार कर चुका हो । २ जिसका निस्तार हो चुका हो । छुटा हुआ । मुक्त ।

निस्तुष—वि० [सं०] १ बिना सूसी का । जिसमें सूसी न हो । २ निर्मल ।

निस्तुष क्षीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ ।

निस्तुष रत्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक मणि ।

निस्तुषित—वि० [सं०] १ जिसका छिलका उतार लिया गया हो । २ घसग किया हुआ । ३ छोटा या पतला किया हुआ [को०] ।

निस्तेज—वि० [सं० निस्तेजस्] तेजरहित । जिसमें तेज न हो । अप्रभ । मलिन ।

निस्तैल—वि० [सं०] तैलरहित । बिना तेल का । जिसमें तेल न हो ।

निस्तोद, निस्तोदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चुभन । काटने, खुरचने, नोचने या ढक मारने वैसी पीड़ा [को०] ।

निस्त्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज । बेहया । बेधर्म ।

निस्त्रिश^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खड्ग । २ तत्र के अनुसार एक प्रकार का मन्त्र ।

यौ०—निस्त्रिशभृत = खड्गधारी ।

निस्त्रिश^२—वि० [सं०] १ निर्दय । जिसमें दया न हो । २ तीव्र से अधिक [को०] ।

निस्त्रिशपत्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गृहर ।

निस्त्रुटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची ।

निस्त्रैगुण्य—वि० [सं०] जो सत, रज और तम इन तीनों गुणों से रहित या अलग हो ।

निस्त्रैगुण्यपुष्पिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घटूरे का पेड़ ।

निस्नात(उ)—वि० [दे० निष्णात] दे० 'निष्णात' । उ०—कृती कुशल कोविद निपुन इन प्रवीन निस्नात ।—अनेकार्य, पृ० ३२ ।

निस्नेह^१—वि० [सं० निस्नेह] १ जिसमें प्रेम न हो । २. जिसमें तेल न हो ।

निस्नेह^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तत्र के अनुसार एक प्रकार का वन ।

निस्नेहफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया । कटेरी ।

निस्पन्द—वि० [सं० निस्पन्द] जिसमें स्पन्दन न हो। कपरहित। स्थिर।
 निस्पन्द^३—सञ्ज्ञा पुं० क०। स्पन्दन [को०]।
 निस्पृह—वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार का लोभ न हो। खालच या कामना प्रादि से रहित।
 निस्पृहता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निस्पृह होने का भाव। लोभ या लालसा न होने का भाव।
 निस्पृहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा या कलिहारी नामक पेड़।
 निस्पृही—वि० [सं० निस्पृह] दे० 'निस्पृह'।
 निस्फ—वि० [प्र० निस्फ] प्रघ्नं। घाघा। दो बराबर भागों में से एक भाग।
 निस्फल—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल'। उ०—कबीर करनी घ्रापनी कबहुं न निस्फल जाय।—कबीर सा०, पृ० ८८।
 निस्फोवैटाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० निस्फ + ई (प्रत्य०) + हि० वैटाई] वह वैटाई जिसमें घाघी उपज जमींदार और घाघी आसामी लेता है। अधिया।
 निस्वत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० निस्वत] दे० 'निसवत'।
 निस्पद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निस्पन्द] १ चूना। बहना। रिसना। भरना। २ नतीजा। परिणाम। ३ व्यक्त करना। जाहिर करना [को०]।
 निस्पदी—वि० [सं० निस्पन्दिन्] चूने या बहनेवाला। रिसनेवाला। भरनेवाला [को०]।
 निस्त्रव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भात का माँड। २ वह जो वह या ऋककर निकले। पसेव। ३ बहना। चूना।
 निस्व—वि० [सं०] दरिद्र। गरीब। नि स्व।
 निस्वन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज।
 निस्वान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'निस्वन'। २ तीर की सन्नाहट। तीर चने से उत्पन्न ध्वनि [को०]।
 निस्वास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्वास] दे० 'निश्वास'।
 नि संक- वि० [सं० निश्चङ्क] दे० 'निश्चक'। उ०—खगकुल बैठत अरु पियत निस्सक नयन जल। धनि धनि है वे बीर धरयो जिन यह समाधि बल।—ब्रज० प्र०, पृ० १२५।
 निस्संकोच—वि० [सं० निस्सङ्कोच] संकोच रहित। जिसमें संकोच या सञ्जा न हो। बेधक।
 निस्संग—वि० [सं० निस्सङ्ग] १ अकेला। एकाकी। जिसका कोई साथी न हो। २ जिसका किसी से लगाव न हो। निलिप्त [को०]।
 निस्सतान—वि० [सं० निस्सन्तान] जिसे कोई सतान न हो। सततिरहित।
 निस्सदेह^१—क्रि० वि० [सं० निस्सन्देह] प्रवश्य। जरूर। वेशक। सचमुच।
 निस्संदेह^२—वि० जिसमें संदेह न हो।
 निस्सत्त्व—वि० [सं०] दे० 'नि सत्व'।
 निस्सरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निकलने का मार्ग या स्थान। २ निकलने का भाव या क्रिया। निकास।

निस्सान^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निशान'। उ०—धुरत निस्सान तहँ गैव की आनरा, गैव के घट का नाद आवै।—कबीर श०, भा०, पृ० ८८।
 निस्सार—वि० [सं०] १ साररहित। जिसमें कुछ भी सार या गूदा न हो। २ जिसमें कोई काम की वस्तु न हो। निस्सत्त्व।
 निस्सारित—वि० [सं०] निकाला हुआ। बाहर किया हुआ।
 निस्सीम—वि० [सं०] १ जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। अपार। २ बहुत अधिक।
 निस्सूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ०—दोत करत खग प्रहार वारह वार बहुत प्रकार के। तिनको कहत मैं नाम जो है हाथ मुख्य हथियार के। उद्भात भ्रात प्रबुद्ध आकर विकर भिन्न अमानुष। आविद्ध निर्मर्याद कुल चितवहु निस्सून रिपुरन दुपै।—रघुराज (शब्द०)।
 निस्सनेह—वि० [सं०] दे० 'निस्नेह'।
 यौ०—निस्नेहफला = श्वेत कटकारी।
 निस्स्पद—वि० [सं० निस्पन्द] दे० 'निस्पद'।
 निस्स्पृह—वि० [सं०] दे० 'निस्पृह'।
 निस्स्व, निस्स्वक—वि० [सं०] दे० 'नि स्व'।
 निस्स्वादु—वि० [सं०] १ जिसमें कोई स्वाद स्वाद न हो। २ जिसका स्वाद बुरा हो।
 निस्स्वार्थ—वि० [सं०] स्वार्थ से रहित। जिसमें स्वयं अपने लाभ या हित का कोई विचार न हो।
 निहंग—वि० [सं० नि सङ्ग] १ गत्ताकी। अकेला। विवाह प्रादि न करनेवाला वा स्त्री से मवध न रखनेवाला (साधु)। ३ नगा। ४ बेहया। वेशरम।
 निहंग^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक प्रकार के वैष्णव साधु। २ अकेले रहनेवाला साधु।
 निहंगम—वि० [हि० निहंग] दे० 'निहंग'।
 निहंग लाडला—वि० [हि० निहंग + लाडला] जो माता पिता के दुनार के कारण बहुर ही उड़ ड और लापरवा हो गया हो।
 निहंता—वि० [सं० निहन्तु] [वि० स्त्री० निहन्त्री] १ विनाशक। नाश करनेवाला। २ मारनेवाला। प्राण लेनेवाला।
 निहृअक्षर^७—वि० जिसका कभी किसी भी दशा में बिनाश न हो। अविनश्वर। उ०—इय निहृअक्षर पुष्य को जो जनि सो मुक्ति मार्ग पावे।—कबीर म०, पृ० ३७८।
 निहृकमी^१—वि० [सं० निहृकर्मन्] दे० 'निहृकर्म'।
 निहृकमी^७—वि० [हि० निहृकर्म] दे० 'निहृकर्म'।
 निहृकलक^७—वि० [सं० निहृकलक] दे० 'निहृकलक'।
 निहृकाम^७—वि० [सं० निहृकाम] दे० 'निहृकाम'। उ०—नर नारी 'सब नर कहैं जय लग देह सकाम। कहै कबीर सो राम को जो सुमिरै निहृकाम।—कबीर (शब्द०)।
 निहृकामी—वि० [हि०] दे० 'निहृकामी'। उ०—सहृकामी सुमिरन करे पावे उत्तम धाम। निहृकामी सुमिरन करे पावे अविचल राम।—कबीर (शब्द०)।

निहगर्व^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] निरभिमान । अहंकाररहित । गर्वहीन । उ०—मुक्त भए ससार में बिचरत है निहगर्व ।—सु दर प्र०, भा० २, पृ० ६६६ ।

निहचक्र^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नेमि + चक्र] पहिए के आकार का काठ का गोल चक्कर जो कुएँ की नीचे में दिया जाता है । निवार । जमवट । जाखिम ।

निहचय^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निहचल^१—वि० [सं० निश्चल] दे० 'निश्चल' ।

निहचिंत^१—वि० [सं० निश्चिंत] दे० 'निश्चिंत' । उ०—काग ऐसो निहचिंत कबहूँ नहि सोवै ।—जग० श०, पृ० ५६ ।

निहचै^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' । उ०—निहचै भारत को भव नास ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४८४ ।

निहछल^१—वि० [सं० निश्छल] दे० 'निश्छल' । उ०—गोपालहि रुचत सहज व्योहार । निहछल बिनु प्रपच निरकुशिम सब विधि बिना बिकार ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५४८ ।

निहठा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निष्ठा] लकड़ी का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बढ़ई गढ़ने की चीजों को बसुने से गढ़ते हैं । ठोहा ।

निहडर^१—वि० [हि०] दे० 'निडर' । उ०—कोउ इक अवर को गिरिवर कर घर बोलत तब । निहडर इहि तर रही गोप गोपी गाइन सब ।—नद० प्र०, पृ० २६ ।

निहत^१—वि० [सं०] १ फका हुआ । २ नष्ट । ३ मारा हुआ । जो मार बाला गया हो । ३ प्रविष्ट । सबद्ध । सलग्न (को०) ।

निहततु^१—वि० [सं० निस्तत्त्व] दे० 'निस्तत्त्व' । उ०—तहाँ वेद कितेव कि गम नहीं निहततु शब्द सरूप देखा ।—स० दरिया, पृ० ७० ।

निहतार्थ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्यगत एक दोष । दे० 'निहतार्थता' ।

निहतार्थता, निहतार्थत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यदोष ।

विशेष—जब किसी अनेकार्थक शब्द के अप्रचलित अर्थ का प्रयोग किया जाता है तब यह दोष माना जाता है ।

निहत्था^१—वि० [हि० नि + हाथ] १ जिसके हाथ में कोई शस्त्र न हो । शस्त्रहीन । उ०—हमारे साथ रुई मनुष्य पैदल और निहत्थे थे ।—शिवप्रसाद (शब्द०) । २ जिसके हाथ में कुछ न हो । खाली हाथ । निर्धन । गरीब ।

निहनन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हत्या । हनन । वध (को०) ।

निहनना^१—क्रि० सं० [सं० निहनन] मारना । मार डालना । उ०—तहाँहि कवच दुहुन पर घायो । ताहि निहनि मुर लोक पठायो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

निहपाप^१—वि० [सं० निष्पाप] दे० 'निष्पाप' ।

निहफल^१—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल' ।

निहरूप^१—वि० [हि० निह (= नहीं) + सं० रूप] उ०—शब्द स्पर्शक गद्य है अथ कमं तनमात्रा तु नहि यत निहरूप ।—

निहली^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो नदी के पीछे हट जाने से निकल आई हो । गपवरार । कछार ।

निहलिस्ट^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ वह पुरुष जिसका यह सिद्धांत हो कि वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि वस्तुओं की सत्ता ही नहीं है ।

विशेष—ऐसे लोग वस्तुओं की वास्तविक सत्ता और उन वस्तुओं के सत्तात्मक ज्ञान का निषेध करते हैं ।

२ इस देश का एक दल ।

विशेष—यह पहले एक सामाजिक दल था जो प्रचलित वैवाहिक प्रथा तथा रीति रवाज और पेटुक शासन का विरोधी था पर पीछे एक राजनैतिक दल हो गया और सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रित नियमों का ध्वंसक और नाशक बन गया ।

३ इस दल का कोई भ्रादमी ।

निहली^१—वि० [देश० निहल] किनारे की । कोनेवाली । उ०—निहली चितवनि ऐंचा तानी ।—कबीर सा० पृ० १५६८ ।

निहव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुकार करना । बुलाना । आह्वान (को०) ।

निहशब्द^१—वि० [सं० निशब्द] दे० 'निशब्द' । उ०—है निहशब्द शब्द सौं कहेऊ । ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ ।—कबीर सा०, पृ० १००२ ।

निहससा^१—वि० [सं० निशय] संदेहरहित । जिसे शका न हो । उ०—नामहि गहै तेहि निहससा । नाम बिना बूडे सब हसा ।—कबीर सा०, पृ० १००८ ।

निहाँ^१ वि० [प्रा०] गुप्त । छिपा हुआ (को०) ।

निहाँ^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निघाति, मि० फा० निहाली] सोनारो और लोहारो का एक औजार जिसपर वे धातु को रखकर हथोड़े से कूटते या पीटते हैं ।

विशेष—यह लोहे का बना हुआ चौकोर होता है और नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है । नीचे की ओर निहाँ की एक काठ के टुकड़े में जोड़ देते हैं जिससे यह कूटते या पीटते समय धड़ धड़ हिलती डोलती नहीं । यह छोटी बड़ी कई प्रकार की होती है ।

यौ०—निहाँ की थाली = वह थाली जो निहाँ पर रखकर नकाशी गई हो ।

निहाउ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निघाति] खोह का घन । उ०—सुरदै कीन्ह साँग पर घाऊ । परा खरग जनु परा निहाऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

निहाका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ गोह नामक जंतु । गोहडा । २ घड़ियाल । ३ ऊँकवात । तूफान (को०) ।

निहानी^१—वि० [प्रा०] मंदरुनी । भीतर का । छिपा हुआ । गुप्त । उ०—न पाया भेद इसरारे निहानी ।—कबीर म०, पृ० ४४४ ।

निहानी^२—पञ्चा स्त्री० [सं० निखनित्री] १ एक प्रकार की हलानी जिसकी नोक भ्रंशचक्राकार होती है और गरीब खुदाई का काम होता है ।

जिससे ठप्पे की लकीरों के बीच में भरा हुआ रंग खुरचकर साफ किया जाता है।

निहायत—वि० [प्र०] प्रत्यय। बहुत अधिक। जैसे, निहायत उम्दा चीज, निहायत बारीक काम।

निहायतु—सञ्ज्ञा पु० [सं० निघात] १ निहाई। २ चोट। प्रहार।

निहार—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ क्रूर। पाला। उ०—दड़ एक रथ देखि न परा। जनु निहार महँ दिनमनि दुरा।—तुलसी (शब्द०)। २ ओस। ३ हिम। बरफ।

निहारु—सञ्ज्ञा पु० [सं० निहार] दे० 'निहार'। उ०—चार चदन मनहु मरकत शिखर लसत निहार। श्विर उर उपवीत राजत पदिक गजमनि हार।—तुलसी (शब्द०)।

निहारना—क्रि० सं० [सं० निभालन (= देखना)] ध्यानपूर्वक देखना। टक लगाकर देखना। देखना। ताकना। उ०—(क) भयो चकोर सो पंथ निहारे। समुँद सीप जस नैन पसारे।—जायसी (शब्द०)। (ख) भौखड़ियाँ झई परी पथ निहारि निहारि। जीमरियाँ छाला पयो, नाम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ग) प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहि। पुनि पुनि परन सरोज निहारहि।—तुलसी (शब्द०)। २ ज्ञान होना। जानना। समझना। उ०—प्रथम पूतना कस पठाई भति सुंदर बपु धारयो। घसि कै गरल लगाय उरोजन कपट न कोउ निहारयो।—सूर (शब्द०)।

सयो० क्रि०—देना।—लेना।

निहारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का आकाशस्थ पदार्थ जो देखने में धुँधले रंग के घबहे की तरह होता है।

विशेष—दे० 'नीहारिका'।

निहारुआँ—सञ्ज्ञा पु० [दे०] दे० 'नहरुआ'।

निहाल—वि० [फ्रा०] जो सब प्रकार से सतुष्ट और प्रसन्न हो गया हो। पूर्णकाम। उ०—(क) दास दुखी तो हरि दुखी भादि भत सिद्धे काल। पलक एक में परगटे पल में करे निहाल।—कबीर (शब्द०)। (ख) गए जो सरन भारत के लीन्हें। निरखि निहाल निमिष भेह कीन्हें।—तुलसी (शब्द०)। २ समृद्ध। संपत्तिशाली। मालामाल (को०)।

निहालचा—सञ्ज्ञा पु० [फ्रा० निहालचह] छोटी तोशक या गद्दी जो प्रायः बच्चों के नीचे बिछाई जाती है।

निहाललोचन—सञ्ज्ञा पु० [फ्रा० निहाल (= खुश, प्रसन्न या समृद्ध) ? + सं० लोचन ?] वह घोड़ा जिसकी मयाल (किसर) दो भागों में बटी हो, आधी बहिनी और आधी बाई और।

निहाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १ गद्दा। तोशक। उ०—रेशम की नरम निहाली मे सोना जो अदा से हँस हँसकर।—नजीर (शब्द०)। २ निहाई।

निहाव—सञ्ज्ञा पु० [सं० निघात] लोहे का घन।

निहिसन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] हस्या। वध [को०]।

निहिचय—सञ्ज्ञा पु० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय'।

निश्चित—वि० [सं० निश्चित, हि० निर्दिष्ट] दे० 'निश्चित'।

निहित—वि० [सं०] १ स्थापित। रखा हुआ। २ जोर से कहा हुआ। गंभीर आवाज में कथित (को०) ३ समर्पित। सौंपा हुआ (को०)।

निहीन—वि० [सं०] नीच। पामर।

निहुँकना—क्रि० प्र० [हि० नि + भुकना] भुकना।

निहुड़ना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निहुरना'।

निहुड़ाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निहुराना'।

निहुरना—क्रि० प्र० [हि० नि + होठन] भुकना। नवना। उ०—(क) यक से पूजा जोन बिचारा। यक से निहुरि निमाज गुजारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) कुच भ्रम नखच्छत नाह दियो सिर नाय निहारति यों सजनी। ससिसेखर के सिर ते सु मनो निहुरे ससि लेत कला भ्रपनी।—ग्रह्य (शब्द०)।

यौ०—निहुरे निहुरे = भुककर।

मुहा०—निहुरे निहुरे कंट की चोरी = (१) असंभव कार्य। (२) ऐसी चालाकी जिसे सब जान जाएँ।

निहुराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निहुराई] दे० 'निहुराई'।

निहुराना—क्रि० सं० [हि० निहुरना का प्रे० रूप] भुकाना। नवना। उ०—भर झोनी सिर निहुराए क्या बैठी हो।—इशापल्ला (शब्द०)।

निहोरा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'निहोरा'।

निहोरना—क्रि० सं० [सं० मनोहार, हि० मनुहार] १ प्रार्थना करना। विनय करना। उ०—(क) सुमिरि महेशहि कहइ निहोरी। विनती सुनहु सदा शिव मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएह विनती मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तापस देव गात कस जपत निरतर मोहि। देखउ बेगि सो जतन कर सखा निहोरउ तोहि। २ मनाना। मनोती करना। उ०—(क) देवता निहोरि महामारिन ते कर जोरे, भोरानाय मोरे भ्रपनी भी कहि ठई है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ग्वालिन चली जमुन बहोरि। बाहि सय मिलि कहत आवहु कहु कहति निहोरि।—सूर (शब्द०)। (ग) जोरहु हुकर मोरे से भाय निहोरत प्यारे पिया बढभागी।—(शब्द०)। (घ) है तो भली घर ही जो रहो तुम यो कहि के ननदी हूँ निहोरेउ।—(शब्द०)। ३ कृतज्ञ होना। एहसान लेना। उ०—सोइ कृपाल केवटहि निहोरे। जेहि जग किय तिहु पग ते थोरे।—तुलसी (शब्द०)।

निहोरा^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० मनोहार, हि० मनुहार] १ अनुग्रह। एहसान। कृतज्ञता। उपकार। उ०—(क) क्या काशी क्या ऊसर मगहर हृदय राम बस मोरा। जो काशी तन तजै 'कबीरा रामहि कोन निहोरा ?—कबीर (शब्द०)। (ख) सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखहु जन मन चोरा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कहा दाता जो द्रवे न दीनहि देखि

दुखित कलिकान । सूर स्याम को कहा निहोरो खलत वेव की
साक्ष ।—सूर (शब्द०) ।

२. बिनती । प्रार्थना । उ०—(क) मैं आपनि दिसि कीन निहोरा ।
तिन्ह निज ओर न लाउव भोरा ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) चितै रघुनाथ बदन की ओर । रघुपति सो भव नेम
हमारो विधि सो करति निहोरा ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. भरोसा । आसरा । आश्रय । आधार । उ०—रात दिवस
निरभय जिय मोरे । लयो निहोरे कत जो तोरे ।—जायसी
(शब्द०) । (ख) नाक सँवारत आयो हों गार्कहि नाही
पिनाकहि नेकु निहोरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

निहोरा^३—क्रि० वि० १. निहोरे से । कारण से । बदीलत । द्वारा ।
उ०—(क) तुम सारिखे सत प्रिय मोरे । घरउं देह नहि पान
निहोरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तजउं प्राण रघुनाथ
निहोरे । दुहै हाथ मुद मोवक मेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २
के लिये । वास्ते । निमित्त । उ०—तुम वसीठ राजा की
ओरा । साख होहु यहि भीख निहोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

निहव—सङ्ग पु० [सं०] १. गोपन । छिपाव । दुराव । २. एक प्रकार
का साम । ३. अविश्वास । ४. शुद्धि । पवित्रता । प्रायश्चित्त ।
५. बचपासी । दुष्टता (को०) । ६. अपलाप । बहाना (को०) ।
७. इनकार । अस्वीकार (को०) ।

यौ०—निहववादी = वह गवाह जो मरबंद उत्तर दे ।

निहवन—सङ्ग पु० [सं०] १. अस्वीकरण । इनकार । २. अपलाप ।
बहाना । गोपन । दुराव । छिपाव (को०) ।

निहनुत—वि० [सं०] छिपाया हुआ ।

निहनुति—सङ्ग श्री० [सं०] छिपाव । दुराव । गोपन ।

निह्नाद—सङ्ग पु० [सं०] शब्द । ध्वनि । निह्नादि ।

नीद—सङ्ग श्री० [सं० निद्रा + प्रा० निद्रा] जीवन की एक नित्यप्रति
होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और
शरीर और अतः करण दोनों विश्राम करते हैं । निद्रा ।
स्वप्न । सोने की अवस्था । वि० दे० 'निद्रा' । उ०—(क)
कीन्हैसि मूँख नीद बिसरामा ।—जायसी (शब्द०) । (ख)
जो करि कंठ जाइ पुनि कोई । जातहि नीद जुड़ाई होई ।
—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—ग्राना ।—टटना ।—जाना ।—लगना ।

मुद्दा^०—नीद उचटना = नीद का दूर होना । नीद उचटना =
नीद दूर करना । सोने में बाधा डालना । नीद का दुखिया =
बहुत सोनेवाला । सदा सोने का इच्छुक रहनेवाला । नीद
का माता = नीद से व्याकुल । नीद से गिर गिर पड़नेवाला ।
नीद उचाट होना = नीद का खुलने पर फिर न आना ।
सोने में बाधा पड़ना । नीद टटना = नीद का छूट जाना ।
जग पड़ना । नीद खराब करना = सोने का हर्ज करना ।
निद्रा की दशा न रहना । नीद पड़ना = नीद आना । निद्रा

की अवस्था होना । नीद परना (उ०) = नींद आना । उ०—नींद
न परे रेन जो आई ।—जायसी (शब्द०) । नीद भरना =
नींद पूरी करना । सोना । नींद भर सोना = जितनी इच्छा हो
उतना सोना । इच्छा भर सोना । उ०—आगत ही सब
वीति निसा गई कबहुँ न नाथ नीद भरि छोयो ।—तुलसी
(शब्द०) । नीद मारना = सोना । नीद सेना = सोना ।
उ०—(क) नींद न लीन्ह रेन सब जागा । होत बिहान
धाय गढ़ लाग ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जब ते प्रीत
स्याम सो कीन्ह । ता दिन ते नेननि नेकहु नीद न लीन्ह ।
—सूर (शब्द०) । नीद मचरना = नींद आना । उ०—
छादसि मे जो पारण करहीं । ओर शयन जो नीद सचरहीं ।
—सबलसिंह (शब्द०) । नीद हराम करना = सोना छुड़ा
देना । सोने न देना । नीद हराम होना = सोना छूट जाना ।
सोने की नीबत न आना ।

नींदडिया^०—सङ्ग श्री० [हि० नींदडी + ह्या (प्रत्य०)] नींद ।
निद्रा ।

नींदड़ी^०—सङ्ग श्री० [हि० नींद + डी (प्रत्य०)] दे० 'नींद' । उ०—
नैन न भावइ नींदही निस दिन तलफत जाय । दाढ़ पातुर
बिरहिनी, योकरि रहन बिहाय ।—दाढ़ (शब्द०) ।

नींदना^०—क्रि० सं० [सं० निकन्दन] निराना । ३० 'नींदना' ।

नींदर, नींदरी^०—सङ्ग श्री० [सं० निद्रा] दे० 'नींद' । उ०—हो
जमात भलसात तात तेरी बानि जाति भे पाई । गाइ गाइ
हलराइ बोलिहो सुख नींदरी सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नींवा^०—सङ्ग श्री० [सं० निम्ब] दे० 'नीम' ।

नीअर^०—सङ्ग श्री० [सं० निकट, प्रा० नियड] १. निकट । पास ।
२. समान । तुल्य ।

नी^०—वि० [सं०] नेता । प्रधान । अनुष्ठा । समासात में प्रयुक्त । जैसे,
ग्रामणी, सेनानी, अग्रणी (को०) ।

नीक^०—वि० [सं० नित्त (= स्वच्छ, साफ), फा० नेक] [श्री०
नीकि] अच्छा । सुंदर । भला । अनुकूल । उ०—(क) प्रथ
तुम कही नीक यह सोभा । पे फल सोई भँवर बेहि लोना ।
—जायसी (शब्द०) । (ख) गुन प्रवगुन जानत सब कोई ।
जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुद्दा^०—नीक लगना = (१) रुचना । भाना । रुचि के 'अनुकूल'
आन पड़ना । (२) सजना । सुगोमित होना । नीक लागना
(उ०) = दे० 'नीक लगना' उ०—मय तोहि नीक लाग कर
सोई ।—मानस, २।३६ ।

नीक^०—सङ्ग पु० अच्छाई । उत्तमता । अच्छापन । उ०—जोई
फल देखी सोई कीका । ताकर काहू सराहे नीका ।—
जायसी (शब्द०) ।

नीका^१—सङ्ग श्री० [सं०] सिचाई के लिये बनी उत्तमगुणाली (को०) ।

नीका^२—वि० [सं० नित्त (= साफ, स्वच्छ), फा० नेक] [हि० श्री०
नीकी] अच्छा । उत्तम । बड़िया । भला । उ०—(क) निज
कवित फेदि लाग न नीका । सरख होउ प्रपवा प्रति कीका ।

—मानस, १।५। (ख) प्रभु पद प्रीति न सामुक्ति नोकी।
तिन्हहि कथा सुनि लागहि फोकी।—तुलसी (शब्द०)। (ग)
आज्ञा करो नाथ चतुरानन करो सृष्टि विस्तार। होरी खेलन
की विधि नोकी रचना रचे अपार।—सुर (शब्द०)।

मुद्दा—नीका लगना = (१) खना। भाना। सुद्धाना। अच्छा
मालूम होना। (२) सुशोभित होना। सजना। सोहना।

नीकार—सङ्घ पु० [सं०] दे० 'निकार' [को०]।

नीकाश—वि० [सं०] तुल्य। समान।

नीके—क्रि० वि० [हि० नीक] अच्छी तरह। भली भाँति। उ०—
(क) नीके निरखि नयन भरि सोभा।—तुलसी (शब्द०)।
(ख) मातहि पितहि उरिण भए नीके। गुह ऋण रद्दा सोच
बड़ जी के।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सुनि कटु वचन
गयो माता पे तब इन ज्ञान द्वायो। हरि की भक्ति करो
सुत नीके जो चाहो सुख पायो।—सुर (शब्द०)।

नीको—वि० [हि० नीक] दे० 'नीका'।

नीगने—वि० [सं० नगण्य] अनगिनत। सख्यातीत।

नीग्रो—सङ्घ पु० [सं०] हवशी। निग्रो।

नीच^१—वि० [सं०] १ क्षाति, गुण, कर्म या किसी और बात में
घटकर वा न्यून। क्षुद्र। तुच्छ। अधम। हेठा। जैसे, नीच
प्रादमी, नीच कुल।

यौ०—नीच ऊँच = छोटा बड़ा। बड़े घराने या छोटे घराने
का। उ०—नीच ऊँच धन संपत्ति हेरा।—जायसी (शब्द०)।
२ जो उत्तम और मध्यम कोटि से घटकर हो। अधम। बुरा
निकृष्ट।

यौ०—नीच ऊँच = (१) अच्छा बुरा। (२) बुराई भलाई।
गुण भवगुण। (३) अच्छा और बुरा परि गम। हानि लाभ।
जैसे,—नीच ऊँच समझकर काम करो। (४) सपद विपद।
सुख दुःख। सफलता असफलता।

नीच^२—सङ्घ पु० १. नीच मनुष्य। क्षुद्र मनुष्य। छोछा आदमी।
उ०—नीच निचाई नहिं तजै जो पावै सतसग। २. चोर
नामक गध द्रव्य। ३. फलित ज्योतिष में वह स्थान जो
किसी ग्रह के उच्च स्थान से सातवाँ हो। ४. भ्रमण काल
में किसी ग्रह के भ्रमणवृत्त का वह स्थान जो पृथ्वी से
अधिक दूर हो। ५. वशाणु देश के एक पर्वत का नाम।

नीचक—वि० [सं०] १. छोटा। सधु। बीना। २. मद्धिम। जैसे,
आवाज। ३. तुच्छ। निकृष्ट। छोछा [को०]।

नीचकद्व—सङ्घ पु० [सं० नीचकद्व] मुढो।

नीचकमाई—सङ्घ स्त्री [हि० नीच + कमाई] १. निच व्यवसाय। २.
तुच्छ काम। छोटा काम। ३. बुरे कामों में पैसा किया धन।

नीचका—सङ्घ स्त्री [सं०] प्रशस्त गौ। अच्छी गाय।

नीचकी^१—सङ्घ पु० [सं० नीचकिन्] [स्त्री० नीचकिनी] १ उच्च।
श्रेष्ठ। २. ऊँचा। जिसके पास अच्छी गाएँ हों।

नीचकी^२—सङ्घ पु० १ ऊपरी भाग। २ किसी वस्तु का शीर्ष भाग
(को०)। ३ बैल का सिर (को०)।

नीचग^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नीचगा] १. नीचे जानेवाला। २.
पामर। छोछा।

नीचग^२—सङ्घ पु० १. पानी। २. फलित ज्योतिष के अनुसार वह
ग्रह जो अपने उच्च स्थान से सातवें पड़ा हो।

नीचगा—सङ्घ स्त्री [सं०] १ नदी। २. नीचवर्णगामिनी स्त्री। नीच
के साथ गमन करवेवाली स्त्री।

नीचगामी^१—वि० [सं० नीचगामिन्] [वि० स्त्री० नीचगामिनी] १
नीचे जानेवाला। २. छोछा।

नीचगामी^२—सङ्घ पु० जल।

नीचगृह—सङ्घ पु० [सं०] १ वह स्थान जो किसी ग्रह के उच्च
स्थान वा राशि से गिनती में सातवाँ पड़े। २. नीच या
निम्न कोटि के व्यक्ति का घर। उ०—जो सपदा नीच गृह
सोहा।—मानस।

नीचटा—वि० [सं० निश्चय] छट। पक्का।

नीचता—स्त्री० स्त्री [सं०] १. नीच होने का भाव। २. अधमता।
छोटाई। तुच्छता। क्षुद्रता। कमीनापन।

नीचत्व—सङ्घ पु० [सं०] नीचता।

नीचभोज्य—सङ्घ पु० [सं०] पलाहु। व्याज [को०]।

नीचयोनि—वि० [सं०] निम्न कुल का [को०]।

नीचवज्र—सङ्घ पु० [सं०] वैक्रांत मणि।

नीचस्थान—सङ्घ पु० [सं०] दे० 'नीचगृह'।

नीचा—वि० [सं० नीच] [वि० स्त्री० नीची] १. जिसके तल से
उसके पास पास का तल ऊँचा हो। जो कुछ उतार या
गहराई पर हो। गहरा। ऊँचा का उलटा। निम्न। जैसे,
नाची जमीन, नीचा रास्ता।

यौ०—नीचा ऊँचा = कहीं गहरा और कहीं उठा हुआ। जो
समतल न हो। नाथरावर। ऊबड़ खाबड़। उतार चढ़ाव।

२ ऊँचाई में सामान्य की अपेक्षा कम। जो ऊपर की ओर दूर
तक न गया हो। जैसे, नीच पेड़, नीचा मकान। नीची टोपी।

विशेष—ऊँचाई निचाई का भाव सापेक्ष होता है।

३ जो ऊपर से जमीन की ओर दूर तक आया हो। अधिक
लटका हुआ। जैसे, नीचा भगा, नीची घोड़ी, नीची डाल।
४ जो ऊपर की ओर पूरा उठा न हो। झुका हुआ। नत।
जैसे, सिर नीचा करना, झुका नीचा करना, दृष्टि नीची
करना, माँख नीची करना।—उ०—(क) जाचक बेहि
असीस सीस नीचो करि करि के।—गोपाल (शब्द०)।
(ख) रघुनाथ चिते हँसि ठाढ़ी रही पल घुँघट में दग नीचो
करे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) देवनदन ने देखा इन
बातों के कहते लाज से उसकी माँखे नीची हो गई।—
मयोप्यासिह (शब्द०)। ५ जो चढ़ा हुआ न हो। जो
तीव्र न हो। धीमा। मध्यम। जो जोर का न हो। जैसे,
नीचा सुर, नीची आवाज। ६ जो जाति, पद, गुण इत्यादि
में न्यून या घटकर हो। जो उत्तम और मध्यम कोटि का
न हो। छोटा या छोछा। क्षुद्र। बुरा।

मुहा०—नीचा ऊँचा = (१) भल बुरा । (२) भलाई बुराई ।
गुण प्रवगुण । अच्छा और बुरा परिणाम । हानि लाभ ।
(३) सपद विपद । सुख दुख । बढ़ती घटती । सफलता
असफलता । नीचा ऊँचा दिखाना या सुनाना = दे० 'ऊँचा
नीचा दिखाना' । नीचा ऊँचा सुनाना = दे० 'ऊँचा नीचा
सुनाना' । नीचा खाना = (१) तुच्छ बनना । अमानित
होना । हेठा बनना । (२) हारना । परास्त होना । (३)
लज्जित होना । झिपना । उ०—चालाकी में अच्छे खासे
पट्टे, दस पद्रह वर्ष मुसिफ और सदराला रह कहीं कुछ
थोड़ा बहुत नीचा खाकर भी घाठो गाँठ कुम्मेत हो चुके
थे ।—हिंदी प्रदीप (शब्द०) । नीचा दिखाना = (१) तुच्छ
बनाना । हेठा करना । अवमानित करना । (२) मान भग
करना । दर्प चूँछ करना । शेखी झाड़ना । (३) परास्त
करना । हराना । (४) झिपाना । लज्जित करना । नीचा
देखना = दे० 'नीचा खाना' । उ०—कहीं किसी ने देख सुन
लिग तो भी वही बात हुई । जग में नीचा छलग देखना
पड़ता है ।—अयोध्यासिंह (शब्द०) । नीची दृष्टि करना =
सिर झुकाना । सामने न ताकना । (लज्जा संकोच आदि से) ।
नीची दृष्टि से देखना = तुच्छ या छोटा समझना । मान या
प्रतिष्ठा न करना । कदर न करना ।

नीचाशय—वि० [सं०] तुच्छ विचार का । क्षुद्र । छोटा ।

नीचूँ^१—वि० [हि० नि + चूना] जो चूँ न । जो टपकता न हो ।
जिसमें पानी ऊपर से या बाहर से रसकर आता वा
टपकता न हो ।

नीचूँ^२—वि० [हि० नीचा] दे० 'नीचा' ।

नीचे—क्रि० वि० [हि० नीचा] नीचे की ओर । अधोभाग में ।
ऊपर का उलटा । उ०—पानख को लिखे पानि नखे तिमि
सोस नवाय के नीचेहि जावे ।—मतिराम (शब्द०) ।

विशेष—'ऊपर', 'यहाँ', 'वहाँ' आदि शब्दों के समान इस
क्रि० वि० शब्द के साथ पचमी और पठनी की 'से', 'तक',
'का' विभक्तियाँ लगती हैं । जैसे, नीचे से, नीचे का ।

मुहा०—नीचे ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा इस क्रम से ।
एक पर एक । तले ऊपर । जैसे,—इन सब पुस्तकों को नीचे
ऊपर रख दो । (२) ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर । उलट
पलट । उलट पथल । अस्त व्यस्त । अव्यवस्थित । जैसे,—
इनने दिनों में पुस्तकें लगाकर रखी थीं तुमने उन्हें नीचे ऊपर
कर दिया । नीचे गिरना = (१) प्रतिष्ठा खोना । मान
मर्यादा गँवाना । (२) पतित होना । (३) कुशती में पटका
जाना । पछाड़ खाना । नीचे गिराना = (१) पतित करना ।
मान मर्यादा दूर करना । (२) कुशती में पटकना । पछाड़ना ।
नीचे डालना = (१) फेंकना । गिराना । (२) किसी बात
में घटकर करना । पराजित करना । जीतना । नीचे लाना =
गिराना । कुशती में पछाड़ना । ऊपर से नीचे तक = (१)
सब भागों में । सर्वत्र । (२) सर्वांग में । सिर से पैर तक ।
जैसे,—उसने मेरी ओर ऊपर से नीचे तक देखा ।

२. घटकर । कम । न्यून । जैसे,—दरजे में वह सबसे नीचे है ।
३. प्रधीनता में । मातहतता में । जैसे,—उनके नीचे दस
मुहरिर काम करते हैं ।

नीजूँ—संज्ञा पु० [सं० रज्जु ?] रस्सी ।

नीजन^१—वि० [सं० निजन, प्रा० णिज्जण, णीजण] निर्जन ।
जनशून्य । सुनसान । उ०—दोरची दल साजि महाराज
श्वपुराज जानि नीजन मवास, मानिनी जन गरीब से ।—
देव (शब्द०) ।

नीजन^२—संज्ञा पु० निर्जन स्थान । वह स्थान जहाँ कोई न हो ।
निराला । एकांत । उ०—मोहिं सकोच सखी जन को ननु
नीजन हूँ उन्हें बीजन ढोरों ।—देव (शब्द०) ।

नीजूँ—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी । पानी भरने की डोरी ।

नीम्बर^१—संज्ञा पु० [सं० निम्बर प्रा० णिम्भर, णीम्बर] निम्बर ।
भरना । सोता । उ०—(क) तिस सरवर के तीर, सो हसा
मोती चुनइ । पीवइ नीम्बर नीर, सोहै हसा सो सुनइ ।—दादू
(शब्द०) । (ख) सो हसा सरनागत जाय । सुंदरि तहाँ
पखोरे पाय । पीवइ भमिरित नीम्बर नीर । बैठइ तहाँ जगत
गुफ पीर ।—दादू (शब्द०) ।

नीठ^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'नीठि' । उ०—नीठ बिसासत अण्ण
भर गहचो कन्ह चहुमान । गए गेह लै सकल मिलि प्रयोराज
अकुलान ।—पु० रा०, ५ । ८५ ।

नीठि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिट्ठि, प्रा० अनिट्ठि] अरुचि । अनिच्छा ।
मुहा०—नीठि नीठि करके = (१) ज्यों त्यों करके । बहुत इधर
उधर करके । किसी न किसी प्रकार । उ०—नीठि नीठि
करि चित्र मंदिर लौं घाई बाल चहूँ और चाहि कछु चेति कै
भजे लगी ।—बेनी (शब्द०) । (२) कठिनता से । मुश्किल
से । उ०—छूटी लट लटकति कटि तट लौं चितवति नीठि
नीठि करि ठाढ़ी ।—केशव (शब्द०) ।

नीठि^२—क्रि० वि० १ ज्यों त्यों करके । किसी न किसी प्रकार ।
उ०—घाई सग आलिन के ननद पठाई नीठि सोहत सुहाई
सूही ईदरी सुपट की । कहै पवमाकर गभीर जमुना के तीर
लागी घट भरन नवेली नेह भटकी ।—पद्माकर (शब्द०) । २.
मुश्किल से । कठिनता से । उ०—(क) चहूँ और चितै सत्रास ।
अवलीकियो आकास । तहँ शाख बैठी नीठि । तब पर्यो
वानर दोठि ।—केशव (शब्द०) । (ख) ऐसी सोच सीठी सीठी
चीठी अलि दोठी, सुनै सीठी सीठी बातन जो नीके हूँ मैं नीठि
है ।—केशव (शब्द०) । (ग) करके मीठे कुसुन लौं गई
विरह कुम्हनाय । सदा समीपिन सखिन हूँ नीठि पिछानी
जाय ।—बिहारी (शब्द०) । (घ) चको जकी सी हूँ रहो
बूके बोलति नीठि । कहूँ दीठि लागो लगी, कै काहू की
दीठि ।—बिहारी (शब्द०) ।

यौ०—नीठि नीठि = ज्यों त्यों करके । किसी न किसी प्रकार ।
जैसे तैसे । मुश्किल से । कठिनता से । उ०—(क) नीठि नीठि
उठि बैठि हूँ पिय प्यारी परमात । दोऊ नौद भरे खरे गरे
लागि गिरि आत ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) भौह उँचे

ग्राँचर उलटि मोरि मोरि मुँह मोरि । नीठि नीठि भीतर गई
दीठि दीठि सो जोरि ।—विहारी (शब्द०) ।

नीठो—वि० [सं० अनिट्, प्रा० अनिट्] अनिट् । अप्रिय । न सुहाने-
वाला । न मानेवाला । उ०—छेक उक्ति जहँ दुमिल सम जक
का समुझावति नीठो ! मिसरी, सूर, न भावति घर की, चोरी
को गुड नीठो ।—सूर (शब्द०) ।

नीड़—संज्ञा पुं० [सं० नीड] १. बैठने वा ठहरने का स्थान । २.
चिड़ियों के रहने का घोंसला । ३. रथ के भीतर का वह
स्थान जिसमें रथी बैठता है । रथ में बैठने का मुख्य स्थान ।
४. बिछोना । पलग । खाट (को०) । ५. माँद (को०) ।

नीड़क—संज्ञा पुं० [सं० नीडक] १. पक्षी । चिड़िया । २.
घोंसला (को०) ।

नीड़ज—संज्ञा पुं० [सं० नीडज] पक्षी ।

नीड़ोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० नीड़ोद्भव] पक्षी (को०) ।

नीत^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नीता] १. लाया हुआ । पहुँचाया
हुआ । २. स्थापित । ३. प्राप्त । ४. व्यतीत किया हुआ ।
बिताया हुआ (को०) । ५. गृहीत । ग्रहण किया हुआ । उ०—
किधौं मद गरजनि जलधर, की पग तूपुर रव नीत ।—सूर
(शब्द०) ।

नीत^२—संज्ञा पुं० १. धन दोलत । २. धनाज (को०) ।

नीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ले जाने या ले चलने की क्रिया, भाव
या ढंग । २. व्यवहार की रीति । आचारपद्धति । जैसे, सुनीति,
दुर्नीति । ३. व्यवहार की वह रीति जिससे अपना कल्याण
हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे । वह चाल जिसे
चलने से अपनी भलाई, प्रतिष्ठा आदि हो और दूसरे की कोई
बुराई न हो । जैसे,—जाकी धन घरती हरी ताहि न लीजे
सग । साईं तहाँ न बैठिए जहाँ कोउ देय उठाय ।—गिरिधर
(शब्द०) । ४. लोक या समाज के कल्याण के लिये उचित
ठहराया हुआ आचार व्यवहार । लोकमर्यादा के अनुसार
व्यवहार । सदाचार । अच्छी चाल । नय । उ०—सुनि मुनीस
कह वचन संप्रतीती । कस न राम राखहु तुम नीती ।—तुलसी
(शब्द०) । ५. राजा और प्रजा की रक्षा के लिये निर्धारित
व्यवस्था । राज्य की रक्षा के लिये ठहराई हुई विधि । राजा
का कर्तव्य । राजविद्या ।

विशेष—महाभारत में भीष्म ने युधिष्ठिर को नीतिशास्त्र की
शिक्षा दी है जिसमें प्रजा के लिये कृषि, वाणिज्य आदि की
व्यवस्था, अपराधियों को दंड, अमात्य, चर, गुप्तचर, सेना,
सेनापति इत्यादि की नियुक्ति, दुष्टों का दमन, राष्ट्र, दुर्ग और
कोष की रक्षा, धनिकों की देखरेख, दरिद्रों का भरण पोषण,
युद्ध, शत्रुओं को वश में करने के साम, दाम, दंड, भेद ये चार
उपाय साधुओं की पूजा, विद्वानों का आदर, समाज और
उत्सव, सभा, व्यवहार तथा इसी प्रकार की और बहुत सी
बातें आई हैं । नीति विषय पर कई प्राचीन पुस्तकें हैं । जैसे,
उपनिषद् को शुकनीति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामदकीय
नीतिसार इत्यादि ।

६. राज्य की रक्षा के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति ।
राजामो की चाल जो वे राज्य की प्राप्ति वा रक्षा के लिये
चलते हैं । पाविसी । जैसे, मुद्राराक्षस नाटक में चाणूर्य और
राक्षस की नीति । ७. किसी कार्य की सिद्धि के लिये बखी
जानेवाली चाल । युक्ति । उपाय । हिकमत । ८. संबंध (को०) ।
९. दान । प्रदान (को०) ।

नीति—नीतिकुशल = नीतिज्ञ । नीतिघोष = बृहस्पति के रथ का
नाम । नीतिदोष = आचारदोष । नीतिनिपुण, नीतिनिष्ण =
नीतिज्ञ । नीतिघोज = कूट सकल्प का मूल । नीतिविज्ञान = ३०
'नीतिशास्त्र' । नीतिविद् = राजनीतिज्ञ । बुद्धिमान् । नीति
विद्या = राजनीति शास्त्र । नीतिशास्त्र । नीतिविषय = आचरण
का विषय या क्षेत्र । नीतिशतक = मर्तृहरि द्वारा रचित नीति
विषयक १०० श्लोक ।

नीतिज्ञ—वि० [सं०] १. नीति जाननेवाला । नीतिकुशल । २.
बुद्धिमान् (को०) ।

नीतिमान्—वि० [सं० नीतिमत्] [वि० स्त्री० नीतिमती] नीति
परायण । सदाचारी ।

नीतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें देश, काल और पात्र
के अनुसार बरतने के नियम हों । २. वह शास्त्र जिसमें
मनुष्य समाज के हित के लिये देश, काल और पात्रानुसार
आचार व्यवहार तथा प्रवृत्ति और शासन का विधान हो ।

नीदना^१—क्रि० सं० [सं० निन्दन] निंदा करना । उ०—सोवत
सपने स्थाम धन हिलमिलि हरत वियोग । तब ही टरि कितहूँ
गई नीदो नीदन योग ।—विहारी (शब्द०) ।

नीधन, नीधना^२—वि० [सं० निर्धन] धनहीन । दरिद्र । उ०—
दादू सब जग नीधना धनवंता नहि कोइ । सो धनवंता जानिए
जाके राम पदारथ होइ ।—दादू (शब्द०) ।

नीधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वलीक । छाजन की झोलती । २. वन ।
३. नेमि । पहिए का चक्र या चक्कर । ४. चद्रमा । ५.
रेवती नक्षत्र ।

नीप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कदव । २. भूकदव । ३. वटूक । दुपहरिया ।
४. नीलाशोक । पशोक । ५. पहाड़ का निचला भाग । ६.
बृहत्संहिता में वर्णित एक देश का नाम । ७. एक राजा
का नाम ।

नीप^२—वि० नीचे की ओर स्थित (को०) ।

नीप^३—संज्ञा पुं० [प्र० निप] दो चोंचों को बाँधने या गाँठ देने के
लिये रस्सी का केरा या फंदा ।

मुहा०—नीप लेना = रस्सी में बाँधने के लिये फंदा लगाना ।

नीपजना^१—क्रि० प्र० [सं० निष्पद्य, प्रा० शीपज] उत्पन्न होना ।
पैदा होना । निपजना ।

नीपना^२—क्रि० सं० [सं० लेपन, हि० लीपना] ३० 'लीपना' ।

नीपर—संज्ञा पुं० [प्र० निपर] १. लगर में बंधो हुई रस्सियों में से
एक । २. उक्त रस्सी के बंधन को कसने के लिये लगा हुआ
डंडा (लश०) ।

नीपातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि ।

नीमा—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब, हिं० नीम] दे० 'नीम' ।

नीमरा—वि० [सं० निम्बल, पा० गिम्बर] दुबल । कमजोर ।

नीमी०—संज्ञा स्त्री० [सं० नीमी] दे० 'नीमी' ।

नीबू—संज्ञा पुं० [सं० निम्बूक, अ० नीमू] मध्यम आकार का एक पेड़ या झाड़ू जिसका फल भी नीबू कहा जाता और खाया जाता है और जो पृथ्वी के गरम प्रदेशों में होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ मोटे दल की और दोनों छोरों पर नुकीली होती हैं, तथा उनके ऊपर का रंग बहुत गहरा हरा और नीचे का हलका होता है । पत्तियों की लंबाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती । फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं जिनमें बहुत से परागकेसर होते हैं । फल गोल या लंबोतरे तथा सुगन्धयुक्त होते हैं । साधारण नीबू स्वाद में खट्टे होते हैं और खटाई के लिये ही खाए जाते हैं । मोठे नीबू भी कई प्रकार के होते हैं । उनमें से जिनका छिलका नरम होता है और बहुत जल्दी उतर जाता है तथा जिनके रसकोश की फाँकें अलग हो जाती हैं वे नारंगी के अंतर्गत गिने जाते हैं । साधारणतः नीबू शब्द से खट्टे नीबू का ही बोध होता है । उत्तरीय भारत में नीबू दो बार फलता है । बरसात के अंत में, और जाड़े (अगहन, पूष) में । अचार के लिये जाड़े का ही नीबू अच्छा समझा जाता है क्योंकि यह बहुत दिनों तक रह सकता है । खट्टे नीबू के मुख्य भेद ये हैं—कागजी (पतले चिकने छिलके का गोल और लंबोतरा), जबोरी (कड़े मोटे खुरदरे छिलके का), बिजोरा (बड़े मोठे और ढीले छिलके का), चकोतरा (बहुत बड़ा खरबूजे सा, मोठे और कड़े छिलके का) । पैदल द्वारा इनमें से कई के मोठे भेद भी उत्पन्न किए जाते हैं, जैसे, कवेले या सतरे का पैदल खट्टे चकोतरे पर लगाने से मोठा चकोतरा होता है ।

प्राञ्चल नीबू की अनेक जातियाँ चीन, भारत, फारस, अरब तथा योरोप और अमेरिका के दक्षिणी भागों में लगाई जाती हैं । खट्टा नीबू हिंदुस्तान में कई जगह (कुमाऊँ, चटगाँव आदि) जगली भी होता है जिससे सिद्ध होता है कि यह भारतवर्ष से पहले पहल और देशों में फैला । मोठे नीबू या नारंगी का उत्पत्तिस्थान चीन बताया जाता है । चीन और भारत के प्राचीन ग्रंथों में नीबू का उल्लेख बराबर मिलता है । फारस और अरब के व्यापारियों द्वारा यह यूनान, इटली आदि पश्चिम के देशों में गया । प्राचीन रोमन लोगों को यह फल बहुत दिनों तक बाहरी व्यापारियों से मिलता रहा और वे इसका व्यवहार सुख के लिये तथा कपड़ों की कीड़ों से बचाने के लिये करते थे । मोठे नीबू या नारंगियों का प्रचार तो योरोप में और भी पीछे हुआ । पहले पहल ईसा की तेरहवीं शताब्दी में रोम नगर में नारंगी के लगाए जाने का उल्लेख मिलता है । पीछे पुर्तगाल आदि देशों में नारंगी की बहुत उन्नति हुई ।

सुश्रुत में जंबीर, नारंग, ऐरावत और दत्तशठ ये चार प्रकार के नीबू आए हैं । ऐरावत और दत्तशठ दोनों अम्ल कहे गए हैं । जंबीर तो खट्टा ही है । राजनिघंटु में ऐरावत नारंग का पर्याय लिखा गया है जो सुश्रुत के अनुसार ठीक नहीं जान पड़ता । शायद नागरग शब्द के कारण ऐसा हुआ है । 'नाग' का अर्थ सिंदूर न लेकर हाथी लिया और ऐरावत को नागरग का पर्याय मान लिया । तैलंग भाषा में चकोतरे को गजनिबू कहते हैं अतः ऐरावत वही हो सकता है । भावप्रकाश में बीजपुर (बिजोरा) मधुकुंकटी (चकोतरा), जबीर (खट्टा नीबू) और निबूक (कागजी नीबू) ये चार प्रकार के नीबू कहे गए हैं । सुश्रुत में जंबीर और दत्तशठ अम्ल है पर भावप्रकाश में वे एक दूसरे के पर्याय हैं । राजवल्लभ में लिङ्गक और मधुकुंकुटिका ये दो भेद जबोरी के कहे गए हैं । उसी ग्रंथ में करण वा कन्ना नीबू का भी उल्लेख है । नीचे वैद्यक में आए हुए नीबुओं के नाम दिए जाते हैं—

(१) निबूक (कागजी नीबू) । (२) जबीर (जंबोरी नीबू, खट्टा नीबू या गलगल)—(क) बृहज्जंबीर, (ख) लिपाक, (ग) मधुकुंकुटिका (मोठा जबोरी या शरबती नीबू) । (३) बीजपुर (बिजोरा) । पर्याय—मातुलुग, रचक, फलपूरक, अम्लकेशर, बीजपूर्ण, सुकेशर, बीजक, बीजफलक, जतुघ्न, दधुरच्छद, पूरक, रोचनफल । (क) मधुर मातुलुग या मोठा बिजोरा । इसे संस्कृत में मधुकुंकुटिका और हिंदी में चकोतरा कहते हैं । (४) करण या कन्ना नीबू—इसे पहाड़ी नीबू भी कहते हैं—इसे अरबी में कलबक कहते हैं । निबू या निबूक शब्द सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में नहीं आया है, इससे विद्वानों का अनुमान है कि यह अरबी लोमू शब्द का अपभ्रंश है । 'सतरा' शब्द के विषय में डा० हंटर का अनुमान है कि यह 'सिद्रा' शब्द से बना है जो पुर्तगाल में एक स्थान का नाम है । पर बाबर ने अपनी पुस्तक में 'संगतश' का उल्लेख किया है, इससे इस विषय में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता ।

मुहा०—नीबू निचोड़ = थोड़ा सा कुछ देकर बहुत सो चीजों में साझा करनेवाला । थोड़ा सा सबध जोड़कर बहुत कुछ लाभ उठानेवाला । नीबू चटाना या नीबू नमक चटाना = निराश करना । ठेंगा दिखाना ।

विशेष—कहते हैं कि किसी सराय में एक मियाँ साहुब रहते थे जो हर समय अपने पास नीबू और चाकू रखते थे । जब सराय में उतरा हुआ कोई भला आदमी खाना खाने बैठता तब आप चट जाकर उसकी दाल में नीबू निचोड़ देते थे जिससे वह भलमनसाहुब के बिचार से आपको खाने में शरीक कर लेता था ।

नीम'—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब] पत्ती झाड़नेवाला एक प्रसिद्ध पेड़ जिसके सब अंग कड़वे होते हैं । निम्ब ।

विशेष—इसकी उत्पत्ति हिंदुआर से होती है और

पत्तियाँ डेढ़ दो बिते की पतली सीको के दोनों ओर लगती हैं। ये पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और अंगुल भर चौड़ी होती हैं। किनारे इनके आरी की तरह होते हैं। छोटे छोटे सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। फलियाँ भी गुच्छों में लगती हैं और निबोनी कहलाती हैं। ये फलियाँ खिरनी की तरह लंबोतरी होती हैं और पकने पर चिपचिपे गूदे से भर जाती हैं। एक फली में एक बीज होता है। बीजों से तेल निकलता है जो कढ़एपन के कारण केवल घोष के या जलाने के काम का होता है। नीम की तिताई या कड़ुवापन प्रसिद्ध है। इसका प्रत्येक भाग कड़ुवा होता है—बया छाल, बया पत्ती, बया फूल, बया फल। पुराने पेड़ों से कभी कभी एक प्रकार का पतला पानी रस रसकर निकलता है और महीनो बहा करता है। यह पानी कड़ुवा होता है। और 'नीम का मद' कहलाता है। बीम की लकड़ी ललाई लिए और मजबूत होती है तथा क़िवाड, गाड़ी, नाव आदि बनाने के काम में भी आती है। पतली टहनियाँ, दातून के लिये बहुत तोड़ी जाती हैं। बैद्यक में नीम कड़ुई, शीतल तथा कफ, वण, कृमि, वमन, सूजन, पित्तदोष और हृदय के दाह को दूर करनेवाली मानी जाती है। दूषित रक्त को शुद्ध करने का गुण भी इसका प्रसिद्ध है।

पर्या०—निव । नियमन । नेता । विधुमद । अरिष्ट । प्रमदक । पारिभद्रक । शुक्रप्रिय शीर्षपर्ण । यवनेष्ट । वाल्वच । छर्दन । हिगु । निर्यास । पीतसार । रविप्रिय । मालक । यूपारि । पूकमालक । कीकट । विबध । कैटय्य । छदिष्ण । काकफल । कीरेष्ट । सुमना । विशिष्टपर्ण । शीत । राजमद्रक ।

मू०—नीम की टहनी हिलाना = गरमी की बीमारी लेकर बैठना । उपदश या फिरंग रोगग्रस्त होना । (जिसमें लोग नीम की टहनी लेकर घाव पर से मक्खियाँ उड़ाया करते हैं) ।

नीम^२—वि० [फ्रा० मि० सं० नेम] भाषा । अर्थ । जैसे, नीमटर, नीमहकीम ।

यौ०—नीमपुस्त, नीमपुस्ता = मधकच । नीमशव = आधीरात । नीमहकीम = मधकचरा ज्ञान रखनेवाला हकीम ।

नीमगिर्दा—सब्जा पु० [का०] बड़ई का एक बीजार जो खाना या पेषकण की तरह का होता है। इसकी नोक सीधी न होकर मधकचद्राकार होती है। इससे बड़ई खरादने के समय सुराही आदि की गर्दन छीसते हैं।

नीमच—सब्जा पु० [हि० नदी + मच्छ] एक मछली जो बगाल, उड़ीसा, बाव और सिंध की नदियों में होती है।

विशेष—इसका मांस खाने में अच्छा होता है।

नीमचा—सब्जा पु० [फ्रा० नीमचह] खाँडा ।

नीमजा—वि० [फ्रा०] मधमरा ।

नीमटर—वि० [फ्रा० नीम + हि० टरटर] मधकचरा । जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो । जो किसी विषय को केवल घोड़ा बहुत जानता हो

नीमना—वि० [सं० निर्मल ?] १ अच्छा । भला । नीरोग । चगा । उ०—जानि लेहु हारि इतने ही में कहा करे नीमन को वैद । —सूर (शब्द०) । २ दुस्त । जो धिगाड़ा हुआ न हो । जो जीर्ण न हुआ हो । ३ बढ़िया । अच्छा । सुंदर ।

नीमवर—सब्जा पु० [फ्रा०] कुपती का एक पेच ।

विशेष—यह पेच उस समय काम देता है जब जोड़ पीछे की ओर से कमर पकड़कर बाईं ओर खड़ा होता है। इसमें अपना बायाँ घुटना जोड़ की दाहिनी जाँघ के नीचे ले जाते हैं, फिर बाएँ हाथ को उसकी टाँगों में से निकालकर उसका बायाँ घुटना पकड़ते और दाहिने हाथ से उसकी मुट्ठी पकड़कर भीतर की ओर खींचते हैं जिससे वह चित्त गिर पड़ता है।

नीमरा—वि० [सं० निर्बल, हि० नीवर] दुबल । बलहीन । शक्तिहीन ।

नीमरजा—वि० [फ्रा०] १ थोड़ी बहुत रजामदी । २ कुछ तोष या प्रसन्नता । उ०—परि पा करि विनती घनी नीमरजा हो कीन ।—श्रु० सत० (शब्द०) ।

नीमषारण्य, नीमषारन—सब्जा पु० [सं० नैमिषारण्य] दे० 'नैमिषारण्य' ।

नीमस्तीन—सब्जा स्त्री० [फ्रा० नीम + आस्तीन] दे० 'नीमास्तीन' ।

नीमा—सब्जा पु० [फ्रा० नीमह] एक पहरावा जो जामे के नीचे पहना जाता है। उ०—केशरि को नीमा जामा जरी को फेंटा टुपटा जरी को तेजपु ज समहतु है ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

विशेष—यह जामे के आकार का होता है पर न तो यह जामे के इतना नीचा होता है और न इसके बंद बगल में होते हैं। यह घुटने के ऊपर तक नीचा होता है और इसके बंद सामने रहते हैं। आस्तीन इसकी पूरी नहीं होती, आधी होती है। इसके दोनों बगल सुराहियाँ होती हैं।

नीमावत—सब्जा पु० [हि० निव + आवत] वैष्णवों का संप्रदाय । निवार्काचार्य का अनुयायी वैष्णव ।

नीमास्तीन—सब्जा स्त्री० [फ्रा० नीम + आस्तीन] एक प्रकार की फुटुई या कुरती जिसकी आस्तीन आधी होती है।

नीयत—सब्जा स्त्री० [प्र०] भावना । भाव । आंतरिक लक्ष्य । उद्देश्य । आशय । संकल्प । इच्छा । मंशा । जैसे,—(क) हम किसी बुरी नीयत से नहीं कहते हैं । (ख) तुम्हारी नीयत जाने की नहीं मालूम होती ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—बदनीयत ।

मुद्दा०—नीयत डिगना, नीयत डोलना = अच्छा या उचित संकल्प बढ़ न रहना । मन में विकार उत्पन्न होना । बुरा संकल्प होना । नीयत बद होना = बुरा बिचार होना । बुरी इच्छा या संकल्प होना । अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना । बेईमानी सूझना । नीयत बदल जाना = (१) संकल्प या विचार और का और होना । इरादा दूसरा हो जाना । (२) बुरा विचार होना । अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना । नीयत बाधना = संकल्प करना ।

मन में ठानना । इरादा करना । नीयत बिगडना = दे० 'नीयत बढ होना' । नीयत भरना = जी भरना । मन तृप्त होना । इच्छा पूरी होना । नीयत में फर्क पाना = बुरा सकल्प या विचार होना । अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना । बेईमानी या बुराई सुम्नना । नीयत लगी रहना = ध्यान बना रहना । इच्छा बनी रहना । जी ललचाया करना ।

नीरंघ्र—वि० [सं० नीरन्घ्र] १ जिसमें छिद्र न हो । छिद्ररहित । २ ठोस । घना [को०] ।

नीर—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ पानी । जल ।

मुहा०—नीर ढलना = मरते समय प्राँख से आँसू बहना । किसी का नीर ढल जाना = किसी की लज्जा जाती रहना । निर्लज्ज या बेहूया हो जाना ।

१ कोई द्रव पदार्थ या रस । ३. फफोले आदि के भीतर का चेष या रस । जैसे, शीतला का नीर । ४ सुगन्धवाला ।

नीरज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जल में उत्पन्न वस्तु । २. कमल । ३ मोती । मुक्ता । उ०—यज्ञ पूरन के रमापति धान देत प्रशेष । हरी नीरज चीर माणिक वर्षा वर्षा वेष ।—केशव (शब्द०) । ४ कुट । कूट । ५. एक प्रकार का तृण । चशीर । ६ ऊदबिलाव । जलमार्जार (को०) । ७ शिव । महादेव (को०) ।

नीरज^२—वि० १ जलीय । जल से होनेवाला या उद्भूत (को०) । २ दे० 'नीरजा' ।

नीरजा—वि० [सं० नीरजस्] १ बिना धूल का । स्वच्छ । २ जिसे रजोदर्शन न हुआ हो । अरजस्क (स्त्री) [को०] ।

नीरत—वि० [सं०] जो रत न हो । विरत [को०] ।

नीरद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीर] १. जल देनेवाला । २. बादल । ३ मोथा । मुस्तक (को०) ।

नीरद^२—वि० [सं० नि + रद] बे दाँत का । अर्धत ।

नीरघर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बादल । मेघ ।

नीरधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नीरना—क्रि० स० [देश०] छिटकाना । छितराना । बिखेरना ।

नीरनिधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नीरपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वरुण । देवता ।

नीरप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का वेल । ध्रुवेतस् [को०] ।

नीरम—सञ्ज्ञा पुं० [?] वह बौद्ध जो जहाज पर केवल उसकी स्थिति ठीक रखने के लिये रहता है (लश०) ।

नीररुह—सञ्ज्ञा पुं० [न०] कमल [को०] ।

नीरव—वि० [सं०] ध्वनिरहित । बिना शब्द का [को०] ।

नीरस—वि० [सं०] १. रसहीन । जिसमें रस या गीलापन न हो । २. सूखा । शुष्क । ३. जिसमें कोई स्वाद या मजा न हो । फीका । जिसमें कोई पानन न हो । जैसे, चीरस काव्य ।

नीराजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीराजन] [स्त्री० नीराजना] १ दीपदान । भारती । देवता को दीपक दिखाने की विधि ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—वारना ।

२ हथियारों को चमकाने या साफ करने का काम । ३. एक त्योहार जिसमें राजा लोग हथियारों की सफाई कराते थे । यह कुम्भार कार्तिक में होता था जब यात्रा की तैयारी होती थी ।

नीरांजना—क्रि० प्र० [सं० नीराजना] १. भारती करना । दीपक दिखाना । २. हथियारों को मौजना ।

नीरिंदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीरिन्दु] सिंदूर का पेड़ ।

नीरुक्, नीरुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगामाव । रोगराहित्य [को०] ।

नीरुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुष्ठोषधि । २. व्याधिरहित । वह जो रोगरहित हो [को०] ।

नीरो—क्रि० वि० [हि०] दे० 'नियरे' ।

नीरेणुक—वि० [सं०] धूलिरहित । रजशून्य [को०] ।

नीरोग—वि० [सं०] जिसे रोग न हो । स्वस्थ । चगा । तदुस्त ।

नीलंगु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलङ्गु] १ एक प्रकार का कीड़ा । एक ध्रुव कीट । २ गीदड़ । ३ भेंवरा । ४. फूल ।

नील^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नीला, नीली] नीले रंग का । गहरे आसमानी रंग का ।

नील^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नीला रंग । गहरा आसमानी रंग । २ एक पोधा जिससे नीला रंग निकाला जाता है ।

विशेष—यह दो तीन हाथ ऊँचा होता है । पत्तियाँ चमेली की तरह टहनी के दोनों ओर पत्ति में लगती हैं पर छोटी छोटी होती हैं । फूल मज्जरियों में लगते हैं । लबी लबी शबूल की तरह फलियाँ लगती हैं । नील के पौधे की ३०० के लगभग जातियाँ होती हैं । पर जिनसे यहाँ रंग निकाला जाता है वे पौधे भारतवर्ष के ही और मरब मिल तथा अमेरिका में भी बोए जाते हैं । भारतवर्ष में नील का प्रादि-स्थान है और यही सबसे पहले रंग निकाला जाता था । ८० ईसवी में सिंध के किंवारे के एक नगर से नील का बाहर भेजा जाना एक प्राचीन यूनानी लेखक ने लिखा है । पीछे क बहुत से विदेशियों ने यहाँ नील के बोए जाने का उल्लेख किया है । ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में जब यहाँ से नील योरोप के देशों में जाने लगा तब से वहाँ के निवासियों का ध्यान नील की ओर गया । सबसे पहले हालैंडवालो न नील का काम शुरू किया और कुछ दिनों तक वे नील की रंगाई के लिये योरोप भर में निपुण समझे जाते थे । नील के कारण जब वहाँ कई वस्तुओं के वाणिज्य की धक्का पहुंचन लगा तब फ्रांस, जर्मनी आदि कानून द्वारा नील को आमद वद करन पर विवश हुए । कुछ दिनों तक (सन् १६९० तक) इंग्लैंड में भी लाग नील को विष कहते रहे जिससे इसका वहाँ जाना बंद रहा । पीछे बेल्जियम से नील का रंग बनानेवाले बुलाए गए जिन्होंने नील का काम सिखाया ।

पहले पहल गुजरात और उसके आस पास के देशों में से नील योरोप जाता था, बिहार, बंगाल आदि से नहीं । ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब नील के काम की ओर ध्यान दिया तब बंगाल

बिहार में नील की बहुत सी कोठियाँ खुल गईं और नील की खेती में बहुत उन्नति हुई ।

भिन्न भिन्न स्थानों में नील की खेती भिन्न भिन्न ऋतुओं में और भिन्न भिन्न रीति से होती है। कहीं तो फसल तीन ही महीने तक खेत में रहती है और कहीं घंटा भर महीने तक। जहाँ पौधे बहुत दिनों तक खेत में रहते हैं वहाँ उनसे कई बार काटकर पत्तियाँ प्रादि ली जाती हैं। पर अब फसल को बहुत दिनों तक खेत में रखने की चाल उठती जाती है। बिहार में नील फागुन चैत के महीने में बोया जाता है। गरमी में तो फसल की बाढ़ रुकी रहती है पर पानी पड़ते ही जोर के साथ टहनियाँ और पत्तियाँ निकलती और बढ़ती है। अतः प्राषाढ़ में पहला कलम हो जाता है और टहनियाँ प्रादि कारखाने भेज दी जाती हैं। खेत में केवल खूंटियाँ ही रह जाती हैं। कलम के पौधे फिर खेत जोत दिया जाता है जिससे वह बरसात का पानी अच्छी तरह सोखता है और खूंटियाँ फिर बढ़कर पौधों के रूप में हो जाती हैं। दूसरी कटाई फिर फ़ुवार में होती है।

नील से रंग दो प्रकार से निकाला जाता है—हरे पीधे से और सूखे पीधे से। कटे हुए हरे पीधो को गडो हुई नावो में दबाकर रख देते हैं और ऊपर से पानी भर देते हैं। बारह बीसह घंटे पानी में पड़े रहने से उसका रस पानी में उतर आता है और पानी का रंग धानी हो जाता है। इसके पीछे पानी दूसरी नाव में आता है जहाँ डेढ़ दो घंटे तक लकड़ो से हिलाया और मया जाता है। मयने का यह काम मशीन के चक्कर से भी होता है। मयने के पीछे पानी पिराने के लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कुछ देर में माल नीचे बैठ जाता है। फिर नीचे बैठा हुआ यह नील साफ पानी में मिलाकर उबाला जाता है। उबल जाने पर यह बाँस की कट्टियों के सहारे तानकर फैलाए हुए मोठे कपड़े (या फनवस) की चाँदनी पर ढाल दिया जाता है। यह चाँदनी छनने का काम करती है। पानी तो नियर कर रह जाता है और साफ नील लेई के रूप में लगा रह जाता है। यह गोला नील छोटे छोटे छिद्रों से युक्त एक सबूक में, जिसमें गोला कपड़ा मड़ा रहता है, रखकर खूँस दबाया जाता है जिससे उसकी सत आठ अंगुल मोटी तह जमकर हो जाती है। इसके कतरे काटकर धीरे धीरे सूखने के लिये रख दिए जाते हैं। सूखने पर इन कतरो पर एक पपड़ी सी जम जाती है जिसे साफ कर देते हैं। ये ही कतरे नील के नाम से बिकते हैं। मिताक्षरा, विधानपरिज्ञात आदि धर्मशास्त्र के कई ग्रंथो में ब्राह्मण के लिये नील में रंगा हुआ वस्त्र पहनने का निषेध है।

मुद्दा०—नील का टीका लगाना = कलक लेना । बदनामी
 ठठाना । उ०—नल में तो वन से विलास कहाँ बृक्षत द्वी,
 नील से नरे ते टीको नील को न करिहैं ।—हनुमान
 (शब्द०) । नील का खेत = कलक का म्यान । नील की सलाई
 फिरवा देना = पक्षि फोड़वा डालना । भ्रष्टा कर देना ।
 (कहते हैं, पहले अपराधियों की प्राप्ति में नील की गरम

सलाई डाल दी जाती थी जिसमे वे मथे हो जाते थे) । नील घोंटना = झगडा मथेडा मचाना । किसी बात को लेकर देर तक उलझना । नील जनाना = पानी बरसने के लिये नील जलाने का टोटका करना । नील बिगड़ना = (१) चाल चलन बिगड़ना । आचरण भ्रष्ट होना । (२) माकुरति बिगड़ना । चेहरे का रंग उठना । (३) किसी के खिर पैर की बात का प्रसिद्ध होना । झूठी भीर मसगत बन फैलना । (४) ससभ पर परवर पड़ना । बुद्धि ठिगाने न रहना । (५) क्रुदिन माना । शामत माना । दुर्लभा होनेवाली होना । (६) भारी हानि या पाटा होना । दिः = होना ।

३ घोट का नीले या काले रंग का दाग जो शरीर पर पड़ जाता है। जैसे,—जहाँ जहाँ खरी बेठी है नील पड़ गया है।

क्रि० प्र०—पठना ।

मुहा०—नील डालना = इतनी मार मारना कि शरीर पर नीले दाग पड़ जायें । गहरी मार मारना ।

४ लांछन । कलक । ५ राम की सेना का एक वदर । ६ भागवत के अनुसार इलायुत खड का एक पर्वत जो रम्यरुष्य की सीमा पर है । ७ नव नियतियों में से एक । ८ मंगल घोष । मंगल का शब्द । ९ पट्टपुष्प । बरगद । १० इन्द्रनील मणि । नीलम । ११. कात लवण । १२ तानीसपत्र । १३ त्रिष । १४ एक नाग का नाम । १५ विष्णुपुराण में वर्णित नीलनो से उत्पन्न भज्रमोड राजा का एक पुत्र । १६. माहिष्मती का एक राजा ।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है। नील राजा की एक प्रियतम सुदरी कन्या थी जिसपर मोहित होकर अग्नि देवता ब्राह्मण के वेश में राजा से कन्या मांगने आए। कन्या पाकर अग्नि देवता ने राजा की वर दिया कि जो शत्रु तुमपर चढ़ाई करेगा वह भस्म हो जायगा। पांडवों के राजसूय यज्ञ के प्रवसर पर सहदेव ने माहिष्मती नगरी को घेरा। अपनी सेना की भ्रम होते देख सहदेव ने अग्नि देवता की स्तुति की। अग्निदेव ने पगट होकर कहा कि नील के वश में जबतक कोई रहेगा मैं उरावर दग्री प्रकार रक्षा करूँगा। घट में अग्नि की प्राज्ञा से नील ने सहदेव की पूजा की और सहदेव उससे इस प्रकार प्रवीणता स्वीकार कराकर चले गए।

१७ नृत्य के १०८ करणों में से एक । १८. एक यम का नाम ।
१९ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सोलह वर्ण होते
हैं । यथा,—इकनि देत भतकनि सकनि दूरि धरें । गोमुख
दूरनि पूर वहुँ दिति भीति भरें । २० एक प्रकार का विजय
साल । २१ मंजुश्री का एक नाम । २२ गहरे नीले रंग का
वृषभ (क्रौं) । २३ एक मरुया जो दस हजार धरत की होती
है । सी धरत की सख्या जो दस प्रकार लिखी जाती है—
१०००००००००००० ।

नीलकण्ठ—वि० [सं० नीलकण्ठ] [वि० औ० नीलकण्ठी] जिसका कण नीला हो ।

नीलकंठ^२

नीलकंठ^२—सखा पुं० १. मोर । मयूर । २. एक चिड़िया । चाप पक्षी ।

विशेष—यह एक चित्ते के लगभग सदा होता है । इसका कंठ गौर देने नीले होते हैं । शेष शरीर का रंग कुछ ललाई लिए बादामी होता है । चोंच कुछ मोटी होती है । यह कीड़े, भक्षोड़े पकड़कर खाता है, इससे वर्षा और शरद ऋतु में उड़ता हुआ अधिक दिखाई पड़ता है । विजयादशमी के दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है । स्वर इसका कुछ कर्कश होता है ।

३. महादेव का एक नाम ।

विशेष—कालकूट विष पान करके कंठ में धारण करने के कारण शिव का कंठ कुछ काला पड़ गया इससे यह नाम पड़ा । महाभारत में यह लिखा है कि अश्वत्थ निकलने पर भी जब देवताओं ने समुद्र का मथना बंद नहीं किया तब सधूम अग्नि के समान कालकूट विष निकला जिसकी गंध से ही तीनों लोक व्याकुल हो गए । अंत में ब्रह्मा ने शिव से प्रार्थना की और उन्होंने यह कालकूट पान करके कंठ में धारण कर लिया । पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ विस्तार के साथ है ।

४ गौरा पक्षी । चटक । (नर के कंठ पर काला दाग होता है) । ५ मूली । ६ पियासाल । ७ एक मधुमक्खी (को०) ।

नीलकंठ रस—सखा पुं० [सं० नीलकण्ठ रस] एक रसोषध ।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा, विष, चीता, पद्मकाष्ठ, दारचीनी, रेणुका, घायबिडग, विपरामूल, इलायची, नागकेसर, सोंठ, पीपल, मिर्च, हड्ड, भावला, बहेड़ा और ताँबा सम भाग लेकर सबके दुगुने पुराने गुड़ में मिलाकर चने के बराबर गोली बनावे । इसके सेवन से कास, श्वास, प्रमेह, हिचकी, विषम ज्वर, ग्रहणी, शोथ, पांडू, मूत्रकृच्छ्र इत्यादि रोग दूर होते हैं ।

नीलकंठाक्ष—सखा पुं० [सं० नीलकण्ठाक्ष] खट्वाक्ष ।

नीलकंठाक्षी—वि० [सं० नीलकण्ठाक्षी] लज्जन जैसे नयनोंवाली (को०) ।

नीलकंठी—सखा स्त्री० [सं० नीलकण्ठी] १ एक छोटी चिड़िया । यह हिमालय पर पाई जाती है । इसका बोलना बहुत ही मधुर और सुरीला होता है । २. एक प्रकार का छटी पौधा जो शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है इसकी पत्तियाँ बहुत कड़वी होती हैं और पुराने ज्वर में दी जाती हैं ।

नीलकंद—सखा पुं० [सं० नीलकन्द] भैंसा कंद । महिष्कंद । शुभ्रालु ।

नीलक—सखा पुं० [सं०] १ काच लवण । २ वर्त्तसीह । बीदरी लोहा । ३ मटर । ४ भौरा । ५ पियासाल । ६ बीजर्णित लोहा । ७ गहरे नीले या काले रंग का अश्व (को०) ।

नीलकण—सखा पुं० [सं०] १ नीलम का टुकड़ा । २ ठोड़ी पर गोदे हुए गोदने का बिंदु ।

नीलकण्ठा—सखा स्त्री० [सं०] स्याह जीरा । काला जीरा ।

नीलकमल—सखा पुं० [सं०] नील रंग का कमल । नीलान्ज । नीलांबुज (को०) ।

नीलकांत—सखा पुं० [सं० नीलकान्त] १ एक पहाड़ी चिड़िया जो हिमालय के अंचल में होती है ।

विशेष—मसूरी में इसे नीलकांत और नैनीताल में इसे दिग्दल कहते हैं । इसका माया, कंठ के नीचे का भाग सौर छाती काली होती है, सिर पर कुछ सफेदी भी होती है । पूँछ नीली होती है । कंठ में भी कुछ नीलेपन की झलक रहती है । २. विष्णु । ३ एक मणि । नीलम ।

नीलकुंतला—सखा स्त्री० [सं० नीलकुन्तला] वृद्धमंथुराण के अनुसार गोरी की एक सखी का नाम (को०) ।

नीलकुरटक—सखा पुं० [सं० नीलकुरटक] नीली कठसरैया । नील फिट्टी (को०) ।

नीलकेशी—सखा स्त्री० [सं०] नील का पौधा ।

नीलक्रांता—सखा स्त्री० [सं० नीलक्रान्ता] विष्णुक्रांता लता जिसमें बड़े नीले फूल लगते हैं ।

नीलकौंच—सखा पुं० [सं० नीलकौञ्च] काला बगला । वह बगला जिसका पर कुछ कालापन लिए होता है ।

नीलगाय—सखा स्त्री० [हि० नील + गाय] नीलापन लिए भूरे रंग का एक बड़ा हिरन जो गाय के बराबर होता है ।

विशेष—इसके कान गाय के से और सींग टेढ़े और छोटे होते हैं । छोटे छोटे बालों का केसर (अयाल) भी होता है । गले के नीचे बड़े बालों का एक छोटा गुच्छा सा होता है । देखने में यह जंतु गाय और हिरन दोनों से मिलता जान पड़ता है और प्रायः जंगलों में ही भुड़ बाँधकर रहता है । नीलगाय कंट की तरह चारों पैर मोड़कर विश्राम करती है, गाय की तरह पार्श्व भाग भूमि पर रखकर नहीं । पालने से यह पाली जा सकती है । शिकारी चमड़े आदि के लिये इसका शिकार भी करते हैं । चमड़ा इसका बहुत मजबूत होता है । गले के चमड़े की डालें बनती हैं । वैद्यक के अनुसार नीलगाय का माप मधुर, वलकारक, उष्णवीर्य स्निग्ध तथा कफ और पित्तवर्धक होता है ।

पर्या०—गवय । नीलातक । रोम्भ ।

नीलगिरि—सखा पुं० [सं०] दक्षिण देश का एक पर्वत ।

नीलग्रीव—सखा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

नीलचक्र—सखा पुं० [सं०] १ जगन्नाथ जी के मंदिर के शिखर पर माना जानेवाला चक्र । २ एक दंडक वृक्ष जो ३० अक्षरों का होता है और अक्षरों पुष्प मजरी का एक भेद है । इसमें 'गुरु लघु' १५ बार क्रम से आते हैं । यथा,—जानि कै समे भुवाक्ष राम राज साज साजि ता समे अकाज काज कैकई जु कीन ।

नीलचर्मा^१—वि० [पुं० नीलचर्म] नीले चमड़े का ।

नीलचर्मा^२—सखा पुं० १ फालसा । २. नीले रंग का चर्म (को०) ।

नीलच्छद^१—वि० [सं०] १ पुष्प या धावरण का ।

नीलच्छद^२—सखा पुं०

नीलज—सखा पुं० [सं०] १ लोहा ।

नीलजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नील पर्वत से उत्पन्न वितस्ता (केलम) नदी।

नीलकिण्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नीलकिण्टी] नीली कठसरेया।

नीलतरा—स्त्री० स्त्री० [सं० नीलतीरा या नीलतटा] बौद्ध कथाओं के अनुसार गांधार देश की एक नदी जो उरुवेलारण्य से होकर बहती थी जहाँ जाकर बुद्धदेव ने उरुवेल काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन आइर्यों का अभिमान दूर किया था।

नीलतरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नीलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीलापन। २. कालापन। स्याही।

नीलताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्याम तमाल। हिताल।

नीलदूर्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दूरी दूब।

नीलद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीतसाल वा प्रहन नामक वृक्ष।

नीलध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल। २. महाभारत के प्रथम पर्व में उल्लिखित माहिषमर्ती का एक राजा। इसकी पत्नी का नाम ज्वाला और कन्या स्वाहा नाम की लक्ष्मी के पाप से उत्पन्न थी।

नीलनिर्गुण्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नीलनिर्गुण्टी] नील सिंधुवार [को०]।

नीलनिर्यासक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पियासाल का पेड़।

नीलनिलय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्राकाश। व्योम।

नीलपक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलपक्ष] १. काला कीचड़। २. भ्रष्टकार।

नीलपटल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. घना काला आवरण। २. भ्रष्टे व्यक्ति के आँख की काली झिल्ली या आवरण [को०]।

नीलपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीलकमल। २. गुहृण। गोनरा घास जिसकी जड़ कसेरू है। ३. प्रसक्त वृक्ष। ४. विजय-साल। ५. अनार। दाडिम।

नीलपत्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

नीलपत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नीलपत्रिका'।

नीलपद्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नील कमल [को०]।

नीलपर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष वृक्ष।

नीलपिंगला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नीलपिङ्गला] बृहदमं पुराण के अनुसार एक विशेष प्रकार की गाय [को०]।

नीलपिच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी।

नीलपुनर्नवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नीले रंग की पुनर्नवा या गदह-पुर्ना [को०]।

नीलपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीला फूल। २. नीली भंगरेया। ३. नीलम्लान। काला कोराठा। ४. ग्रथिपर्ण। गठिवन।

नीलपुष्पा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुकाता लता। अपराजिता।

नीलपुष्पिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. भलसी। २. नील का पोधा।

नीलपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला बीना। नीली कोयल। २. भलसी। तीसी।

नीलपृष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भग्न।

नीलफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. आम्र। २. बंगन।

नीलवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नील-वटी] कच्चे नील की पट्टी।

नीलविरई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नील+विरई] सनाथ का पोधा। सना।

नीलबीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पियासाल। नीलबीज।

नीलभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। २. चंद्रमा। ३. भौरा। भ्रमर [को०]।

नीलभृगराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलभृङ्गराज] नीला भंगरा।

नीलम—सञ्ज्ञा पुं० [फा०। सं० नीलमणि] नील मणि। नीले रंग का रत्न। इद्रनील।

विशेष—नीलम वास्तव में एक प्रकार का कुरड है जिसका नवर कडाई में हीरे से दूसरा है। जो बहुत चोखा होता है उसका मोल भी हीरे से कम नहीं होता। नीलम हलके नीले से लेकर गहरे नीले रंग तक के होते हैं। अब भारतवर्ष में नीलम की खानें नही रह गई हैं। काश्मीर (बसकर) की खानें भी अब खाली हो चली हैं। वरगा में मानिक के साथ नीलम भी निकलता है। सिंहल द्वीप और श्याम से भी बहुत अच्छा नीलम प्राता है।

रत्नपरीक्षा सबधी पुस्तकों में मानिक के समान नीलम की तीन प्रकार के कहे गए हैं। उत्तम, महानील और साधारण। महानील के सबध में लिखा है कि यदि वह सोने के दूध में डाल दिया जाय तो सारा दूध नीला दिखाई पड़ेगा। सबसे श्रेष्ठ इद्रनील वह है जिसमें से इद्रधनुष की सी आभा निकले। पर ऐसा नीलम जल्दी मिलता नहीं। नीलम में पाँच बातें देखी जाती हैं—गुण्य, स्निग्धत्व, वणुडित्व, पाश्वर्धत्तित्व और रंजकत्व। जिसमें स्निग्धत्व होता है उसमें से चिकनाई छूटती है। जिसमें वणुडित्व होता है उसे प्रातः काल सूर्य के सामने करने से उसमें नीली शिखा सी फूटती दिखाई पड़ती है। पाश्वर्धत्तित्व गुण उस नीलम में माना जाता है जिसमें कहीं कहीं पर सोना, चाँदी, स्फटिक आदि दिखाई पड़े। जिसे जलपात्र आदि में रखने से सारा पात्र नीला दिखाई पड़ने लगे उसे रंजक समझना चाहिए। रत्न-सबधी पुरानी पोथियों में भिन्न भिन्न रत्नों के धारण करने के भिन्न भिन्न फल लिखे हुए हैं।

नीलमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम। २. कृष्ण [को०]।

नीलमाधव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। जगन्नाथ [को०]।

नीलमाष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काला उरद। राजमाष।

नीलमीलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सद्योत। जुगनु।

नीलमृत्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पकसीस। काली मिट्टी।

नीलमोर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नील+ सं० मयूर > हिं० मोर] कुररी नामक पक्षी जो हिमालय पर पाया जाता है।

नीलरत्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम। २. कृष्ण। नीलमाधव [को०]।

नीललोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वर्तलोह। बीदरी लोहा।

नीललोहित^१—वि० [सं०] नीलापन लिए लाल। बैंगनी।

नीललोहित^२—सञ्ज्ञा पुं० १. शिव का एक नाम जिनका कठ नीला और मस्तक लाहित वर्ण है। २. एक कल्प का नाम [को०]।

नीललोहिता

नीललोहिता—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. मृमि जवू। एक प्रकार की छोटी जायत। २. पार्वती।

नीलवर्ण—सङ्घा पुं० [सं०] १ नीला रंग। २ मूखी [को०]।

नीलवर्षाभू—सङ्घा स्त्री० [सं०] नीली पुनर्नवा।

नीलवर्षाभू—सङ्घा पुं० भेक। मेढक [को०]।

नीलवल्ली—सङ्घा स्त्री० [सं०] बंदाष्ट। बौदा। परगाछा।

नीलवसन—पुं० [सं०] नीला कपडा।

नीलवसन—वि० नीला व काला वस्त्र धारण करनेवाला।

नीलवसन—सङ्घा पुं० १ शनि ग्रह। २ बलराम।

नीलवीज—सङ्घा पुं० [सं०] पियासाल।

नीलवुहा—सङ्घा स्त्री० [सं०] नीलवृष्णा। नीला बोना नाम का पेड़।

नीलवृत्त—सङ्घा पुं० [सं० नीलवृत्त] तूल। रुई।

नीलवृष—सङ्घा पुं० [सं०] एक विशेष प्रकार का सांड या वखवा।

विशेष—श्राद्ध में नीलवृष एक पारिभाषिक शब्द है। जिस वृष का रंग लाल (लोहित), पूछ, खुर और सिर शल वणं हो उसे नीलवृष कहते हैं। ऐसे वृष के उत्सर्ग का बड़ा फल है।

नीलवृषा—सङ्घा स्त्री० [सं०] बैंगन।

नीलशिमु—सङ्घा पुं० [सं०] सहजन का पेड़। शोभाजन।

नीलसध्या—सङ्घा स्त्री० [सं० नीलसन्ध्या] कृष्णापराजिता।

नीलसार—सङ्घा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

विशेष—इसका हीर काला छावपूस होता है।

नीलसिन्दुवार—सङ्घा पुं० [सं० नीलसिन्दुवार] नील निगुंड़ी [को०]।

नीलसिर—सङ्घा पुं० [हिं० नील+शिर] एक प्रकार की बत्तक जिसका सिर नीला होता है।

विशेष—यह हाथ भर लंबी होती है और सिंध, पंजाब, काश्मीर आदि में पाई जाती है। इसे यह गर्मी में देती है।

नीलस्नेह—सङ्घा पुं० [सं०] नील रंग के समान गहुरा प्रेम। दृढ स्नेह। स्थिर प्रेम [को०]।

नीलस्वरूप—सङ्घा पुं० [सं०] एक वसुंवृत्ता, जिसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और दो गुरु प्रसार होते हैं। जैसे,—रात के सम हैं वह बाली। जीतति है दुतिवंत जहाँ लो। जो गिरि दुर्गति माहुं बसे लू। जा भुज चदन बार नमै लू।—गुमान (शब्द०)।

नीलस्वरूपक—सङ्घा पुं० [सं०] १० 'नीलस्वरूप'।

नीलांग—वि० [सं० नीलाङ्ग] नीले भंग का।

नीलांग—सङ्घा पुं० सारस पक्षी।

नीलांगु—सङ्घा पुं० [सं० नीलाङ्ग] १० 'नीलगु' [को०]।

नीलाजन—सङ्घा पुं० [सं० नीलाञ्जन] १ नीला सुरमा। २ तूतिया। नीला थोया।

नीलाञ्जना—सङ्घा स्त्री० [सं० नीलाञ्जना] १. बिजली। २ नीला-जनी। ३ काला कपास।

नीलाञ्जनी—सङ्घा स्त्री० [सं० नीलाञ्जनी] एक धुप। काला-जनी [को०]।

नीलाञ्जसा—सङ्घा स्त्री० [सं० नीलाञ्जसा] १ बिजली। २. एक प्रसरा। ३. एक नदी।

नीलावर—सङ्घा पुं० [सं० नीलाम्बर] १ नीला वस्त्र। नीले रंग का कपड़ा (विशेषतः रेशमी)। २. तालीघपन। ३. वनदेव। ४. शनैश्चर। ५. राक्षस।

नीलावर—वि० नीले कपड़ेवाला। नील वस्त्र धारण करनेवाला।

नीलावरी—सङ्घा स्त्री० [सं० नीलाम्बरी] एक रागिनी।

नीलांबुज—सङ्घा पुं० [सं० नीलाम्बुज] नील कमल।

नीला—वि० [सं० नील] आकाश के रंग का। नील के रंग का।

वि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नीला करना = मारते मारते शरीर पर नीले दाग डालना। बहुत मार मारना। नीला पड़ना = नीला हो जाना। नीला पीला होना = श्लेष्म दिखाना। क्रुद्ध होना। बिगड़ना। नीले हाथ पाँव हों = ठंडा हो जाय। मर जाय। (स्त्रि० शाप) चेहरा नीला पड़ जाना = (१) चेहरे का रंग पीला प जाना। प्राकृति से भय, उद्विग्नता, लज्जा आदि प्रगट होना। (२) प्राकृति बिगड़ जाना। सजीवता के लक्षण नष्ट होना।

नीला—सङ्घा पुं० १ एक प्रकार का कवूतर। २ नीलम।

नीला—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ नीली मक्खी। २. नील पुनर्नवा। नील का रीधा। ४ एक लता। ५ एक नदी (महामारत) ६ मल्लार राग की एक भार्या।

नीलाक्ष—वि० [सं०] नीली आँख का।

नीलाक्ष—सङ्घा पुं० राजहंस।

नीलाफल—सङ्घा पुं० [सं०] १ नीलगिरि पर्वत। २ जगन्नाथ के निकट की एक छोटी पहाड़ी।

नीलाथोया—सङ्घा पुं० [सं० नीलगुण्य] तवि की उपधातु। तवि नीला धार या लवण। तूतिया।

विशेष—वेद्यक में लिखा है की जिस धातु को जो उपधातु होवे उसमें उसी का सा गुण होता है पर बहुत हीन। तवि का नीला लवण खानों में भी मिलता है पर अधिकतर कारख में निकाला जाता है। तवि के त्वर को यदि खुली हवा रखकर तपावे या गलावे और उसमें घोड़ा सा गंधक तेजाब डाल दें तो तेजाब का प्रसन्न गुण नष्ट हो जायगा। उसके योग से तूतिया बन जायगा। नीलाथोया रंगाई। दवा के काम में आता है। वेद्यक में यह सारसयुक्त, कसेला, वमनकारक, सधु, लेबन-गुण-युक्त, भेदक, शीतल, नेत्रों को हितकर तथा कफ, पित्त, विष पयरी कुप्ट और को दूर करनेवाला माना गया है। तूतिया शोधकर मल्ल में दिया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। बिजली विस्था में तूतिए को गूँधकर दशमांश सोहागा मिलाकर १ भाँच में पकावे। इसके पीछे मधु और संघे नमक का पुट दूसरी विधि यह है कि तूतिए में आधा गंधक मिलाकर चार दंड तक पकावे। शुद्ध होने से उसमें वमन आदि का कम हो जाता है।

नीलाब्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

नीलापन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नीला + पन (प्रत्य०)] नीलिमा । नीलाहट ।

नीलाम—सञ्ज्ञा पुं० [पुर्त० नीलाम] विश्वी का एक ढग जिसमें माल उस प्रादमी को दिया जाता है जो सबसे अधिक दाम बोलता है । बोली बोलकर बेचना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—नीलामघर ।

मुहा०—नीलाम घर चढ़ना = बोली बोलकर बेचा जाना । (माल) नीलाम पर चढ़ाना = बोली बोलकर बेचना ।

नीलामघर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नीलाम + घर] वह घर या स्थान जहाँ चीजें नीलाम की जाती हैं ।

नीलामी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीलाम + ई (प्रत्य०)] नीलाम होने का भाव या क्रिया ।

नीलामी^२—वि० [हि० नीलाम] नीलाम में मोल लिया हुआ ।

नीलाम्ना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नीली कटसरेया । नील मिट्टी [को०] ।

नीलाम्नान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पोषा जिसमें सुंदर फूल लगते हैं । काला कोराठा (मराठी) ।

नीलाम्नी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रात्रिनिघट्ट में वणित एक क्षुप । नल्लवु-बगुड । यह मधुर, रूक्ष और कफ तथा वातहारक कहा गया है ।

नीलारुण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उप काल । प्रहणोदय । प्रत्युष [को०] ।

नीलालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद । राजनिघट्ट में इसका गुण मधुर, शीतकारक, पित्त, दाह और श्रमनाशक कहा गया है [को०] ।

नीलावती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नीलवती] एक प्रकार का चावल । उ०—नीलावती चावर दिवि दुर्लभ । भात परोस्यो माता सुनंभ ।—सूर (शब्द०) ।

नीलाशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नील निगुंडी [को०] ।

नीलाश्या—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलाशमन्] नील मणि [को०] ।

नीलाश्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।

नीलासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पियासाल का पेड़ । २ एक रतिबंध ।

नीलाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नील + आहट (प्रत्य०)] नीलापन ।

नीलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक जलजनु का नाम ।

नीलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीलबरी । २. नीली निगुंडी । नीलाशी । नील सम्हालु वृक्ष । ३. प्राँख का एक रोग । तिमिर रोग के मतगत लिंगनाश का एक भेद । प्राँख तिलमिलाने का रोग ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार जिस तिमिर रोग में कभी कभी एकबारगी कुछ न दिखाई पड़े उसे लिंगनाश कहते हैं और जिसमें प्राकाश में सूर्य, नक्षत्र, बिजली आदि की सी चमक दिखाई पड़े उसे नीलिका कहते हैं ।

४. मुख पर का एक रोग जिसमें सरसों के घराबर छोटे छोटे कड़े काले दाने निकलते हैं । इल्ला ।

नीलिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ नील का पेड़ । २. नीला बोना ।

नीलिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० निलिमन्] १ नीलापन । २ श्यामता । स्वाही ।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह पुं० है पर हिंदी में स्त्री० है ।

नीली^१—वि० स्त्री० [हि० नीला] काले रंग की । नील के रंग की । काली । प्रासमानो ।

नीली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. नील का पोषा । २ नीलिका रोग । ३ नीले रंग की एक प्रकार की मक्खी (को०) ।

नीली घोड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीली + घोड़ी] १. काले भयवा सज्ज रंग की घोड़ी । २ जामे के साथ सिली हुई कागज की घोड़ी जिसे पहन लेने से जान पड़ता है कि प्रादमी घोड़े पर सवार है । डफालो इसे पहनकर गाँवों मियाँ के गीत गाते हुए भोख साँपने निकलते हैं ।

नीली चकरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीली + चकरी] एक प्रकार का पोषा ।

नीली चाय—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नीली + चाय] भगिया घास या यज्ञकुश ।

नीली राग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रगाढ़ या दृढ़ प्रेम [को०] ।

नीली संधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलीसन्धान] नील का सधान या क्षमीर [को०] ।

यौ०—नीलीसधानभाड = नील का बर्तन या नाँद ।

नीलू—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नील] एक प्रकार की घास । पलवान ।

नीलोत्पल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

नीलोत्पली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलोत्पलिन] १ शिव के एक भण । २ चौद महात्मा मनुष्यों का एक नाम ।

नीलोपल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नीलम । २ नीला पत्थर [को०] ।

नीलोपर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीलोपर मि० सं० नीलोत्पल] १ नील कमल । २ कुई । कुमुद ।

विशेष—हकीमी नुसखों में कुमुद या कुई का ही व्यवहार यहाँ होता है ।

नीव—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नेमि, प्रा० नेई] १ घर बनाने में गहरी नाली के रूप में खुदा हुआ गड्ढा जिसके भीतर से दीवार की जोड़ाई प्रारंभ होती है । दीवार उठाने के लिये गहरा किया हुआ स्थान ।

क्रि० प्र०—खोदना ।

मुहा०—नीव देना = (१) गड्ढा खोदकर दीवार खड़ी करने के लिये स्थान बनाना । दीवार की जड़ जमाने के लिये भूमि खोदना । (२) घर उठाने का प्रारंभ करना । (किसी बात की) नीव देना = कारण या आधार खड़ा करना । जड़ खड़ी करना । प्रारंभ करना । उपक्रम करना । सामान करना । जैसे, भगड़े की नीव देना । उ०—बाकी खाँ सो उठि छता दई दुँद की नीव ।—लास (शब्द०) । नीव भरना = दीवार के लिये खुदे हुए गड्ढे में कंकड़, पत्थर आदि पाटना ।

२ दीवार के लिये गहरे किए हुए स्थान में ईंट, पत्थर, मिट्टी आदि की जोड़ाई या जमावट जिसके ऊपर दीवार उठाते हैं। दीवार की जड़ या आधार। मूलभित्ति।

क्रि० प्र०—घरना।—रखना।

मुहा०—नीव का पत्थर = वह पत्थर जो मकान बनाने के प्रारम्भ में पहले पहल नीव में रखा जाता है। नीव जमाना या डालना या देना = दीवार उठाने के लिये नीव के गड्ढे में ईंट, पत्थर आदि जमाकर आधार खड़ा करना। दीवार की जड़ जमाना। (किसी बात की) नीवें जमाना = (१) आधार दृढ़ करना। स्थिर करना। स्थापित करना। (२) गम स्थित करना। पेट रखना। (किसी वस्तु या बात की) नीव डालना या देना = आधार खड़ा करना। जड़ जमाना। सूत्रपात करना। वुनियाद डालना। प्रारम्भ करना। जैसे,— कलाह्व ने भोगरेजी राज्य की नीवें डाली। नीवें पडना = (१) घर की दीवार का आधार खड़ा होना। घर बनने का लग्गा लगाना। उ०—भोक्त की नीव परी हरि लोक बिलोकित गग तरंग तिहारे।—(शब्द०)। (२) प्रारम्भ होना। सूत्रपात होना। जड़ खड़ी होना या जमना। जैसे, भगडे की नीवें पडना, राज्य की नीव पडना।

३ जड़। मूल। स्थिति। आधार।

नीव—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नीव'।

नीवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मिश्र। परिव्राजक। १ वाणिज्य। ३. कीचड़। ४. जल। ५. व्यापारी। वाणिज्य करनेवाला (को०)।

१ गृह निर्माण-योग्य-भूमि (को०)।

नीवाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाल के समय अन्न की बड़ी हुई आवश्यकता या माँग। २. प्रकाल। दुर्मिष (को०)।

नीवानास^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नीव+नाश] जड़ मूल से नाश। सत्तानाश। बरबादी। ध्वंस।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नीवानास^२—वि० चोपट। नष्ट। बरबाद।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—होना।

नीवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पसही या तिम्रो का चावल। मुख्य।

नीवारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीवार' (को०)।

नीवि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमर में लपेटो हुई धोती की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ पेट के नीचे सूत की डोरी से या यो ही बाँधती हैं। कटिवस्त्रवध। फुफुँदी। नारा। ३. लहंगे में पड़ी हुई वह डोरी जिसे लहंगा कमर में बाँधा जाता है। इजारबद। ४. साडी। धोती। ५. कौटिल्य के अनुसार वह धन जिसके व्याज आदि की प्राय किसी काम में खर्च की जाय और जो सदा रक्षित रहे। स्थायी कोष। ६. खर्च करने के बाद बची हुई पूँजी। (कौटि०)।

नीवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ निधि। स्थायी कोष। दे० 'नीवि'। उ०—इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक प्रथम नीवी स्त्री व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय।—कृष्णा (परिचय)।

५-५८

नीवीप्राहक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह व्यक्ति जिसके पास चढ़ा या किसी दूसरे व्यक्ति का धन जमा हो और जो उस धन का प्रबंध करता हो। खजानची।

नीवृत्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जनपद। २. ग्रामसमूह। देश (को०)।

नीव्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीव्र' (को०)।

नीशार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सरदी, हवा आदि से बचाव के लिये परदा। कनात। २. मसहरी।

नीसा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] सफेद घतूरा।

नीसक(५)—वि० [हि० नि + सक (= शक्ति)] सामर्थ्यहीन। शक्तिहीन।

नीसान(५)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नियान'।

नीसान्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] तेईस मात्राओं का एक छंद जिसमें १३वीं और १०वीं मात्रा पर विराम होता है। यह उपमान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यथा,—भाई सूरज मल्ल से कहना यह भाई। हम तुम बदे साहि के बुझे न लराई।—सूदन (शब्द०)।

नीसार(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नीशार] पर्दा। कनात। दे० 'नीशार'।

नीसू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निष्ठा] जमीन में गड़ा हुआ काठ का कुदा जिसपर रखकर चारा या गन्ना काटते हैं।

नीहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'नीव'।

नीहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कुहरा। २ पाला। हिम। तुषार। वर्ष। ३ बाहर करना। रीता करना (को०)।

नीहारकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (को०)।

नीहारजल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोसविंदु। शबनम (को०)।

नीहारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में घूँए या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज जो धीरे रात में सफेद धब्बे की तरह कहीं कहीं दिखाई पड़ता है।

विशेष—नीहारिका के धब्बे हमारे सौर जगत् से बहुत दूर हैं। दूरबीन के द्वारा देखने से ऐसे बहुत से धब्बों का पता अवतक लग चुका है जो भिन्न भिन्न अवस्थाओं में हैं। कुछ धब्बे तो ऐसे हैं जो अच्छी से अच्छी दूरबीनों से देखने पर भी कुहरे या भाप के रूप के ही दिखाई पड़ते हैं, और कुछ एक दम छोटे छोटे तारों से मिलकर बने पाए जाते हैं और वास्तव में तारकगुच्छ हैं। आकाश गंगा में इस प्रकार के तारकगुच्छ बहुत से हैं। इन तीनों में शुद्ध नीहारिका एक प्रकार के धब्बे ही हैं जो प्रारम्भिक अवस्था में हैं। इनसे प्राती हुई किरणों की रश्मिविश्लेषण यत्र में परीक्षा करने से कुछ में कई प्रकार की प्रासोकरेखाएँ पाई जाती हैं। इनमें से कई एक का तो निश्चय नहीं होता कि किस द्रव्य से प्राती हैं, तीन का पता लगता है कि वे हाइड्रोजन (वज्र) की रेखाएँ हैं।

ज्योतिर्विज्ञानियों का कथन है कि नीहारिका के धब्बे ग्रह नक्षत्रों के उपादान हैं। इन्हीं के क्रमशः घनीभूत होकर जमते जमते नक्षत्रों और लोकपिंडों की सृष्टि होती है। इनमें अत्यंत अधिक मात्रा का ताप होता है। हमारा यह सूर्य अपने ग्रहों और उपग्रहों के साथ प्रारम्भ में नीहारिका रूप में था।

नु—प्र० [म०] विकल्प सदेह, वितर्क, अनिश्चय आदि प्रयों मे प्रयुक्त प्रत्यय । कि के साथ प्रयुक्त होने पर यह संभावना, निश्चयादि प्रय व्यक्त करता है ।

नुकता^१—सञ्ज्ञा पुं० [म० नुकतह] १ बिटु । बिदी । २ शून्य । सिकर (की०) । २ चिह्न । दाग । निशान । घन्वा (की०) ।

नुकता^२—सञ्ज्ञा पुं० [म० नुकतह] १ चुटकुला । फवती । लगती हुई उक्ति ।

क्रि० प्र०—छेड़ना ।—छोड़ना ।

२ ऐब । दोष । दुर्गुण ।

क्रि० प्र०—निकालना ।

यौ०—नुकताची । नुकताचीनी ।

३ भालर के रू का वह परदा जो घोड़ो के माथे पर इसलिये बाँधा जाता है जिसमें भाल में मखियाँ न लगें । तिलहारी ।

नुकताची^१—वि० [फ्रा० नुकतची] दे० 'नुकताचीनी' ।

नुकताचीन^१—वि० [फ्रा० नुकतचीन] ऐब हूँढनेवाला या निकालनेवाला । दोष हूँढनेवाला या निकालनेवाला । छिद्रान्वेषी ।

नुकताचीनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] छिद्रान्वेषण । दोष निकालने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नुकती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा० नखुदी] एक प्रकार की मिठाई । बेसन की छोटी महीन बुँदिया ।

नुकना^१—क्रि० प्र० [हि० लुकना] लुकना । छिपना ।

नुकरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [म० नुकरह] १ चाँदी । २ घोड़ों का सफेद रंग ।

नुकरा^२—वि० सफेद रंग का (घोड़ा) ।

नुकरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] जलाशयों के पास रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर सफेद और चोंच काली होती है ।

नुकसान^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ कमी । घटी । ह्रास । छीज । जैसे,—सीढ़ में रखने से इतने कागज का नुकसान हो गया । २ हानि । घाटा । फायदा का उलटा । ज़ियान । क्षति । पास की वस्तु का जाता रहना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—नुकसान उठाना = हानि सहना । पल्ले का खोना । क्षतिग्रस्त होना । नुकसान पहुँचाना = नुकसान होना । नुकसान पहुँचाना = हानि करना । क्षतिग्रस्त करना । नुकसान मरना = हानि की पूर्ति करना । घाटा पूरा करना ।

३ बिगाड़ । खराबी । दोष । अवगुण । बिकार ।

मुहा०—(किसी को) नुकसान करना = दोष उत्पन्न करना । अस्वस्थ करना । स्वास्थ्य के प्रतिकूल होना । जैसे,—घालू हमें बहुत नुकसान करता है ।

नुकाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] खुरपी से निराने का काम ।

नुकाना^१—क्रि० स० [हि० लुकना] लुकाना । छिपाना ।

नुकाना^२—क्रि० स० [दे०] खुरपी से निराना ।

नुकीला^१—वि० [हि० नोक+ईला (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० नुकीली] १ नोकदार । जिसमें नोक निकली हो । जो छोर की ओर बराबर पतला होता गया हो । २ नोक भोंक का । बाँका तिरछा । सुदर ढंग का । सजीला । जैसे नुकीला जवान ।

नुकीली^१—वि० स्त्री० [हि० नुकीला] दे० 'नुकीला' ।

नुक्कड़^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नोक का प्रत्यय] १ नोक : पतला सिरा । २ सिरा । छोर । मन । जैसे,—गली के नुक्कड़ पर वह दुकान है । ३ कोना । निकला हुआ कोना ।

नुक्का^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नोक] १. नोक ।

यौ०—नुक्का टोपी = पतली दोपलिया टोपी जो सखनऊ में दी जाती है ।

२. गेडो के खेल में एक लकड़ी ।

मुहा०—नुक्का मारना या लगाना = (१) गेडो मारना । गेडो के खेल में लकड़ी मारना । (२) कील ठोकना । बाधा पहुँचाना । फट्ट पहुँचाना ।

नुक्स^१—सञ्ज्ञा पुं० [म० नुक्स] १ दोष । ऐब । खराबी । बुराई ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

२ थुटि । कसर ।

नुखरना^१—क्रि० प्र० [दे०] मालू का चित्त सेटना (कलदर) ।

नुखाट^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] छड़ी की मार जो कलदर मालू के मुँह पर मारते हैं । (कलदर) ।

नुगदी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नुकती] दे० 'नुकती' ।

नुचना^१—क्रि० प्र० [सं० लुञ्चन] १ घस या घग से लगी हुई किसी वस्तु का झटके से खिचकर प्रलग होना । खिचकर प्रलग होना । खिचकर उखड़ना । उड़ना, जैसे, बास नुचना । परी नुचना । २ खरोषा जाना । नाखून आदि से छिलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

नुचवाना^१—क्रि० स० [हि० नोचना का प्रेरण] नोचने का काम कराना । नोचने में प्रवृत्त करना । नोचने देना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

नुजट^१—सञ्ज्ञा पुं० [दे० ?] सगीत में १४ शोभाओं में से एक ।

नुत^१—वि० [म०] स्तुत । प्रशंसित । वदित । जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो ।

नुति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ स्तुति । वदना । २ पूजा ।

नुत्त^१—वि० [म०] १ चलाया हुआ । क्षिप्त । २ प्रेरित ।

नुत्फा^१—सञ्ज्ञा पुं० [म० नुत्फह] बीयें । शुक्र ।

मुहा०—नुत्फा ठहरना = गर्भ रहना ।

यौ०—नुत्फाहराम ।

२, सति । प्रीलाद ।

नुत्फाहराम^१—वि० [म० नुत्फाहराम] १ जिसकी उत्पत्ति व्यभिचार से हो । वर्णसंकर । दोगला । २ कमीना । बदमाश (नाली) ।

नुनखरा^१—वि० [हि० नून + खारा] स्वाद में नमक सा खारा । नमकीन ।

नुनखारा^१—वि० [हि०] दे० 'नुनखरा' ।

नुनना^१—क्रि० स० [सं० लुन, लून] लुनना । खेत काटना ।

नुनाई^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० 'नून' से, नोना, नोनो (= सुदर या सोना)] लावण्य । सुदरता । सलोनापन ।

नुनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का तूत जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर सिक्किम तक तथा बरमा और दक्षिण भारत के पहाड़ों पर भी होता है ।

नुनेरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नून + एरा (प्रत्य०)] १ नोनी मिट्टी आदि से नमक निकालनेवाला । नमक बनाने का रोजगार करनेवाला । २ लोनिया । नोनिया । (इस जाति के लोग पहले नमक निकाला करते थे) ।

नुसा—वि० [फ्रा०] १ दिखातेवाला । बतानेवाला । २ समान । तुल्य । (समासात् में प्रयुक्त) जैसे, छुणनुमा, बदनुमा, राहनुमा [को०] ।

नुमाइंदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] प्रतिनिधित्व [को०] ।

नुमाइदा—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० नुमाइव्ह] प्रतिनिधि ।

नुमाइश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १ दिखावट । दिखावा । प्रदर्शन । दिखाने या प्रगट करने का भाव । तड़क भटक । ठाट बाट । सज धज । २ नाना प्रकार की वस्तुओं का कुतूहल और परिचय के लिये एक स्थान पर दिखाया जाना ।

यौ०—नुमाइशगाह ।

४ वह मेला जिसमें अनेक स्थानों से एकट्ठी की हुई उत्तम और मद्भुत वस्तुएँ दिखाई जाती हैं । प्रदर्शनी ।

नुमाइशगाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार की उत्तम और मद्भुत वस्तुएँ एकट्ठी करके दिखाई जायें ।

नुमाइशी—वि० [फ्रा०] १ दिखाऊ । दिखोवा । जो दिखावट के लिये हो, किसी प्रयोजन का न हो । जो देखने में मझीला और सुंदर हो, पर टिकाऊ या काम का न हो । २. जिसमें ऊपरी तड़क भड़क हो, भीतर कुछ सार न हो ।

नुमायौ—वि० [फ्रा०] व्यक्त । जाहिर । स्पष्ट [को०] ।

नुसखा—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ लिखा हुआ कागज । २. कागज का वह चिट जिसपर हकीम या वैद्य रोगी के लिये औषध और सेवकविधि आदि लिखते हैं । दवा का पुरजा । ३ रोगी के लिये लिखी हुई औषधियाँ और उनकी सेवनविधि आदि ।

मुह्ना—नुसखा बाँधना = हकीम या वैद्य के लिखे अनुसार दवाएँ देना । पसारी या मत्तार का काम करना । नुसखा लिखना = रोगी को देख औषध की व्यवस्था करना । दवा लिखना ।

नुहरना—क्रि० प्र० [हि० निहरना] दे० 'निहरना' ।

नूत^१—वि० [सं० नूतन नूत] १. नया । नवीन । नूतन । उ०—अरुन नूत पल्लव धरे रंग भीजी ग्वालनी ।—सुर (शब्द०) । (ख) दूत विधि नूत कबहुँ न उर आनही ।—राम च०, पृ० ११४ । २. अनोखा । अनूठा । उ०—मूले मोला कहत हैं फले अविद्या नाव । और तरुन मे नूत यह तेरो घन्य सुमाव ।—(शब्द०) ।

नूत^२—वि० [सं०] दे० 'नूत' [को०] ।

नूतन—वि० [सं०] १ नया । नवीन । २ हान का । ताजा । ३. अनोखा । अपूर्व । विलक्षण ।

नूतनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नूतन का भाव । नवीनता । नयापन ।

नूतनत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नयापन ।

नूतन—वि० [सं०] दे० 'नूतन' ।

नूद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शहतूत ।

नूधा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तवाकू ।

नून^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ आल । २. आल की जाति की एक सता जो दक्षिण भारत तथा आसाम, बरमा आदि देशों में होती है ।

विशेष—इससे भी एक प्रकार का लाल रंग निकलता है । इसका व्यवहार भारतवर्ष में कम पर आवा आदि द्रव्यों में बहुत होता है ।

नून^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० लवण, हि० लोन] नमक ।

मुह्ना—नून तेल = गृहस्थी का सामान ।

नून^३—वि० [सं० न्यून, प्रा० गूण] दे० 'न्यून' । उ०—(क) सुनो के परम पद ऊनो के अनंत मद नूनो के नदीस नद इंदिरा कुरे परी ।—इतिहास, पृ० २६७ । (ख) प्रेमहि सज्जन हिये महे होन देत नहि नून ।—रसनिधि (शब्द०) ।

नूनताई^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० न्यूनता, हि० नूनता + ई (प्रत्य०)] दे० 'न्यूनता' ।

नूनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० न्यून, हि० नून] लिंगेद्रिय, विशेषतः बन्धों की ।

नूपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना । पैजनी । घुँघुरू । १. नगण के पहले भेद का नाम । ३ इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।

नूका—सञ्ज्ञा पुं० [?] १४ मात्राओं का एक छंद जो कज्जल के नाम से अधिक प्रसिद्ध है । यथा, खज्जल परी दुग मभार । दलबल दपट देखि अपार । खलबल करत नर भर नार । खल बल कोट मोट निहार ।

नूर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ प्रकाश । आभा । जैसे,—खुदा का नूर ।

मुह्ना—नूर का तड़का = बहुत सवेरा । प्रातःकाल । नूर बरसना = प्रभा का अधिकता से प्रकट होना ।

२. श्री । काति । शोभा । ३. ईश्वर का नाम (सूफी) । ४. सगीत में बारह मुकामों में से एक ।

यौ०—नूरचश्म = आँखों की रोशनी । लडका । सुपुत्र । नूरचश्मो = कन्या । सुपुत्री । नूरबाफ ।

नूरबाफ—सञ्ज्ञा पुं० [म० नूर + फ्रा० वाफ] जुलाहा । तौती ।

नूरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वह कुश्ती जो आपस में मिलकर लड़ी जाय अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरे के विरोधी न हों (पहलवान) ।

नूरा^२—वि० [म० नूर] नूरवाला । तेजस्वी । उ०—दधिकदम खेलत रघुबंसी नरनारी नव नूरे ।—रघुराज (शब्द०) ।

नूरो—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया ।

नूह—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शामी या इब्रानी (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) मतों के अनुसार एक पेयवर का नाम ।

विशेष—इनके समय में बड़ा भारी तूफान आया था । इस तूफान में सारी सृष्टि जलमग्न हो गई थी, केवल नूह का परिवार

घोर कुछ पणु एक क्षिप्री पर बैठकर बचे थे। कहते हैं
उन्हीं से फिर नए सिरे से सृष्टि चली।

नृ—सङ्घा पु० [सं०] १ नर। मनुष्य। २. शतरज या चौसर की
गोट (को०)। ३ प्रधान। मुखिया। नेता (को०)।

नृकपाल—सङ्घा पु० [सं०] मनुष्य की खोपड़ी।

नृकलेवर—सङ्घा पु० [सं०] मनुष्य का मृत शरीर। मनुष्य का शव।

नृकेशरी—सङ्घा पु० [सं०] नृकेशरिन् १. रुसिह धवतार। २ मनुष्यों
में सिंह के समान पराक्रमी पुरुष। श्रेष्ठ पुरुष।

नृग—सङ्घा पु० [सं०] १. एक राजा जिन्हें गिरगिट योनि में रहकर
कृत पाप का फल भोगना पड़ा था।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार है—राजा नृग
बड़े दानी थे। उन्होंने न जाने कितने गोदान आदि किए
थे। एक बार उनकी गायों के झुंड में किसी एक ब्राह्मण
की गाय आ मिली। राजा ने एक बार एक ब्राह्मण को
सहस्र गोदान में दीं जिनमें वह ब्राह्मणवाली गाय भी
थी। ब्राह्मण ने जब अपनी गाय को पहचाना तब दोनों
ब्राह्मण राजा नृग के पास आए। राजा नृग ने जिस ब्राह्मण
को गाएँ दान में दी थीं उसे गाय बदल लेने के लिये
बहुत समझाया पर उससे एक न मानी। अंत में वह
दूसरा ब्राह्मण सदास होकर चला गया। जब राजा का
परलोकवास हुआ तब उनसे यम ने कहा कि आपका पुण्य-
फल बहुत है पर ब्राह्मण की गाय हरने का पाप भी आपको
खगा है। चाहे पाप का फल पहले भोगिए, चाहे पुण्य का।
राजा ने पाप का ही फल पहले भोगना चाहा अतः वे सहस्र
वर्ष के लिये गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे। अंत में
श्रीकृष्ण के हाथों से उनका उद्धार हुआ।

२. मनु के पुत्र का नाम। ३. योधेय वंश का आदि पुरुष जो
नृगा के गर्भ से उत्पन्न उशीनर का पुत्र था। ४
परमात्मा (को०)।

नृगा—सङ्घा स्त्री० [सं०] राजा उशीनर की पत्नी का नाम।

नृघ्न—वि० [सं०] वरघातक।

नृजल—सङ्घा पु० [सं०] मानव मूत्र। मनुष्य का पेशाब (को०)।

नृत्तक(पु)—सङ्घा पु० [सं०] नृत्त+क] दे० 'नर्तक'।

नृत्तना(पु)—क्रि० प्र० [सं०] नृत्त] दे० 'नृत्तना'।

नृत्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] नाच। नृत्य।

नृतु—सङ्घा पु० [सं०] १. नाचनेवाला। नर्तक। २. पुषिषी। धरती
(को०)। ३. दीर्घ। बड़ा (को०)। ४. कीट। कुमि (को०)।

नृतू—सङ्घा पु० [सं०] १. नर्तक। २. नरहंसक।

नृत्त—सङ्घा पु० [सं०] नृत्य। अभिनय। हाव भाव से युक्त नाच।
भावों का आश्रय लेकर किया जानेवाला नाच।

नृत्तना(पु)—क्रि० प्र० [सं०] नृत्त] नाचना। नृत्य करना।

नृत्य—सङ्घा पु० [सं०] संगीत के ताल और गति के अनुसार हाथ पाँव
हिलाने, उछलने कूदने आदि का व्यापार। नाच। नर्तन।

विशेष—इतिहास, पुराण, स्मृति इत्यादि सबमें नृत्य का
उल्लेख मिलता है। संगीत के ग्रंथों में नृत्य के दो भेद
किए गए हैं—ताडव और लास्य। जिसमें उग्र और
उद्धत चेष्टा हो उसे ताडव कहते हैं और जो सुकुमार प्रंगों से
किया जाय तथा जिसमें शृंगार आदि कोमल रसों का संचार
हो उसे लास्य कहते हैं। 'संगीत नारायण' में लिखा है कि
पुरुष के नृत्य को ताडव और स्त्री के नृत्य को लास्य कहते
हैं। 'संगीतदामोदर' के मत से ताडव और लास्य भी दो दो
प्रकार के होते हैं—पेलवि और बहुरूपक। अभिनयशून्य
अगविक्षेप को पेलवि कहते हैं। जिसमें छेद, भेद तथा अनेक
प्रकार के भावों के अभिनय हो उसे बहुरूपक कहते हैं। लास्य
नृत्य दो प्रकार का होता है—छुरित और यौवन। अनेक
प्रकार के भाव दिखाते हुए नायक नायिका एक दूसरे का चुंबन
आलिंगन आदि करते हुए जो नृत्य करते हैं वह छुरित कहलाता
है। जो नाच नाचनेवाली अनेकले आँप ही नाचे वह यौवन है।
इसी प्रकार संगीत के ग्रंथों में हाप, पेर, मस्तक आदि की
विविध गतियों के अनुसार अनेक भेद उपभेद किए गए हैं।
धर्मशास्त्रों में नृत्य से जीविका करनेवाले निन्द्य कहे गए हैं।

नृत्यकी(पु)—सङ्घा स्त्री० [सं०] नर्तकी] दे० 'नर्तकी'।

नृत्यप्रिय—सङ्घा पु० [सं०] १ महादेव (जिन्हें ताडव नृत्य प्रिय है)।
२ कातिकेय का एक अनुचर।

नृत्यशाला—सङ्घा स्त्री० [सं०] नाचघर।

नृत्यस्थान—सङ्घा पु० [सं०] रंगमंच। रंगशाला (को०)।

नृदुर्ग—सङ्घा पु० [सं०] सेना का चारो ओर का घेरा।

नृदेव—सङ्घा पु० [सं०] १ राजा। २ ब्राह्मण।

नृधर्मा—सङ्घा पु० [सं०] नृधर्मन्] कुवेर।

नृदेवता—सङ्घा पु० [सं०] राजा। उ०—देवता अदेवता नृदेवता जिते
जहान।—केशव (शब्द०)।

नृपजय—सङ्घा पु० [सं०] नृपञ्जय] एक पुरुवंशीय राजा।

नृप—सङ्घा पु० [सं०] नरपति। राजा।

नृपकंद—सङ्घा पु० [सं०] नृपकन्द] लाल प्याज।

नृपगृह—सङ्घा पु० [सं०] राजप्रासाद। राजमहल। उ०—मंदिर
मनि समूह जनु तारा। नृपगृह कलस सो इंदु सदा रा।—
मानस, १। १६५।

नृपता—सङ्घा स्त्री० [सं०] राजापन। राजा का गुण या भाव।

नृपति—सङ्घा पु० [सं०] १. राजा। २. क्षत्रिय (को०)। ३. कुवेर।

नृपहंस—सङ्घा पु० [सं०] १. अभिलतास। २. खिरनी का पेड़।

नृपनय—सङ्घा पु० [सं०] नृपनीति। राजनीति। उ०—करव साधुमत
लोकमत नृपनय निगम निचोरि।—मानस, २। २५७।

नृपनीति—सङ्घा सङ्घा [सं०] राजनीति। राजधर्म। उ०—मैं बड़ छोटा
बिचारि जिय करत रहेउ नृपनीति।—मानस, २। ३१।

नृपद्रोही—सङ्घा पु० [सं०] नृपद्रोहिन्] परशुराम। उ०—भृगुवर
परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौ नृपद्रोही।—
मानस, १। २७६।

नृपपथ

नृपपथ—सखा पुं० [सं०] राजपथ । प्रधान मार्ग । राजमार्ग [को०] ।

नृपप्रिय—सखा पुं० [सं०] १. लाल प्याज । २. रामशर । सरकडा ।
३. एक प्रकार का बाँस । ४. जड़हन धान । ५. आम का पेड़ । ६. राजसुमा । पहाड़ी या पर्वती तोता ।

नृपप्रियफला—सखा स्त्री० [सं०] बैंगन ।

नृपप्रिया—सखा स्त्री० [सं०] १. केतकी । २. पिंड खजूर ।

नृपबदर—सखा पुं० [सं०] बही जात का बेर [को०] ।

नृपभागल्य—सखा पुं० [सं०] नृपमाङ्गल्य तरवट का पेड़ । आहुल ।

नृपमान—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था ।

नृपलक्ष्म—सखा पुं० [सं०] राजचिह्न । नृपचिह्न [को०] ।

नृपलिंग—सखा पुं० [सं०] नृपलिङ्ग दे० 'नृपलक्ष्म' [को०] ।

नृपवल्लभ—सखा पुं० [सं०] १. राजाप्रवृक्ष । २. राजा का प्रिय व्यक्ति [को०] ।

नृपवल्लभा—सखा स्त्री० [सं०] केतकी ।

नृपवृक्ष—सखा पुं० [सं०] सोनालु का पेड़ ।

नृपशासन—सखा पुं० [सं०] राजाशा । राजा का आदेश [को०] ।

नृपशु—सखा पुं० [सं०] १. मनुष्य रूपी पशु । मनुष्य जो पशु के समान हो । २. यज्ञ में बलि देने के लिये चुना हुआ मनुष्य [को०] ।

नृपसभा—सखा पुं० [सं०] राजाओं की सभा । वह सभा जिसमें बहुत से राजा सम्मिलित हों [को०] ।

नृपसुत—सखा पुं० [सं०] राजकुमार । राजपुत्र । उ०—एक कहूँ नृपसुत तेह आसी । सुने जे मुनि सँग आए काली ।—मानस, १ । २२६ ।

नृपसभा—सखा स्त्री० [सं०] राजसभा । राजा का दरबार [को०] ।

नृपसुता—सखा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या । राजकुमारी । २. छल्लूँदर । छल्लूँदरी ।

नृपाश—सखा पुं० [सं०] १. राजा का कर । उपज का वह निर्धारित छठा या आठवाँ भाग जो राजा को कर के रूप में मिलता था । २. राजपुत्र [को०] ।

नृपात्मज—सखा पुं० [सं०] राजकुमार ।

नृपात्मजा—सखा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या । २. कड़ुवा घीया । कड़ई तुँबी ।

नृपाध्वर—सखा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ ।

नृपान्न—सखा पुं० [सं०] राजभोग धान ।

नृपाभोर—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था ।

नृपामय—सखा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा । क्षयरोग । राजरोग ।

नृपाल—सखा पुं० [सं०] (मनुष्यों का पालन करनेवाला) राजा । दे० 'नृपति' ।

नृपावर्त—सखा पुं० [सं०] राजावर्त । एक प्रकार का रत्न ।

नृपासन—सखा पुं० [सं०] भद्रासन । राजसिंहासन । तस्त ।

नृपाह, नृपाहय—सखा पुं० [सं०] १. राजा कहलानेवाला । राजा नामधारी । २. साध प्याज ।

नृपोचित^१—वि० [सं०] जो राजाओं के योग्य हो ।

नृपोचित^२—सखा पुं० १. राजमाष । काला बड़ा उरद । २. लोबिया ।

नृमण—सखा स्त्री० [सं०] भागवत में वर्णित प्लक्ष द्वीप की एक महानदी ।

नृमणि—सखा पुं० [सं०] एक पिशाच या भूत जो बच्चों को लगकर तंग किया करता है ।

नृमर—सखा पुं० [सं०] (मनुष्यों को मारनेवाला) राक्षस ।

नृमिथुन—सखा पुं० [सं०] स्त्री पुरुष का जोड़ा ।

नृमेघ—सखा पुं० [सं०] नरमेघ या पुरुषमेघ यज्ञ ।

नृम्ण^१—वि० [सं०] प्रसन्न करनेवाला [को०] ।

नृम्ण^२—सखा पुं० [सं०] १. कृष्ण । २. पौरव । ३. साहस । ४. धन [को०] ।

नृयज्ञ—सखा पुं० [सं०] पंच यज्ञों में से एक जिसका करना गृहस्थ के लिये कर्तव्य है । प्रतिपिपूजा । अभ्यागत का सत्कार ।

नृलोक—सखा पुं० [सं०] नरलोक । मनुष्यलोक । मर्त्यलोक ।

नृवराह—सखा पुं० [सं०] बाराहरूपधारी भगवान् विष्णु ।

नृवाहन—सखा पुं० [सं०] नरवाहन । कुबेर [को०] ।

नृवेष्टन—सखा पुं० [सं०] शिव । महादेव [को०] ।

नृशंस—वि० [सं०] १. लोगों को कष्ट या पीडा पहुँचानेवाला । क्रूर । निर्दय । २. भविष्यकारी । भपकारी । भत्याचारी । जातिम ।

नृशंसता—सखा स्त्री० [सं०] निर्दयता । क्रूरता ।

नृशृंग—सखा पुं० [सं०] नृशृङ्ग मनुष्य की सींग के समान मनहोली बात या वस्तु । भ्रूलोकपदार्थ ।

नृसिंह—सखा पुं० [सं०] १. सिंहरूपी भगवान् विष्णु । विष्णु का चौथा अवतार ।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि समययुग में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने घोर तप करके ब्रह्मा से वर माँग लिया कि न मैं देव, असुर, गधर्व, नाग, राक्षस या मनुष्य के हाथ स मारा जा सकूँ, न अस्त्र, शस्त्र, भुक्ष, शूल तथा सुखे या गीले पदार्थ से मरूँ, और न स्वर्ग, मर्त्य आदि किसी लोक में या दिन, रात किसी काल में मेरी मृत्यु हो सके । इस प्रकार का वर पाकर वह दैत्य पर्यंत प्रबल हो उठा और स्वर्ग आदि छीनकर देवताओं को बहुत सताने लगा । देवता लोग विष्णु भगवान् की शरण में गए । विष्णु ने उन्हें प्रमत्तदान देकर प्रत्येक भीषण नृसिंह मूर्ति धारण की जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का था । जब यह नृसिंह मूर्ति, हिरण्यकशिपु के पास पहुँची तब उसके पुत्र प्रह्लाद ने कहा कि यह मूर्ति 'देवी' है, इसके भीतर सारा चराचर जगत् दिखाई पड़ता है । जाव पड़ता है, सब दैत्यकुल नष्ट होगा । यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अपने दैत्यों से नृसिंह को मारने के लिये कहा । पर जितने दैत्य मारने गए सब नष्ट हुए । अंत में हिरण्यकशिपु पाप उठकर मुद करने लगा । हिरण्यकशिपु के

क्रुद्ध नेत्रों की ज्वाला से समुद्र का जल खलबला उठा, सारी पृथ्वी डीवाडोल हुई घोर लोको में हाहाकार मच गया। देवताओं का भावनाद सुन नृसिंह भगवान् प्रत्यत भीषण गर्जन करके देश पर भपटे घोर उन्होंने उसका पेट फाड़ डाला।

भागवत और विष्णु पुराण में सब कथा तो यही है पर प्रह्लाद की भक्ति का प्रसंग अधिक है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकशिपु वर पाकर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग प्रादि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे जिनमें प्रह्लाद विष्णु भगवान् का बड़ा भारी भक्त था। शुक्राचार्य का पुत्र दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाता था। एक दिन हिरण्यकशिपु ने परीक्षा के लिये सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिये कहा। प्रह्लाद, विष्णु भगवान् की महिमा गाने लगा। इसपर दैत्यराज बहुत विगड़ा। क्योंकि वह विष्णु का घोर द्वेषी था। पर बिगड़ने का कुछ भी फल नहीं हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। पिता के द्वारा अनेक ताड़न और कष्ट सहकर भी प्रह्लाद भक्ति पर टढ़ रहे। धीरे धीरे बहुत से सहपाठी बालकों का दल प्रह्लाद का अनुयायी हो गया। इसपर दैत्यराज ने क्रुपित होकर प्रह्लाद से पूछा कि 'तू किसके बल पर इतना कूदता है? प्रह्लाद ने कहा 'भगवान् के, जिसके बल पर यह सारा संसार चल रहा है'। हिरण्यकशिपु ने पूछा तेरा भगवान् कहाँ है? प्रह्लाद ने कहा वह सदा सर्वत्र रहता है। दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा 'क्या इस खम्भे में भी है? प्रह्लाद ने कहा 'अवश्य'। हिरण्यकशिपु खड्ग लेकर बार बार खम्भे की ओर देखने लगा। इतने में खम्भे के भीतर से प्रलय के समान शब्द हुआ और नृसिंह ने निकलकर दैत्यराज का वध किया।

२ श्रेष्ठ पुष्य। ३ एक रतिवध।

नृसिंह चतुर्दशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस तिथि को नृसिंह जी का भवतार हुआ था इससे इस दिन व्रत, पूजन, उत्सव प्रादि किए जाते हैं।

नृसिंह पुराण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण।

नृसिंहपुरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जो मुलतान में कहा जाता है।

नृसिंहवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार कुंभ विभाग में पश्चिम उत्तर स्थित एक देश।

नृसोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जो मनुष्यों में चंद्रमा के सदृश हो। नरश्रेष्ठ।

नृहरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

नी—प्रत्य० [सं० प्रत्य० टा = एण] सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता का चिह्न जो उसके भागे लगाया जाता है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता की विभक्ति। जैसे,—राम ने रावण को मारा। उसने यह काम किया।

विशेष—हिंदी की भूतकालिक क्रियाएँ सं० कृदंतों से बनी हैं इसी से कर्मवाच्य रूप में वाक्यों का प्रयोग प्रारंभ हुआ। क्रमशः उन वाक्यों का ग्रहण कर्तृवाच्य में भी होने लगा।

नेई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नेव] दे० 'नीव'।

नेई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नेव] दे० 'नीव'। उ०—मवध उजारि लीह्लि कैकेई। दोन्हेंसि भचल बिपति कै नेई।—मानस, २। २६।

नेउछाउरि, नेउछावरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० न्योछावर] दे० 'न्योछावर' 'निछावर'।

नेउतना^१—क्रि० सं० [हि० न्योतना] दे० 'नेवतना', 'न्योतना'।

नेउतहरी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० न्योसा + हरि (प्रत्य०)] निमग्नित जन।

नेउता^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० न्योता] दे० 'नेवता', 'न्योता'।

नेउसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नकुल, हि० नेवसा] दे० 'नेवसा'।

नेक^१—वि० [फा०] १. अच्छा। मला। उत्तम।

यौ०—नेक अंजाम। नेक अदेश = हितचितक। खेरबहाद। नेक-चलन। नेकजात = सत्कुलीन। उत्तम जाति का। नेकतर, नेकतरीन = उत्तमतर। श्रेष्ठतर। नेकदिल। नेकनाम। नेकनीयत। नेकवस्त्र।

२. शिष्ट। सज्जन। जैसे, नेक मादमी।

नेका^१—वि० [हि० न + एक] थोड़ा। तनिक। जरा सा। किंचित्। कुछ।

नेक^२—क्रि० वि० थोड़ा। जरा। तनिक। उ०—नेक हंसोहों मानि तजि लखी परत मुख नीठि।—बिहारी (शब्द०)।

नेक अजाम—वि० [फा०] अच्छे परिणामवाला (कार्य)।

नेकचलन—वि० [फा० नेक + हि० चलन] अच्छे चाल चलन का। सदाचारी।

नेकचलनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नेक + हि० चलन] सुचाल। सदाचार। भलमनसाहत।

नेकदिल—वि० [फा०] शुद्ध हृदय का। साफ दिलवाला।

नेकनाम—वि० [फा०] जिसका अच्छा नाम हो। जो अच्छा प्रसिद्ध हो। यशस्वी।

नेकनामी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] नामवरी। सुरुयाति। कीर्ति। सुयश।

नेकनीयत—वि० [फा० नेक + प्र० नीयत] १. अच्छे सकल्प का। शुभ सकल्पवाला। २. जिसका प्राण या उद्देश्य अच्छा हो। उत्तम विचार का। उदाराराय। भलाई का विचार रखनेवाला।

नेकनीयती—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नेकनीयत] १. नेकनीयत होने का भाव। अच्छा सत्त्व। भला विचार। २. ईमानदारी।

नेकवस्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नेकवस्ती] १. सोभाग्य। सुशक्तिमती। २. उत्तम स्वभाव। सुशीलता।

नेकरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] समुद्र की लहर का थपेड़ा जिससे जहाज किसी ओर को बढ़ता है। हाँक। (लश०)।

नेकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. भलाई। उत्तम व्यवहार। २. सज्जनता। भलमनसाहत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—नेकी बंदी = भलाई बुराई । पाप पुण्य । जैसे,—नेकी बंदी साथ जाती है ।

१ उपहार । हित । जैसे,—उसने तुम्हारे साथ बड़ी नेकी की है ।

यौ०—नेकी बंदी = उपकार अपकार । हित अहित ।

मुहा०—नेकी घोर पूछ पूछ=किसी का उपकार करने में उससे पूछने की क्या आवश्यकता है !

नेकु^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'नेक' ।

नेग—संज्ञा पुं० [सं० नैयमिक, हि० नेवग] १ विवाह आदि शुभ भवसरो पर संबंधियों, आश्रितों तथा कार्य या कृत्य में योग देनेवाले और लोगों को कुछ दिए जाने का नियम । देने, पाने का हक या दस्तूर । जैसे,—नेग में उनको बहुत कुछ मिला ।

यौ०—नेगचार । नेगजोग ।

मुहा०—नेग करना = शुभ मुहूर्त में आरंभ करना । साइत करना ।

२ वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ भवसरो पर संबंधियों, नोकरों चाकरों तथा नाई बारी आदि काम करनेवालों को उनकी प्रसन्नता के लिये नियमानुसार दिया जाता है । बंधा हुआ पुरस्कार । इनाम । बलिशिष । उ०—लाख टका प्रह भूमका (देहु) सारी दाइ को नेग ।—सूर०, १० । ४० ।

क्रि० प्र०—चुकाना ।—देना ।

मुहा०—नेग लगना = (१) पुरस्कार देना आवश्यक होना । रीति के अनुसार कुछ देना जरूरी होना । जैसे,—यहाँ ५०) नेग लगेगा । (२) हीले लगना । काम में आ जाना । सार्थक होना । सफल होना ।

नेगचार—संज्ञा पुं० [हि० नेग + सं० आचार] दे० 'नेगजोग' ।

नेगचार^२—संज्ञा पुं० [हि० नेगचार] दे० 'नेगजोग' । उ०—नेगचार कहूँ नागरि गह्वर लगावहि । निरखि निरखि मानद सुलोचनि पावहि ।—तुलसी प्र०, पृ० ५८ ।

नेगजोग—संज्ञा पुं० [हि० नेग + जोग] १ विवाह आदि मंगल भवसरो पर संबंधियों तथा काम करनेवालों को उनके प्रसन्नता के लिये कुछ दिए जाने का दस्तूर । देने पाने की रीति । इनाम बाँटने की रस्म । २ वह धन जो मंगल भवसरो पर संबंधियों और नोकरों चाकरों आदि को बाँटा जाता है । इनाम । उ०—नेगी नेगजोग सब लेही । रवि प्रनुरूप भूपमनि देही ।—मानस, १।३५३ ।

नेगटी^३—संज्ञा पुं० [हि० नेग + टी (प्रत्य०)] नेग या रीति का पालन करनेवाला । दस्तूर पर चलनेवाला । उ०—जग प्रीति कर देखी नाहि, नेगटी कोऊ । छत्रपति रक ली देखे प्रकृति विरह न बन्धो कोऊ । दिन जु गए बहुत जनमनि के ऐसे जाहु जिन कोऊ । सुनि हरिदास मीन मलो पायो विहारी ऐसो पावो सब कोऊ ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

नेगी—संज्ञा पुं० [हि० नेग] नेग पानेवाला । नेग पाने का हकदार । उ०—लखिमन होहु घरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम्हें बेगी ।—मानस, ६।२०८ ।

नेगीजोगी—संज्ञा पुं० [हि० नेगजोग] नेग पानेवाले । विवाह आदि मंगल भवसरो पर इनाम पाने के अधिकारी, जैसे, नातेदार, नाई, बारी, नोकर, चाकर इत्यादि । छुशी का इनाम पाने का हकदार ।

नेगु^४—संज्ञा पुं० [हि० नेग] दे० 'नेग' । उ०—नेगु माँगि मुनि नाइक लीन्हा । आसिरबाद बहुत बिधि दीन्हा ।—मानस, १।३५३ ।

नेगेटिव^१—संज्ञा पुं० [अ०] फोटोग्राफी में मसाला लगा वह प्लेट या फिल्म जिसपर उस चीज की उलटे वर्णों की प्रतिकृति आ जाती है जिसका चित्र लिया जाता है । इसी पर मसालेदार कागज रखकर छापा जाता है जो यथार्थ चित्र रूप में दिखाई देता है ।

नेगेटिव^२—वि० १. ऋणात्मक । धनात्मक का उलटा । २. नकारात्मक । जिससे अस्वीकृति या निषेध सूचित हो ।

नेचर—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रकृति । कुदरत । जैसे,—वे नेचर को माननेवाले हैं । २. स्वभाव । प्रकृति ।

नेचरिया—संज्ञा पुं० [अ० नेचर + हि० इया (प्रत्य०)] प्रकृति के अतिरिक्त ईश्वर आदि को न माननेवाला । लोकायतिक । नास्तिक । प्रकृतिवादी ।

नेचवा^३—संज्ञा पुं० [दे०] पलंग का पाहा ।

नेचरोपैथी—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली [को०] ।

नेछावरी—संज्ञा स्त्री० [हि० निछावर] दे० 'निछावर' ।

नेजक—संज्ञा पुं० [सं०] रजक । घोड़ी ।

नेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोना । साफ करना । २ घुलाई का स्थान । वस्त्रादि धोने की जगह [को०] ।

नेजा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] २. भाला । बरछा । २. साँग । निशान ।

मुहा०—नेजा हिलाना = बरछा या वल्हम फिराना ।

३. बिलगोजा नाम की सूखी फली या मेवा ।

नेजावरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भाला या राजाघों का निशान लेकर चलनेवाला ।

नेजाल^४—संज्ञा पुं० [फ़ा० नेजा + हि० ल (स्वा० प्रत्य०)] भाला । बरछा ।

नेटा^५—संज्ञा पुं० [हि० नाक + टा] नाक से निकलनेवाला कफ या बलगम । नाक से निकलनेवाला कफ या मल ।

क्रि० प्र०—बहना ।

मुहा०—नेटा बहना = गदा और मैला कुचला रहना । बेहरा साफ सुथरा न रहना ।

नेटिव^६—वि० [अ०] देश का । देशी । मुल्क का । मुल्की । जैसे, नेटिव आदमी ।

नेटिव^७—संज्ञा पुं० वह जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो और जो विदेशी या बाहर का न हो । आदिम निवासी ।

नेठना^८—क्रि० प्र० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] दे० 'नाठना' ।

नेड़ो^९—क्रि० वि० [सं० निकट, प्रा० निमड] निकट । पास । नजदीक ।

नेस^{१०}—संज्ञा पुं० [सं० निषति (= ठहराव)] १. ठहराव । निर्धारण ।

किसी बात का स्थिर होना । उ०—मैं ग्यारहें भीम भस भरत कुंडली नेत ।—रघुराज (शब्द०) । २ निप्रचय । ठहराव । ठान । सकल्प । इरादा । उ०—(क) प्राजु न जान देहू री ग्यालिन बहुत दिनन को नेत ।—सूर (शब्द०) । (ख) चार घोर चामोकर हेतू । किय मारन जयदेवहि नेतू ।—रघुराज (शब्द०) । ३ व्यसथा । प्रबध । प्रायोजन । वदिथा । ढग । उ०—(क) हाय हाय माचो विश्ववाम बोध भाखी सुर काल काहे प्रभु बाधि प्रलय नेत है ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) नेत करन की है गति तोरी । जामे जाय बात नहि मोरी ।—रघुराज (शब्द०) ।

नेत्र^३—संज्ञा पुं० [सं० नेत्र] मयानी की रस्सी । नेता । उ०—(क) को उठि प्राप्त होत ले माखन को कर नेत गहै ?—सूर (शब्द०) । (ख) नोई नेत की करो चमोटी धुँघट में डरवायो ।—सूर (शब्द०) ।

नेत्र^३—संज्ञा पुं० [दे०] एक गहना । उ०—कहुँ ककन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ ताटक कहुँ नेत ।—सूर (शब्द०) ।

नेत्र^४—संज्ञा स्त्री० दे० 'नेत्री' ।

नेत्र^५—संज्ञा स्त्री० [प्र० नीयत] दे० 'नीयत' । उ०—जु पड़े विन क्यों हूँ रह्यो न परे तो पड़ो चित में करि चेत सों पू । रस स्वादहि पाय बिषाव बहाय रह्यो रमि के इह्वि नेत सों पू ।—धनानंद, पृ० ४ ।

नेत्र^६—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की रेशमी चादर । उ०—(क) पुनि गलमत चढ़ावा नेत बिछाई खाट । बाजत गाजत राजा प्राइ बैठ सुख पाट ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पालंग पाव कि भाछे पाटा । नेत बिछाव चले जो बाटा ।—जायसी (शब्द०) ।

नेतली—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र (=मयानी की डोरी)] एक प्रकार की पतली डोरी (लश०) ।

नेता^१—संज्ञा पुं० [सं० नेतृ] [स्त्री० नेत्री] १. पीछे ले चलनेवाला । भगुना । नायक । सरदार । २. प्रभु । स्वामी । मालिक । ३. काम को चलावेवाला । निर्वहिक । प्रवर्तक । ४. नीम का पेड़ । ५. विष्णु । ६. नाटक का नायक (की०) । ७. दो की सख्या (की०) । ८. दंड देनेवाला (की०) ।

नेता^२—संज्ञा पुं० [सं० नेत्र] मयानी की रस्सी ।

नेति—[सं०] एक संस्कृत वाक्य (न इति) जिसका अर्थ है 'इति नहीं' अर्थात् 'अत नहीं है' । ब्रह्म या ईश्वर के सबध में यह वाक्य उपनिषदों में अतृप्तता सूचित करने के लिये ध्याया है । उ०—नेति नेति कहि वेद पुकारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

नेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र, हि० नेता] १. वह रस्सी जो मयानी में सपेटी जाती है और जिसके खींचने से मयानी फिरती है या दही मया जाता है । २. एक क्रिया जो हठ योग में की जाती है ।

नेत्रीघोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र, हि० नेता + सं० घोटि] हठयोग की एक क्रिया जिसमें कपड़े की घउजी पेट में डालकर भाँति झाँक करते हैं । दे० 'घोटि' ।

नेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाल । २. मयानी की रस्सी । ३. एक प्रकार का वस्त्र । ४. वृक्षमूल । पेड़ की जड़ । ५. रथ । ६. जटा । ७. नाड़ी । ८. वस्तिमलाका । वस्ती की सलाई । कटीटा । ९. दो की सख्या का सुषक शब्द ।

नेत्रकनीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाल का तारा ।

नेत्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रपटल । नेत्र का गोलक (की०) ।

नेत्रगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] भाल का डेसा । नेत्रमडल ।

नेत्रच्छद्—संज्ञा पुं० [सं०] पलक । पपोट (की०) ।

नेत्रज—संज्ञा पुं० [सं०] भाल ।

नेत्रजल—संज्ञा पुं० [सं०] भाल ।

नेत्रपर्यंत—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रपर्यंत] भाल का कोना ।

नेत्रपाक—संज्ञा पुं० [सं०] भाल का एक रोग ।

नेत्रपिंड—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रपिण्ड] १. नेत्रगोलक । भाल का डेसा । २. बिड़ाल । बिल्ली ।

नेत्रपुष्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा नाम की लता ।

नेत्रबध—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रबन्ध] भालमिचोली का खेल (महामारत) ।

नेत्रवाला—संज्ञा पुं० [सं० वाला] सुगंधवाला । कचमोद । बालक ।

विशेष—दे० 'सुगंधवाला' ।

नेत्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] सगीत या नृत्य में एक भाव जिसमें केवल भालों की चेष्टा से सुख दुःख आदि का बोध कराया जाता है और कोई अंग नहीं हिलते डोलते । यह भाव बहुत कठिन समझा जाता है ।

नेत्रमडल—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रमण्डल] भाल का घेरा । भाल का डेसा ।

नेत्रमल—संज्ञा पुं० [सं०] भाल का कीचड़ । बिड़ ।

नेत्रमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रगोलक से मस्तिष्क तक गया हुआ सूत्र जिससे अंतःकरण में दृष्टिज्ञान होता है ।

नेत्रमीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिका लता (जिसके सेवन से भालें बंद रहती हैं) ।

नेत्रमुष—वि० [सं०] नेत्रों को अक्षत करनेवाला । नेत्रों को बसीभूत कर लेनेवाला (की०) ।

नेत्रयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. इद्र (जिनके शरीर में गीतम के शाप से सहस्र योनिवित्त हो गए थे जो पीछे नेत्र के आकार के हो गए) । २. चंद्रमा (जो अग्नि की भाल से उत्पन्न हुए थे) ।

नेत्ररंजन—संज्ञा पुं० [सं० नेत्ररञ्जन] कज्जल । काजल ।

नेत्ररोग—संज्ञा पुं० [सं०] भाल में होनेवाले रोग जो वैद्यक में ७९ माने गए हैं ।

विशेष—इनमें से १० वायुजन्य, १३ कफजन्य, १६ रक्तजन्य, १० पित्तज, २५ सन्निपातज और २ बाहरी हैं । वायुजन्य रोगों में से हताधिमय, निमेषदृष्टिगत, गंभीरिका और वातहत-वर्त्मन् असाध्य हैं और काचरोग, शुष्काक्षिपाक, अधिमय,

अभिष्यंद और मास्य साध्य हैं। पित्तल रोगों में से ह्रस्वजात, बललाव, परिम्लायी और नीली असाध्य हैं और अम्लाव्युषित दृष्टि, शुक्तिका, विदग्ध दृष्टि, पोथकी और लगण साध्य हैं। श्लेष्मज रोगों में स्राव रोग और काच रोग साध्य होता है। पूयस्ताव, नाकुलाध्य, अक्षिपाक और अलजी ये सब सर्वदोषज असाध्य हैं। सन्निपातज काचरोग और पक्ष्मकोपरोग साध्य हैं। ७६ नेत्ररोगों में से ६ सधिगत, २१ वर्त्मगत, ११ शुक्ल-भागस्थित, ४ कृष्णभागस्थित, १७ सर्वत्रगत, १२ दृष्टिगत और २ बाह्य रोग हैं।

नेत्ररोगहा—सङ्घा पुं० [सं०] वृषिकाली वृक्ष।

नेत्ररोम—सङ्घा पुं० [सं० नेत्ररोमन्] आँख की बिरनी। बरोनी।

नेत्रवस्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी पिचकारी।

नेत्रवस्त्र—सङ्घा पुं० [सं०] पलक [को०]।

नेत्रवारि—सङ्घा पुं० [सं०] भाँसु [को०]।

नेत्रबिध्—सङ्घा पुं० [सं०] आँख का कीचड़।

नेत्रबिष—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का दिव्य सर्प जिसकी आँख में विष होता है।

नेत्रसधि—सङ्घा स्त्री० [सं० नेत्रसन्धि] आँख का कोना।

नेत्रस्तम्भ—सङ्घा पुं० [सं० नेत्रस्तम्भ] आँख की पलकों का स्थिर हो जाना, अर्थात् उठना और गिरना बंद हो जाना।

नेत्रस्त्राव—सङ्घा पुं० [सं०] आँखों से पानी बहना।

नेत्रहा—सङ्घा पुं० [सं० नेत्रहन्] दे० 'नेत्ररोगहा'।

नेत्राञ्जन—सङ्घा पुं० [सं० नेत्राञ्जन] आँखों में लगाने का सुरमा [को०]।

नेत्रात—सङ्घा पुं० [सं० नेत्रान्त] आँख के कोने और कान के बीच का भाग। कनपटी।

नेत्रावु—सङ्घा पुं० [सं० नेत्रावु] अश्रु। भाँसु [को०]।

नेत्रांभ—सङ्घा पुं० [सं० नेत्रांभस्] आँसु। अश्रु [को०]।

नेत्रातिथि—वि० [सं०] जो दृष्टिगोचर हो। दृष्टिपथ में मानेवाला [को०]।

नेत्राभिष्यद्—सङ्घा पुं० [सं० नेत्राभिष्यन्द] आँख का एक रोग जो सूज से फैलता है। आँख आने का रोग।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार इस रोग में आँखें लाल हो जाती हैं और उनमें बड़ी पीड़ा होती है। यह वातज, पित्तज, रक्तज और कफज चार प्रकार का होता है। वातज अभिष्यंद में सूई चुमने की सी पीड़ा होती है और ऐसा जान पड़ता है कि आँखों में किरकिरी पड़ी हो। इसमें ठंडा पानी बहता है और सिर दुखता है। पित्तज अभिष्यंद में आँखों में जलन होती है और बहुत पानी बहता है। ठंडी चीजे रखने से आराम मालूम होता है। कफज अभिष्यंद में आँखें भारी जान पड़ती हैं, सुजन अधिक होती है और बार बार गाढ़ा पानी बहता है। इसमें गरम चीजों से आराम मालूम होता है। रक्तज अभिष्यंद में आँखें बहुत लाल रहती हैं और सब लक्षण पित्तज अभिष्यंद के से होते हैं। अभिष्यंद रोग की चिकित्सा न होने से अविमथ रोग होने का डर रहता है।

नेत्रारि—सङ्घा पुं० [सं०] थुहर। सेहुँडा।

नेत्रिक—सङ्घा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की छोटी पिचकारी (सुश्रुत)। २. श्रुवा। चमस् [को०]।

नेत्री—सङ्घा स्त्री० [सं०] १. अपने पीछे ले चलनेवाली। अग्रगामिनी। अगुमा। सरदार। २. राह बतानेवाली या सिखानेवाली। रास्ते पर चलानेवाली। शिक्षयित्री। ३. नाड़ी। ४. लक्ष्मी। ५. नदी।

नेत्रोत्सव—सङ्घा पुं० [सं०] १. नेत्रों का भानंद। देखने का मजा। २. वह वस्तु जिसे देखने से नेत्रों को भानंद मिले। दर्शनीय वस्तु।

नेत्रोपम—सङ्घा पुं० [दे०] आँख के आकार का फल-बादाम [को०]।

नेत्रोपम फल—सङ्घा पुं० [सं०] बादाम (भावप्रकाश)।

नेत्रौषध—सङ्घा पुं० [सं०] १. आँख की दवा। २. पुष्प कसीस।

नेत्रौषधि, नेत्रौषधी—सङ्घा स्त्री० [सं०] मेढासिंगी।

नेत्र्य—वि० [सं०] १. आँखों के लिये हितकारक। २. नेत्र सबधी [को०]।

नेत्र्यगण—सङ्घा पुं० [सं०] रसीत, त्रिफला, लोघ, ग्वारपाठा, वनकुलथी आदि नेत्ररोगों के लिये उपकारी औषधियों का समूह।

नेदिष्ठ^१—वि० [सं०] १. निकट का। पास का। २. निपुण।

नेदिष्ठ^२—सङ्घा पुं० अकोठ वृक्ष। ठेरे का पेड़।

नेदिष्ठी^१—वि० [सं० नेदिष्ठिन्] समीप का। निकटस्थ।

नेदिष्ठी^२—सङ्घा पुं० सहोदर भाई।

नेनुआ, नेनुवा—सङ्घा पुं० [देश०] एक भाजी या तरकारी। घिया-तोरई। धिवरा।

नेदीयान्—वि० [सं०] दे० 'नेदिष्ठ'।

नेप—सङ्घा पुं० [सं०] १. कुल पुरोहित। २. जल [को०]।

नेपचून—सङ्घा पुं० [फरासीसी] सूर्य की परिक्रमा करनेवाला एक ग्रह जिसका पता सन् १८४६ के पहले किसी को नहीं था।

विशेष—अद्यतक जितने ग्रह जाने गए हैं उनमें यह सबसे अधिक दूरी पर है। बड़ाई में यह तीसरे दर्जे के ग्रहों में है। इस ग्रह का व्यास ३७,००० मील है। सूर्य से इसकी दूरी २,८०,००,००,००० मील के लगभग है, इससे इसे सूर्य के चारों ओर घूमने में १९४ वर्ष लगते हैं, अर्थात् नेपचून का एक वर्ष हमारे १९४ वर्षों का होता है। जिस प्रकार पृथ्वी का उपग्रह चंद्रमा है उसी प्रकार नेपचून का भी एक उपग्रह है। उसका पता भी सन् १८४६ (अक्टूबर) में ही लगा। वह नेपचून की परिक्रमा ५ दिन २१ घंटे ८ मिनट में करता है।

नेपथ्य—सङ्घा पुं० [सं०] १. वेश। नृपण। सजावट। २. वेशस्थान। नृत्य, अभिनय, नाटक आदि में परदे के भीतर का वह स्थान जिसमें नट नटी नाना प्रकार के वेश सजते हैं। नाटक में परदे के पीछे का स्थान जिसमें नट लोग नाटक के पात्रों की नकल बनाते हैं। ३. वह स्थान जहाँ नृत्य अभिनय आदि हो। नाच रंग की जगह। रंगशाला। रंगभूमि।

नेपाल—संज्ञा पुं० [देश०] हिंदुस्तान के उत्तर में एक सखा पहाड़ी देश जो हिमालय के तट पर है।

विशेष—नेपाल नाम के सबध में कई प्रकार के अनुमान हैं। कुछ लोग कहते हैं कि तिब्बत तथा उसके आसपास की जनार्ण जातियाँ अपनी भाषा में उस प्रदेश को जहाँ गोरखे बसते हैं 'पाल' कहती हैं। सिकिम, भूटान आदि के लोग नेपाल के पूर्वी भाग को 'ने' कहते हैं। तिब्बती भाषा में पाल पशम या ऊन को भी कहते हैं। लेपचा, नेवार आदि जातियों की भाषा में 'ने' शब्द का अर्थ पहाड़ की गुफा लिया जाता है। तिब्बत और बरमा के बौद्ध 'ने' शब्द से पवित्र गुहा या देवता द्वारा रक्षित स्थान का भाव लेते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि नेवार जाति ही से नेपाल नाम पड़ा। पंडित लोग शुद्ध शब्द 'नयपाल' मानकर 'न्याय का पालन करनेवाला' अर्थ करते हैं। रामायण महाभारत आदि में इस देश का नाम नहीं मिलता। पुराणों में स्कंदपुराण के रेवाखंड, नागरखंड और सहायखंड में तथा गङ्ग पुराण में इस देश का थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता में भी नेपाल का नाम आया है। शक्तिसंगमतत्र, बृहन्नीलतत्र और वाराहोत्तर आदि कई तंत्रों में नेपाल का वर्णन मिलता है। शक्तिसंगमतत्र में जटेश्वर से लेकर योगेश्वर तक के देश को नेपाल कहा है और उसे बहुत सिद्धिदायक बताया है। जैन हरिवंश तथा हेमचंद्र की स्थविरावली में भी नेपाल का उल्लेख मिलता है। नेपाली बौद्धों के तंत्रों और पुराणों में नेपाल का माहात्म्य धर्मोक्तिक कथाओं के सहित पाया जाता है।

२. ताम्र । ताँबा (को०)।

नेपालक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा । ताम्र (को०)।

नेपालजा—संज्ञा स्त्री० [वि०] मन शिला । मैनसिल ।

नेपालजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नेपालजा' (को०)।

नेपालनिब—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपालनिम्ब] नेपाल की नीम । एक प्रकार का चिरायता ।

विशेष—वैद्यक में नेपाली नीम कुछ गरम, योगवाही, हलकी, कटुई तथा पित्त, कफ, सूजन, रुधिर रोग, प्यास और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—नेपाल । तृण निब । ज्वरातक । नीलित्त । मर्चतित्त । निद्रारि । सन्निपातहा ।

नेपालमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकद के समान एक कंद ।

नेपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मन शिला । मैनसिल ।

नेपाली^१—वि० [हि० नेपाल] १. नेपाल का । नेपाल में रहने या होनेवाला । २. नेपाल संबंधी ।

नेपाली^२—संज्ञा पुं० नेपाल का रहनेवाला आदमी ।

नेपाली^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन शिला । मैनसिल । २. नेवारी का पोधा । ३. जंगली खजूर का वृक्ष या उसका फल (को०)।

नेपुर^१—संज्ञा पुं० [पुं० नूपुर] दे० 'नूपुर' ।

नेफा^१—संज्ञा पुं० [फा० नेफाह] पायजामे या लहंगे के धेर में हजारबंद या नाड़ा पिरने का स्थान ।

नेफा^२—संज्ञा पुं० [देश०] पूर्वोत्तर भारत का सीमांत प्रदेश । मुख्यतः यह आसाम का उत्तरी पहाड़ी हिस्सा है और जिसका पश्चिमी भाग भूटान से सटा हुआ है।

विशेष—अंगरेजी में इस प्रदेश का नाम नाथ ईस्टर्न फ्रंटियर एजेंसी है जिसके प्राद्य प्रक्षरों से यह संक्षिप्त नाम बना है।

नेव^७—संज्ञा पुं० [फा० नायब] सहायक । कार्य में सहायता देनेवाला । मंत्री । दीवान । उ०—(क) कदू धिनतहि दोन्हु दुख तुमहि कोसिला देव । भरत वदितुह सेइहहि लखनु राम के नेव ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ऋषि नृपसीस ठगोरी सी डारी । कुलगुरु, सचिव, निपुण नेबनि धवरेब न समुक्ति सुधारी । सिरस सुपन सुकुमार कुंभर दोउ सूर सरोय सुरारी । पठए विनोद सहाय पयादहि केलि बान धनुधारी ।—तुलसी (शब्द०) (ग) भाए नवनेदन के नेव । गोकुल मानि जोग विस्तारयो भली तुम्हारी जेब ।—सूर (शब्द०) ।

नेबुआ^१—संज्ञा पुं० [हि० नीबू] दे० 'नीबू' ।

नेबुला^१—संज्ञा पुं० [म०] आकाश में धूँए या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज । नोहारिका । वि० दे० 'नोहारिका' ।

नेबुला^२—संज्ञा पुं० [हि० नीबू, नेबू + ला (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'नीबू' ।

नेबू^१—संज्ञा पुं० [हि० नीबू] दे० 'नीबू' ।

नेम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल । समय । २. अवधि । ३. खंड । टुकड़ा । ४. प्राकार । दोवार । ५. कैतव । छल । ६. अर्थ । भाषा । ७. गतं । गड़ढा । ८. अन्य हिस्सा । और हिस्सा । ९. सायकाल । १०. मूल । जड़ । ११. दोवाल की नीव (को०) । १२. अभिनय । नृत्य (को०) । १३. अन्न । भोजन । खाना (को०) ।

नेम^२—संज्ञा पुं० [सं० नियम] १. नियम । कायदा । बंधन । २. बंधो हुई बात । ऐसी बात जो टलती न हो, बराबर होती हो । ३. रीति । दस्तूर । ४. धर्म की दृष्टि से कुछ क्रियाओं का पालन । जैसे व्रत, उपवास आदि । ५. प्रतिज्ञा । दंड निश्चय ।

यौ०—नेमधरम = पूजा पाठ, व्रत, उपवास आदि ।

विशेष—दे० 'नियम' ।

नेमत—संज्ञा स्त्री० [म० ने'मत] १. ईश्वर की कृपा । ईश्वरीय देन । २. धन । संपत्ति । दोलत । ३. सुख । आनंद । ४. सुस्वादु भोजन । उत्तम भोजन (को०) ।

यौ०—नेमतखाना = (१) भोज्य पदार्थों के रखने का स्थान । भोज्य-वस्तु-भंडार । (२) खाद्य पदार्थ रखने की लकड़ी या लोहे की जालीदार आलमारी ।

नेमि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहिए का घेरा या चक्कर । चक्रपरिधि । प्रधि । नेमी । २. कूर्प के ऊपर चारों ओर बंधा हुआ ऊँचा स्थान या चबूतरा । कूर्प की जगत । ३. भूमिस्थित कूपपट्ट । कूर्प की जमवट । ४. प्रातः भाग । किनारे का हिस्सा । ५. कूर्प के किनारे लकड़ी का वह ढाँचा जिसपर रस्सी रखते और जिससे प्रायः घिरनो लगी रहती है । ६. धरित्री । पृथिवी (को०) ।

नेमि^१—सञ्ज्ञा पुं० १. नेमिनाथ तीर्थंकर । २. त्रिनिष वृक्ष । त्रिनास । त्रिनासुना । ३. एक दैत्य (भागवत) । ४. वज्र ।

नेमिचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परीक्षित के वंश के एक राजा जो असीम-कृष्ण के पुत्र थे । इन्होंने कौशावी में अपनी राजधानी बनाई थी (भागवत) ।

नेमी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नेमिन्] त्रिनिष वृक्ष ।

नेमी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नेमि' ।

नेमी^३—वि० [सं० नियम] १. नियम का पालन करनेवाला । २. धर्म की दृष्टि से पूजा पाठ, व्रत उपवास आदि नियमपूर्वक करनेवाला ।

यौ०—नेमी घरमी ।

नेय—वि० [सं०] १. ले जाने योग्य । २. निर्देश्य । शासन करने योग्य । २. पढ़ाने योग्य । शिक्षा देने योग्य । ३. व्यतीत करने योग्य । जैसे, समय [को०] ।

नेयार्थता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक काव्यदोष जहाँ प्रयोजन या रुढ़ि के बिना लक्षणा का प्रयोग किया जाता है वहाँ यह दोष होता है ।

नेरा^१—क्रि० वि० [सं० निकट] दे० 'नियर' ।

नेर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० गुण्यर] दे० 'नगर' । उ०—गवरि पूजि फिरि घर चली रोर परो सब नेर ।—रसरतन, पृ० १६३ ।

नेरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० नैऋत] नैऋत्य दिशा । पश्चिम दक्षिण का कोना ।

नेरना—क्रि० स० [हि० निराना] निकोलना । बिलगाना (रेशा आदि) ।

नेरवाती—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] नीले रंग की एक पहाड़ी भेड़ जो भोटान से लद्दाख तक पाई जाती है । इसके ऊन के कबल आदि बनते हैं ।

नेरा—क्रि० वि० [हि० नियर] [स्त्री० नेरी] निकट । पास । समीप । उ०—पुनि कहूँ खबरि विभीषन केरी । जाहि मृत्यु पाई अति नेरी ।—मानस, ५।५३ ।

नेराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निराना] दे० 'निराई' ।

नेराना^१—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० निकट, प्रा० निग्रह, हि० नियर] दे० 'नियराना' ।

नेराना^२—क्रि० स० [हि० निराना] दे० 'निगना' ।

नेरी—क्रि० वि० [देश०] जरा सा भी । थोड़ा भी । तनिक भी । उ०—रूप छकी तित ही बियकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी ।—घनानंद, पृ० ५ ।

नेरुवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नख, हि० नाली, नारी] कोलू के नीचे बनी हुई तेल बहने की नाली ।

नेरे—क्रि० वि० [हि० नियर] निकट । पास । समीप । उ०—अगम भयवर्ण, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम बल क्यो बसो जमनगर नेरे ।—तुलसी प्र०, पृ० ५६४ ।

नेव^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० नायब] दे० 'नेब' ।

नेव^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नीव' ।

नेवग^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] नेग ।

नेवगी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] शैगी ।

नेवछावर, नेवछावरि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० निछावर] दे० 'निछावर' ।

नेवज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नैवेद्य] देवता को अर्पित करने की वस्तु । खाने पीने की चीज जो देवता को चढ़ाई जाय । भोग । उ०—(क) गावत मगलघार महर घर । नेवज करि करि घरति श्याम डर ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत भोजि सब करे पकवाने । नेवज करि घरि साँझ बिहाने ।—सूर (शब्द०) । (ग) महुरि सबे नेवज ले सैतति । श्याम छुबै कहूँ ताको डरपति ।—सूर (शब्द०) ।

नेवजा—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] चिलगोजा ।

नेवजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] एक फूल का नाम ।

नेवता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] दे० 'नेवता', 'न्योता' । उ०—कहेहु नौक मोरेहु मनभावा । यह अनुचित नहि नेवत पठावा ।—मानस, १।६२ ।

नेवतना—क्रि० स० [सं० निमन्त्रण] निमन्त्रित करना । नेवता भेजना । उ०—(क) सूर गधर्व जे नेवति बुलाए । ते सब बधू सहित तहँ आए ।—सूर (शब्द०) । (ख) नेवते सादर सकल सूर जे पावत मख भाग ।—मानस, १।६० ।

नेवतहरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'न्योतहरी' ।

नेवता—सञ्ज्ञा पुं० [हि० न्योता] दे० 'न्योता' ।

नेवना^१—क्रि० प्र० [सं० नमन] नमन होना । झुकना ।

नेवर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नूपुर] पैर का एक गहना । नूपुर ।

नेवर^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. घोड़े के पैर का वह घाव जो दूसरे पैर की ठोकर या रगड़ से हो जाता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

नेवरा^१—वि० [सं० न + वर (= प्रच्छा)] बुरा । खराब ।

नेवरना^१—क्रि० प्र० [सं० निवारण] १. निवारण होना । दूर होना । उ०—सुनि जोगी के अमर जो करनी । नेवरी विद्या बिरह के मरनी ।—जायसी (शब्द०) । २. समाप्त होना । खतम होना । ३. निपटना ।

नेवरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लाल कपड़े की झारी की खोली ।

नेवल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नेवर] दे० 'नेवर' ।

नेवल—वि० [प्र०] नो संवधी । नौका संवधी ।

नेवला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नकुल, प्रा० नउल] चार पैरों से जमीन पर रेंगनेवाला हाथ सवा हाथ लंबा और ४-५ अंगुल चौड़ा मासाहारी पिंडज जंतु ।

विशेष—यह जंतु देखने में गिलहरी के आकार का पर उससे बड़ा और भूरे रंग का होता है । पूँछ इसकी बहुत लंबी और रोयो से फूनी हुई होती है । मुँह इसका चूड़े, गिलहरी आदि की तरह प्रागे की ओर मुकीचा होता है । दाँत इसके बहुत पने होते हैं । टीखों, पुराने घरों, नदों के किनारों आदि में बिल खोदकर प्रायः नर मादा साथ रहते हैं । वसंत ऋतु में मादा दो या तीन बच्चे देती है जो बहुत दिनों तक उसके पीछे

पीछे घूमा करते हैं। नेवला भारतवर्ष में ही पाया जाता है यद्यपि इसकी जाति के और दूसरे जंतु अफ्रीका, अमेरिका आदि के गरम स्थानों में मिलते हैं। नेवले प्रायः चूहों तथा और छोटे जंतुओं को खाकर रहते हैं। सर्प को मारने में ये बहुत प्रसिद्ध हैं। बड़े से बड़े सर्प को ये अपनी फुरती से खड खड कर डालते हैं। लोग इन्हें पालते भी हैं। पालने पर ये इतने पशु जाते हैं कि पीछे पीछे दौड़ते हैं।

नेवा^१—सङ्घ पुं० [सं० नियम ?] १. रीति। वस्तुतः। रवाज। २. कहावत। लोकोक्ति।

नेवा^२—वि० [सं० व्याय या सं० निम] नाई। समान।

नेवा^३—वि० [?] घुप। मौन।

नेवाज—वि० [फा० निवाज] १. दे० 'निवाज'। उ०—राम गरीब नेवाज। मप हों गरीब नेवाज गरीब नेवाजी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०। २. दे० 'नमाज'।

नेवाजना—क्रि० सं० [फा० निवाज] दे० 'निवाजना'। उ०—पालि बससालि दलि पालि कपिराज को, धिभीषन नेवाजि सेतु सागर तरन मो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७।

नेवाडा—सङ्घ पुं० [देश०] दे० 'निवाडा'।

नेवाड़ी—सङ्घ स्त्री० [सं० नेपाली या नेमाली] दे० 'नेवारी'।

नेवाना^१—क्रि० सं० [सं० नमन] नमन करना। झुकाना।

नेवार^१—सङ्घ पुं० [देश०] नेपाल में बसनेवाली वहाँ की एक भाषि जाति।

नेवार^२—सङ्घ पुं०, सङ्घ स्त्री० [देश०] दे० 'निवाड', 'निवार'।

नेवारना^१—क्रि० सं० [सं० निवारण] निवारण करना। दूर करना। हटाना।

नेवारी—सङ्घ स्त्री० [सं० नेपाली] चूही या चमेली की जाति का एक पौधा जिसमें छोटे छोटे सफेद फूल लगते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुद या चूही की सी होती हैं। यह बरसात में अधिक फूलता है और इसके फूलों में बड़ी अच्छी भीनी महक होती है। इसे वनमल्लिका भी कहते हैं।

नेवी—सङ्घ स्त्री० [प्र०] एक राष्ट्र या देश के समस्त लड़ाकू जहाज, जलपोत या नौसेना। जलसेना।

नेशन—सङ्घ पुं० [अ०] लोकसमुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक देश में रहने और सम भाषा या अनेक भाषा बोलने वाला जनसमूह। राष्ट्र।

नेष्टा—सङ्घ पुं० [सं० नेष्ट] १. सोम यज्ञ में प्रधान ऋत्विक्ओं में से एक ऋत्विक्। ये क्रम में १६ वें ऋत्विक् हैं। २. त्वष्टा देवता।

नेष्टु—सङ्घ पुं० [सं०] मिट्टी का डला [को०]।

नेस—सङ्घ पुं० [फा० नेश (=ठक) ?] जंगली जानवरों के लवे नुकीले दाँत जिन्हें वे काटते हैं।

नेसकुन—सङ्घ पुं० [देश०] बदरों का जोड़ा खाना (कलदर)।

नेसुक^१—वि० [हि० नेकु, नेक] तनक। थोड़ा सा।

नेसुक^२—क्रि० वि० थोड़ा। जरा। ठुक। तनक।

नेसुहा—सङ्घ पुं० [सं० नि + स्था, निष्ठा] जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुदा जिसपर गन्ना या चारा काटते हैं।

नेस्त—वि० [तु० मि० सं० नास्ति] जो न हो।

यौ०—नेस्तनावृत्त = नष्ट भ्रष्ट। जो जड़मूल से न रह गया हो।

नेस्ती—सङ्घ स्त्री० [फा०] १. न होना। अनस्तित्व। २. भालस्य। ३. नाथ। बर्बादी।

क्रि० प्र०—फैलाना।

नेह—सङ्घ पुं० [सं० स्नेह] १. स्नेह। प्रेम। प्रीति। प्यार। मुहब्बत।

उ०—तुम चाहो न चाहो हमें चित्तों हमें नेह को नातो निवाहना है (शब्द०)। (ख) समर्थ कविता धन धानेद की हिय आखिन नेह की पीर तकी।—घनानन्द, पृ० ३। २. चिकना। तेल या घी।

नेही^१—वि० [हि० नेह + ई (प्रत्यय)] स्नेह करनेवाला। प्रेमी।

उ०—नेही महा अजभाषा प्रवीन भी सुदरतानि के भेद कों जानें।—घनानन्द, पृ० ३।

नैःश्रेयस—वि० [सं०] १. सुखकारी। कल्याणकारी। २. मोक्षदाता [को०]।

नैःस्व—सङ्घ पुं० [सं०] दरिद्रता। निर्धनता। अकिञ्चनता [को०]।

नै^१—सङ्घ स्त्री० [सं० नय] दे० 'नय'।

नै^२—सङ्घ स्त्री० [सं० नदी, प्रा० एई] नदी। उ०—कितो न प्रीगुन जग करत नै बय चढ़ती बार।—बिहारी (शब्द०)।

नै^३—सङ्घ स्त्री० [फा०] १. बाँस की नली। २. हुक्के की निगाली। ३. बाँसुरी।

नैऋत^१—वि०, सङ्घ पुं० [सं० नैऋत्य] दे० 'नैऋत्य'।

नैक^१—वि० [सं०] जो एक ही न हो। अनेक। बहुत।

नैक^२—सङ्घ पुं० विष्णु [को०]।

नैक^३—वि०, क्रि० वि० [हि०] दे० 'नैक', 'नैकु'।

नैकचर—वि० [सं०] जो अकेले न चलते हों, झुंड में चलते हों।

बैसे, सूझर, भेड़िया, हिरन इत्यादि।

नैकटिक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैकटिकी] पार्श्ववर्ती। समीपवर्ती। निकट का।

नैकटिक^२—सङ्घ पुं० भिक्षु। यति। ग्राम से कोस भर की दूरी पर रहनेवाले तपस्वी, यति या भिक्षु [को०]।

नैकट्य—सङ्घ पुं० [सं०] निकटता। निकट होने का भाव।

नैकधा—क्रि० वि० [सं०] अनेक प्रकार से। विभिन्न प्रकार से [को०]।

नैकभावाश्रय—वि० [सं०] जो एक भावाश्रित न हो। परिवर्तनशील [को०]।

नैकभेद—वि० [सं०] अनेक प्रकार का [को०]।

नैकशृंग—सङ्घ पुं० [सं० नैकशृङ्ग] विष्णु का एक नाम। (विष्णु-सहस्रनाम)।

विशेष—भगवान् विष्णु के तीन पैर और चार सींग माने गए हैं।

नैकपेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] (निकष के वंशज) । राक्षस ।

नैकु—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नेक', 'नेकु' ।

नैकृतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैकृतिकी] १. दूसरे की हानि करके निष्ठुर जीविका करनेवाला । निष्ठुर । २. कटुभाषी । ३. निम्न विचार का । क्षुद्र । कमीना [को०] ।

नैगम—वि० [सं०] १. निगम सबधी । जिसमें ब्रह्म आदि का प्रतिपादन हो, जैसे उपनिषद् ।

नैगम^२—सञ्ज्ञा पुं० १. उपनिषद् भाग । २. नय । नीति । ३. वणिक् । व्यापारी । बनिया [को०] । ४. नागर । नागरिक [को०] । ५. साधन । उपाय [को०] । ६. 'नैगमकांड' [को०] ।

नैगमकांड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नैगमकाण्ड] निरुक्त के तीन अध्याय जिनमें यास्क ने वैदिक शब्दों की निरुक्ति की है ।

नैगमनय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह नय या तर्क जो द्रव्य और पर्याय दोनों को सामान्य-विशेष-युक्त मानता हो और कहता हो कि सामान्य के बिना विशेष, और विशेष के बिना सामान्य नहीं रह सकता (भैत) ।

नैगमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैगमिकी] १. वेद सबधी । २. वेदों से निर्गत या निष्पन्न [को०] ।

नैगमेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम । २. सुश्रुत के अनुसार नैगमेय नामक बालग्रह ।

नैगमेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में जो नौ बालग्रह कहे गए हैं उनमें नवा ।

विशेष—इस बालग्रह द्वारा पीड़ित होने से बच्चों के मुँह से फेन गिरता है, वे रोते हैं, बेचैन रहते हैं, उन्हें ज्वर होता है तथा उनकी दृष्टि ऊपर की ओर रहती है और देह से चरबी की सी गंध आती है ।

नैघटुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नैघटुक] वैदिक शब्दावली का सग्रह ग्रंथ जिसकी व्याख्या यास्क ने अपने निरुक्त में की है [को०] ।

नैचा—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा० नैचह] १. हुबके की दोहरी नली जिसमें एक के सिरे पर चिलम रखी जाती है और दूसरे का छोर मुँह में रहकर धुमाँ खींचते हैं ।

यौ०—नैचावद ।

२. एकदम दुबला पतला व्यक्ति (व्यगोक्ति) ।

नैचावद—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] नैचा बनानेवाला ।

नैचावदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फ्रा०] नैचा बनाने का काम ।

नैचिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गाय आदि चौपायों का माथा ।

नैचिकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घन्छी गाय ।

नैची—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नोचा] पुर, मोट वा चरसा खींचते समय रेलों के चलने के लिये बनी हुई ढालू राह । रपट । पैड़ी ।

नैचुल—वि० [सं०] निचुल सबधी । द्विजल वृक्ष सबधी ।

नैचुल—सञ्ज्ञा पुं० निचुल का फल या बीज ।

नैज—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैजी] अपना । निज का । निजी [को०] ।

नैटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दुद्धी नाम की घास या जड़ी । दुधिया घास ।

नैतल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अघोलोक । नीचे का लोक [को०] ।

यौ०—नैतलसभा = यमराज ।

नैतिक—वि० [सं०] नीति संबधी । नीतियुक्त ।

नैत्य^१—वि० [सं०] १. नित्य का । २. नित्य दिया जानेवाला ।

नैत्य^२—सञ्ज्ञा पुं० नित्य का कर्म ।

नैत्यक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैत्यकी] १. अनिवार्य । जिसका निवारण न हो । २. नित्य होनेवाला या नित्य किया जानेवाला [को०] ।

नैत्यक^२—सञ्ज्ञा पुं० नैवेद्य [को०] ।

नैत्यिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैत्यिकी] दे० 'नैत्यिक' [को०] ।

नैत्रिक—वि० [सं०] नेत्र सबधी । नेत्र का [को०] ।

नैदाघ^१—वि० [सं०] निदाघ सबधी । ग्रीष्म का ।

नैदाघ^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म [को०] ।

नैदाघिक—वि० [सं०] निदाघ सबधी । ग्रीष्म का ।

नैदाघीय—वि० [सं०] निदाघ सबधी ।

नैदानिक—वि० सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रोगों का निदान जाननेवाला । २. रोगों का निदान करनेवाला ।

नैदेशिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आदेशों को कार्यान्वित करनेवाला । सेवक । भृत्य । नोकर [को०] ।

नैधन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निधन । मरण । २. फलित ज्योतिष में लग्न से पाठवाँ स्थान । मृत्यु स्थान ।

नैधन^२—वि० नश्वर । मरणशील [को०] ।

नैधान—वि० [सं०] (सीमा) जो विभिन्न वस्तुओं के द्वारा निर्धारित हो [को०] ।

नैधानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक । वह सीमा जिसको चिह्न गढ़ा हुआ कोयला या तुष (भूसी) हो । (स्मृति) ।

नैधानी सीमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीमा या हदबंदी जो भूसी कोयले आदि से भरे घड़े गाड़कर बनाई जाय ।

विशेष—वृहस्पति ने इस प्रकार सीमा बनाने का विधान बताया है । पराशर ने कहा है कि ग्राम के वृद्ध लोगों का कर्तव्य है कि वे बच्चों को सीमा के चिह्नों से परिचित कराते रहें ।

नैधेय—वि० [सं०] निधि संबधी । निधि का । निधि से संबद्ध [को०] ।

नैन^①—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नयन] दे० 'नयन' ।

नैन^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन ।

नैनमुख—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नैन + मुख] एक प्रकार का चिकना सूती कपड़ा ।

नैनी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नवनीत] नैनू । मक्खन ।

नैनू—सञ्ज्ञा सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नैन (= घाँस)] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें घाँस की सी गोले उसरी हुई बुटियाँ बनी होती हैं । जमरे हुए बेसबूटे का सूती कपड़ा ।

नैन्^२—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन ।

नैपाल^१—वि० [सं०] १ नेपाल सबधी । २ नेपाल का । नेपाल मे होनेवाला ।

नैपाल^२—संज्ञा पुं० १ नेपाल निव । २. एक प्रकार की ईख ।

नैपाल^३—संज्ञा पुं० दे० 'नेपाल' ।

नैपालिक—संज्ञा पुं० [सं०] तावा ।

नैपाली^१—वि० [हिं० नेपाल] नेपाल देश का । २ नेपाल में रहने या होनेवाला । जैसे, नैपाली सिपाही, नैपाली टाँगन ।

नैपाली^२—संज्ञा पुं० नेपाल का रहनेवाला भादमी ।

नैपाली^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नवमल्लिका । नेवाली । २ मन-शिला । मेनसिख । ३ नील का पोधा । ४ शेफालिका । एक प्रकार की निगुंड़ी ।

नैपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैपुण्य' [को०] ।

नैपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ निपुणता । चतुराई । होशियारी । दक्षता । कमाव । २ वह वस्तु जिसके लिये निपुणता आवश्यक हो (को०) । ३ पूर्णता । सपूर्णता (को०) ।

नैमृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ विनय । नम्रता । शालीनता । २ गोपनीय । ३ निस्तब्धता । निशब्दता । ४ स्थैर्य । स्थिरता [को०] ।

नैमत्रण्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योनार । भोज । दावत [को०] ।

नैमय—संज्ञा पुं० [सं०] वणिक् । व्यवसायी । रोजगारी ।

नैमित्त^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैमित्ती] निमित्त सबधी । चिह्न भादि से सबधी ।

नैमित्त^२—संज्ञा पुं० ज्योतिर्विद । निमित्त शास्त्र का शाखा [को०] ।

नैमित्तिक—वि० [सं०] जो किसी निमित्त से किया जाय । जो निमित्त उपस्थित होने पर या किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिये हो । जैसे, नैमित्तिक कर्म, नैमित्तिक स्नान, नैमित्तिक दान ।

विशेष—यज्ञ आदि कर्म जो किसी निमित्त से किए जाते हैं वे नैमित्तिक कहलाते हैं । जैसे, पुत्रप्राप्ति के निमित्त पुत्रेष्टि यज्ञ । दे० 'कर्म' । ग्रहण भादि उपास्थित होने पर जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान कहलाता है । इसी प्रकार क्षोष या पापघाति के लिये जो दाव दिया जाता है वह नैमित्तिक दान कहलाता है ।

नैमित्तिकलय—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड पुराण के अनुसार एक प्रलय जिसमें सो वर्ष तक अनाद्युष्टि होती है, बारहो सूर्य उदित होकर तीनों लोकों का क्षोषण करते हैं, फिर बड़े भीषण मेघ सो बरस तक लगातार बरसकर सृष्टि का नाश करते हैं ।

नैमिश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैमिष' ।

नैमिष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नैमिषारण्य तीर्थ । उ०—तीरथ बर नैमिष विख्याता । अति पुनीत साधक सिधि दाता ।—मानस, १ । १४३ । २ जमुना के दक्षिण तट पर बसनेवाली एक जाति जिसका उल्लेख महाभारत और पुराणों में है ।

नैमिष^२—वि० [सं०] निमिष भर में समाप्त होनेवाला । क्षणजीवी । क्षणस्थायी [को०] ।

नैमिषारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वन जो आजकल हिंदुओं का एक तीर्थस्थान माना जाता है । यह आजकल नीमखार कहलाता है ।

विशेष—यह स्थान भवध के सीतापुर जिले में है । पुराणों में इसके सबध में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं । वराह पुराण में लिखा है कि इस स्थान पर गोरमुख नामक मुनि ने निमिष मात्र में असुरों की बड़ी भारी सेना भस्म कर दी थी इसी से इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा । देवी भागवत में लिखा है कि ऋषि लोग जब कलिकाल के भय से बहुत घबराए तब ब्रह्मा ने उन्हें एक मनोमय चक्र देकर कहा कि तुम लोग इस चक्र के पीछे पीछे चलो, जहाँ इसकी नेमि (धरा, चक्कर) विशीर्ण हो जाय उसे अत्यंत पवित्र स्थान समझना । वहाँ रहने से तुम्हें कलि का कोई भय नहीं रहेगा । कहते हैं, सीति मुनि ने इस स्थान पर ऋषियों को एकत्र करके महाभारत की कथा कही थी । विष्णुपुराण में लिखा है, इस क्षेत्र में गोमती में स्नान करने से सब पापों का क्षय हो जाता है ।

नैमिषि—संज्ञा पुं० [सं०] नैमिषारण्यवासी ।

नैमिषीय—वि० [सं०] निमिष सबधी ।

नैमिषेय—वि० [सं०] १. नैमिष सबधी । २ नैमिषारण्य का ।

नैमेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ विनिमय । वस्तुओं का बदला । २ वाणिज्य ।

नैयग्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] न्यग्रोध (बरगद) वृक्ष का फल [को०] ।

नैयत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नियतत्व । नियत होने का भाव । २. आत्मनिग्रह (को०) ।

नैयमिक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैयमिकी] नियमानुसारी । नियमानुकूल । विधिसमत [को०] ।

नैयमिक^२—संज्ञा पुं० [सं० नैयमिकम्] नियमितता । नियमानुसारिता [को०] ।

नैया^७—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव, नाय] नाव । किशती । उ०—नैया मेरी तनक सो बोझो पाथर भार ।—गिरिधर (शब्द०) ।

नैयायिक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र का जाननेवाला । न्यायवेत्ता ।

नैरजना—संज्ञा स्त्री० [सं० नैरञ्जना] गया के पास बहनेवाली फल्गु नदी का प्राचीन नाम ।

विशेष—फल्गु के पश्चिम की ओर बहनेवाली शाखा को जो मोहानी नदी में जाकर मिल जाती है अब भी लोलाञ्जन कहते हैं ।

नैरतर्य—संज्ञा पुं० [सं० नैरन्तर्य] निरंतरत्व । निरंतर का भाव । अविच्छेद ।

नैर^७—संज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० एयर, पु० हिं० नयर] शहर । देश । जनपद । उ०—मेरे कहे मेर कश, सिवाजी सों वैर, करि गैर करि नैर निज बाहक उजारे तै ।—भूषण (शब्द०) ।

नैरपेक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] निरपेक्षता । अपेक्षा । उदासीनता [को०] ।

नैरयिक—वि० [सं०] नरक में रहनेवाला ।

नैरर्थ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निरर्थकता ।

नैराश्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निराशा का भाव । नाउत्सहेदी । २. इच्छा का अभाव । आशा का अभाव (को०) ।

नैरास्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वाण छोड़ने का एक मन्त्र ।

नैरुक्त^१—वि० [सं०] निरुक्त सबधी ।

नैरुक्त^२—सञ्ज्ञा पुं० १. निरुक्त सबधी ग्रन्थ । २. निरुक्त का जानने या अध्ययन करनेवाला व्यक्ति ।

नैरुक्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निरुक्तवेत्ता । निरुक्त का विद्वान् ।

नैरुज्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगविहीनता । स्वस्थता । निरोगता (को०) ।

नैरुहिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार वस्ति का एक भेद ।

नैर्ऋत^१—वि० [सं०] निर्ऋति सबधी ।

नैर्ऋत^२—सञ्ज्ञा पुं० १. निर्ऋति का पुत्र । राक्षस । २. पश्चिम-दक्षिण-कोण का स्वामी ।

विशेष—ज्योतिष के मत से इस दिशा का स्वामी राहु है ।

३ मूल नक्षत्र ।

नैर्ऋती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण पश्चिम के मध्य की दिशा । दक्खिन और पश्चिम के बीच का कोन । २. दुर्गा का एक नाम (को०) ।

नैर्ऋतेय—स्त्री० पुं० [सं०] निर्ऋत का वंशज ।

नैर्ऋत्य—वि० [सं०] निर्ऋति देवता का (पशु आदि) ।

नैर्ऋण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निर्ऋण्यता । अच्छी सफाई का न होना । २. कला कोशल आदि का अभाव । ३. सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का न होना । त्रिगुणशून्यता । (नैर्ऋण्य होने से ब्रह्म की प्राप्ति कही गई है) ।

नैर्ऋण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निर्ऋण्य होने का भाव । कठोरता । दयाहीनता (को०) ।

नैर्देशिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवक । नौकर (को०) ।

नैर्मल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निर्मलता । २. विषयों से विराग ।

नैर्लेज, नैर्लेज्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निर्लेजता ।

नैर्वाहिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैर्वाहिकी] निर्वाह के योग्य । जो निर्वाह के लिये हो ।

नैल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीलापन । गहूरा नीला रंग (को०) ।

नैवासिक—वि० [सं०] निवास योग्य (को०) ।

नैवासी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निवास साधु । वृक्ष पर रहनेवाला देवता ।

नैविड्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निविडता । घनत्व ।

नैवेद्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवता के निवेदन के लिये भोज्य द्रव्य । वह भोजन की सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय । देव-बलि । भोग ।

विशेष—घी, चीनी, श्वेतान्न, दधि, फल इत्यादि नैवेद्य द्रव्य कहे गए हैं । नैवेद्य देवता के दक्षिण भाग में रखना चाहिए आगे या पीछे नहीं । कुछ ग्रन्थों का मत है कि पक्व नैवेद्य देवता के बाएँ और कच्चा दाहिने रखना चाहिए । देवता को भोग

लगा हुआ प्रसाद खाने का बड़ा फल लिखा है पर शिव को चढ़ा हुआ निर्माल्य खाने का निषेध है । चढ़ाए जाने के उपरांत नैवेद्य द्रव्य निर्माल्य कहलाता है ।

नैवेशिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. गृहस्थी के उपकरण । २. मिताक्षरा के अनुसार निवेशन के निमित्त प्रदत्त कन्या जो घामूणादि से युक्त हो । ३. ब्राह्मण को दिया जानेवाला उपहार ।

नैश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैशी] १. निशा संबंधी । रात्रि का । २. रात्रि में होनेवाला (को०) ।

नैशनल—वि० [अंग०] राष्ट्र सबधी । राष्ट्र का । राष्ट्रीय । सार्वजनिक । जैसे, नैशनल कांग्रेस ।

नैशनलिस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अंग०] वह जो राष्ट्र पक्ष का पक्षपाती हो । राष्ट्रवादी ।

नैशिक—वि० [सं०] निशा सबधी । रात का ।

नैश्चल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निश्चलता । स्थिरता । अचंचलता (को०) ।

नैश्चित्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नैश्चित्य] निश्चित होने का भाव । निश्चिता का अभाव । निश्चितता (को०) ।

नैश्चित्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्थिरता । २. (विवाह आदि) निश्चित या स्थिर सस्कार वा उत्सव आदि (को०) ।

नैषदिक—वि० [सं०] १. उपवेशनकारी । बैठनेवाला । २. निषद देश सबधी । निषद का ।

नैषध^१—वि० [सं०] निषध देश संबंधी । निषध देश का ।

नैषध^२—सञ्ज्ञा पुं० १. निषध देश का निवासी व्यक्ति या वस्तु । २. निषध देश का राजा । ३. नल जो निषध देश के राजा थे । ४. श्रीहर्षचरित एक संस्कृत काव्य जिसमें २२ सर्गों में राजा नल की कथा का वर्णन है । ५. विष्णु पुराण के अनुसार पुष्यवी का एक खंड जिसे जवू द्वीप के अधीश्वर अग्नीध्र ने अपने पुत्र हरिवर्ष को दिया था (को०) ।

नैषधीय—वि० नल सबधी । जैसे नैषधीय चरित (को०) ।

नैषध्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राजा नल का पुत्र या वंशज ।

नैषाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निषाद का पुत्र (को०) ।

नैषादि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैषाद' (को०) ।

नैषेचनिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राज्याभिषेक के उत्सव पर दी हुई वस्तुओं का उपहार । (कोटि०) ।

नैष्कर्म्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अकर्मण्यता । निष्कर्म्यता । २. आलस्य । ३. कर्म तथा कर्मफल का परित्याग । ४. आरमभान ।

यौ०—नैष्कर्म्यसिद्धि = समस्त कर्मों से निवृत्ति ।

नैष्किचन्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नैष्किचन्य] निष्किचनता । दरिद्रता ।

नैष्किक्^१—वि० [सं०] १. निष्क सबधी । २. निष्क द्वारा मोल लिया हुआ ।

नैष्किक्^२—सञ्ज्ञा पुं० टकशाला का अध्यक्ष । टकशाला पर का अधिकार ।

नैकृतिक—वि० [सं०] परवृत्ति छेदन में उत्तर । दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन निकालनेवाला । स्वार्थी ।

नैष्कर्मण—सखा पु० [सं०] नवजात बालक को प्रथम बार घर से बाहर ले जाने का संस्कार [को०] ।

नैष्ठिक^१—वि० [सं०] [वि० श्री० नैष्ठिकी] १ निष्ठावान् । निष्ठा-युक्त । २ मरण काल में कर्तव्य (कर्म) ।

नैष्ठिक^१—सखा पु० ब्रह्मचारियों का एक भेद । वह ब्रह्मचारी जो उपनयन काल से लेकर मरण काल तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के आश्रम पर ही रहे ।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी को यावज्जीवन गुरु के पास रहना चाहिए । गुरु यदि न हों तो उनके पुत्र के पास, और आचार्यपुत्र भी न हो तो आचार्यपत्नी की सेवा में, आचार्यपत्नी के अभाव में अग्नि-होत्र की अग्नि के पास उसे जीवन बिताना चाहिए । इस प्रकार का जितेंद्रिय ब्रह्मचारी भ्रत में मुक्ति पाता है ।

नैष्ठुर्य—सखा पु० [सं०] निठुराई । क्रूरता ।

नैष्ठ्य—सखा पु० [सं०] छड़ निष्ठा [को०] ।

नैसर्गिक—वि० [सं०] स्वाभाविक । प्राकृतिक । स्वभावसिद्ध । कुदरती ।

नैसर्गिकी—वि० श्री० [सं०] प्राकृतिक ।

नैसर्गिकी दशा—सखा श्री० [सं०] ज्योतिष में एक दशा ।

नैसा^७—वि० [सं० अनिष्ट] अनैसा । बुरा । खराब । उ०—(क) सूरदास प्रभु के गुण ऐसे । भक्तन भल, दुष्टन को नैसे ।—सूर (शब्द०) । (ख) कहूँ राधा हरि कैसे हैं । तेरे मन भाये की नाहीं, की सुदर की नैसे हैं ।—सूर (शब्द०) ।

नैसुक^७—वि० [हि०] दे० 'नैसुक' ।

नैस्त्रिशिक—सखा पु० [सं०] निस्त्रिशवाला । खड्गधर । तलवार धारण करनेवाला [को०] ।

नैहर—सखा पु० [सं० ज्ञाति, प्रा० ग्राति, ग्राह (= पिता) + हि० घर, घण० ग्राहहर] स्त्री के पिता का घर । माँ बाप का घर । मायका । पीहर । उ०—नैहर जनम भरव बर जाई । जिअछ न करबि सवति सेवकाई ।—मानस, २।२१ ।

नैहार—वि० [सं०] तुषाराच्छन्न । कुहेलिकामय [को०] ।

नो—क्रि० वि० [सं०] नहीं ।

नोखना—क्रि० स० [सं० नद्ध] दे० 'नोवना' ।

नोखा—सखा पु० [हि० नोवना] [श्री० मत्पा० नोई] द्वय द्वहते समय गाय के पैर बाँधने की रस्ती । बंधी ।

नोइनी—सखा श्री० [हि० नोवना] दे० 'नोई' ।

नोई—सखा श्री० [हि० नोवना] द्वय द्वहते समय गाय के पैर बाँधने की रस्ती । बंधी ।

नोक—सखा श्री० [फा०] [वि० नुकीला] १ उस ओर का सिरा जिस ओर कोई वस्तु घरावर पतली पड़ती गई हो । सूक्ष्म अग्रभाग । शकु के आकार की वस्तु का महीन या पतला छोर । मनो । जैसे, सूई की नोक, काँटे की नोक, भाले की नोक, छूँटे की नोक, लूटे की नोक ।

यो०—नोक भोंक ।

मुहा०—नोक को लेना=बढ़ बढ़कर बातें करना । गर्व दिखाना । नोक दुम भागना=जी छोड़कर भागना । वेतहाथा भागना । नोक रह जाना=भ्रान की बात रह जाना । टेक या प्रतिज्ञा का निर्वह हो जाना । बात रह जाना । मर्यादा रह जाना । प्रतिष्ठा बनी रह जाना । नोक बनाना=बनाव सिंगार करना । रूप सँवारना ।

२. किसी वस्तु के निकले हुए भाग का पतला सिरा । किसी ओर को बढ़ा हुआ पतला अग्रभाग । जैसे,—जमीन की एक नोक पानी के भीतर तक गई है । ३ कोण बनानेवाली दो रेखाओं का संगम स्थान या बिंदु । निकला हुआ कोना । जैसे, दीवार की नोक ।

नोक भोंक—सखा श्री० [फा० नोक + हि० भोंक] १. बनाव सिंगार । ठाटबाट । सजावट । जैसे,—कल तो वे बड़ी नोक भोंक से पिएटर देखने निकले थे । २. तपाक । तेज । भ्रातंक । दपं । जैसे,—कल तो वे बड़ी नोक भोंक से बातें करते थे । उ०—शरद घटान की छटान सी सुगगभार धारयो है जटान काम कीन्हों नोक भोंक के ।—रघुराज (शब्द०) । ३. चुभनेवाली बात । व्यंग्य । ताना । भावाजा । जैसे,—उनकी नोंक भोंक अब नहीं सुनी जाती । ४. छेड़छाड़ । परस्पर की चोड़ । जैसे,—भाजकस उन दोनों में खूब नोक भोंक चल रही है ।

क्रि० प्र०—चलना ।

नोकना—क्रि० स० [?] ललचना । उ०—चित्ते रही राधा हरि को मुख । उत ही श्याम एकटक प्यारी छबि भ्रंग भ्रंग प्रवलोकत । रीझि रहे उत हरि इत राधा परस परस दोउ नोकत । सखिन कह्यो वृषभानु सुता सों देखे कुँवर कन्हवाई । सूर श्याम एई हैं ब्रज में जिनकी होति बढाई ।—सूर (शब्द०) ।

नोकदार—वि० [फा०] १ जिसमें नोक हो । २ चुभनेवाला । पैना । ३ चित्त में चुभनेवाला । दिल में असर करनेवाला । ४ शानदार । तटक भड़क का । ठसक का ।

नोकपलक—सखा श्री० [हि० नोक + पलक] माँख, नाक आदि की गढ़न । चेहरे की बनावट ।

मुहा०—नोकपलक से ठीक=चारों ओर से सुझील । नख से सिल तक सुदर ।

नोकपान—सखा पु० [फा० नोक + हि० पान] जूते की नोक ओर एड़ी पर लगा हुआ कीमुखती चमड़ा जो पान के आकार का होता है । जूते की - काटछाँट, सुदरता और मजबूती । (जूतेवाले) । जैसे,—जरा इस जूते का नोकपान देखिए ।

नोकाभोंकी—सखा श्री० [हि० नोकभोंक] १ छेड़छाड़ । परस्पर व्यंग्य आदि द्वारा आक्रमण । ताना । भावाजा । २. परस्पर की चोट । विवाद । झगड़ा ।

क्रि० प्र०—चलना ।

नोकीला—वि० [हि० नोक + इला (प्रत्य०)] दे० 'नुकीला' ।

नोखा—वि० [हि० मनोखा] [श्री० मनोखी] अदभुत । विचित्र ।

विलक्षण । प्रगुठा । प्रपुर्व । जैसे,—नोखे की नाउन बाँस की नहरन (स्त्रियाँ) ।

नोच—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नोचना] १. नोचने की क्रिया या भाव । २. छीनने या लेने की क्रिया । कई धोर से कई आदमियों का झपाटे के साथ छीनना या लेना । लूट ।

यौ०—नोचखसोट । नोचाखसोटी । नोचानाची । नोचानोची ।

३.—कई धोर से कई आदमियों का मींगना । चारों धोर की मींग । बहुत से लोगों का तकाजा । जैसे,—चारों धोर से नोच है किसका किसका रुपया दें ।

क्रि० प्र०—मचना ।—होना ।

नोचखसोट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नोचना+खसोटवा] झपाटे के साथ लेना या छीनना । जबरदस्ती खींच खाँच करके लेना । छीनाझपटी । लूट ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।—होना ।

नोचना—क्रि० सं० [सं० लुञ्चन] १. किसी जमी या खगी हुई वस्तु को झटके से खींचकर भग्न करना । उखाड़ना । जैसे, बास नोचना, डाढ़ी नोचना, पत्ती नोचना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

२. किसी वस्तु में दाँत, नख या पंजा घँसाकर उसका कुछ अंश खींच लेना । नख आदि से विदीर्ण करना । जैसे,—चीता शिकारी का मास नोचता हुआ निकल गया ।

संयो० क्रि०—लेना ।

यौ०—नोचना खसोटना=खींच खाँचकर लेना । झपाटे से छीनना । लूटना ।

३. शरीर पर इस प्रकार हाथ या पंजा लगाना कि नाखून घँस जायें । खरोंचना । खरोच डालना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

४. बार बार तग करके लेना । दुखी धोर हैरान करके लेना । पीछे पड़कर किसी की इच्छा के विरुद्ध उससे लेना । जैसे,—तीर्थों में पड़े धोर कचहरियों में झमले नोच डालते हैं ।

संयो० क्रि०—डालना ।

५. बार बार तग करके मींगना । ऐसा तकाजा करना कि नाक में दम हो जाय । जैसे,—उसे चारों धोर से महाजन नोच रहे हैं किसका किसका देगा ।

नोचानाची—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नोचना] दे० 'नोचखसोट' ।

नोचू—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नोचना] १. नोचनेवाला । २. छीना झपटी करके लेनेवाला । ३. तग करके लेनेवाला । धेरकर या पीछे पड़कर जहाँ तक मिल सके लेनेवाला । ४. बार बार मींगकर तग करनेवाला । तकाजो के मारे नाकें दम करनेवाला ।

नोट—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] १. टाँकने या लिखने का काम । ध्यान रहने के लिये लिख लेने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. लिखा हुआ परचा । पत्र । चिट्ठी ।

१-१०

यौ०—नोट पेपर ।

३. टिप्पणी । भाष्य या ग्रंथ प्रकट करनेवाला लेख । ४. सरकार की धोर से जारी किया हुआ वह कागज जिसपर कुछ रुपये की सख्या रहती है धोर यह लिखा रहता है कि सरकार से उतना रुपया मिल जायगा । सरकारी हुडो ।

विशेष—हिंदुस्तान में नोट दो प्रकार का होता है एक करेंसी, दूसरा प्रामिसरी । करेंसी नोट बराबर सिक्कों के स्थान पर चलता है और उसका रुपया जब चाहें तब मिल सकता है । प्रामिसरी नोट पर केवल सुद मिलता रहता है । सरकार मींगने पर उसका रुपया देने के लिये बाध्य नहीं है । प्रामिसरी नोट का भाव घटता बढ़ता है ।

नोटपेपर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] चिट्ठी लिखने का कागज ।

नोटबुक—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] वह कापी या बही जिसपर कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय ।

नोटिस—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १. विज्ञप्ति । सूचना । २. विज्ञापन । इशतिहार ।

विशेष—इस शब्द को कुछ लोग पुल्लिग भी बोलते हैं ।

नोदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरणा । चलाने या हाँकने का काम । २. वेलों को हाँकने की छड़ी या कोड़ा । प्रतोद । पैना । श्रीगी । उ०—मीनरथ सारथी के गोदन नवीने हैं ।—केशव (शब्द०) । ३. खडन ।

नोदना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेरणा [को०] ।

नोदयिता—वि० [सं० नोदयितृ] प्रेरक । प्रेरणा देनेवाला । प्रागे बढ़ानेवाला [को०] ।

नोधा—वि० [सं०] नव प्रकार या ढंग का । लवधा [को०] ।

नोनी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० लवण, हि० लोन] नमक ।

नोनचा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नोन + फा० प्रचार] १. नमकीन प्रचार । २. नमक में डाली हुई आम की फाँकों की खटाई ।

नोनचा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० नोन + धार] वह भुमि जहाँ लोनी बहुत हो । लोनी जमीन ।

नोनछी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० नोन + धार] लोनी मिट्टी ।

नोनहरा—सञ्ज्ञा पुं० [?] पैसा । (गधवों की बोली) ।

नोनहरामी^३—वि० [हि० नोन+हरामी] दे० 'नमकहरामी' ।

नोना^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० लवण, हि० नोन] [स्त्री० नोनी] २. नमक का प्रश्न जो पुरानी सीवारो तथा सीढ़ की जमीन में लगा मिलता है । २. लोनी मिट्टी । ३. शरीफा । सीताफल । मात । ४. एक कीड़ा जो नाव या जहाज के पेदे में लगकर उसे कमजोर कर देता है । उधई कीड़ा ।

नोना^२—वि० [वि० स्त्री० नोनी] १. नमक मिला । खारा । देधे, नोना पानी, नोनी मिट्टी । २. लावण्यमय । सखोता । सुंदर । ३. अच्छा । बढ़िया ।

नोना^३—क्रि० सं० [हि० नोप्रना, नोवना] दे० 'नोवना' ।

नोना चमारी—सञ्ज्ञा स्त्री० एक प्रसिद्ध जादूगरनी जिसकी दोहाई

प्रबलक मन्त्रों में दी जाती है। माना जाता है कि यह कामरूप देश की थी। नोना चमाइन।

नोनिया^१—संज्ञा पुं० [हिं० नोना] लोनी मिट्टी से नमक निकालनेवाली एक जाति।

नोनिया^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोन] एक भाषी। लोनिया। प्रमलोनी।

नोनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० लवण] १. लोनी मिट्टी। २. लोनिया। प्रमलोनी का पोषा।

नोनी^२—वि० स्त्री० [हिं० नोना] १. सुंदर। रूपवती। २. अच्छी। बढ़िया।

नोनो^१—वि० [हिं० लोन, लोना] [वि० स्त्री० नोनी] १. सलोना। सुंदर। २. अच्छा। भला। बढ़िया।

नोर^१—वि० [सं० नवल हिं० नोल] मधीन। नया। उ०—सित सरोज फूले उठे इत इदीवर नोर। शशि मडल वहि मोर अनु विषमडल यहि मोर।—गुमान (शब्द०)।

नोर^२—संज्ञा पुं० [हिं० लोर] प्रभु। सासु। उ०—(क) नहि वहि करए नयन डर नोर। काँच कमल भमरा फिक भोर।—विद्यापति, पृ० २०४। (ख) नहि नहि करय नयन डर नोर। सुति रहसि धनि सेजक मोर।—विद्यापति, पृ० २०४।

नोल^१—वि० [सं० नवल] दे० 'नवल'।

नोल^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिड़िया की बाँच।

नोवना^१—क्रि० सं० [सं० नव, हिं० नवना, नवना] बुढ़ते समय रस्ती से गाय का पैर बाँधना। उ०—बछरा छोरि खरिक को सोनो घ्राप कान्ह तन सुध बिसराई। नोवत धुषम निकसि गैया गई हँसत सखा कहा बुढ़त कन्हारै।—सुर (शब्द०)।

नोहरा^१—वि० [सं० नोपसभ्य, प्रा० नोल्लह, या मनोहर] १. प्रसन्न। दुर्लभ। जल्दी न मिलनेवाला। २. मनोहा। प्रदुभत। उ०—प्रति सुकुमार सरीर मनोहर नोहर नैन बिसाला।—रघुराज (शब्द०)।

नौघरई, नौघराई, नौघरो^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाम + घरना] दे० 'नामघराई'।

नौ^१—वि० [सं० नव] जो गिचरी में घाठ धोर एक हो। एक कम दस।

नौ^२—संज्ञा पुं० एक कम दस की सख्या। नौ की सख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—९।

मुहा०—नौ बो ग्यारह होना = देखते देखते भाग जाना। चलता होना। चल देना। भाग जाना। नौ तेरह बाइस बताना = होला हवाली करना। ठाल मटूल करना। इधर उधर की बातें करके ठाल देना। जैसे,—जब मैं खया माँगने जाता हूँ तब वे नौ तेरह बाइस बताने हैं।

नौ^३—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] १. पोत। जहाज। नौका। २. एक राशि या नक्षत्र का नाम (क्रो०)। ३. काल। समय (क्रो०)।

नौ^४—वि० [सं० नव, तुल० क्रा० नौ] नया। नवीन। हाल का। ताजा।

नौकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नौ + कौड़ी] एक प्रकार का लूपा जो तीन प्रादमी तीन तीन कौड़ियाँ लेकर खेलते हैं।

नौकर—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० नौकरानी] १. सेवा करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त मनुष्य। टहल या काम घषा करने के लिये तनखाह पर रखा हुआ प्रादमी। नृत्य। चाकर। टहलुवा। खिदमतगार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

यौ०—नौकर चाकर।

२. कोई काम करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त किया हुआ मनुष्य। वेतनिक कर्मचारी। जैसे,—तहसीलदार एक सरकारी नौकर है।

मुहा०—(किसी को) नौकर रखना = कार्य पर वेतन देकर नियुक्त करना। काम पर लगाना।

नौकरशाही—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + शाही] वह सरकार या शासन प्रणाली जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र उच्च राज-कर्मचारियों या बड़े बड़े सरकारी प्रफसरों के हाथों में रहे। वि० दे० 'ब्यूरोक्रेसी'।

नौकराना—संज्ञा पुं० [फा० नौकर + पाना (प्रत्य०)] १. वेतन के प्रतिरिक्त नौकर को दिया जानेवाला धन। नौकर का हक। २. वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। दस्तूरी।

नौकरानी—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + पानी (प्रत्य०)] दासी। घर का काम घषा करनेवाली स्त्री।

नौकरी—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + ई (प्रत्य०)] १. नौकर का काम। सेवा। टहल। खिदमत।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—नौकरी देना या बजाना = नौकरी के काम में लगना। सेवा में तत्पर होना। नौकरी से लगना = नौकर होना। काम पाना। नौकरी पाना।

२. कोई काम जिसके लिये तनखाह मिलती हो। जैसे, सरकारी नौकरी।

नौकरीपेशा—संज्ञा पुं० [फा० नौकरीपेशाह] वह जिसका काम नौकरी करना हो। वह जिसकी जीविका नौकरी से चलती हो।

नौकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जहाज की पतवार।

नौकर्णधार—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का कर्णधार। जहाज चलानेवाला मल्लाह। पोतचालक (क्रो०)।

नौकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कातिकेय की मनुषरी एक मातृका।

नौकर्म—संज्ञा पुं० [सं० नौकर्म] मल्लाह का पेशा या काम।

नौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। जहाज।

नौकादंड—संज्ञा पुं० [सं० नौकादण्ड] पतवार। शीटा (क्रो०)।

नौकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] नावों का पुल।

नौगरे नौगरही, नौगही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नव + ग्रह या क्रा गिरह] दे० 'नौग्रही'।

नौगिरही^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नौग्रही] दे० 'नौग्रही'।

नौग्रही—संज्ञा स्त्री० [सं० नव + ग्रह] हाथ में पहनने का एक गहना जिसमें नौ कंगूरेदार दाने पाठ में गुंथे रहते हैं।

नौबर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह ।

नौबर^२—वि० जहाज पर जानेवाला ।

नौचा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नौचह] [खी० नौची] नई युवावस्था का व्यक्ति । नवयुवक [को०] ।

नौची—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० नौशी (= नववधू), या फा० नौचह, का-स्त्री०] १. बेश्या की पाली हुई लड़की जिसे वह अपना व्यवसाय सिखाती हो । २. नवयुवती ।

नौछावर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० निछावर] दे० 'निछावर' ।

नौज—अभ्य० [सं० नवज, प्रा० नवज्ज; या अ० नऊज] १. ऐसा न हो । ईश्वर न करे । (अनिच्छासूचक) । उ०—नगर फोट पर बाहर सुना । नौज होय घर पुरुष बिहूना ।—जायसी (शब्द०) । २. न हो । न सही । (बेपरवाही) (स्त्रि०) ।

नौजवान—वि० [फा०] नवयुवक । नया पट्टा । उठती जवानो का ।

नौजवाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] उठती युवावस्था । नई जवानो ।

नौजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नौजह] १. बाखाम । २. चिलगोजा । उ०—नौजा नरियर नेतरबाजा । नीम निसोत निर्विषी पाखा ।—सुदन (शब्द०) ।

नौजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] लीची ।

नौजीबक, नौजीबिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह । खलासी ।

नौतन^१—वि० [सं० नूतन] दे० 'नूतन' ।

नौतम^१—वि० [सं० नवतम] १. अत्यंत नवीन । बिल्कुल नया । २. ताजा ।

नौतम^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नम्रता] नम्रता । विनय ।

नौता^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० विमन्त्रण] दे० 'न्योता' ।

नौता^२—वि० [सं० नव या नूतन] [वि० स्त्री० नौती] नया । हाल का । ताजा । उ०—करहि जो किंगरी लेह बैरागी । नौती होइ विरह के भागी ।—जायसी (शब्द०) ।

नौतार्य—वि० [सं०] जहाज या नौका से पार होने योग्य [को०] ।

नौतेरही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नौ + तेरह] १. कंकड़ ईंट । छोटी ईंट । नौ जों चोड़ी और तेरह जों लंबी ईंट जो पुरानी चाल के मकानों में लगती थी । २. एक प्रकार का छुआ जो पासों से खेला जाता है ।

नौतोड़^१—वि० [सं० नव, हिं० नौ + तोड़ना] नया तोड़ा हुआ । जो पहले पहल जोता गया हो । जैसे, नौतोड़ खेत या जमीन ।

नौतोड़^२—सञ्ज्ञा स्त्री० वह भूमि जो पहली बार जोती गई हो ।

नौदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नौदण्ड] नाव खेने का डंडा ।

नौदसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० नौ + दस] एक रीति जिसके अनुसार किसान अपने जमींदार से रुपया उधार लेते हैं और साल भर में १ के १० देते हैं ।

नौध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नव (= नया) + पोधा] नया पोधा । मँछुवा ।

नौधा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नव, हिं० + पोधा] १. नौल की वह फसल जो वर्षारंभ ही में बोई गई हो । २. नए फलदार पोधों का

बगीचा । नया लगा हुआ वगीचा । † ३. नया पट्टा । उभरता हुआ जवान ।

नौधा^२—वि० [सं० नवधा, नौधा] दे० 'नवधा' ।

नौनगा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० नौ + नग] बाहु पर पहनने का एक गहना जिसमें नौ नग जड़े होते हैं । इसमें नौ दाने होते हैं और प्रत्येक दाने में भिन्न भिन्न रंग के नग जड़े जाते हैं । इसे 'नौरतन' भी कहते हैं ।

नौना—क्रि० प्र० [सं० नमन] १. नचना । झुकना । २. झुककर टेढ़ा होना ।

नौनिहाल—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] नवयुवक । नौजवान [को०] ।

नौनेता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नौनेतृ] जहाज की पतवार पकड़नेवाला । कर्णधार । मल्लाह ।

नौबंदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नौबन्धन] हिमालय के सर्वोच्च श्रृंग का नाम । कहते हैं कि महाप्लावन के समय मनु ने इसी से अपना जहाज बाँधा था (महाभारत) ।

नौबड़—वि० [सं० नव + हिं० बढ़ना] हाल में बढ़ा हुआ । उच्च । जिसे क्षुद्र या हीन दशा से अच्छी दशा में प्राप पोड़े ही दिन हुए हों । उ०—लखी लखन कौतुक धरि घीरा । काह करत बड़ि नौबड़ बीरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

नौबड़ियाँ, नौबड़वा—वि० [हिं०] दे० 'नौबड़' ।

नौबत—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. बारी । पारी । जैसे, नौबत का बुखार । २. गति । दशा । हासत । जैसे,—घर खलो, देखो तुम्हारी क्या नौबत होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—नौबत को पहुँचना = दशा को प्राप्त होना । हालत में होना ।

३. स्थिति में कोई परिवर्तन करनेवाली बातों का घटना । उपस्थित दशा । संयोग । जैसे,—ऐसा काम न करो जिससे भागने की नौबत आवे ।

क्रि० प्र०—पाना ।—पहुँचना ।

४. वैभव, उत्सव या मंगलसूचक वाद्य जो पहर पहर घर पर देवमंदिरों, राजप्रसादों या बड़े धार्मिकों के द्वार पर बजता है । समय समय पर बजनेवाला बाजा ।

विशेष—नौबत में प्रायः गहनाई और नगाड़े बजाते हैं ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।

यौ०—नौबतखाना ।

मुहा०—नौबत रुड़ना = नौबत बजना । नौबत बजना = (१) भानद उत्सव होना । (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा होना । नौबत बजाना = (१) भानद उत्सव करना । खुशी मनाना । (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा करना । दबदबा दिखाना । मातृक प्रकट करना । नौबत बजाकर = डंके की चोट । खुले धाम । नौबत की टकोर = (१) डंके की चोट । (२) डंके या नगाड़े की धावाज ।

नौबतखाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० नौबतखानह] फाटक के ऊपर बना हुआ वह स्थान जहाँ नौबत बजाई जाती है । नौकारखाना ।

यिरोप । यह जोर वाक्य कर्म है। मैं जोर धारा में दिना
गदा है। जोर मनुष्य के शरीर के पदों पर है। यह जोर
होता है। गीत, पुर, ह्री, वाद धादि का प्रत्यय में
खीचकर यह अकार काया जाता है। येव के प्रत्यय
में वाद के लोचने को प्रत्यय पर चढ़ाने से जो एक प्रकार
का वादी या प्रत्यय धारा है। धादक कर्म वा लोचक

उसी से निकाला जाता है। पहले लोग ईंट के पजावों से भी, जिनमें मिट्टी के साथ कुछ जंतुओं के अंग भी मिलकर जलते थे, यह क्षार निकालते थे। नौसाधन औषध तथा कसाकोशल के व्यवहार में आता है।

वैद्यक में नौसाधन दो प्रकार का कहा गया है। एक कृत्रिम जो और क्षारों से बनाया जाता है, दूसरा भ्रूजिम जो जंतुओं के मूत्र पुरीष आदि के क्षार से निकाला जाता है। आयुर्वेद के अनुसार नौसाधन शोथनाशक, शीतल तथा यकृत प्लीहा, ज्वर, मूत्रद, सिरदद, खाँसी इत्यादि में उपकारी है।

पर्याय—नरसार। साधन। वज्रसार। विदारण। प्रमृतसार वृषिका लवण। क्षारश्रेष्ठ।

नौसाधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जहाजो वेडा [को०]।

नौसार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लवणशाला, हिं० नोन + सार। वह स्थान जहाँ नोनिया लोग लोनी मिट्टी से नमक बनाते हैं।

नौसिख—वि० [सं० नवशिक्षित] दे० 'नौसिखिया'।

नौसिखिया—वि० [सं० नवशिक्षित, प्रा० नवसिखिष्य] जिसने नया नया सीखा हो। जिसने कोई काम हाल में सीखा हो। जो सीखकर पक्का न हुआ हो। जो दक्ष या कुशल न हुआ हो।

नौसिखिया—वि० [सं० नवशिक्षित] दे० 'नौसिखिया'।

नौसेना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना या फौज जो लड़ाई के जहाजों पर बढ़कर युद्ध करती है। लड़ाई जहाजों पर से युद्ध करनेवाली सेना या फौज। जल सेना।

नौसेनापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। जलसेनाध्यक्ष।

नौहड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नव (=नया) + भाण्ड, हिं० हाँडी] मिट्टी की नई हाँडी। कोरी हुईिया।

नौहड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० नव + भाण्ड] पितृपक्ष। कनागत (जिसमें मिट्टी के पुराने बरतन फेंक दिए जाते हैं और नए रखे जाते हैं)।

न्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यङ्क] रथ का एक अंग।

न्यकु^१—वि० [सं० न्यङ्कु] नितात गमनशील। बहुत दौड़नेवाला।

न्यकु^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मृगभेद। एक प्रकार का हिरन। बारहसिंगा। २ एक मुनि। ऋष्यशृंग (को०)। ३ वह छात्र जो गुरु के साथ रहता हो (को०)।

न्यकुभूरुह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यङ्कुभूरुह] श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा।

न्यकुसारिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० न्यङ्कुसारिणी] एक वैदिक छंद जिसके पहले और दूसरे चरण में १२, १२ अक्षर और तीसरे और चौथे चरण में ८, ८ अक्षर होते हैं।

न्यग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यङ्ग] १ लक्षण। चिह्न। २ प्रकार। भेद (को०)।

न्यचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यञ्चन] १ मोड़। घुमाव। २ छिपने की प्रवृत्ति। छिद्र (को०)।

न्यचनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० न्यञ्चनी] गोदी। उत्सर्ग (को०)।

न्यंचित—वि० [सं० न्यञ्चित] १ भ्रष्ट क्षित। नीचे फेंका या डाला हुआ। २. झुकाया हुआ। नवाया हुआ (को०)।

न्यजलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० न्यञ्जलिका] नीचे की ओर की हुई अञ्जली या हथेली।

न्यंत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यन्त] १ सन्निकटता। सामीप्य। २. अंतिम या पश्चिमी भाग (को०)।

न्यक्त—क्रि० वि० [सं०] अवज्ञा, अपमान, अपकर्ष, अवनति, लघुता मानहानि आदि अर्थों में कृ' अथवा 'भू' धातु के साथ प्रयुक्त क्रियाविशेषण। कृ धातु के प्रतिरिक्त अन्य शब्दों के साथ इसका रूप न्यग् होता है।

न्यक्करण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अवमान। तिरस्कार (को०)।

न्यकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'न्यक्करण' (को०)।

न्यक्त—वि० [सं०] अञ्चित। अभिषिक्त।

न्यक्ष^१—वि० [सं०] निकृष्ट। भ्रष्ट। क्षुद्र।

न्यक्ष^२—सञ्ज्ञा पुं० १. समप्रता। सपूर्णता। २. परशुराम। ३. महिष। भैरव (को०)।

न्यग्भाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अपमान। तिरस्कार। २. माननाश। अधीनता। ३. अपकर्ष (को०)।

न्यग्भावित—वि० [सं०] तिरस्कृत। गीण। अमुख्यताप्राप्त (को०)।

न्यग्रोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वट वृक्ष। बरगद। २. शमी वृक्ष। ३. बाहु। ४. लवाई की एक नाप। उतनी लंबाई जितनी दोनों हाथों के फैलाने से होती है। व्याम। परिमाण। पुरसा। ५. विष्णु। ६. मोहनोषधि। ७. महादेव। ८. उपसेन के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)। ९. मुसाकानी। मुषिकपर्णी।

न्यग्रोधपरिमंडल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यग्रोधपरिमण्डल] वह जिसकी लंबाई चौड़ाई एक व्यास या पुरसा हो। ऐसे पुरुष त्रेता में राज्य करते थे (मत्स्यपुराण)।

न्यग्रोधपरिमंडला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० न्यग्रोधपरिमण्डला] स्त्रियों का एक भेद। वह स्त्री जिसके स्तन कठोर, नितंब विणाल और कटि क्षीण हो।

न्यग्रोधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] न्यग्रोधी। मुसाकानी।

न्यग्रोधादि गण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वृक्षों का एक गण या वर्ग जिसके अंतर्गत ये वृक्ष माने जाते हैं—बरगद, शीपल, गूलर, पाकर, महुआ, अर्जुन, आम, कुसुम, आमड़ा, जामुन, चिरौजी, मासरोहिणी, कदम, बेर, तेंदू, सलाई, तेषपत्ता, लोब, सावर, भिलावा, पलाण, तुन, पुँघची या मुलेठी।

न्यग्रोधिक—वि० [सं०] (स्थान) जहाँ बहुत से वटवृक्ष हो।

न्यग्रोधिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मुसाकानी लता।

न्यग्रोधी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मुसाकानी।

न्यच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर कासे चकत्ते पड़ जाते हैं। २. तिल। शरीर पर का तिल (को०)।

न्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हानि। नाश। २. क्षय (को०)।

न्यबुद्ध—वि० [सं०] दस मनुष्य। दस धरम (सख्या)।

न्यवुदि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक वृद्ध का नाम । (अथर्व०) ।

न्यसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जमा करना । रखना । २. देना । त्यागना । ३. सामने लाना । उपस्थित करना [को०] ।

न्यस्त^१—वि० [सं०] १. रखा हुआ । धरा हुआ । २. स्थापित । बैठाया या जमाया हुआ । ३. चुनकर सज्जया हुआ । ४. क्षिप्त । डाला हुआ । फेंका हुआ । ५. त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

न्यस्त^२—सञ्ज्ञा पुं० धरोहर रखा हुआ । प्रमानत रखा हुआ ।

न्यस्तशस्त्र^१—वि० [सं०] जिसने हथियार रख दिए हों ।

न्यस्तशस्त्र^२—सञ्ज्ञा पुं० पितृलोक ।

न्यस्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्यसन करने योग्य [को०] ।

न्यहु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रभावस्था का सायकाल ।

न्याकष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्याङ्कष] न्यकु का मृगचर्म । बारहसिंधे का चमड़ा ।

न्याङ्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याय' ।

न्यात्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याय' ।

न्याक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पकाया हुआ अथवा भुना हुआ चावल [को०] ।

न्याति^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञाति, प्रा० ग्याति] जाति । उ०—मधुकर कहाँ कारे की न्याति ? ज्यों जलमीन कमल मधुपन को छिन नहिं प्रीति छटाति ।—सुर (शब्द०) ।

न्याद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] माहार ।

न्याना—वि० [सं०] अज्ञान या हिं० नि (= नहीं) + सं० ज्ञान, प्रा० रयाण] १. जो कुछ न जानता हो । अनजान । निर्बोध । २. छोटी उमर का । अल्प अवस्था का । अल्पवयस्क ।

न्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उचित बात । नियम के अनुकूल बात । हक बात । नीति । इसाफ । जैसे,—(क) न्याय तो यही है कि तुम उसका रुपया फेर दो । (ख) अपराध कोई करे और दंड कोई पावे यह कहाँ का न्याय है । २. सदसद्विवेक । दो पक्षों के बीच निर्णय । प्रमाणपूर्वक निश्चय । विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निश्चय । किसी मामले मुकदमे में दोषी और निर्दोष, अधिकारी और अनधिकारी आदि का निर्धारण । जैसे,—(क) राजा अच्छा न्याय करता है । (ख) इस मजालत में ठीक न्याय नहीं होता ।

न्याय—न्यायसभा । न्यायालय ।

३. वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिये विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है । विवेचनपद्धति । प्रमाण, दृष्टांत, तर्क आदि से युक्त वाक्य ।

विशेष—न्याय छह दर्शनों में है । इसके प्रवर्तक गौतम ऋषि मिथिला के निवासी कहे जाते हैं । गौतम के न्यायसूत्र अथवा प्रसिद्ध हैं । इन सूत्रों पर वात्स्यायन मुनि का भाष्य है । इस भाष्य पर उद्योतकर ने वातिक लिखा है । वातिक की व्याख्या वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायवातिक तात्पर्य टीका' के नाम से लिखी है । इस टीका की भी टीका उदयनाचार्य कृत 'तात्पर्य-परिशुद्धि' है । इस परिशुद्धि पर वर्धमान उपाध्याय कृत 'प्रकाश' है ।

गौतम का न्याय केवल प्रमाण तर्क आदि के नियम निश्चित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि आत्मा, इन्द्रिय, पुनर्जन्म, दुःख प्रपञ्च आदि विशिष्ट प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है । गौतम ने सोलह पदार्थों का विचार किया है और उनके सम्यक् ज्ञान द्वारा प्रपञ्च या मोक्ष की प्राप्ति कही है । सोलह पदार्थ या विषय ये हैं ।—प्रमाण, प्रमेय, सहाय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, अल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान । इन विषयों पर विचार किसी मध्यस्थ के सामने वादी प्रतिवादी के कथोपकथन के रूप में कराया गया है । किसी विषय में विवाद उपस्थित होने पर पहले इसका निर्णय आवश्यक होता है कि दोनों वादियों के कौन कौन प्रमाण माने जायेंगे । इससे पहले 'प्रमाण' लिया गया है । इसके उपरांत विवाद का विषय अर्थात् प्रमेय का विचार हुआ है । विषय सूचित हो जाने पर मध्यस्थ के चित्त में सदेह उत्पन्न होगा कि उसका यथार्थ स्वरूप क्या है । उसी का विचार 'सहाय' या 'सदेह' पदार्थ के के नाम से हुआ है । सदेह के उपरांत मध्यस्थ के चित्त में यह विचार हो सकता है कि इस विषय के विचार से क्या मतलब । यही 'प्रयोजन' हुआ । वादी सदिग्ध विषय पर अपना पक्ष दृष्टांत दिखाकर बतलाता है, वही 'दृष्टांत' पदार्थ है । जिस पक्ष को वादी पुष्ट करके बतलाता है वह उसका 'सिद्धांत' हुआ । वादी का पक्ष सूचित होने पर पक्षसाधन की जो जो युक्तियाँ कही गई हैं प्रतिवादी उनके खंड खंड करके उनके खंडन में प्रवृत्त होता है । युक्तियों के ये ही खंड 'अवयव' कहलाते हैं । अपनी युक्तियों को खंडित देख वादी फिर से और युक्तियाँ देता है जिनसे प्रतिवादी की युक्तियों का उत्तर हो जाता है । यही 'तर्क' कहा गया है । तर्क द्वारा वादी जो अपना पक्ष स्थिर करता है वही 'निर्णय' है । प्रतिवादी के इतने से संतुष्ट न होने पर दोनों पक्षों द्वारा पंचावयवयुक्त युक्तियों का कथन 'वाद' कहा गया है । वाद या शास्त्रार्थ द्वारा स्थिर सत्य पक्ष को न मानकर यदि प्रातिवादी जीत की इच्छा से अपनी चतुराई के बल से अपने उत्तर प्रत्युत्तर करता चला जाता है तो वह 'अल्प' कहलाता है । इस प्रकार प्रतिवादी कुछ काल तक तो कुछ अच्छी युक्तियाँ देता जायगा फिर ऊटपटांग बकने लगेगा जिसे 'वितंडा' कहते हैं । इस वितंडा में जितने हेतु दिए जायेंगे वे ठीक न होंगे, वे 'हेत्वाभास' मात्र होंगे । उन हेतुओं और युक्तियों के प्रतिरिक्त ज्ञान ब्रह्मकर वादी को घबराने के लिये उसके वाक्यों का ऊटपटांग अर्थ करके यदि प्रतिवादी गड़बड़ डालना चाहता है तो वह उसका 'छल' कहलाता है, और यदि व्याप्तिनिरपेक्ष साधर्म्य वैषम्य आदि के सहारे अपना पक्ष स्थापित करने लगता है तो वह 'जाति' में आ जाता है । इस प्रकार होते होते जब शास्त्रार्थ में यह अवस्था आ जाती है कि अब प्रतिवादी को रोककर शास्त्रार्थ बंद किया जाय तब 'निग्रहस्थान' कहा जाता है । (विवरण प्रत्येक शब्द के मतगंत देखो) ।

न्याय का मुख्य विषय है प्रमाण । 'प्रमा' नाम है यथार्थ ज्ञान का । यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते हैं । गौतम ने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द । इनमें से आत्मा, मन और इन्द्रिय का संयोग रूप जो ज्ञान का करण वा प्रमाण है वही प्रत्यक्ष है । वस्तु के साथ इन्द्रिय संयोग होने से जो उसका ज्ञान होता है उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं । प्रत्यक्ष को लेकर जो ज्ञान होता है वह 'अनुमान' है । भाष्यकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि 'लिङ्ग' लिङ्गो के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान (तथा ज्ञान के कारण) को अनुमान कहते हैं । जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहाँ धूम्र रहता है वहाँ आग रहती है । इसी को नैयायिक व्याप्ति ज्ञान कहते हैं जो अनुमान की पहली सीढ़ी है । हमने कहीं धूम्र देखा जो आग का लिङ्ग या चिह्न है और हमारे मन में यह ध्यान हुआ कि जिस धूम्र के साथ सदा हमने आग देखी है वह यहाँ है । इसी को परामर्श ज्ञान या व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता कहते हैं । इसके अनंतर हमें यह ज्ञान या अनुमान उत्पन्न हुआ कि 'यहाँ आग है' । अपने समझने के लिये तो उपयुक्त तीन लक्ष काफी हैं पर नैयायिकों का कार्य है दूसरे के मन में ज्ञान कराना, इससे वे अनुमान के पाँच खंड करते हैं जो 'अवयव' कहलाते हैं ।

(१) प्रतिज्ञा—साध्य का निर्वेश करनेवाला अर्थात् अनुमान से जो बात सिद्ध करना है उसका वर्णन करनेवाला वाक्य, जैसे, यहाँ पर आग है ।

(२) हेतु—जिस लक्षण या चिह्न से बात प्रमाणित की जाती है, जैसे, क्योंकि यहाँ धूम्र है ।

(३) उदाहरण—सिद्ध की जानेवाली वस्तु बतलाए हुए चिह्न के साथ जहाँ देखी गई है उसे बतानेवाला वाक्य । जैसे,—जहाँ जहाँ धूम्र रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, जैसे 'रसोईघर में' ।

(४) उपनय—जो वाक्य बतलाए हुए चिह्न या लिङ्ग का होना प्रकट करे, जैसे, 'यहाँ पर धूम्र है' ।

(५) निगमन—सिद्ध की जानेवाली बात सिद्ध हो गई यह कथन ।

अतः अनुमान का पूरा रूप यों हुआ—

यहाँ पर आग है (प्रतिज्ञा) ।

क्योंकि यहाँ धूम्र है (हेतु) ।

जहाँ जहाँ धूम्र रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, 'जैसे रसोई घर में' (उदाहरण) ।

यहाँ पर धूम्र है (उपनय) ।

इसीलिये यहाँ पर आग है (निगमन) ।

साधारणतः इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य को न्याय कहते हैं ।

नवीन नैयायिक इन पाँचों अवयवों का मानना आवश्यक नहीं समझते । वे प्रमाण के लिये प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण इन्हें

तीनों को काफी समझते हैं । मीमांसक और वेदाती भी इन्हीं तीनों को मानते हैं । बौद्ध नैयायिक दो ही मानते हैं, प्रतिज्ञा और हेतु ।

दुष्ट हेतु को हेत्वाभास कहते हैं पर इसका प्रमाण गौतम ने प्रमाण के अंतर्गत न करके इसे अलग पदार्थ (विषय) मानकर किया है । इसी प्रकार छल, जाति, निग्रहस्थान इत्यादि भी वास्तव में हेतुबोध ही कहे जा सकते हैं । केवल हेतु का अच्छी तरह विचार करने से अनुमान के सब दोष पकड़े जा सकते हैं और यह मालूम हो सकता है कि अनुमान ठीक है या नहीं ।

गौतम का तीसरा प्रमाण 'उपमान' है । किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य से न जानी हुई वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वही उपमान है । जैसे, नीलगाय गाय के सदृश होती है । किसी के मुँह से यह सुनकर जब हम जंगल में नीलगाय देखते हैं तब चट हमें ज्ञान हो जाता है कि 'यह नीलगाय है' । इससे प्रतीत हुआ कि किसी वस्तु का उसके नाम के साथ संबंध ही उपमिति ज्ञान का विषय है । वैशेषिक और बौद्ध नैयायिक उपमान को अलग प्रमाण नहीं मानते, प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाण के ही अंतर्गत मानते हैं । वे कहते हैं कि 'गो के सदृश गवय होता है' यह शब्द या आगम ज्ञान है क्योंकि यह आस या विश्वासपात्र मनुष्य के कहे हुए शब्द द्वारा हुआ । फिर इसके उपरान्त यह ज्ञान कि 'यह जंतु जो हम देखते हैं गो के सदृश है' यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ । इसका उत्तर नैयायिक यह देते हैं कि यहाँ तक का ज्ञान तो शब्द और प्रत्यक्ष ही हुआ पर इसके अनंतर जो यह ज्ञान होता है कि 'इसी जंतु का नाम गवय है' वह न प्रत्यक्ष है, न अनुमान, न शब्द, वह उपमान ही है । उपमान को कई नए दार्शनिकों ने इस प्रकार अनुमान के अंतर्गत किया है । वे कहते हैं कि 'इस जंतु का नाम गवय है', 'क्योंकि यह गो के सदृश है' 'जो जो जंतु गो के सदृश होते हैं उनका नाम गवय होता है' । पर इसका उत्तर यह है कि 'जो जो जंतु गो के सदृश्य होते हैं वे गवय हैं' यह बात मन में नहीं आती, मन में केवल इतना ही आता है कि 'मैंने अच्छे आदमी के मुँह से सुना है कि गवय गाय के सदृश होता है ?'

चौथा प्रमाण है शब्द । सूत्र में लिखा है कि आतोपदेश अर्थात् आस पुरुष का वाक्य शब्दप्रमाण है । भाष्यकार ने आसपुरुष का लक्षण यह बतलाया है कि जो साक्षात्कृतधर्मा हो, जैसा देखा सुना (अनुभव किया) हो ठीक ठीक वैसा ही कहनेवाला हो, वही आस है, चाहे वह आस हो या म्लेच्छ । गौतम ने आतोपदेश के दो भेद किए हैं—उपार्थ और अट्ठार्थ । प्रत्यक्ष जानी हुई बातों को बतानेवाला उपार्थ और केवल अनुमान से जानी जानेवाली बातों (जैसे स्वर्ग, अपवर्ग, पुनर्जन्म इत्यादि) को बतानेवाला अट्ठार्थ कहलाता है । इसपर भाष्य करते हुए वात्स्यायन ने कहा है कि इस प्रकार लौकिक और श्रुति-वाक्य (वैदिक) का विभाग हो जाता है अर्थात् अट्ठार्थ में केवल वेदवाक्य ही प्रमाण कोटि में माना जा सकता है । नैयायिकों के मत से वेद ईश्वरकृत है इससे उसके वाक्य सदा

सत्य और विश्वसनीय हैं पर लौकिक वाक्य सभी सत्य माने जा सकते हैं जब उनका कहनेवाला प्रामाणिक माना जाय। सूत्रों में वेद के प्रामाण्य के विषय में कई शंकाएँ उठाकर उनका समाधान किया गया है। मीमांसक ईश्वर नहीं मानते पर वे भी वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। नित्य तो मीमांसक शब्द मात्र को मानते हैं और शब्द और अर्थ का नित्य संबंध बतलाते हैं। पर नैयायिक शब्द का अर्थ के साथ कोई नित्य संबंध नहीं मानते।

वाक्य का अर्थ क्या है, इस विषय में बहुत मतभेद है। मीमांसकों के मत से नियोग या प्रेरणा ही वाक्यार्थ है—अर्थात् 'ऐसा करो', 'ऐसा न करो' यही बात सब वाक्यों से कही जाती है चाहे साफ साफ चाहे ऐसे अर्थवाले दूसरे वाक्यों से संबंध द्वारा। पर नैयायिकों के मत से कई पदों के संबंध से निकलनेवाला अर्थ ही वाक्यार्थ है। परंतु वाक्य में जो पद होते हैं वाक्यार्थ के मूल कारण वे ही हैं। न्यायमजरी में पदों में दो प्रकार की शक्ति मानी गई है—प्रथम अभिधात्री शक्ति जिससे एक एक पद अपने अपने अर्थ का बोध कराता है और दूसरी तात्पर्य शक्ति जिससे कई पदों के संबंध का अर्थ सूचित होता है। शक्ति के प्रतिरिक्त लक्षणा भी नैयायिकों ने मानी है। मालकारिकों ने तीसरी शक्ति व्यञ्जना भी मानी है पर नैयायिक उसे पुण्य वृत्ति नहीं मानते। सूत्र के अनुसार जिन कई भस्मों के मत में विभक्ति हो वे ही पद हैं और विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—नाम विभक्ति और भाख्यात विभक्ति। इस प्रकार नैयायिक नाम और भाख्यात दो ही प्रकार के पद मानते हैं। अव्यय पद को भाष्यकार ने नाम के ही अंतर्गत सिद्ध किया है।

न्याय में ऊपर लिखे चार ही प्रमाण माने गए हैं। मीमांसक और वेदाती अर्थापत्ति, ऐतिह्य, सभ्य और भभाव ये चार और प्रमाण कहते हैं। नैयायिक इन चारों को अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमाण ही न्यायशास्त्र का मुख्य विषय है। इसी से 'प्रमाणप्रवीण' 'प्रमाणकुशल' आदि शब्दों का व्यवहार नैयायिक या तार्किक के लिये होता है।

प्रमाण अर्थात् किसी बात को सिद्ध करने के विधान का ऊपर उल्लेख हो चुका। अब उक्त विधान के अनुसार किन किन वस्तुओं का विचार और निर्णय न्याय में हुआ है, इसका संक्षेप में कुछ विवरण दिया जाता है।

ऐसे विषय न्याय में प्रमेय (जो प्रमाणित किया जाय) पदार्थ के अंतर्गत हैं और बारह गिनाए गए हैं—

- (१) आत्मा—सब वस्तुओं का देखनेवाला, भोग करनेवाला, जाननेवाला और अनुभव करनेवाला। (२) शरीर—भोग का आयतन या आधार। (३) इन्द्रियाँ—भोगों के साधन। (४) अर्थ—वस्तु जिसका भोग होता है। (५) बुद्धि—भोग। (६) मन—अंतःकरण अर्थात् वह भीतरी इन्द्रिय जिसके द्वारा सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। (७) प्रवृत्ति—वचन, मन

और शरीर का व्यापार। (८) दोष—जिसके कारण अच्छे या बुरे कामों में प्रवृत्ति होती है। (९) प्रेयसाव—पुनर्जन्म। (१०) फल—सुख दुःख का सवेदक या अनुभव। (११) दुःख—पीड़ा, वलेश। (१२) अपवर्ग—दुःख से अत्यंत निवृत्ति या मुक्ति।

इस सूची से यह न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के प्रतिरिक्त और प्रमाण के विषय या प्रमेय हो ही नहीं सकते। प्रमाण के द्वारा बहुत सी बातें सिद्ध की जाती हैं। पर गौतम ने अपने सूत्रों में उन्हीं बातों पर विचार किया है जिनके ज्ञान से अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो। न्याय में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान ये आत्मा के लिंग (अनुमान के साधन चिह्न या हेतु) कहे गए हैं, यद्यपि शरीर, इन्द्रिय और मन से आत्मा पुण्य मानी गई है। वैशेषिक में भी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि को आत्मा का लिंग कहा है। शरीर, इन्द्रिय और मन से आत्मा के पुण्य होने के हेतु गौतम ने दिए हैं। वेदांतियों के समान नैयायिक एक ही आत्मा नहीं मानते, अनेक मानते हैं। साध्यवाले भी अनेक पुरुष मानते हैं पर वे पुरुष को भर्त्ता और अमोक्षा, साक्षी वा द्रष्टा मात्र मानते हैं। नैयायिक आत्मा को कर्ता, मोक्षा आदि मानते हैं। ससार को रचनेवाली आत्मा ही ईश्वर है। न्याय में आत्मा के समान ही ईश्वर में भी सख्या, परिमाण, पुण्यत्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि, प्रयत्न ये गुण माने गए हैं पर नित्य करके। न्यायमजरी में लिखा है कि दुःख, द्वेष और सत्कार को छोड़ और सब आत्मा के गुण ईश्वर में हैं। बहुत से लोग शरीर को पाँचों भूतों से बना मानते हैं पर न्याय में शरीर केवल पृथ्वी के परमाणुओं से घटित माना गया है। चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थ के आश्रय को शरीर कहते हैं। जिस पदार्थ से सुख हो उसके पाने और जिससे दुःख हो उसे दूर करने का व्यापार चेष्टा है। अतः शरीर का जो लक्षण किया गया है उसके अंतर्गत वृक्षों का शरीर भी आ जाता है। पर वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि यह लक्षण वृक्षशरीर में नहीं घटता, इससे केवल मनुष्यशरीर का ही अभिप्राय समझना चाहिए। शंकर मिश्र ने वैशेषिक सूत्रोपस्कार में कहा है कि वृक्षों को शरीर है पर उसमें चेष्टा और इन्द्रियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़तीं इससे उसे शरीर नहीं कह सकते। पुनर्जन्म में किए कर्मों के अनुसार शरीर उत्पन्न होता है। पाँच भूतों से पाँचों इन्द्रियों की उत्पत्ति कही गई है। प्राणेंद्रिय से गंध का ग्रहण होता है, इससे वह पृथ्वी से बनी है। रसना जल से बनी है क्योंकि रस जल का ही गुण है। चक्षु तेज से बना है क्योंकि रूप तेज का ही गुण है। त्वक् वायु से बना है क्योंकि स्पर्श वायु का गुण है। श्रोत्र आकाश से बना है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है।

बौद्धों के मत से शरीर में इन्द्रियों के जो प्रत्यक्ष गोलक देखे जाते हैं उन्हीं को इन्द्रियाँ कहते हैं। (जैसे, मोक्ष की पुतली, जीम इत्यादि), पर नैयायिकों के मत से जो अंग दिखाई पड़ते हैं वे इन्द्रियों के अभिष्ठाव मात्र हैं, इन्द्रियाँ नहीं हैं। इन्द्रियों

का ज्ञान इंद्रियो द्वारा नहीं हो सकता। कुछ लोग एक ही त्वग् इंद्रिय मानते हैं। न्याय में उनके मत का खंडन करके इंद्रियों का नानास्व स्थापित किया गया है। सांख्य में पांच कर्मेन्द्रियाँ और मन लेकर ग्यारह इंद्रियाँ मानी गई हैं। न्याय में कर्मेन्द्रियाँ नहीं मानी गई हैं पर मन एक कारण और अणुरूप माना गया है। यदि मन सूक्ष्म न होकर व्यापक होता तो गुणपद ज्ञान समव होता, अर्थात् अनेक इंद्रियों का एक साण में एक साथ संयोग होने से उन सबके विषयों का एक साथ ज्ञान होता। पर नैयायिक ऐसा नहीं मानते। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचो भूतों के गुण और इंद्रियों के अर्थ या विषय हैं। न्याय में बुद्धि को ज्ञान या उपलब्धि का ही दूसरा नाम कहा है। सांख्य में बुद्धि निरर्थक कही गई है पर न्याय में अनित्य।

वैशेषिक के समान न्याय भी परमाणुवादी है अर्थात् परमाणुओं के योग से सृष्टि मानता है। प्रमेयों के संबंध में न्याय और वैशेषिक के मत प्रायः एक ही हैं इससे दर्शनों में दोनों के मत न्याय मत कहे जाते हैं। वात्स्यायन ने भी भाष्य में कहा दिया है कि जिन बातों को विस्तार भय से गौतम ने सूत्रों में नहीं कहा है उन्हें वैशेषिक से ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतम का न्याय केवल विचार या तर्क के नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक (तर्कशास्त्र) से यही इसमें भेद है। लाजिक दर्शनों के अंतर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय दर्शन है। यह अवश्य है कि न्याय में प्रमाण या तर्क की परीक्षा विशेष रूप से हुई है।

न्यायशास्त्र का भारतवर्ष में कब प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता। नैयायिकों में जो प्रवाद प्रचलित हैं उनके अनुसार गौतम वेदव्यास के समकालीन ठहरते हैं, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'आन्वीक्षिकी' 'तर्कविद्या' 'हेतुवाक्य' का निदापूर्वक उल्लेख रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण में तो नैयायिक शब्द भी अयोध्याकांड में आया है। पाणिनि ने न्याय से नैयायिक शब्द बनने का निर्देश किया है। न्याय के प्रादुर्भाव के संबंध में साधारणतः दो प्रकार के मत पाए जाते हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि बौद्ध धर्म का प्रचार होने पर उसके खंडन के लिये ही इस शास्त्र का अन्वयुद्ध हुआ। पर कुछ एतद्देशीय विद्वानों का मत है कि वैदिक वाक्यों के परस्पर समन्वय और समाधान के लिये जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में जिन युक्तियों और तर्कों का व्यवहार किया वे ही पहले न्याय के नाम से कहे जाते थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में जो न्याय शब्द आया है उसका पूर्वमीमांसा से ही अभिप्राय समझना चाहिए। माधवाचार्य ने पूर्वमीमांसा का जो सारसंग्रह लिखा उसका नाम न्यायमाला-विस्तार रखा। वाचस्पति मिश्र ने भी 'न्यायकण्ठा' के नाम

से मीमांसा पर एक ग्रंथ लिखा है। पर न्याय के प्राचीनत्व से वगैरह देश का गौरव समझनेवाले कुछ बंगाली पंडितों का कथन है कि न्याय ही सब दर्शनों में प्राचीन है क्योंकि और सब दर्शनसूत्रों में दूसरे दर्शनों का उल्लेख मिलता है पर न्यायसूत्रों में कहीं किसी दूसरे दर्शन का नाम नहीं आया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय सब दर्शनों में प्राचीन है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि तर्क के नियम बौद्ध धर्म के प्रचार से बहुत पूर्व प्रचलित थे, चाहे वे मीमांसा के रहे हों या स्वतंत्र। हेमचंद्र ने न्यायसूत्रों पर भाष्य रचनेवाले वात्स्यायन और चाणक्य को एक ही व्यक्ति माना है। यदि यह ठीक हो तो भाष्य ही बौद्ध-धर्म-प्रचार के पूर्व का ठहरता है। क्योंकि बौद्ध धर्म का प्रचार मगध के समय से और बौद्ध न्याय का आविर्भाव अशोक के भी पीछे महायान शाखा स्थापित होने पर हुआ। पर वात्स्यायन और चाणक्य का एक होना हेमचंद्र के श्लोक (जिसमें चाणक्य के आठ नाम गिनाए गए हैं) के आधार पर ही ठीक नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानों का कथन है कि वात्स्यायन ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए। ईसा की छठी शताब्दी में वासवदत्ताकार सुबधु ने मल्लनाग, न्यायस्थिति, धर्मकीर्ति और उद्योतकर इन चार नैयायिकों का उल्लेख किया है। इनमें धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक थे। उद्योतकराचार्य ने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्नागाचार्य के 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रंथ का खंडन करके वात्स्यायन का मत स्थापित किया। 'प्रमाणसमुच्चय' में दिङ्नाग ने वात्स्यायन के मत का खंडन किया था। इससे यह निश्चित है कि वात्स्यायन दिङ्नाग के पूर्व हुए। मल्लिनाथ ने दिङ्नाग को कालिदास का समकालीन बतलाया है, पर कुछ लोग इसे ठीक नहीं मानते और दिङ्नाग का काल ईसा की तीसरी शताब्दी कहते हैं। सुबधु के उल्लेख से दिङ्नागाचार्य का ही काल छठी शताब्दी के पूर्व ठहरता है अतः वात्स्यायन को जो उनसे भी पूर्व हुए पाँचवीं शताब्दी में मानना ठीक नहीं। वे उससे पहले हुए होंगे। वात्स्यायन ने दशव्यवहारी नैयायिकों का उल्लेख किया है, इससे सिद्ध है कि उनके पहले से भाष्यकार नैयायिकों की परंपरा चली आती थी। अस्तु, सूत्रों की रचना का काल बौद्ध धर्म के प्रचार के पूर्व मानना पड़ता है।

वैदिक, बौद्ध और जैन नैयायिकों के बीच विवाद ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर १३ वीं शताब्दी तक बराबर चलता रहा। इससे खंडन मंडन के बहुत से ग्रंथ बने-१४ वीं शताब्दी में गणेशोपाध्याय हुए जिन्होंने 'नव्यन्याय' की नींव डाली। प्राचीन न्याय में प्रमेय आदि जो सोलह पदार्थ थे उनमें से और सबको किनारे करके केवल 'प्रमाण' को लेकर ही भारी शब्दाढंबर खड़ा किया गया। इस नव्यन्याय का आविर्भाव मिथिला में हुआ। मिथिला से नदिया में जाकर नव्यन्याय ने और भी भयंकर रूप धारण किया। न उसमें तत्त्वनिर्णय रहा, न तत्त्वनिर्णय की सामर्थ्य।

४ दृष्टांत वाक्य जिसका व्यवहार लोक में कोई प्रसंग भा पडने पर होता है। कोई विलक्षण घटना सूचित करनेवाली उक्ति जो उपस्थित बात पर घटती हो। कहावत।

ऐसे न्याय या दृष्टांत वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं जिनमें से कुछ प्रकारादि क्रम से दिए जाते हैं—

- (१) अजाकृपाणीय न्याय—कही तलवार लटकती थी, नीचे से बकरा गया और वह संयोग से उसकी गर्दन पर गिर पड़ी। जहाँ देवसंयोग से कोई विपत्ति भा पड़ती है वहाँ इसका व्यवहार होता है।
- (२) अजातपुत्रनामोत्कीर्तन न्याय—अर्थात् पुत्र न होने पर भी नामकरण होने का न्याय। जहाँ कोई पात होने पर भी प्राणा के सहारे लोग अनेक प्रकार के आयोजन बाँधने लगते हैं वहाँ यह कहा जाता है।
- (३) अघ्यारोप न्याय—जो वस्तु जैसी न हो उसमें वैसा होने का (जैसे रज्जु में सर्प होने का) आरोप। वेदांत की पुस्तकों में इसका व्यवहार मिलता है।
- (४) अंधकूपपतन न्याय—किसी भले मादमी ने अंधे को रास्ता बतला दिया और वह चला, पर जाते जाते कुएँ में गिर पड़ा। जब किसी अनधिकारी को कोई उपदेश दिया जाता है और वह उसपर चलकर अपने अज्ञान आदि के कारण चूक जाता है या अपनी हानि कर बैठता है तब यह कहा जाता है।
- (५) अधगज न्याय—कई जन्मांधों ने हाथी कैसा होता है यह देखने के लिये हाथी को टटोला। जिसने जो भग टटोला पाया उसने हाथी का आकार उसी भग का सा समझा। जिसने पूँछ टटोली उसने रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खमे के आकार का समझा। किसी विषय के पूर्ण भग का ज्ञान न होने पर उसके सबंध में जब अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न बातें कही जाती हैं तब इस उक्ति का प्रयोग करते हैं।
- (६) अधगोलान्गूल न्याय—एक अंधा अपने घर के रास्ते से भटक गया था। किसी ने उसके हाथ में गाय की पूँछ पकड़ाकर कह दिया कि यह तुम्हें तुम्हारे स्थान पर पहुँचा देगी। गाय के इधर उधर दौड़ने से अंधा अपने घर तो पहुँचा नहीं, कष्ट उसने भले ही पाया। किसी दुष्ट या मूर्ख के उपदेश पर काम करके जब कोई कष्ट या दुःख उठाता है तब यह कहा जाता है।
- (७) अंधचटक न्याय—अंधे के हाथ बटेर।
- (८) अधपरपरा न्याय—जब कोई पुरुष किसी को कोई काम करते देखकर आप भी वही काम करने लगे तब वहाँ यह कहा जाता है।
- (९) अंधपंगु न्याय—एक ही स्थान पर जानेवाला एक अंधा और एक लंगड़ा यदि मिल जायँ तो एक दूसरे की सहायता से दोनों वहाँ पहुँच सकते हैं। सांख्य में षड् प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही गई है।
- (१०) अपवाद न्याय—जिस प्रकार किसी वस्तु के सबंध में

ज्ञान हो जाने से भ्रम नहीं रह जाता उसी प्रकार। (वेदांत)।

- (११) अपराहच्छाया न्याय—जिस प्रकार दोपहर की छाया बराबर बढ़ती जाती है उसी प्रकार सज्जनों की प्रीति आदि के सबंध में यह न्याय कहा जाता है।
- (१२) अपसारिताभिभूतल न्याय—जमीन पर से प्राग हटा लेने पर भी जिस प्रकार कुछ देर तक जमीन गरम रहती है उसी प्रकार घनी घन के न रह जाने पर भी कुछ दिनों तक अपनी भक्क रहता है।
- (१३) अरण्यरोदन न्याय—जंगल में रोने के समान बात। जहाँ कहने पर कोई ध्यान देनेवाला न हो वहाँ इसका प्रयोग होता है।
- (१४) अर्कमधु न्याय—यदि मदार से ही मधु मिल जाय तो उसके लिये अधिक परिश्रम व्यर्थ है। जो कार्य सहज में हो उनके लिये इधर उधर बहुत श्रम करने की आवश्यकता नहीं।
- (१५) अर्द्धजरतीय न्याय—एक ब्राह्मण देवता अर्धकण्ट से दुखी हो नित्य अपनी गाय लेकर बाजार में बेचने जाते पर वह न बिकती। बात यह थी कि भवस्या पूछने पर वे उसकी बहुत भवस्या बतलाते थे। एक दिन एक मादमी ने उनसे न बिकने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा जिस प्रकार मादमी की भवस्या अधिक होने पर उसकी कदर बढ़ जाती है उसी प्रकार मैंने गाय के सबंध में भी समझा था। उसने आगे ऐसा न कहने की सलाह दी। ब्राह्मण ने सोचा कि एक बार गाय को बुड़्डी कहकर अब फिर जवान कैसे कहूँ। अंत में उन्होंने स्थिर किया कि आत्मा तो बुड़्डी होती नहीं देह बुड़्डी होती है। अंत इसे मैं 'माधी बुड़्डी माधी जवान' कहूँगा। जब किसी की कोई बात इस पक्ष में भी और उस पक्ष में भी हो तब यह उक्ति कही जाती है।
- (१६) अशोकवतिका न्याय—अशोक वन में जाने के समान (जहाँ छाया सोरभ आदि सब कुछ प्राप्त हो)। जब किसी एक ही स्थान पर सब कुछ प्राप्त हो लाम और कही जाने की आवश्यकता न हो तब यह कहा जाता है।
- (१७) अश्मलोष्ट न्याय—अर्थात् तराजू पर रखने के लिये पत्थर तो ढेले से भी भारी है। यह विषयता सूचित करने के अन्तर पर ही कहा जाता है। जहाँ दो वस्तुओं में सापेक्षिकता सूचित करनी होती है। वहाँ 'पापाण्डु न्याय' कहा जाता है।
- (१८) अस्नेहदीप न्याय—बिना तेल के दीये की सी बात। थोड़े ही काल रहनेवाली बात देखकर यह कहा जाता है।
- (१९) अहिकुंडल न्याय—साँप के कुंडल मारकर बैठने के समान। किसी स्वाभाविक बात पर।
- (२०) अहि नकुल न्याय—साँप नेबले के समान। स्वाभाविक विरोध या बैर सूचित करने के लिये।
- (२१) आकाशापरिच्छिन्नत्व न्याय—आकाश के समान अपरिच्छिन्न।

- (१२) आभ्यासक न्याय—लोकप्रवाद के समान ।
- (१३) आभ्यासक न्याय—जिस प्रकार किसी वन में यदि आम के पेड़ अधिक होते हैं तो उसे 'आम का वन' ही कहते हैं, यद्यपि और भी पेड़ उस वन में रहते हैं, उसी प्रकार जहाँ शरीर को छोड़ प्रधान वस्तु का ही उल्लेख किया जाता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।
- (१४) उत्पादितदत्तनाग न्याय—दाँत तोड़े हुए साँप के समान । कुछ करने घरने या हानि पहुँचाने में असमर्थ हुए मनुष्य के सबध में ।
- (१५) उदकनिमज्जन न्याय—कोई दोषी है या निर्दोष इसकी एक दिव्य परीक्षा प्राचीन काल में प्रचलित थी । दोषी को पानी में खड़ा करके किसी और बाण छोड़ते थे और बाण छोड़ने के साथ ही अभियुक्त को तबतक डूबे रहने के लिये कहते थे जबतक वह छोड़ा हुआ बाण वहाँ से फिर छूटने पर लोट न आवे । यदि इतने बीच में डूबनेवाले का कोई अंग बाहर न दिखाई पड़ा तो उसे निर्दोष समझते थे । जहाँ सत्यासत्य की बात आती है वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।
- (१६) उभयतः पाशरञ्जु न्याय—जहाँ दोनों ओर विपत्ति हो अर्थात् दो कर्तव्यपक्षों में से प्रत्येक में दुःख हो वहाँ इसका व्यवहार होता है । 'साँप छूँवर की गति ।'
- (१७) उष्ट्रकटक भक्षण न्याय—जिस प्रकार थोड़े से सुख के लिये ऊँट कटि खाने का कष्ट उठाता है उसी प्रकार जहाँ थोड़े से सुख के लिये अधिक कष्ट उठाया जाता है वहाँ यह कहावत कही जाती है ।
- (१८) ऊपरवृष्टि न्याय—किसी बात का जहाँ कोई फल न हो वहाँ कहा जाता है ।
- (१९) कंठचामीकर न्याय—गले में सोने का हार हो और उसे इधर उधर हूँदता फिरे । भ्रान्तस्वरूप ब्रह्म के अपने में रहते भी अज्ञानवश सुख के लिये अनेक प्रकार के दुःख भोगने के दृष्टांत में वेवाची कहने हैं ।
- (२०) कदंबगोलक न्याय—जिस प्रकार कदंब के गले में सब फूल एक साथ हो जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ कई बातें एक साथ हो जाती हैं वहाँ इसे कहते हैं । कुछ नैयायिक शब्दोत्पत्ति में कई वर्णों के उच्चारण एक साथ मानकर उसके दृष्टांत में यह कहते हैं । यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार कदंब में सब तरफ किजलक होते हैं वैसे शब्द जहाँ उत्पन्न होता है उसके सभी ओर उसकी तरंगों का प्रसार होता है ।
- (२१) कदलीफल न्याय—केला काटने पर ही फलता है इसी प्रकार नीच सीधे कहने से नहीं सुनते ।
- (२२) कफोनिगुड न्याय—सूत न कपास जुलाहो से मटकीबल ।
- (२३) करकंकण न्याय—'कंकण' कहने से ही हाथ के गहने का बोध हो जाता है, 'कर' कहने की आवश्यकता नहीं । पर कर कंकण कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'हाथ में पड़ा हुआ कड़ा' । इस प्रकार का जहाँ अभिप्राय होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।
- (२४) काकतालीय न्याय—किसी ताड़ के पेड़ के नीचे कोई पथिक बैठा था और ऊपर एक कौवा बैठा था । कौवा किसी ओर

को उड़ा और उसके उड़ने के साथ ही ताड़ का एक पका हुआ फल नीचे गिरा । यद्यपि फल पककर भापसे भाप गिरा था तथापि पथिक ने दोनों बातों को साथ होते देख यही समझा कि कौवे के उड़ने से ही तालफल गिरा । जहाँ दो बातें संयोग से इस प्रकार एक साथ हो जाती हैं वहाँ उनमें परस्पर कोई सबध न होते हुए भी लोग सबध समझ लेते हैं । ऐसा संयोग होने पर यह कहावत कही जाती है ।

- (२५) काकदध्युपघातक न्याय—'कौवे से दही बचाना' कहने से जिस प्रकार 'कुत्ते, बिल्ली आदि सब जंतुओं से बचाना' समझ लिया जाता है उसी प्रकार जहाँ किसी वाक्य का अभिप्राय होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।
- (२६) काकदंतगवेषण न्याय—कौवे का दाँत हूँड़ना निष्फल है अतः निष्फल प्रयत्न के सबध में यह न्याय कहा जाता है ।
- (२७) काकाक्षिगोलक न्याय—कहते हैं, कौवे के एक ही पुतली होती है जो प्रयोजन के अनुसार कभी इस आँख में कभी उस आँख में जाती है । जहाँ एक ही वस्तु दो स्थानों में कार्य करे वहाँ के लिये यह कहावत है ।
- (२८) कारणगुणप्रक्रम न्याय—कारण का गुण कार्य में भी पाया जाता है । जैसे सूत का रूप आदि उससे बुने कपड़े में ।
- (२९) कुराकाशायलंबन न्याय—जैसे डूबता हुआ आदमी कुछ काँस जो कुछ पाता है उसी को सहारे के लिये पकड़ता है, उसी प्रकार जहाँ कोई दृढ़ आधार न मिलने पर लोग इधर उधर की बातों का सहारा लेते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है । 'डूबते को तिनके का सहारा' बोलते भी हैं ।
- (३०) कूपखानक न्याय—जैसे कुम्हाँ खोदनेवाले की देह में लगा हुआ कीचड़ उसी कूप के जल से साफ हो जाता है उसी प्रकार राम, कृष्ण आदि को भिन्न भिन्न रूपों में समझने से ईश्वर में भेद बुद्धि का जो दोष लगता है वह उन्हीं की उपासना द्वारा ही भेदबुद्धि हो जाने पर मिट जाता है ।
- (३१) कूपमंडूक न्याय—समुद्र का मेढक किसी कूप में जा पड़ा । कूप के मेढक ने पूछा 'माई ! तुम्हारा समुद्र कितना बड़ा है ।' उसने कहा 'बहुत बड़ा' । कूप के मेढक ने पूछा 'इस कूप के इतना बड़ा' । समुद्र के मेढक ने कहा 'कहाँ कुम्हाँ, कहीं समुद्र' । समुद्र से बड़ी कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं । इसपर कूप का मेढक जो कूप से बड़ी कोई वस्तु जानता ही न था विगडकर बोला 'तुम मूठे हो, कूप से बड़ी कोई वस्तु हो नहीं सकती' । जहाँ परिमित ज्ञान के कारण कोई अपनी जानकारी के ऊपर कोई दूसरी बात मानता ही नहीं वहाँ के लिये यह उक्ति है ।
- (३२) कूर्मांग न्याय—जिस प्रकार कछुआ जब चाहता है तब अपने सब अंग भीतर समेट लेता है और जब चाहता है बाहर करता है उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि और लय करता है ।
- (३३) कैमुतिक न्याय—जिसने घड़े बड़े काम किए उसे कोई छोटा काम करते क्या लगता है । उसी के दृष्टांत के लिये यह उक्ति कही जाती है ।

(४४) कौटिल्य न्याय—यह मन्त्रा है पर ऐसा होता तो और भी मन्त्रा होता ।

(४५) गजमुक्त कपित्थ न्याय—हाथी के खाए हुए कैय के समान ऊपर से देखने में ठीक पर भीतर भीतर नि सार और शून्य ।

(४६) गडुल्लिकाप्रवाह न्याय—भेड़िया घसान ।

(४७) गणपति न्याय—एक बार देवताओं में विवाद चला कि सबमें पूज्य कौन है । ब्रह्मा ने कहा जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा पहले कर पावे वही श्रेष्ठ समझा जाय । सब देवता अपने अपने वाहनो पर चले । गणेश जी चूहे पर सवार सबके पीछे रहे । इतने में मिले नारद । उन्होंने गणेश जी को युक्ति बताई कि राम नाम लिखकर उसी की प्रदक्षिणा करके चटपट ब्रह्मा के पास पहुँच जाओ । गणपति ने ऐसा ही किया और देवताओं में वे प्रथम पूज्य हुए । इसी से जहाँ योही सी युक्ति से बड़ी भारी बात हो जाय वहाँ इसका प्रयोग करते हैं ।

(४८) गतानुगतिक न्याय—कुछ ब्राह्मण एक घाट पर तर्पण किया करते थे । वे अपना अपना कुश एक ही स्थान पर रख देते थे जिससे एक का कुश दूसरा ले लेता था । एक दिन पहचान के लिये एक ने अपने कुश को हँट से दबा दिया । उसकी देखा देखी दूसरे दिन सबने अपने कुश पर हँट रखी । जहाँ एक की देखादेखी लोग कोई काम करने लगते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।

(४९) गुडजिह्विका न्याय—जिस प्रकार वच्चे को कड़वी शोष खिलाने के लिये उसे पहले गुड़ देकर फुसलाते हैं उसी प्रकार जहाँ भ्रष्टिकर या कठिन काम कराने के लिये पहले कुछ प्रलोभन दिया जाता है वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है ।

(५०) गोवलीवर्द न्याय—‘वलीवर्द’ शब्द का अर्थ है बैल । जहाँ यह शब्द गो के साथ हो वहाँ अर्थ और भी जल्दी धुल जाता है । ऐसे शब्द जहाँ एक साथ होते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है ।

(५१) घटकुटीप्राभात न्याय—एक बनिया घाट के महसूल से बचने के लिये ठीक रास्ता छोड़ ऊबड़खाबड़ स्थानों में रातभर भटकता रहा पर सबेरा होते होते फिर उसी महसूल की छावनी पर पहुँचा और उसे महसूल देना पड़ा । जहाँ एक कठिनाई से बचने के लिये अनेक उपाय निष्फल हो और अंत में उसी कठिनाई में फँसता पड़े वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।

(५२) घटप्रदीप न्याय—घड़ा अपने भीतर रखे हुए दीप का प्रकाश बाहर नहीं जाने देता । जहाँ कोई अपना ही भला चाहता है दूसरे का उपकार नहीं करता वहाँ यह प्रयुक्त होता है ।

(५३) घुणाक्षर न्याय—घुनों के चालने से लकड़ी में अक्षरों के से आकार बन जाते हैं, यद्यपि घुन इस उद्देश्य से नहीं काटते कि अक्षर बनें । इसी प्रकार जहाँ एक काम करने में कोई दूसरी बात मनायास हो जाय वहाँ यह कहा जाता है ।

(५४) चंपकपटवास न्याय—जिस कपड़े में चपे का फूल रखा हो

उसमें फूलों के न रहने पर भी बहुत देर तक महँक रहती है । इसी प्रकार विषय भोग का संस्कार भी बहुत काल तक बना रहता है ।

(५५) जलतरंग न्याय—भलग नाम रहने पर भी तरंग जल से भिन्न गुण की नहीं होती । ऐसा ही अभिमत सुचित करने के लिये इस उक्ति का व्यवहार होता है ।

(५६) जलतुबिका न्याय—(क) तूँबी पानी में नहीं डूबती, डूबाने से ऊपर आ जाती है । जहाँ कोई बात छिपाने से छिपनेवाली नहीं होती वहाँ इसे कहते हैं । (ख) तूँबी के ऊपर मिट्टी कीचड़ आदि लपेटकर उसे पानी में डालें तो वह डूब जाती है पर कीचड़ धोकर पानी में डालें तो नहीं डूबती । इसी प्रकार जीव देहादि के नशों से युक्त रहने पर ससार सागर में निमग्न हो जाता है और मल आदि छूटने पर पार हो जाता है ।

(५७) जलानयन न्याय—पानी ‘लामो’ कहने से उसके साथ बरतन का लाना भी समझ लिया जाता है क्योंकि बरतन के बिना पानी आवेगा किसमें ।

(५८) तिलतंडुल न्याय—चावल और तिल की तरह मिली रहने पर भी भलग दिखाई देनेवाली वस्तुओं के सर्वध में इसका प्रयोग होता है ।

(५९) तृणजलौका न्याय—दे० ‘तृणजलौका’ शब्द ।

(६०) दृढचक्र न्याय—जैसे घड़ा बनने में दृढ, चक्र आदि कई कारण हैं वैसे ही जहाँ कोई बात अनेक कारणों से होती है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।

(६१) डडापूप न्याय—कोई डडे में बँधे हुए मालपूए छोड़कर कहीं गया । जाने पर उसने देखा कि डडे का बहुत सा भाग चूहे खा गए हैं । उसने सोचा कि जब चूहे डडा तक खा गए तब मालपूए को उन्होंने कब छोड़ा होगा । जब कोई दुष्कर और कष्टसाध्य कार्य हो जाता है तब उसके साथ ही लगा हुआ सुख और सहज कार्य अवश्य ही हुआ होगा यही सूचित करने के लिये यह कहावत कहते हैं ।

(६२) दशम न्याय—दस आदमी एक साथ कोई नदी तेरकर पार गए । पार जाकर वे यह देखने के लिये सबको गिनने लगे कि कोई छूटा या बह तो नहीं गया । पर जो गिनता वह अपने को छोड़ देता इससे गिनने में नो ही ठहरते । अंत में उस एक छोए हुए के लिये सबने रोना शुरू किया । एक चतुर पथिक ने आकर उनसे फिर से गिनने के लिये कहा । जब एक चठकर नो तक गिन गया तब पथिक ने कहा ‘दसवें तुम’ । इसपर सब प्रसन्न हो गए । वेदाती इस न्याय का प्रयोग यह दिखाने के लिये करते हैं कि गुरु के ‘तत्त्वमसि’ आदि उपदेश सुनने पर भ्रान्त और तज्जनित दुःख दूर हो जाता है ।

(६३) देहलीदीपक न्याय—देहली पर दीपक रखने से भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला रहता है । जहाँ एक ही आयोजन से दो काम सर्वे या एक शब्द या बात दोनों ओर लगे वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है ।

- (६४) नष्टाश्वरद्गधरथ न्याय—एक भ्रादमी रथ पर वन में जाता था। वन में घाग लगी और उसका घोड़ा मर गया। वह बहुत व्याकुल घूमता था कि इतने में एक दूसरा भ्रादमी मिला जिसका रथ जल गया था और घोड़ा बचा था। दोनों ने मिलकर काम चला लिया। इस प्रकार जहाँ दो भ्रादमी मिलकर एक दूसरे की श्रुति की पूर्ति करके काम चलाते हैं वहाँ इसे कहते हैं।
- (६५) नारिकेलफलांतु न्याय—नारिकेल के फल में जिस प्रकार न जाने कहाँ से कैसे जल आ जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी किस प्रकार आती है नहीं जान पड़ता।
- (६६) निम्नगाप्रवाह न्याय—नदी का प्रवाह जिस ओर को जाता है उधर रुक नहीं सकता। इसी प्रकार के अनिवाय क्रम के दृष्टांत में यह कहावत है।
- (६७) नृपनापितपुत्र न्याय—किसी राजा के यहाँ एक नाई नौकर था। एक दिन राजा ने उससे कहा कि कहीं से सबसे सुंदर बालक लाकर मुझे दिखाओ। नाई को अपने पुत्र से बढ़कर और कोई सुंदर बालक कहीं न दिखाई पड़ा और वह उसी को लेकर राजा के सामने आया। राजा उस काले कलूटे बालक को देख बहुत क्रुद्ध हुआ, पर पीछे उसने सोचा कि प्रेम या राग के वश इसे अपने लड़के सा सुंदर और कोई दिखाई ही न पड़ा। राग के वश जहाँ अनुष्य प्रधा हो जाता है और उसे अच्छे बुरे की पहचान नहीं रह जाती वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।
- (६८) पक्षप्रचालन न्याय—कीचड़ लग जायगा तो घोड़े डालेंगे इसकी अपेक्षा यही विचार अच्छा है कि कीचड़ लगने ही न पावे।
- (६९) पजरचालन न्याय—दस पक्षी यदि किसी पिंजरे में बंद कर दिए जायँ और वे सब एक साथ यत्न करें तो पिंजरे को इधर उधर चला सकते हैं। दस ज्ञानेन्द्रियाँ और दस कर्मेन्द्रियाँ प्राणरूप क्रिया उत्पन्न करके देह को चलाती हैं इसी के दृष्टांत में सांख्यवाले उक्त न्याय कहते हैं।
- (७०) पापाणैष्टक न्याय—ईंट भारी होती है पर उससे भी भारी पत्थर होता है।
- (७१) पिष्टपेपण न्याय—पीसे को पीसना निरर्थक है। किए हुए काम को व्यर्थ जहाँ कोई फिर करता है वहाँ के लिये यह उक्ति है।
- (७२) प्रदीप न्याय—जिस प्रकार तेल, चत्ती और भाग इन भिन्न भिन्न वस्तुओं के मेल से दीपक जलता है उसी प्रकार सत्व, रज और तम इन परस्पर भिन्न गुणों के सहयोग से देहधारण का व्यापार होता है। (सांख्य)।
- (७३) प्रापाणक न्याय—जिस प्रकार घी, चीनी आदि कई वस्तुओं के एकत्र करने से बढ़िया मिठाई बनती है उसी प्रकार अनेक उपादानों के योग से सुंदर वस्तु तैयार होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही जाती है। साहित्यवाले विभाव, अनुभाव आदि द्वारा रस का परिपाक सूचित करने के लिये इसका प्रयोग प्रायः करते हैं।

- (७४) प्रासादवासि न्याय—महल में रहनेवाला यद्यपि कामकाज के लिये सीधे उतरकर बाहर इधर उधर भी जाता है पर उसे प्रासादवासी ही कहते हैं इसी प्रकार जहाँ जिस विषय की प्रधानता होती है वहाँ उसी का उल्लेख होता है।
- (७५) फलवत्सहकार न्याय—ग्राम के पेड़ के नीचे अधिक छाया के लिये ही जाता है पर उसे फल भी मिल जाता है। इसी प्रकार जहाँ एक लाभ होने से दूसरा लाभ भी हो वहाँ यह न्याय कहा जाता है।
- (७६) बहुवृत्ताकृष्ट न्याय—एक हिरन को यदि बहुत से भड़िए लगे तो उसके घग एक स्थान पर नहीं रह सकते। जहाँ किसी वस्तु के लिये बहुत से लोग लीचाखीची करते हैं वहाँ वह यथास्थान वा समूची नहीं रह सकती।
- (७७) बिलवर्तिगोधा न्याय—जिस प्रकार बिल में स्थित गोह का विभाग भ्रादि नहीं हो सकता उसी प्रकार जो वस्तु प्रज्ञात है उसके सबध में भला बुरा कुछ नहीं कहा जा सकता।
- (७८) ब्राह्मणग्राम न्याय—जिस ग्राम में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक होती है उसे ब्राह्मणों का गाँव कहते हैं यद्यपि उसमें कुछ और लोग भी बसते हैं। शरीरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही नाम लिया जाता है, यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।
- (७९) ब्राह्मणभ्रमण न्याय—ब्राह्मण यदि अपना धर्म छोड़ भ्रमण (बौद्ध भिक्षुक) भी हो जाता है तब भी उसे ब्राह्मण भ्रमण कहते हैं। एक वृत्ति को छोड़ जब कोई दूसरी वृत्ति ग्रहण करता है तब भी लोग उसकी पूर्ववृत्ति का निर्देश करते हैं।
- (८०) मज्जनोन्मज्जन न्याय—तेरना न जाननेवाला जिस प्रकार जल में पड़कर डूबता उतराता है उसी प्रकार मूर्ख या दुष्ट वादी प्रमाण आदि ठीक न दे सकने के कारण क्षुब्ध और व्याकुल होता है।
- (८१) मंडूकतोलन न्याय—एक धूर्त बनिया तराजू पर सोदे के साथ मंडक रखकर तोला करता था। एक दिन मंडक कूदकर भागा और वह पकड़ा गया। छिपाकर की हुई बुराई का भडा एक दिन फूटता है।
- (८२) रज्जुसर्प न्याय—जबतक दृष्टि ठीक नहीं पड़ती तबतक मनुष्य रस्सी को साँप समझता है इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य दृश्य जगत् को सत्य समझता है, पीछे ब्रह्मज्ञान होने पर उसका भ्रम दूर होता है और वह समझता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (वेदांती)।
- (८३) राक्षपुत्रन्याय—कोई राजपुत्र बचपन में एक व्याध के घर पड़ गया और वही पक्षकर अपने को व्याधपुत्र ही समझने लगा। पीछे जब लोगों ने उसे उसका कुल बताया तब उसे अपना ठीक ठीक ज्ञान हुआ। इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य अपने को न जाने क्या समझा करता है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वह समझता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। (वेदांती)।
- (८४) राजपुरप्रवेश न्याय—राजा के द्वार पर जिस प्रकार बहुत से लोगों की भीड़ रहती है पर सब लोग बिना गड़बड़

या हल्ला किए धुपचाप कायदे से खड़े रहते हैं उसी प्रकार जहाँ सुव्यवस्थापूर्वक कार्य होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(८५) रात्रिदिवस न्याय—रात दिन का फर्क । भारी फर्क ।

(८६) लूतातु न्याय—जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से ही सूत निकालकर जाला बनाती है और फिर आप ही उसका सहारा करती है इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही सृष्टि करता है और अपने में उसे लय करता है ।

(८७) लोप्लगुड न्याय—ढेला तोड़ने के लिये जैसे डडा होता है उसी प्रकार जहाँ एक का दमन करनेवाला दूसरा होता है वहाँ यह कहावत कही जाती है ।

(८८) लोह चुंबक न्याय—जोहा गतिहीन और निष्क्रिय होने पर भी चुंबक के आकर्षण से उसके पास जाता है उसी प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी प्रकृति के साहचर्य से क्रिया में उत्तर होता है । (साख्य) ।

(८९) वरगोष्ठो न्याय—जिस प्रकार वरपक्ष और कन्यापक्ष के लोग मिलकर विवाह रूप एक ऐसे कार्य का साधन करते हैं जिससे दोनों का अमीष्ट सिद्ध होता है उसी प्रकार जहाँ कई लोग मिलकर सबके हित का कोई काम करते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।

(९०) वह्निधूम न्याय—धूमरूप कार्य देखकर जिस प्रकार कारण रूप अग्नि का ज्ञान होता है उसी प्रकार कार्य द्वारा कारण अनुमान के सबब में यह उक्ति है (नैयायिक) ।

(९१) बिल्वखल्लाट (खल्लाट) न्याय—धूप से व्याकुल गश्वा छाया के लिये देन के पेड़ के नीचे गया । वहाँ उसके सिर पर एक बेल टूटकर गिरा । जहाँ इष्टसाधन के प्रयत्न में अनिष्ट होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।

(९२) विषवृक्ष न्याय—विष का पेड़ लगाकर भी कोई उसे अपने हाथ से नहीं काटता । अपनी पाली पोसी वस्तु का कोई अपने हाथ से नाश नहीं करता ।

(९३) वीचितरग न्याय—एक के उपरांत दूसरी, इस क्रम से बराबर आनेवाली तरंगों के समान । नैयायिक ककारादि वर्णों की उत्पत्ति वीचितरग न्याय से मानते हैं ।

(९४) बीजाकुर न्याय—बीज से अकुर या अकुर से बीज है यह ठीक नहीं कहा जा सकता । न बीज के बिना अकुर हो सकता है न अकुर के बिना बीज । बीज और अकुर का प्रवाह अनादि काल से चला आता है । दो सबद वस्तुओं के नित्य प्रवाह के दृष्टांत में वेदाती इस न्याय को कहते हैं ।

(९५) वृक्षप्रकंपन न्याय—एक आदमी पेड़ पर चढ़ा । नीचे से एक ने कहा कि यह डाल हिलाओ, दूसरे ने कहा यह डाल हिलाओ । पेड़ पर चढ़ा हुआ आदमी कुछ स्थिर न कर सका कि किस डाल को हिलाऊँ । इतने में एक आदमी ने पेड़ का घड़ ही पकड़कर हिला डाला जिससे सब डालें हिल गई । जहाँ कोई एक बात सबके अनुकूल हो जाती है वहाँ इसका प्रयोग होता है ।

(९६) वृद्धकुमारिका न्याय या वृद्धकुमारी वाक्य न्याय—कोई कुमारी तप करती थी वृद्धी हो गई । इद ने उससे कोई एक वर माँगने के लिये कहा । उसने वर माँगा कि मेरे बहुत से पुत्र सोने के बरतनों में खूब घी दूध और अन्न खायें । इस प्रकार उसने एक ही वाक्य में पति, पुत्र, गोधन धान्य सब कुछ माँग लिया । जहाँ एक की प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो वहाँ यह कहावत कही जाती है ।

(९७) शतपत्रभेद न्याय—सौ पत्ते एक साथ रखकर छेदने से जान पड़ता है कि सब एक साथ एक काल में ही छिद गए पर वास्तव में एक एक पत्ता भिन्न भिन्न समय में छिदा । कालांतर की सूक्ष्मता के कारण इसका ज्ञान नहीं हुआ । इस प्रकार जहाँ बहुत से कार्य भिन्न भिन्न समयों में होते हुए भी एक ही समय में हुए जान पड़ते हैं वहाँ यह दृष्टांत वाक्य कहा जाता है । (साख्य) ।

(९८) श्यामरक्त न्याय—जिस प्रकार कच्चा काला घड़ा पकने पर अपना श्याम गुण छोड़ कर रक्तगुण धारण करता है उसी प्रकार पूर्व गुण का नाश और अपर गुण का धारण सूचित करने के लिये यह उक्ति कही जाती है ।

(९९) श्यालकशुनक न्याय—किसी ने एक कुत्ता पाला था और उसका नाम अपने साले का नाम रखा था । जब वह कुत्ते का नाम लेकर गालियाँ देता तब उसकी स्त्री अपने भाई का आपमान समझकर बहुत चिढ़ती । जिस उद्देश्य से कोई बात नहीं की जाती वह यदि उससे हो जाती है तो यह कहावत कही जाती है ।

(१००) संदशपक्षित न्याय—संझसी जिस प्रकार अपने बीच घाई हुई वस्तु को पकड़ती है उसी प्रकार जहाँ पूर्व और उत्तर पदार्थ द्वारा मध्यस्थित पदार्थ का ग्रहण होता है वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है ।

(१०१) समुद्रवृष्टि न्याय—समुद्र में पानी बरसने से जैसे कोई उपकार नहीं होता उसी प्रकार जहाँ जिस बात की कोई आवश्यकता या फल नहीं वहाँ यदि वह की जाती है तो यह उक्ति चरितार्थ की जाती है ।

(१०२) सर्वापेक्षा न्याय—बहुत से लोगों का जहाँ निमग्न होता है वहाँ यदि कोई सबके पहले पहुँचता है तो उसे सबकी प्रतीक्षा करनी होती है । इस प्रकार जहाँ किसी काम के लिये सबका आसरा देखना होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।

(१०३) सिंहावलोकन न्याय—सिंह शिकार मारकर जब आगे बढ़ता है तब पीछे फिर फिरकर देखता जाता है । इसी प्रकार जहाँ अगली और पिछली सब बातों की एक साथ आलोचना होती है वहाँ इस उक्ति का व्यवहार होता है ।

(१०४) सूचीकटाह न्याय—सूई बनाकर कड़ाह बनाने के समान । किसी लोहार से एक आदमी ने आकर कड़ाह बनाने को कहा । थोड़ी देर में एक दूसरा आया, उसने सूई बनाने के लिये कहा । लोहार ने पहले सूई बनाई तब कड़ाह । सहज काम पहले

करता तब कठिन काम में हाथ लगाता, इसी के दृष्टांत में यह कहा जाता है।

(१०५) सुंदोपसुंद न्याय—सुंद और उपसुंद दोनों भाई बड़े बली दैत्य थे। एक स्त्री पर दोनों मोहित हुए। स्त्री ने कहा दोनों में जो अधिक बलवान् होगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। परिणाम यह हुआ कि दोनों लड़ मरे। परस्पर के फूट से बलवान् से बलवान् मनुष्य नष्ट हो जाते हैं यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(१०६) सोपानारोहण न्याय—जिस प्रकार प्रासाद पर जाने के लिये एक एक सीढ़ी क्रम से चढ़ना होता है उसी प्रकार किसी बड़े काम के करने में क्रम क्रम से चलना पड़ता है।

(१०७) सोपानावरोहण न्याय—सीढ़ियाँ जिस क्रम से चढ़ते हैं उसी के उलटे क्रम से उतरते हैं। इसी प्रकार जहाँ किसी क्रम से चलकर फिर उसी के उलटे क्रम से चलना होता है (जैसे, एक बार एक से सौ तक गिनती गिनकर फिर सौ से निम्नानवे, षट्पानवे इस उलटे क्रम से गिनना) वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(१०८) स्थविरलगुड न्याय—बुड़ों के हाथ से फेंकी हुई लाठी जिस प्रकार ठीक निशाने पर नहीं पहुँचती उसी प्रकार किसी बात के लक्ष्य तक न पहुँचने पर यह उक्ति कही जाती है।

(१०९) स्थूणानिखनन न्याय—जिस प्रकार घर के छप्पर में चाँड़ देने के लिये खभा गाड़ने में उसे मिट्टी आदि डालकर हट करना होता है उसी प्रकार युक्ति उदाहरण द्वारा अपना पक्ष हट करना पड़ता है।

(११०) स्थूलारुधती न्याय—विवाह हो जाने पर वर और कन्या को अरुधती तारा दिखाया जाता है जो दूर होने के कारण बहुत सूक्ष्म हैं और जल्दी दिखाई नहीं देता। अरुधती दिखाने में जिस प्रकार पहले सप्तर्षि को दिखाते हैं जो बहुत जल्दी दिखाई पड़ता है और फिर उँगली से बताते हैं कि उसी के पास वह अरुधती है देखो, इसी प्रकार किसी सूक्ष्म तत्व का परिज्ञान कराने के लिये पहले स्थूल दृष्टांत आदि देकर क्रमशः उस तत्व तक ले जाते हैं।

(१११) स्वामिभृत्य न्याय—जिस प्रकार मालिक का काम करके नौकर भी स्वामी की प्रसन्नता से अपने को कृतकार्य समझता है उसी प्रकार जहाँ दूसरे का काम हो जाने से अपना भी काम या प्रसन्नता हो जाय वहाँ के लिये यह उक्ति है।

ऊपर जो न्याय दिए गए हैं उनका व्यवहार प्रायः होता है और बहुत से न्याय संस्कृत में आते हैं जो विस्तारभय से नहीं दिए गए। लौकिक न्याय सग्रह नामक ग्रंथ में जिसके कर्ता रघुनाथ हैं ३६४ न्यायों की सूची है।

५ सादृश्यता। अमानता। तुल्यता (को०)। ६. विष्णु का एक नाम (को०)।

न्यायकर्ता—उक्ता पुं० [सं० न्यायकर्तृ] न्याय करनेवाला। दो पक्षों के विवाद का निर्णय करनेवाला। ईसाफ करनेवाला। मुकद्दमे का फैसला करनेवाला हाकिम।

न्यायतः—क्रि० वि० [सं० न्यायतस्] १. न्याय से। धर्म और नीति के अनुसार। ईमान से। २. ठीक ठीक।

न्यायता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय का भाव। औचित्य।

न्यायनिर्वपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम (महाभारत)।

न्यायपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आचरण का न्यायसंमत मार्ग। उचित रीति। २. भीमासा दर्शन (को०)।

न्यायपर—वि० [सं०] न्यायशील। न्यायी। (को०)।

न्यायपरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] न्यायशीलता। न्यायी होने का भाव।

न्यायपरायण—वि० [सं०] दे० 'न्यायपर' (को०)।

न्यायप्रिय—वि० [सं०] जिसे न्याय प्रिय हो।

न्यायवर्ती—वि० [सं० न्यायवर्तिन्] न्याय पथ पर चलनेवाला (को०)।

न्यायवादी—वि० [सं० न्यायवादिन्] १. उचित या न्याय को कहनेवाला। २. निर्णायक।

न्यायवान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यायवत्] [वि० स्त्री० न्यायवती] न्याय पर चलनेवाला। विवेकी। न्यायी।

न्यायवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध आचरण। सदाचरण (को०)।

न्यायशील—वि० [सं०] न्यायी। न्याय करनेवाला (को०)।

न्यायसभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा जहाँ विवादों का निर्णय हो। कचहरी। मदालत।

न्यायसारिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उचित या उपयुक्त व्यवहार (को०)।

न्यायाधीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्यायकर्ता। व्यवहार या विवाद का निर्णय करनेवाला। अधिकारी। मुकद्दमे का फैसला करनेवाला अधिकारी। जज।

न्यायालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ न्याय अर्थात् व्यवहार या विवाद का निर्णय हो। वह जगह जहाँ मुकद्दमों को फैसला हो। मदालत। कचहरी।

न्यायी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० न्यायिन्] न्याय पर चलनेवाला। नीतिसंमत आचरण करनेवाला। उचित पक्ष प्रहण करनेवाला।

न्याय्य—वि० [सं०] न्याययुक्त। न्यायसंगत।

न्यार^(१)—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निमिमड] दे० 'न्यायरा'।

न्यार^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० निवार] पसही धान। मुन्यस्र।

न्यार^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० न्यारा] पशुओं को बिना जानेवाला चारा। सूसा आदि। उ०—दे न्यार बैल को, फेर हाथ, कर प्यार बनी माता घरती।—मिट्टी०, पु० ४४।

न्यारा—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निमिमड, निन्नियर, पु० हि० निन्नियर] [वि० स्त्री० न्यारी] १. जो पास न हो। दूर। २. जो मिला या लगा न हो। अलग। पृथक्। जुदा।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

३. और हो। अन्य। भिन्न। जैसे,—यह बात न्यारी है। ४. निराशा। अनोखा। विलक्षण। जैसे,—मयुरा तीन लोक से न्यारी।

न्यारिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० न्यारा] सुनारों के निपार (राख इत्यादि) को धोकर सोना चाँदी एकत्र करनेवाला।

न्यारे—क्रि० वि० [हि० न्यारा] १. पास नहीं। दूर। जैसे,—उससे न्यारे रहो। २. अलग। पृथक्। साथ में नहीं। जैसे,—वह हमसे न्यारे हो गया।

न्याय—सङ्घ पुं० [सं० न्याय] १. नियम नीति । आचरण । पद्धति ।
उ०—ऊधो, ताको न्याय है जाहि न सुम्नै नैन ।—सूर
(शब्द०) । २. उचित पक्ष । वाजिब बात । कर्तव्य का ठीक
निर्धारण । ३. विवेक । उचित अनुचित की बुद्धि । इसाफ ।
जैसे,—जो तुम्हारे न्याय में आवे वही करो । ४. दो पक्षों के
बीच निर्णय । विवाद वा झगड़े का निवेटेरा । व्यवहार या
मुकद्दमे का फैसला । जैसे—राजा करे सो न्याय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुद्दा—न्याय चुकाना = झगड़ा निवटाना । विवाद का निर्णय
करना । फैसला करना ।

न्यास—सङ्घ पुं० [सं०] [वि० न्यस्त] १. स्थापन । रखना । २. यथा-
स्थान स्थापन । जगह पर रखना । ठीक जगह क्रम से
लगाना या सजाना । ३. स्थाप्य द्रव्य । किसी की वस्तु जो
दूसरे के यहाँ इस विश्वास पर रखी हो कि वह उसकी रक्षा
करेगा और मींगने पर लौटा देगा । धरोहर । पाती । ४.
अर्पण । ५. त्याग । ६. सन्यास । ७. पूजा की तांत्रिक पद्धति
के अनुसार देवता के भिन्न भिन्न अंगों का ध्यान करते हुए
मन्त्र पढ़कर उनपर विशेष वरुणों का स्थापन ।

यौ०—अग्न्यास । करन्यास ।

८. किसी रोग या बाधा की शांति के लिये रोगी या बाधाग्रस्त
मनुष्य के एक एक अंग पर हाथ ले जाकर मन्त्र पढ़ने का
विधान । ९. काशिका वृत्ति (को०) । १०. निधान । चिह्न
(को०) । १२. आवाज या ध्वनि का मद करना (को०) । १३.
अकन । चित्रण (को०) ।

न्यासधारी—सङ्घ पुं० [सं०] याती रखनेवाला । धरोहर रखने-
वाला (को०) ।

न्यासस्वर—सङ्घ पुं० [सं०] वह स्वर जिससे कोई राग समाप्त
किया जाय ।

न्यासापह्व—सङ्घ पुं० [सं०] धरोहर को हकार जाना । पाती लौटाने
से प्रस्वीकार करना (को०) ।

न्यासिक—वि० [सं०] धरोहर रखनेवाला । जो किसी की याती रखे ।

न्यासी—सङ्घ पुं० [सं० न्यासिन्] सन्यासी (को०) ।

न्युज^१—वि० [सं०] १. प्रबोधित । प्रोधा । २. कुवशा । ३. रोग से
जिसकी कमर टेढ़ी हो गई हो ।

न्युज^२—सङ्घ पुं० १. कुण । २. माला । ३. एक यज्ञपात्र । ४.
कर्मरग फल । कर्मरख । ५. न्यग्रोध घृक्ष (को०) ।

न्युजखड्ग—सङ्घ पुं० [सं०] टेढ़ी तलवार । वक्रखड्ग (को०) ।

न्यूज—सङ्घ स्त्री० [अ०] समाचार । सवाद । वृत्तांत । वृत्त । खबर ।

यौ०—न्यूजप्रिंट = समाचारपत्र छापने का कागज । एक प्रकार
का कागज । न्यूजपेपर ।

न्यूजपेपर—सङ्घ पुं० [अ०] समाचारपत्र । खबर ।

न्यून—वि० [सं०] १. कम । थोड़ा । अल्प । २. घटकर । कम ।
नीचा । ३. नीच । क्षुद्र । ४. विकारयुक्त । विकृत ।

न्यूनता—सङ्घ स्त्री० [सं०] १. कमी । २. होनता ।

न्यूनाङ्ग—वि० [सं० न्यूनाङ्ग] विकलाङ्ग । अंगभग । अपंग (को०) ।

न्यूनाधिक—वि० [सं०] ३. थोड़ा बहुत । कमोवेश (को०) ।

न्योचनी—सङ्घ स्त्री० [सं०] १. सायण के अनुसार दासी या सेविका ।
२. स्त्रियों का एक आश्रम (को०) ।

न्योछावर—सङ्घ स्त्री० [हि० निछावर] दे० 'निछावर' ।

न्योजी—सङ्घ स्त्री० [हि० लीची] १. लीची नामक फल । उ०—
कोइ नारंग कोइ झाड चिरौजी । कोइ कटहर बडहर कोइ
न्योजी ।—जायसी (शब्द०) । २. नेता । चिलगोजा ।

न्योतना—क्रि० सं० [हि० न्योता + ना (प्रत्यय)] १. किसी रीति
रस्म या मानद उत्सव आदि में समिलित होने के लिये इष्ट
मित्र, बधु बांधव आदि को बुलाना । निमन्त्रित करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. दूसरे को अपने यहाँ भोजन करने के लिये बुलाना । जैसे,—
उसने सो ब्राह्मण न्योते हैं ।

न्योतनी—सङ्घ स्त्री० [हि० न्योतना] वह खाना पीना जो विवाह
आदि मंगल अवसरों पर होता है ।

न्योतहरी—सङ्घ पुं० [हि० न्योता] निमन्त्रित मनुष्य । न्योते में प्रायः
हुआ आदमी ।

न्योता—सङ्घ पुं० [सं० निमन्त्रण] किसी रीति रस्म, मानद उत्सव
आदि में समिलित होने के लिये इष्ट मित्र, बधु बांधव आदि
का आह्वान । बुलावा । निमन्त्रण ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. अपने स्थान पर भोजन के लिये बुलावा । भोजन स्वीकार करने
की प्रायश्चा । जैसे,—उन्होंने दस ब्राह्मणों को न्योता दिया है ।

क्रि० प्र०—माना ।—जाना ।—देना ।

४. वह भोजन जो दूसरे को अपने यहाँ कराया जाय या दूसरे
के यहाँ (उसकी प्रायश्चा पर) किया जाय । दावत । जैसे,—
(क) वह न्योता खाने गया है । (ख) हमें न्योता खिलाओ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खिलाना ।

५. वह भेंट या धन जो अपने इष्टमित्र, संबंधी इत्यादि के यहाँ
से किसी शुभ या अशुभ कार्य में समिलित होने का न्योता
पाकर उसके यहाँ भेजा जाता है । जैसे,—इसकी कन्या के
विवाह में मैंने १००) न्योता भेजा था ।

न्योरा^१—सङ्घ पुं० [हि० नेवला] दे० 'नेवला' ।

न्योरा^२—सङ्घ पुं० [सं० न्यूर] बड़े दातों का पुच्छ । नेवर ।

न्योला—सङ्घ पुं० [हि० नेवला] दे० 'न्योला' ।

न्योली—सङ्घ स्त्री० [सं० नली] नेती, घोंती, आदि के समान हठयोग
की एक क्रिया जिसमें पेट के नलों को पानी से साफ करते हैं ।

न्यौज^(३)—सङ्घ पुं० [सं० नैवेद्य] नेवज । नैवेद्य ।

नूप^(३)—सङ्घ पुं० [सं० नृप] राजा । नृप ।

न्यैती^(३)—सङ्घ स्त्री० [हि०] ४० 'नोहनी', 'नोई' ।

नह्वाना^(३)—क्रि० सं० [सं० स्नापन, प्रा० एहावण] स्नान कराना ।
नह्वाना ।

नहान^(३)—सङ्घ पुं० [सं० स्नान, प्रा० सहान] दे० 'नहान' ।

नहाना^(३)—क्रि० अ० [सं० स्नान, प्रा० राहाण] दे० 'नहाना' ।

नहावना^(३)—क्रि० सं० [दे० स्नापन, प्रा० राहावण, हि० नह्वाना]
स्नान कराना । नह्वाना ।

